॥ श्रीः ॥

श्रीविद्यारण्ययतिविरचितं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

[प्रथमखण्डः]

श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथकृतभावविवृतिसहितम्

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथः



श्रीविद्या साधना पीठ, शिवसदन
नगवा, वाराणसी



|| ŚRĪ ||

ŚRĪVIDYARṆAVATANTRAṂ

BY

ŚRĪ VIDYĀRAṆYAYATIḤ

[PART-I]

WITH COMMENTARY

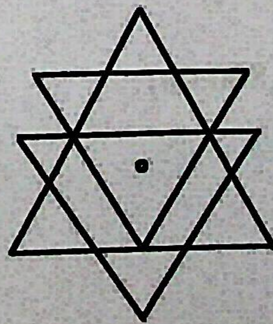
BHĀVAVIVṚTIḤ

By

ŚRĪ DATTĀTREYĀNANDA NĀTHAḤ

COMMENTED & EDITED BY

ŚRĪ DATTĀTREYĀNANDA NĀTHAḤ
Chairman
Shrividya Sadhana Peeth



SHRIVIDYA SADHANA PEETH, SHIVASADAN
VARANASI
2009

Published by—
Shrividya Sadhana Peeth
Shivsadan, Nagawa,
Varanasi
Ph. : 0542-2366622

Available at
Shrividya Sadhana Peeth
Shivsadan Nagawa,
Varanasi

First Edition : 500 copies

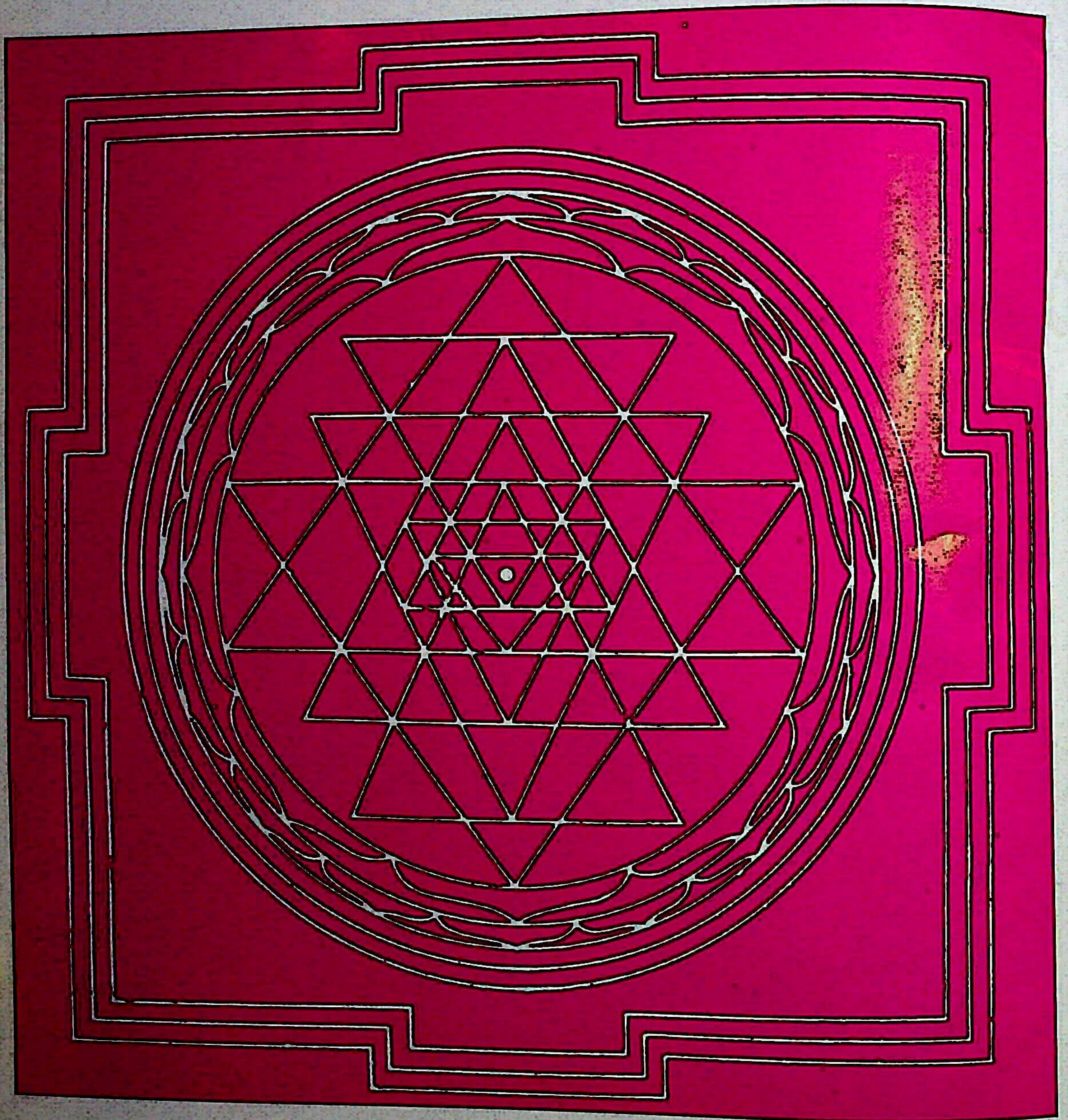
Price : Rs. 900.00 (2 Vol. Set Rs. 1,800.00)

Printed by—
Mahavir Press
Bhelupur, Varanasi

॥ श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी ॥



अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशपुष्पबाणचापाम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ॥



श्रीयन्त्रम्

आमुख

श्रीविद्यासाधनापीठ, वाराणसी की स्थापना भगवती पराम्बा महात्रिपुरसुन्दरी की साधना के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से पूज्य पिता श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ जी के द्वारा की गयी। अनन्तश्रीविभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा प्रवर्त्तित परम्परा का यह स्वाभाविक विस्तार था, क्योंकि पूज्य श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ जी ने स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त कर सतत साधना के द्वारा इस क्रम को सुदृढ़ किया था। श्रीविद्यासाधनापीठ ने निरन्तर नित्य महापूजा, सहस्रार्चन, लक्षार्चन और कोटयर्चन के अनुष्ठान के द्वारा एक बड़े साधकवर्ग का निर्माण ही नहीं किया, अपितु पूरे उत्तरभारत में इसे लोक में सुपरिचित भी कराया।

श्रीविद्या की साधाना में लगे साधकों के लिये अनेक ग्रन्थों की रचना पूज्य पिताजी ने की, किन्तु इस परम्परा के महान् सङ्ग्रह ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र' अभी भी साधकों को सुलभ नहीं है। इस रिक्तता को भरने के लिए श्रीविद्या के साधक, देश के प्रतिष्ठित औद्योगिक घराने के यशस्वी उद्योगपति, हारवर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक तथा पिताजी से दीक्षा प्राप्त श्री इन्द्रेश बत्रा ने पिताजी से प्रार्थना की तथा उसके समस्त वित्तीय भार को भी वहन करने का अनुरोध किया। श्रीविद्यासाधकवृन्द को कृतकृत्य करने का पिताजी का सङ्कल्प तब और भी दृढ़ हो गया, जब विश्व बैंक के मध्यपूर्व क्षेत्र के पूर्व निदेशक, मूर्धन्य अर्थशास्त्री एंव पिताजी से ही श्रीविद्या की दीक्षा प्राप्त, साधक डॉ. विनोद दुबे एवं डॉ. रीता कुमार लासएन्जिलिस (अमेरिका) तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई. ए. एस.) के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी एवं पिताजी के विधिवत् दीक्षा लेकर श्रीविद्यासाधना में निरत श्री हिमांशु कुमार ने श्रीविद्यार्णव की व्याख्या सहित प्रकाशन की प्रार्थना की। श्रीविद्यासाधनापीठ परिवार के सभी सदस्य इस प्रार्थना में सम्मिलित थे। अतः आज इसके प्रकाशन के अवसर पर मैं श्री इन्द्रेश बत्रा, डॉ. विनोद दुबे, डॉ. रीता कुमार, श्री हिमांशु कुमार तथा समस्त श्रीविद्यासाधनापीठ परिवार को सर्वप्रथम हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस पाण्डुलिपि के लेखन का कार्य द्वादश श्वास तक डॉ. पुष्पा त्रिपाठी ने बड़े मनोयोग से किया और उसके आगे का कार्य पूज्य पिताजी से चर्चा और निर्देश लेकर सम्पूर्ण पाण्डुलिपि लेखन–संशोधन को पूर्ण करने का अत्यन्त गुरुतर दायित्व गम्भीर विद्वान् डॉ. शिवादत्त द्विवेदी ने पूरा किया। अत: डॉ. श्रीमती पुष्पा त्रिपाठी एवं डॉ. शिवादत्त द्विवेदी के प्रति मैं हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करता हूँ। डॉ. ददन उपाध्याय ने प्रूफ संशोधन का कठिन कार्य एवं श्री अजय मणि त्रिपाठी ने संगणक में इस विशाल ग्रन्थ के संगणकीय टङ्कित रूप को परिश्रमपूर्वक सम्पन्न किया है, अत: डॉ. ददन उपाध्याय तथा श्री अजयमणि त्रिपाठी भी मेरे धन्यवाद के पात्र है। श्रीमहावीर प्रेस प्रति भी मैं अपना धन्यवाद ज्ञापित

करता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ का मुद्रणकार्य सम्पन्न किया है।

यह ग्रन्थ सुप्रसिद्ध मनीषी चिन्तक प्रोफ़ेसर गोविन्द चन्द्र पाण्डे के पुरोवाक् से समृद्ध हुआ है। उनके अपार वैदुष्य और भारतीय संस्कृति के विषय में गम्भीर चिन्तन की अभिव्यक्ति पुरोवाक् में व्यक्त विचारों में गुम्फित हुई है। इस 'पुरोवाक्' में आरंभिक साधना का मर्म तथा उसका अन्य दार्शनिक प्रस्थानों से अभिसम्बन्ध भी निरूपित हुआ है। अतः प्रोफ़ेसर पाण्डेय के प्रति अपना आभार ज्ञापित करता हूँ।

श्री रवि अग्रवाल एवं मुरलीधर पाण्डे प्रत्येक सोपान पर हमारे साथ रहे है। उनके सहयोग एवं सान्निध्य के लिये मै उनके प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

प्रोफेसर कमलेशदत्त त्रिपाठी पूज्य पिताजी के प्रति समर्पित शिष्य है। उन्होंने पिताजी के निधन के बाद भी श्रीविद्यासाधनापीठ के निर्दिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने का दायित्व सम्हाला है। एवम् इस ग्रन्थ की भूमिका भाग को व्यवस्थित करना तथा पुरोवाक् को ठीक–ठीक मुद्रित करने का कार्य उन्हीं के द्वारा सम्पन्न हो सकते थे, जिसे उन्होंने सम्पन्न किया। श्रीविद्यार्णव के सम्पादन और भावविवृति के लेखन के समय उनका सतत पूज्य पिताजी के साथ संवाद होता रहता था। अतः जब यह सब कुछ साकार हो रहा है, मैं उनके प्रति अपना हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। साथ ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग हेतु परोक्ष–अपरोक्ष रूप से जिन लोगो ने भी सहयोग किया हैं, उनके प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ। इस ग्रन्थ से साधक वृन्द एवं विद्वज्जन यथोचित रूप में लाभान्वित हों, इस कामना के साथ यह कृति समर्पित है।

फाल्गुन शुक्ल अष्टमी
वि. सं. २०६६
काशी

विद्वद्वशंवद
श्रीप्रकाशानन्दनाथ
अध्यक्ष
श्रीविद्यासाधनापीठ
नगवां, वाराणसी।

॥ सिद्धलक्ष्मीसहित श्रीमहागणपतिः ॥



बीजापूरगदेक्षुकार्मकरुजा चक्राब्जपाशोत्पलव्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरयाश्लिष्टोज्ज्वलद्भूषया विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः ॥

पुरोवाक्

आत्मविद्यां महाविद्यां श्रीविद्यां हृदि भावयन्।
श्रीमन्तं सद्गुरुं वन्दे दत्तात्रेयमिवापरम्।।

महामहिम श्रीगुरु महाराज के आदेश से मैं इन पंक्तियों को लिखने का साहस कर रहा हूँ। तन्त्रशास्त्र जैसे दुर्बोध विषय की रहस्यात्मक बातों पर उन्होंने स्वयं यथापेक्षित अपनी विवृति में प्रकाश डाला है। इस संक्षिप्त भूमिका का प्रयास ऐसा है, जैसे कोई सागर में अवगाहन के पूर्व उसके विषय में बहिरङ्ग जानकारी प्राप्त कर लेना चाहता हो। तन्त्रविषयक जिज्ञासा अनेक सन्देहों से घिरी हुई है, इन सन्देहों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसा नहीं है कि इस तरह के प्रयास पहले नहीं किये गये हैं। आर्थर ऐवेलन की अंग्रेजी में अनेक प्रसिद्ध पुस्तकें तन्त्रशास्त्र का परिचय देती हैं और भ्रान्तियों का निराकरण करती हैं। विनयतोष भट्टाचार्य और शशिभूषण दासगुप्त ने बौद्ध तन्त्र पर विशद ग्रन्थ रचे हैं। महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने तन्त्र पर अपनी कृतियों में विस्तृत प्रकाश डाला है। उनकी रचनाएँ अपनी गम्भीरता, पाण्डित्य और प्रामाणिकता के लिए सुप्रसिद्ध हैं और विद्वान् जिज्ञासुओं को मार्ग दिखलाती हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनसे कुछ सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उनसे तथा अन्य ज्ञानियों से जो मैंने सुना, उसे श्रीगुरु महाराज से उपलब्ध ज्ञान पर टिप्पणी मानकर जिन निष्कर्षों पर मैं पहुँचा हूँ, उसे ऐतिहासिक अनुसन्धान से गुम्फित कर अत्यन्त संक्षेप में यत्किञ्चित् निवेदित कर रहा हूँ। यह भूमिका मूल ग्रन्थ के बाहरी सोपान के समान है।

तन्त्र शब्द का प्रयोग जहाँ एक ओर सर्वांगीण शास्त्र के लिए होता है, वहीं उसका विशेष शास्त्र के रूप में भी प्रयोग होता है 'आसुरये तन्त्रं प्रोवाच'। यहाँ तन्त्रशब्द सांख्यशास्त्र के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु प्रायः तन्त्र शब्द शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के आगमशास्त्र के लिए प्रयुक्त होता है। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने तन्त्रालोक अथवा तन्त्रसार में तन्त्र का ऐसा ही प्रयोग किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से तृतीय शताब्दी ई० से बौद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ मिलते हैं, पाँचवीं शताब्दी से पाञ्चरात्र आगमों की पाण्डुलिपि होने का प्रमाण उपलब्ध होता है, छठी शताब्दी से शैव आगम की संहिताएँ उपलब्ध होती हैं, आठवीं शताब्दी से काश्मीर शैव सम्प्रदायों का प्रमाण मिलता है। ब्रह्माण्ड पुराण और मार्कण्डेय पुराणों में शाक्त आगमों के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इन सब प्रमाणों से इतिहासकारों में यह मत अब प्रायः स्वीकृत है कि तांत्रिक आगमिक साहित्य कम से कम दो हजार वर्ष पुराना है।

यह कालगणना इस समय विद्यमान तांत्रिक साहित्य के विषय में है, तांत्रिक परम्परा के विषय में नहीं। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में परम्परा और लिखित ग्रन्थों में भेद करना आवश्यक है। चिरकाल

तक जो परम्पराएँ मौखिक रूप से विद्यमान थीं, उनके कुछ लिखित ग्रन्थ बहुत बाद में प्रचलित हुए। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी अथवा कौटिलीय अर्थशास्त्र अथवा भरत के नाट्यशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्यों के कोई ग्रन्थ अब शेष नहीं हैं। वैदिक वाङ्मय के भी विशाल अंश पतञ्जलि के समय तक लुप्त हो गये थे। यह निदर्शनमात्र है, वस्तुत: तांत्रिक परम्परा वैदिक परम्परा से मूलत: अलग नहीं थी, उसका विकास वैदिक परम्परा के अन्दर ही हुआ और वह उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि वैदिक परम्परा। वेद अनादि हैं, वैसे ही आगम भी अनादि हैं। निगम और आगम में यही अन्तर है कि निगम को अपौरुषेय माना गया है और आगम का प्रवर्तन ईश्वर के द्वारा होने से वे पौरुषेय माने जाते हैं। बौद्ध और जैन भी बुद्ध और जिन को ईश्वर के समान सर्वज्ञ मानकर उनके वचनों को आगम मानते हैं। तन्त्रों के अनुसार सृष्टि के प्रति उन्मुख परमेश्वर से जीवों के कल्याण के लिए जो ज्ञान पहले नाद के रूप में प्रकट हुआ, वही पीछे शास्त्र के रूप में अवधारित हुआ। इस प्रकार पाँच मुखों या स्रोतों से नाना ज्ञान, शास्त्र और तन्त्रों की धाराएँ प्रवर्तित हुईं। इसका सारांश यही है कि तान्त्रिक आगम परमेश्वर के वचन हैं और वैदिक आम्नाय के समानान्तर हैं। किन्तु यह स्मरणीय है कि न्याय और वेदान्त के अनुसार वेद भी ईश्वरोक्त ही हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य नाना प्रकार से देवोपासना में लगा रहा है। तन्त्रशास्त्र मूलत: उपासना-शास्त्र है और वह स्वरूपत: अनादि मानव की धार्मिक अन्वेषणा को अपने में समेटे हुए है। इस बात को न समझ कर बहुत से आधुनिक आलोचक तन्त्रशास्त्र पर Primitive या प्रागैतिहासिक जनजातीय होने का दोषारोपण करते हैं। वस्तुत: यह दूषण न होकर भूषण ही है। दूषण यह उनके लिए है, जो मनुष्यत्व का ही विकास मानते हैं और सच्चे धर्म का आरम्भ अपने अर्वाचीन पैगम्बरों या नबियों से स्वीकारते हैं। अतिप्राचीन और अत्यन्त विविध मानव धार्मिक परम्पराओं में कतिपय सुधारों से नये-नये मतों और धर्मों का प्रचलन अवश्य हुआ है, किन्तु सनातन धर्म की परम्परा वैसे ही अविच्छिन्न और विश्वजनीन रही है, जैसे विज्ञान और प्रविधि की। यह सनातन और सार्वभौम परम्परा ही तान्त्रिक परम्परा के रूप में सुरक्षित है। इस परम्परा के असंख्य भेद मिलते हैं और बहुधा विभिन्न सम्प्रदायों के अनुगामी साम्प्रदायिक या सांस्कृतिक विशेषताओं को ही तन्त्र की मूल विशेषता समझ लेते हैं। इस लिए सर्वप्रथम तन्त्र के ऐतिहासिक भेदों के पीछे विद्यमान उसके व्यापक तत्त्व को देखना आवश्यक है।

मनुष्यमात्र अन्य प्राणियों के समान समीहा से प्रेरित होकर नाना विषयों का अनुधावन करता है, किन्तु विवेकी होने के कारण वह उन विषयों के साध्य, साधन, ज्ञान के द्वारा उनके उपादान और परिहार में समर्थ होता है। सबके अनुभवगोचर सुख-दु:ख और उनके लौकिक साधन इस कोटि में आते हैं। किन्तु सभी विचारशील व्यक्ति यह समझ लेते हैं कि उनकी सफलता और असफलता में अदृश्य कारण भी होते हैं, जिन पर उनका कोई वश नहीं होता। बहुत से विचारकों ने मानव जीवन के नियामक अदृष्ट

हेतुओं को काल, स्वभाव, नियति यदृच्छा अथवा कर्म के रूप में अवधारित किया है। किन्तु इन सभी मतों से अधिक प्रबल यह धारणा रही है कि देवता अथवा ईश्वर की इच्छा ही अन्ततोगत्वा मानव भाग्य का निर्णय करती है, जो कर्म को मानते हैं, उन्हें भी कर्म-विधान के व्यवस्थापक और अध्यक्ष के रूपों में ईश्वर की आवश्यकता होती है। जो संयोगमात्र को चरम हेतु स्वीकार करते हैं, उन्हें भी हेतुओं के विचित्र संयोग के नियामक की आवश्यकता होती है। काल केवल क्रम ज्ञापित करता है। उस क्रम के विषयों का निर्धारण नहीं करता। स्वभाव और परभाव जिस समष्टि के अंग हैं, उसकी अन्तर्व्यवस्था के लिए भी एक नियामक हेतु की आवश्यकता होती है। मनुष्य बुद्धिपूर्वक कार्य करता है, किन्तु उसकी बुद्धि के सीमित होने से उसकी स्वतन्त्रता अपने कार्य के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी नहीं कही जा सकती है। इसीलिए मानव कर्म के सन्दर्भ में कर्तृत्व के साथ साथ अन्य-प्रयोजकत्व भी स्वीकार किया गया है। संक्षेप में यदि मानव-जीवन और मानव-विश्व में कोई नैतिक व्यवस्था है, तो उसका चरम हेतु ईश्वर की इच्छा हो सकती है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में यह बात संक्षेप में कह दी गयी है और यह उपनिषद् एक साथ ही वेदान्त भी है और सिद्धान्ततः मूलागम भी।

इसीलिए आदिकाल से जीवन को सुखी बनाने के लिए मनुष्य किसी न किसी रूप में देवोपासना में लगा रहा है। यह उपासना ही तन्त्र का आरम्भ, मध्य और चरम बिन्दु है। यह प्रश्न हो सकता है कि—यदि उपासना सर्वविदित है और सर्वत्र प्रचलित है और वही तन्त्र का सार है, तो पृथक् रूप से तन्त्रशास्त्र की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि—मानव जीवन के सभी आवश्यक व्यापार स्वतः या सामाजिक शिक्षा के अनुसार चलते रहते हैं। किन्तु वे वैज्ञानिक नहीं होते और उनका विज्ञान विशिष्ट ज्ञान होता है। सभी सांस लेते हैं, किन्तु उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष नियमों को नहीं जानते। प्राणायाम उसके विशिष्ट विज्ञान पर आधारित है। सभी उठते, बैठते, दौड़ते हैं, किन्तु व्यायाम का विज्ञान उन्हीं क्रियाओं को सही रूप दे सकता है। तत्त्व-विचार सभी एक सीमा तक करते हैं, किन्तु न्यायविद्या के ज्ञान से वह विचार प्रमाणानुसारी हो जाता है। ऐसे ही ईश्वर का चिन्तन, भजन, प्रार्थना आदि सभी करते हैं, किन्तु उपासना का भी एक विज्ञान है, वही तन्त्रशास्त्र है, जिसमें उपासना के तात्त्विक आधार और मूलभूत क्रियाओं का व्यवस्थित रूप से प्रतिपादन मिलता है। यह एक सनातन विद्या है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञानियों की परम्परा के रूप में युग-युग से चली आ रही है। इसके कुछ अंश ग्रन्थों के रूप में भी उपलब्ध होते हैं, किन्तु बहुत से अंश लुप्तप्राय हैं। उपलब्ध ग्रन्थ भी अधिकांश में अप्रकाशित हैं। इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज का तान्त्रिक साहित्य द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त शैव, पाञ्चरात्र और बौद्ध आगमों की अनेक विस्तृत सूचियाँ प्रकाशित हुयी हैं। यह स्मरणीय है कि श्रीविद्या अद्वैतपरक शाक्त आगम परम्परा के अन्तर्गत है। तत्त्वतः इसका निकट सम्बन्ध अद्वैतपरक भैरव तन्त्रों से है। अद्वैतपरक ६४ भैरव तन्त्र प्रसिद्ध हैं। स्वच्छन्दतन्त्र, मालिनीविजय, त्रिशिरोभैरव आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक युगीन प्रपंचसार, शारदातिलक, त्रिपुरारहस्य, कामकलाविलास, श्रीविद्यार्णव

आदि इसी परम्परा में हैं।

तन्त्रशास्त्र के कुछ मूलभूत तत्त्वों का संक्षेप में विचार करना उपयोगी होगा। यहाँ पर अद्वैतपरक शाक्त आगमिक सिद्धान्तों को ही केन्द्र में रख कर विचार किया जायेगा, क्योंकि श्रीविद्यासम्प्रदाय या त्रैपुरदर्शन अद्वैतपरक है। वर्तमान आलोचनाप्रधान युग में इस शास्त्र पर आस्था के लिए इसके मौलिक सिद्धान्तों की ही पहले जिज्ञासा उत्पन्न होती है। तन्त्र का आधार यह सिद्धान्त है कि—

१. चैतन्य या संविद् ही परमार्थ है, वही एकमेवाद्वितीयं सत् है, वही आत्मा, परमात्मा, परब्रह्म, परमेश्वर है।

२. 'चैतन्य स्वरूपतः शक्ति से अभिन्न है' इस शास्त्र का यह विशिष्ट सिद्धान्त है। पराचिति, पराशक्ति, परसंवित्, चिच्छक्ति, ये सब एक परमतत्त्व के वाचक हैं।

३. ईश्वर और जीव उसी अद्वय चैतन्य शक्ति के रूप हैं। ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान ही पराविद्या है।

४. जगत् चिच्छक्ति का विवर्त है, उसका नानात्व चैतन्य पर अध्यस्त आभास मात्र है।

५. शब्द से सृष्टि होती है।

६. पञ्चकृत्यकारी परमेश्वरात्मिका चिति शक्ति के अनुग्रह से ही मनुष्य स्वरूप को पहचानता है और उसके लिए आगम शास्त्र और साधनों की परम्परा का प्रवर्तन हुआ है। इस परम्परा के बहुत से भेद हैं, क्योंकि मनुष्यों की रुचि और सामर्थ्य के अनुसार उनमें अधिकार भेद मिलता है। विभिन्न अधिकारियों के लिए विभिन्न तांत्रिक परम्पराएँ हैं। द्वैतपरक, द्वैताद्वैतपरक, और अद्वैतपरक। इनमें प्रत्येक में उपास्य के नाम-रूप-भेद से अनेक भेद हैं। दश महाविद्याओं में श्री, ललिता अथवा त्रिपुरा नाम से प्रसिद्ध देवी की उपासना का सम्प्रदाय भी श्रीविद्या सम्प्रदाय है, जिसे भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने स्वीकार और प्रचार किया। समस्त साधनप्रपंच का पर्यवसान चैतन्य की स्वरूप विश्रान्ति, पूर्णाहन्ता की प्राप्ति अथवा परासंविद् की अपरोक्षानुभूति में होता है। यह चरम परिणति केवल निजी मुक्ति या कैवल्य नहीं है, अपितु सर्वमुक्ति की यात्रा में साधक का परमेश्वर की कृपारश्मि के साथ समवेत होकर तदनुरूप पद पर अवस्थित होना है। यह सर्वमुक्ति का सन्दर्भ बहुधा प्राचीन विवरणों में अनुक्तप्राय है, किन्तु यत्र-तत्र जैसे योगभाष्य या सिद्धान्तलेशसंग्रह आदि में इसका संकेत मिलता है। बौद्ध और जैन दर्शनों में यह स्पष्ट है और अनेक आधुनिक मनीषियों ने इसका प्रतिपादन किया है।

७. मन्त्र के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रसंग में नाना मुद्राओं और न्यासों का उपयोग। गुरुपूजा का परम महत्त्व।

८. सृष्टि के प्रसंग में नाना आगमोक्त ३६ तत्त्वों का अनुमोदन एवं सृष्टि और संहार का यंत्रात्मक परिलेखन और भावना।

९. कुण्डलिनीयोग का अन्तरङ्ग उपाय के रूप में उपयोग।

१०. विचारजन्य ज्ञान, भावना और सहज निर्विकल्प में विश्रान्ति।

इनके अतिरिक्त शाक्त साधना में आचारसंहिता का भी वैशिष्ट्य है, जिसमें स्त्रियों का सम्मान एक विशेष स्थान रखता है 'विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु'।

इन मूल तत्त्वों का आधार आगम ही है। ये आगम सिद्ध सत्य हैं, जो महापुरुषों के लिए स्वानुभूतिसिद्ध भी हैं। प्रकृष्ट साधकों को इनका कुछ आभास उपलब्ध होता, इससे उनकी श्रद्धा दृढ़ होती है। प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षमूलक तर्क के गोचर न होने पर भी ये आगमानुसारी सत्तर्क से और विचार से बुद्धि में आरूढ होते हैं और विवेकानुसारी ध्यान, भावना और समाधि से इनका बोध स्फुटतर होता है, तो भी विपरीत भावना और असम्भावना के निरास के लिए न्यायानुसारी विचार उपयोगी होता है। इसी दृष्टि से यहाँ इन तत्त्वों के विषय में कुछ युक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

परमार्थ की चैतन्यात्मकता का सिद्धान्त अनेक प्रतिपक्षों से घिरा हुआ है। आजकल तो जडवाद ही सर्वत्र प्रचलित है, जिसके अनुसार चैतन्य भौतिक देह में एक परतन्त्र प्रतिभास मात्र है। इस दृष्टि से चैतन्य शब्द वस्तु सत्ता का वाचक नहीं है, प्रत्युत दैविक व्यवहार की कुछ विशेषताओं का वाचक है। संगणकीय यंत्र मनुष्य का अधिकाधिक अनुकरण करने में लगे हैं और बहुत से वैज्ञानिक आशा करते हैं कि एक दिन इन यान्त्रिक मनुष्यों और जैविक मनुष्यों में अन्तर नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकार की युक्तियों का अन्तिम उत्तर यह है कि जिन विक्रियात्मक व्यावहारिक वृत्तियों को यहाँ चैतन्य कहा जा रहा है, वे सभी चैतन्य के विषयमात्र हैं। चैतन्य को पूर्वसिद्ध माने बिना किसी भी विषय का पता नहीं लग सकता। चैतन्य किसी भी विषय से अभिन्न नहीं है, क्योंकि विषय और विषयी का भेद अन्धकार और प्रकाश के समान आत्यन्तिक है। इस प्रकार चैतन्य की देह से अतिरिक्तता प्रायः सभी अभौतिकवादी प्राचीन दर्शनों में किसी न किसी रूप में स्वीकृत है।

इस प्रकार चैतन्य की सत्ता निर्विवाद है, क्योंकि उसके विषय में विवाद भी विवादकर्ता के रूप में उसे सिद्ध करता है। चैतन्य को एक पृथक् धर्म स्वीकार करने पर भी उसे बौद्ध दार्शनिक चित्त की वृत्ति के रूप में अनित्य मानते हैं। कुछ अन्य आस्तिक दर्शन भी आत्मा को चैतन्य स्वरूप न मानकर उसे चैतन्य से भिन्न द्रव्य मानते हैं, जिसमें चैतन्य की सापेक्ष अभिव्यक्ति होती है। चैतन्य को अनित्य और परतन्त्र मानने पर यह अनित्य और दृश्य जगत् का अंग बन जायेगा और स्वयं विषयि-चैतन्य की अपेक्षा करेगा। विशुद्ध द्रष्टा के रूप में साक्षी चैतन्य को इसीलिए सांख्य दर्शन ने चित्तवृत्तियों से पृथक् स्वीकार किया है। बौद्ध दर्शन में विज्ञप्तिमात्रता वस्तुतः इसी प्रकार की है।

विषयों और विषयकार चित्त से पृथक् चिति शक्ति के विषय में यह मानना कि वह शक्तिरहित है, एक प्रकार के कैवल्य मार्ग में ही उपयोगी है। उससे पारमार्थिक चिति शक्ति अकुण्ठित रहती है। यह बात परमर्षि कपिल के आसुरि को उपदेश देने से दृष्टान्तित होती है और ३६ तत्त्वों के सृष्टि संहार क्रम

में इसका समाधान हो जाता है। वस्तुतः प्राकृत जगत् की सृष्टि के पीछे जो सर्वज्ञ चैतन्य की शक्ति की भूमिका नहीं देख पाते, उसके लिए जड जगत् की क्रियाओं और रचनाओं की सार्थकता उतनी ही दुरूह रहती है, जितनी क्रियामात्र का प्रथम आरम्भ। जागतिक रचना की सार्थकता, साध्य-साधन का अद्भुत संयोग, मानव जीवन में कर्मफल नियम की व्याप्ति, वाक् और ज्ञान की अनादि परम्परा इत्यादि हेतु भी सृष्टि के मूल में सर्वज्ञ चेतनशक्ति को सिद्ध करते हैं। इस प्रसङ्ग में भगवत्पाद का सौत्रान्तिकों का, सांख्यदर्शन का और वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद का दुष्परिहार खण्डन आलोच्य है। वसुबन्धु का परमाणुवाद का खण्डन भी सटीक है।

चैतन्य की स्वतन्त्र और नित्य सत्ता सिद्धि होने पर भी यह संदिग्ध रहता है कि क्या चैतन्य ही अद्वय रूप से परमार्थ है? चैतन्य का भौतिक सत्ता में विलयन तो चैतन्य और जडता के स्वरूप-भेद से ही खण्डित हो जाता है। चैतन्य का सब विषयों से पृथक् अस्तित्व दृग्-दृश्य विवेक के अभ्यास से स्पष्ट हो जाता है, तो भी यह संशय बना रहता है कि विषयी रूप चैतन्य क्या विषयापेक्ष नहीं है? और क्या विषय जगत् चैतन्य निरपेक्ष नहीं है? अथवा क्या चेतन आत्मा ही नाना नहीं है? अनेक विचारक यह मानते हैं कि ज्ञानमात्र सविषय होता है। इसका उत्तर यह है कि विषय अयःशलाकावत् स्वतःप्रदत्त नहीं होते हैं, वे विकल्प के द्वारा ही अन्यापोहपूर्वक ही अध्यवसित किये जा सकते हैं। जहाँ तक प्रत्यक्ष विषयों का प्रश्न है, जिन्हें कथञ्चित् विकल्प निरपेक्ष माना जा सकता है, उनके शास्त्रविदित पाँच रूपों में स्थूल, सूक्ष्म, तान्मात्रिक और गुणात्मक रूपों की आधारभूत सत्ता, अर्थवत्त्वरूप होती है, जो कि स्वतन्त्र न होकर चैतन्यसापेक्ष होती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विषयों के ग्राह्य रूप भी उनके अध्यवसेय रूपों के समान चैतन्यनिरपेक्ष नहीं होते। यद्यपि इस पूर्वापेक्षित चैतन्य को व्यक्तिगत चित्त तक सीमित नहीं रखना चाहिए। ग्राह्य अर्थों की सृष्टि ईश्वर चैतन्य की अधीन शक्ति से आपेक्षिकतया होती है। विकल्प विषयों में भी वाचिक परम्परा और अतिवैयक्तिक महत्तत्त्व की भूमिका होती है। इस पक्ष का विवरण वाक्यपदीय में प्राप्त होता है। इसके एक अंश का प्रकारान्तर से प्रतिपादन दिङ्नाग ने भी किया है। अभिनवगुप्त की विवृतिविमर्शिनी में भी विज्ञानवाद के इस पक्ष का सापेक्ष अनुमोदन मिलता है। त्रिपुरारहस्य ज्ञान खण्ड में भी संविद्-संवेद्य-सम्बन्ध के विषय में उक्तिसादृश्य देखा जा सकता है।

इस प्रकार विषयमात्र स्वतन्त्र स्वभाव से शून्य व्यावहारिक आभासमात्र होता है, जो चैतन्यार्थक, चैतन्यसाक्षिक, चैतन्यविकल्पित होता है। सर्वत्र चैतन्य ही 'भा' रूप में प्रसिद्ध होता है। उसी 'भा' में सब विषय निमग्न होते हैं, जैसा अभिनवगुप्तपाद ने स्पष्ट किया है। सभी आभास आत्मप्रत्ययविमर्श में ही स्वरूप-विश्रान्ति पाते हैं। इस सहज विमर्शात्मक प्रसिद्धि के अतिरिक्त जो विषयों में पृथक्ता, ठोसपन स्वभाव आदि के रूप में सत्ता प्रतीत होती है, वह आभास या 'भा' मात्र ही है। जब तक मनुष्य की आत्मबुद्धि देह, इन्द्रिय आदि में अध्यस्त रहती है, जब तक वह इन विषयों में अपनी सत्ता अवधारित करता है, तब तक उसे बाह्य विषय भी ठोस सत्य प्रतीत होते हैं। जैसे-जैसे आत्मज्ञान का विकास होता

है, वैसे वैसे जगत् का रूप भी बदल जाता है। 'चैतन्यम् आत्मा' (शिवसूत्र)— यही मूलसूत्र है।

चैतन्य का स्वरूप सांख्य में निरूपित सर्वशक्तिरहित नहीं है। वास्तव में चैतन्य का स्वरूप ही स्वप्रकाशता है। यह स्वप्रकाशता भी वैसी ही नहीं है, जैसी बौद्धों का स्वसंवेदन, जो ज्ञानमात्र में व्याप्त रहता है। विषय ज्ञान के समय भी ज्ञान में जो स्वसंवेदन रहता है, वह उसकी एक अन्यून कला है। यह स्वप्रकाशता विमर्श अथवा परामर्श के द्वारा पूर्णता को प्राप्त होती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रकाश और विमर्श का भेद ही संवित् है। चैतन्य और उसकी विमर्श शक्ति जिससे वह अपने को पहचानता और प्रकाशित करता है, दो अलग-अलग तत्त्व नहीं हैं, वे एक ही तत्त्व के दो पक्ष हैं। इसी लिए कहा गया है कि **'शिवशक्तिरिति ह्येकतत्त्वमाहुर्मनीषिणः'**। इच्छा, ध्यान और क्रिया इसी शक्ति के तीन पर्व हैं। ये तीनों पर्व एक स्वातन्त्र्य शक्ति के हैं। उसी का परतन्त्ररूप मायाशक्ति है, जो अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति के रूप में जगत् की सृष्टि करती है और स्वरूप-संकोच के द्वारा अणुभाव को प्राप्त जीव को बन्धन में डालती है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि आगमशास्त्र के प्रसिद्ध ३६ तत्त्व सांख्य के २५ तत्त्वों के अतिरिक्त माया और उसके कंचुक एव शिव-शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और सद्विद्या रूपी पाँच तत्त्वों के समावेश से सम्पूर्ण होते हैं।

चैतन्य शक्ति के अद्वैतवाद को समझने के लिए इस प्रकार जडवाद, शून्यवाद, भेदवाद, स्वभाववाद, यदृच्छावाद आदि विपरीत मतों की अनुपपन्नता और अशेष सृष्टि में स्थित अद्वय चितिशक्ति की उपपन्नता एवम् आत्मरूप से आबाल-गोपाल प्रसिद्धि, जो विचार से गहरी होती जाती है, उसको समझना आवश्यक है।

तन्त्र का यह प्रमुख सिद्धान्त है कि वाचक से ही वाच्य की सृष्टि होती है। वाक् तत्त्व केवल ध्वनि रूप वैखरी तक ही सीमित नहीं है। ध्वन्यात्मक वाक् के पीछे विचारात्मक वाक् रहती है। यही कारण है कि नाना भाषाओं का परस्पर अनुवाद किया जा सकता है, क्योंकि विचारों में विश्वजनीनता होती है। इस मध्यमा वाक् के ऊपर पश्यन्ती वाक् होती है। यहाँ वाक् अर्थ को वैसे ही प्रकाशित करती है, जैसे प्रातिभ साक्षात्कार। यदि मध्यमा के स्तर पर विकल्प और प्रत्यक्ष का अभेद यह सूचित करता है कि विचार्य विषय विचार से अलग नहीं किये जा सकते, तो पश्यन्ती के स्तर पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिभा से विषय का अभिन्नतया आविर्भाव होता है। वाक् के ये तीनों स्तर अविद्यागत जीव से सम्बद्ध होने पर वस्तुसत्ता से सम्पन्न विषयाकार से जुड़े रहते हैं। किन्तु परावाक् जो संवित् से अभिन्न है, उसमें इच्छा और सृष्टि का भेद नहीं रहता। इसलिए यह कहा जाता है कि शब्द से सृष्टि होती है। यह शब्द मानवीय शब्द न होकर ईश्वरीय शब्द है, अपितु यह भी कहा जा सकता है कि सिद्ध मनुष्यों के शब्दों में भी इस प्रकार की शक्ति होती है। वसुबन्धु ने विज्ञानवाद की सिद्धि के लिए यह प्रमाण दिया है कि ऋषियों के शाप से अरण्य तक भस्म हो गये थे।

तन्त्रशास्त्र की पारिभाषिक पदावली के अनुसार सृष्टि के प्रति उन्मुख शिव-शक्तिसामरस्य रूपी बिन्दु के स्फुरण से नाद का उद्भव होता है। नाद शून्य में प्रतिध्वन्यात्मक शब्द और ज्योति के रूप में होता है। इसको शब्दब्रह्म भी कहते हैं, यद्यपि कुछ व्याख्याकारों के अनुसार परनाद और इस महानाद में भेद है (द्रष्टव्य-शारदातिलक)। क्रमशः अपर बिन्दु, बीज और अपर नाद के आविर्भाव से सृष्टि पूर्ण होती है।

ऊपर के संक्षिप्त विवरण से जहाँ यह स्पष्ट होगा है कि चैतन्य ही एकमात्र शक्ति है, वहीं यह भी स्पष्ट होगा कि सृष्टि आकाशकुसुम के समान सर्वथा मिथ्या नहीं है। चैतन्यशक्ति का ही आभास समस्त जगत् है। 'एकैव सा महाशक्तिः यया सर्वमिदं ततम्'। चैतन्य शक्ति का आभास होने के कारण स्वरूपतः जगत् उससे अभिन्न है। 'सत् ही अनादि काल में विद्यमान था, एक और अद्वितीय।' उसमें ही ज्ञानपूर्वक अपने को बहुधा नाम-रूप के द्वारा विशेषित किया, किन्तु वह स्वयं सब वस्तुओं में अन्तर्निहित है। नाम रूप ही अपने नानात्व में असत्य है, किन्तु उनमें व्यवहार चलता है। अतः इस संविद् अद्वैतवाद को दो भ्रान्तियों से बचना आवश्यक है— शून्यवाद और नानात्ववाद या विषयात्मवाद। न तो जगत् की असंख्य सीमित वस्तुएँ स्वभाव से निरपेक्षतया सत्, न वे सर्वथा मिथ्या और शून्य हैं और न संविद् नाना विषयों में कोई एक विषय है और न वह स्वरूपशून्य है। जैसे जगत् संविद् की भाँति में समेटा हुआ है, ऐसे ही संविद् अशेष शक्तिसम्पन्न प्रकाश विमर्शात्मक शिव-शक्ति सामरस्य है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट होगा कि संविद् अद्वैतवाद तत्त्वतः शैव अद्वैतवाद के अत्यन्त निकट है और अपनी परमार्थ दृष्टि में मूल औपनिषद अद्वैत से अभिन्नप्राय है। काश्मीर शैव मत से उसका भेद मुख्यतया उपासना के प्रसंग में और परिभाषाओं में विषय में है, अद्वैत वेदान्त से उसका भेद सृष्टि-प्रक्रिया के विस्तार में और साधन क्रम में है तथा माया शक्ति की प्रचलित व्याख्या के विषय में है। यह स्मरणीय है कि शाङ्कर सम्प्रदाय में श्रीविद्या अंगीकृत है। सौन्दर्यलहरी में अद्वैत वेदान्त और श्रीविद्या का एक ही भाव मिलता है।

तांत्रिक उपासना का मूलाधार मन्त्रविद्या है। मन्त्र को आजकल बहुत से लोग या तो सांकेतिक और संक्षिप्त अभिधान मानते हैं या तिलस्मी अनर्गलता। इस विषय की मीमांसा प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती जी ने अपने जपसूत्र में की है। वे स्वयं भौतिकी के आचार्य थे। प्रत्येक वस्तु का एक सहज स्वस्पन्दन भी होता है। जिस शब्द को हम सुनते हैं, वह तो किसी भौतिक माध्यम में अभिघात से उत्पन्न होता है और इससे भिन्न वस्तुओं का अणुगत सहज स्पन्दन होता है। अणुओं के अन्दर निरन्तर स्पन्दन होता रहता है, सभी भौतिक पदार्थ स्पन्दात्मक गति से व्याप्त हैं, जो उनके आन्तरिक अवयवों में होती रहती है। अन्ततोगत्वा ये स्पन्दन की तरंगें अत्यन्त रहस्यमय बन जाती हैं और उनका कुछ भी पता विशिष्ट गणित के अतिरिक्त नहीं चलता, किन्तु यह निर्विवाद है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर से स्थूल स्तर तक सभी वस्तुओं में स्पन्दन रहता है, जिसके प्रभाव से हम उनका प्रत्यक्ष करते हैं। उदाहरण के लिए प्रकाश की रश्मियों का स्पन्दन रूप और रङ्ग को आभासित करता है। भौतिक स्तर पर यह स्पन्दन ही उनके बीजभूत मन्त्र का प्रतिरूप है।

मन्त्र स्वयं चित्तात्मक होता है। मन्त्रश्चित्तम्— चित्त स्वयं चैतन्य का ही विषय से संकुचित होने वाला रूप है। 'चितिरेव चेतनपदादवरुढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्'— संक्षेप में किसी विषय के आकार में तन्मय चित्त मन्त्रशक्ति का माध्यम होता है। जब मनुष्य किसी एक विचार पर अपनी चेतना को केन्द्रित करता है और उसे अपने जीवन का मूलसूत्र बना लेता है, तो वह विचार ही एक प्रकार से मन्त्र कहा जा सकता है। किन्तु साधना के प्रसङ्ग में इन बातों के अतिरिक्त एक तीसरी बात और आवश्यक है कि न केवल मन्त्र जीवन का मूलसूत्र बनना चाहिए, न केवल वह तन्मय चित्त का केन्द्र बनना चाहिए, अपितु उसे गुरुपरम्परा से प्राप्त और शक्तिसम्पन्न होना चाहिए— 'मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्'। ईश्वर ने ही जिस शब्द से अपने को प्रकाशित किया है, उसकी गुरुशिष्यपरम्परा के द्वारा वही मन्त्र के रूप में प्राप्त होता है। सामान्यत: मन्त्र वर्णात्मक या नामात्मक होते हैं या वाक्यात्मक होते हैं— उदाहरण के लिए प्रणव वर्णात्मक है, शिव-नारायण के प्रसिद्ध मन्त्र नामात्मक हैं, विभिन्न प्रकार की गायत्रियाँ वाक्यात्मक हैं।

मन्त्र-जप की दो अवस्थाएँ कही जाती हैं, एक तो जिसमें मन्त्र का मानसिक स्मरण अविच्छिन्न रूप से होता है। दूसरी अवस्था वह है, जिसमें साधक की चेतना मन्त्र के बाहरी आवरण को भेद कर सुषुम्णा में प्रवेश करती है। इसको दूसरे प्रकार से भी कहा जा सकता है, जिस समय जप संलग्न चेतना हृदय में या शून्यभाव में प्रवेश करती है, उस समय यह अनाहत नाद सुनने लगती है— स्मरणीय है कि शून्य आकाश का ही गुण शब्द माना जाता है। यही कुण्डलिनी का मार्ग भी खुलता है। इस अवस्था से साधक की चेतना एक बृहत्तर चेतना से निर्देशित होने लगती है। महाशून्य में पहुँच कर उसके लिए चित्कला के अवतरण की प्रतीक्षा ही शेष रहती है।

कुण्डलिनी के विषय में बहुत प्रकार के वर्णन शास्त्रों में मिलते हैं और बहुत सी आधुनिक व्याख्याएँ भी की गयी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मानव शरीर संस्थान में मेरुदण्ड का विशेष महत्व है और उसके अन्दर नाड़ियों के चक्र मिलते हैं। किन्तु जैसे श्वास-प्रश्वास स्वत:प्राण न होकर प्राण-शक्ति के कारण वायु के विक्षोभ हैं, ऐसे ही स्थूल शरीर की नाड़ियां सूक्ष्म शरीर के सन्निवेश से प्रतिरोपित होती हैं। कुण्डलिनी शक्ति एक ओर वासनावेष्टित सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखती है, दूसरी ओर वह जागरित होने पर स्वरूपोन्मुख चैतन्य का क्रमिक आविर्भाव सूचित करती है। कुण्डलिनी शक्ति महाशक्ति का कुण्डलित या सुप्तवत् रूप है, जिसका जागरण मूलाधार है। इतना निश्चित है कि मन्त्र-साधना से एक अपूर्व शक्ति का साधक में उन्मेष होता है, जो कि क्रमश: विकसित होती रहती है। यह शक्ति व्यक्ति को अपने अतीत से मुक्त करती है और विश्व चैतन्य से जोड़ती है।

कुण्डलिनी योग में नाना चक्रों के विवरण मिलते हैं, जिनमें तत्त्व, देवता और वर्ण विभिन्न रूप से विन्यस्त हैं, किन्तु इन चक्रों का विवरण सब शास्त्रों में एक—सा नहीं है। इनका यथार्थ साधना के द्वारा ही उपलब्ध होता है। एक आधुनिक दार्शनिक अवधारणा है, जिसे OPERATIOLALISM या प्रक्रियावाद कहते हैं। इसके अनुसार प्रक्रियात्मक व्यावृत्तियों के वाचक पारिभाषित शब्दों का अर्थ प्रक्रिया के द्वारा

ही पता चल सकता है। आधुनिक विज्ञान के अनेक पारिभाषित शब्द इसी प्रकार के हैं। उनका अर्थ गणितीय समीकरणों और मापन के द्वारा ही पता चलता है। ऐसे ही मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, चक्र आदि का अर्थ भी बाहरी रूप से अक्षरविन्यास या रेखाविन्यास मात्र प्रतीत होते हुए भी उनकी तात्त्विक सार्थकता साधन प्रक्रिया के बिना बोधगम्य नहीं होती। वह साधना के अन्तर्गत ही प्रकट होती है। उनमें कौन से तत्त्व साङ्केतिक रूढि मात्र हैं, कौन से निरूपक आकार हैं, कौन से गुरुसंकल्प से अभिमन्त्रित अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न हैं। इसका निर्णय बाहर से नहीं किया जा सकता।

तान्त्रिक साधना में तीन मुख्य आयाम होते हैं, जो काय, वाक् और चित्त से सम्बन्ध रखते हैं। शरीर से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाएँ आसन मुद्रा, न्यास और प्राणायाम मुख्यतया हैं। वाक् से सम्बन्ध रखने वाली क्रिया मन्त्रजप है और चित्त से सम्बन्ध रखने वाली प्रक्रिया ध्यान, भावना और प्रणिधान हैं, जप भावना और प्रणिधान में ध्येय विषय देवात्मक होता है। देवता के तीन रूप माने जाते हैं— स्थूल, सूक्ष्म और पर। स्थूल रूप विग्रहात्मक होता है, सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक होता है, पर रूप चैतन्यात्मक होता है। देवपूजा के उपायों में ही प्रतिमापूजन के साथ ही यन्त्रपूजन भी होता है। प्रतिमा ध्यान मन्त्र से बनती है और उसी का सूक्ष्म साङ्केतिक आकार यन्त्र होता है। मन्दिरों में गर्भगृह की प्रतिमा के नीचे यन्त्र स्थापित किया जाता है, मानो उसी का विकसित रूप प्रतिमा है। देव पूजन बाहरी रूप से और मानसिक रूप से भी होता है, जहाँ पूजा भावना में बदल जाती है। इस प्रकार उपासना का यह विधि पक्ष भावना द्वार से साधना के सूक्ष्म द्वार को खोल देता है। इसी प्रकार सूक्ष्म मार्ग का लक्ष्य अपरोक्षानुभूति या आत्मसाक्षात्कार है।

उपासना विषय में एक प्राचीन मत यह है कि वह सर्वथा शास्त्रविधि के अनुसार कर्म सम्पादन है। दूसरा आजकल यह प्रचलित मत है कि उपासना मूलत: भावनात्मक होती है। वस्तुत: यह दोनों पक्ष जुड़े हुए हैं। शास्त्रविधि, श्रद्धा और भक्ति, विचार, भावना और ध्यान ये सभी एक समन्वित बाहरी और आन्तरिक साधना क्रम के अंग हैं। समस्त उपासना का तात्पर्य योग की प्राप्ति ही है। योग एकाग्रभूमिक चित्त की एकाग्रता होती है, जो तत्त्वों का उत्तरोत्तर भेद कर परमात्म तत्त्व में समाहित होती है। परमेश्वर के ज्ञापक मन्त्रात्मक शब्द और ध्येय रूप से आरम्भ कर वह उनके साक्षात्कार में चरितार्थ होती है। समस्त उपासना सीमित अहम् का पराहन्ता के चरणों में निवेदन है।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि तन्त्रशास्त्र के जो दार्शनिक मूलाधार ऊपर निर्दिष्ट हैं, वे स्पष्ट नहीं करते कि किस प्रकार का चैतन्यवाद या आत्मवाद तन्त्रशास्त्र के लिए आवश्यक है। ऊपर यह कहा जा चुका है कि आगमिक दर्शन द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत इन तीनों दृष्टियों से प्रणीत हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्रीसम्प्रदाय या त्रैपुरसिद्धान्त मूलत: अद्वैतवादी नहीं हैं। उसकी गुरुपरम्परा में शंकराचार्य मध्य मणि के समान हैं। उनकी सौन्दर्यलहरी में अद्वैतवाद सुनिश्चित है। यद्यपि उसका शक्तिपात कुछ विद्वानों को शंकर के अद्वैत के विरुद्ध प्रतीत होता है। वस्तुत: ऐसा नहीं है, यह हमने अपनी पुस्तक Life and Thought of sāmkarācarya में विस्तार से प्रतिपादित किया है। त्रिपुरारहस्य ज्ञान खण्ड और

ललितासहस्रनाम एवं उसकी भास्करराय की व्याख्या में यह स्पष्ट है। आगमों में जो अनेक प्रकार के वाक्य मिलते हैं, उनको इसी सन्दर्भ में समझना चाहिए। वस्तुत: अद्वैत आगमिक दर्शन का सबसे गम्भीर और प्रामाणिक विवरण अभिनवगुप्तपादाचार्य का है, जो उनकी ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी में पाया जाता है। यद्यपि अभिनवगुप्त शैव थे, उनके दार्शनिक सिद्धान्त मूलत: शाक्त दर्शन से भिन्न नहीं थे। भेद संज्ञाओं और परिभाषाओं और गौण विवरणों के तत्त्वों में है। साधनसम्बन्धी विवरण में अवश्य ही अनेक भेद हैं। शाक्त दृष्टि का विस्तृत प्रतिपादन महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की अनेक कृतियों में देखा जा सकता है।

अन्त में तन्त्रशास्त्र के विषय में कुछ अन्य प्रचलित भ्रान्तियों पर दृष्टिपात करना अस्थान में न होगा। तन्त्र को अज्ञानी मनुष्य की दुरभिलाषाओं का मनमोदक कहा गया है अथवा तिलस्मी प्रवंचना बताया गया है अथवा अनैतिकता का प्रच्छन्न प्रचलन कहा गया है। जहाँ तक अज्ञानमूलक कल्पनाओं का प्रश्न है, वह आरोप तो धर्ममात्र पर लगाया गया है। कट्टर देववादी तन्त्र को हेय मानते हैं, ईसाई वैदिक धर्म को हेय मानते हैं, बुद्धिवादी ईसाई धर्म को हेय मानते हैं, आधुनिक समाजशास्त्री नृतत्त्वशास्त्री न केवल प्रागैतिहासिक धर्मों को मिथ्या मानते हैं, वे सभ्यतायुगीन धर्मों को भी कपोलकल्पित ही मानते हैं। अत: तन्त्रशास्त्र के ऊपर काल्पनिकता का आरोप धर्मान्तरीय या धर्ममात्रविरोधी आग्रह का ही परिचायक है।

मनुष्य दैनन्दिन जीवन में उपयुक्त होने वाली शक्तियों के अतिरिक्त क्या और कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उसे लोकोत्तर सत्ता से जोड़ सके। तन्त्र और योग के अनुसार मनुष्यमात्र में ऐसी शक्ति है। सामान्य जीवन में भी अनेकधा अलौकिक घटनाएँ देखी जाती हैं। अलौकिक जीवन के प्रति मनुष्य का आकर्षण स्वाभाविक और अनिवार्य है। इस आकर्षण को तन्त्र और योग एक वैज्ञानिक और क्रियात्मक रूप देते हैं। न्यूनाधिक रूप में सभी धर्मों में इस साधन विज्ञान के तत्त्व पाये जाते हैं। अत: चत्मकारी सिद्धियाँ प्रवञ्चनात्मक नहीं कहीं जा सकतीं। यह सही है कि सच्ची बातों के पीछे पीछे झूठी बातें भी चलती हैं। प्रवंचना एक मनोवृत्ति से जन्म लेती है, जो स्वार्थसिद्धि के लिए मिथ्या को साधन बनाती है। तिलस्म और ज़ादूगरी तो मनोरंजन के लिए हाथ की सफायी होती है, उसमें प्रवंचना का तत्त्व गौण होता है। तन्त्र योग या धर्म न तिलस्म है, न प्रवंचना। उनका प्रयोजन प्रदर्शन है ही नहीं, उनका प्रयोजन दर्शन ही है। अवश्य ही उनमें कभी कभी अलौकिक चमत्कार देखे जाते हैं, जो प्रवंचना न होकर जिज्ञासा के लिए नये द्वार को खोलना होता है। चमत्कारों पर बहुत वाद-विवाद चलता रहा है। चमत्कारमात्र को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो ऐसा व्यापक रूप से कहते हैं, वे आँखों देखी बात को पूर्व मान्यता के आधार पर ठुकराते हैं।

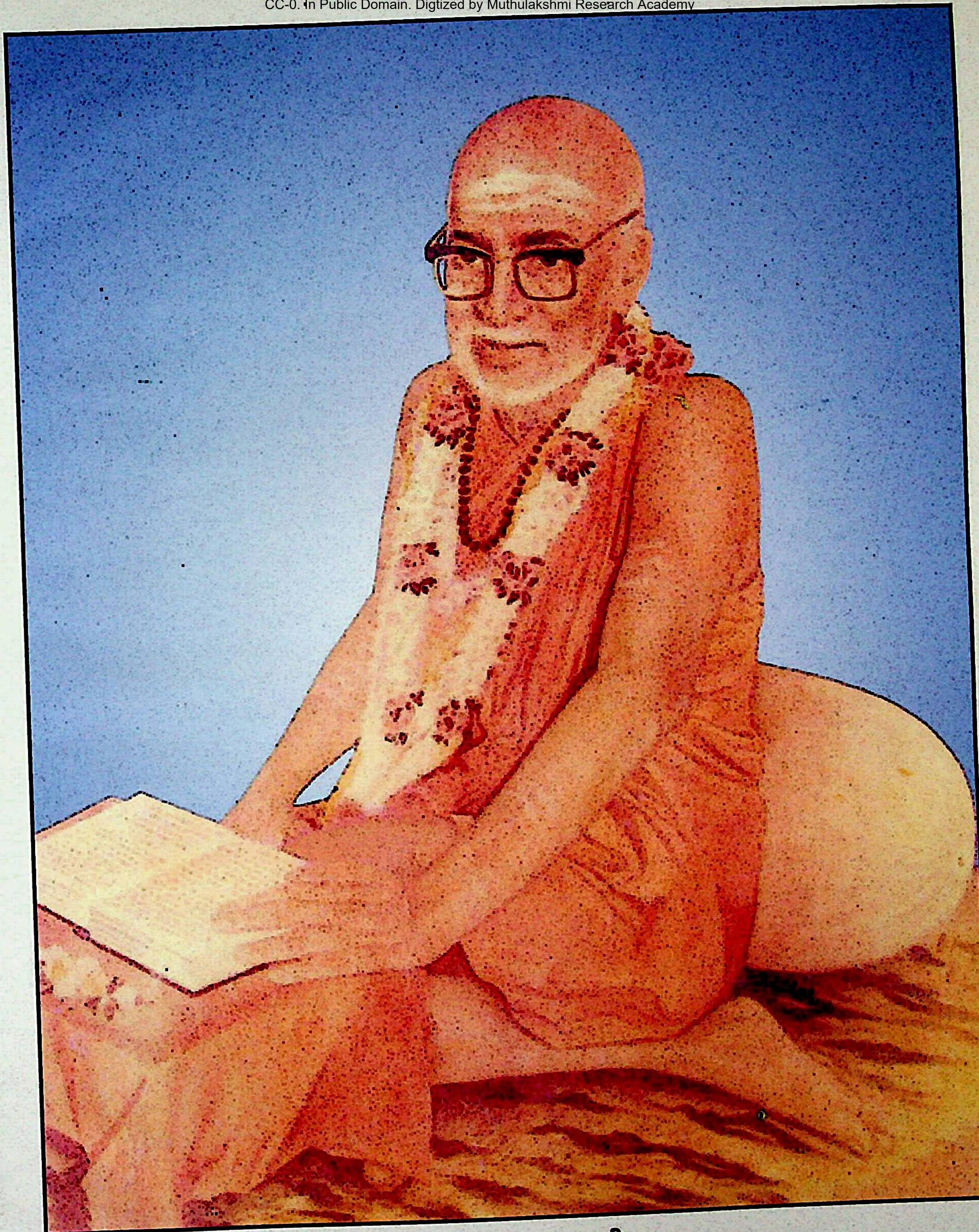
जहाँ प्रच्छन्न अनैतिकता का आरोप है, वह वाममार्गी आचार और कुछ तान्त्रिक उक्तियों पर आधारित है। कुछ विद्वान् इन आपत्तियों का उत्तर वामाचार को सांकेतिक बता कर देते हैं। इस विषय में प्रामाणिक विवरण परशुरामकल्पसूत्र में देखना चाहिए। तिब्बती में संरक्षित सिद्धों के चरित भी आलोच्य

हैं, श्री श्री रामकृष्णलीलाप्रसंग के कतिपय स्थल इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। प्रमोद कुमार चट्टोपाध्याय की तन्त्राभिलाशीर साधु संग भी द्रष्टव्य है। वस्तुतः वामाचार एक रहस्य के आवरण में ढका हुआ है, जो उसमें विधिवत् दीक्षित के लिए ही प्रकाशित हो सकता है। वह समाज में प्रकाश रूप से सबके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। इसलिए उससे अनैतिकता के प्रचार का प्रंश्न नहीं उठता, न उसमें अनैतिकता के समर्थन का कोई प्रमाण है।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीविद्यार्णव की रचना विद्यारण्य ने लगभग १२वीं शताब्दी में की थी। पद्मपादाचार्य की शिष्यपरम्परा के अन्दर श्रीलक्ष्मण के निर्देश से यह रचना सार्थक हुई। ग्रन्थ में श्रीविद्याविषयक परम्पराओं का संग्रह है और इसका विशेष आग्रह साधन और आचार पर है। ग्रन्थ विशालकाय है, इसकी भावविवृति निबद्ध कर परमपूज्य गुरुमहाराज ने साधक मण्डली पर अपूर्व अनुग्रह किया है। श्रीविद्या के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने जो अनेकविध भगीरथ प्रयत्न किया है, उसका गुणगान भावी युगों में होता रहेगा। उनके ही अनुग्रह से जो मैंने थोड़ा बहुत लिखा है, उसमें अवश्य ही मेरी अल्पज्ञता के कारण त्रुटियाँ होंगी। मेरा पाठकों से यही निवेदन है कि—

'न चात्रातीव कर्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः'।

गोविन्दचन्द्र पाण्डेय



श्री षोडशानन्दनाथ जी
(श्री करपात्र स्वामी)



श्रीकरपात्र स्वामी जीवन-परिचय

परमपूज्य श्री करपात्र स्वामी का प्रादुर्भाव विक्रमसंवत् १९६४ श्रावण शुक्ल द्वितीया (तदनुसार १२ अगस्त, उन्नीस सौ सात ईसवीं) में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के 'भटनी' ग्राम में हुआ था। आपके बाल्यकाल का नाम श्री हरनारायण ओझा था। पिता का नाम श्रीरामनिधि ओझा एवं माता का नाम श्रीमती शिवरानी देवी था। सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में परममाहेश्वर उपमन्यु महर्षि के गोत्र में 'करैली' ओझा की उपाधि से विभूषित श्रीकरपात्र स्वामी के पूर्वज गोरखपुर जनपद के 'ओझौली' ग्राम के निवासी थे।

स्वामी जी का प्रारम्भ में प्रतापगढ़ के भटनी ग्राम में ही स्थानीय विद्यालय में कुछ दिनों तक प्रारम्भिक अध्ययन हुआ। वहाँ बालक हरनारायण ने व्याकरण ग्रन्थों के साथ-साथ धर्म एवं सदाचार आदि के स्मृति ग्रन्थों को भी लगन के साथ आत्मसात् किया।

उनके मन में पूर्वजन्म के संस्कार के कारण वैराग्य की भावना उठती रहती थी। यह देखकर पिताजी ने नववर्ष की अवस्था में ही उनको परिणय-सूत्र में बाँध दिया। १९१६ ई. में खण्डवा ग्राम निवासी श्रीरामसुचित जी की पुत्री महादेवी के साथ आपका विवाह हुआ। उन्हे एक कन्यारत्न की प्राप्ति भी हुई, जो भगवतीस्वरूपा भगवती नाम से ही जानी जाती रही। लगभग १९ वर्ष की अवथा में गृहस्थ जीवन से विमुख होकर नगरों, ग्रामों, तीर्थों, दुर्गम जंगलों नद—नदियों, मठ—मन्दिरों, पुण्य क्षेत्रों में भ्रमण, अध्ययन, तीर्थाटन करते हुए स्वामी जी ने मध्य प्रदेश के वीरसिंहपुर ग्राम में दण्डी स्वामी ब्रह्मानन्द जी से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा प्राप्त कर हरिचैतन्य नाम को धारण किया। उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जनपद के नरवर में व्याकरण, न्याय, वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। आपको अनेक संत सिद्धमहात्माओं के साथ स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी, श्री जीवनदत्त जी के सान्निध्य में विशेष अध्ययन—सत्संग का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार चालीस वर्ष की अवस्था में स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के सान्निध्य में काशी में दुर्गा कुण्ड के निकट एक शिव मन्दिर में स्वामी जी से संन्यास—दीक्षा ग्रहणकर हरिहरानन्द सरस्वती करपात्र स्वामी के नाम से विख्यात हुए।

स्वामी जी नें सनातन धर्म के प्रति हिन्दू जनमानस को उल्लासित करने के लिए १९४० ई. में आपने दुर्गाकुण्ड के नज़दीक भारतीय धर्म संघ की स्थापना की तथा वे उसके प्रचार प्रसार के लिए गोमुख से गङ्गासागर तक गङ्गातट मार्ग से पैदल चलकर विविध यज्ञ एवम् अनुष्ठान करते रहे। उन्होंने धार्मिक विचारों के उपस्थापन के लिए, नास्तिकों के मत का खण्डन करने तथा शास्त्रोक्त विचारों के प्रचार के लिए 'सिद्धान्त' नामक पत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें संस्कृत एवं हिन्दी के लेख प्रकाशित होते थे। घर घर में धर्म की चर्चा हो, अधर्मवाद का खण्डन हो, इसके लिए 'सन्मार्ग' नामक दैनिक हिन्दी समाचार पत्र का भी प्रकाशन करवाया। राजनीति एवं धर्म में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए, लोक के अभ्युदयपरक धर्म की वृद्धि के लिए, धार्मिक लोगों को राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश की प्रेरणा देने के लिए करपात्र स्वामी ने सितम्बंर १९४५ ई. में अखिल भारतीय रामराज्य परिषद् (राजनितिक दल) की स्थापना की।

हरिहरानन्द सरस्वती करपात्र स्वामी ने वेदविषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिसमें वेदार्थपारिजात, वेदस्वरूपविमर्श, वेद-प्रामाण्यमीमांसा, वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल-यजुर्वेदसंहिता-भाष्य संस्कृत में निबद्ध

ग्रन्थ हैं। उन्होंने हिन्दी में 'वेद का स्वरूप और प्रामाण्य' नामक ग्रन्थ की रचना की।

करपात्र स्वामी ने एकादश प्रकरणात्मक 'भक्तिरसार्णव' नामक ग्रन्थ की रचना भी संस्कृत में की। हिन्दी में निबद्ध उनके ग्रन्थ हैं— भक्तिसुधा, पिबत भागवतं रसमालयम्, भागवतसुधा, श्रीराधासुधा, रास- पञ्चाध्यायी, वेणुरव, माँ के चरणों में, रास और प्रयोजन, रामायणमीमांसा, श्रीभागवततत्त्व, अहमर्थ और परमार्थसार, गीता का हुक्मनामा, संकीर्तनमीमांसा और वर्णाश्रममर्यादा, गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति आदि।

करपात्र स्वामी ने उत्तर भारत में श्रीविद्या की उपासना को जन–जन में आत्मसात् कराने के लिए महात्रिपुरसुन्दरीवरिवस्या, श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या आदि ग्रन्थों की रचना कर लोककल्याण किया।

रामायण–महाभारत–कालमीमांसा–विदेशयात्रा–शास्त्रीयपक्ष, क्या सम्भोग से समाधि, राहुल जी की भ्रान्ति, शाङ्कर सिद्धान्तों पर किये गये आक्षेपों का समाधान, शाङ्करसिद्धान्त–समाधान, हिन्दू कोडविल प्रमाण की कसौटी पर इनके अशास्त्रीयमतखण्डनात्मक ग्रन्थ हैं।

मार्क्सवाद और रामराज्य, सङ्घर्ष और शान्ति, पूँजीवाद, समाजवाद और रामराज्य, बदलती दुनिया, ये राजनीतिक दल, धर्म और राजनीति, गम्भीर विचार की आवश्यकता, जाति, राष्ट्र और संस्कृति, रामराज्य, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू धर्म, रामराज्य परिषद् और अन्यदल, आधुनिक राजनीति और रामराज्य परिषद्, राजनीति में भी ईमानदारी–व्यक्तिगत या सामूहिक, समन्वय, साम्राज्य संरक्षा आदि राजनीतिपरक ग्रन्थों की रचना भी करपात्र स्वामी द्वारा की गयी।

करपात्र स्वामी ने सदाचार की शिक्षा देने के लिए विचार-पीयूष, धर्मकृत्योपयोगितिथ्यादिनिर्णय, कुम्भनिर्णय, चातुर्वर्ण्य संस्कृतिविमर्श आदि ग्रन्थों की रचना की।

स्वामी जी कलियुग में धर्मप्रवर्तक, यज्ञावतार, धर्मसम्राट्, अभिनवशङ्कराचार्य आदि विरुदों से विभूषित हुए। आपने वेद, धर्म, यज्ञ आदि के संरक्षण के दायित्व का निर्वाह किया। स्वामी जी ने राजनीति में धर्म के औचित्य का प्रबल प्रतिपादन किया और वे 'शास्त्रार्थमहारथी' उपाधि से विभूषित हुए। अन्ततः उन्होंने अपने लिये लौकिक जीवन को अनुपयोगी माना और ब्रह्मनिष्ठावृत्ति को धारण करने के लिए भगवान् शिव के त्रिशूल पर विराजमान काशी के केदारखण्ड में ७ फरवरी, १९८२ तदनुसार माघ शुक्ल चतुर्दशी पुष्यनक्षत्र सर्वार्थसिद्धि योग की प्रभात वेला में पद्मासन पर आसीन होकर महायात्रा में प्रस्थान करने हेतु पार्थिव शरीर की लीला का संवरण कर लिया।

शङ्करपरम्परा में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'श्रीहरिहरानन्द सरस्वती', "करपात्रस्वामी" जी ने उत्तर भारत में विलुप्तप्राय श्रीविद्या का पुनरुत्थान का कार्य सम्पन्न किया। यद्यपि श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज ने वेदान्त, भक्ति एवं अष्टाङ्गयोग आदि साधनपद्धतियों द्वारा परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया था, तथापि केवल लोककल्याण की भावना से श्रीविद्यासाधनापद्धति का अलम्बन किया एवं पूर्ण विधि–विधान से श्रीयन्त्राधिष्ठात्री भगवती राजराजेश्वरी ललितामहात्रिपुरसुन्दरी का उच्चतम उपासनाक्रम अनुष्ठित किया तथा उत्तर भारत में विलुप्त हो रहे श्रीविद्यासम्प्रदाय को अपने तपोबल से पुनः प्रतिष्ठापित किया।



॥ श्रीः॥

अनुत्तराम्नायाधीश्वरी श्रीशाङ्करी विजयतेतराम्

भूमिका

विविधयन्त्रमयीं मनुमालिनीं सकलविश्वमयीं वरदां शिवाम् ।
मतयुगं परिभाव्य गुरोर्मुखात् श्रयत साधनवीथिमिमां पराम् ॥

पराम्बा राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका की असीम अनुकम्पा तथा भगवान् शिव की कमनीय कामना ही मूर्तिमती होकर प्रस्तुत हो रही है। आज श्रीविद्यार्णव तन्त्र का प्रकाशन आराध्यचरण श्रीगुरुदेव श्रीकरपात्र स्वामी महाराज एवं पराम्बा के प्रसाद का फल है।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थरत्न मुझे हस्तगत हुआ था; तभी से इसके पुनर्मुद्रण का विचार मेरे मन में उद्भूत हुआ। दो भागों में प्रकाशित इस महान् ग्रन्थ का सम्पादन श्री रामचन्द्रकाक तथा श्री भट्ट के द्वारा किया गया था और यह १९३२ में श्रीनगर से निकला था। इस संस्करण का आधार तीन पाण्डुलिपियाँ थीं, जिनमें से 'क' पाण्डुलिपि राजा राम सिंह के पुस्तकालय से, 'ख' पाण्डुलिपि रघुनाथ मन्दिर, जम्मू के पुस्तकालय से तथा 'ग' पाण्डुलिपि महाराज हरिसिंह के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी। इसी संस्करण के आधार पर प्रस्तुत संस्करण पुनर्मुद्रित करने का विचार हुआ। हमारे सम्मुख विद्यमान संस्करण में श्रीमधुसूदन कौल द्वारा ७ मार्च १९४१ में अंग्रेज़ी में लिखी गयी भूमिका भी है, किन्तु १९३२ में प्रकाशित संस्करण में १९४१ में लिखित भूमिका कैसे दी जा सकती है? अतः स्पष्ट है कि यह संस्करण प्रथम संस्करण का पुनर्मुद्रित रूप है, जिसमें द्वितीय संस्करण का विवरण नहीं दिया गया है। पूज्यचरण स्वामी श्रीकरपात्री जी महाराज ने इस पर एक टिप्पणी भी लिखी थी, किन्तु वह सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। मैंने इतने क्लिष्ट एवं विस्तृत ग्रन्थ पर लोकभाषा में भाव-विवृति लिखने का इस लिए दुःसाहस किया, जिससे संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ साधक भी इस ग्रन्थरत्न से लाभ उठा सकें। भाव-विवृति के प्रस्तुतीकरण में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो साधकपुङ्गव ही करेंगे। मैं मानता हूँ कि यदि इससे श्रीविद्या के साधकों को कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

इस महनीय ग्रन्थ की महिमा लिखने का सामर्थ मुझमें नहीं है। इसके विषय में मैं यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि जो यहाँ है, वही अन्यत्र भी है, जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है— यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्। श्रीविद्यासाधना के लिए श्रीविद्यारण्य यति ने जो मधुसंचय किया है, वह उनके जीवन का महनीय कार्य है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थ के पूर्ण होने पर जगद्धात्री महामाया उनके सामने प्रकट होकर बोलीं— 'वत्स! वरं ब्रूहि। जगद्धात्री को सामने खड़ी देखकर

उन्होंने कहा— 'हे माता, यदि कोई साधक केवल हमारे इस ग्रन्थ के आधार पर गुरुक्रम एवं मन्त्रादि देखकर मुझे गुरु मानते हुए भक्तिपूर्वक जप करे, तो दीक्षित न होने पर भी उसको सिद्धि प्राप्त हो'। देवी ने 'तथाऽस्तु' कहकर उनका अनुमोदन किया। श्रीविद्यार्णवतन्त्र के शब्दों का अवलोकन करें—

आविरासीज्जगद्धात्री महामाया ममाग्रतः।
इति प्रोवाच भो वत्स वृणीष्व वरमीप्सितम्॥
तदोक्तवानहं मातर्मत्कृतं ग्रन्थमुत्तमम्।
दृष्ट्वा गुरुक्रमं मन्त्रान् गुरुत्वेन विभाव्य माम्॥
दीक्षां विनापि भक्त्या तु ये यजन्ति च साधकाः।
तेषामचिरतां सिद्धिर्भवत्विति ममेप्सितम्।
सुप्रसन्ना तदा देवी तत्तथैव भवत्विति ॥

(श्री विद्यार्णव०, पृ. ४, श्लो. ७२-७६)

इससे बढ़कर इस ग्रन्थ की महिमा क्या हो सकती है, क्योंकि इसको देवी का आशीर्वाद प्राप्त है और यह आशीर्वाद प्राप्त ग्रन्थ है।

हमारी भारतीय संस्कृति साधना से ओत-प्रोत है। इसमें ऐहिक एवं परलौकिक दोनों ही साधनाएँ निहित हैं। हमारे तन्त्रशास्त्र अदृष्ट शक्तियों से सम्पर्क करने की ऐसी विलक्षण साधनाएँ बताते हैं, जिससे हम अलौकिक शक्तियाँ हस्तगत कर सिद्धि प्राप्त कर सकें। यही साधना का परम लक्ष्य भी है। इसी प्रकार की अलौकिक शक्तियों के धनी भगवान् आद्यशङ्कराचार्य ने अनीश्वरवादी बने हुए भारत को पुनः ईश्वरवादी बनाने का अद्भुत चमत्कार किया एवं हमारे आध्यात्मिक वाङ्मय के सार-सर्वस्व अद्वैतमत की स्थापना की, किन्तु अद्वैतमत की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि व्यवहारकी निवृत्ति हो जाय, क्योंकि बिना उसके अद्वैत में स्थिति सम्भव नहीं— 'यावद्व्यवहारो न निवर्तेत, न तावदद्वैतं सिद्ध्येत्'।

हमारी आचार्यपरम्परा में वेद एवं तन्त्रागम दोनों का स्वतःप्रामाण्य स्वीकृत है। इससे स्पष्ट है कि जितनी प्रामाणिकता वेदों या निगमों की है, तन्त्रागमशास्त्र की उससे कम नहीं है। आप्तवचनों द्वारा आविष्कृत अर्थविशेष का बोध करानेवाली परम्परागत पद्धति को तन्त्रागमशास्त्र कहा जाता है— आप्तवचनैराविष्कृतमर्थविशेषं गमयति बोधयतीत्यागमः। इसकी परिभाषा के रूप में शारदातिलक में कहा गया है—

आगतं शिववक्त्राच्च गतं च गिरिजाश्रुतौ।
तदागम इति प्रोक्तं शास्त्रं परमपावनम्॥

हारितायनस्मृतिकार तो आगम को वेद ही घोषित करते हैं—

वेदः शाक्तस्तथा शैवपाञ्चरात्रादिभेदतः।
आगमो विविधो नित्य ईश्वरेणैव दर्शितः॥

अतः तन्त्रसाधना के द्वारा अद्वैतसिद्धि प्राप्त कर परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए भगवान् शङ्कराचार्य ने चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना करके वहाँ 'श्रीयन्त्र' की स्थापना की तथा ललिता महात्रिपुरसुन्दरी की साधना का श्रीगणेश किया।

तन्त्र के क्षेत्र में भगवान् शङ्कर के १४ शिष्य थे, वे सभी देवी के उपासक एवं निग्रहानुग्रह करने में समर्थ अलौकिक शक्तिसम्पन्न थे। १४ शिष्यों में ५ शिष्य संन्यासी और नव गृहस्थ थे। पाँच संन्यासी शिष्यों में एक शिष्य का नाम शङ्कर भी था। अवशिष्ट चारों के नाम हैं— पद्मपाद, बोध, गीर्वाण और आनन्दतीर्थ। गृहस्थ शिष्यों के नाम हैं— सुन्दर, विष्णुशर्मा, लक्ष्मण, मल्लिकार्जुन, त्रिविक्रम, श्रीधर, कपर्दी, केशव और दामोदर। स्वयं विद्यारण्य स्वामी ने इसे स्वीकार किया है—

शङ्कराचार्यशिष्याश्च चतुर्दश दृढव्रताः।
देव्यात्मानो दृढात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः॥
शङ्करः पद्मपादाख्यो बोधो गीर्वाण एव च।
आनन्दतीर्थनामा च पञ्चैते भिक्षवः स्मृताः॥
सुन्दरो विष्णुशर्मा च लक्ष्मणो मल्लिकार्जुनः।
त्रिविक्रमः श्रीधरश्च कपर्दी केशवस्ततः॥
दामोदर इति ख्याता गृहिणो नवसंख्यकाः।

(श्रीविद्यार्णव० पृ. ३, श्लो. ६०-६३)

इन्होंने ही भारत के विभिन्न प्रान्तों में जाकर श्रीविद्या का प्रचार-प्रसार किया। इसलिए शङ्कर से बहिर्भूत कोई अन्य सम्प्रदाय लोक में नहीं है— सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशङ्कराद्बहिः। उसी समय से शङ्करसम्प्रदाय से सम्पुष्ट श्रीविद्यासाधना अक्षुण्ण रूप से चल रही है।

प्रसिद्धि है कि भगवान् शङ्कराचार्य ने बहुत से स्तोत्रग्रन्थों की रचना की थी। वे परमार्थतः अद्वैतवादी होते हुए भी ललितात्रिपुरमहासुन्दरी के परम उपासक थे। फिर भी व्यवहार में देवताओं की उपासना तथा सार्थकता खूब मानते थे और स्वयं भी लोकशिक्षा के लिए वैसा ही आचरण करते थे। उनके विशाल हृदय में साम्प्रदायिकता के क्षुद्रभाव के लिए कोई स्थान नहीं था। इसीलिए शिव, विष्णु, शक्ति प्रभृति नाना देवी-देवताओं के और उनके विभिन्न रूपों के स्तोत्र उनकी साहित्य-साधना में दीख पड़ते हैं। पराम्बा की साधना के लिए भी आचार्य शङ्कर ने विशेषरूप से साहित्य की रचना की। जिसमें प्रपञ्चसारतन्त्र, ललिताम्बात्रिशतीभाष्य, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र एवं सौन्दर्यलहरीस्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, जिसमें तन्त्रों का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है। दक्षिणामूर्तिस्तोत्र के अनुसार गुरु ही शिव हैं— 'तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।' दक्षिणामूर्तिस्तोत्र आदिशङ्कररचित है, इसमें मतभेद नहीं है। इसका सिद्धान्त तन्त्रों का ही है, जिसे महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज जी ने भी स्वीकार किया है। कालान्तर में अन्य आचार्यों ने भी आचार्य शङ्कर की श्रीविद्या-साधना का अनुमोदन, समर्थन एवं स्वयम्

आचरण कर उसे आचरणीय बनाया। तन्त्रसिद्धान्त का प्रभाव अन्य धार्मिक प्रस्थानों पर भी पड़ा। यहाँ तक कि बौद्ध तन्त्र में भी शक्ति की उपासना देखी जाती है।

गुरु-शिष्य-परम्परा

श्रीविद्यारण्य यति ने अपने ग्रन्थ श्रीविद्यार्णवतन्त्र में अपनी गुरुपरम्परा का विस्तार से वर्णन किया है। गुरुक्रम का उल्लेख करते हुए श्रीशङ्कराचार्य के पूर्व ७० गुरुओं का स्मरण करते हुए श्रीशङ्कर के चौदह शिष्यों का उल्लेख किया है, जिनके नाम पूर्व में दिये गये हैं। शङ्कराचार्य के संन्यासी शिष्यों में एक पद्मपाद थे, जिनके छः शिष्य थे, उनके नाम इस प्रकार हैं— माण्डल, परपावक, निर्वाण, गीर्वाण, चिदानन्द और शिवोत्तम। ये सभी संन्यासी थे। बोधाचार्य के बहुत से शिष्य थे। लिखा गया है कि सभी देशों में उनके दो प्रकार के शिष्य थे— संन्यासी और गृही। गीर्वाणेन्द्र के मुख्य शिष्य का नाम विद्वद्गीर्वाण था। विद्वद्गीर्वाण के शिष्य का नाम विबुधेन्द्र, विबुधेन्द्र के शिष्य का नाम सुधीन्द्र और सुधीन्द्र के शिष्य का नाम मन्त्रगीर्वाण था। मन्त्रगीर्वाण के गृही और संन्यासी दोनों प्रकार के शिष्य थे। आनन्दतीर्थ के सभी शिष्य गृही थे। वे लोग पादुकापीठ की आराधना करते थे।

शङ्कराचार्य के नव गृही शिष्यों में प्रथम सुन्दराचार्य के तीन प्रकार के शिष्य थे— पीठनायक, संन्यासी और गृही। विष्णुशर्मा के शिष्य का नाम प्रगल्भाचार्य था। श्रीविद्यार्णवतन्त्र ग्रन्थ के रचयिता श्रीविद्यारण्य यति, जिनका पूर्व नाम माधवाचार्य या माधवमन्त्री था, प्रगल्भाचार्य के शिष्य थे।

जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

विष्णुशर्मणः शिष्यः प्रगल्भाचार्यपण्डितः।
तच्छिष्येण मया प्रोक्ते......................॥

(श्रीविद्या० पृ. ४, श्लो. ७१-७२)

लक्ष्मणाचार्य की तपस्या, विद्या और श्री असाधारण थी। चौथी अवस्था में वीतराग होकर वे इधर-उधर देशाटन करते रहे। मल्लिकार्जुन के अधिकांश शिष्य विन्ध्यप्रदेश में रहते थे। इसी प्रकार त्रिविक्रम के शिष्य जगन्नाथ क्षेत्र में, श्रीधर के शिष्य गौड, मिथिला तथा बंगदेश में और कपर्दी के शिष्य काशी, अयोध्या प्रभृति क्षेत्रों में रहते थे। केशव और दामोदर के विषय में कोई विशेष विवरण नहीं मिलता[1]।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने एक टिप्पणी में उल्लेख किया है कि 'गद्यवल्लरी' नाम से श्रीविद्या का एक पद्धतिग्रन्थ उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम श्रीनिजात्म प्रकाशानन्द मल्लिकार्जुन योगीन्द्र है। यह ग्रन्थ १४३५ शकाब्द में अर्थात् १५१३ खीष्टाब्द में (शके बाणत्रिवेदशशिसम्मिते)

१. कल्याण— वेदान्ताङ्क, पृ. ६५२।

लिखा गया था, ऐसा ग्रन्थ से ही पता चलता है। यह शङ्कराचार्य के सम्प्रदाय का तान्त्रिक ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भ में शङ्कर की गुरु-पराम्परा तथा शिष्य-परम्परा का कुछ वर्णन मिलता है। पाठकों की औत्सुक्य-निवृत्ति के लिए उसका सारांश यहाँ पर दिया जा रहा है। इस मत में शङ्कर सम्प्रदाय के प्रवर्तक शिव हैं। इसके बाद गुरुओं का नाम इस प्रकार है— विष्णु, ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौड़पाद, गोविन्द और शङ्कराचार्य। शङ्कराचार्य की शिष्य-परम्परा ऐसी है— विश्वरूप, बोधघन, ज्ञानघन, ज्ञानोत्तम, शिव, ज्ञानगिरि, सिंहगिरि, ईश्वरतीर्थ, विद्यातीर्थ, शिव, भारतीतीर्थ, विद्यारण्य, मलयानन्द, देवतीर्थ सरस्वती, यादवेन्द्रसरस्वती, नृसिंहसरस्वती, माधवेन्द्रसरस्वती, मल्लिकार्जुन, योगीन्द्र, रामदेव, दायदेवयति, गगनानन्द, चिद्घनानन्द, महेश्वरानन्द, चिदानन्द और आनन्दचित्प्रतिबिम्ब'।

इसी शङ्करपरम्परा में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'श्रीहरिहरानन्द सरस्वती करपात्रस्वामी' का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने उत्तर भारत में विलुप्तप्राय श्रीविद्या का पुनरुत्थान किया। यद्यपि श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज ने वेदान्त, भक्ति एवं अष्टाङ्गयोग आदि साधनपद्धतियों द्वारा परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया था, तथापि केवल लोककल्याण की भावना से उन्होंने श्रीविद्यासाधना पद्धति का अवलम्बन किया एवं पूर्ण विधि-विधान से श्रीयन्त्राधिष्ठात्री भगवती राजराजेश्वरी ललितामहात्रिपुरसुन्दरी का उच्चतम उपासनाक्रम अनुष्ठित किया। स्वामी जी ने उत्तर भारत में विलुप्त हो रहे श्रीविद्यासम्प्रदाय को अपने तपोबल से पुनः प्रतिष्ठापित किया।

स्वामी विद्यारण्य एवं श्रीविद्यार्णवतन्त्र

श्रीविद्यार्णवतन्त्र के रचयिता श्रीविद्यारण्य स्वामी अत्यन्त त्यागी, बुद्धिमान् व्यवहारकुशल, कर्तव्यदक्ष, महाविभूतिसम्पन्न महामानव थे। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इन्होंने दक्षिण के विजयनगर साम्राज्य की स्थापना बुक्क राजा के द्वारा करायी थी और इस राज्य का सञ्चालन स्वयं किया था। श्रीविद्यारण्य मुनि का जन्म १३०० शालिवाहन शक में हुआ था। कम से कम १३९१ तक वे जीवित रहे। अपने ग्रन्थों में अपने सम्बन्ध में इन्होंने जो लिखा है, उससे ज्ञात होता है कि पूर्वाश्रम का इनका नाम माधवाचार्य था। इसके विपरीत कुछ विद्वान् इनका दूसरा नाम भारतीतीर्थ भी मानते हैं। डॉ. वीरमणि प्रसाद उपाध्याय ने भारतीतीर्थ को पञ्चदशी का लेखक कहा है[1]। इस विषय का विवेचन यहाँ आवसरिक न होने के कारण, इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि स्वयं माधवाचार्य (विद्यारण्य) ने अपने ग्रन्थ 'जैमिनीयन्यायमाला' की टीका में भारतीतीर्थ को अपना गुरु लिखा है। अतः भारतीतीर्थ और विद्यारण्य को पृथक् पृथक् मानना ही समीचीन होगा।

माधवाचार्य (विद्यारण्य स्वामी) माधवमन्त्री के नाम से प्रसिद्धि पा चुके थे। चतुर्थ आश्रम में इनका नाम विद्यारण्य स्वामी हुआ। इनके पिता का नाम 'मायण' एवं माता का नाम 'श्रीमती' था। सायण और

---

१. कल्याण – वेदान्ताङ्क, पृ. ६५१।

भोगनाथ इनके दो छोटे भाई थे। सर्वज्ञ विष्णुशर्मा तथा भारतीतीर्थ नाम के इनके दो गुरु थे। पूर्व आश्रम में राज्य के कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी इन्होंने असाधारण योग्यता से उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना कर वेदान्तशास्त्र तथा तन्त्रशास्त्र की प्रतिष्ठा का वर्धन किया है। इसके बाद संसार से विरक्त होकर संन्यास की दीक्षा लेकर विद्यारण्य मुनि के नाम से शृङ्गेरी के शङ्कराचार्य बने थे।

प्रो. राममूर्ति शर्मा के अनुसार कि विद्यारण्य जी द्वारा रचित १६ ग्रन्थ हैं, जिनमें वेदान्त की पञ्चदशी तथा तन्त्रशास्त्र का अनुपम ग्रन्थ श्रीविद्यार्णवतन्त्र सर्वाधिक प्रख्यात है। इन्होंने चारों वेदों पर भाष्य के अतिरिक्त अनेक ब्राह्मणग्रन्थों पर विचार किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने दशोपनिषद्दीपिका, जैमिनीयन्यायमालाविस्तर, अनुभूतिप्रकाश, ब्रह्मगीता, पराशरस्मृतिभाष्य, मनुस्मृतिव्याख्यान, सर्वदर्शनसंग्रह, माधवीय धातुवृत्ति, शङ्करदिग्विजय एवं कालनिर्णय आदि ग्रन्थों की रचना की है।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि भगवान् शङ्कराचार्य के १४ शिष्य थे। उनमें विष्णुशर्मा या सर्वज्ञविष्णु के शिष्य का नाम प्रगल्भाचार्य था। प्रगल्भाचार्य के शिष्य श्रीविद्यार्णवग्रन्थकार श्रीविद्यारण्य स्वामी थे।

प्रसिद्धि है कि शङ्कराचार्य के शिष्य लक्ष्मणाचार्य चौथी अवस्था में वीतराग होकर इधर उधर देशाटन करते थे। उनकी तपस्या, विद्या और श्री की असाधारण ख्याति थी। किसी समय घूमते—घूमते एक दिन प्रौढ़देव नामक राजा की राजधानी में पहुँचे। प्रौढ़देव ने उनके लिए रहने का स्थान, वस्त्र, भोजन और सेवा के लिए परिचारकों का प्रबन्ध कर दिया। एक दिन राजा की सभा में जिस समय लक्ष्मणाचार्य उपस्थित थे, उसी समय वणिकों ने द्वीपान्तर से प्राप्त हुई वस्त्रादि बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ राजा को भेंट कीं। राजा ने उन लोगों के द्वारा दिये गये मूल्यवान् वस्त्र आदि आचार्य लक्ष्मण को दे दिये। आचार्य लक्ष्मण उन्हें लेकर अपने वासस्थान पर चले गये। कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके उन्होंने वस्त्रों की आहुति दे दी। प्रौढ़देव के पास जब यह समाचार पहुँचा, तब उन्होंने वस्त्र लौटाने अथवा उनका मूल्य भेज देने की प्रार्थना करते हुए उनके पास दूत द्वारा सन्देश भेजा। यह सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया और उन्होंने 'ब्रह्मस्वापहारक' कहकर राजा को शाप दिया कि तुम निर्वंश हो जाओ। इसके बाद लक्ष्मण ने अपने इष्ट देवता से प्रार्थना करके वही वस्त्र लौटा दिये। इसके पश्चात् लक्ष्मण प्रौढ़देव के नगर को छोड़कर दक्षिण की ओर चले गये। लक्ष्मण की अलौकिक शक्ति की बात सुनकर प्रौढ़देव का चित्त उद्विग्न हो गया और उनके समीप जाकर उनके क्रोध की शान्ति के लिए उसने विनयपूर्वक बहुत प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण ने उनसे कहा कि तुम्हें पुत्र होगा, परन्तु उससे तुम सुखी न होगे। तदनन्तर समय पाकर सिद्ध महात्मा के वर के अनुसार राजा को एक कुमार उत्पन्न हुआ। लेकिन पुत्र होते ही राजा का देहावसान हो गया। जैसा कि स्वयं श्रीविद्यारण्य स्वामी ने कहा है—

भविष्यति तवापत्यं तत्सुखं न भविष्यति।
तच्छ्रुत्वा प्रमना राजा गतो निजपुरं प्रति।।
ततः काले व्यतीते तु प्रौढदेवो महीपतिः।
अन्तर्वत्न्यां स्वभार्यायामापन्नः पञ्चतां गतः।।
(श्रीविद्या० पृ. ४, श्लो. ८९-९०)

प्रसिद्धि है कि उस समय श्रीविद्यार्णवतन्त्र ग्रन्थ के रचयिता माधवाचार्य (विद्यारण्य मुनि) प्रजा के अनुरोध से राजकुमार के प्रतिनिधि के रूप में राज्य-भार स्वीकार कर शासन करने लगे और उन्होंने श्रीचक्र के आकार में नगर स्थापित कर उसका श्रीविद्यानगर नाम रखा। उसके बाद राजकुमार के वयस्क होने पर अम्बदेव नाम से उसे गद्दी पर बैठाया और उसीसे आदेश लेकर उन्होंने प्राचीन आगमग्रन्थ (तन्त्रराज, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव, योगिनीहृदय आदि), यामल ग्रन्थ प्रभृति का विशेष रूप से आलोचन करते हुए कादि और हादि मत—दोनों के सूक्ष्म रहस्य का अनुशीलन किया। फलतः उन्होंने इस महनीय ग्रन्थ श्रीविद्यार्णवतन्त्र का निर्माण किया।

ततस्तद्राज्यभारं तु ग्राहितोऽस्मि प्रजार्थितः।
अर्ककोटिसहस्रेण द्रव्येण महदद्भुतम्।।
श्रीविद्यानगरं नाम्ना श्रीचक्राकारमुज्ज्वलम्।
निर्माय प्रौढदेवस्य पुत्रे राज्यार्हतां गते।।
तमम्बदेवं भूपालमुपवेश्य नृपासने।
तदाज्ञया तत्सदसि विद्वद्भिर्विमलार्थिभिः।।
सम्प्रार्थितोऽहमम्बाया आज्ञामासाद्य यत्नतः।
नानातन्त्राणि संशोध्य यामलानि च सर्वशः।।
मतद्वयं समालोड्य ग्रन्थं विद्यार्णवाभिधम्।
मुदा रचितवानस्मि लोकानामुपकारकम्।।
(श्रीविद्यार्णव० पृ. ४, श्लो. ९१-९५)

जिन साधकों को श्रीविद्या की साधना एवं उपासना का सौभाग्य प्राप्त है, वे अनुभव करते हैं कि इस विद्या में अनन्त ज्ञान एवं शान्ति है। सम्भवतः इसीलिए इस विद्या के पूर्व श्रीशब्द का प्रयोग है। यद्यपि श्री के अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं, उनमें यहाँ दो व्युत्पत्ति ध्यातव्य है। १. श्रीयते जनैः इति श्रीः अर्थात् भक्तजन जिनका आश्रय ग्रहण कर कृतार्थ होते हैं, ऐसी विद्या को श्रीविद्या कहते हैं। २. श्रयते इति श्रीः— श्रीमाता (ललितासहस्रनाम का प्रथम नाम) वात्सल्य से पूरित होकर भक्त के अधीन हो जाती हैं। सम्भवतः इसी को द्योतित करने के लिए सिद्धजन त्रिपुरमहासुन्दरी महाषोडशी को अतिशय सम्मान देने के लिए केवल 'श्री' इस नाम से सम्बोधित करने लगे। ऐसी श्रीविद्या की आराधना के लिए समुद्र

के समान अगाध, गम्भीर, तलस्पर्शी ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णव' है।

यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि जब ग्रन्थ का नाम श्रीविद्यार्णव है और श्रीविद्या की उपासना का ग्रन्थ है, तो यहाँ अन्य देवी देवताओं की उपासना का सूक्ष्मता से तथा अतिविस्तार से वर्णन क्यों किया गया है? मेरी दृष्टि में इसका समाधान है कि जहाँ कहीं भी चैतन्य है, वहाँ चिति शक्ति का ही साम्राज्य है। अत: हम देखते हैं कि श्रीविद्या के पञ्चदशी के उपासक निम्न मन्त्र के आधार पर सबका न्यास करते हैं—

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्॥

इस तरह महाषोढा के उपासक ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का न्यास करते हैं। अत: सम्पूर्ण विश्व शक्ति का साम्राज्य है। उपासना किसी रूप की, किसी नाम से किसी मन्त्र से तथा किसी भी विधि से हो, अन्त में वह शक्ति की ही उपासना के रूप में चरितार्थ होती है। शक्ति की उपासना का सर्वोत्तम स्वरूप 'श्रीविद्या' है। शेष सब विभूतियाँ हैं। सब प्रकार की उपासना में श्रीविद्या की ही उपासना है। यों तो ग्रन्थ के प्रत्येक श्वास में कुछ विशेष स्थापनाएँ मिलती हैं, किन्तु कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उनकी दक्षता एवं उनके आचार्यत्व को प्रमाणित करते हैं।

श्रीविद्यार्णव ग्रन्थ का वैशिष्ट्य

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीविद्यार्णव ३६ श्वासों में विभक्त तन्त्रशास्त्र का महोदधिकल्प एक महनीय ग्रन्थ है। पूर्वार्ध में सैद्धान्तिक चर्य्या, दीक्षा आदि के साथ ही सामग्रीसंकलन है। संक्षेप में कहा जाय तो पूर्वार्ध में साधक के हृदय में उपासना की पात्रता विकसित करने की चेष्टा की गयी है और भगवती त्रिपुरसुन्दरी की स्थूल, पर एवं सूक्ष्म उपासना का निरूपण प्रस्तुत किया गया है। उत्तरार्ध में विभिन्न देवों की उपासना हेतु मन्त्र, यन्त्र आदि की विधि विस्तार से वर्णित है। किन्तु उसमें भी नाडीचक्र विज्ञान और्ध्वदैहिक क्रिया जैसे विषयों का सन्निवेश है। तन्त्रालोक के छत्तीसवें पटल को पूर्ण रूप में उद्धृत किया गया है, जिसमें पार्वती जी ने बीस आध्यात्मिक प्रश्न किया है, परन्तु ग्रन्थकार ने उस पर कोई टिप्पणी नहीं की है। अन्त में इतना ही निर्देश है कि यह अतिगोप्य विषय है। इसे गुरुपरम्परा से ही समझना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि विद्यारण्य यति ने सब कुछ लिखते हुए भी तन्त्र की गोपनीयता एवं गम्भीरता को सुरक्षित रखा है।

श्रीविद्यार्णव तन्त्रशास्त्र का एक सङ्ग्रह ग्रन्थ है। श्रीविद्यारण्य स्वामी ने सामग्री सङ्ग्रह के लिए शताधिक ग्रन्थों का उपयोग किया है, किन्तु उन्होंने उतना ही ग्रहण किया है, जितना कि विषय की स्थापना एवं विवेचना के लिए अत्यावश्यक है। श्रीविद्यारण्ययति मधुमती एवं मालिनी, कादिमत एवं कालीमत के गम्भीर रहस्यों एवं उनके क्रियात्मक पक्षों से पूर्णतया अभिज्ञ थे। उन्होंने दोनों परम्पराओं का जिस दक्षता के साथ इस ग्रन्थ में निरूपण किया है, वह कोई सिद्ध पुरुष ही कर सकता है। इस ग्रन्थ में वाम एवं दक्षिणमार्ग का प्रतिपादन कर स्वामी जी ने यह सिद्ध किया है कि वाम एवं दक्षिणमार्ग परस्पर पूरक

हैं, विरोधी नहीं, क्योंकि एक ही मन्त्र पञ्चदशी, षोडशी अथवा महाषोडशी दोनों मतों में समान रूप से प्रयुक्त होता है। प्रयोगविधि या उद्देश्य भिन्न हो सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साधक चाहे जिस मार्ग का उपासक हो, उसे दोनों परम्पराओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। परन्तु उपासना उसे अपने गुरूपदिष्ट मार्ग से ही करनी चाहिए। गुरु जो स्वयं सिद्ध है, वही शिष्य की पात्रता के अनुकूल उसको निरापद मार्ग बताकर सिद्धिपथ का पथिक बना सकता है।

श्रीविद्यारण्य स्वामी ने पूर्णाभिषेक प्रकरण में दोनों मतों की पद्धतियों का पूर्ण उल्लेख किया है। इसी के साथ शैव, वैष्णव, सौर एवं गाणपत्य दीक्षा-पद्धतियों का भी सूक्ष्मता से निरूपण किया है। इसी प्रकार उत्तरार्ध में शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, हनुमान्, कार्तवीर्य आदि के मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र का जितना व्यापक विवेचन किया है, उससे स्पष्ट है कि उन्हें आगमिक परम्परा का ही नहीं, अपितु वैदिक मन्त्रों के तान्त्रिक प्रयोगों का भी पूर्ण अनुभवजन्य हस्तामलक ज्ञान था। उन्होंने श्रीविद्या को केन्द्र में प्रतिष्ठित कर बौद्धों की देवी देवताओं जैसे तारा, नीलसरस्वती, एकजाता तथा मञ्जुघोषा आदि की भी पद्धतियों का निरूपण कर इनकी उपासना पद्धति को भी स्पष्ट किया है। इसीलिए पूर्व में कहा गया है कि बौद्ध आराधना पद्धति शाङ्कर मत से अछूती नहीं है।

श्रीविद्यारण्य स्वामी का किसी विचार के निर्णय में विभिन्न आचार्यों के संकेतों एवं उनकी स्थापनाओं का मधुसंचय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु विषय का समाहार करने हुए उन्होंने जो प्रयोग शीर्षक से क्रियात्मक पद्धति एवं निष्कर्षों का उल्लेख किया है, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वे तन्त्र के निष्णात आचार्य हैं। उनके इन प्रयोगों से न केवल उपासना पद्धति सुगम हो गयी है, अपितु, गोपनीयता के कारण जिन विषयों का संकेत मात्र मिलता था, उनके भी रहस्य स्पष्ट हो गये हैं, यह उनकी मौलिक उपलब्धि है।

परम्परा से चले आ रहे अनेक प्रसङ्गों पर उन्होंने सप्रमाण तार्किक पद्धति से संशोधन भी किया है, जैसे न्यास में प्रचलित 'नेत्रत्रयाय वौषट्' के स्थान पर उन्होंने 'नेत्राय वौषट्' को उचित माना है। इसी प्रकार गुरुपादुका पूजन में जिन गुरुओं का भौतिक शरीर नहीं रहा, उनके नाम से नाथ हटाकर शिव का प्रयोग करने का निर्देश दिया है। जैस 'अमुकानन्दशिवपादुकां पूजयामि नमः'। शिव को अर्पित नैवेद्य के भक्षण को उन्होंने उचित ठहराया है। लक्ष्मी के उपासक को न मुख पर हल्दी लगानी चाहिए और न कमल का पुष्प शिर पर धारण करना चाहिए— ऐसा निर्देश दिया है।

हरिद्रां न मुखे लिम्पेन्न स्वपेदशुचिः क्वचित्।
न वृथा विलिखेद्भूमिं न बिल्वं द्रोणमम्बुजम्।।
धारयेन्मूर्ध्नि नैवाद्याल्लोणं तैलं च केवलम्।
मलिनो न भवेज्जातु कुत्सितान्नं न भक्षयेत्।।

(श्रीविद्या० श्वा.२२,२-३, पृ. १६०)

इस प्रकार इस ग्रन्थ में अनेक ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो उनकी सूक्ष्म एवं सतर्क दृष्टि से ही सुलभ हो सके है।

न्यास का उद्देश्य अपने को मन्त्रमय या देवमय बनाना है। इस दृष्टि से उन्होंने न्यास का विशेष महत्त्व दिया है। पूर्वार्ध के तृतीय एवं षष्ठ श्वास में न्यासों का अति-विस्तार से उल्लेख है। इसी प्रकार उत्तरार्द्ध के पैंतीसवें एवं छत्तीसवें श्वास में जो अपनी गुरुपरम्परा प्राप्त श्रीविद्योपासना पद्धति दी है, उसमें भी विशेष न्यासों का सविस्तार निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में ऐसी अनेक अनुष्ठान पद्धतियों का वर्णन है, जो सामान्यत: प्रचलित नहीं हैं। जैसे आश्विन नवरात्र में महालक्ष्मी पूजापद्धति तथा नवार्णविधानोक्त लक्ष्मी पूजापद्धति। वहीं लक्ष्मी उपासकों के लिए विधि-निषेध का भी वर्णन है। अवलोकनीय है श्वास बाईस।

पैंतीसवें श्वास में कुलागम क्रम में महाषोडशी के पाँच भेद-रमादि षोडशी, परादिषोडशी, कामादिषोडशी, वागादि षोडशी एवं शक्त्यादि षोडशी बताकर उनकी महापूजा का उल्लेख किया गया है। वहाँ पर मातृकार्णव के वचन का उल्लेख किया गया है—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीविद्यापूजनं महत्।
रमादिषोडशी विद्या तथा परादिषोडशी।।
कामादिषोडशी चैव तथा वागादिषोडशी।
शक्त्यादिषोडशी प्रोक्ता पञ्चधा वै कुलागमे।।
तत्तद्विद्योपासनायां तत्तत्पूजाविधि: स्मृत:।

(श्रीविद्या० पृ. ८३१)

महाषोडशी के जो पाँच बीज हैं— 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौं' इनके क्रम को बतलाकर यह निर्दिष्ट है कि जिन्हें पहले रख देंगे, उसी नाम से षोडशी हो जायेगी। उदाहरणार्थ 'सौं श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं' क्रम से बीज रखें, तो यह परादि षोडशी कहलायेगी। विशेषता यह है कि प्रत्येक षोडशी के पूजन में पूज्य शक्तियों की नामावली दी गयी है। यह पञ्चधापूजन प्रयोग अतिशय रहस्यपूर्ण है, जिसे ग्रन्थकार ने प्रकाशित किया है। इस विद्या की गोपनीयता के सम्बन्ध में वहाँ कहा गया है—

पञ्चप्रकारयजनं प्रोक्तं तेऽतिरहस्यगम्।
गोप्यं गोप्यं पुनर्गोप्यं गोपनीयं प्रयत्नत:।।
एवं पूजयिता मर्त्यो मत्समो भवति ध्रुवम्।

(श्रीविद्या०, उत्तरा० पृ. ८३३)

चौबीसवें श्वास में 'षट्शाम्भव रश्मिपूजा' लम्बे समय तक चलने वाला विशिष्ट प्रयोग है, जिसे गुरु के निर्देशन में ही अनुष्ठित करना चाहिए। इसके महत्त्व का ख्यापन करने के लिए वहाँ वीरतन्त्र

का वचन उद्धृत किया गया है। यथा—

शून्यागारे श्मशाने यदि जयति जडस्त्वेकलिङ्गे तडागे,
गङ्गागर्भे गिरौ वा शुचिविमलमतिः सर्वदा भक्तियुक्तः।
विद्यां श्रीनीलवाण्या भुवनजनयतिः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता,
देहान्ते योगिमुख्यः परसुखपदं ब्रह्मनिर्वाणमेति॥

(श्रीविद्या०, उत्तरा०, पृ. २६३)

पैंतीसवें श्वास के होम प्रकरण में स्थूल, सूक्ष्म एवं परहोम का वर्णन है। स्थूल से तो सभी परिचित हैं; किन्तु सूक्ष्म होम में कुण्डलिनी में सम्पूर्ण वाच्य-वाचक रूप जगत् आहुति रूप हो जाता है तथा परहोम में स्वात्मरूप महावह्नि में समस्त भेदों का विलयन करने पर केवल शिवतत्त्व ही रह जाता है। यह अहन्ता का हवन है, जो निर्व्युत्त्थानविलोपन है। यही वेदों में वर्णित प्राणाग्निहोत्र विद्या है, जिससे पुनर्जन्म नहीं होता, यही मुक्ति है। इसी पैंतीसवें श्वास में नित्याओं की कालात्मकला का वर्णन है, वहाँ रश्मियों द्वारा पूजन किस दिन कहाँ करे, इसका विवेचन है, जैसे मूलाधार में पार्थिव रश्मियों का पूजन रविवार को करना चाहिए। इस प्रकार पञ्चतत्त्वात्मक रश्मियों का सात दिनों में सातचक्रों में पूजन का विधान है। इसी श्वास में यन्त्रों के निर्माण के विशेष विधान बतलाये गये हैं और निर्देश दिया गया है कि विना नियमों का पालन किये यन्त्रों का निर्माण निर्माता के लिए विपत्ति का कारण हो सकता है।

मुद्राओं के सम्बन्ध में भी स्पष्ट किया गया है कि अदीक्षित व्यक्ति को मुद्राएँ नहीं बनानी चाहिए और दीक्षित व्यक्ति को भी निरुद्देश्य मुद्राएँ नहीं बनानी चाहिए। पैंतीसवें श्वास में ही नित्यालोक का वर्णन है, जो तन्त्रराज का विशिष्ट चिन्तन है। कब कौन सी नित्या क्यों उदित होती है, यह विशिष्ट प्रकरण अत्यन्त गम्भीर एवं गुरुगम्य है। स्वामी विद्यारण्य मुनि ने श्रीविद्यार्णव तन्त्र में षट्कर्मों के स्थान पर अष्टकर्म का निर्देश यथास्थान किया है। षट्कर्म एवं षट्कर्म का प्रतीकार राग-द्वेष पर आधारित है। किन्तु शान्तिक और पौष्टिक कर्म स्वयं या दूसरे के हित से सम्बद्ध है। उन्होंने षट्कर्म के अनुष्ठाता को सावधान किया है कि प्रयोग करने के पूर्व वे प्रतिपक्षी के बलाबल का पूर्ण विचार कर ले। उसकी शक्ति, उसके ग्रहों की स्थिति, उसके सहायक अभीष्ट कर्म के अनुकूल काल आदि का विचार करके ही प्रयोग करना चाहिए। अन्यथा चूक होने पर प्रयोग आत्मघाती हो सकता है। अतएव आत्मरक्षा के लिए महामृत्युञ्जय का जप भी करना चाहिए। अतः सिद्ध पुरुष को सावधान रहना चाहिए। राग-द्वेष के कारण षट्कर्म करना अपराध है।

स्वामी जी ने बारहवें श्वास में तान्त्रिक सर्वतोभद्रमण्डल का विधान एवं रंग भरने की प्रक्रिया बतायी है, जो वैदिक सर्वतोभद्रमण्डल से भिन्न है और अप्रचलित सा प्रतीत होता है। कुण्डलिनी आदि नाडियों की कहाँ कैसी स्थिति है, इसका विलक्षण विवेचन श्वास पैंतीस में है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ में श्वास विद्या (प्राणविद्या) का विलक्षण विवेचन है। ग्रन्थकार की दृष्टि से आगम एवं निगम दोनों एक

दूसरे के पूरक हैं। इस लिए उन्होंने वैदिक मन्त्रों से ग्रहों की पूजा का विधान लिखा है तथा वेदमन्त्रों के तान्त्रिक प्रयोग की भी चर्चा की है। इकतीसवें श्वास में वैदिक त्र्यम्बक मन्त्र की तथा श्रीविद्या वरणाङ्ग के रूप में गायत्री का विधान लिखा है। तैतीसवें श्वास में मन्त्रों के तान्त्रिक प्रयोग का विस्तार से उल्लेख है। ऋग्यजुःसामाथर्वविधान में तो चारों वेदों के मन्त्रों का तान्त्रिक प्रयोग बतलाया गया है, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जिनको वैदिक अधिकार प्राप्त नहीं है, वे इनका प्रयोग न करें। जो अधिकारी ज्ञाता हैं, वे ही इसका प्रयोग कर सकते हैं। जो जिस वेद का ज्ञाता हो, वह अपने वेद के मन्त्रों का प्रयोग करे। वहाँ कुछ मन्त्रों का उल्लेख भी किया गया है। किन्तु अधिकांश मन्त्रों की टिप्पणी में संख्या दे दी गयी है। मन्त्रों के आधार पर यन्त्र निर्माण करने के लिए भी कहा गया है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित यह श्रीविद्यार्णव ग्रन्थ साधना का अपरिमेय रत्नाकर है। जो जितनी गहराई में उतरेगा, उसे उतने ही अमूल्य रत्न प्राप्त होंगे। किन्तु गुरुकृपा, देवीकृपा और आत्मकृपा के विना इस अथाह सागर में प्रवेश भी करना कठिन है।

भाव-विवृति

श्रीविद्यारण्य स्वामी रचित श्रीविद्यार्णव ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा के माध्यम से भाव-विवृति लिखकर इस ग्रन्थ को सामान्य जन के लिए बोधगम्य बनाने का एक लघु प्रयास किया गया है। इसमें स्वयं आचरणीय विधानों का उल्लेख तो अवश्य किया गया है, किन्तु जो विधान गुरुगम्य है, उसका मात्र दिशानिर्देश देकर ही सन्तोष किया गया है। श्रीविद्या की साधना भारतीय आध्यात्मिक जगत् में सर्वश्रेष्ठ रहस्यमयी गूढ़ साधना है। इसके द्वारा साधक लौकिक एवं पारलौकिक दोनों सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरी के शरणागत साधकों के भोग और मोक्ष दोनों साथ साथ सिद्ध होते हैं— **श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।** किन्तु जो गुरुक्रमज्ञानरहित श्रीविद्या की उपासना करता है, उसकी उपासना भस्म में हवन करने के प्रयास के समान निष्फल हो जाती है।

जैसा कि स्वयं श्रीविद्यारण्य स्वामी ने कहा है—

विदध्याद्यजनं देव्याः फलं स्यादन्यथान्यथा।
गुरुक्रममविज्ञाय पूजयेद्यः परां शिवाम्॥
सा पूजा निष्फला ज्ञेया भस्मन्यर्पितहव्यवत्।
तस्माद्यत्नेन विज्ञेया मूलाद् गुरुपरम्पराम्॥

(श्रीविद्या० प्रथम श्वास, श्लो० १४-१५, पृ. १-२)

इसलिए मूलरूप से गुरुपरम्परा का ज्ञान परमावश्यक है। गुरुमुख से सम्प्रदाय का ज्ञान करके निरन्तर जागरूक रहकर मन्त्रसिद्धि के लिए प्रतिदिन गुरुक्रम का स्मरण करना आवश्यक है। ऊर्ध्वाम्नायक्रम, कामराज, लोपामुद्राक्रम और सामान्यक्रम में विद्यावतारगुरु, विद्याप्राप्तिगुरु, विद्याकुल और गुरुसन्तति

पञ्चायतनदीक्षा, पञ्चाम्नाय मन्त्रों, मधुमती और मालिनी में जो कादिकालीमत है, उन दोनो मतों का सम्यक् ज्ञान करके इनका परस्पर साङ्कर्य न हो, एतदर्थ प्रयत्नपूर्वक, जो भगवती की आराधना करता है, उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यदि इसका सम्यक् ज्ञान नहीं है, तो पूजा अभिचार में परिणत हो जाती है और ऐसी पूजा करने वालों की हानि ही होती है।

आज के चाकचिक्यपूर्ण वैज्ञानिक युग में श्रीविद्योपासना की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है, जब कि सभी श्रीवृद्धि की कामना के वशीभूत हैं। अतः श्रीविद्या की उपासना में सामान्य जन भी अग्रसर हो सकें, इसी भावना से प्रेरित होकर भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्य के प्रशिष्य श्रीविद्यारण्य यति जी द्वारा रचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र ग्रन्थ की लोकभाषा में व्याख्या करने का प्रयास किया गया है, जो भावविवृति के नाम से श्रीविद्या साधना पीठ द्वारा उपहृत पुष्प आपके हाथ में सादर समुपलब्ध होने जा रहा है।

श्रीविद्या साधना पीठ श्रीविद्या के प्रचार—प्रसार में सर्वथा संलग्न है। इसका मुख्य उद्देश्य ही है— श्रीविद्या-साधकों के पथप्रदर्शन, श्रीविद्यायन्त्रार्चन पद्धति के प्रशिक्षण आदि के साथ-साथ श्रीविद्या से सम्बन्धित दुर्लभ वाङ्मय का प्रकाशन। श्रीविद्यासाधकों की सेवा, सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए पीठ का द्वार सदा उद्घाटित है। श्रीविद्या से सम्बन्धित दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन क्रम में श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या (पूजापद्धति) भक्तिसुधा, भुवनेश्वरीवरिवस्या, साम्बपञ्चाशिका (हिन्दी व्याख्या), विरूपाक्षपञ्चाशिका, (हिन्दी व्याख्या) श्रीललितासहस्रनाम स्तोत्र, श्रीमहागणपतिवरिवस्या, उपचारमीमांसा आदि के अनन्तर साङ्गोपाङ्ग श्रीविद्योपासना का अपरिमेय सागर श्रीविद्यार्णवतन्त्र हिन्दी व्याख्या भावविवृति सहित आपके करकमलों में सादर समर्पित है।

दुरधिगम्य श्रीविद्यार्णवतन्त्र सदृश ग्रन्थ पर लेखनी उठाना श्रीगुरुचरणकमल के पराग से सुरभित हुए विना कथमपि सम्भव नहीं है। अतः गुरुपरम्परा के प्रति अपनी श्रद्धासुमनाञ्जलि समर्पित करता हूँ। अभिनवशङ्करावतारभूत श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्री हरिहरानन्दसरस्वती श्रीकरपात्रस्वामी के श्रीचरणों में कृतज्ञतापूर्वक प्रतिदिवसीय शतशः प्रणामाञ्जलि निवेदित करते हुए आधमर्ण्य को स्वीकार करता हूँ, क्योंकि इन का आशीर्वाद आज प्रतिफलित हो रहा है।

ग्रन्थ की परिपूर्णता पर प्रत्यक् चैतन्याभिन्न चितिरूपा पञ्चकृत्यपरायणा पराम्बा भगवती भवनाटकनिपुणा परब्रह्ममाहेश्वरी महाभट्टारिका राजराजेश्वरी भगवती अनुत्तराम्नायाधिश्वरी श्रीशाङ्करी के श्रीचरणों में इस ग्रन्थरत्न की पुष्पाञ्जलि समर्पित कर अपने को धन्य मानते हुए वाणी को विराम देता हूँ।

वाराणसी
आश्विन शुक्ल द्वितीया
२०६६ विक्रमाब्द

श्रीगुरुचरणसरोजरेणु
दत्तात्रेयानन्दनाथ
(पूर्वाभिधान श्रीसीताराम कविराज)
श्रीविद्या साधना पीठ



श्री दत्तात्रेयानन्द नाथ
(श्री सीताराम कविराज)



।। श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ (सीताराम कविराज) जीवन-वृत्त।।

श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ (पं. सीताराम कविराज) जी का जन्म विक्रम संवत् १९८२ फाल्गुन शुक्ल नवमी को राजस्थान प्रदेश की पवित्र शेखावाटी भूमि फतेहपुर में मारवाड़ी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता गौरी दत्त नागौरी प्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। आपके वंशज आयुर्वेद की परम्परागत चिकित्सा का कार्य करते थे। आपकी माता श्रीमती मणि देवी एक धर्मनिष्ठ कुशल गृहिणी थी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय जन्मभूमि फतेहपुर में ही हुई। आपकी बाल्यकाल से ही धर्म एंव अध्यात्म में गहरी रूचि थी। साथ-साथ वंशानुगत आयुर्वेद में भी आप का रूझान रहा है। आपने आयुर्वेद शास्त्र का पारम्परिक अध्ययन अपने पूर्वजो व अन्य चिकित्सकों के अतिरिक्त यशस्वी वैद्य मणिराम जी शर्मा (काश्मीर) से किया।

आपका विवाह विक्रमसंवत् १९९६ (रतनगढ़, राजस्थान) सावित्री देवी के साथ हुआ। आपकी आयुर्वेद के साथ-साथ संस्कृत में भी स्वभावत: गहरी रूचि थी, अत: आयुर्वेद, संस्कृत, धर्म, अध्यात्म का अध्ययन आपका मूल विषय रहा।

आप विवाहोपरान्त सन् १९४५ में पश्चिम बंगाल में कलकत्ता आए। अपने गृहस्थधर्म का पालन करते हुए जीवकोपार्जन के रूप में आपने शीघ्र ही परम्परागत आयुर्वेद चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया। उस समय आपको अतिशीघ्र ही शहर के लब्ध प्रतिष्ठिजन की कुशल चिकित्सा से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसी बीच आपकी किसी निजी कार्यवश काशी यात्रा हुई और काशी भ्रमण करने के बीच ही आपने स्वयं यह निर्णय लिया कि शेष जीवन काशी में ही बिताना है, परन्तु साथ में गृहस्थ जीवन का भी दायित्व सामने था। आपकी पत्नी, ४ पुत्र व २ पुत्रियों की जिम्मेदारी भी थी। धीरे-धीरे समय के साथ आयुर्वेद, धर्म और अध्यात्म जीवन के अभिन्न अंग हो गए। आपका जीवकोपार्जन मात्र जिम्मेदारी निर्वाह तक ही सीमित रहा। आप सेवाभाव से लगे रहे। आपकी दिनचर्या में साधना, धर्म-अध्यात्म, सत्संग के साथ आगम-तंत्र में भी आपकी गहरी रूचि होने लगी। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में आपकी आरम्भ से गहरी आस्था थी। आप प्रारम्भ से ही दुर्गाशप्तशती का नियमित पाठ भी करते थे। समय-समय पर विद्वत्सभाओं में भाग लेते और अपनी अमिट छाप छोड़ते थे। आपकी संस्कृत काव्य में भी गहरी रूचि थी, संस्कृतकविसम्मेलनों में आप प्रमुखता से भाग लेते थे। समय अपनी गति से आगे बढ़ता गया। उस समय आप पं. सीताराम कविराज (बंगाल में कविराज वैद्यों को कहते है) के नाम से कलकत्ते एवम् आस-पास में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। आगन्तुक रोगियों के रोगों का निदान कर विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधियाँ वे स्वयं निर्मित कर रोगियों को देते थे।

साधनाक्रम में आपका प्रथम सुदृढ प्रवेश राजगुरु हरिदत्त जी शास्त्री (देहरादून) द्वारा श्री भुवनेश्वरी मंत्र के उपदेश के द्वारा हुआ। राजगुरु जी से आपको एक स्फटिक श्रीयंत्र भी प्राप्त हुआ। आप

पर राजगुरू जी की असीम अनुकम्पा थी और राजगुरू जी के निरन्तर निर्देशन में आपने भुवनेश्वरी साधना में पूर्णता प्राप्त की थी। लम्बे समय तक आपने राजगुरु जी का सान्निध्य प्राप्त किया। राजगुरु जी के जीवन काल में ही आपने साधनाक्रम के विस्तार के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त की, तभी राजगुरु जी ने आशीर्वाद स्वरूप निश्चिन्त रहने का संकेत दिया। आपमें प्रारम्भ से ही श्रीविद्या उपासना क्रम की सम्पूर्णता की जिज्ञासा विद्यमान थी। इसक्रम में आपने अनेको संत, महात्माओं, और श्रीक्रम में दीक्षित साधको के निकट में रह कर उनके पूजाक्रमों का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक विधि का अध्ययन किया। तदनन्तर अभिनवशंकर धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज की चरण–शरण प्राप्त हुई और उनकी महती कृपा से श्रीविद्योपासना क्रम में पूर्णाभिषिक्त हुए।

करपात्र स्वामी जी अक़्सर कलकत्ते आते तो आप बराबर उनके सान्निध्य प्राप्त करते और स्वामी जी की अनुमति एवं प्रेरणा से अपनी श्रीविद्योपासना को सुदृढ़ करते चले गए। आपने में श्रीचक्र की (श्रीयंत्र) की महापूजा का पूर्ण प्रायोगिक एवं शास्त्रीय ज्ञान अर्जित किया और प्रति दिन महापूजा करने लगे। धीरे-धीरे इसी बीच आपने अपने महत्त्वपूर्ण पारिवारिकदायित्वों की पूर्ति कर ली थी और सन् १९८३ में काशीवास हेतु आए और काशी में मुमुक्षुभवन में रहकर श्रीविद्योपासना के शीर्ष पर पहुँचे। उसी समय आपने श्रीविद्याविषयक ग्रन्थों का सम्पादन किया, जिनमें श्रीविद्यारत्नाकर तथा श्रीविद्यावरिवस्या आदि प्रमुख हैं।

साम्बपञ्चाशिका तथा विरूपाक्षपञ्चाशिका की हिन्दी व्याख्या आपके शास्त्रीय ज्ञान का प्रथम प्रकाशन रहा है। आगमशास्त्र के प्रचार प्रसार के उद्देश्य तथा श्रीविद्योपासना के सरल एवं प्रायोगिक ज्ञान साधकों को सुलभ कराने के उद्देश्य से ही आपने स्वयं श्रीविद्यासाधना पीठ की स्थापना की, और श्रीविद्या सम्प्रदाय में साधक साधिकाओं को दीक्षित कर मार्गदर्शन किया। जिसके परिणामस्वरूप नगवां वाराणसी स्थित पीठ में प्रतिदिन महापूजा, के साथ-साथ नैमित्तिक पर्वों पर विशेष पूजा एवं श्री ललितामहात्रिपुर सुन्दरी परा भट्टारिका राजराजेश्वरी श्री शांकरी देवी का ललिता सहस्त्रनाम से अर्चन, लक्षार्चन एवं कोटयअर्चन (जिसका प्रारम्भ आपने ही किया) जैसे बड़े-बड़े अनुष्ठान सपन्न होने लगे। आपने साधना के साथ-साथ अपने शोध एवं लेखन का भी निरन्तर क्रम जारी रखा। आपके द्वारा सम्पादित एवम् अनूदित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में भक्ति–सुधा, श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या, भुवनेश्वरी–वरिवस्या, श्रीमहागणपति–वरिवस्या, ललिता सहस्त्रनाम, मन्त्र–महायोग, श्रीविद्या एवं श्रीयंत्र एक परिचय, श्रीविद्याअष्टांग (तांत्रिक पंचाग), उपचारमीमांसा, साम्बपञ्चाशिका, विरूपाक्षपञ्चाशिका एवं श्रीविद्यार्णवतन्त्र (भाग १ एवं २) (हिन्दी टीका) प्रमुख है। जिनसें साधकगण भरपूर लाभार्जन कर साधना मार्ग में अग्रसर हैं। इनके अतिरिक्त आपने तंत्र साधना एवं उपासना से सम्बन्धित महत्वपूर्ण लेख लिखे जो कि विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए है। साथ ही धर्म, अध्यात्म, तंत्र, साधना व आगम तंत्र के शोधार्थियों का मार्ग निर्देशन किया। समय–समय पर आपने तंत्र आगम वेद, संस्कृत आदि की गोष्ठियाँ आयोजित कर

तथा अन्यत्र आयोजित गोष्ठियो में उपस्थित होकर भी अपने चिन्तन से साधकों को लाभान्वित किया। आपको आगम तन्त्र के प्रचार-प्रसार-योगदान के लिए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्र स्वामी) स्मृति पुरस्कार (१९९८) प्रदान किया गया। संस्कृत विद्या के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए राजस्थान संस्कृत अकादमी (जयपुर) द्वारा पुरस्कार एंव सम्मान (१९९५ में) प्रदान किया। राष्ट्रीय संस्कृत वर्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली (मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार) के द्वारा सन् २००० में विशिष्ट विद्वत्सम्मान प्रदान किया गया। साथ ही काशी की पाण्डित्य परम्परा के महानुभावों ने आपका साभार सम्मान किया।

भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा (सन् २००२ में) संस्कृत वाङ्मय एवं शास्त्र में नैपुण्य हेतु आपको राष्ट्रपति पुरस्कार भी प्रदान किया गया। देश के मूर्धन्य मनीषियों, गणमान्य राजनेताओं, तथा विशिष्ट नागरिकों ने आपका आध्यात्मिक शिष्यत्व ग्रहण किया है। आप द्वारा स्थापित श्रीविद्यासाधनापीठ में निरन्तर श्रीविद्या के क्रियात्मक एवं सैद्धान्तिक— दोनो पक्षों के ज्ञान के साथ वेद एवं संस्कृत वाङ्मय के विविध शास्त्रों में स्नातकों का प्रशिक्षण निरन्तर चल रहा है। आपने अनुत्तराम्नाय अधिष्ठात्री शांकरी देवी (श्रीक्रम की देवी) की भव्य प्रतिमा नवनिर्मित मंदिर में प्रतिष्ठापित कर साधकों एवं शिष्यों पर महती कृपा की है। आप हमेशा अपने शिष्यों के मार्गदर्शन में सुलभ व सहायक रहे है। आपकी स्वामी करपात्री जी के चरणो में अगाधश्रद्धा रही है। आप निरन्तर स्वामी जी की जयंती पर मोदकार्चन तथा लक्षार्चन विद्वत् गोष्ठी आयोजित करते रहे है। आपकी ८० वर्ष पूर्ति के असवर पर आपके शिष्यों द्वारा काशी में द्वादश द्विवसीय अमृतमहोत्सव का आयोजन किया गया। जिसमें प्रतिदिन् श्री ललिता सहस्रनाम लक्षार्चन एवं विद्वत्सभा, संस्कृतकाव्यगोष्ठियो का आयोजन हुआ। इसका विवरण श्रीविद्या साधना पीठ द्वारा प्रकाशित पत्रिका श्रीविद्यावार्ता के अमृतमहोत्सव विशेषाकं २००७ में उपलब्ध है। आपने साधकों के उत्साहवर्धन तथा श्रीविद्या के प्रचार—प्रसार हेतु धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री स्मृतिपुरस्कार, श्रीविद्यासाधना पुरस्कार, श्रीविद्यार्चा सम्मान एवं श्रीविद्यासाधकसम्मान प्रतिवर्ष करपात्री स्वामी की जयंती समारोह में प्रदान किया। आज दुखः इस बात का हैं, श्रीविद्यार्णवतन्त्र ग्रन्थ के लोकार्पण के पूर्व आपके स्वास्थ्य ने साथ नहीं दिया और भूमिका तथा अन्य प्रकाशन सबन्धित कार्यपूर्ण होने के बीच ३० सितम्बर २००९ आश्विन शुक्ल एकादशी के दिन आपको शिवसायुज्य प्राप्त हुआ।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोपदम्।
मन्त्रमूलं गुरोः वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धे विषयानुक्रमणिका।



श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धस्थप्रमाणग्रन्थनामानि।



संख्या	नामानि	संख्या	नामानि	संख्या	नामानि
१	अक्षशास्त्रम्	३२	कुलोड्डीशतन्त्रम्	६३	त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रम्
२	अगस्त्यसंहिता	३३	कूर्मपुराणम्	६४	त्रैलोक्यसारतन्त्रम्
३	अत्रि:	३४	क्रियासारतन्त्रम्	६५	दक्षिणामूर्तिकल्प:
४	अन्यत्र	३५	गणेश्वरपरामर्शिनी	६६	दक्षिणामूर्तिसंहिता
५	आगमसिद्धान्त:	३६	गन्धर्वतन्त्रम्	६७	दिव्यसारस्वततन्त्रम्
६	आपस्तम्ब:	३७	गरुडपुराणम्	६८	दुर्वाससोवाक्यम्
७	उत्तरतन्त्रम्	३८	गोपालकल्प:	६९	देवल:
८	ऋग्वेद:	३९	गोबिल:	७०	देवीपुराणम्
९	एकवीरकल्प:	४०	गोरक्ष:	७१	देवीयामलतन्त्रम्
१०	कपिलपञ्चरात्रम्	४१	गोरक्षशतकम्	७२	नवरत्नेश्वरतन्त्रम्
११	कात्यायन:	४२	गौतमीयतन्त्रम्	७३	नारद:
१२	कात्यायनीतन्त्रम	४३	चन्द्रज्ञानविद्या	७४	नारदपञ्चरात्रम्
१३	कादिमतम्	४४	चिन्तामणि: (मुहूर्तशा०)	७५	नारदीयपुराणम्
१४	कामधेनुतन्त्रम्	४५	छन्दोगपरिशिष्टम्	७६	नारायणीयतन्त्रम्
१५	कामशास्त्रम्	४६	जयद्रथयामलतन्त्रम्	७७	निबन्धतन्त्रम्
१६	कामिकातन्त्रम्	४७	जाबालोपनिषत्	७८	नीलतन्त्रम्
१७	कारणागम:	४८	ज्ञानार्णवतन्त्रम्	७९	नृसिंहकल्प:
१८	कालिकापुराणम्	४९	ज्ञानोन्नयनतन्त्रम्	८०	नृसिंहपुराणम्
१९	कालिकोद्भव:	५०	डामरतन्त्रम्	८१	पञ्चमीश्वरीतन्त्रम्
२०	कालोत्तरतन्त्रम्	५१	तत्त्वबोध:	८२	पद्मपादाचार्य:
२१	कुण्डप्रकाशतन्त्रम्	५२	तत्त्वसार:	८३	पद्मपुराणम्
२२	कुब्जिकातन्त्रम्	५३	तन्त्ररत्नावली	८४	पारिजाततन्त्रम्
२३	कुम्भसम्भव:	५४	तन्त्रराजतन्त्रम्	८५	पिङ्गलामतम्
२४	कुमारीकल्प:	५५	तन्त्रसारतन्त्रम्	८६	पूर्णायाग:
२५	कुमारीतन्त्रम्	५६	तन्त्रान्तरम्	८७	प्रतिष्ठासारतन्त्रम्
२६	कुलचूडामणितन्त्रम्	५७	तूर्णापद्धति:	८८	प्रथमतन्त्रम्
२७	कुलप्रकाशतन्त्रम्	५८	तूर्णायाग:	८९	प्रपञ्चसारतन्त्रम्
२८	कुलमूलावतारतन्त्रम्	५९	त्रिपुरार्णवतन्त्रम्	९०	प्रयोगसारतन्त्रम्
२९	कुलसम्भवतन्त्रम्	६०	त्रिपुरासारतन्त्रम्	९१	फेत्कारिणीतन्त्रम्
३०	कुलामृततन्त्रम्	६१	त्रिपुरासारसमुच्चयतन्त्रम्	९२	बृहन्नारायणीयतन्त्रम्
३१	कुलार्णवतन्त्रम्	६२	त्रैलोक्यडामरतन्त्रम्	९३	बौधायन:

श्रीविद्यार्णवपूर्वार्धस्थप्रमाणग्रन्थनामानि।



संख्या	नामानि	संख्या	नामानि	संख्या	नामानि
९४	ब्रह्मयामलतन्त्रम्	१२४	रुद्रयामलतन्त्रम्	१५४	शिवपुराणम्
९५	ब्रह्माण्डपुराणम्	१२५	लक्षणसंग्रहतन्त्रम्	१५५	शिवयामलतन्त्रम्
९६	भविष्यपुराणम्	१२६	लक्ष्मसागरतन्त्रम्	१५६	शिवरहस्यतन्त्रम्
९७	भविष्योत्तरम्	१२७	लक्ष्मीकुलार्णवः	१५७	शैवागमः
९८	भावचूडामणिः	१२८	लघुस्तवः	१५८	शौनकः
९९	भूतभैरवतन्त्रम्	१२९	ललितातन्त्रम्	१५९	श्रीकण्ठसंहिता
१००	भृगुसंहिता	१३०	लिङ्गपुराणम्	१६०	श्रीक्रमः
१०१	भैरवतन्त्रम्	१३१	वक्रतुण्डकल्पः	१६१	श्रीचक्रक्रमः
१०२	भैरवयामलम्	१३२	वसिष्ठसंहिता	१६२	श्रुतिः
१०३	भैरवीतन्त्रम्	१३३	वाग्भट्टः	१६३	षडन्वयमहारत्नम्
१०४	मत्स्यपुराणम्	१३४	वामकेश्वरतन्त्रम्	१६४	संहिता
१०५	मन्त्रतन्त्रप्रकाशः	१३५	वामदेवतन्त्रम्	१६५	सनत्कुमारः
१०६	मन्त्रसद्भावः	१३६	वायवीयसंहिता	१६६	समुच्चयः
१०७	मन्त्रार्णवतन्त्रम्	१३७	वायुपुराणम्	१६७	सरस्वतीसारतन्त्रम्
१०८	मन्थानभैरवतन्त्रम्	१३८	वाराहपुराणम्	१६८	सारसंग्रहः
१०९	महाकपिलपञ्चरात्रम्	१३९	वाराहीतन्त्रम्	१६९	स्कन्दपुराणम्
११०	महाकालसंहिता	१४०	वास्तुशास्त्रम्	१७०	स्मृत्यर्थसारतन्त्रम्
१११	महाभारतम्	१४१	विजयमालिनीतन्त्रम्	१७१	स्वच्छसंग्रहतन्त्रम्
११२	महाहारकतन्त्रम्	१४२	विश्वकर्मा	१७२	स्वतन्त्रतन्त्रम्
११३	मातृकार्णवतन्त्रम्	१४३	विष्णुधर्मोत्तरम्	१७३	स्वायम्भुवतन्त्रम्
११४	मातृकान्यासः	१४४	विष्णुपुराणम्	१७४	सिद्धयामलतन्त्रम्
११५	मातृकासर्वस्वम्	१४५	वीरतन्त्रम्	१७५	सिद्धसारस्वततन्त्रम्
११६	मायातन्त्रम्	१४६	वैखानसपञ्चरात्रम्	१७६	सिद्धान्तशेखरः
११७	मुण्डमालातन्त्रम्	१४७	वैशंपायनसंहिता	१६७	सुभगोदयतन्त्रम्
११८	मृडानीतन्त्रम्	१४८	वैष्णवतन्त्रम्	१६८	सोमशंभुः
११९	याज्ञवल्क्यसंहिता	१४९	शङ्कराचार्यः	१७९	सौत्रामणीतन्त्रम्
१२०	योगशास्त्रम्	१५०	शम्भुनिर्णयः	१८०	हयग्रीवपञ्चरात्रम्
१२१	योगिनीतन्त्रम्	१५१	शातातपसंहिता	१८१	हारीतः
१२२	योगिनीहृदयम्	१५२	शारदातिलकम्	१८२	होमसारः
१२३	रत्नसागरतन्त्रम्	१५३	शिल्पिशास्त्रम्		



ओम्

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

श्रीविद्यारण्ययतिविरचितम्

अथ

।। प्रथमः श्वासः ।।

उद्यत्सूर्यसहस्रभास्वरतनुः सूक्ष्मादिसूक्ष्मा परा
विद्युत्पुञ्जनिभेन्दुकोटिसदृशी धामत्रयाध्यासिनी।
तत्तेजस्त्रितयात्मकैक (मुनि? मनु) र्भिर्वाक्कामशक्त्याख्ययुक्-
कूटैस्त्र्यब्धिशरर्तुभिः परिणता नित्यात्मिका पातु वः।। १ ।।

या श्रीमधुमती शक्तिर्जगच्चैतन्यरूपिणी । सा स्तान्मे पुरतो नित्यं मालिनी विश्वविग्रहा ।। २ ।।
मतद्वयं समालोड्य तत्सङ्कीर्णभिया पृथक् । प्रकाश्यते परातन्त्रं[१] मया विद्यार्णवाभिधम् ।। ३ ।।
मधुमत्या महादेव्यास्तादात्म्यं कादिसंज्ञकम्। कालीमतं तु मालिन्यास्तादात्म्यं तान्त्रिका विदुः।। ४ ।।
षट्त्रिंशद्व्यञ्जनैर्मूलभूतैः शिवमयैः पृथक् । षोडशस्वरसम्भिन्नैः पूर्णमण्डलसंज्ञकैः ।। ५ ।।
षट्त्रिंशद्गुणितैः सिद्धकालनित्यास्वरूपकैः । नवात्मकैर्व्याप्तिभेदाद् द्विगुणीकृतविग्रहैः ।। ६ ।।
तद्द्वैगुण्यमयैस्तत्त्वैर्यन्त्रैस्तद्द्विगुणीकृतैः । तत्तद्भेदैर्भिन्नमूर्तिः[२] प्रोक्ता वेदप्रकारिका ।। ७ ।।
षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्पूर्णा सर्वमन्त्रफलप्रदा । देवी मधुमती या तत्तादात्म्यं कादिसंज्ञकम् ।। ८ ।।
आम्नायसमयापञ्चपञ्चिकापीठदर्शनैः । उत्पत्तिस्थितिसंहारभेदैर्वृन्दमयैः स्तुता[३] ।। ९ ।।
मालिनी कथ्यते या तत्तादात्म्यं कालिकामतम्। मतद्वयपरिज्ञानाच्छिवतुल्यो भवेन्नरः ।। १० ।।
कालतत्त्वमतव्याप्तिसम्प्रदायाङ्गभावनाः । स्थूलसूक्ष्मपरोपाङ्गबीजशक्त्य[४]र्णपल्लवान् ।। ११ ।।
तत्तत्क्रमं तदाचारं तदुत्पत्तिं तदर्चनम्। गुरुतः शास्त्रतो ज्ञात्वा[५] तत्तत्कर्मण्यतन्द्रितः ।। १२ ।।
आद्यन्तमध्यरहित आदिमध्यान्तसंयुतः। अनादितत्त्व[६]संशोधी परतन्त्रस्वतन्त्रवित् ।। १३ ।।
विदध्याद्यजनं देव्याः फलं स्यादन्यथान्यथा। गुरुक्रममविज्ञाय पूजयेद्यः परां शिवाम्।। १४ ।।

---

१. 'तत्त्व' कः पाठ। २. 'वर्णमूर्तिः' ख. ग. पाठ। ३. 'ताः' ग. पाठ। ४. 'शक्त्यार्ण' क. पाठ.। ५. 'शान्त्या' क. पाठः।
६. 'मल' ख. पाठ।

सा पूजा निष्फला ज्ञेया भस्मन्यर्पितहव्यवत्। तस्माद्यत्नेन विज्ञेया मूलाद् गुरुपरम्पराम् ॥ १५॥
ज्ञात्वा गुरुमुखान्नित्यं सम्प्रदायमतन्द्रितः । प्रत्यहं स्मरणं कुर्यान्मन्त्रवीर्यस्य सिद्धये ॥ १६॥
ऊर्ध्वाम्नायक्रमेणैव कामराजक्रमे तथा । लोपामुद्राक्रमे चैव सामान्यक्रम एव च ॥ १७॥
विद्यावतारविद्याप्तिकुलानां गुरुसन्ततिम् । पञ्चायतनदीक्षायां पञ्चाम्नायमनुष्वपि ॥ १८॥
मतद्वयविधौ ज्ञात्वा तत्साङ्कर्यं च यत्नतः। कुरुते भजनं[1] देव्या सोऽभीष्टफलमश्नुते ॥ १९॥
अन्यथा कुरुते पूजां साभिचाराय कल्पते। पराप्रासादमन्त्रश्च श्रीविद्या षोडशाक्षरी ॥ २०॥
कालिका दक्षिणा चैव मालिनी श्रीगुरोर्मनुः। चरणं नवनाथाश्च मूलविद्याश्च षोडश ॥ २१॥
आधारषट्कविद्याश्च संविद्देव्यस्तथैव च। चतुषष्टिर्महामन्त्रा ऊर्ध्वाम्नाये व्यवस्थिताः ॥ २२॥
एतेषां स्मरणान्मर्त्यः शिवतुल्यो भवेत् क्षणात्। गुरुक्रमश्च ज्ञातव्यो मन्त्रसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ २३॥
ईशानाख्यस्तत्पुरुषश्चाघोरश्च ततः परम् । चतुर्थो वामदेवश्च सद्योजातश्च पञ्चमः[2] ॥ २४॥
एते पञ्चैव दिव्यौघाश्चादिनाथस्ततः परम्। अनादिनाथः परतोऽनामयश्च ततः परम् ॥ २५॥
अनन्तानन्दनाथश्च चिदाभासस्तथैव च । एते पञ्चैव सिद्धौघाः प्रथमस्तु परेश्वरः ॥ २६॥
वि (श्वे?च्वे) श्वरो द्वितीयश्चापरो हंसेश्वरस्ततः। संवर्तेश्वरसंज्ञश्च ततो द्वीपेश्वरस्ततः ॥ २७॥
नवात्मेश्वरसंज्ञश्च मानवौघाः षडीरिताः । एते कुलाभिधा ज्ञेया गुरवः कुलमार्गगाः॥ २८॥
कुलशिष्यावृताश्चैव कुलमन्त्रार्थवेदिनः । कुलासनोपविष्टाश्च कुलतन्त्रपरायणाः ॥ २९॥
कुललिङ्गनसम्भिन्नमुञ्चिताशेषतामसाः । महारसरसोल्लासनिमग्नाः कुलसंयुताः ॥ ३०॥
दशहस्ताः पञ्चमुखा मुण्डमालाविभूषिताः। उद्यत्सूर्यसहस्राभाः पूर्णान्तःकरणोद्यताः ॥ ३१॥
खड्गं खेटं कपालं च त्रिशूलं मुद्गरं तथा। खट्वाङ्गं शरचापौ च दधानाश्च वराभये ॥ ३२॥
तुरीये यामिनीयामे कुण्डलिन्या[3] महौजसि। ते विसर्गादधोभागे लाक्षारससमप्रभे ॥ ३३॥
चिन्तनीयाः प्रयत्नेन विद्यासंसिद्धिहेतवे। एतान् कुलगुरून् यत्नान्न चिन्तयति साधकः ॥ ३४॥
तस्य पूजा जपश्चैव स्नानदानादिकं वृथा। एतान् कुलगुरून् ध्यायेदूर्ध्वाम्नाय उदीरितान् ॥ ३५॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कुण्डली मातृका परा ॥ ३६॥
एकादशैते दिव्यौघा आदिनाथस्ततः परा। अचिन्त्यनाथोऽचिन्त्या च अव्यक्तोऽव्यक्तिका ततः॥ ३७॥
कुलेश्वरः कुलेशी च सिद्धौघा नागसंख्यकाः। तूष्णीशश्चैव सिद्धा च मित्रः कुब्जा ततः परम्॥ ३८॥
गगनश्चाटुली चैव चन्द्रगर्भस्ततः परम्। वालिमागी च मुक्तश्च महिला ललितस्ततः॥ ३९॥
शङ्खा श्रीकण्ठसंज्ञश्च श्रीकण्ठा च परेश्वरः। परेश्वरी कुमारश्च सहजा रत्न एव च॥ ४०॥
ज्ञानदेवी ततो ब्रह्मा नादिनी चाप्यजेश्वरः। महिला च प्रतिष्ठश्च सहजा शिव एव च॥ ४१॥
प्रतिभा च चिदानन्दः सहजा च तथैव च। श्रीकण्ठानन्दविद्ये च शिवश्च सहजा ततः॥ ४२॥

१. 'यजनं' ग. पाठ। २. 'ग. संज्ञके पद्यार्धमिदं नास्ति। ३. 'न्या' ख. पाठः।

सोमश्च सहजा चैव संविच्च सहजा ततः। विबुधो विबुधा चैव भैरवो भैरवी तथा॥ ४३॥
आनन्दो नन्दिनी चैव ततः कामेश्वराभिधः । कामेश्वरी च कमलः सहजा जिनयुग्मका:॥ ४४॥
मानवौघाः स्मृता एते वराभयकराम्बुजाः । विद्यावतारगुरवो न्यस्तव्या गगनाम्बुजे ॥ ४५॥
एते प्रोक्ताश्च गुरवो विद्यायाः शाम्भवक्रमे। व्योमातीता च व्यामेशी व्योमगा व्योमचारिणी॥ ४६॥
व्योमस्था चैव दिव्यौघाः पञ्चाम्बाः परिकीर्तिताः। उन्मनाः समनाश्चैव व्यापिका[१] शक्तिरेव च॥ ४७॥
ध्वनिश्च ध्वनिमात्रानाहता बिन्दुस्ततः परम्। बिन्दुश्चाकाशशब्दान्तः सिद्धौघा नवसंख्यकाः॥ ४८॥
परमात्मा शाम्भवश्च चिन्मुद्रो वाग्भवस्ततः। लीलश्च सम्भ्रमश्चैव चित्प्रसन्नस्तथैव च॥ ४९॥
विश्वश्चैते मानवौघा नवसंख्याः प्रकीर्तिताः। विद्याया गुरवश्चैत ऊर्ध्वाम्नायक्रमस्य च॥ ५०॥
षोडश्युपासकश्चैतान् नव पङ्क्तिक्रमाद्यजेत्। देव्याः पृष्ठप्रदेशे तु विश्वान्ते स्वगुरुक्रमम्॥ ५१॥
कपिलोऽत्रिर्वसिष्ठश्च सनकश्च सनन्दनः। भृगुः सनत्सुजातश्च वामदेवश्च नारदः॥ ५२॥
गौतमः शुनकः शक्तिर्मार्कण्डेयश्च कौशिकः। पराशरः[२] शुकश्चैवाङ्गिराः कण्वस्तथैव च॥ ५३॥
जाबालिश्च भरद्वाजो वेदव्यासस्तथैव च। ईशानो रमणश्चैव कपर्दी भूधरस्ततः ॥ ५४॥
सुभटो जलदश्चैव भूतेशः परमस्ततः। विजयो भरत[३]श्चैव पद्मेशः सुभगस्ततः ॥ ५५॥
विशुद्धः समरश्चैव कैवल्यश्च गणेश्वरः। सुपाद्यो[४] विबुधो योगो विज्ञानोऽनङ्गविभ्रमौ ॥ ५६॥
दामोदरश्चिदाभासश्चिन्मयश्च कलाधरः। वीरेश्वरश्च मन्दारस्त्रिदशः सागरो मृडः ॥ ५७॥
हर्षः सिंहश्च गौडश्च वीरोऽघोरो ध्रुवस्ततः। दिवाकरश्चक्रधरः प्रमथेशश्चतुर्भुजः ॥ ५८॥
आनन्दभैरवो धीरो गौडः पावक एव च। पराशर्यः[५] सत्यनिधी रामचन्द्रस्ततः परम् ॥ ५९॥
गोविन्दः शङ्कराचार्य एकसप्ततिसंख्यकाः। शङ्कराचार्यशिष्याश्च चतुर्दश दृढव्रताः ॥ ६०॥
देव्यात्मानो दृढात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः। शङ्करः पद्मपादाख्यो बोधो गीर्वाण एव च॥ ६१॥
आनन्दतीर्थनामा च पञ्चैते भिक्षवः स्मृताः। सुन्दरो विष्णुशर्मा च लक्ष्मणो मल्लिकार्जुनः॥६२॥
त्रिविक्रमः श्रीधरश्च कपर्दी केशवस्ततः। दामोदर इति ख्याता गृहिणो नवसंख्यकाः॥ ६३॥
मठपीठोपपीठाधिपत्ययुक्ता[६]न्त्यदीक्षिता । अन्त्येष्टिकृच्छङ्कराख्या विविक्ताश्रमसंयुता ॥ ६४॥
देव्यात्मनः[७] शङ्करस्य विख्याता शिष्यसन्ततिः। पद्मपादस्य षट् शिष्या माण्डलः परिपावकः॥६५॥
निर्वाणो गीर्धनश्चैव चिदानन्दः[८] शिवोत्तमः। विविक्ताश्रमिणो धीरा मौनिनस्त्यक्तमत्सराः॥ ६६॥
विचरन्ति तथा लोके तत्तच्छिष्यपरम्पराः। बोधस्य बहवः शिष्या विविधा[९] भुवि केरले॥ ६७॥
गीर्वाणेन्द्रस्य वै शिष्यो विद्वद्गीर्वाण एव च। तच्छिष्यो विबुधेन्द्रः स्यात् सुधीन्द्रो विबुधस्य च॥ ६८॥
तच्छिष्यो मन्त्रगीर्वाणस्ततः[१०] स्युर्विविधा नराः। आनन्दतीर्थनाम्नश्च शिष्याः स्युर्गृहिणो भुवि॥ ६९॥

---

१. 'पक: ख.। २. 'पाराशरः' ग.। ३. 'भरणः' क.। ४. 'सुपाद्यो' ग.। ५. 'पराचार्यः' क.। ६. 'मुक्तेत्य' क.।
७. 'त्मानः ग.। ८. 'चित्तानन्दः' क.। ९. 'द्विविधा' क.। १०. 'द्विविधा' ख. पाठः।

आराध्यपादुकापीठसम्प्रदायविदो भुवि। सुन्दराचार्यशिष्यास्तु[1] विविधा: पीठनायका:।। ७०।।
भिक्षवो गृहिण: सर्वे सुन्दर[2] एव पीठके। श्रीविष्णुशर्मण: शिष्य: प्रगल्भाचार्यपण्डित:।। ७१।।
तच्छिष्येण मया प्रोक्ते ग्रन्थेऽस्मिन् पूर्णतां गते। आविरासीज्जगद्धात्री महामाया ममाग्रत:।। ७२।।
इति प्रोवाच भो वत्स वृणीष्व वरमीप्सितम्। तदोक्तवानहं मातर्मत्कृतं ग्रन्थमुत्तमम्।। ७३।।
दृष्ट्वा गुरुक्रमं[3] मन्त्रान् गुरुत्वेन विभाव्य माम्। दीक्षां विनापि भक्त्या तु ये जपन्ति च साधका:।।७४।।
तेषामतितरां सिद्धिर्भवत्विति ममेप्सितम्। सुप्रसन्ना तदा देवी तत्तथैव भवत्विति।। ७५।।
वरं दत्वा मुदाप्यन्तर्हिताऽतो गुरुसन्तते:। ज्ञानमात्रेण सा देवी तुष्टा भवति निश्चयात्।। ७६।।
जगद्गुरो: शङ्करस्य शिष्यो लक्ष्मणदेशिक:[4]। लोके विख्यातिमारूढस्तपसा विद्यया श्रिया।। ७७।।
प्राप्यावस्थां तुरीयां तु वीतरागो महीतले। विचरन् प्रौढदेवस्य राजधानीं समाश्रित:।। ७८।।
प्रौढस्तस्मै ददौ वेश्मभूषान्नपरिचारकान्। एकदा तत्सभामध्ये तस्मिंस्तिष्ठति लक्ष्मणे।। ७९।।
नानावस्तूनि वस्त्राणि राज्ञे (दद्यु?दद्यु) रुपायनम्। द्वीपान्तरात् समानीय वाणिज्ये ये नियोजिता:।। ८०।।
राजा ददौ लक्ष्मणाय तानि वस्त्राण्यनेकश:। समादाय निजागारे लक्ष्मणो देशिकोत्तम:।। ८१।।
कुण्डे विध्युक्तमार्गेण वह्निं संस्थाप्य यत्नत:। तानि वस्त्राणि हुतवान् देव्यात्मा भक्तिभावत:।। ८२।।
तच्छ्रुत्वा प्रौढदेवोऽपि वैपरीत्यं हृदि स्मरन्। पुनर्दास्यामि वासांसि मूल्यं कृत्वाद्य यत्नत:।। ८३।।
इत्युक्त्वा प्रेरितो दूतो वस्त्रार्थं लक्ष्मणान्तिके। तदा स क्रोधचित्त: सन् राज्ञे शापं ददौ तदा।। ८४।।
निर्वंशो[5] भवतु प्रौढो ब्रह्मस्वस्यापहारक:। इति वासांसि देवीतो याचयित्वा पुनर्ददौ।। ८५।।
ततस्तन्नगरं त्यक्त्वा गतोऽसौ दक्षिणापथम्। तदोद्विग्नमना:[6] प्रौढ: स देशं लक्ष्मणस्य तु।। ८६।।
प्राप्त तं प्रार्थयामास मयि देव कृपां कुरु। इति तुष्टमना विप्र: प्रोवाच वच उत्तमम्।। ८७।।
राजन् मम वचो लोकेऽप्यमोघं तन्निबोधय। तथापि तव भक्त्याहं सन्तुष्ट: सन् ब्रवीमि ते।।८८।।
भविष्यति तवापत्यं तत्सुखं न भविष्यति। तच्छ्रुत्वा प्रमना राजा गतो निजपुरं प्रति।। ८९।।
तत: काले व्यतीते तु प्रौढदेवो महीपति:। अन्तर्वत्न्यां स्वभार्यायामापन्न: पञ्चतां गत:।। ९०।।
ततस्तद्राज्यभारं[7] तु (गृ?ग्रा) हितोऽस्मि प्रजार्थित:। अर्ककोटिसहस्रेण द्रव्येण महदद्भुतम्।। ९१।।
श्रीविद्यानगरं नाम्ना श्रीचक्रा[8]रसमुज्ज्वलम्। निर्माय प्रौढदेवस्य पुत्रे राज्यार्हतां गते।। ९२।।
तमम्बदेवं भूपालमुपवेश्य[9] नृपासने। तदाज्ञया तत्सदसि विद्वद्भिर्विमलार्थिभि:।। ९३।।
सम्प्रार्थितोऽहमम्बाया आज्ञामासाद्य यत्नत:। नानातन्त्राणि संशोध्य यामलानि च सर्वश:।। ९४।।
मतद्वयं समालोड्य ग्रन्थं विद्यार्णवाभिधम्। मुदा रचितवानस्मि लोकानामुपकारकम्।। ९५।।
मल्लिकार्जुनसंज्ञस्य शिष्या विन्ध्यप्रदेशके। त्रिविक्रमस्य वै शिष्या: श्रीजगन्नाथदेशके।। ९६।।

१. 'त्रिविधा:; ग.। २. 'रा' क. 'रस्यैव' ख. ३. 'दृष्टया गुरुक्रमे' क.। ४. दैशिक: क.। ५. निर्वंशी क.। ६. 'तत्रो' ग।
७. 'प्राज्यभारं' क.। ८. '—कारमुज्ज्वलम्' ग.। ९. 'देश्य' क. पाठ:।

गौडमैथिलबङ्गालदेशे वै श्रीधरस्य तु । काश्ययोध्याप्रदेशेषु शिष्याः ख्याताः कपर्दिनः ।। ९७ ।।
सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशङ्करादृबहिः । कादिशक्तिमते तन्त्रं तन्त्रराजं सुदुर्लभम् ।। ९ ।।
मातृकार्णवसंज्ञं तु त्रिपुरार्णवसंज्ञकम् । योगिनीहृदयं चैव ख्यातं ग्रन्थचतुष्टयम् ।। ९९ ।।
कालीशक्तिमतेऽप्यन्ये ग्रन्थाः ख्याता महीतले । मतद्वयपरिज्ञानाच्छिवोऽमून्मानवः स्वयम् ।। १०० ।।
तस्माद्यत्नेन बोद्धव्यं गोप्तव्यं सिद्धिमिच्छता । मतद्वयस्य सम्मत्या चोर्ध्वाम्नाये व्यवस्थितिः ।। १०१ ।।
मतस्य यस्य सम्मत्या गुरुणा यत्प्रदर्शितम् । साधयेत् साधकश्रेष्ठस्तन्मतस्यैव सम्मतिम् ।। १०२ ।।
न कुर्यान्मतसाङ्कर्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् । कामराजाख्यविद्यायाः कालीमतविभेदनः ।। १०३ ।।
गुरुक्रमं विजानीयात् तन्मतोपासको नरः । प्रह्लादानन्दनाथश्च सनकानन्द एव च ।। १०४ ।।
वसिष्ठानन्दनाथश्च कुमारानन्द एव च । क्रोधानन्दः शुकानन्दो ध्यानानन्दस्ततः परम् ।। १०५ ।।
बोधानन्दः सुरानन्दः कुलाख्या गुरवो नव । सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा वराभयकराम्बुजाः ।। १०६ ।।
पूर्वोक्तसमये स्थाने ध्यातव्या मन्त्रवित्तमैः । चिद्रूपाश्चिन्मयश्चैव चिच्छक्तिर्दिव्यसंज्ञकाः ।। १०७ ।।
प्रबोधश्च सुबोधश्चाप्यनन्तः सिद्धसंज्ञकाः । सुधामश्च त्रिमूर्तिश्च झिण्टीशो मानवाः स्मृताः ।। १०८ ।।
आनन्दनाथशब्दान्ता ध्रुवतारत्रयादिकाः । पादुकां पूजयामीति मन्त्राः सप्तदशार्णकाः ।। १०९ ।।
शैवी सप्तदशीरूपा नित्या सप्तदशार्णकाः । आद्यः परप्रकाशश्चापरः परशिवस्ततः ।। ११० ।।
परशक्तिश्च कौलेशः शुक्लदेवी कुलेश्वरः । कामेश्वरी सप्तमी स्याद्दिव्यौघा मुनिसंख्यकाः ।। १११ ।।
भोगः क्लिन्नस्तु समयः सहजो वेदसंख्यकाः । सिद्धा एते तु गगनो विश्वस्तु विमलस्ततः ।। ११२ ।।
मदनो भुवनो नीलः स्वात्मा प्रिय इतीरिताः । वसुसंख्याः स्मृता एते मानवा विश्वविग्रहाः ।। ११३ ।।
एतान् सम्पूजयेद् देव्याः पृष्ठदेशे नव क्रमात् । तदन्ते पूजयेद् धीमान् प्रियां तु गुरुसन्ततिम् ।। ११४ ।।
कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाम् । करुणो वरुणश्चैव विजयः समरो गुणः ।। ११५ ।।
बलो विश्वंभरः सत्यः प्रियः श्रीधरशारदौ । सकलेशो विलासश्च नित्येशो विश्वपूरुषौ ।। ११६ ।।
गोविन्दो विबुधः सिंहो वीरः सोमो दिवाकरः । अचलो वाग्भवो नादो मोहनः सुलभः शिवः ।। ११७ ।।
मृत्युञ्जयो वासुदेवः शरणश्च सनन्दनः । आकाशो गोप्रियो हर्षो भर्गः कामो महीधरः ।। ११८ ।।
ईशानो गणपः श्रीमान् कपालो भैरवो दिवः । गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्तसंख्याः समीरिताः ।। ११९ ।।
एकसप्ततिसंख्याश्च गुरवः शिवरूपिणः । तच्छिष्याणां क्रमं ज्ञात्वा स्वगुरूक्तविधानतः ।। १२० ।।
पूजायां तर्पणे होमे जपे न्यासे विशेषतः । स्मरणात् सिद्धिमाप्नोति साधकस्तु न संशयः ।। १२१ ।।
कालीमतानुसारेण लोपायाश्च गुरुक्रमः । ज्ञातव्यः सिद्धिमिच्छद्भिस्तथा तत्तदुपासकैः ।। १२२ ।।
श्रीविद्यानन्दनाथश्च परशम्भुस्तथैव च । परमात्मा च दिव्यौघाः स्वप्रकाशो भगीरथः ।। १२३ ।।
विरूपाक्षश्च सिद्धौघा ज्ञानानन्दस्ततः परम् । अचलानन्दनाथश्च योगानन्दश्च मानवाः ।। १२४ ।।

एतान् कुलगुरून् स्थाने पूर्वोक्ते परिचिन्तयेत्। कुमुदः कमलश्चैव सुभोजो दिव्यसंज्ञकाः॥ १२५॥
आत्रेयो भार्गवश्चैव गौतमः सिद्धसंज्ञकाः। शौनको वसुदश्चैव सुरथश्चैव मानवाः॥ १२६॥
आनन्दनाथशब्दान्तास्तारत्रितयपूर्वकाः । पादुकां पूजयाम्यन्ते नमः शब्दं प्रयोजयेत्॥ १२७॥
सर्व एकोनविंशार्णा वैष्णवाश्च स्वरूपिणः। विद्यावतारगुरवः शिवरूपा न संशयः॥ १२८॥
आद्यः प्रोक्तस्तु परमशिवः कामेश्वरी ततः। दिव्यौघश्च महौघश्च सर्वः प्रज्ञा प्रकाशकः॥ १२९॥
एते वै सप्त दिव्यौघा दिव्यश्चित्रस्ततः परम्। कैवल्योऽप्यनुदेवी च ततश्चापि महोदयः॥ १३०॥
एते पञ्चैव सिद्धौघाश्चिदानन्दस्ततः परम्। विश्वशक्त्यानन्दनाथो रमानन्दस्ततः परम्॥ १३१॥
कमलानन्दनाथश्च ततश्चापि मनोहरः। स्वात्मानन्दश्च प्रतिभः सप्तसंख्यास्तु मानवाः॥ १३२॥
एते च दीक्षागुरवो नव पङ्क्तिक्रमाद्यजेत्। प्रतिभान्ते च कपिलोऽप्यगस्त्यश्च ततः परम्॥ १३३॥
अनसूया ततोऽप्यत्रिर्लोपामुद्रा ततः परम्। वसिष्ठाद्व्यासपर्यन्तमूनविंशतिसंख्यकाः ॥ १३४॥
आदित्यश्च महादेवो वागानन्दस्ततः परम्। वामदेवो रतीदेवोऽनन्तो योगो धराधवः ॥ १३५॥
सुहस्तः सत्यसन्धश्च ब्रह्मानन्दश्च भैरवः। दत्तानन्दश्च कुन्तीशश्चिद्घनः सोमगौरवौ॥ १३६॥
त्रिपुरेशो महाबाहुरक्रोधनशिवाम्बिकाः । विद्यानन्दगुणानन्दौ गौरीशो विबुधो हरः ॥ १३७॥
भूतेशः सोमनाथश्च सर्वज्ञः सरसो हरिः। गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्तसंख्या उदाहृताः ॥ १३८॥
चतुष्षष्टिः स्मृता संख्या गुरूणां दे[१]शिकोत्तमैः। एतेषां स्मरणाद् देवी सुप्रसन्ना भवेद् ध्रुवम्॥ १३९॥
मन्वाद्युपासितानां च विद्यानां च गुरुक्रमम्। ज्ञात्वा तत्तन्महाविद्या जप्तव्यास्तदुपासकैः॥ १४०॥
महादेवः परम्बा च कूर्मेशो दिव्यरूपकाः। सद्योजातः कुमारश्च भूतेशः सिद्धसंज्ञकाः॥ १४१॥
प्रियानन्दश्च लीन[२]श्चाघोर[३]श्चाप्यत्र मानवाः। प्रागुक्तसमये स्थाने स्मर्तव्याः कुलमार्गगाः॥ १४२॥
पूर्णेशः शङ्करश्चैव प्रगल्भो दिव्यसंज्ञकाः। मौतिकस्त्रिदशश्चैव परमः सिद्धसंज्ञकाः॥ १४३॥
विद्येशो वासवश्चैव यतीशश्चैव मानवाः। विद्यावतारगुरवः स्मर्तव्या गगनाम्बुजे ॥ १४४॥
परप्रकाशः प्रथमस्ततः परविमर्शकः । कामेश्वरी च मोक्षश्चाप्यमृतः पुरुषस्ततः ॥ १४५॥
अघोरश्चैव सप्तैते दिव्यौघाः शिवरूपिणः। प्रकामश्च सदानन्दस्ततः सिद्धौघ उत्तमः॥ १४६॥
सिद्धौघाश्चैव चत्वार उत्तरः परमस्ततः। सर्वज्ञः सर्वसिद्धौ च गोविन्दः शङ्करस्ततः॥ १४७॥
मानवौघाश्च सप्तैते दीक्षाया गुरुसन्ततिः। देव्यास्तु पृष्ठभागे च नव पङ्क्तिक्रमाद्यजेत्॥ १४८॥
शङ्करान्ते यजेद् भक्त्या स्वगुरुक्रममण्डलम्। कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाः॥ १४९॥
ततः परेशो विद्येशस्त्रिपुरो विजयो हरः। कामेशस्त्रिपुरान्तश्च पुरुषः परमो हरिः॥ १५०॥
गाल्वो मुद्गरः शौरिः परमात्मा धनेश्वरः। धनञ्जयो भास्करश्च भल्लाटश्च विभावसुः॥ १५१॥
जीवनाथश्च गोरक्षो मत्स्यनाथः सदाशिवः। गुरुभक्तो जितक्रोधो बोधानन्दः सुरेश्वरः॥ १५२॥

१. 'दै' क. पाठः। २ 'नील' ग. पाठः। ३. 'घोर' क. पाठः।

भैरव: सच्चिदानन्द: कृतीश: करुणाकर:। श्रीकरो वेदमूर्तिश्च सर्वेशो दुर्लभो वशी।। १५३।।
नागदेव: क्षमानाथो भावेश:[1] केशवस्तत:। नन्दीशो गणपो वीरो दुर्ज्ञेयो[2] मिहिर: प्रिय:।। १५४।।
गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्तैते प्रागुदीरिता:। चतु:सप्ततिसंख्यास्ते गुरव: सिद्धिदायका:।। १५५।।
स्मरणात् पूजनाच्चैवोपासकानां न संशय:। अथ विविधविद्यानां मते वै कादिसंज्ञके।। १५६।।
कुलविद्यावतारार्णदीक्षाणां गुरुसन्ततौ। गुरुपङ्क्तित्रयं ज्ञात्वा विद्यासिद्ध्यै भजेत्सुधी:।। १५७।।
सर्वज्ञस्तत ईशानो भूतेशो दिव्यसंज्ञका:। दिव्य: सर्वश्च भव्यश्च सिद्धा श्रीपूर्वका इमे।। १५८।।
प्रशस्तश्च प्रकामश्च सुधामो मानवा: स्मृता:। चतुर्भुजास्त्रिनयना रक्तमाल्याम्बरावृता:।। १५९।।
अक्षस्रक्पुस्तकाभीतिवरोद्यत्करपङ्कजा:। कुलाख्या गुरवश्चैते स्मर्तव्यास्तत्र वै तथा[3]।। १६०।।
प्रकाशश्च विमर्शश्चाप्यानन्दो दिव्यरूपिण:। ज्ञान: सत्यश्च पूर्णश्च सिद्धा: श्रीपूर्वका इमे।। १६१।।
स्वभाव: प्रतिभश्चैव सुभगो मानवा मता:। विद्यावतारगुरवो ध्येया: पूज्याश्च सिद्धये।। १६२।।
उद्द्योतश्च प्रभावश्च कुलेशो दिव्यरूपिण:। भैरवो गणपश्चैव कुमार: सिद्धसंज्ञका:।। १६३।।
उद्भटो वाग्भटश्चैव कमनो मानवा: स्मृता:। सर्वे त्रित्र्यक्षरव्याप्ता[4] मायाश्रीबीजपूर्वका:।। २६४।।
आनन्दनाथशब्दान्ता: पादुकां पूजयामि च। पूजायां तर्पणे चैव पादुकां तर्पयामि च।। २६५।।
मार्जने मार्जयाम्यत्र तत्तच्छब्दं प्रयोजयेत्। पूजाङ्गहवने चैव पूजयाम्यग्निसुन्दरी।। १६६।।
तथैव तर्पणान्ते तु तर्पयाम्यग्निवल्लभा। मार्जने मार्जयाम्यग्निदयिता क्रम ईदृश:।। २६७।।
दीक्षाया गुरवश्चैते नवपङ्क्तिक्रमाद्यजेत्। कमनान्ते च कपिलाद्व्यासान्ते चैकविंशति:।। १६८।।
अव्ययश्च विशेषश्च सङ्ग्राहो[5] देवलस्तथा। प्रकाण्डो गहनश्चैव दुर्लभो दुर्जयस्तथा।। २६९।।
विश्वेश उदयश्चैव त्वरित: सुन्दरस्तत:। भरतो धिषणश्चैव श्रीकण्ठ: शङ्करस्तत:।। १७०।।
अनलो वासवश्चैव सुनेत्र: सुभगस्तत:। वीरेशो विरहश्चैव क्लिन्नेशो विजयस्तत:।। १७१।।
कर्षकश्च प्रगल्भश्च विनयो वरदस्तथा। शान्तनश्चित्रकश्चैवाद्भुतो निपुण एव च।। १७२।।
विपुलो विमलश्चैव सोमेश: कुशलस्तत:। सुमन्त्रश्च सुतन्त्रश्च विद्येशो विनतस्तथा।। १७३।।
विभवो वर्धनश्चैवानिन्द्य: सुप्रिय एव च। सारङ्गो वारुणश्चैव सत्येच्छुरिहा तथा।। १७४।।
वाग्यत: कामनश्चैव वाङ्मय: सुकृतस्तत:। विशाखो मञ्जुलश्चैव कामेशो वाग्भवस्तत:।। १७५।।
गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्तसंख्या: समीरिता:। अशीतिसंख्यकाश्चैव गुरवचतुरुत्तरा: ।। १७६।।
एतेषां स्मरणान्मर्त्य: शिवतुल्यो भवेत् क्षणात्। कादिशक्तिमतेऽप्येते सर्वत्र गुरव: संमृता:।। १७७।।
कालीमते मन्त्रभेदाद् गुरुभेदस्त्वनेकधा । पूर्वदक्षिणपाश्चात्यमध्यसिंहासनस्थिता: ।। १७८।।
बालादिभैरवीभेदा द्वात्रिंशत्संख्यका: स्मृता:। नित्या: षोडशिका: षड् वा दर्शना: पञ्चपञ्चिका:।।१७९।।
चतु:समयविद्याश्च नवावरणशक्तय: । मन्त्रपारायणे प्रोक्ता विद्या श्रीचक्रशक्तय: ।। १८०।।

---

१. 'भाषेश: क.। २ 'दुर्लेयो' ख.। ३ 'तद्बुधैस्तथा' ख.। ४. 'राख्यास्ते' क. ख.। ५. 'संग्रहो' क. पाठ:।

भजनीयाः प्रयत्नेन प्रतिपद्य गुरुक्रमम्। प्रह्लादानन्दनाथाद्याः कुलीना गुरवो नव॥ १८१॥
समयः कक्कुटश्चैव प्रधानो दिव्यसंज्ञकाः। बुधेशः कुथर[1]श्चैव भार्गवः सिद्धरूपिणः॥ १८२॥
कन्दलस्तपनश्चैवाप्यदीनश्चैव मानवाः। एते विद्यावताराख्या गुरवो नवसंख्यकाः॥ १८३॥
परप्रकाशः परमेशानः परशिवस्ततः। कामेश्वरी च मोक्षश्च कामश्चामृतसंज्ञकः॥ १८४॥
एते दिव्यास्तु सप्तैव ईशानश्च ततः परम्। ज्ञेयस्तत्पुरुषश्चैव ह्यघोरस्तदनन्तरम्॥ १८५॥
वामदेवस्ततः सद्योजातः सिद्धाः स्मृता अमी। पञ्चोत्तरश्च परमः सर्वज्ञः सर्व एव च॥ १८६॥
सिद्धो गोविन्दनामा च शङ्करः सप्त मानवाः। दीक्षाया गुरवश्चैते पूजनीया विशेषतः॥ १८७॥
कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाः। गणेशश्च कुमारश्च विक्रमो विजयस्ततः॥ १८८॥
रन्तिदेवः[2] सुदेवश्च भोजो रामो गुणस्ततः। भैरवो भ्रामणश्चैव रमणो विमलस्ततः॥ १८९॥
वैनतेयो वासवश्चानलः सङ्कर्षणस्ततः। वीरभद्रो विशालश्च विद्याधरविशारदौ॥ १९०॥
वैश्वानरश्च यज्ञेशो महीधरकुलान्तकौ। अनन्तौ वरदश्चैव कामो जालन्धरस्ततः॥ १९१॥
शैवः सदाशिवो भद्रो रुद्रः कन्दर्पसुव्रतौ। सत्यव्रतः सत्यनिधिर्बोधो मौद्गल्य एव च॥ १९२॥
ईशानो गौडपादादिशङ्करान्तः सप्तसंख्यकाः। अष्टषष्टिः स्मृता एते मानवान्ते तु पूजने॥ १९३॥
ततो गुरुक्रमं ज्ञात्वा पूजयेद्भक्तिभावतः। पूर्वाम्नायादिदेवीनामयमेव गुरुक्रमः॥ १९४॥
तथैव दक्षिणाम्नायदेवता ये ह्युपासते। तत्तत्सिद्धचै च तैर्ज्ञेयस्तत्तन्मन्त्रगुरुक्रमः॥ १९५॥
तारको रुचकश्चैव भद्रको दिव्यरूपिणः। अमरः सत्यगश्चैव भास्वरः सिद्धसंज्ञकाः॥ १९६॥
अमृतो बोधपूर्णौ च मानवाः कुलरूपिणः। तत्तत्समयतत्स्थानतत्तेजसि विचिन्तयेत्॥ १९७॥
प्रदीपश्च प्रभासश्च प्रगल्भो दिव्यसंज्ञकाः। प्रभावो विनयश्चैव कुमुदः सिद्धसंज्ञकाः॥ १९८॥
चिदाभासश्च चिद्रूपः प्रकामो मानवाः स्मृताः। एते विद्यावताराख्या गुरवो भुवि दुर्लभाः॥ १९९॥
प्रभावश्चादिनाथश्च विमलः समयः शिवः। एते पञ्चैव दिव्यौघा निर्वाणो गणपो हरः॥ २००॥
परशम्भुश्चिदंशश्च[3] पञ्चैते सिद्धसंज्ञकाः। कुलनाथो विशुद्धिश्च[4] कुशलः कुन्तशेखरः॥ २०१॥
सुडिम्भः सुन्दरः केशः सप्तैते मानवाः स्मृताः। दीक्षागुरुक्रमो देव्याः पृष्ठदेशे प्रयत्नतः॥ २०२॥
पूजनीया[5] विशेषेण स्वसिद्धचै नव पङ्क्तितः। वाङ्मायाकमलासिद्धगुरुशब्दमुखास्त्विमे॥ २०३॥
कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाः। वीरभद्रो महासेनो गिरीशो गुणवर्धनः॥ २०४॥
वाङ्मयो वरदो वीरः सुभव्यो नन्दिनायकौ। विजयो विश्वविनतौ वीरेशो गिरिनन्दनः॥ १०५॥
प्रमदो व्यययोगौ च नित्यानन्दो गुणातिगः। गुणानन्दो गुणारामो निरीहो निर्मलो विभुः॥ २०६॥
सुभगो निर्विकल्पश्च महाकारोऽचलोऽरुणः। तूणीशस्त्वरितो धर्मो निराकारो निरिन्द्रियः॥ २०७॥
हंसेश्वरो रुचिग्रीवौ द्रोणो विश्वम्भरो बलः। सुदक्षिणो विरूपाक्षो गुरुभक्तो गुरुप्रियः॥ २०८॥

---

१. 'कुथन' क.। २. रतीदेव क.। 'रविदेवः' ख.। ३ 'चिनन्दश्च' क.। चिदानन्दः' ख.। ४. विशुद्धश्च' ग.। ५. 'यो' ग. पाठः।

गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्तसंख्याः प्रकीर्तिताः। त्रिसप्ततिमिता एते मानवौघास्तु पूजने।। २०९।।
एतेषां पूजनाद्देव्यो दक्षिणाम्नायकीर्तिताः। प्रसन्नाः स्युरतः पूज्या विद्यासिद्ध्यै गुरूत्तमा।। २१०।।
पश्चिमाम्नायदेवीनां प्रतिपद्य गुरुक्रमम्। विदध्याद्भजनं सिद्ध्यै गुरुतः शास्त्रतोऽपि वा।। २११।।
भैरवो भैरवी चैव महादेवो गणेश्वरः। विरूपाक्षो महासेनो वीरभद्रो धनाधिपः ।। २१२।।
बोधश्चानन्दनाथान्ता गुरवः कुलसंज्ञकाः। अघोरो घोरसंज्ञश्च घोरघोरतरस्तथा ।। २१३।।
दिव्यौघास्तत्परः शर्वः सर्वो रुद्रश्च सिद्धगाः। हाङ्कारश्चैव हीङ्कारो हूङ्कारश्चैव मानवा।। २१४।।
एते विद्यावताराख्या गुरवः सिद्धिदायकाः। ईशस्तत्पुरुषाघोरवामदेवास्ततः परम् ।। १२५।।
सद्योजातश्च पञ्चैते दिव्यौघाश्च समारसः। भूतेशो ललितः स्वस्थः कौलेशः सिद्धसंज्ञकाः।। २१६।।
आलस्यश्च प्रभानन्दो रागिणी वक्त्ररागिणी। अतीतः कुब्जसंज्ञश्च कुलकौलेश्वरस्ततः।। २१७।।
मानवौघाश्च सप्तैते दीक्षाया गुरवः स्मृताः। देव्याश्च पृष्ठभागे तु नवपङ्क्तिक्रमाद्यजेत्।।२१८।।
कुलकौलेश्वरस्यान्ते प्रयजेत् स्वगुरुक्रमम्। कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाः।। २१९।।
अनन्तः शङ्करश्चैव पिङ्गलश्च करालकः। सिद्धो रत्नः शिवो मेही समयश्च खगेश्वरः।। २२०।।
भद्रः कूर्मश्च घोरश्च गोपो मीनश्च कौलिकः। तीव्रश्च डामरश्चैव रामः कामश्च[१] शाकिनी।।२२१।।
महामायो महानन्द आधारेशश्च चक्रकः। कुरुः समयः श्रीशः कुब्जिका कुलदीपिका।। २२२।।
शिवेशः शर्वरी धर्मी कामी[२] कामकला शिवः। गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्तसंख्याः समीरिताः।।२२३।।
चतुःषष्टिः स्मृताश्चैव गुरवः सिद्धिदायकाः। ततः सम्पूजयेद् भक्त्या ज्ञात्वा स्वगुरुसन्ततिम्।।२२४।।
उत्तराम्नायदेवीनां कुर्याद्भजनमादरात्। विशेषेण गुरून् ज्ञात्वा विद्यासिद्ध्यै प्रयत्नतः।। २२५।।
प्रह्लादानन्दनाथाद्याः प्राक्प्रोक्ता गुरवः कुले। उड्डीशश्च कुलेशश्च पूर्णेशो दिव्यसंज्ञकाः।। २२६।।
कामेश्वरश्च श्रीकण्ठः शङ्करः सिद्धसंज्ञकाः। अनन्तः पिङ्गलो नादो मानवौघाः स्मृता अमी।।२२७।।
विद्यावतारगुरवः सिद्धिदाः पूजिता[३]श्च ते। महादेवी महादेवस्त्रिपुरश्चापि भैरवः।। २२८।।
दिव्यौघा गुरवः प्रोक्ता ब्रह्मानन्दस्ततः परम्। पूर्णदेवोऽद्वितीयश्च चलचित्तश्चलाचलः।। २२९।।
कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः। माया मायावती चैव सिद्धौघाः सम्प्रकीर्तिताः। २३०।।
विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुधाकरः। मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः।। २३१।।
मूलदेवो रतीदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ। समयानन्दसन्तोषौ मानवौघाः स्मृता अमी।। २३२।।
देव्यास्तु पृष्ठभागे तु नवपङ्क्तिक्रमाद्यजेत्। सन्तोषानन्दपरतः प्रयजेद् गुरुसन्ततिम्।। २३३।।
कपिलाद् व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाः। शम्बरो ह्रदयो भोगो नाभसः कौलिको धरः।। २३४।।
अभयः शम्बरो भद्रो मोहोऽघोरो मनोमयः। भैरवः शबरः कालो मतो[४] ब्रह्मा महाकुलः।। २३५।।
वाहनः[५] खेचरो व्योमः[६] श्वसनो ज्वलनो ह्यजः। ईशस्तातः[७] कुलातीतो वायुः संहारकौटिलौ।।२३६।।

१.'कालश्च' क. पाठः। २.'काम' क. पाठ। ३ 'पूरिता' क. पाठ। ४. 'मनो' ग. पाठः। ५. 'आह्नः' ग. पाठः।
६. 'म' ग. पाठ ७. 'स्नात' ग. पाठः।

विरोध: परमो गोप्ता षट्चक्र: परम: पर:। मुक्तो ज्ञान: कुल: सत्यो वर्गाजो[1] मन्त्रविग्रह:।। २३७।।
स्वच्छन्दो भैरवो भीमो वर्णाढ्य: शब्दशब्दजौ। गौडादिशङ्करान्तास्तु सप्तसंख्या: समीरिता:।। २३८।।
षट्सप्ततिमिता ह्येते गुरव: सिद्धिदायका:। एतेषां स्मरणान्मर्त्य: शिवतुल्यो न संशय:।। २३९।।
शङ्करादिगुरून् ज्ञात्वा पूजयेद्भक्तिभावत: । पञ्चायतनपूजायां पृथग्यजनकेऽपि वा ।। २४०।।
गणेशादिमनूनां च ज्ञेयस्तत्तद्गुरुक्रम: । गुरूणां कुलमज्ञात्वा नष्टमार्गो भविष्यति ।। २४१।।
नष्टमार्गान्मिन्त्रविद्ये न तादृक्फलगोचरे। गुरूणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् सन्ततिक्रम:।। २४२।।
तत्र मन्त्राश्च विद्याश्च निष्फला नात्र संशय:। विंशति: पुरुषा[2] वापि नव सप्त त्रयोऽपि वा।।२४३।।
न ज्ञाता[3] गुरुवंशानां शिष्यश्चेन्नष्टसन्तति:। स्ववंशादधिको ज्ञेयो गुरुवंशो महाशुभ: ।। २४४।।
जनकादधिको ज्ञेयो मन्त्रदस्तु महेश्वर:। तस्मात् सर्वत्र विज्ञेय: पूजनीयो गुरुक्रम: ।। २४५।।
आदौ सर्वत्र विज्ञेयो मन्त्रद: परमो गुरु:। परापरगुरु: शक्ति: परमेष्ठी गुरु: शिव:।। २४६।।
सर्वमन्त्रेषु[4] विद्यासु स्वयं प्रकृतिरूपिणी। तत: पुरुषरूपश्च ततश्च गुरुसन्तति:।। २४७।।
तेनैव हि शिवांशाश्च शिवभक्ता विशेषत:। सर्वमन्त्रेषु गुरव: सर्वज्ञा: सिद्धिदायका:[5] ।।२४८।।
शिवा: शैव्यश्च[6] या विद्यास्तासां सर्वत्र देशिका:। गणेशो गाणपत्यानां गणदीक्षाप्रभुर्मत:।।२४९।।
वैष्णवानां स्वयं विष्णु: सौराणां सूर्य एव च। दिव्यौघा गुरवश्चैव सिद्धौघा गुरवस्तथा।। २५०।।
मानवौघाश्च गुरवो ज्ञेया: सर्वत्र देशिकै:। गणेश्वरो गणक्रीडो विकटो विघ्ननायक:।। २५१ ।।
दुर्मुख: सुमुखो बुद्धो विघ्नराजो गणाधिप:। ऐते कुलाख्या गुरवस्तत्तेजसि विभावयेत्।। २५२।।
सुरानन्द: प्रमोदश्च हेरम्बश्च महोत्कट:। शङ्करो लम्बकर्णश्च मेघनादो महाबल:।। २५३।।
गणञ्जयो नवैते तद्विद्यानामवतारका:। विनायको विरूपाक्षो बुद्ध: शूरो वरप्रद:।। २५४।।
एते पञ्चैव दिव्यौघा विजयो दुर्जयो जय:। कवीश्वरश्च ब्रह्मण्यो निधीश: सिद्धसंज्ञका:।।२५५।।
गजाधिराजो दु:खारि: सद्योजात: सुखावह:। परात्मा सर्वभूतात्मा महानाद: शुभानन:।। २५६।।
बालचन्द्रो नवैते च मानवौघा: प्रकीर्तिता:। दीक्षाया गुरव: प्रोक्ता पूजिता: सिद्धिदायका:।। २५७।।
ततश्च बालचन्द्रान्ते पूजयेत् गुरुसन्ततिम्। कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यका:।। २५८।।
गणक:[7] सुभगो नित्यो नित्यालम्बश्च शाश्वत:। पूर्णानन्द: परानन्द: सुभक्त: पद्मलोचन:।।२५९।।
कामपालो बुध: श्रेष्ठो गजवक्त्रो गणप्रिय:। भूतेशो बाललीलश्च कुमारो बोधनो हर:।। २६०।।
सत्यलील: सुलीलश्च विकटो धूम्रवर्णक:। नन्दिप्रियो नन्दिहासो देवीपुत्रो धनेश्वर:।। २६१।
विश्वम्भरो विशालाक्षो विघ्नहर्ता विनायक:। कूष्माण्डेश: कपर्दी च शिव: कालो महीधर:।।२६२।।
गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्त प्रागीरिताश्च ते। त्रिषष्टिसम्मिता ह्येते गुरव: सिद्धिदायका:।। २६३।।
पूजिता: संस्मृता नित्यं सर्वेप्सितफलप्रदा:। श्रीमायास्मरबीजाद्या: सिद्धाचार्यनमोन्तका:।। २६४।।
वैष्णवेषु तथा ज्ञेया गुरवो मन्त्रसिद्धये। प्रह्लादश्च वसिष्ठश्च पुण्डरीक: पराशर:।। २६५।।

१ 'वर्णभ:' ख. पाठ:। २ 'षान्' ग. पाठ:। ३ 'त्वा' ग. पाठ:। ४ 'तन्त्रेषु' क. पाठ:। ५ 'सर्वज्ञसिद्धि' ख. पाठ:।
६.'शैवाश्च' ग.पाठ। ७. 'गणप:' ग. पाठ:।

शुकश्च शौनकश्चैव नारदो दाल्भ्य एव च। व्यासश्चैव नव प्रोक्ता गुरवः कुलरूपिणः॥ २६६॥
सरस्वती ततो ज्ञेयौ विनायकशुकौ ततः। सुमन्तुर्जैमनिश्चैव वैशम्पायन एव च ॥ २६७॥
नारदः पुण्डरीकश्च सुचेलो नवसंख्यकाः। विद्यावतारगुरवो ध्येयाः पूज्याश्च सिद्धये ॥ २६८॥
महादेवो महादेवी परमेष्ठी समीरणः। वरुणो वामदेवश्च कश्यपश्चाङ्गिराः क्रतुः ॥ २६९॥
दीक्षाया गुरवश्चैते नव पङ्क्तिक्रमाद्यजेत्। कपिलाद्व्यासपर्यन्तमेकविंशतिसंख्यकाः ॥ २७०॥
नृसिंहो वामनः सत्यो बलो बालो धनुर्धरः। शङ्खी चक्री हली खड्गी मुसली रमणोऽजितः॥ २७१॥
पुरुषो भूधरो विश्वो गोविन्दो गोविवर्धनः। गोपीश्वरो जितक्रोधो मीनाख्यो मीनकेतनः॥ २७२॥
मनोहरः सात्वतश्च केशवोऽच्युतवामनौ। नारसिंहोऽव्ययो विष्णुर्नारायणमहीधरौ ॥ २७३॥
चिदंशश्चित्प्रकाशश्च माधवो मधुसूदनः। पुरुषोत्तमपद्माक्षौ[१] घनश्यामो धराधवः ॥ २७४॥
गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्त प्रागुदिताश्च ते। अष्टषष्टिमिता ह्येते गुरवः सिद्धिदायकाः ॥ २७५॥
एतेषां स्मरणान्मन्त्राः सिध्यन्त्येव हि तत्क्षणात्। एते मन्मथबीजाद्याः श्रीपादेभ्यो नमोन्तकाः[२] ॥२७६॥
अथवाचार्यपादेभ्यो नमोन्ताः सम्प्रकीर्तिताः। शैवानां मन्त्रविद्यानां सिद्ध्यै तत्तद्गुरुक्रमम्॥ २७७॥
ज्ञात्वा तद्भजनं कुर्यादन्यथा[३] फलदा नहि। विश्वेश्वरश्च भगवान्महादेवस्त्रियम्बकः ॥ २७८॥
त्रिपुरान्तश्च कालाग्निरुद्रः कालस्ततः परम्। सर्वेश्वरो नीलकण्ठो दिक्पतिश्च सदाशिवः ॥ २७९॥
एकादश स्मृता ह्येते गुरवः कुलरूपिणः। वीरभद्रो गणाध्यक्षस्ततः शूलायुधः शिवः॥ २८०॥
ईशानः प्रमथाधीशो नन्दी भृङ्गिः प्रचण्डकः। महिषो मदनारातिर्विद्यानामवतारके॥ २८१॥
गुरवो रुद्रसंख्याश्च स्मृताः सिद्धिप्रदायकाः। अघोरोऽप्यथ घोरश्च घोरघोरतरस्ततः॥ २८२॥
सर्वः शर्वश्च रुद्रश्च ततस्तत्पुरुषस्ततः। महादेवो विरूपाक्षः सद्योजातो भवस्तथा॥ २८३॥
एकादशैते दिव्यौघा भवोद्भवविनायकौ। चण्डीशो वामदेवश्च शङ्करो विश्वनायकः॥ २८४॥
ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च कालश्च भूतेशः प्रमथेश्वरः। एकादशैते सिद्धौघाः कलविकरणस्ततः॥ २८५॥
बलविकरणश्चैव बलप्रथमनस्तथा। ततश्च सर्वभूतान्ते दमनश्च मनोन्मनः ॥ २८६॥
उग्रो भीमः पशुपतिर्नीलग्रीवस्त्रिलोचनः। वीरेश्वरश्च सम्प्रोक्ता मानवा रुद्रसम्मिताः॥ २८७॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन विद्यासिद्ध्यै च देशिकैः। दीक्षाया गुरवश्चैते वीरेशान्ते गुरुक्रमः॥ २८८॥
ज्ञातव्यः कपिलाद्व्यासपर्यन्तेऽप्येकविंशतिः। कामेशः कालकण्ठश्च कालघ्नः कालरूपधृक्॥२८९॥
कामान्तको विशालाक्षो वीरभद्रो विनायकः। शूलायुधो गिरीशश्च कैलासो वाङ्मयो हरः॥२९०॥
बुधेशश्चामरेशश्च चण्डीश्वरकुमारकौ। महेश्वरो महादेवो विश्वनाथः प्रजापतिः॥ २९१॥
आत्मेश्वरश्च संवर्तः क्रमेशश्च प्रकाशनः। ललितः स्पर्शभूतेशौ चानन्दश्च प्रमेश्वरः॥२९२॥
रागेशश्च करालेशः सिद्धेशसमयेश्वरौ। ज्ञानानन्दः प्रियानन्दः कलानन्दोऽमृतेश्वरः ॥२९३॥

---

१ 'पुष्करोत्तम' ग. पाठः। २ 'न्तिकाः' क. पाठःफ। ३ 'न्यदा' क. पाठः।

गुह्येश्वरश्चिदानन्दः कुलेशश्चण्डकौलिकौ। गौडादिशङ्करान्ताश्च सप्त प्रागीरिताश्च ते॥ २९४॥
एकसप्ततिसंख्याश्च गुरवः सिद्धिदायकाः। प्रासादाद्याश्च आराध्यचरणेभ्यो नमोन्तकाः॥ २९५॥
पूजिताः संस्मृता नित्यं मन्त्रसिद्धिप्रदाश्च ते। सौरास्तथैव यष्टव्याः प्रतिपद्य गुरुक्रमम्॥ २९६॥
मिहिरश्च सुगुप्तश्च प्रभेशो दिव्यसंज्ञकाः। अरुणश्च मरीचिश्च मयूखः सिद्धसंज्ञकाः॥ २९७॥
कात्यायनो घृणीशश्च मार्तण्डो मानवाः स्मृताः। एते कुलाख्याः गुरवश्चिन्तनीया महौजसि॥२९८॥
वेदात्मा भास्करो ब्रघ्नो दिव्यो भास्वाप् प्रभाकरः। नारायणः कपर्दी च सिद्धाश्चार्कस्त्रयीमयः॥२९९॥
ईशानो मानवाः प्रोक्ता विद्यानामवतारके। आनन्दः समयश्चैव विमलो ज्ञानदीपनः॥ ३००॥
चिद्घनः सोमनाथश्च सविता पोषणोऽरुणः। महेशो विजयश्चैव भूतेशो देवभागकः॥ ३०१॥
दीक्षाया गुरवश्चैते त्रयोदश समीरिताः। पूजनीयाः प्रयत्नेन नव पङ्क्तिक्रमाद् बुधैः॥ ३०२॥
ततश्च देवभागान्ते कपिलादेकविंशतिः। व्यासान्ते जैमिनिश्चैव सुमन्तुर्ज्ञानवर्धनः॥ ३०३॥
चिदानन्दश्चिदाभासश्चिन्मयो योगविद्गुरुः। सत्यव्रतश्च चिद्रूपो भैरवोऽम्बरनायकः॥ ३०४॥
विश्वेश्वरो मित्रकरः शुभङ्करदिवाकरौ। गणेश्वरश्च मार्तण्डभैरवो द्युमणी रविः॥ ३०५॥
त्रिविक्रमो वासुदेवः शङ्करो रविलोचनः। पुण्डरीको रमेशश्च गुणारामो धनेश्वरः॥ ३०६॥
देवेन्द्रो गोपनाथश्च पुरुषश्च महाशयः। आचार्यसिंहो गोविन्दो वेदज्ञो मित्रविन्दकः॥३०७॥
गौडादिशङ्करान्ताश्च चतुष्षष्टिमिताः स्मृताः। एतेषां स्मरणात्सौरा मन्त्राः सिध्यन्ति तत्क्षणात्॥२०८॥
शङ्करात् स्वगुरूव् ज्ञात्वा पूजयेद्भक्तिभावतः। एते मायादिकाः सर्वे पादुकाभ्यो नमोन्तकाः[१]॥२०९॥
ये प्रोक्ता उत्तराम्नाये गुरवः सिद्धिदायकाः। ते ज्ञातव्या अधः[२]संज्ञकाम्नाये भैरवान्तकाः॥ ३१०॥
श्रीविद्या भेदसहिता बाला च त्रिपुरा च या। भगमाला तथा नित्यक्लिन्ना चैव स्वयंवरा॥ ३११॥
मधुमत्युन्मनी भेडा शारिका सुरसुन्दरी। अश्वारूढा महामाया कुरुकुल्ला सुरेश्वरी॥ ३१२॥
भुवनेश्यन्नपूर्णा च पूर्वाम्नायाधिदेवताः। बगला वशिनीभेदास्त्वरिता फलदा तथा॥ ३१३॥
वाराही भेदसहिता भोगिनी भेदसंयुता। कामेश्वरी च भेरुण्डा वज्रेशी वह्निवासिनी॥ ३१४॥
शिवदूती विचित्रा च विजया सर्वमङ्गला। महिषार्दी महालक्ष्मीर्दक्षिणाम्नायदेवताः॥ ३१५॥
महासरस्वती देवी तथा वाग्वादिनी मता। तथा नीलपताका च भैरवी भेदसंयुता॥ ३१६॥
चामुण्डा रक्तचामुण्डा ब्राह्म्यादिदशदेवताः। प्रत्यङ्गिरा भवानी च पश्चिमाम्नायदेवताः॥ ३१७॥
कालिका भेदसहिता तारा भेदैश्च संयुता। मातङ्गी भैरवी छिन्ना तथा धूमावती मता॥ ३१८॥
उत्तराम्नायकथिताः शीघ्रकाल[३]फलप्रदाः। नागशक्त्यादयो विद्या अध[४]आम्नायदेवताः॥ ३१९॥
तत्तद्भेदांस्तथा ज्ञात्वा भजेत्तत्तद्गुरुक्रमम्। कालीशक्तिमते सम्यक् प्रोक्तपर्वसु चादरात्॥ ३२०॥
गुरूणां मण्डलं भूमौ विधाय गुरुसन्ततिम्। पूजयेत् परया भक्त्या सम्प्रदायप्रसिद्धये॥ ३२१॥

---

१. न्तिकाः' क. पाठः। २. 'घोरं' क. पाठ। ३. 'काम' ग. पाठः। ४. 'घोआ' क. पाठः।

असम्प्रदायात् फलदा न भवन्ति हि देवताः। सम्प्रदायमविज्ञाय मोहादज्ञानतोऽपि वा।। ३२२।।
मन्त्रं दद्यात् प्रयत्नाद्यो देवतां वा समर्चयेत्। आचरेत् तर्पणं होमं पौरश्चरणकं विधिम्।। ३२३।।
यद्यत्तत्तद् भवेन्नित्यमभिचाराय निश्चयात्। आद्यं गणपतेश्चक्रं तद्बहिर्भैरवं ततः ।। ३२४।।
तद्बहिर्वटुकं चक्रं सिद्धचक्रं च तद्बहिः। चरणाख्यं तदुपरि शाम्भवं तदनन्तरम् ।। ३२५।।
तदूर्ध्वं मालिनीचक्रं सप्तचक्रात्मकं भवेत्। आदौ त्रिकोणं विन्यस्य तद्बहिस्त्र्यस्र[१]मुद्धरेत्।। ३२६।।
त्रिकोणं तद्बहिर्न्यस्येन्नवकोणं च तद्बहिः। तद्बहिर्वसुपत्राब्जं तद्बहिर्वलयत्रयम् ।। ३२७।।
चतुरस्रत्रयं न्यस्य तद्बहिः पूजयेद् बुधः। प्रणवं वाग्भवं मायां कमलां खेचरीं ततः।। ३२८।।
तत्प्रासादपराबीजमुद्धृत्य शिवशक्तिके। संवर्तश्च महाकालशक्राम्ब्वग्निसमीरणान् ।। ३२९।।
उद्धरेदन्त्यवर्णस्तु अर्घीशार्धेन्दुसंयुतः । ततश्च श्रीगुरोर्नामानन्दनाथान्तमुद्धरेत् ।। ३३०।।
श्रीपादुकापदं चोक्त्वा पूजयामि नमो वदेत्। अनेन मन्त्रराजेन मध्ये श्रीगुरुमर्चयेत्।। ३३१।।
अस्मिन्मन्त्रे पराद्यं तु कृत्वा सर्वत्र देशिकः। देशिकाख्यस्थले तस्य पत्न्या नाम नियोज्य च।।३३२।।
देव्यम्बाश्रीपदं चोक्त्वा पादुकां पूजयामि च। नमोन्तविद्यया नाथवामे तत्सुन्दरीं यजेत्।। ३३३।।
स्वाग्राद्यस्रत्रये पूज्यं श्रीनाथादिगुरुत्रयम् ।श्रीचक्रनाथ[२]पार्श्वे तु चक्राधिष्ठानदैवतम्।। ३३४।।
गणनाथं सुसम्पूज्य द्वितीयावरणं यजेत्। प्रथमं कामरूपाख्यं जालन्धरमतः परम्।। ३३५।।
तृतीयं पूर्णगिर्याख्यं स्वाग्राद्यस्रत्रये यजेत्। वक्ष्यमाणविशिष्टं तु चोड्याणं[३] मध्यदेशतः।। ३३६।।
भैरवं पूजयेत् तस्य मनुना साधकोत्तमः। द्वितीयचक्राधिष्ठाता यतः कामाख्यदक्षिणे।। ३३७।।
वटुकं योगिनीं चैव क्षेत्रपालं तु साधकः। तत्तन्मन्त्रेण सम्पूज्य स्वाग्रादित्र्यस्रके बुधः।। ३३८।।
आद्यस्य दक्षिणे भागे बटुकं चक्रनायकम्। ततश्च नवकोणे तु स्वाग्रादेश्च प्रदक्षिणम्।। ३३९।।
विद्यावतारगुरवो यष्टव्या निजसिद्धये। तत आद्यस्य दक्षे तु सिद्धेभ्यो नम उच्चरन्।। ३४०।।
सिद्धं सम्पूजयेद् भक्त्या चक्राधिष्ठानदैवतम्। ततश्चाष्टदले स्वाग्राद् यजेद् दूत्यष्टकं बुधः।।३४१।।
आद्याया दक्षवामे तु रक्तशुक्लपदद्वयम्। तत्तन्मन्त्रेण सम्पूज्य पूजयेद् वलयत्रये।। ३४२।।
वामावर्तक्रमात् पङ्क्त्याकारेण निजसिद्धये। षट्सप्तत्युत्तरशतपञ्चवीरेशमण्डलम् ।। ३४३।।
प्रागुक्तबीजषट्कं च आदिवर्णं द्विरुच्चरेत्। रूपवीरेश चोच्चार्य पादुकां पूजयामि च।। ३४४।।
एवं मन्त्रास्तु कथितास्तावत्संख्यास्तु पूजने। स्वराश्च प्रथमे वृत्ते स्पर्शवर्णा द्वितीयके।। ३४५।।
तृतीये व्यापका वर्णा मध्यवृत्ते निजाग्रके। शाम्भवं पूजयेद् भक्त्या तन्मन्त्रेण प्रयत्नतः।।३४६।।
सप्तमे मालिनीचक्रे चतुरस्रत्रयात्मके। पूजयेदाद्यरेखायां ब्रह्माण्याद्यष्टमातृकाः।। ३४७।।
ततो द्वितीयरेखायां कृतायां पञ्चभागशः। पूजयेत् पञ्च भूतानि तत्तन्मन्त्रेण साधकः।। ३४८।।
तत्तच्चतुर्विंशतिभिर्वर्णदिवैः कृतावृतिः । ततस्तृतीयरेखायामिन्द्राद्यस्त्राणि तद्बहिः ।। ३४९।।

---

१. 'स्र' क. पाठः। २. 'श्रीनाथदत्तपार्श्वे' ग. पाठः। 'श्रीचक्रराजपार्श्वे' ख. पाठः। ३. 'नं' ग. पाठः।

स्वाग्रे सम्पूजयेत् भक्त्या मालिनीं विश्वविग्रहाम्। तद्विद्यया साधकेन्द्रः पीठिकां च ततो बहिः॥३५०॥
एवं पूजयितुर्वेदी प्रसन्ना भवति ध्रुवम्। समे तिथौ समर्क्षाणां भृगौ भौमस्य वा पुनः॥ ३५१॥
योगे रात्रौ यजेद् भक्त्या स्वसिद्ध्यै गुरुमण्डलम्। यस्तु सम्पूजयेद्भक्त्या कुलेषु गुरुमण्डलम्॥३५२॥
स देशिकवरः प्रोक्तस्तस्माद् दीक्षा ह्यनुत्तमा। स सम्प्रदायी स गुरुः स तु देवीस्वरूपधृत्[१]॥ ३५३॥
तस्माद् दीक्षा शुभा प्रोक्ता चान्यथा निष्फला भवेत्। प्रत्युतैव गुरुः शिष्यं निहन्त्येव न चान्यथा॥३५४॥
तस्माद् कुलेषु तिथिषु पूजनीयं[२] सुसाधकैः। सुन्दरी सुमुखी चैव विरूपा विमला तथा॥ ३५५॥
अन्तरी बदरी चैव दूतरी पुष्पभद्रिका[३]। दूतीनामष्टकं प्रोक्तं गुरुमडलपूजने ॥ ३५६॥
उपास्या या महाविद्या तन्त्रोक्ताः पीठशक्तयः। गुरुमण्डलपूजायां ज्ञेयाः पीठस्य शक्तयः॥ ३५७॥
वाङ्माया कमला चैव खेचरी ऋद्धिवर्जिता। ततः प्रेतं समालिख्य बीजं वै नादिनेन्दुयुक्॥ ३५८॥
रौद्रवनन्तयुता सेन्दुरनन्तानलचन्द्रयुक्। नकुलीशोऽथ माया च विद्योक्ता मालिनी परा॥ ३५९॥
पूर्वोक्तगुरुविद्यायामाद्यं यद् बीजषट्ककम्। अन्ते दद्याद् विलोमेन प्रोक्तं शाम्भवमुत्तमम्॥ ३६०॥
ज्ञातव्यं मन्त्रजालं तु वक्ष्यमाणेन वर्त्मना। अथ कादिमते ज्ञेयं गुरुमण्डलपूजनम्॥ ३६१॥
श्रीपर्णीसम्भवे पीठे फलकायां स्थलेऽपि वा। स्थले तु सुसमे शुद्धे दृढे तु सुमनोहरे॥ ३६२॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च दश सूत्राणि विन्यसेत्। एकाशीतिपदोपेतं मण्डलं तत्र जायते॥ ३६३॥
समसूत्रे[४] मनोरम्ये पदे पञ्चाङ्गुलान्तरे। प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च सूत्रद्वयनिपातनात्॥ ३६४॥
नव कोष्ठानि जायन्ते सम्भूय च पदे पदे। मध्यस्थपदमध्यस्थनवकोष्ठेषु मध्यतः ॥ ३६५॥
प्रागादि विलिखेद् वर्णान् प्रतिकोष्ठं नवैकशः। मायाश्रीबीजपूर्वं च प्रकाशानन्दसंज्ञकम्॥ ३६६॥
नाथं तत्र सुसम्बोध्य नवार्णान् नवकोष्ठके। एवं तत्पूर्वनवके द्वितीयं नाथनाम च॥ ३६७॥
प्रादक्षिण्यक्रमेणैव नवके नवके लिखेत्। एवं तु नवनाथानां मण्डलानि नवैव हि॥ ३६८॥
जायन्ते वर्णविन्यासात् तत्र पूजां तु कारयेत्। नाथावृत्तिक्रमेणैव नाथनाम तु यद् दिने॥ ३६९॥
तदारभ्य यजेद् धीमांस्तद्दिने तत्र तत्र च। गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यकैस्तथा॥ ३७०॥
ताम्बूलैश्च नमस्कारैः स्तोत्रैश्चापि समाहितः। ऐक्यभावनया नाथान् सन्तोष्य च पुनः पुनः॥३७१॥
मध्यनाथस्य पुरतः श्रीगुरुं पूजयेद् बुधः। नामादिक्रमतो विद्वान् नवाग्रेषु यजेन्नव ॥ ७२॥
तद्बहिः पङ्क्तितो विद्वान् शिवादिगुरुमण्डलम्। प्रादक्षिण्यक्रमेणैव पूजयेद् भक्तिभावतः॥ ३७३॥
एवं पर्वस्ववहितः पूजां रात्रौ च कारयेत्। पादुकां पूजयामीति प्रोच्चार्य सुसमाहितः॥ ३७४॥
पूर्णापर्वसु तेष्वेव पदेषु षोडशैव हि। कोष्ठानि गुणसूत्राणां पातनाद् विदधीत वै॥ ३७५॥
षोडशार्णाल्लिखेत्[५] प्राग्वत् पूजां प्राग्वत् समाचरेत्। एवं पूजा प्रकर्तव्या गुरौ जीवति साधकैः॥३७६॥
मृते नाथपदं हित्वा शिवेति पदमुन्नयेत्। एवं यः पूजयेन्नित्यं विशेषदिवसेषु तु ॥ ३७७॥

---

१. 'धृक्' क. पाठः। २. 'यः' क. पाठः। ३. 'मर्दिना' ग. पाठः। ४. 'सूत्रं मनोरम्ये पदप' ख. पाठः। ५. 'र्णं' ग. पाठः।

तस्माद् दीक्षा शुभा प्रोक्ता चान्यथाप्यशुभा भवेत्। पूर्णाभिषेकयुक्तैस्तु पदेषु कमलानि वै॥ ३७८॥
कृत्वा पूजा विधातव्या पूर्णापर्वातिरिक्तके। पूर्णापर्वसु तेष्वेव षोडशीकृत्य पूर्ववत्॥ ३७९॥
चन्द्रचन्दनकाश्मीरैरुशीरैर्मृगनाभिकैः। सुगन्धपञ्चकेनैव विदध्याद् गुरुमण्डलम् ॥ ३८०॥
पूजान्ते लेपयेद् भाले तत्पङ्कं भक्तिभावतः। सम्पद्विजयसिध्यर्थमायुरारोग्यसिद्धये ॥ ३८१॥
पूजादौ च तदन्ते च गुरुस्तोत्रं पठेद् बुधः। सन्ध्यात्रये सुसिद्ध्यर्थं रात्रौ चैव समाहितः ॥ ३८२॥
नमस्ते नाथ भगवन शिवाय गुरुरूपिणे। विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह ॥ ३८३॥
नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे। सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ॥ ३८४॥
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय परात्मने[1]। परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे॥ ३८५॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम्। प्रकाशिनां[2] प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे॥ ३८६॥
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः। सदा मच्चित्त[3]रूपेण विधेहि भवदासनम् ॥ ३८७॥
इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं विद्यासिद्ध्यै प्रयत्नतः। चक्रे देव्यास्तु शक्त्यन्ता नाथान्ता गुरुमण्डले।।३८८॥
गुरौ मृते शिवान्ताश्च गुरूणां त्रिविधा स्थितिः। गुरुमण्डलमेतद्धि पारम्पर्य्यमिति स्मृतम्॥ ३८९॥
पारम्पर्य्यपरिज्ञानात्[4] सम्प्रदायः स्थिरो भवेत्। सम्प्रदाये स्थिरे जाते सम्प्रदायव्रती भेवत्॥ ३९०॥
देवता तेन विद्याश्च मन्त्राः सिद्ध्यन्ति तत्क्षणात्। पुरश्चर्यासु नित्यं हि पूजयेद् गुरुमण्डलम्।।३९१॥
सम्प्रदायपरिज्ञानं मन्त्रवीर्यस्य संस्मृतिः। एतद्द्वयं न जानाति साधकस्तु कथं भवेत्॥ ३९२॥
नित्यं नैमित्तिकञ्चैव चाद्यं काम्यं च तद्द्वयम्। प्राप्तं कालाच्च पर्यायात् प्रसिद्धं त्रीण्यनुक्रमात्।।३९३॥
नामानि साधकेन्द्रस्य सम्प्रदायप्रसिद्धये। भवेयुस्तानि यत्नेन ज्ञेयानि श्रीगुरोरपि ॥ ३९४॥
पारम्पर्य्यं तथा ज्ञात्वा स्वशिष्येभ्यो निवेदयेत्। गुर्वात्मदेवताणूनामैक्यं सम्भावयन् सदा ॥ ३९५॥
तदाज्ञापालनोद्युक्तश्चोत्तमः शिष्य उच्यते॥

गुरुमण्डलपूजायां विशेषदिनानि तन्त्रराजे —

गुरोस्तु जन्मदिवसं विद्याप्राप्तिदिनं तथा। स्वजन्मदिवसं नाथव्याप्तिवासरमेव च॥ १॥
अक्षरत्रयसम्पातदिनं पूर्णादिनं तथा। षट् पर्वाणि विशिष्यानि सदर्शं सप्तपर्वकम्॥ २॥
मासतो वर्षतो वापि कुर्यादितेषु पूजनम्॥ इति॥
अथ कादिमते प्रोक्तं लक्षणं गुरुशिष्ययोः। तत्तन्त्रस्थं वदिष्यामि साधकानां हिताय च॥ ३॥
सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुलभो बहुमन्त्रवित्। असंशयः संशयच्छिन्निरपेक्षो गुरुर्मतः॥ ४॥
सौन्दर्य्यमनवद्यत्वं रूपे सौमुख्यता पुनः। स्मेरपूर्वाभिभाषित्वं स्वच्छताऽजिह्मचित्तता॥ ५॥
सौलभ्यमप्यगर्वित्वं सन्तोषी बहुतन्त्रता। असंशयस्तत्त्वबोधे तच्छिष्ये प्रतिपादनात्॥ ६॥
नैरपेक्ष्यमवित्तेच्छा गुरुत्वं हितवादिता। एवंविधो गुरुर्ज्ञेयस्त्वितरः शिष्यदुःखदः ॥ ७॥

---

१. 'शिवात्मने' क. पाठः। २. 'प्रकाशानां' क. पाठः। ३. 'सच्चित्त' ग. पाठः। ४. 'यमिति ज्ञानात्' क. पाठः।

चतुर्भिराद्यैः संयुक्तः श्रद्धावान् सुस्थिराशयः। अलुब्धः स्थिरगात्रश्च प्रेक्षाकारी जितेन्द्रियः॥ ८॥
आस्तिको दृढबुद्धिश्च गुरौ मन्त्रे सदैवते। एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो दुःखकृद् गुरोः॥ ९॥
गुरूच्यमाने वचने दद्यादित्थं वचस्तदा। प्रसीद नाथ देवेति तथेति च कृतादरम्॥ १०॥
प्रणम्योपविशेत् पार्श्वे तथा गच्छेदनुज्ञया । मुखावलोकी सेवेत कुर्यादादिष्टमादरात्॥ ११॥
असत्यं न वदेदग्रे न बहु प्रलपेदपि। कामं क्रोधं तथा लोभं मानं प्रहसनं स्तुतिम्॥ १२॥
चापलानि च जिह्मानि कार्याणि परिदेवनम्। ऋणादानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रयम्॥ १३॥
न कुर्याद् गुरुणा सार्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन। यतो गुरुः शिवः साक्षात् तं स्तुवन् प्रणमन् भजेत्॥१४॥
यथा देवे तथा मन्त्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ। यथा गुरौ तथा स्वात्मन्येवं भक्तिक्रमः[१] प्रिये॥ १७॥
गुरोस्तु जन्मदिवसे कुर्यादुत्सवमादरात्[२]। विशेषपूजां योगिभ्यो भोजनं तत्पदार्चनम्॥ १६॥
व्याप्ते प्रेते दूरगते पूजयेदग्रजादिषु। एकदेशे नित्यपूजा दूरस्थे योजनक्रमात् ॥ १७॥
एकादिऋतुसंवृद्ध्या वर्षे षट्योजनान्तरे । ततो दूरगते सेवा तदाज्ञापरिपालनम् ॥ १८॥
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुकां तथा। छायां कलत्रमन्यच्च यत् स्पृष्टं तत्तु पूजयेत्॥ १९॥
एकग्रामे पृथक्पूजां न कुर्यादननुज्ञया। पूजामध्ये समायाते पूज्ये नत्वा स्थितिं वदेत्॥ २०॥
विधेहि शेषमित्यु (क्त्वा?क्तः) कुर्यान्नो चेत्तदाज्ञया। वर्तेत सोऽपि तच्छेषं कुर्यान्निश्चलमानसः॥२१॥
पूजामध्ये गुरौ पूज्ये त्वन्ते[३] वापि समागते। कृतमेवेति संभाषेद्मौनं तैर्न समाचरेत् ॥ २२॥
गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्य तु। न कदाचिद् भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्वा देवतार्चनैः॥ २३॥
मन्त्रेण तस्य नियतं पूजां कुर्याद्यथोदिताम्। तां तत्पटले सम्यग् ज्ञात्वा भक्तिपरायणः॥ २४॥
इति कालीमते प्रोक्तं लक्षणं गुरुशिष्ययोः। तत्तन्त्रोक्तविधानेन साधकानां हिताय च॥ २५॥
तत्तन्त्रे कुलार्णवे।
श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेशो मनोहरः। सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वावयवशोभितः ॥ १॥
सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रविधानवित्। लोकसम्मोहनाकारो देववत् प्रियदर्शनः ॥ २॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छःशुद्धान्तश्छिन्नसंशयः। इङ्गिताकारचेष्टाविद् दूरतः कृतदुर्जनः॥३॥
अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित्। आज्ञासिद्धः[४]स्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः॥ ४॥
वेदवेदाङ्गविच्छान्तः सर्वजीवदयापर :। स्वाधीनेन्द्रियसंचारः षड्वर्गविजयक्षमः॥ ५॥
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित्। निर्ममो नित्यसन्तुष्टो निर्द्वन्द्वोऽनन्तशक्तिमान्॥ ६॥
सद्भक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्ववाक्। भक्तप्रियः सर्वसमो दयालुः शिष्यशासिता॥७॥
श्रेष्ठनिष्ठो गुरुः प्राज्ञो वनितापूजनोत्सुकः। नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते॥८॥
अलोलुपोऽहिंसकश्च पक्षपाती विचक्षणः। वित्तविद्यादिभिः पूर्णो मन्त्रयन्त्रादिपारगः॥ ९॥

१. 'क्रमं' क. पाठः। २. 'दादरमादरात्' क. पाठः। ३. 'त्वन्ये' क. ख. ग. पाठः। ४. 'सिद्धिः' क. पाठः।

निःसङ्कल्पविकल्पश्च निर्णीतार्थविधायकः। तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निरपेक्षो नियामकः॥ १०॥
इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये॥

इति श्रीगुरुलक्षणानि॥ अथ सच्छिष्यलक्षणानि —

सच्छिष्यं तं कुलेशानि सर्वलक्षणसम्युतम्। शमादिसाधनोपेतं गुणशीलसमन्वितम्॥ १॥
शुद्धदेहानुबन्धाङ्गं धार्मिकं शुद्धमानसम्। दृढव्रतं सदाचारं श्रद्धाभक्तिसमन्वितम्॥ २॥
कृतज्ञं पापभीतं च साधुसज्जनसंमतम्। आस्तिकं दानशीलं च सर्वभूतहिते रतम्॥ ३॥
विश्वासविनयोपेतं वित्तशाठ्यविवर्जितम्। असाध्यसाधकं शूरं बलकान्तिसमन्वितम्॥ ४॥
अनुकूलक्रियायुक्तमप्रमत्तं विचक्षणम्। हितसत्यमितस्निग्धभाषणं मुक्तदूषणम्॥ ५॥
सकृदुक्तगृहीतार्थं चतुरं बुद्धिविस्तरम्। गृहतल्पासनोच्छ्रेङ्ग[1]निर्विकारमसेवकम्॥ ६॥
विमृश्यकारिणं वीरं मनोदारिद्र्यवर्जितम्। सर्वकार्यातिकुशलं धीरं सर्वोपकारकम्॥ ७॥
स्वस्वार्थे[2] परनिन्दायां विमुखं सुमुखं प्रिये। जितेन्द्रियं सुसन्तुष्टं धीमन्तं ब्रह्मचारिणम्॥ ८॥
त्यक्ताधिव्याधिचापल्यं दुःशङ्कातङ्कवर्जितम्। गुरुध्यानस्तुतिकथासेवनाभजनोत्सुकम्॥ ९॥
गुरुदैवतभक्तं च कामिनीभजनोत्सुकम्। नित्यं गुरुसमीपस्थं गुरुसन्तोषकारिणम्॥ १०॥
वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं गुरुकार्यसमुत्सुकम्। गुर्वाज्ञापालकं देवि गुरुकीर्तिप्रकाशकम्॥ ११॥
गुरुवाक्यप्रमाणज्ञं गुरुशुश्रूषणे रतम्। चित्तानुवर्तिनं प्रेक्ष्यकारिणं कुलनायिके॥ १२॥
लज्जाभिमानगर्वादिवर्जितं गुरुसन्निधौ। निरपेक्षं गुरुद्रव्ये तत्प्रसादादिकाङ्क्षिणम्॥ १३॥
कुलधर्मकथायोगियोगिनीकौलिकप्रियम्। कुलार्चनादिनिरतं मोक्षमार्गानुगामिनम्॥ १४॥
इत्यादिलक्षणोपेतं गुरुः शिष्यं परिग्रहेत्।

अथासच्छिष्यलक्षणानि कुलार्णवे —

दुष्टान्ववायजं दुष्टं गुणहीन[3]मरूपिणम्। परशिष्यं च पाषाण्डं धूर्तं पण्डितमानिनम्॥ १॥
हीनाधिकविकाराङ्गं विकलावयवान्वितम्। पङ्गुमन्धं च बधिरं मलिनं व्याधिपीडितम्॥ २॥
उच्छिष्टं दुर्मुखं चापि स्वेच्छावेशधरं विटम्। दुर्विदग्धं कुचेष्टं च कुटिलं भीमवीक्षणम्॥३॥
निद्रालस्ययुतं तन्द्राद्यूतादिव्यसनान्वितम्। कपाटकुड्यस्तम्भादौ तिरोहिततनुं सदा॥ ४॥
शून्ययुक्तकरं क्षुद्रं गुरुभक्तिविवर्जितम्। किमेकवादिनं स्तब्धं प्रेषकं चलपं शठम्॥ ५॥
धनस्त्रीशुद्धिरहितं निषेधविधिवर्जितम्। रहस्यभेदकं चापि देवीकार्यार्थघातकम्॥ ६॥
मार्जारबकवृत्तिं च रन्ध्रान्वेषणतत्परम्। मायान्वितं कृतघ्नं च प्रच्छन्नान्तरदायकम्॥ ७॥
विश्वासघातकं देवद्रोहिणं पापकारिणम्। अविश्वासमवद्याङ्गमनर्थसिद्धिकाङ्क्षिणम्॥ ८॥
आततायिनमादित्सुं कुत्सितं कूटसाक्षिकम्। सर्वत्र याचकं देवि सर्वाकृष्याभिगामिनम्॥ ९॥

१ 'नोछ्ङ्ग' क. पाठः। २ 'र्थपर' क. पाठः। 'स्वतुतौ' इति सुपाठः ३ 'ननिरू' ख. पाठः। ४ 'सर्वोत्कृष्याभिमानिनम्'। असत्यनिष्ठरासक्रम' ख. पाठः।

असत्यनिष्ठं चासक्तं ग्राम्यादिबहुभाषिणम्। दुर्विचारकुतर्कादिकारकं कलहप्रियम् ॥ १०॥
वृथाक्षेपकरं भ्रान्तं भ्रामकं वाग्विडम्बकम्। परोक्षे दूषणकरं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ॥ ११॥
वाग्रूक्षवादिनं विद्याचौरमात्मप्रशंसकम् । गुणासहिष्णु सद्भीतमार्तिक्रोधसमन्वितम् ॥ १२॥
चार्वाकं दुर्जनसखं सर्वलोकविगर्हितम्। पिशुनं परसन्तापं सर्वप्राणिभयङ्करम् ॥ १३॥
स्वक्लेशवादिनं मित्रद्रोहिणं भ्रातृवञ्चकम्। जिह्वोपस्थपरं देवि तस्करं पशुचेष्टितम्॥ १४॥
अकारणद्वेषहासक्लेशक्रोधादिकारिणम् । अतिहास्यसुकर्माणं[1] मर्मान्तःपरिहासकम् ॥ १५॥
कामुकं चापि निर्लज्जं मिथ्यादुश्चेष्टसूचकम्। असूयामदमात्सर्यदम्भाहङ्कारसंयुतम् ॥ १६॥
ईर्ष्यापैशुन्यपारुष्यकार्पण्यक्रोधमानिनम् । अधीरं दुःखितं द्वेष्यमशक्तं तत्त्ववर्जितम्॥ १७॥
अप्रसन्नमतिं मूढं चिन्ताकुलि[2]तमानसम्। तृष्णालोभयुतं दीनमतुष्टं सर्वयाचकम् ॥ १८॥
बह्वशिनं कपटिनं भ्रामकं कुटिलं प्रिये। भक्तिश्रद्धादयाशान्तिधर्माचारविवर्जितम् ॥ १९॥
माता[3]पितृगुरुप्राज्ञमहतां हास्यकारकम् । कुलद्रव्यादिबीभत्सुं गुरुसेवाभिमानिनम् ॥ २०॥
स्त्रीद्विष्टं समयभ्रष्टं गुरुशप्तं कुलेश्वरि। इत्यादिविगुणोपेतं गुरुः शिष्यं परित्यजेत्॥ २१॥
स्नेहाद्वा लोभतो वापि यदि गृह्णाति दीक्षयेत्। तस्मिन् गुरौ सशिष्ये तु देवताशाप आपतेत्॥२२॥
तस्मादेवंविधं शिष्यं न गृह्णीयात् कथञ्चन। यदि गृह्णाति मोहेन तत्पापैर्व्याप्यते गुरुः॥ २३॥
मन्त्रिपापं च राजानं पतिं जायाकृतं यथा। तथा शिष्यकृतं पापं प्रायो गुरुमपि[4] स्पृशेत् ॥ २४॥
वर्णाश्रमाणां सर्वेषामाचारः सद्गतिप्रदः । गुरुस्त्रिवारमाचारं बोधयेत् कुलनायिके ॥ २५॥
न गृह्णाति हि शिष्यश्चेत् तदा पापं गुरोर्नहि॥

इति गुरुशिष्यलक्षणानि। अथ श्रीगुरुपादुकामाहात्म्यं कुलार्णवे —

वागुरा मूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः। एवं कुलागमज्ञानं पादुकायां प्रतिष्ठितम्॥ १॥
कोटिकोटिमहादानात् कोटिकोटिमहाव्रतात्। कोटिकोटिमहायज्ञात् परा श्रीपादुकास्मृतिः॥ २॥
कोटिमन्त्रजपात् कोटिपुण्यतीर्थावगाहनात्। कोटिदेवार्चनाद् देवि परा श्रीपादुकास्मृतिः॥ ३॥
महारोगे महोत्पाते महादुःखे महाभये। महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका॥ ४॥
तेनाधीतं श्रुतं ज्ञातं दत्तमिष्टं च पूजितम्। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सदा श्रीपादुका प्रिये॥ ५॥
सकृच्छ्रीपादुकां देवि यो वा जपति भक्तितः। स सर्वपापरहितः प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ६॥
शुचिर्वाप्यशुचिर्वा यो भक्त्या स्मरति पादुकाम्। अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षाँल्लभेत सः॥ ७॥
श्रीनाथचरणाम्भोजं यस्यां दिशि विराजते। तस्यां दिशि नमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये॥८॥
न पादुकापरो मन्त्रो न देवः श्रीगुरोः परः। नहि शाक्तात् परो मार्गो न पुण्यं कुलपूजनात्॥९॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्। शास्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥ १०॥

१. 'सकर्माणं' क. पाठः। 'स्वकर्माणं' ख. पाठः। २. 'कुत्सित' क. पाठः। ३. 'मातृ' क. पाठः। ४. 'मति' क. पाठः। 'मपि' ख. पाठः।

गुरुमूलाः क्रियाः सर्वाः लोकेऽस्मिन् कुलनायिके। तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं सिद्ध्यर्थं भक्तिसंयुतैः।। ११ ।।
तावदार्तिर्भयं[1] दुःखं मोहशोकभ्रमादयः । यावन्नायाति शरणं श्रीगुरुं भक्तवत्सलम् ।। १२ ।।
तावद् भ्रमति संसारे सर्वदुःखमलीमसः। यावन्न भजते भक्त्या श्रीगुरुं शिवरूपिणम्।। १३ ।।
सर्वसिद्धिफलोपेतो मन्त्रस्कन्धोऽतिशोभनः । गुरुप्रसादमूलोऽयं परतत्त्वमहाद्रुमः ।। १४ ।।
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदो मनुम्। तथा भक्त्या धनैः प्राणैर्गुरुं यत्नेन तोषयेत्।। १५ ।।
यदा[2] दद्याच्छिवाय स्वमात्मानं देशिकोत्तमः। तदा मुक्तो भवेच्छिष्यो न ततोऽस्ति पुनर्भवः।। १६ ।।
तावदाराधयेच्छिष्यः सुप्रसन्नो यथा भवेत्। गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत्।। १७ ।।
मनसापि न काङ्क्षन्ते भक्ता मानानुजीविकाः। सम्पादयन्ति तत्सर्वं स्वामिनो भक्तवत्सलाः।। १८ ।।
ब्रह्मविष्णुमहेशानदेवतामुनियोगिनः । कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः ।। १९ ।।
भक्त्या सन्तुष्टगुरुणा योऽपदिष्टः कृपालुना। कर्ममुक्तो भवेच्छिष्यो भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम्।।२० ।।
शिष्येणापि तदा ग्राह्यं यदा सन्तोषितो गुरुः। तस्माद् गुरोः प्रियं कुर्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः।। २१ ।।
यदि वा परितुष्टेन गुरुणा यत्र कुत्रचित्। मुक्तोऽसीति समादिष्टः सोऽपि मुक्तो भवेत्प्रिये।। २२ ।।
अथवा निष्प्रपञ्चेन धाम्ना केनचिदीश्वरि। करोमि गुरुरूपेण पशुपाशविमोचनम् ।। २३ ।।
न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स तु पूज्यो ह्यहं यथा।। २४ ।।
विप्रोऽपि गुणयुक्तो वाप्यभक्तो न प्रशस्यते[3]। म्लेच्छोऽपि गुणहीनो वा भक्तिमान् स विशिष्यते।।२५ ।।
गुरुभक्तिविहीनस्य तपो विद्या व्रतं कुलम्। निष्फलं हि कुलेशानि केवलं लोकरञ्जनम्।। २६ ।।
गुरुभक्त्याख्यदहनदग्धदुर्जातिकल्मषः । श्वपचोऽप्यमरैः[4] पूज्यो न विद्वानपि नास्तिकः।। २७ ।।
धर्मार्थकामैः किं तस्य मोक्षस्तस्य करे स्थितः। सर्वार्थैः श्रीगुरौ देवि यस्य भक्तिः स्थिरा सदा।।२८ ।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-
श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-
श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
विद्यार्णवाख्ये तन्त्रे प्रथमः श्वासः।। १ ।।



१. 'र्तिभयं' क. पाठः। २. 'यथा' क. पाठः। यदा यद्वत् स्वशिष्येभ्यः, ग. पाठः। ३ 'प्रकाश्यते' क. पाठः।
४. 'पि परैः' क. पाठः।

अथ
श्रीविद्यार्णवतन्त्रे
द्वितीयः श्वासः

तथा —

स शिवो गुरुरूपेण भुक्तिमुक्तिप्रदो मम। इति भक्त्या स्मरेद् यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः॥ १॥
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते कुलेश्वरि॥ २॥
नारायणे महादेवे मातापित्रोश्च राजनि। यथा भक्तिर्भवेत् देवि तथा कार्या निजे गुरौ॥ ३॥
लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ। श्रीगुरुं गुरुपत्नीं च पितराविति चिन्तयेत्॥ ४॥
गुरुभक्त्या यथा देवि प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः। यज्ञदानतपस्तीर्थव्रताद्यैर्न तथा प्रिये ॥ ५॥
श्रीगुरौ निश्चला भक्तिर्वर्द्धते हि यथा यथा। तथा तथास्य विज्ञानं वर्द्धते कुलनायिके॥ ६॥
किं तीर्थाद्यैर्महायासैः किं व्रतैः कायशोषणैः। निर्व्याजसेवा देवेशि भक्तिर्येषां हि सद्गुरौ॥ ७॥
कायक्लेशेन महता तपसा वापि यत्फलम्। तत्फलं लभते देवि सुखेन गुरुसेवया॥ ८॥
भोगमोक्षार्थिनां ब्रह्मविष्णवीशपदकाङ्क्षिणाम्। भक्तिरेव गुरौ देवि नान्यः पन्था इति श्रुतिः॥ ९॥
अशुभानि च सर्वाणि समहापातकानि च। भक्तिः क्षणेन दहति तूलराशिमिवानलः॥ १०॥
विश्वासाय नमस्तस्मै सर्वसिद्धिप्रदायिने। येन मृद्दारुदृषदः फलन्त्यविकलं फलम्॥ ११॥
न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि निगद्यते[1]। अमाये कुलमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका[2] विशिष्यते॥ १२॥
साक्षाद् गुरुमये देवि सर्वस्मिन् भुवनान्तरे। किं न भक्तिमतां क्षेत्रं मन्त्रः क्वैषां न सिद्ध्यति॥ १३॥
गुरौ मनुष्यबुद्धिं च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकाम्[3]। प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्॥ १४॥
गुरुं न मर्त्यं बुद्ध्येत यदि बुद्ध्येत तस्य तु। कदापि न भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्वा देवतार्चनैः॥ १५॥
श्रीगुरुं प्राकृतैः सार्धं ये स्मरन्ति वदन्ति वा। तेषां च सुकृतं सर्वं पातकं भवति प्रिये॥ १६॥
जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः। गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः ॥ १७॥
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवं गुरुर्गतिः। शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥ १८॥
गुरौ[4] हितं हि कर्तव्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः। अहिताचरणाद् देवि विष्ठायां जायते कृमिः॥ १९॥
शरीरवित्तप्राणैश्च श्रीगुरुं वञ्चयन्ति ये। कृमिकीटपतङ्गत्वं प्राप्नुवन्ति नराधमाः ॥ २०॥
गुरुत्यागाद् भवेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद् दरिद्रता। गुरुमन्त्रपरित्यागाद् रौरवं नरकं व्रजेत्॥ २१॥
गुर्वर्थं धारयेद् देहं तदर्थं धनमर्जयेत्। निजप्राणान् परित्यज्य गुरुकार्यं समाचरेत्॥ २२॥
गुरूक्तं परुषं वाक्यमाशिषं चिन्तयेत् प्रिये। तेन सन्ताडितो वापि प्रसादमिति संस्मरेत्॥ २३॥

१. 'न गद्यते' क. पाठः। २. 'व' ग. पाठ। ३. 'बुद्धिमान्' ग. पाठः। ४. "रोर्हितं" ग. पाठः।

भोगयोग्यानि वस्तूनि गुरवे सर्वमर्पयेत्। तच्छेषमिति सञ्चिन्त्य चानु[1]भूयात् कुलेश्वरि।। २४।।
गुर्वग्रे न तपः कुर्यान् नोपवासादिकं व्रतम्। तीर्थयात्रां च नो कुर्यान्न स्नायादात्मशुद्धये।।२५।।
न नियोगं गुरोर्दद्याद् युष्मदा नैव भाषयेत्। ऋणादानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रयम्।।२६।।
न कुर्याद् गुरुभिः सार्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन। न कुर्यान्नास्तिकैर्वादं सम्भाषणमपीश्वरि।।२७।।
विलोक्य दूरतो गच्छेन्नासीत सह तैः क्वचित्। गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यमन्तिके।।२८।।
स याति नरकं घोरं सा पूजा निष्फला भवेत्। शिरसा न वहेद् भारं गुरुपादाब्जधारिणा।।२९।।
तदाज्ञया तत्कर्तव्यमाज्ञारूपो गुरुः स्मृतः। मन्त्रागमाद्यमन्यत्र श्रुतं तस्मै निवेदयेत्।। ३०।।
गुर्वाज्ञया तद् गृह्णीयात् तदनिष्टं विवर्जयेत्। स्वशास्त्रोक्तं रहस्यार्थं न वदेद्यस्य कस्यचित्।।३१।।
यदि ब्रूयात् स समयाच्च्युत[2] एव न संशयः। अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाद्वैतं गुरुणा सह।।३२।।
आत्मवत्सर्वभूतेषु हितं कुर्यात् कुलेश्वरि। आत्मस्थानाङ्गसद्भावैः शुश्रूषा स्याच्चतुर्विधा।।३३।।
शुश्रूषया तया देवि शिष्यः सन्तोषयेद् गुरुम्। पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्।।३४।।
शुश्रूषणपरो यस्तु गुरुदेवमहात्मनाम्। केवलं गुरुशुश्रूषा तत्कृपाकारिणी प्रिये।। ३५।।
सद्भक्तिसहिता सा चेत् सर्वकामफलप्रदा। क्षीयन्ते सर्वपापानि वर्द्धन्ते पुण्यराशयः।।३६।।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि गुरुशुश्रूषया प्रिये। यद्यदात्महितं वस्तु तत्तद्धितं न वञ्चयेत्।।३७।।
गुरुदेवार्चको यस्तु तस्य पुण्यं न गण्यते। भक्त्या वित्तानुसारेण गुरुमुद्दिश्य यत्कृतम्।।३८।।
स्वल्पं वा बहु वा पुण्यं तुल्यमाढ्यदरिद्रयोः। सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरवे भक्तिवर्जितः।।३९।।
शिष्यो न फलमाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम्। यस्मिन् द्रव्ये गुरोरस्ति स्पृहा नानुभवेच्च तत्।।४०।।
अवश्यं यदि वाञ्छा स्यादनुभूयात्तदाज्ञया। यस्तिलार्धं तदर्धं वा गुरुस्वमुपजीवति।।४१।।
लोभान्मोहात् स पच्येत नरके च त्रिसप्तके। अल्पादल्पं गुरुद्रव्यमदत्तं स्वीकरोति यः।। ४२।।
तिरश्चां योनिमापन्नः क्रव्यादैर्भक्ष्यते प्रिये। गुरुद्रव्याभिलाषी च गुरुस्त्रीगमनोत्सुकः।।४३।।
पतितस्य क्षुल्लकस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते। आज्ञाभङ्गोऽर्थग्रहणं गुरोरप्रियवर्तनम्[3] ।।४४।।
गुरुद्रोहमिदं प्राहुर्यः करोति स पातकी। स्वद्रव्यविनियोगञ्च नानिवेद्य गुरोश्चरेत्।। ४५।।
अनिवेद्य तु यः कुर्यात् स भवेद् ब्रह्मघातकः। गुरुस्थानं सम्प्रदायं तद्धर्मं यो विनाशयेत्।।४६।।
गुरुभिः स बहिष्कार्यो दण्ड्यो वध्यश्च पातकी। गुरुकोपान्न नाशोऽन्यो गुरुद्रोहान्न पातकम्।।४७।।
न मृतिर्गुरुनिन्दाया गुर्वनिष्टान्न चापदः। जीवेदग्निप्रविष्टो वा नरः पीतविषोऽपि वा।।४८।।
मृत्युहस्तगतो वापि नापराधकरो गुरोः। यत्र श्रीगुरुनिन्दा स्यात् पिधाय श्रवणे स्वके।।४९।।
सद्यस्तस्मादपक्रामेद् दूरं न शृणुयाद्यथा। गुरोर्नाम जपेत् पश्चाच्छ्रवणे सा प्रतिक्रिया।।५०।।
गुरुमित्रसुहृद्दासीदासाद्यान् नापमानयेत्। न निन्देद् दृश्यसमयान् वेदशास्त्रागमादिकान्।।५१।।

---

१. 'चारु' क. पाठः। २. 'यच्युत' ख. पाठः। ३. 'दर्शनम्' क. पाठः।

श्रीगुरोः पादुका भूषा[1]गुरुनामस्मृतिर्जपः। गुर्वाज्ञाकरणं कृत्यं शुश्रूषा भजनं गुरोः ॥ ५२॥
विविक्षुर्देशिकावासं शान्तचित्तोऽतिभक्तिमान्। व्यजनं पादुकां छत्रं चामरं वाहनादिकम्॥ ५३॥
ताम्बूलमुल्वणं वेशमुत्सृज्य प्रविशेच्छनैः। वाहनं पादुकां छत्रमासनं वसनादिकम्॥ ५४॥
दृष्ट्वा गुरोर्नमस्कुर्यान्नात्मभोगाय कारयेत्। पादप्रक्षालनं स्नानमभ्यङ्गं दन्तधावनम्॥ ५५॥
मूत्रं निष्ठीवनं[2] क्षौरं शयनं स्त्रीनिवेषणम्। वीरासनं च दुर्वाक्यमासनं हास्यरोदने॥ ५६॥
केशमोचनमुष्णीषं कञ्चुकं नग्नतां तथा। पादप्रसारणं वादं कलहं दूषणं प्रिये॥ ५७॥
अङ्गभङ्गाङ्गवाद्यादि करास्फालनधूननम्। द्यूतकुक्कुटमल्लादियुद्धमित्यादि चाम्बिके॥ ५८॥
गुरुयोगिमहासिद्धपीठक्षेत्राश्रमेषु च। नाचरेदाचरन्[3] मोहाद् देवताशापमाप्नुयात् ॥ ५९॥
उपचारं विना तिष्ठेद् गुर्वग्रे नेच्छया विशेत्। मुखावलोकी सेवेत तदुक्तं च समाचरेत्॥ ६०॥
गुरूक्तानुक्तकार्येषु नोपेक्षां कारयेत्[4] प्रिये। सदसद्यद् गुरुर्ब्रूयात् तत्कार्यमविशङ्कया॥ ६१॥
निग्रहेऽनुग्रहे वापि गुरुः सर्वस्य कारणम्। निर्गतं यद् गुरोर्वक्त्रात् सर्वं शास्त्रं तदुच्यते॥ ६२॥
गुरुकार्ये स्वयं शक्तो नापरं प्रेषयेत् प्रिये। बहुत्वे तत्परैर्भृत्यैः सहितोऽप्यतिभक्तिमान्॥ ६३॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रज्जल्पञ्जुह्वन् प्रपूजने[5]। गुर्वाज्ञामेव कुर्वीत तद्गतेनान्तरात्मना॥ ६४॥
अभिमानो न कर्तव्यो जातिविद्याधनादिभिः। सर्वदा सेवयेन्नित्यं शिष्यः श्रीगुरुसन्निधौ॥ ६५॥
छायाभूमिपरित्यागी विनीतस्त्वतिभक्तिमान्। देवि गुर्वग्रतस्तिष्ठेद् गुरुकार्यसमुत्सुकः॥ ६६॥
स्वकार्यमन्यकार्यं वा शिष्यः श्रीगुरुचित्तवित्। गुरुपार्श्वगतो नम्रः प्रच्छन्नास्यो मितं वदेत्॥ ६७॥
सामान्यतो निषेध[6]श्चेत् सद्गुरोर्यदि सन्निधौ। आचारे यदि मूढात्मा दोषं कोटिगुणं भवेत्॥ ६८॥
अनादृत्य गुरोर्वाक्यं शृणुयाद् यः पराङ्मुखः। अहितं वा हितं वापि रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ६९॥
गोब्राह्मणवधं कृत्वा यत्पापं समवाप्नुयात्। तत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात्॥ ७०॥
स्थानान्तरगतं चार्थव्यसने[7] विषमे स्थितम्। श्रीगुरुं न त्यजेत् क्वापि तदादिष्टो व्रजेत् प्रिये॥ ७१॥
अधःस्थिते गुरावूर्ध्वे न तिष्ठेत कदाचन। न गच्छेदग्रतस्तस्य न विशेदुत्थिते गुरौ॥ ७२॥
शक्तिच्छायां गुरुच्छायां देवच्छायां न लङ्घयेत्। स्वच्छायां तेषु नो कुर्यान्न स्वपेद्गुरुसन्निधौ॥ ७३॥
भाषणं पठनं गानं भोजनं शयनादिकम्। अनादिष्टो न कुर्वीत न चावन्दनपूर्वकम्॥ ७४॥
ब्रह्महत्याशतं कुर्याद् गुर्वाज्ञां परिपालयन्। विना गुर्वाज्ञया शिष्यो निःश्वसेन्नातिशासनात्॥ ७५॥
सर्वं[8] गुर्वाज्ञया कुर्यान्नालिङ्गेत्तस्त्रियं प्रिये। भक्त्या प्रणम्य चोत्तिष्ठेद् बद्धाञ्जलिपुटः प्रिये॥ ७६॥
पश्चात्पादेन निर्गच्छेन्नमस्कृत्य गुरोर्गृहात्। एकासने नोपविशेद् गुरुणा तत्समैः सह॥ ७७॥
न विशेदासनं देवि देवतागुरुसन्निधौ। गुरौ सिंहासनं देयं ज्येष्ठानामुत्तमासनम् ॥ ७८॥
देश्यासनं कनिष्ठानामितरेषां समासनम्। जातिविद्याधनाढ्यो वा दूरे दृष्ट्वा गुरुं सदा॥ ७९॥

---

१. 'पूज्या' ग.पाठः। २. 'सूतनि' क पाः। ३. 'चरेन्मो' क.पाठः। ४. 'बाकरणं' क पाठः। ५. 'जपन् ध्यायंश्च पूजयन्' क. पाठः। 'जपन् ध्यायत्प्रपूजने' ख. पाठः। ६. 'व' क. पाठः। ७. चार्थविषये क. पाठः 'वार्थविषये' ख. पाठः। ८. पूर्व.क. ख.पाठः।

दण्डप्रणामं कुर्वीत त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत्। ततस्त्रिः षट् द्वादश वा ज्येष्ठादिष्वेकमेव च॥ ८०॥
गुरुतद्गुरुयोगे तु वन्देत परमं गुरुम्। ततो नमेद् गुरुं योऽपि गुर्वग्रे तं निवारयेत्॥ ८१॥
प्रगुरोः सन्निधौ शिष्यः स्वगुरुं मनसा नमेत्। गुरुबुद्ध्या नमेत्सर्वं दैवतं तृणमेव च॥ ८२॥
न नमेद् देवबुद्ध्या तु प्रतिमां लोहमृण्मयीम्। गुरोः प्रणामत्रितयं ज्येष्ठानामेकमेव च॥ ८३॥
पूज्यानामञ्जलिस्तद्वदन्येषां वाक्यवन्दनम्। देवान् गुरून् कुलाचार्याञ्ज्ञानवृद्धांस्तपोधनान्॥ ८४॥
विद्याधिकान् स्वकर्मस्थान् प्रणमेत् कुलनायिके। स्त्रीद्विष्टं गुरुभिः शप्तं पाखण्डं पतितं शठम्॥८५॥
विकर्माणं कृतघ्नं वा नाश्रमिणं च नो[१] नमेत्। अनिवेद्य गुरुं भुङ्क्ते यस्त्वेकगृहसंस्थितः॥८६॥
अमेध्यं तेन भुक्तं स्यात् सूकरो जायते मृतः। एकग्रामस्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद् गुरुम्॥८७॥
क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत्। अर्धयोजनतः शिष्यः प्रणमेत् पञ्चपर्वसु॥८८॥
एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि। तत्तद्योजनसंख्यातमासैर्गत्वा नमेद् गुरुम्॥ ८९॥
दूरदेशस्थितः शिष्यो भक्त्या तत्सन्निधिं गतः। अतिदूरस्थितः शिष्यो यदेच्छा[२] स्यात्तदा व्रजेत्॥९०॥
रिक्तहस्तस्तु नोपेयाद् राजानं दैवतं गुरुम्। फलपुष्पाम्बरादीनि यथाशक्त्या समर्पयेत्॥ ९१॥
एवं यो नाचरेद् देवि ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत्। गुरुशक्तिश्च तत्पुत्रो ज्येष्ठभ्राता गुरोः समः॥ ९२॥
आत्मवच्च कनीयांसः पुत्रवत् कुलपालकाः। लोकाचार्यस्य देवेशि गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः॥ ९३॥
गुरुकुल्यस्य कुर्वीत प्रणामं स्वगुरोर्यथा। स्वज्येष्ठश्च[४]क्रमज्येष्ठः कुलज्येष्ठस्तृतीयकः॥ ९४॥
गुरोर्ज्येष्ठस्तु देवेशि इति ज्येष्ठचतुष्टयम्। यावज्ज्येष्ठाभिवादे तु क्रमज्येष्ठाज्ञ ईरितः॥ ९५॥
गुरोश्च कुलवृद्धस्य वन्दनादि विधानतः। पितृमात्रादिसर्वेषु पूज्यकोटिषु बन्धुषु॥ ९६॥
अभ्युत्थानप्रणामाद्यैरव्यक्तदोषलाघवः। यदा त्वा[५]चार्यरूपेण स्वात्मानं सम्प्रकाशयेत्॥ ९७॥
अभ्युत्थानप्रणामाद्यैर्दोषदः स्यात्तदा प्रिये। पतिर्भूत्वा पशुभ्यस्तु प्रणामं यः करिष्यति॥ ९८॥
स महापशुरित्युक्तो देवताशापमाप्नुयात्। यो गुरुस्थानकं प्राप्तः पादुकापरिसंख्यया॥ ९९॥
गुरुवत्स तु मन्तव्यो ज्येष्ठैर्वन्द्यो न च प्रिये।

इति पादुकामाहात्म्यतदाचारविधिः॥ अथ समयाचारः। तत्र श्रीकुलार्णवे —

श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूज्यस्थानानि यानि तु। भक्त्या श्रीपूर्वकं देवि प्रणम्य परिकीर्तयेत्॥ १॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्य मे गुरुसन्ततिः। तस्य मे सर्वशिष्यस्य को न पूज्यो महीतले॥ २॥
गुरुं नाम्ना न भाषेत जपकालादृते प्रिये। श्रीनाथदेवस्वामीति विवादे बोधने वदेत्॥ ३॥
श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मूलमन्त्रं स्वपादुकाम्। शिष्यादन्यत्र देवेशि न वदेद्यस्य कस्यचित्॥ ४॥
पारम्पर्य्यागमाम्नायमन्त्राचारादिकं प्रिये। सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं स्यान्न चान्यथा॥ ५॥
श्रीशास्त्राश्रयसम्भूतं पुस्तकं देववत्प्रिये। नित्यं समर्चयेद् भक्त्या पशुहस्ते न निक्षिपेत्॥ ६॥

---

१. 'विकर्मिणं कृतघ्नं नाश्रमिणं नैव नो' क. पाठः। २. 'यनेच्छा' क. पाठः। ३. 'पुत्रा वा' ख. पाठः।
४. 'स्वक्रम' ख पाठः। ५. 'वाचार्यं' ग. पाठः। ६. 'द्वेषभाक्' ग. पाठः।

स्वदारवन्निषेवेत कुलशास्त्राणि पार्वति। पशुशास्त्राणि सर्वाणि वर्जयेत् परदारवत्॥ ७॥
श्वचर्मस्थं यथा क्षीरमपेयं स्याद् द्विजोत्तमैः। तथा पशुमुखाद् धर्मो न श्रोतव्यश्च कौलिकैः॥८॥
यः शृणोति कुलाचारं यथाशास्त्रं च यो वदेत्। तावुभौ गच्छतः साक्षाद् योगिनीवीरमेलनम्॥९॥
अश्रद्दधाना ये चात्र कुलधर्मान् कुलेश्वरि। नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसंप्लवम्॥ १०॥
ऊढा धृता यथाप्रीता मू (ले?ल्ये) न च समाहृता। सकृत्कामगता चापि पञ्चधा गुरुयोषितः॥ ११॥
अलङ्घ्याः पूजनीयाः स्युर्गुरुवद् गुरुयोषितः। कृष्णांशुकां कृष्णवर्णां कुमारीं च कृशोदरीम्॥ १२॥
मनोहरां यौवनस्थामर्चयेद् देवताधिया। आममांसं सुराकुम्भं मत्तेभं सिद्धलिङ्गिनम्॥ १३॥
सहकारमशोकं च क्रीडालोलां कुमारिकाम्। एकवृक्षं श्मशानं च समूहं योषितामपि॥ १४॥
नारीञ्च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः[१]। गुरुशक्तिसुतज्येष्ठकनिष्ठकुलदेशिकान्॥ १५॥
कुलदर्शनशास्त्राणि कुलद्रव्याणि कौलिकान्। प्रेरकान् सूचकाँश्चापि वाचकान् दर्शकांस्तथा॥१६॥
शिक्षकान् बोधकान् योगियोगिनीसिद्धपूरुषान्। कन्याकुमारकान्नग्नानुन्मत्तामपि योषितम्॥ १७॥
न निन्देन जुगुप्सेत न हसेन्नापमानयेत्। नाप्रियं नानृतं ब्रूयात् कस्यापि कुलयोगिनः॥ १८॥
कुरूपेत्यतिकृष्णेति न वदेत् कुलयोषितम्। परीक्षयेन्न भक्तानां वीराणां च कृताकृतम्॥ १९॥
न पश्येद्वनितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम्। न दिवा सेवयेन्नारीं तद्योनिं न निरीक्षयेत्॥२०॥
या काचिदङ्गना लोके सा मातृकुलसम्भवा। कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनितानामतिक्रमात्॥२१॥
शतापराधां वनितां पुष्पेणापि न ताडयेत्। दोषान्न गणयेत् स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत्॥२२॥
तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः कुलवृक्षेषु सर्वदा। तत्पत्रेषु न भोक्तव्यं मर्कपत्रे विशेषतः॥ २३॥
न स्वपेत् कुलवृक्षाधो न चोपद्रवमाचरेत्। दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्याच्छेदयेन्न कदाचन॥२४॥
श्लेष्मान्तककरञ्जाक्षनिम्बाश्वत्थकदम्बकाः। बिल्वो वटोदुम्बरौ च कुलवृक्षा नव स्मृताः॥२५॥
देवतागुरुशास्त्रादिसिद्धाचारविडम्बकः। विद्याचौरो गुरुद्रोही ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत्॥ २६॥
गुरुं मोहादनादृत्य निर्भर्त्स्य वीरपूरुषान्। विकल्प्य कुलशास्त्राणि भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः॥२७॥
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नैव मन्यते। शुनां योनिशतं गत्वा चण्डालत्वमवाप्नुयात्॥२८॥
गुरुं प्रकाशयेद्धीमान् मन्त्रं नैव प्रकाशयेत्। अप्रकाशप्रकाशाभ्यां क्षीयेते सम्पदायुषी॥२९॥
कुलधर्मान् समाश्रित्य आचारं यो न पालयेत्। यथेष्टचारिणस्तस्य महापातकिनः प्रिये॥३०॥
आपदो दुरितं रोगा दारिद्र्यं कलहो भयम्। योगिनीनां प्रकोपश्च स्खलितं[४] च पदे पदे॥३१॥
भ्रष्टमानः[५] प्रनष्टश्च तेजोहीनोऽतिदुःखितः। निन्दितः सर्वविद्विष्टो विह्वलः सङ्गवर्जितः॥३२॥
देशाद् देशान्तरं याति कार्यहानिश्च सर्वदा। तत्रापि कुलमार्गस्थाः शाकिन्यः कुलपालिकाः॥३३॥
भक्षयन्ति पुरा तासां वरो दत्तो मयैव तु। तस्मादाचारवान् देवि योगिनीनां प्रियो भवेत्॥३४॥

१. 'मान्' ग. पाठः। २. 'रिक्ता नग्ना उन्मत्ता वापि योषितं' ग. पाठः। ३. 'मनुक्रमात्' क. पाठः। 'मविक्रमात्' ख. पाठः। 'व्याधि' ग. पाठः। ४. 'तानि' ग. पाठः। ५. 'भ्रममाणः' क. पाठः।

सदाचारेण देवत्वं योगिनीवीरमेलनम्। सम्प्राप्नुवन्ति तिर्यक्त्वं कौलिकास्तद्विपर्ययात्।। ३५।।
संस्कारेण विहीनत्वाद् गुरुवाक्यस्य लङ्घनात्। आचारलङ्घनाद् देवि कौलिक: पतितो भवेत्।।३६।।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं मन्त्रतन्त्रादिलोपजम्। अनर्हपशुदु:सङ्गमन्त्रसाङ्कर्यसम्भवम् ।। ३७।।
गुप्तप्रकटसम्भूतं ज्ञानाज्ञानकृतं प्रिये। एवमादिषु दोषेषु पापस्य गुरुलाघवम्।। ३८।।
देशं कालं वयो वित्तं सम्यग् ज्ञात्वा यथाविधि। प्रायश्चित्तं गुरुर्दद्यात् सर्वपापविशुद्धये।।३९।।
शिष्योऽपि च तथा प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत्। अथवा सर्वपापानां गुरुनामजपस्मृति:।।४०।।
जाम्बूनदस्य कालुष्यं परिशुद्धं यथाग्निना। अनाचारस्य मालिन्यं प्रायश्चित्ताग्निना दहेत्।।४१।।
बहुनात्र किमुक्तेन रहस्यं शृणु पार्वति। वर्णाश्रमाणां सर्वेषामाचार: सद्गतिप्रद: ।।४२।।
गुरुस्त्विवारमाचारं कथयेत् कुलनायिके। तन्न गृह्णाति शिष्यश्चेत्तदा पापं गुरोर्न हि।।४३।।
मन्त्रिदोषश्च राजानं भार्यादोष: पतिं यथा। तथा प्राप्नोत्यसन्देहं शिष्यपापं गुरु: प्रिये।।४४।। इति

अन्यत्र प्रयोगसारे —

देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने वा चतुष्पथे। पादुकासनविण्मूत्रमैथुनादि विवर्जयेत् ।। १।।
देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवता:। सिद्धं सिद्धाधिवासांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्।। २।।
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम्। विरूपां मुक्तकेशीं च कामार्ता च न[1] निन्दयेत्।।३।।
कन्यायोनिं पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम्। नालोकयेत् पद्रव्यं परदारांश्च वर्जयेत्।।४।।
धान्यगोगुरुविप्राग्निविद्याकोशगृहान्[3] प्रति। नैव प्रसारयेत् पादौ नैतानपि च लङ्घयेत्।।५।।
आलस्यमदसम्मोहशाठ्यपैशुन्यविग्रहान्। असूयामात्मसम्मानं परनिन्दां च वर्जयेत् ।।६।।
लिङ्गिनं व्रतिनं विप्रं वेदवेदाङ्गसंहिता:। पुराणागमशास्त्राणि कल्पांश्चापि न दूषयेत् ।।७।।
युगं मुसलमश्मानं दाम चुल्लीमुलूखलम्। शूर्पं सम्मार्जनीं दण्डं ध्वजं वैडूर्यमायुधम्।।८।।
कलशं चामरं छत्रं दर्पणं भूषणं तथा। भोगयोग्यानि चान्यानि योग[4]द्रव्याणि यानि च।।९।।
महास्थानेषु वस्तूनि यानि वा देवतालये। दिव्योक्तानि पदार्थानि भूताविष्टानि यानि वै।। १०।।
लङ्घयेज्जातु नैतानि नैतानि च पदा स्पृशेत्। या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरं विसर्पिणी।।११।।
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेत् क्वचित्। प्रतिग्रहं न गृह्णीयादात्मभोगविधित्सया।। १२।।
देवतागुरुपूजार्थं यत्नतोऽप्यर्जयेद्धनम्। धारयेदार्जवं सत्यं सौशील्यं समतां धृतिम्।। १३।।
क्षान्तिं दयामनास्थां च दिव्यां शक्तिं च सर्वदा। विभीतकार्ककारञ्जस्नुहिच्छायां न संश्रयेत्।। १४।।
स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा । नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम् ।। १५।।
एतत्सर्वं त्यजेद् दूरं खरश्वाजरजस्तथा। न निन्देत् कारणं देवं न शास्त्रं देवनिर्मितम्।। १६।।
न गुरुं साधकं चैव लिङ्गच्छायां न लङ्घयेत्। नाद्यान्न लङ्घेन्निर्माल्यं तदद्याच्छिवदीक्षित:।। १७।।

---

१. 'कामाश्च' ख. पाठ:। २. 'न निवेदयेत्' क. पाठ:। ३. 'नराग' क. ख. पाठ:। ४. 'यावद्व' क. पाठ:।

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञामुत्तरं न वदेत्तथा। रात्रौ दिवा च तस्याज्ञां दासवत् परिपालयेत्।। १८।।
असत्यमशुभं तद्वद् बहुवादं परित्यजेत्। अप्रियं च तथालस्यं कामक्रोधौ विशेषतः।। १९।।
अप्रच्छन्नमुखो ब्रूयाद् गुरोरग्रे कदाचन। अभिमानं न कुर्वीत धनधान्याश्रमादिभिः ।। २०।।
गुरुद्रव्यं न भोक्तव्यं तेनादत्तं कदाचन। दत्तं प्रसादवद् ग्राह्यं लोभतो न कदाचन।। २१।।
अद्वैतं देवपूजां च गुरोरग्रे परित्यजेत्। पादुकायोगपट्टादिगुरुचिह्नानि सादरम् ।। २२।।
न लङ्घयेत् स्पृशेन्नैव पादाभ्यां प्रणमेत् सदा। पर्यङ्कशयनं तद्वत्तथा पादप्रसारणम्।। २३।।
अङ्गभङ्गं च लीलां च न कुर्याद् गुरुसन्निधौ। गमनागमने कुर्यात् प्रणम्य गुरुपादुकाम्।। २४।।
छायां न लङ्घयेत्तद्वन्न गच्छेत् पुरतो गुरोः। पश्चात् पादेन निर्गच्छेत् प्रणम्य च गुरोर्गृहात्।। २५।।
गुरोरग्रे न कुर्वीत प्रभावं शिष्यसङ्ग्रहम्। अहङ्कारं न कुर्वीत नोल्वणं धारयेद्वपुः।। २६।।
प्रगुरोः संनिधौ नैव स्वगुरुं प्रणमेद् बुधः। नमस्काराय चोद्युक्तं गुरुर्दृष्ट्वा निवारयेत्।। २७।।
नाभियोगं गुरोर्दद्याद् युष्मदा नैव भाषयेत्। उपयुक्तं परेणैव यदि वा दीक्षितेन तु।। २८।।
छत्रोपानहवस्त्राद्यं नोपयुञ्जीत कर्हिचित्। असम्पत्तावथापत्सु न दोषः क्षालिते सति।। २९।।
स्वकुले दीक्षितानां च आचार्याणां तथैव च। उपयुक्तौ न दोषः स्यात्तद्दत्तादरितावपि(?)।। ३०।।
मन्त्रोपभुक्तमन्नाद्यं तथा यन्मन्त्रसंस्कृतम्। प्राप्तमायतनाद् देव्याः शिरसा प्रणतो वहेत्।। ३१।।
निक्षिपेदम्भसि ततो न पतेदवनौ यथा। जातायामापदि भ्रंशे शपथं (कु?गु) रुसंज्ञकम्।। ३२।।
न कुर्याद् भगवत्संज्ञं प्रमादेन क्रियेत चेत्। तदर्थं निर्वहेद्यत्नादन्ते पूजाजपाहुतीः।। ३३।।
अनिर्वाहे तु कार्यस्य यदर्थं शपथः कृतः। प्रायश्चित्तजपो देवि सहस्रं स्वमनोस्ततः।। ३४।।
लोकोद्वेगकरी या च या च मर्मनिकृन्तनी। स्थित्युद्वेगकरी या च तां गिरं नैव भाषयेत्।। ३५।।
रम्यमप्युज्ज्वलमपि मनसोऽपि समीप्सितम्। लोकविद्वेषणं वेषं न गृह्णीयात् कथञ्चन।। ३६।।
अत्रोक्तान् यः सदा ह्येतानैहिकामुष्मिकोचितान्। आचारानादृतः[१] शान्तिं दीक्षितः सोऽधिगच्छति।।३७।।
स्त्रीणां विशेषतो दद्यात्समयांश्चामलाशयः। पालनात् समयानां तु सिद्धिरुत्पद्यतेऽचिरात्।। ३८।।
मन्त्रः साम्मुख्यमायाति समयस्थस्य सर्वदा। सिद्धयः समयस्थस्य सर्वाः स्युर्मोक्षपश्चिमाः।। ३९।।
अयने विषुवे चैव ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः। अष्टम्यां पूर्णिमायां च तेषु नैमित्तिको जपः।। ४०।।
नित्यात् त्रिगुणितः सोऽथ पूजां चैव समाचरेत्। न्यायार्जितैः साधनैश्च दानहोमार्चनादिकम्।। ४१।।
कुर्यान्न चेदधो याति भक्त्या कुर्वन्नपीश्वरि।। इति समयाचारः।।

नारदपाञ्चरात्रे –

ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात् सर्वेष्वनुग्रहम्। तदभावाद् द्विजश्रेष्ठ शान्तात्मा भगवन्मयः।। १।।
भावितात्मा च सर्वज्ञः शास्त्रज्ञः सत्क्रियापरः। सिद्धित्रयसमायुक्त आचार्यत्वेऽभिषेचितः।। २।।

१. 'नाश्रितः' ख. पाठः। 'नावृतः' ग. पाठः।

क्षत्रविट्शूद्रजातीनां क्षत्रियोऽनुग्रहक्षमः। क्षत्रियस्यापि च गुरोरभावादीदृशो यदि ॥ ३॥
वैश्यः स्या(त्तैः?त्ते) न कार्यः स्याद् द्वये नित्यमनुग्रहः। सजातीयेन शूद्रेण तादृशेन महामते॥४॥
अनुग्रहाभिषेकौ च कार्यौ शूद्रस्य सर्वदा। वर्णोत्तमेऽथ च गुरौ सति वा वि[1]श्रुतेऽपि वा॥ ५॥
सदेशतो[2]ऽथवान्यत्र नेदं कार्यं शुभार्थिना। विद्यमाने तु यः कुर्याद्यत्र तत्र विपर्ययम्॥ ६॥
तस्येहामुत्र नाशः स्यात्तस्माच्छास्त्रोक्तमाचरेत्। क्षत्रविट्शूद्रजातीयः प्रातिलोम्येन दीक्षयेत्॥७॥
बह्वाशी दीर्घसूत्री च विषयादिषु लोलुपः। हेतुवादरतो दुष्टो वाग्वादी गुणनिन्दकः॥ ८॥
अरोमा बहुरोमा च निन्दिताश्रमसेवकः। कालदन्तोऽसितोष्ठश्च दुर्गन्धिश्वासवाहकः॥ ९॥
दुष्टलक्षणसम्पन्नो यद्यपि स्वयमीश्वरः। बहुप्रतिग्रहासक्त आचार्यः श्रीवहावहः॥ १०॥ इति।

ज्ञानोन्नयमते —

निर्वीर्यं च पितुर्मन्त्रं तथा मातामहस्य च। सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च॥ १॥
भिक्षुभ्यश्च वनस्थेभ्यो वर्णिभ्यश्च महेश्वरि। गृहस्थो भोगमोक्षार्थी मन्त्रदीक्षां न चाचरेत्॥ २॥
त्यक्ताग्नयः क्रियाहीना यतयो ह्यपरिग्रहाः। वनस्थास्तादृशश्चैव वर्णी[3]न्यूना अमी यतः॥ ३॥
अतस्तेषां नाधिकारो दीक्षादाने महेश्वरि॥ इति।

भैरवीतन्त्रे —

तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थः स्वस्थमानसः। दीक्षायां न गुरुत्वेन यतीन् वैखानसान् प्रिये॥ १॥
वृणुयाद् भोगमोक्षार्थी गृहस्थो वर्णिनं तथा। इति।

गुरुशिष्यपरीक्षा तु श्रीकुलार्णवे—

ज्ञानेन क्रियया वापि गुरुः शिष्यं परीक्षयेत्। संवत्सरं तदर्धं वा तदर्धं वापि यत्नतः॥ १॥
उत्तमानधमे कार्ये नीचानुत्तमकर्मणि। प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः॥ २॥
तन्मर्मसूचनैर्वाक्यैर्मायाभिः क्रूरचेष्टितैः। पक्षपातैरुदासीनैरनेकैश्च मुहुर्मुहुः॥ ३॥
आकृष्टस्ताडितश्चापि यो विषादं न याति च। गुरुः कृपां करोतीति मुदा सन्चिन्तयेत् सदा॥४॥
श्रीगुरोः स्मरणे वापि कीर्तने दर्शनेऽपि वा। वन्दने परिचर्य्यायामाह्वाने प्रेषणे प्रिये॥ ५॥
आनन्दकम्परोमाञ्चस्वरनेत्रादिविक्रियाः। येषां स्युस्तेऽत्र योग्याः स्युः दीक्षासंस्कारकर्मसु॥६॥
शिष्योऽपि लक्षणैरेतैः कुर्याद् गुरुपरीक्षणम्। आनन्दाद्यैर्जपैः स्तोत्रैर्ध्यानहोमार्चनादिभिः॥ ७॥
ज्ञानोपदेशसामर्थ्यं मन्त्रसिद्धिमपीश्वरि। बोधकत्वं च विज्ञाय शिष्यो भूयान्न चान्यथा॥८॥ इति।

अथ शिष्याणामधममध्यमोत्तमत्वं तत्रैव —

आदिमध्यावसानेषु योग्या भक्तिनिपाततः। अधमाः मध्यमाः श्रेष्ठाः शिष्या अपि प्रकीर्तिताः॥९॥
आदौ भक्तिर्भवेद् देवि दीक्षायां संवदन्ति ये। पुनर्विध्वस्तभक्तास्त आदिमक्तः प्रकीर्तिताः॥ १०॥

---

१. 'पि' क. पाठः। २. 'स्वदेशेऽप्यथ' ख. पाठः। ३. 'वर्ण' ख. पाठः।

दीक्षासमयसम्प्राप्ता ज्ञानविज्ञानवर्जिताः। भक्त्या प्रध्वस्तजाड्या ये मध्ययोग्याः प्रकीर्तिताः॥ ११॥

आदौ भक्तिविहीनो[1] यो मध्ये भक्तोऽस्ति वा न वा। अन्ते प्रभूतभक्तश्चाप्य[2]न्तयोग्या भवन्ति ते।१२।इति।

अथ वर्णविभागेन योग्यताकालविशेषस्तत्र शारदायाम् —

एकाब्देन भवेद्योग्यो ब्राह्मणस्तद्द्वयान्नृपः। वैश्यो वर्षैस्त्रिभिः शूद्रश्चतुर्भिर्वत्सरैर्गुरौ॥ १॥

सुशुश्रूषुः[3] परिग्राह्यो दीक्षायागव्रतादिषु। इति।

अत्र शूद्राणां मन्त्रेष्वनधिकारः श्रूयते। यथा महाकपिलपञ्चरात्रे—

न वेदप्रणवं त्यक्त्वा मन्त्रो वेदसमुद्भवः। तस्माद् वेदः परो मन्त्रो वेदाङ्गश्चागमः स्मृतः॥ १॥

वश्याकर्षादिकं कर्म दृष्टादृष्टफलप्रदम्। वेदेन साध्यते सर्वं ग्रहयज्ञादिभिः कलौ॥ २॥

न वेदेन विना यज्ञा न वेदा यज्ञवर्जिताः। तस्माद्वेदः परो मन्त्रो न मन्त्रो वेद उज्झितः॥३॥

न मन्त्रे चाधिकारोऽस्ति शूद्राणां नियमं परम्[4]। मन्त्राभावादमन्त्रेण भासितं सर्वकर्म हि।४।इति।

तथा शातातपसंहितायाम् —

यावन्त्यर्णानि मन्त्राणां शूद्राय प्रतिपादयेत्। तावत्यो ब्रह्महत्याः स्युः स्वयमाह प्रजापतिः॥ १॥ इति।

कुत्रचिदनिषेधोऽपि श्रूयते, भविष्ये —

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये शुचयोऽमलाः। तेषां मन्त्राः प्रदेया वै न तु सङ्कीर्णधर्मिणाम्॥ १॥

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा अर्चायां शुद्धबुद्धयः। गुरुदेवद्विजार्चासु रताः स्युरधिकारिणः॥ २॥

योगिनीतन्त्रवचनात्।

वैदिको मिश्रिको वापि विप्रादीनां विधीयते। तान्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः॥ १॥

स्वागमोक्तेन विधिना शूद्रैश्चापि प्रपूजनम्। कर्तव्यं श्रद्धया विष्णोश्चिन्तयित्वा पतिं हृदि॥२॥

स्त्रीणामप्यधिकारोऽस्ति विष्णोराराधनादिषु। पतिप्रियरतानां च श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ३॥

इति पद्मपुराणात्। पतिप्रियेति सधवापरम्। चिन्तयित्वेति मृतभर्तृकापरमिति ज्ञेयम्। तथा चोक्तं तन्त्रराजे —

द्विजातीनां तु संस्कारं वेदोक्तं समुदाहृतम्। तेषां च तत्र तत्रापि विद्यया विधिमाचरेत्॥ १॥

सविद्यास्मरणं कुर्यात् क्रियां सर्वत्र चोदिताम्। तेन तन्मयतासिद्धिः सर्वत्र भवति ध्रुवम्॥ २॥

अन्येषामपि वर्णानां विद्यया समुपाचरेत्। इति।

भविष्योत्तरे —

या स्त्री भर्त्रा वियुक्ता च शुभा स्वातन्त्र्यसंयुता[5]। सा च मन्त्राणि गृह्णातु सभर्त्री तद (व?नु) ज्ञया।१॥

विना स्वधर्मं यत्किञ्चिद् देवताराधनादिकम्। परिभ्रश्येत तद्यस्मात् क्षणात् सैकतहर्म्यवत्॥२।इति।

कुलार्णवे —

---

१. 'ना ये मध्यभक्तास्तु ये मताः' ग. पाठः। २. 'अन्ते भक्ताः प्रबुद्धाः स्युरन्त' ग. पाठः। ३. 'स' ख. पाठः।
४. 'तं पुरा' ख. पाठः। ५. 'स्वान्तरसंयुता' क. पाठः।

विधवायाः सुतादेशात् कन्यायाः पितुराज्ञया। नाधिकारः स्वतो नार्या भार्याया भर्तुराज्ञया।।१।।
स्त्रीशूद्राणामयं मन्त्रो नमोन्तश्च शुभावहः। एतज्ज्ञात्वा महासेन चण्डालानपि दीक्षयेत्।।२।।

इति रुद्रयामलात्। अयं प्रासादमन्त्रः। तथा च—

शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विजसेवकाः। स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः।। १ ।।
लोकाश्चण्डालपर्यन्ताः सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः। स्वजातिधर्मनिरताः भक्ताः सर्वेश्वरस्य च।।२।।
उपदेशमशेषाणां तत्तज्जात्यनुसारतः। न वैदिकं जपेच्छूद्रः स्त्रियश्चैव कदाचन।।३।।
नमोऽन्तं शिवमन्त्रं वा वैष्णवं चोच्यते[1] बुधैः। इति।

याज्ञवल्क्योऽपि —

स्वाहाप्रणवसंयुक्तं मन्त्रं शूद्रे ददद्द्विजः। शूद्रो निरयगामी स्याद्विप्रः शूद्रत्वमाप्नुयात्।। १ ।। इति।

यामले —

एकद्वित्रिचतुष्पञ्चवर्षाण्यालोच्य योग्यताम्। भक्तियुक्त[2]गुणांश्चापि क्रमाद्वर्णे स[3]सङ्करे।। १ ।। इति।

अथ मन्त्राणां ब्रह्मक्षत्रादिभेदः कुलार्णवे —

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो भवति वै मनुः। अनुलोमेन देयः स्यात् प्रतिलोमेन वै क्वचित्।। १ ।। इति।

वामकेश्वरे —

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः पौरस्त्यजातयः। चतुर्विधास्ते मनवः क्रमाद्वर्णे ससङ्करे।। १ ।। इति।

सौत्रामणीतन्त्रे —

मायाबीजं ब्राह्मणः स्याच्छ्रीबीजं क्षत्रियः स्मृतः। कामबीजं भवेद् वैश्यो वाग्भवं शूद्र ईरितः।। १ ।।
चतुर्बीजपरित्यक्तो मन्त्रः पौरस्त्यसंज्ञकः। चतुर्बीजं ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां त्रिबीजकम्।। २ ।।
बीजद्वयं तु वैश्यानां शूद्राणां त्वेकबीजकम्। इति।

कुलमूलावतारे— श्रीदेव्युवाच—

शाक्तशाम्भवसौराणां गाणेशे वैष्णवेषु च। ब्रह्मक्षत्रियवर्णानां सङ्कराणां विशेषतः।। १ ।।
प्रवृत्तिं श्रोतुमिच्छामि साधकानां हिताय च। येषु येषु च ये मन्त्रास्तद्भेदं ब्रूहि शङ्कर।। २ ।।

ईश्वर उवाच—

उमामहेश्वरं चैव दक्षिणामूर्त्यघोरकम्। हयग्रीवं च वाराहमष्टाक्षरमतः परम्।। ३ ।।
प्रणवाद्यं वासुदेवं लक्ष्मीनारायणं तथा। वर्णत्रये तु दातव्यं नान्यवर्णे कदाचन।। ४ ।।
पाशुपतं नारसिंहं तथा चैव सुदर्शनम्। वर्णद्वये च दातव्यं नान्ययोश्चैव कर्हिचित्।। ५ ।।
अग्निमन्त्राश्च ये केचित् सूर्यमन्त्राश्च ये तथा। तारादिघृणिमन्त्राश्च दातव्याश्च त्रिवर्णके।।६।।
आनुष्टुभं शक्तिमन्त्रास्तथा विन्ध्यनिवासिनी। नीलसारस्वतं चापि दातव्याश्चादिवर्णके।। ७ ।।

---

१. 'चेष्यते' क. ख. पाठः। २. 'युक्तान्' ख. पाठः। ३. 'सुसं' ग. पाठः।

मातङ्गीत्युग्रतारा च कालिका श्यामला तथा। छिन्नमस्ता च बाला च दातव्या सर्ववर्णके।।८।।
तारादिस्तु गणेशश्च हरिद्रासंज्ञकस्तथा। त्रिवर्णेष्वेव दातव्यः कथितः सर्वसिद्धिदः।। ९।।
त्रिपुराया(ञ्च?श्च)ये मन्त्रा ये मन्त्रा वटुकादयः। सर्ववर्णेषु दातव्याः पुरन्ध्रीणां विशेषतः।। १०।।
मायां लक्ष्मीं च प्रणवं वाग्भवं चान्यबीजकम्। एतद्बीजेन संयुक्तं दातव्यं चादिवर्णके।। ११।।
मायां लक्ष्मीं वाग्भवं च दातव्यं क्षत्रियेष्वपि। लक्ष्मीं च वाग्भवं चैव कथितं वैश्यवर्णके।। १२।।
वाग्भवं चान्यबीजं च शूद्राणां समुदीरितम्। हृदादि हुंफट्कारादि सङ्कराणां प्रशस्यते।। १३।।

इति। कुलप्रकाशतन्त्रे —

उत्पन्ना मनवः सर्वे पञ्चाशद्वर्णभेदतः। द्विविधास्ते च सम्प्रोक्ता मन्त्रविद्याविभागतः।। १।।
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता हृदयान्ता नपुंसकाः। शेषाः पुमांस इत्युक्ताः स्त्रीमन्त्राश्चापि शान्तिके।।२।।
नपुंसकाः स्मृता मन्त्रा विद्वेषे चाभिचारके। पुमांसः स्युः स्मृताः सर्वे वश्योच्चाटनकर्मसु।। ३।।
अग्नीषोमस्वरूपाः स्युर्मनवः सर्व एव हि। रेफौङ्कारवियत्प्राया आग्नेयाः क्रूरकर्मणि।।४।। इति।

नारायणीयेऽपि—

तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय इष्यते। शिष्टः[1] सौम्यः प्रशस्येते[2] कर्मणोः क्रूरसौम्ययोः।।१।।
आग्नेयमन्त्रः सौम्यः स्यात् प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः। सौम्यमन्त्रस्तथा ज्ञेयः फट्कारेणान्वितस्ततः।।२।।
पिङ्गलायां गते वायौ प्रबुद्धा ह्यग्निरूपिणः। इडां गते तु पवने बुध्यन्ते सोमरूपिणः।। ३।।
पिङ्गलेडागते वायौ प्रबुद्धाः सर्व एव हि। प्रबुद्धाः मनवः सर्वे साधकानां फलन्त्युमे।।४।। इति।

बृहन्नारायणीयेऽपि—

सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मन्त्रः सिद्धिं न यच्छति। स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः।। १।।
आग्नेयस्य मनोः सौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्ययः। प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयावहः ।। २।।
स्वाप[3]काले तु मन्त्रस्य जपोऽनर्थफलप्रदः। इति।

शिवयामले—

सम्पुटीकृत्य यत्नेन लान्तानाद्यान् सबिन्दुकान्। पुनश्च सविसर्गांस्तान् क्षकारं केवलं पठेत्।।१।।
एवं जप्तोपदिष्टश्चेत्[4] प्रबुद्धः शीघ्रसिद्धिदः। इति।
अथ कालीमते प्रोक्तं मन्त्राणां दोषसञ्चयम्। तत्र तत्परिहारं च बाह्याभ्यन्तरभेदतः।। १।।
वक्ष्यामि तत्तत्तन्त्रोक्तं साधकानां हिताय च।। इति।

तत्र शारदायाम् —

छिन्नादिदुष्टमन्त्रास्ते पालयन्ति न साधकम्। छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनः पराङ्मुख इतीरितः।। १।।
बधिरो नेत्रहीनश्च कीलितः स्तम्भितस्तथा। दग्धस्त्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः।। २।।

---
१. 'शेषः' ख. पाठः २. प्रशस्तौ तौ, क. ख. पाठः। ३. 'सायंकाले' ग. पाठः। ४. 'मनूपदिष्टः' ख. पाठः।

भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्त उदाहृतः। मूर्च्छितो हृतवीर्यश्च हीनः प्रध्वस्तबालकौ॥ ३॥
कुमारस्तु युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा। निर्बीजः सिद्धिहीनश्च म (त्रक्रूर?न्दःकूट)स्तथा पुनः॥४॥
निरंशकः सत्त्वहीनः केकरो बीजहीनकः। धूमितालिङ्गितौ स्यातां मोहितश्च क्षुधार्तकः॥ ५॥
अतिदृप्तोऽङ्गहीनश्चाप्यतिक्रुद्धः समीरितः। अतिक्रूरश्च सव्रीडः शान्तमानस एव च॥ ६॥
स्थानभ्रष्टश्च विकलश्चातिवृद्धः प्रकीर्तितः। निस्नेहः पीडितश्चापि वक्ष्याम्येषां च लक्षणम्॥७॥इति।

अथैतेषां दोषाणां लक्षणानि तत्रैव —

मनोर्यस्यादिमध्यान्तेष्वानिलं बीजमुच्यते। संयुक्तं वा वियुक्तं वा स्वराक्रान्तं त्रिधा पुनः॥ ८॥
चतुर्धा पञ्चधा वाथ स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः। आदिमध्यावसानेषु भूबीजद्वन्द्वलाञ्छितम् ॥ ९॥
रुद्धमन्त्रः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिविवर्जितः। मायात्रितत्त्वश्रीबीजरावहीनस्तु यो मनुः ॥ १०॥
शक्तिहीनस्तु कथितो यस्य मध्ये न विद्यते। कामबीजं मुखे माया शिरस्यङ्कुशमेव च॥ ११॥
असौ पराङ्मुखः प्रोक्तो हकारो बिन्दुसंयुतः। आद्यन्तमध्येष्विन्दुर्वा न भवेद्बधिरः स्मृतः॥१२॥
पञ्चवर्णो मनुर्य (:) स्याद्रेफार्केन्दुविवर्जितः। नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःखशोकामयप्रदः॥ १३॥
आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासादवाग्भवौ। हकारो बिन्दुमाञ्जीवो[१]रावश्चापि चतुष्कलः॥ १४॥
माया नमामि च पदं नास्ति यस्मिन् स कीलितः। एकं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रपुरन्दरौ॥१५॥
विद्येते स तु मन्त्रः स्यात् स्तम्भितः सिद्धिरोधनः। बह्निर्वायुसमायुक्तो यस्य मन्त्रस्य मूर्धनि॥१६॥
सप्तधा दृश्यते तं तु दग्धं मन्येत[२] मन्त्रवित्। अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्दृश्यतेऽक्षरैः॥१७॥
त्रस्तः सोऽभिहितो यस्य मुखे न प्रणवः स्थितः। शिवो वा शक्तिरथवा भीताख्यः स प्रकीर्तितः॥१८॥
आदिमध्यावसानेषु भवेन्मार्णचतुष्टयम्। यस्य मन्त्रस्य मलिनो मन्त्रवित्तं विवर्जयेत्॥ १९॥
यस्य मध्ये दकारो वा क्रोधो वा मूर्धनि द्विधा। अस्त्रं तिष्ठति मन्त्रस्य स तिरस्कृत ईरितः॥२०॥
ओंद्वयं प्रमुखे शीर्षे वषडस्त्रं च मध्यतः। यस्यासौ भेदितो मन्त्रस्त्याज्यः सिद्धिषु सूरिभिः॥२१॥
त्रिवर्णो हंसहीनो यः सुषुप्तः स उदाहृतः। मन्त्रो वाप्यथवा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरा[३]॥२२॥
फट्कारपञ्चकादिर्यो मदोन्मत्त उदाहृतः। तद्वदस्त्रं स्थितं मध्ये यस्य मन्त्रः स मूर्च्छितः॥२३॥
विरामस्थानगं यस्य हृतवीर्यः स कथ्यते। आदौ मध्ये तथा मूर्ध्नि चतुरस्त्रयुते मनुः॥ २४॥
ज्ञातव्यो हीन इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः। एकोनविंशत्यर्णो वा यो मन्त्रस्तारसंयुतः॥२५॥
हृल्लेखाङ्कुशबीजाढ्यस्तं प्रध्वस्तं प्रचक्षते। सप्तवर्णो मनुर्बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः॥२६॥
षोडशार्णो युवा प्रौढश्चत्वारिंशल्लिपिर्मनुः। त्रिंशद्वर्णश्चतुःषष्टिवर्णो मन्त्रः शताक्षरः॥२७॥
चतुःशताक्षरश्चापि वृद्ध इत्यभिधीयते। नवाक्षरो ध्रुवयुतो मनुर्निस्त्रिंश ईरितः ॥२८॥
यस्यावसाने हृदयं शिरोमन्त्रस्तु मध्यतः। शिखा वर्म च न स्यातां वौषट् फट्कार एव च॥२९॥

---

१. 'रावं चापि चतुष्कलम्' ग. पाठः। २. 'मन्वीत तन्त्रवित्' ग. पाठः। ३. 'शताक्षरा' क. पाठः।

शिवशक्त्यर्णहीनो वा स निर्बीज इतीरितः। एषु[1] स्थानेषु फट्कारः षोढा यस्मिन् प्रदृश्यते।।३०।।
स मन्त्रः सिद्धिहीनः स्यान्मन्दः पङ्क्त्यक्षरो मनुः। कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवोक्तो निरंशकः।।३१।।
द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्याच्चतुर्वर्णस्तु केकरः। षडक्षरो बीजहीनस्त्वर्धसप्ताक्षरो मनुः।। ३२।।
सार्धद्वादशवर्णो वा धूमितः स तु निन्दितः। सार्धबीजत्रयस्तद्वदेकविंशतिवर्णकः ।। ३३।।
विंशत्यर्णस्त्रिंशद्वर्णो यः स्यादालिङ्गितस्तु सः। द्वा[2]विंशत्यक्षरो मन्त्रो मोहितः परिकीर्तितः।।३४।।
चतुर्विंशतिवर्णो यः सप्तविंशतिवर्णकः। क्षुधार्तः स तु विज्ञेयश्चतुर्विंशतिवर्णकः।। ३५।।
एकादशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिवर्णकः। त्रयोविंशतिवर्णो वा मन्त्रो दृप्त उदाहृतः।। ३६।।
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः षट्त्रिंशद्वर्णकस्तथा। त्रिंशदेकोनवर्णो वाप्यङ्गहीनोऽभिधीयते।। ३७।।
अष्टावि[3]शत्यक्षरो य एकत्रिंशदथापि वा। अतिक्रुद्धः स कथितो निन्दितः सर्वकर्मसु।। ३८।।
त्रिंशदक्षरको मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशदथापि वा। अतिक्रूरः स गदितो निन्दितः सर्वकर्मसु।। ३९।।
चत्वारिंशतमारभ्य त्रि[4]षष्टिर्यावदक्षरम्। तावत्संख्या निगदिता मन्त्राः सव्रीडसंज्ञकाः।। ४०।।
पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः। एकोनशतपर्यन्तं पञ्चषष्ट्यक्षरादितः।। ४१।।
ये मन्त्रास्ते निगदिताः स्थानभ्रष्टाह्वया बुधैः। त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः।। ४२।।
विकलास्तेऽभिधीयन्ते शतं सार्धशतं तथा। शतद्वयं द्विनवतिरेकहीनाथवापि सा[5] ।। ४३।।
शतत्रयं वा यत्संख्या[6] निस्नेहास्ते समीरिताः। चतुःशतान्यथारभ्य यावद्वर्णसहस्रकम्।। ४४।।
अतिवृद्धः प्रयोगेषु परित्याज्यः सदा बुधैः। सहस्राणाधिका मन्त्रा दण्डकाः पीडिताह्वयाः।।४५।।
द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः खण्डशः शतधा[7] कृता। ज्ञातव्यास्तोत्ररूपास्ते मन्त्रा एते यथा स्थिताः।।४६।।
तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः काम्यकर्मसु। दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रं भजते जडः।।४७।।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि। इति।

अथैतेषां श्लोकानां श्रीमदाराध्यमुखादवगतोऽर्थो लिख्यते—तत्र मनोरिति—आदिमध्यान्तेष्विति समुच्चयः। आनिलं यकारबीजं मायाबीजमिति सम्प्रदायः। "मायाबीजस्यनामानि मालिनी शिववल्लरी। वातावर्तिफला वाणीबीजं। शक्ति कुण्डली" इति शैवागमोक्तेः। वायुबीजं संयुक्तमक्षरान्तरयुक्तं वियुक्तं तद्रहितं, मायाबीजं तु दीर्घस्वराक्रान्तम्। उक्तं च लक्षसागरे— "आदिमध्यावसानेषु यस्य मन्त्रस्य दृश्यते। चतुर्धा पञ्चधा द्वेधा चैकवीरं स्वरान्वितम्। वायुबीजमसौ मन्त्रो भेदितः परिकीर्तितः" इति वायुबीजं यकारः, एकवीरः हः स्वराक्रान्तो दीर्घस्वरयुक्तः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इति। तदुदाहरणं तु अघोरेभ्योऽथ ह्रां घोरभ्यो ह्रीं घोरघोरतरेभ्यो ह्रूं सर्वतः सर्वशर्वेभ्यो ह्रैं नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ह्रौ इति। आदिमध्यावसानेष्विति— भूबीजं लकारः। अत्र तु स्थानत्रयेऽपि प्रतिस्थानं लकारद्वयमित्युक्तं तत्रान्तरदर्शनादाद्यन्तयोर्द्वयं मध्ये त्रयमिति ज्ञेयम्। तदुक्तं लक्षसागरे— 'द्विधा पूर्वं त्रिधा मध्ये द्विधान्ते च पुनः प्रिये। वज्रियुक्तस्तु यो मन्त्रः स निरुद्ध(:) प्रकीतितः''इति।। वज्री लकारः। पिङ्गलामते—आदौ द्विधा त्रिधा मध्ये पुनश्चान्ते द्विधा भवेत्। इन्द्रबीजमसौ मन्त्रो रुद्ध इत्यभिधीयते" इति।

---

१. 'यस्य' क. पाठः। २. 'द्वात्रिंशद' ग. पाठः। ३. 'अष्टात्रिं' क. पाठः। ४. 'द्विष' ग. पाठः। ५. 'वा' क. पाठः। ६. 'यावत्संख्या' ग. पाठः। ६. 'सप्तधा' क. ख. पाठः।

मायेति—माया भुवनेश्वरीबीजं त्रितत्त्वं प्रणवो हुङ्कारो वा, रावः, क्रोङ्कारः, एकत्रेति सर्वे नापेक्षिताः।

मायाबीजं न यत्रास्ति त्रितत्त्वं रावमेव च। श्रीगृहं वापि मन्त्रोऽसौ शक्तिहीनः प्रकीर्तितः।।

इति तन्त्रान्तरवचनात्।

"मायाबीजं त्रितत्त्वं वा श्रीगृहं यत्र नास्ति चेत्। शक्तिहीन इति ख्यातः सामर्थ्यं हन्ति मन्त्रिणः।"

इति पिङ्गलामताच्च।। यस्येति—मुखे आदौ, शिरस्यान्ते। चकारः समुच्चये। उक्तं च लक्षसागरे—

"यस्य कामकलाबीजं मध्यस्थाने न विद्यते। आदौ मायाङ्कुशश्चान्ते विज्ञेयोऽसौ पराङ्मुखः।।"इति। पिङ्गलामतेऽपि —

"कामबीजं न यन्मध्ये मायाद्यवन्तिमोऽङ्कुशः। पराङ्मुख इति प्रोक्तो गर्हितः सर्वकर्मसु।।"

इति। हकार इति—इन्दुः सकारः बिन्दुयुक्तत्वमस्यापि आद्यन्तमध्येष्विति स्थानत्रयेऽपि नापेक्षितः। उक्तं च लक्षसागरे —

"शून्यबिन्दुसमायुक्तमाद्यन्ते चापि मध्यतः। न भवेज्जीवबीजं वा यस्यासौ बधिरः स्मृतः"।।

इति। पञ्चवर्ण इति—अर्को हकारः इ (न्द्रः?न्दुः) सकारः वह्न्यर्केन्दूनां देवतानेत्रत्वेन मन्त्राणामपि नेत्रत्वात्। पिङ्गलामते —

"पञ्चाक्षरस्तु यो मन्त्रः पावकेन्द्वर्कवर्जितः। नेत्रहीन इति ज्ञेयो दुःखशोकभयावहः"।।

इति। आदीति—हंसः स्वरूपं, प्रासादो हौं, वाग्भवः ऐं, जीवः सकारः। स कीदृशो हकारोबिन्दुमान् हकारौकारबिन्दुभिर्युक्त इत्यर्थः। तेन च स्हौं, इति बीजम्। तथा च पिङ्गलामते—

"अष्टमस्वरसंयुक्तो जीवारूढः सबिन्दुकः। यस्यात्मा दृश्यते नैव किं वा एव चतुष्कलः।।

प्रासादो वाग्भवो हंसं माया वा यत्र दृश्यते। आदिमध्यान्तदेशेषु कीलितं तत्प्रचक्षते"।।

इति। आत्मा हकारः अष्टमस्वरः ओकारस्याष्टमस्वरत्वं ह्रस्वदीर्घयोरेकत्वात् यथा अकडमचक्रे। रावः क्रौं चतुष्कलः हूं। एकमिति—मूर्ध्नि अन्ते। अत्र यथाश्रुतोऽर्थो न भवति किन्तु मध्ये एको लकारोऽन्ते लद्वयम्। यद्वा मध्ये एकः फट्कारः, अन्ते द्विस्त्रिर्वा यत्र दृश्यते स स्तम्भित इत्यर्थः। तथा च पिङ्गलामते—

"सकृन्मध्ये द्विधा प्रान्ते शक्तिबीजं भवेद्यदि। स्तम्भितं तं वदन्तीत्थं मन्त्रं मन्त्रविदो बुधाः" इति।

अन्यत्रापि —

"द्विधा त्रिधा वा षोढा वा मन्त्रान्ते यत्र दृश्यते। महास्त्रं स्तम्भितो मन्त्रः श्रीशिवेन प्रकीर्तितः"।

इति। अत्र मूलश्लोकादेव मध्येऽपीति ज्ञेयः। वह्निरिति—वह्नी रेफः, वायुर्यकारः तद्युक्तः, मूर्धनि आदौ। उक्तं च पिङ्गलामते —

"आदिस्थैः सप्तभिर्बीजैर्मरुतैः पावकाक्षरम्। दीपितं यत्र तं मन्त्रं मायादग्धं प्रचक्षते"।।

इति। अस्त्रमिति—उक्तसंख्याक्षरैरन्तरितः फट्कारो दृश्यत इत्यर्थः।। यस्येति—मुखे आदौ शिवो हकारः, शक्तिः सकारः। एतादृशदोषयुक्तस्य[2] मातृकाहीन इति नामान्तरं वदन्ति। तथा च पिङ्गलामते—

"शिवः शक्तिस्तथौङ्कारो यस्यादौ नास्ति तं मनुम्। वदन्ति मातृकाहीनं हीनसिद्धिप्रदायकम्"।।

इति। आदीति— स्थानत्रयेऽपि मिलित्वा मकारचतुष्कं यत्र दृश्यते इत्यर्थः।

१.'ह्रौं' ख. पाठः। २. 'दृशं' दोषयुक्तमात्' क. पाठः।

"आदिमध्यान्तदेशे च चतुर्द्धा यत्र दृश्यते। मार्णो मन्त्रो महेशेन मलिनः स इतीरितः"॥

इति तन्त्रान्तरवचनात्। लक्षसागरेऽपि–

"आदौ मध्ये च शिखरे त्रिधा यत्र तु दृश्यते। मकारो मलिनं विद्यात्तं मन्त्रं मन्त्रवित्सदा"॥

इति। एतयोर्विकल्पः। यस्येति–क्रोधो हुँबीजं, मूर्धनि अन्ते क्रोधदकारयोर्विकल्पः। मूर्धनि द्विधास्त्रमित्यन्वयः। मध्ये दकारहुँकारयोरेकमन्ते फट्द्वयमित्यर्थः। तथा च पिङ्गलामते–

"दकारः क्रोधबीजं वा यस्य मध्ये व्यवस्थितम्। फट्द्वयं च स्थितं प्रान्ते यस्यार्णः स तिरस्कृतः"॥

इति। अन्यत्रापि –

"यस्य मध्ये दकारश्च क्रोधबीजं हृदि स्थितम्। द्विधा चान्ते च फट्कारः स्याद्यस्य स तिरस्कृतः"॥

इति। चकारो विकल्पार्थकः॥ ओमिति–प्रमुखे आदौ ओङ्कारः, शीर्षेऽन्ते वषट्, मध्येऽस्त्रमिति चकाराद् द्वयमित्यत्रापि सम्बध्यते। तथा च पिङ्गलामते–

"अस्त्रमन्त्रद्वयं मध्ये वषडन्ते तथादितः। अउमाः स्युरसौ मन्त्रो भेदितः परिकीर्तितः"।

इति। अस्त्रं हः, अउमाः ओंकारः॥ त्रिवर्ण इति–त्रिवर्ण एवं हंस इति वर्णद्वयरहितः॥ तथा च भैरवीतन्त्रे–

"वर्णत्रयात्मको मन्त्रो यस्तु हंसविवर्जितः। सुषुप्तः स तु विज्ञेयः सर्वसिद्धिफलापहः।"

इति। सप्त च अधिकं च दश अक्षराणि यस्य सः अष्टादशाक्षरस्येत्यर्थः॥ फट्कारेति–फट्कारपञ्चकमादौ यस्मिन्निति। उक्तं च लक्षसागरे–

"विद्या वा यदि वा मन्त्रो यद्यष्टादशवर्णकः। पञ्चफट्कारपूर्वः स्यान्मदोन्मत्तः स उच्यते"॥

इति। पिङ्गलामतेऽपि–

"विद्या वा मन्त्रराजो वा यः स्यात्सप्तदशाधिकः। फट्कारपञ्चपूर्वश्चेदुन्मत्तः स प्रकीर्तितः"॥

इति। अत्र विशेषणद्वयविशिष्ट एव दुष्टः। तद्वदिति–विरामे (ति) च–विरामस्थानगं मन्त्रान्तर्गतम्। पञ्चेत्युभयत्र। उक्तं च पिङ्गलामते–

"अस्त्रमन्त्रो भवेद्यस्य मध्ये प्रान्ते च शम्भुना। हीनवीर्य इति ख्यातः स मन्त्रो नैव सिद्धिदः"॥

इति। आदावित–स्थानत्रये मिलित्वास्त्रचतुष्टयमित्यर्थः। अष्टादशाक्षर इत्यनुवर्तते। तन्त्रान्तरेऽपि एतादृशो मन्त्रो भीत इति नाम्ना उक्तः। यथा–

"आदावन्ते तथा मध्ये चतुर्द्धास्त्रेण संयुतम्। अष्टादशाक्षरं मन्त्रं भीतं तं भैरवोऽब्रवीत्"॥

इति। यः स्यादिति[1]–तारः प्रणवः, केचित् तारः फ्रें इति वदन्ति, तन्न ग्रन्थान्तरविरोधात्। तथा च भैरवीतन्त्रे–

"एकोनविंशत्यर्णो यो यो मन्त्रः प्रणवान्वितः। महामायाङ्कुशैर्युक्तस्तं प्रध्वस्तं वदन्ति ह"॥

इति। पिङ्गलामतेऽपि– "यदि सोऽष्टादशाक्षरः।

विंशत्येकोनवर्णश्च मायौङ्काराङ्कुशान्वितः। प्रध्वस्त इत्यसौ मन्त्रः शम्भुदेवेन कीर्तितः"॥

इति। अत्र विशेषणद्वयम्॥ सप्तवर्ण इति– चत्वारिंशल्लिपिश्चत्वारिंशद्वर्णः। भैरवीतन्त्रे –

"सप्ताक्षरो भवेद्बालः कुमारश्चाष्टवर्णकः। चत्वारिंशाक्षरः प्रौढस्तरुणः षोडशाक्षरः"॥

इति। त्रिंशद्वर्ण इति– चतुःशताक्षरः चतुरधिकशताक्षरः। उक्तं च भैरवीतन्त्रे–

१. 'मन्त्रा' ख. ग. पाठः।

"त्रिंशद्वर्णं शतार्णं वा चतुःषष्टयक्षरं तथा। चतुरूर्ध्वशतार्णं वा वृद्ध इत्यभिधीयते"॥

इति। नवाक्षरे इति—ध्रुवयुतः प्रणवयुक्तो नवाक्षरो निस्त्रिंश इत्यर्थः। "नवाक्षरोऽथ निस्त्रिंशो ध्रुवयुक्तोऽथ मृत्युदः" इति भैरवीतन्त्रवचनात्॥ यस्येति—हृदयं नमः, शिरोमन्त्रः स्वाहाकारः, एतद्द्वयमन्ते यस्य नास्ति। शिखा वषट् वर्म हुंकारः, एतद्द्वयं च वौषट् फट्कारो वा, शिवा शिवो हकारः शक्त्यर्णः सकारः, एतद्द्वयं वा मध्ये नास्ति स निर्बीज इत्यर्थः। तदुक्तं भैरवीतन्त्रे—

"हृच्छिरोऽन्ते[1] शिखा वर्म मध्ये नेत्रास्त्रकेऽथवा। शिवशक्त्यात्मकौ वर्णौ न स्तो यस्य स मन्त्रराट्[2]। निर्बीज इति सम्प्रोक्तः सर्वकर्मसु गर्हितः"॥

इति। एष्विति—अत्र पूर्वश्लोके स्थानद्वयस्योक्तत्वादेष्विति बहुवचनप्रयोगः कथमिति चेत्? सत्यम्। तन्त्रान्तरे निर्बीजलक्षणवचने आदावपि तद्दोषप्रतिपादकाक्षरमस्तीत्यभिप्रायेण बहुवचनप्रयोगः कृतो ग्रन्थकर्त्रा। तथा च लक्षसागरे— "निर्बीजस्तु समाख्यात आदौ ओङ्कारवर्जितः" इति। एषु आदिमध्यावसानेषु। अत्रापि स्थानत्रयेऽपि मिलित्वैव फट्कारषट्कं ज्ञेयम्॥ मन्द इति—पङ्क्त्यक्षरो दशाक्षरः। उक्तं च भैरवीतन्त्रे— "दशाक्षरो भवेत् मन्दः" इति॥ कूट इति—वह्न्यक्षरात्मकं बीजं कूटः। स वह्न्यक्षरोऽपि एकाक्षर ऐवति ज्ञेयो निरंशकः। द्विवर्णः सत्त्वहीनो बलवर्जितः। चतुर्वर्णः केकरः। पिङ्गलामतेऽपि— "ध्रुवहीनश्चतुर्वीजैः षड्भिर्वा केकरो मतः।" इति विशेष उक्तः॥ षडक्षर इति— वीजहीन[3] ओंकारादिरहितः— अत्रार्धसप्ताक्षरतार्धद्वादशाक्षरता वा अन्ते व्यञ्जनयोगेन ज्ञेयं सार्धवीजत्रयत्वं च, एते धूमिताः इत्यर्थः। लक्षसागरे—

"अर्धसप्ताक्षरो मन्त्रः सार्धद्वादशवर्णकः। धूमितः स समाख्यातः सार्धवर्णत्रयोऽथवा"॥

इति। एकविंशतीति स्पष्टार्थः॥ द्वाविंशतीत्यपि स्पष्टार्थः॥ चतुर्विंशतीति—क्षुधार्त—इति स्पष्टार्थः॥ पुनश्चतुर्विंशतीति दृप्तप्रतिपादकः स्पष्टः। षड्विंशत्यक्षर इत्यपि। त्रिंशदेकोनवर्णो वेति एकोनत्रिंशद्वर्णः "एकोनत्रिंशद्वर्णश्चाप्यङ्गहीन उदाहृतः"। इति भैरवीतन्त्रात्। लक्षसागरे तु अष्टत्रिंशाक्षरश्चेति चतुर्थः प्रकारोऽप्युक्तः। अष्टाविंशत्यक्षर इत्यादि च॥ चत्वारिंशतमिति—चत्वारिंशद्वर्णमारभ्य त्रिषष्टयक्षरपर्यन्ता मन्त्रा एकैकाक्षरवृद्धया। चतुर्विंशतिविधाः सव्रीडा इति॥ पञ्चषष्ट्यक्षरा इति स्पष्टः। एकोनेति—पञ्चषष्ट्यक्षर आदिर्येषां पञ्चषष्ट्यक्षरादीनि स्थानभ्रष्टा इति॥ त्रयोदश—इति स्पष्टार्थः। शतमिति शतद्वयं द्विनवतिश्चेति एक एव भेदः, द्विनवत्यधिकं शतद्वयमित्यर्थः। सार्धशतद्वयं, द्विनवतिरेकहीना एकनवत्यधिकशतद्वयमित्यर्थः। तेन शतसंख्यावर्णाः सार्धशतवर्णा द्विनवतिशतवर्णा एकनवत्यधिकशतद्वयवर्णाः शतत्रयवर्णाश्चेति पञ्च प्रकाराः निःस्नेहदोषेषु स्पष्टाः स्युरित्यर्थः। अत्र केचित् शतद्वयं त्वेकः प्रकारः द्विनवतिरन्यः, एकनवतिरपरः। इति वदन्ति तदसङ्गतम्। षट्षष्टयक्षरमारभ्यैकोनशतवर्णपर्यन्तानां स्थानभ्रष्टा इत्युक्तेः। अत एव यत्संख्या इत्युक्तं, येषां मन्त्राणां वर्णसंख्या शताधिका ते निःस्नेहा इत्यन्वयः॥ चतुःशतानीति सुगमः। सहस्रार्णा इति—ये दण्डकाः स्तोत्ररूपास्ते पीडिताह्वयाः ज्ञातव्याः॥ तथेति— यथैते मन्त्रास्तद्दोषास्तथैव विद्या अपि सदोषा एव ज्ञेयाः। उक्तं च भैरवीतन्त्रे—

"यथा मन्त्रास्तथा विद्या भेदभिन्नास्ततः परम्। ज्ञातव्या देशिकेन्द्रैस्तु नानातन्त्रेषु भाषिताः"॥

---

१. 'यत्' ग. पाठः। २ 'वर्णराट्' ग. पाठः। ३ 'बीजवर्जितः' क. पाठः।

इति। काम्यकर्मस्वित्युक्तेर्निष्कामानां नैते दोषा मन्त्रजपे बाधका इति भाति।।

अथोक्तदोषदुष्टानां मन्त्राणां तद्दोषनिरसनोपायः शारदायाम्—

"इत्यादिदोषदुष्टांस्तान्मन्त्रानात्मनि योजयेत्। शोधयेद्बद्धपवनो बद्ध्या योनिमुद्रया"।।

इति। योनिमुद्रालक्षणं तूक्तं रुद्रयामले भैरवीपटले—

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं योनिस्थं परिकीर्तितम्। हृद्ग्रन्थि ब्रह्म[1]संस्थानं स्वयम्भूर्वामवाचकः।।
इतरं चान्तरालस्थं चिद्ग्रन्थिस्थं तथा परम्। महापद्मवनं यत्तद्योगपीठं प्रकीर्तितम्।।
कदम्बगोलकैवे[2]षद्वक्त्रं (?) तं बिन्दुरूपिणम्। ब्रह्मरूपं तु तत्रैव सुषुम्नाधारमण्डलम्।।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि मन्त्राणां वाचकानि तु। पूर्णाख्यं बैन्दवं तत्त्वं कोदण्डद्वयमध्यगम्।।
तदूर्ध्वं नादनाम्ना तु उड्यानं च भवेत्ततः। कामरूपं भवेच्छक्तिः शिवाख्यमकुलं प्रिये।।
सहस्रारं महापद्मं रक्तकिञ्जल्कशोभितम्। तत्रस्थो लभते सम्यग् वर्षन्तं रक्तबिन्दुकान्।।
तव व्यापकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः। गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रबन्धयेत्।।
प्रमद्योनिगतं ध्यात्वा कामं बन्धूकसन्निभम्। ज्वलत्कालानलप्रख्यं तडित्कोटिसमप्रभम्।।
तस्योर्ध्वे तु शिखा सूक्ष्मा बिन्दुस्था परमा कला। तया सह तमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत्।।
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु। अमृतं यद्विसर्गस्थं परमानन्दलक्षणम्।।
रक्तांशु जायते तस्य[3] धारापातप्रवर्षिणीम्। पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत् कुलम्।।
पुनरेवाकुलं गच्छेत् मात्रायोगेन नान्यथा। सा च प्राणः समाख्याता तन्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरि।।
उद्घातः प्रोच्यतेऽसौ हि प्राणोऽन्तर्विशते यदा। एवमभ्यस्यतस्तस्य अहन्यहनि निश्चयात्।।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात्। उद्भिज्जादिश्च या सृष्टिरस्यां योनौ प्रवर्तते।।
पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशिवान्तका। योनिमुद्रासमभ्यासात्तव बन्धः प्रकीर्तितः।।

इति। अस्यार्थः— तत्र गुरुः सिद्धासनस्थो वामपार्ष्णिना गुदमेढ्रान्तरं निष्पीड्य, तदुपरि दक्षिणापादाङ्गुल्यग्रयोरन्योन्यसम्मर्दो यथा भवति तथा दक्षिणपार्ष्णिना लिङ्गमूलं निष्पीड्य, स्थिरकायः समुपविश्य गुदमाकुञ्च्यापानवायुमुत्थाप्य, समवरुद्धप्राणापानयोः सङ्घट्टं कुर्वन् एकचित्तो मूलाधारगतचित्स्वरूपे[4] कुण्डल्यात्मके परमात्मनि स्वसाध्यमन्त्रं ज्ञातदोषं सञ्चिन्त्य, तन्मन्त्राक्षराण्येकैकशः सुषुम्नामार्गेण मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्यषट्चक्रभेदनक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रं प्रापय्य आज्ञाविशुद्धानाहतमणिपूरकस्वाधिष्ठानचक्रभेदक्रमेण मूलाधारं प्रापयेदिति तत्तन्मन्त्रमृष्यादिन्यासपूर्वकं यथोक्तभावनयाष्टोत्तरसहस्रं जपेदित्यान्तरो[5] मन्त्रसंस्कारः।। अथ बाह्यक्रियारूपा मन्त्रदोषनिरासाय दशविधसंस्काराः। तत्र शारदायाम्—

मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धिदायिनः। जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा।।
अथाभिषेकोविमलीकरणाप्यायने पुनः। तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।।
मन्त्राणां मातृकामध्यादुद्धारो जननं स्मृतम्। प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णाञ्जपेत् सुधीः।।

---

१. 'बिन्दुसंस्थानं' क. पाठः। २. 'कं वेष' ख. पाठः। ३. भूतरक्तांशुतेजाह्या (?) क. पाठः। ४. 'चिन्मये' ख. पाठः।
५. 'न्तरितो' ग. पाठः।

एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्रतत्त्वविशारदाः। भूर्जे विलिख्य मन्त्राणांस्ताडयेच्चन्दनाम्भसा।।
प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं तदुदाहृतम्। विलिख्य मन्त्रं तं मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः।।
तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्याद्यान्तेन बोधनम्। स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया।।
अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद् विशुद्धये। सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत्।।
मन्त्रे मलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं त्विदम्। तारं व्योमाग्निमनुयुक् दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः।।
कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः। तेन मन्त्रेण विधिवद् एतदाप्यायनं मतम्।।
मन्त्रेण वारिणा पात्रे तर्पणं तर्पणं स्मृतम्। तारमायारमायोगे मनोर्दीपनमुच्यते ।।
जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम्। संस्कारा दश सम्प्रोक्ताः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः।।
यान् कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमश्नुते।।

इति। अथाष्टश्लोकानामयमर्थः। मन्त्राणामिति—तत्र क्वचित् श्रीपर्णे चन्दनादिपीठे कुङ्कुमादिना वक्ष्यमाण-पाञ्चभौतिकचक्रं विलिख्य तत्र लिखितक्रमेणाकारादिक्षकारान्तां मातृकां विलिख्य तत्र मातृकासरस्वतीमावाह्य सम्पूज्याष्टोत्तरशतं मातृकां जपित्वा तन्मध्यात्स्वाभीष्टं मन्त्रं स्वरव्यञ्जनबिन्दुविसर्गसंयोगाक्षराणि पृथक् पृथगुद्धृत्यैकीकृत्य स्वगुरूपदेशेन ज्ञातं मन्त्रं जनयेदिति जननम्।। प्रणवेत्यादि—प्रागुद्धृतस्य मन्त्रस्य एकैकमक्षरं प्रणवान्तरितं कृत्वाष्टोत्तरशतं जपेत् यथा "नमः शिवाय" इत्यत्र ॐनंॐमंः ॐमित्यादि प्रत्यक्षरं योजयित्वा जपेदित्यर्थः। इति जीवनम्।। भूर्जे इति—भूर्जपत्रे कुङ्कुमादिद्रव्यैस्तं मन्त्रं विलिख्य चन्दनमिश्रितजलेन यमिति वायुबीजमुच्चरन् प्रक्षरं शतत्यवारं ताडयेदिति ताडनम्।। विलिख्येति—तत्र प्राग्वत्पीठे मन्त्रं विलिख्य तन्मन्त्राक्षरसंख्यातानि करवीरपुष्पाण्यादाय रमिति वह्निबीजमुच्चरन् प्रत्यक्षरं तैः पुष्पैः शतवारं हन्यादिति बोधनम्।। स्वतन्त्रेति—तत्र प्राग्वत् पीठे कुङ्कुमगोरोचनादिभिरष्टदल-कमलं कृत्वा तत्कर्णिकां कुङ्कुमादिद्रव्यैर्मालतीकलिकाभिस्तन्मन्त्राक्षरसंख्याभिरेकया कलिकया वा "अमुकमन्त्रमभिषिञ्चामि नमः" इत्यभिषेकं सुगन्धिजलेनैकैकपल्लवेनाष्टोत्तरशतवारं कुर्यादित्यभिषेकः।। सञ्चिन्त्येति-तत्र स्वमूलाधारे वह्निमण्डले वक्ष्यमाणज्योतिर्मन्त्रं सञ्चिन्त्य तदूर्ध्वे[1] संस्कर्तव्यमन्त्रं विभाव्य, ज्योतिर्मन्त्रस्य तेजसा संस्कर्तव्यं मन्त्रमाणवकार्ममायीयमलत्रयं सहजागन्तुकमायाख्यं मनसा पुनः पुनरेकमेकं निर्दह्य तं मन्त्रं विगतमलत्रयं ध्यायेदिति विमलीकरणम्।। ज्योतिर्मन्त्रमाह—तार इति। तारः प्रणवः व्योम हकारः, अग्नी रेफः मनुरौकारः, दण्डी अनुस्वारः।। कुशोदकेनेति—तत्र प्राग्वत्पीठादौ तन्मन्त्रं कुङ्कुमादिभिर्विलिख्य ताम्रादिपात्रे कर्पूरादिवासितं शुद्धजलमापूर्य लिखितमन्त्रेणैवाष्टोत्तरशतवारमभिमन्त्र्य तेनैव तज्जलबिन्दुभिः कुशैः प्रत्यक्षरं त्रिस्त्रिः प्रोक्षयेदित्याप्यायनम्।। मन्त्रेणेति-तत्र ताम्रादिपात्रे प्राग्वत् मन्त्रं विलिख्य पात्रान्तरे कर्पूरादिवासितं शुद्धजलमानीय तमेव मन्त्रं पठन् अन्ते "अमुकमन्त्रं तर्पयामि नमः" इति अष्टोत्तरशतवारं लिखितमन्त्रस्योपरि अञ्जलिदानेन तर्पयेदिति तर्पणम्।। तारमिति—तारं प्रणवः, माया भुवनेश्वरी, रमा श्रीबीजम्। योगलक्षणं तु "आदौ योगो भवेदि"त्युक्तम्। अयमर्थः— प्रणवभुवनेश्वरीश्रीबीजान्ते साध्यं मन्त्रं कृत्वाष्टोत्तरशतवारं जपेदिति दीपनम्।। तदनन्तरश्लोकस्यार्थः स्पष्टः इति दश संस्काराः।।

अथ कादिमते प्रोक्तं मन्त्राणां दोषसञ्चयम्। वक्ष्ये तत्परिहाराय साधकानां हिताय च।।

---

१. 'र्ध्वं' क. पाठः।

तत्र श्रीतन्त्रराजे —

मन्त्रदोषांस्तु विज्ञाय गुरुः परिहरेत् क्रमात्। अन्यथा स गुरुः शिष्यं निहन्त्येवाचिराद् ध्रुवम्।।
तेन तत्परिहारं च शृणु देवि समाहिता। परिहारप्रकारं तु वक्ष्ये योगेषु तत्त्वतः ।।
दग्धः षट्कर्णको मन्त्रस्त्रस्तः स्यादधिकैर्जपात्। गर्जितस्त्वविधिप्राप्तः शत्रवो वैरिकोष्ठगाः।।
बाला लघ्वक्षरप्राया वृद्धा गुर्वक्षरान्विताः। निर्जिता कर्मबाहुल्यादसहाः[२] सत्त्ववर्जिताः।।
अपूर्णरूपाश्छिन्नाः स्युः स्तम्भिताः सानुनासिकाः। अकालविनियोगेनाप्रबोधः स्वापगाक्षपात्।।
मन्त्राः पत्रेषु पठनादन्यवर्णैस्तु कीलिताः। रुद्धा विसन्धिकाः प्राप्तदुःखा वैरिसमन्विताः।।
खण्डीभूतास्त्ववंशजपादङ्गहीनास्त्वसंवृताः । अपूर्णेनोपदिष्टा ये हीनवीर्यास्तु ते मताः ।।
सदा प्रयोगात् कुण्ठत्वं क्लिष्टतातिविलम्बनात्। रुष्टाः प्रलपनैर्जापादन्यमन्त्रैः सहाविलाः।।
उपेक्षावस्थया जापाद्वैषम्यादवमानिताः। पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा दोषांस्ताञ्शमयेद् गुरुः।।
बन्धनं योनिमुद्राया मन्त्राणां वीर्ययोजनम्[३]। उभयं बोधयन् शिष्यं संरक्षेद् गुरुरात्मवान्।।
गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं तु वेदयेत्। आदिमान्त्यविहीनास्तु वर्णाः स्युः शरदभ्रवत्।।
तस्मादादित एवासौ ब्रूयात्तत्तदहङ्कृतिम्[४]। यदहङ्कारविज्ञानान्मत्समो जायते नरः।।
अनादिक्रमसंसिद्धमातृकाद्यन्तयोजनात्। तादात्म्यसिद्धिस्तां विद्धि सर्वमन्त्रार्थविग्रहाम्।।

दग्ध इति स्पष्टोऽर्थः। अथवा यस्मिन् मन्त्रे आदिमध्यान्तेषु कूर्चबीजषट्कं दृश्यते स मन्त्रो दग्ध इत्यर्थः।। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

आदौ कूर्चद्वयं मध्ये कूर्चबीजद्वयं तथा। अन्ते कूर्चद्वयं यस्मिन् मन्त्रराजे प्रदृश्यते।। १।।
स तु षट्कर्णको मन्त्रो दग्ध इत्यभिधीयते। जपतां सिद्धिरोधः स्यात् त्याज्यः सर्वैः सदा बुधैः।।२।।

अत्र कर्णः कूर्चबीजम्। तदुक्तं तत्रैव —

हुङ्कारस्यैव नामानि कूर्चं माया सरस्वती। जलं नीरं तथा कर्णं तटं कूलं महेश्वरि।।

इति। अधिकैर्जपात् त्रस्त इति— यस्मिन् मन्त्रेऽधिकाक्षरयोगः कृतः स मन्त्रः त्रस्त इत्यर्थः।। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे —

आदावन्ते च मध्ये वाप्यधिकाक्षरयोगतः। त्रस्तः सोऽभिहितो मन्त्रो जपतामशुभप्रदः।। १।।

इति। यद्यपि

वर्षत्रयं जपित्वा (तु) लोपामुद्रां शुभोदयाम्। ततश्च हंसं संयोज्य मन्त्राद्ये प्रजपेद् बुधः।। २।।
ततो वर्षत्रये जाते मध्यादावपि योजयेत्। ततो वर्षत्रये जाते शक्त्यादावपि योजयेत्।। ३।।
एवं यो भजते विद्यां फलमाप्नुत्तरोत्तरम्। अन्यथा हन्ति सा विद्या साधकं नात्र संशयः।। ४।।

इति त्रिपुरार्णवोक्तविरुद्धं तथाप्यादावेवाधिकाक्षरयोगस्य निषेध्यत्वं बोध्यम्।। गर्जित इति— उपदेशस्य शास्त्रे यो विधिरभिहितस्तं विना प्राप्तो[५] मन्त्रो गर्जित इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे —

---

१. 'क्षणात्' क. पाठः। २. 'दहसाः' क. पाठः। ३. बीजयोजनम् ख. पाठः। ४. 'कुर्यात्' ख. पाठः। ५. 'प्तमन्त्रो' ख. पाठः।

"मोहाद्वा लोभतो वापि विधिमुत्सृज्य यो जडैः। दीयते स तु मन्त्रस्तु गर्जितो गर्हितः सदा"॥

इति। शत्रव इति— वैरिकोष्ठगा इति स्पष्टोऽर्थः॥ बाला इति—वृद्धा इति—लघ्वक्षरप्राया बालाः गुर्वक्षरप्राया वृद्धा इत्यर्थः॥ लघ्वक्षरलक्षणं गुर्वक्षरलक्षणं च मातृकाश्वासे ज्ञेयम्॥ निर्जिता इति— कर्मबाहुल्यान्निर्जिता इत्यर्थः॥ तदुक्तं त्रिपुरार्णवे —

स्वतन्त्रोक्तं परित्यज्य ज्ञात्वा वाऽतृप्तितोऽपि वा। स्वगुरुप्रोक्तो वापि मन्त्राः सिद्धिप्रमादपि।१॥

जपतर्पणहोमार्चामार्जनानि पुनः पुनः। कुर्वतो मन्त्रराजः स्यान्निर्जितो गर्हितः सदा॥ २॥

न यच्छति फलं तस्मै कल्पकोटिशतैरपि। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्वतन्त्रोक्तं समाचरेत्।३॥

इति। असह्य इति— अनियमेन जप्तो मन्त्रोऽसह इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे— "नियमस्य च भङ्गेन मन्त्रः स्यादसहः सदा" इति॥ सत्त्ववर्जिता इति— पुरश्चरणवर्जिता इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

"वीर्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः। पुनश्चरणहीनो यो तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः॥ १॥

नित्यनैमित्तिकाद्यैश्च पुरश्चर्यादिभिर्मनुः। भवेत् सत्त्वगुणोपेतः सेवया नृपतिर्यथा।२॥

सत्त्वं गुणं समापन्नो मन्त्रः कल्पलतासमः"॥

इति अपूर्णरूपा इति— स्वरवर्णपल्लवरहिता इत्यर्थः॥ तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

पल्लवाद्यैर्विलोपेन स्वरवर्णविलोपतः। अपूर्णत्वं समापन्नः स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः॥ १॥

इति। त्रैलोक्यडामरतन्त्रे —

मन्त्राणां पल्लवो न्यासो मन्त्राणां प्रणवः शिरः। शिरः पल्लवसंयुक्तो मन्त्रः कामदुघाफलः।१॥

न्यासं विना भवेन्मूकः सुप्तः स्यादासनं विना। पल्लवेन विना मन्त्रो नग्नः स परिकीर्तितः।२॥

शिरोहीनो मृतः प्रोक्तो वृथा मन्त्रो गुरुं विना। हतो दुष्ठ्य दत्तो यो निर्वीर्यश्चाधिकाक्षरः।३॥

अन्तरान्येन बीजेन व्याप्तः कीलित उच्यते। यस्य जाप्यं शृणोत्यन्यः स मन्त्रः शून्य उच्यते।४॥

ऋषि[1] दैवतच्छन्दोभिः परित्यक्तो भुजङ्गमः। मूकः सुप्तो मृतो नग्नो वीर्यहीनो वृथा हतः।५॥

भुजङ्गः कीलितः शून्य ईदृङ्मन्त्रो वृथाफलः। यत्नाद् विवर्जयेन्मन्त्रं यदि तत्सिद्धिमिच्छति।६॥

नमोन्तः शान्तिके पुष्टौ प्रणिपाते च कीर्तितः। वश्याकर्षणहोमेषु स्वाहान्तः सिद्धिदायकः।७॥

वौषट्पल्लवसंयुक्तो मन्त्रः पुष्ट्यादिसाधकः। हुङ्कारपल्लवोपेतो मारणे ब्राह्मणं विना॥ ८॥

मन्त्रभजन[2]कार्ये च सुघोरभयनाशने। वषडन्तो महाकालग्रहमालाविनाशकः॥ ९॥

खण्डनोच्चाटने वेधे मन्त्रः फट्[3] पल्लवान्वितः। ॐकारमुखरौ मन्त्रौ वेदागमसमुद्भवौ॥ १०॥

पल्लवोऽस्त्यागमे मन्त्रे वैदिके नास्ति पल्लवः। पल्लवेन विना जाप्यो मन्त्रो वेदसमुद्भवः।११॥

न नग्नः कीर्त्यते यस्मादैश्वर्यपरिधानवान्॥

इति। स्तम्भिता इति—अनुनासिकाक्षरसहिता इत्यर्थः। सानुनासिकनिरनुनासिकलक्षणं तु मातृकाश्वासे ज्ञेयम्। त्रिपुरार्णवेऽपि—"सानुनासिकवर्णेन संयुक्ताः स्तम्भिता मताः"। इति अकालविनियोगेनेति—प्रमत्ता

---

१. 'दैवता' ग. पाठः। २. 'मज्ञन' ग. पाठः। ३. 'षट्' ग. पाठः।

इति पूरणीयम्। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे —

स्वप्नाप्ते ऋणप्राप्ते कालेषु विनियुज्यते। अन्यदा विनियुक्तश्चेन्मन्त्रो मत्त उदाहृतः।। १ ।। इति।

काललक्षणं तु काम्याश्वासे बोद्धव्यम्। अप्रबोध इति स्वापकालजपादित्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः। स्वापकालजपान्मन्त्रोऽप्रबुद्धो हन्ति मन्त्रिणम्।। १ ।।

इति मन्त्रा इति—पत्रेषु पठनाज्जपनात् क्रुद्धा इति पूरणीयम्। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे —

पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा जपेद् यः साधकाधमः। चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुः कीर्तिर्यशः श्रियः।।१ ।।

जपात्पत्रेषु मन्त्रः स्यात् क्रुद्धः सन् हन्ति साधकम्। इति।

यस्मिन्मन्त्रे यो वर्णः कीलत्वेनाभिमतस्तं विहायेत्यर्थः।। तदुक्तं योगिनीहृदये—

बीजं मन्त्रस्यादिमं स्यान्मन्त्रमध्यं तु कीलकम्। मन्त्रान्ते शक्तिरुद्दिष्टा बीजकीलकशक्तयः।।१ ।।

यद्वर्णः कीलकत्वेन कीलितः सिद्धिरोधकृत्।

इति। रुद्धा इति— सन्धिरहिता रुद्धा इत्यर्थः। "विसन्धिको भवेद् रुद्धः सर्वकर्मसु गर्हितः"। इति योगिनीहृदयवचनात्।। दुःखा इति— वैर्यक्षरसमन्विता दुःखिता इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे— "दुःखितास्ते समुद्दिष्टा वैरिवर्णैश्च संयुताः।" इति। खण्डीभूता इति— अंशजपात् खण्डीभूता इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे— "खण्डिता वर्णलोपेनेति।। अङ्गहीना इति— असंवृताः कवचादिरहिता इत्यर्थः। तदुक्तं योगिनीहृदये—

"अङ्गप्रत्यङ्गकवचस्तोत्रपाठैर्विना मनुः। असंवृतः समाख्यातः सिद्धिं नैव प्रयच्छति"।।

इति। अपूर्णेनेति— अपूर्णेनोपदिष्टा हीनवीर्या इत्यर्थः। तथा च —

'द्वितीयेनाभिषेकेन पूर्णत्वं याति तन्मनुः। अन्यथा हीनवीर्यः स्यात्सर्वकर्मबहिष्कृतः''।।

इति। योगिनीतन्त्रवचनात्। सदा प्रयोगादिति— सर्वदा काम्यप्रयोगात् मन्त्रस्य कुण्ठता भवतीत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे —

"प्रयुज्यन्ते सदा मन्त्रास्तत्तच्छान्तिं विना नरैः। ते मन्त्राः कुण्ठतां यान्ति तस्माच्छान्तिं समाचरेत्"।

इति। अत्र शान्तिस्त्वयुतसावित्रीजपसहितायुतमूलमन्त्रजपः। तद्विधिं प्रयोगपटले वक्ष्यामः।। क्लिष्टेति— दीर्घाक्षरस्य प्लुतत्वेनोच्चारणेन ह्रस्वस्य दीर्घत्वेनोच्चारणेन च मन्त्रस्य क्लेशो भवतीत्यर्थः। तथा च तन्त्रान्तरे—

"एकमात्रो लघुश्चैव द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेय इत्येतत्स्वरलक्षणम्।। १ ।।

ह्रस्वत्वेन च दीर्घस्य दीर्घत्वेन प्लुतस्य च। प्लुतत्वेन च दीर्घस्य ह्रस्वे दीर्घतया पुनः।। २ ।।

उच्चारणवशान्मन्त्रः क्लिष्टो भवति नान्यथा। यो मन्त्रः क्लिष्टतां प्राप्तः स मन्त्रः सिद्धिरोधकृत्।।३ ।।

रुष्ट इति— प्रलपनजपाद् रुष्टा भवन्तीत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

"मौनं विना जपेन्मन्त्रं राक्षसैर्गृह्यते जपः। मन्त्रोऽपि रुष्टतां याति सिद्धिं नैव प्रयच्छति"।।

---

१. 'विने' क. पाठः।

इति। अन्यमन्त्रैरिति— अन्यदेवतामन्त्रैः सह मूलमन्त्रजपादित्यर्थः। तदुक्तं योगिनीहृदये—

मन्त्रान्तरं न गृह्णीयाद् वर्जयेद् देवतान्तरम्। प्रयोजनान्तरं[1] चैव वर्जयेत् साधनान्तरम्[2]॥
तदा मन्त्रो भवेन्नूनं क्षिप्रं कामदुघाफलः। चतुर्भिः संयुतो मन्त्रो भवेन्मलिनसंज्ञकः॥

इति। उपेक्षेति—उपेक्षा देवतागुरुमन्त्रान्यतमेषु, अवस्थातुरता, वैषम्यं मन्त्रग्रहणोत्तरमदृष्टवशात् किञ्चिद्र दुःखं चेत्प्राप्यते तदायं मन्त्रः किमर्थं गृहीत इति मनसि निधाय जपोऽपि क्रियते स एव वैषम्यजपः इत्यर्थः। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

"मन्त्रे गुरौ देवतायामुपेक्षा क्रियते यदि। अवस्थया वा वैषम्यान्मन्त्रः स्यादवमानितः"।

इति। बन्धनमिति— योनिमुद्राबन्धनेन सर्वे दोषा गच्छन्तीत्यर्थः। तत्प्रागुक्तमुभयमतसाधारणम्। बाह्यसंस्कारे विशेषः। अनादीति— मातृकाद्यन्तयोजनं प्रत्यर्णस्य॥

अथ मन्त्रमेलनप्रकारः। तदुक्तं तन्त्रराजे —

नित्यानां त्रैपुराणां च नावेक्ष्यास्त्वंशकादयः। तथाप्यत्रोच्यते किञ्चिदाभिचारादिसिद्धये॥ १॥
अश्विन्यादिषु ऋक्षेषु बिन्दुसर्गान्त्यवर्जितम्। चतुरो योजयेदाद्यान् बिन्दुसर्गौ तु सर्वगौ॥ २॥
तेन मन्त्रादिवर्णेन नाम्नश्चाद्यक्षरेण च। गणयेद्यत्तु षष्ठं वाप्यष्टमं द्वादशं तु वा॥ ३॥
रिपोर्मन्त्रादिवर्णः स्यात्तं न तस्य हितं वदेत्। राशिष्वन्येषु ऋक्षेषु सप्तपञ्चतृतीयगैः॥ ४॥
साध्यानामपि विज्ञेयमंशकाद्यमनुग्रहे । यतस्ते तत्त्वविज्ञानरहितास्तेन चोदितम्॥ ५॥

इति। नित्यानामिति— यावन्तो नित्या मन्त्रा यावन्तस्त्रिपुरामन्त्रास्तेषामंशकादयो मन्त्रमेलनप्रकारा नावेक्षणीया इत्यर्थः॥ तथापीति— आभिचारादीति। अयमर्थः— नित्ये नैमित्तिके नावेक्षणीया इत्यर्थः। काम्येऽवेक्षणीया इत्यर्थः। अश्विन्यादिष्विति—ऋक्षेषु राशिचक्रेषु बिन्दुसर्गान्त्यवर्जितं कृत्वा चत्वारि चत्वार्यक्षराणि विलिखेत्, अश्विन्यादिषु नक्षत्रचक्रेषु बिन्दुसर्गौ सर्वगौ कृत्वा त्रीणि त्रीण्यक्षराणि लिखेदित्यर्थः। तदुक्तं मातृकार्णवे—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च चतुःसूत्राणि पातयेत्। एकैकं कोणदेशेषु चतुःसूत्राणि विन्यसेत्॥ १॥
तेन खण्डानि जायन्ते रविसंख्यानि नान्यथा। तेषु पूर्वादितो लेख्यं प्रादक्षिण्यक्रमेण तु॥२॥
बिन्दुसर्गौ सकारं च हित्वा वर्णचतुष्टयम्। तथाष्टचत्वारिंशानां वर्णानां परमेश्वरि॥३॥
तेन क्रमेण मेषादीन् राशींश्चैव प्रकल्पयेत्। जायते राशिचक्रं हि साधकोऽत्र विचारयेत्॥४॥

इति। नक्षत्रचक्रमपि तत्रैव —

रविखण्डात्मकं चक्रं प्रागुक्तविधिना लिखेत्। तेषु खण्डेषु पूर्वादि न्यसेद्वर्णांस्त्रिशः क्रमात्॥५॥
देवीं मधुमतीनाम्नीं षट्त्रिंशद्व्यञ्जनात्मिकाम्। तथैव बिन्दुयुक्तां च सर्गयुक्तां तथैव च॥ ६॥
खण्डे खण्डे च जायन्ते वर्णा नव नव क्रमात्। सप्तविंशतिऋक्षाणामष्टोत्तरशताङ्घ्रिषु॥ ७॥
एकस्यैकस्य राशेस्तु नवांशक्रमभेदतः । विचारयेन्महाचक्रे साधक ऋक्षसंज्ञके॥ ८॥

इति। योगिनीहृदये —

---

१. 'रै' क. पाठः। २. 'रै' क. पाठः।

षट्त्रिंशद्व्यञ्जनाकारा प्रोक्ता मधुमती च सा। पञ्चाशद्वर्णनिष्पन्ना मालिनी कालिकामते।। १।।
कालीमते तु पञ्चाशद्वर्णम (व्यैव?व्यौ च) ते उभे। तत्तन्मते तथा प्रोक्तं तत्तदाद्यं सुरेश्वरि।।२।।

इति। तेनेति—द्वादशखण्डात्मके चक्रे राशिमये ऋक्षमये च प्रादक्षिण्यक्रमेण गणयेत्, यस्मिन् खण्डे मन्त्राद्यक्षवर्णस्तिष्ठति तमारभ्य नामाद्यक्षरं यस्मिन् खण्डे तिष्ठति तत्पर्यन्तम्। अथवा नामाद्यक्षरमारभ्य मन्त्राद्यक्षरपर्यन्तं गणयेत्। तदा षष्ठं चाष्टमं द्वादशं तु वा मन्त्रादितो नामाद्यक्षरं नामादितो मन्त्राद्यक्षरं वा भवति स मन्त्रो रिपोरहितं भवतीत्यर्थः। अभिचारेषु प्रशस्तः इत्यर्थः।। राशिष्विति— तथैव सप्तमपञ्चमतृतीयं चेद्भवति अनुग्रहे प्रशस्त इत्यर्थः। सिद्धारिचक्रमाह—

प्राक्प्रत्यगुदक्षिणोदक् च सूत्रपञ्चकयोगतः। कोष्ठानि षोडशात्र स्युस्तेषु वर्णान् क्रमाल्लिखेत्।।१।।
चतुश्चतुर्विभागेन कल्पयेत्तानि वै क्रमात्। प्रथमप्रथमे त्वाद्यं द्वितीयप्रथमे तथा।। २।।
द्वितीयमन्यतश्चान्यत् तथान्यदपि कल्पयेत्। तत्तत्कोष्ठेषु विलिखेत् तत्तत्पञ्चममक्षरम्।। ३।।
एवं चतुर्षु कोष्ठेषु क्षान्तावधि समालिखेत्। स्वनामाद्यक्षरं यत्र कोष्ठे संदृश्यते ततः।। ४।।
सिद्धादीन् गणयेद्यावन्मन्त्राद्यक्षरदर्शनि। सिद्धसिद्धो जपात्सिध्येद् द्विगुणात्सिद्धसाध्यकः।। ५।।
सिद्धे सुसिद्धे सम्प्राप्त्या सिद्धारिर्हन्ति गोत्रजान्[१]। साध्यसिद्धोऽतिसङ्क्लेशात् साध्यासाध्योऽतिःखकृत्।।६।।
साध्ये सुसिद्धो भजनात् सिद्धो भवति शाङ्करि। साध्यारिः कन्यकां हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत्।।७।।
सुसिद्धासिद्धोऽध्ययनात्फलं दद्याद्यथेप्सितम्। सुसिद्धसिद्धो जाप्याद्यैः सिद्धये स्याद्यतोऽन्यथा।।८।।
सुसिद्धे तु सुसिद्धस्तु पूर्वजन्मकृतश्रमः। तस्मात्तं सर्वसिद्धीनां साधने योजयेन्मनुम्।। ९।।
आभिचारे रिपोरेवं यदि स्वात्मविपर्यये। सुसिद्धारिरशेषेण स्वकुल्यान् नाशयेद् ध्रुवम्।। १०।।
अरिसिद्धः सुतं हन्यादरिसाध्यस्तु योषितम्।। अरेः सुसिद्धो मन्त्रस्तु कुलोत्सादनकृद्भवेद्।।११।।
अर्यरिः स्वात्महा मन्त्रः सम्प्राप्त्यैव सुनिश्चयः।

स्पष्टोऽर्थः। ऋणधनशोधनप्रकारमाह श्रीतन्त्रराजे —

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिवर्णकम् । त्रिधा कृत्वा स्वरैर्भिन्द्यात्तदन्यद्विपरीतकम् ।। १।।
कृत्याधिको ऋणी ज्ञेयो ऋणी चेन्मन्त्र उत्तमः। स्वयं ऋणी चेत्तन्मन्त्रं त्यजेत् पूर्वं ऋणी यतः।।२।।

इति। अत्र पञ्चाशद्वर्णात्ममातृकायां नामाद्यक्षरमारभ्येत्यादि विचारणीयम्। षट्त्रिंशद्व्यञ्जनेषु वा पूर्ण— मण्डलरूपमातृकायां वा। तदुक्तं त्रिपुरार्णवे—

मधुमत्यां महादेव्यां ऋणशोधो विशिष्यते। कालीमते तु मालिन्यामंशकाद्यं प्रशस्यते।।

इति। अत्र मधुमती षट्त्रिंशद्व्यञ्जनात्मिका महामधुमती पूर्णमण्डलवर्णरूपा, मालिनी पञ्चाशद्वर्णरूपा। तथा च—

कथं ऋणित्वं मन्त्राणां साधकानां च मे वद। पूर्वजन्मकृताभ्यासे पापादस्याफलाप्तिकृत्।।१।।
पापे नष्टे फलावाप्तिः काले[२] देहक्षयाद्धणी। मन्त्रः सम्प्राप्तिमात्रेण प्राक्तनः सिद्धये भवेत्।।२।।

१. 'जम्' ग. पाठः। २. 'पापे' क. पाठः।

सिद्धमन्त्राद् गुरोर्लब्धमन्त्रो यः सिद्धिभाङ्नरः। लक्ष्मीमदादनादृत्य मन्त्रभोगमवाप्नुयात्।।३।।
स मन्त्रस्य ऋणी ज्ञेयो भजनं तस्य पूर्वगम्। तस्माद्गणविशुद्धिस्तु कार्या सर्वैस्तु सर्वतः।।४।।इति।
अथ कालीमते मन्त्रमेलनप्रकारः। तत्रादौ नक्षत्रचक्रं, तत्र श्रीरुद्रयामले—

"राज्यलाभोपकाराय प्रारभ्याविखरः कुरून्। गोपालान् कुकुटीप्रायान् फुल्लावित्युदिता लिपिः"।

अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः। तत्र दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रो रेखाः प्राक्प्रत्यगायताश्च दश रेखाश्च विलिख्य सप्तविंशतिकोष्ठानि कृत्वा, कादि नव यादि नव पादि पञ्च याद्यष्टौ एतत्संज्ञवर्गाङ्क[1]संख्याप्रकारेण सर्वोर्ध्वपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठमारभ्य पङ्क्तिपङ्क्तिक्रमेणाक्षराणि विलिख्य तथैवाश्विन्यादिनक्षत्राणि विलिख्य विचारयेत्। तत्र यस्मिन् कोष्ठे साधकनामाद्यक्षरं[2] तिष्ठति तत्रस्थमङ्कवर्णं च विज्ञाय तत्र यन्नक्षत्रमायाति तत्साधकस्य जन्मनक्षत्रं परिकल्प्य तदारभ्य यस्मिन् कोष्ठे मन्त्राद्यक्षरं[3] तिष्ठति तावत्पर्यन्तं गणयित्वा तन्नक्षत्रं मन्त्रनक्षत्रं विज्ञाय साधकनक्षत्रपर्यन्तम्।।

"नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्राद्यमक्षरम्। जन्म सम्पद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधको वधः।।
मैत्रं परममैत्रं च जन्मादीनि पुनः पुनः"।।

इति कुलार्णवोक्तप्रकारेण जन्मादिनवकं पर्यायेण च विज्ञाय फलानि निर्दिशेत्[4]। तत्र कुलार्णवे—

जनुषस्तारया मृत्युरायुर्नाशस्तृतीयया। मृत्युः पञ्चमतारायां सप्तमो घातको मतः।। १ ।।
द्विचतुःषष्ठनवमगतास्ताराः शुभा मताः। इति ताराफलं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्याद् विशालधीः।।२।।

अथ नक्षत्राणां गणभेदः कुलमूलावतारे —

अश्विनी मृगशीर्षं च तथा पुष्यपुनर्वसू। हस्तः स्वातिरनूराधा रेवती विष्णु दैवतम्।। १ ।।
भरणी रोहिणी चैव आर्द्रा पूर्वोत्तरा तथा। पूर्वाषाढोत्तराषाढा पूर्वाभाद्रोत्तरा नृजः।। २ ।।
कृत्तिकाहिर्मघा चित्रा विशाखा ज्येष्ठका तथा। मूलं धनिष्ठा शतभिषा च रक्षोगणः प्रिये।।३।।

विष्णुः श्रवणनक्षत्रं, दैवतं देवगणः। अत्र विसर्गलोपश्छान्दसः। रुद्रयामले—

"स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा दैवमानुषे। अधमा रक्षसा दैवे मृत्युर्मानवराक्षसे"।।

अत्र राशिचक्रम्। तत्र श्रीकुलार्णवे—

बालं गौरं खुरं शोणं शमीशोभेति राशिषु। क्रमेण भेदिता वर्णाः कन्यायां शादयः स्मृताः।।१।।

अक्षरसङ्केतस्तु प्रागुक्त एव। चक्रं तु प्राक्प्रत्यगायतं रेखाद्वयं मध्ये चतुरस्रं यथा भवति तथा विलिख्य, बहिश्चतुष्कोणेषु एकैकां रेखां कृत्वा द्वादश खण्डानि निष्पाद्य, तेषु खण्डेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन वर्णान् विलिख्य कन्यायां तु अंअःशषसहलक्षेति विलिखेत्। ततस्तेषु प्रागादिषु द्वादशखण्डेषु एकादिद्वादशाङ्कान् विलिख्य तेषु मेषादिद्वादशराशीन् परिकल्प्य विचारयेत्।।

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिवर्णकम्। लग्नं धनं भ्रातृबन्धुपुत्रशत्रुकलत्रकाः।।
मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः।।

१, संज्ञकवर्गाकसंख्या क. पाठः। २. 'नामाक्षरं' क. पाठः। ३ नामाक्षरं क. पाठः। ४. 'दर्शयेत्' क. पाठः।

अथ तेषां फलानि लक्षसागरे —

एको वाप्यथ पञ्चमोऽथ नवमो राशेस्तु सद्बान्धवो
राशिः स्याद्दशमो द्वितीयसहितः षष्ठो भवेत् सेवकः।
रुद्राग्निस्वरसंस्थया यदि मतो मन्त्रो भवेत् पोषकः।
स स्याद् द्वादशकोऽष्टकः श्रुतिमितो मन्त्रः स्मृतो घातकः।।

इति। अथ राशीनां वर्णभेदः —

स्युः कर्कटो वृश्चिकमीनराशिर्विप्रा नृपाः सिंहधनुश्च मेषः।
तुला सकुम्भो मिथुनश्च वैश्याः कन्या वृषोऽजो मकरश्च शूद्राः।।

इति।। अथ पाञ्चभौतिकचक्रम्। तत्र दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

उऊओगजडा वर्णा दबला लश्च पार्थिवाः। ऋॠऔघझढा वर्णा धभवाः सस्तु नीरजाः।। १।।
ईईऐखछठा वर्णास्थफराः क्षश्च वह्निकाः। अआएकचटा वर्णास्तपयाः षस्तु वायुजाः।। २।।
लृॡअंङञणा वर्णा नमशा हस्तु नाभसाः।।

इति। श्रीकुलार्णवे —

महीसलिलयोर्मैत्री अनिलानलयोरपि। सामान्यमग्निभूम्योस्तु सलिलानिलयोस्तथा।। १।।
शात्रवं वैपरीत्येन मित्रं सर्वत्र चापरम्। परस्परविरुद्धानां मन्त्राणां यत्र सङ्गतिः।।
वर्जयेत्तादृशं मन्त्रं नाशकृत्तं कुलश्वरि।।२।।

इति।। अथ सिद्धसाध्यादिशोधनप्रकारः। तत्रादौ द्वादशारचक्रम्, तत्र कुलमूलावतारे—

द्वादशारे तथा चक्रे कूटषण्डविवर्जितान्। आदिहान्तााँल्लिखेद् वर्णान् पूर्वतो यावदीश्वरम्।।१।।
अङ्कानेकादिमान्वन्ताँल्लिखेत् पूर्वादितः क्रमात्। सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिश्चतुर्वर्गः स्फुटो भवेत्।।२।।

एतेषां फलानि कुलमूलावतारे —

नवैकपञ्चमः सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मकः। सुसिद्धो मुनिरुद्राग्नि स्तुर्याष्टद्वादशो रिपुः।।
इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद्विशालधीः।।
तेषां फलानि सिद्धारिचक्रोक्तानि ज्ञेयानि।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-
श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-
श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
विद्यार्णवाख्ये तन्त्रे द्वितीयः श्वासः।। २।।



अथ
श्रीविद्यार्णवतन्त्रे
तृतीयः श्वासः



अथ षोडशारचक्रम्। तत्र कुलमूलावतारे —

"चतुरस्त्रां भुवं भित्त्वा कोष्ठानां षोडशालिखेत्। अकारादिक्षकारान्तां मातृकामपि विन्यसेत्॥१॥
ईशानकोणादारम्य[१] वायव्यान्तं लिखेत् सुधीः। प्रादक्षिण्यक्रमेणैव"॥ इति।

तल्लेखनप्रकारमाह लक्ष्मीकुलार्णवे—

"एकत्रिरुद्रनववनेत्रयुगार्कपङ्क्तिषण्णा[२]गषोडशचतुर्दशपञ्चकेषु।
कोष्ठे लिखेद् मुनितिथीषु तथावशिष्टे वर्णान् हुताशनमितान् क्रमशोऽम्बिकायाः"॥ १॥ इति।
"सिद्धः सिद्ध्यति कालेन साध्यः सिद्ध्यति वा न वा। सुसिद्धस्तत्क्षणादेव अरिर्मूलं निकृन्तति"॥२॥

इति। भैरवीतन्त्रे—

दुष्टर्क्षराशिभूतादिवर्णप्रचुरमन्त्रकम्। सम्यक् परीक्ष्य तं यत्नाद् वर्जयेन्मतिमान्नरः॥ १॥
सिद्धसाध्यादियोगेषु मन्त्रदाने विशेषतः। प्रसिद्धं नाम गृह्णीयात् सुषुप्तो येन जागृयात्[३]॥२॥
आदौ सिद्धस्तथान्ते च सर्वसिद्धिफलप्रदः। आदावन्ते भवेत्साध्यः कृच्छ्रसाध्य उदाहृतः॥३॥
आदावन्ते सुसिद्धस्तु क्षिप्रमेव प्रसिद्ध्यति। आदावन्ते रिपुर्यस्तु साधकं स निकृन्तयेत्॥४॥
आदौ सिद्धोऽन्त्यसाध्ये यो द्विगुणेन स सिद्ध्यति। आदौ साध्यः सुसिद्धोऽन्ते[४] प्रोक्तमार्गेण सिध्यति॥५॥
सुसिद्धादिस्तु साध्यान्तश्चतुर्गणमपेक्षते। आद्यन्तयोर्यदा सिद्धो मध्ये साध्यः प्रजायते॥६॥
आद्यन्तयोर्यदा साध्यो मध्ये सिद्धः प्रजायते। तावुभौ साध्यसिद्धौ हि जपाधिक्येन सिद्ध्यतः॥७॥
आदौ सिद्धेन संयुक्तः सुसिद्धेन तथान्ततः। श्रवणादेव सिद्ध्येत साधकस्य न संशयः॥८॥
सिद्धान्तरितसाध्यस्तु सुसिद्धान्तरितोऽथवा। शीघ्रं सिद्ध्यति मन्त्रो वै यच्चोक्तं[५] मन्त्रवित्तमैः॥९॥
सिद्धेनान्तरितः शत्रुः सुसिद्धेनापि चेद्भवेत्। नासौ रिपुर्भवेन्मन्त्रः किन्तु कृच्छ्रेण सिद्ध्यति॥१०॥
साध्येनान्तरितः सिद्धः सुसिद्धोऽपि तथा यदि। सिद्ध्यत्यतीव कष्टेन साधकस्य न चान्यथा॥११॥
रिपुणान्तरितं सिद्धं सुसिद्धं च तथा त्यजेत्। रिपुणा दूषितो मन्त्रो नैव ग्राह्यः कथञ्चन॥१२॥
अल्पदोषा बहुगुणा मन्त्रा देया विचक्षणैः[६]। सिद्धादिकोष्ठकं ज्ञात्वा ततः सिद्धिः प्रजायते॥१३॥
एकाक्षरे तथा कूटे त्रैपुरे मन्त्रनायके। स्त्रीदत्ते स्वप्नदत्ते च सिद्धादीन्नैव शोधयेत्॥ १४॥

---

१. 'णमा' क. पाठः। २. 'वर्णा' क. पाठः। ३. 'जागयात्' क. पाठः। ४. 'न्त्यः' ख. पाठः। ५. 'यथोक्तं' क. पाठः।
६. 'विचारणैः' क. पाठः।

नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रणवस्य च। सपिण्डाक्षरमन्त्राणां सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।। १५।।
पाशाद्यं त्र्यक्षरं मन्त्रं त्रैपुरं चण्डनायकम्। सौरं मृत्युञ्जयं शाक्तं शाम्भवं विनतासुतम्।। १६।।
सौरमन्त्रास्तु येऽपि स्युर्वैष्णवा नारसिंहकाः। सिद्धसाध्यसुसिद्धारिविचारपरिवर्जिताः।। १७।।
प्रणवं त्र्यक्षरं मायां व्योमव्याप्यं षडक्षरम्। मालामन्त्रेषु सर्वेषु सिद्धादीन् नैव शोधयेत्।। १८।।

इति। रत्नसागरे –

हंसस्याष्टाक्षरस्यापि तथा पञ्चाक्षरस्य च। एकद्वित्र्यादिबीजस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।। १।।
नृसिंहार्कवराहाणां कालिका सिद्धकालिका। श्यामला च तथा चण्डी सिद्धादिपरिवर्जनम्।।२।।

इति। रुद्रयामले –

अघोरमन्त्रे देवेशि मालामन्त्रस्य पार्वति। नपुंसकस्य मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।। १।।

इति। कुलमूलावतारे –

स्वप्नोपदिष्टमन्त्रस्य न विधिर्नैव च क्रिया। उद्दिष्टदेवतां ध्यात्वा जपेच्छुभकरं भवेत्।। १।।

इति। अगस्त्यसंहितायाम् –

राममन्त्रेषु सर्वेषु शृणुष्व मुनिपुङ्गव। तारकत्वान्मन्त्रराजे सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।। १।।

इति। सिद्धान्तशेखरे –

एकत्रिपञ्चसप्तार्णनवरुद्राक्षरान्विते। द्वात्रिंशदक्षरे मन्त्रे सिद्धादीन् नैव शोधयेत्।। १।।
ये च बौद्धाश्च जैनाश्च गोपाला वैष्णवाश्च ये। सिद्धसाध्यसुसिद्धारिविचारपरिवर्जिताः।।२।।
व्योमव्यापी षडर्णश्च मातृका हरवल्लभा। बहुरूपाह्वया मन्त्राः पञ्च साधारणा मताः।।३।।

इति। अथ षड्दल[1]चक्रम्। तत्र कुलमूलावतारे –

षड्दलं पद्ममालिख्य प्रागादिषु दलेषु च। अकाराद्यर्णनिकैकौँल्लिखेत् विषण्डकूटकान्।। १।।
स्वनामाद्यक्षरं यत्र तदारभ्य विचारयेत्। प्रथमे सम्पदुद्दिष्टा द्वितीये सम्पदः क्षयः।। २।।
तृतीये तु धृतिं विद्याच्चतुर्थे बन्धुविग्रहम्। पञ्चमे संशयं विद्यात् षष्ठे सर्वविनाशनम्।।३।।

इति। अथ ऋणधनशोधनचक्रम्। तत्र कुलमूलावतारे–

इन्द्र[2]र्क्षनेत्ररविपञ्चदशर्तुवेदवह्न्यायुधाष्टनवभिर्गुणितांश्च साध्यान्।
दिग्भूगिरिश्रुतिगजाग्निमुनीषुवेदषड्वह्निभिश्च गुणितानथ साधकार्णान्।।
नामाक्षरादकठबाद्गजभक्तशेषं ज्ञात्वोभयोरधिकशेषमृणं धनं स्यात्।।

[3]अथैतच्चक्रनिर्माणप्रकारः– तत्र दक्षिणोत्तरायताः सप्त रेखाः प्राक्प्रत्यगायता द्वादश रेखाश्च विलिख्य षट्षष्टिकोष्ठानि कृत्वा तत्र सर्वोपरिगतैकादशकोष्ठात्मकप्रथमपङ्क्तौ स्ववामादिदक्षिणान्तं प्रथमकोष्ठे १४ द्वितीये २७ तृतीये २ चतुर्थे १२ पञ्चमे १५ षष्ठे ६ सप्तमे ४ अष्टमे ३ नवमे ५ दशमे ८ एकादशे ९ इत्येकादशभेदानङ्कान्

१. 'पद' क. पाठः २. 'नेत्र' ग. पाठः। ३ 'तथै' ग. पाठः।

विलिख्य, तदधो द्वितीयपङ्क्तौ स्ववामादिदक्षिणान्तं "अइउऋलृएऐओऔअं अः" इत्येकादश स्वरानेकादशकोष्ठेषु विलिख्य, तदधः पङ्क्तौ ककारादिटकारान्तान् तदधः पङ्क्तौ ठकारादिककारान्तान् तदधः पङ्क्तौ बकारादिहकारान्तान् वर्णान् विलिख्य तदधःपङ्क्तौः १०। १।७।४।८।३।७।५।४।६।३ इत्येकादशविधानङ्कानेकादशसु कोष्ठेषु विलिख्य इति अकठवचकं निर्माय विचारयेत्। तत्र स्वेष्टमन्त्रस्थवर्णान् स्वरव्यञ्जनबिन्दुविसर्गान् पृथक्कृत्य सर्वोपरिगतस्थाङ्केन यस्य यस्य वर्णस्य यो योऽङ्कस्तं तं वर्णं तेन तेनाङ्केन (ग?गु) णयित्वा सञ्जातसंख्यासमुदायमष्टभिराहृत्यावशिष्टमङ्कं पृथक् संस्थाप्य, शिष्यनामाक्षराणि[1] च तथैव स्वरव्यञ्जनबिन्दुविसर्गैः पृथक्कृत्य सर्वाधःपङ्क्तिस्थाङ्केषु यस्य यस्याङ्कस्य यो योऽङ्कस्तं तं तेन तेनाङ्केन (ग?गु) णयित्वा सञ्जाताङ्कसमुदायमष्टभिराहृत्यावशिष्टमङ्कं पृथक्संस्थाप्य मन्त्रसाधकयोरवशिष्टाङ्कमध्ये योऽङ्कस्तद[2]धिकसंख्याकः स ऋणी ज्ञेयः। मन्त्रश्चेदृणी तदा स मन्त्रो ग्राह्यः। यस्य मन्त्रस्य साधको ऋणी भवति स मन्त्रस्त्याज्य इति॥

अथ श्रीविद्यामधिकृत्य मातृकानिरूपणम्।

अथ वक्ष्ये जगद्धात्री मातृकां मन्त्रविग्रहाम्। सौकर्यार्थं हि मन्त्राणां न्यासपूजाजपस्य च ॥१॥
उद्धारे साधकानां च विशेषात् कालिकामते। तारस्य पञ्चभेदेभ्यः पञ्चाशद्वर्णगाः कलाः ॥२॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरनन्तरम्। इन्धिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा॥३॥
सूक्ष्माऽसूक्ष्माऽमृता ज्ञाना[3] मृता चाप्यायिनी तथा। व्यापिनी व्योमरूपा स्युरन्ता स्वरजाः कलाः॥४॥
सृष्टिर्ऋद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः[4] स्थिरा। स्थितिः सिद्धिरिति प्रोक्ताः क्रमाच्च कचवर्गजाः[5]॥५॥
ततश्चापि जरा चैव पालिनी शान्तिरेव च। ऐश्वर्या च रतिश्चैव कामिका वरदा तथा॥६॥
ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा च क्रमात् स्युः टतवर्गजाः। तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्री क्षुत्क्रोधिनी क्रिया॥७॥
उत्कारी मृत्युरेताः स्युः क्रमाच्च पयवर्गजाः। षवर्गोत्थकलाः प्रोक्ताः पीता श्वेतारुणाऽसिता॥८॥
अनन्ता च तथा प्रोक्ताः पञ्चाशद्वर्णसम्भवाः। अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः॥९॥
शशिनी चन्द्रिका ज्योत्स्ना कान्तिः श्रीः प्रीतिरङ्गदा। पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः॥१०॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी शुचिः[7]। सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा॥११॥
कभाद्या वसुदाः सौराष्ठडान्ता द्वादशेरिताः। धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी॥१२॥
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे[8] अपि। यादीनां दशवर्णानां कला धर्मप्रदा इमाः॥१३॥
सोमसूर्याग्निरूपण्यिः साधकानां फलप्रदाः। श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः ॥१४॥
अर्घीशो भारभूतिश्च तिथीशः स्थाणुको हरः। झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः॥१५॥
अक्रूरश्च महासेनः षोडश स्वरमूर्तयः। पश्चात् क्रोधीशचण्डीशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः ॥१६॥
अथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राह्वचतुराननाः । अजेशः सर्वसौमेशौ तथा लाङ्गलिदारुकौ ॥१७॥
अर्द्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढिदण्डिनौ । स्युरद्रिमीनमेषाख्यलोहिताश्च शिखी तथा ॥१८॥
छगलाण्डद्विरण्डौ च[9] महाकालकपालिनौ। भुजङ्गेशः पिनाकी च खड्गीशाख्यो बक[10]स्तथा।१९॥
श्वेतो भृगुश्च नकुली शिवः संवर्तकः स्मृतः। पूर्णोदरी स्याद्विरजा शाल्मली तदनन्तरम्॥ २०॥

---

१. 'ध्रुवराणि' ग. पाठः। २.'स्त्वधि' ख.पाठः। ३.'तीता' ग. पाठः। ४.'धृति' ग. पाठः। ५. 'का:' क. पाठः। ६. 'रोधिनी' ग. पाठः। ७. 'रुचिः' ग. पाठः। ८. 'हा अपि' ख. पाठः। ९. 'मढेशौ' ग. पाठः। १०. 'शपिनाकीशखड्गीशाख्यबकाः' ग. पाठः।

लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा ततः परम्। सुदीर्घमुखिगोमुख्यौ दीर्घजिह्वा ततः परम्॥ २१॥
कुण्डोदर्यूर्ध्वकेशी च तथा विकृतमुख्यपि। ज्वालामुखी ततश्चोल्कामुखी च श्रीमुखी तथा॥ २२॥
विद्यामुखी च कथिताः रुद्राणां स्वरशक्तयः। महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिस्ततः परम्॥ २३॥
गौरी त्रैलोक्यविद्या स्यान्मन्त्रशक्तिस्ततः परम्। आत्मशक्तिर्भूतमाता ततो लम्बोदरी तथा॥ २४॥
द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चापि मञ्जरी। रूपिणी वीरिणी[1] पश्चात् काकोदर्यपि पूतना॥ २५॥
स्याद्भद्रकलीयोगिन्यौ शङ्खिनी गर्जिनी तथा। कालरात्रिश्च कुर्दिन्या कपर्दिन्यपि वज्रिका[2]॥ २६॥
जया च सुमुखी चैव रेवती माधवी तथा। वारुणी वायवी चैव तथा रक्षोविदारिणी॥ २७॥
ततश्च सहजा लक्ष्मीर्व्यापिनी च ततः परम्। महामाया च कथिताः क्रमात्ताः रुद्रशक्तयः॥ २८॥
अत्र रुद्राः स्मृता रक्ता धृतशूलकपालकाः। शक्तयो रुद्रपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः॥ २९॥
रक्तोत्पलकपालाभ्यामलङ्कृतकराम्बुजाः। केशवो नारायणो माधवगोविन्दविष्णवः॥ ३०॥
मधुसूदनसंज्ञोऽन्यः स्यात् त्रिविक्रमवामनौ। श्रीधरश्च हृषीकेशः पद्मनाभस्ततः परम्॥ ३१॥
दामोदरो वासुदेवः सङ्कर्षण इतीरितः। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च क्रमात् स्युः स्वरमूर्तयः॥ ३२॥
पश्चाच्चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी शङ्खी हली पुनः। मुसली शूलभृत्[3] पाशी अङ्कुशी च ततः परम्॥३३॥
मुकुन्दो नन्दजो नन्दी नरो नरकजिद्धरिः। कृष्णः सत्यः सात्त्वताख्यः[4] शौरिः शूरो जनार्दनः॥ ३४॥
भूधरो विश्वमूर्तिश्च वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः। बली बलानुजो बालो वृषघ्नो वृषभस्तथा॥ ३५॥
हंसो वराहो विमलो नृसिंहो मूर्तयो हलाम्[5]। कीर्तिः कान्तिस्तथा तुष्टिः पुष्टिश्चैव धृतिस्ततः॥ ३६॥
शान्तिः[6] क्रिया दया मेधा हर्षा श्रद्धा ततः परम्। लज्जा लक्ष्मीसरस्वत्यौ प्रीती रतिरिमाः क्रमात्॥३७॥
जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डा वाणी विलासिनी। विजया विरजा विश्वा विनदा सुनदा[7] स्मृतिः॥३८॥
ऋद्धिः समृद्धिः शुद्धिश्च भुक्तिर्बुद्धि[8]र्मतिः क्षमा। रमोमा क्लेदिनी क्लिन्ना वसुदा वसुधा परा॥ ३९॥
परायणा च सूक्ष्मा च सन्ध्या प्रज्ञा प्रभा[10] निशा। अमोघा विद्युता चेति कादीनां मूर्तयो हरेः॥ ४०॥
केशवाद्या इमे श्यामाः शङ्खचक्रलसत्कराः। शक्तयस्तु प्रियाङ्केषु निषण्णाः सस्मिताननाः॥ ४१॥
विद्युद्दामसमानाङ्ग्यः पङ्कजाभयबाहवः। रविः प्रभाकरो भास्वान् द्युमणिः पूषणो भगः॥ ४२॥
आदित्योऽर्को वेदमूर्तिः कर्मसाक्षी दिवाकरः। मित्रोऽर्यमोष्णरश्मिश्च द्वादशात्मा विभाकरः॥ ४३॥
स्वराणां मूर्तयश्चैते सूरः सूर्यो विभावसुः। अहस्करोऽरुणो ब्रध्नो[11] भास्वान् सप्ततुरङ्गमः॥४४॥
हरिदश्वो ग्रहाधीशो मार्तण्डो भानुरव्ययः। विकर्तनः सहस्रांशुर्मिहिरो मित्रमाठरौ॥ ४५॥
कर्मसाक्षी जगन्नेत्रस्तरणिः पद्मिनीप्रियः। चण्डांशुः पिङ्गलो दण्डी गभस्ती घृणिरंशुमान्॥ ४६॥
प्रद्योतनो जगच्चक्षुस्तपनो लोकबान्धवः। हंसस्तमोपहन्ता च त्रयीमूर्तिश्च मूर्तयः॥ ४७॥

---

१ 'विरणी' क. ख. पाठः। २ 'चर्च्चिका' ग. पाठः। ३ 'भृत्' क. पाठः। ४ 'शाश्वताख्यः' ग. पाठः। ५ 'हरेः' ग. पाठः। ६ 'शान्तिः' ग. पाठः। ७ 'सुतदा' ग. पाठः। ८ 'सिद्धिश्च भुक्तिमुक्तिः' ग. पाठः। ९ 'परा' ख. पाठः। १० 'परा' ग. पाठः॥

विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूः पुनः। रुद्रवीर्या प्रभानन्दा स्यात्पोष[१]ण्यृद्धिदा शुभा॥ ४८॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपालिनी। विकृतिर्दण्डमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी॥ ४९॥
निशुम्भशुम्भमथनी महिषासुरमर्दिनी । इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्धशरीरिणी ॥ ५०॥
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी। अम्बिका ह्लादिनी चैव समृद्धिर्वृद्धिरेव च॥ ५१॥
पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी माया संज्ञा वसुन्धरा। श्रद्धा स्वाहा सुधा भिक्षा देवकी कमलासना॥ ५२॥
त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी। सुरूपा बहुरूपा च पञ्चाशच्छक्तयो रवेः॥ ५३॥

इति। अथ काममातृका—

कामेशः कामदः कान्तः[२] कान्तिमान् कामगस्तथा। कामाचार[३]श्च कामी च कामुकः कामवर्द्धनः॥५४॥
वामो रामश्च[४] रमणो रतिनाथो रतिप्रियः। रात्रिनाथो[५] रमाकान्तो, रममाणो निशाचरः॥५५॥
नन्दको नन्दनो नन्दी ततो नन्दयिता ततः। पञ्चबाणो रतिसखः पुष्पधन्वा महाधनुः॥५६॥
भ्रामणो भ्रमणश्चैव भ्रममाणो भ्रमस्तथा। भ्रान्तो भ्रामकभृङ्गौ च भ्रान्तचारो भ्रमावहः॥५७॥
मोहनो मोहको मोहो मोहवर्द्धन एव च। मदनो मन्मथश्चैव मातङ्गो भृङ्गनायकः॥५८॥
गायकश्चैव गीती च नर्तकः[६] खेलकस्ततः। उन्मत्तो मत्तकश्चैव विलासी लोभ[७]वर्द्धनः॥५९॥
कामस्य मूर्तयः प्रोक्ता अकाराद्यर्णसञ्चये। रतिः प्रीतिश्च तदनु कामिनी मोहिनी ततः॥६०॥
कमलासुविलासिन्यौ ततः कल्पलता तथा। श्यामा शुचिस्मिमा चैव विस्मिता तदनन्तरम्॥६१॥
विशालाक्षी लेलिहाना ततश्चैव दिगम्बरा। वामा च कुब्जिका कान्ता, नित्या कुल्या[८] च भोगिनी॥६२॥
कामदा चैव तत्पश्चात् प्रोच्यते च सुलोचना[९]। सुलापिनी मर्दिनी च ततश्च कलहप्रिया॥६३॥
वराक्षी[१०] सुमुखी चैव नलिनी जटिनी तथा। पालिनी च शिवा मुग्धा ततश्चैव रमा प्रमा॥६४॥
लोला च चञ्चला चैव दीर्घजिह्वा रतिप्रिया। लोलाक्षी भङ्गिनी चैव पाटला मदना तथा॥६५॥
माला च हंसिनी चैव ततः स्याद्विश्वतोमुखी। जगदानन्दिनी चैव रमणी कान्ति[११]रेव च॥६६॥
ततः स्याच्च कलङ्घ्नी वृकोदर्यपि सा तथा। मेघश्यामा तथा लोभवर्द्धनी[१२] शक्तयस्तथा॥६७॥
ततः कामान् स्मरेन्मर्त्यो दाडिमीकुसुमोपमान्। वामाङ्कशक्तिसहितान् पुष्पबाणेक्षुकार्मुकान्॥६८॥
शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः। नीलोत्पलकरा ध्येयास्त्रैलोक्याकर्षणक्षमाः॥ ६९॥

इति। अथ त्रिपुरमातृका —

कामिनी मोदिनी चैव मदनोन्मादिनी ततः। द्राविणी खेचरी चैव घण्टिका च कलावती॥ १॥
क्लेदिनी शिवदूती च ततश्च सुभगा भगा। विद्येशी च महालक्ष्मीः कौलिनी च सुरेश्वरी॥२॥
स्वराणां शक्तयः प्रोक्तास्ततश्च कुलमालिनी। व्यापिनी च भगा चैव वागीशी तदनन्तरम्॥३॥
वषट्कारी पिङ्गला च भगसर्पिण्यतः परम्। सुन्दरी च ततो नीलपताका त्रिपुरा ततः॥४॥

---

१. 'षावृ'ग. पाठः। २. 'कामकामदकान्ताश्च' ग. पाठः। ३. 'कामचार' क. पाठः। ४. 'वामश्चः' ख. पाठः। ५.'रतिनाथः' ग. पाठः। ६. 'गीतिश्चवर्तकः' क. पाठः। ७.'काम' ग. पाठः। ८. 'कल्या च मोहिनी' ग. पाठः। ९. 'सुरत्तमा' ग. पाठः। १०. 'एकाक्षी' ग. पाठः। 'वाराहा' ख. पाठः। ११. 'कीर्ति' ग. पाठः। १२. 'ना' ग. पाठः।

सिद्धेश्वरी ह्यमोघा च रत्नमालिन्यतः परम्। मङ्गला भगमाला च नित्या रौद्री ततः परम्॥ ५॥
व्योमेश्वरी अम्बिका चाप्यट्टहासा ततः परम्। आप्यायिनी च वज्रेशी क्षोभिणी शाम्भवी तथा॥ ६॥
स्तम्भिनी चा'प्यनामा च रक्ता शुक्लापराजिता। संवर्तिका च विमला अघोरा घोरया युता॥ ७॥
बिम्बा'दिभैरवी चैव सर्वाकर्षिणिका तथा। एताःपञ्चाशदाख्याताः पञ्चाशद्वर्णविग्रहाः॥ ८॥

इति। अथ गणेशमातृका –

विघ्नेश्वरो विघ्नराजो विनायकशिवोत्तमौ। विघ्नकृद्विघ्नहर्ता च विघ्नराड् गणनायकः॥ १॥
एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः। कपर्दी दर्घवक्त्रश्च. शङ्कु'कर्णो वृषध्वजः॥ २॥
गणनाथो गजेन्द्रश्च शूर्पकर्णस्त्रिलोचनः। लम्बोदरमहानादौ चतुमूर्तिः सदाशिवः ॥ ३॥
आमोदो दुर्मुखश्चैव सुमुखश्च प्रमोदकः। एकपादो द्विजिह्वश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः॥ ४॥
वरदो वामदेवश्च वक्रतुण्डो द्विरण्डकः। सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो विमत्तो मत्त'वाहनः ॥ ५॥
जटी मुण्डी च खड्गी च वेरण्यो वृषकेतनः। भक्ष्यप्रियो मेघनादो गणपश्च गणेश्वरः॥ ६॥
एते पञ्चाशदाख्याता मूर्तयो गणपस्य तु। श्रीः ह्रीस्तुष्टि'श्च शान्तिश्च पुष्टिश्चैव सरस्वती॥७॥
रतिर्मेधा च कान्तिश्च कामिनी मोहिनी' जटा। तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा सुरसा कामरूपिणी॥८॥
उग्रा च जयनी सत्या विघ्नेशी च स्वरूपिणी। कामदा च ततः प्रोक्ता तथा च मदविह्वला॥९॥
विकटा च ततो घूम्रा भूतिर्भूमिः सती रमा। ततश्च मानुषी' चैव ततश्च मकरध्वजा ॥१०॥
विकर्णा भ्रुकुटी लज्जा घोणा' चैव धनुर्धरा। ततश्च यामिनी' रात्रिश्चन्द्रिका'' च शशिप्रभा॥११॥
लोला च चञ्चलाक्षी च तथा ऋद्धिश्च दुर्भगा। सुभगा च शिवा दुर्गा कालिकालकजिह्विका॥ १२॥
विघ्नहारिणिका चैव शक्तयः स्युर्गणेशितुः॥ इति।

अथ योगिनीमातृका –

अमृताकर्षिणीन्द्राणी चेशान्यु''मोर्ध्वकेशिनी। ''ऋद्धिका च तथा ऋषा लृकारा लृषिका तथा॥ १॥
एकपादा तथैश्वर्या ओकारा चौषधात्मिका। अम्बिका चाक्षरात्मा च स्वराणां शक्तयः क्रमात्॥२॥
कालरात्रिश्च खातीता गायत्री तदनन्तरम्। घण्टाधारिणिका चैव ततो ङार्णात्मिका तथा॥३॥
चामुण्डा चैव च्छाया च जया झङ्कारिणी तथा। ञार्णात्मिका टङ्कहस्ता ततठङ्कारिणी तथा॥४॥
डामरी चैव ढङ्कारी णङ्कारी तामसी ततः। स्थानदेवी च दाक्षायण्यथ धात्री च नन्दिका॥५॥
पार्वती चैव फट्कारी बन्धिनी भद्रकालिका। महामायायशस्विन्यौ रमा लम्बोष्ठिका ततः॥६॥
वरदा शशिनी षण्डा तथा चैव सरस्वती। ततो हंसवती चैव ततः प्रोक्ता क्षमावती॥७॥ इति।

अथ पीठमातृका –

कामरूपं च काशीकं नेपालं पौण्ड्रवर्धनम्। पुरस्थिरं कान्यकुब्जं पूर्णगिर्यर्बुदे ततः॥ १॥

---

१. 'व्यापि' ग. पाठः। २. 'विद्यादि' ग. पाठः। ३. 'शङ्ख' ग. पाठः। ४. 'मद' ख. पाठः। ५.'पुष्टिः' ग. पाठः। ६. 'मोदिन' ग. पाठः। ७.'माहिषी' ग. पाठः। ८. 'दीर्घघोणः' ग. पाठः। ९. 'ग्रामिणी' क. पाठः। १०.'कामान्धा' ग. पाठः। ११. 'कर्षिणीशानी' ततक्षोमो' ग. पाठः। १२. 'ऋषाचैव' ग. पाठः।

आम्रातकेश्वरं चैव एकाग्रं तदनन्तरम्। त्रिस्रोतः[1] कामकोटं च कैलासं भृगुपत्तनम्[2]।।२।।
केदारं चन्द्रनगरं श्रीपुरोङ्कारके ततः[3]। जालन्धरं मालवञ्च कुलान्तं देविकोटकम्।। ३।।
गोकर्णं मारुतेशं च अट्टहासं ततः परम्। विरजं राजगेहं च महापथमतः परम् ।। ४।।
कोल्हमेलापुरं[4] चैव कौलेश्वरमतः परम्। जयन्तिका चोज्जयिनी चरित्रं क्षीरकं ततः।। ५।।
हस्तिनापुरमुड्डीशं प्रयागं तदनन्तरम्। षष्ठीशमायानगरे जलेश्वरमतः परम्।। ६।।
मलयं च महीपीठं[5] श्रीशैलं मरुपीठकम्। ततो गिरिवरं चैव महेन्द्रं वामनं ततः।। ७।।
हिरण्यकं महालक्ष्मीपुरमुड्यानमेव च। छायाच्छत्रं महापीठं पञ्चाशद्वर्णगान्यथ।। ८।। इति।

अथ कामाकर्षिण्यादिमातृका —

कामाकर्षिणिका चैव बुद्ध्याकर्षिणिका तथा। अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षिणिका तथा।। १।।
स्पर्शाकर्षिणिका[6] चैव रूपाकर्षिणिका तथा। रसाकर्षिणिका चैव गन्धाकर्षिणिका ततः।। २।।
चित्तधैर्याकर्षिणिके स्मृत्याकर्षिणिका तथा। नामाकर्षिणिका चैव बीजाकर्षिणिका ततः।। ३।।
आत्माकर्षिणिका चैवामृताकर्षिणिका तथा। शरीराकर्षिणी चैव षोडशस्वरगाः क्रमात्।। ४।।
सर्वसङ्क्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी ततः। सर्वाकर्षिणिका चैव सर्वाह्लादिनिका ततः।। ५।।
सर्वसम्मोहिनी सर्वस्तम्भिनी सर्वजृम्भिणी[7]। ततः सर्ववशङ्करी[8] सर्वरञ्जनिका तथा।। ६।।
सर्वोन्मादनकारी च ततः सर्वार्थसाधिनी। सर्वसम्पत्प्रपूरा च सर्वमन्त्रमयी तथा ।। ७।।
सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी सर्वसिद्धिप्रदा ततः । सर्वसम्पत्प्रदा चैव सर्वप्रियकरी ततः ।। ८।।
सर्वमङ्गलकारी च सर्वकामप्रदा ततः । सर्वदुःखविमोचिनी[9] सम्प्रोक्ता तदनन्तरम् ।। ९।।
सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्ननिवारिणी । सर्वाङ्गसुन्दरी चैव सर्वसौभाग्यदा तथा ।।१०।।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यफलप्रदा। सर्वज्ञानमयी चैव सर्वव्याधिविनाशिनी ।।११।।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा। सर्वानन्दमयी चैव सर्वरक्षास्वरूपिणी ।।१२।।
ततः सम्प्रोच्यते चैव सर्वेप्सितफलप्रदा। इति।

अथ त्रिशक्ति (प्रपञ्च) मातृका, प्रत्यक्षरं नामद्वयम् —

प्रपञ्चरूपा श्रीर्द्वीपरूपा मायाब्धि[10]रूपिणी। कमला गिरिरूपा च ततो वै विष्णुवल्लभा।। १।।
ततः पत्तनरूपा[11] च ततो वै पद्मधारिणी। पीठरूपा समुद्रादितनया क्षेत्ररूपिणी ।। २।।
लोकमाता वनरूपा ततः कमलवासिनी। ततश्चाश्रम[12]रूपा च इन्दिरा च ततः परम् ।। ३।।
गुहारूपा ततो माया[13] नदीरूपा रमा ततः। तथा चतुररूपा च पद्मोद्भिज्जस्वरूपिणी।। ४।।
नरायणप्रिया चैव ततः स्वेदजरूपिणी। सिद्धलक्ष्मीस्तथा प्रोक्ता ततश्चाण्डजरूपिणी।। ५।।

---

१ 'तिस्रोता' क. पाठः। २ 'इनम्' ख. पाठः। ३ 'श्रीरेकवीरके' ग. पाठः। ४ 'कोल्हाफलापुरं' ग. पाठः। ५ 'चित्रकं हारिद्रं' चेति ग. पाठः। ६ 'महापीटं' ग. पाठः। ७ 'जिम्भनी' ग. पाठः। ८ 'करि' क. पाठः। ९ 'न्या' क. पाठः। १० 'द्विरूपिणी' ग. पाठः। ११ 'ततश्च पद्मरूपा' ग. पाठः। १२ 'श्रय' ग. पाठः। १३. 'मा च' क. पाठः।

जरायुजस्वरूपा च महालक्ष्मीस्ततः परम्। ततश्च लवरूपार्या त्रुटिरूपा ह्युमा तथा॥ ६॥
कलारूपा चण्डिका च काष्ठरूपा च दुर्गिका। निमेषरूपा च शिवा श्वासरूपा ततः परम्॥७॥
अपर्णा घटिकारूपा ह्यम्बिका च ततः परम्। मुहूर्तरूपा च सती ततः प्रहररूपिणी॥ ८॥
ईश्वरी दिनरूपा च शाम्भवी च ततः परम्। सन्ध्यारूपा तथेशानी रात्रिरूपा च पार्वती॥ ९॥
तिथिरूपा मङ्गला च वाररूपा ततः परम्। दाक्षायणी च नक्षत्ररूपा हैमवती ततः॥ १०॥
योगरूपा महामाया ततः करणरूपिणी। माहेश्वरी[1] पक्षरूपा मृडानी मासरूपिणी॥ ११॥
रुद्राणी शशिरूपा च शर्वाणी[2] ऋतुरूपिणी। परमेश्वर्ययनरूपा काली वत्सररूपिणी॥ १२॥
कात्यायनी युगादिश्च रूपा गौरी तथैव च। ततः प्रलयरूपा च भवानी तदनन्तरम्॥ १३॥
पञ्चभूतस्वरूपा च ब्राह्मी च तदनन्तरम्। तथा च पञ्चतन्मात्ररूपा वागीश्वरी ततः॥ १४॥
कर्मेन्द्रियस्वरूपा च वाणी चैव ततः परम्। ज्ञानेन्द्रियस्वरूपा च सावित्री प्राणरूपिणी॥ १५॥
सरस्वती च तत्पश्चाद् गुणत्रयस्वरूपिणी। गायत्र्यन्तःकरणरूपा वाक्प्रदा च ततः परम्॥ १६॥
अवस्थात्रयरूपा च शारदा च ततः परम्। सप्तधातुस्वरूपा च भारती तदनन्तरम्॥ १७॥
दोषत्रयस्वरूपा च ततो विद्यात्मिका तथा। प्रपञ्चमातृका ख्याता सर्वसिद्धिप्रदा स्मृता॥ १८॥

इति प्रपञ्चमातृका॥ अथ कालीमातृका —

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी। विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता तथैव च॥ १॥
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रा मिता तथा। ब्राह्मी तथैव सम्प्रोक्ताः षोडश स्वरशक्तयः॥ २॥
नारायणी च माहेशी चामुण्डा च ततः परम्। कौमारी च तथैवोक्ता पञ्चमी चापराजिता॥ ३॥
वाराही नारसिंही च भैरवी तदनन्तरम्। महदाद्या भैरवी च प्रोक्ता सा सिंहभैरवी॥ ४॥
तथा धूम्राभैरवी च सम्प्रोक्ता भीमभैरवी। उन्मत्तभैरवी चैव वशीकरणभैरवी॥ ५॥
मोहनाद्या भैरवी च ऐन्द्र्याग्नेयी ततः परम्। याम्या च राक्षसी चैव वारुणी वायवी तथा॥ ६॥
कौवेरी च तथेशानी[3] ब्रह्माणी वैष्णवी तथा। वज्रिणी शक्तिनी चैव दण्डिनी खड्गिनी तथा॥७॥
पाशिन्यङ्कुशिनी चैव गदिनी शूलिनी तथा। मालिनी चक्रिणी चैव प्रोक्ता व्यञ्जनशक्तयः॥८॥इति।

अथ तारमातृका त्रिषष्ट्यक्षराणाम् —

कुलेशी कुलनन्दा च वागीशी भैरवी तथा। उमाः श्रीः शान्तिका चण्डा धूम्रा काली कपालिनी॥१॥
(................................) कपालिनी। वाग्वादिनी च नकुली भद्रकाली शशिप्रभा॥ २॥
प्रत्यङ्गिरा सिद्धलक्ष्मीरमृतेशी च चण्डिका। खेचरी भूचरी सिद्धा कामाक्षी[4] हिङ्गुला वसा॥ ३॥
जया च विजया चाथाजिता नित्यापराजिता। विलासिनी तथा घोरा चित्रा मुग्धा धनेश्वरी॥ ४॥
सोमेश्वरी महाचण्डा विद्या हंसी विनायिका। वेदगर्भा तथा भीमा उग्रा वैद्या च सद्गतिः॥ ५॥

---

१. 'महे' क. पाठः। २. 'पार्वती' क. पाठः। ३. 'शाना' क. पाठः। ४. 'ख्या' ग. पाठः।

उग्रेश्वरी चन्द्रगर्भा ज्योत्स्ना सत्या यशोवती। कुलिका कामिनी काम्या ज्ञानवत्यथ डाकिनी।।६।।
राकिणी लाकिनी चाथ काकिनी शाकिनीत्यपि। हाकिनी च चतु:षष्टि: शक्तय: सिद्धिदायिका:।।७।।

इति तारामातृका। अथ षोडशीमातृका —

कामेशी भगमाला च नित्यक्लिन्ना तत: परम्। भेरुण्डावह्निवासिन्यौ वज्रेशी तदनन्तरम्।। १ ।।
शिवदूती च त्वरिता ततश्च कुलसुन्दरी। नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।।२।।
ज्वालामालिनि[1] चित्रे[2] च महात्रिपुरसुन्दरी। षोडशीमातृकायाश्च सम्प्रोक्ता: स्वरशक्तय:।।३।।
ग्रसिनी[3] प्रियवादिन्यौ कराली च कपालिनी। शिवा घोषा च दंष्ट्रा च वीरोमा वाक्प्रदा तथा।।४।।
नारायणी मोहिनी च प्रज्ञा च शिखिवाहिनी। भीषणा वायुवेगा च भीमा चैव विनायिका[4]।।५।।
पूर्णा शक्तिश्च कङ्काली[5] कुर्दिनी कालिका तथा। दीपनी च जयन्तिन्या[6] पाविनी[7] लम्बिनी तथा।।६।।
संहारिणी छागली च पूतना मोदिका तथा। परशक्तिस्तथाम्बा च इच्छाशक्तिस्तत: परम्।।७।।
महाकाली च सम्प्रोक्ता व्यञ्जनानां च शक्तय:। इति षोडशीमातृका।।

अथ भुवनेशी मातृका —

जया च विजया चैव अजिता चापराजिता। नित्या विलासिनी दोग्ध्री अघोरा मङ्गला तथा।। १ ।।
डाकिनी राकिणी चैव लाकिनी काकिनी तथा। शाकिनी हाकिनी चैव याकिनी स्वरशक्तय:।।२।।
मङ्गला च महाकाली कुण्डली कुलसुन्दरी। कपाली कमलावत्या चामुण्डा मेरुवासिनी।।३।।
भुवनेशीसरस्वत्यौ कपिला कुलमालिनी। विनायिका[9] जया नन्दा महालक्ष्मीश्च भैरवी।।४।।
ब्रह्माणी च तथा ज्वालावली लिङ्गप्रभा तथा। मुण्डिनी च महावेगा उद्भवा[10] वैष्णवी शिवा।।५।।
महामाया तु चक्राङ्गी एकपादा सुरेश्वरी। कौवेरी मण्डली चैव वाराही च जलन्धरी।।६।।
कामाख्या काममध्यस्था व्यञ्जनानां तु शक्तय:। इति भुवनेशी[11]मातृका।।

अथ भैरवीमातृका—

त्रिपुरा त्रिपुरेशी च तथा त्रिपुरसुन्दरी । त्रिपुराद्या वासिनी च त्रिपुराश्रीस्तत: परम्।। १ ।।
त्रिपुरामालिनी चैव त्रिपुर[12]सिद्धा तत: परम्। त्रिपुराम्बा ततश्चैव महात्रिपुरभैरवी ।। २।।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा स्वरशक्तय:।। ३।।
विशाला च विशालाक्षी निर्मला मलवर्जिता। काली च कालकल्पा च कालरात्रिर्निशाचरी।। ४।।
ऊर्ध्वकेशी मुक्तकेशी वीरा[13]चैव महाभया। जयदा मानिनी माया प्रचण्डा बिन्दुमालिनी।। ५।।
विरूपा च विरूपाक्षी खट्वाङ्गी विश्व[14]रूपिणी। रौद्री माया च प्रेताक्षी फेत्कारी[15] भयनादिनी।।६।।
धूम्राक्षी योगिनी घोरा विश्वरूपा भयङ्करी। भैरवी भीषणीया च लम्बौष्ठी च महाबला।। ७।।

---

१. 'तोतला' क. पाठ:। २. 'माला वि' ग. पाठ:। ३. 'असिनी' क. पाठ:। ४. 'यकी' क. पाठ:। ५. 'कंकारी' क. पाठ:। ६. 'नी' ग. पाठ:। ७. 'पावनी' ख. पाठ:। ८. 'श्वरी' क. पाठ:। ९. 'यकी' क. पाठ:। १०. 'टा' क. पाठ:। ११. 'श्वरी' क. पाठ:। १२. 'रा' क. पाठ:। १३. 'धीरा' ग. पाठ:। १४. 'विष्णु' ग. पाठ:। १५. 'फेट्' क. पाठ:।

व्यञ्जनानां विशेषेण सम्प्रोक्ताः क्रमात्। इति। भैरवीमातृका।।

अथ छिन्नमस्तामातृका –

लक्ष्मीर्लज्जा शिवा माया वाणी ब्राह्मी च वैष्णवी। रौद्रीश्वरी जया पद्मा वर्णिनी डाकिनी तथा।। १।।
कराली विकराली च घोरा च स्वरशक्तयः। काली[1] च खड्गिनी चण्डा भैरवी पिङ्गला तथा।। २।।
इन्द्राणी चैव फट्कारी हारिणी योगिनी तथा। प्रकाशिनी[2] वज्रिणी च सिता पीता रमा तथा।।३।।
दिगम्बरी महाघोरा मुक्तकेशी चिदाश्रया। चामुण्डा छिन्नमस्ता च भीमा हुङ्कारिणी[3] सिता।।४।।
पद्मानना पद्मगर्भा पुष्पिणी चारुहासिनी। विजया मङ्गला कान्तिर्मालिनी तारिणी तथा।। ५।।
महोदर्य[4]स्थिमाला च नागयज्ञोपवीतिनी। व्यञ्जनानां च सम्प्रोक्ताः शक्तयः सर्वकामदाः।। ६।।

इति छिन्नमस्तामातृका।। अथ धूमावतीमातृका–

धूमावती धूमनेत्रा घर्मटी मर्कटी तथा। घोररूपा च लम्बोष्ठी श्यामा श्याममुखी शिवा।। १।।
काकध्वजा कोटराक्षी धूमा धूमान्धकारिणी। मुक्तकेशी महाघोरा तथा लम्बपयोधरा।। २।।
स्वराणां शक्तयः प्रोक्ताः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः। कोटरा कोटराक्षी च ऊर्ध्वकेशी दिगम्बरी।। ३।।
तमिस्रा तामसी चोग्रा विवर्णा मलिनाम्बरा। लम्बस्तनी च विरल[5]द्विजा दीर्घा कृशोदरी।। ४।।
विधवा शूर्पहस्ता च रूक्षा रूक्षशिरोधरा। चलहस्ता चञ्चलाक्षी जटिला कुटिलेक्षणा।। ५।।
क्षुधातुरा पिपासार्ता तीक्ष्णा रौद्रा भयानका। उत्कारी क्रोधिनी मृत्युः क्रिया रिपुविमर्दिनी।। ६।।
सत्वरा काकजङ्घा च श्मशानालयवासिनी। महाकाली च गदिताः[6] सिद्धा व्यञ्जनशक्तयः।। ७।।

इति धूमावतीमातृका।। अथ बगलामातृका–

बगला स्तम्भिनी चैव जम्भिनी मोहिनी तथा। वश्या चलाचला चैव दुर्द्धरा कल्मषा तथा।। १।।
धीरा च कल्पना कालकर्षिणी भ्रामका तथा। ततश्च मन्दगमना भोगिनी योगिनी तथा।। २।।
एतास्तु सिद्धिदायिन्यः षोडश स्वरमूर्तयः। भगाम्बा भगमाला च भगवाहा भगोदरी।। ३।।
भगिनी भगजिह्वा च भगस्था भगसर्पिणी। भगलोला भगाक्षी च शिवा भगनिपातिनी।। ४।।
जाया च विजया धात्री अजिता चापराजिता। जम्भिनी स्तम्भिनी चैव मोहिन्याकर्षिणी क्षुमा।।५।।
रम्भिणी जृम्भणी चैव कालिनी[7] वशिनी तथा। रम्भा माहेश्वरी चैव मङ्गला रूपिणी तथा।।६।।
पीता पीताम्बरा भव्या सुरूपा बहुभाषिणी। एतास्तु शक्तयः प्रोक्ता व्यञ्जनानां तु सिद्धिदाः।।७।।

इति बगलमातृका।। अथ मातङ्गीमातृका–

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शान्तिः श्रद्धा तथैव च। वागीश्वरी क्रिया लक्ष्मीः सृष्टिश्चैव तु मोहिनी।।१।।
प्रथमा भाविनी विद्युल्लता चिच्छक्तिरेव च। ततश्च सुन्दरानन्दा नागबुद्धिस्तथैव च।।२।।

---

१. 'बाली' ग. पाठः। २. 'शना' क. पाठः। ३. 'ह्रं' ग. पाठः। ४. 'दन्य' क. पाठः। ५. 'विमल' क. पाठः।
६. 'दिनी' ग. पाठः। ७. 'कालिनी' ख. पाठः।

एता: संसिद्धिदायिन्य: षोडश स्वरशक्तय:। सरस्वती रति: प्रीति: कीर्ति: कान्तिस्तथैव च॥ ३॥
पुष्टिस्तुष्टी रमा चैव मन्मथा मकरध्वजा। मदना पुष्पचापा च द्राविणी शोषिणी तथा॥ ४॥
बन्धिनी मोहिनी वश्या ततश्चाकर्षिणी तथा। हृल्लेखा गगना रक्ता महोच्छुष्मा करालिका॥ ५॥
अनङ्गकुसुमानङ्गमेखला च तत: परम्। अनङ्गमदना चैव अनङ्गमदनातुरा॥ ६॥
अनङ्गमदनानङ्गवेगानङ्गादिसम्भवा। अनङ्गभुवनपाला चानङ्गशशि[1]रेखिका॥ ७॥
मनोभवा च मातङ्गी कामा व्यञ्जनशक्तय:। इति मातङ्गीमातृका॥

अथ लक्ष्मीमातृका—

प्रकृतिर्विकृतिर्विद्या सर्वभूतादिभावना। श्रद्धा विभूति: सुरभिर्वाक्प्रदा कमलात्मिका[2]॥१॥
पद्मालया शची पद्मा शुद्धि: स्वाहा स्वधा तथा। धन्या चैव च सम्प्रोक्ता: षोडश स्वरशक्तय:॥२॥
हिरण्या च तथा लक्ष्मीर्नित्यपुष्टा विभावरी। अदितिश्च दितिश्चैव दीप्ता च वसुधा तथा॥३॥
करुणा धर्मनिलया पद्माक्षी भूतधारिणी। पद्मप्रभा वेदमाता पद्महस्ता तत: परम्॥४॥
पद्मोद्भवा पद्ममुखी पद्मसुन्दरिका तथा। पद्मनाभप्रिया पद्मगन्धिनी पद्मिनी रमा॥५॥
पद्ममालाधरा पद्मा सुप्रसन्ना प्रिया तथा। कान्ति: प्रिया[3] च कमला अनघा हरिवल्लभा॥६॥
अमोघा अमृता दिव्याशोका व्यञ्जनशक्तय:। इति लक्ष्मीमातृका:॥

अथ कामेश्वरीमातृका—

कामेश्वरी महामाया वागीशी ब्रह्मसंज्ञिता। अक्षरा च त्रिमात्रा च त्रिपदा त्रिगुणात्मिका॥ १॥
सुरसिद्धगणाध्यक्षा गणमाता गणेश्वरी। चण्डिका चण्डमुण्डा च चामुण्डी दंष्ट्रिणीष्टदा[4]॥ २॥
स्वराणां शक्तय: प्रोक्ता: सर्वसिद्धिप्रदायिका:। विश्वम्भरा विश्वयोनिर्विश्वमाता वसुप्रदा॥ ३॥
स्वाहा स्वधा तुष्टिऋद्धी गायत्री गोगणा खगा। वेदमाता वरिष्ठा[5] च सुप्रभा सिद्धवाहिनी॥ ४॥
आदित्यहृदया चन्द्रा चन्द्रभावानुमण्डला। ज्योत्स्ना हिरण्मयी भव्या भवदु:खभयापहा॥ ५॥
शिवतत्त्वा शिवा शान्ता शान्तिदा शान्तरूपिणी। सौभाग्यदा शुभा गौरी उमा हैमवती प्रिया॥६॥

इति कामेश्वरीमातृका॥ अथ भगमालिनीमातृका—

भगमाली[6] भगा भाग्या भगिनी च भगोदरी। गुह्या दाक्षायणी कन्या दक्षयज्ञविनाशिनी॥ १॥
जया च विजया चैव अजिता चापराजिता। सुदीप्ता लेलिहाना च कराला स्वरशक्तय:॥ २॥
आकाशनिलया ब्राह्मी बाला च ब्रह्मचारिणी। ब्रह्मास्यास्यरता प्रह्वी सावित्री ब्रह्मपूजिता॥ ३॥
प्रज्ञा माता[7] परा बुद्धिर्विश्वमाता[8] च शाश्वती। मैत्री कात्यायनी दुर्गा दुर्गसन्तारिणी परा॥ ४॥
मूलप्रकृतिरीशाना पुंस्प्रधानेश्वरेश्वरी। आप्यायनी पावनी च पवित्रा मङ्गला यमा॥ ५॥

---

१. 'शक्ति' ग. पाठ:। २. 'प्रणवात्मिका' क. ख. पाठ:। ३. 'प्रभा' क. पाठ:। ४. 'प्रदा' क. पाठ:। ५. 'वसिष्ठा' क. पाठ:।
६. 'ला' ग. पाठ:। ७. 'माना' ग. पाठ:। ८. 'पशुमाना' ग. पाठ:।

ज्योतिष्मती संहरिणी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। अघोरा घोररूपा च व्यञ्जनानां च शक्तयः।। ६।।

इति भगमालामातृका।। अथ नित्यक्लिन्नामातृका—

नित्यक्लिन्ना नित्यमदद्रवोमा विश्वरूपिणी। योगेश्वरी योगगम्या योगमाता वसुन्धरा।। १।।
धन्या धनेश्वरी धान्या रत्नदा पशुवर्धिनी। कूष्माण्डी दारुणी चण्डी स्वराणां शक्तयः क्रमात्।।२।।
घोरा घोरस्वरूपा च मातृका माधवी दशा। एकाक्षरा विश्वमूर्तिर्बिम्वा विश्वेश्वरी[1] ध्रुवा।। ३।।
शर्वा क्षमादिर्भूतात्मा भूतिदा भूतिवर्धिनी[2]। भूतेश्वरप्रिया भूतिर्भूतमाला[3] च यौवनी।। ४।।
वैदेही पूजिता सीता मायावी भववाहिनी। सत्त्वस्था सत्त्वनिलया सत्त्वासत्त्वचिकीर्षणा।। ५।।
विश्वस्था विश्वनिलया श्रीफला श्रीनिकेतना। श्रीः शशाङ्कधरा नन्दा व्यञ्जनानां च शक्तयः।। ६।।

इति नित्यक्लिन्नामातृका।। अथ भेरुण्डामातृका—

भेरुण्डा भैरवी साध्वी नताख्यानन्तसम्भवा। त्रिगुणी घोषिणी घोषा लक्ष्मीः पुष्टा शुभालया।।१।।
धर्मोदया धर्मबुद्धिर्धर्माधर्मपुटद्वया। ज्येष्ठा यमस्य भगिनी चैला कौशेयवासिनी ।। २।।
भ्रमणा भ्रामिणी भ्राम्या भ्रमा ज्ञानापहारिणी। माहेन्द्री वारुणी सौम्या कौवेरी हव्यवाहिनी।। ३।।
वायवी नैर्ऋतीशानी लोकपालैकरूपिणी[4]। मोहिनी मोहजननी स्मृतिवृत्तान्तवाधिनी।। ४।।
यक्षाणां जननी यक्षी सिद्धिर्वैश्रवणालया। मेधा श्रद्धा धृतिः प्रज्ञा सर्वदेवनमस्कृता।। ५।।
आशावाञ्छा निरीहेच्छा तथा भूतानुवर्तिनी। शक्तयः कथिताश्चैकपञ्चाशद्वर्णगाः क्रमात्।। ६।।

इति भेरुण्डामातृका।। अथ वह्निवासिनीमातृका—

वह्निवासिनिका वह्निनिलया वह्निरूपिणी। यज्ञविद्या महाविद्या ब्रह्मविद्या गुहालया।। १।।
भूतेश्वरी ब्रह्मधात्री विमला कनकप्रभा। विरूपाक्षा विशालाक्षी हिरण्याक्षी शतानना।। २।।
त्र्यक्षा च कमला विद्या सिद्धविद्या धराधिपा। देवमाता दितिः पुण्या दनुः कद्रूः सुपर्णिका[5]।। ३।।
अपान्निधिर्महावेगा होर्मिर्वरुणालया। इष्टा[6] तुष्टिकरी च्छाया सामगा रुचिरा परा।। ४।।
ऋग्यजुःसामनिलया वेदोत्पत्तिः स्तुतिप्रिया। प्रद्युम्नदयिता साध्वी सुखसौभाग्यसिद्धिका।। ५।।
सर्वकामप्रदा भद्रा सुभद्रा सर्वमङ्गला। धामिनी धमनी माध्वी मधुकैटभमर्दिनी।। ६।।
बाणप्रहरिणी बाणा प्रोक्ता व्यञ्जनशक्तयः। इति वह्निवासिनीमातृका।।

अथ वज्रेश्वरीमातृका—

महावज्रेश्वरी नित्या विधिस्था चारुहासिनी। उषानिरुद्धपत्न्यौ च रेवती रैवतात्मजा।। १।।
हलायुधप्रिया माया गोकुला गोकुलालया। कृष्णानुजा कृष्णरजा नन्दस्य दुहिता सुता।। २।।
कंसविद्राविणी क्रुद्धा सिद्धचारणसेविता। गोक्षीराज्ञा घृतवती भव्या गोपजनप्रिया।। ३।।
शाकम्भरी सिद्धविद्या वृद्धा सिद्धिकरी क्रिया। दावाग्निर्विश्वरूपा च विश्वेशी दितिसम्भवा।। ४।।

१. 'भ्वरा' ग. पाठः। २ 'रूपिणी' क. पाठः। ३. 'माता' क. पाठः। ४. 'रक्षिणी' ग. पाठः। ५. 'सुवर्णिका' ग. पाठः। ६. 'इच्छा' ग. पाठः।

आधारचक्रनिलया द्वारशाला[1]वगाहिनी। सूक्ष्मा सूक्ष्मतरा स्थूला सप्रपञ्चा निरामया।। ५।।
निष्प्रपञ्चा क्रियातीता क्रियारूपा फलप्रदा। प्राणाख्या मन्त्रमाता च सोमसूर्यामृतप्रदा।। ६।।
छन्दःख्याता च चिद्रूपा परमानन्ददायिनी। निरानन्दा स्मृताश्चैकपञ्चाशच्छक्तयः क्रमात्।। ७।।

इति वज्रेश्वरीमातृका।। अथ शिवादूतीमातृका—

शिवादूती सुनन्दा चानन्दिनी विषपङ्क्तिनी। पातालखण्डमध्यस्था हृल्लेखा वनखेचरी।। १।।
कला सप्तदशी शुद्धा पूर्णचन्द्रनिभानना। आत्मज्योतिः स्वयंज्योतिरग्निज्योतिरनाहता।। २।।
प्राणशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्तिः सुखावहा। ज्ञानशक्तिः[2] सुखानन्दा वेदिनी महिमा प्रभा।।३।।
ऋजुर्यज्ञा यज्ञसाम्नी सामस्वरविनोदिनी। गीतिः सामध्वनिः स्त्रोता हुंकृतिः सामवेदिनी।। ४।।
अध्वरा गिरिजा क्षुद्रा निग्रहानुग्रहात्मिका। पुराणी शिल्पिजननी इतिहासावबोधिनी।। ५।।
वेदिका यज्ञजननी महावेदिः सदक्षिणा। आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता गोरक्षा गदिताः क्रमात्।। ६।।
शक्तयश्चैकपञ्चाशत् सर्वकामप्रदायिकाः। इति शिवदूतीमातृका।।

अथ त्वरितामातृका—

त्वरिता तोतुला धात्री किराती कृषिवाणिजे। सर्वेश्वरी ध्रुवा सर्वा सर्वज्ञानसमुद्भवा।। १।।
त्रिमात्री[3] त्रिपुरा सर्वाकारा मेया ततः परम्। ब्रह्माणी शान्तिकरका सम्प्रोक्ताः स्वरशक्तयः।। २।।
कौमारी विश्वजननी शूलहस्ता महेश्वरी। किङ्करी शक्तिहस्ता च दक्षयज्ञविनाशिनी।। ३।।
वरायुधा शङ्खरवा वैष्णव्यव्यक्तिरूपिणी । वराहमूर्तिर्वाराही नृसिंहा सिंहविक्रमा ।। ४।।
सहस्राक्षी सुराढ्या[4] च सर्वपापापहा शिवा। शिवदूती घोररवा क्षुरिपाशासिधारिणी ।। ५।।
विकराली महाकाली कापाली पापहारिणी। महालक्ष्मीर्महाकुक्षिर्योगिनी वृन्दवन्दिनी ।। ६।।
षट्चक्री चक्रनिलया चक्रगा योनिरूपिणी। गदिताः शक्तयस्त्वेताः व्यञ्जनां च शक्तयः ।। ७।।

इति त्वरितामातृका।। अथ कुलसुन्दरीमातृका—

बालोमा भैरवी शान्ता त्रिपुरा त्रिपुरेश्वरी। अहिंसा तिमिरघ्नी च भास्वरा सूर्यमण्डला।। १।।
वरायुधा वरारोहा वरेण्या विष्णुवल्लभा। श्रुतिर्निरन्तरा वेद्या सिद्धिः सर्वार्थसाधिनी।। २।।
पञ्चपञ्चात्मिका गुह्या गोनिवासा च गोधना। साङ्ख्ययोगोद्भवा शक्तिर्मात्रा काष्ठा कलात्मिका।।३।।
पीयूषा वाजिजिह्वा च रसाधारा इरंमदा। विद्युच्छतघ्नी सिंहाक्षी एकपिङ्गाङ्किता सदा[5]।। ४।।
कपाली वेद्या वेताली भूतसङ्घनमस्कृता। स्पृष्या स्पृष्टपदा भावा विभवा देशभाषिणी।। ५।।
सर्वारम्भा निरारम्भा आरम्भा भाववाहिनी। भारती भास्वरा चैव प्रोक्ता व्यञ्जनशक्तयः।। ६।।

इति कुलसुन्दरीमातृका।। अथ नित्यामातृका—

नित्या च भैरवी सूक्ष्मा प्रचण्डा सद्गतिप्रदा। प्रिया शुद्धा च शुष्का[6] च रक्ताङ्गी रक्तलोचना।।१।।

---

१ 'शान्ता' क. पाठः। २ 'ज्ञानज्योतिः' क. पाठः। ३ 'मात्रा' ग. पाठः। ४ 'सुराराध्या' क. पाठः। ५ 'तस्त्रा' क. पाठः। 'तासदा' ख. पाठः। ६ 'चण्डा च शुष्या' क. पाठः।

खट्वाङ्गधारिणी शङ्खा कङ्काला कालबर्हिणी। हिमघ्ननयना[1] वृत्ता[2] सम्प्रोक्ताः स्वरशक्तयः।। २।।
भूतनाथा भूतभाव्या दुर्वृत्तजनसम्मदा । पुण्योत्सवा पुण्यगन्धा पुण्यपापविवेकिनी ।। ३।।
दिग्वासा क्षौमवसना एकवस्त्रा जटाधरा। कपालमालिनी घण्टाधरा चैव धनुर्धरा ।। ४।।
टङ्कहस्ता चला ब्राह्मी हाकिनी शाकिनी रमा। ब्रह्माण्डपालितमुखा विष्णुमाया चतुर्भुजा।। ५।।
अष्टादशभुजा भीमा विचित्रा चित्ररूपिणी। पद्मासनापद्मवहा स्फुरत्कान्तिः शुभावहा।। ६।।
मौनिनी[3] मौलिनी मान्या मानदा मानवर्द्धिनी। जगत्प्रिया विष्णुगर्भा मङ्गला मङ्गलप्रिया।। ७।।
भूतिर्भूतिकरी भाग्या भोगीन्द्रशयना मिता। तप्तचामीकरी कृत्या आर्या वंशविवर्द्धिनी।। ८।।
अघौघशोषणी श्रावी कृतान्ता शक्तयस्त्विमाः। एकपञ्चाशदर्णानां सर्वसिद्धिप्रदायिकाः।। ९।।

इति नित्यामातृका।। अथ नीलपताकामातृका—

अथ नीलपताका च नीला माया जगत्प्रिया। सहस्रवक्त्रा पद्माक्षी पद्मिनी श्रीरनुत्तमा।। १।।
दिव्यक्रमा दिव्यभोगा दिव्यामाल्यानुलेपिनी। शुक्लाच्छवसना सौम्या सर्वर्तुकुसुमोचिता।। २।।
स्वराणां शक्तयस्त्वेताः साधकामीष्टदायिकाः। सर्वैश्वर्यगणोपेता प्रणवाग्रप्रसम्भवा[4]।। ३।।
व्यञ्जना व्यञ्जकी व्यक्ता सर्ववर्णानुवर्तिनी। जगन्माताभयकरी भूतधात्री सुदुर्लभा ।। ४।।
कामिनी दण्डिनी[5] दण्ड्या खड्गमुद्गरपाणिनी। शस्त्रास्त्रदर्शिनी बीजा विबीजा बीजिनी परा।। ५।।
वाचस्पतिप्रिया दीक्षा परीक्षा शिवसम्भवा। राजसी तामसी सत्या सत्त्वोद्रिक्ता विमोहिनी[6]।। ६।।
अतीतानागतज्ञाना वर्तमानापदेशिनी । आप्तोपदेशिनी संवित्सत्त्वबोधा धराधरा ।। ७।।
प्रकृतिर्विकृतिर्गङ्गा धूर्जटिर्विकृतानना। योगिप्रिया योगि[7]गम्या योगिध्येया परापरा ।। ८।।
वैष्णवी त्रिपदी दृष्टिरक्षया कादिशक्तयः।

इति नीलपताकामातृका।। अथ विजयामातृका—

विजया जयदा जैत्री अजिता वामलोचना। प्रतिष्ठान्तःस्थिता माता जिना माया कुलोद्भवा।। १।।
कृशाङ्गी वायवी क्षामा क्षामखण्डा त्रिलोचना। स्वराणां शक्तयस्त्वेताः कामा कामेश्वरी रमा।।२।।
काम्या कामप्रिया कामा कामचारविहारिणी। तुच्छराङ्गी[8] निरालस्या नीरुजा रुजनाशिनी ।।३।।
विशल्यकरणी श्रेष्ठा मृतसञ्जीवनी परा। सन्धिनी चक्रनमिता चन्द्ररेखा सुवर्णिका।। ४।।
रत्नमालाग्निलोकस्था[9] शाङ्खवयवाङ्किता। तारातीता तारयन्ती भूरी भूरिप्रभा स्वरा।। ५।।
क्षेत्रज्ञा भूरिशुद्धा च मन्त्रहुङ्काररूपिणी। ज्योतिर्ज्ञाना ग्रहगतिः सर्वप्राणभृतां वरा।। ६।।
कादीनां शक्तयः प्रोक्ताः साधकामीष्टसिद्धिदाः। इति विजयामातृका।।

अथ सर्वमङ्गलामातृका—

सर्वमङ्गलिका भव्या मङ्गला मङ्गलप्रभा। कान्तिः श्रीः प्रीतिरचला ज्योत्स्ना चैव विलासिनी।। १।।

१. 'घ्ना' क. पाठः। २. 'वृत्रा' क. पाठः। ३. 'मौतिनी' ख. पाठः। ४. 'प्राणबालाग्र' ग. पाठः। ५. 'दण्डकी' ग. पाठः। ६. 'विमोचनी' ग. पाठः। ७. 'योग' ग. पाठः। ८. 'तच्छरा' क. पाठः। ९. 'त्रिलोक' क. पाठः।

वरदा वारिजा व्यग्रा चारवी वास्तुदेवता। अनन्तशक्तिः सम्प्रोक्ताः स्वराणां शक्तयः क्रमात्॥ २॥
कामिकाशक्तिरतुला सर्वज्ञा ज्ञानदायिनी। युक्तिः सुयुक्तिरान्वीक्षी कुक्षिबोधा मदालसा॥ ३॥
ब्रह्मविद्या प्रभा वेश्या महायन्त्रा प्रवाहिणी। ध्याना ध्येया ध्यानगम्या योगिनी योगसिद्धिदा॥ ४॥
अक्षराक्षरसन्ताना ब्रह्मविद्या शिवप्रदा। पञ्चब्रह्मात्मिका रुद्रविद्या वेद्यस्वरूपिणी॥ ५॥
पञ्चतत्त्वात्मिका विद्या त्रिपुरा बीजतत्त्वगा। सर्वबीजात्मिका सिद्धिरज्ञानोपाधिगामिनी॥ ६॥
कल्पान्तदहनज्वाला सद्वृत्तिर्व्यालभूषणा। कादीनां शक्तयस्त्वेताः साधकाभीष्टदायिकाः॥ ७॥

इति सर्वमङ्गलामातृका॥ अथ ज्वालामालिनीमातृका—

ज्वालिनी च महाज्वाला ज्वालामाला महोज्ज्वला। द्विभुजा सौम्यवदना ज्ञानपुस्तकधारिणी॥ १॥
कपर्दिनी कृताभ्यासा ब्रह्माणी स्वात्मवेदिनी। आत्मज्ञानामृता नन्दा नन्दिनी रोमहर्षिणी॥ २॥
स्वराणां शक्तयस्त्वेताः कान्तिः काली द्युतिर्मतिः। विषयेच्छा विश्वगर्भा आधारी सर्वभाविनी॥३॥
कात्यायनी कालयाता कुटिला चानिमेषिकी[1]। नाडी मुहूर्ताहोरात्रित्रुटिः कालविभेदिनी॥ ४॥
सोमसूर्याग्निमध्यस्था मायातीता सुनिर्मला। केवला निष्कला शुद्धा व्यापिनी व्योमविग्रहा॥ ५॥
स्वच्छन्दभैरवी व्योमा व्योमातीता परेस्थिता। स्तुतिः स्तव्या नुतिः पूज्या पूजार्हा पूजकप्रिया॥६॥
कादीनां व्यञ्जनानां च सम्प्रोक्ताः शक्तयस्त्विमाः। इति ज्वालामालिनीमातृका॥

अथ विचित्रामातृका—

विचित्रा चित्रवसना चित्रिणी चित्रभूषणा। अनुलोमापसन्धिश्च मध्यमानामिकात्मिका॥ १॥
तेजोवती पद्मगर्भा मन्दरेखा घृणावलिः। विदुषी मौलिनी व्यक्ता सुकेशी स्वरशक्तयः॥ २॥
सोमपा सोमसङ्काशा वेताली तालसंज्ञिका। सोमप्रिया सोमवती मन्त्रपूता यजिक्रिया॥ ३॥
मृणाली ऋक्प्रदा शुक्तिर्विन्ध्याद्रिशिखरस्थिता। गदिनी चक्रिणी बिम्बा रक्तोष्ठी चारुहासिनी॥४॥
वाग्भवा चारुजा रक्ता सुप्रसादा सुलोचना। कौशिकी कन्दरा घोणा ककुब्री कामलोचना॥ ५॥
कामोत्सवा कामचारा अकामा पूजिता परा। तत्त्वावलोका पुरजिद्राज्ञी स्युः कादिशक्तयः॥ ६॥

इति विचित्रामातृका॥ अथ दुर्गामातृका—

दुर्गा च कौशिकी चोग्रा चण्डा माहेश्वरी शिवा। विश्वेश्वरी जगद्धात्री स्थितिसंहारकारिणी॥ १॥
योगनिद्रा भगवती देवी स्वाहा स्वधा सुधा। सृष्टिराहुतिरेवोक्ताः स्वराणां शक्तयः क्रमात्॥२॥
कला माया रमा ज्येष्ठाः स्तुतिः पुष्टिः स्थितिर्गतिः। रतिः प्रीतिर्धृतिनीतिर्विभूतिर्भूतिरुन्नतिः॥३॥
क्षितिः क्षान्तिः क्षतिः कान्तिः शान्तिः क्लान्तिर्महाद्युतिः[2]। क्षुत्पिपासा स्पृहा लज्जा निद्रा मुद्रा चिदात्मिका
गिरिजा भारतीर्लक्ष्मीः शची संज्ञा विभावरी[3]। कादीनां शक्तयः प्रोक्ताः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः॥५॥

इति दुर्गामातृका॥ अथ सरस्वतीमातृका —

---

१. 'षकी' क. पाठः। २. 'मतिः' क. पाठः। ३.'वभावनी' क. पाठः।

सरस्वती मन्त्रशक्तिर्वेदमाता जगन्मयी। मानसी हंसगा हंसी सरागा क्षेमकारिणी ।। १ ।।
अक्षया विजया[1] प्रीतिर्लोमशा लोमहारिणी। विज्ञानदेहा सम्मूढा स्वराणां शक्तयः क्रमात्।।२।।
कामदा कामिनी कान्ता परमेष्ठी निभोत्तमा। पुण्यानुबन्धा श्रेयस्का दयासारानुकम्पिनी।।३।।
चतुःस्तना पञ्चयज्ञा सुरभिः सुरपूजिता। विश्वासजीविनी विश्वा कामधेनुः स्वकामदा ।।४।।
अविद्या दुहिता कान्ता कपिला मलवर्जिता। सुशीला जीववत्सा च शीलवत्सा सुवत्सला।।५।।
नन्दिनी जयदाऽजेया दुर्जया दुःखहारिणी। स्वस्तिदा स्वस्तिकृत् स्वतिस्वरूपा स्वस्तिदक्षिणा।।६।।
शक्तयः शुभ्रवर्णाश्च व्यञ्जनानां शुभप्रदाः।। इति सरस्वतीमातृका।।

अथ वाराहीमातृका—

वाराही भद्रिणी भद्रा वाताली[2] कोलवक्त्रका। जम्भिणी स्तम्भिनी विश्वा जम्भिनी मोहिनी शुभा।।१।।
रुन्धिनी वशिनी शक्ती रमोमा स्वरशक्तयः। खड्गिनी शूलिनी घोरा शङ्खिनी गदिनी तथा।।२।।
चक्रिणी वज्रिणी चैव पाशिन्यङ्कुशिनी शिवा। चापिनी भवबन्धघ्नी जयदा[3] जयदायिनी।।३।।
महाघोरा महाभीमा भैरवी चारुहासिनी। पद्मिनी वाणिनी चोग्रा मुसलिन्यपराजिता।। ४।।
जयप्रदा जया जैत्री रिपुहा भयवर्जिता। अभया मानिनी[4] पोत्री किटिनी[5] दंष्ट्रिणी रमा।। ५।।
अक्षया कादिवर्णानां शक्तयः सिद्धिदायिकाः। इति वाराहीमातृका।।

अथ त्रिमूर्तिमातृका—

केशवो नारायणो माधवगोविन्दविष्णवः । मधुसूदनसंज्ञोऽन्यः स्यात् त्रिविक्रमवामनौ।। १।।
श्रीधरश्च हृषीकेशः पद्मनाभस्तथैव च। दामोदरो वासुदेवः सङ्कर्षण इति स्मृतः।। २।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च स्वराणां मूर्तयः क्रमात्। ततश्चाक्षरशक्तिश्च आद्या चैवेष्टदा पुनः।। ३।।
ईशानोग्रोर्ध्वनयना ऋद्धिः स्याद्रूपिणी तथा। लुप्ता च लूनदोषा च ततश्चैककलापिका[6]।। ४।।
(ऐं) कारिण्योघवती चौर्वकन्या स्यादञ्जनप्रभा। अस्थितालाधरा[7] चैव स्वराणां शक्तयः क्रमात्।।५।।
भवः शर्वश्च रुद्रश्च ततः पशुपतिस्तथा। उग्रश्चैव महादेवो भीम ईशान एव च।। ६।।
ततस्तत्पुरुषोऽघोरः सद्योजातस्ततः परम्। वामदेवस्तु विज्ञेयाः कभादीनां[8] च मूर्तयः।। ७।।
करभद्रा खगबला[9] गरिमादिफलप्रदा। घोरपादा पङ्क्तिमासा[10] ततश्चन्द्रार्धधारिणी ।। ८।।
छन्दोमयी जगत्स्थाना (ञा) कृतिर्ज्ञानप्रभा तथा। टङ्कढङ्कधरा चैव ततश्च (ष्ठं) कृतिडामरी।। ९।।
कभादीनां च वर्णानां प्रोक्ता द्वादश शक्तयः। ब्रह्मा यज्ञपतिर्वेधाः परमेष्ठी पितामहः।। १०।।
विधाता च विरिञ्चिश्च स्रष्टा च चतुराननः। हिरण्यगर्भो विज्ञेया यादीनां दश मूर्तयः।। ११।।
यक्षिणी रञ्जिनी लक्ष्मीर्वज्रिणी शशिधारिणी। षडाधारालया सर्वनायिका हसिताननाः।। १२।।
ललिता च क्षमा चैव यादीनां दश शक्तयः। त्रिमूर्तिमातृका प्रोक्ता सर्वसिद्धप्रदा मता[11]।।१४३।

१ तिर्जया ग. पाठः। २ 'वारली' क. ख. पाठः। ३ 'विजया' क ख. पाठः। ४ 'मालिनी' ग. पाठः। ५ 'कटिनी' क.ख. पाठः। ६. 'कपालिका' ग. पाठः। ७ 'अस्थिरामाधवी' ग.पाठः। ८ 'कथादीनां' क. ख. पाठः। ९ 'च बगला' ग. पाठः। १०. 'मांसा' ग. पाठः। ११. 'दायिकाः' क. ख. पाठः।

इति त्रिमूर्तिमातृका।। अथ कामकलामातृका स्वराणामेव—

श्रद्धा प्रीतीरतिश्चैव धृतिः कान्तिर्मनोरमा। मनोहरा ततश्चैव प्रोक्ता सात्र मनोरथा।। १।।
मदनोन्मादिनी पश्चात् मोहिनी शंखिनी तथा। शोषिणी च वशङ्करी शिञ्जिनी सुभगा ततः।।२।।
कामस्यैताः कलाः प्रोक्ताः स्वराणां षोडशेष्टदाः। इति काममलामातृका।

अथ सोमकलामातृका—

पूषा चेद्धा सुमनसा रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा। ऋद्धिः[१] सौम्या मरीचिश्च परतस्त्वंशुमालिनी ।।१।।
शशिनी चाङ्गिराच्छाया ततः संपूर्णमण्डला। तुष्ट्य[२] मृताख्या कथिता कलाः स्युः सस्वरा विधोः।।२।।

इति सोमकलामातृका।। अथापराजितामातृका—

प्रत्यङ्गिरा सिंहमुखी तथा ज्वालामुखी शिवा। वैष्णवी नारसिंही च त्रिमात्रा शाङ्करी परा।। १।।
अर्द्धमात्रा भगवती शूलिनी शुम्भमर्दिनी। शशाङ्कधारिणी चैव भीषिका च कपालिनी।। २।।
स्वराणां शक्तयः प्रोक्ता धृतशूलकपालकाः। उग्रा वीरा महाज्वाला हाकिनी विश्वरूपिणी।।३।।
स्तुत्या च ज्वलिनी लक्ष्मीस्तमिस्रा सर्वतोमुखी। वरेण्या तोतुला मुख्या खातीता च ततः परम्।।४।।
नृमुण्डमाला सिंही च हन्त्री भीमा च खण्डिनी। तारिणी भयदा चैव द्राविणी मृत्युरूपिणी।।५।।
त्युत्कारी मृत्युहरिणी त्युन्नता च नतिप्रिया। मालिनी जार्णरूपा च हंसिनी[३] च शिखण्डिनी।।६।।
कुण्डिनी क्षान्तिरूपा च कादीनां शक्तयः क्रमात्। इति प्रत्यङ्गिरामातृका।

अथ भवानीमातृका—

भवान्यनन्ता शरभी चक्रिणी करुणाकरा। एकमात्रा द्विमात्रा च त्रिमात्रा चापरा जया।। १।।
अर्धमात्रा परा सूक्ष्मा षट्पदा च मनस्विनी। निष्कला शक्तयः प्रोक्ताः स्वराणां वसुधर्मदा।।२।।
स्वच्छन्दानन्दसन्दोहा व्योमाकारा निरूपिता। गद्यपद्यात्मिका चैव सर्वालङ्कारसंयुता।। ३।।
साधुबन्धपदन्यासा सर्वोक्तिघटनावली। षट्तर्क[४] कर्कशाकारा सर्वतर्कविवर्जिता ।। ४।।
आदित्यवर्णाऽवर्णा च तामसी पररूपिणी। ब्रह्माणी ब्रह्मसन्ताना वेदवाग्वादिनीश्वरी।। ५।।
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता। वेदा वेदवती सर्वा हंसविद्याधिदेवता ।। ६।।
विश्वेश्वरी जगद्धात्री विश्वनिर्माणकारिणी। वेदिका वेदरूपा च कालिका कालरूपिणी।। ७।।
नारायणी महादेवी सर्वसत्त्वप्रवर्तिका[५]। हिरण्यवर्णरूपा च कादीनां शक्तयः क्रमात्।। ८।।

इति दुर्गा (भसवानी) मातृका।। अथ खेचरीमातृका—

खेचरी शक्तिरतुला व्योमाम्बा व्योमरूपिणी। व्योमस्था व्योमरूपा च व्योमातीता जगन्मयी।। १।।
शाम्भवी शम्भुवनिता शरणार्तिप्रभेदिनी । जगन्माता जगद्धात्री परविद्या सुमङ्गला।। २।।
स्वराणां शक्तयस्त्वेता भवबन्धविमोचिकाः। परा परायणा भव्या मालिनी मदविह्वला।। ३।।
विद्या सूक्ष्मा प्रभा संध्या जगन्माया जगत्क्रिया। निशाचरी जया मायाऽमेया[६] मोहविवर्धिनी।।४।।

१ 'रतिः' क. पाठः। अतिसौम्या' ख. पाठः। २ 'तुष्ट्या' क. पाठः। ३ 'हसिनी' क,ख पाठः। ४ कर्म कख पाठः। ५. 'सर्वसत्यविवर्जिता' क. ख. पाठः। ६. 'मोघा' ग. पाठः।

मोहनी[१] रञ्जिनी वश्याऽवरा[२] मातृस्वरूपिणी। वेदविद्या महाविद्या यज्ञविद्या यमान्तकी।। ५।।
सुखिनी सुखदा भोग्या भोगिनी दण्डिनी रमा। विशारदा विशालाक्षी ह्लादिनी चाक्षया तथा।।६।।
कादीनां शक्तयः प्रोक्ताः साधकेष्टफलप्रदाः। इति खेचरीमातृका।।

अथ चामुण्डामातृका—

चामुण्डा चण्डिका चण्डा चण्डमुण्डविनाशिनी। नारायणी भद्रकाली विरजा[३] विश्वमातृका।। १।।
अजिता भार्गवी सौम्या दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। आप्यायनी चण्डघण्टा मायोक्ताः स्वरशक्तयः।। २।।
कमला खड्गिनी चैव गदिनी घण्टिका परा। चरित्रा च्छत्रिणी जङ्घा झङ्कारी जयदा ततः।। ३।।
टङ्कहस्ता च ठङ्कारी डामरी ढक्किका शिवा। तमोपहन्त्री स्थानेशी दयारूपा धनप्रदा।। ४।।
नव्या परा च फट्कारी बन्धिनी भयवर्जिता। महामाया च योगीशी रङ्किणी लम्बकेशिनी।। ५।।
वरदा शाकिनी षण्डा सर्वेशी हलिनी तथा। ललिता च तथा क्षामोदरी स्यात् कादिशक्तयः।। ६।।
केवलं मातृकां न्यस्य चण्डाभक्तो भवेद्यदि। चामुण्डाशक्तिसहितां मातृकां विन्यसेद्बुधः।। ७।।

इति चामुण्डामातृका।। अथ परामातृका —

परा परायणा सूक्ष्मा विश्वा दाक्षायणी जया। विजया मानदा दक्षा योगिनी मानदा रतिः।। १।।
कौमारी पार्वती दुर्गा मानिनी स्वरशक्तयः। कलावती च करुणा कामिनी कान्तिदायिनी।।२।।
खातीता खेचरी गम्या गारुडी घनगर्जिनी। चारुहासा च चपला जगद्धात्री जया रमा।।३।।
विश्वोद्धारा विश्वमयी विशालाक्षी विशोकिनी। वरदा वासुकी बाला परमेष्ठिनुता धृतिः।।४।।
भास्वरा भावगम्यार्या[४] भानुमण्डलवर्तिनी। (फट्कारी लासिनी तारा हारिणी हव्यवाहिनी[५]।।५।।
ह्लादिनी क्लेदिनी क्लिन्ना गदिताः कादिशक्तयः। इति परामातृका।।

अथ कुरुकुल्लामातृका—

कुरुकुल्ला कुरङ्गाक्षी विषहन्त्री विषापहा। विश्वेश्वरी विशालाक्षी गारुडी गजगामिनी।। १।।
विनता विश्वजननी विश्वाख्या विश्वमातृका। राजसी तामसी सत्त्वा[६] रणत्काञ्चीविभूषणा।।२।।
स्वराणां शक्तयस्त्वेता धनधर्मसुखप्रदाः। कल्याणी कमला कान्ता सौपर्णी तार्क्ष्यशक्तिनी[७]।।३।।
नागहन्त्री नागमाता नागिनी नगजा प्रिया। नलिनी नन्दिनी भव्या सदापुष्पवती शिवा।।४।।
मदद्रवा मदवती मादिनी मन्मथालसा[८]। मोहिनी मुरजप्रीता मुनिमानसवासिनी।।५।।
पोतस्था पुरजित्कान्ता पोतशक्तिः पुरप्रिया। दिगम्बरा दितिः सौम्या दिनेशी दीनवल्लभा[९]।।६।।
दयावती दमप्रीता दारुणी लोकधारिणी। कादीनां शक्तयः प्रोक्ताः साधकेष्टफलप्रदाः।।७।।

इति कुरुकुल्लामातृका।। अथ पञ्चदशीमातृका—

सुन्दरी सुभगा भव्या महामाया मनोन्मनी। त्रिपुरा वशिनी बाला महात्रिपुरदेवता।। १।।
महाकामकला श्रेष्ठा नीला नीलसरस्वती। विश्वेशी विजया सौम्या सम्प्रोक्ताः स्वरशक्तयः।।२।।

---

१. 'मोदिनी' ग. पाठः। २. 'वश्या' ग. पाठः। ३. 'विजया' ग.पाठः। ४. 'र्घ्या' ग. पाठः। ५. 'इदं पद्यार्धं कखयोर्नास्ति।
६. 'सत्या' क. ख. पाठः। ७. 'शाकिनी' क. ख. पाठः। ८. 'लया' क. ख. पाठः। ९. दिनवत्सला' क. ख. पाठः।

कौलिनी कुलमार्गस्था कुलान्तकनिवासिनी। सर्वविद्येश्वरी[1] चैव सर्वमन्त्रेश्वरी तथा ।।३।।
सर्ववागीश्वरी सिद्धा सर्वसिद्धेश्वरी जया । सर्ववीरेश्वरी वीरा सर्वपीठेश्वरी शिवा ।।४।।
भैरवी भावनातीता भावगम्या महेश्वरी। महाविद्या महाजैत्री महात्रिपुरसुन्दरी ।।५।।
काली कात्यायनी दुर्गा वैष्णवी विष्णुवल्लभा। योगिनी योगमार्गस्था षट्चक्रपुरवासिनी।।६।।
विमला विश्वनिलया विश्वाख्या विश्वविग्रहा। शशिनी शारदा चैव चन्द्रमण्डलमध्यगा।।७।।
कादीनां शक्तयस्त्वेताः सम्प्रोक्ताः सिद्धिदायिकाः। इति सुन्दरीमातृका।।

अथ मालिन्यादिमातृका—

मालिनी नादिनी चैव ग्रसिनी प्रियदर्शिनी। निवृत्तिः सुप्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्ततः परम्।।१।।
चामुण्डा गुह्यशक्तिश्च वज्रिणी च करालिनी। कपालिनी[2] शिवा चैव ज्ञानशक्तिः क्रिया तथा।।२।।
स्वराणां शक्तयस्त्वेता[3] ज्ञानमोक्षफलप्रदाः। गायत्रीच्छा च सावित्री देहिनी[4] मुण्डमालिनी।।३।।
फट्कारी च वषट्कारी स्वधा स्वाहाहुतिप्रिया। वामा ज्येष्ठा च रौद्री च ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी।।४।।
जया वेदमयी दुर्गा जयन्ती रक्तदन्तिका। जगज्जैत्री च चैतन्यमयी विश्वप्रबोधिनी।।५।।
क्षमा शान्तिर्दया निद्रा रुद्रशक्तिः परायणा। हुङ्कारी खेचरी माया विश्वयोनिस्त्रयीमयी।।६।।
संसारभयहन्त्री च सम्प्रोक्ताः कादिशक्तयः। न्यस्तव्या मातृकास्त्वेता ऊर्ध्वाम्नायाणुदीक्षितैः।।७।।

इति मालिन्यादिमातृका।। अथ पञ्चभूतमातृका। तत्र शारदायाम्—

वाय्वग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशल्लिपयः क्रमात्। पञ्च ह्रस्वा पञ्च दीर्घा बिन्द्वन्ताः सन्धिसम्भवाः।।१।।
पञ्चशः कादयः षक्षलसहान्तसमन्विताः। इति।

तन्त्रराजे—

प्राणाग्नीलाम्बुखात्मानः षड्क्तयः पञ्च कीर्तिताः। मायाशक्त्यभिधः सर्गः पञ्चभूतात्मकः प्रभुः।।१।।
तस्मात्तस्यात्र विन्यासो नैकदेशः शिवात्मनः। वातो मरुच्चरः प्राणो वायुर्नादो रयो जवी।।२।।
व्याप्तः स्पर्शश्च नामानि वर्णानां मरुतां क्रमात्। अग्निर्वह्निः शुचिस्तेजः प्रभा दावो शिखी द्युतिः।।३।।
दाहो ग्रासश्च नामानि वर्णानां तेजसामपि। धरा क्षमा भूः स्थिरा ज्या कुर्गोत्रा भूमी रसा इला।।४।।
नामान्येतानि वर्णानां भौमानां स्युः क्रमेण वै। जलं वारि वनं वाः कं पाथस्तोयं रसोऽम्बु हृत्।।५।।
नामान्येतानि वर्णानामाप्यानां स्युर्यथाक्रमम्। विभुः खं स्वं द्युरभ्रं च व्योम शून्यं नभो वियत्।।६।।
हंसश्च नामान्येतानि क्रमेण व्योमरूपिणाम्। इति पञ्चभूतमातृका।।

अथ भूतलिपिमातृका। तत्र सिद्धसारस्वते—

अथ वक्ष्ये महामन्त्रान् सरस्वत्याः सुकामदान्। तेष्वादौ भूतलिप्याख्यो मनुः सम्प्रोच्यते प्रिये।।१।।
सारस्वते महातन्त्रे गोपितश्चातिदुर्लभः। विष्णोः[5] सकाशाद्यं लब्ध्वा मुनयो वाञ्छितं फलम्।।२।।
लेभिरे सकलं देवि किं बहूक्तेन सर्वदा। ह्रस्वानां पञ्चकं वर्ग आदितः परिकीर्तितः।।३।।

---

१. 'विश्वे' ग. पाठः। २. 'का' क. पाठः। ३. 'प्रोक्ता' क.ख.पाठः। ४. 'दहिनी' क. दाहिनी ख. पाठः। ५. 'वसो' क. पाठः।

द्वितीयः कथितो देवि शिवाद्याश्चतुरक्षराः। खं वायुवह्न्यम्बुधरा तृतीयः सम्प्रकीर्तितः॥४॥
वर्गान्त्याद्यद्वितीयोपान्त्यतृतीयैः क्रमादमी। पञ्च वर्गा वान्तशान्तभृगुर्नवमो मतः ॥ ५॥
नववर्गात्मको मन्त्रो द्विचत्वारिंशदक्षरः। वर्गाणामादिमो वर्गः श्रीकण्ठोर्ध्वोष्ठखान्विताः॥ ६॥
वर्गान्त्या वान्तसंयुक्ताः क्रमेण कथिता अमी। खं वायुवह्न्यम्बुधरा वर्गवर्णा मताः क्रमात्॥ ७॥
वर्गो द्वितीयो भूहीनो वारिभूवियुतोऽन्तिमः। नवानामपि वर्गाणां देवताः कथिताः क्रमात्॥ ८॥
विरिञ्चिविष्णुरुद्राह्वा[१] अश्विनेयौ प्रजापतिः। लोकपालाः सक्रियादिशक्तयः परिकीर्तिताः॥ ९॥

इति भूतलिपिमातृका॥ अथ त्रिषष्ट्यक्षरमातृका मातृकार्णवे—

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः। प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥ १॥
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः। यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृता॥२॥
अनुस्वारो विसर्गश्च क पौ चापि पराश्रयौ। दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेय ऌकारः प्लुत एव च॥३॥

इति त्रिषष्ट्यक्षरमातृका॥ अथ शाम्भवीमातृका—ऊर्ध्वाम्नायदीक्षितैर्न्यासः कर्तव्यः।

शाम्भवी तामसी माया महामाया शिवोत्तमा। ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षी खेचरी शिववल्लभा॥ १॥
कुण्डोदरी च लोलाक्षी विष्णुमाया महोदरी। लम्बोष्ठी व्योमरूपा च विम्वी च स्वरशक्तयः॥२॥
कान्तिः श्रद्धा रतिः प्रीतिरम्बराप्राणरूपिणी[२]। शुचिः क्षितिश्च भुवना द्युतिः श्रीः परमा रमा॥३॥
राजसी ग्रसिनी[३] चण्डा राक्षसी च विशारदा। वाग्वादिनी जया मीमा शिवा शङ्करवल्लभा॥४॥
सन्ध्या प्रज्ञा प्रभा ज्योत्स्ना विनदा विश्वरूपिणी। अस्थिमालाधरा पञ्चवक्त्रोग्रा क्षोभिणी मतिः॥५॥
व्यापिनी च स्मृताः कादिवर्णानां शक्तयः क्रमात्। शाम्भवक्रमदीक्षायुक्साधकानां महेश्वरि॥ ६॥
शाम्भवी मातृका प्रोक्ता सर्वाभीष्टफलप्रदा। एतां विन्यस्य चादौ तु ततो रश्मिक्रमं न्यसेत्॥७॥

इति शाम्भवीमातृका॥ अथ कालरात्रिकातृका—

कालरात्रिर्महारात्रिः कटुका सुभगा शिवा। मोहिनी मोहरात्रिश्च विद्या कुटुकपत्रिका॥ १॥
आथर्वणस्य दुहिता रञ्जिनी विश्वमोहिनी। मोहनास्त्रा मोहरूपा सौभाग्या मोहवर्धिनी॥ २॥
स्वराणां शक्तयस्त्वेताः साधकामीष्टहेतवः। कामिनी कमनप्रीता द्राविणी क्षोभिणी परा॥ ३॥
मदनोन्मादिनी चैव मन्मथा च मनोन्मनी। मनस्विनी मनोवासिन्यरुणा मदनोत्सवा॥ ४॥
कामवर्धनिका मदसन्ताना मञ्जुवाणी मनोहरा। मनोरमा प्रिया क्रान्ता मञ्जुघोषा मदप्रिया॥५॥
कामवर्धनिका चैव दारुणा दमनप्रिया। दण्डिनी विश्वनटिनी नलिनी विश्वमालिनी॥ ६॥
हावा भावा भावगम्या भावातीता विनोदिनी। पञ्चबाणा परोत्साहा कादीनां शक्तयः क्रमात्॥७॥
इति कालरात्रिमातृका॥

॥ इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-
श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-
श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
विद्यार्णवाख्ये तन्त्रे तृतीयः श्वासः॥ ३॥



१. 'द्रार्का' ग. पाठः। २. 'प्राणवल्लभा' ग. पाठः। ३. 'ग्रासिनी' क, ख. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

चतुर्थः श्वासः



(अथ कालीमते त्रैपुररश्मिक्रमस्त्रिपुरामधिकृत्य[1]—)

मातृकावैभवं वक्ष्ये सर्वतन्त्रेषु गोपितम्। यं बुद्ध्वा सम्प्रदायेन साधको गतसंशयः॥ १॥
मन्त्रोद्धारं स्वयं कुर्यान्मातृकारश्मिबोधनात्। प्रथमं मातृकारश्मिक्रमो ज्ञेयः सदा बुधैः॥ २॥
रश्मिक्रममविज्ञाय मन्त्रोद्धारं करोति यः। अन्धकारे स्थितं वस्तु द्रष्टुमन्वेषयत्ययम्॥ ३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुतः शास्त्रतोऽपि वा। सम्यग् ज्ञात्वा विधानेन साधको गतसंशयः॥ ४॥
मन्त्रस्वरूपं जानीयान्मन्त्रवीर्यस्य सिद्धये। अनायासेन सिद्धिः स्यान्मन्त्रवीर्यप्रबोधनात्॥ ५॥
मन्त्रवीर्यमविज्ञाय यो मन्त्रं भजते नरः। कल्पकोटिसहस्रैस्तु मन्त्रसिद्धिर्न जायते॥ ६॥
वर्णानां रश्मयो ज्ञेयाः श्वासरूपा न संशयः। ते श्वासाः पूर्णरूपाः स्युः षट्शताधिकतोऽपि च॥ ७॥
गुणसप्तसहस्राणि ह्यपूर्णा द्विगुणीकृताः। ते श्वासा द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरयोगतः॥ ८॥
सूर्यचन्द्रविभेदेन क्रूरसौम्यप्रभेदतः। पिङ्गलेडाविभेदेन ये श्वासाश्चार्धरूपिणः॥ ९॥
मूलाधारे नाभिपद्मे स्वाधिष्ठानेऽप्यनाहते। विशुद्धौ तु भ्रुवोर्मध्ये षट्चक्रेषु व्यवस्थिताः॥ १०॥
प्रतिचक्रं त्रिसाहस्रं षट्शताधिकमेव च। मूलाधारं क्षितेः स्थानं स्वाधिष्ठानं तु तेजसः॥ ११॥
मणिपूरमपां स्थानं वायोः स्थानमनाहतम्। विशुद्धं नभसः स्थानमाज्ञाचक्रं तु मानसम्॥ १२॥
मूलाधारे महापद्मं चतुर्दलसमन्वितम्। वादिसान्तचतुर्वर्णैर्दलमध्येषु संयुतम्॥ १३॥
एकस्यैकस्य वर्णस्य रश्मीनां नवशत्यपि। पार्थिवा रश्मयस्तेषु चतुर्दश चतुर्दश॥ १४॥
प्रत्यक्षरं तु विज्ञेया वादिसान्ते यथाक्रमम्। मणिपूरे दशदले डादिफान्तसमन्विते॥ १५॥
तत्राप्या रश्मयो ज्ञेया द्विपञ्चाशद्विभागशः। स्वाधिष्ठाने रसदले वादिलान्ताक्षरान्विते॥ १६॥
द्वाषष्टी रश्मयो ज्ञेयास्तैजसाश्चात्र भागशः। अनाहते रविदले कादिठान्ताक्षरान्विते॥ १७॥
वायव्या रश्मयो ज्ञेयाश्चतुष्पञ्चाशदत्र वै। विशुद्धे षोडशदले षोडशस्वरसंयुते॥ १८॥
नाभसा रश्मयो ज्ञेया द्विसप्ततिर्विभागशः। आज्ञाचक्रे तु द्विदले हक्षाभ्यां संयुते परे॥ १९॥
मानसा रश्मयो ज्ञेयाश्चतुःषष्टिर्यथाक्रमम्। षडाधारेषु सम्भूय त्रिशतं षष्टिरश्मयः॥२०॥
एकस्यैकस्य वर्णस्य रश्मयो ये समाश्रिताः। तेषु रश्मिषु सम्प्रोक्ताः षड्विधाः पार्थिवादयः॥२१॥

---

१ 'अथेत्यादि—अधिकृत्येत्यन्तं' कखयोर्नास्ति।

सङ्कीर्णा रश्मय इति तेषां नामानि च ब्रुवे। चतुर्दलात्मकाधारषट्पञ्चाशद्दलेषु च।। २२।।
पूर्वादिपार्थिवा ज्ञेया मयूखाः शुभदायकाः। सुन्दरी त्रिपुराद्या च सुन्दरस्त्रिपुरादिकः।। २३।।
ततो हृदयदेवी च देवोऽत्र हृदयादिकः। शिरोदेवी शिरोदेवः शिखादेवी ततः परम्।। २४।।
शिखादिदेवः कवचदेवी कवचदेवकः। नेत्रदेवी नेत्रदेवोऽस्त्रदेव्यस्त्रादिदेवकः ।। २५।।
कामेश्वरी च कामेशस्ततश्च भगमालिनी। भगमाली ततो नित्यक्लिन्ना नित्यादिक्लिन्नकः।।२६।।
भेरुण्डापि च भेरुण्डो बह्निवासिन्यतः परम्। वह्निवासी महावज्रेश्वरी वज्रेश्वरस्तथा।। २७।।
शिवादूती शिवादूतस्त्वरिता त्वरितस्ततः। कुलादिसुन्दरी चैव ततश्च कुलसुन्दरः।। २८।।
नित्या नित्यस्ततो नीलपताका तदनन्तरम्। नीलादिकपताकश्च विजया विजयस्ततः।। २९।।
सर्वमङ्गलनाम्नी च सर्वमङ्गलनामकः। ज्वालामालिनिका चैव ज्वालामाली ततः परम्।। ३०।।
चित्रा च चित्रः कथितो महानित्या ततः परम्। महानित्यस्ततश्चैव परमेशी ततः परम्।। ३१।।
परमेशस्तु मित्रेशमयी मित्रेशसंज्ञकः। ततस्तु षष्ठीशमयी तथा षष्ठीशसंज्ञकः ।। ३२।।
उड्डीशमय्यथोड्डीशमयश्चापि ततः परम्। चर्य्यानाथमयी चैव चर्य्यानाथमयस्तथा।। ३३।।
मयूखाः पार्थिवाः प्रोक्ताः साधकाभीष्टदायकाः। नाभिस्थाने द्विपञ्चाशद्दले दशदलात्मके।। ३४।।
तत्राप्या रश्मयो[1] ज्ञेया द्विपञ्चाशत् क्रमेण वै। लोपामुद्रामयी चैव लोपामुद्रामयस्ततः।। ३५।।
तथागस्त्यमयी चैव तथागस्त्यमयस्तथा। कालतापनशब्दादिमयी कालादितापनः।। ३६।।
मयः षष्ठश्च विज्ञेयो धर्माचार्यमयी तथा। धर्माचार्यमयो मुक्तकेश्वरादिमयी ततः।। ३७।।
मुक्तकेश्वरनामादिमयो दीपकलादिकः। नाथमय्यपि दीपादिकलानाथमयस्ततः[2]।। ३८।।
विष्णुदेवमयी चैव विष्णुदेवमयस्ततः। प्रभाकरादितो देवमयस्तेजोमयी[3] ततः।। ३९।।
तेजोदेवमयश्चैव मनोदेवमयी तथा। मनोदेवमयश्चैव कल्याणपदपूर्वकम्।। ४०।।
देवमय्यपि कल्याणदेवादिमयकस्तथा। रत्नदेवमयी चैव रत्नदेवमयस्ततः ।। ४१।।
वासुदेवमयी चैव वासुदेवमयस्तथा। रामानन्दमयी चैव रामानन्दमयस्तथा ।। ४२।।
अणिमासिद्धिरणिमासिद्धश्च लघिमादिका। सिद्धिश्च लघिमासिद्धो महिमासिद्धिरप्यथ।। ४३।।
महिमासिद्ध इत्येव ईशित्वादिस्ततः परम्। सिद्धिरीशित्वसिद्धः स्याद् वशित्वादिस्ततः परम्।।४४।।
सिद्धिर्वशित्वसिद्धः स्यात् प्राकम्यादिस्ततः परम्। सिद्धिः प्राकम्यसिद्धः स्यात् भुक्तिसिद्धिस्ततः परम्।।४५।।
भुक्तिसिद्धस्ततोऽपीच्छासिद्धिरिच्छादिसिद्धकः। प्राप्तिसिद्धिः प्राप्तिसिद्धः सर्वकामादिसिद्धिका।।४६।।
सर्वकामादिसिद्धश्च ब्राह्मी ब्रह्मा अतः परम्। माहेश्वरी च माहेशो ज्ञेया वै जलरश्मयः।।४७।।
द्वाषष्टिदलके पद्मे स्वाधिष्ठाने रसात्मके। पूर्वादिदलमारभ्य ज्ञेया तैजसरश्मयः ।।४८।।
कौमारी च कुमारश्च वैष्णवी विष्णुरेव च। वाराही च वराहश्च माहेन्द्री च महेन्द्रकः।।४९।।

१ 'शक्तयः' क.ख. पाठः। २ 'नाथस्ततः परम्' क. पाठः। ३ 'प्रभाकरादितोऽप्येवं तेजोदेवमयी इति सुपाठः।

चामुण्डा चैव चामुण्डो महालक्ष्मीस्ततः परम्। महालक्ष्मस्ततश्चैव सर्वसङ्क्षोभणी ततः॥ ५०॥
सर्वसङ्क्षोभणश्चैव सर्वविद्रावणी ततः। सर्वविद्रावणश्चैव सर्वाकर्षणिका ततः ॥ ५१॥
सर्वाकर्षणकश्चैव सर्ववशङ्करी ततः । सर्ववशङ्करश्चैव सर्वोन्मादनिका ततः ॥ ५२॥
सर्वोन्मादनकश्चैव सर्वादिकमहाङ्कुशा । तथा महाङ्कुशः सर्वखेचरी सर्वखेचरः॥ ५३॥
सर्वबीजा सर्वबीजः सर्वयोनिस्ततः परम्। सर्वयोनिस्त्रिखण्डा च त्रिखण्डस्तदनन्तरम्॥ ५४॥
त्रैलोक्यमोहनादिश्च चक्रस्वामिनिका ततः। तथैव चक्रस्वामी च प्रकटयोगिनी तथा॥ ५५॥
ततः प्रकटयोगी च कामाकर्षणिका ततः। कामाकर्षणकश्चैव बुद्ध्याकर्षणिका ततः॥ ५६॥
बुद्ध्याकर्षणकश्चैवाहङ्काराकर्षणी तथा। अहङ्काराकर्षणश्च शब्दाकर्षणिका ततः॥ ५७॥
शब्दाकर्षणकश्चैव स्पर्शाकर्षणिका ततः। स्पर्शाकर्षणकश्चैव रूपाकर्षणिका ततः॥ ५८॥
रूपाकर्षणकश्चैव रसाकर्षणिका ततः। रसाकर्षणकश्चैव गन्धाकर्षणिका ततः ॥ ५९॥
गन्धाकर्षणकश्चैव चित्ताकर्षणिका ततः। चित्ताकर्षणकश्चैव धैर्याकर्षणिका ततः।। ६०॥
धैर्याकर्षणकश्चैव स्मृत्याकर्षणिका ततः। स्मृत्याकर्षणकश्चैव नामाकर्षणिका ततः ॥ ६१॥
नामाकर्षणकश्चैव बीजाकर्षणिका ततः। बीजाकर्षणकश्चैव ततश्चानाहते तथा ॥ ६२॥
चतुरुत्तरपञ्चाशद्दले रविदलात्मके । वायव्या रश्मयो ज्ञेयाः पूर्वपत्रादितः क्रमात् ॥ ६३॥
आत्माकर्षणिका चैव आत्माकर्षणकस्तथा। अमृताकर्षणी शक्तिरमृताकर्षणस्तथा ॥ ६४॥
शरीराकर्षणी चैव शरीराकर्षणस्ततः । सर्वाशापरिपूरादिचक्रस्वामिन्यतः परम् ॥ ६५॥
तथैव चक्रस्वामीति गुप्तयोगिन्यतः परम्। गुप्तयोगी ततश्चैवानङ्गादिकुसुमा ततः॥ ६६॥
अनङ्गकुसुमोऽनङ्गमेखलानङ्गमेखलः। अनङ्गमदनानङ्गमदनोऽनङ्गशब्दतः॥ ६७॥
मदनातुरतोऽनङ्गमदनातुर एव च। अनङ्गरेखानङ्गादिरेखोऽनङ्गादिवेगिनी॥ ६८॥
अनङ्गवेग्यनङ्गाङ्कुशानङ्गाङ्कुश एव च। अनङ्गमालिनी चानङ्गादिमाली ततः परम्॥ ६९॥
सर्वसङ्क्षोभणादिश्च चक्रस्वामिनिका ततः। तथैव चक्रस्वामीति गुप्तादितरयोगिनी॥ ७०॥
तथैव योगी सर्वादिसङ्क्षोभण्यथ तत्परम्। सर्वसङ्क्षोभणश्चैव सर्वविद्रावणी ततः॥ ७१॥
सर्वविद्रावणश्चैव सर्वाकर्षणिका ततः। सर्वाकर्षणकश्चैव सर्वाह्लादनिका ततः॥ ७२॥
सर्वाह्लादनकश्चैव सर्वसम्मोहनी ततः। सर्वसम्मोहनः सर्वस्तम्भनी च ततः परम्॥ ७३॥
सर्वस्तम्भनकश्चैव सर्वजृम्भणिका ततः। सर्वजृम्भणकश्चैव सर्ववशङ्करी ततः ॥ ७४॥
सर्ववशङ्कर सर्वरञ्जनी सर्वरञ्जनः। सर्वोन्मादिनिका सर्वोन्मादनश्च ततः परम् ॥ ७५॥
सर्वार्थसाधनी चैव ततः सर्वार्थसाधनः। सर्वसम्पत्तिपूरणया सर्वसम्पत्तिपूरणः ॥ ७६॥
द्वासप्ततिदले कण्ठे षोडशच्छदकात्मके। नामसा रश्मयो ज्ञेयाः पूर्वादिदलतः क्रमात्॥ ७७॥

सर्वमन्त्रमयी चैव सर्वमन्त्रमयस्ततः। सर्वद्वन्द्वक्षयकरी सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करः ॥ ७८॥
सर्वसौभाग्यदायादिकचक्रस्वामिनी ततः। तथैव चक्रस्वामीति सम्प्रदायादियोगिनी ॥ ७९॥
सम्प्रदायादियोगी च सर्वसिद्धिप्रदा तथा। सर्वसिद्धिप्रदश्चैव सर्वसम्पत्प्रदा ततः ॥ ८०॥
सर्वसम्पत्प्रदश्चैव सर्वप्रियकरी ततः। सर्वप्रियकरश्चैव सर्वमङ्गलकारिणी ॥ ८१॥
सर्वमङ्गलकारी च सर्वकामप्रदा ततः। सर्वकामप्रदश्चैव सर्वदुःखविमोचनी ॥ ८२॥
तथैव मोचनः सर्वमृत्युप्रशमनी ततः। सर्वमृत्युप्रशमनः सर्वविघ्ननिवारणी ॥ ८३॥
तथा निवारणश्चैव तथा सर्वाङ्गसुन्दरी। सर्वाङ्गसुन्दरश्चैव सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ ८४॥
तथैव दायकश्चैव सर्वार्थसाधकादितः। चक्रस्वामिनिका चैव ततः स्वामी कुलादिका॥ ८५॥
उत्तीर्णयोगिनी चैव तथा योगी ततः परम्। सर्वज्ञा चाथ सर्वज्ञः सर्वशक्तिप्रदा परम्॥ ८६॥
सर्वशक्तिप्रदश्चैव सर्वैश्वर्य्यप्रदा ततः। सर्वैश्वर्यप्रदश्चैव सर्वज्ञानमयी ततः ॥ ८७॥
सर्वज्ञानमयश्चैव सर्वव्याधिविनाशिनी। सर्वव्याधिविनाशश्च सर्वाधारस्वरूपिणी ॥ ८८॥
सर्वाधारस्वरूपश्च सर्वपापहरा तथा। सर्वपापहरश्चैव सर्वानन्दमयी तथा ॥ ८९॥
सर्वानन्दमयश्चैव सर्वरक्षास्वरूपिणी। सर्वरक्षास्वरूपश्च सर्वेप्सितफलप्रदा ॥ ९०॥
तथा फलप्रदः सर्वरक्षाकरादितः[१] परम्। चक्रस्वामिनिका चैव तथा स्वामी ततः परम्॥ ९१॥
निगर्भयोगिनी चैव तथा योगी ततः परम्। वशिनी च वशी चैव ततः कामेश्वरी ततः॥ ९२॥
कामेश्वरो मोदिनी च मोदी च विमला ततः। विमलश्चारुणा चैवारुणश्च जयिनी जयी॥९३॥
सर्वेश्वरी च सर्वेशः कौलिनी कौलिकस्ततः। आज्ञाचक्रे द्विपत्रात्मचतुःषष्टिदलेऽब्जके॥ ९४॥
मानसा रश्मयो ज्ञेयाः सर्वरोगहरादितः। चक्रस्वामिनिका चैव तथा स्वामी ततः परम्॥ ९५॥
रहस्ययोगिनी चैव तथा योगी च बाणिनी। बाणी च चापिनी चापी पाशिनी पाशिकस्ततः॥९६॥
अङ्कुशिन्यङ्कुशी चैव महाकामेश्वरी ततः। महाकामेश्वरश्चैव महावज्रेश्वरी तथा॥९७॥
महावज्रेश्वरश्चैव तथैव भगमालिनी। भगमाली तथैवात्र महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ९८॥
तथैव सुन्दरः सर्वसिद्धिप्रदादितः[२] परम्। चक्रस्वामिन्यथ तथा स्वामी चाप्यतिपूर्विका॥ ९९॥
रहस्ययोगिनी चैव तथा योगी ततः परम्। श्रीभट्टारकसंज्ञा च श्रीभट्टारकसंज्ञकः॥ १००॥
पूर्वानन्दमयादिश्च चक्रस्वामिन्यतः परम्। तथैव चक्रस्वामीति परापररहस्यतः ॥ १०१॥
योगिनी च तथा योगी त्रिपुरा त्रिपुरस्तथा। (त्रिपुरादीश्वरी चैव ततश्च त्रिपुरेश्वरः)॥ १०२॥
त्रिपुरादिसुन्दरी च ततः त्रिपुरसुन्दरः। त्रिपुरादिर्वासिनी च तथा त्रिपुरवासकः ॥ १०३॥
त्रिपुराश्रीस्तथा श्रीश्च ततस्त्रिपुरमालिनी। माली[३] त्रिपुरसिद्धा च तथा सिद्धस्ततः परम्॥ १०४॥
त्रिपुराम्बा तथैवाम्बो महात्रिपुरसुन्दरी। तथैव सुन्दरश्चाथ महामाहेश्वरी ततः॥ १०५॥

१. ततः सर्वार्थदायकः ग. पाठः। २. 'करस्ततः' ग. पाठः। ३. 'ततः' क. ग. पाठः।

तथा माहेश्वरश्चैव महाराज्ञी ततः परम्। महाराजो महाशक्तिर्महाशक्तस्ततः परम्।। १०६।।
महागुप्ता महागुप्तो महाज्ञप्ता ततः परम्। महाज्ञप्तो महादिश्च महानन्दा महादिकः।। १०७।।
महानन्दस्तथैवात्र महास्पन्दा ततः परम्। महामहास्पन्द इति तथैवानुमहाशया ।।१०८।।
महामहाशयश्चैव विज्ञेया रश्मयोऽत्र च। आरोहणक्रमः प्रोक्तस्त्ववरोहक्रमं ब्रुवे।। १०९।।
लोपापञ्चदशार्णानां मिथुनानि ततः परम्। नवात्मेश्वरवर्णानां षोडशस्वरयोगतः ।। ११०।।
चत्वारि चत्वारिंशच्च शतं तेषां तु युग्मकम्। पञ्चब्रह्मत्रिमूर्तीना ज्योतिषां च कलाश्च ये।। १११।।
मिथुनानि च। (त्वा?ता) रोत्थकलानां मिथुनानि वै। नवात्मेश्वरवर्णोत्थकलेतरकलाः पुनः।। ११२।।
षष्ट्युत्तरं गुणशतं विज्ञेया यत्र सन्धिषु। नवात्मेश्वरमन्त्रोत्थमिथुनानि गमागमे ।। ११३।।
तथा सप्तशती विंशत्युत्तरा च ततः परम्। सषट्त्रिंशत्सप्तशतं सहस्राणि च विंशतिः।। ११४।।
कालनित्याश्च विज्ञेया मूलसंख्या समीरिता। षट्शतोत्तरयुक्तानि सहस्राण्येकविंशतिः।। ११५।।
श्वासरूपाः समाख्याता रश्मयोऽत्र कुलागमे। सूर्याचन्द्रमसौ ज्ञेयौ मूलाङ्काद् द्विगुणीकृतात्।। ११६।।
सङ्कीर्णरश्मयो ज्ञेया मूलाङ्काद् बिन्दुहीनतः। मूलाधारादधस्ताच्च सहस्रदलकेषु च।। ११७।।
सहस्ररश्मयो भान्ति तथैव ब्रह्मरन्ध्रके। सन्धिषट्केऽध ऊर्ध्वे च त्रिशद्विंशतिसंख्यया।। ११८।।
ऊनविंशतिसाहस्रं चत्वारिंशच्चतुःशतम्। सहजा रश्मयो ज्ञेयाः सङ्कीर्णा द्विसहस्रकम्।। ११९।।
शतं षष्टिः समाख्याता विज्ञेयास्तेषु भागशः। वर्णानां क्रमशो ज्ञेयाः पार्थिवाश्चैव पाथसाः।। १२०।।
तैजसाश्चानिलाश्चैव नाभसा मानसास्तथा। अवर्णस्य त्रयं सार्धं सपादत्रयमेव च।। १२१।।
अष्टमांशविहीनं स्याच्चतुष्टयमतः परम्। अष्टमांशविहीनं स्यात् सार्धत्रयमतः परम्।। १२२।।
सार्धवेदं वेदसंख्यं रश्मयः क्रमतः स्मृताः। इकारादिस्वराणां तु क्रम एष उदाहृतः।। १२३।।
एकैकस्य स्वरस्यैव सार्धद्वाविंशतिक्रमः। सदलाब्धिः कवर्णस्य पादन्यूनं तु पञ्चकम्।। १२४।।
पञ्चकं सार्धवेदं च षट् सपादं च पञ्चकम्। स्वर्णस्याप्ययं ज्ञेयः क्रमः पञ्चान्तकस्य तु।। १२५।।
भूतं सपादवेदं च पञ्चकं सार्धवारिधिः। षट्कं सपादभूतं स्यादपि घाक्षरकस्य तु।। १२६।।
सार्धाब्धिश्च सपादाब्धिः सार्धपञ्चकमेव च। सार्धाम्भोधी रसाश्चैव सपादं पञ्चकं ततः।। १२७।।
ङकारस्य चकारस्य छकारस्याप्ययं क्रमः। जकारस्य तु पञ्चैव सपादं वेदमेव च।। १२८।।
पञ्चकं सार्धवेदं च षट्कं भूतं सपादकम्। झकारस्याम्बुधिसार्धं सपादाम्बुधिरेव च।। १२९।।
पञ्चकं सार्धवेदं च षट्कं पादविहीनकम्। षट्कं ञार्णस्य तु तथा टठयोश्च जकारवत्।। १३०।।
डार्णस्य पादहीनं स्यात् षट्कं पञ्च सपादकाः। सार्धषष्ट्कं पञ्चकं च सप्तकं सार्धषट्ककम्।। १३१।।
ढणतानामयं ज्ञेयः क्रमो देशिकसत्तमैः। थार्णस्य सार्धभूतं स्यात् सपादं भूतमेव च।। १३२।।
रसाश्च पादहीनं स्यात् षट्कं सप्तकमेव च। सार्धषट्कं तथा ज्ञेया दधनानां च देशिकैः।। १३३।।

पार्णस्य सार्धभूतं स्यात् पञ्चकं षट्कमेव च। सार्धभूतं गजाः षट्कं फकारस्याप्ययं क्रमः।।१३४।।
वार्णस्य दशकं सार्द्धा गजा दशकमेव च। नवकं रविसंख्याकं सार्धपङ्क्तिर्यथाक्रमम्।। १३५।।
भार्णस्य नवकं सार्धं नवकं पङ्क्तिरेव च। नवकं रविसंख्याकं सार्धपङ्क्तिः क्रमेण वै।। १३६।।
मार्णस्य नवकं सार्धं गजाश्चैकादशापि वा। नवकं रविसंख्याकं सार्धपङ्क्तिः क्रमेण च।। १३७।।
यार्णस्य नवकं सार्धंगजाः पङ्क्तिस्तथैव च। नवकं रविसंख्याकं सार्धैकादशकं ततः।। १३८।।
रार्णस्य नवकं सार्धंगजा एकादश ततः। नवकं रविसंख्याकं सार्धपङ्क्तिर्यथाक्रमम्।। १३९।।
लार्णस्य दशकं सार्धंगजा दशकमेव च। नवकं रविसंख्याकं सार्द्धपङ्क्तिस्तथैव च।। १४०।।
वार्णस्य मनुसंख्याकं विश्वेदेवास्तथैव च। सदलं तिथिसंख्याकं सदलं विश्वमेव च।। १४१।।
अष्टादश षोडश च शषसानां सपङ्क्तयः। हार्णस्याष्टाविंशतिश्च षड्विंशतिरतः परम्।। १४२।।
एकत्रिंशत्सप्तत्रिंशत्[1] षट्त्रिंशत्तदनन्तरम्। द्वात्रिंशच्च क्रमो ज्ञेयः क्षकारस्याप्ययं क्रमः।। १४३।।
ततः सङ्कीर्णरश्मीनां सहजानामशेषतः। ज्ञानेन वर्णवृन्दस्य ज्ञातुं वैभवमुत्तमम्।। १४४।।
शक्यतेऽत्र न सन्देहः सत्यं सत्यं न चान्यथा। ककाराद्यर्कवर्णानां त्रिंशत्रिंशत्तथैव च।। १४५।।
डकारस्य दशार्णानां षट्त्रिंशत्क्रम ईरितः। बकारादि (दशा?रसा) र्णानां षष्टिसंख्या समीरिता।१४६।।
वादीनां वेदवर्णानां नवत्येवमुदाहृता। हक्षयोश्च शतं प्रोक्तमशीत्युत्तरमेव च ।। १४७।।
अकारादिस्वराणां च प्रत्येकं च शतद्वयम्। पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा मयूखा मूलतः क्रमात्।। १४८।।
सार्द्धद्वाविंशतिर्ज्ञेयाः सङ्कीर्णस्तु पृथक् पृथक्। द्विशतं सार्द्धयुग्मं च सहजा रश्मयः पृथक्।१४९।।
कादिठान्तार्कवर्णानां मूलभूतास्तु रश्मयः। शतत्रयं तु प्रत्येकं ज्ञातव्या देशिकोत्तमैः।। १५०।।
त्रिंशत्रिंशत्क्रमेणैव सङ्कीर्णा रश्मयः स्मृताः। द्विशतं सप्ततिश्चैव सहजास्तु पृथक् पृथक्।१५१।।
डादीनां दशवर्णानां त्रिशतं षष्टिरेव च। मूलभूतास्तु सङ्कीर्णाः षट्त्रिंशच्च पृथक् पृथक्।। १५२।।
सहजा द्विशतं षष्टिश्चतुरुत्तरमेव च। बादीनां रसवर्णानां मूलभूता हि रश्मयः।। १५३।।
शतषट्कं तु सङ्कीर्णा विज्ञेयाः षष्टिसंख्यया। निजाः पञ्चशतं चत्वारिंशच्च क्रमतः पृथक्।१५४।।
वादीनां वेदवर्णानां नवशत्या पृथक् पृथक्। मूलभूतांशवो ज्ञेयाः सङ्कीर्णा नवतिः पृथक्।। १५५।।
निजा दशोत्तराण्यष्टौ शतानि च ततः परम्। हक्षयोरष्टशत्यूर्ध्वसहस्रं मूलरश्मयः।। १५६।।
अशीत्युत्तरतो ज्ञेयाः शतं सङ्कीर्णरश्मयः। सहस्रं षट्शतं त्रिंशत्सहजा रश्मयः क्रमात्।। १५७।।
सर्वेषां पार्थिवा ज्ञेयाः सषट्त्रिंशच्छतत्रयम्। आप्याः सद्वादशं ज्ञेयास्त्रिशतं देशिकोत्तमैः।। १५८।।
द्विसप्तत्युत्तरं ज्ञेया[2] स्त्रिशतं तैजसांशवः। सचतुर्विंशति ज्ञेयास्त्रिशतं वायुरश्मयः।। १५९।।
चतुःशतं च द्वात्रिंशद्रश्मयो नाभसा मताः। त्रिशतं चाप्यशीतिश्च चत्वारो मानसाः स्मृताः।। १६०।।
एवं रश्मिक्रमज्ञानात् साक्षात्परशिवो भवेत्। नातः परतरं लोके मन्त्रवीर्यप्रकाशकम्।। १६१।।

१. 'सप्तविंशत्' ग. पाठः। २. 'त्युत्तरमेवं स्युः' ग. पाठः।

गुह्याद्गुह्यतरं चैव नादेयं यस्य कस्यचित्। दत्तं चेत्सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा पारमेश्वरी॥ १६२॥
(स्तम्भने पार्थिवप्राया विज्ञेया मनवोऽत्र च)। आप्यप्रायाश्च मनवः शस्ताः स्युः शान्तिकर्मणि॥ १६३॥
तैजसास्तु वियत्प्रायाः कर्मणो वश्यकेऽपि च। उच्चाटने तु वायव्याः प्रशस्ता मनवोऽत्र च॥ १६४॥
मन्त्रास्तु मानसप्राया मुक्तिदा नात्र संशयः। प्रबुद्धा कुण्डलीशक्तिर्मन्त्रा बोधं प्रयान्ति च॥ १६५॥
ज्ञात्वा सम्यग्विधानेन गुरुतः शास्त्रतोऽपि वा। आरोहणक्रमेणैवाप्यवरोहक्रमेण च॥ १६६॥
रश्मिन्यासे कृते चैव मन्त्राः सिद्ध्यन्ति तत्क्षणात्। रश्मिन्यासं विना यस्तु मन्त्रवीर्यप्रयत्नवान्॥ १६७॥
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि। कालीमते समुदिष्टा रश्मयः सिद्धिदायकाः॥ १६८॥

इति कालीमते श्रीविद्यारश्मयः॥

वक्ष्ये कादिमते सम्यग्रश्मयश्चक्रषट्कके। पार्थिवाः स्वरहीनाश्च सप्त ह्रस्वस्वरान्विताः॥ १॥
पञ्चत्रिंशत् समुद्दिष्य दीर्घयुक्तास्तु सप्ततिः। ते पुनः शुद्धतो बिन्दुसर्गाभ्यां दशपञ्च च। २॥
शतत्रयं समुद्दिष्टाः पार्थिवाः पञ्च युक्स्वराः। उदात्ताश्चानुदात्ताश्च स्वरितास्तिथिसंज्ञकाः॥ ३॥
ते पुनः शुद्धतो बिन्दुसर्गाभ्यां समुदाहृताः। पञ्चचत्वारिंशदिति त्रिशतं षष्टिसंख्यकाः॥ ४॥
मूलाधारे महीस्थाने विज्ञेया देशिकोत्तमैः। सङ्कीर्णा रश्मयः ख्याता मणिपूरे जलाश्रये॥ ५॥
स्वाधिष्ठानेऽनलावासेऽनाहतेऽनिलमन्दिरे। विशुद्धे व्योमनिलये तथा प्रोक्ताश्च रश्मयः॥ ६॥
आज्ञाचक्रे मनःस्थाने हलक्षास्त्रय एव हि। ह्रस्वदीर्घस्वरैर्युक्ताः पञ्चोत्तरमतः परम्॥ ७॥
चत्वारिंशत् समाख्यातास्ते पुनः सानुनासिकाः। ततस्तेऽननुनासाश्च तथा नवतिसंख्यकाः॥ ८॥
ते पुनः शुद्धतो बिन्दुसर्गाभ्यामुभयात्मना। षष्ट्युत्तरं त्रिशतकं सम्यक्ख्याताः स्युरंशवः॥ ९॥
स्वराणां भागशः प्रोक्ताः पार्थिवाद्याश्च षड्विधाः। एकस्यैकस्य वर्णस्य सार्द्धद्वाविंशतिः पृथक्॥ १०॥
कादीनां रविवर्णानां पार्थिवाद्याश्च षड्विधाः। एकस्यैकस्य वर्णस्य त्रिंशत् त्रिंशत् पृथक् पृथक्॥ ११॥
डादीनां दशवर्णानां पार्थिवाद्याश्च रश्मयः। एकस्यैकस्य वर्णस्य षट्त्रिंशत्क्रम ईरितः॥ १२॥
बादीनां रसवर्णानां पार्थिवांशादयः क्रमात्। एकस्यैकस्य वर्णस्य षष्टिः षष्टिरुदाहृताः॥ १३॥
बादीनां वेदवर्णानां पार्थिवाद्याश्च षड्विधाः। एकस्यैकस्य नवतिर्नवतिः प्रोक्तरूपतः॥ १४॥
हक्षयोः पार्थिवाद्याश्च षड्विधा रश्मयः क्रमात्। अशीत्युत्तरतो ज्ञेयाः शतमेकैकवर्णके॥ १५॥
एवं सहस्रद्वितयं शतं षष्टिश्च रश्मयः। चक्रे चक्रे विजृम्भन्ते सङ्कीर्णा रश्मयः पृथक्॥ १६॥
निखिला रश्मयो ज्ञेयाः सङ्कीर्णा द्वादशैव हि। सहस्राणि च षष्ट्यूर्ध्वनवशत्या युतानि वै॥ १७॥
सन्धिषट्केऽथ ऊर्ध्वे च चत्वारिंशच्च षट्शतम्। अष्टौ सहस्राण्येवं हि सङ्कीर्णा रश्मयोऽम्बिके॥ १८॥
षष्ट्युत्तरशतोर्ध्वं च द्विसहस्रमपास्य च (?)। त्रिचत्वारिंशदेवात्र सहस्राणि शतद्वयम्॥ १९॥
रश्मयो मूलभूता हि समुद्दिष्टा ह्यशेषतः। निजाश्च भागशो ज्ञेयाः सङ्कीर्णाः प्रागुदीरिताः॥ २०॥

अर्धं सूर्यस्वरूपाश्च अर्धं सोमस्वरूपिण:। इति।

तन्त्रान्तरे –

कण्ठदेशे स्वराणां च भूतवर्णत्रिके त्रिके। तत्तद्भूतांशवो ज्ञेया: शतत्रयविभागत: ॥ १॥
अन्येषां पञ्च पञ्चैव विसर्गस्य तु मानसा:। शतत्रयं समुद्दिष्टा अन्येषां तु चतुर्दश ॥ २॥
कादिष्वनिलवर्णानां पञ्चोत्तरशतक्रम:। अन्येषां पञ्च पञ्चैव नवानां वायुरश्मय: ॥ ३॥
आग्नेयानां त्रयाणां च पञ्चोत्तरशतांशव:। अन्येषां पञ्च पञ्चैव नवानामग्निरश्मय: ॥ ४॥
धरार्णयोरेकशती पञ्चविंशतिरुत्तरा:। अन्येषां रुद्रवर्णानां पार्थिवांशा दश क्रमात् ॥ ५॥
जलार्णयोरेकशती पञ्चविंशतिरुत्तरा:। अन्येषां रुद्रवर्णानां क्रमाद् दश जलांशव: ॥ ६॥
आकाशार्णद्वयस्यापि शतं वै पञ्चविंशति:। एकैकस्य तु विज्ञेया अन्येषां दश वै दश॥ ७॥
डादिफान्तदशार्णेशु तत्तद्भूतार्णयो: पृथक्। तत्तद्भूतांशवो ज्ञेया: सार्धं शतमिति स्फुटम्॥ ८॥
अन्येषां वसुवर्णानां सार्द्धद्वादश रश्मय:। बादिलान्तार्णषट्केषु धरावर्णद्वये पृथक्॥ ९॥
धरांशवस्तु विज्ञेया: षष्ट्युत्तरशतं तथा। अन्येषां पङ्क्तिसंख्याका विज्ञेया वीरवन्दिते॥ १०॥
तत्तद्भूतांशवो भादितत्तद्भूतार्णकेषु च। देशिकेन्द्रै: सुविज्ञेया एकैकस्य शतत्रयम्॥ ११॥
अन्येषां तु त्रिवर्णानां प्रत्येकं विंशतिक्रम:। वार्णादिवेदवर्णानां जलयोर्जलरश्मय:॥ १२॥
सार्द्धं शतं तु विज्ञेया अन्येषां विंशतिक्रम:। द्वितीयस्य शतं सार्धमन्येषां सप्ततिक्रम:॥ १३॥
नाभसाश्चात्र विज्ञेयास्तृतीयस्य तथैव च। वायव्या: क्रमतो ज्ञेया हकारस्य शतत्रयम्॥ १४॥
क्षार्णस्य षष्टिसंख्या स्यान्नाभसा नात्र संशय:। अग्न्यंशव: क्षकारस्य विज्ञेया वै शतत्रयम्।१५॥
हार्णस्य षष्टिसंख्या स्यादन्ये तुल्या न संशय:। एवं रश्मिक्रम: प्रोक्त: साधकानां हिताय च।१६॥
गोपनीय: प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति। नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन॥ १७॥
दत्ते न सिद्धिहानि: स्यादित्याज्ञा पारमेश्वरी। गुरुत: शास्त्रतो ज्ञात्वा साक्षात्परशिवो भवेत्।१८॥
स्वरा: षोडश विख्याता: स्पर्शास्ते पञ्चविंशति:। व्यापका दश सम्प्रोक्ता: सोमसूर्याग्निरूपिण:।१९॥
गुणत्रयात्मका: कामवसुधर्मप्रदा: क्रमात्[१]। तत्त्वत्रयात्मकाश्चैव भूर्भुव: स्व: स्वरूपिण:॥ २०॥
मूर्तित्रयात्मका: सृष्टिस्थितिसंहारकारिण:। धामत्रयात्मकाश्चैव ह्यादिमध्यान्तरूपिण: ॥ २१॥
एतेषां वैभवं वक्ष्ये शृणु देवि समाहिता। तिर्यगूर्ध्वमध:स्थानारोहणाद्यवरोहत: ॥ २२॥
समस्तव्यस्तरूपेण प्रतिलोमानुलोमत: । अवस्थात्रयरूपेण व्याप्यव्यापकभेदत: ॥ २३॥
तेजसां[२] शक्तिमूर्तीनां वर्णगुम्फितयोगत:। सूत्रप्रायात्मकत्वेन कुण्डलिन्या विधानत:॥ २४॥
अष्टात्रिंशत्कला ज्ञेया मन्त्रवीर्यार्थकारिण:। स्वराणां षोडश प्रोक्ता: पृथक् सोमकला: क्रमात्।२५॥
स्पर्शानां[३] मार्णराहित्ये षट्षट् सूर्यकला: पृथक्। व्यापकानां कला: वह्ने: पृथग् दश दशैव हि।२६॥

१ 'अग्नित्रयात्मकाश्चैव महाकालादिरूपिण:' ग. पाठ:। २ 'सां' क. ख. पाठ:। ३ 'नामा' क. ख. पाठ:।

आरोहणेऽर्धसंख्यास्तास्तथा स्युरवरोहणे। प्रकृतिस्था विजानीयाद्रवेरुभयथा[1] कलाः ॥ २७॥
अप्राकृताः सोमकला वह्नेश्चापि न संशयः। मार्णस्योभयथा[2] प्रोक्ताः षट्सप्ततिकला क्रमात्॥ २८॥
अष्टात्रिंशत्तथारोहेऽप्यवरोहे तथैव च । एता निजकलाः प्रोक्ताः पूर्णमण्डलरूपिणः॥ २९॥
तत्स्वरूपानुसन्धानसिद्धेः सम्यक्त्वयोगतः। अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यष्टोत्तरशतं तु वा॥ ३०॥
अष्टाविंशतिसंख्यातो जपेन्मन्त्रं समाहितः। वीर्ययुक्तो भवेन्मन्त्रस्त्वनायासेन सिद्ध्यति॥ ३१॥
निजाः कलास्ते सम्प्रोक्ताः सङ्कीर्णाश्च शृणु प्रिये। ततोऽष्टात्रिंशदर्णानामष्टात्रिंशत् पृथक् पृथक्।३२॥
कभादिकठडान्ताश्च द्वादशार्णा रवेः स्मृताः। स्वराः षोडश सोमस्य वह्नेर्यादि दशैव हि॥ ३३॥
चतुश्चत्वारिंशदब्धिशतं सहस्रमेव च। सोमसूर्याग्निरूपिण्यः सङ्कीर्णाः स्यु कलास्तथा॥ ३४॥
असङ्कीर्णास्तथा प्रोक्ताः पूर्णमण्डलसंख्यकाः। सर्वाः कलास्ताः सम्प्रोक्ताः सहस्रे द्वे च विंशतिः।३५॥
कला मार्णस्य[3] सङ्कीर्णाः सहस्रं च चतुःशतम्। चतुश्चत्वारिंशदिति निःशेषं समुदाहृताः॥ ३६॥
ह्रस्वस्वरास्तु पुंरूपा दीर्घाः स्त्रीरूपिणः सदा। स्वराणां मध्यगं यत्तच्चतुष्कं तु नपुंसकम्॥ ३७॥
कादिवर्णाः स्मृताः केचित् पुंरूपाः स्त्रीस्वरूपकाः। केचिन्नपुंसकाः केचित्सर्वे ते ह्युभयात्मकाः।३८॥
मकारः केवलं प्रोक्तः पुरुषस्तु सदाशिवः। बिन्दुरूपी च सर्वात्मा साक्षी सर्वत्र सर्वदा॥ ३९॥
तथा च व्योमवर्णानां स्वरूपं शृणु पार्वति। हकारः परमं व्योम बिन्दुरूपी सदाशिवः॥ ४०॥
निर्गुणो निर्मलः शुद्धो नित्यरूपी निरञ्जनः। पुरुषस्तु गुणातीतो मकारः सगुणः पुमान्॥ ४१॥
शकारोऽम्ब्वात्मकं व्योम शब्दातीतं निरञ्जनम्[4]। नकारः शून्यरूपी स्यादनिलात्मकखं शिवे॥ ४२॥
णकारो धरणीयुक्तो व्योमरूपी च संस्फुटः[5]। ञकारोऽपि तथैवोक्तो ङकारो मरुदात्मकः॥ ४३॥
लृलॄकारौ व्योमवर्णौ पार्थिवानलसम्भवौ। स्वरूपं वायुवर्णानां शृणुष्व परमेश्वरि॥ ४४॥
यकारो निर्गुणो वायुरूपी प्राणमयः शिवः। षकारो जीवभूतश्च जीवनात्मा समीरणः॥ ४५॥
पकारो वह्निरूपी स्याद्वायुः स्पर्शात्मकः परः। तकारो व्योमरूपी स्याद्वायुः सर्वार्थतत्त्वगः॥ ४६॥
टकारः स्तम्भरूपी स्याद्वायुः क्षित्यात्मकः परः। चकारोऽग्न्यात्मको वायुः सौम्यरूपी महेश्वरः।४७॥
ककारः खात्मको वायुः सर्वलोकविमोहनः। एकारो रुद्ररूपी स्याद्वायुर्व्योमात्मकः परः।४८॥
आकारः शब्दरूपी[6] स्याद्वायुरग्न्यात्मकः परः। अकारः सगुणो वायुस्तेजसां निधिरव्ययः।४९॥
स्वरूपमग्निवर्णानां वक्ष्येऽहं शृणु पार्वति। रेफस्तु सर्ववीजानां[7] चैतन्यं निष्कलं परम्॥ ५०॥
आग्नेयमक्षरं शुद्धं[8]निर्मलीकरणार्थकम्। क्षकारो मारुतव्यापी सगुणानिलवर्णकः ॥ ५१॥
फकारोऽग्न्यात्मको वर्णो व्योमरूपी परात्परः। थकरो व्योमरूपी स्यादाग्नेयो व्यक्तविग्रहः।५२॥
ठकारोऽग्निश्चन्द्ररूपी सलिलात्मकमक्षरम्। छकारोऽम्ब्वात्मकोऽग्निश्च सर्वस्तम्भनकारकः।५३॥
खवर्णो मारुतव्यापी तेजोवर्णः परात्परः। ऐकारोऽग्निर्वायुरूपी सर्वमन्त्रार्थजीवनः ॥ ५४॥

१. 'दाः' ग. पाठः। २. 'प्रार्णस्योभयदा' ग. पाठः। ३. 'प्रार्णस्य' ग. पाठः। ४. 'पुनिर्मलम्' क.ख. पाठः। ५. 'संपुटः' ग. पाठः ६. 'एतत्पद्यार्धं' कखयोर्नास्ति। ७. 'शक्तिः' क. पाठः। ८. 'सर्ववर्णानां' ग. पाठः। ९. 'द्धवि' ग. पाठः।

तेजस्त्रयात्मको वह्निरिकारः शाक्तमक्षरम्। ईकारोऽग्निर्वायुरूपी सर्वबीजात्मकः परः।। ५५।।
स्वरूपं भूमिवर्णानां शृणुष्वैकमनाः प्रिये। (स?ल) कारः पृथिवीवर्णो निर्गुणः परमव्ययः।।५६।।
(ल?ळ) कारः सगुणो भूमिवर्णो वाय्वात्मकः परः। बकारोऽमृतरूपी स्यात् क्षितिवर्णोऽव्ययः परः।।५७।।
दकारोऽग्न्यात्मकः शम्भुर्भूमिवर्णो महान् प्रभुः। डकारः क्षितिवर्णः स्यात्................।।५८।।
जार्णोऽमृतात्मको ज्ञेयो भूमिवर्णोऽमृतप्रदः। गकारो वायुरूपी स्यात् क्षितिवर्णो निरोधकृत्।।५९।।
ओकारो व्योमरूपी स्याद्धरावर्णः परात्परः। ऊकारोऽग्न्यात्मकः शम्भुर्विश्वरूपी धरार्णकः।।६०।।
उकारोऽनिलरूपी स्याद्धरार्णो व्यापकः परः। स्वरूपं जलवर्णानां वक्ष्ये शृणु महेश्वरि।। ६१।।
वकारोऽमृतबीजं स्यान्निर्गुणः परमः शिवः। सकारश्चन्द्ररूपी स्याच्छाक्तार्णो जलरूपधृत्।।६२।।
धरात्मको भकारः स्याज्जलार्णः परमः शिवः। व्योमात्मको धकारः स्यात्पाथसार्णो महेश्वरः।।६३।।
ढकारो जलवर्णः स्याद्विश्वव्यापी धरात्मकः। वाय्वात्मको झकारः स्याज्जलार्णः पुरुषोऽव्ययः।।६४।।
घकारो वायुरूपी स्यात्सलिलार्णो महान् प्रभुः। औकारो व्योमरूपी स्याद्व्योमव्यापी जलार्णकः।।६५।।
ऋॠ वह्न्यात्मकौ ज्ञेयौ जलार्णौ शिवरूपिणौ। वैभवं मातृकार्णानां प्रोक्तं ते परमेश्वरि।। ६६।।
तेजस्त्रयविधानं ते प्रोक्तं यद्वर्णरूपतः। तेन रूपेण मन्त्राणा[१] भावनारूपतोऽनिशम्।। ६७।।
वीर्यप्रकाशनं विद्धि सर्वमन्त्रेषु गोपितम्। मन्त्रवीर्यं स्मरन् मन्त्री जपेन्मन्त्रं समाहितः।। ६८।।
अचिरेणैव कालेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते। इति।

श्रीतन्त्रराजे—

मन्त्रवीर्यं शृणु प्राज्ञे कथयामि सुखास्पदम्। येन विज्ञानमात्रेण[२] जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।। १।।
तेजसां शक्तिमूर्तीनां प्रपञ्चस्यापि कारणम्। गुणत्रयममीषां च यत्कारणमुदाहृतम् ।। २।।
तत्स्वरूपानुसन्धानसिद्धिः सम्यक्त्वमीरितम्। तन्मन्त्रवीर्यमुद्दिष्टं मन्त्राणां जीव ईरितः।। ३।।
असम्यक्त्वे तु मन्त्राणामयोग्यकथनेन वै। सदा प्रयोगाद् भजनादकाले संशयाद् भवेत्।। ४।।
गुरोरवज्ञया पापान्निषिद्धाचारयोगतः। देवताद्रोहतः सर्वपरिवादानवस्थया।। ५।।
असम्प्रदायादज्ञानादनेकभजनादपि। तत्सम्यक्त्वं येन भवेद्वीर्यं तत्पूर्वमीरितम्।।६।। इति।

उत्तरतन्त्रे—

मन्त्रवीर्यं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय च। यस्याज्ञानेन नियतं मन्त्रा निश्चेतनां गताः।। १।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सूर्यकोटिसमप्रभाम्। विद्युत्कोटिनिभां देवीं चन्द्रकोटिप्रभामयीम् ।। २।।
जगदुत्पत्तिरक्षान्तकारिणीं ज्ञानचित्कलाम्। अष्टात्रिंशत्कलारूपां सर्वमन्त्रमयीं पराम्।। ३।।
सर्वतेजोमयीं दिव्यां परमामृतजृम्भिणीम्। षट्चक्रमार्गनिलयां व्योमषट्कावलम्बिनीम्।। ४।।
चिरं ध्यात्वा साधकेन्द्रः षट् चक्राणि विभाव्य च। तदन्तरष्टत्रिंशाब्जनिचयं च विभाव्य च।। ५।।

१. 'वर्णानां' ग. पाठः। २. 'येन ज्ञानानुभूतेन' क. पाठः। 'विज्ञानभूतेन' ख. पाठः। 'ज्ञानानुभूतेन' ख. पाठः।

तत्तदब्जस्थितान् वर्णान् कुण्डलीसूत्रगुम्फितान्। तेजस्त्रयात्मकान् ध्यात्वा सूर्याग्नीन्दुकलाः स्मरेत्॥६॥
गमागमविभेदेन तिर्यगूर्ध्वविभेदतः। अवस्थापञ्चकाङ्केन ह्यध ऊर्ध्वविभेदतः ॥७॥
समस्तव्यस्तरूपेण सर्वावस्थां गता यतः। ग्रथनादिक्रमेणैव षट्कर्मसु विशेषतः॥८॥
तेजस्त्रयात्मकैर्वर्णैर्मूलमन्त्रं सुयोज्य च। जपित्वा भावयेन्मन्त्री तत्तच्चक्रार्णकैः पृथक्॥९॥
ततस्तु ब्रह्मकङ्काले ध्यायेच्चक्रक्रमं सुधीः। आधारचक्रं प्रथमं कुलदीपमनन्तरम्॥१०॥
वज्रचक्रं ततः प्रोक्तं स्वाधिष्ठानात्मकं परम्। रौद्रं करालचक्रं च गह्वरात्मकमेव च॥११॥
विद्यापदं च त्रिमुखं त्रिपदं कालदण्डकम्। झङ्कारचक्रं च ततः कालोद्गारं करङ्ककम्[१]॥१२॥
दीपकं क्षोभकं झम्मकानन्दकलिकात्मकम्[३]। मणिपूरकसंज्ञं च लाकुलं कालभेदनम्॥१३॥
महोत्साहं[४] च परमं मादकं[५] पदमुच्यते। अनाहतान्तं चक्राणि छन्दः संख्यात्मकानि वै॥१४॥
ततस्तु वैष्णवं चक्रं षण्मुखं षट्पदं ततः। विशुद्धं लम्बिकान्तं च लम्बिकास्थानमेव च॥१५॥
इन्दुचक्रं बिन्दुचक्रं नादं नादान्तमेव च। शक्तिचक्रं सहस्रारमेतानि द्वादशैव तु ॥१६॥
अष्टात्रिंशत्कलास्थानानीति चक्रक्रमः प्रिये। आधाराद्दश (चक्राणि) वह्निस्थानानि सुन्दरि॥१७॥
ततो द्वादशचक्राणि रवेः स्थानानि वै प्रिये। तदूर्ध्वं षोडशान्यत्र चक्राणीन्दोः सुरेश्वरि॥१८॥
कुण्डलिन्या महाशक्तेः सर्वावस्थासु सर्वदा। सर्वाः कलास्ताश्चाग्नेय्यः सर्वाः सौराः महेश्वरि॥१९॥
सर्वा सौम्याः प्रजायन्ते भावनामात्रतः शिवे। अग्नित्रयं तथा सूर्यत्रयं सोमत्रयं तथा॥२०॥
नवधा भिद्यते देवि द्वावग्नौ सूर्य एव च। तथा सोमः प्रातिलोम्याद्द्वयमिन्द्वर्कयोस्तथा॥२१॥
एवं द्वादशधा देवि भिद्यते नात्र संशयः। अग्निसूर्येन्दवश्चैव इन्दुसूर्याग्नयस्ततः ॥२२॥
सूर्यसोमाग्नयश्चैव अग्नीन्द्वर्कास्तथैव च। सूर्यसोमाग्नयश्चैव अग्निसूर्येन्दवस्तथा (?) ॥२३॥
अष्टादश प्रभेदाः स्युः प्रतिलोमानुलोमतः। साङ्कर्यभेदाः[६] सञ्जाता नवैव परेश्वरि ॥२४॥
एवं भेदा भवन्त्यष्टचत्वारिंशत् क्रमेण वै। एतैर्भेदैर्मूलमन्त्रग्रथनादिरिहोच्यते ॥२५॥
मन्त्राः सर्वे महेशानि सकृदुच्चारमात्रतः। वीर्यवन्तो भवन्त्येव सत्यं सत्यं न संशयः॥२६॥
अथवान्यप्रकारेण मन्त्रवीर्यं शृणु प्रिये। अष्टात्रिंशत्कलारूपा माला सर्वार्थसाधिनी॥२७॥
मकारं[७] मेरुरूपं तु कृत्वाष्टात्रिंशदेव हि। एकस्यैकस्य संख्याङ्कं (?) जप्त्वा मन्त्रं प्रसिद्ध्यति॥२८॥
अथवान्यप्रकारेण मन्त्रवीर्यं शृणुष्व तत्। वाग्भवं ब्रह्मणो बीजं[८] श्रीबीजं विष्णुबीजकम्॥२९॥
मायाबीजं तु रुद्रस्य बीजत्रयमुदाहृतम्। तेजस्त्रयात्मकं चैव गुणत्रयमयं प्रिये ॥३०॥
त्रिमूर्तीनां कलादौ तु त्रिबीजं योजयेत् पृथक्। पूर्ववत् प्रजपेन्मन्त्रं ग्रथनादिविभेदतः ॥३१॥
मन्त्रवीर्यं तदुद्दिष्टं सत्यं सत्यं न चान्यथा। अथवान्यप्रकारेण मन्त्रवीर्यं शृणु प्रिये ॥३२॥
हकारः सूर्य आख्यातः सूर्यो वह्न्यात्मकः प्रिये। सकारः सोम आख्यात औकारः सोमरूपधृत्॥३३॥

---

१. 'विभेदतः' ग. पाठः। २. 'ङ्कदम्' क. पाठः। 'ङ्कम्' ख. पाठः। ३. 'कलिला' क.ख. पाठः। ४. 'मदो' क. पाठः। ५. 'गांदकं' ख. पाठः। ६. 'भेदात्' ग. पाठः। ७. 'सकारं' ग. पाठः। ८. 'रूपं' ग. पाठः।

बिन्दुस्तु गगनं देवि सर्वेषां समरूपधृत्। यो जपेत् प्राणदूतीनामादौ बीजं पृथक् पृथक्।।३४।।
सहस्रं प्रजपेद् देवि प्रथनादिविभेदतः। सर्वदोषानपास्यैवं वीर्यवाञ्जायते मनुः ।। ३५।।
एवं चतुर्धा यत्प्रोक्तं मन्त्रवीर्यप्रकाशनम्। गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।। ३६।।
मन्त्रवीर्यं शृणु प्राज्ञे प्रकारान्तरतो भृशम्। दीक्षाकाले तु यद्रूपं स्वस्यानुग्रहकर्मणि ।। ३७।।
श्रीगुरोः सावधानेन तद्रूपं परमेश्वरि । भावयन् व्योमचक्रेऽस्मिन् परमामृतजृम्भिते ।। ३८।।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं मातृकाक्षरमालया। श्रीगुरोः कृपया देवि वीर्यवाञ्जायते मनुः ।। ३९।।
सुगमोऽयं प्रकारः स्याद् दुर्लभो भुवनत्रये।। इति।।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् —

अथ वक्ष्ये महेशानि मातृकां लोकमातरम्। अकारादिक्षकारान्तवर्णावयवदेवताम्।। १।।इति।।

उत्तरतन्त्रे—

अथ सम्यङ्मातृकाया विधानमभिधीयते। अशेषदुःखशमनं समस्तज्ञानदीपनम्।। १।।
प्रोक्तो ब्रह्मा मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मता। सरस्वती सर्वदेववन्दिताऽनिन्दितप्रभा।।२।।
समस्तमातृकायास्तु हलो बीजानि शक्तयः। स्वराः स्युः परमेशानि जात्या[1] व्यक्तिस्तु कीलकम्।।३।।

अनिर्वाच्यानां हलां स्वरसंयोगेन सुवाच्यत्वं, व्यक्तिस्तत्कीलकमित्यर्थः। "अनिर्वाच्या हलो वर्णाः शक्त्या व्यक्ता भवन्ति हि" इति तत्रैवोक्तत्वात्।। सिद्धसारस्वततन्त्रे—

दक्षहस्ततले पृष्ठे करभेऽङ्गुष्ठकादिषु। कनिष्ठान्तासु वामे च कनिष्ठादितलावधि।। १।।
स्वरान् षोडश देवेशि केवलान् विन्यसेत् प्रिये। दक्षहस्ततलान्तं तु न्यसेत् संहार ईरितः।। २।।
दक्षहस्ततलाद् देवि वामहस्ततलावधि। न्यसेद्विसर्गसंयुक्तान् सृष्टिरेषा प्रकीर्तिता ।। ३।।
वामहस्तनिष्ठादितत्तलावधि विन्यसेत् । बिन्दुसर्गयुतानष्टौ[2] लृकारादीन् स्वरान् पुनः।। ४।।
दक्षहस्ततलाद् देवि तत्कनिष्ठावधि प्रिये। अकारादिऋ[3]कारान्तान् स्थितिन्यास उदाहृतः।। ५।।
वामहस्तकनिष्ठादिपञ्चस्वङ्गुलिषु क्रमात्। तकारादिशकारान्तान् पर्वस्येकैकशो न्यसेत्।। ६।।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तास्वङ्गुलीषु तथा न्यसेत्। दक्षहस्ते च देवेशि कादिणान्तान् स्थितिक्रमात्।।७।।
हकारादीन् पञ्चवर्णान् युगपत् करयोर्न्यसेत्। अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु व्यापकत्वेन सुन्दरि।। ८।।
करशुद्धिं विधायेत्थं मातृकार्णैर्महेश्वरि। षडङ्गानि न्यसेत् पश्चाद्वक्ष्यमाणेन वर्त्मना।। ९।। इति।

भैरवीतन्त्रे—

ततश्चास्याः षडङ्गानि विन्यसेद् देशिकोत्तमः। अमांमध्ये कवर्गः स्यादिमीमध्ये चवर्गकः।। १।।
उमूंमध्ये टवर्गः स्यादेमैंमध्ये तवर्गकः। ओमौंमध्ये पवर्गः स्यादनुस्वारविसर्गयोः।। २।।
यशवर्गौ सळक्षौ स्तो जातियुक्तानिमान् न्यस्येत्।

चन्द्रार्धाङ्कितशेखरां त्रिनयनां पञ्चाशदर्णैः क्रमाद्
व्याप्ताङ्गीं शरदिन्दुकुन्दरुचिरां वक्षोजभारान्विताम्।

---

१. 'जाता' क. ख. पाठः। २. 'तान्य' क. पाठः। ३. 'षका' ग. पाठः।

दानं चाक्षवटीं सुधारसलसत्कुम्भं शुभं पुस्तकं
विभ्राणां करपङ्कजैर्भगवतीं पद्मासनस्थां भजे॥ १॥

आदावभ्यन्तरे न्यस्य षडाधारेषु मन्त्रवित्। अकारादिक्षकारान्तां ततो देहे बहिर्न्यसेत्॥२। इति।

दक्षिणामूर्तौ—

कलापत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् सम्यक् प्रविन्यसेत्। ह्यर्कपत्रे तद्वर्णान् नाभौ दशदले न्यसेत्॥ १॥
दशवर्णान् लिङ्गमूले षड्दले षट् तथेश्वरि। चतुर्दले तथाधारे चतुर्वर्णांस्तथेश्वरि॥ २॥
भ्रूमध्ये द्विदले हक्षावित्यन्तर्मातृका न्यसेत्। इति।

उत्तरतन्त्रे—

मस्तके मुखवृत्ते च नेत्रकर्णेषु विन्यसेत्। नसागण्डोष्ठदन्तेषु समूर्धास्येषु विन्यसेत्॥ १॥
पाणिपादयुगस्यापि सन्ध्यग्रेषु न्यसेत् क्रमात्। पार्श्वयोः पृष्ठसन्नाभि[1]जठरेषु प्रविन्यसेत्॥२॥
हृद्दोर्मूलककुद्वामदोर्मूलेषु हृदादिषु। करपद्युगले चैव जठराननयोर्न्यसेत् ॥ ३॥

व्योमान्तसौ[2]रसनया युतकर्णिकं तत् किञ्जल्कगं स्वरयुगं प्रविलिख्य पत्रे।
वर्गाष्टकं तदनु भूमिपुरेण वीतमाशासु वाक्षरयुजाश्रिषु टान्तयुक्तम् ॥ ४॥

अस्मिन् पीठे यजेद्देवीं नवशक्तिसमन्विते। मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः॥ ५॥
विद्येश्वरीति गदिता भारत्याः पीठशक्तयः। इति।

सिद्धसारस्वते—

बीजं च सर्वशक्त्यन्ते कमलासनमुच्चरेत्। ङेऽन्तं नमःपदं ब्रूयादयं पीठमनुर्मतः॥ १॥

बीजं यन्त्रमध्यस्थम्। तथा—

अङ्गादि संयजेदादौ स्वरद्वन्द्वं ततोऽर्चयेत्। अष्ट वर्गांस्ततोऽभ्यर्च्य तच्छक्तीरर्चयेत् क्रमात्॥ २॥
कुन्दाभाक्षापविद्यायुक्करयुग्मा दलेष्विमाः। व्यापिनी पालिनी युक्ता पावनी क्लेदिनी ततः॥ ३॥
धारिणी मालिनी षष्ठी हंसिनी शान्तिनी तथा। ततः सम्पूजयेन्मन्त्री ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम्॥ ४॥
लोकपालांस्तदस्त्राणि पूजयेत् क्रमतः सुधीः। एवं कुर्यान्न्यासजालं जपेल्लक्षं च मन्त्रवित्॥ ५॥
तद्दशांशेन जुहुयान्मधुरत्रयलोलितैः[3]। तिलैः शुद्धैस्तर्पणादि ततः कुर्यात् समाहितः॥ ६॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्निजवाञ्छितान्। साधयेत् सर्वसिद्ध्यर्थं गुर्वनुज्ञापुरःसरम् ॥ ७॥
स्वर्णं रूप्यं तथा ताम्रं वर्गषोडशदिङ्मितम्। एतैस्तु रचितं सम्यग् रुचकं सर्वकामदम्॥ ८॥

वर्गः पञ्चविंशतिः, दिग् दश, रुचकमङ्गुलीयकम्।

अष्टोत्तरसहस्रं तु जपित्वा जुहुयात्तथा। घृतेन तत्समादाय सिक्तं सम्पातसर्पिषा॥ ९॥
अभिषेकप्रकारेण घटे विन्यस्य मुद्रिकाम्। मातृकां प्रयजेत्तत्र साङ्गां सावरणांबुधः॥ १०॥
अभिषिक्ताय शिष्याय मुद्रां तां वितरेद् गुरुः। मुद्राधारी ग्रहक्षुद्रदस्युमारीसरीसृपैः॥ ११॥

---

१. 'पृष्ठतो नाभि' ग. पाठः। २. 'न्तमौ' क. ख. पाठः। ३. 'लोडितैः' ग. पाठः।

विमुक्तः सुचिरं जीवेत् प्रथमं विजयी भवेत्। इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

सोमसूर्याग्निरूपाः स्युर्वर्णा लोहत्रयं तथा। रूप्यमिन्दुः स्मृतो हेम सूर्यस्ताम्रं हुताशनः।। १।।
लोहभागाः समुद्दिष्टाः स्वराद्यक्षरसंख्यया। तैर्लोहैः कारयेन्मुद्रामसङ्कुलितसङ्गताम् ।। २।।
साग्रं सहस्रं सञ्जप्य स्पृष्ट्वा तां जुहुयात्ततः। तस्यां सम्पातयेन्मन्त्री सर्पिषा पूर्वसंख्यया।।३।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

तोयं पिबेद् दिनादौ यस्त्रिवारजप्तमेतया। वत्सराज्जायते सम्यक् स मूकोऽपि कवित्वभाक्।। १।।

इति। अस्यार्थः— प्रातः संध्यावन्दनानन्तरं चुलुकेन जलमादाय तन्मध्ये वक्ष्यमाणमातृकायन्त्रं विभाव्या— कारादिक्षकारान्तां मातृकां सञ्जप्य तज्जलममृतं भावयन् मूलाधारात् जिह्वाग्रान्तं सारस्वतीं नाडीं दीपशिखाकारां ध्यायंस्तस्यां होमधिया पिबेत्। एवं प्रतिदिनं कुर्वतश्चतुर्विधं पाण्डित्यं, वक्तृत्वव्याख्यातृत्ववादित्वकवित्वं चेति, स्वात्मज्ञानं च भवतीति परमरहस्यार्थः। तथा— 'ब्राह्मीरसेन वचया पयसा पाचयेद् घृतम्।'' घृतं गोघृतम्, अत्रौषधित्रयमपि समभागं ग्राह्यम्।।

अयुतं जप्तमनया भक्षितं कविताप्रदम्। अक्षरौषधिसम्पर्कपयसा पूरयेत् घटम्।। २।।

पयसा जलेन।

सहस्रजप्तेन ततः साध्यं सिञ्चेत् सुमन्त्रवित्। स स्यान्मेधेन्दिरा[1]कीर्तिदीर्घायुःकवितायुतः।। ३।।
वन्ध्या च लभते पुत्रं नानागुणगणालयम्। इति।

तन्त्रराजे—

वृत्तद्वयावृतं चाष्टपत्रमब्जं महीपुरम्। विधाय विलिखेन्मध्ये हंसहृद्वनशक्तिकम् ।। १।।
कूटं स्वरान् केसरेषु वर्गान् पत्रेषु चालिखेत्। पञ्चपञ्चाक्षरोपेतान् दावाम्बु दिग्विदिक्षु च।। २।।
स्वरेष्वपुनरुक्तानि पञ्चान्यानि तु पञ्च वै। सव्यञ्जनाव्यञ्जनत्वभेदतोऽभूद् द्विरन्वयः।। ३।।
सवाताग्निधरास्वेन[2] शक्तिस्तत्पञ्चकं भवेत्।

हंसो हकारः, हृत् सकारः, वनमौकारः, शक्तिर्विसर्गः, दावष्ठकारः, अम्बु वकारः। वातोऽकारः, अग्निरिकारः, धरा उकारः, खमनुस्वारः, शक्तिर्विसर्गः।। अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वदेव मध्यस्थकूटादिसकलवर्णान् विलिख्य षष्ठसप्तमाष्टमदलेषु षष्ठे—'यरलवश' सप्तमे—'षसहळक्ष' इति वर्गद्वयं विलिख्याष्टमे—'अइउअंअः' इति पञ्चाक्षराणि विलिख्य चतुरस्रेऽपि प्राग्वदेव वकारठकारौ विलिखेत् तथा—

एतद्यन्त्रस्य मध्यस्थं नाम कृत्वा प्रयोजयेत्। प्रातर्मूर्ध्नि स्मरेदिन्दुबिम्बस्थं सर्वसम्पदम् ।। १।।
अभिषेकात् धारणाच्च पूजनाल्लोहकल्पिते। स्थापनाद् गृहदेशादौ यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम्।। २।।
एतद्यन्त्रस्य मध्यस्था देवताः सकला अपि। सन्निधिं [3]फलदानं च साधकानां वितन्वते।।३।।इति।

अत्र पूर्वोक्तश्लोकस्याप्ययमर्थः— उषःकाले ब्रह्मरन्ध्रस्थसहस्रदलकमलमध्यगतचन्द्रमण्डलमध्ये प्रोक्तयन्त्रं स्वाभीष्टसाध्यनामगर्भं भावयेत्, तेन तत्फलप्राप्तिर्भवति। अथवा भूमावेवैतद्यन्त्रं सिन्दूरादिनोत्कीर्य तत्र प्रागुक्तविधिना कुम्भं संस्थाप्य वर्णौषधिक्वाथजलेनापूर्य, तत्र देवीं सम्पूज्याभिषेकतः स्वाभिमतफलप्राप्तिर्भवति। यद्वा भूर्जादावालिख्य,

१. 'धीदार्यकीर्ति' ग. पाठः। २. 'स्वदे' क. पाठः। ३. 'जल' क. पाठः।

यथाविधि धारणात् स्वर्णादिकल्पिते यन्त्रे प्रागुक्तविकल्पना देव्याः पूजनात्ताम्रादौ कल्पितस्य गृहादौ यथाविधि भूम्यन्तःस्थापनाच्च स्वाभिमतफलसिद्धिर्भवति।। द्वितीयश्लोकस्यायमर्थः—तत्र सकलदेवताचक्रप्रतिष्ठासु सुवर्णरजतताम्रान्यतमेन कृते पट्टे यन्त्रमुत्कीर्य, मध्ये सम्बुद्ध्यन्ततत्तद्देवतानामपूर्वकं सन्निधेहीति विलिख्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय, तत्र देवीं समभ्यर्च्य मातृकया लक्षमात्रं तद्यन्त्रं स्पृशञ्जपित्वा, तत्त्ववित् पूर्णात्मा सुपूजितं तच्चक्रं प्रथमं भूम्यन्तः संस्थाप्य तदुपरि निजवाञ्छितदेवतामूर्तिं यथाविधि स्थापयेत्। एवं कृते मूर्तौ तस्या देवतायाः सान्निध्यं सविशेषं भवति, स्थापयितुश्च सकलमभीप्सितं फलं भवतीति। अथैतन्मातृकाया ये ये न्यासभेदा वर्तन्ते तेषामपि पूजोपासनादिकं सर्वं प्रोक्तविधिनैव विधेयम्।। उत्तरतन्त्रे—

न्यसेद् बिन्द्वन्तिकामेनां संहारेण विलोमतः। पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः षडङ्गं च तथा भवेत्।। १।।
सञ्चिन्त्य सृष्टिमार्गेण विन्यसेत् सर्गसंयुताम्। बिन्दुसर्गस्थितां स्थित्यां डादिठार्णान्तिकां न्यसेत्।।२।।?
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः षडङ्गं च तथा भवेत्। इति।

श्रीकुलार्णवे—

यतिवैखानसैः कार्यः संहारान्तः कुलेश्वरि। न्यासो गृहस्थैः स्थित्यन्तः सृष्ट्यन्तो वर्णिनां भवेत्।।१।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

प्रणवोत्थकलायुक्तां मातृकां विन्यसेत् ततः। वर्णादिका नमोन्तास्ता न्यस्तव्या ध्रुवसंयुताः।। १।।
ऋषिः प्रजापतिः प्रोक्तो गायत्रं[1] छन्द ईरितम्। सरस्वती कलारूपा देवता परिकीर्तिता।। २।।
ह्रस्वदीर्घस्वरद्वन्द्वगतैरङ्गं ध्रुवैर्भवेत्। केशवादिह्रदायुक्तां न्यसेत्तां कामपूर्वकाम्[2]।। ३।।
यादीन् धातुयुतान् न्यसेत् प्राणशक्त्यात्ममूर्तिभिः। साध्यनारायण ऋषिर्गायत्रं छन्द ईरितम्।।४।।
लक्ष्मीनारायणो देवि देवता परिकीर्तिता। षड्दीर्घयुक्तकामान्तैः प्राग्वद्वर्गैः षडङ्गकम्।। ५।।
न्यसेत् तार्तीयसंयुक्तां ह्रदन्तां रुद्रपूर्वकाम्[3]। यादीन् धातुसमायुक्तान् प्राणशक्त्यात्मभिः सह।।६।।
मुनिस्तु दक्षिणामूर्तिश्छन्दो गायत्रमुच्यते। अर्धनारीश्वरो देवि देवता परिकीर्तिता।। ७।।
षड्दीर्घयुक्ततार्तीयप्रतिवर्गैः षडङ्गकम्। मायाद्यां मातृकां देवि न्यसेत् साधकसत्तमः।। ८।।
मुनिः शक्तिः समाख्यातो गायत्रं छन्द उच्यते। देवता जगतामादिर्मातृका भुवनेश्वरी।। ९।।
षड्दीर्घयुक्तमायान्तैर्वर्गैः प्राग्वत् षडङ्गकम्। श्रीयुतां मातृकां न्यसेद्विधिवत् परमेश्वरि।। १०।।
मुनिर्भृगुः समाख्यातो गायत्रं छन्द ईरितम्। षड्दीर्घयुक्तश्रीबीजयुतैर्वर्गैः षडङ्गकम्।। ११।।
कामबीजयुतां न्यसेन्मातृकां कमलेक्षणे। सम्मोहनो मुनिश्छन्दो गायत्री देवता प्रिये।। १२।।
सम्मोहिनी समाख्याता देवता विश्वमोहिनी। दीर्घयुक्तेन कामेन युतैर्वर्गैः षडङ्गकम्।। १३।।
मायालक्ष्मीस्मरारूढां मातृकां विन्यसेत् प्रिये। प्रपञ्चयागकर्मार्थं वक्ष्यते भुक्तिमुक्तिदम्।। १४।।
पञ्चमन्त्रमयं सर्वसिद्धिसम्पत्प्रदायकम्। महागणपतिं त्वादौ सऋषिच्छन्ददैवतम्।। १५।।
साङ्गन्यासं सावरणं ध्यात्वा तन्मन्त्रमष्टधा। जपेद् गाणपतं[1] बीजं सऋषिच्छन्ददैवतम्।। १६।।

---

१ 'त्री' ग. पाठः। २ 'विंकाम्' ग. पाठः। ३ 'विंकाम्' ग. पाठः।

चत्वारिंशच्च चत्वारि तथैव प्रजपेत् ततः। सकृद्गणपतं मन्त्रं जप्त्वा वैदिकमप्यथ॥ १७॥
मालामन्त्रं चतुर्वारं सन्नक्ष्यादिं जपेत्ततः। मातृकां विन्यसेद् प्राग्वद्दृष्यादिसहितां त्रिधा॥ १८॥
स्वरादिसप्तवर्गैस्तु ग्रहान् सप्त प्रविन्यसेत्। मुखे बाह्वोः पादयोश्च जठरे हृदये क्रमात्॥ १९॥
तारो माया च हंसश्च सोऽहं स्वाहेति वै मनुः। प्रपञ्चयागमन्त्रोऽयमष्टार्णः समुदीरितः॥ २०॥
प्रपञ्चयागमन्त्रस्य मुनिर्ब्रह्मा समीरितः। परमाद्या समाख्याता गायत्री छन्द ईरितम्[१]॥ २१॥
महः परं समाख्यातं देवता चिन्मयं प्रिये। त्रय्यन्ते बोधितं नित्यं सर्वव्यापि निरञ्जनम्॥ २२॥
विलोमगैः पञ्चमन्त्रैः सार्धं हरिहराक्षरैः। प्राग्वद् वर्गावसानस्थैस्तारमायादिकैः क्रमात्॥ २३॥
षडङ्गानि प्रकुर्वीत जातियुक्तानि मन्त्रवित्। वेदादिमाययोरन्ते दत्त्वादीन् क्रमतस्ततः॥ २४॥
मन्त्रशेषं समुच्चार्य होमं कुर्यात् समाहितः। प्रपञ्चयागनामायं होमः सर्वसमृद्धिदः॥ २५॥
अकारादिस्तु शान्तान्तः प्रथमोऽत्र मनुर्मतः। शान्तान्तं च हकाराद्यो द्वितीयो मन्त्र इष्यते॥२६॥
तृतीयोऽपि समाख्यातः सकाराकारबिन्दुभिः। सकाराकारसर्गैश्चेन्द्रियषट्कात्मको भवेत्॥ २७॥
चतुर्थोऽपि च सोकारहकाराकारबिन्दुभिः। बृहत्प्रयोगात् ब्रह्मात्र मुनित्वेन निगद्यते ॥ २८॥
श्रेष्ठार्थवाचकं प्रोक्तं परमाख्यं पदं बुधैः। गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्रं छन्द उच्यते[२]॥२९॥
यस्मादतिशयः क्वापि तेजसां नैव विद्यते। परंपदेन तत्प्रोक्तं परं ज्योतिश्च देवता॥ ३०॥
स्वर्गार्थः खेतिशब्दोऽयमात्मार्थेऽपि तथा भवेत्। हा हानार्थोऽपि गत्यर्थः सर्वतो भावतस्ततः॥३१॥
स्वर्गात्मनो स्वरूपं या व्याप्ततेजः परम्परा। स्वाहाकारेण चाख्याता हुतिर्यस्यां समीरिता॥३२॥
तेजोरूपं तु यद्व्याप्तं सशब्देन तदुच्यते। अहंपदेन चात्मापि द्वयोरैक्यं ततो भवेत्॥ ३३॥
सोऽहं मन्त्रे विधानेन हकारेऽहं वदेत् ततः। स इत्यनेन चिद्रूपं सर्वार्थस्यावभासकम्॥ ३४॥
सत्यं व्याप्तं च निर्लेपं हंसमन्त्रं वदेत् ततः। चराचरस्य जगतः सारभूतं गुणात्मकम्॥ ३५॥
जनकं सर्वलोकानां मायाबीजेन चोच्यते। अकाराद्यैर्मकारान्तैस्त्रिभिर्बीजैर्गुणात्मकैः॥ ३६॥
भावसत्यं तु यत्कुर्यात् प्रणवार्थः स उच्यते। ह्रद्धातुर्हरणार्थः स्यादनिष्टं मन्त्रिणस्तु यत्॥३७॥
संहरेत् तन्महः प्रोक्तं वर्णैर्हरिहरैर्ध्रुवम् । प्रपञ्चयागमन्त्रोऽयं प्रपञ्चस्यादिकारणम्॥ ३८॥
प्रपञ्चयाग आख्यातो न्यासो येन तु यः कृतः। अङ्गार्णैर्ज्वलने द्रव्यैर्होमोऽत्र द्विविधो मतः॥३९॥
अकारादिषु संयोज्य यथापूर्वं विधानवित्। स्थानेषु मातृकोक्तेषु न्यसेदष्टाक्षरेण तु॥ ४०॥
साधकेन्द्रः सुशुद्धात्मा पञ्चाशद्वारमन्वहम्। वर्णाः सर्वे तु विख्याता बाह्यज्ञानेन्द्रियात्मकाः॥४१॥
प्रत्येकेन्द्रियसङ्ग्राह्यं जगद् व्याप्तमतस्तु तैः। परात्परतरं लोके ज्योतिरैशं तु यद्भवेत्॥ ४२॥
तस्मिन् ब्रह्मानले होमो ब्रह्मज्ञैर्मन्त्रिभिस्तु यः। कृतो ज्योतिर्मयैः सम्यङ्मनुभिस्तं प्रचक्षते।॥४३॥
ब्रह्मात्मकहविर्द्रव्यैस्तद्विदे ब्रह्मणेऽर्पणम्। वर्णानां भेदतो भिन्नमित्थं शिथिलतां गतम्॥ ४४॥

---

१. 'गणपते:' ख. पाठः। २.'उत्तमम्' क. पाठः। 'उच्यते' ख. पाठः। ३. 'उत्परः' क. पाठः।

शरीरं चर्मसन्नद्धं शोणितामित[1]सम्भृतम्। मेदोमज्जास्थिसंयुक्तं गत्वरत्वेन सम्मतम्॥ ४५॥
ब्रह्मानले महास्वच्छे सर्वव्याप्ते निरञ्जने। यो जुहोति कृती मन्त्री शुद्धात्मा महसां निधिः॥ ४६॥
अशेषं मन्त्रसञ्जाप्ये ध्याने पूजनकर्मणि। अधिकारी स एव स्यान्नेतरः फलभाजनम्॥ ४७॥
केवलोऽपि च बिन्द्वन्तः कलादिकेशवादिकः। श्रीकण्ठाद्यैश्च संयुक्तो मायाबीजसमन्वितः॥ ४८॥
लक्ष्म्याद्यः कामबीजाद्यो बीजत्रययुतोऽपि च। प्रपञ्चयागसंयुक्ताः दश न्यासाः समीरिताः॥ ४९॥
वाञ्छितार्थप्रदाः सर्वे सर्वमन्त्रेषु कल्पिताः। एतेषु श्रेष्ठ आख्यातः प्रपञ्चाह्वययागकः॥ ५०॥
ज्ञानदः पुष्टिदश्चाथ सर्वसम्पत्करस्तथा। विशेषतो ग्रहक्षुद्रप्रपञ्चाज्ञाननाशकृत् ॥ ५१॥ इति।
प्रपञ्चयागमात्रेण यथा होमो विधीयते। यद्यद्द्रव्यैस्तथा तानि यदा यल्लभ्यते बुधैः॥ ५२॥
एतत्सर्वं विधानेन कथयामि यथातथम्। उक्तेनैव विधानेन गाणपत्यावसानकम् ॥ ५३॥
आज्येन जुहुयान्मन्त्री तद्वदेकाहुतिं हुनेत्। प्रपञ्चयागमन्त्रेण घृतेनैव ततः परम्॥ ५४॥
वटोदुम्बरसम्भूताः पर्प्यट्याः[2] पिप्पलस्य च। समिधस्तिलसिद्धार्थहविराज्यानि च क्रमात्॥ ५५॥
पर्पटी प्लक्षः।
एतद्द्रव्याष्टकं प्रोक्तं हुनेदेतेन मन्त्रवित्। दशायुतं विधानेन तदर्द्धमथवा तु यः॥ ५६॥
यथाभिलषितानत्र भोगान् भुक्त्वा सुखं हि सः। देहान्ते मुक्तिमाप्नोति मुनिभिः प्रार्थितां ततः॥५७॥
चौरशत्रुग्रहव्याधिसर्पराक्षसदोषनुत् । चतुःशतं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा हुतं मतम्॥ ५८॥
तत्तद्दोषानुसारेण होमसंख्यां प्रवर्धयेत्। रविसंख्यसहस्राणि हुनेद् द्रव्याष्टकेन यः॥ ५९॥
एतद्द्विगुणतश्चाथ चतुर्गुणत एव वा। भूतावेशग्रहावेशजूर्त्यादीन् स विनाशयेत्॥ ६०॥
शास्त्रोक्तक्रमभङ्गेन जपपूजादिकृत्तुः यः। स्मृतिभ्रंशो भवेत्तस्य होमं द्रव्याष्टकेन सः॥ ६१॥
सहस्रसंख्यया कुर्यात् स्वस्थो भवति तत्क्षणात्। प्रत्येकं द्विसहस्रं यो हुनेद्द्रव्याष्टकेन तु॥६२॥
अपस्मारं विस्मृतिं च शापदोषं स नाशयेत्। द्रव्याष्टकं त्रिमध्वक्तं लक्षमानं हुनेत् तु यः॥ ६३॥
प्रादुर्भूतेन महता तस्यैश्वर्येण तत्क्षणात्। देवेन्द्रस्य महालक्ष्मीः स्थिरा तुच्छतरा भवेत्॥ ६४॥
लक्षं लक्षार्द्धकं वाथ मधुरत्रयलोलितम्। द्रव्याष्टकं हुनेद्यो वै वत्सरत्रयमध्यतः॥ ६५॥
त्रैलोक्यं सकलं तस्य वशे तिष्ठति नान्यथा। वश्यादिसाधन[3] प्रोक्तं हुनेद् द्रव्याष्टकेन यत्॥६६॥
ह्रासवृद्ध्यादिकं होमे जानीयात् कार्यगौरवात्। शुद्धै[4]स्तिलैस्तु यो लक्षं होमं कुर्याद्यथाविधि॥६७॥
महापापानि तस्याशु प्रलयं यान्ति नान्यथा। लक्षं कमलहोमेन महालक्ष्मीः प्रजायते॥ ६८॥
हविषा पुष्टिदो होमो यवहोमो यशस्करः। मालतीपुष्पहोमोऽपि सर्ववश्यप्रदो भवेत्॥ ६९॥
सामुद्रलवणं हुत्वा तथा वश्यं प्रसाधयेत्। अथ शालिसमुद्भूतांस्तण्डुलान् सुष्ठु चूर्णयेत्॥७०॥
मधुरत्रयसंयुक्ततच्चूर्णेनैव साधकः। साध्यप्रतिकृतिं कृत्वा सम्यक् सम्पूज्य तां स्पृशन्॥ ७१॥

१. 'मित्त' क.ख. पाठः। २. 'पर्कट्याः' क. पाठः। ३. 'धने' ग पाठः। ४. 'सिद्धैः' क. पाठः। 'सिद्धे; ख. पाठः।

प्राणस्थापनमन्त्रं तु जपेत्साष्टशतं तु सत्। विभज्य जुहुयान्मन्त्री नान्यासक्तमना निशि।। ७२।।
सप्तरात्रं प्रकुर्वाणो नरं वा स्त्रियमेव वा। वशीकरोति झटिति नात्र कार्या विचारणा।। ७३।।
सामुद्रलवणस्यापि पुत्तल्याः फलमीदृशम्। वर्णौषधिविपक्वेन पञ्चगव्येन पूरिते ।। ७४।।
चुल्ल्यां संस्थाप्य सोऽधस्ताद्वह्निं कुम्भे प्रदीपयेत्। प्रादुर्भूते पुनस्तस्मिन् घटाग्नौ जुहुयाद् घृतम्।।७५।।
अष्टोत्तरशतं मन्त्री भसितं पतितं च यत्। तावत्संख्यं च सञ्जप्य गृह्णीयात् सर्वसिद्धिदम्।।७६।।
भक्षणाद् गात्रलेपाच्च तिलकक्रियया तथा। मस्तके धारणात् सद्यः सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः।।७७।।
भूतप्रेतपिशाचादिविषरोगादिनाशनम् । सर्ववश्यकरं पुंसां श्रीसौभाग्यजयप्रदम् ।। ७८।।
सहस्रसंख्यको होमो तदानीं गुरवे बुधः। पलं पलार्धकं वापि दद्याद्धेम्नो वरस्य च।। ७९।।
कल्पवृक्षाद्यथा देवा लभन्ते वाञ्छितं फलम्। प्रपञ्चयागतोऽप्येवं साधकोऽभीष्टमश्नुते।।८०।।इति।

अथैवं मातृकाविद्योपासकानामन्यविद्योपासकानां च प्रणाग्निहोत्रविधिरुक्तः कालीमते, तथा—

प्राणाग्निहोत्रं वक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम्। हितार्थं सर्वलोकस्य मन्त्रिणां च विशेषतः।। १।।
कृतपद्मासनः पूर्वममलाङ्गः शुभासने। उपविष्टः प्रसन्नात्मा प्राङ्मुखः स्थिरमानसः।। २।।
भुवनेशीहकारेण सत्त्वरूपेण लाञ्छितम्। मध्यमस्य तदीयेन वामाक्षिरजसा वृतम्।। ३।।
रेफेण तमसा चैव वेष्टितं च त्रिकोणकम्। पूर्वराक्षसवाय्वस्रि मूलाधारं विचिन्तयेत्।। ४।।
मध्ये प्राच्यां प्रतीच्यां च कौबेर्य्यां दक्षिणे तथा। तस्मिन्नेव समे पञ्च स्मरेत् कुण्डानि मन्त्रवित्।।५।।
सर्वदा ज्वलदग्नीनि स्वीयकार्यप्रसिद्धये। आवसथ्यं च सभ्यं च तथा चाहवनीयकम्।। ६।।
अन्वाहार्यं पुनः प्रोक्तं गार्हपत्यं भवेदिति। मध्यादिक्रमतस्त्वेवं नामतोऽमूनि चैव हि।। ७।।
प्रभाज्वालानिदानाद्धि ज्ञानरूपान्निरञ्जनात्। मूलप्रकृतिरूपाच्च कल्पादित्यान्निरञ्जनात्[1] ।। ८।।
द्वादशान्तस्थितात् सर्ववर्णहेतुः परात्मनः। निर्गतां मातृकां मन्त्री सुधानिःष्यन्दरूपिणीम् ।। ९।।
प्रतिलोमक्रमाद्भिन्नमेकैकाक्षरतो धिया[2]। होमयेत् तेषु कुण्डेषु ज्वलदग्निषु देशिकः ।।१०।।
स्युस्ते मारकप्रख्याः क्षादयः पञ्चवर्णकाः। पञ्च यान्ता भवन्त्येव गोमेदाभाश्च शादिकाः।। ११।।
नीलवर्णाश्च माद्याः स्युर्नाद्या विद्रुमसन्निभाः। णादयो वज्रसङ्काशास्तावन्तः परिकीर्तिताः।। १२।।
पुष्परागत्विषश्चान्ताः कान्ताः वैडूर्यवर्णकाः। अष्ट स्वरास्तु मुक्ताभा माणिक्याभास्ततः परम्।। १३।।
नवरत्नमया ह्येते नववर्गाः प्रकीर्तिताः। केतुर्विधुन्तुदो मन्दो वाक्पतिर्बुध एव च।। १४।।
भार्गवो भौमचन्द्रौ च भास्करो नव कीर्तिताः। नववर्गाधिपा ह्येते रत्नानामधिदेवताः।। १५।।
होममेवं विधानेन कुर्युर्येऽनुदिनं बुधाः। पञ्चाशत्संख्यया ते स्युः सम्मताः भुवनत्रये।। १६।।
स्वर्णवस्त्रादिकैराढ्या भाग्यवन्तः शुभोदयाः। ये वर्णा यत्र हूयन्ते तानहं वच्मि साम्प्रतम्।।१७।।
संवर्तकं च तत्षष्ठं पञ्चवर्गान्तिकास्तथा। षोडशस्वरझिण्टीशावर्घीशश्च ततः परम्।। १८।।

१. 'निरन्तरात्' क. पाठः। २. 'पि वा' ग. पाठः।

दशैतान् विधिवत् कुण्ड आवसथ्याह्वये हुनेत्। धरा बालीं[1] तुरीयश्च वर्गाणां च तुरीयकान्।।१९।।
मस्तकं च हराख्यं चाप्यमरेशं दशाप्यमून्। सभ्याख्ये जुहुयात् कुण्डे मन्त्रवित्तदनन्तरम्।। २०।।
नकुशीलं च तत्षष्ठं वर्गाणां च तृतीयकान्। सद्यान्तस्थाणुके चापि वामनेत्रं वशी क्रमात्।। २१।।
सञ्जुहोतु यथान्यासं कुण्ड आहवनीयके। यसप्तमद्वितीयौ च वर्गाणां च द्वितीयकान्।। २२।।
भौतिकान्ततिथीशाख्यौ सूक्ष्मसंज्ञमनन्तरम्। अन्वाहार्याभिधे कुण्डे वर्णानेतान् हुनेत् क्रमात्।।२३।।
वायुषष्ठं च वायुं च वर्गाद्यान् पञ्च पादिकान्[2]। अधरं च क्रियां चापि नारायणमिमान् दश।।२४।।
गार्हपत्याभिधे कुण्डे हुनेन्मन्त्री समाहितः। वर्णहोमः क्रमेणैवं यथावत् परिकीर्तितः।। २५।।
आकाशेन समं सर्वं शब्दजातं तु मन्त्रवित्। आवसथ्याभिधे कुण्डे जुहुयात् तदनन्तरम्।।२६।।
वायुना तद्गुणं पूर्वे वह्निना पश्चिमे मतः। रूपं कुण्डे हुनेन्मन्त्री पयसा रससञ्चयम्।। २७।।
उत्तराख्ये हुनेत् कुण्डे दक्षिणे तदनन्तरम्। धरया सर्वगन्धं च मन्त्रविज्जुहुयाद् वशी।। २८।।
प्रलयानलसङ्काशज्वलदग्निष्वहर्निशम्। होमं कुर्वीत कुण्डेषु मातृकावर्णसंयुतम् ।। २९।।
नित्यशुद्धपरानन्दचिद्रूपात्मा प्रजायते। ध्रुवमायादिकं होममजपान्तं तु पूर्ववत् ।। ३०।।
पञ्चाशत्संख्यया कृत्वा न्यस्य तावद्यथाविधि। जीवन्मुक्तो भवेन्मन्त्री चिरञ्जीवी च जायते।।३१।।
तेजसा सूर्यकल्पोऽसौ कर्ता हर्ता च शम्भुवत्। इति।

अथास्यार्थः— तत्र बद्धपद्मासनः प्राङ्मुखो मृद्वासने समुपविश्य, प्रागुक्तलक्षणे स्वमूलाधारे भुवनेश्वरीबीजमन्त्रस्य सत्त्वगुणात्मकेन हकारेणाक्रान्तमध्यप्रदेशं तस्य रजोगुणात्मकेन वामाक्ष्णा ईकारेणावृत्तं तमोगुणात्मकेन तदीयरेफेण वेष्टितं त्रिकोणमग्निमण्डलं पूर्वनिर्ऋतिवायव्यगतान्यस्त्राणि कोणानि यस्य तादृशं मूलाधारं विचिन्त्य, तस्मिन्मध्ये पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षेष्वावसथ्यसभ्याहवनीयान्वाहार्यगार्हपत्याख्यानि पञ्च[3] कुण्डानि ज्वलदग्निशिखासमाकुलानि वाञ्छितार्थपदानि सञ्चिन्त्य, सर्वतेजःप्रकाशप्रतिबिम्बहेतुभूता—नवच्छिन्नचैतन्यात्मकान् सकलवर्णकारण—शब्दब्रह्मात्मकमूलप्रकृत्यात्मनो द्वादशान्तस्थितान् कल्पान्ताग्निशिखा— स्फुरत्कुहरकेषु कुण्डेषु वक्ष्यमाणक्रमेण वर्णान् मनसा जुहुयात्। तत्र वर्णानां रत्नवर्णतामाह— स्युरिति। रत्नानामधिदैवतत्वेन ग्रहानुपदिशति—केतुरित्यादि। अमृतमयत्वेन ध्यातानां रत्नसवर्णवर्णानां होममाह— होममिति। पञ्चकुण्डेषु पञ्चाशद्वर्णानामेकैकस्मिन् कुण्डे होतव्यान् वर्णान् दर्शयति—संवर्तकमित्यादिभिः। संवर्तकः क्षकारस्तस्य षष्ठः प्रतिलोमेन शकारः पञ्चवर्गान्तिकाः विलोमेन मणनञङाः, षोडशस्वरः अः, झिण्टीश एकारः, अर्घीशो हकारः, एतान् दशवर्णानावसथ्याख्यकुण्डे जुहुयात्। धरा लकारः वाली[4] तुरीयो वकारः, वर्गतुरीयका विलोमेन भधढझघाः, मस्तकं अं, हरः लृकारः[5], अमरेश उकारः एतान् दश वर्णान् सभ्ये जुहुयात्। नकुलीशो हकारस्तत्षष्ठो लकारः, वर्गाणां तृतीयकाः बदडजगाः, सद्यान्त औकारः, स्थाणुको लृस्वरः, वामनेत्रमीकारः, एतान् दश वर्णान् आहवनीये जुहुयात्। (यसप्तमद्वितीयौ सकाररकारौ वर्गद्वितीयाः फथठछखाः भौतिकान्त ओकारः तिथीशः अः सूक्ष्म इकारः, एतान् दश वर्णान् अन्वाहार्ये जुहुयात्)। वायुषष्ठः

१. 'वाजी' ग. पाठः। २. 'या' क. पाठः। ३. 'रत्नासमान' ग. पाठः। ४. 'बाजी' ग. पाठः। ५. लकारः' क. पाठः।

षकारः वायुर्यकारः, वर्गाद्याः पतटचकाः अधर ऐंकारः, क्रिया ऋस्वरः, नारायण आकारः, एतान् दश वर्णान् गार्हपत्ये जुहुयात्। इति होमक्रिया। होमकारस्तु "ॐह्रींश्रींहंसः सोहं स्वाहा" इत्यादिक्रमेणैकैकस्मिन् कुण्डे प्रत्येकमक्षरं पुनः पुनर्जुहुयात्। तत्प्रकारस्तु—आवसथ्ये क्षकारं (सभ्ये ळकार) आहवनीये हकारमन्वाहार्ये सकारं गार्हपत्ये षकारं, पुनरेवं क्रमेण शकाराद्यकारान्तान् वर्णान् पञ्च पञ्च जुहुयात्। अथात्र "अः इति ब्रह्मे"ति श्रुतेः परिशिष्टोऽकारः सर्वथात्र ब्रह्मरूपेण¹ ध्यातव्यः॥

अथैवं कुर्वतां साधकानां भोजनकाले कर्तव्यप्राणाग्निहोत्रमाह— उत्तरतन्त्रे —

प्रत्यहं विधिनानेन भोजनं कुरुते यदि। गार्हपत्यादिकुण्डानि तदा प्राणादिवायवः ॥१॥
उद्धरेत् कुण्डनामानि सप्तमीसहितानि तु। प्राणादीनां च नामानि सप्तम्यन्तं समुद्धरेत्॥ २॥
हिरण्यानन्तरं वर्णा गगनानन्तरं तथा। रक्तान्ते कृष्णशब्दान्ते सुप्रभान्ते तथा भवेत्॥ ३॥
शुचयः पश्चाभाष्य पावका इति चोच्चरेत्। अग्निं विहृत्य शब्दान्त आत्मानं च ततो वदेत्।४॥
उपचर्य्य पदं पश्चादूर्ध्वाधस्तिर्यगुद्धरेत् । पुनरूर्ध्वपदं चाधस्तिर्यगूर्ध्वं समं वदेत् ॥५॥
गच्छन्तु वह्निजायान्तान् पञ्च मन्त्रान् समुद्धरेत्। अहं वैश्वापदं पश्चान्नरो भूत्वा पदं वदेत् ॥ ६॥
जुहोम्यन्नं पदं पश्चाच्चतुर्विधपदं चरेत्। पचाम्येवं पदं ब्रूयाद् विधानेन पदं वदेत्॥ ७॥
स्वाहान्तं सर्वमुक्त्वा तु तृप्तिपर्यन्तमादरात्। तूर्ष्णीं होमं विधायादौ संस्कृतान्नेन मन्त्रवित्।८॥
अमृतेत्यादिमन्त्रेण पीत्वा तु चुलुकोदकम्। आचम्य विधिना पश्चाच्छुद्धाचमनमाचरेत्॥ ९॥
मूलाधारं समारभ्य द्वादशान्तावधि स्मरेत्। जीवात्मानं जगद्व्याप्तं नित्यमेवमनन्यगम्॥ १०॥
प्रकृतिस्थं शुभं शान्तमाद्यन्तरहितं परम्। हवनीयेन शुद्धेन हुतेनापि सुतर्पितम् ॥११॥
एवं गलत्सुधानं च पञ्चाशद्वर्णसेचितम्। भुक्त्वा हविर्हुतं मन्त्री स ज्वलत्पञ्चवह्निकः ॥१२॥
प्रातः सायं च कुर्वाणो मन्त्री प्राणाग्निहोत्रकम्। गर्भस्थितिभवं क्लेशं न विन्दति कदाचन।१३॥

अस्यार्थः— तत्रादौ प्राणादिपञ्चमन्त्रा उद्ध्रियन्ते, गार्हपत्यादिभिः। अयमर्थः—गार्हपत्ये प्राणे हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्योर्ध्वं गच्छन्तु स्वाहा। अन्वाहार्येऽपाने गगनवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्याधो गच्छन्तु स्वाहा। आहवनीये व्याने रक्तवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य तिर्यगच्छन्तु स्वाहा। सभ्य उदाने कृष्णवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्योर्ध्वे गच्छन्तु स्वाहा। आवसथ्ये समाने सुप्रभावर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्याधस्तिर्यगगच्छन्तु स्वाहा। एभिर्मन्त्रैः पञ्चाहुतीः पञ्चकुण्डेषु हुत्वा गार्हपत्यान्वाहार्य्याहवनीयसभ्यावसथ्येषु प्राणापानव्यानोदानसमानेषु हिरण्यगगनरक्तकृष्णसुप्रभावर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य अहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधं पचाम्येवं विधानेनोर्ध्वाधस्तिर्यक् समं गच्छन्तु स्वाहेति गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीयसभ्यावसथ्यानां यमशशिवरुणेन्द्रमध्यमानि स्थितानि सञ्चिन्त्य, पूर्ववदानेभ्योऽधिकपरिमाणेनावदानेन हुत्वा पश्चात् तृप्तिपर्यन्तं होमधिया भुक्त्वा 'अमृतापिधानमसि' मन्त्रेण चुलुकोदकं प्राश्य शुद्धाचमनं कुर्यात्॥ एवं कुर्वतः फलमाह—प्रातः सायमित्यादि। प्रपञ्चबिन्दुविनिर्गतामृतधारया समासिक्तमकार-विनिर्गतचन्द्रमण्डलद्वयरूपेण विसर्गे ध्यात्वा ताभ्यां प्रथमतरग्नीन्दुतेजोविलसिताभ्याममृतपूर्णसकारविनिर्गतामृतधारया समासिक्तबिन्दुभ्यां नाडीमार्गेणात्मनः सकलशरीरमापूर्यावस्थिताभ्यां रोगाः सर्वे बाधिता भवन्तीति॥ अथ कादिमते

१. 'सुत्रेण' क. पाठः।

प्राणाग्निहोत्रविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे—

ततः सूक्ष्मैः पराख्यैश्च होमैः सिद्धिं शृणु प्रिये। स्वमूलाधारे वह्नौ कुण्डलिन्यग्रगामिनि॥ १॥
वाच्यवाचकरूपं तु प्रपञ्चं जुहुयात्तथा। येनावयोः समो देवि जायते हवनेन च॥ २॥
तद्विधानं वद प्राज्ञ शम्भो सम्यङ्ममाधुना। आधारे वह्निसंस्थानं कुण्डलिन्याः स्थितिं ततः॥ ३॥
तद्रूपं तत्क्रियां सर्वं वद मे विशदं प्रभो। शृणु वक्ष्ये विधानं ते सम्यग्विस्तरतोऽधुना॥ ४॥
प्राणाग्निहोत्रविद्येति यत् त्रय्यां श्रूयते परम्। यज्ज्ञात्वा वनितागर्भं न प्रयाति नरो ध्रुवम्॥ ५॥
यद्व्ययायासरहितमनन्यापेक्षनिर्वहम्। यन्मनःक्लेशविश्रान्तेः स्थानं निःशेषकल्मषम्॥ ६॥
सुखास्पदं स्वगं विश्वमयं चिद्वेद्यवेदनात्। अत्रोक्तशेषमखिलं षट्त्रिंशे पटले स्फुटम्॥ ७॥
प्रदर्श्यते ततस्त्वत्र वर्णयामि च किञ्चन। नित्यानित्योदिते मूलाधारमध्येऽस्ति पावकः॥ ८॥
सर्वेषां प्राणिनां तद्वद् हृदये च प्रभाकरः। मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्राधश्चन्द्रमाश्च व्यवस्थितः॥ ९॥
तत्त्रयात्मकमेव स्यादाद्यानित्यात्रिखण्डकम्। तेषां त्रयाणामैक्यं तु मनसा भावयेत्तथा॥ १०॥
गमागमाभ्यां तेजोभिस्तेषामन्योन्यजैः शिवे। तथा समिद्धं तत्तेजस्त्रयं बुद्ध्वाथ तन्मयम्॥ ११॥
चित्तं विकल्पविधुरं भावयेदद्भुतं हुतम्[१]। तेषां त्रयाणां वर्णानां प्रागुक्तानां क्रमेण वै॥ १२॥
द्वाभ्यामन्यतमं कृत्वा पुटितं जुहुयाच्च तैः। पुटितान् भानुहृद्वर्णैः स्वरांस्तारेण हुंकृतैः॥ १३॥
कुण्डलीमुखमार्गाग्नौ जुहुयान्निश्चलाशयः। वह्निभानुपुटान्तःस्थैश्चन्द्रैस्तद्वद्धुनेत् क्रमात्॥ १४॥
चन्द्रभानुपुटान्तःस्थैर्वह्निवर्णैर्जुहुयात् तथा। भानुचन्द्रपुटान्तःस्थैर्वह्निवर्णैर्जुहुयात् तथा॥ १५॥
चन्द्रवह्निपुटान्तःस्थैर्भावर्णैर्जुहुयादपि। वह्निचन्द्रपुटान्तःस्थैरपि तद्वद्धुनेत्तु तैः॥ १६॥
तथा तेषां प्रातिलोम्यात् षोडशानां हुनेदपि। एवं द्वादशधा होममक्षरैः स्यादुदीरितैः॥ १७॥
कृत्वा तद्वाच्यमखिलमर्थरूपं च तैः समम्। तेजस्त्रयात्मरूपं स्यादावयोरपि तद्वपुः॥ १८॥
अन्यानि चावयोरिच्छागृहीतानि वपूंषि वै। तान्यन्यदेवतादेहसमानीच्छावशानि च॥ १९॥

॥ इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-
श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-
श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
विद्यार्णवाख्ये तन्त्रे चतुर्थः श्वासः॥ ४॥



१. 'न्यास्य' ख. पाठः। २. 'चयत' ख. पाठः। ३. 'सम्यगि' ख. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

पञ्चमः श्वासः

अथ कालीमते मन्त्रोद्धारः। तत्रादौ भूतलिपिः। तत्र सिद्धसारस्वततन्त्रे—

अथ भूतलिपिं वक्ष्ये सुगोप्यामतिदुर्लभाम् । सारस्वते महातन्त्रे गोपितां चातिसिद्धिदाम्॥ १॥
विष्णोः सकाशाद्यां लब्ध्वा मुनयो वाञ्छितं फलम्। लेभिरे सकलं देवि किं बहूक्तेन सर्वदा॥ २॥
ह्रस्वानां पञ्चकं वर्ग आदितः परिकीर्तितः । द्वितीयः कथितो देवि शिवाद्याश्चतुरक्षरः ॥ ३॥
खं वायुवह्न्यम्बुधरास्तृतीयः संप्रकीर्तितः। वर्गान्त्यादिद्वितीयोपान्त्यतृतीयैः क्रमादमी ॥ ४॥
पञ्चवर्गा वान्तशान्तभृगुभिर्नवमो मतः । नववर्गात्मको मन्त्रो द्विचत्वारिंशदक्षरः ॥ ५॥
वर्णाणामादिमो वर्गः श्रीकण्ठोर्ध्वोष्ठखान्विताः। वर्गान्त्या वान्तसंयुक्ताः क्रमेण कथिता अमी॥ ६॥
खं वायुवह्न्यम्बुधरा वर्गवर्णा मताः क्रमात्। वर्गो द्वितीयो भूहीनो वारिभूवियुतोऽन्तिमः॥ ७॥
नवानामपि वर्गाणां देवताः कथिताः क्रमात्। विरिञ्चिविष्णुरुद्राह्वा आश्विनेयौ प्रजापतिः॥ ८॥
लोकपालाः सक्रियादिशक्तयः परिकीर्तिताः । ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिर्गायत्रं छन्द ईरितम्॥ ९॥
सरस्वती देवतास्य गदिता विश्ववन्दिता। व्योमादिवर्गषट्कैः स्याज्जातियुक्तैः षडङ्ग (कैः ?कम्)॥ १०॥
आद्यवर्गद्वयस्याथ नवार्णन्यासमुच्यते । आधाराधिष्ठाननाभिहृद्गलेषु सबैन्दवे ॥ ११॥
नादे शक्त्यां शिवे* सम्यक् स्वरान् क्रमवशात् सुधीः। तृतीयवर्गहाद्यर्णान् न्यसेदूर्ध्वादि पञ्चसु॥ १२॥
मुखेषु, पञ्चवर्गाणां स्थानेष्वेषु प्रविन्यसेत्। दोःपदग्रेषु मूलेषु चापमूलाग्रकेषु च ॥ १३॥
मध्यदेशेषु जठरे पार्श्वद्वयसनाभिषु। पृष्ठेऽवशिष्टवर्गार्णान् गुह्यहृद्भ्रूषु विन्यसेत् ॥ १४॥ +
सृष्टिन्यासे विसर्गान्तान् बिन्दुसर्गान्तिमान् स्थितौ। आदिद्वितीयकोपान्त्यप्रान्तमध्यक्रमान्न्यसेत्॥ १५॥
सृष्टिषु क्रमगान् न्यस्येत् संहृतौ बिन्दुसंयुतान्। ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि देवेशि मुनिपूजितम्॥ १६॥
शाश्वतं यं[1] भूतमयं प्रवदन्ति मनीषिणः । चिद्वीजं बिन्दुनादाह्वशिफं विश्वम्भराक्षरैः॥ १७॥
शाखासमूहैः सकलदिशासु सुविजृम्भितम्। जलवर्णदलव्रातेनाच्छादितजगत्त्रयम् ॥ १८॥
कृशानुवर्णाङ्कुरैश्च संदीप्तं सुरभूरुहम् । रत्नाङ्कुरैरिव शुभं पवनाक्षरशोभितैः ॥ १९॥
कसुमैर्दीपयन्तं च स्वकीयतनुसच्छ्रियम्। वियदक्षरसद्रूपफलैरानम्रमम्बिके॥ २०॥
सर्वभूताश्रयं नित्यं परामृतमधुद्रवैः। सिञ्चन्तं परमेशानि देवीं वागीश्वरीं पराम्॥ २१॥

---

*अधिष्ठाने लिङ्गे। बिन्दौ ललाटस्थाने। नादे मूर्ध्नि। शक्त्यां तदुपरि। शिवे द्वादशान्ते॥

+ अत्रायमर्थः—ङकारमङ्गुल्यग्रे, ककारं बाहुमूले, खकारमुपमूले कूर्परसंधौ, घकारमङ्गुलिमूलेषु, गकारं मध्यमणिबन्धेऽङ्गुष्ठमूले। एवमन्यवर्गचतुष्टयस्य । अष्टमस्य जठर इत्यादिषु। शिष्टं शाद्यक्षरत्रयं गुह्यादिस्थानत्रये न्यसेत्॥

१ लिपिद्रुमम्।

निगमागमसंक्लृप्तसमुन्नतिसुशोभितम् । शिवशक्त्यात्मकं छायासमाश्रितजगत्त्रयम्।।२२।।
यमाश्रित्य मुनीन्द्रौघा वाञ्छितार्थान् प्रपेदिरे। एवंभूतार्णवृक्षस्य मूले त्वक्षरपङ्कजे ।।२३।।

वागीश्वरीं स्मरेद् देवीं सकलेष्टफलप्रदाम्।
कुन्दाभासामुरुकुचघटां शोभिचन्द्रार्धमौलिं
हस्ताम्भोजैर्वरपजवटीपुस्तकं पुंस्कपालम्।
विभ्राणां तां मधुमदलसद्विह्वलां युग्मनेत्रां
देवीं ध्यायेल्लिपिमयतनुं यौवनप्राप्तशोभाम्।।२४।।

इति ध्यात्वा महेशानि हृदि देवीमनन्यधीः। मातृकोक्ते यजेत्पीठे प्रत्यहं साधकः शिवे।।२५।।
वर्णपद्मे महेशानि मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्। तस्यांमावाह्य वागीशीं यजेदावरणैः सह।।२६।।
पुराङ्गानि यजेन्मन्त्री केसरेषु पुरोक्तवत्। अम्बिकाद्या यजेत् पश्चाद्वक्ष्यमाणाश्चतुर्दले।।२७।।
अम्बिका वाग्भवा दुर्गा श्रीश्च मातृस्ततो यजेत्। अष्टपत्रे महेशानि तद्बहिः षोडशच्छदे।।२८।।
करल्याद्या यजेच्छक्तीर्वक्ष्यमाणास्तु षोडश। करली विकराली च तृतीयोमा सरस्वती।।२९।।
श्रीर्दुर्गेशा च लक्ष्मीश्च श्रुतिः स्मृतिरितीरिताः। धृतिः[1] श्रद्धा च मेधा च मतिः कान्तिरुदीरिताः।।३०।।
आर्य्या च षोडशीः प्रोक्ताः खड्गखेटकराः इमाः[2]। श्यामाश्च स्मेरवदनाः सर्वाभरणभूषिताः।।३१।।
विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूः पुनः। रुद्रवीर्या प्रभा नन्दा स्यात्पूषा ऋद्धिदा[3] शुभा।।३२।।
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपालिनी[4]। विकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी।।३३।।
निशुम्भशुम्भमथिनी महिषासुरमर्दिनी । इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्धशरीरिणी।।३४।।
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी। अम्बिका हारिणी[5] चैव द्वात्रिंशच्छक्तयः सिताः।।३५।।
पिशाचास्याश्चक्रहस्ताः संपूज्याश्चारुभूषणाः। पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च।।३६।।
श्रद्धा स्वाहा स्वधा भिक्षा[6] माया संज्ञा वसुन्धरा। त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी।।३७।।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाता च तत्प्रिया[7]। विमला विपुला पश्चादरुणी पुनरारुणी।।३८।।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च। संध्या मतिः सती हंसी मर्दिका परदेवता।।३९।।
देवमाता भगवती देवकी कमलासना । त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी।।४०।।
लम्बोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी। रथरेखाह्वया पश्चाच्छशि[8] रेखाह्वया परा।।४१।।
गगनरेखा च पवनवेगा च तदनन्तरम्। ततो भुवनपालाख्या ततः स्यान्मदनातुरा।।४२।।
अनङ्गानङ्गमदना तथैवानङ्गमेखला । अनङ्गकुसुमा विश्वरूपासुरभयङ्करी ।।४३।।
अक्षोभ्यासत्य[9]वादिन्यौ वज्ररूपा शुचिव्रता। वरदाख्या च वागीशा चतुष्षष्टिः समीरिताः।।४४।।

१ 'कृति' ग. पाठः। २ 'करान्विता' ग. पाठः। ३ 'षण्यृद्धिदा' क. पाठः। ४ 'कपर्दिना' ग. पाठः। ५ 'ह्लादिनी' ग. पाठः।
६ 'भिख्या' ग. पाठः। ६ 'च्युतप्रिया' क. पाठः। ८ 'चक्रि' क. पाठः। ९ 'सप्त' क. पाठः।

चापबाणधरा: सर्वा ज्वालाजिह्वा: समीरिता:। दंष्ट्रिण्यश्चोर्द्ध्वकेश्यश्च युद्धोपक्रान्तमानसा:।।४५।।
सर्वाभरणसन्दीप्ता: पूजनीया: प्रयत्नत: । ततोऽर्चयेल्लोकपालांस्तदस्त्राणि च तद्बहि:।।४६।।
एवं भूतलिपिं सम्यग् जगद्धात्रीं यजेत्सुधी:। वागैश्वर्यसमृद्ध: सन् वन्द्यते स सुरैरपि।।४७।।
साधक: कृतदीक्ष: सन् न्यसंल्लक्षं जपेत्सदा। तद्दशांशं तिलै: शुद्धैस्त्रिमध्वक्तैर्हुनेत् तत:।।४८।।
तर्पणादिद्विजार्चान्तं प्रागवत् कृत्वा तु मन्त्रवित्। काम्यकर्म तत: कुर्यात् स्वगुरूक्तविधानत:।।४९।।
जुहुयादयुतं पद्मैर्वशगा: स्युर्नराधिपा: । महालक्ष्मीरुत्पलानां होमात् संजायतेऽचिरात्।।५०।।
ब्रह्मवृक्षप्रसूनैश्च जुहुयात् साधक: प्रिये। वत्सरेणैव महतां कवीनामग्रणीर्भवेत्।। ५१।।
राजिकालवणैर्हुत्वा वशयेद्योषित: सुधी:। अनया भूतलिप्या च संपुटीकृत्य यं मनुम्।।५२।।
शतं क्रमाद्विलोमाच्च भजते तस्य सिद्ध्यति। सुप्ताशीर्विषरम्यां तां सम्यक् कुण्डलिनीं पराम्।।५३।।
संगमय्य च मध्येन[1] वर्त्मना स्थानमुत्तमम्। परामृतै: प्लावयेत्तां मूर्ध्नि मूलावधि क्रमात्।।५४।।
योगिनां खल्वयं योग: संमत: सर्वसिद्धिद:। एवंन्यस्तशरीरस्तु तेजसा भास्करोपम:।।५५।।
ज्ञात्वा यन्त्रविशेषांश्च काम्यकर्माणि साधयेत्।

बिन्द्वाढ्यं व्योम भूयस्तदपि च शिवयुग् ज्ञानिने स्याद् हृदन्तौ
मन्त्रोऽयं कर्णिकायां प्रणिगदित इतो[2] व्योमवर्णान् दलेषु।
साध्याख्याबन्धुवर्णांल्लिखतु खपुटितान् शिष्टमन्त्येऽथ पत्रे
वृत्तावीतं खयन्त्रं मलयजजतुभिर्निर्मितं क्ष्वेडहर्तृ।।५६।। ❧

वायू नेत्रैर्युतौ स्तो विरतिनतियुतो ङेन्तकोपेशशब्दो
मध्ये वायव्यवर्णान् पवनसुपुटितान् पत्रमध्येऽन्त्यमन्त्ये।
स्वात्यां मन्दोदये तत्पवनगृहगतं तालपत्रस्थयन्त्रं
शत्रोरुच्चाटकृत् स्याद्रिपुमृतिफलदं द्वारि तस्यैव खातम्।।५७।। ✥

वह्नी क्रमाच्छ्रुतिरदेन्दुयुजौ स्वकान्तौ रौरो: सफण्णतिरयं मनुरब्जमध्ये।
पत्रेषु वह्निपुटितान्यनलाक्षराणि प्रान्तेऽन्तिमं च सह साध्यसुपोषकार्णै:।
अग्निस्थितं[3] भुजदले शुभवासरर्क्षे लाक्षासुकुङ्कुमकृतं प्रकरोति रक्षाम्।।५८।।☼

❧अयमन्त्रार्थ:— विन्द्वाढ्यं व्योम हं, पुनस्तदेव शिवयुक् एकारयुक्तं तेन हे, ज्ञानिने इति स्वरूपं, हृत् नम:, अयं मन्त्रोऽष्ट-दलकमलकर्णिकायां लेख्य:। दलेषु व्योमवर्णान् साध्यनामबन्ध्वक्षरसहितान् प्रत्येकं हकारपुटितान् कृत्वा विलिखेत् अवशिष्टं वर्णमन्त्यपत्रे लिखेत्। एतत्पद्मं वृत्तावीतमाकाशमण्डलेनावृतं खयन्त्रं प्रोक्तविधिनोक्तफलदं भवति। साध्यनामाद्यन्तं यस्मिन् कोष्ठे तिष्ठति तत्कोष्ठगताक्षराणि तस्य बन्ध्वक्षराणि।।

✥अयमर्थ:— नत्रं इ, ए स्वरूपं तद्युतौ वायू यकारद्वयं तेन यिंयें, तथा कोपेशायनम: इति अष्टदलपद्मकर्णिकायां विलिख्य वायुवर्णान् यकारपुटितान् पत्रेषु अन्त्यं वर्णमन्त्यपत्रे लिखेत् शेषं पूर्ववत्।।

☼अयमर्थ:— अष्टलपद्मं विरच्य तत्कर्णिकायां रुंरौंस्वरौरो: फट् नम: इत लिखेत्। पत्रेषु रेफपुटितानि वह्न्यक्षराणि अन्त्ये चान्तिमं साध्यपोषकाक्षरै: सहितानि लिखित्वाग्निमण्डलेन संवेष्टयेत्। इदमाग्नेययन्त्रमुक्तफलदं भवति।

१. 'च' ग. पाठ:। २ 'वो' ग. पाठ:। ३ 'अन्तरिस्थतं' ग. पाठ:।

नासामनुस्वरसबिन्दुयुताम्बुयुग्मं ङेन्तो विधुर्विधुभुवे नतिरेष मध्ये।
अब्वर्णकान् (सु?व) पुटितान् शिशु[1] बन्धुवर्णैः पत्रेषु चाप्यपुरयुग्वरुणाह्वयन्त्रम्।।५९।।◆
गण्डानन्ते सबिन्दू विलिखतु च जगौ गण्डयोर्मध्यसंस्थौ
ल्वन्ते के ह्वु मध्ये तदनु कुपुटितान् भूमिवर्णान् धरान्तान्।
पत्रान्तः सेवकार्णैर्धरणिगृहयुतं चेन्द्रसौम्योदये तद्
भूर्जस्थं भूमियन्त्रं सुमृदि विरचितं गैरिकैः स्तम्भकृत स्यात्।।६१।।■

इति भूतलिपिप्रपञ्चकम्। अथ कालीमते श्रीविद्याप्रकरणम्—

पञ्चसिंहासनोऽन्यत्र ततो वै पञ्चपञ्चिका। षडायतनविद्याश्च पञ्चाम्नायास्तथैव च।। १।।
चतुः समयविद्याश्च श्रीविद्यावृन्दमेव च । ज्ञातव्यास्तु विशेषेण देवताभावसिद्धये।। २।।
संपत्प्रदाभैरवी च ततश्चैतन्यभैरवी । चैतन्यभैरवी चान्या द्वितीया सर्वसिद्धिदा।। ३।।
कामेश्वरीभैरवी च बालाद्याः पञ्च देवताः। पूर्वसिंहासनस्थाश्च स्मर्तव्याः सर्वसिद्धये।। ४।।
न्यासे होमे च पूजायां सर्वत्रैव तु साधकः। अघोरभैरवी चैव महाभैरव्यतः परम्।। ५।।
ललिताभैरवी चैव कामेशीभैरवी तथा । रक्तनेत्राभैरवी च दक्षसिंहासने स्थिताः।। ६।।
षट्कूटाभैरवी चैव ततो वै नित्यभैरवी। मृतसञ्जीविनी चैव मृत्युञ्जयपरा ततः।। ७।।
वज्रप्रस्तारिणी चैव प्रत्यक्सिंहासने स्थिताः। भुवनेशीभैरवी च कमलेशी च भैरवी।। ८।।
कौलेश[2] भैरवी चैव ततो डामरभैरवी। कामिनीभैरवी चैव सौम्यसिंहासने स्थिताः।। ९।।
प्रथमा सुन्दरी चैव द्वितीया सुन्दरी तथा। तृतीया सुन्दरी चैव चतुर्थी सुन्दरी तथा।। १०।।
पञ्चमी सुन्दरी चैव ऊर्ध्वसिंहासनस्थिताः। श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तथैव च।। ११।।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्या लक्ष्म्यः पञ्च प्रकीर्तिताः। श्रीविद्या च परंज्योतिः परनिष्कलशाम्भवी।। १२।।
अजपा मातृका चेति पञ्च कोशाः प्रकीर्तिताः। श्रीविद्या त्वरिता चैव पारिजातेश्वरी ततः।। १३।।
त्रिकूटा पञ्चबाणेशी पञ्च कल्पलताः स्मृताः । श्रीविद्यामृतपीठेशी सुधासूरमृतेश्वरी।। १४।।
अन्नपूर्णेति विख्याताः पञ्च कामदुघाः क्रमात्। श्रीविद्या सिद्धलक्ष्मीश्च मातङ्गी भुवनेश्वरी।।१५।।
वाराहीति च संप्रोक्ताः पञ्चरत्नमिति ध्रुवम्। इति।

अथ मन्त्रोद्धारः, तत्रादौ गुरुपादुका—

शिवचन्द्रानलार्घीशबिन्दुभिः प्रथमाक्षरम् । आकाशचन्द्रसंवर्तमहाकालक्षमाम्बुभिः।। १।।
वाय्वग्न्यनन्तबिन्द्वन्तैर्द्वितीयं बीजमुद्धृतम्। तदेव वामकर्णेन तृतीयं बीजमुद्धृतम्।।२।।
तदेव दक्षनेत्रेण चतुर्थं बीजमीरितम् । श्रीपरेति तथा पावकेति सर्वपदं ततः।।३।।

◆ वरुणयन्त्रे वृंवौंविधवेविधुभुवेनमः। इति कर्णिकायां लिखित्वा पत्रेषु बन्ध्वक्षरैः सह वकारपुटितान् वायुवर्णान् लिखेत्।।
■ भूयन्त्रे लंग्लौं लंजंगंलंलुके नमः इति मध्ये विलिख्य पत्रेषु लकारपुटितान् भूमिवर्णान् सेवकार्णयुतान् लिखेत्।।
१. 'सहेति' सुपाठः। २ 'शा' क. पाठः।

आराध्यसर्वगुरु च नाथसर्वगुरुगुरु । श्रीगुर्वथ तथा नाथ वह्निर्बीजं तृतीयकम्।। ४।।
आद्यबीजचतुष्कं च श्रीशंभुगुरुशब्द‌ंतः। प्रथमं तु द्विधा चोक्त्वा द्वितीयादित्रयं भवेत्।।५।।
प्रथमं च तृतीयं च प्रोक्ता च स्थूलपादुका। तारपञ्चकमादौ तु देयं सर्वार्थसाधिका।।६।।
खेचरीबीजमुक्तेयं प्रोक्ता स्यान्मध्यपादुका। तारत्रययुतेयं तु संप्रोक्ता लघुपादुका।।७।।
तारत्रयं श्रीअमुकानन्दनाथपदं ततः। श्रीपादुकां पूजयामीत्युक्ता लघुतरापरा ।। ८।।

ॐ ऐंह्रींश्रीं हसखफ्रें हसौः हस्‍खूं हसक्षमलवयरीं हसक्षमलवयरूं हसक्षमलवय (रीं?रिं) श्रीपरपावक सर्वाराध्यसर्वगुरुनाथ सर्वगुरुगुरुश्रीगुरुनाथ रंहसक्षमलवयरूं। ५ँ हस्‍खूं हसक्षमलवयरां हसक्षमलवयरूं हसक्षमलवय (रीं?रिं)श्रीशम्भुगुरु ५ँ हस्‍ूं हस्‍ूं हसक्षमलवयरां हसक्षमलवयरूं हसक्षमलवय (रीं?रिं) ५ँ हस्‍खूं हसक्षमलवयरूं इति स्थूलपादुका।।

ॐऐंह्रींश्रीं हसौं सहक्षमलवयरूं सहक्षमलवयरूं हस्‍ौः सहक्षमलवयरीः हस्‍ौः श्रीपरपावक सर्वारा- ध्यसर्वगुरुनाथ सर्वगुरुस्वयंगुरु श्रीगुरुनाथ रैं२ हसक्षमलवयरूं हसौं सहक्षमलवयरीं सहक्षमलवयरूं सहलक्षमवयरां श्रीशंभुगुरु ५ँ हसौः सहक्षमलवयरूं श्रीअमुकानन्दनाथामुकशक्तिदेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि, इति मध्यमपादुका।।

ॐऐंह्रींश्रीं हसखफ्रें हसौः हसक्षमलवरयूं श्रीअमुकानन्दनाथ ॐऐंह्रींश्रीं सहखफ्रें स्हौः सहक्षमलवरयीं अमुकदेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि इति लघुपादुका।। ॐऐंह्रींश्रीं अमुकानन्दनाथामुकशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि, इति लघुतरपादुका।। ॐऐंह्रींश्रीं श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि— इति सामान्यपादुका।।

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्गुरुपादुकाम् । स्वस्थचित्तः स्थिरवपुर्योगमार्गविचक्षणः ।। १।।
श्रीगुरोः पादुकामन्त्रे ऋषिर्ब्रह्मा समीरितः । गायत्रं छन्द आख्यातं निचृदाद्यं महेश्वरि ।।२।।
बीजशक्ती तथाद्यन्तौ मध्यमं कीलकं भवेत्। मोक्षार्थे विनियोगः स्यादृषिन्यास उदीरितः।।३।।
प्रातः शिरसि शुक्लेऽब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्। वराभयकरं शान्तं स्मरेत् तन्नामपूर्वकम्।।४।।
शशाङ्कायुतसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम् । शुक्लाम्बरधरं श्रीमच्छुक्लमाल्यानुलेपनम्।। ५।।
वामोरुस्थितया रक्तवर्णया पद्महस्तया । शक्त्यालिङ्गितमानन्दामोदमानं गुरुं स्मरेत्।। ६।।

अथौघत्रयगुरुध्यानम्—

कराभ्यां चिन्मुद्रां समधुनृकपालं च दधतीं द्रुतस्वर्णप्रख्यामरुणकुसुमालेपवसनाम्।
कृपापूर्णापाङ्गमरुणनयनां कर्बुरजटामुपेतां सिद्धौघैर्भजतु गुरुपङ्क्तिं कृतमतिः।। १।।

अथ गुरुनमस्कारः —

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।। १।।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।२।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः कर्ता च हर्ता च गुरवे वै नमो नमः।।३।।

---

१ 'तवर्तः' क. पाठः। २ 'रैं' ग. पाठः।

अथ कुण्डलिनीमन्त्रः —

वाग्भवं भुवनेशी च श्रीबीजं तु तथैव च। त्र्यक्षरो मन्त्र आख्यातः कुण्डलिन्याः सुसिद्धिदः ॥१॥
ऋषिः शक्तिः समाख्यातो गायत्री छन्द ईरितम्। चेतना कुण्डली शक्तिर्देवतात्र समीरिता ॥२॥
वाग्भवं बीजमाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते। हृल्लेखा कीलकं प्रोक्तं कुण्डलिन्यास्तु चिन्तने ॥३॥
विनियोगः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः। बीजत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गन्यास ईरितः ॥४॥
ध्यानं वक्ष्यामि कुण्डल्याः सावधानतया शृणु। मूलाधारे त्रिकोणे तु सूर्यकोटिसमत्विषि ॥५॥
प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयस्थिताम्। नीवारशूकवत् तन्वीं तडित्कोटिसमप्रभाम् ॥६॥
सूर्यकोटिप्रभां दीप्तां चन्द्रकोटिसुशीतलाम्। शिवशक्तिमयीं देवीं शङ्खावर्तक्रमात् स्थिताम् ॥७॥
सुषुम्नामध्यमार्गेण यान्तीं परशिवावधि। ह्रींकारबीजरूपेण चिन्तयेद्योगवर्त्मना ॥८॥

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुर—
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यां मणिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥९॥

कुलगुरुध्यानं प्रागेवोक्तम्। अथ कुण्डलीस्तुतिः शारदायाम्—

मूलोन्निद्रभुजङ्गराजसदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं
भित्त्वाधारसमूहमाशु विलसत्सौदामिनीसंनिभाम्।
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतौघैः पतिं
संभाव्य स्वगृहागतां पुनरिमां संचिन्तयेत् कुण्डलीम् ॥१॥

हंसं नित्यमनन्तमद्वयगुणं स्वाधारतो निर्गता
शक्तिः कुण्डलिनी समस्तजननी हस्ते गृहीत्वा च तम्[१]।
याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनानुभूय स्वयं
यान्ती स्वाश्रम[२]कर्मकोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी ॥२॥

अव्यक्तं परबिम्ब[३] मञ्चितरुचिं नीत्वा शिवस्यालयं
शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयवपुर्विद्युल्लतासन्निभा।
आनन्दामृतकन्दग[४] पुरमिदं चन्द्रार्ककोटिप्रभं
संवीक्ष्य स्वगृहंगता[५] भगवती ध्येयानवद्या गुणैः ॥३॥

मध्येवर्त्म समीरणद्वयमिथः संघट्टसंक्षोभजं
शब्द[६] स्तोममतीत्य तेजसि तडित्कोटिप्रभाभास्वरम्[७] ॥

---

१ 'चक्रे गृहे सिञ्चतीम्' ग. पाठः। २ 'स्वाश्रयं' ग. पाठः। ३ 'बिम्बं' ख. पाठः। ४ 'मध्यगं' ग. पाठः। ५ 'स्वपुरं' ग. पाठः।
६ 'याब्ज' क. ख. पाठः। ७ 'रै' ग. पाठः।

उद्यन्तीं समुपास्महे नवजपा[1]सिन्दूरसान्द्रा रुणां
सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवं प्राप्तां परां देवताम्।।४।।
गमनागमनेषु जाङ्घिकी सा तनुयाद्योगफलानि कुण्डली।
मुदिता[2] कुलकामधेनुरेषा भजतां वा[3]ञ्छित कल्पवल्लरी।।५।।
आधारस्थितशक्तिबिन्दुनिलयां नीवारशूकोपमां
नित्यानन्दमयीं गलत्परसुधावर्षैः[4] प्रबोधप्रदैः।
सिक्त्वा षट् सरसीरुहाणि विधिवत् कोदण्डमध्योदितां
ध्यायेद् भास्वरबन्धुजीवरुचिरां संविन्मयीं देवताम्।।६।।
हृत्पङ्केरुहभानुबिम्बनिलयां विद्युल्लतामन्थरां
बालार्कारुणतेजसा भगवतीं निर्भर्त्सयन्तीं तमः।।
नादाख्यं परमर्धचन्द्रकुटिलं संविन्मयीं शाश्वतीं
यान्तीमक्षररूपिणीं विमलधीर्ध्यायेद्विभुं तेजसाम्।।७।।
भाले पूर्णनिशाकरप्रतिभटां नीहारहारत्विषा
सिञ्चन्तीममृतेन देवममितेनानन्दयन्तीं तनुम्।
वर्णानां जननीं तदीयवपुषां संव्याप्य विश्वं स्थितां
ध्यायेत् सम्यगनाकुलेन मनसा संविन्मयीमम्बिकाम्।।८।।
मूले भाले हृदि च विलसद्वर्णरूपा सवित्री
पीनोत्तुङ्गस्तनभरनमन्मध्यदेशा महेशी।
चक्रे चक्रे गलितसुधया सिक्तगात्री प्रकामं
दद्यादद्य श्रियमविकलां वाङ्मयी देवता नः।।९।।
आधारबन्धप्रमुखक्रियाभिः समुत्थिता कुण्डलिनी सुधाभिः।
त्रिधामबीजं शिवमर्चयन्ती शिवाङ्गना वः शिवमातनोतु।।१०।।
निजभुवननिवासादुच्चलन्ती विलासैः पथि पथि कमलानां चारुहासं विधाय।
तरुण[5] तपनकान्तिः कुण्डली देवता सा शिवदसदनसुधाभिर्दीपयेदात्मतेजः।।११।।
सिन्दूरपुञ्जनिभमिन्दुकलावतंसमानन्दपूर्णनयनत्रयशोभिवक्त्रम्।
आपीनतुङ्गकुचनम्रमनङ्गतन्त्रं शंभोः कलत्रममितां श्रियमातनोतु।। १२।।
वर्णैर्णवषट्दिशा[6] रविकलाचक्षु[7] र्विभक्तैः क्रमात्
सान्तैरादिभि[8]रावृतान् क्षहयुतैः षट्चक्रमध्यानिमान्।

१ 'सन्ध्यारुणां' ग. पाठः। २ 'का' क. पाठः। ३ 'काङ्क्षित' क. पाठः। ४ 'वर्णैं' ग. पाठः। ५ 'तरणि' ग. पाठः। ६ 'शिवा' क. पाठः। 'शिखा' ग. पाठः। ७ 'तत्त्वैः' क.ग. पाठः। 'आद्यैः' सादिभिः, ग. पाठः।

डाकिन्यादिभिराश्रितान् परिचितान् ब्रह्मादिभिर्दैवतै–
भिन्दाना परदेवता त्रिजगतां चित्तेषु दत्ता[१] मुदम्।। १३।।
आधाराद् गुणवृत्तशोभिततनुं निर्गत्वरीं सत्वरं[२]
भिन्दन्तीं कमलानि चिन्मयघनानन्द[३] प्रबोधोद्धुराम्।
संक्षुब्धध्रुवमण्डलामृतकरप्रस्यन्दमानामृत–
स्रोतः कन्दलितामनन्दतडिदाकारां शिवां भावये।। १४।।
मूलाधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभाभास्वरे विभ्रमन्तं
कामं बालार्ककालानलजरठकुरङ्गाङ्ककोटिप्रभाभम्।
विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिरलसद्बन्धुजीवाभिरामं
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुं जगदुदयलयैकान्तहेतुं विचिन्त्य।। १५।।
तस्योर्ध्वे विस्फुरन्तीं स्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभाभास्वराङ्गी[४]–
मुद्गच्छन्तीं सुषुम्नामनु सरणिशिखामाललाटेन्दुबिम्बम्।
चिन्मात्रां सूक्ष्मरूपां जगदुदयकरीं भावनामात्रगम्यां
मूलं या सर्वधाम्नां स्फुरति[६]निरुपमा हूंकृतोदञ्चितोरः।।१६।।
नीता सा शनकैरधोमुखसहस्रारारुणाब्जोदरे
च्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बमधुनः पीयूषधारास्रुतिम्।
रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिःष्यन्दरूपा विशे–
द्भूयोऽप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा[५] विशेत्।।१७।।
योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवात्मनोऽन्त[७] र्बीजांशं दुरितजरापमृत्युरोगान्।
जित्वासौ स्वयमिव मूर्तिमाननङ्गः सञ्जीवेच्चिरमतिनीलकेशजालः।।१८।।

इति कुण्डलिनीस्तुतिः। अथ मूलविद्याचिन्तनम्–

पञ्चदश्या ऋषिः प्रोक्तो दक्षिणामूर्तिरव्ययः। पङ्क्तिश्छन्दः समाख्यातं परब्रह्मस्वरूपिणी।। १।।
देवता ह्युदिता श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी । वाग्भवं बीजमाख्यातं शक्तिस्तार्तीयमुच्यते।। २।।
कीलकं मध्यकूटं स्यात् पुरुषार्थचतुष्टये। विनियोगः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः।।३।।
कूटत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गानि समाचरेत्।
सिन्दूरपुञ्जनिभमिन्दुकलावतंसमानन्दपूर्णनयनत्रयशोभिवक्त्रम्।
आपीनतुङ्गकुचनम्रमनङ्गतन्त्रं शंभोः कलत्रममितां श्रियमातनोतु।।४।।

---

१ 'चित्ते विधत्तां' ग. पाठः। २ 'रां, क. ख. पाठः। ३ 'न्दां' ग. पाठः। ४ "रामां" क.ग. पाठः। ५ 'रतु' क. पाठः। ६ 'नित्या' क. पाठः। ७ 'दिनमात्मनो नियन्तं बीजेशात्' क. ग. पाठः।

अथ कूटत्रयचिन्तनम्—

मूलाधारे वाग्भवाख्यं कूटं संचिन्तयेद्बुधः। वाग्भवाख्यस्य कूटस्य ऋषिर्ब्रह्मा समीरितः।। १।।
छन्दो गायत्रमाख्यातं देवता वागधीश्वरी। आद्यवर्णं तु बीजं स्यादन्त्यं शक्तिः समीरिता।। २।।
मध्यत्रयं कीलकं स्याद्वाक्सिद्ध्यै विनियोगकम्। ब्रह्मवाग्रूपिणी ङेन्ता विष्णुवाग्रूपिणी तथा।।३।।
रुद्रवाग्रूपिणी ङेन्ता परवाग्रूपिणी तथा। शिववाग्रूपिणी ङेन्ताखिलवाग्रूपिणी तथा ।।४।।
षडङ्गं विन्यसेदेतैर्वाग्भवाद्यैः सुसाधकः।

शुक्लां स्वच्छविलेपमाल्यवसनां शीतांशुखण्डोज्ज्वलां
व्याख्यामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां च हस्ताम्बुजैः।
बिभ्राणां कमलासनां कुचनतां वाग्देवतां सस्मितां
वन्दे वाग्विभवप्रदां त्रिनयनां सौभाग्यसंपत्करीम्।।५।।

हृदये कामराजाख्यं कूटं संचिन्तयेद् बुधः । कामराजाख्यकूटस्य ऋषिः संमोहनः स्मृतः।। ६।।
गायत्री छन्द आख्यातं कामेशी देवता स्मृता। आद्यं बीजं तथा शक्तिर्हल्लेखा कीलकं स्मृतम्।।७।।
मध्यवर्णचतुष्कं तु वशीकरणसिद्धये । विनियोगोऽत्र विख्यातः सर्वागमविशारदैः।। ८।।
द्रांसक्षोभणबाणाय द्रींद्रावणपदं तथा । वाणाय च तथा क्लीं च आकर्षणपदं पुनः।। ९।।
बाणाय ब्लूं वशीकारबाणाय च ततः पुनः। सः उन्मादनबाणाय पञ्च बीजानि चोच्चरेत्।। १०।।
सर्वबाणेभ्य इत्युक्त्वा षडङ्गानि प्रविन्यसेत्। कामकूटादिभिर्मन्त्रैर्नमोन्तै रससंख्यकैः।। ११।।

बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां कोदण्डमिक्षुजनितं स्मरपञ्चबाणान्।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां ध्यायेत् समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम्।। १२।।

आज्ञाचक्रे शक्तिकूटं चिन्तयेत् साधकाग्रणीः। अथास्य शक्तिकूटस्य ऋषिः शिव उदाहृतः।। १३।।
पङ्क्तिश्छन्दस्त्वादिशक्तिर्देवता बीजमत्र सः। हल्लेखा शक्तिरुद्दिष्टा कीलकं मध्यवर्णकौ।।१४।।
विनियोगस्तु विज्ञेयश्चतुर्वर्गाप्तये ध्रुवम्। ङेन्ता सर्वज्ञताशक्तिः शक्त्यन्ता नित्यतृप्तता।। १५।।
चतुर्थ्यन्ता समुद्दिष्टा तथैवानादिबोधिनी। ङेन्ता स्वतन्त्रता शक्तिस्तथा नित्यमलुप्तता।। १६।।
शक्तिर्ङेन्तानन्ततादिशक्तिर्ङेन्ता तथैव च। एतैर्मन्त्रैर्जातियुक्तैः शक्तिकूटादिकैः क्रमात्।। १७।।
विन्यस्य च षडङ्गानि ध्यायेद् देवीमनन्यधीः।

कदम्बवनमध्यगां कनकमण्डपान्तः स्थितां षडम्बुरुहवासिनीममरसिद्धसौदामिनीम्।
विजृम्भितजपारुचिं विमलचन्द्रचूडामणिं त्रियम्बककुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये।। १८।।

अथाभेदचिन्तनम्—

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मविद्यां विभावयेत्। तत्प्रभापटलव्याप्तं स्वशरीरं विचिन्तयेत्।। १।।

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं[1] न शोकभाक्। सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्।।२।।
त्वमेवाहमहं त्वं च संविन्मात्रवपुस्तव । आवयोरन्तरं देवि नश्यत्वाज्ञाबलात् ततः।।३।
अहं तीर्णो भवं घोरं कृत्यं किञ्चिन्न मेऽस्ति वै। तथापि देहि मे मातराज्ञां तव सुसेवने।।४।।
कृत्वा समाधिस्थितया धिया ते चिन्तां नवाधारनिवासभूताम्।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये।। ५।।
मञ्जुशिञ्जितमञ्जीरं वाममर्धं महेशितुः । आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं वचसामपि[2]।। ६।।

अथ मूलदेवतास्तुतिः –

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभिर्लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम्।। १।।
एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे।
सांनिध्यमुद्यदरुणायतसोदरस्य त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाप्लुतस्य।। २।।
ईशित्वभागकलुषाः कति नाम सन्ति ब्रह्मादयः प्रतियुगं प्रलयाभिभूताः।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते यः पादयोस्तु सुकृती प्रणतिं करोति।। ३।।
लब्ध्वा सकृत् त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम्।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः सम्मोहं[3]यन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेषु।। ४।।
ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे।
यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः।। ५।।
हन्तुः पुरामधिगलं परिपूर्यमाणः क्रूरः कथं नु भविता गरलस्य वेगः।
आश्वासनाय किल मातरिदं तवार्धं देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य।। ६।।
सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः।
किञ्च[4] स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं द्वे चामरे च वसुधां महतीं ददाति।। ७।।
कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम्।। ८।।
हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसा वचसा स्मरामि त्वामेव नौमि शरणं जगति त्वमेव।। ९।।
लक्ष्येषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनानामालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथञ्चित्।

---

१ 'ब्रह्म चाहं' ग. पाठः। २ 'सचराचरम्' ग. पाठः। ३ 'द' ग. पाठः। ४ 'किञ्चित्' क. पाठः।

नूनं मयापि सदृशं करुणैकपात्रं जातो जनिष्यति जनो नच जायते च।।१०।।
ह्रींह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां जनानां किंनाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे।
मालाकिरीटमदवारणमाननीयांस्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मी:।। ११।।
संपत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरितौघहरोद्यतानि मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्।। १२।।
कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य।
पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका।। १३।।
लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्धं तेज:परं बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम्।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं मध्येत्रिकोणमुदितं परमामृतार्द्रम्।। १४।।
ह्रींकारमेव तव धाम तदेव रूपं त्वन्नाम सुन्दरि सरोजनिवासमूले।
त्वत्तेजसा परिणतं जगदादिमूलं सङ्गं तनोतु सरसीरुहसङ्गमस्य।। १५।।
ह्रींकारत्रयसंपुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित्।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी वाणी निर्मलसू[१]क्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं वपुः। १६।

इति स्तुति:।।

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।। १७।।

इति भूमिप्रार्थना।।

संध्यासूदङ्मुखोऽह्न्यपि निशि च पुनर्दक्षिणास्यो निवीतं
कुर्यान्मूत्रादिशौचं बहिरथ सलिलात् तत्र लिङ्गे मृदेका।
पञ्चापानेऽथ हस्ते दश पुनरुभयोः सप्त चैतद्गृहस्थे
द्वैगुण्यादिक्रमात् तद्व्रतिवनियतिषु स्यात् तदर्धं निशायाम्।। १।।

इति शौचम्।

ततः श्रीकाममन्त्रस्य संमोहन ऋषिः स्मृतः। गायत्रीच्छन्द आख्यातं श्रीकामो देवता स्मृता।।१।।
बीजं तु कामराजः स्यान्नमः शक्तिरुदीरिता। सर्वजनप्रियायेति कीलकं समुदाहृतम्।। २।।
षड्दीर्घकामराजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।

जपारुणं रत्नविभूषणाढ्यं मीनध्वजं चारुकृताङ्गरागम्।
कराम्बुजैरङ्कुशमिक्षुचापं पुष्पास्त्रपाशौ दधतं भजामि।।३।।

ध्यात्वैवं कामबीजं च कामदेवाय सर्व च। जनप्रियाय हृदयं काममन्त्र उदाहृतः।।४।।
अनेन दन्तकाष्ठं तु अभिमन्त्र्याष्टधा पुनः। दन्तान् विशोध्य मतिमान् मुखप्रक्षालनं चरेत्।।५।।

१. 'भक्ति' क. ख. पाठ:।

इति दन्तधावनम्।

श्रीविद्यां ब्रह्मरन्ध्रे तु विचिन्त्य च ततः परम्। चतुर्लक्ष्मीमहामन्त्रैर्मुखक्षालनमाचरेत्॥ ६॥

इति मुखप्रक्षालनम्।

तीरमागत्य चाचम्य कुर्यात् सङ्कल्पमादरात्। अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम॥ ७॥
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि। भैरवाज्ञामनुस्मृत्य स्नानं वैदिकमाचरेत्॥ ८॥
तान्त्रिकं स्नानमनुतत् कुर्यान्मन्त्रोक्तवर्त्मना। जले श्रीचक्रमाभाव्य तीर्थान्याकृष्य मण्डलात्॥९॥
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥ १०॥
मुद्रयाङ्कुशरूपिण्या तीर्थान्याकृष्य योज्य च। गङ्गास्वरूपिणीं देवीं ध्यात्वा मूलमनुं जपन्॥११॥
जातवेदादिऋग्भिश्च समूलाभिः स्वमूर्धनि। अभिषिञ्चेत् सप्तकृत्वः कुम्भाख्यमुद्रया ततः॥ १२॥
देवीं स्वहृदि संयोज्य स्वस्थाने तीर्थसन्ततिम्। यन्मया दुष्कृतं तोयं शरीरमलसंयुतम्॥ १३॥
तस्य पापविशुद्ध्यर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम्। इति तीरे तु सन्तर्प्य गृह्णीयाच्छुद्धवाससी॥१४॥

इति स्नानम्। ततो विभूतिधारणम्—

हस्ते विभूतिं संस्थाप्य पञ्चतारैः प्रमन्त्रयेत्। अग्निरित्यादिमन्त्रैश्च ईशानाद्यैश्च मन्त्रयेत्॥ १५॥
ततस्तु धारयेन्मन्त्री केवलं मूलविद्यया।

इति भस्मधारणम्। अथ वैदिकसन्ध्यानन्तरं तान्त्रिकसन्ध्यां कुर्यात्—

ततो मणिधरिण्यन्ते वज्रिण्यन्ते महाप्रति। सरे रक्षद्वयं हुंफट्स्वाहान्तो मनुरीरितः॥ १॥
अनेनैव तु मन्त्रेण शिखां बद्ध्वा विचक्षणः। त्रिभिः कूटैस्त्रिराचामेत् त्रितत्त्वान्तैः समाहितः॥२॥
विद्यातत्त्वाय च तथा शिवतत्त्वाय चैव हि। मायातत्त्वाय च तथा स्वाहान्तैस्तदनन्तरम्॥३॥
प्राणानायम्य सङ्कल्प्य पुरतो जलमध्यतः। श्रीचक्रं तु विभाव्यानु सूर्यात्तीर्थानि मुद्रया॥४॥
प्राग्वदावाह्य विधिवदावाहन्यादिमुद्रिकाः। प्रदर्श्य दक्षहस्ते तु जलं सङ्गृह्य[1] यत्नतः॥५॥
वामहस्तेन सञ्छाद्य पञ्चभूताक्षरैः क्रमात्। अभिमन्त्र्य सकृत्तोयं वामहस्ते निधाय च॥६॥
स्वरैः सम्मार्जयेन्मूर्ध्नि तत्पृष्ठस्रुतबिन्दुभिः। ततो दक्षे जलं ग्राह्यं सहितैर्मूलविद्यया॥७॥
कादिमान्तैः स्पर्शवर्णैः स्वाहान्तैरभिमन्त्र्य च। पीत्वा तत्तोयमथ च पुनर्दक्षे जलं क्षिपेत्॥ ८॥
अभिमन्त्र्य च तत्प्राग्वद्वामहस्ते निधाय तत्। विनिःसृतैश्च[2] तत्पृष्ठाद्बिन्दुभिर्मार्जयेत्तथा॥ ९॥
यादिक्षान्तैर्व्यापकार्णैस्ततस्तज्जलमादरात्। इडायाकृष्य देहान्तः क्षालयेत् कल्मषं ततः॥१०॥
विरेच्य पिङ्गलामार्गात् कृष्णवर्णं तु तज्जलम्। ज्वलद्वज्रशिलायां तु स्फालयेदस्त्रमुच्चरन्॥११॥
ततः प्रक्षाल्य च करावाचम्याञ्जलिना जलम्। गृहीत्वोत्थाय गायत्र्या सूर्याभिमुखमुत्क्षिपेत्॥१२॥
एवमर्घ्यत्रयं दत्त्वा चोपविश्य प्रयत्नतः। श्रीचक्रावृतिदेवीश्च तर्पयेद्विधिवत् पुनः॥ १३॥
पञ्चविंशतिधा मूलमुच्चार्य स्वेष्टदेवताम्। सन्तर्प्याचम्य गायत्र्या प्राणायामत्रयं चरेत्॥ १४॥

---

१. 'संग्राह्य' क. पाठः। २. 'सुतै' क. पाठः।

गायत्र्याश्च ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रं छन्द ईरितम्। गायत्री देवता प्रोक्ता द्विरावृत्त्या त्रिभिः पदैः॥ १५॥
षडङ्गानि प्रविन्यस्य ध्यायेद् देवीमनन्यधीः। भास्वद्रत्नौघमुकुटस्फुरच्चन्द्रकलाधराम्॥ १६॥
सद्यःसन्तप्तहेमाभां सूर्यमण्डलरूपिणीम्। पाशाङ्कुशाभयवरान् धारयन्तीं स्मरन् बुधः॥ १७॥

इति। कुलार्णवे—

प्रातः सन्ध्यामुपासीत धर्मकामार्थसिद्धये। मूलाधारे वसाब्जे च ह्रींबीजं रक्तसन्निभम्[1]॥ १॥
ध्यात्वा प्रभापुटान्तःस्थं[2] बहिर्निःसार्य्य मण्डले। सौरे विभाव्य रक्ताभां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम्॥२॥
वह्निमण्डलमध्यस्थां कुमारीरूपधारिणीम्। बिभ्राणां पुस्तकं मालां वरदं चाभयं तथा॥ ३॥
बालसूर्यसमामम्बां[3] ध्यात्वैवं सञ्जपेन्मनुम्। अथ माध्यन्दिने सन्ध्यानाहते च कठाब्जके॥ ४॥
ह्रींबीजं शुक्लसकाशं ध्यात्वा निःसार्य पूर्ववत्। सूर्यमण्डलमध्यस्थां त्रिनेत्रां शुक्लविग्रहाम्॥५॥
आरूढयौवनां चक्रं शङ्खं पद्मं गदां तथा। बिभ्राणां च तथा ज्येष्ठां ध्यात्वैवं सञ्जपेन्मनुम्॥ ६॥
अथ सायन्तनी संध्या भ्रूमध्ये ह्क्षपद्मके। ह्रींबीजं कृष्णवर्णं तु ध्यात्वा निःसार्य पूर्ववत्॥ ७॥
सोममण्डलमध्यस्थां कृष्णवर्णां चतुर्भुजाम्। बिभ्राणामभयं शूलं कपालीं तर्जनीं तथा॥ ८॥
वामे दक्षे च बिभ्राणां चित्रां नेत्रत्रयान्विताम्। विचित्राभरणां रौद्रीं ध्यात्वैवं सञ्जपेन्मनुम्॥ ९॥
अष्टबीजानि चोच्चार्य वाग्भवं कुटमुच्चरेत्। वागीश्वर्यै विद्महे च कामकूटं ततोच्चरेत्॥ १०॥
कामेश्वर्यै धीमहीति शक्तिकूटं ततः परम्। तन्नः शक्तिःपदं प्रोक्त्वा व्याहरेच्च प्रचोदयात्॥ ११॥
बीजपञ्चकमुच्चार्य गायत्र्येषा समीरिता। मूलविद्यां ततो जप्त्वा गुह्यातीति निवेदयेत्॥ १२॥

इति सन्ध्याविधानम्। सङ्क्षेपसन्ध्या तु तन्त्रान्तरे— "सायं प्रातश्च मध्याह्ने देवीं ध्यात्वा मनुं जपेत्" इति सन्ध्यात्रयमावश्यकम्। तथा कुलार्णवे—

सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते॥ १॥
न कुर्याद्यदि तां[4] सन्ध्यां पतितो[5] दशधा जपेत्। अन्यसन्ध्यासमे काले सौत्रकण्टकिविद्यया॥२॥
कृत्वा षडङ्गमन्त्रेण ध्यायेत् तां सौत्रकण्टकीम्। षड्वक्त्रां द्वादशभुजां त्रिनेत्रां परमेश्वरीम्॥ ३॥
गलादूर्ध्वं श्वेतवर्णां पीतां गलतलादधः। कट्यादिपादपर्यन्तं नीलाभां च ततः स्मरेत्॥ ४॥
द्विरष्टवर्षां रक्ताङ्गीं सर्वश्रृङ्गारचर्चिताम्। स्वर्णरत्नप्रभाभिश्च मण्डिताभिः (लि) सहस्त्रिकाम्॥५॥
मोचिनीं सर्वपापानां रक्तसिंहासने स्थिताम्। तदूर्ध्वं श्वेतपद्मं च तदूर्ध्वं श्वेतकेसरम्॥ ६॥
तत्पृष्ठे संस्थितां देवीं त्रिखण्डागुणमण्डिताम्[6]। रत्नमुकुटोज्ज्वलां दिव्यां सन्ततां नादपूरिताम्॥७॥
हसद्वक्त्रां महादेवीं दक्षिणोदयगामिनीम्। महासमययागाय[7] नित्यनिष्कलगामिनीम्॥ ८॥
पञ्चप्रणवमुच्चार्य वाग्भवं परदुष्करम्। कर्मच्छेदनकारीति अघोरे वरदे तथा॥ ९॥
विच्चे मायापदं प्रोक्त्वा त्रैलोक्यपदमुद्धरेत्। रूपेति च पदं प्रोक्त्वा सहस्रपरिवर्तिनी॥१०॥

---

१. 'संभवम्' क.ग. पाठः। २. 'स्थे' क. पाठः। ३. 'मानाभां' क.ख.ग. पाठः। ४. 'पतितां' क. पाठः। ५. 'ते' क. पाठः। ६. 'गुह' ग. पाठः। ७. 'मागाय' ग. पाठः।

मातृगणे पदं चानु हस्त्रूं प्रणवपञ्चकम् । लुप्तसन्ध्यामहापापनिवृत्त्यर्थमिमं जपेत् ।। ११।।
दशवारं ततो जप्यान्मूलमन्त्रं यथाविधि। स्वयं ज्योतिर्मयो भूत्वा मूलविद्यां हृदि स्मरन्।।१२।।
पूजार्थं जलमादाय यागमण्डपमाविशेत्। इति।

ज्ञानार्णवे—

सर्वशृङ्गारवेषाढ्यः कर्पूरघुसृणादिभिः। महामृगमदोद्दामलिप्ताङ्गः कुङ्कुमारुणः।। १।।
नवरत्नविभूषाढ्यो रक्ताम्बरविराजितः। ताम्बूलरागवदनो मादनानन्दमानसः।। २।।
यागमन्दिरमागत्य लाक्षारसविचित्रितम्। अनेकधूपबहुलं पुष्पसम्भारपूरितम्।। ३।।
गोमयेन च संलिप्तं[१] चारुपुष्पविराजितम्। इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

अथ यागगृहं यायादलङ्कारविभूषितम्। अनेकचित्रसुभगं भूमौ गोमयचर्चितम्।। १।।
उपरिष्टाल्लसत्पुष्पवितानं धूपधूपितम्। दीपमालावलीरम्यविकीर्णकुसुमोज्ज्वलम्।।२।।

इति यागमण्डपम्।

तारं वज्रोदकं हुंफट्स्वाहामन्त्रेण देशिकः । जलेनासनमभ्युक्ष्य तदुपर्युपविश्य च।। ३।।
तारं माया विशुद्धेति सर्वपापानि चोच्चरेत्। शमयाशेषेति ततो विकल्पमपनेति च।। ४।।
य हूमिति च मन्त्रेण हस्तौ पादौ च क्षालयेत्। ॐह्रींस्वाहेति मन्त्रेण त्रिराचम्याङ्गने[२] ततः।।५।।
उपविश्य ततः सौरपूजां कुर्याद्यथाविधि। इति।

कुलार्णवे— ''प्राङ्मुखः प्राङ्गणे पूर्वे यजेन्मार्तण्डभैरवम्।।'' इति। शम्भुनिर्णये—

चतुरन्वयसिद्ध्यर्थं सौरपूजेयमीरिता । तद्विचार्य चिदादित्यपूजां कर्तुं सुखासने ।। १।।
प्राङ्मुखः प्रत्यगासीनः समस्निग्धमहीतले। सामान्यार्घ्यं[३] च वामे स्यात् प्रणवान्पञ्च चोच्चरेत्।।२।।
मण्डलोच्चा (द्धा) रणं कुर्यादिति साधारणं मतम्। भूताङ्गुलं च वेदास्रं षट्कोणं चोर्ध्वरिखिकम्।।३।।
विलिख्य तस्मिन् साधारपात्रमस्त्रविशोधितम्। संस्थाप्य पयसापूर्याधारपात्रजलेषु च।। ४।।
वह्न्यर्कसोमबीजैस्तु तथा चात्मविभावितम्। एवं[४] निष्पाद्य षट्दीर्घं द्वितीयप्रणवात्मकम्[५]।। ५।।
अङ्गं तस्य विधायैवं शङ्खं संस्थाप्य देशिकः। बहच्छ्वासकराग्रेण पुरतः सौरमण्डलम्।। ६।।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कस्तूरीचन्दनादिभिः। इति।

ऐंह्रींश्रीं हसखफ्रें हसौः चन्द्रसूर्याग्निगर्भ स्फुर स्फुर धर्मार्थकाममोक्षलाभं कुरु कुरु महाखेचरीमुद्रां प्रकटय प्रकटय शाम्भवाज्ञया चतुरन्वयानां सिद्धिसामर्थ्यादि[६] दद दद किच किच किलि किलि फ्रें मण्डलब्रह्माण्डमण्डल हस्त्रूं महाचण्डशिवे स्हफ्रें ५ँ।

अनेन मन्त्रेणाभ्यर्च्य वृत्ताष्टदलपद्मकम्। मण्डलं चतुरस्रं तु कृत्वा संस्थाप्य चाग्रतः।। ७।।
सामान्यं च विशेषार्घ्यं मण्डलं विलिखेद् बुधः। दक्षे सौरार्घ्यपूजार्थे मण्डलं चतुरस्रकम्।। ८।।
कृत्वाऽधारंतुसंस्थाप्य पूजयेदमुनाणुना।

१.'प्य' ग. पाठः २.'णे' क. पाठः। ३.'र्घं' क. पाठः। ४.'सर्वं' ग. पाठः। ५.'दिकम्' ख. पाठः। ६. 'दिकं' ख. पाठः।

इति। ५ँ ऐं पात्रासादनाय नमः ऐं ५ँ। "तत्रास्त्रक्षालितं पात्रं धूपितं स्थापयेद्बुधः" ५ँ क्लीं ६ँ।

इति मन्त्रेण चार्घ्यं तु पूजयेच्छुद्धवारिणा। हौंबीजेन च[1] षट्दीर्घस्वरसम्भेदितेन च॥ ९॥

अष्ट पद्मानि[2] निक्षिप्य रक्तपुष्पैः समर्चयेत्। अस्त्रेण रक्षां सङ्कल्प्य स्वात्मानमधिधारयेत्॥ १०॥

अथाष्टपद्ममध्ये तु ध्यात्वा प्रेतस्वरूपिणम् । अनन्तमर्चयेत्तत्र शयानं[3] मनुनामुना॥ ११॥

'५ँ अनन्ताय नमः अं ५ँ।'

तल्पीकृतस्वयं देहं छत्रीकृतफणात्रयम्। फणिनामीश्वरं श्वेतं ध्यात्वा सम्पूजयेत्ततः॥ १२॥

अग्नीशासुरवायव्येष्वस्त्रिषु क्रमतो यजेत्।

५ँ हूंहूंफ्रें प्रबन्धनाथाय हूंहूंहं ५ँ। ५ँ यंरलं त्रिमूर्तये ५ँ। ५ँ यं अर्घ्याय यं ५ँ। ५ँ परमसुखाय हं ५। ५ हं

देहस्याकाशमध्यस्थं ह्रींबीजं रक्तसन्निभम्। वहत्पुटाद्विनिःसार्यानन्तं प्रेतात्मकासनम्॥ १३॥

आवाह्य तद्बीजमयं ध्यायेन्मार्तण्डभैरवम्। ध्यानम्—

रक्तवर्णं स्थूलदेहं षड्वक्त्रमूर्ध्वकेशिकम् । भुजद्वादशसंयुक्तं सर्पास्थिरत्नचर्चितम्॥ १४॥

क्रोधिनं चोर्ध्वलिङ्गं च ज्वलद्रश्मिसमाकुलम्। व्याघ्रचर्मपरीधानं मुण्डमालाविभूषितम्॥ १५॥

हुंहुंकारं प्रमुञ्चन्तं संहरन्तं महाशिनाम्[4] । त्रिशूलासिचक्रखड्गसृणिवरदपाणिकम् ॥ १६॥

तर्जाशोकगदाचापपाशाभयकरालिनम् । आवाहनादिमुद्राश्च सन्दर्श्याभ्यर्च्य साधकः॥ १७॥

ह्वामादिकमतश्चाङ्गं कृत्वा मार्तण्डभैरवे। ततः पुष्पाञ्जलिं सार्घ्यं समन्त्रं च निवेदयेत्॥ १८॥

५ँ ह्रौं हस्रौः श्रीकुलमार्तण्डभैरवाय ह्रौं हस्रौः ५॥

पश्चात् सम्प्रोक्ष्य चात्मानं जपेन्मन्त्रमिमं पुनः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् सम्यक्सवित्रे सर्व[5]साक्षिणे॥ १९॥

५ँ हस्रौः क्ष्रौं हस्रौः फट् खफ्रें भां फट् हस्रौः ५ँ क्षों हस्रौः फट् खफ्रेभां ५ँ। इति पुष्पाञ्जलिमन्त्रः।

मुद्रे च शूलतर्जन्यौ त्रिधाङ्क्षां हरिणीमपि। कृत्वाङ्गुलिप्रदर्श्य तु पूर्वाद्यष्टदलेषु च॥ २०॥

मध्ये च शूलतर्जन्यौ दधानं चण्डरोचिषम्। नव शक्तीर्यजेत्तत्र भैरवानपि पूजयेत्॥ २१॥

५ँ जूं ज्वालायै जूं ५ँ। ५ँ क्षां मित्रीशायै क्षां ५ँ। ५ँ हुंफट् चण्डालिन्यै हुंफट् ५ँ। ५ँ सौः भीषणायै सौः ५ँ। ५ँ ऐं नारसिंहायै ऐं ५ँ। ५ँ ह्रीं कमलादेव्यै ह्रीं ५ँ। ५ँ फ्रें मार्तण्डायै फ्रें ५ँ। फ्रें कपालिन्यै फ्रें ५ँ। ५ँ सौः कौलिन्यै सौः ५ँ॥ अथ भैरवमन्त्राः—५ँ फ्रें चण्डाय फ्रें ५ँ, एवं विश्वेशाय, महादेवाय, महाकालाय, गभस्तीशाय, चण्डेशाय, तैजसाय, मार्तण्डाय।

मुद्रां च खेचरीं बद्ध्वा लयाङ्गं भोगमङ्गकम्। ह्वामादिकं विधायैव दूर्वारक्तप्रसूनकैः॥ २२॥

सम्पूज्य धूपदीपादिनैवेद्यन्तार्घमन्त्रकम्। यथाशक्ति जपित्वा तु अर्घ्यमन्त्रेण तज्जपम्॥ २३॥

पूर्वोक्तमर्घ्यमन्त्रे च चिदादित्यहृदम्बुजे। दह दह कहकहात्मानं तदा समुद्धरेत् ॥ २४॥

निधायार्घ्यं च नैवेद्यं तेजोऽर्घ्यं च तथा बहिः। वामभागे लिखित्वा तु चतुरस्रं तु मण्डलम्॥ २५॥

तस्मिन् साधारपात्रे तु पशुमार्तण्डभैरवम्। अभ्यर्च्य च विधानेन तन्मन्त्रेणैव देशिकः॥ २६॥

१.'तु' ग. पाठः। २.'द्य' क. पाठः। ३.'शयने' ग. पाठः। ४.'महे' ख. 'महाशनम्'' ग. पाठः। ५.' ग. पाठः।

समर्प्याशेषिनिर्माल्यं तस्मै सर्वं निवेदयेत्।

ऍं ह्रां ह्रीं सः पशुमार्तण्डभैरवाय ऍं। इति सौरपूजा।। अथ मण्डपपूजा— आदौ मण्डपध्यानम्—

अमृताब्धौ मणिद्वीपे चिन्तयेन्नन्दनं वनम्। चम्पकाशोकपुन्नागपाटलैरुपशोभितम्।। २७।।
लवङ्गमालती[1] बिल्वदेवदारुनमेरुभिः। मन्दारपारिजाताद्यैः कल्पवृक्षैः सुपुष्पितैः।। २८।।
चन्दनैः कर्णिकारैश्च मातुलुङ्गैश्च[2] वञ्जुलैः। दाडिमीलकुचाङ्कोलैः पूगैः कुरुबकैरपि।। २९।।
कदलीकुन्दमन्दारनारिकेलैरलङ्कृतम्। अन्यैः सुगन्धिपुष्पाढ्यैर्वृक्षषण्डैश्च मण्डितम्।। ३०।।
मालतीमल्लिकाजातीकेतकैः शतपत्रकैः। पारन्तीतुलसीनन्द्यावर्तैर्दमनकैरपि ।। ३१।।
सर्वर्तुकुसुमोपेतैर्लसद्भिरुपशोभितम् । मन्दमारुतसम्भिन्नकुसुमामोदिदिङ्मुखम् ।। ३२।।
तस्य मध्ये परज्योतिःस्वरूपो मेरुपर्वतः। तस्य मध्ये सदा फुल्लैः कुमुदोत्पलपङ्कजैः।।३३।।
सुगन्धिकैश्च कह्लारैर्नवैः कुवलयैरपि । हंससारसकारण्डभ्रमरैश्चक्रनामभिः ।। ३४।।
अन्यैः कलकलाराव[3] विहङ्गैरुपशोभितम्। महासरसि तन्मध्ये पुलिनेऽतिमनोहरे।। ३५।।
परितः पारिजाताढ्यं महाकल्पतरुं स्मरेत्। नीपोपवनमध्यस्थं नानापुष्पसुपुष्पितम्।। ३६।।
नानारत्नफलाकीर्णं छायाश्रितजगत्त्रयम् । उद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम्।। ३७।।
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम्। ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनम्।। ३८।।
परामृताख्यमधुभिः सिञ्चन्तं मण्डपं मुहुः। तस्याधस्तान्महावेदि[4]र्माणिक्यैकविनिर्मिता।। ३९।।
वज्रप्राकारसन्दीप्ता शतयोजनविस्तृता। तन्मध्ये चिन्तयेद् दीप्तं मण्डपं मणिकुट्टिमम्।।४०।।
उद्यदादित्यसङ्काशं भास्वरं शशिशीतलम्। चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारशोभितम्।। ४१।।
रत्नोपक्लृप्तसंशोभिकपाटाष्टकशोभितम् । नवरत्नसमाक्लृप्ततुङ्गगोपुरतोरणम्।। ४२।।
हेमदण्डसमालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् । नवरत्नसमाबद्धस्तम्भराजिविराजितम्।। ४३।।
सहस्रदीपसंयुक्तदीपमण्डलराजितम् । तप्तहाटकसंक्लृप्तवातायनमनोहरम् ।। ४४।।
नानावर्णांशुकाबद्धसुवर्णशतकोटिभिः। किङ्किणीमालिकायुक्तपताकाभिरलङ्कृतम्।। ४५।।
हेमकुम्भावलीरम्यनानाचित्रविचित्रितम् । जातरूपमयै रत्नखचितैरतिविस्तृतैः।। ४६।।
माणिक्यरत्नवैडूर्यस्वर्णमालावलीयुतैः। अन्तरान्तरसम्बद्धरत्नैर्दृष्टिमनोहरैः।। ४७।।
विचित्रैश्चित्रवर्णैश्च वितानैरुपशोभितम्। सर्वरत्नसमायुक्तहेमकुट्टिममुज्ज्वलम्।। ४८।।
केतकीमालतीजातीचम्पकोत्पलकेसरैः। मल्लिकातुलसीयूथीनन्द्यावर्तकदम्बकैः।।४९।।
एतैरन्यैश्च कुसुमैरलङ्कृतमहीतलम् । रत्नसोपानसन्नद्धभूमिकाभिरुपस्कृतम् ।। ५०।।
चन्द्रकाश्मीरकस्तूरीमृगनाभितमालकैः । चन्दनागुरुकर्पूरैरादीपितदिगन्तरम् ।। ५१।।
पुष्पमालावलीरम्यमुक्ताश्रेणिविराजितम्। कर्पूरदीपभास्वन्तं माणिक्यदीपमण्डितम्।।५२।।

१. 'नी' क. पाठः। २. 'लिङ्गै' क. पाठः। ३. 'वैः' ग. पाठः। ४. 'दी' क. पाठः।

कल्पवृक्षतरुप्रान्तमन्तरारत्नवेदिकाम्[1] । रत्नसिंहासने नद्धं श्रीमच्छ्रीचक्रमण्डितम् ।। ५३ ।।
इन्द्रादिदेवतावृन्दैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । अनेकयोगिनीवृन्दैरस्त्रदैवतकैरपि ।। ५४ ।।
संसेव्यमानपादाब्जयुग्मया तत्स्वरूपया। महात्रिपुरसुन्दर्याधिष्ठितं सर्वकामदम् ।। ५५ ।।
सुधासन्दोहकल्लोललोलितं मोक्षकामदम्। अनेकधूपबहुलं मण्डपं चिन्तयेत् सुधीः ।।५६ ।।
तन्मण्डपस्थमात्मानं ध्यायेन्नाकुलचेतसम्। भैरवोऽहमिति ज्ञात्वा सर्वज्ञादिगुणान्वितः ।।५७ ।।

इति श्रीमण्डपध्यानम् ।। अथ द्वारपूजा —

तत्र स्वर्णप्रकारस्य पूर्वद्वारेणान्तःप्रविश्य प्रादक्षिण्येन मणिमण्डपस्य पश्चिमद्वारं गत्वा तदारभ्य मणिमण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण मणिमण्डपान्तःप्रविश्य साधकः पूजयेद् देवीमिति क्रमस्तेनैव क्रमेण द्वारपूजनमित्यतो यागमण्डपस्य प्राकारसम्भवे तद्द्वाराश्रितः, तदसम्भवे यागमण्डपस्य पश्चिमद्वारे, मण्डपासम्भवे गोमयोपलिप्ताया यागभूमेः पश्चिमभागे क्वापि[2] स्थित्वा सामान्यार्घ्यं विधायैवं कल्पयित्वा क्रमेण पूजयेत्। कोटियोजनविस्तीर्णसुधार्णवान्तर्गतं कोटियोजनविस्तीर्णायतं महाद्भुतं नवरत्नमयं दीपं सहस्रादित्यतेजसं, तन्मध्यतृतीयांशे मदनोन्मादनं नाम नानापुष्पलताकुलं कदम्बकाननगर्भकं नन्दनोद्यानं, तन्मध्यतृतीयांशे कोटिसूर्यप्रतीकाशं ज्वलत्स्वर्णप्रकारवेष्टितं नानासुरभिशालितोरणद्वारं नानारत्नविमण्डितं परितः सेवायातेन्द्रादिगणसमाकुलं श्रीमण्डपं ध्यात्वा, सामान्यार्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य पुष्पतोयाभ्यां क्रमेण पूजयेत् ।। ४ सुधार्णवाय नमः,४ नवरत्नमयद्वीपाय नमः, ४ नन्दनोद्यानाय नमः, ४ स्वर्णप्राकाराय नमः, तद्द्वारस्य दक्षिणोत्तरशाखयोरुपर्य्यधश्च पूजयेत्। ४ गां गणेशपादुकां पूजयामि, ४ क्षां क्षेत्रपालपादुकां पूजयामि, ४ द्वां द्वारश्रीपादुकां पूजयामि ४ दें देहलीश्रीपादुकां, पूजयामि। दक्षिणपादपुरःसरमन्तः प्रविश्याभ्यन्तरे प्रागाद्यष्टदिक्षु इन्द्रादिदिक्पालान् पूजयेत्। ततः पश्चिमभागे तिरस्करिणीं पूजयेत्। वृत्तत्रिकोणचतुरस्रमण्डलं विधाय, तत्र—

नीलं तुरङ्गमधिरुह्य सुशोभमानां नीलांशुकाभरणमाल्यविभूषणाढ्या।
निद्रापटेन भुवनानि तिरोदधाना खड्गायुधा भगवती परिपातु चास्मान् ।।

इति ध्यात्वा, ४ ऐं नमो भगवति माहेश्वरि पशुजनमनश्चक्षुस्तिरस्करणं कुरु २ स्वाहेति गन्धाक्षतकुसुमैः पूजयेत्। ततः ४ कदम्बवनाय नमः, ४ श्रीरत्नमण्डपाय नमः— इतिसम्पूज्य, तस्य द्वारदेवताः पूजयेत्। सौः अस्त्राय फडित्यनेन पश्चिमद्वारमभ्युक्ष्योर्ध्वशाखायां ४ मां महालक्ष्मीपा०, वामे ४ सां[3] सरस्वतीपा०, मध्ये ४ दुं दुर्गाश्रीपा०, ४ द्वां द्वारश्रीपा०। दक्षवामशाखयोः ४ शं शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः, ४ पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः। ऊर्ध्वे दक्षे ४ नं विघ्नेशपा०, वामे ४ क्षं क्षेत्रेशपादुकां० तदूर्ध्वे च दक्षे ४ गां गङ्गापा०, वामे ४ यां यमुनापा०, तदूर्ध्वे दक्षे ४ धां धात्रे नमः, वामे ४ विं विधात्रे नमः, अधो देहल्यां ४ दें देहलीपा०, ४ वा वरुणपा० इति पश्चिमद्वारपूजा। ततः उत्तरद्वारं गत्वा तदूर्ध्वशाखायां ४वं वटुकनाथपा०, ४ द्वां द्वारश्रीपा०। ततः पूर्ववच्छङ्खनिधिसुधारादिदेहल्यन्तं सम्पूज्य, देहल्यग्रतः ४ कुं कुवेरपा० इति उत्तरद्वारपूजा।। ततः पूर्वद्वारं गत्वा तदूर्ध्वशाखायां ४ क्षौं क्षेत्रपालपा०, दक्षिणे ४ विं विघ्ननाथपा० ततः स्वस्माद्वामतः क्षेत्रपालस्य दक्षिणवामाग्रेषु महालक्ष्मीसरस्वतीद्वारश्रियः पूजयित्वा, शङ्खपद्ममिथुनादारभ्य देहल्यन्तं प्राग्वत् पूजयित्वा, देहल्यग्रतः ४ लां इन्द्रनाथपा० इति पूर्वद्वारपूजा।। ततो दक्षिणद्वारं गत्वाभ्युक्ष्य, तदूर्ध्वशाखायां ४ ग्लौं गणनाथपा०, ४ द्वां द्वारश्रीपादुकां पू०। दक्षवामशाखयोः कामदेववसन्तमिथुने

---

१ 'तल' ग. पाठः। २ 'वापि' क. पाठः। ३ 'स्वां' ख. पाठः।

प्रथमं पूजयेत्। तदूर्ध्वे शङ्खपद्ममिथुनादिदेहल्यन्तं सम्पूज्य, देहल्यग्रतः ४ यां यमनाथपा० इति दक्षिणद्वारपूजा॥ ततः पुनः पश्चिमद्वारं गत्वा वामपादपुरःसरं तत्तोरणान्तः प्रविश्यमणिमण्डपाभिमुखस्था मञ्चस्थदेवताः पूजयेत्। ४ रं रत्नसोपानाय नमः इति रत्नसोपानं पूजयित्वा, तदूर्ध्वे मञ्चस्थदेवता ध्यात्वा पूजयेत्। पश्चिमद्वारस्य पुरतो दक्षे ४ सां सरस्वतीपा०, वामे ४ मां महालक्ष्मीपा०, तयोर्मध्ये उपर्य्यधोऽग्रेषु गौर्य्यादयो मानवौघान्ताः पूज्याः। ४ गौं गौरीपा० ४ लों लोकधात्रीपा० ४ वां वागीश्वरीपा० ४ दिव्यौघश्रीपा० ४ सिद्धौघश्रीपा०, ४ मानवौघश्रीपा०। ततः पुनरुत्तरद्वारे प्राग्वन्मायादुर्गे गौर्यादिमानवौघान्तं पूजयेत्। ततः पूर्वद्वारि प्राग्वद्भद्रकालीस्वस्ती[1] गौर्य्यादिमानवौघान्तं पूजयेत्। ततो दक्षिणद्वारि स्वाहाशुभङ्करीदेव्यौ गौर्यादिमानवौघान्तं पूजयेत्। ततः पुनः पश्चिमद्वारं गत्वा, "पालितं बहिरिन्द्राद्यैः परमैश्वर्यशोभितम्। प्रपद्ये पश्चिमद्वारं भवान्या मन्दिरं महत्॥" इति ध्यात्वा। ४ पश्चिमद्वाराय रत्नमण्डपाय नमः, इति मण्डपं सम्पूज्य तालत्रयपूर्वकं द्वारमुद्घाट्य सिद्धार्थाक्षतकुसुमानि नाराचास्त्रप्रयोगेन "आं अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥" ह्रः अस्त्राय फडित्यन्तेन मण्डपान्तः प्रक्षिप्य तस्मान्निर्गच्छतां विघ्नसङ्घानां[2] वामाङ्गसंङ्कोचनेन मार्गे दत्त्वा त्रिविधविघ्नानुत्सारयेत्, देहल्यामेव मूलविद्यां वास्त्रमन्त्रं वा मनसा जपन् वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् तालत्रयेणान्तरिक्षगान् दिव्यदृष्ट्यवलोकनेन च दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य, "ॐ पाखण्डकारिणो भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः। दिव्यलोके स्थिता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥" इति पठित्वा, वामपादपुरःसरं देहलीं लङ्घयन् मण्डपान्तः "ततो मौनी विशुद्धात्मा हृदि देवीं परामृशन्। अबहिर्मनसो योगी यागभूमौविशेत्॥" इति द्वारपूजा॥ अत्र प्रतिद्वारं गमनासम्भवे पश्चिमद्वार एवं स्थित्वा तत्तद्द्वाराणि कल्पतित्वा पूजयेत्। पश्चिमद्वारमेवेति केचित्। अथ द्वारदेवतानां ध्यानानि—

पद्मद्वयवराभीतिभास्वत्पाणिचतुष्टयाम्। पद्मवर्णां भजेत्पद्मां पद्माक्षीं पद्मवासिनीम्॥ १॥
अक्षस्रक्पुस्तकधरा पूर्णचन्द्रसमद्युतिः। विश्वविद्यामयी देवी भारती भासतां मयि॥ २॥
शङ्खचक्राङ्कितकरा कुमारी कुटिलालका। मृगेन्द्रवाहना देवी दुर्गा दुर्गाणि हन्तु मे॥ ३॥
तप्तकार्तस्वराभासा दिव्यरत्नविभूषिता। द्वारश्रीरूर्ध्वपद्मस्था वराभयकराम्बुजा॥ ४॥
मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजौ। अन्योन्यालिङ्गनपरौ शङ्खपङ्कजधारिणौ॥ ५॥
विगलद्रत्नवर्षाभ्यां शङ्खाभ्यां मूर्ध्नि लाच्छितौ। शङ्खासनसमासीनौ विश्वसङ्कल्पकल्पकौ॥ ६॥
तुन्दिलं कम्बुकनिधिं वसुधारां घनस्तनीम्। वामतः पङ्कजनिधिं प्रियया सहितं यजेत्॥ ७॥
सिन्दूराभौ भुजाश्लिष्टौ रक्तपद्मोत्पलान्वितौ। निःसरद्रत्नवर्षाभ्यां पद्माभ्यां मूर्ध्नि लाच्छितौ॥८॥
पद्मासनसमासीनौ विश्वसङ्कल्पकल्पकौ। तुन्दिलं पङ्कजनिधिं तन्वीं वसुमतीमपि॥ ९॥
पलाशपाटलच्छायं रमणीयं रतिप्रियम्। पुण्ड्रेक्षुचापपुष्पेषुमन्तं वन्दे मनोभवम्॥ १०॥
प्रपद्ये प्रीतिदयितं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम्[3]। वसन्तं नन्दनोद्याने वसन्तं सन्ततोत्सवम्॥ ११॥
पाशाङ्कुशारुणाम्भोजपाणिं पाटलतुन्दिलम्। वीरं विघ्नेश्वरं वन्दे गजवक्त्रं त्रिलोचनम्॥ १२॥

---

१ 'सरस्वती' क. पाठः। २ 'संघातानां' क. पाठः। ३ 'शं प्रभुम्' क. पाठः।

कपालशूले[1] बिभ्राणं कराभ्यां[2] कृष्णविग्रहम्। तीक्ष्णं त्र्यक्षं समर्चामि क्षेत्रेशं क्षतविद्विषम्।। १३।।
वराभयकरां सौम्यां सोमकोटिसमप्रभाम् । भजे गङ्गां महादेव्याः पादोदकतरङ्गिणीम्।। १४।।
वामपादार्घसम्भूतां परदेव्यास्तरङ्गिणीम् । वराभयकरां वन्दे कालिन्दीं कालविग्रहाम्।। १५।।
भर्तारं जगतां वन्दे शङ्खचक्रगदाम्बुजम् । बिभ्राणां गरुडारूढं धातारं कृष्णविग्रहम्।। १६।।
रक्तं रक्तारविन्दस्थं वराभयकमण्डलुम् । हंसारूढं विधातारं वन्देऽक्षस्रक्समन्वितम्।। १७।।
सिंहारूढां श्यामलाङ्गीं खड्गखेटकधारिणीम्। अधस्तादेहलीं वन्दे पश्चिमास्यां स्वरक्षिणीम्[3] ।।१८।।
पाशाभयधरं वन्दे पूर्णेन्दुसदृशच्छविम् । वरुणं मकरारूढं द्वारे श्रीपाददैवतम्[4] ।। १९।

इति पश्चिमद्वारे।।

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिस्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतुर्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम्।।२०।।
धूम्रवर्णो गदाहस्तः कुवेरो नरवाहनः। सौम्यद्वाराधिपः पायात् परदेव्या धनेश्वरः।। २१।।
व्यालव्यग्रजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनाद्रिप्रभं
दोर्दण्डात्तकपालभालमरुणस्रग्वस्त्रगन्धोज्ज्वलम्।
घण्टाघुर्घुरमेखलध्वनिमिलद्धाङ्कारभीमं विभुं
वन्देऽहं सितसर्पकुण्डलधरं[5] तं क्षेत्रपालं सदा।।२२।।
सितो गजास्यः परशुं दन्तं पाशं त्रिशूलकम्। भुजैश्चतुर्भिर्बिभ्राणो मूषकोपरि संस्थितः।। २३।।
पूर्वद्वाराधिपः शक्रः परदेव्याः सुपीतकः। वज्रहस्तः सहस्राक्षः पायादैरावतध्वजः ।। २४।।
गणेशं श्यामवर्णं च चतुर्बाहुं दिगम्बरम् । वामदक्षोर्ध्वबाहुभ्यां पाशाङ्कुशधरं तथा।।२५।।
दक्षिणाधःकरेणैव मधुपूर्णं कपालाम् । दधानं वामहस्तेन देव्या मदनमन्दिरम् ।। २६।।
स्पृशन् वामाङ्कसंस्थाया रक्ताया दक्षपाणिना। आत्मयोनौ न्यस्य लिङ्गं पद्मं वामेन पाणिना।।२७।।
दधत्याः शुण्डया योनिं जिघ्रन् ध्यात्वा प्रपूजयेत्। नीलाञ्जनचयप्रख्यं यमं महिषवाहनम्।।२८।।
दण्डमण्डितदोर्दण्डं दक्षद्वाराधिपं स्मरेत्। इति।

अथ मञ्चस्थदेवताध्यानम्—

अक्षस्रक्पुस्तकाभीतीर्दधानां बाहुभिर्वरम्। त्रिलोचनां स्मरेद्देवीं सर्वशुक्लां सरस्वतीम्।। १।।
पद्मद्वयवराभीतिभास्वत्पणिचतुष्टयाम् । निर्दग्धहेमगौराङ्गीं महालक्ष्मीं त्रिलोचनाम् ।। २।।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्बिभ्रतीमरुणप्रभाम्। त्रिनेत्रां मातरं वन्दे गौरीं रक्ताम्बरोज्ज्वलाम् ।।३।।
नत्युत्पलवराभीतीर्बिभ्रतीं काञ्चनप्रभाम्। मातरं दिव्यरत्नाङ्गीं लोकधात्रीं नमाम्यहम् ।।४।।
श्वेतां श्वेताम्बरां श्वेतभूषणस्रग्विलेपनाम् । पद्मद्वयवरादर्शकरां वागीश्वरीं भजे।। ५।।

१.'पाणौ कृपाणं' ख. पाठः। २.'कपालं' ग. पाठः। ३.'स्वरूपिणीम्' ग. पाठः। ४.'ते' क.ख.ग. पाठः। ५.'हंसक' क. पाठः।

वराङ्कुशौ पाशमभीतिशूलं करैर्दधानां भवभावमूलम्[१]।
घनाघनौघप्रभदेहकान्तिं मायां त्रिनेत्रामनिशं स्मरामि॥६॥
शङ्खचक्रधनुर्बाणान् धारयन्तीं त्रिलोचनाम्। दूर्वादलनिभां वन्दे दुर्गां दुर्गतिहारिणीम्॥ ७॥
कपालं खेटकं खड्गं त्रिशूलं बिभ्रतीं करैः। भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां भद्रकालीं नमाम्यहम्॥ ८॥
शक्तिस्वस्तिकमुद्राभीहस्तां चन्द्रसमप्रभाम्। त्रिनेत्रां संस्मरेद् देवीं स्वस्तिं स्वस्तिकरीं पराम्॥९॥
रक्तोत्पलद्वन्द्ववराभयानि करैर्वहन्तीं स्मितशोभिवक्त्राम्।
रक्तां त्रिनेत्रामरुणाम्बराढ्यां स्वाहां भजे देवगणैकवन्द्याम्॥ १०॥
शालिकल्पलताशार्ङ्गबाणपाणिचतुष्टया। ज्वलत्काञ्चनवर्णाभा शुभं कुर्याच्छुभङ्करी॥ ११॥

इति ध्यानानि॥ ततो मण्डलमध्ये ब्रह्मणे नमः, गृहेशानाय२ नमः, नैर्ऋत्यां वास्तुपुरुषाय नमः इति सम्पूज्य "ॐ रक्ष रक्ष हुंफट्स्वाहा" इति भूमिमभ्युक्ष्य "ॐ पवित्रवज्रभूमे रक्ष रक्ष हुंफट्स्वाहा" इति भूमिमभिमन्त्र्य "आः सुरेखे वज्ररेखे हुंफट्स्वाहा" इति भूमौ विलिख्य, तदुपर्यासनमास्तीर्य, ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवान् पूर्वादिचतुर्दिक्षु मध्ये च सम्पूज्य, तदुपरि त्रिकोणं सञ्चिन्त्य, कोणत्रये मध्ये च कामरूपपूर्णगिरिजा- लन्धरोड्यानपीठानि सम्पूज्य "ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः" इति मन्त्रेणासनं सम्पूज्य, तस्मिन् प्राङ्मुखो वोदङ्मुखो वोपविश्याथवा मातृकामण्डलं ध्यात्वा तदुपर्य्यपविश्य भूमिं प्रार्थयेत्। "ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्। मां च पूतं कुरु धरे नतोऽस्मि त्वां सुरेश्वरि।" ॐ पृथिव्या मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः। ओं प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः परमात्मा देवता प्राणायामे विनियोगः। ततः प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि, दीपनाथाय नमः। दक्षभुजे, गं गणपतये नमः, गणानां त्वा०। वामे दुं दुर्गायै नमः, ओं जातवेदसे०। दक्षजानुनि, क्षं क्षेत्रपालाय नमः ओं क्षेत्रस्य पतिना वयं०। वामजानुनि, सं सरस्वत्यै नमः, प्रणो देवी सरस्वती०। ततः श्रीगुरुभ्यो नमः परमगुरुभ्यो नमः परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः इति नमस्कृत्य। ततः "पार्ष्णिघातकरास्फोटसमुदञ्चितवक्त्रकैः। पातालभूनभोलीनान् विघ्नानुत्सारयेद् बुधः।" इति विघ्नानुत्सार्य। "उक्तपाशुपतास्त्रेण वामहस्ततलं द्विधा। मणिबन्धं समारभ्य संस्पृष्टं दक्षपाणिना॥ प्रमृज्य दक्षिणं पाणिं सकृदेवोक्तमार्गतः।" इति करशुद्धिं विधाय दिग्बन्धं कुर्यात्। तद्यथा— लं इन्द्राय नमः इन्द्रदिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहा। "ॐ सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयात्"३। "उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥" एवं दशदिग्बन्धनं कृत्वा, रं अग्निप्राकाराय नमः। सहस्रार हुँफट् सुदर्शनाग्निप्राकाराय नमः। ओंह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर २ घोर घोरतर तनुरूप चट २ प्रचटप्रचट कहकह वमवम बन्धय बन्धय घातय घातय हुंफट् अघोराग्निप्राकाराय नमः इति जलेनाग्निप्राकारत्रयं कुर्यात्।

त्रिरग्निवेष्टनं कृत्वा गणेशं पञ्चमीं ततः। दुर्गां विघ्नं च शरभमघोरं च सुदर्शनम्॥ १॥
एताः समयविद्याश्च जपेत् प्रत्यूहशान्तये। एवं रक्षां पुरा कृत्वा भूतशुद्धिमथाचरेत्॥२॥

एते मन्त्रा उद्धारपटले बोद्धव्याः। तन्त्रान्तरे—

---

१. 'भवमूलभूताम्' ग. पाठः। २. 'शाय' ग. पाठः।

स्थापयेद् दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि देशिकः। सुवासिताम्बुसम्पूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभनम्॥ १॥
प्रक्षालनाय करयोः पश्चात् पात्रं निवेशयेत्। घृतप्रज्वालितान् दीपान् स्थापयेत् परितः शुभान्॥२॥

इति। कुलचूडामणौ—

नानाविधानि पुष्पाणि गन्धानि विविधानि च। कर्पूरजातिधूपादिवासितं पटवासितम्॥ १॥
ताम्बूलं देवद्रव्याणि धूपदीपादिकं च यत्। सर्वालङ्कारभूषादि वस्त्रादीनि कुलेश्वरः[१]॥ २॥
मूलमन्त्रजप्ततोयैः संशोध्य स्थापयेत् ततः। सर्वं स्वदक्षिणे स्थाप्यं वामे चार्घ्यं निवेशयेत्॥३॥
पश्चिमे देवतायाश्च कुलद्रव्याणि धारयेत्।

इति। तत्रैव— 'ॐ पुष्पकेतुराजार्हते सर्वगताय सम्यक् संबद्धाय ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सपुष्पे पुष्पसम्भवे पुष्पावचायसङ्कीर्ण हुँफट् स्वाहा' इति मन्त्रेण पुष्पादिशोधनम्। 'ओं रक्षरक्ष हुँफट्स्वाहा' इति मन्त्रेण हृदि हस्तं दत्त्वात्मरक्षां कुर्यात्। ततः प्रणवेन प्राणायामत्रयं कृत्वा भूतशुद्धिं कुर्यात्।

शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम्। अव्ययब्रह्मसम्पर्काद् भूतशुद्धिरियं मता॥ ४॥
सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत्। योगयुक्तेन विधिना चिन्मन्त्रेण समाहितः॥ ५॥

इति। चिन्मन्त्रेण परमात्ममन्त्रेणेत्यर्थः। ओंह्रींहंसः सोहस्वाहा इति मन्त्रेण पूर्वोक्तमूलाधारादिषट्चक्राणि विचिन्त्य हृदयचक्रस्थितं जीवात्मानं मनसा सह सुषुम्नावर्त्मना कुलकुण्डलिनीं जीवात्मना सह ब्रह्मरन्ध्रस्थपरमशिवपदे योजयामि स्वाहा, इदं लिङ्गशरीरं शोधयामि स्वाहा इति जीवात्मना मनोदण्डेनाहत्य हुंबीजेनाकुञ्चिताधो— वायुनाऽधोवह्नेर्विवृद्धोष्मणा तां जारयित्वा सुषुम्नान्तर्वर्तिचित्राख्यनाडीमध्यमार्गेण षटचक्रभेदक्रमेण स्थानार्णदैवतैः सह संहारयोगतो ब्रह्मरन्ध्रस्थसहस्रदलकमलकर्णिकास्थचन्द्रमण्डलान्तरस्थिते परमशिवे लीनां चिन्तयेत्। ततः पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानं पीतवर्णं चतुरस्राकारं ब्रह्मदैवत्यं निवृत्तिकलात्मकं तन्मध्ये लंबीजे पञ्चोद्घातप्रयोगेण जले संलापयामि। जान्वादिलिङ्गपर्यन्तं जलस्थानं शुक्लवर्णं पद्मलाञ्छितार्द्धचन्द्राकारं विष्णुदैवत्यं प्रतिष्ठाकलात्मकं तन्मध्ये वंबीजं चतुरुद्घातप्रयोगेण तेजसि संलापयामि। लिङ्गादिनाभिपर्यन्तं तेजःस्थानं रक्तवर्णं त्रिकोणाकारं रुद्रदैवत्यं विद्याकलात्मकं तन्मध्ये रंबीजं त्रिरुद्घातप्रयोगेण वायौ संलापयामि। नाभ्यादिहृदयपर्यन्तं वायुस्थानं धूम्रवर्णं षट्कोणाकारं षड्बिन्दुलाञ्छितमीश्वरदैवत्यं शान्तिकलात्मकं तन्मध्ये यंबीजं द्विरुद्घातप्रयोगेणाकाशे संलापयामि। हृदयादिकण्ठपर्यन्तमाकाशस्थानं स्वच्छवर्णं वृत्ताकारं सदाशिवदैवत्यं शान्त्यतीताकलात्मके तन्मध्ये हंबीजमेकोद्घातप्रयोगेणाहङ्कारं संलापयामि। कण्ठादिभ्रूमध्यपर्यन्तम्अहङ्कारस्थानं त्रिवर्णं दण्डाकारमादिशिवदैवत्यं सर्वकलात्मकं तन्मध्ये हंसःबीजं सर्वोद्घातप्रयोगेण महत्तत्वे संलापयामि। भ्रूमध्यादिभालपर्यन्तं महत्तत्त्वस्थानं श्वेतवर्णं अर्धचन्द्राकारमानन्दशिवदैवत्यं कलास्वरूपं तन्मध्ये सोहंबीजमर्धो— द्घातप्रयोगेण प्रकृतौ संलापयामि। भालादिसमन्तपर्यन्तं प्रकृतिस्थानं बालार्कवर्णं योन्याकारमानन्दशिवदैवत्यं कलास्वरूपं तन्मध्ये हंबीजम् आद्यौद्घातप्रयोगेण पुरुषे संलापयामि। सीमन्तादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं पुरुषस्थानमुद्दीप्तवर्णं लिङ्गाकारं चैतन्यदैवत्यं निष्कलं तन्मध्ये नादाक्षरं बीजं परबिन्दुस्वरूपं निरुद्घातप्रयोगेण चिच्छक्तौ संलापयामि। ब्रह्मरन्ध्रं चिच्छक्तिस्थानं कर्पूरवर्णं सहस्रारम् आनन्ददैवत्यं निराकारस्वरूपं तन्मध्ये ह्रीबींजं संहारध्यानप्रयोगेण परब्रह्मशिवात्मकं चिदानन्दघनं चिन्तयामि, इति विभाव्य, ॐ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशगन्धरसरूपस्पर्शशब्द— घ्राणरसनाचक्षुस्त्वक्श्रोत्रपादोपस्थपायुपाणिवागगमनानन्दविसर्गादानवचनाहङ्कारमनोबुद्धिचित्तविकल्पसङ्कल्पव्यव—

सायनिश्चयजीवात्मपरमात्माभिधसमस्तत्त्वात्मकं प्रपञ्चस्वरूपं स्थूलसूक्ष्मशरीरद्वयं संहारक्रमेण पृथिवीम— प्स्वपस्तेजसि तेजो वायौ वायुमाकाशे आकाशमहङ्कारे अहङ्कारं महति महान्तं प्रकृतौ प्रकृतिं पुरुषे पुरुषं परमशिवे संयोजयामि स्वाहा, इदं स्थूलशरीरं शोधयामि स्वाहा, इति सस्थानानि साक्षराणि सकार्याणि सकारणानि[1] सदैवतानि साङ्गोपाङ्गानि स्थूलानि सूक्ष्माणि च सर्वाणि तत्त्वानि स्वस्वकारणेषु संहारक्रमेण लीनानि कृत्वा सहस्रदलकमलपरमशिवे बीजभावेन लीनानि चिन्तयेत्। परमशिवं च चिच्छक्त्यात्मकमानन्दघनं विनिवेश्य निर्मलधिया निर्लीनसर्वेन्द्रियो योगी यागफलं प्रयाति, सततं नित्योदितं निष्क्रियमेवं क्रमेण सच्चिदानन्दमयः क्षणं तिष्ठेत्, इति संहारक्रमः।। अथ पापपुरुषचिन्तनम्—

वामकुक्षिगतं पापपुरुषं कज्जलप्रभम्। ब्रह्महत्याशिरस्कं च स्वर्णस्तेयभुजद्वयम्।। १।।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् । तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।। २।।
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् । खड्गचर्मधरं क्रूरं पापमेवं विचिन्तयेत्।। ३।।

इति ध्यात्वा, "यं पापशरीरं शोषय२ शोश्यामि स्वाहा" यंबीजं धूम्रवर्णं षोडशवारं जपन् वामनासया वायुमापूर्य तदेव चतुष्षष्टिवारं जपन् कुम्भकयोगेन हृदयादुद्गतेन षट्कोणादागतेन महावायुना पापपुरुषं शुष्कं विचिन्त्य, तदेव बीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन् दक्षिणनासया वायुं रेचयेत् "रं शुष्कपापशरीरं दाहय २ दाहयामि स्वाहा" रंबीजं रक्तवर्णं षोडशवारं जपन् पिङ्गलया वायुमापूर्य तदेव चतुःषष्टिवारं जपन् कुम्भकयोगेन नाभेरुदितेन त्रिकोणादागतेन महता वह्निना पापपुरुषं दग्धं विचिन्त्य, तदेव द्वात्रिंशद्वारं जपन् इडया वायुं रेचयेत्। "टं चन्द्रमण्डलं प्रेरय २ प्रेरयामि स्वाहा" टमिति चन्द्रबीजं शुक्लवर्णं १६ वारं जपन् इडया वायुमापूर्य ६४ वारं जपन् कुम्भकयोगेन सहस्रारमध्ये महामृतौघपूरितं विश्वाह्लादकं चन्द्रबीजं विचिन्त्य ३२ वारं जपन् पिङ्गलया रेचयेत्। "वं परमामृतं वर्षय २ वर्षयामि स्वाहा" वमिति वरुणबीजं शुक्लवर्णं १६ वारं जपन् पिङ्गलया वायुमापूर्य ६४ वारं जपन् कुम्भकयोगेन तस्माच्चन्द्रबिम्बान्मातृकामयीं महावृष्टिमुत्पाद्य तदस्थिश्मशानादिकमाप्लावितं विचिन्त्य ३२ वारं जपन् इडया वायुं रेचयेत्। "लं शरीरमुत्पादय २ उत्पादयामि स्वाहा" लमिति पृथिवीबीजं पीतवर्णं १६ वारं जपन् इडया वायुमापूर्य ६४ वारं जपन् कुम्भकयोगेन ॐ परमात्मजीवात्मचित्तबुद्धिमनोऽहङ्कारनिश्चयव्यवसायसङ्कल्पविकल्पवचनादानविसर्गानन्द-गमनवाक्पाणिपायूपस्थपादश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुतेजोजलपृथिव्याख्यसमस्ततत्त्वात्मकं प्रपञ्चरूपं स्थूलसूक्ष्मशरीरद्वयं सृष्टिक्रमेण पृथग्भूताभ्यां परमशिवचिच्छक्तिभ्यां निरुत्पत्तिप्रयोगेण पुरुषं, पुरुषादाद्योत्पत्तिप्रयोगेण प्रकृतिं, प्रकृतेरर्द्धोत्पत्तिप्रयोगेण महान्तं, महतः सर्वोत्पत्तिप्रयोगेणाकाशमाकाशाद् द्विरुत्पत्तिप्रयोगेण वायुं, वायोस्त्रिरुत्पत्तिप्रयोगेण तेजस्तेजसश्चतुरुत्पत्तिप्रयोगेण जलं, जलात्पञ्चोत्पत्तिप्रयोगेण पृथिवीं, पृथिव्याः षड्उपत्तिप्रयोगेणोत्पादयामि स्वाहा—इति सस्थानानि साक्षराणि सकारणानि सकार्याणि सदैवतानि साङ्गोपाङ्गानि स्थूलानि सूक्ष्माणि च सर्वाणि तत्त्वानि सृष्टिक्रमेण परशिवशक्तिसकाशात् स्वस्वकारणेभ्य उत्पादितानि कृत्वा, पादादुद्गतया चतुरस्रादागतया महत्या पृथिव्या उपष्टभ्य देवतापूजायोग्यं नवं पुण्यशरीरमुत्पादितं विचिन्त्य, तत्त्वानि च निजस्थानेषु स्थितानि कृत्वा, तदेव लंबीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन् पिङ्गलया वायुमापूर्य ६४ वारं जपन् इडया वायुं रेचयेत् इति षट् प्राणायामा भवन्ति। "आत्मानं हृदयाम्भोजादानयेत्परमात्मनः। मनुना हंसदेवस्य कुर्यान्न्यासादिकं ततः।। ॐ हंसः सोऽहं अवतरावतर शिवपदात् जीवपदेन सुषुम्नावर्त्मना मूलशृङ्गाटमुल्लसोल्लस ज्वलज्ज्वल

१. 'सक' क. ख. पाठः।

प्रज्वलप्रज्वल ॐ हंसः सोहं इति कुण्डलिनीरूपधारिणीं चिच्छक्तिं जीवात्मना सह सृष्टियोगेन स्थानार्णदैवतैः सह सुषुम्नान्तर्वर्तिचित्राख्य- नाडीमध्यमार्गेण षट्चक्रभेदक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रतो मूलाधारमानीय स्थापयेत्, मूलाधारात् जीवात्मानं हृदिस्थं चिन्तयेदिति भूतशुद्धिः॥

अथ प्राणप्रतिष्ठा। ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि, चैतन्यरूपा प्राणशक्तिर्देवता, ओं बीजं, ह्रीं क्रों कीलकं प्राणस्थापने विनियागः, इति यथास्थानं विन्यस्य, अंकंखंगंघंङंआं आकाशवायुतेजोजलपृथिव्यात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। इंचंछंजंझंञं ईं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने तर्जनीभ्यां नमः। उंटंठंडंणंऊं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने मध्यमाभ्यां नमः। एंतंथंदंधंनंऐं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने अनामिकाभ्यां नमः। ओंपंफंबंभंमंऔं वचनादानविसर्गानन्दगमनात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः। अंयंरंलंवंशंषंसंहंळंक्षंअः चित्तबुद्धिमनोऽहङ्कारात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एभिरेव जातियुक्तैः षडङ्गानि। आंनमः नाभेश्चरणपर्यन्तं, ह्रींनमः हृदयान्नाभिपर्यन्तं, क्रोंनमः मूर्धादिहृदयपर्यन्तं। यं त्वगात्मने नमः, रं असृगात्मने नमः। लं मांसात्मने नमः, वं मेदात्मने नमः, शं अस्थ्यात्मने नमः, षं मज्जात्मने नमः, सं शुक्रात्मने नमः, हं प्राणात्मने नमः ळं जीवात्मने नमः, क्षं परमात्मने नमः। एवं विन्यस्य प्राणशक्तिं ध्यायेत्।

रक्ताब्धिपोतारुणपद्मसंस्था पाशाङ्कुशाविक्षुशरासबाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराब्जै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम्॥ १॥

इति ध्यात्वा। ॐ ऐंह्रींश्रींओंआंह्रींक्रोंयंरंलंवंशंषंसंहोंसोहंहंसः श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्याः प्राणा इह प्राणाः, ३० जीव इह स्थितः, ३० सर्वेन्द्रियाणि, ३० वाङ्मनश्चक्षुस्त्वक्श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति ज्ञानमुद्रया हृदि हस्तं दत्वा वारत्रयं पठेत्। ओं आंहंसः इति सर्वानन्दमयं देहं दृढं चिन्तयेत्, (अन्तर्बहिःस्थ) प्रधानदेवतात्मकमात्मानं चिन्तयेदिति प्राणप्रतिष्ठा॥

॥ इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययति-
विरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे पञ्चमः श्वासः॥५॥



अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

षष्ठः श्वासः

अथ मातृकान्यासः– "ततो देहस्य सन्नाहं सम्यक् न्यासं समाचरेत्।"

अन्तर्बहिःस्थाश्च कलायुताश्च श्रीकण्ठविष्ण्वादिसमन्विताश्च।

लज्जारमाकामपृथक्समूहाः प्रपञ्चयागो दश मातृकाः स्युः।। १।।

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं सुषुम्नासूक्ष्मरन्ध्रगम्। वादिवेदार्णलसितं पङ्कजं कनकप्रभम् ।। २।।

तत्स्थां विद्युल्लताकारां तेजोरूपामणीयसीम्। कुलकुण्डलिनीमूर्ध्वं नयेत् षट्चक्रभेदतः।। ३।।

द्वादशान्तेन्दुमध्यस्थं पूर्वोक्तं मातृकाव्रजम्। नवनीतनिभं ध्यात्वा द्रुतं कुण्डलिनीत्विषा।। ४।।

तेजोञ्जलौ[१] विनिःसार्य मातृकान्यासमाचरेत्।।

ततोऽकारादिषट्स्वरान् करतलकरतत्पृष्ठव्याप्तिक्रमेण विन्यस्यावशिष्टदशस्वरान् दशस्वङ्गुलीषु विन्यस्य आदिक्षान्तमातृकामुच्चरन् करशुद्धिं कुर्यात्। यथा– "प्रकोष्ठे मणिबन्धे च कूपरि करयोस्तले। तत्पृष्ठे च तदग्रे च करशुद्धिरुदाहृता"।। इति मातृकाकरशुद्धिः। अथान्तर्मातृकान्यासः– तत्र स्वरैः पूरकं स्पर्शैः कुम्भकं व्यापकैः रेचकमिति क्रमेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, अस्या अन्तर्मातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीमातृकासरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः, जाताव्यक्तिः कीलकं मम शरीरशुद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगः, इति विन्यस्य "अंकंखंगंघंङंआं हृदयाय नमः" इत्यादिना प्राग्वत् षडङ्गानि विन्यस्य ध्यायेत्। तथा संहितायाम्–

अथ वक्ष्ये महेशानि मातृकां लोकमातरम् । अकारादिक्षकारान्तवर्णावयवदेवताम् ।। १।।

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द उच्यते। मातृका देवता देवि हलो बीजानि शक्तयः।। २।।

स्वरास्तु परमेशानि जाताव्यक्तिस्तु कीलकम्। अनिर्वाच्या हलो वर्णाः शक्त्या व्यक्ता भवन्ति हि।। ३।।

शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते। असद्रूपा हलो वर्णाः शक्त्यासन्नाः पराङ्मुखाः।।४।।

स्फुरन्मात्रास्तदोच्चार्य्याः सम्मुखा व्यक्तवर्णकाः। ऋॠऌॡ परित्यज्य षड्युग्मस्वरमध्यगाः।। ५।।

वर्गाः[२] षट् च क्रमेणैव सप्तमः क्रोधसंयुतः। अन्ते निक्षिप्य देवेशि षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।। ६।।

कलापत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् सम्यक् प्रविन्यसेत्। हृद्यर्कपत्रे तद्वर्णान्नाभौ दशदले न्यसेत्।। ७।।

दशवर्णांल्लिङ्गमध्ये षड्दले षडथेश्वरि। चतुर्दले तथाधारे चतुर्वर्णांस्ततो न्यसेत्।। ८।।

भ्रूमध्ये द्विदले हक्षौ इत्यन्तर्मातृकां न्यसेत्। इति।

---

१. 'ततो' ग. पाठः। २. 'वर्णाः' क. ग. पाठः।

तन्त्रान्तरे—

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि।। १ ।।

इति ध्यात्वा न्यसेदित्यन्तर्मातृका।। अथ बहिर्मातृका— ऋष्यादिन्यासं प्राग्वद् विन्यस्य ध्यायेत्।

ध्यायेद्वर्णस्वरूपाढ्यां स्वरवक्त्रां क्रमेण हि। कचवर्गकरां रम्यां टतवर्गपदाम्बुजाम्।। १ ।।
पवर्गचारुपार्श्वाङ्गलसच्छातोदरीं पराम् । यशवर्गाङ्गसुभगा[1] पीनोन्नतघनस्तनीम् ।। २ ।।
नितम्बिनीं च गहनां शुकाक्षीं क्षाममध्यमाम्। शुक्लमाल्याङ्गरागाङ्गीं शुक्लांशुकसुशोभिताम्।।३ ।।
चिन्तालिखितसत्पाणिं समग्रवरदायिनीम्। इति ध्यात्वा।
ब्रह्मरन्ध्रे तथा वक्त्रवेष्टने नयनद्वये। श्रुतिनासापुटद्वन्द्वगण्डोष्ठद्वयेषु च।। १ ।।
दन्तयुग्मे च मूर्धास्यद्वये षोडश विन्यसेत्। दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु पार्श्वयुग्मे न्यसेत् क्रमात्।।२ ।।
पृष्ठनाभिद्वये चैव जठरे विन्यसेदथ । त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।। ३ ।।
प्राणजीवौ च परमौ यकारादिषु संस्थिताः। क्रमेण देवदेवशि न्यस्तव्या एतदात्मकाः।। ४ ।।
हृद्दोर्मूलेषु संन्यस्य तथा परगले न्यसेत्। कक्षद्वये हृदारभ्य पाणिपादयुगे तथा ।। ५ ।।
जठराननयोर्न्यसेदित्यन्तर्गात्ररूपिणी। अनेन न्यासयोगेन मन्त्री वर्णस्वरूपवान् ।। ६ ।।

इति बहिर्मातृका। अथ सृष्टिमातृका— "केवलां मातृकां न्यस्य ब्रह्मचारी भवेद्यदि। विसर्गसहितां तां च सृष्टिसंज्ञां न्यसेद्बुधः"।। इति सृष्टिमातृका। अथ स्थितिमातृका— "केवलां मातृकां न्यस्य गृहस्थः साधको यदि। विसर्गबिन्दुसहितां डकाराद्यां[2] स्थितिं न्यसेत्"।। ध्यानं तु—

सिन्दूरकान्तिममिताभरणां त्रिनेत्रां विद्याक्षसूत्रमृगपोतवरान् दधानाम् ।
पार्श्वस्थितां भगवतीमपि काञ्चनाभां[3] ध्यायेत् कराब्जधृतपुस्तकबर्णमालाम्।। १ ।।

इति ध्यात्वा, डंः नमः इत्यादि बिन्दुविसर्गसहितान् ठकारावसानान् वर्णांस्तत्तत्स्थानेषु न्यसेदिति स्थितिमातृका।।
अथ संहारमातृका— "केवलां मातृकां न्यस्य वानप्रस्थोऽथवा यतिः। बिन्दुयुक्तां विलोमेन संहारमातृकां न्यसेत्।।"
ध्यानं तु—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं विद्यां करैरविरतं[4] दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्।। १ ।।

इति ध्यात्वा। क्षं नम इत्यादिबिन्दुसहितान् विलोमतस्तत्तद्वर्णांस्तत्तत्स्थानेषु न्यसेदिति संहारमातृका।।

अथ कलामातृका—

केवलां मातृकां न्यस्य तारभक्तो भवेद्यदि। प्रणवांशकलायुक्तां मातृकां विन्यसेत् सुधीः।। १ ।।

---

१. 'गां'ग. पाठः। २. 'तामकारा' ग. पाठः। ३. 'नाङ्गीं' ग. पाठः। ४. 'रैश्च विततं' ग. 'रैरविततं' ख. पाठः।

प्रजापतिर्ऋषिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम्। कलासरस्वती देवी देवता परिकीर्तिता।।२।।
ओं बीजं च नमः शक्तिः कीलकं तु कलाः स्मृताः। प्रणवद्वयमध्यस्थैर्विषण्ढैर्दीर्घसुस्वरैः।।३।।
षडङ्गानि प्रविन्यस्य ध्यायेद् देवीं परां शिवाम्। अथ ध्यानम्—

हस्तैः पद्मं रथाङ्गं गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्णमालां
टङ्कं शुभ्रं कपालं दरं[1]ममृतलसद्धेमकुम्भं वहन्तीम्।
मुक्ताविद्युत्पयोदस्फटिकनवजपाबन्धुरैः पञ्चवक्त्रै-
स्त्र्यक्षैर्वक्षोजनम्रां सकलशशिनिभां शारदां तां नमामि।। १।।

इति ध्यात्वा "ओं अंनिवृत्तिकलायै नमः" इत्यादिमातृकास्थानेषु न्यसेदिति कलामातृका।।

अथ श्रीकण्ठादिमातृका—

केवलां मातृकां न्यस्य शिवभक्तो भवेद्यदि। श्रीकण्ठादिशक्तियुक्तां मातृकां विन्यसेत् सुधीः।।१।।
ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिश्छन्दो गायत्रमीरितम्। अर्धनारीश्वरो देवो देवता परिकीर्तिता ।। २।।
हसौं बीजं नमः शक्तिः शिवशक्तिस्तुः कीलकम्। षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।।३।।

बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां पाशाङ्कुशौ च वरदं निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रमर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामः।। ४।।

इति ध्यात्वा "हसौंअंश्रीकण्ठाय[2] पूर्णोदर्यै नमः" इत्यादि न्यसेदिति श्रीकण्ठादिमातृका।। अथ केशवादि- मातृकान्यासः—

केवलां मातृकां न्यस्य विष्णुभक्तो भवेद्यदि। केशवादिशक्तियुक्तां मातृकां विन्यसेद् बुधः।।१।।
प्रजापतिर्ऋषिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम्। अर्द्धलक्ष्मीहरिः साक्षाद् देवता परिकीर्तिता ।।२।।
कामबीजं तु बीजं स्यान्नमः शक्तिरुदाहृता। विष्णुलक्ष्मीः कीलकं तु विनियोगस्तु पूर्ववत्।।३।।
षड्दीर्घकामराजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।

हस्तैर्बिभ्रत् सरसिजगदाश[3]ङ्खचक्राणि विद्यां पद्मादर्शौ कनककलशं मेघविद्युद्विलासम्
वामोत्तुङ्गस्तनमविरलाकल्पमाश्लेषलोभादेकीभूतं वपुरवतु वः पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्योः।। १।।

इति ध्यात्वा "क्लीं श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः" इत्यादि न्यसेदिति केशवमातृका।।

अथ शक्तिमातृकान्यासः—

केवलां मातृकां न्यस्य भुवनेशीं भजेद्यदि। भुवनेशीबीजपूर्वां मातृकां विन्यसेत् सुधीः।। १।।
ऋषिः शक्तिः समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द ईरितम्। भुवनेशी मातृका स्याद् देवता देववन्दिता।।२।।
ह्रीं बीजं तु नमः शक्तिर्मूलप्रकृतिः कीलकम्। मायाषड्दीर्घकेनैव षडङ्गानि समाचरेत्।।३।।

उद्यत्कोटिदिवाकरप्रतिभटा[4]तुङ्गोरुपीनस्तनी
[5]मूर्धर्धेन्दुकिरीटहाररशनामञ्जीरसंशोभिता।

---

१. 'वरं' ग. पाठः। २. 'ण्डेशाय' क. पाठः। ३. 'बोतु' ग. पाठः। ४. 'ट्यत्त' ग. पाठः। ५. 'बद्धा' ग. पाठः।

विभ्राणा करपङ्कजैर्जपवटीं पाशाङ्कुशौ पुस्तकं
दिश्याद्वो जगदीश्वरी त्रिनयना पद्मे निषण्णा सुखम्।।४।।

इति ध्यात्वा, "ह्रीं अं नमः" इत्यादि न्यसेदिति भुवनेश्वरीमातृका। अथ लक्ष्मीमातृका—

केवलां मातृकां न्यस्य लक्ष्मीपूजारतो यदि। लक्ष्मीबीजसमायुक्तां मातृकां विन्यसेत् सुधीः।।५।।
ऋषिर्भृगुस्तु गायत्रं छन्दो लक्ष्मीस्तु मातृका। देवता श्रीं नमो बीजं शक्तिः प्रकृतिः कीलकम्।।६।।
षड्दीर्घलक्ष्मीबीजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।

विद्युद्दामसमप्रभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः
शुण्डादण्डसमुद्धृतामृतघटैरासिच्यमानामिमाम्।
बिभ्राणां करपङ्कजैर्जपवटीं पद्मद्वयं पुस्तकं
भास्वद्रत्नसमुज्ज्वलां कुचनतां ध्यायेज्जगत्स्वामिनीम्।।७।।

इति ध्यात्वा, "श्रीं अं नमः" इत्यादि न्यसेदिति लक्ष्मीमातृका। अथ कामेश्वरीमातृका—

केवलां मातृकां न्यस्य कामेशीपूजको यदि। कामबीजेन संयुक्तां मातृकां विन्यसेत् सुधीः।।१।।
ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्रं देवता स्मृता। कामेश्वरी च क्लीं बीजं नमः शक्तिस्तु कीलकम्।।२।।
षड्दीर्घकामबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।

बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां कोदण्डमिक्षुजनितं स्मरपञ्चबाणान्।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां ध्यायेत् समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम्।।३।।

इति ध्यात्वा, "क्लीं अं नमः" इत्यादि न्यसेदिति कामबीजमातृका। अथ सम्मोहनीमातृका—

केवलां मातृकां न्यस्य त्रिपुराराधको यदि। शक्तिश्रीकामसंयुक्तां मातृकां विन्यसेत्सुधीः।। १।।
ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः। सम्मोहनी च क्लीं बीजं ह्रीं शक्तिः श्रीं च कीलकम्।।२।।
बीजत्रयद्विरावृत्या षडङ्गानि समाचरेत्।

ध्यायेयमक्षवलयेक्षुशरासपाशान् पद्मद्वयाङ्कुशशरान् नवपुस्तकं च।
आबिभ्रतीं निजकरैररुणां कुचार्तां सम्मोहनीं त्रिनयनां तरुणेन्दुचूडाम्।।३।।

इति ध्यात्वा, "ह्रींश्रींक्लींअंनमः" इत्यादि न्यसेदिति संमोहनीमातृका। प्रपञ्चयागस्तु प्रागेव प्रपञ्चितः। इति दशविधमातृकाः। "एते सामान्यतः प्रोक्ता सर्वत्र दशमातृकाः" इत्युक्तत्वात्। दुर्वासोवाक्यम्—

न्यासं कृत्वा गणेशग्रहभगणमहायोगिनीराशि[1]पीठैः
षड्भिः श्रीमातृकार्णैः सहितबहुकलैरष्टवाग्देवताभिः।
सश्रीकण्ठादियुग्मैर्विमलनिजतनौ केशवाद्यैश्च तत्त्वैः
षट्त्रिंशद्भिर्धराद्यैर्भगवति भवतीं यः स्मरेत्स त्वमेव।।१।। इति।

१. 'शक्ति' ग. पाठः।

(स च वर्णमातृका—कलामातृका—मूर्तिमातृका—प्रपञ्चयागमातृकान्यासाख्यः सङ्ग्रहश्चतुर्विधः[1]) तत्र वर्णमातृकान्यासो दशविधः श्रीविद्याङ्गभूतः। तथा चोक्तम्—

शुद्धं बिन्दुयुतं विसर्गसहितं हल्लेखया संश्रितं
बालासम्पुटितं तथा च परया श्रीविद्ययालङ्कृतम्।
आरोहादवरोहतश्च कुरुते न्यासं पुनर्हंसयो—
र्यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकृत्॥२॥ इति।

अथ बालासम्पुटितमातृकान्यासः—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम्। तथा वर्णमयी बाला देवता परिकीर्तिता॥ १॥
वाग्भवं बीजमाख्यातं तार्तीयं शक्तिरुच्यते। कामराजं कीलकं स्याच्छ्रीविद्याङ्गतया पुनः॥२॥
न्यासे तु विनियोगः स्याद्बालाबीजत्रयेण तु। द्विरावृत्त्या क्रमेणैव षडङ्गन्यासमाचरेत्॥३॥
मुक्ताशेखरकुण्डलाङ्गदमणिग्रैवेयहारोर्मिकां विद्योतद्वलयादिकङ्कणकटीसूत्रां स्फुरन्नूपुराम्॥
माणिक्योदरबन्धुरस्तनभरामिन्दोः कलां बिभ्रतीं पाशं साङ्कुशपुस्तकाक्षवलयं दक्षोर्ध्वबाह्वादितः॥
पूर्णेन्दुप्रतिमप्रसन्नवदनां नेत्रत्रयोद्भसितामिन्दुक्षीरवलक्षगात्रविलसन्माल्यानुलेपाम्बराम्।
पञ्चाशल्लिपिजृम्भिताखिलजगद्वाग्देवतां देवतां मूलाधारसमुद्गतां भगवतीं वर्णाम्बुजे चिन्तयेत्॥

"ओंऐंह्रींश्रींऐंक्लींसौः अं सौःक्लींऐं" इत्यादि न्यसेदिति बालासम्पुटितमातृकान्यासः॥ अथ परासम्पुटित— मातृकान्यासः—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द ईरितम्। परासरस्वती देवी मातृका देवता स्मृता॥ १॥
षड्दीर्घपरया चैव षडङ्गानि समाचरेत्। अकलङ्कशशाङ्काभां त्र्यक्षां चन्द्रकलावतीम्॥२॥
मुद्रापुस्तलसद्बाहुं प्रणमामि परां कलाम्।

"४ सौः अंसौः इत्यादि न्यसेदिति परामातृका॥ अथ श्रीविद्यामातृकान्यासः—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पङ्क्तिरुदाहृता। देवता मातृकारूपा महात्रिपुरसुन्दरी॥ १॥
कूटत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गानि समाचरेत्।

आरक्ताभां त्रिनेत्रां मणिमुकुटवतीं रत्नताटङ्करम्यां
हस्ताम्भोजैः सपाशाङ्कुशमदनधुनःसायकैर्विस्फुरन्तीम्।
आपीनोत्तुङ्गवक्षोरुहतटविलुठत्तारहारोज्ज्वलाङ्गीं
ध्यायन्नम्भोरुहस्थामरुणनिवसनामीश्वरीमाश्रयामि॥ १॥

इति ध्यात्वा "४ मूलं अं नमः शिरसीत्यादि" न्यसेदिति श्रीविद्यामातृका॥ अथ हंसमातृका—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिश्छन्दो गायत्रमुच्यते। हरगौरीमहादेवी मातृका देवता स्मृता॥ १॥
हसा षड्दीर्घयुक्तेन षडङ्गन्यासमाचरेत्।

---

१. 'इदं धनुश्चिह्नान्तर्गतं' क. संज्ञके नास्ति।

उद्यद्भानुस्फुटिततडिदाकारमर्धाम्बिकेशं पाशाभीती वरदपरशू सन्दधानं कराब्जैः।।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः शोभितं विश्वमूलं सौम्याग्नेयं वपुरवतु वश्चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम्।। १।।

इति ध्यात्वा, "४ हंसः अंनमः शिरसी"त्यादि न्यसेदिति हंसमातृका।। अथ परमहंसमातृका—

ऋषिः परमहंसः स्याद् विराट् छन्द उदाहृतम्। चिन्मयी देवता प्रोक्ता परमात्मस्वरूपिणी।। १।।
प्रणवद्वयमध्यस्थवर्गैः कुर्यात् षडङ्गकम्।
श्रीमत्परात्ममनुजृम्भितवर्णरूपां मानैरगम्यपदवीपरि[1]चीयमानाम्।
विद्याक्षसूत्रकलशं दधतीं च मुद्रां ध्यायेत् समस्तजननीं विशदां त्रिनेत्राम्।।२।।

इति ध्यात्वा, ४ सोहं क्षंनमः" इत्यादि विलोमेन तत्तत्स्थानेषु न्यसेदिति परमहंसमातृका।। अथ कलान्यासः। स तु पञ्चविधः। तारोत्थकला० कामकला० सोमकला० त्रिमूर्तिकला० अष्टात्रिंशत्कलान्यासश्चेति। अष्टात्रिंशत्कलान्यासोऽपि द्विविधः, ज्योतिरष्टात्रिंशत्कला० शिवाष्टात्रिंशत्कलान्यासश्चेति। तारोत्थकलान्यासस्तु प्रागेवोक्तः। विशेषस्तु—

ताराद्यवर्णसंयुक्ता न्यस्तव्यस्ता नमोन्विताः। स्थानेष्वेतेष्वथ पुनर्मातृकायाः कला न्यसेत्।। १।।
तारस्य पञ्चभेदेभ्यः पञ्चाशद्वर्णगाः कलाः। स्वरकलान्यासोत्तरम्—
सदाशिवेन सञ्जाता नादादेताः सितत्विषः। अक्षस्रक्पुस्तककराः कपालाढ्यकराम्बुजाः।। १।।

इति ध्येयाः। कचवर्गकलान्यासोत्तरम्—

अकाराद् ब्रह्मणोत्पन्नास्तप्तचामीकरप्रभाः। कराम्बुजधृताक्षस्रक्पङ्कजाभयकुण्डिकाः।। १।।

इति ध्येयाः। टतवर्गकलान्यासोत्तरम्—

उकाराद्विष्णुनोत्पन्नास्तमालदलसन्निभाः । अभीतिदरचक्रेष्टबाहवः परिकीर्तिताः।। १।।

इति ध्येयाः। पयवर्गकलान्यासोत्तरम् —

ईश्वरेणोदिता बिन्दोर्जपाकुसुमसन्निभाः । उद्वहन्त्योऽभयं शूलं कपालं बाहुभिर्वरम्।। १।।

इति ध्येयाः। षवर्गकलान्यासोत्तरम्—

ईश्वरेणोदिता बिन्दोर्जपाकुसुमसन्निभाः। अभयं हरिणं टङ्क[2] दधाना बाहुभिर्वरम्।। १।।

इति ध्येयाः इति। विशेषार्चा तु पात्रासादनप्रकरणे वेदितव्या[3]। अथ ज्योतिरष्टात्रिंशत्कलान्यासः— "४ अं अमृतायै नमः शिरसि" इत्यादिस्वरकलाः क्रमेण विन्यसेत्। ततो दक्षहस्तसन्ध्यग्रेषु "४ कंभं तपिन्यै नमः" इत्यादि "ङनं ज्वालिन्यै नमः" इत्यन्तं विन्यस्य, वामहस्तसन्ध्यग्रेषु "४ चधं रुच्यै नमः" इत्यादि "ञणं बोधिन्यै नमः" इत्यन्तं विन्यस्य, दक्षपादसन्ध्यग्रेषु "४ टढं धारिण्यै नमः" इत्यादि "४ लं ज्वलिन्यै नमः" इत्यन्तं विन्यसेत्। ततो वामपादसन्ध्यग्रेषु "४ वं ज्वालिन्यै नमः" इत्यादि "४ हं कपिलायै नमः" इत्यन्तं विन्यस्यावशिष्टकलाद्वयं मस्तके व्यापकं च कुर्यादित्यष्टात्रिंशत्तेजःकलान्यासः। अन्ये कलान्यासा अग्रे वक्ष्यन्ते। एतदुत्तरं प्रपञ्चयागः इति श्रीमदाचार्यमतं, स तु प्रागुक्तरीत्यावगन्तव्यः। तस्य फलम्—

एवं वर्णमयं होमं कृत्वा दिव्यतनुर्नरः। प्रजपेत् सकलान् मन्त्राँस्ततः सिद्धिमवाप्नुयात्।। १।।

---

१. 'पदवीं परि' ख. पाठः। २. 'खेटं' ग. पाठः। ३. 'विशेषः। ऋचस्तु'........बोद्धव्याः' क.ग. पाठः।

प्रपञ्चयागस्य विधेर्विधाता भवेत्स मन्त्री कृतकृत्य एव।
सर्वे स्फुरन्तः प्रभवन्ति मन्त्राः सदात्मयागीति निगद्यते सः॥ २॥
एतस्य होमस्य न कोटिभागभागेन तुल्यं ध्रुवमग्निहोत्रम्।
एवं विधातुः खलु यत्र तत्र शरीरपातेऽपि[1] भवेद्विमुक्तिः॥ ३॥

तथा च प्रपञ्चसारः— (७ प० ५१ श्लो०)

शुद्धश्चापि सबिन्दुकस्त्वथ कलायुक्केशवाद्यैस्तथा श्रीकण्ठादियुतश्च शक्तिकमलामारैस्तथैकैकशः।
न्यासास्ते दशधा पृथङ्निगदिताः स्युर्ब्रह्मयागान्तिकाः सर्वे साधकसिद्धिसाधनविधौ सङ्कल्पकल्पद्रुमाः॥

प्रपञ्चयागस्तु विशेषतो विपत्प्रपञ्चसंसारविशेषपावकः।
परं च नित्यं भजतामयत्नतः परस्य चार्थस्य निवेदकः सदा॥ २॥

न्यस्य मन्त्री यथान्यायं देहे विश्वस्य मातरम्। जपेन्मन्त्रान् भजेद्देवान् यजेदग्निमनन्यधीः॥ ३॥
देवो भूत्वा यजेद्देवान्नादेवो देवमर्चयेत्। एवमाह श्रुतिः साक्षादतोऽग्रे विन्यसेद् बुधः॥ ४॥
यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये। विघ्ना दृष्ट्वा पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः॥५॥
अकृत्वा न्यासजातं यो मूढात्मा प्रजपेन्मनुम्। बाध्यते सर्वविघ्नैश्च व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा॥ ६॥

इति सर्वे मातृकान्यासाः॥ अथ षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यासः— ४ क्षं पृथिवीतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः, पादयोः। एवं लंअप्तत्त्वं लिङ्गे विलोमक्रमेण, तेजो हृदि, वायुः मुखे, आकाशं शिरसि, गन्धः पादयोः, रसो लिङ्गे, रूपं हृदि, स्पर्शो मुखे, शब्दः शिरसि, उपस्थो लिङ्गे, पायुः पायौ, पादः पादयोः, पाणिः पाण्योः वाक् मुखे, घ्राणं घ्राणयोः, जिह्वा जिह्वायां, चक्षुः चक्षुषोः, त्वक् सर्वाङ्गे, श्रोत्रं श्रोत्रयोः, मनो हृदि अहङ्कारो हृदि, बुद्धिः हृदि, प्रकृतिः सर्वगात्रे, पुरुषः सर्वगात्रे, रागो हृदि, विद्या हृदि, कला हृदि, नियतिः सर्वगात्रे, कालतत्त्वं सर्वगात्रे, माया हृदि, शुद्धविद्या हृदि, ईश्वरो हृदि, सदाशिवो ग्रीवायां, शक्तिर्मूलाधारे, शिवः सहस्रारे इति षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यासः॥ अथ प्राणायामः—

इतिकृतेऽधिकृतो भवति ध्रुवं परमदैवतमन्त्रजपादिषु।
पवनसंयमनं त्वमुना चरेद्यमिह जप्तुमसौ मनुमिच्छति॥ १॥

इति वचनात्। "प्राणायामं विधायेत्थं योगपीठं न्यसेत्तनौ" इति वचनाच्च मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा योगपीठन्यासं कुर्यात्॥ तत्र प्राणायामविधिर्विविच्यते—तत्र प्राणानां शरीरादपि द्वादशाङ्गुलाधिकानामायामः। आयमनमायामः सङ्कुचितभावः शरीरसाम्यं शरीरान्न्यूनभावापादनं वेति प्राणायाम इत्यर्थः, अत एव पवनसंयमनमित्युक्तं। त्रिपुरासारसमुच्चये—

अथेदं शरीरं स्वकीयाङ्गुलीभिर्बुधैः षण्णवत्यङ्गुलायाममुक्तम्।
दिनेशाङ्गुलीभिः शरीरात् समीरोऽधिकः प्राणसंज्ञो मतो योगविद्भिः॥२॥
इति प्राणवायुं सदाभ्यासतो यो नरो न्यूनभावं[2] नयत्येनमङ्गात्।
समत्वं शरीरेण वा भूतलेऽस्मिन् स पूज्यो बुधैरुत्तमो योगवित्सु॥३॥ इति।

१. 'तोपि' क. पाठः। २. 'वे' क. पाठः।

स तु पूरकाद्यङ्गत्रयात्मकः। तथा च "अङ्गत्रयात्मकः प्रोक्तः पूरकुम्भकरेचकैरिति" तत्र कुम्भक एव प्राणायामशब्दो मुख्यः, इतरयोस्तदुपकारकत्वात्। ज्ञानार्णवे—

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्। प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना।। १।। इति।

स पुनर्द्विविधः सहितः केवलश्च। तत्र सहितोऽपि द्विविधो रेचकादिक्रमः पूरकादिक्रमश्चेति। तत्र रेचकादिक्रममाह योगशास्त्रे—

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः। सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः।। १।।

विरेच्य पूरकः कार्यः शनैः सहितकुम्भके। यावत्केवलसिद्धिः स्यात् तावत्सहितमभ्यसेत्।।२।।

इति। तत्क्रममाह प्रपञ्चसारे—

रेचकपूरककुम्भकभेदात् त्रिविधः प्रभञ्जनायामः। मुञ्चेद्दक्षिणयानिलमन्तर्नयेद्वामया च मध्यमया।

संस्थापयेच्च नाड्येत्येवं प्रोक्तानि रेचकादीनि। षोडशतद्द्विगुणचतुःषष्टिमात्रकाणि तानि च क्रमशः।

इति। नाड्येत्यस्य दक्षिणयेत्यादिभिः सम्बन्धः। तथा च "इडा वामे तनोर्मध्ये सुषुम्ना पिङ्गला परे"। द्विगुण इति षोडशानां द्विगुण इत्यर्थः। अथ पूरकादिक्रममाह समुच्चये—

शीतांशुमार्गेण शनैः समीरमापूरयेत् सोदरमादरेण।
विकारमात्राभिरपेततन्द्रः कालाग्निमूलार्पितचित्तवृत्तिः।। १।।
ततो धारयेन्मारुतं धीरचेताः चतुःषष्टिमात्रासमापूरितं तम्।।
बहिर्भास्वता रेचयेन्मन्दमेनं तदर्धाभिरन्तर्निरुद्धं तु ताभिः।।२।।

तथा वामकेश्वरे—

पूरकं कुम्भकं चैव रेचकं च विचिन्तयेत्। मूलाधारे लयं कृत्वा पीत्वा वायुं शनैः शनैः।। १।।
यथेष्टं पूरयेद् देहं तत्त्वज्ञो विजितेन्द्रियः। ततस्तु स्तम्भयेद्वायुं प्रकाशगतमानसः।। २।।
कुम्भके चिन्तयेद् विद्वान् विद्यां मुक्तिकरीं शुभाम्। तदा तु रेचयेद् वायुं गम्यते यत्स्वभावतः।।३।।
देहान्निःसारयेन्मन्त्री स्वदेहस्थं तमोगुणम्। वामेन पूरयेद् वायुं दक्षिणेन विरेचयेत्।। ४।।
माहेन्द्रेण समेनैव मन्त्री कुम्भकमभ्यसेत्। सदा कुम्भकयोगेन लभते सिद्धिरुत्तमा ।। ५।।
अभ्यासी कारयेन्मात्रां यथेष्टं तत्त्वदर्शिनाम्। यथाशक्त्या पिबेद् वायुं यथाशक्त्या च कुम्भयेत्।।६।।
स्वभावं च त्यजेद् वायुस्ततः सिद्धिः प्रजायते। इति।

तस्यां विद्यायां पूरकादिक्रम एव नित्यातन्त्रोक्तः, रेचकादिक्रमस्तु साधारणतया प्राप्तः। श्रुत्यनुसारेण प्रपञ्चसारादौ वैष्णवादिसामान्यतया प्रोक्तत्वात्। तथा च श्रुतिः— "प्राणायामास्त्रयः प्रोक्ता रेचपूरककुम्भकाः" इति। सुसाधितप्राणानां रेचकादिक्रम इति कश्चित्। उभयथापि सामान्यत्वं तन्त्रान्तरेण, पूरकादिक्रमोऽपि सामान्यतया वैष्णवादौ युज्यते। तस्मादस्मिन्नपि प्रकरणे सामान्यत्वेनोभयोः प्राप्तौ विशेषत्वेन पूरकादिक्रमस्यैव मुख्यत्वमाह महेश्वरः—"पूरकं कुम्भकं चेत्यादि"। तत्र वायोरादानकाले पूरकनामा प्राणायामः, धारणकाले कुम्भकनामा, त्यागकाले रेचकनामा। तदुक्तम्— "बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको हि सः। सम्पूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको मतः।। बहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचकः स्मृतः"। इति। तथा च दक्षिणामूर्तिः—

मूलमन्त्रेण देवेशि वामेनापूर्य चोदरम्। कुम्भकेन त्रिरावृत्त्या दक्षिणेनापसारयेत्।। १।। इति। ज्ञानार्णवे "आसने सम्यगासीनो वामेनापूर्य चोदरम्" इति। तन्त्रराजेऽपि— "वामेन नासारन्ध्रेण पूरयेदमृतात्मना। स्मरन्नम्बु मरुत्पश्चाद्दक्षिणेनापसारयेत्।" इति। तत्र क्रममाह— 'मूलाधार' इत्यादि। लयमिति मनसो लयमित्यर्थः। तेनैव वायोरपि लयभावित्वात्। तन्त्रराजे—

मूलाधारे मनः कृत्वा वायुमापूर्य मूलतः। नाडीचक्रान्तरं नीत्वा सर्वाङ्गानि च चारयेत्।। १।। इति। यथेष्टमिति सहजगतागतशीलं वायु यथाशक्यमाकर्षयेदित्यर्थः। प्रकाशे परमात्मनि गतं लीनं मानसं यस्य सः प्रकाशगतमानसः। तेन स्वप्रकाशसच्चिदानन्दपरमात्मस्वरूपः सन् कुम्भयेदित्यर्थः। अथाङ्गत्रयात्मके प्राणायामे कापि विद्याध्यानं भवति न वेत्यत आह— कुम्भके चिन्तयेदित्यादि। विद्यां—मोक्षोपयोगि ज्ञानं, विद्या तां, सा च श्रीविद्येत्यत आह— मुक्तिकरीं शुभामिति। तेन कुम्भककाले मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूल[1]विद्यां विभावयेदित्युक्तं, श्रीविद्यायाः सूक्ष्मध्यानं कुर्यादिति तु सगर्भपक्षे पूरकादिषु प्रत्येकमशक्तौ केवलकुम्भके वेति ध्येयम्। रेचकप्रकारमाह— तदेत्यादि। गम्यते बहिरिति शेषः। स्वभावतो न तु न्यूनाधिक[2]त्वादन्यथा तु अयुक्ताभ्यासाद् दोषापत्तेः। तथा चोक्तं गोरक्षशतके—

युक्तं युक्तं पिबेद्वायुं युक्तं युक्तं च धारयेत्। युक्तं युक्तं त्यजेदेनमेवं सिद्धिमवाप्नुयात्।। १।।
यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्धार्यः शनैःशनैः। तथैव हि निजो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।२।।
प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ।। ३।।
हिक्का श्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षि[3]वेदनाः। भवन्ति विविधा रोगाः प्राणायामव्यतिक्रमात्।।४।।
ततः शास्त्रोक्तमार्गेण प्राणायामान् समाचरेत्। इति।

देहान्निःसारयेदिति। रेचकयोगवायुना सह देहस्थस्तमोगुणो बहिर्निःसृत इति भावयेदित्यर्थः। अथ पूरकादेर्नाडीनियममाहवामेनेत्यादि। इत्येकप्राणायामे प्रथमे द्वितीयादियुग्मे तु दक्षिणेनैव पूरयेत्। तदुक्तम्—

येनैव सन्त्यजेत्तेन पूरयेद् धारयेत् ततः। रेचयेच्च ततोऽन्येन शनैरेवं पुनः पुनः।। १।।

इति। योगशास्त्रे —

अथासने दृढे योगी वशी हितमिताशनः । गुरूपदिष्टमार्गेण प्राणायामान् समभ्यसेत्।। १।।
चले वाते चलं चित्तं निश्चले दृढबन्धनम्। योगी स्थानत्वमाप्नोति ततो वायुं निबन्धयेत्।।२।।
यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते। मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निबन्धयेत्।।३।।
मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः। कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्।।४।।
शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम्। तदैव जायते योगी प्राणसङ्ग्रहणे क्षमः।। ५।।
प्राणाभ्यासं ततः कुर्यान्नित्यं सात्त्विकया धिया। यथा सुषुम्नापार्श्वस्था मलाः शोषं प्रयान्ति च।।६।।
बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्। धारयित्वा यथाशक्ति पुनः सूर्येण रेचयेत्।।७।।
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः। विधिवत् कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत्।।८।।
येन त्यजेत्तेन पीत्वा धारयेदनिरोधतः । रेचयेच्च ततोऽन्येन शनैरेवं न वेगतः।।९।।

---

१. 'मूलं विभाव्य' क. पाठः। २. 'क्यात्' क. पाठः। ३. 'दि' क. पाठः।

प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेत्
पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्ध्वा त्यजेद् वामया।
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्वतां
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः।। १०।। इति।

तथा त्रिपुरासारे—

विपरीतमतो विदधीत पुनः पुनरप्यथ तद्विपरीतमिति ।
अमुना विधिना सुमनाः[1] सततं मरुतो विदधीत सुसंयमनम्।। १।। इति।

अथ कुम्भकफलमाह— सदेत्यादि, केवलकुम्भकयोरित्यर्थः। सुसाधिते वायौ मात्रासंख्यानमुक्तं प्रथमाभ्यासे, तत्राप्ययं कामचारमाह— "अभ्यासी" इत्यादि। अभ्यासी प्रथमाभ्यासी तत्त्वदर्शिनां मात्रां यथेष्टं यथेच्छं कारयेदित्यर्थः। एतदेव स्पष्टयति—यथाशक्त्येत्यादि। तथा च सति प्रथमाभ्यासी यथोक्तसंख्यामात्राया न्यूनमपि कुर्यात्, मध्यमाभ्यासी यथोक्तसंख्यामेव, उत्तमाभ्यासी ततोऽधिकसंख्यामपि कुर्यादिति यथेष्टपदतात्पर्यम्। अथ मात्रालक्षणमाह नारदः —

कालेन यावतात्मीयो हस्तः स्वं जानुमण्डलम्। पर्येति मात्रा स्यात् तुल्या स्वयैकश्वासमात्रया।।१।।इति।

तथा फेत्कारिणीतन्त्रे—

जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम्। क्रियते चाङ्गुलीस्फोटः सा मात्रा परिकीर्तिता।।१।।इति।

अपि च कात्यायनीतन्त्रे—

मध्या मूलाद्यावदग्रमङ्गुष्ठेन च पीड्यते। मात्रा सा प्रोच्यते सद्भिर्योगेऽभीष्टं प्रयच्छति।। १।।इति।

वस्तुतस्तु तत्तन्मन्त्रोच्चारणमेव मात्रा। तथा च गौतमीये—

रेचयेद् दक्षिणे वायुं पूरयेद्वामतस्ततः। द्वात्रिंशदभ्यसेन्मन्त्रं प्राणायामः स उच्यते।। १।। इति।

ततः पूरकानन्तरं कुम्भकेऽभ्यसेदित्यर्थः। एतत्तु रेचकादिपक्षे, अत एव कुम्भक एव जपादिकं नेतरयोः। दक्षिणामूर्तिकल्पे—

प्राणापानौ समौ कृत्वा सुविधाय च कुम्भकम्। हृत्पङ्कजे समासीनं मां ध्यायेद्यतमानसः।।१।।इति।

अगस्त्यसंहितायाम्—

यावच्छक्यं नियम्यासून् मनसैव जपेन्मनुम्। रामं मुहुर्मुहुर्ध्यायन् पूर्वोक्तविधिना सुधीः।। १।।इति।

असून् नियम्य कुम्भकं कृत्वा रामं ध्यायन् यावच्छक्यं मनुं जपेदिति सम्बन्धः। एतेन यत्र विशेषो नोक्तस्तत्र यथाशक्ति मन्त्रं जपेदिति वैष्णवः। तयैव रीत्यैकत्र दृष्टन्यायेन सर्वत्रैवायं प्रकारः। अत एव श्रीविद्यायां वामकेश्वरतन्त्रे— "कुम्भके चिन्तयेद्विद्वन् विद्यां मुक्तिकरीं शुभाम्।" इत्युक्तमिति वदन्ति। वस्तुतस्तु सगर्भके प्राणायामे केवलकुम्भके कुम्भक एव सहितकुम्भके शक्तावङ्गत्रयेऽप्यशक्तौ कुम्भके त्वावश्यकं जपध्यानमिति तु तेषां वचनानां निर्गलितार्थः। स च मूलया बालया वा तदशक्तौ प्रणवेन वा कार्यः। तदुक्तं फेत्कारीये—"प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा।" इति। निषिद्धप्रणवोच्चारिणां[2] प्रणवस्थाने सार्द्धत्रिमात्रिक औंकारो ज्ञेयः। कालिकापुराणे—

१. 'सुभगः' क. ख. पाठः। २. 'रणं' ग. पाठः।

चतुर्दशस्वरो यस्तु सार्द्धत्रिमात्रसंज्ञकः। नादबिन्दुसमायुक्तः शूद्राणां सेतुरुच्यते।। १।। इति।

अत्र सुसाधितप्राणानां पूरकादौ त्रिपुरासारोक्तैव संख्या जपादौ तन्त्रराजे तदन्यथा। यदुक्तं तन्त्रराजे—

एवं सुसाधिते पश्चाद् द्वात्रिंशन्मात्रया हरेत्। धारयेत्तच्चतुष्षष्ट्या रेचयेत् तत्तुरीयतः।। १।।

इति तु श्रीकादिमते, तदेतयोर्मतयोर्विकल्पः। तत्राशक्तौ सामान्यपटले फेत्कारीयतन्त्रोक्तः कार्यः। तद्यथा—

तथा द्वादशमात्राभिः कुम्भकः क्रियते सदा। तस्माद् द्विगुणमात्राभी रेचकः क्रियते तथा।। १।।

प्राणायामत्रयं त्वेवमैकैकं त्रितयात्मकम्। इति।

अत्राप्यशक्तौ सुभगोदयोक्तः कार्यः। ''प्राणायामत्रयं कुर्यात् स्मरन् विद्यां हृदा पुनः।'' इति। तद्वचनं तत्पद्धतौ व्याख्यातं—दक्षिणनाड्या एकवारं मूलमुच्चरन् वायुमापूर्य चतुर्वारं कुम्भकं कृत्वा वामनाड्या द्विवारं रेचयेदिति प्राणायामत्रयं कुर्यादित्यर्थः। अत्र दक्षिणेन पूरणं युग्मे बोद्धव्यमयुग्मे पूरकादौ वामस्यैवोक्तत्वादथवा तन्मतमेवेदमिति वयं न विद्मः। तत्राप्यशक्तौ ज्ञानार्णवदक्षिणामूर्तिभ्यामुक्तस्य ''कुम्भकेन त्रिरावृत्त्या'' इत्यस्यैव ग्रहणमिति सङ्क्षेप इति सहितकुम्भकः। अथ केवलकुम्भकः, योगशास्त्रे —

रेचकं पूरकं मुक्त्वा मुखे यद्वायुधारणम्। प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः।। १।।

केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरविवर्जिते । न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिपु लोकेषु विद्यते।।२।।

शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं वायुधारणे। राजयोगपदं चैव लभते नात्र संशयः ।। ३।।

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः। न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत्।।४।।

कुम्भितप्राणरेचान्ते कुर्याच्चित्तं निराश्रयम्। एवमभ्यासयोगेन राजयोगपदं व्रजेत्।। ५।।

कुम्भकात् कुण्डलीबोधो कुण्डलीबोधतो[१] भवेत्। अनर्गला सुषुम्ना च हठसिद्धिश्च जायते।।६।।इति।

हः सूर्यो ठश्चन्द्रस्ताभ्यां सूर्यचन्द्राभ्यां दक्षिणवामाभ्यां पिङ्गलेडाभ्यां प्राणवायोर्मूलाधारादौ योगो हठयोग इत्यर्थः। स च प्राणायामो राजयोगः, स च सुषुम्नामार्गेण षट्चक्रभेदक्रमेण शिवशक्तिसामरस्यलक्षणमाह तन्त्रराजे—

कम्पश्च पुलकानन्दो वैमल्यस्थैर्यलाघवाः। तद्वत् कान्तिप्रकाशौ च योगसिद्धस्य लक्षणम्।। १।।

योगशास्त्रे —

वपुःकृशत्वं वदनप्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।

अरोगिता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धेर्हठसिद्धिलक्षणम्।। १।।

इति केवलकुम्भक इत्युक्तः। प्राणायामः सगर्भो विगर्भश्चेति द्विविधः स्यात्। उक्तं च रुद्रयामले— ''सगर्भश्च विगर्भश्च प्राणायामो द्विधा मतः''। इति। तथा च योगिनीतन्त्रे—

अयं प्राणायामः सकलदुरितध्वंसनकरो विगर्भः प्रोक्तोऽसौ शतगुणफलो गर्भकलितः।

जपध्यानापेतः स तु निगदितो गर्भरहितः सगर्भस्तद्युक्तौ मुनिपरिवृढैर्योगनिरतैः।। १।इति।

स पुनस्त्रिविधः उत्तमाधममध्यमभेदात्। तथा च तन्त्रराजे —

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्त उत्तमाधममध्यतः। लाघवो भूतलत्याग उत्तमे चित्तनिर्वृतिः।। १।।

---

१. 'धना' क. पाठः।

सर्वाङ्गस्वेदसंवृद्धिरधमे मध्यमे तथा। सर्वाङ्गकम्पनं प्रोक्तमभ्यासात् कालसंयुतात् ।। २।।
तेऽप्युत्तमगुणा भूयुरभ्यासात् कालयोगतः। तस्मात् समभ्यसेत् प्रातः सायं च नियमेन वै।।३।।इति।

तथा त्रिपुरासारे —

शुचिः प्राणायामान् प्रणवसहितान् षोडश वशी प्रभाते सायं च प्रतिदिवसमेवं वितनुते।
द्विजो यस्तं भ्रूणप्रहरणकृतांहोभिकलितं पुनन्त्येते मासादिह दुरिततूलौघदहनाः।। १।।
त्रायन्त्यमी षड्भिरपीह मासैर्जन्मान्तरोपार्जितपापपुञ्जात्।
संवत्सराद् ब्रह्मपदं तदेकं प्रकाशयत्येव यदच्युताख्यम्।। २।। इति।

योगशास्त्रे तु—

प्रातर्मध्यन्दिने सायमर्द्धरात्रे च कुम्भकान्। शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत्।। १।।
कनीयसि भवेत् स्पन्दः कम्पो भवति मध्यमे। उत्तिष्ठत्युत्तमे प्राणरोधे पद्मासने मुहुः।।२।।
जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत् । दृढता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते।।३।।
अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं क्षीराज्यभोजनम्। ततोऽभ्यासे दृढे जाते न तादृङ्नियमग्रहः।।४।।इति।

तत्र क्रमः— विहितपद्मासनः सन्निमीलितनयनयुगलो मूलाधारार्पितचित्तवृत्तिर्मूलमन्त्रादिकमुच्चरन् इडया वामनाड्या षोडशमात्रया वायुमापूर्य मूलाधारं प्रापय्याङ्गुष्ठकनिष्ठानामाभिर्नासापुटौ विधृत्य चतुःषष्टिमात्रया तं वायुं स्तम्भयित्वा द्वात्रिंशन्मात्रया पिङ्गलया दक्षिणनाड्या शनैः शनैस्तं वायुं रेचयेदित्येकः प्राणायामः। पुनस्तं पिङ्गलया वायुं शनैः शनैः समाकृष्य तथैवेडया रेचयेदित्यन्यः। एवं वैपरीत्येन विंशतिवारं षोडशवारं द्वादश षट् त्रिर्वा द्विर्वा यथाशक्ति कुर्यात्, ततः सिद्धिमवाप्नुयादिति[1]। शारदातिलके— "मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश।" इति सङ्क्षेपः। अत्र सर्वत्र प्राणायामेनैव सर्वेषां कर्माधिकारः, अकरणे निन्दाश्रवणात्। अगस्त्यसंहितायाम्—

प्राणायामैर्विना यद्यत् कृतं कर्म निरर्थकम्। अतो यत्नेन कर्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभिः।।१।।इति।

अथ एवावश्यकोऽयं भूतशुद्धिरिव पूजायामिति। इति प्रणायामविधिर्मतद्वयसाधारणः।।

अथ योगपीठन्यासः — तत्रांसद्वयोरुद्वयकल्पितपादचतुष्टयं मुखनाभिपार्श्वद्वयमध्योपकल्पितगात्रचतुष्टयं योगपीठं निजदेहं ध्यात्वा न्यसेत्। मूलाधारे ४ महाकायाय[2] रक्तवर्णाय मण्डूकाय नमः। तदुपरि स्वाधिष्ठा— नपर्यन्तं ४ पञ्चवक्त्रदशभुजरक्तवर्णकृष्णवामदक्षिणपार्श्वाय कालाग्निरुद्राय नमः। तदुपरि नाभिपर्यन्तं बन्धूकरुचिरायै मूलप्रकृत्यै नमः। तदुपरि हृत्पर्यन्तं[3] शरच्चन्द्रप्रभायै पङ्कजद्वयधारिण्यै आधारशक्त्यै नमः। तदुपरि हृदय एव ४ कूर्माय नमः, ४ अनन्ताय नमः, ४ वराहाय०, ४ पृथिव्यै०, ४ अमृतार्णवाय०, ४ समस्तमातृकामुच्चार्य नवखण्डविराजिताय नवरत्नमयद्वीपाय नमः। तत्रैव नवखण्डेषु ईशानादिमध्यान्तं ४ अं १६ पुष्परागरत्नाय नमः। ४ कं ५ नीलरत्नाय० ४ चं ५ वैडूर्यरत्नाय० ४ टं ५ विद्रुमरत्नाय० ४ तं ५ मौक्तिकरत्नाय० ४ पं ५ मरकतरत्नाय० ४ यं ४ वज्ररत्नाय० ४ शं ४ गोमेदरत्नाय० ४ ळक्षं पद्मरागरत्नाय नमः। तत्रैव स्वर्णपर्वताय नमः। तदुपरि ४ नन्दनोद्यानाय नमः। तन्मध्ये

१. 'प्रा' क. पाठः। २.'कालाय' क.ख. पाठः। ३. ' दशदश' क. पाठः। ४. 'हृदय' क. पाठः।

४ कल्पकोद्यानाय नमः, ४ वसन्तादिऋतुभ्यः०। पश्चिमे ४ इन्द्रियाश्वेभ्यः, पूर्वे ४ इन्द्रियार्थगजेभ्यो नमः, ४ विचित्ररत्नभूमिकायै नमः। तत्र पश्चिमादिमध्यान्तं विलोमेन ४ कालचक्रेश्वरीश्रीपा० ४ मुद्राचक्रेश्वरीश्रीपा० ४ मातृकाचक्रेश्वरीश्रीपा० ४ रत्नचक्रेश्वरीश्री० ४ देशचक्रेश्वरीश्री० ४ गुरुचक्रेश्वरीश्री०४ तत्त्वचक्रेश्वरीश्री० ४ ग्रहचक्रेश्वरीश्री० ४ मूर्तिचक्रेश्वरीश्री० ४ कारणतोयपरिधये०[१] ४ माणिक्यमण्डपाय०। तस्य निर्ऋत्यादिकोणेषुमध्ये च ४ देशरूपिणीशक्तिश्री० ४ कालरूपिणीशक्तिश्री०४ आकाररूपिणीशक्तिश्री० ४ शब्दरूपिणीशक्तिश्री० ४ मध्ये संगीतयोगिनी– रूपिणीशक्तिश्री० ४ तन्मध्ये समस्तगुप्तप्रकटयोगिनीचक्ररूपिणीशक्तिश्री०। ततस्तन्मध्ये ४ कल्पतरुभ्यो० तेषामधस्तात् ३ रत्नवेदिकायै नमः। तदुपरि ४ श्वेतच्छत्राय० तस्याधः ४ रत्नसिंहासनाय नमः, इत्येतत्सर्वं मानसपङ्कजे विन्यस्य यथायथं तत्तत्स्थानान्यध्य[२] वस्य रत्नसिंहासनत्वेनात्मदेहं ध्यायेत्। तत्र सिंहसनदेवता न्यसेत्। दक्षांसे ४ रक्तवर्णाय ऋषभरूपाय धर्माय०। वामांसे ४ श्यामवर्णाय सिंहरूपाय३ ज्ञानाय०। वामोरौ ४ पीतवर्णाय भूताकाराय वैराग्याय०। दक्षोरौ ४ इन्द्रनीलप्रभाय गजरूपाय ऐश्वर्याय०। एते सिंहासनपादरूपिणः। मुखे ४ अधर्माय०। वामपार्श्वे ४ अज्ञानाय०। नाभौ ४ अवैराग्याय०। दक्षपार्श्वे ४ अनैश्वर्याय०। एते हिंसासनगात्ररूपिणः। मध्ये ४ मायायै० ४ विद्यायै०। तदुपरि ४ आनन्दकन्दाय० ४ संविन्नालाय० ४ प्रकृतिमयपत्रेभ्यः ४ विकारमयकेसरेभ्यः० ४ पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै० तस्यां ४ अं सूर्यमण्डलाय० ४ उं सोममण्डलाय० ४ मं वह्निमण्डलाय० ४ सं सत्त्वाय० ४ रं रजसे० ४ तं तमसे० ४ आं आत्मने० ४ अं अन्तरात्मने० ४ पं परमात्मने० ४ ह्रीं ज्ञानात्मने०। तदुपरि पूर्वादिचतुर्दिक्षु मध्ये च ४ ज्ञानतत्त्वात्मने नमः, ४ मायातत्त्वात्मने० ४ कलातत्त्वात्मने० ४ विद्यातत्त्वात्मने० ४ परतत्त्वात्मने०। ततः केसरेषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये च श्रीचक्राधारपीठस्य नव शक्तीर्न्यसेत्। ४ दूतर्यम्बाश्री० ४ सुन्दर्यम्बाश्री० ४ सुमुख्यम्बाश्री०४ विरूपाम्बाश्री० ४ विमलाम्बाश्री० ४ अन्तर्यम्बाश्री० ४ वदर्यम्बाश्री० ४ पुरन्दर्यम्बाश्री०। मध्ये कर्णिकायां ४ पुष्पम[५] र्दन्यम्बा श्री०। एता वराभयधारिण्यो रक्तवर्णा ध्येयाः। तदुपरि ४ क्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः, इति सिंहासनमन्त्रं विन्यस्य तदुपरि श्रीचक्रं ध्यात्वा, ४ मूलं समस्तप्रकटगुप्त– गुप्ततरसंप्रदायकुलकौलनि गर्भरहस्यातिरहस्यपरापर- रहस्ययोगिनीश्री[६]चक्रपादुकाभ्यो नमः इति व्यापकेन विन्यस्य, हृदि त्रिकोणं विभाव्य तन्मध्ये ४ मूलं ओं ह्रौं क्लीं भगवति ब्लूं नित्याकामेश्वरि स्त्रीं[७] सर्वसत्त्ववशङ्करि सः त्रिपुरभैरवि ऐं विच्चे ह्रींश्रीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यम्बाश्री० इति विन्यस्य, प्रणवादिनमोऽन्तं मूलविद्यां च विन्यस्य, श्रीचक्रं पुरत्रयात्मकं ध्यात्वा, तत्रारोहणक्रमेण ४ वाग्भवमुच्चार्य चतुरस्रषोडशदलाष्टदलात्मने शरीरात्मकाय प्रथमपुराय नम इति व्यापकं न्यसेत्। कामराजमुच्चार्य चतुर्दशारद्विदशारात्मने बुद्ध्यात्मकाय द्वितीयपुराय नम इत्यपि व्यापकम्। ४ शक्तिकूटमुच्चार्याष्टारत्रिकोणबिन्दुचक्रात्मने प्राणात्मकाय तृतीयपुराय नम इत्यपि व्यापकं विन्यस्य, ४ इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्त्यादिसमस्तत्रितयात्मने श्रीचक्रस्य पुरत्रयाय नमः इत्यपि व्यापकम्। ततो हृदयत्रिकोणस्याग्रादिकोणत्रयमपि पुरत्रयात्मकं वाग्भवादिपुरत्रयात्मकं च ध्यात्वा, तत्र प्रणवादिनमोऽन्तं वाग्भवादिकूटत्रयं न्यसेत्। ततो नादबिन्दुकलाज्येष्ठारौद्रीवामाविषघ्नीदूतरीसर्वानन्दाभ्यः श्रीचक्रस्थत्रैलोक्यमोहनादिनवचक्रशक्तिभ्यो नमः, इत्येनेन व्यापकं कुर्यात्। ततो हृदयकमलकेसरेषु कामेश्वरीपीठस्य

---

१. 'करुणा' ग. पाठः। २. 'न्यवध्यवस्य' क. पाठः। ३. 'ध्वजाय' क. ख. पाठः। ४. 'विश्व' क. पाठः। ५. 'भद्रिक' ग. पाठः। ६. 'वीसिद्धचक्र' ग. पाठः। ७. 'श्रीं' क. पाठः।

नव शक्तीर्न्यसेत्। ४ मोहिन्यै नमः ४ क्षोभिण्यै ४ वशिन्यै० ४ स्तम्भिन्यै०४ आकर्षिण्यै० ४ द्राविण्यै० ४ आह्लादिन्यै० ४ क्लिन्नयै० मध्ये ४ क्लेदिन्यै०, इति विचिन्त्य, त्रिकोणमध्ये ४ बालामूलं पञ्चदशीं चोच्चार्य, त्रिकोणरक्तवर्णोड्डियानपीठश्रीं० त्रिकोणाग्रे ४ बालामूलयोर्वाग्भवद्वयमुच्चार्य चतुरस्रपीतवर्णकामरूपपीठश्री०। दक्षिणकोणे ४ कामराजद्वयमर्धचन्द्रनिभश्वेतवर्णजालन्धरपीठश्री०। वामकोणे ४ शक्तिबीजद्वयं षड्बिन्दुलाञ्छितवृत्तधूम्रवर्ण-पूर्णगिरिपीठश्री०, इति पीठचतुष्टयं विन्यस्य, पुनर्बैन्दवे आग्नेयादिकोणेषु ४ लां ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपत्ये नमो ब्रह्मप्रेतासनश्री०। ४ वां ह्रीं विष्णवेऽपामधिपतये नमो विष्णुप्रेतासनश्री०। रांहूं रुद्राय तजोऽधिपत्ये नमो रुद्रप्रेतासनश्री०। ४ यां ह्रैं ईश्वराय वाय्वधिपतये नम ईश्वरप्रेतासनश्री०। ४ ह्सौं वियदधितपये पञ्चवक्त्राय सदाशिवाय प्रेतपद्मासनाय नमः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनश्री०, इति पञ्चप्रेतासनं न्यस्य, तदुपरिरक्तपद्मकर्णिकायां चतुरस्रगर्भितषट्कोणपीठे षडासनानि विन्यसेत्। ४ अंआंसौः त्रिपुरासुधार्णवासनाय नमः। ४ ऐंक्लींसौः त्रिपुरेश्वरीपीताम्बुजासनाय नमः। ४ ह्रींक्लींसौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्या— त्मासनाय नमः। ४ हैंह्क्लींह्सौः त्रिपुरवासिनीसर्वचक्रासनाय नमः। ह्सैंह्स्क्लींह्सौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः। ४ ह्रींक्लींब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नम इति विन्यस्य, मध्ये चतुरस्रे चतुष्पीठचतुरासनं न्यसेत्। ऐशाने ४ वाग्भवद्वयमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके जाग्रद्दशाधिष्ठायके इच्छाशक्त्यात्म-करुद्रात्मकशक्तिकामेश्वरीदेवी ह्रींक्लींसौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यात्मासनाय नमः। वायव्यकोणे ४ कामराजद्वयं, सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठेशनाथात्मके स्वप्नदशाधिष्ठायके ज्ञानशक्त्यात्मविष्ण्वात्मक— शक्तिश्रीवज्रेश्वरीदेवी हैंह्क्लींह्सौः त्रिपुरवासिनीसर्वचक्रासनाय नमः। नैर्ऋते ४ शक्तिद्वयमुच्चार्य सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मके सुषुप्तिदशाधिष्ठायके क्रियाशक्त्यात्मकब्रह्मात्मशक्तिश्रीभगमालिनीदेवी ह्सैंह्स्क्लींह्सौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः। आग्नेये ४ समस्तद्वयमुच्चार्य ब्रह्मचक्रे महोड्यानपीठे श्रीचर्यानाथात्मकतुर्यतुर्यातीतदशाधिष्ठायके परब्रह्मशक्त्यात्मकश्रीत्रिपुरसुन्दरीदेवी ह्रींक्लींब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः। मध्ये ४ ऐंक्लींसौः क० १५ श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसर्वमन्त्रासनाय नमः। इति विन्यस्य, ४ अं ५१ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकालनियतिकलाविद्यारागपुरुषप्रकृतिबुद्ध्याहङ्कारमन-स्त्वक्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुवह्निसलिलपृथिव्यात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या योगपीठासनाय नमः, इति व्यापकं कुर्यात्। ततो मूलमुच्चार्य श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीश्री० इति षट्त्रिंशत्तत्वात्मके देहमये महायोगपीठे निजेष्टदेवतां हृदि न्यसेत्। "इति देहमये पीठे चिन्तयेत्परदेवताम्" इति योगपीठन्यासः। शारदायाम्—

संहारसृष्टिमार्गेण मातृकान्यस्तविग्रहः। मन्त्रन्यासं ततः कुर्याद् देवताभावसिद्धये।। १ ।।

इति। तत इति मन्त्रन्यासानन्तरमित्यर्थः। मन्त्रन्यास उपास्यमन्त्रसंबन्धी न्यासः। वैशम्पायनसंहितायाम्—

तत उपास्यमन्त्रस्य न्यासानृष्यादिकांश्चरेत्। यस्य मन्त्रस्य ये न्यासाः कर्तव्याः सिद्धिमिच्छता।।१ ।।

जपतर्पणहोमार्चाः[1] सिद्धमन्त्रकृता अपि। अङ्गन्यासादिभिर्हीना न दास्यन्ति फलान्यमी।।२।।

न्यासानशेषान् न्यसतः स्वदेहे त्रैलोक्यमेतद्वशमेति पुंसः।
पापानि सद्यः प्रशमं प्रयान्ति त्रस्यन्ति रक्षांसि सपन्नगानि।। ३।।

आदावृष्यादि विन्यस्य कराङ्गन्यसनं ततः। ततो मन्त्राक्षरन्यासः पदन्यासस्ततः परम्।। ४।।

तत्तत्कल्पविशेषोक्तान् न्यासानन्यान् समाचरेत्। ततो मन्त्रपुटैर्वर्णैर्मातृकायाः सबिन्दुकैः।। ५।।

---

१. 'धाः' ख. पाठः।

विन्यसेन्मन्त्रवित् सम्यक् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना। अथर्ष्यङ्गकरन्यासस्ततो मुद्राः प्रदर्शयेत्।। ६।।

इति क्रमः। अन्यत्रापि श्रीविद्यामधिकृत्य—

अन्तः शुद्धा च सृष्टिस्थितिविलयमयी तारजाभिः कलाभिः
श्रीकण्ठाद्यैश्च विष्णुप्रमुदिततनुभिर्शक्तिलक्ष्मीमनोजैः।
बीजैर्व्यस्तैः समस्तैः कलितलिपिवरा चात्मयागश्च मौनी[1]
षोढा कामश्च षोढा नवविधभवना मन्त्रगुप्सर्वमन्त्राः।।७।। इति।

स पुनरस्यां विद्यायां त्रिविधः षोढाश्रीचक्रकरशुद्ध्यादिभेदात्। तत्र षोढा द्विविधः पूर्वोत्तरभेदात्। तत्र पूर्वषोढान्यासः सर्वाम्नायविषयः, उत्तरषोढान्यास ऊर्ध्वाम्नायविषयः। श्रीचक्रन्यासस्त्रिविधः संहारसृष्टिस्थितिभेदात्। करशुद्ध्यादिन्यासस्तु बहुतरः, श्रीकण्ठादिरतिकामादिन्यासादीनामपि तत्रैवान्तर्भावात्। तत्र षोढान्यासः संहारश्रीचक्रन्यासः सृष्टिश्रीचक्रन्यासः करशुद्ध्यादिन्यासश्चेति, जपकाले स्थितिश्रीचक्रन्यासस्य करशुद्ध्यादावन्तर्भावात्, पूजाकाले संहारश्रीचक्रन्यासस्योपलक्षणत्वेन तदन्तर्भावाच्च चतुर्विधो न्यासस्तदवसरे संक्षेपादावश्यक इति योगिनीहृदयमतम्। योगिनीहृदये—

एवं चतुर्विधो न्यासः कर्तव्यो वीरवन्दिते। षोढान्यासोऽणिमाद्यश्च मूलदेव्यादिकः प्रिये।। १।।
करशुद्ध्यादिकश्चैव साधकेनाशु सिद्धये। प्रातःकालेऽथवा पूजासमये होमकर्मणि।।२।।
जपकालेऽथवा तेषां विनियोगः पृथक् पृथक्। पूजाकाले समस्तं वा कृत्वा[2] साधकसत्तमः।।३।।

इति। तत्रादौ पूर्वषोढान्यासो योगिनीहृदये—

न्यासान्निर्वर्तयेद्देवि षोढान्यासपुरःसरम्। गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयश्च ग्रहैर्मतः।। १।।
नक्षत्रैश्च तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः। राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते।।२।।
षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रैवापराजितः। एवं यो न्यस्तगात्रस्तु स पूज्यः सर्वयोगिभिः।।३।।
नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखो जनः। स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः।।४।।
षोढान्यासविहीनं यं प्रणमेदेष पार्वति। सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते।। ५।।

इति। ज्ञानार्णवे —

षोढान्यासं ततः कुर्याद् येन ब्रह्माण्डरूपकः। विराट्स्वरूपो वर्णात्मा शिवः साक्षान्न संशयः।।१।।
गणेशाः प्रथमो न्यासः सर्वविघ्नविनाशकः। तरुणादित्यसंकाशान् गजवक्त्रांस्त्रिलोचनान्।।२।।
पाशाङ्कुशवराभीतिकराञ्शक्तिसमन्वितान्। एतांस्तु विन्यसेद्देवि मातृकान्यासवत् प्रिये।।३।।

इति। अत्र ४ अं श्रीविघ्नेश्वराभ्यां नम इत्यन्ये। विघ्नेश्वराय श्रियै नम इत्यपरे। विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नम इति केचित्। गणेशाः शक्तयश्च मातृकान्यास[3] बोद्धव्या, इति गणेशन्यासः। अथ ग्रहन्यासः ज्ञानार्णवे— "ग्रहन्यासं ततो न्यसे" दिति।।

रक्तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीतं च पाण्डुरम्। धूम्रं कृष्णं च[4] धूम्रं च धूम्रधूम्रं विचिन्तयेत्।।१।।
रविमुख्यान् कामरूपान् सर्वाभरणभूषितान्। स्वरैरर्कं हृदि न्यस्य यवर्गेण शशी ततः।। २।।

---

१. 'मौती' क. पाठः। २. 'त्वा' क. पाठः। ३. 'न्यासे' क. पाठः। ४. 'धूम्रं कृष्णं कृष्णधूम्रं' क. ग. पाठः।

भ्रूमध्ये तु कवर्गेण भौमं नेत्रत्रये न्यसेत्। टवर्गेण बुधं हृदि तवर्गेण बृहस्पतिम्॥३॥
हृदयोपरि देवेशि चवर्गेण गले भृगुम्। पवर्गेण शनिं नाभौ राहुं वक्त्रे शवर्गत:॥४॥
ळक्षाभ्यां पादयो: केतुं न्यसेदेवं वरानने। सूर्यश्च रेणुका चैव सोमश्चैवामृता तथा॥५॥
मङ्गलो धामया[1] युक्तो बुधश्च ज्ञानरूपया। गुरुर्यशस्विनीयुक्त: शाङ्करीसहितो भृगु:॥६॥
शनि: शक्तिसमायुक्तो राहु: कृष्णासमन्वित:। धूम्रया सहित: केतु: शक्तयोऽम्बान्तिका: स्मृता:॥७॥

इति पूर्ववत्प्रयोग:। अथ नक्षत्रन्यास:—

अथ नक्षत्रवृन्दस्य न्यासं कुर्यात् सुखप्रदम्। ज्वलत्कालाग्निसंकाशा: सर्वाभरणभूषिता:॥ १॥
नतिपाण्योऽश्विनीपूर्वा वरदाभयपाणय: । युग्मं युग्मं[2] तथा युग्मं युग्मयुग्मेन रोहिणी॥२॥
एकमेकं तथा द्वन्द्वमेकं पुष्यान्तमुच्यते। ललाटे लोचने पश्चाद्वामदक्षिणकर्णयो: ॥ ३॥
नासाद्वये च देवेशि तथा कण्ठे न्यसेत् क्रमात्। पुष्यान्तं च प्रविन्यस्य खगाभ्यां चैव सर्पकम्॥४॥
दक्षस्कन्धे घङाभ्यां च मघां स्कन्धे द्वितीयके। चपूर्वफाल्गुनीं दक्षे कर्पूरे छजसंस्थिताम्॥५॥
उत्तरां फाल्गुनीं वामे कूर्परे विन्यसेत्प्रिये। झञवर्णस्थितौ हस्ते मणिबन्धे न्यसेत्प्रिये॥६॥
टठार्णेन युतां चित्रां वामे तु मणिबन्धके। डकारेण युतां स्वातीं दक्षहस्तेन विन्यसेत्॥७॥
ढणयुक्तां विशाखां च वामहस्ते प्रविन्यसेत्। तथदस्थाऽनुराधां च नाभौ न्यसेत्तु पार्वति॥८॥
धकारेण युतां ज्येष्ठां न्यसेद् दक्षकटौ प्रिये। नपफस्थं तथा मूलं न्यसेद् वामकटौ प्रिये॥९॥
पूर्वाषाढां बकारेण दक्षोरौ विन्यसेत्तत:। भकारेणोत्तराषाढां वामोरौ तदनन्तरम् ॥१०॥
मकारयुक्तं श्रवणं दक्षजानुनि विन्यसेत्। यरान्वितां धनिष्ठां च वामजानुनि विन्यसेत्॥ ११॥
लकारेण युतां देवि शतभिषां न्यसेत् प्रिये। दक्षजङ्घागतां पश्चात् पूर्वभाद्रपदां तत:॥ १२॥
वशवर्णात्मिकां न्यसेद् वामजङ्घागतां क्रमात्। षसहस्थोत्तराभाद्रपदां दक्षिणपादके ॥ १३॥
क्षकारेण तथा बिन्दुविसर्गाभ्यां च रेवतीम्। वामपादतले न्यस्य योगिनीन्यासमारभेत्॥ १४॥

इति। ध्यानमाह ज्वलदित्यादि पूर्ववत्। इति नक्षत्रन्यास:॥ अथ योगिनीन्यास:— तन्त्रान्तरे—

विशुद्धौ षोडशारे तु डाकिनीं भावयेत् सुधी:। त्वग्धातुदेवतां कण्ठे सर्वकामार्थसिद्धये॥ १॥

रक्तां रक्तत्रिनेत्रां पशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां
वामे खेटं दधानां चषकमपि सुरापूरितं चैकवक्त्राम्।
अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथनीं[3] पायसान्ने प्रसक्तां
कण्ठस्थानेऽमृताद्यै: परिवृतवपुषं भावयेड्डाकिनीं ताम्॥२॥

डांडींडूंडैं ततो डोंडौं डमलेति वरेति च। यूं डाकिनीपदं प्रोक्त्वा मां रक्षद्वितयं वदेत्॥३॥
सर्वसत्त्ववशं प्रोक्त्वा करि देवि तत: परम्। आगच्छद्वितयं प्रोक्त्वा इमां पूजां तथैव च।॥४॥
गृह्णद्वयं वाग्भवं च घोरे देवि तत: परम्। मायाबीजं भृगु: सर्गी परमेति तत: परम्॥५॥

---

१. 'मेधया' क. ख. पाठ:। २. 'युग्मायुग्म' ख. पाठ:। ३. 'थिनीं' क. पाठ:।

घोरेहूं घोररूपे च एह्येहीति नमः पदम्। चामुण्डे डरलान्ते च कस[1] हैं श्रीमहात्रि च।। ६।।
पुरसुन्दरि देवीति विच्चेन्त[2] वरदे[3] पदम्। स्वरान् विशुद्धपीठस्थे विशुद्धान्ते तु डाकिनि।।७।।
विशुद्धनाथदेवश्रीपादुकां पूजयामि च। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च कर्णिकायामिमं न्यसेत्।।८।।
ततः षोडशपत्रेषु पूर्वाद्यक्षरपूर्विकाः। अमृतादिकशक्तीस्तु विन्यसेत् ता यथाक्रमम्।। ९।।
अमृताकर्षिणीन्द्राणीशान्युमा चोर्ध्र्वकेशिनी। ऋद्धिदा च ततो ऋूषा लृकारा च ततः परम्।।१०।।
लॄषा चैकपदा चैश्वर्यात्मिकौंकारिणी ततः। तथौषधात्मिका चैवाम्बिका चाप्यक्षरसत्मिका।।११।।
अमृतादिकशक्तीनां डाकिनीसदृशं वपुः। तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने ।।१२।।
अनाहते द्वादशारे राकिणीं रक्तधातुगाम्। ध्यायेत् तत्कर्णिकामध्ये साधकः सर्वसिद्धये।।१३।।

श्यामां शूलाब्जहस्तां डमरुकसहितां तीक्ष्णचक्रं वहन्तीं
द्व्यास्यां रक्तत्रिनेत्रां भ्रुकुटिवलिलसद्दष्टदन्तप्रभाभिः।
दीप्तां तां देवदेवीं हृदयकमलगां रक्तधात्वेकनाथां
शुद्धान्नेषु प्रसक्तां मधुमदमुदितां भावयेद् राकिणीं ताम्।। १४।।

तत्तदक्षरतत्स्थानतदन्तपद[4]योजनात् । पूर्ववन्मन्त्रमुच्चार्य कर्णिकायां न्यसेद् बुधः।। १५।।
परितः कालरात्र्यादिशक्तीस्तद्वर्णपूर्विकाः। न्यसेद् द्वादशपत्रेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम्।। १६।।
कालरात्रिश्च खातीता गायत्री च ततः परम्। घण्टाधारिणिका चैव ततो ङार्णात्मिका पुनः।।१७।।
चामुण्डाच्छाया जया झङ्कारिणी ञार्णात्मिका पुनः। टङ्कहस्ता च ठङ्कारिण्येताः पूर्वादि विन्यसेत्।।१८।।
कालरात्र्यादिशक्तीनां राकिणीसदृशं वपुः। तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने।। १९।।
मणिपूरे दशदले लाकिनीं मांसधातुगाम्। ध्यायेत् तत्कर्णिकामध्ये साधकः सर्वसिद्धये।।२०।।

कृष्णां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनसहितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं च दण्डाभयवरददरान् दक्षवामे दधानाम्।
ध्यात्वा नाभिस्थपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं तां
मांसस्थां गौडभक्तोत्सुकहृदयवतीं चिन्तयेत् साधकेन्द्रः।।२१।।

मन्त्रं प्राग्वत् प्रविन्यस्य डामर्यादीन् प्रविन्यसेत्। डामरी ढंकारिणी च णकारिण्यथ तामसी।।२२।।
स्थानदेवी च दाक्षायण्यथ धात्री तथैव च। नन्दा च पार्वती फट्कारिण्येता दशपत्रगाः।।२३।।
डामर्यादिकशक्तीनां लाकिनीसदृशं वपुः। तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने ।। २४।।
स्वाधिष्ठाने रसदले काकिनीं भावयेत्सुधीः। मेदोधातुस्थदेवेशीं परिवारसमन्विताम्।। २५।।

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदलललिते वेदवक्त्रां त्रिनेत्रां
पीताभां धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालाभयान्यात्तगर्वाम्[5]।

१.'म' क. 'ल' ग.पाठः। २.'तु' ख.पाठः। ३.'दं' क.ख.पाठः। ४.'परि' ख.पाठः। 'तद्धातुपद' ग. पाठः। ५.'पीतवर्णाम्' ग.पाठः।

मेदोधातुप्रतिष्ठामलिमदमुदितां बन्धिनीत्यादियुक्तां[1]

दध्यन्ने सक्तचित्तामभिमतफलदां काकिनीं भावयेत्ताम्।।२६।।

बन्धिनी भद्रकाली च महामाया यशस्विनी। रमा तथा च लम्बोष्ठी षड्दले पूर्ववन् न्यसेत्।।२७।।

बन्धिन्यादिकशक्तीनां काकिनीसदृशं वपुः। तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने।।२८।।

मूलाधारे वेददले शाकिनीमस्थिधातुगाम्। परिवारयुतां देवीं कर्णिकायां तु भावयेत्।।२९।।

देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनविलसत्पञ्चवक्त्रां सुदंष्ट्रां

हस्ताम्भोजेषु चापं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।

मूलाधारस्थपद्मे निखिलपशुजनोन्मादिनीमस्थिसंस्थां

मुद्गान्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां चिन्तयेत् शाकिनीं ताम्[2]।।३०।।

वरदा शशिनी षण्डा चतुर्थी स्यात्सरस्वती। चतुर्दलेषु पूर्वादि न्यसेदेतास्तु साधकः।।३१।।

वरदादिकशक्तीनां शाकिनीसदृशं वपुः। तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने।। ३२।।

आज्ञायां द्विदले पद्मे या मज्जाधातुदेवता। ध्यात्वा तां कर्णिकामध्ये तन्मन्त्रं तत्र विन्यसेत्।।३३।।

भ्रूमध्ये बिन्दुपद्मे द्विदलसुललिते शुक्लवर्णा कराब्जै–

र्बिभ्राणां ज्ञानमुद्रां डमरुकसहिता[3] मक्षमालां कपालम्।

षड्वक्त्रां मज्जसंस्थां त्रिनयनललितां हंसवत्यादियुक्तां

हारिद्रान्ने प्रसक्तां सकलसु[4]रनुतां हाकिनीं भावयेत्ताम्।।३४।।

हंसवत्यै क्षमावत्यै नम इत्यपि विन्यसेत्। दलद्वये क्रमाद् देवि तत्तदक्षरपूर्वकम् ।।३५।।

हंसवत्यादिशक्त्योस्तु हाकिनीसदृशं वपुः। तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने ।।३६।।

ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्णिकायां तु याकिनीम्। तां शुक्रधातुगां देवीं ध्यायेत् सावरणां शुभाम्।।३७।।

मुण्डव्योमस्थपद्मे सकलदलयुते याकिनीं भैरवीं तां

यक्षिण्याद्यां समस्तायुधकलितकरां सर्ववर्णां समष्टिम्।

डादीनां सर्ववक्त्रां सकलसुखकरीं सर्वधातुस्व[5]रूपां

सर्वान्ने सक्तचित्तां परशिवरसिकां भावयेत् सर्वरूपाम्।। ३८।।

तन्मन्त्रं पूर्ववन्न्यस्य परितोऽप्यमृतादिकाः। अमृतादिकशक्तीनां याकिनीसदृशं वपुः।।३९।।

तत्समानायुधादीनि न्यासपूजनचिन्तने।

इति योगिनीन्यासः।। अथ राशिन्यासः –

प्राणानायम्य मूलेन राशीनां ध्यानमाचरेत्। रक्तं श्वेतं हरिद्वर्णं पाण्डुं चित्रं सितं स्मरेत्।।१।।

पिशङ्गकपिलौ कद्रुकर्बुरारुणधूमलान् ।अकारादिचतुष्केण विन्यसेत् सुरवन्दिते।। २।।

१.'पूर्वशक्तिम्' ग. पाठः। २.'तां प्रसन्नाम्' ग. पाठः। ३.'तां मस्त; ग. पाठः। ४.'सुखकरीं' ग. पाठः। ५.'स्थ' ग. पाठः।

मेषं दक्षिणपद्गुल्फे ततो द्वन्द्वेन वै वृषम्। न्यसेज्जानुनि वेदैस्तु मिथुनं वृषणे ततः।।३।।
द्वाभ्यां कर्कटकं कुक्षौ द्वाभ्यां स्कन्धे च सिंहकम्। अनुस्वारविसर्गाभ्यां शवर्गेण च कन्यकाम्।।४।।
दक्षिणे तु शिरोभागे विन्यसेद्वीरवन्दिते। तथा वामे शिरोभागे कवर्गेण तुलाभृतम्।।५।।
चवर्गेण तथा स्कन्धे वृश्चिकं विन्यसेत् प्रिये। टवर्गेण तथा कुक्षौ धन्विनं विन्यसेत् प्रिये।।६।।
मकरं तु तवर्गेण वृषणे वामके न्यसेत्। पवर्गेण तथा कुम्भं वामजानुनि विन्यसेत्।।७।।
यवर्गेण क्षकारेण मीनं गुल्फे तु वामके। तथा—

प्राणापानोदानव्यानसमानाः पञ्च वायवः। मेषाद्या राशयो ज्ञेयाः पञ्च सिंहावसानकाः ।। ८।।
तथा नागश्च कूर्मश्च कृकलो देवदत्तकः। धनञ्जय इति प्रोक्ताः कन्याद्याः पञ्च राशयः ।। ९।।
जीवात्मपरमात्मानौ कुम्भमीनौ प्रकीर्तितौ। न्यस्तव्या मन्त्रिभिः सिद्ध्यै तदाद्या रविराशयः।।१०।।

इति राशिन्यासः।। अथ पीठन्यासः—

अथ पीठानि विधिना न्यसेत् सर्वमयानि हि। सितासितारुणश्यामहरितपीतान्यनुक्रमात् ।। १।।
पुनःपुनः क्रमाद् देवि पञ्चाशत्स्थानसंचये। पीठानि संस्मरेद्विद्वान् सर्वकामार्थसिद्धये।। २।।

"कामरूपं महापीठ" मित्यादिपीठमातृकोक्तक्रमो बोद्धव्य इति पीठन्यासः।। इति पूर्वषोढान्यासः समाप्तः।।

अथ कामरतिन्यासः—

केवलां मातृकां न्यस्य कामभक्तो भवेद्यदि। कामशक्तिसमायुक्तां मातृकां विन्यसेत् सुधीः।।१।।
संमोहन ऋषिश्चैव जगती छन्द उच्यते। श्रीकामशक्तयो देवि देवताः परिकीर्तिताः।।२।।
क्लीं बीजं च नमः शक्तिर्मातृका कीलकं स्मृतम्। षट्दीर्घकामबीजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।।३।।
अथ कामा वरारोहे दाडिमीकुसुमप्रभाः। वामाङ्गशक्तिसहिताः पुष्पबाणेक्षुकार्मुकाः ।।४।।
शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः। नीलोत्पलकरा ध्येयास्त्रैलोक्याकर्षणक्षमाः ।।५।।

इति ध्यात्वा। ४ अं कामाय रत्यै नमः इत्यादि कामरतिमातृकोक्तक्रमेण न्यसेदिति कामरतिमातृकान्यासः।।

अथ श्रीचक्रन्यासस्तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

एवं षोढा पुरा कृत्वा कामरत्यादिकं न्यसेत्। ततः श्रीचक्रविन्यासः कर्तव्यः शिवताप्तये।। १।।
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याश्चक्रन्यासं शृणु प्रिये । यन्न कस्यचिदाख्यातं तनुशुद्धिकरं परम्।।२।।

श्रीरुद्रयामले—

शरीरं चिन्तयेदादौ निजं श्रीचक्ररूपकम्। त्वगाद्याकारनिर्मुक्तं ज्वलत्कालाग्निसत्प्रभम्[1]।।१।।इति।
ऋषिच्छन्दोदैवतानि स्मृत्वा न्यासं समाचरेत्। अनुलोमविलोमस्थबालया स्यात् षडङ्गकम्।।१।।
द्वादशान्ते चिदाकाशे शिवशक्त्यात्मकं गुरुम्। परतेजोमयं ध्यायेद्भोगमोक्षफलाप्तये।।२।।

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि।।३।।

---

१. 'संनिभम्' ख. पाठः।

वामजानौ गणेशानां वामांसे क्षेत्रपालकम्। योगिनीं दक्षिणे जानौ स्कन्धे वटुकभैरवम्।। ४।।
न्यसेद् दक्षपदाग्रेऽथ शक्रं वाथ हुताशनम्। दक्षजानौ यमं पश्चाद् दक्षपार्श्वे न्यसेद् बुधः।। ५।।
दक्षांसे निर्ऋतिं पश्चाद्वामांसे वरुणं ततः। वामपार्श्वे समीरं च वामजानौ धनाधिपम्।। ६।।
ईशानं वामपादाग्रे ब्रह्माणं ब्रह्मरन्ध्रतः। अनन्तं विन्यसेन्मन्त्री मूलाधारे समाहितः।। ७।।
चतुरस्रादिरेखायै नम इत्यादितो न्यसेत्। दक्षांसपृष्ठपाण्यग्रस्फिक्पादाग्राङ्गुलीष्वथ ।। ८।।
वामपादाङ्गुलि, स्फिक्पाण्यग्रे चांसकूटके। सचूलीतल, पृष्ठेषु व्यापकत्वेन सुन्दरि।।९।।
सिद्धीस्तदन्तरालस्था व्यापकत्वेन विन्यसेत्। चतुरस्रमध्यरेखायै नम इत्यापि वल्लभे।। १०।।
विन्यस्य तस्याः स्थानेषु ब्रह्माण्याद्यास्तथाष्टसु। इति।

श्रीरुद्रयामले—

कैलासशिखरासीनं शिवं पप्रच्छ पार्वती। श्रीचक्रन्यासकवचं ब्रूहि मे देव शङ्कर।। १।।

शङ्कर उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि लोकानां हितकाम्यया। श्रीचक्रन्यासकवचं प्रस्फुटं कथयामि ते।।२।।
शरीरं चिन्तयेदादौ निजं श्रीचक्ररूपकम्। त्वगाद्याकारनिर्मुक्तं ज्व'लत्कालाग्निसत्प्रभम्।।३।।
द्वादशान्ते चिदाकाशे शिवशक्त्यात्मकं गुरुम्। परतेजोमयं ध्यायेद्भोगमोक्षफलाप्तये।।४।।
गणेशो जानु (मे?नी) पातु वामांसं क्षेत्रनायकः। योगिन्यो दक्षिणं (पान्तु) स्कन्धं वटुकभैरवः।।५।।
दक्षपादाग्रमिन्द्रो मे पात्वग्निर्दक्षजानुकम् । दक्षपार्श्वं यमः पातु दक्षांसं निर्ऋतिर्मम।।६।।
वरुणः पातु वामांसं वामपार्श्वं समीरणः। वामजानु धनाध्यक्षो वामपादाग्रमीश्वरः ।।७।।
ब्रह्मरन्ध्रं विधिः पातु मूलाधारमनन्तकः । चतुरस्रादिरेखायै नम इत्याद्यनुक्रमात् ।।८।।
व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि । निधिवाहनमारुढा वराभयकराम्बुजाः ।।९।।
पद्मरागप्रतीकाशाः प्रसीदन्त्वणिमादयः । दक्षांसपृष्ठमणिमा कराग्रं² लघिमावतु ।। १०।।
दक्षस्फिचं तु महिमा ईशित्वं चरणाग्रकम्। वशित्वं वामपादेऽव्यात् प्राकाम्यं स्फिचकेतरे।।११।।
इच्छासिद्धिस्तु वामांसं कराग्रं³ भुक्तिसिद्धिका। रससिद्धिः शिरो मेऽव्याच्छिरः पृष्ठं तु मोक्षदा।।१२।।
चतुरस्रमध्यरेखायै नम इत्याद्यनुक्रमात् । व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि।। १३।।
(पादाङ्गुष्ठौ तु ब्रह्माणी माहेशी दक्षपार्श्वकम्। कौमारी च शिरः पातु वैष्णवी वामपार्श्वकम्।।१४।।
वामजानुनि वाराही चेन्द्राणी दक्षजानुनि। चामुण्डा पातु दक्षांसे महालक्ष्मीस्तु वामके।। १५।।
चतुरस्रान्तरेखायै नम इत्याद्यनुक्रमात्। व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि।। १६।।)
मुद्रादेव्यः प्रसीदन्तु वराभयकराम्बुजाः । भक्तानुग्रहसंधानदेवतामोदहेतवे।। १७।।
पादाङ्गुष्ठद्वयं मुद्रा सर्वसंक्षोभिणी मम । सर्वविद्राविणी मुद्रा पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम्।। १८।।

१. 'कुल' ग. पाठः। २. 'वराङ्गं' ग. पाठः। ३. 'इच्छासिद्धिर्वराङ्गं तु वामाङ्गं भुक्ति' ग. पाठः।

आकर्षिणी मूर्ध्नि देशं वामपार्श्वं वशङ्करी। उन्मादिनी वामजानुं दक्षजानुं महाङ्कुशा।। १९।।
सव्यांसं खेचरी पातु वामांसं बीजमुद्रिका। त्रिखण्डा द्वादशान्तं तु योन्यङ्गुष्ठद्वयं पदोः।।२०।।
हृन्मध्यं त्रिपुरा पातु सिद्धिमुद्रासमन्विता। सर्वाशापूरकं ङेन्तं षोडशाराय वै नमः।।२१।।
व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि। कलादेव्यः प्रसीदन्तु पाशाङ्कुशकरोद्यताः।।२२।।
रक्ताङ्ग्यो रक्तवसनाः सर्वाभरणभूषिताः। कामाकर्षिणिका पातु कर्णपृष्ठं तु दक्षिणम्।।२३।।
बुद्ध्याकर्षिणिका नित्या रक्षताद्[1] दक्षिणांसकम्। अहङ्काराकर्षिणी मे कूर्परं पातु दक्षिणम्।।२४।।
दक्षिणं पाणिपृष्ठं मे शब्दाकर्षिणिकावतु । स्पर्शाकर्षिणिका पायाद्दक्षिणोरुतटं मम।।२५।।
रूपाकर्षिणिका जानु रसाकर्षी तु गुल्फकम्। गन्धाकर्षिणिका रक्षेद् दक्षपादतलं मम।।२६।।
वामपादतलं देवी चित्ताकर्षिणिकावतु। पादाधोयावता गुल्फं धैर्याकर्षिणिकावतु।। २७।।
स्मृत्याकर्षिणिका जानुं वामोरुं नामकर्षिणी। बीजाकर्षिणिका पातु करपृष्ठमदक्षिणम्।।२८।।
कूर्परं पातु मे सव्यमात्माकर्षणकारिणी। अमृताकर्षिणी वामांसं शरीराकर्षिणी श्रुतिम्।।२९।।
सिद्धिमुद्रान्विता यावद्धृन्मध्यं त्रिपुरेश्वरी। सर्वसंक्षोभणं ङेन्तं चक्राय नम इत्यपि।।३०।।
व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि। अनङ्गकुसुमादेव्यः प्रसन्ना रक्तकञ्चुकाः।।३१।।
वेणीकृतजगत्केशाः शरकार्मुकपाणयः । अनङ्गकुसुमा पातु दक्षशङ्खं सदा मम।।३२।।
अनङ्गमेखलादेवी त्रायतां दक्षजानुकम्। अनङ्गमदनाशक्तिरूरुं पायात् सदा मम।।३३।।
गुल्फमध्यान्तरं मेऽव्यादनङ्गमदनातुरा । अनङ्गरेखा वा माङ्गं रक्षतां गुल्फमन्तरम्।। ३४।।
अनङ्गवेगिनी पायादूरुप्रान्तं सदा मम। ममानङ्गाङ्कुशा जानुदेशं रक्षतु वामकम्।।३५।।
अनङ्गमालिनी शङ्खं वामे रक्षतु मेऽनिशम्। सुन्दरी सिद्धिमुद्राभ्यां पातु मे हृदयान्तरम्।।३६।।
सर्वसौभाग्यदं ङेन्तं चक्राय नम इत्यापि। व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि।।३७।।
शक्तिदेव्यः प्रसीदन्तु बाणकार्मुकपाणयः । सर्वाभरणसंपन्ना वैडूर्यमणिरोचिषः ।। ३८।।
सर्वसंक्षोभिणी फालं तदन्तं द्राविणी मम। दक्षिणं पालयेद् गण्डं सर्वाकर्षिणिका सदा।।३९।।
सर्वाह्लादकरी दक्षमंसान्तं पातु मे सदा। सर्वसंमोहनीशक्तिः पार्श्वान्तं पातु दक्षिणम्।।४०।।
सर्वसंस्तम्भिनी रक्षेद्दक्षमूरुं तु पृष्ठकम्। जङ्घान्तं जृम्भिणी दक्षं वामं सर्ववशङ्करी।।४१।।
रञ्जिनी वामपूर्वं तु पृष्ठं पालयतान्मम। पार्श्वान्तं सर्वमव्यान्मे सर्वोन्मादनकारिणी।।४२।।
सर्वार्थसाधिनी पायादंसान्तं दक्षिणेतरम्। वामं पातु कपोलं मे सर्वसंपत्प्रपूरणी।।४३।।
सर्वमन्त्रमयी भालं वामभागं ममावतु । पालयेद् द्वारकूपं मे सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी ।।४४।।
त्रिपुरवासिनी सिद्धिमुद्राभ्यां पातु हृन्मम। सर्वार्थसाधकं ङेन्तं चक्राय नम इत्यपि।।४५।।
व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि। दश देव्यः प्रसीदन्तु सर्वसिद्धिप्रदायिकाः।।४६।।

---

१. 'रक्षिका' ग. पाठः।

कुन्दमन्दारहाराभा वराभयकराम्बुजाः। सर्वसिद्धिप्रदा मेऽव्याद्दक्षिणेक्षणकोणकम् ॥ ४७॥
पालयेन्नासिकामूलं सर्वसंपत्प्रदा मम। नित्यं रक्षतु वामाक्षिकोणं सर्वप्रियङ्करी ॥ ४८॥
रक्षेत् कुक्षिं सकोणं मे सर्वमङ्गलकारिणी। तथैव कुक्षिवायव्यं सर्वकामप्रदावतु॥ ४९॥
वामजान्वन्तरं पातु सर्वदुःखविमोचनी। सर्वमृत्युप्रशमनी दक्षिणं जानुकान्तरम् ॥ ५०॥
सदा पायादपानं मे सर्वविघ्ननिवारिणी। सर्वाङ्गसुन्दरी देवी रक्षतात् कुक्षिनैर्ऋतम् ॥ ५१॥
आग्नेयं पालयेत् कुक्षिं सर्वसौभाग्यदायिनी। हृन्मध्यं त्रिपुराश्रीर्मे सिद्धिमुद्रान्वितावतु॥ ५२॥
सर्वरक्षाकरं ङेन्तं चक्राय नम इत्यपि। व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि ॥ ५३॥
अन्तर्दशारवासिन्यः प्रसीदन्तु ममानिशम्। देव्यः स्फटिकसंकाशाः पुस्तकाक्षालिबाहवः॥५४॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च दक्षिणघ्राणसृक्विणी। सर्वैश्वर्यप्रदा ज्ञानमयी च स्तनमुष्ककौ ॥ ५५॥
सीवनीमनिशं पातु सर्वव्याधिविनाशिनी। वामं मे वृषणं पातु सर्वाधारस्वरूपिणी॥ ५६॥
सर्वपापहरानन्दमयी च स्तनसृक्विणी। वामनासापुटं पातु सर्वरक्षास्वरूपिणी ॥ ५७॥
अग्रदेशं नासिकायाः सर्वेप्सितफलप्रदा। हृत्पद्मं सिद्धिमुद्राभ्यां पातु त्रिपुरमालिनी॥ ५८॥
सर्वरोगहराष्टारचक्राय नम इत्यपि । व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि॥ ५९॥
वाग्देव्यो नः प्रसीदन्तु सिन्दूरकनकाम्बराः। पुस्तकाक्षालिविलसद्वरदाभीतिबाहवः॥६०॥
दक्षिणं चिबुकस्यांशं वशिनी पातु सर्वदा। कण्ठं कामेश्वरी दक्षं हृदयं पातु मोदिनी॥ ६१॥
विमला दक्षिणं नाभेस्तद्वाममरुणावतु। हृद्वामं जयिनी पातु कण्ठं सर्वेश्वरी तथा॥ ६२॥
कौलिनी चिबुकं सिद्धा त्रिपुरा हृदयाम्बुजम्। सर्वसिद्धिप्रदान्तरालचक्राय नम इत्यपि॥ ६३॥
व्यापकत्वेन विन्यसेत् कुसुमाञ्जलिमीश्वरि। कामकामेश्वरीबाणचापपाशाङ्कुशाः क्रमात्॥ ६४॥
परितो हृदि कोणस्य चतुरस्रं ममावतु। महामोक्षप्रदां योनिं हृदयोपरि राजिताम्॥ ६५॥
कामेश्वर्यादिकं पातु नित्याषोडशकं मम। कामप्रदा रुद्रशक्तिः कामरूपनिवासिनी॥ ६६॥
अग्रकोणं महायोनेः पातु कामेशवरी मम। धर्मदा वैष्णवी शक्तिर्जालन्धकृतमन्दिरा॥ ६७॥
दक्षकोणान्तरं योनेः पायान्मे वैष्णवी सदा। अर्थदा वैष्णवीशक्तिः पूर्णशैलकृतालया॥ ६८॥
वामकोणान्तरं पातु सुभगा भगमालिनी। त्रिपुराम्बा योनिमध्यं सिद्धिमुद्रा ममावतु॥ ६९॥
उड्यानपीठनिलया परब्रह्मस्वरूपिणी। पञ्चश्रीकोशकल्पद्रुकामधुग्रत्नदैवतैः ॥ ७०॥
मण्डितासनसंस्थाना सर्वदर्शनसंस्थिता। स्तुता षडङ्गदेवीभिश्चतुः समयपूजिता ॥ ७१॥
महासौभाग्यजननी महामोक्षप्रदायिनी। हृदि दोरन्तरं पातु महात्रिपुरसुन्दरी॥ ७२॥
सैव चक्रेश्वरी देवी सिद्धिमुद्रासमन्विता। आपादमस्तकं देवी पातु त्रिपुरभैरवी॥ ७३॥
एतत्ते कवचं भद्रे रहस्यं सर्वकामदम्। तुरीयविद्यामुच्चार्य परब्रह्मस्वरूपिणी॥ ७४॥

श्रीमहात्रिपुरशून्याशून्यवर्जितशक्तिपरबैन्दवचक्रवासिन्यनाख्याभासाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः तत्रैव नवचक्रेश्वरीः पूजयेत्। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं त्रिपुरशून्याशून्यपरबैन्दवचक्रवासिन्यनाख्याभासा श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

इति विन्यस्य स्वमुद्रां प्रदर्शयेत्।

यत्र कस्यचिदाख्यातं तदद्य प्रकटीकृतम्। य इदं विन्यसेद् देहे साधकः स्थिरमानसः।। ७५।।
विमुच्य मानुषं भावं स सद्यः शिवतां व्रजेत्। त्रिकालं भावयेद्यस्तु तस्य सर्वाङ्गसंगतम्।। ७६।।
आमस्तं योगिनीवृन्दं स्फुरद्रूपं प्रकाशते। भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्बाधितुं नैव शक्यते ।। ७७।।
सिद्धवद्विचरेल्लोके तापत्रयविवर्जितः। यत्र योगी स्मरेदेतत् तस्मादारभ्य सर्वतः।। ७८।।
धरणी क्षेत्रतां याति यावद् द्वादशयोजनम्।

इति श्रीरुद्रयामले श्रीचक्रन्यासकवचम्। इति संहारश्रीचक्रन्यासः।। अथ सृष्टिचक्रन्यासः–सच मूलदेव्याद्यणिमान्तः। तत्र क्रममाह योगिनीहृदये—

मूलदेव्यादिकं न्यासमणिमान्तं पुनर्न्यसेत्। शिरस्त्रिकोणे पूर्वादि कामेश्वर्यादिकं न्यसेत्।। १।।
बाणा नेत्रे भ्रुवौ चापौ कर्णौ[१] पाशद्वयं पुनः। सृणिद्वयं च नासाग्रं[२] दक्षिणाद्यं च विन्यसेत्।।२।।
मुण्डमालाक्रमेणैव न्यसेद्वाग्देवताष्टकम् । बैन्दवादीनि चक्राणि न्यस्तव्यानि वरानने।।३।।
नेत्रमूले त्वपाङ्गे च कर्णपूर्वोत्तरे तथा । चूलिकायाश्च[३] निम्नार्धे शेषार्धे कर्णपृष्ठके[४]।।४।।
कर्णमूले त्वपाङ्गे च तस्य मूले च विन्यसेत्। सर्वसिद्ध्यादिकं कण्ठे प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्।।५।।
हृदये मनुकोणस्थाः शक्तयोऽपि च पूर्ववत्। नाभौ त्वष्टदलं तत्र[५] वंशे वामे च पार्श्वयोः।।६।।
उदरे सव्यपार्श्वे च न्यसेदादिचतुष्टयम् । वंशवामान्तरालादि न्यसेदन्यचतुष्टयम् ।। ७।।
स्वाधिष्ठाने न्यसेत् स्वस्य पूर्वाद्द क्षावसानकम्। मूलाधारे न्यसेन्मुद्रादशकं साधकोत्तमः।।८।।
पुरः सव्ये च वंशे च वामे चैवान्तरालके। ऊर्ध्वाधो दश मुद्राश्च ऊर्ध्वाधोवर्जितं पुनः।।९।।
ब्रह्माण्याद्यष्टकं दक्षजङ्घायां ताश्च पूर्ववत्। वामजङ्घां समारभ्य वामादिक्रमतोऽपि वा।। १०।।
ब्रह्माण्याद्यष्टकं न्यसेच्छेष[८] द्वयं पादतले न्यसेत्। कारणात् प्रसृतं न्यासं दीपाद् दीपमिवोदितम्।।११।।
एवं विन्यस्य देवेशि स्वाभेदेन विचिन्तयेत्।

इति समष्टिरूपेण महाचक्रस्य संहारक्रमन्यासमुक्त्वा सृष्टिक्रमेणाह—मूलदेव्यादिकमिति। एवं चेत् क्रियते तदा न्यासः सृष्टिक्रमेण भवति, तं पुनर्न्यसेदित्यर्थः। तत्र प्रकारमाहशिर इत्यादि। शिरसि कल्पितत्रिकोणः शिरस्त्रिकोणस्तस्मिन् कामेश्वर्यादिकं बीजदेवीत्रयं न्यसेदित्यर्थः। केन क्रमेणेत्यत आहपूर्वादीति। पूर्वश्चात्र मस्तकाग्रभागस्तदादि यथा स्यात्। तेन ललाटाभिमुखस्त्रिकोणः कल्पनीय इत्यायातम्। स च श्रीचक्रनिर्माणक्रमेण यथायोग्यविन्यासरेखो भवति तथाष्टारपर्यन्तं कल्पनीय इति भावः। तथा च सति शिरोपेक्षया पूर्वाग्रं त्रिकोणं जातमिति, पश्चिमकोणे आग्नेयकोणे ईशानकोणे इति वा भविष्यति। तत्राद्ये पूर्वादिति प्रादक्षिण्येनेत्यर्थः। अन्त्येऽप्रदक्षिणमित्यर्थः। तेन पश्चिमाद्यप्रदक्षिणमिति तन्त्रराजमतमायातम्। तेन सह योगिनीहृदयस्यैकवाक्यतयैवमेव न्यासः कार्य इति कश्चित्। चतुःशत्येकवाक्यतया पूर्वमतद्वयेन न्यासः कार्य

---

१. 'बाणान्नेत्रे भ्रुवोःचापौ कर्णे' ख. पाठः। २. 'ग्रे' ख. पाठः। ३. 'चूडादिके' ख. पाठः। ४. 'पृष्ठयोः' ग. पाठः।
५. 'तत्तु' ग. पाठः। ६. 'के' ग. पाठः। ७. 'पुनः' ग. पाठः। ८. 'तेषु' ग. पाठः।

इति कश्चित्। वस्तुतस्त्वयं पक्षः समीचीनः पूर्वचतुःशत्या तात्पर्यग्राहकत्वादस्येति संक्षेपः। आयुधन्यासे स्थानविशेषमाह—बाणा इत्यादि। बाणाः पञ्चबाणाः शिवस्य शक्त्याश्चेति द्विविधाः नेत्रे नेत्रद्वयस्वरूपा इत्यर्थः। नेत्रे इति द्विवचनं तेन दक्षनेत्रं कामेश्वरबाणाः वामनेत्रं कामेश्वरीबाणाः एवं दक्षभ्रूः कामेश्वरचापः, वामभ्रूः कामेश्वर्यचापः, दक्षकर्णः कामेश्वरपाशः वामकर्णः कामेश्वरीपाशः, दक्षनासापुटाग्रं कामेश्वराङ्कुशः वामनासापुटाग्रं कामेश्वरीङ्कुशः, इति तत्र तत्रैव तान् न्यसेदित्यत आह—दक्षिणाद्यमित्यादि। अत्र यद्यपि त्रिकोणाष्टारयोर्मध्यमायुधस्थानमिति पूर्ववदपि तत्रैव न्यास उपपद्यते तथापि सृष्टिक्रमेण स्वरमूर्तीनां सांनिध्यात् तत्रैवायुधानां न्यासो युक्त इतीश्वराज्ञा। एवं षोडशनित्यानामपि स्वरमूर्तित्वात् सृष्टिक्रमे तत्स्थानामपि संनिधानात् तेष्वेव तासां न्यासो युक्त इतीश्वरेच्छा मन्तव्या। श्रीविद्यान्यासस्थानस्य पृष्ठतः स्वस्थान एव गुरुपङ्क्तयो न्यस्तव्याः, ततः षोडशनित्यामण्डल इति क्रमः सृष्टिक्रमन्यासे, अन्यत्र तु पूर्वोक्तक्रम एवेति। ज्ञानार्णवे—

श्रीविद्यां ब्रह्मरन्ध्रे तु पृष्ठतो गुरवः क्रमात्। तिथिनित्यास्ततो देवीं मातृकास्वरसंयुताः।। १ ।।
मातृकावन्न्यसेद्वक्त्रे सर्वसौभाग्यदायिनी। अःस्वरे परमेशानि श्रीविद्यां विश्वमातृकाम्।। २ ।।
स्वरवद्विन्यसेन्नित्यां नीरजायतलोचने।

इत्ययं न्यासः सृष्टिश्रीचक्रन्यासान्तर्गतः स्वतोऽपीति मन्तव्यम्।। अथाष्टारन्यासक्रममाह-मुण्डमालेति। मुण्डोमस्तकः, मुण्डे माला मुण्डमाला तस्याः क्रमेण प्रतिपाद्येत्यर्थः। तेन ललाटोर्ध्वकोणादितः पूर्वादिप्रादक्षिण्येन शिरोनवयोगिनीचक्रीत्याष्टकोणेषु मालाक्रमेण वाग्देवताष्टकं न्यसेदिति भावः। ननु बिन्दुचक्रन्यासं कथं कुर्यादित्यत आह—बैन्दवादीनीति। बैन्दवं सर्वानन्दमयं महाबिन्दुचक्रं तदेवादिर्येषां तानि यथाचक्राणि त्रिकोणादीनि बैन्दवादीनि कृत्वा न्यस्तव्यानीति सम्बन्धः। आदौ बिन्दुचक्रं न्यस्य पश्चात् त्रिकोणादीनि न्यसेदिति भावः। तर्हि बिन्दुचक्रन्यासः कथं प्रथमं नोक्त इति चेत्? न, तस्यावच्छेदकत्वात् त्रिकोणस्य, त्रिकोणमध्यं हि बिन्दुचक्रं तेन विना कथं तदुपपद्यताम्। तेनायं कलितार्थः परिपाटीविशेषः प्रथमं शिरसि त्रिकोणं विचिन्त्य तन्मध्ये "सर्वानन्दमयचक्राय नमः" इति व्यापकं कृत्वा तद्बिन्दुत्वेन विचिन्त्य तत्र यथाविधि मूलदेवीं न्यसेत्। ततस्त्रिकोणादौ न्यासः। अतः शिरस्त्रिकोणे इति सिद्धविभक्तिनिर्देशः। केचित्तु तटस्थमेव प्रथमं बिन्दुचक्रं विभाव्य विन्यस्य तद्बाह्यतस्त्रिकोणचक्रं विभाव्य विन्यसेदिति क्रममाहुः। स च नो योगिनीहृदयसंमत इति चिन्त्यम्।। अथान्तर्दशारचक्रस्य न्यासस्थानान्याह—नेत्रमूल इत्यादि। नेत्रस्य दक्षिणनेत्रस्य मूले पूर्वकण्ठे नासिकोपकण्ठ इति यावत्, तस्यैवापाङ्ग अञ्चले कर्णोपकण्ठे इति यावत्, कर्णस्य दक्षिणस्य पूर्वोत्तरे पूर्वे मध्ये उत्तरे पृष्ठे, चूलिकायाः चूलाया निम्नार्धे पश्चादर्धे शेषार्धे पूर्वार्धशिरःपृष्ठार्धभागयोरित्यर्थः, इति कश्चित्। चूलिकाया निम्नार्धे चूलिकाया अधस्ताद्यद्निम्नस्थलं घाटासीवनी तस्यार्धे, शेषार्धे वामार्धे तेन स्कन्धसीवन्या दक्षवामभागयोरित्यर्थः इति कश्चित्। अत्र प्रथमभङ्गप्रसङ्ग इति दिक्। कर्णपृष्ठे वामकर्णपृष्ठे, कर्णमूले वामकर्णमध्ये, अपाङ्गे वामनेत्रप्रान्ते तस्य वामनेत्रमूले पूर्वकण्ठे चेति दशसु स्थानेषु चक्रक्रमेण न्यसेत्, सर्वज्ञाद्या दशशक्तीरिति शेषः।। अथ बाह्यदशारचक्रन्यासमाह-सर्वसिद्ध्यादिकमित्यादि। कण्ठे विशुद्धचक्रे अकारादिविसर्गान्तषोडशदले सर्वसिद्ध्यादिकं देवीदशकं पूर्वदलादिप्रादक्षिण्येन न्यसेदित्यर्थः, पद्मस्योर्ध्वमुखत्व-भावनापूर्वकमिति भावः तदा कण्ठकूप एव पूर्वदलमत एवान्तः कण्ठवेष्टनरूप एवायं न्यासो बहिः कण्ठवेष्टनत्वेन न्यसेत्। अथ[1] चतुर्दशारन्यासमाह—हृदय इत्यादि। अनाहतचक्रे कण्ठान्तद्वादशदले मनुकोणस्थाश्चतुर्दशारस्थाः

१ ' ' क. पाठः।

सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशशक्तयोऽपि पूर्ववत् पूर्वदलादिप्रादक्षिण्येन न्यस्तव्या इत्यर्थः।। अथाष्टदलन्यासमाह नाभाविति। भिन्नप्रक्रमे अष्टदलपद्मं नाभौ न्यसेत् ततो[1] बाह्याङ्गवेष्टनत्वेन पूर्ववदन्तर्वेष्टनेनेत्यर्थः। अतो न्यासस्थान-विशेषमष्टदलात्मकमाह-वंशे वामे तदवच्छन्नमेरुदण्डे इत्यर्थः। तेन पृष्ठे पश्चिमदलं वामपार्श्वे उत्तरदलमुत्तरे पूर्वदलं दक्षपार्श्वे दक्षिणदलमिति दिग्दलचतुष्टयेऽनङ्गकुसुमादिचतुष्टयं पश्चिमादप्रदक्षिणं विन्यसेदित्यर्थः। दिग्दलमाह—वंश इति। वामो वामपार्श्वः, वंशश्च वामश्च वंशवामौ तयोरन्तरालं वंशवामान्तरालं वंशवामपार्श्वान्तरालमित्यर्थः। तेन वायव्यदलं जातं, तदेवादिर्यत्र न्यसनक्रियायां तत्तथेति क्रियाविशेषणं, तेन वंशवामान्तरालादिर्यथा स्यात् तथान्यदनङ्गरेखादिचतुष्टयं न्यसेदित्यर्थः। आदिपदेन वामपार्श्वोदरान्तरालमुदरदक्षपार्श्वान्तरालं दक्षपार्श्ववंशान्तरालमिति क्रमेण वायव्येशानाग्नेयनैर्ऋतविदिग्दलचतुष्टयं जातमित्यष्टदलेष्वेवं न्यासः।। अथ षोडशदलचक्रन्यासमाह—"स्वाधिष्ठाने इति" स्वाधिष्ठाने लिङ्गमूले षड्दले स्वस्यात्मनो देहस्य पूर्वभागदलादारभ्याग्नेयदलपर्यन्तं कामाकर्षिण्यादिपञ्चशक्तीर्विन्यस्य, षष्ठे दले शरीराकर्षिणीं षोडशीं शक्तिं न्यसेदिति लिङ्गवेष्टनत्वेन न्यासक्रमः।। अथ त्रैलोक्यमोहनचक्रस्यान्तश्चतुरस्ररेखाया न्यासमाह मूलाधार इत्यादि। मूलाधारे चतुर्दले। तत्र प्रकारमाह—पुर इत्यादि। पुरः पूर्वे देहस्येति शेषः। स्वस्येति चानुवर्तते। सव्ये दक्षिणे, सव्यं स्याद् दक्षवामयोरित्यभिधानात्। वंशे पृष्ठवंशे, वामे वा दले एतद्दलचतुष्टये सर्वसंक्षोभण्यादिमुद्राचतुष्टयं प्रादक्षिण्येन विन्यस्यान्तरालके आग्नेयनैर्ऋत्यवायव्येशानेति दलसंधिचतुष्टये उन्मादिन्यादिमु[2]द्राचतुष्टयं च विन्यस्योर्ध्वमिन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽधस्तयोर्यथाक्रमं खेचरीयोनिमुद्रे न्यसेदिति, दश मुद्राश्चेति।। अथ मध्यमचतुरस्ररेखाया न्यासमाह— ऊर्ध्वाधोवर्जितं पुनरित्यादि। पूर्ववन्मूलाधार इव पूर्वादिप्रादक्षिण्येन चतुर्दिक्षु चतुर्मातॄर्विन्यस्याग्नेयादिचतुरन्तराले वाराह्यादिचतुर्मातॄर्न्यसेदित्यर्थः। अत एवोर्ध्वाधोवर्जितमिति मातॄणामष्टत्वात्।। अथ बाह्यचतुरस्ररेखान्यासमाह—वामजङ्घामित्यादि। वामादिक्रमतः प्रादक्षिण्येनेत्यर्थः। तेन पूर्वादिदिग्दलेषु चतुष्टयं न्यस्याग्रे यादिविदिग्दलेषु चतुष्टयमिति सिद्ध्यष्टकं न्यसेत्। ततोऽवशिष्टसिद्धिद्वयं पादतले वामपादतले चेति न्यसेदित्यर्थः।। सृष्टित्वमस्य प्रतिपादयन्नाह—कारणात् सर्वानन्दमयादित्यर्थः। एवमिति स्वात्मभेदेन ध्यानं कुर्यादित्यर्थः।।

भ्रूमध्ये हृदये नाभौ स्वाधिष्ठाने ततः परम्। मूलाधारे तथैवोरुयुगले जानुनोरपि ।।१।।
जङ्घयोः पादयोश्चैव[3] क्रमाद्विन्द्वादिकेश्वरीः। विन्यसेत् साधकश्रेष्ठस्त्रिपुरान्तः समाहितः।।२।।
ततस्तु व्यापकं कुर्यात् तत्तच्चक्रार्पणा[4]णुना।। इति सृष्टिश्रीचक्रन्यासनिरूपणम्।।

अथ स्थितिचक्रन्यासो निरूप्यते योगिनीहृदये—

ततस्तु करशुद्ध्यादिन्यासं कुर्याद्विचक्षणः। मूर्ध्नि गुह्ये च हृदये नेत्रत्रितय एव च।।१।।
श्रोत्रयोर्युगले देवि मुखे च भुजयोः पुनः। पृष्ठे जानौ च नाभौ च विद्यान्यासं विधाय च।।२।।

इति। मूर्धादिषु विद्यान्यासं विधाय करशुद्ध्यादिविद्यान्यासं कुर्यादित्यर्थः। तत्राधेयाधारभावाच्चक्रचक्रेश्वरीणामपि न्यासो मन्तव्यः। प्रथमं चक्रेश्वरीविद्यादिन्यासं कुर्यादित्यर्थः। तेन स्थितित्वमायातम्। तथा च—

सृष्टिः स्यान्नवयोन्यादिपृथ्व्यन्तं संहृतिः पुनः। पृथ्व्यादिनवयोन्यन्तमिति शास्त्रस्य निश्चयः।।१।।

इति तत्रैवोक्तत्वात्। तथा —

---

१. 'ततः पुनः' ग. पाठः। २.'अन्नादादिमुद्रा' क. पाठः। ३. 'पादयोजाङ्घ्योः' क.ख. पाठः। ४. 'चक्रार्चिना' ग. पाठः।

करशुद्धिकरी त्वाद्या द्वितीया चात्मरक्षिका। आत्मासनगता देवी तृतीया तदनन्तरम्॥ १॥
चक्रासनगता पश्चात् सर्वमन्त्रासनस्थिता। साध्यसिद्धासना षष्ठी मायालक्ष्मीमयी परा॥ २॥
मूर्तिविद्या च सा देवी सप्तमी परिकीर्तिता। अष्टम्यावाहनी मुद्रा[१] नवमी भैरवी परा॥ ३॥
मूलविद्या तथा ख्याता त्रैलोक्यवशकारिणी। एवं नवप्रकाराः स्युः पूजाकाले प्रयत्नतः॥४॥
एताः क्रमेण न्यस्तव्याः साधकेन कुलेश्वरि। पादाग्रजङ्घाजानूरुगुदलिङ्गाग्रकेषु च॥ ५॥
आधारे विन्यसेन्मूर्तिं तस्यामावाहनीं न्यसेत्। मूलेन व्यापकन्यासः कर्तव्यः परमेश्वरि॥६॥
अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत्। चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम्॥ ७॥
आसां नामानि वक्ष्यामि यथानुक्रमयोगतः। तत्राद्या त्रिपुरादेवी द्वितीया त्रिपुरेश्वरी॥ ८॥
तृतीया च तथा प्रोक्ता देवी त्रिपुरसुन्दरी। चतुर्थी च महादेवि देवी त्रिपुरवासिनी॥ ९॥
पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात् षष्ठी त्रिपुरमालिनी। सप्तमी त्रिपुरासिद्धिरष्टमी त्रिपुराम्बिका॥ १०॥
नवमी तु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी। पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते॥ ११॥
एवं नवप्रकाराद्या पूजाकाले तु पार्वति। एकाकारा ह्यादिशक्तिरजरामरकारिणी॥ १२॥

इति। तत्र प्रथममकुलादिकं ध्यात्वा त्रैलोक्यमोहनादिकं तत्तन्मन्त्रोच्चारेण मनसा ध्यायंस्तदवच्छिन्नबाह्यान्तः स्पर्शेन विन्यस्य तत्र त्रैलोक्यमोहनादौ तथैव नवचक्रेश्वरीर्न्यसेत्, ततस्तच्चक्रेश्वरीयुक्तं तत्तच्चक्रं पुनर्ध्यायेत् इत्यत उक्तं "चक्रेश्वरीसमायुक्त" मिति चक्रेश्वर्यधिष्ठितमित्यर्थः। तद्यथा– अकुले विषुसंज्ञे सुषुम्नामूलभागस्थसहस्रदलकमले त्रिपुराधिष्ठितं त्रैलोक्यमोहनं चक्रं, वह्नौ आधारे चतुर्दलकमले त्रिपुरेश्वर्यधिष्ठितं सर्वाशापरिपूरणं चक्रं, शाक्ते स्वाधिष्ठानस्थषड्दलकमले त्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितं सर्वसंक्षोभकं चक्रं, नाभौ दशदलकमले त्रिपुरवासिन्यधिष्ठितं सर्वसौभाग्यदायकं चक्रं, अनाहते द्वादशदले त्रिपुराश्र्यधिष्ठितं सर्वार्थसाधकं चक्रं, विशुद्धौ षोडशदले त्रिपुरमालिन्यधिष्ठितं सर्वरक्षाकरं चक्रं, लम्बिकाग्रेऽष्टदलकमले त्रिपुरासिद्धाधिष्ठितं सर्वरोगहरं चक्रं, भ्रुवोरन्तरे द्विदलकमले त्रिपुराम्बाधिष्ठितं सर्वसिद्धिप्रदायकं चक्रमिन्दौ ललाटे बिन्दौ महात्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितं सर्वानन्दकरं चक्रं भावयेदिति। तथाच योगिनीहृदये—

"अकुले विषुसंज्ञे च शाक्ते वह्नौ तथा पुनः। नाभावनाहते शुद्धौ लम्बिकाग्रे भ्रुवोन्तरे॥ १॥
इन्दौ" इति। कुलं मूलाधारादधः षड्दलपद्मं नाम तस्मादेकाङ्गुलादधः पद्ममष्टदलपद्मं तस्मादेकाङ्गुलादधः शोणसहस्रदलपङ्कजमिति क्रमः। कुलादन्यदकुलं सुषुम्नामूलस्थरक्तसहस्रदलकमलं तस्मिन्नित्यर्थः। ननु षड्दलस्यैव कुलत्वात्तदनुत्वेनाष्टदलस्याप्यकुलत्वमिति तत्र कथं न स्यादित्यत आह– विषुसंज्ञे चेति। विषुसंज्ञ एवाकुले न्यासो नत्वकुलमात्रे इत्यर्थः। विषुसंज्ञे व्यापकनाम्नि सहस्रदले इति यावत्, यतस्तत्र स्थिता सुषुम्ना तदन्तर्भूतत्रिंशत्पङ्कजानि व्याप्नोतीति। अतो नाष्टदलकमलरूपमकुलं गृह्यते इत्यर्थः। शाक्ते वह्नाविति, वह्नौ शाक्ते इति व्यत्ययेनान्वयश्चक्रक्रमानुरोधात् तद्व्यत्ययादेशस्तु महेश्वरस्य स्वतन्त्रेच्छत्वात्। तथा च वह्निर्मूलाधारो वह्निमण्डलाधारत्वात् शक्तिः हृल्लेखा, तदूर्ध्वस्थितत्वात् शाक्तं स्वाधिष्ठानमित्यर्थः। नाभौ मणिपूरके, अनाहते हृदयपङ्कजे, विशुद्धौ कण्ठपद्मे, लम्बिकाग्रे कण्ठोर्ध्वे तालुमूले अष्टदलकमले, भ्रुवोरन्तरे आज्ञायां द्विदलकमले, इन्दौ ललाटबिन्दावित्यर्थः। "दीपाकारोऽर्धमात्रं च ललाटे वृत्तमिष्यते"

---

१. 'विद्या' ग. पाठः।

इति स्वयमुक्तत्वात्। अर्धमात्रमिति ह्रस्वस्योच्चारणकालो मात्रेत्युच्यते, मात्राया अर्धमुच्चारणकाले यस्य तदर्धमात्रं। ललाटे भ्रुवोरुपरिभागे वृत्तं वर्तुलाकारो बिन्दुरेवेन्दुरिष्यत इत्यर्थः। तेन बिन्दो रूममुच्चारणकालः स्थानं चोक्तम्, दीपाकारोऽर्धमात्रोच्चारणकालो वृत्तसंनिवेशो बिन्दुरित्यर्थः।। अथः सहस्रारादीनां प्रपञ्चमाह स्वच्छन्दसंग्रहे—

अधश्चोर्ध्वं सुषुम्नायाः सहस्रदलसंयुतम्। रक्तं श्वेतं च साहस्रदलस्थशक्तिभिर्युतम् ।। १।।
ऊर्ध्वाधोमुखमीशानि कर्णिकाकेसरान्वितम्। शक्तिरूपं महादेवि कुलाकुलमयं शुभम् ।। २।।
पङ्कजद्वयमीशानि[1] स्थितं शाश्वतमव्ययम्। तयोर्मध्ये सुषुम्नान्तस्त्रिदशाधारपङ्कजम् ।। ३।।
शक्तिरूपं शिवाकारं शर्वाण्याः सन्निजालयम्। तेषां रूपक्रमं चैव क्रमाद्वक्ष्येऽधुना श्रृणु।। ४।।
गुदमेढ्रान्तरं देवि पञ्चाङ्गुलसमुच्छ्रितम्। गुदमेकाङ्गुलं मध्ये द्वयाङ्गुलविसारणम् ।। ५।।
तस्य मूले महायोनिस्त्रिकोणाकाररूपिणी। सुषुम्ना योनिमध्यस्था तस्या मूले महेश्वरि ।। ६।।
अधः पद्मं सहस्रारं कर्णिकाकेसरान्वितम्। तैजसं रक्तवद् दीप्तं तद्दलस्थितशक्तिभिः ।। ७।।
प्रतिकिञ्जल्कसंस्थाभिः शक्तिभिः सहिता[2] प्रिये। कर्णिकामध्यतो देवि कुलदेवी च संस्थिता।।८।।
तत्पद्मोर्ध्वे सुषुम्नायां मध्ये त्वेकाङ्गुलोपरि। पद्ममष्टदलैर्युक्तमष्टग्रन्थिसमन्वितम् ।। ९।।
रक्तं स्वकर्णिकोपेतं रक्तकिञ्जल्कशोभितम्। ग्रन्थ्यग्रस्थं त्रिशृङ्गं च ब्रह्माण्याद्यष्टभैरवैः ।।१०।।
अष्टपत्रस्थितग्रन्थिस्थितवर्गा[3] दिशक्तिभिः। तदन्यशक्तिभिश्चैव संगताभिः[4] समावृतम्।। ११।।
तन्मध्ये कौलशक्त्या च सेवितं संस्मरेत् ततः। एकाङ्गुलप्रमाणोर्ध्वे षड्दलं कुलपङ्कजम्।।१२।।
आधारपङ्कजं पीतं चतुष्पत्रं सुकेसरम्। अधोमुखं च तन्मध्ये कुण्डली परमेश्वरि।। १३।।
स्वयम्भूमध्यगा चिन्त्या वरदादिभिरावृता। पार्थिवं पङ्कजं ह्येतत् तस्याधः पङ्कजं परम्।। १४।।
तैजसं परमेशानि तन्मध्यस्थितशक्तयः। निष्कलाः परमेशानि विद्युत्पुञ्जनिभाः स्मरेत्।। १५।।
तदूर्ध्वे कर्णिकामध्ये वह्निबिम्बं तदूर्ध्वगम्। पूर्णपीठं च तस्योर्ध्वे शाकिनी संस्थिता शिवे।।१६।।
आधारपङ्कजस्योर्ध्वे सार्धद्वयङ्गुलकोपरि। तैजसं साष्टपत्रं च पीतकर्णिकया युतम्[5]।। १७।।
हृल्लेखा कर्णिकामध्ये स्थितानङ्गादिसेविता। एतस्माद्द्वयङ्गुलादूर्ध्वे स्वाधिष्ठानं षडस्रकम्।।१८।।
आप्यं च बन्धिनीशक्तिपूर्वाभिः शक्तिभिर्वृताम्। काकिनीमभिचिन्त्याथ नाभावष्टाङ्गुलोपरि।।१९।।
तत्पद्मं मणिपुरं च दशपत्रं सुशोभनम्। लाकिनीमध्यगं तच्च डामर्यादिभिरावृतम्।।२०।।
चतुर्दशाङ्गुलादूर्ध्वे मणिपूराख्यपङ्कजात्। पङ्कजं राकिनीमध्यं द्वादशारमनाहतम् ।।२१।।
पत्रस्थकालरात्र्यादिशक्तिभिश्च[6] समावृतम्। मध्यस्थसूर्यबिम्बे[7] तु[8] नादोड्यानाख्यपीठकम्।।२२।।
तस्मादेकाङ्गुलादूर्ध्वे विशुद्धं षोडशारकम्। मध्यगा डाकिनी बाह्यपत्रेषु परमेश्वरि।। २३।।
अमृताद्यक्षरान्तःस्था चन्द्रबिम्बं तदूर्ध्वतः। कण्ठोर्ध्वं परमेशानि लम्बिका चतुरङ्गुले।।२४।।

१. 'पञ्चक' क.ख. पाठः। २.'संवृतं' ख. पाठः। ३.'वर्णा' क.ग. पाठः। ४.'शृङ्गस्थाभिः' ख. पाठः। ५. 'कुलम्' क.ग. पाठः। ६. 'तत्रस्थ' क.ग. पाठः। ७. 'तत्रस्थ' ग. पाठः। ८. 'म्बेन्दु' क. पाठः।

तस्मादष्टदलं पद्मं रसिकादिभिरावृतम्। आज्ञाचक्रं द्विपत्राब्जं हक्षद्विदलसंयुतम् ॥ २५॥
हंसवतीक्षमापार्श्वद्वये[१] मध्ये तु हाकिनी। ततो ललाटगं वृत्तं बिन्द्वावरणमूर्ध्वतः॥ २६॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशमतिदीप्तं महद्गुणम्। तन्मध्ये दशकोटीनां संख्यायोजनमपङ्कजम् ॥ २७॥
तत्कर्णिका[२] समासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः। पञ्चवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुञ्जनिभाकृतिः॥ २८॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरनुक्रमात्। परिवार्य्य स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतस्य सुन्दरि॥२९॥
वामभागे समासीना शान्त्यतीता मनोन्मनी। पञ्चवक्त्रधराः सर्वाः दशबाह्विन्दुभूषणाः॥३०॥
बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोट्यर्बुदशतैर्वृतम्।

इति स्थितिश्रीचक्रन्यासनिरूपणम्॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य–श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य–
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य–श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य–श्रीविद्यारण्ययतिविर–
चिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे षष्ठः श्वासः॥६॥



---

१. 'द्वयोः' ग. पाठः। २. 'यामा' ग. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

सप्तमः श्वासः



अथ स्थितिश्रीचक्रन्यासस्तु विद्याचक्रेश्वरीत्यङ्गत्रयात्मक इति सिद्धान्तः। तत्र प्रथमं सम्प्रदायात् करशुद्धिविद्यया करशुद्धिं विधायात्मरक्षाविद्ययात्मरक्षां कृत्वा देवीं स्वात्माभेदेन विभावयेत्। तथा श्रीतन्त्रराजे—

अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशपुष्पबाणचापाम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम्।। १।।

इति विभाव्य श्रीचक्रन्यासमारभेत्। तत्र विद्यान्यासस्तु—आदौ कूटाक्षरभेदेन व्यस्ताव्यस्तां मूलविद्यां न्यसेद्यथाक्रमेण—

मूर्ध्नि गुह्ये च हृदये नेत्रयोर्दक्षवामयोः[1]। श्रोत्रयोर्भुजयोः षष्ठे जान्वोर्नाभौ च विन्यसेत्[2]।। १।।

इति कूटन्यासः।। अथाक्षरन्यासः— "मूर्ध्नि गुह्ये च हृदये नेत्रेषु श्रोत्रयोर्मुखे। भुजयोः पृष्ठके जान्वोर्नाभौ पञ्चदश न्यसेत्" इत्यक्षरन्यासः।। अथ समस्तविद्यान्यासः—

स्थानेषु पञ्चदशसु मूर्धादिषु विचक्षणः। मूलविद्यां पृथङ्न्यसेत् त्रितारादि यथाक्रमम्।। १।।

इति विद्यान्यासः। अथ नवचक्रेश्वरीविद्यान्यासः —

पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोरूर्वोश्च गुदपार्श्वयोः। स्फिचोर्ध्वजाग्रे चाधारे मूलाधारे च विन्यसेत्।। १।।
नवचक्रेश्वरीविद्यान्यासोऽयं परिकीर्तितः।

इति नवचक्रेश्वरीविद्यान्यासः। अथ नवचक्रन्यासः —

ब्रह्मरन्ध्रे तथाधारे स्वाधिष्ठाने च नाभिके। अनाहते विशुद्धौ च लम्बिके भ्रूयुगान्तरे।। १।।
बिन्दुस्थाने क्रमेणैव नव चक्राणि विन्यसेत्।

इति नवचक्रन्यासः। अथ चक्रेश्वरीन्यासः, तत्र —

तत्र विद्याः समुच्चार्य[3] त्रिपुरा त्रिपुरेश्वरी। सुन्दरी त्रिपुराद्या च तथा त्रिपुरवासिनी।। १।।
त्रिपुराश्रीः पञ्चमी स्यात्षष्ठी त्रिपुरमालिनी। सप्तमी त्रिपुरासिद्धा त्रिपुराम्बाष्टमी भवेत्।।२।।
नवमी तु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी। नवचक्रेषु विन्यसेदिति न्यासः समीरितः।।३।।

इति चक्रेश्वरीन्यासः। इति स्थितिश्रीचक्रन्यासोद्धारः। अथ रक्षाषडङ्गन्यासः —

तारत्रयं ततो बाला नमस्त्रिपुरसुन्दरि। मां रक्षयुगलं प्रोक्त्वा षडङ्गान्यत्र विन्यसेत्।। १।।

---

१. 'नेत्रेषु' ग. पाठः। २. 'मूर्ध्नि गुह्ये च हृदये नेत्रत्रितय एव च। कर्णयोर्भ्रूयुगे देवि मुखे च भुज एव च।। पृष्ठे जानौ च नाभौ च मूलविद्यां न्यसेत् क्रमात्। इति पाठान्तरम्। ३. 'तत्तद्विद्याः' ग. पाठः।

इति रक्षाषडङ्गम्।

बालाबीजत्रयेणैव द्विरावृत्त्या षडङ्गकम्। कुर्याच्च साधको बीजषडङ्गन्यास ईरितः।। १।।
कूटत्रयद्विरावृत्या षडङ्गानि समाचरेत्। विद्यापञ्चदशीमूलषडङ्गन्यास ईरितः ।। २।।
पञ्चत्र्येकैककैकैस्तु पञ्चबीजैः षडङ्गकैः। श्रीविद्याषोडशार्णायाः षडङ्गोऽयमुदाहृतः ।। ३।।
सर्वज्ञा नित्यतृप्ता तथैवानादिबोधिनी। स्वतन्त्रा च ततो नित्यालुप्तशक्तिस्ततः परम्।। ४।।
अनन्तशक्तिर्ङेन्तास्ता बालाबीजैकपूर्विकाः। षडङ्गयुवतीन्यासः प्रोक्तः सर्वार्थसिद्धये।। ५।।
एकैकं कूटमादौ श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । सर्वज्ञताशक्तिधाम्ने इत्यादि प्रागुदीरितः ।। ६।।
षडङ्गयुवतीन्यासो मूलविद्याप्रदीपकः।

इति मूलषडङ्गयुवतीन्यासः। "माया षड्दीर्घकाद्यादि प्रकारान्तरमिष्यते।।" इति अथ षडङ्गयुवतीनां ध्यानम्

कुन्देन्दुनीलासितपीतरक्तप्रभा वराभीतिकराः वराङ्ग्यः।
लावण्यलीलाखिलयौवनाढ्याः श्रीदेवदेव्यास्तनवो युवत्यः।। १।।

इति ध्यानम्। अथ श्रीविद्यापूर्णन्यासः, ज्ञानार्णवे—

अथ वक्ष्ये महेशानि श्रीविद्यान्यासमुत्तमम्। सम्पूर्णां चिन्तयेद्विद्यां ब्रह्मरन्ध्रेऽरुणप्रभाम्।। १।।
स्रवत्सुधाषोडशार्णां महासौभाग्यदां स्मरेत्। वामांसदेशे सौभाग्यादङ्गुली भ्रामयेत्ततः।। २।।
रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां पादमूले प्रविन्यसेत्। पुनः सम्पूर्णया देवि गलोर्ध्वे विन्यसेत्ततः।।३।।
पुनः सम्पूर्णया देवि व्यापकत्वेन विन्यसेत्। व्यापकान्ते योनिमुद्रां मुखे क्षिप्त्वाभिवन्द्य च।।४।।
श्रीविद्यापूर्णरूपोऽयं न्यासः सौभाग्यवर्धनः। ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेद्देवि मणिबन्धे न्यसेत्ततः।।५।।
ललाटेऽनामिकां कुर्यात् षोडशार्णां स्मरेद्बुधः। सम्मोहनाख्यो देवेशि न्यासोऽयं क्षोभकारकः।।६।।
त्रैलोक्यमरुणं ध्यायन् श्रीविद्यां मनसि स्मरन्। पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोः कट्योरन्धुनि पृष्ठके।।७।।
नाभौ च पार्श्वयोश्चैव स्तनयोरंसयोस्तथा । कर्णयोर्ब्रह्मरन्ध्रे च वदने चैव पार्वति ।। ८।।
ततः कर्णप्रदेशे तु करे चैतदनुक्रमात्। संहारोऽयं महान्यासो बीजैः षोडशभिः क्रमात्।।९।।
श्रीविद्यायाः षोडशार्णन्यासैर्विश्वेश्वरो भवेत्। सृष्ट्यर्थं विन्यसेद्देवि मातृकां पूर्ववत् प्रिये।।१०।।

इति। अत्र षोडशार्णाया बहुभेदाद्येन भेदेन यो दीक्षितस्तस्य वर्णानेव न्यसेत्। {अ[१]त्रास्मिन् ग्रन्थे श्रीतन्त्रराजविहितार्चाक्रमश्च, तत्र पञ्चदश्याः श्रीभगवता शम्भुना उद्धारः कृतस्तस्मात्पूर्वं पञ्चदश्या मन्त्रोद्धारः क्रियते। पूजा त्वेतस्या अग्रे विशेषतो लिख्यते। अस्याः श्रीविद्या मुख्याम्नाय ऋग्वेदः। पञ्चममण्डले (५/४७/४) "चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तः" इति मन्त्रोद्धारः ऋग्वेदे प्रसिद्धः। अथर्वणे शौनकशाखायां चोपनिषदि उद्धृतोऽस्या मूलमनुः तदानुसारतां गमयति।} अथ षोडशार्णानामुद्धारक्रमः प्रदर्श्यते। तत्र श्रीज्ञानार्णवे—श्रीदेव्युवाच

त्रिपुरा विविधा देव भवता प्रकटीकृता। त्रिविधेति यदुक्तं तु प्रकटीकुरु शङ्कर।। १।।

१. 'अत्रास्मिन्' इत्यारभ्य बन्धचिह्नान्तर्गतं गद्यजातं क— खयोर्नास्ति।

ईश्वर उवाच –

परब्रह्मस्वरूपं च नादबिन्दुकलान्वितम् । शिवशक्तिमयं तत्तु कथयामि तवानघे।। २।।
व्याप्य तिष्ठति वै विश्वं स शिवः परमेश्वरि। पूर्वं गुणैस्तु कथिता शिवशक्त्यात्मिका[1] शृणु।।३।।
अकारादिसकारान्ता मातृकाशक्तिरव्यया । हकारः परमेशानि केवलं शिव उच्यते।। ४।।
आद्यन्ताक्षरभावेन तदाहंसकलार्थदः[2] । यदुच्यते मातृकार्णैस्तत्सर्वमहमीश्वरः ।। ५।।
हकारः परमेशानि शून्यरूपः सदाव्ययः । सकारः शक्तिरूपत्वात् परवाची च सर्गवान्।। ६।।
उत्पत्तेः कारणं यस्माच्छक्तिरित्यभिधीयते। आत्मानं दर्शयेद्योगः सोहंशब्देन सुन्दरि।। ७।।
बिन्दुत्रयसमायोगान्महात्रिपुरसुन्दरी। नादरूपेण सा देवी हकारार्धस्वरूपिणी ।। ८।।
हकारः परमेशानि शिवरूपी यतस्तदा। तस्यार्धाङ्गं महाशक्तिर्हकारार्धस्वरूपिणी।। ९।।
अत एव महाविद्या महात्रिपुरसुन्दरी। नित्येति कथ्यते देवि चित्कला परदेवता।। १०।।
श्रीगुरोः कृपया भद्रे सम्प्रदायकुलान्वितः। प्रातरुत्थाय देवेशि गुरुं स्मृत्वा स्वनामभिः।। ११।।
सन्ध्यास्नानादिकं देवि विधाय मनुवित्तमः। सर्वशृङ्गारवेषाढ्यः कर्पूरघुसृणादिभिः।। १२।।
महामृगमदोद्दामलिप्ताङ्गः कुङ्कुमारुणः। नवरत्नविभूषाढ्यो रक्ताम्बरविराजितः।। १३।।
ताम्बूलरागवदनो मादनानन्दमानसः। यागमण्डपमासाद्य लाक्षाचित्रविचित्रितम्।। १४।।
अनेकधूपबहुलं पुष्पप्रकरशोभितम्। गोमयेन च संलिप्तं चारुपुष्पवितानितम्।। १५।।
मनोहरे मृदौ सूक्ष्म[3] आसने चोपविश्य च। मन्त्रोद्धारं प्रकुर्वीत सर्वकार्यार्थसिद्धये।। १६।।
आद्यं वाग्भवमुच्चार्य कामबीजं द्वितीयकम्। कुमार्यास्तु तृतीयं तु त्रिपुरा परमेश्वरि।। १७।।
करशुद्धिकरी विद्या प्रथमा परमेश्वरि↔। कुमारी तु द्वितीया सा त्रिपुरेशी महेश्वरि△।। १८।।
त्रिपुरेश्यादिमं त्यक्त्वा भुवनेशीं परिक्षिपेत्⇨। अनया चासनं विद्यात्[4] त्रिपुरेश्या षडङ्गकम्।।१९।।
त्रिपुरेशी महेशानि त्रिबीजा हस्थिता सदा। चक्रासनगता[5] विद्धि देवि त्रिपुरवासिनी[6]▶।। २०।।
त्रिपुरेश्या महेशानि वाग्भवे कामराजके। शिवचन्द्रसमायुक्ता तार्तीये शिवरूपिणी।। २१।।
सर्वमन्त्रासनगता त्रिपुराश्रीरियं प्रिये◣। आत्मासनगतायास्तु हित्वा तार्तीयमद्रिजे।। २२।।
बलेमात्मकमारोप्य साध्यसिद्धासनस्थिता। साध्यसिद्धासनगता बिद्धि त्रिपुरमालिनी▽।। २३।।
सम्पत्प्रदा भैरवी या ततस्तार्तीयबीजके। बिन्दुं हित्वा तत्र सर्गं निक्षिपेत् सुरसुन्दरी⇦।।२४।।
मूलविद्यां शृणु प्रौढे सकलागमसेविताम्। सर्वदर्शनवन्द्यां च चित्कलामव्ययां शिवे।। २५।।
भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनम्। अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते⇆।।२६।।

↔अं आं सौः इति। △ऐंक्लींसौः इति। ⇨ह्रींक्लींसौः इति। ▶हैं हक्लीं हसौः इति। ◣हसैं हसक्लीं हसौः इति। ▽ह्रीं क्लीं ब्लें इति। ⇦हस्रैं हसकलरीं हस्रौ इति। ⇆लसहईएरक इति।

---

१. 'शक्त्युन्नतां' क.ग. पाठः। २. 'त्मकः' ख. पाठः। ३. 'मृदुश्लक्ष्णे' ख. पाठः। ४. 'अनयात्मासनं दद्यात्' ग. पाठः। ५. 'तां' ग. पाठः। ६. 'नीम्' ग. पाठः।

महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवाः। लकारात् पृथिवी देवी सशैलवनकानना।। २७।।
पञ्चाशत्पीठसम्पन्ना सर्वतीर्थमयी परा। सकाराच्चन्द्रतारादिग्रहराशिस्वरूपिणी ।। २८।।
हकाराच्छिवसंयोगाद्व्योममण्डलसंस्थिता। ईकाराद्विश्वमूर्तिर्या महातुर्यात्मिका प्रिये।। २९।।
एकाराद्वैष्णवी शक्तिर्विश्वपालनतत्परा। रकारात् तेजसा युक्ता परज्योतिःस्वरूपिणी।। ३०।।
ककारात् कामदा कामरूपिणी स्फुरदव्यया। अर्धचन्द्रेण देवेशि विश्वयोनिरितीरिता।। ३१।।
बिन्दुना शिवरूपेण शून्यरूपेण साक्षिणी[१]। अनया सह सर्वत्र व्याप्तिर्निश्चलतात्मना।। ३२।।
एवं परब्रह्मरूपमेरुणानेन सुव्रते । एवं च नवभिर्वर्णैर्जायते त्रिपुरामनुः।। ३३।।
अन्यथा देवि निष्पत्तिर्नास्ति श्रीत्रिपुरामनोः। श्रीचक्रमपि देवेशि मेरुरूपं न संशयः।। ३४।।
लकारः पृथिवीबीजं तेन चोर्वी तदुच्यते। सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशकात्मकम्।। ३५।।
तस्मात् षोडशपत्रं तु हकारः शिव उच्यते। अष्टमूर्तिः सदा भद्रे तस्माद्वसुदलं भवेत्।। ३६।।
ईकारस्तु महामाया भुवनानि चतुर्दश। पालयन्ती परा तस्माच्छक्रकोणं भवेत् प्रिये।। ३७।।
शक्तिरेका दशस्थाने स्थित्वा सूते जगत्त्रयम्। विश्वयोनिरिति ख्याता सा विष्णोर्दशरूपका।।३८।।
रकारात्[२] परमेशानि चक्रं व्याप्य विजृम्भते। दशकोणपरा तस्माद्रकाराज्ज्योतिरव्ययः।। ३९।।
कलादशान्वितो बहिर्दशकोणप्रवर्तकः । ककारान्मादनं देवि शिवं चाष्टस्वरूपकम्।। ४०।।
योनीरस्य[३] तदा चक्रे वसुयोन्यङ्कितं भवेत्। अर्धमात्रा गुणान् सूते भेदरूपा यतस्ततः।। ४१।।
त्रिकोणरूपा योनिस्तु बिन्दुना बैन्दवं[४] भवेत्। कामेश्वरस्य रूपं तद्विश्वाधारस्वरूपकम्।। ४२।।
श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यावर्णसम्भवम्। इति।

तन्त्रान्तरे —

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्। अगस्त्यनन्दिसूर्य्याश्च विष्णुस्कन्दशिवास्तथा।। १।।
दुर्वासाश्च महादेव्या द्वादशोपासकाः स्मृताः। शक्रश्च चोन्मनी चैव तथा च वरुणस्तथा।। २।।
धर्मराजोऽनलो लनगराजो वायुर्बुधस्तथा। ईशानश्च रतिश्चैव तथा नारायणस्तथा।। ३।।
ब्रह्मा जीवो महादेव्यास्त्रयोदश उपासकाः। पञ्चविंशतिसंख्याकोपासकानां महेश्वरि।।४।।
उपास्यमन्त्रभेदांस्ते प्रवक्ष्यामि समासतः। इति।

ज्ञानार्णवे —

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बीजं कामेश्वरीमतम्। सकला भुवनेशानी कामेशीबीजमुत्तमम्●।। १।।
अनेन सकला विद्याः कथयामि विशेषतः। शक्त्य[५]न्तस्तुर्यवर्णोऽयं कलमध्ये सुलोचने।।२।।
वाग्भवं पञ्चवर्णाढ्यं□कामराजमथोच्यते। मादनं शिवचन्द्राद्यं शिवान्तं मीनलोचने।। ३।।

●सकलह्रीमिति। □कएईलह्रीमिति।

१.'संस्थिता' ख.पाठः। २.'सकरात्' ग. पाठः। ३.'योनिः' ग. पाठः। ४.'भैरवी' ग. पाठः। ५. 'शक्यतः' क.। 'शक्तितः ख.पाठः।

चतुरक्षररूपं तु त्र्यक्षरा त्रिपुरा परा।

अत्र शक्तिकूटं प्रागुद्धृतकामेशीबीजरूपमित्यर्थः।

सर्वतीर्थमयी देवी सर्वदेवस्वरूपिणी। सर्वसाक्षिमयी नित्या सर्वयोनिमयी परा।। ५।।

सर्वज्ञानमयी संवित्सर्वप्रज्ञानरूपिणी। सर्वदेवमयी साक्षात् सर्वसौभाग्यसुन्दरी।। ६।।

एतामुपास्य देवेशि कामः सर्वाङ्गसुन्दरः।

इयं कामराजोपासिता श्रीविद्या। तथा—देव्युवाच

एतस्या देवदेवेश भेदान् कथय सुन्दर। केन केनोपासितेयं विशदीकुरु शङ्कर।। १।।

ईश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोपमुद्राभिधां पराम्। कामराजाख्यविद्यायाः शक्तिं तुर्यं च सुन्दरि।। २।।

हित्वा मुखे शिवेन्द्वाढ्या लोपामुद्रा प्रकाशिता।

कामराजविद्याया वाग्भवे एकारमीकारं च हित्वादौ हकारं सकारं च दद्यादन्यत् समानम्। तथा—

अगस्त्योपासिता विद्या त्रैलोक्यक्षोभकारिणी। एषा विद्या कामराजपूजितैव न संशयः।। ३।।

हसकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं इति लोपामुद्रोपासिता श्रीविद्या। अनयोर्भेदमग्रे वक्ष्यामः।

विद्याद्वयमिदं भद्रे दुर्लभं भुवनत्रये। कामराजाख्यविद्याया वाग्भवेन वरानने ।। ४।।

विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शक्तिमादनमध्यगम्। शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु शिवाद्यं कामराजकम्।। ५।।

चन्द्राद्यं तु तृतीयं स्याद्विद्येयं मनुपूजिता।

कहएईलह्रीं हकएईलह्रीं सकएईलह्रीं इति मनूपासिता श्रीविद्या।

सहाद्यं वाग्भवं देवि चन्द्राद्यं शिवमध्यगम्। मादनं कामबीजं तु शक्तिबीजं हसाननम्।। ६।।

चन्द्राराधितविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा।

सहकएईलह्रीं सहकहएईलह्रीं सहकएईलह्रीं इति चन्द्रोपासिता श्रीविद्या। तथा—

हसाद्यं वाग्भवं विद्धि शिवाद्यं सहमध्यगम्। मादनं कामबीजे तु तार्तीयं श्रृणु पार्वति।। ७।।

सहाद्यं शक्तिबीजं तु कुबेरेण प्रपूजिता।

हसकएईलह्रीं हसकएईलह्रीं हसकएईलह्रीं इति कुबेरोपासिता विद्या। तथा—

कामराजाख्यविद्यायास्तार्तीयं श्रृणु पार्वति। शक्तिबीजं सहाद्यं स्याद्विद्यागस्त्यप्रपूजिता।। ८।।

इति। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सहसकलह्रीं इत्यगस्त्योपासिता श्रीविद्या। तथा— "लोपामुद्रा प्रभावेन साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी" इतीयं विद्या लोपामुद्रयाप्युपासितेत्यर्थः। एतेनेयं द्वितीया लोपामुद्रोपासिता श्रीविद्येति। तथा—

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यज। चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम्।। ९।।

हित्वा चन्द्रं मुखे कुर्याद्विद्येयं नन्दिपूजिता।

सएईलह्रीं सहकहलह्रीं सकलह्रीं इति नन्द्युपासिता श्रीविद्या। तथा—

कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णं सर्वमोहनम्❖। शक्तिबीजं वराहोहे चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम्।। ४।।

❖हसकहलह्रीमिति।

कामराजाख्यविद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके। शक्तिबीजे स्थिता[१] देवि चन्द्राधः कुरु तत्र च।।१०।।
इन्द्राराधितविद्येयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। इति।

कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं सलकह्रीं, इतीन्द्रोपासिता श्रीविद्या। तथा—

लोपामुद्राख्यविद्याया द्वितीयाया महेश्वरि। कामराजे भृगुं हित्वा मुखे कुर्यात्तमेव हि।। ११।।
शिवं बिना चतुर्थं तु तार्तीये शक्रगः शिवः। एषा विद्या वरारोहे त्रिपुरा सूर्यपूजिता।। १२।।

इति। कएईलह्रीं, सहकलह्रीं सहसकहह्रीं, इति सूर्योपासिता श्रीविद्या। तथा—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुष्कूटां च शाङ्करीम्। लोपामुद्रां द्वितीयां तु विलिख्य सुरसुन्दरि।। १३।।
पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थे पञ्चमे स्थिताम्। हित्वा तु भुवनेशानीमेकोच्चारेण चोच्चरेत्।। १४।।
चतुष्कूटा महाविद्या शङ्करेण प्रपूजिता।

इति। कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं सहसकलह्रीं,कएईलहसकहलसहसकलह्रीं, इति शिवोपासिता श्रीविद्या। तथा—

लोपामुद्रां पुनर्देवि विलिखेत्तदनन्तरम्। नन्दिकेश्वरविद्यां च षट्कूटा वैष्णवी भवेत्।। १५।।

लोपामुद्रां द्वितीयामित्यर्थः। कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं, सएईलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं, इति षट्कूटा विष्णूपासिता श्रीविद्या।

कामराजाख्यविद्याया त्रिकूटेषु वरानने। या स्थिता भुवनेशानी द्विधा कुरु महेश्वरि।। १६।।
बिन्दुहीना नादहीना दुर्वासःपूजिता भवेत्। दुर्वाससा पुरा देवि निष्कला पूजिता परा।। १७।।

इति। कएईलह्हीही, हसकहलह्हीही, सकलह्हीह्री, इति दुर्वाससोपासिता श्रीविद्या। इति द्वादश भेदाः। अन्यपस्त्रयोदश विद्या अग्रे उद्धरिष्यामः।। अथ षोडशार्णविद्याया उद्धारक्रममाह, ज्ञानार्णवे—

चतुर्विधप्रकारेण शृणु देवेशि कथ्यते। त्वं मनोहारिणी यस्मात् कथ्यते भुवि दुर्लभा।। १।।
चन्द्रान्तं वारुणान्तं च शक्रादिसहितं पृथक्। वामाक्षिबिन्दुनादाढ्यं विश्वमातृकलान्वितम्।।२।।
विद्यादौ+योजयेद्देवि साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी। उत्पत्तिर्जागरो बोधो व्यावृत्तिर्मनसस्तथा ।।३।।
कलाचतुष्टयं जाग्रदवस्थायां व्यवस्थितम्। जाग्रत् सत्त्वगुणा प्रोक्ता केवलं शक्तिरूपिणी[२]।।४।।
त्रिकूटाः सकला भद्रे[३] पञ्चकूटा भवन्ति हि। वैष्णवी वसुकूटा स्यात् षट्कूटा शाङ्करी भवेत्।।५।।

इति। अस्यार्थः— चन्द्रान्तं हकारः, वरुणान्तं शकारः, शक्रादि रेफः, वामाक्षि ईकारः, बिन्दुनादाभ्यां ह्रींश्रीं इति बीजद्वयं सिद्धम्। प्राक्प्रोक्तविद्या मायाबीजादिकाश्चेदुत्पत्तिरूपा भवन्ति। कूटादिषु मायबीजदानेन जागररूपा भवन्ति। कूटादिषु श्रीबीजदानेन मनोव्यावृत्तिरूपा भवन्ति। विद्यादिषु श्रीबीजदानेन बोधरूपा भवन्ति। एते भेदा जाग्रत्स्वरूपाः। तदुक्तं स्वच्छन्दसङ्ग्रहे—

लज्जाबीजादिका विद्याः प्रोक्ता उत्पत्तिरूपकाः। लज्जाबीजादिकूटैस्तु प्रोक्ता जागररूपकाः।। १।।
एवं श्रीबीजयोगेन बोधव्यावृत्ति[४]रूपकाः। जाग्रत्स्वरूपा श्रीविद्या चतुर्द्धा सा प्रकीर्तिता।।२।।
तदा भेदास्तु सकलाश्चतुष्कूटा भवन्ति हि। वैष्णवी सप्तकूटा स्यात्पञ्चकूटा तु शाङ्करी।।३।।
स्वप्नरूपा महाविद्याः प्रोक्ता बीजद्वयादिकाः। मायालक्ष्म्यादिकाश्चैता अभिलाषस्वरूपकाः।।४।।

+ पूर्वोक्तद्वादशविद्यादौ। १.'जोत्थिता' क.पाठः। २.'लाः ज्ञप्तिरूपिणी' ग.पाठः। ३.'भेदाः'ग.पाठः। ४.'व्याप्तनिरूपकाः' ग.पाठः।

बीजद्वयादिकूटाश्चेद्भ्रमरूपाः प्रकीर्तिताः। रमामायादिकाश्चिन्तारूपिण्यः कूटयोजिताः।। ४।।
स्मृतिरूपाश्च कथितास्तथा भेदा महेश्वरि। पञ्चकूटा भवन्त्येते वसुकूटा तु वैष्णवी ।। ५।।
षट्कूटा शाङ्करी प्रोक्ता स्वप्नावस्था समीरिता। वेदादिबीजयुगलयोगात् सर्वाः समीरिताः।। ६।।
सुषुप्तिरूपा जायन्ते सुषुप्तिः शिवरूपिणी। मरणं विस्मृतिर्मूर्च्छा निद्रा च तमसावृता।। ७।।
सुषुप्तेस्तु कला ज्ञेयाश्चतस्रः परमेश्वरि । तारमायादिकाश्चैव मायातारादिकास्तथा ।। ८।।
सुषुप्तिभेदाश्चत्वारः कलारूपा महेश्वरि। इति।

अत्र तारमायारमादिका, मायातारमादिका, ताररमामायादिका, रमातारमायादिका, इत्यर्थः। एवं क्रमेण द्वादशविधविद्यानां तु चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं भेदा भवन्ति।। ज्ञानार्णवे—

वेदादिमण्डिता देवि शिवशक्तिमयी सदा। तदा भेदास्तु सकलाः षट्कूटाः परमेश्वरि।। १।।
वैष्णवी नवकूटा स्यात् सप्तकूटा तु शाङ्करी। अस्याः स्मरणमात्रेण जगदानन्दितं भवेत्।।२।।
भेदत्रयं तु कथितं महाविद्यां शृणु प्रिये। यस्य विज्ञानमात्रेण ब्रह्म साक्षान्न संशयः।।३।।
सुषुप्त्यादौ जागरान्ते स्फुरत्तामात्रलक्षणा ।अवस्थाशेषतां प्राप्ता तुर्या तु परमेश्वरि[1]।।४।।
भावाभावविनिर्मुक्ता गुणातीता निगद्यते। वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं समाधिर्विमलं मनः।।५।।
सदसद्वस्तुनिर्धारस्तुरीयायाः कला इमाः। आद्यबीजद्वयं भद्रे विपरीतक्रमेण तु।। ६।।
विलिख्य परमेशानि ततोऽन्यानि समुद्धरेत्। अन्तर्मुखी वरारोहे कुमारी त्रिपुरेश्वरी।।७।।
एभिस्तु पञ्चसंख्याकैर्बीजैः सम्पुटितां यजेत्। षट्कूटां परमेशानि विद्येयं षोडशाक्षरी।।८।।
त्रिकूटाः सकला भद्रे षोडशार्णा भवन्ति हि। वैष्णव्येकोनविंशार्णा शैवी सप्तदशाक्षरी।।९।।

इति। अस्यार्थः आद्यबीजद्वयं मायारमात्मकं तस्य विपरीतक्रमः आदौ रमा पश्चान्मायेत्यर्थः। अन्तर्मध्ये स्थितं कामबीजं मुखे आदौ यस्याः कुमार्याः। एतैः पञ्चसंख्याकैर्बीजैः षट्कूटां नवकूटां वा सम्पुटितां सम्पुटवत्कृताम्। तेनानुलोमविलोमतः सम्पुटितामित्यर्थः। गान्धर्वेऽपि—

रमाबीजं समुद्धृत्य मायाबीजं नियोजयेत्। कामबीजं समालिख्य वाग्बीजं तदनन्तरम्।। १।।
चतुर्दशस्वरोपेतं चन्द्रं बिन्दुयुगान्वितम् ।प्रणवं भुवनेशानीं रमा चैव महेश्वरि।। २।।
उद्धरेत् परमेशानि ततः पञ्चदशाक्षरीम्। व्युत्क्रमात् परमेशानि पूर्वोक्तं बीजपञ्चकम्।।३।।
आलिख्य सम्पुटं[2] कुर्याद्विद्येयं व्यष्टकूटका। इति।

तथा च योगिनीतन्त्रे—

श्रीबीजमायास्मरयोनिशक्तिस्तारं च माया कमलाथ विद्या।
शक्त्यादिबीजैश्च विलोमतः सा श्रीषोडशीयं च शिवप्रदिष्टा।। १।। इति।

---

१. 'परमाकला' ग. पाठः। २. 'संपुटीकुर्यात्' इति साधुः पाठः।

तथा रुद्रयामले —

श्रीर्माया मदनो वाणी परा तारं शिवप्रिया। हरिप्रिया त्रिकूटा सा परा वाणी मनोभवः।। १।।

माया लक्ष्मीर्महाविद्या श्रीविद्या षोडशाक्षरी[1]। इति।

दक्षिणामूर्तौ च—

द्वितीयस्यादियुग्मं तु विपरीतं लिखेत् सुधीः। बालां चान्तर्मुखीं कृत्वा विलिखेत्तदनन्तरम्।। १।।

तारं मायां ततो लक्ष्मीं तथा कूटत्रयं लिखेत्। कलया सम्पुटां कुर्याद्रमाख्यां परमेश्वरि।। २।।

इति। कलया पूर्वोक्त (शक्त्यादि) पञ्चकलया रमाख्यां प्रणवादिषट्कूटां, उमाख्यामिति पाठेऽयमेवार्थः। केचित्तु कलया स्थाने बालया पाठं कुर्वन्तस्तत्र परमेश्वरीमिति च बालयान्तर्मुख्या संपुटां वदन्ति। रमाख्यां श्रीं परमेश्वरीं ह्रीमिति च, तेनोत्तरदले क्लींऐंसौः श्रींह्रीमिति वदन्ति। तत्र सम्पुटशब्दार्थापरिज्ञानात्। नवरत्नेश्वरे—

मन्त्रमादौ वदेत् पूर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम्। विपरीतं पुनश्चान्ते मध्यं तत्सम्पुटं स्मृतम्।। १।।

इति सम्पुटलक्षणादनन्वयापत्तेः सर्वतन्त्रविरोधाच्च। तथा श्रीक्रमे—

श्रीर्माया मदनो योनिः परैतानि मुखे कुरु। वेदादिर्भुवनेशानी श्रीबीजं च त्रिकूटकम्।। १।।

षट्कूटां सम्पुटां कुर्यादाद्यैः पञ्चभिरक्षरैः। इति। मायातन्त्रे—

लक्ष्मीः परामदनयोनियुता च शक्तिस्तारं परा च कमलाप्यथ मूलविद्या।

शक्त्यादिभिश्च विपरीततया प्रदिष्टं श्रीमन्त्रराजमुदितं परदेवतायाः।। १।। इति।

एतेनानुलोमतः पञ्चबीजैः सम्पुटितमिति मतं हेयम्। श्रुतौ च "रमा माया तारा परा लक्ष्मीः कुमारिका। विद्या व्यस्ता बाला श्रीः परा तथा" व्यस्ता विपरीता, तथेति व्यस्तेत्यर्थः। कुमारी[2] चान्तर्मुखी बोध्या। अत्र कुमारिकानन्तरं तारादित्रिबीजसम्बन्धस्तत्रैकवाक्यताबलात् (त्रैपुरीश्रुतिबलाच्च। तथा च श्रीमाये मध्यादिबालिका तारो माया श्रीर्विद्या परादिपञ्चबीजान्यन्ते चेति।) श्रीपरा चेति पाठे न केवलं बाला व्यस्ता श्रीपरा चेति विद्यायां षोडशबीजानां स्वरूपकथनं वा क्रमोक्तत्वाभावात्। एतेन श्रीर्माया तारं माया बालात्रिकूटं व्यस्ता बाला रमा मायेति मतं च हेयम्। कुलामृते—

श्रीबीजं शक्तिबीजं च कामबीजं च वाग्भवम्। बालान्तः संस्थितं बीजं प्रणवं च ततः परम्।। १।।

शक्तिबीजं रमां चैव विद्यां च परमेश्वरि। लोपां वा कामराजं वा त्रिकूटामथवा पराम्।। २।।

विन्यस्य पुनराद्यानि पञ्चबीजानि सुन्दरि। विपरीतक्रमेणैव विन्यसेत् षोडशी परा।। ४।।

इति। यामले च—

लक्ष्मीः परा मदनवाग्भवशक्तिबीजं तारं च भूतिकमले कथिता च विद्या।

कूटत्रयं च विपरीततया नियुक्तं श्रीषोडशाक्षरमिहागमसुप्रसिद्धम्।। १।।

त्रिकूटं कामादि बालायाश्चकाराद्रमां मायां च। निबन्धे—

सान्तान्तं शिवपूर्वसप्तमयुतं सूक्ष्मान्तमस्तान्वितं देवीं दक्षिणबाहुशक्रनयनं कामं[3] कलालाञ्छितम्।

दन्तान्तोर्ध्वमुखं सजीवदशनं शेषे[4] मुखेनान्वितं बीजं पञ्चकमित्थमेवमुदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।१।।

१. 'शी परा' ख.पाठः। २. 'रिका चा' ग. पाठः। ३. 'वामं' ग. पाठः। ४. 'सशेषदशनं जीवं' इति साधुः पाठः।

वेदाद्यं त्रिगुणं रमामथ वदेत् कामेन संसेवितां लोपां वा पुनरेव पञ्चकमथो पूर्वं विलोमक्रमैः।
एषा श्रीपरमा परात्परतमा सर्वार्थसिद्धिप्रदा सारात्सारतरा समस्तजगतामुत्पत्तिभूता शिवा॥२॥
सेयं श्रीब्रह्मरूपा सकलगुणमयी निर्गुणा निष्प्रपञ्चा। साक्षात्कामदुघा सुरमुनिनिवहैर्वन्दितानन्दरूपा✡

इति। ज्ञानार्णवे—

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि। वर्णितुं नैव शक्योऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्॥ १॥
वैखरी वाच्यभावत्वादशक्ता गुणवर्णने। यतो निरक्षरं वस्तु परा तत्रैव कारणम्॥२॥
मूकीभूता हि पश्यन्ती मध्यमा मध्यमा भवेत्। ब्रह्मविद्यास्वरूपा हि भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥३॥
एकोच्चारेण देवेशि वाजपेयस्य कोटयः। अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा॥४॥
काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विताः। तुलां नार्हन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा॥५॥
एकोच्चारेण गिरिजे किं पुनर्ब्रह्म केवलम्। षोडशार्णा महाविद्या न प्रकाश्या कदाचन॥६॥
गोपितव्या त्वया भद्रे स्वयोनिरिव पार्वति। षोडशीयं सुगोप्या हि स्नेहादेवि प्रकाशिता॥७॥
अपि प्रियतमं देयं सुतदारधनादिकम्। राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी॥८॥

इति। सिद्धयामले— (प्रकारान्तरेण षोडशीमाह)

कामो माया रमा बाला त्रिकूटा स्त्री भगाङ्कुशौ। काली कामकला कूर्चः[1] सर्वादौ प्रणवः प्रिये॥१॥
श्रीमहाषोडशीयं च या ख्याता भुवनत्रये। ज्ञानेन मृत्युहा विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता॥२॥
सप्तलक्षा महाविद्यास्तन्त्रादौ कथिताः प्रिये। तासां सारतमा भूता या या विद्याः सुगोपिताः॥३॥
बहुना किमिहोक्तेन तासां सारा तु षोडशी। प्रकाशिता महादेवि या पृष्टा ते[2] पुनः पुनः॥४॥

ॐक्लींह्रींश्रींऐंक्लींसौः कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं स्त्रींऐंक्रोंक्रींक्लींहूं इति॥ रुद्रयामले—

लोपायाः शक्तिकूटान्ते हंसबीजयुता यदि। तदा सप्तदशीविद्या साक्षाज्ज्ञानस्वरूपिणी॥ १॥

सहकलह्रीं हसकलह्रीं सकलह्रीं हंसः इति।

लोपामुद्रावाग्भवे तु पृथ्व्यन्ते शिवयोजनात्। सकारं कामराजादौ लोपा तु षोडशाक्षरी॥ १॥
अनया सदृशी विद्या न विद्यार्णवगोचरे।

हसकलहह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीमिति। हसकलह्रीं, सहसकहलह्रीं, सकलह्रीं इति षोडशीद्वयम्। तत्रैव—

लोपावाग्भवशक्रान्ते शिवबीजं नियोजयेत्। तथैव शक्तिबीजे तु लोपा सप्तदशाक्षरी॥ १॥
अस्याः स्मरणमात्रेण शिवो भवति नान्यथा। अणिमाद्यष्टसिद्धीशः साक्षाद्भूमिपुरन्दरः॥ २॥

हसकलहह्रीं, हसकलहह्रीं सकलहह्रीं इति लोपा सप्तदशाक्षरी। तत्रैवाष्यदशाक्षरी—

अधरं बिन्दुना युक्तं वाग्भवाद्ये नियोजयेत्। मादनं कामबीजाद्ये तार्तीयाद्ये महेश्वरि॥ १॥

---

१. 'र्चं' क. पाठः। २. 'मे' ग. पाठः। ✡दिव्यपाठत्वात् न वृत्तभङ्गदोषः।

भृगुः सर्गान्वितो देवि मनुना च समन्वितः। अष्टादशाक्षरी ह्येषा श्रीविद्या भुवि दुर्लभा।।२।।
श्रीगुरोः कृपया देवि नित्या सिद्धिप्रदायिनी। नवलक्षं जपित्वा तु लोपामुद्रां महेश्वरि।।३।।
अष्टादशाक्षरी विद्या पश्चाद्राध्या वरानने। अन्यथा शापमाप्नोति कुलं तस्य विनश्यति।।४।।
सर्वकल्याणदा विद्या सर्वविघ्नविनाशिनी। सर्वसौभाग्यदा देवी सर्वमङ्गलकारिणी।। ५।।
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा।

ऐंहसकलह्रीं, क्लींहसकहलह्रीं सौःसकलह्रीं, इति लोपाष्टादशाक्षरी। तथा –

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवाद्ये तु वाग्भवम्। भुवनेशीं कामराजे श्रीबीजं शक्तिपूर्वतः।। १।।
एषाप्यष्टादशी प्रोक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिका। भोगमोक्षप्रदा साक्षात् पुरुषार्थप्रदायिका ।। २।।
अनया सदृशी विद्या न विद्यार्णवगोचरे[१]। नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।३।।

ऐंकएईलह्रीं, ह्रींहसकहलह्रीं, श्रींसकलह्रीं इति कामराजाष्टादशाक्षरी। तथा

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ततो वै कुलसुन्दरीम्। कामाक्षरं शक्तिवर्णं पुरन्दरहरौ ततः।। १।।
भुवनेशीं समुद्धृत्य विलोमां बालिकां ततः। प्रणवं सविसर्गं च पुनश्च कुलसुन्दरीम्।। २।।
लोपावाग्भवमुद्धृत्य विलोमां बालिकां ततः। प्रणवं सविसर्गं तु ततो वै कुलसुन्दरीम्।। ३।।
शक्तिकूटमध्यभागे हकारं योजयेच्छिवे। विलोमां बालिकां तत्र ब्रह्मार्णः सविसर्गकः।। ४।।
इयं श्रीपरमा विद्या केवला मोक्षदायिनी। अस्या लक्षजपेनैव किं न सिद्ध्यति भूतले।। ५।।
अस्याः स्मरणमात्रेण शिवो भवति नान्यथा।

ऊंऐंक्लींसौःकएलहह्रींसौःक्लींऐंओंः ऐंक्लींसौःहसकलह्रींसौःक्लींऐंओंः ऐंक्लींसौःसकहलह्रींसौःक्लींऐंओंः इति परमाविद्या। श्रीक्रमे–

तां विद्यां शृणु देवेशि काममिन्द्रसमन्वितम्। नादबिन्दुकलाभेदात् तुरीयस्वरसंयुतम्।। १।।
महाश्रीसुन्दरीविद्या महात्रिपुरसुन्दरी । ककारे सर्वमुत्पन्नं कामकैवल्यदायकम्।। २।।
लकारे सकलैश्वर्यमीकारे सर्वसौख्यदम्। एवं बीजत्रयं देवि विद्यानां सारसङ्ग्रहम्।। ३।।
वाग्भवं कामराजं च शक्तिं तेन नियोजयेत्। एकाक्षरेण कथिता ब्रह्मविद्यैव केवलम्।। ४।।

कलई इति ब्रह्मविद्या। कामराजलोपामुद्रयोर्विशेषमाह कुलोड्डीशे–

श्रीपरावाग्भवाख्यैश्च ईश्वरीतारमन्मथैः। आद्यभूतैर्विद्यमाना सुन्दरी षड्विधा स्मृता।।१ ।।

अनयोराद्ये कामो माया श्रीबीजं, मायाश्रीकामबीजं, श्रीमायाकामबीजं, तथा त्रिविधा चाष्टादशाक्षरी, तथा च–

काममायारमा पूर्वे माया लक्ष्मीः स्मरस्तथा। रमा माया तथा कामो वसुचन्द्राक्षरी त्रिधा।। १।।

"स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमाद्ये तव मनौ" इति भगवदाचार्येण प्रतिपादितम्। शक्तिकामराजस्तु[३] श्रीक्रमे–

मायाबीजं ततो झिण्ठिः कामः शक्रं वियत् क्रमात्। जातवेदो मृगाङ्केन लाञ्छितं परमेश्वरि।। १।।
एतद्वाग्भवकूटं च पूर्ववत् कामराजकम्। तथैव शक्तिबीजं तु सुन्दर्येषा प्रकीर्तिता।। २।।

---

१. 'त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा' ख. पाठः। २. 'ला' ख. पाठः। ३. 'शक्तिमायाश्रीकामबीजं' क.ख.ग. पाठः।

सुन्दरी सिद्धिदा विद्या त्रैलोक्यवशकारिणी।

अत्रापि पूर्ववद्बीजसंयोगः। माया ईकारः, झिण्ठिः एकारः। पुनः शक्तिमाह—

एतद्धगं ततो माया ब्रह्मा शक्रो हरोऽग्निना। वामनेत्रेण संयुक्तो नादबिन्दुविभूषितः।। १।।

एतद्वाग्भवमुद्दिष्टं पूर्ववत् कामशक्तिकम्।

भग एकारः। अत्रापि पूर्ववद्बीजसंयोगः। अत्र विशेषः—

ब्रह्मबीजं यदा दद्यात् त्रिकूटेषु वरानने[1]। प्रथमा सुन्दरी देवी द्वितीया ब्रह्मसुन्दरी।। १।।

शक्तिकूटे महेशानि अनन्तसुन्दरी मता। एषा तु षोडशी विद्या मतभेदेन दर्शिता।।२।।

इति। मन्त्रान्तरमाह—

त्रिकूटान्ते हंसबीजं बिन्दुसर्गविभूषितम्। एषा श्रीप्राणसंयुक्ता दारिद्र्यदुःखनाशिनी।। १।।

शक्तिलोपामुद्रा तु—

शक्तिर्महेशः कामश्च इन्द्रबीजं ततः परम्। महामाया ततः पश्चात्त्वत्स्नेहात् प्रकीर्तितम्।। १।।

पूर्ववत् कामशक्त्याख्यौ वर्णौ निष्कीलितात्मकौ। इति शाक्ती[3] महाविद्या पश्चिमाम्नाययोजिता।।२।।

शक्तिः सकारः। पूर्ववत् कामराजविद्यावत्। अत्रापि पूर्ववद्बीजसंयोगः।

शिवबीजं[4] शक्तिसोमं मादनं च पुरन्दरम्। व्योमवह्निसमायुक्तं तुरीयस्वरबिन्दुकम्।। १।।

पूर्ववत् कामराजस्तु शक्तिबीजं समुद्धरेत्। एषा विद्या महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते।। २।।

शक्तिः सकारः, सोमः सकारः, पूर्ववत् कामराजविद्यावत्। अत्रापि पूर्ववत् बीजसंयोगः।

शिवशक्तिर्भुवनेशानी वाग्भवं बीजमुत्तमम्। कामं व्योम च देवेशि महामाया ततः परम्।। १।।

सोमं व्योम महामाया नवार्णा परिकीर्तिता। रुद्रशक्तिरियं देवि पूर्वाम्नाये हि योजिता[5]।। २।।

इति। तन्त्रान्तरे—

मादनं गोत्रभित्सान्तो रेफवामाक्षिचन्द्रवान्। नादबिन्दुसमायुक्तः कथितः परमेश्वरि।। १।।

ब्रह्मा च गगनं शक्रो नकुलीशोऽनलस्तथा। मायाबिन्दुसनादेन कामराजं समुद्धरेत्।। २।।

शक्तिर्मादनशक्तश्च हरो वह्नीन्दुमायया। बिन्दुनादसमाक्रान्तः कथितः कामदो मनुः।। ३।।

एषा विद्या महेशानि कथितैकादशाक्षरी। अरिहा सिद्धिदा देवी महात्रिपुरसुन्दरी।। ४।।

मादनं पञ्चवक्त्रं च लोहिता रुद्रयोगिनी। पुरन्दरो महामाया वाग्भवं बीजमुत्तमम्।। ५।।

पूर्ववत् कामशक्त्याख्यमुद्धरेत् देवि सुन्दरीम्।

लोहिता[6] क्षकारः, रुद्रयोगिनी मकारः, पूर्ववत् कामराजविद्यावत्।

भृग्वीशं गगनं हान्तं कालमिन्द्रं महेश्वरम्। वामाक्षिवह्निचन्द्राढ्यं वाग्भवं परमेश्वरि।। १।।

कामराजं शक्तिकूटं पूर्ववत्तु समुच्चरेत्।

भृग्वीशं सकारः, हान्तः क्षकारः, कालो मकारः। पूर्ववत्कामराजविद्यावत्।

१. 'टे देवि दुर्लभे' क. पाठः। २. 'वदाम्यहं' ख. पाठः। ३. 'शक्तो' क. पाठः। ४. 'शक्ति' क. पाठः। ५. 'नायिका' ख. पाठः। ६. 'लोहिता सकारः, रुद्रयोगिनी नकारः' क. पाठः।

विष्णुरीशस्ततो हान्तः कालेशः पृथिवी ततः। भुवनेशी ततः पश्चाद्वाग्भवं कथितं त्वयि।। १।।
कामराजं शक्तिकूटं पूर्ववत् कथितं प्रिये।

विष्णुरीशः अकारयुक्तो हकारः, कालेशो मकारः। सौभाग्यविद्यामाह श्रीक्रमे—

सौभाग्यं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये। शक्तिः स्वयम्भूः शम्भुश्च शक्रश्च भुवनेश्वरी।। १।।
शिवो मादनरुद्रेन्द्रमहामाया ततः परम्। कामः शिवस्ततो ब्रह्मा इन्द्रश्च भुवनेश्वरी।। २।।
एषा तु परमा विद्या भक्तानां सुभगोदया[1]। त्रिकूटान्ते हंसबीजं तदा सप्तदशी भवेत्।।३।।
वाग्बीजं विजया माया ब्रह्मा शक्रस्तु पार्वती। मान्मथं शिवशक्तिश्च मादनो हर इन्द्रकः।।४।।
महामाया ततः पश्चाच्छक्तिर्मनुससर्गिका। चन्द्रः प्रजापतिः शक्रो महामाया ततः परम्।।५।।
अष्टादशाक्षरी विद्या महात्रिपुरसुन्दरी । सर्वान्ते हंससंयुक्ता विंशाक्षरी सदा भवेत्।। ६।।

श्रीदेव्युवाच

भाषा सृष्टिः स्थितिः संहृन्निराख्या पञ्च सुन्दरीः। कथयस्व प्रभो देव यदि ते रोचते मयि।। १।।

ईश्वर उवाच

शिवो मादन इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी। ब्रह्मा शिवेन्द्रौ शक्तिश्च महामाया ततः परा।। १।।
मादनेन्द्रौ शक्तिशिवौ महामाया तदन्तके।

शक्तिः सकारः। एषा भाषा (हकलसह्रीं कहलसह्रीं कलसहह्रीं)

शिवश्चन्द्रस्तथा कामः शक्रश्च भुवनेश्वरी। शिवेन्द्रकामरुद्राश्च चन्द्रश्च परमेश्वरी।। १।।
शक्तिः कामश्च इन्द्रश्च महामाया ततः परा।

(हसकह्रीं हलकहसह्रीं सकलह्रीं) इयं सृष्टिः।

शिवेन्द्रौ कामशक्ती च महामाया ततः परा। कामश्चन्द्रो महेशश्च इन्द्रः शक्तिश्च पार्वती।। १।।
ब्रह्मा महेश्वरः शक्तिः शक्रस्तु भुवनेश्वरी।

(हलकसह्रीं कसहलसह्रीं कहसलह्रीं) इति स्थितिरेषा।

शिवेन्द्रौ कामशक्ती च तत्परा भुवनेश्वरी। शिवशक्ती मादनेन्द्रौ शिवो वह्नीन्दुमायया।। १।।
शिवः शिवश्च कलहा वह्निमायेन्दुभूषिताः।

(हलकसह्रीं हसकलह्रीं हहकलह्रीं) इति एषा संहृतिः।

शक्रो ब्रह्मा चेन्दुबीजं महामाया ततः परा। वाग्भवं कथितं चैतत्कामराजं ततः शृणु।। १।।
शक्तिः शिवो[2] मादनेन्द्रौ तत्परा परमेश्वरी। शिवः शक्तिश्च[3] सोमश्च शून्यो ब्रह्मा महेश्वरी।।२।।

शून्यो हकारः। (लकसह्रीं सहकलह्रीं हससहकह्रीं) एषा निराख्या। देव्युवाच

स्वप्नावतीं मधुमतीं कथयस्व मयि प्रभो। इदानीं श्रोतुमिच्छामि यदि चास्ति[4] कृपा मयि।। १।।

ईश्वर उवाच

---

१. 'परमेशानि सुन्दरी सुभगोदया' ख. पाठः। २. 'वौ' क. पाठः। ३. 'वशक्तिश्च' ख. पाठः। ४. 'ते' ख. पाठः।

शिवो मादनशक्रौ च शक्तिश्च भुवनेश्वरी। महेशो ब्रह्म हंसश्च इन्द्रोऽपि भुवनेश्वरी॥ १॥
महेशः शक्तिः कामश्च पुरन्दरो वियत्तथा। अग्निमायाकलायुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्॥२॥

हंसो हकारः, मायाकला ईकारः। (हकलसह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं)

एषा स्वप्नावती ख्याता कला पञ्चदशी यथा। ब्रह्मा महेश इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी॥ १॥
ब्रह्मा वियन्मरुच्छक्रस्तत्परा भुवनेश्वरी। मादनं सोमचन्द्रौ च शक्रश्च भुवनेश्वरी[1]॥२॥

(मरुत् यकारः। कहलसह्रीं कहलयह्रीं कससलह्रीं इति।)

एषा मधुमती ख्याता सर्वशास्त्रेषु गोपिता। वामकेश्वरविद्यैव त्रिकूटक्रमपाठिता॥ १॥
सौभाग्यायास्त्रिकूटेन पञ्चम्याः पञ्चकूटकम्। त्रिपुराया महाविद्या कूटैकादशनिर्मिता॥२॥
सारात्सारतरा विद्या कथितैकादशाक्षरी।

अथ पञ्चमी —

कामं विष्णुयुतं देवि शक्तिमायेन्द्रमेव च। महामायां ततः पश्चाद्वाग्भवं बीजमुद्धरेत्॥ १॥

विष्णुरकारः, शक्तिरेकारः, माया ईकारः।

वियच्चन्द्रस्ततः पश्चात् कलौ नकुलिवह्नि च। मायास्वरेण संयुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम्॥ १॥
प्रथमं कामराजस्य कूटं परमदुर्लभम्। वियद्विष्णुयुतं कामो हंसः शक्रस्ततः परम्॥ २॥
महामाया ततः पश्चात् स्वप्नावतीति कथ्यते।

हंसो हकारः। एतद् द्वितीयं कामराजकूटम्।

मादनं शिवबीजं च वायुबीजं ततः परम्। इन्द्रबीजं ततः पश्चान्महामायां समुद्धरेत्॥ १॥

इति तृतीयम्। इयं मधुमती।

शिवबीजं तथा काममिन्द्रं देवीं नियोजयेत्। महामायां ततः पश्चाच्छक्तिकूटं समुद्धरेत्॥१॥
वाग्भवं प्रथमं देवि शक्तिकूटं च पञ्चमम्। मध्यकूटत्रयं देवि कामराजं मनोहरम्॥ २॥
कथिता पञ्चमी विद्या त्रैलोक्यसुभगोदया।

देवीं सकारम्। ईश्वर उवाच —

शृणु देवि महाभागे शक्तिकूटं सुदुर्लभम्। वाग्भवं प्रथमं कूटं कामराजं त्रिकूटकम्॥ १॥
शक्तिकूटं प्रवक्ष्यामि तव स्नेहाद्विशेषतः। जीवप्राणौ महादेवि मादनं तदनन्तरम्॥ २॥
इन्द्रबीजं ततः पश्चाद्भुवनेशी च पञ्चमम्।

इति वा शक्तिकूटम्,। जीवः सकारः, प्राणो हकारः।

अथवा देवदेवेशि सौभाग्यायाश्च वाग्भवम्। कूटत्रयं कामराजं शक्तिबीजं (कूटं) च पूर्ववत्॥१॥
एषा शक्त्या (प्रोक्ता) महादेवि पञ्चमी परमेश्वरी।

अस्यार्थस्तु—अस्य वाग्भवकूटं हित्वा सौभाग्यायाः प्रथमकूटं वाग्भवकूटे देयमित्यर्थः।

---

१. 'परमेश्वरी' क. पाठः। २. 'बीजं' क. पाठः।

वामनेत्रादिकूटं वा (रभवां?भगा) दिकूटमेव वा। अरिहा सिद्धदा विद्या सर्वदोषविवर्जिता।। १।।

भग एकार:। एतेनाष्टधा पञ्चमी वाग्भवशक्तिकूटभेदेन। यामले—

द्विविधा पञ्चमी विद्या पञ्चपञ्चाक्षरी परा। मध्ये षडक्षरं चैव शक्तिश्च चतुरक्षरा।। १।।

षडिति कामराजविद्यामध्यकूटमित्यर्थ:। शक्तिकूटमिति कामराजस्य शक्तिकूटमित्यर्थ:। एषा चतुर्धा वाग्भवकूटभेदात्, एतेन द्वादशधा भवति। तथा एतयोरष्टधा चतुर्धा व्यवस्थितयो: कामराजस्य तृतीयं कूटं तत्रैव—

कामबीजं महेशानि शिवबीजं तत: परम्। तदधो हंसबीजं तु इन्द्रबीजं विचिन्तयेत्।। १।।
महामायां तत: पश्चात् कूटं परमदुर्लभम्।

एषापि पूर्ववदष्टधा, अन्या चतुर्धा। तथा च तत्त्वबोधे— "कामाकाशपराशक्रा: संस्थानकृतरूपिणी।" परा सकार:। संस्थानकृतरूपिणी महामाया। तथा च तन्त्रे—

कामबीजं महेशानि शम्भुबीजं तत: परम्। तदधश्चन्द्रबीजं तु पृथ्वीबीजं ततो लिखेत्।। १।।
तदन्ते च महामाया कूटं परमदुर्लभम्।

एषा पूर्ववदष्टधा। अन्या चतुर्धा। तेन षट्त्रिंशद्रूपिणी पञ्चमी। (श्रीक्रमे—)

एतासां चैव विद्यानां प्राणं शृणु वरानने। रमां मायां हंसबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत्।। १।।
शक्त्यन्ते तु महादेवि हंसं मायां रमां तथा। एभिर्युक्तेन देवेशि विद्याजपनमाचरेत्।। २।।

जपश्च सप्तवारमेव, दीपिन्यां तथा दर्शनात्। एतासामिति श्रीपूर्वोक्तश्रीक्रमोक्तविद्यानाम्। पञ्चम्यां तु विशषो यथा—

रमां मायां हंसबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत्। शक्त्यन्ते तु महेशानि हंसं मायां रमा तथा।। १।।
कामराजत्रये देवि ककारं शक्रसंयुतम्। मायाबिन्द्वीश्वरयुतं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।। २।।
प्रथमं कामकूटस्य चाद्ये नियोजयेदिदम्। वान्तं वह्निसमायुक्तं वामनेत्रेण भूषितम्।। ३।।
नादबिन्दुसमायुक्तं श्रियो बीजमुदाहृतम्। द्वितीयं कामराजं तु जपेदुक्त्वा तु सुन्दरीम्।।४।।
गगनं वह्निसंयुक्तं वामनेत्रसमन्वितम्। नादविन्दुसमायुक्तं मायाबीजं प्रकीर्तितम्।। ५।।
ज्वलदग्निनिभं बीजं शुद्धहाटकगृञ्जनम्। कुलाकुलमये मध्ये ध्येयं साक्षान्महेश्वरि।। ६।।
मधुमतीं जपेच्चापि सर्वकामफलप्रदाम्।

इति। अथ दीपिनी —

तारं लक्ष्मी च वाग्बीजं मान्मथं भुवनेश्वरीम्[१]। एतज्जप्त्वा तत: पश्चाद्वाग्भवाख्यं समुद्धरेत्।।१।।
प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामं च वाग्भवम्। कामराजं ततो जप्त्वा त्रैलोक्यक्षोभकारकम्।।२।।
ओंकारं चैव वाग्बीजं रमां मन्मथमायया। स्वप्नावतीं महादेवि प्रजपेच्च समाहित:।। ३।।
प्रणवं चाधरं कामं रमां च भुवनेश्वरीम्। मधुमतीं ततो जप्त्वा मायां श्रीकूर्चबीजकम्।। ४।।
प्रणवाद्यं च देवेशि हंसबीजपुटीकृतम्। एतद्बीजं समुच्चार्य शक्तिकूटं ततो जपेत्।। ५।।
एषा तु दीपिनी विद्या अजपाप्राणरूपिणी।

---

१. 'रि' ग. पाठ:।

जपनियमस्तु—

जपेदादौ जपेत्पश्चात् सप्तवारमनुक्रमात्। कामराजादिविद्यानां दीपिनीं चैव कारयेत्॥ १॥
वाग्भवे कामराजे तु शक्तिकूटे सुरेश्वरि[१]।

तत्र क्रमः— वाग्भवशक्तिकूटयोर्दीपिनी पञ्चमीवद्बोद्धव्या, कामराजकूटे पुनः "प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामं च वाग्भवम्। दीपिनी"मिति सर्वकूटेषु संबन्धः[२]। तथा च सौभाग्यादिविद्यामधिकृत्य योगिनीहृदये—

स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी। सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी ॥ १॥
तत्त्वातीतस्वभावा च विद्यैषा भाव्यते सदा। श्रीकण्ठदशकं तद्वदव्यक्तस्य हि वाचकम्॥२॥
प्राणभूतः स्थितो देवि तद्वदेकादशः परः।

सौभाग्यादिविद्यायाः प्रथमकूटे अकारचतुष्टयमीकारश्चेति पञ्च स्वराः, षट् व्यञ्जनानि। द्वितीयकूटे स्वरव्यञ्जनभेदेन त्रयोदश, तृतीयकूटेऽपि नव, एवं तेन मिलित्वा त्रयस्त्रिंशदक्षराणि, कूटत्रये बिन्दुत्रयं नादत्वेनैक इति मिलित्वा सप्तत्रिंशत्, तेन नादं विहाय षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी, नादयुक्ता चेत्तत्त्वातीता, इति संज्ञा सदा च तत्त्वातीतस्वभावा॥

अथ श्रीविद्याया भेदानामुद्धारः —

कामराजस्य विद्याया वाग्भवं तु विलिख्य च। शिवकामहरेन्द्राश्च भुवनेशीमतः परम्॥ १॥
लोपावाग्भवकूटं तु उन्मनी सकलेष्टदा।

कएईलह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं—इयमुन्मनी श्रीविद्या।

कामराजस्य विद्याया वाग्भवं तु विलिख्य च। उन्मान्याः कामराजं तु चन्द्रहंसौ तु मादनम्॥ १॥
भूमिश्च भुनेशानी वरुणेन समर्चिता।

भूमिश्च लः। कएईलह्रीं, हकहलह्रीं, सहकलह्रीं— इयं वरुणोपासिता श्रीविद्या।

शक्तिर्मादनयोर्मध्ये इन्द्रश्च भुवनेश्वरी। शिवयोर्मादनं माया तार्तीयं वरुणस्य च॥ १॥
धर्मराजोपासितेयं भोगमोक्षफलप्रदा।

कएकलह्रीं, हकहह्रीं, सहकलह्रीं— इयं धर्मराजोपासिता श्रीविद्या॥

चन्द्रो मादनयोर्मध्ये इन्द्रश्च भुवनेश्वरी। शिवचन्द्रेन्द्रमदना भूमिश्च भुवनेश्वरी॥ १॥
चन्द्रमादनशक्राश्च वह्नीन्द्रौ भुवनेश्वरी। वह्निनोपासिता विद्या भोगमोक्षफलप्रदा॥ २॥

सककलह्रीं, हसलकलह्रीं, सकलरलह्रीं— इयं वह्न्युपासिता श्रीविद्या॥

लोपावाग्भवमुच्चार्य तस्या वै कामराजकम्। सकला वह्निभूमिश्च भुवनेशीं समुद्धरेत्॥ १॥
नागराजोपासितेयं धर्मकामार्थमोक्षदा।

हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलरलह्रीं— इयं नागराजोपासिता श्रीविद्या॥

मादनं शक्तिवह्नी च भूमिर्वह्निः सुरेश्वरी। शिवमादनभूमिश्च रहला भुवनेश्वरी॥ १॥
चन्द्रानलौ मादनेन्द्रवह्निश्च भुवनेश्वरी। वायूपासितविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा॥ २॥

कएरलह्रीं, हकलरहलह्रीं, सरकलरह्रीं— इयं वायूपासिता श्रीविद्या॥

---

१. 'री' क. पाठः। २. कूटे स्वरसंबन्धः' क. ग. पाठः।

मादनं शक्तितुर्यौ च वह्नीन्द्रौ भुवनेश्वरी। शिवमादनसूर्येन्द्रवह्नयो भुवनेश्वरी॥ १॥

चन्द्रसूर्यौ कलौ वह्निर्भुवनेशीं समुद्धरेत्। बुधोपासितविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा॥२॥

कएईरलह्रीं, हकहलरह्रीं, सहकलरह्रीं — इयं बुधोपासिता श्रीविद्या॥

मादनं च शिवेन्द्रौ च भुवनेशमीमतः परम्। शिवमादनभूमिश्च शिवेन्द्रेन्द्रानलास्तथा॥ १॥

माया च कामराजस्य शक्तिकूटं समुद्धरेत्। ईशानोपासिता विद्या ह्यणिमाद्यष्टसिद्धिदा॥२॥

कहलह्रीं, हकलहललरह्रीं सकलह्रीं— इयमीशानोपासिता श्रीविद्या।....?(कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं सकलह्रीं। इयं रत्युपासिता श्रीविद्या॥

कामराजाख्यविद्याया अनुलोमविलोमतः। नारायणोपासितेयं षट्कूटा भुवि दुर्लभा॥ १॥

कएईलह्रीं हसकहलह्रीं, सकलह्रीं, हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं— इयं नारायणोपासिता श्रीविद्या।

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवं तु समुद्धरेत्। शिवमादनसूर्येन्दुवह्निश्च भुवनेश्वरीं॥ १॥

लोपाया वाग्भवं चैव ब्रह्मणेयमुपासिता।

कएईलह्रीं, हकहसरह्रीं, हसकलह्रीं — इयं ब्रह्मोपासिता श्रीविद्या॥

लोपावाग्भवमुद्धृत्य ब्रह्मणः कामराजकम्। लोपावाग्भवकूटं तु जीवेनाराधिता त्वियम्॥ १॥

हसकलह्रीं, हकहसरह्रीं, हसकलह्रीं —इयं जीवोपासिता श्रीविद्या॥

जाग्रत्स्वरूपामायादिः पञ्चदश्युदितात्र तु। मायाश्रीबीजपूर्वा तु स्वप्नावस्थास्वरूपिणी॥ १॥

तारमायारमादिः स्यात् सा सुषुप्तिस्वरूपिणी। श्रीमहाषोडशार्णा तु तुरीया सम्प्रकीर्तिता॥ २॥

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं समाधिर्विमलं मनः। सदसद्वस्तुनिर्धारस्तुरीयाया इमाः कलाः॥ ३॥

वैराग्यरूपा तारादिः षोडशी परिकीर्तिता। मायादिः षोडशार्णा तु मुमुक्षुत्वस्वरूपिणी॥ ४॥

कामादिः षोडशार्णा स्यात् सा समाधिस्वरूपिणी। रमादिः षोडशी चित्तवैमल्यस्य स्वरूपिणी॥५॥

सदसद्वस्तुनिर्धारस्वरूपा वाग्भवादिका। पञ्चधा षोडशार्णा तु दुर्लभा भुवनत्रये॥ ६॥

परादिः षोडशीविद्या तुर्यातीता प्रकीर्तिता। भेदाः पूर्वोक्तरीत्या च ज्ञातव्यास्तन्त्रकोविदैः॥७॥

शुद्धाशुद्धविभेदेन द्विविधाः परिकीर्तिताः। उभयात्मकभेदाश्च शबलाश्च तथैव च॥ ८॥

अनुलोमाश्च या विद्याः शुद्धाः स्युः प्रतिलोमजाः। अशुद्धा इति विज्ञेया उभयात्मान एव च॥९॥

शुद्धाशुद्धाश्च शबला व्यत्यस्तव्या[1] कुलक्रमात्। एवं चतुर्विधा विद्या विज्ञेया देशिकोत्तमैः॥१०॥

अशेषेण महाविद्याभेदास्ते कथिताः शिवे।

इति श्रीविद्याया भेदनिरूपणम्॥ अथ पञ्चसिंहासनविद्याः। तत्र प्रथमं पूर्वसिंहासनविद्या, तत्राप्याद्या बाला।

श्रीज्ञानार्णवे— ईश्वर उवाच

त्रिपुरा त्रिविधा देवि बालां तु प्रथमां शृणु। यया विज्ञातया देवि साक्षात् सुरगुरुप्रभः॥ १॥

सूर्यस्वरं समुच्चार्य बिन्दुनादकलात्मकम्[2]। स्वरान्तं पृथिवीस्थं तु तुर्यस्वरसमन्वितम्॥२॥

---

१. 'स्ताव्याकु' ग. पाठः। २. 'लोत्सुकम्' क. ख. ग. पाठः।

बिन्दुनादकलाक्रान्तं सर्गवान् भृगुरव्ययः। शक्तस्वरसमोपेतो विद्येयं त्र्यक्षरी मता॥ ३॥
गङ्गातरङ्गकल्लोलवाग्गुम्फपददायिनी । महासौभाग्यजननी महासारस्वतप्रदा ॥ ४॥

इति। "ऐक्लींसौः" इति। तथा—

ऋषिरस्य महेशानि दक्षिणामूर्तिरव्ययः। न्यसेच्छिरसि पूज्यत्वात् पङ्क्तिश्छन्दो मुखे प्रिये॥५॥
देवता हृदये बालात्रिपुरा परमेश्वरी। बीजं तु वाग्भवं शक्तिस्तार्तीयं कीलकं तथा॥ ६॥
कामराजं महेशानि च्छन्दोन्यास उदाहृतः। नाभ्यादिपादपर्यन्तं गलादानाभि चापरम्॥ ७॥
मूर्धादिगलपर्यन्तं त्र्यक्षरीं विन्यसेत् क्रमात्। वामपाणितले चैकं दश पाणितले तथा॥ ८॥
उभयोः सम्पुटे विद्यात्रिबीजं[1] विन्यसेत् प्रिये। पञ्च बाणान् क्रमेणैव कराङ्गुलिषु विन्यसेत्॥ ९॥
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं क्रमेण परमेश्वरि । थान्तद्वयं समालिख्य वह्निसंस्थं क्रमेण तु॥ १०॥
मुखवृत्तेन नेत्रेण वामेन परिमण्डितम्। बाणद्वयमिदं प्रोक्तं मादनं भूमिसंस्थितम्॥ ११॥
चतुर्थस्वरबिन्द्वाढ्यं नादरूपं वरानने। फान्तं शक्रेण संयुक्तं वामकर्णविभूषितम्॥ १२॥
बिन्दुनादसमायुक्तं सर्गवांश्चन्द्रमाः प्रिये❁। पञ्च बाणा महेशानि नामानि शृणु पार्वति॥ १३॥
क्षोभणो द्रावणो देवि तथाकर्षणसंज्ञकः। वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि॥ १४॥
कामास्तत्रैव विज्ञेयास्तेषां बीजानि संशृणु। पराबीजं मध्यबाणं वाग्भवं परमेश्वरि ॥ १५॥
तुर्यबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजं तु क्रमात् प्रिये✤। पञ्च कामाः क्रमाद् देवि नामानि शृणु वल्लभे॥१६॥
काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः । मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमः परिकीर्तितः ॥ १७॥
एतान् विन्यस्य देवेशि करन्यासस्ततः परम्। मूलविद्याद्विरावृत्त्या सर्वाङ्गुलितलेष्वपि॥ १८॥
षडङ्गक्रमयोगेषु मातृकां विन्यसेत् ततः।

अत्र षडङ्गन्यासोत्तरं मातृकाषडङ्गमन्तर्मातृकान्यासं बहिर्मातृकान्यासं कुर्यादित्यर्थः। तथा—

एवं ध्यात्वा न्यसेत् पश्चाद्विद्यान्यासं सुरेश्वरि। कुर्वीत देहसन्नाहं त्रिभिर्बीजैः क्रमात् प्रिये॥ १९॥
करयोर्विन्यसेदादौ मणिमध्ये तलेऽग्रके[2]। दक्षे वामे च विन्यस्य कक्षकूर्परपाणिषु॥ २०॥
पुनर्दक्षे च वामे च पादयोश्च तथा न्यसेत्। नादान्ते[3] हृदये लिङ्गे न्यसेद्देवि ततः परम्॥ २१॥
एतेष्वङ्गेषु देवेशि संहारक्रमतो न्यसेत् । विद्यासृष्टिक्रमेणैव जानीहि परमेश्वरि ॥ २२॥
ततो न्यसेन्महेशानि नवयोन्यङ्कितं विधिम्[4]। कर्णयोश्चिबुके देवि शङ्खयोर्मुखमण्डले॥ २३॥
नेत्रयोर्नासिकायां च बाहुयुग्मे हृदि प्रिये। तथा कूर्परयोः कुक्षौ जान्वोर्जङ्घे च विन्यसेत्॥२४॥
पादयोर्देवि गुह्ये च पार्श्वहस्तस्तनद्वये। कण्ठे च नवयोन्याख्यं[5] न्यसेद्बीजत्रयात्मकम्[6]॥ २५॥
षडङ्गमाचरेद् देवि द्विरावृत्त्या क्रमेण तु। त्रिव्द्येकदशकत्रिद्विसंख्यया शैलसम्भवे ॥ २६॥
अङ्गुलीषु पुनर्देवि बाणान् कामांश्च विन्यसेत्। ललाटगलहृन्नाभिमूलाधारेषु वै क्रमात्॥२७॥

❁ 'द्रांद्रीक्लींब्लूंसः इति। ✤ 'ह्रींक्लींऐंव्लूंस्त्रीं। १. 'जैः' ग. पाठः। २. 'न्यतलाग्रके' ग. पाठः। ३. 'नाभ्यन्ते' ङ. पाठः।
४. 'ताभिधम्' ङ. पाठः। ५. 'ख्यां' ग. पाठः। ६. ' त्मिकां' ग. पाठः।

मूलेन व्यापकं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्।

इति। अत्र प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय ध्यायेत्।

ध्यायेद्देवीं महेशानि कदम्बवनमध्यगाम्। रत्नमण्डपमध्ये तु महाकल्पवनान्तरे।। २८।।
मुक्तातपत्रच्छायायां रत्नसिंहासने स्थिताम्। अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटां रत्नकुण्डलाम्।। २९।।
हारग्रैवेयसद्रत्नचित्रितां कङ्कणोज्ज्वलाम्। पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्⊘।।३०।।
वरदानरतां दिव्यां महासारस्वतप्रदाम्।

इति बाला।। अथ सम्पत्प्रदाभैरवी। श्रीज्ञानार्णवे– ईश्वर उवाच

यथा श्रीत्रिपुरा बाला तथा त्रिपुरभैरवी। सम्पत्प्रदा नाम तस्याः शृणु निर्मलमानसे।। १।।
शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ वाग्भवं तदनन्तरम्। कामराजं[१] तथा देवि शिवचन्द्रान्वितं ततः।। २।।
पृथ्वीबीजान्तवह्न्याढ्यं तार्तीयं शृणु सुन्दरि। शक्तिबीजे महेशानि शिववह्नी नियोजयेत्।। ३।।
कुर्मायास्त्रिपुरेशानि हित्वा सर्गं तु बैन्दवम्। त्रिपुराभैरवी देवी महासम्पत्प्रदा प्रिये ।। ४।।

ह्स्रैं, हसकलरीं, ह्स्रौं इति।

अनया सदृशी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा। मूलमन्त्रद्विरावृत्या षडङ्गन्यास ईरितः।। ५।। ध्यानम्–
उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्तारबिन्दश्रियम्। देवीं बद्धहिमांशुखण्डमुकुटां वन्दे सुमन्दस्मिताम्।।६।।

इति सम्पत्प्रदा भैरवी।। अथ चैतन्यभैरवी, श्रीज्ञानार्णवे–

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूर्वसिंहासनस्थिताम्। वाग्भवं बीजमुच्चार्य जीवप्राणसमन्वितम्।। १।।
सकला भुवनेशानीं द्वितीयं बीजमुद्धृतम्। जीवप्राणं बह्निसंस्थं शक्रस्वरविभूषितम्।। २।।
विसर्गाढ्यं महादेवि विद्यात्रैलोक्यमातृका। त्रैलोक्यमोहनी देवी परब्रह्मचिदात्मिका।। ३।।

स्हैं, सकलह्रीं, स्ह्रौः– इयं सकारादिरिति। अस्या ऋष्यादिकं प्राग्वत्। ध्यानम्–

उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम्। मुकुटोर्ध्व[२]लसच्चन्द्रलेखां रक्ताम्बरान्विताम्।। १।।
पाशाङ्कुशधरां नित्यां वामहस्ते कपालिनीम्। वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नतघटस्तनीम्।। २।।
एवं ध्यात्वा यजेद्देवीं प्रेत (पूर्व) सिंहासनस्थिताम्।

इति चैतन्यभैरवी।। अथ द्वितीया चैतन्यभैरवी श्रीज्ञानार्णवे–

एतस्या एव विद्याया बीजद्वयमुदाहृतम्। तदन्ते परमेशानि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।। १।।
एतस्या एव तार्तीयं रुद्रार्णा परमेश्वरि।

स्हैं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्ह्रौः इति। अस्या ऋष्यादिकं प्राग्वत्। ध्यानम्–

चैतन्यभैरवीं ध्यायेत् पाशाङ्कुशकपालिनीम्। रक्तां[३] मुण्डस्रजं पञ्चप्रेतसिंहासनस्थिताम्।। १।।

इति द्वितीया चैतन्यभैरवी।। अथ कामेश्वरी भैरवी श्रीज्ञानार्णवे –

⊘ दधानामिति शेषः। १. 'बीजं' क. पाठः। २. 'टाग्र' ग. पाठः। ३. 'मुक्ता' क. पाठः।

शिवचन्द्रौ मादनान्तं पान्तं वह्निसमन्वितम्। शक्तिभिन्नं बिन्दुनादकलाढ्यं वाग्भवं प्रिये॥ १॥
सम्पत्प्रदाया भैरव्याः कामराजं[1] तथैव हि। सदाशिवस्य बीजं तु महासिंहासनस्य च॥ २॥

हसखफ्रें, हसकलरीं, हसौं इति। ऋष्यादिकं पूर्ववत्।

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि रिपुभारनिकृन्तनम्। उद्यत्सूर्यसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम् ॥ १॥
नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम् । वमद्रुधिरमुण्डालिकलितां रक्तवाससम्॥ २॥
त्रिशूलं डमरुं खड्गं तथा खेटकमेव च। पिनाकं च शरान् देवि पाशाङ्कुशयुगं क्रमात्॥ ३॥
पुस्तकं चाक्षमालां च शवसिंहासनस्थिताम्।

इति कामेश्वरीभैरवी॥ इति पूर्वसिंहासनदेवताः॥ अथ दक्षिणसिंहासनदेवताः। तत्रादावघोरभैरवी—

अघोरविद्यारूपं तु महापापनिकृन्तनम्। अघोरे वाग्भवं पश्चाद्घोरे तु भुवनेश्वरी ॥ १॥
सर्वतः शर्वसर्वेभ्यो घोरघोरतरे रमाम्[3]। नमस्तेऽतु रुद्ररूपेभ्यो देव्या बीजयुगं लिखेत्॥२॥
त्रिंशद्भिश्च त्रिभिर्वर्णैर्विद्येयं कथिता प्रिये।

"अघोरे ऐं घोरे ह्रीं सर्वतः शर्वसर्वेभ्यो घोरघोरतरे श्रीं नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः क्लीं सौः"। अस्या ऋष्यादिषडङ्गन्यासध्यानानि प्राग्वत्, इत्यघोरभैरवी॥ अथ महाभैरवी— ईश्वर उवाच

शिवचन्द्रौ बह्निसंस्थौ वाग्भवेन समन्वितौ। नादबिन्दुसुसंयुक्तं प्रथमं बीजमुद्धृतम्॥ १॥
लोपाया वाग्भवं कूटं द्वितीयं बीजमुद्धृतम्। शिवचन्द्रौ बह्निसंस्थौ मनुस्वरसमन्वितौ॥ २॥
तृतीयं बीजमाख्यातं बिन्दुनादकलान्वितम्। हस्रैं हसकलह्रीं हस्रौ इति।
पूर्ववत् परमेशानि ऋष्यादिन्यासमेव च। मध्यकूटेन षड्दीर्घयुक्तेनाङ्गानि कल्पयेत्॥ १॥
आताम्रार्कसहस्राभां लसच्चान्द्रजटास्फुरत्। किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रितमौक्तिकाम्॥ २॥
स्फुरद्रुधिरपङ्काढ्यमुण्डमालाविराजिताम्। नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम् ॥ ३॥
मुक्ताहारलताराजत्पीनोन्नतघटस्तनीम् । रक्ताम्बरपरीधानां यौवनोन्मत्तरूपिणीम् ॥ ४॥
पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्। वरदानरतां नित्यां महाप्रेतासनस्थिताम्॥ ५॥

इति महाभैरवी॥ अथ ललिताभैरवी—

मायाबीजं समुद्धृत्य कामराजं तथोद्धरेत्। प्रेतबीजं समुद्धृत्य विद्येयं त्र्यक्षरी भवेत्॥ १॥

ह्रींक्लींहस्रौं इति।

पूर्वोक्ता एव मुन्याद्या आद्येनाङ्गक्रिया मता। उद्यत्सूर्यसहस्राभां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥ १॥
रत्नकुण्डलमुक्ता[6]लिपदकाङ्गदभूषणाम् । रत्नमञ्जीरसुभगां रक्तवस्त्रानुलेपनाम् ॥ २॥
पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च दधतीमक्षमालिकाम्। बाल्यलीलापरां देवीं कुमारीरूपधारिणीम्॥ ३॥
सर्वाङ्गसुन्दरीं ध्यायेत् सर्वसम्पत्तिहेतवे।

---

१. 'बीजं' क.ख.ग. पाठः। २. 'स्रवत्' ग. पाठः। ३. 'घोरघोरतरे सर्वतः शर्वसर्वेभ्यः' ग. पाठः। ४. 'कारयेत्' क.ख. पाठः। ५. 'मण्डलान्विताम्' क. ख. पाठः। ६. 'मुण्डा' क. ख. पाठः।

इति ललिताभैरवी। अथ कामेशीभैरवी— "कामेश्वरीभैरवी स्यात् कामराजेन सुन्दरी।" क्लीं, इति।

ऋषिरस्याः कामदेवो गायत्री छन्द उच्यते। कामेश्वरीदेवता स्याद्बीजेनाङ्गक्रिया मता।। १।।

जपाकुसुमसङ्काशां धनुर्बाणधरां स्मरेत्। नानालङ्कारसुभगां मोहयन्तीं जगत्त्रयम्।। २।।

इति कामेश्वरीभैरवी।। अथ रक्तनेत्राभैरवी—

चन्द्रवाग्भवसंयुक्तं बीजं प्रथममीरितम्। सकला बह्निमायाभ्यां द्वितीयं बीजमीरितम्।। १।।

बालायाश्चैव तार्तीयं तृतीयं बीजमुद्धृतम्। सैं, सकलरीं, सौः— इति।

कुमार्या एव ऋष्यादिरस्याश्च परमेश्वरि। षड्दीर्घचन्द्रबीजेन षडङ्गन्यास ईरितः।। १।।

उद्यत्सूर्यसहस्राभ्रां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। रत्नकुण्डलमुक्तालिपदकाङ्गदभूषणाम्।। २।।

रत्नमञ्जीरसुभगां रक्तवस्त्रानुलेपनाम्। पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च दधानां चाक्षमालिकाम्।। ३।।

उन्मत्तयौवनप्रौढां पीनोन्नतघनस्तनीम्। नितम्बिनीं क्षाममध्यां प्रान्तरक्तसुलोचनाम् ।। ४।।

इति रक्तनेत्रा भैरवी। इति दक्षिणसिंहासनदेवताः।। अथ पश्चिमसिंहासनदेवताः। तत्रादौ षट्कूटा भैरवी—

शिवचन्द्रौ मादनं च भूमिर्वह्निस्तु डामरम्। वाक्शान्तिमनुभिर्युक्तं बीजत्रयमुदाहृतम्।। १।।

हसकलरडैं, हसकलरडीं, हसकलरडौः — इति।

ऋष्यादीन् पूर्ववन्न्यस्य द्विरावृत्त्या षडङ्गकम्। बालसूर्यप्रभां देवीं जपाकुसुमसन्निभाम्।। १।।

मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्यसमांशुकाम्[1]। सुवर्णकलशाकारपीनोन्नतपयोधराम्[2] ।। २।।

पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च तथा च जपमालिकाम्। दधतीं भैरवीं ध्यायेत् प्रेतसिंहासनस्थिताम्।।३।।

इति षट्कूटाभैरवी।। अथ नित्याभैरवी—

षट्कूटाभैरवी देवी प्रतिलोमतया भवेत्। नित्या च भैरवी प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा।। १।।

डरलकसहैं, डरलसकहीं, डरलकसहौः — इति।

पूर्वोक्ता एव मुन्याद्या ध्यानमस्या वदामि ते। पञ्चमुण्डसमासीनां मुण्डमालाविभूषिताम्।। १।।

आताम्रार्कायुताभायां रत्नभूषणभूषिताम्। पाशाङ्कुशाभयवरान् दधतीं भावयेच्छिवाम्।। २।।

इति नित्या भैरवी।। अथ मृतसञ्जीवनी —

मायां हंसः पदं चोक्त्वा सञ्जीवनि ततः परम्। जूंजीवं प्राणपदं[3] ग्रन्थिं कुरुयुगं ततः।। १।।

स्वाहान्ता कथिता विद्या मृतसञ्जीवनी परा।

ह्रींहंसः सञ्जीवनि जूंजीवं प्राणग्रन्थिं कुरु २ स्वाहा।

ऋषिः शुक्रः समाख्यातो गायत्री छन्द ईरितम्। मृतसञ्जीवनी देवी देवता परिकीर्तिता।। १।।

मायाबीजं तु बीजं स्यात् स्वाहा शक्तिरुदाहृता। हंसस्तु कीलकं प्रोक्तं मृतसञ्जीवनाय च।।२।।

विनियोगः समाख्यातस्त्रिचतुश्चैककं पुनः। षट्चतुर्द्विककेनैव षडङ्गानि समाचरेत्।। ३।।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्— ईश्वर उवाच

---

१. 'कुलाम्' ग. पाठः। २. 'घनस्तनीम्' क. ग. पाठः। ३. 'प्राणग्रन्थि' क. ख. पाठः।

देवि पश्चिमवक्त्रेण मयाद्यापि प्रजप्यते। विद्याचतुष्टयं साक्षादमृतानन्दविग्रहम् ॥ १॥
महासिंहासनगतं तत्र सञ्जीवनीं शृणु। शक्तिबीजं समालिख्य शिवचन्द्रौ समालिखेत्॥ २॥
अनुस्वारविसर्गाभ्यां मण्डितौ क्रमतः प्रिये। सञ्जीवनि[1] च जूं जीवं प्राणग्रन्थिस्थमालिखेत्॥३॥
कुरुशब्दस्त्रिशः सौः सौः वह्निजायान्वितो मनुः। विंशत्यर्णेति।

ह्रींहंसः सञ्जीवनि[2] जूं हंसः कुरु कुरु कुरु सौः सौः स्वाहा इति।

ऋषिः शुक्रः समाख्यातो गायत्रं छन्द उच्यते। सञ्जीवनी देवता स्याच्छक्तिरस्यादिबीजकम्॥१॥
चतुष्कं त्रितयं पञ्च पञ्चकं चतुरेव हि। त्रिकं च क्रमतो देवि षडङ्गानि प्रविन्यसेत्॥ २॥
कर्पूराभां हीरमुक्ताभूषणैर्भूषिताम्बराम् । ज्ञानमुद्रामक्षमालां दधतीं चिन्तयेत् पराम्॥ ३॥

इति मृतसञ्जीवनी॥ अथ मृत्युञ्जयपरा—

अथ वक्ष्ये महेशानि मृत्युञ्जयपरां पराम्। वदद्वन्दूं वादिनीति वाङ्मध्ये निक्षिपेत् प्रिये॥ १॥
हंसकं वाग्भवं देवि क्लिन्ने क्लेदिनि चालिखेत्। महाक्षोभं कुरुद्वन्दं शिवचन्द्रकलानलाम्॥२॥
वामाक्षिबिन्दुनादाङ्कां तारबीजं ततो वदेत्। मोक्षं कुरुयुगं हंसं शक्रस्वरविसर्गवत्॥ ३॥

वदवदवाग्वादिनि हसैं, क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु २ हस्रीं, ओं मोक्षं कुरु २ हसौः इति।

इयं सञ्जीवनी देवी ऋषिरस्याः शिवः प्रिये। गायत्रं छन्द आख्यातं देवतेयं तु भैरवी॥ १॥
आदिकूटं भवेद्बीजं मध्यकूटं तु कीलकम्। अन्त्यकूटं भवेच्छक्तिः साक्षान्मृत्युविनाशनी॥२॥
नवशक्राष्टवर्णैस्तु षडङ्गानि प्रविन्यसेत्। ध्यात्वा चावाहयेद्देवीं कदम्बवनमध्यगाम्॥ ३॥
पुस्तकं वामहस्तेन दक्षिणेनाक्षमालिकाम्। बिभ्रतीं कुन्दधवलां कुमारीं चिन्तयेत् पराम्॥ ४॥

इति मृत्युञ्जयपरा॥ अथ वज्रप्रस्तारिणी— ईश्वर उवाच

परां क्लिन्ने वाग्भवं च तत्क्रोमात्मकमक्षरम्। ततो नित्यमदप्रान्ते द्रवे मायां च संलिखेत्॥१॥

ह्रींक्लिन्ने ऐंक्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं— इति।

वज्रेशी रविवर्णेयं ऋषिर्ब्रह्मास्य सन्मनोः। छन्दो विराट् च वज्रेशी देवता परिकीर्तिता॥ १॥
पञ्चमं च चतुर्थं च बीजशक्ती क्रमेण तु। तार्तीयं कीलकं देव्यास्ततोऽङ्गानि प्रविन्यसेत्॥ २॥
आद्यन्तबीजं सन्त्यज्य द्विकं चैकेकरूपकम्। द्विकं द्विकं त्रिकं[3] चैव षडङ्गानि प्रकल्पयेत्॥३॥
ध्यात्वा चावाहयेद्देवीं कदम्बवनमध्यगाम्। रक्तां चन्द्रकलाचारुमुकुटां वरभूषणाम् ॥ ४॥
महातारुण्यगर्वाढ्यलोचनत्रयशोभिताम् । शोणिताब्धितरत्पोतमहायन्त्रोपरि स्थिताम् ॥ ५॥
दाडिमं सायकांश्चैव पाशं चैव सृणिं तथा। चापं कपालं दधतीं शोणमाल्यानुलेपनाम्॥६॥
स्मरेद्रक्ततरां देवीमुपचारैः समर्चयेत्।

इति वज्रप्रस्तारिणी॥ इति पश्चिमसिंहासनदेवताः॥ अथोत्तरसिंहासनदेवताः। तत्रादौ भुवनेश्वरीभैरवी—

....। (?)

---

१. 'नीच' क. ख. पाठः। २. 'नी जूंसः कुरु' क. पाठः। ३. 'द्विकं' ख. पाठः।

लोपावाग्भवमुच्चार्य प्रेतबीजं समुद्धरेत्। रेफं शिवाधो निःक्षिप्य भुवनेशी च भैरवी।। १।।

हस्रैं, हसकलह्रीं हस्रौं इति।

कुमार्या एवं ऋष्याद्या आद्येनाङ्गक्रिया मता। जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमप्रभाम्।। २।।
चन्द्रलेखाजटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससम् । नानालङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम्।। ३।।
प्रेतासनसमासीनां मुण्डमालाविभूषिताम्। पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां श्रये ।। ४।।

इति भुवनेशीभैरवी।। अथ कमलेश्वरीभैरवी— "भुवनेशी च चन्द्राद्या कमलेशी तथा भवेत्।।" सहैं, सहकलह्रीं सह्रौं— इति। अन्यत्सर्वं भुवनेशीभैरवीवत्। इति कमलेशीभैरवी।। अथ सिद्धकौलेशभैरवी—

हस्रैं हस्रीं च हस्रौः च सिद्धकौलेशभैरवी। कुमार्या एव मुन्याद्या ध्यानमस्या वदामि ते।। १।।
आताम्रार्कसहस्राभां त्रिनेत्रां चन्द्रसन्मुखीम्। चन्द्रखण्डस्फुरद्रत्नमुकुटां क्षाममध्यमाम् ।। २।।
नितम्बिनीं स्फुरद्रत्नवसनां रक्तभूषणाम् । उन्मत्तयौवनप्रौढां पीनोन्नतघनस्तनीम् ।। ३।।
असृक्पङ्काढ्यमुण्डस्रङ्मण्डिताङ्गीं सुभूषणाम्। पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्।।४।।
वरदं दधतीं ध्यायेत् प्रेतसिंहासनस्थिताम्।

इति सिद्धकौलेशभैरवी।। अथ डामरभैरवी— ईश्वर उवाच

उत्तरास्येन देवेशि मयाद्यापि प्रजप्यते। महासिंहासनगता भैरवी डामरेश्वरी ।। १।।
पूर्वोक्तभैरवीदेव्याः कामकूटे परां शिवाम्। हित्वोच्चरेत् तदा विद्यां महासिंहासनेश्वरीम्।।२।।

हसैं, हक्लीं, हसौः— इति।

पूर्वोक्ता एव मुन्याद्या ध्यानमस्या वदामि ते। बन्धूककुसुमाभासां पञ्चमुण्डाधिवासिनीम्।। १।।
स्फुरच्चन्द्रकलारत्नमुकुटां मुण्डमालिनीम् । त्रिनेत्रां रक्तवसनां पीनोन्नतघनस्तनीम्।। २।।
पुस्तकं चाक्षमालां च वरदं चाभयं क्रमात्। दधतीं संस्मरेन्नित्यमुत्तराम्नायमानिताम्।। ३।।

इति डामरभैरवी।। अथ कामिनीभैरवी—

सम्पत्प्रदाया भैरव्या वह्निं त्यक्त्वा समुद्धरेत्। कामिनीभैरवी चेयं भयविध्वंसिनीति वा।। १।।

हसैं, हसक्लीं, हसौ—इति।

पूर्वोक्ता एव मुन्याद्या ध्यानमस्या वदामि ते। आताम्रार्का युता भासां रत्नभूषणभूषिताम्।। १।।
पाशाङ्कुशाभयवरान् धारयन्तीं शवासनाम्। मुण्डमालावलीरम्यां चिन्तयेद्भैरवीं पराम् ।।२।।

इति कामिनीभैरवी। इत्युत्तरसिंहासनदेवताः।। अथोर्ध्वसिंहासनदेवतास्तत्रादौ प्रथमसुन्दरी—ईश्वर उवाच

अथेशानेन वक्त्रेण मयाद्यापि प्रजप्यते। विद्यानां पञ्चकं देवि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।। १।।
वाग्भवं शिवसंयुक्तं वाग्भवे मध्यमं शृणु। हकालान्तें[1] महेशानि शिवबीजं तु संलिखेत्।।२।।
रेफवामाक्षिबिन्द्विन्दुघटितं तु तृतीयकम्। हसानुग्रहसर्गाढ्यं विद्यैका सुन्दरी प्रिये ।। ३।।

हैं, हकलह्रीं, हसौः— इति प्रथमसुन्दरी।। अथ द्वितीयसुन्दरी—

---

१. 'ह्रैं' क. पाठः।

अहसाद्यैर्जपेन्मन्त्री रवितुर्यमनस्वरैः। अन्त्यं ससर्गमाद्ये हि बिन्दुनादकलात्मिके॥ १॥
इयं द्वितीया देवेशि सुन्दरी परिकीर्तिता।

अहसैं, अहसीं, अहसौः इति द्वितीयसुन्दरी॥ अथ तृतीयसुन्दरी—

केवलं वाग्भवं देवी वाग्भवे मध्यमं शृणु। हसएहससस्त्रांश्च वाग्भवेन च योजयेत्॥ १॥
हत्रयं कलहल्लेखां शक्तिकूटं शृणु प्रिये। चतुष्कं शिवबीजानां रेफोऽनुग्रहसर्गवान्॥ २॥
एवं तृतीया देवेशि सुन्दरी चतुरक्षरा॥

ऐं, हसएहसहस्रैं हहहकलह्रीं, हहहहरौः, इति तृतीयसुन्दरी॥ अथ चतुर्थसुन्दरी—

कलान्ते शिवयुग्मं तु तथा जीवत्रयं शिवे। परया पिण्डितं कुर्यात् कूटमेतत् त्रिधेरयेत्॥ १॥
वाग्भवे कामराजे च शक्तिबीजे च संलिखेत्। चतुर्थी सुन्दरी ख्याता भोगमोक्षप्रदायिनी॥ २॥

कलहहसससहैं (ह्रीं), कलहहसससह्रीं, कलहहसससह्रौं, (ह्रीं)— इति चतुर्थसुन्दरी। अथ पञ्चमसुन्दरी

जीवः शिवयुगं जीवः क्ष्माक्षकारशिवेन्दुमत्। एतदाद्यं च मध्यं च हसयुक्क्ष्माक्षहेन्दुमत्॥ १॥
अन्त्यं तु हसलक्षेन्दुहेन्द्वाकाशविभूषितम् । त्रिपुरेशीमनोरेषा पञ्चमी सुन्दरी भवेत् ॥ २॥

सहहसलक्षहैं, हसहसलक्षहर्सीं, हसलक्षसहसहौः— इति पञ्चमसुन्दरी।

सम्पत्प्रदाभैरवीवद्ध्यायेत् पञ्चकमुत्तमम्। ऋष्यादिपूजा विज्ञेया त्रिपुरेशीव नान्यथा॥ १॥

इत्यूर्ध्वसिंहासनविद्याः। इति पञ्चसिंहासनविद्यानिरूपणम्। अथ पञ्चपञ्चिकागणस्तत्रादौ पञ्चलक्ष्म्यः, तत्रादौ श्रीविद्यालक्ष्मीः —

षोडशार्णां महाविद्यां समुच्चार्य विधानवित्। महालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता॥ १॥
सर्वसौभाग्यजननीपादुकां पूजयामि च।

इति श्रीविद्यालक्ष्मीः॥ अथैकाक्षरलक्ष्मीः —

वरुणान्तं वह्निसंस्थं दीर्घनेत्रविभूषितम्। बिन्दुनादसमायुक्तं लक्ष्मीमन्त्र उदाहृतः॥ १॥ श्रीं इति।
ऋषिर्भृगुर्निचृच्छन्दस्तथा श्रीर्देवता प्रिये। शतुर्ये बीजशक्ती च कीलकं रेफ उच्यते॥ २॥
षड्दीर्घयुक्स्वबीजेन षडङ्गानि समाचरेत्। ध्यायेत् ततः श्रियं रम्यां सर्वदेवनमस्कृताम्॥३॥
तप्तकार्तस्वराभासां दिव्यरत्नविभूषिताम्। आसिच्यमानाममृतैर्मुक्तारत्नद्रवैरपि ॥ ४॥
शुभ्राभ्राभेभयुग्मेन मुहुर्मुहुरपि प्रिये । रत्नौघबद्धमुकुटां शुद्धक्षौमाङ्गरागिणीम् ॥ ५॥
पद्माक्षीं पद्मनाभेन हृदि चिन्त्यां स्मरेद्बुधः। एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं पद्मयुग्मधरां सदा॥ ६॥
वरदाभयशोभाढ्यां चतुर्बाहुं सुलोचनाम्।

इति लक्ष्मीः॥ अथ महालक्ष्मीः —

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य हरीमात्मकमक्षरम्। श्रीपुटं चाथ कमले कमलाये प्रसीद च॥ १॥
लायेमध्यगतां भूमिं[२] रुद्रस्थाने तु योजयेत्। प्रसीद पूर्वबीजानि सम्पुटत्वेन योजयेत्॥२॥

---

१. 'द्यो' क. पाठः। २. 'कमलाय प्रसीद च लयेमध्यगता भूमिरू०' क.ग.पाठः।

महालक्ष्मीहृदन्तोऽणुरष्टाविंशतिवर्णवान्।

ऊँश्रींह्रींश्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रींह्रींश्रींऊँ महालक्ष्म्यै नमः– इति।

दक्षः प्रजापतिश्चास्य ऋषिश्छन्दस्तथैव च। गायत्री देवता लक्ष्मीर्हृदयं परिकीर्तितम्।। १ ।।

द्वितीयं च तृतीयं च बीजशक्ती क्रमेण तु। प्रणवः कीलकं देवि ततोऽङ्गानि प्रविन्यसेत्।।२ ।।

अङ्गानि पूर्ववद्देवि न्यसेन्मन्त्री समाहितः। रत्नोद्यद्वसुपात्रं च पद्मयुग्मं च हेमजम्।। ३ ।।

[1]अग्ररत्नावलीराजदादर्शं दधतीं पराम् । चतुर्भुजां स्फुरद्रत्ननूपुरां मुकुटोज्ज्वलाम् ।। ४ ।।

ग्रैवेयाङ्गदहाराढ्यकङ्कणां रत्नकुण्डलाम् । पद्मासनसमासीनां दूतीभिर्मण्डितां सदा ।। ५ ।।

शुक्लाङ्गरागवसनां महादिव्याङ्गनानताम्। एवं ध्यात्वार्चयेद्देवीमिति।

इति महालक्ष्मीः।। अथ त्रिशक्तिलक्ष्मीः –

श्रीबीजं च पराबीजं कामबीजं समालिखेत्। इयं त्रिशक्तिर्देवेशि त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।। १ ।।

श्रींह्रींक्लीं– इति।

ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छन्दोऽपि कथितं प्रिये। त्रिशक्तिर्देवताङ्गानि द्विरावृत्त्या यजेत् प्रिये।। १ ।।

(?)..............................ध्यायेत्सर्वसमृद्धिदाम्। नवहेमस्फुरद्भूमौ रत्नकुट्टिममण्डपे।। २ ।।

महाकल्पवनान्तःस्थे रत्नसिंहासने वरे । कमलासनशोभाढ्यां रत्नमञ्जीरकुण्डलाम् ।। ३ ।।

स्फुरद्रत्नलसन्मौलिं रत्नकुण्डलमण्डिताम्। अनर्घ्यरत्नघटितनानामण्डन[2]भूषिताम् ।। ४ ।।

दधतीं पद्मयुगलं पाशाङ्कुशधनुःशरान्। षड्भुजामिन्दुवदनां दूतीभिः परिवारिताम्।। ५ ।।

चारुचामरहस्ताभी रत्नादर्शसुपाणिभिः। ताम्बूलस्वर्णपात्रीभिर्भूषापेटीसुपाणिभिः ।। ६ ।।

'तप्तकार्तस्वराभासाम्' इति। इति त्रिशक्तिलक्ष्मीः।। अथ सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीः –

अथ वक्ष्ये महेशानि[3] सर्वसाम्राज्यदेवताम्। यस्या आराधने विष्णुरभूल्लक्ष्मीपतिः स्वयम्।। १ ।।

चन्द्रेशमादनक्ष्मेशवह्निदीर्घाक्षिमण्डितम् । विध्व[4]क्रूरेश्वरीयुक्तं विद्येयं वैष्णवी प्रिये ।। २ ।।

श्रीबीजसम्पुटं कुर्यात् सर्वसाम्राज्यदायिनी।

श्रींसहकलह्रींश्रीं इति।

ऋषिर्हरिस्तथा छन्दो गायत्री चास्य सन्मनोः। देवता मोहनी लक्ष्मीर्महासाम्राज्यदायिनी।। १ ।।

बीजं कूटं समाख्यातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते। षड्भिराद्यैः स्वरैर्भित्त्वा षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।।२ ।।

अतसीपुष्पसङ्काशां रत्नभूषणभूषिताम्। शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः।। ३ ।।

षड्भिः कराभ्यां देवेशि वरदाभयशोभिताम्। एवमष्टभुजां ध्यात्वेति।

इति सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीः। इति पञ्चलक्ष्म्यः।। अथ पञ्चकोशविद्याः– तत्र श्रीविद्याकोशेश्वरी– ऊँऐंह्रींश्रीं, मूलम्।

महाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता। सर्वसौभाग्यजननीपादुकां पूजयामि च।। १ ।।

---

१. 'आग्रय' ख. पाठः। २. 'भूषण' क.ख. पाठः। ३.'महादेवि' क.ख. पाठः। ४.'विद्वक्रूर' क. पाठः। 'बिन्दु' ग. पाठः।

इति श्रीविद्याकोशेश्वरी॥

अथ श्रीकोशविद्यानां चतुष्कं शृणु पार्वति। यस्य विज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते॥ १॥

श्रीविद्या च परज्योतिः परनिष्कलदेवता। अजपा मातृका चैव पञ्च कोशाः प्रकीर्तिताः॥२॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य परां हंसःपदं लिखेत्। ततः सोऽहं शिरो देवि वसुवर्णेयमीरिता ॥३॥

"ओंह्रींहंसःसोऽहं स्वाहा" इति।

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द उच्यते। परज्योतिर्मयी साक्षाद्देवता परिकीर्तिता ॥४॥

प्रणवान्त्यद्वयं बीजशक्ती शेषं तु कीलकम्। स्वाहा तु हृदयं सोऽहं शिरो हंसः शिखा भवेत्॥५॥

मायया कवचं तारबीजेन नयनत्रयम्। मृज्यान्मन्त्रेण देवेशि समग्रेणास्त्रकं भवेत्॥ ६॥

ध्यानं तु प्रपञ्चयागकरणे प्रपञ्चितमिति परज्योतिः कोशेश्वरी॥ अथ परनिष्कलदेवता कोशेश्वरी —

अथ वक्ष्ये महेशानि परनिष्कलदेवताम्। यस्याः स्मरणमात्रेण चिदानन्दायते पुनः॥ १॥

अनुग्रहादिर्देवेशि बिन्दुनादकलात्मकः। परनिष्कलदेवीयं परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २॥

शुक्लाम्बरपरीधाना शुक्लमाल्यानुलेपना। ज्ञानमुद्राङ्किता योगिपतिवृन्देन सेविता॥ ३॥

ध्येयेति शेषः।

ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्रं मनोश्छन्दः क्रमाद्भवेत्। ब्रह्मैव देवता बीजशक्ती अऊ क्रमेण तु॥ ४॥

मकारः कीलकं मोक्षफलदा ज्ञानदायिनी। स्वरद्वन्द्वस्य मध्ये तु क्षिप्त्वा त्यक्त्वा चतुष्टयम्॥ ५॥

ऋॠऌॡ च देवेशि षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।

इति परनिष्कलदेवता॥ अथाजपाकोशेश्वरी —

अजपाराधनं देवि कथयामि तवानघे। यस्य विज्ञानमात्रेण परब्रह्मैव देशिकः ॥ १॥

हंसःपदं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः। मोहबद्धो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते॥ २॥

श्रीगुरोः कृपया देवि जायते जप्यते तदा। उच्छ्वासनिःश्वासतया तदा बन्धक्षयो भवेत्॥ ३॥

उच्छ्वासे चैव निःश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम्। तस्मात् प्राणस्तु हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः॥ ४॥

षट्श्वासैश्च भवेत् प्राणः षट्प्राणैर्नाडिका मता (?) षष्टिनाड्या अहोरात्रं जपसंख्याजपामनोः॥ ५॥

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि। जपते प्रत्यहं प्राणी सदानन्दमयीं पराम्॥ ६॥

उत्पत्तिर्जप आरम्भो मृतिरस्य निवेदनम्। विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः॥ ७॥

अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी। श्रीगुरोः कृपया देवि लभते नान्यथा प्रिये॥ ८॥

एवं जपं महेशानि प्रत्यहं विनिवेदयेत्। गणेशब्रह्मविष्णुभ्यो हराय परमेश्वरि ॥ ९॥

जीवात्मने क्रमेणैव तथा च परमात्मने। षट् शतानि सहस्राणि षडेव च तथा पुनः॥ १०॥

षट् सहस्राणि च पुनः सहस्रं च सहस्रकम्। पुनः सहस्रं गुरवे क्रमेण तु निवेदयेत्॥ ११॥

जपं निवेदयित्वा तमहोरात्रभवं प्रिये। सहजं परमेशानि न्यासं कुरु विचक्षणे॥ १२॥

ऋषिर्हंसोऽव्यक्तपूर्वं गायत्रं छन्द उच्यते। देवता परमादिस्तु हंसो हं बीजमुच्यते।। १३।।
स: शक्ति: कीलकं साऽहं प्रणवस्तत्त्वमेव हि। नभ: स्थानं तथा श्वेतो वर्णस्तु परमेश्वरि।। १४।।
उदात्त: स्वर इत्येवं मनोरस्य प्रकीर्तितम्। मोक्षार्थे विनियोग: स्यादेवं जानीहि पार्वति।। १५।।
तत: षडङ्गविन्यासं कुर्याद् देहस्य शुद्धये। सूर्यं सोमं तथा देवि निरञ्जनमतः परम्।। १६।।
निराभासं चतुर्थ्यन्तस्वाहान्तान् क्रमतो न्यसेत्। कवचान्तान् प्रविन्यस्य ततोऽनन्तपदं स्मरेत्।।१७।।
तनुसूक्ष्मचतुर्वर्णानुक्त्वा ङेन्तं प्रचोदयात् । स्वाहान्तेनेव नयनमव्यक्तपदपूर्वक: ।। १८।।
प्रबोधात्मा चतुर्थ्यग्निजायान्तोऽस्त्रं निगद्यते। अस्य हंसस्य देवेशि निगमागमपक्षकौ।। १९।।
अग्नीषोमावथो वापि पक्षौ तार: शिरो भवेत्। बिन्दुत्रयं शिखा नेत्रे मुखे नाद: प्रतिष्ठित:।।२०।।
शिवशक्तिपदद्वन्दं कालाग्निपार्श्वयुग्मकम् । अयं परमहंसस्तु सर्वव्यापी प्रकाशवान्।। २१।।
सूर्यकोटिप्रतीकाश: स्वप्रकाशेन भासते। संहाररूपी हंसोऽयं विवेकं दर्शयत्यपि।। २२।।
अजपा नाम गायत्री त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।

इत्यजपाकोशेश्वरी।। मातृका प्रागेव प्रपञ्चिता। इति पञ्च कोशदेवता:।। अथ पञ्च कल्पलता: —

अथ वक्ष्ये महेशानि विद्या: कल्पलता: प्रिये। यासां विज्ञानमात्रेण पलायन्ते महापद:।। १।।
श्रीविद्या पारिजातेशी पञ्चकामेश्वरी तथा। पञ्चबाणेश्वरी देवी कुमारी पञ्च कीर्तिता:।। २।।

"ऊँऐंह्रींश्रीं मू० महाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थितसर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्याकल्पलताश्रीपादुकां पूजयामि।" इति श्रीविद्याकल्पलतेश्वरी।। अथ पारिजातेश्वरी—

सम्पत्प्रदाया भैरव्या वाग्भवं बीजमालिखेत्। तारेण परया देवि सम्पुटीकृत्य मन्त्रवित्।। १।।
सरस्वत्यै हृदन्तोऽयं रुद्रार्णो मनुरीरित:।

"ऊँह्रींऐंह्रींऊँ सरस्वत्यै नम:" इति।

ऋषि: स्याद्दक्षिणामूर्तिर्गायत्रं छन्द ईरितम्[1]। पारिजातेश्वरी वाणी देवता परिकीर्तिता।। २।।
तृतीयं च द्वितीयं च बीजशक्ती च तारकम्। कीलकं परमेशानि महासारस्वतप्रदम्।। ३।।
षड्दीर्घस्वरसम्भिन्नबीजेनाङ्गानि विन्यसेत्। हंसारूढां लसन्मुक्ताधवलां शुभ्रवाससम्।। ४।।
शुचिस्मितां चन्द्रमौलिं वज्रमुक्ताविभूषणाम्। विद्यां वीणां सुधाकुम्भमक्षमालां च बिभ्रतीम्।।५।।

इति पारिजातेश्वरी।। अथ पञ्चबाणेश्वरी —

अथ वक्ष्ये महेशानि पञ्चबाणेश्वरीं शिवाम्। त्रिपुरेशीमन्त्रमध्ये बाणा: प्रोक्ता महेश्वरि।। १।।
तैरेव पञ्चभिर्बाणैर्विद्या पञ्चाक्षरी भवेत्। "द्रांद्रींक्लींब्लूंस:"। इति।
ऋषिरस्यास्तु मदनो गायत्रं छन्द उच्यते। कामेश्वरीव बीजादि देवता चेयमीश्वरी।। २।।
व्यस्तै: समस्तैरङ्गानि बाणै: पञ्चभिराचरेत्। उद्यद्दिवाकराभासां नानालङ्कारभूषिताम्।। ३।।

---

१. 'उच्यते' क. पाठ:।

बन्धूककुसुमाकाररक्तवस्त्राङ्गरागिणीम्। इक्षुकोदण्डपुष्पेषु विराजितभुजद्वयाम्।। ४।।

इति पञ्चबाणेश्वरी।। अथ पञ्चकामेश्वरी —

अथ वक्ष्ये पञ्चकामनायिकां विश्वमातरम्। पूर्वोक्तपञ्चकामैस्तु पञ्चकामेश्वरी भवेत् ।। १।।

ऋषिः सम्मोहनो नाम गायत्रं छन्द उच्यते। देवतेयं कामदा च बीजशक्ती तु कीलकम् ।। २।।

अन्त्यमेतैर्न्यसेन्मन्त्री व्यस्तैश्चैव समस्तकैः। अङ्गानि पूर्ववत् कामबाणन्याससद्वयं भवेत्।। ३।।

रक्तां रक्तदुकूलाङ्गलेपनां रक्तभूषणाम्। पाशाङ्कुशौ धनुर्बाणान् पुस्तकं चाक्षमालिकाम्।। ४।।

वराभीती च दधतीं त्रैलोक्यवशकारिणीम्।

इति पञ्चकामेश्वरी।। अथ कुमारी —

अथ वक्ष्ये महेशानि कुमारीं विश्वमातरम्। कामेश्वरीं भगवतीं त्रैलोक्याकर्षणक्षमाम्।। १।।

वाग्भवं त्रिपुरेशान्या हित्वा तत्र क्षिपेत् सुधीः। कामशक्तिद्वयान्तस्तु विद्येयं त्र्यक्षरी भवेत्।।२।।

"क्लींऐंसौः" इति।।

त्रिपुरेशीवदृष्यादि बीजशक्ती क्रमेण तु। आद्यन्ते कीलकं मध्यं महावश्यकरी भवेत्।। ३।।

द्विरावृत्त्या षडङ्गानि इति। तथा —

उद्यत्सूर्यसहस्राभां माणिक्यवरभूषणाम्। स्फुरद्रत्नदुकूलाढ्यां नानालङ्कारभूषिताम्।। ४।।

इक्षुकोदण्डबाणाँश्च पुस्तकं चाक्षमालिकाम्। दधतीं चिन्तयेन्नित्यं सर्वराजवशङ्करीम्।। ५।।

इति पञ्चकल्पलताविद्याः।। अथ पञ्चकामदुघाः— "ओंऐंह्रींश्रीं मूलं महाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थित-सर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्याकामदुघाश्रीपादुकां पूजयामि।" इति श्रीविद्याकामदुघा।। "ह्रीं हंसः सञ्जीवनि जूं जीवं प्राणग्रन्थिस्थं कुरु कुरु सः स्वाहा।" ऋष्यादिन्यासध्यानानि प्रागेवोक्तानि। इत्यमृतपीठेश्वरी।। अथ सुधासूः— "ऐंब्लूंओं जूंसः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा" ऋष्यादिच्छन्दोन्यासादि प्राग्वत्।

अमृतामृतरश्म्योघसन्तर्पितचराचराम्। भवानि भवशान्त्यै त्वां भावयाम्यमृतेश्वरीम्।। १।।

इत्येवं सुधासूः। अथान्नपूर्णा —

शिवाग्निवामनयनबिन्दुनादकलात्मकम्। श्रीकामयुगलं प्रोक्त्वा हृदन्ते भगवत्यपि।। १।।

माहेश्वरि चतुर्वर्णमन्नपूर्णे तथा लिखेत्। चतुर्वर्णं वह्निजायातारद्यो मनुरीरितः।।२।।

द्विदशार्णा महेशानि इति। "ओंह्रींश्रींक्लीं नमो भवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा"। अयं मन्त्रः प्रणवादिः।

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य उष्णिक्छन्दोऽभिधीयते। अन्नपूर्णेश्वरी देवी देवता परिकीर्तिता।। ३।।

बीजं शक्तिः कीलकं च हृल्लेखादिकमुच्यते। षड्दीर्घमायया कुर्यात् षडङ्गानि महेश्वरि।।४।।

उद्यत्सूर्यसमाभासां विचित्रवसनोज्ज्वलाम्। चन्द्रचूडामन्नदाननिरतां रत्नभूषिताम्।। ५।।

सुवर्णकलशाकारस्तनभारनतां पराम्। रुद्रताण्डवसानन्दां द्विभुजां परमेश्वरीम्।। ६।।

वरदाभयशोभाढ्यामन्नदानरतां सदा।

इत्यन्नपूर्णेश्वरी। इति पञ्च कामदुघाविद्या:।। अथ पञ्च रत्नेश्वरीविद्या:। तत्रादौ श्रीविद्यारत्नेश्वरी— "४ मूलं महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थितसर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्यारत्नेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि।" इति श्रीविद्यारत्नेश्वरी।। अथ सिद्धलक्ष्मीरत्नेश्वरी— "ॐऐंह्रींश्रींफ्रेंफ्रेंख्फ्रेंऐं क्ष्मरीं महाचण्डतेज:सङ्कर्षिणि कालिमन्थाने ह्रीं स: स्वाहा। खफ्रेंह्रींश्रीं सर्वसिद्धयोगिनि हसखफ्रें ह्रींश्रींनित्योदितायै सकलकुलचक्रनायिकायै भगवत्यै चण्डिकपालिन्यै ह्रींश्रींहूंख्फ्रेंह्रींहूंह्स्फ्रेंश्रेंक्रोंक्लींस: खफवयरें परमहंसि निवार्णमार्गदे देवि विषमोपप्लवप्रशमनि सकलदुरितारिष्टक्लेशदमनि सर्वापदम्भोधितारिणि सकलशत्रुप्रमथिनि देवि आगच्छ २ हस २ बल २ नररुधिरान्त्रवसाभक्षिणि मम शत्रून् मर्दय २ खाहिं २ त्रिशूलेन भिन्धि २ छिन्दि २ खड्गेन ताडय २ छेदय २ वदकवलह्रीं हसक्षमलवरयूं हसक्षमलवरयीं सहक्षमलवरयीं मम सकलमनोरथान् साधय २ परमकारुणिके देवि भगवति महाभैरवरूपधारिणि त्रिदशवरनमिते महामन्त्रमात: प्रणतजनवत्सले देवि महातिकालनाशिनि ह्रीं प्रसीद मदनातुरां[१] कुरु २ सुरासुरकन्यकां ह्रींश्रींक्रों फट् ठ:ठ: हसखफ्रें फ्रेंफ्रें महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासन संस्थितसर्वसौभाग्यजननीश्रीसिद्धमहालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि।" इति सिद्धलक्ष्मी:।। अथ मातङ्गी रत्नेश्वरी—

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि मातङ्गी रत्नदेवताम्। वाग्भवं कामराजं च सर्गवान् भृगुरुत्तमे।। १।।
अनुग्रहेण संयुक्त: पुनराद्यं परां लिखेत्। श्रीबीजं तारकं चैव नमो भगवतीति च।। २।।
मातङ्गीश्वरि सर्वान्ते मनोहरि जनादिकम्। सर्वराजवशं चान्ते करि सर्वमुखान्तकम्।। ३।।
रञ्जिनीति तत: सर्वस्त्रीशब्दं च ततो वदेत्। पुरुषान्ते वशं चोक्त्वा कर्यन्ते सर्वदुष्टत:।। ४।।
मृगान्ते वशमालिख्य सर्वलोकपदं लिखेत्। शैलजे वशमालिख्य करिशब्दं ततो वदेत्।। ५।।
परां श्रियं कामबीजं वाग्भवं च समालिखेत्। सप्ततिश्च त्रयो वर्णा मातङ्गीविग्रहा: प्रिये।। ६।।

"ऐंक्लींसौ: ऐंह्रींश्रीं ओंनमो भगवति मातङ्गीश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वराजवशङ्करि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि ह्रींश्रींक्लींऐं।।"

इयं मतङ्गविद्यानां राज्ञी मोक्षार्थसिद्धिदा। ऋषिर्मतङ्गो भगवान् गायत्री छन्द उच्यते।। ७।।
देवता नादमूर्तिस्तु मातङ्गी परमेश्वरी[२]। कामबीजं वाग्भवं च बीजशक्ती च कीलकम्।। ८।।
तार्तीयं देवदेवेशि षडङ्गान्यथ विन्यसेत्। आद्यबीजत्रयेणैव द्विरावृत्त्या षडङ्गकम् ।। ९।।
अम्भोजार्पितदक्षाङ्घ्रिक्षौमां ध्यायेन्मतङ्गिनीम्। लसद्वीणालसन्नादश्लाघान्दोलितकुण्डलाम्।।१०।।
दन्तपङ्क्तिप्रभारम्यां शिवां सर्वाङ्गसुन्दरीम्। कदम्बपुष्पदामाढ्यां वीणावादनतत्पराम् ।।११।।
श्यामाङ्गीं शङ्खवलयां ध्यायेत् सर्वार्थसिद्धये।

इति मातङ्गीरत्नेश्वरी।। अथ भुवनेश्वरीरत्नेश्वरी, सा तु प्रागेव प्रपञ्चिता। अथ वाराहीरत्नेश्वरी दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

पञ्चमीं रत्नदेवेशीं कथयामि शृणु प्रिये। यस्या: स्मरणमात्रेण पवनोऽयं स्थिरो भवेत्।। १।।
वाग्भवं बीजमुच्चार्य गलानुग्रहबिन्दुभि:। नादेन भूषितं बीजं पार्थिवं चोच्चरेत्तत:[३]।। २।।

१. 'नभरां' क. ख. पाठ:। २. 'भुवनेश्वरि' क. ख. पाठ:। ३. 'चोद्धरेत्' ख. पाठ:।

पुनराद्यं नमोऽन्ते च भगवति समालिखेत्। वार्तालियुग्मं वाराहि पुनरेतद्द्वयं लिखेत्।। ३।।
वाराहमुखि च द्वन्द्वं सन्धिहीनं ततः परम्। अन्धे चान्धिनि सप्तार्णं हृदन्तेन भवेत्प्रिये।। ४।।
रुन्धे रुन्धिन्यतो हृच्च जम्भे जम्भिनि हृत्ततः[1]। मोहे मोहिनि हृच्चापि स्तम्भे स्तम्भिनि हृत्ततः।।५।।
एतदुक्त्वा महेशानि सर्वदुष्टप्रदुष्ट च। सानामन्तं[2] च सर्वेषां सर्ववागिति चित्त च।। ६।।
चक्षुर्मुखगति प्रोक्त्वा जिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम्। शीघ्रं वश्यं कुरुद्वन्द्वं वाग्भवं पार्थिवं पुनः।। ७।।
ठकारस्य चतुष्कान्ते कवचास्त्राग्निवल्लभा। चतुर्दशोत्तरशतं मन्त्रवर्णा भवन्ति हि।। ८।।

"ऐग्लौंऐं नमो भगवति वार्तालि २ वाराहि २ वाराहमुखि २ अन्धे अन्धिनि नमः, रुन्धे रुन्धिनि नमः, जम्भे जम्भिनि नमः, मोहे मोहिनि नमः, स्तम्भे स्तम्भिनि नमः, सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुख– गतिजिह्वास्तम्भं कुरु २ शीघ्रं वश्यं कुरु २ ऐंग्लौंठठठठहुं फट् स्वाहा"। ११४ वर्णाः।

चतुश्चत्वारिंशतिभिर्पदन्यासस्तु कीर्तितः। मातृकावन्न्यसेद्वक्त्रे पदानि दश मन्त्रवित्।। ९।।
दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु न्यसेद्विंशतिसंख्यकान्। पदार्णान्यथ विन्यस्य पार्श्वयोरेकमुत्तमम् ।। १०।।
अनेनैव प्रकारेण मातृकावन्न्यसेत् सुधीः। ततः षडङ्गविन्यासं कुर्यात् देहविशुद्धये।। ११।।
वार्ताल्यास्तु पदद्वन्द्वं हृदयं च ततः परम्। वाराहियुगलं देवि शिरोमन्त्र उदाहृतः।। १२।।
वाराहमुखियुगलं शिखा सप्ताक्षरं ततः। कवचं च ततः सप्तवर्णैर्नेत्रं न्यसेत् क्रमात्।। १३।।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशपद्मान्तर्गतवासिनीम्[3]। इन्द्रनीलमहातेजःप्रकाशां विश्वमातरम्।। १४।।
रुण्डं च मुण्डमालाढ्यनवरत्नविभूषिताम्। अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटश्रीविराजिताम्।। १५।।
कौशेयार्धोरुकां चारुप्रवालमणिभूषणाम्। हलेन मुसलेनापि वरदेनाभयेन च।। १६।।
विराजितचतुर्बाहुं कपिलाक्षीं सुमध्यमाम्। नितम्बिनीमुत्पलाभां कठोरघनसत्कुचाम्।। १७।।
कोलाननाम्[4]..............................।

इति वाराहीरत्नेश्वरी।। इति पञ्चपञ्चिकागणः। अथ षोडशनित्याविवरणम् –

अथ वक्ष्ये महेशानि नित्याविवरणं महत्। कामेश्वरीमहाभेदा बहवः सन्ति पार्वति।। १।।
तत्र कामेश्वरी नित्या कथ्यते भुवि दुर्लभा। त्रिपुरेशीं समुच्चार्य तारान्ते हृत्पदं ततः।। २।।
कामेश्वरिपदं चोक्त्वा त्विच्छाकामफलप्रदे। सर्वसत्त्ववशं प्रोक्त्वा करि सर्वजगत्पदम्।। ३।।
क्षोभान्ते तु करे हूं हूं बाणांश्च त्रिपुरेश्वरीम्। विपरीतां समालिख्य विद्या षट्त्रिंशदक्षरा(?)।।४।।

"ऐंक्लींसौः ओं नमः (हृत्) कामेश्वरीच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभकरे हूंहूंद्रांद्रींक्लींब्लूंसः सौःक्लींऐं।"

आद्यभागत्रयेणैव द्विरावृत्त्या षडङ्गकम्। कामेश्वरीवद्ध्यादि ध्यानयन्त्रार्चनादिकम्।। ५।।

इति कामेश्वरीनित्या।। अथ भगमालिनीनित्या –

अथ वक्ष्ये महेशानि विद्यां श्रीभगमालिनीम्। वाग्भवं भगशब्दान्ते भुगे वाग्भवमेव च।। १।।

---

१. 'तथा' क. ख. पाठः। २. 'सनान्तानं' ग. पाठः। ३. 'पद्मान्तः स्थशिवस्थिताम्' ग. पाठः। ४. 'लोलाननां' ग. पाठः।

भगिन्यन्ते वाग्भवं च भगोदरि च वाग्भवम्। भगक्लिन्ने[1] वाग्भवं वाग्भवादौ भगावहे।। २।।
भगगुह्ये वाग्भवं च भगयोनि च वाग्भवम्। भगन्यन्ते पातनीति वाग्भवं भगसर्व च।। ३।।
पदे वाग्भवमालिख्य ततो भगवशङ्करि। वाग्भवं भगरूपे तद्भगिन्येव च वाग्भवम्।। ४।।
भगक्लिन्ने वाग्भवं च भगस्वान्ते समालिखेत्। रूपे सर्वभगानीति मे ह्यानय च वाग्भवम्।।५।।
भगक्लिन्नद्रवे चान्ते भगं क्लेदय चालिखेत्। भगं द्रावय चालिख्य भगामोघे भगेति च।। ६।।
विच्चे भगं क्षोभयेति सर्वसत्त्वान्भगेश्वरि। वाग्भवं भगब्लूं च वाग्भवं भगजं लिखेत्।। ७।।
वाग्भवं च भगब्लूं च वाग्भवं भगभें लिखेत्। वाग्भवं च भगब्लूं च वाग्भवं भगमों लिखेत्।।८।।
भगक्लिन्ने च सर्वाणि भगान्यथ च मे लिखेत्। वाग्भवं च भगब्लूं च वाग्भवं भगहें लिखेत्।।९।।
वाग्भवं च भगब्लूं च वाग्भवं भगहें लिखेत्। भगक्लिन्ने च सर्वाणि भगान्यथ च मे लिखेत्।।१०।।
वशमानय चालिख्य भगपञ्चकमन्मथम्। भगान्तरे भगान्तेऽथ हरब्ले[2] मात्मकमालिखेत्।। ११।।
भगान्ते (पञ्च?प्रथ) मं कामं ततो वै भगमालिनीम्। ङेन्तामुच्चार्य विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी।।१२।।
चतुरधिकविंशत्या द्विशतेन च मण्डिता। वर्णानां भगमालेयं नित्या सा फलसिद्धिदा।। १३।।

मन्त्रोद्धारस्तु सुगमः।

ऋषिरस्यास्तु सुभगो गायत्रं छन्द एव च। देवतेयं तु बीजं तु हरब्लेमात्मकं प्रिये।। १४।।
शक्तिः स्त्रींबीजकं ब्लूं तु कीलकं परमेश्वरि। षड्दीर्घस्वरभेदेन न्यसेदङ्गानि देशिकः।। १५।।
कामन्यासं तथा बाणन्यासं कुर्यात्तु पूर्ववत्। कदम्बवनमध्यस्थामुद्यत्सूर्यसमद्युतिम्।। १६।।
नानाभरणसम्पन्नां त्रैलोक्याकर्षणक्षमाम्। पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च तौसी[3] खीगतलेखनीम्।। १७।।
वरदं चाभयं चैव दधतीं विश्वमातरम्।

इति भगमालिनी।। अथ नित्यक्लिन्ना —

भुवनेशीं समुच्चार्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे। बह्निजाया च विद्येयं रुद्रवर्णा महोत्कटा[4]।। १।।

"ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा" इति।

एकेन च तथा द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां क्रमात्प्रिये। द्वाभ्यां द्वाभ्यां षडङ्गानि विन्यसेद् देशिकोत्तमः।।२।।
रक्तां रक्ताङ्गवसनां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम्। विद्युद्वक्त्रां महाघूर्णलोचनां रक्तभूषिताम्।। ३।।
पाशाङ्कुशौ कपालं च महाभीतिहरं तथा। दधतीं संस्मरेन्नित्यां पद्मासनविराजिताम्।। ४।।

इति नित्यक्लिन्ना नित्या।। अथ भेरुण्डा —

अथ वक्ष्ये महेशानि भेरुण्डां परमेश्वरीम्। भेराकारं समुच्चार्याङ्कुशाभ्यां तं च वेष्टयेत्।। १।।
अन्त्यहीनं चवर्गं तु चतुर्धा रेफमण्डितम्। अनुग्रहेन्दुबिन्द्वाढ्यं तारस्वाहोदरस्थितः ।। २।।
मनुर्दशार्णो देवेशि महाविषहरो भवेत्। "ओंक्रोंभेःक्रोंच्रौंछ्रौंज्रौंझ्रौं स्वाहा।"

---

१. 'माले' ग. पाठः। २. 'हरेमा' क. पाठः। ३. 'तौशिखी' क. पाठः। ४. 'ल्कया' क. पाठः।

ऋषिरस्य महाविष्णुर्गायत्रं छन्द उच्यते। देवतेयं पराशक्तिस्तृतीयं बीजमुच्यते ॥ ३॥
वह्निजाया च शक्तिः स्यात् कीलकं सृणिरेव च। षड्दीर्घस्वरभेदेन बीजेनैव षडङ्गकम्॥ ४॥
चन्द्रकोटिप्रतीकाशां स्रवन्तीममृतद्रवैः। नीलकण्ठां त्रिनेत्रां च नानाभरणभूषिताम् ॥ ५॥
इन्द्रनीलस्फुरत्कान्तिं[1] शिखिवाहनशोभिताम्। पाशाङ्कुशौ कपालं च च्छुरिकां वरदाभये।।६॥
बिभ्रतीं हेमसम्बद्धगारुडाङ्गदभूषिताम्।

इति भेरुण्डा नित्या॥ अथ वह्निवासिनी नित्या —

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्यां वै वह्निवासिनीम्। परां विलिख्य वह्न्यन्ते वासिन्यै नम इत्यपि।।१॥
अष्टार्णोऽयं महेशानि पुरुषार्थप्रदो मनुः। ''ह्लींवह्निवासिन्यै नमः'' इति।
ऋषिरस्य वसिष्ठः स्याद्गायत्री छन्द उच्यते। आद्यन्ते बीजशक्ती च कीलकं मध्य एव च।।२॥
देवि पदत्रयेणैव द्विरावृत्याङ्गकं न्यसेत्। ध्यायेत्तां च सुवर्णाभां नानालङ्कारभूषिताम्॥ ३॥
पाशाङ्कुशौ स्वस्तिकं च शक्तिं च वरदाभये। दधतीं रत्नमुकुटां त्रैलोक्यतिमिरापहाम्॥ ४॥

इति वह्निवासिनी नित्या॥ अथ महा (विद्ये? वज्रे)श्वरी नित्या —

अथ वक्ष्ये महेशानि[2] महा (विद्ये ? वज्रे)श्वरीं परम्। नित्यक्लिन्नां समालिख्य मुखे तारं समालिखेत्॥ १॥
हृल्लेखान्ते करोमात्म चन्द्रबीजं विसर्गवत्। चतुर्दशाक्षरी विद्या......................॥

''ओंह्रींक्रोंसः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा'' इति।

..............................ऋषिर्ब्रह्मा निगद्यते। गायत्रं छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी॥ २॥
आद्यन्ते बीजशक्ती तु हृल्लेखा कीलकं भवेत्। चतुष्केण च युग्मेन युग्मेन युगलेन च।।३॥
युगलेन च युग्मेन न्यसेदङ्गानि देशिकः। जपाकुसुमसङ्काशां रक्तांशुकविराजिताम्॥ ४॥
माणिक्यभूषणां नित्यां नानाभूषाविभूषिताम्। पाशाङ्कुशौ कपालस्थसुधापानविघूर्णिताम्॥ ५॥

अभयं दधतीं ध्यायेत्। इति महा (विद्ये ? वज्रे) श्वरी नित्या॥ अथ शिवदूती नित्या —

अथ दूतीं प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्याकर्षणक्षमाम्। भुवनेशीं समुच्चार्य शिवदूत्यै नमो लिखेत्॥ १॥
सप्तार्णा शिवदूतीयं त्रैलोक्यस्वामिनी प्रिये। ''ह्रीं शिवदूत्यै नमः'' इति।
ऋषी रुद्रस्तु गायत्री छन्दोऽस्या देवता शिवा। आद्यन्ते बीजशक्ती च मध्ये कीलकमुच्यते।।२॥
विद्याभागत्रयेणैव द्विरावृत्याङ्गकं न्यसेत्। दूर्वानिभां त्रिनेत्रां च महासिंहसमासनाम्॥ ३॥
शङ्खारिबाणचापांश्च सृणिपाशौ वराभये। दधतीं चिन्तयेन्नित्याम्॥

इति शिवदूती नित्या॥ अथ त्वरिता नित्या —

अथ वक्ष्ये महेशानि त्वरितां सिद्धिदायिनीम्। तारं परान्ते कवचं खेचछेक्षः समालिखेत्॥ १॥
स्त्रींहूमात्मकमुच्चार्य क्षे परमस्त्रकं लिखेत्। त्वरिता रविवर्णेयं भोगमोक्षफलप्रदा ॥ २॥

''ओंह्रींहुंखेचछेक्षः स्त्रींहूंक्षेह्रीं फट्'' इति।

---

१. 'न्ति' ग. पाठः। २. 'महादेवि' क. ख. पाठः।

ऋषिरीशो विराट्छन्दो देवतेयं च पार्वति। कवचं स्त्रीशक्तिबीजे कीलकं च प्रकीर्तितम्॥ ३॥
चछेयुग्मं हृच्छिरस्तु छेक्ष:युग्मं शिखा तत:। क्ष:स्त्रींयुग्मं च कवचं स्त्रींहूमात्मयुगं तथा॥ ४॥
हूंक्षे नेत्राणि विन्यस्य क्षेफडस्त्रं प्रकीर्तितम्। श्यामाङ्गीं रक्तसत्पाणिचरणाम्बुजशोभिताम्॥ ५॥
वृषलाहिसुमञ्जीरां कण्ठरत्नविभूषिताम्। स्वर्णांशुकां स्वर्णभूषां वैश्याहिद्वन्द्वमेखलाम्॥ ६॥
तनुमध्यां पीनवृत्तकुचयुग्मां वराभये। दधतीं शिखिपिच्छानां वलयाङ्गदशोभिताम्॥ ७॥
गुञ्जारुणां नृपाहीन्द्रकेयूरां रक्तभूषणाम्। द्विजनागस्फुरत्कर्णभूषां मत्तारुणेक्षणाम्॥ ८॥
नीलकुञ्चितधम्मिल्लवनपुष्प[1] कलापिनीम्। कैरातीं शिखिपत्राढ्य[2]निकेतनविराजिताम्॥ ९॥
स्फुरत्सिंहासनप्रौढां स्मरेद्भयविनाशिनीम्। इति त्वरितानित्या॥ अथ कुलसुन्दरी—
अथ वक्ष्ये महेशानि विद्यां श्रीकुलसुन्दरीम्। बालाख्या त्रिपुरेशानी सर्वसिंहासने स्थिता॥ १॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यै: पूज्या सा कुलसुन्दरी। इति कुलसुन्दरी। अथ नित्यानित्या —
अथ वक्ष्ये परां नित्यां पुरुषार्थप्रदायिनीम्। त्रिपुरेशीं समुच्चार्य नित्याख्यां भैरवीं तथा॥ १॥
हुङ्कारत्रितयं बाणा विद्येयं, सा नवाक्षरी।

"ऐंक्लींसौ: हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौ: हुंहुंहुंद्रांद्रींक्लींब्लूंस:" इति। अन्यत् त्रिपुरेशीवत्। इति नित्या॥

अथ नीलपताका —

अथ वक्ष्ये महेशानि विद्यां नीलपताकिनीम्। तारं हृत्पदमाभाष्य कामेश्वरिपदं तत:॥ १॥
कामाङ्कुशे पदं चोक्त्वा तत: कामपताकिके। भगवत्यथ नीलान्ते पताके च भगान्तिके॥२॥
वति हृन्मन्त्रमालिख्य ततोऽस्त्विति च मे लिखेत्। परमान्ते तथा गुह्ये ह्रींकारत्रितयं लिखेत्॥३॥
मदने मदनान्ते च देहे त्रैलोक्यमालिखेत्। आवेशय तथा लेख्यं कवचास्त्राग्निवल्लभा॥ ४॥
षष्ट्यर्णा परमेशानि देवी नीलपताकिनी।

"ओंहृत्कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामपताकिके भगवति नीलपताके भगवति नमोऽस्तु मे परमगुह्ये ह्रींह्रींह्रीं मदने मदनदेहे त्रैलोक्यमावेशय हुंफट् स्वाहा॥"

रक्तां रक्तांशुकप्रौढां नानारत्नविभूषिताम्। इन्द्रनीलस्फुरन्नीलपताकां कमले स्थिताम्॥ १॥
कामग्रैवेयसंलग्नसृणी च वरदाभये। दधतीं परमेशानीं त्रैलोक्याकर्षणक्षमाम्॥ २॥

इति नीलपताका नित्या॥ अथ विजया नित्या —

अथ वक्ष्ये परां विद्यां जयदां विजयां सदा। शिवचन्द्राखपान्ताग्निरुद्रस्वरविभूषिताम्॥ १॥
बिन्दुनादकलाक्रान्तं विजयायै नमो लिखेत्। "हसखफ्रें विजयायै नम:" इति।
ऋषिरस्या: शिवश्छन्दो गायत्रं देवता स्वयम्। बीजं हृन्मध्यवर्णांस्तु बीजशक्ती तु कीलकम्॥२॥
षड्दीर्घस्वरसम्भिन्नबीजेनैव षडङ्गकम्। एकवक्त्रां दशभुजां सर्पयज्ञोपवीतिनीम्॥ ३॥
दंष्ट्राकरालवदनां नरमालाविभूषिताम्। अस्थिचर्मावशेषाढ्यां वह्निकूटसमप्रभाम्॥ ४॥

---

१. 'ष्पां' क. पाठ:। २. 'द्य' क. पाठ:।

व्याघ्राम्बरां मह्यप्रौढशवासनविराजिताम्। रणे स्मरणमात्रेण भक्तेभ्यो विजयप्रदाम्।। ५।।
शूलं सर्पं च ढक्कासिसृणिघण्टाशनिद्वयम्। पाशमग्निमभीतिं च दधानां विजयां स्मरेत्।। ६।।

इति विजया नित्या।। अथ सर्वमङ्गला—

अथ वक्ष्मे महेशानि नित्यां वै सर्वमङ्गलाम्। जीवं वारुणताराढ्यं सर्वान्ते मङ्गलापदम्।। १।।
ङेन्तं हृदयमालिख्य नवार्णा सर्वमङ्गला। "स्वौं सर्वमङ्गलायै नमः" इति।।
ऋषिश्छन्दो महेशानि गायत्रं छन्द उच्यते। विद्याभागत्रयेणैव द्विरावृत्त्या षडङ्गकम्।। १।।
शुभ्रपद्मासने[1] रम्यां चन्द्रकुन्दसमद्युतिम्। सुप्रसन्नां शशिमुखीं नानारत्नविभूषिताम्।। २।।
अनन्तमुक्ताभरणां स्रवन्तीममृतद्रवम्। वरदाभयशोभाढ्यां स्मरेत् सौभाग्यवर्धिनीम्।। ३।।

इति सर्वमङ्गला।। अथ ज्वालामालिनी —

ज्वालामालां प्रवक्ष्यामि पुरुषार्थप्रदां सदा। ओंकारबीजमुच्चार्य नमो भगवतीति च।। १।।
ज्वालामालिनि देव्यन्ते सर्वभूतान्तसं लिखेत्। हारकारि च के जातवेदसीति ज्वलन्ति च।।२।।
ज्वलयुग्मं प्रज्वलेति युगं हूमात्मकं त्रि (द्वि) धा। वह्निं द्विधा च कवचमस्त्रं चापि समालिखेत्।।३।।
चत्वारिंशद्वर्णरूपा वस्वर्णं च क्रमाद्वदेत्।

"ओंनमो भगवति ज्वालामालिनि देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल २ प्रज्वल २ हूँहूँहूँ फट्"— इति।।

रेफास्त्रे बीजशक्ती तु कीलकं कवचं प्रिये। रविसूर्यशरागाष्टवेदैरङ्गानि विन्यसेत् ।। १।।
द्वन्द्वशः परमेशानि वह्निवर्णेन वेष्टयेत्। उद्यद्विद्युल्लता[2]कान्तिस्वर्णाभरणभूषिताम्।। २।।
महासिंहासनप्रौढां ज्वालामालां करालिनीम्। अरिशङ्खौ खड्गखेटे त्रिशूलं डमरुं तथा।। ३।।
पानपात्रं च वरदं दधतीं संस्मरेद् यजेत्। इति ज्वालामालिनी नित्या।। अथ विचित्रा नित्या—
अथ वक्ष्ये महादेवि विचित्रां विश्वमातरम्। यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः।। १।।
चक्रानुग्रहबिन्द्विन्दुभूषितं मनुमालिखेत्। "चक्रौं" इति।
ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते। विचित्रा देवता बीजं ककारः कीलकं च तु।। १।।
तारराजस्तु[3] शक्तिः स्यात् पुरुषार्थप्रदायिनी। षट्दीर्घस्वरभेदेन न्यसेदङ्गानि देशिकः ।। २।।
शुभ्राङ्गी ज्ञानदा नित्यं विचित्रवसना सदा। विचित्रतिलका नित्यं विचित्रकुसु[4]मोज्ज्वला।। ३।।
वरदाभयशोभाढ्या नानारत्नधरा क्वचित्। इति विचित्रा नित्या।। इति षोडश नित्याः।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययति-
विरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे सप्तमः श्वासः।। ७।।



१. 'शुभ्रवस्त्रामनोर' क.ख. पाठः। २. 'लसत्कान्ति' क.ख. पाठः। ३. 'रारुस्तु' क. पाठः। ४. 'कुङ्कुमो' क. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

अष्टमः श्वासः



अथायतनविद्या —

ब्राह्म्यं च वैष्णवं सौरं बौद्धं शैवं च दर्शनम्। पूर्वे च दक्षिणे पश्चादुदगूर्ध्वं क्रमेण च।। १।।

आयतनानि पञ्च स्युः पृष्ठे शाक्तं तदूर्ध्वतः।

तत्र प्रथमं ब्राह्म्यं दर्शनब्रह्मगायत्री पूर्वायतनविद्या —

अथो वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम्। यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।। १।।

प्रणवाद्या व्याहृतयः सप्त स्युस्तत्पदादिका। चतुर्विंशत्यक्षरात्मा गायत्री शिरसा सह।। २।।

सर्ववेदोद्धृतः सारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः।

इति ब्राह्म्यं दर्शनम्।। अथ वैष्णवदर्शनदक्षिणायतनविद्या— अस्य श्रीनारायणमन्त्रस्य साध्यनारायण ऋषिर्गायत्री छन्दः, श्रीमहाविष्णुर्देवता, ओं बीजं, नमः शक्तिः, नारायणायेति कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ॐ क्रुद्धोल्काय नमः, महोल्हाय०, वीरोल्काय०, द्युल्काय[१]०, चण्डोल्काय०, सहस्रोल्काय०, इति षडङ्गन्यासः। ध्यानम् —

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम्।। १।।

कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभोद्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे।।२।।

"ॐ नमो नारायणाय" इति वैष्णवदर्शनदक्षिणायतनविद्या।। अथ सौरदर्शनपश्चिमायतनविद्या— अस्य श्रीसूर्यमन्त्रस्य देवभाग ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीआदित्यो देवता ओं बीजं, आदित्यः शक्तिः, घृणिः कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ॐ सत्यतेजोज्वालामालिने हुंफट्स्वाहा, ब्रह्मतेजोज्वालामालिने हुंफट्स्वाहा, विष्णुतेजोज्वालामालिने हुंफट्स्वाहा, रुद्रतेजोज्वालामालिने हुंफट्स्वाहा, अग्नितेजोज्वालामालिने हुंफट्स्वाहा, सर्वतेजोज्वालामालिने हुंफट्स्वाहा,— इति षडङ्गमन्त्राः। ध्यानम् —

रक्ताब्जयुग्माभयदानहस्तं केयूरहाराङ्गदकुण्डलाढ्यम्।
माणिक्यमौलिं दिननाथमीडे बन्धूककान्तिं विलसत्त्रिनेत्रम्।। १।।

"ॐ घृणिःसूर्य आदित्योम्" इति सौरदर्शनपश्चिमायतनविद्या।। अथ बौद्धदर्शनोत्तरायतनविद्या—अस्य श्रीबौद्धमन्त्रस्य बुद्ध ऋषिः, त्रिष्टुप्छन्दः, श्रीबोद्धो[२] देवता, ओं बीजं, स्वाहा शक्ति ह्रीं कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ॐ, ह्रीं, तारय, तारय, स्वाहा— ओंह्रीं तारय तारय स्वाहा— इति षडङ्गन्यासः। ध्यानम् —

पुरा पुराणान[३]सुरान् विजेतुं सम्भावयन् पीठ र[४]चिह्नवेषम्।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं तं मूलभूतं प्रणमामि बुद्धम्।। १।।

---

१. 'विद्यो' क. 'विद्युु' ग. पाठः। २. 'बुद्धो' ग. पाठः। ३. 'णाम' ख. पाठः। ४. 'पीवर' ग. पाठः।

"ओं ह्रीं तारय तारय स्वाहा"— इति बौद्धदर्शनोत्तरायतनविद्या।। अथ शैवदर्शनोर्ध्वायतनविद्या—अस्य श्रीशिवमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, परमशिवो देवता, ओं बीजं, नमः शक्तिः, शिवाय कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। सर्वज्ञाय० नित्यतृप्ताय० अनादिबोधाय० स्वतन्त्राय० नित्यमलुप्तशक्तये० नित्यमनन्तशक्तये—इति षडङ्गन्यासः। ध्यानम् —

नमोऽस्तु स्थाणुभूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने। चतुर्मूर्तिवपुष्काय भासिताङ्गाय शम्भवे।। १ ।।

इति शैवदर्शनोर्ध्वायतनविद्या।। अथ शक्तिदर्शनविद्या तु प्रधानविद्यैव, केचिद्भुवनेश्वरीं वदन्ति, तद्विधानं प्रागेवोक्तम्। इत्यायतनविद्याः।। अथ समयविद्याः— "ऐंक्लींसौःओं नमः (हृत्) कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभकरि (रे) हूंहूंद्रांद्रींक्लींब्लूंसः सौःक्लींऐं"।। १ ।। "ऐंह्रीं सर्वकामार्थसाधिनि वज्रेश्वरि वज्रपदे वज्रपञ्जरमध्यगते ह्रीं क्लिन्ने ऐंक्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं वज्रनित्यायै नमः।।२।। ततो भगमालिनीविद्या।।३।। "क्लीं भगवति ब्लूं नित्ये कामेश्वरि ह्रीं सर्वसत्त्ववशङ्करि सः त्रिपुरभैरवि ऐं विच्चे क्लीं महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः।।४।। इति चतुःसमयविद्याः।। अथाम्नायविद्यान्यासः—

पूर्वदक्षिणपाश्चात्यैरुदगूर्ध्वक्रमेण च। पञ्चवक्त्रैः शिवप्रोक्ताः पञ्च चाम्नायदेवताः।। १ ।।

पञ्चसिंहासनप्रौढाः सर्वकामफलप्रदाः।

इति। तत्रादौ पूर्वाम्नायविद्या उन्मनी—ओं अस्य श्रीउन्मनीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, श्रीउन्मनी देवता, ह्स्रीं बीजं, कलह्रीं शक्तिः, स्ह्रीं कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। द्विरावृत्या षडङ्गानि। ध्यानं सम्पत्प्रदाभैरवीवत्। "ह्स्रीं स्ह्रींश्रींकलह्रीं" इत्युन्मनी पूर्वाम्नायविद्या।। अथ दक्षिणाम्नायविद्या— अस्य श्रीभोगिनीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, भोगिनी देवता, ऐं बीजं, स्रौं शक्तिः, क्लीं कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ऐं क्लिन्ने, क्लीं, मदद्रवे, कुले, ह्सौः—इति षडङ्गानि, ध्यानमघोरभैरवीवत्। "ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले ह्सौः"— इति दक्षिणाम्नायभोगिनी विद्या।। अथ पश्चिमाम्नायविद्या— अस्य श्रीकुब्जिकामन्त्रस्य रुद्र ऋषिः गायत्री छन्दः कुब्जिका देवता, हसौः बीजं, हसखफ्रें शक्तिः, हसूं कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ऐंह्रींश्रीं हसखफ्रें हसौःओं नमो भगवति हसखफ्रें कुलिके ह्स्रांह्स्रूं अघोरे घोरे अघोरमुखि छ्रां छ्रीं किणिकिणि विच्चे हसौः हसखफ्रें श्रीह्रींऐं—इति षडङ्गानि। ध्यानं षट्कूटाभैरवीवत्। इति पश्चिमाम्नायविद्या कुब्जिका।। अथोत्तराम्नायविद्या कालिका— अस्य श्रीकालिकामन्त्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, श्रीकालिका देवता खफ्रें बीजं ईश्वरी शक्तिः, महाचण्डयोगेश्वरि कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। खफ्रां खफ्रीमिति षडङ्गन्यासः। ध्यानं भुवनेश्वरीभैरवीवत्। "खफ्रें महाचण्डयोगेश्वरि" इत्युत्तराम्नायविद्या कालिका।। अथोर्ध्वाम्नायक्रमः— तत्र पराप्रासादमन्त्रः, तदङ्गत्वेन महाषोढान्यासं कुर्यात्। महाषोढान्यासेऽपि कामरतिन्यासः—अन्तःकामकला—बहिःकामकला-महाशक्तिन्यास-मूलषोडशार्णविद्यान्यासाष्टात्रिंशत्कलान्या सानामकरणेऽधिकारो नास्ति तान् न्यासानग्रे वदिष्यामः। इदानीं महाषोढान्यासो वक्ष्यते। तत्रादावष्टा त्रिंशत्कलान्यासः — तद्यथा —

ईशानादीन् न्यसेन्मूर्ध्नि चाङ्गुष्ठादिषु देशिकः। ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं तदनन्तरम्।। १ ।।

वामदेवाह्वयं सद्यमासां बीजक्रमान् विदुः। ओंकाराद्यैः[1] पञ्चह्रस्वैर्विलोमात् संयुतं वियत्।।२।।

---

१. 'औं' क. पाठः।

तत्तदङ्गुलिभिर्भूयस्तत्तद्बीजादिकान् न्यसेत्। शिरोवदनहृद्गुह्यपाददेशे यथाक्रमम् ॥ ३॥
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु ताः। ईशानाद्या ऋचः सम्यङ्गुलीषु यथाक्रमम्॥ ४॥
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यसेद्देशिकसत्तमः। मूर्धास्यहृदयाम्भोजगुह्यपादेषु वा पुनः॥ ५॥
वक्त्रेषूर्ध्वादि विन्यसेद्भूयोऽङ्गानि प्रकल्पयेत्। तारपञ्चकमुच्चार्य सर्वज्ञाय हृदीरितम्॥ ६॥
अमृते तेजोमालिनि तृप्तायेति पदं पुनः। तदन्ते ब्रह्मशिरसे शिरोऽङ्गज्ज्वलितान्ततः॥ ७॥
शिखिशिखाय परतोऽनादिबोधाय तच्छिखा। वज्रिणे वज्रहस्ताय[1] स्वतन्त्राय तनुच्छदः॥ ८॥
सौंबौं[2]हौमिति सम्भाव्य परतोऽलुप्ताशक्तये। नेत्रमुक्तं श्लींपशुहुं फंडन्तोऽनन्तशक्तये॥ ९॥
अस्त्रमुक्तं षडङ्गानि कुर्यादेवं समाहितः। ततः प्रविन्यसेद्विद्वानष्टात्रिंशत्कलास्तनौ॥ १०॥
पूर्वदक्षिणपाश्चात्यसौम्यमध्येषु पञ्चसु। वक्त्रेषु पञ्च विन्यसेदीशानस्य कलाः क्रमात्॥ ११॥
ईशानः सर्वविद्यानां शशिनी प्रथमा कला। ईश्वरः सर्वभूतानामङ्गदा तदनन्तरम्॥ १२॥
ब्रह्माधिपतिशब्दान्ते ब्रह्मणोऽधिपतिः पुनः। ब्रह्मेष्टदा तृतीया स्याच्छिवो मे अस्तु तत्परा॥१३॥
मरीचिः कथिता तन्त्रे चतुर्थी च सदाशिवोम्। अंशुमालिन्यथ परा प्रणवाद्या नमोन्तकाः॥१४॥
पूर्वपश्चिमयाम्योदग्वक्त्रेषु तदनन्तरम्। चतस्रो विन्यसेन्मन्त्री पुरुषस्य कलाः क्रमात्॥ १५॥
आद्या तत्पुरुषायेति विद्महे शान्तिरीरिता। महादेवाय शब्दान्ते धीमहि स्यात् ततः परम्॥ १६॥
विद्या द्वितीया कथिता तन्नो रुद्रः पदं ततः। प्रतिष्ठा कथिता पश्चात् तृतीया स्यात् प्रचोदयात्॥१७॥
निवृत्तिस्तत्पदाः सर्वाः प्रणवाद्या नमोन्तकाः। हृद्ग्रीवांसद्वये नाभौ कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि॥१८॥
अघोरस्य कला ह्येता अष्टौ मन्त्री यथाविधि। अघोरेभ्यस्तमा पूर्वमीरिता प्रथमा कला॥ १९॥
अथ घोरेभ्य इत्यन्ते मोहा स्यात् तदनन्तरम्। घोरान्ते स्यात् क्षमा पश्चात् तृतीया परिकीर्तिता॥२०॥
घोरतरेभ्यो निद्रा स्यात् सर्वतः शर्वतत्परा। व्याधिस्तु पञ्चमी प्रोक्ता सर्वेभ्यस्तदनन्तरम्॥२१॥
मृत्युर्निगदिता षष्ठी नमस्ते अस्तु तत्परा। क्षुधा स्यात् सप्तमी प्रोक्ता रुद्ररूपेभ्यस्तृष्णिका॥२२॥
गुह्यलिङ्गोरुयुगलजानुजङ्घास्फिचोर्युगे। कट्यां पार्श्वद्वये चैव वामदेवकला न्यसेत् ॥ २३॥
प्रथमा वामदेवाय नमोन्ता स्याद्रजा कला। स्याज्ज्येष्ठाय नमो रक्षा द्वितीया परिकीर्तिता॥२४॥
स्याद्रुद्राय नमः पश्चात् तृतीया रतिरीरिता। कालाय[3] नम इत्यन्ते मालिनी परिकीर्तिता॥२५॥
कला काम्या[4] पञ्चमी स्यात् ततो विकरणाय च। नमः संयमिनी षष्ठी कथिता तदनन्तरम्॥२६॥
बलक्रिया समादिष्टा बल[5]विकरणाय च। नमो वृद्धिरष्टमी स्याद्बलान्ते च स्थिरा कला॥२७॥
पश्चात् प्रमथनायान्ते नमो रात्रिरुदीरिता। सर्वभूतदमनाय नमोऽन्ते भ्रामिणी कला॥ २८॥
मनोन्ते मोहिनी प्रोक्ता तन्त्रज्ञैर्द्वादशी कला। उन्मनाय नमः पश्चाज्ज्वरा[6] प्रोक्ता त्रयोदशी॥२९॥
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः परिकीर्तिताः। पाददोस्तलनासासु मूर्ध्नि बाहुयुगे न्यसेत्॥३०॥

१.'धराय'ख. पाठः। २.'चौं'ख. पाठः। ३.'कलाय' ग.पाठः। ४.'कलकाम्या' क.पाठः। ५.'कला' ग.पाठः। ६.'जरा'ग.पाठः।

सद्योजातोद्भवाः सम्यगष्टौ मन्त्री कलाः क्रमात्। सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्धिः स्यात् प्रथमा कला॥३१॥
सद्योजाताय वै भूयो नमः स्यादृद्धिरीरिता[1]। भवे द्युतिस्तृतीया स्यादभवे तदनन्तरम्॥ ३२॥
लक्ष्मीश्चतुर्थी कथिता ततोऽनादिभवे भवेत्[2]। मेधा स्यात् पञ्चमी प्रोक्ता कला भूयो भवस्य माम्॥३३॥
प्रज्ञा समाहिता षष्ठी भवान्ते तु प्रभा कला। उद्भवाय नमः पश्चात् सुधा[3] स्यादष्टमी कला॥३४॥
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ताः कलाः सर्वा नमोन्तकाः। अष्टात्रिंशत्कलाः प्रोक्ताः पञ्चब्रह्मपदादिकाः[4]॥३५॥
इति विन्यस्तदेहोऽसौ भवेद्गङ्गाधरः स्वयम्। अनन्तचन्द्रभुवनो बिन्दुर्बिन्दुयुगान्वितः॥३६॥
श्रीप्रासादपरामन्त्रो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। पराप्रासादमन्त्रस्तु सादिरुक्तः कुलेश्वरि॥ ३७॥
प्रकाशानन्दरूपत्वात् प्रत्यक्षफलदो यतः। इति।

अनन्तचन्द्रो नादबिन्दुः, भुवन औकारः बिन्दुर्हकारः, बिन्दुयुगः सकारस्तेन "हसौः" इति सिद्धम्। इदं सादिश्चेत् "स्हौं" इति सिद्धम्। इदं बीजद्वयं विसर्गयुक्तमिति क्वचिदुद्धारः।

परशम्भुद्धऋर्षिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम्। अर्धनारीश्वरो देवो देवता परिकीर्तिता॥ १॥
षट्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत् । महाषोढाह्वयं न्यासमङ्गषोढापुरःसरम्॥ २॥
एतदङ्गतया[5] कुर्यात् सिद्धिकामः समाहितः। इति।

श्रीकुलार्णवे –

अङ्गषोढां कुलेशानि कुर्यात् पूर्वोक्तवर्त्मना। महाषोढाह्वयं न्यासं ततः कुर्यात् समाहितः॥ १॥

इति। अत्राङ्गषोढाष्टात्रिंशत्कलान्यासस्तदुद्धारः प्रागेवोक्तः। केवलपञ्चब्रह्मन्यास इत्यपरे।

महाषोढाभिधस्यास्य ऋषिर्ब्रह्मा समीरितः। जगती छन्द आख्यातमर्धनारीश्वरः प्रभुः॥ १॥
देवता च समुद्दिष्टा श्रीविद्याङ्गतया तथा। विनियोगः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः॥ २॥

अथाङ्गन्यासः। तत्राङ्गुष्ठयोः ओंऐंह्रींश्रींहसौंस्हौंहौं ईशानाय नमः। तर्जन्योः ५ हें तत्पुरुषाय नमः। मध्यमयोः ५ हुंअघोराय नमः। अनामिकयोः ५ हिं वामदेवाय नमः। कनिष्ठिकयोः ५ हं सद्योजाताय नमः एवं मूर्धवदनहृद्गुह्यपाददेशेषु क्रमेण न्यसेत्। ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिममुखेषु च। पुनरङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तम्। पुनरपि मूर्धास्यहृदयाम्भोजगुह्यपादेषु। पुनरप्यूर्ध्वादिमुखादिषु विन्यस्य हसांहसींमित्यादिना षडङ्गन्यासः। ततः स्हांस्हीमित्यादिनापि षडङ्गन्यासः। ततः ५ सर्वज्ञाय, ५ अमृतते जोमालिनि नित्यतृप्ताय, ५ ब्रह्मशिरसे स्वाहा ज्वलितशिखिशिखायानादिबोधाय, ५ वज्रिणे वज्रहस्ताय[6] स्वतन्त्राय, ५ सौंवोंहौंनित्यमलुप्तशक्तये, ५ श्रींश्लींपशुहुंफट् नित्यमनन्तशक्तये– इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततः प्रागुक्तरीत्या अष्टात्रिंशत्कला अपि विन्यस्य ध्यायेत्। ध्यानमग्रे वक्ष्यते। अथ महाषोढान्यासः–

प्रपञ्चो भुवनं मूर्तिर्मन्त्रदैवतमातरः। महाषोढाह्वयो न्यासः सर्वन्यासोत्तमोत्तमः॥ १॥

तत्रादौ प्रपञ्चन्यासः– औंऐंह्रींश्रींहसौःस्हौःअं प्रपञ्चरूपायै श्रिये नमः, इत्यादिप्रयोगः प्रागुक्तरीत्यावगन्तव्यः। इति प्रपञ्चन्यासः॥ कुलार्णवे–

---

१. 'वृद्धि' ग. पाठः। २. 'बोद्भवम्' ख. 'वेद्भवम्' ग. पाठः। ३. 'मेधा' क. ख. पाठः। ४. 'कलादिकाः' क. पाठः। ५. 'ङ्गतयोःकुर्यात्' ख. पाठः। ६. 'धराय' ग. पाठः।

त्रितारमूलसकलप्रपञ्चस्य स्वरूपतः। आयै पराम्बादेव्यै च नमोऽस्तु व्यापकं न्यसेत्।। १।।

इति। "५ मूलं० सकलप्रपञ्चस्वरूपायै पराम्बादेव्यै नमोऽस्तु" इति व्यापकं न्यसेदित्यर्थः। तथा–

प्रपञ्चन्यास एवं स्याद्भुवनन्यास उच्यते। त्रितारमूलविद्यान्ते अमांइमतलं भवेत्।। १।।
लोकं च निलयं चैव शतकोटिपदं ततः। गुह्याद्ययोगिनीमूल[१]देवतान्तेऽयुतं वदेत्।। २।।
वदेदाधारशक्त्यम्बादेव्यै हृत्पादयोर्न्यसेत्।

इति। "५ अंआंइं अतललोकनिलयशतकोटिगुह्याद्ययोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः" इति पादयोर्न्यसेदित्यर्थः।

ईमुमूं वितलं लोकगुह्यान्ते शतसंज्ञकम्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा गुल्फयोर्विन्यसेत्प्रिये।। ३।।
ऋंॠंऌंसुतलं परमगुह्यं वाचिन्त्यसंज्ञकम्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा जङ्घयोर्विन्यसेत् प्रिये।। ४।।
ॡंएंऐं महातलं च महागुह्यादितन्त्रकम्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा देवि जान्वोः प्रविन्यसेत्।।५।।
ओमौं तलातलपरमगुह्यं स्वाधिष्ठानकम्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्तमूर्वोर्देवेशि विन्यसेत्।। ६।।
अंअः रसातलं चैव रहस्यं ज्ञानसंज्ञकम्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा गुह्यदेशे प्रविन्यसेत्।। ७।।
कवर्गमपि पातालं सरहस्यतरं क्रियाम्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा मूलाधारे प्रविन्यसेत्।। ८।।
चवर्गं भूरतिरहस्यं च श्रीडाकिनीमपि। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा स्वाधिष्ठाने न्यसेत् प्रिये।। ९।।
टवर्गं भुवर्महारहस्यपदान्ते[२] राकिणीमपि। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा नाभिदेशे न्यसेत् प्रिये।। १०।।
तवर्गं स्वर्गपरमरहस्यं लाकिनीमपि। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा हृदये विन्यसेत् प्रिये।। ११।।
पवर्गं च महोगुप्तं काकिनीमपि च क्रमात्। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा तालुमूले न्यसेत् प्रिये।।१२।।
यवर्गं च जनं गुप्ततरं श्रीशाकिनीमपि। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा आज्ञायां विन्यसेत् प्रिये।।१३।।
शवर्गं च तपश्चातिगुप्तं श्रीहाकिनीमपि। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा ललाटे विन्यसेत् प्रिये।।१४।।
लंक्षः सत्यमहागुप्तं याकिनी[३]मपि च प्रिये। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेत् प्रिये।।१५।।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते चतुर्दशभुवं वदेत्। नाधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै हृद् व्यापकं न्यसेत्।। १६।।
कृत्वैवं भुवनन्यासं मूर्तिन्यासमथाचरेत्। केशवो नारायणो माधवगोविन्दविष्णवः।। १७।।
मधुसूदनसंज्ञश्च स्यात् त्रिविक्रिमवामनौ। श्रीधरस्तु हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदरः।। १८।।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः। अक्षराद्येष्टदेशानी उग्रोर्ध्वनयना तथा।। १९।।
ऋद्धिश्च रूपिणी लुप्ता लून[४] दोषैकनायिका। ऐकारिणी चौघवती सर्वःगमाङ्गनप्रभा।।२०।।
अस्थिमालाधरा चेति सम्प्रोक्ताः स्वरदेवताः। भवः शर्वश्च रुद्रश्च पशुपतिश्चोग्र एव च।।२१।।
महादेवस्तथा भीम ईशानस्तत्पुरुषाह्वयः। अघोरसद्योजातौ च वामदेव इतीरिताः।।२२।।
करभद्रा खगबला गरिमादिफलप्रदा। धर्मप्रशमनी पङ्क्तिनासा चन्द्रार्धहारिणी।।२३।।

१. 'मूले' क. ख. पाठः। २. 'तद' क. पाठः। ३. 'यक्षिणीं' क. ख. पाठः। ४. 'लूत' क. ख. पाठः। ५. 'चौर्व' ग. पाठः।

छन्दोमयी जगत्स्थाना झरत्तारा[1] ततः परम्। ज्ञानानादा[2] ढङ्कढक्काधरा ठङ्कारडामरी।। २४।।
कभादीनां ठडान्तानां वर्णानां देवतास्त्विमाः। ब्रह्मा प्रजापतिर्वेधाः परमेष्ठी पितामहः।। २५।।
विधाता च विरिञ्चिश्च स्रष्टा च चतुराननः। हिरण्यगर्भ इत्युक्ताः क्रमाद् ब्रह्मादयोऽप्यमी।।२६।।
यक्षिणी रञ्जनी[3] लक्ष्मीर्वज्रिणी शक्तिधारिणी। षडाधारालया सर्वनायिका हासिताननाः।। २७।।
ललिता च क्षमा चेति प्रोक्ता यवर्गदेवताः। त्रितारमूलमन्त्रान्ते स्वराद्यक्षरशक्तिकान्।। २८।।
चतुर्थीनमसा युक्तान् मस्तके चानने न्यसेत्। स्वस्कन्धपार्श्वकुक्ष्यू[4]रुजानुजङ्घापदेषु च ।। २९।।
दक्षादिवामपर्यन्तं विन्यसेत् परमेश्वरि। कभाद्यर्णयुतान् मन्त्री ठडान्तान् शक्तिसंयुतान्।। ३०।।
पादपार्श्वबाहुकण्ठ[5]पञ्चवक्त्रेषु विन्यसेत्। दशाधारेषु ब्रह्मादीन् यादीन् शक्तियुतान् न्यसेत्।। ३१।।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते श्रीत्रिमूर्त्यात्मिका न्यसेत्। आयै पराम्बादेव्यै च नमः स[6]व्यापकं न्यसेत्।।३२।।
त्रितारमूलं अंआइं एकलक्षं च कोटि च। भेदश्च प्रणवाद्येकाक्षरात्माखिलमन्त्रतः।। ३३।।
ततोऽधिदेवतायै स्यात् सकलं च फलप्रदम्। आयै तथैककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमो वदेत्।।३४।।

इति। अत्र मूर्तिन्यासोत्तरं मन्त्रन्यासोद्धारक्रमः प्रदर्शितः। "ओऐंह्रींश्रींह्सौःस्हौः अंआइं एकलक्षकोटि भेदप्रणवाद्येकाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः" इति मूलाधारे न्यसेदिति प्रयोगः।। तथा –

ईमुमूमादि हंसादिद्विकूटं पूर्ववत्परम्। ऋंॠलृमादि वह्न्यादित्रिकूटं पूर्ववत्परम्।। ३५।।
लृमेमैं च चतुर्लक्षं चन्द्रादि पूर्ववत्परम्। ओमौंमंमः पञ्चलक्षं सूर्यादि पूर्ववत्परम्।। ३६।।
कंखंगं चैव षड्लक्षं स्कन्दादि पूर्ववत्परम्। घंङंचं सप्तलक्षं गणेशादि पूर्ववत्परम्।। ३७।।
छंजंझमष्टलक्षं वटुकादि पूर्ववत्परम्। ञंटंठंनवलक्षं च ब्रह्मादि पूर्ववत्परम् ।। ३८।।
डंढंणं दशलक्षं च विष्ण्वादि[7] पूर्ववत्परम्। तंथंदमेकादशलक्षं रुद्रादि पूर्ववत्परम्।। ३९।।
धंनंपं द्वादशलक्षं वाण्यादि[7] पूर्ववत्परम्। (फंबंभं त्रयोदशलक्षं लक्ष्म्यादि पूर्ववत्परम्)।।४०।।
मंयंरं चतुर्दशलक्षं गौर्यादि पूर्ववत्परम्। लंवंशं पञ्चदशलक्षं दुर्गादि पूवर्वत्परम्।। ४१।।
षंसंहं षोडशलक्षं त्रैपुरादि च पूर्ववत्। त्रितारमूलमन्त्रान्ते सकलां मातृकां वदेत्।। ४२।।
सकलादि च मन्त्राधिदेवतायै पराम्बिका। देव्यै हृद्व्यापकं कुर्यान्मन्त्रन्यासे[8] महेश्वरि।।४३।।
आधारलिङ्गयोर्नाभिहृत्कण्ठाज्ञेन्दुतत्परः। निरोधिकायामर्धेन्दौ बिन्दौ चैव कलापदे।। ४४।।
उन्मन्यादिषु वक्त्रेषु नादनादान्तयोरपि। ध्रुवमण्डलदेशे च विन्यसेत् कुलनायिके।। ४५।।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते सर्वमन्त्रात्मिकापदम्। आयै देव्यै परादि स्यात् पूर्ववद्व्यापकं न्यसेत्।।४६।।

इति मन्त्रन्यासः। अथ देवतान्यासः–

मन्त्रन्यासं विधायेत्थं देवतान्यासमाचरेत्। त्रितारमूलमन्त्रान्ते अमां सहस्रकोटि च।। ४७।।

---

१. 'जगत्तारा' क. ख. ग. पाठः। २.' ज्ञानदाच' ग. पाठः। ३. 'ना' क. ख. पाठः। ४. 'कट्यूरु' ख. पाठः। ५. 'कर्ण' ग. पाठः। ६. 'नमसा' ग. पाठः। ७. 'बाणादि' ग. पाठः। ८. 'सो' क. ख. पाठः।

योगिनीकुलशब्दान्ते सेवितायै पदं वदेत्। निवृत्त्यम्बापदं देव्यै नम इत्युच्चरेत् प्रिये।। ४८।।

प्रयोगस्तु "ओंऐंह्रींश्रींह्सौःस्हौः सहस्रकोटियोगिनीकुलसेवितायै निवृत्त्यम्बादेव्यै नमः" इत्यादि।

इईं योगिनीप्रतिष्ठां च शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। उऊं तपस्विविद्यां च शेषं पूर्ववदुच्चरेत्।। ४९।।
ऋॠं शान्ति[1] तथा शान्तिं शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। ऌॡं मुनिं तथा शान्त्यतीतां शेषं च पूर्ववत्।। ५०।।
एऐं देवं च हृल्लेखान्ते शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। ओंऔं रक्षःकुलान्ते च गगनां पूर्ववत् प्रिये।। ५१।।
अंअः विद्याधरं रक्तां शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। कंखं सिद्धं महोच्छुष्मां शेषं पूर्ववदुच्चरेत्।। ५२।।
गंघं साध्यं करालां च शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। ङंचं तथाप्सरोजयां शेषं पूर्ववदुच्चरेत्।। ५३।।
छंजं गन्धविजयां शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। झंञं गुह्यकशब्दान्ते अजितां पूर्ववत्परम्।। ५४।।
टंठमपराजितायक्षा शेषं च पूर्ववत्परम्। डंढं किन्नरवामाम्बा शेषं च पुर्ववत्परम्।। ५५।।
णंतं च पन्नगं ज्येष्ठां शेषं च पूर्ववत्परम्। थंदं च पितृरौद्र्यम्बा शेषं च पूर्ववत् परम्।। ५६।।
धंनं गणेशमायां च शेषं च पूर्ववत्परम्। पंफं भैरवशब्दान्ते कुण्डली पूर्ववत् परम्।। ५७।।
बंभं बटुककाली च शेषं च पूर्ववत्परम्। मंयं च क्षेत्रशब्दान्ते कालरात्री च पूर्ववत्।। ५८।।
रंलं प्रमथभगवती शेषं च पूर्ववत्परम्। वंशं ब्रह्मापि सर्वेश्वर्यम्बा शेषं च पूर्ववत्।। ५९।।
षंसं विष्णुं च सर्वज्ञा शेषं च पूर्ववत्परम्। हंलं रुद्रः सर्वकर्त्री शेषं च पूर्ववत्परम्।। ६०।।
क्षं चराचरशक्तिं च शेषं च पूर्ववत्परम्। अङ्गुष्ठगुल्फजङ्घासु जानूरुकटिपार्श्वके ।। ६१।।
स्तनकक्षकरस्कन्धकर्णमूर्धसु च क्रमात्। दक्षभागादिवामान्तं विन्यसेत् कुलनायिके।। ६२।।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते सकलां मातृकां वदेत्। समस्तदेवताधिं च पायै श्री च पराम्बिकाम्।। ६३।।
देव्यै नम इति ब्रूयाद् व्यापकं विन्यसेत् प्रिये। देवतान्यास एवं स्यान्मातृन्यास[2]स्तथोच्यते।।६४।।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते कवर्गानन्तकोटि च। भूचरीकुलशब्दान्ते सहितायै[3] पदं वदेत् ।। ६५।।
आंक्षामन्ते मङ्गलाम्बादेव्यै नम इतीरयेत्। आंक्षामन्ते तु ब्रह्माण्यम्बादेव्यै च पदं वदेत्।।६६।।
अनन्तकोटिभूतेति कुलान्ते सहिताय[4] च। अंक्षं मङ्गलनाथाय अंक्षमन्तेऽसिताङ्ग च।। ६७।।
भैरवान्ते तु नाथाय नम इत्युच्चरेत् प्रिये। चवर्गं खेचरीमीलां चर्चिकां च महेश्वरीम्।।६८।।
वेतालं चेति इलं च चर्चिकं रुरुमेव च। शेषं च पूर्ववत् प्रोक्त्वा ततो वक्ष्ये महेश्वरि।।६९।।
टवर्गं पातालचरीमूंहां योगेश्वरीं वदेत्। कौमारीं पिशाचमूंहां वदेद्योगेशचण्डकौ ।।७०।।
तवर्गं दिक्चरीं ॠंसां हरसिद्धां च वैष्णवीम्। अपस्मारं हरसिद्धिं क्रोधं च पूर्ववत् परम्।।७१।।
पवर्गं सहचरीं ॡंषां भट्टिनी वादि राहि च। ब्रह्मराक्षसलॄंषं च भट्टोन्मत्तादि पूर्ववत्।। ७२।।
यवर्गं गिरिचरीमैंशां ततः किलिकिलेति च। इन्द्राणीं वटुकं[5] एंशं किलिकिलान्ते कपालिनम्।।७३।।
शवर्गान्ते वनचरीमौंवां कालादिरात्रि च। चामुण्डां प्रेतमोंवं च कालरात्रश्च[6] भीषणः।।७४।।

---

१. 'ऋक्षं' क.ख.पाठः। २. 'तवो' ग.पाठः। ३. 'सेवितायै' ग.पाठः। ४. 'सेविताय' ग.पाठः। ५. 'चेट' ख.पाठः। ६ 'त्रिश्च' ग.पाठः।

लक्षं जलचरीमंलां भीषणाममलां तथा। महालक्ष्मी शाकिनीं च अंलं पश्चाच्च भीषणम्।७५॥
संहारभैरवं चैव शेषं पूर्ववदुच्चरेत्। त्रितारमूलमन्त्रान्ते मातृभैरवशब्दतः ॥ ७६॥
अधिपायै परादेव्यै नमोऽन्तं व्यापकं न्यसेत्। मातृन्यासं महेशानि अष्टाधारेषु विन्यसेत्।७७॥
एवं न्यस्ततनुर्देवि ध्यायेद् देवमनन्यधीः। अमृतार्णवमध्यस्थस्वर्णद्वीपे[1] मनोरमे॥ ७८॥
कल्पवृक्षवनान्तःस्थे नवमाणिक्यमण्डपे । नवरत्नमये श्रीमत्सिंहासनगताम्बुजे ॥ ७९॥
त्रिकोणान्तःसमासीनं चन्द्रसूर्यसमप्रभम्। अर्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्तविभूषणम्॥ ८०॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम्। मन्दस्मितमुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥ ८१॥
दिव्याम्बरस्रगालेपं दिव्याभरणभूषितम्। पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः॥ ८२॥
विद्यासंसिद्धि[2]बिभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणम्। महाषोढोदिताशेषदेवतागणसेवितम् ॥ ८३॥
एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्धनारीश्वरं शिवम्। पुंरूषं वा स्मरेद् देवि स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्॥ ८४॥
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणम्। सर्वतेजोमयं ध्यायेत् सचराचरविग्रहम्॥ ८५॥
ततः सन्दर्शयेन्मुद्रादशकं परमेश्वरि। योनिं लिङ्गं च सुरभि हेतिमुद्राचतुष्टयम्[3]॥ ८६॥
वनमालां नभोमुद्रां महामुद्रामिति क्रमात्। इति

ततः शिरसि श्रीगुरुं ध्यायेत्। यथा —

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभं वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम्।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्॥ १॥

इति। अथ महाषोढान्यासफलं श्रीकुलार्णवे—

एवं न्यासे कृते देवि साक्षात् परशिवो भवेत्। मन्त्री न चात्र सन्देहो निग्रहानुग्रहक्षमः॥ १॥
महाषोढाह्वयं न्यासं यः करोति दिने दिने। देवाः सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः॥ २॥
महाषोढाह्वयं न्यासं यत्र[4] मन्त्री न्यसेत्ततः। दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं समन्ताद् दशयोजनम्॥ ३॥
कृत्वा न्यासमिमं देवि यत्र गच्छति मानवः। तत्र श्रीर्विजयो लाभः सन्मानं पौरुषं प्रिये॥ ४॥
महाषोढाकृतन्यासं नोद्वीक्ष्य योऽभिवन्दते। षण्मासान्मृत्युमाप्नोति यदि त्राता शिवः स्वयम्।५॥
वज्रपञ्जरनामानमेनं न्यासं करोति यः। दिव्यान्तरिक्षभूशैलजलारण्यनिवासिनः॥ ६॥
उद्दण्डभूतवेतालदेवरक्षोग्रहादयः[5]। भयग्रस्तेन मनसा नेक्षन्ते साधकं प्रिये ॥ ७॥
महाषोढाह्वयं न्यासं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। देवाः सर्वे प्रकुर्वन्ति ऋषयश्च मुनीश्वराः॥ ८॥
बहुनोक्तेन किं देवि सुशिष्याय प्रकाशयेत्। अक्षयां लभते सिद्धिं रहसि न्यासमाचरेत्॥ ९॥
अस्मात्परतरः साक्षाद्देवताभावसिद्धये। लोके नास्ति न सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः॥ १०॥
ऊर्ध्वाम्नायप्रवेशश्च पराप्रासादचिन्तनम्। महाषोढापरिज्ञानं नाल्पस्य तपसः फलम्॥ ११॥

---

१. 'मध्योद्यत्स्वर्णद्वीपोपशोभिते' क. पाठः। 'मणिद्वीपे' ग. पाठः। २. 'संसदि' ख. पाठः। ३. हेतिमुद्राः कपालज्ञानशूलपुस्तकाख्याः।
४. 'यः स' ख. पाठः। ५. 'यक्षोरगादयः' ग. पाठः।

इति महाषोढान्यासः।। अथ तुरीयविद्या— सा तु परा षोडशी "सौःश्रींह्रींक्लींऐंसौःओंह्रींश्रीं कएईलह्— सकहलसकलह्रीं सौःऐंक्लींह्रींश्रींसौः" इति तुरीयविद्या।। अथ चरणविद्याः —

प्रणवं च त्रितारं हंसः शिवह्सौः पदम्। सोऽहं तुरीयविद्यां च[1] चिदानन्दपदं ततः।। १२।।
तथा ज्योतिरहं चेति प्रथमं परिकीर्तितम्। प्राग्वत् सर्वं समुच्चार्य सच्चिदानन्दशब्दतः।। १३।।
ततो ज्योतिरहं चेति द्वितीयं परिकीर्तितम्। ततः प्राग्वत् समुच्चार्याहमेवास्मीति चोच्चरेत्।।१४।।
तृतीयं तु समुद्दिष्टं चरणत्रयमीरितम्। सङ्घट्टमुद्रया मूर्ध्नि विन्यसेद् देशिकोत्तमः।। १५।।

इति चरणत्रयम्।। अथ शम्भुचरणम् —

प्रणवं च त्रितारं च प्रणवं योऽहमस्म्यथ। अहमस्मीति ब्रह्माहमस्मि सोऽहं समीरयेत्।। १६।।
स्वच्छप्रकाशशब्दान्ते परिपूर्णपरापर। महाप्रकाशपर्यन्ते पूर्णानन्दपदं ततः।। १७।।
नाथश्रीपादुकामन्ते पूजयामीति मूर्धनि।

न्यसेदिति शेषः। इति शम्भुचरणम्।। पञ्चाम्बास्तु प्रागेव प्रपञ्चिताः। उन्मनाकाशादिनवनाथाः आत्मानन्दादिनवनाथाः स्वपारम्पर्यादिक्रमश्च प्रागेवोक्ताः। अथ षोडश मूलविद्याः —

(१) प्रणवादित्रितारं च स्वच्छेति पदमीरयेत्। प्रकाशपरिपूर्णेति परापरमहापि च ।। १।।
सिद्धविद्याकुलं योगि मायाबीजं कुलेति च। योगिनीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि च।। २।।
(२) श्रीप्रासादपराबीजं स्वात्मानं बोधयद्द्वयम्। पराप्रासादबीजं च श्रीप्रासादपरेति च ।। ३।।
अम्बेति मूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि च। (३) प्रणवादित्रितारं च वाग्भवं मकरध्वजः।। ४।।
क्लिन्ने क्लेदिनिशब्दान्ते महामदपदद्रवे। कामराजद्वयं मोहयद्वयं कामराजहृत् ।। ५।।
वह्निजायामियं विद्यातिरहस्यातियोगिनी। (४) प्रणवादित्रितारं च हंसः[2] स्वच्छेति वै वदेत्।।६।।
आनन्दपरमं हंसःपदं च परमात्मने। स्वाहा ह्सौ ह्सौं[3] विद्येयं शम्भवी मूलपूर्विका।। ७।।
(५) प्रणवादित्रितारं च माया नित्यं स्फुरत्तेति[4]। त्मचैतन्यानन्दमयि महाबिन्दुपदं वदेत्।। ८।।
व्यापकान्ते मातृपदं स्वरूपिणिपदं वदेत्। प्रणवादित्रितारं ह्रीमियं[5] वै कथिता बुधैः।। ९।।
हृल्लेखामूलविद्येति[6] (६) प्रणवादि त्रितारकम्। स्वच्छप्रकाशात्मिके च मायां कुलमहापदम्।।१०।।
मालिनीवाक्कुलगर्भ[7]मातृके भुवनेश्वरीम्। समयान्ते च विमले श्रीबीजमियमीश्वरि।। ११।।
समयान्ते च विमलमूलविद्येति कथ्यते। (७) तारं तारत्रयं हंसस्ततो नित्यप्रकाश च।। १२।।
आत्मिके कुलकुण्डेति लिनि आज्ञापदं ततः। सिद्धे[8] महाभैरवीति आत्मनं बोधयद्द्वयम्।।१३।।
अम्बे च भगवत्यन्ते माया ह्रुमियमीश्वरि। परबोधिनि मूलान्ते विद्या स्यात् परमेश्वरि।।१४।।
(८) तारं तारत्रयं तारं मोक्षं कुरु इतीरयेत्। कुलश्चाक्षरीमूलविद्येति परिपठ्यते।। १५।।
(९) तारं तारत्रयं प्रोक्त्वा लोपा पञ्चदशाक्षरी। चैतन्यत्रिपुरामूलविद्येयं परमेश्वरि।। १६।।

---

१. 'सच्चि' ग. पाठः। २. 'हः सः' ग. पाठः। ३. 'हसक्षौं' ग. पाठः। ४. 'रन्त्विति' ख. पाठः। ५. 'रमी' ग. पाठः।
६. 'चिल्लेखा' ग. पाठः। ७. 'र्भ' क. ख. ग. पाठः। ८. 'सिद्धि' ग. ख. पाठः।

(१०) तारं तारत्रयस्यान्ते वाग्भवं बीजमुद्धरेत्। शुद्धसूक्ष्म-निराकार-निर्विकल्पपदं ततः॥ १७॥
परब्रह्मस्वरूप्यन्ते णिक्लीमन्ते परापदम्। नन्दशक्तिपदं बालातृतीयं बीजमुद्धरेत् ॥ १८॥
इयं तु शाम्भवानन्दनाथानुत्तरकौलिनी। मूलविद्येति कथिता सर्वागमविशारदैः ॥ १९॥
(११) तारं तारत्रयं हंसः सोहं स्वच्छान्तनन्द च। परमान्ते हंसपरमात्मने बह्निवल्लभा ॥ २०॥
गुरूत्तमविमर्शिनी मूलविद्या समीरिता।(१२) तारं तारत्रयस्यान्तेऽप्यनामाख्यपदं भवेत्॥ २१॥
व्योमातीतपदं नाथपरापरपदं ततः। व्योमातीतपदं व्योमेश्वर्यम्बापदमुद्धरेत् ॥ २२॥
अनामाख्या मूलविद्या प्रोक्तेयं परमेश्वरी। (१३) तारं तारत्रयं वाणीं ईईउं बीजमुद्धरेत्॥ २३॥
प्रोक्ता सङ्केतसाराख्या मूलविद्या महेश्वरि। (१४) तारं तारत्रयं मायां ततो भगवतीति च॥२४॥
विच्चे वाग्वादिनी चेति कामराजं महाह्वद। महामातङ्गिनि वाणीं क्लिन्ने ब्लूंस्त्रीं लिखेदियम्॥२५॥
अनुत्तरादिवाग्वादिनीविद्या परिकीर्तिता। (१५) तारं तारत्रयं प्रासादपरां खेचरीं ततः॥ २६॥
सम्पत्प्रदाया मध्यं तु श्रीप्रासादपरां लिखेत्। इयं तु कथिता मूलविद्यानुत्तरशाङ्करी॥ २७॥
(१६) तुरीयविद्यामुच्चार्य सर्वानन्दमयादिकम्। उद्धरेत् परमेशानि महात्रिपुरसुन्दरी॥ २८॥
मूलविद्येयमीशानि प्रोक्ताभीष्टफलप्रदा। इति षोडश विद्याः॥

अथ षडाधारविद्याः, तत्र परेश्वरमन्त्रः —

तारपञ्चकमुद्धृत्य सरहस्त्रौं वाग्भवं ततः। फ्रेंबीजं च ततो लेख्यं परेश्वरमनुर्मतः॥ १॥
आज्ञायां कर्णिकामध्ये परेश्वरमनुं न्यसेत् इति परेश्वरमन्त्रः॥

अथ विच्चेश्वरमन्त्रः —

तारपञ्चकमुच्चार्य हस्रूं वाग्भवमुद्धरेत्। कुब्जिके फ्रें विशुद्धौ तु विच्चेश्वरमहामनुः॥ १॥

इति विच्चेश्वरमन्त्रः। अथ हंसेश्वरमन्त्रः —

तारपञ्चकमुच्चार्य हस्त्रैं[1] वाग्भवमुद्धरेत्। कुब्जिकायै पदं चैव ह्सफ्रं विच्चे तथैव च॥ १॥
हंसेश्वरमहामन्त्रस्त्वनाहतपदे स्थितः। इति हंसेश्वरमन्त्रः॥

अथ संवर्तेशमन्त्रः —

तारपञ्चकमुद्धृत्य ह्रांह्रींह्रूंह्रीं तथैव च। हस्त्रींक्ष्मांक्ष्रीं तथैव क्ष्रीं किणिद्वन्द्वमतः परम्॥ १॥
हसफ्रां हसफ्रमतो हस्फ्रीं विच्चे ह्रौं च हसद्वयम्। हसफ्रें हसक्षमलवयरूं प्रणवमेव च॥ २॥
हसक्षमलवान् प्रोच्य यरां हस तथैव च। क्षमलान् वयरूं चैव तद्बीजं वामनेत्रयुक्॥ ३॥
वाग्भवं च ततो हस्त्रींहसूहस्रां च ततः परम्। ह्रींहंह्रांह्रां ततो वाणीं नित्ये भगवतीति च॥४॥
हसफ्रं कुलेश्वरि ह्रांह्रूंह्रींह्रांह्रींहुं ततः परम्। ह्रोंहौंङ्वणनान् मे च क्ष्मांक्ष्मींक्ष्मूंक्ष्मस्तथैव च॥ ५॥
क्ष्म्रंश्रींफट् च हस्त्रौं फ्रें च अघोरमुखि चोच्चरेत्। कुब्जिकायै ततश्छ्रां छ्रूंछ्रीं घोरे च ततः परम्॥६॥

---

१. 'हसयईं' ख. पाठः।

अघोरे वायुवह्नीन्द्रान् वंसहं च किणिद्वयम्। महाकिणियुगं विच्चे संवर्तेशमहामनुः।। ७।।
स्वाधिष्ठाने महाचक्रे न्यस्तव्यः साधकोत्तमैः। इति संवर्तेश्वरमन्त्रः।।

अथ द्वीपेश्वरमन्त्रः —

तारपञ्चकमुच्चार्य हसफ्रूं वाग्भवं ततः। रिगटिनि पदं चैव पिङ्गटिनि पदं ततः।। १।।
विच्चे मन्त्रोऽयमुदितो द्वीपेशस्य वरानने। मणिपूरकचक्रे तु न्यस्तव्यः साधकोत्तमैः।। २।।

इति द्वीपेश्वरमन्त्रः।। अथ नवात्मेश्वरमन्त्र —

तारपञ्चकमुच्चार्य सहक्षमलवेति च। रयूं नमो भगवति हस्फ्रें बीजमतः परम्।। १।।
कुब्जिकायै ततो ह्रां ह्रूं ह्रीं ङञणनमे। अघोरमुखि छ्रां छ्रूं छ्रीं किणिद्वन्द्व किणिद्वयम्।।२।।
विच्चे नवात्मेश्वरस्य मन्त्रः स्यान्मूलपङ्कजे। इति नवात्मेश्वरमन्त्रः।। इति षडन्वयशाम्भवमन्त्राः।।

ततो ध्यानम्—

सहस्रसूर्यसङ्काशो महादीप्ति[1]धरो गुरुः। षडन्वयेश्वरः श्रीमान् परशम्भुरजोऽव्ययः।। १।।
षडाननस्फुरन्नेत्रत्रयषट्कसमन्वितः । द्वीपिचर्मकटिस्फारमुण्डमालाविभूषणः ।। २।।
नरास्थिरत्नपारिजातपुष्पमालासमावृतः। ब्रह्मनाभिकजाङ्गुष्ठो दंष्ट्राविस्तृतलापनः[2]।। ३।।
विचित्राभरणैर्युक्तः सर्ववित्पशुपाशहृत्। शूलासीषुशक्तिसृणिवरधारी महातनुः ।। ४।।
कपालफलचापारिपाशाभयकराम्बुजः[3]। देवावृतः पितृवने क्रीडाकृन्मानसोत्तरे ।। ५।।
एवं परेश्वरीं ध्यायेत् स्तनभारविराजिताम्। इति ध्यात्वाभिसम्पूज्य मूलविद्याद्वयं पुनः।। ६।।
समभ्यस्य समर्प्याथ चरणद्वितयं स्मरेत्।

रश्मिक्रमः प्रागेव प्रपञ्चितः।। अथोर्ध्वाम्नायमन्त्रभेदा अग्रे वक्ष्यन्ते। अथ तन्त्रान्तरे समयाविद्याः, यथा—

श्रीविद्या बगला चैव कालरात्रिस्तथैव च। जयदुर्गा च्छिन्नमस्ता समयाः पञ्च कीर्तिताः।। १।।

श्रीविद्या प्रागुक्ता। अथ बगला—अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारद ऋषिः, जगती छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, ह्लींबीजं, स्वाहा शक्तिः, कीलय कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः, ओंह्लीं बगलामुखि, सर्वदुष्टानां, वाचं मुखं पदं स्तम्भय, जिह्वां कीलय, बुद्धिं विनाशय ह्लींओंस्वाहा, इति षडङ्गमन्त्राः। ध्यानम्।

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्।।१।।

"ओंह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लींओं स्वाहा" इति बगलामुखी।। अथ कालरात्रिः— अस्य श्रीकालरात्रिमन्त्रस्य भैरव ऋषिः[4]अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकालरात्रिर्देवता, ह्रीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, हुं कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः, षड्दीर्घयुक्तेन मायाबीजेन षडङ्गन्यासः। ध्यानम्—

आरक्तभानुसदृशीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां भीषणां चन्द्रशेखराम्।। १।।
प्रेतासनसमासीनां भजतां सर्वकामदाम्। दक्षिणे चाभयं पाशं वामे भुवनमेव च।। २।।

१. 'दैपि' क.। 'द्वीपि' ख. पाठः।। २. 'विश्रुतपापनः' क. पाठः।। ३. 'रोद्यतः' र्घ्य' ४. 'उष्णिक' ग. पाठः।

रक्तदण्डधरां देवीं कालरात्रिं विचिन्तयेत्।

"ऐंह्रींक्लींश्रींकालेश्वरि सर्वजनमनोहारि सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वराजवशङ्करि सर्वदुष्टनिर्दलिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि बन्दिशृङ्खलांस्त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रूञ्जम्भय २ द्वेष[1] निर्दलय २ सर्वं स्तम्भय २ उवाच २ उच्चाटय २ सर्ववश्यं कुरु २ सर्वकालरात्रिकामिनि गणेश्वरि हुंफट् स्वाहा" इति कालरात्रिः।। अथ जयदुर्गा— अस्य जयदुर्गामन्त्रस्य नारद ऋषिगार्यत्री छन्दः, जयदुर्गा देवता, ओं बीजं स्वाहा शक्तिः, रक्षिणि कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ओं,दुर्गे,दुर्गे,रक्षणि, स्वाहा, ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा, इति षडङ्गमन्त्राः।। ध्यानम्—

कीलालाभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुखण्डां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः।। १ ।। इति।

"ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" इति जयदुर्गा।। अथ च्छिन्नमस्ता—अस्य त्रिशक्तिमन्त्रस्य भैरव ऋषिः सम्राट् छन्दः श्रीवज्रवैरोचनीया देवता ह्रीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, फट् कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ओं आं खड्गाय स्वाहा, ओं ऊं सुखड्गाय स्वाहा, ओं ऊं श्रींविराजाय[2] स्वाहा, ओं ऐं पाशाय स्वाहा, ओंऔंअङ्कुशाय स्वाहा, ओं अः असुरान्तकाय[3] स्वाहा—इति षडङ्गमन्त्राः। ध्यानम् —

स्वनाभौ नीरजं ध्यायेच्छुद्धं विकसितं सितम्। तत्पद्मकोशमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः।। १।।
जापाकुसुमसङ्काशं नवबन्धूकसन्निभम् । रजःसत्त्वतमोरेखायोनिमण्डलमण्डितम् ।। २।।
मध्ये तु तां महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्। छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम्।। ३।।
प्रसारितमुखां भीमां लेलिहानोग्रजिह्विकाम्। पिबन्तीं रौधिरीं धारां निजकण्ठसमुद्भवाम्।। ४।।
विकीर्णकेशपाशां च नानापुष्पसमन्विताम्। दक्षिणे च करे कर्त्रीं मुण्डमालाविभूषिताम्।। ५।।
दिगम्बरां महाघोरां प्रत्यालीढपदस्थिताम्। अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्।। ६।।
रतिकामोपविष्टां च केचिद्[5] ध्यायन्ति मन्त्रिणः। सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम्।। ७।।
विपरीतरतासक्तौ ध्यायेद्रतिमनोभवौ । योनिमुद्रासमारूढां विचित्रासनसंस्थिताम् ।। ८।।
वर्णिनीडाकिनीयुक्तां वामदक्षिणयोगतः। इति।

"श्रींक्लींह्रींऐं वज्रवैरोचनीये ह्रींह्रींफट्स्वाहा" इति च्छिन्नमस्ता। इति समयाविद्याः।।

गायत्रीं तु समुच्चार्य तत्तदावृतिदेवताः। पूजनीयाः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये।। १।।

इति वचनाच्छ्रीचक्रावरणदेवीनां गायत्र्यः प्रोच्यन्ते —

ओं तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्,— इति गणपतिगायत्री।। आपदुद्धरणाय विद्महे बटुकेश्वराय धीमहि तन्नो वीरः प्रचोदयात्, — इति बटुकगायत्री।। ओं दिगम्बराय विद्महे कपालहस्ताय धीमहि तन्नः क्षेत्रपालः प्रचोदयात्,— इति क्षेत्रपालगायत्री। ओं व्यापिकायै विद्महे नानारूपायै धीमहि तन्नो योगिनी प्रचोदयात्— इति योगिनीगायत्री। ओं देवराजाय विद्महे वज्रहस्ताय धीमहि तन्नः शक्रः प्रचोदयात्—

१. 'शेषं' क.ख. पाठः। २. 'कालाभ्रा' ग. पाठः। ३. 'वज्राय' ग. पाठः। ४. 'सुरक्षसुरक्षाय' ग.पाठः। ५. 'सदा' ग.पाठः।

इतीन्द्रगायत्री। रुद्रनेत्राय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि तन्नो वह्निः प्रचोदयात्, इति वह्निगायत्री। ओं वैवस्वताय विद्महे दण्डहस्ताय धीमहि तन्नो यमः प्रचोदयात्,—इति यमगायत्री। ओं निशाचराय विद्महे खड्गहस्ताय धीमहि तन्नो निर्ऋतिः प्रचोदयात्,— इति निर्ऋतिगायत्री। शुद्धहस्ताय विद्महे पाशहस्ताय धीमहि तन्नो वरुणः प्रचोदयात्,—इति वरुणगायत्री। सर्वप्राणाय विद्महे यष्टिहस्ताय धीमहि तन्नो वायुः प्रचोदयात्— इति वायुगायत्री। यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि तन्नो यज्ञः प्रचोदयात्— इति कुबेरगायत्री। सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्— इति शिवगायत्री। चतुराननाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि तन्नो ब्रह्मा: प्रचोदयात्— ब्रह्मगायत्री। पातालवासिने विद्महे सहस्रवदनाय धीमहि। तन्नोऽनन्तः प्रचोदयात् इत्यनन्तगायत्री। शतकोटिने विद्महे महावज्राय धीमहि तन्नो वज्रं प्रचोदयात्,— इति वज्रगायत्री। तीक्ष्णभल्लाय विद्महे दीर्घदण्डाय धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् इति शक्तिगायत्री। शत्रुघ्नाय विद्महे दीर्घकायाय धीमहि तन्नो दण्डः प्रचोदयात्— इति दण्डगायत्री। तीक्ष्णधाराय विद्महे त्रिमूर्त्यात्मकाय धीमहि तन्नः खड्गः प्रचोदयात्— इति खड्गगायत्री। जगदाकर्षणाय विद्महे महापाशाय धीमहि तन्नः पाशः प्रचोदयात्—इति पाशगायत्री। वशीकरणाय विद्महे महाङ्कुशाय धीमहि तन्नोऽङ्कुशः प्रचोदयात्,—इत्यङ्कुशगायत्री। अयःसारायै विद्महे दीर्घगात्र्यै धीमहि तन्नो गदा प्रचोदयात्— इति गदागायत्री। तीक्ष्णशिखाय विद्महे महाकायाय धीमहि तन्नः शूलं प्रचोदयात्— इति शूलगायत्री। रमावासाय विद्महे सहस्रपत्राय धीमहि तन्नः पद्मं प्रचोदयात्—इति पद्मगायत्री। सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयात्,— इति सुदर्शनगायत्री। अणिमासिद्ध्यै विद्महे वराभयहस्तायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्,— इत्यणिमागायत्री। लघिमासिद्ध्यै विद्महे निधिवाहनायै धीमहि तन्न लघिमा प्रचोदयात्— इति लघिमागायत्री। महिमासिद्ध्यै विद्महे महासिद्ध्यै धीमहि तन्नो महिमा प्रचोदयात्,— इति महिमागायत्री। ईशित्वसिद्ध्यै विद्महे जगद्व्यापिकायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्,— इतीशित्वगायत्री। वशित्वसिद्ध्यै विद्महे शोणवर्णायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्—इति वशित्वगायत्री। प्राकाम्यसिद्ध्यै विद्महे निधिवाहनायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्,—इति प्राकाम्यगायत्री। इच्छासिद्ध्यै विद्महे पद्महस्तायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्,३। भुक्तिसिद्ध्यै विद्महे महासिद्ध्यै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्,३। रससिद्ध्यै विद्महे भक्तवत्सलायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्, ३। मोक्षसिद्ध्यै विद्महे महानिर्मलायै धीमहि तन्नः सिद्धिः प्रचोदयात्— इति सिद्धीनां गायत्र्यः।

ब्रह्मशक्त्यै विद्महे पीतवर्णायै धीमहि तन्नो ब्राह्मी प्रचोदयात्, ३। श्वेतवर्णायै विद्महे शूलहस्तायै धीमहि तन्नो माहेश्वरी प्रचोदयात् ३। शिखिवाहनायै विद्महे शक्तिहस्तायै धीमहि तन्नः कौमारी प्रचोदयात्, ३। श्यामवर्णायै विद्महे चक्रहस्तायै धीमहि तन्नो वैष्णवी प्रचोदयात् ३। श्यामलायै विद्महे हलहस्तायै धीमहि तन्नो वाराही प्रचोहयात्,३। श्यामवर्णायै विद्महे वज्रहस्तायै धीमहि तन्न ऐन्द्री प्रचोदयात्, ३। कृष्णवर्णायै विद्महे शूलहस्तायै धीमहि तन्नश्चामुण्डा प्रचोदयात्,३। पीतवर्णायै विद्महे पद्महस्तायै धीमहि तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्,३—इति मातृगायत्र्यः।।

सर्वसंक्षोभिण्यै विद्महे वरहस्तायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,३। सर्वविद्राविण्यै विद्महे महाद्राविण्यै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्, ३। सर्वाकर्षिण्यै विद्महे महामुद्रायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,३। सर्ववशङ्कर्यै विद्महे महावश्यायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,३। सर्वोन्मादिन्यै विद्महे महामायायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,३। महाङ्कुशायै विद्महे शोणवर्णायै धीमहि तन्नोमुद्रा प्रचोदयात्,३। सर्वखेचर्यै विद्महे

गगनवर्णायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,३। बीजरूपायै विद्महे महाबीजायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,२। महायोन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,३। त्रिखण्डायै विद्महे त्रिकात्मिकायै धीमहि तन्नो मुद्रा प्रचोदयात्,—इति मुद्रागायत्र्यः।।

कामाकर्षिण्यै विद्महे रक्तवस्त्रायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। बुद्ध्याकर्षिण्यै विद्महे बुद्ध्यात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। अहङ्काराकर्षिण्यै विद्महे तत्त्वात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। शब्दाकर्षिण्यै विद्महे सर्वशब्दात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। स्पर्शाकर्षिण्यै विद्महे स्पर्शात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। रूपाकर्षिण्यै विद्महे रूपात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। रसाकर्षिण्यै विद्महे रसात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। गन्धाकर्षिण्यै विद्महे गन्धात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। चित्ताकर्षिण्यै विद्महे चित्तात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। धैर्याकर्षिण्यै विद्महे धैर्यात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। स्मृत्याकर्षिण्यै विद्महे स्मृतिस्वरूपिण्यै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। नामाकर्षिण्यै विद्महे नामात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। बीजाकर्षिण्यै विद्महे बीजात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। आत्माकर्षिण्यै विद्महे आत्मस्वरूपिण्यै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३। अमृताकर्षिण्यै विद्महे अमृतस्वरूपिण्यै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३।। शरीराकर्षिण्यै विद्महे शरीरात्मिकायै धीमहि तन्नः कला प्रचोदयात्,३—इति कामाकर्षिण्यादीनां गायत्र्यः।।

अनङ्गकुसुमायै विद्महे रक्तकञ्चुकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गमेखलायै विद्महे पाशहस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गमदनायै विद्महे शरहस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गमदनातुरायै विद्महे धनुर्हस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गरेखायै विद्महे दीर्घकेशिन्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गवेगिन्यै विद्महे सृणिहस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गाङ्कुशायै विद्महे नित्यक्लेदिन्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। अनङ्गमालिन्यै विद्महे सुप्रसन्नायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३—इत्यष्टदलदेवतानां गायत्र्यः।।

सर्वसंक्षोभिण्यै विद्महे बाणहस्तायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वविद्राविण्यै विद्महे कार्मुकहस्तायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वविकर्षिण्यै विद्महे शोणवर्णायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वाह्लादिन्यै विद्महे जगद्व्यापिन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वसंमोहिन्यै विद्महे जगन्मोहिन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वस्तम्भिन्यै विद्महे जगत्स्तम्भिन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वजृम्भिण्यै विद्महे जगद्रञ्जिन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्ववशङ्कर्यै विद्महे............(?)। सर्वरञ्जिन्यै विद्महे वैडुर्यवर्णायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वोन्मादिन्यै विद्महे जगन्मायायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वार्थसाधिन्यै विद्महे पुरुषार्थदायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वसंपत्प्रपूरिण्यै विद्महे संपदात्मिकायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वमन्त्रमय्यै विद्महे मन्त्रमात्रे धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३। सर्वद्वन्द्वक्षयङ्कर्यै विद्महे कालात्मिकायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्,३— इति चतुर्दशारदेवतागायत्र्यः।।

सर्वसिद्धिप्रदायै विद्महे श्वेतवर्णायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वसंपत्प्रदायै विद्महे महालक्ष्म्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वप्रियङ्कर्यै विद्महे कुन्दवर्णायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वमङ्गलकारिण्यै विद्महे मङ्गलात्मिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वकामप्रदायै विद्महे कल्पलतात्मिकायै धीमहि तन्नो

देवी प्रचोदयात्,३। सर्वदुःखविमोचिन्यै विद्महे हर्षप्रदायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वमृत्युप्रशमन्यै विद्महे सर्वसञ्जीविन्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वविघ्ननिवारिण्यै विद्महे सर्वकामायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वाङ्गसुन्दर्यै विद्महे जगद्योन्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वसौभाग्यदायिन्यै विद्महे जगज्जनन्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३—इति बहिर्दशारदेवतागायत्र्यः।।

सर्वज्ञायै विद्महे महामायायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वशक्त्यै विद्महे महाशक्त्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वैश्वर्यप्रदायै विद्महे ऐश्वर्यात्मिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वज्ञानमय्यै विद्महे ज्ञानात्मिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वव्याधिविनाशिन्यै विद्महे औषधात्मिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वाधारस्वरूपिण्यै विद्महे आधारात्मिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वपापहरायै विद्महे सर्वतीर्थस्वरूपिण्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वानन्दमय्यै विद्महे महानन्दायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वरक्षास्वरूपिण्यै विद्महे सर्वरक्षणायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वेप्सितफलप्रदायै विद्महे फलात्मिकायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३—इत्यन्तर्दशारदेवतागायत्र्यः।।

वशिनीदेव्यै विद्महे पुस्तकहस्तायै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। कामेश्वर्यै विद्महे वाग्देव्यै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। मोदिनीदेव्यै विद्महे महावाण्यै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। विमलादेव्यै विद्महे मालाधरायै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। अरुणावाग्देव्यै विद्महे श्वेतवर्णायै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। जयिनीदेव्यै विद्महे महावागीश्यै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। सर्वेश्वर्यै विद्महे सर्ववागीश्यै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३। कौलिनीदेव्यै विद्महे कुलमार्गगायै धीमहि तन्नो वाचा प्रचोदयात्,३—इत्यष्टारदेवतागायत्र्यः।।

महाबाणिन्यै विद्महे पुष्पात्मिकायै धीमहि तन्नो बाणा प्रचोदयात्,३। पुष्पचापिन्यै विद्महे पुण्ड्रात्मिकायै धीमहि तन्नश्चापा प्रचोदयात्, ३। पुष्पपाशिन्यै विद्महे पाशच्छेदिन्यै धीमहि तन्नः पाशिनी प्रचोदयात्,३। अङ्कुशिन्यै विद्महे पुष्पात्मिकायै धीमहि तन्नः सृणिः प्रचोदयात्,३। इत्यष्टारान्तरालचक्रदेवतागायत्र्यः।।

कामरूपवासिन्यै विद्महे रुद्रशक्त्यै धीमहि तन्नः कामेश्वरी प्रचोदयात्,३। जालन्धरस्थायै विद्महे विष्णुशक्त्यै धीमहि तन्नो वज्रेश्वरी प्रचोदयात्,३। पूर्णपीठस्थायै विद्महे ब्रह्मशक्त्यै धीमहि तन्नो भगमालिनी प्रचोदयात्,३— इति त्रिकोणाग्रस्थदेवतागायत्र्यः।। अथ चक्रेश्वरीणां गायत्र्यः—

त्रिपुरादेव्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुरेश्वर्यै विद्महे कामेश्वरी धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुराश्रियै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुरमालिन्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुरवासिन्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुरासिद्धायै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। त्रिपुराम्बायै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३। महात्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्,३— इति चक्रेश्वरीगायत्र्यः।। अथ षोडशनित्यानां गायत्र्यः।।

कामेश्वर्यै विद्महे नित्यक्लिन्नायै[1] धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। भगमालिन्यै विद्महे सर्ववशङ्कर्यै

१. 'कामेश्वर्यै धीमहि' क. पाठः।

धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। नित्यक्लिन्नायै विद्महे नित्यमदद्रवायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। भेरुण्डायै विद्महे विषहरायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। वह्निवासिन्यै विद्महे सिद्धिप्रदायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। महावज्रेश्वर्यै विद्महे वज्रनित्यायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। शिवदूत्यै विद्महे शिवङ्कर्यै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। त्वरितायै विद्महे महानित्यायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। वागीश्वर्यै (कुलसुन्दर्यै) विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। नित्याभैरव्यै विद्महे नित्यानित्यायै धीमहि तन्नो योगिनी प्रचोदयात्,३। नीलपताकायै विद्महे महानित्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। विजयादेव्यै विद्महे महानित्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सर्वमङ्गलायै विद्महे चन्द्रात्मिकायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। ज्वालामालिन्यै विद्महे महाज्वालायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोदयात्,३। विचित्रायै विद्महे महानित्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। (ललितागायत्री षोडशी) इति षोडशनित्यानां गायत्र्यः।।

अथ षड्दर्शनगायत्र्यः—

ब्रह्मगायत्री स्पष्टैव।। नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्,३। आदित्याय विद्महे मार्तण्डाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्,३। शिवगायत्री तु प्रागेव दर्शिता। महासिद्धाय विद्महे सर्वज्ञाय धीमहि तन्नो बुद्धः प्रचोदयात्,३। सर्वसम्मोहिन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहि तन्न शक्तिः प्रचोदयात्,३— इति षड्दर्शनगायत्र्यः।। अथ समयविद्यानां गायत्र्यः—

सर्वोन्मन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहि तन्नो देवी[1] प्रचोदयात्,३। इति पूर्वसमया।। बगलाम्बायै विद्महे ब्रह्मास्त्रविद्यायै धीमहि तन्नः स्तम्भिनी प्रचोदयात्,३। इति दक्षिणसमया।। कालरात्र्यै विद्महे कालेश्वर्यै धीमहि तन्नो मोहिनी प्रचोदयात्,३। इति पश्चिमसमया।। तन्त्रान्तरेषु जयदुर्गा—कुब्जिका—प्रत्यङ्गिरा—दुर्गाः पश्चिमसमये देवता इति।। तथा—नारायण्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात्,३। इति जयदुर्गागायत्री।। कुब्जिकायै विद्महे नरान्त्रमालायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। इति कुब्जिकागायत्री।। अपराजितायै विद्महे प्रत्यङ्गिरायै धीमहि तन्न उग्रा प्रचोदयात्,३। इति प्रत्यङ्गिरागायत्री।। महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। इति दुर्गागायत्री।। इति पश्चिमसमयदेवतानां गायत्र्यः।। अथोत्तरसमयानां गायत्र्यः— वज्रवैरोचिन्यै विद्महे छिन्नमस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। इति छिन्नमस्तागायत्री।। कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात्,३। इति कालीगायत्री।। तारायै विद्महे छिन्नमस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। इति तारागायत्री।। आम्नायविद्यानां गायत्र्योऽत्रैवान्तर्भूता बोद्धव्याः।। अथ पञ्चपञ्चिकागणगायत्र्यः—

श्रीविद्यायै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्,३। लक्ष्म्यै देव्यै विद्महे श्रीदेव्यै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्,३। महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्,३। त्रिशक्तिलक्ष्म्यै विद्महे महाभैरव्यै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्,३। साम्राज्यलक्ष्म्यै विद्महे जयङ्कर्यै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्,३। इति पञ्चलक्ष्म्यः।। अथ पञ्चकोशाः —

श्रीविद्यायै विद्महे महाकोशेश्वर्यै धीमहि तन्नः कोशा प्रचोदयात्,३। परज्योतिषे विद्महे प्रणवात्मिकायै धीमहि तन्नः कोशा प्रचोदयात्,३। परनिष्कलायै विद्महे परशाम्भव्यै धीमहि तन्नः कोशा प्रचोदयात्,३। अजपायै विद्महे हंसात्मिकायै धीमहि तन्नः कोशा प्रचोदयात्,३। मातृकायै विद्महे वागीश्वर्यै धीमहि तन्नः कोशा प्रचोदयात्,३। इति पञ्चकोशाः।। अथ पञ्चकल्पलताः—

---

१. 'शक्तिः' ग. पाठः।

श्रीविद्यायै विद्महे कल्पतलेश्वर्यै धीमहि तन्नः कल्पलता प्रचोदयात्,३। त्वरितागायत्री प्रागेवोक्ता। स्वच्छन्दसंग्रहे।। त्वरितादेव्यै विद्महे महादेव्यै धीमहि तन्नः कल्पलता प्रचोदयात्,३। पारिजातेश्वर्यै विद्महे कामप्रदायै धीमहि तन्नः कल्पलता प्रचोदयात्,३। त्रिकूटायै विद्महे जगज्जनन्यै धीमहि तन्नः कल्पलता प्रचोदयात्,३। पञ्चबाणेश्यै विद्महे सर्वसङ्क्षोभिण्यै धीमहि तन्नः कल्पलता प्रचोदयात्,३। इति पञ्चकल्पलताः। अथ पञ्चकामदुघानां गायत्र्यः —

श्रीविद्यायै विद्महे कामदुघेश्वर्यै धीमहि तन्नः कामदुघा प्रचोदयात्,३। अमृतपीठेश्यै विद्महे अमृतेश्वर्यै धीमहि तन्नः कामदुघा प्रचोदयात्,३। सुधासूत्यै विद्महे सुधात्मिकायै धीमहि तन्नः कामदुघा प्रचोदयात्,३। अमृतेश्वर्यै विद्महे विश्वदीपिन्यै धीमहि तन्नः कामदुघा प्रचोदयात्,३। अन्नपूर्णायै विद्महे सर्वसञ्जीविन्यै धीमहि तन्नः कामदुघा प्रचोदयात्,३। इति पञ्चकामदुघाः।। अथ पञ्चरत्नविद्यानां गायत्र्यः—

श्रीविद्यायै विद्महे रत्नेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। सिद्धलक्ष्म्यै विद्महे रत्नेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। मातङ्गिन्यै विद्महे रत्नेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। भुवनेश्वर्यै विद्महे रत्नेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। वाराह्यै विद्महे रत्नेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्,३। इति पञ्चपञ्चिकागणगायत्र्यः।। अथ श्रीचक्रनिर्माणप्रकारोऽत्र प्रदर्श्यते—

प्रस्तारोऽत्र त्रिधा प्रोक्तः श्रीचक्रस्य तथेश्वरि। मेरुकैलासभूसंज्ञा भेदास्तस्य त्रिधा भवेत्।। १।।
मेरुप्रस्तारकं यन्त्रं नित्यातादात्म्यकं स्मृतम्। मातृकायास्तु कैलासप्रस्ताराख्यं सुरेश्वरि।। २।।
भूप्रस्तारं महादेवि वशिन्यात्मकमुत्तमम्। सृष्टिक्रमं मेरुचक्रं कैलासं चार्द्धमेरुकम्।। ३।।
संहाराख्यं महेशानि भूप्रस्तारं स्थितिक्रमम्। एकैकस्य तु चक्रस्य त्रिभेदास्तु भवन्ति हि।। ४।।
सृष्ट्यादिभेदैर्देवेशि संहारं कौलिकं मतम्। सृष्टिक्रमं तु समयमतं स्यात् स्थितिसंज्ञकम्।। ५।।
शुद्धं तु कथितं देवि रहस्यातिरहस्यकम्। मेरुचक्रे तु संहारक्रमपूजा न विद्यते ।। ६।।
सृष्टिक्रमेण देवेशि पूजनीयं प्रयत्नतः। संहारपूजा कैलासप्रस्तारेऽत्र[१] विधीयते ।। ७।।
भूप्रस्तारे महेशानि स्थितिपूजा सदोत्तमा। स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारो वनिनो यतेः।। ८।।
ब्रह्मचारिण उत्पत्तिः स्त्रियः शूद्रस्य चेष्टतः[२]। इति।

श्रीरुद्रयामले—

ततः कुङ्कुमसिन्दूरैः कार्यं यन्त्रं तु योगिना। सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके वैद्रुमे तथा।। १।।
चक्रे तथोक्तविधिना पूज्या देवी वरोत्तमैः। इति।

इति। श्रीतन्त्रराजे—

रत्ने हेमनि रूप्ये वा ताम्रे दृषदि च क्रमात्। कृत्वा चक्रस्य निर्माणं स्थापयेत् पूजयेदपि।। १।।
लक्ष्मीकान्तियशःपुत्रधनारोग्यादिसिद्धये।। इति।

दृषदि गण्डकीशिलायाम्। दक्षिणामूर्तौ—"गण्डकीभवपाषाणे स्वर्णे रजतताम्रयोः।" इति।। रत्नसागरे—

यावज्जीवं सुवर्णे स्याद्रूप्ये द्वाविंशतिः प्रिये। ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदर्धं भूर्जपत्रके।। १।।अन्यत्र—
ताम्रे द्वादशकं वर्षं स्फटिकादौ तु सर्वदा। तेषां मध्ये स्फाटिकं तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत्।। १।।

---

१. 'संहारे' क. पाठः। २. 'चेष्टितः' ग. पाठः।

इति। लक्षसागरे —

भूमौ सिन्दूररजसा रचितं सर्वकामदम्। सुवर्णरचितं यन्त्रं सर्वराजवशङ्करम्।। १।।
रजतेन कृतं यन्त्रमायुरारोग्यकामदम्। ताम्रे तु रचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम्।। २।।
क्लृप्तं मरकते यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम्। लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं मतम्।। ३।।
देव्युवाच।
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं कथं कार्यं महेश्वर। तन्मे वदस्व कृपया यद्यहं तव वल्लभा।। ४।।
ईश्वर उवाच।
भागा दश सुवर्णस्य रजतस्य तु षोडश। ताम्रस्य रविभागेन पीठं कुर्यान्मनोहरम्।। ५।।
तस्मिन् पीठे तु निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत्। शान्तिदं पुष्टिदं प्रोक्तं सर्वशत्रुनिवर्हणम्।।६।।
आयुरारोग्यजनकं कान्तिदं पुष्टिदं मतम्। त्रैविध्यं शृणु चक्रस्य भूप्रस्तारोऽर्ध्व[1] मेरुकम्।। ७।।
पातालवासिनां देवि प्रस्तारो निम्नरेखकः। ऊर्ध्वरेखो महाशान्तिर्मर्त्यलोकनिवासिनाम्।। ८।।
स्वर्गलोकादिवासानां यन्त्राणां मेरुसंज्ञकः। भूपुरं तु समारभ्य बैन्दवान्तं महेश्वरि ।। ९।।
क्रमात् समुन्नतं सर्वं मेरुरूपं मयोदितम्। समोर्ध्वरेखानवकमूर्ध्वरेखं प्रकीर्तितम्।। १०।।
निम्नरेखासमायोगाद्भूप्रस्तारो मयोदितः। यन्त्रबीजस्वरूपं ते मया स्नेहात् प्रकाशितम्।। ११।।
गोपितव्यं त्वया भद्रे स्वयोनिरिव सन्ततम्। इति।

श्रीतन्त्रराजे —

चतुरस्रं समारभ्य नवचक्राण्यनुक्रमात्। उन्नतोन्नतमामध्याच्चक्रं स्यान्निधनं[2] धनम्।। १।।
त्रित्रिक्रमादुन्नतं तदप्रजत्वं[3] श्रियं लभेत्। एकद्विषट्क्रमोन्नामः श्रिये कीर्त्यै च कल्पते[4]।।२।।
नवानि समरूपाणि सर्वाभीष्टार्थसिद्धये। इति।

कुलमूलावतारे —

उच्छ्रितं क्रमशो देवि वित्तप्राप्तिस्ततो मृतिः। भूचक्रे षोडशारं चाप्यष्टारं च समं भवेत्।। १।।
शेषमुन्नतमीशानि चार्थाप्त्यप्रजदं भवेत्। चतुरस्रं समं देवि षोडशारादिबिन्दुकम्।। २।।
मिथः समुन्नतं देवि श्रियै कीर्त्यै च कल्पते। चतुरस्रं समारभ्य बिन्द्वन्तं समरेखकम्।।३।।
तथा श्रीः कीर्तिरारोग्यममृतायोपकल्पते।

इति। तन्त्रराजे —

सीसकांस्यादिषु पुनः पूर्वोक्तविपरीतकृत्। फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन।। १।।
स्थापितं यदि मोहेन लोभा[5]दज्ञानतोऽपि वा। कुलं वित्तमपत्यं च निर्मूलयति सर्वथा।।२।।

इति। लक्षसागरे— "वङ्गेऽथ सीसके लोहे न कर्तव्यं कदाचन।" इति। कुलमूलावतारे—

अग्निरङ्गुलविस्तारं प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरम्। पलप्रमाणं कर्तव्यमर्च्चापीठं मनोहरम्।। १।।

---

१. 'रोर्ध्वं' क. ख. पाठः। २.'ने' क. पाठः। ३. 'सुप्रजत्वं' ख. पाठः। ४.'कल्प्यते' क. पाठः। ५.'भेना' क.ख.पाठः।

यवार्धोच्चं प्रकुर्वीत चतुरस्रं समन्ततः। तस्मिन् पीठे च निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत्।।२।।

इति। सौत्रामणीतन्त्रे —

ऋजुरेखा भवेल्लक्ष्मीर्वक्ररेखा दरिद्रता। अग्निरङ्गुलविस्तारो यवार्धेनोच्छ्रितिर्भवेत्।। १ ।। इति।

अग्निरङ्गुलं हेमस्य रजतस्य तथैव च। ताम्रस्य पूर्वसंख्यैव माणिक्यादौ यथेच्छया।।२।।

पलं तु विंशत्युत्तरत्रिशतगुञ्जापरिमितम्। अङ्गुलप्रमाणं तु महाकपिलपञ्चरात्रे —

विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानान्तराङ्गुलम्। शालिभिर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तरं भवेत्।। १ ।।

इति। "वेदिकापीठशिविकारथादीनां विधिः पुनः। मानान्तराङ्गुलेनैव भवेन्नान्येन¹ केनचित्"।। इत्युक्ते श्रीचक्रस्य पीठशब्दवाच्यत्वान्मानाङ्गुलेनैव तत्प्रमाणं बोध्यम्। अत्र बिन्द्वाद्यष्टारान्तं चक्रत्रयं संहारात्मकं, दशारद्वयं चतुर्दशारं चक्रत्रयं स्थित्यात्मकं, तदुपरि अष्टदलादिभूपुरान्तं चक्रत्रयं सृष्ट्यात्मकम्। रुद्रयामले—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।

वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।। १ ।।

इति। सुभगोदये —

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः। शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।। १ ।।

इति। श्रीभूतभैरवे —

योऽस्मिन् यन्त्रे महेशानि केसराणि प्रकल्पयेत्। योगिनीसहितास्तस्य हिंसां कुर्वन्ति भैरवाः।।१।।

इति वचनान्नात्र केसराणि। स्वच्छन्दसङ्ग्रहे— "कुर्याच्च स्थण्डिले यन्त्रं हस्तमात्रं सुसुन्दरम्"। इति।

तन्त्रराजे तु —

नवहस्तं त्रिहस्तं वा श्रीचक्रमभिषेचने। स्थण्डिले नित्यपूजायां हस्तमात्रं प्रशस्यते।। १ ।।

रत्नादिषु तु निर्माणे मानमिच्छावशाद्भवेत्। इति। तथा—

रक्तेन रजसापूर्य श्रीचक्रं भुवि पूरयेत्²। नश्यन्ति सर्वविघ्नानि प्राप्स्यते च यथेप्सितम्।। १।।

दशभागं सुवर्णस्य ताम्रस्य द्विदशं³ तथा। षड्गुणं (षोडश) रजतस्यापि चैतल्लोहत्रयं शुभम्।।२।।

चक्रेऽस्मिन् पूजयेद्यो हि स सौभाग्यमवाप्नुयात्। अणिमाद्यष्टसिद्धीनामधिपो जायतेऽचिरात्।।३।।

विद्रुमे रचिते यन्त्रे पद्मरागेऽथवा प्रिये। इन्द्रनीले च वैडूर्ये स्फटिके मरकतेऽपि वा।। ४।।

धनं पुत्रं तथा दारान् यशांसि लभते ध्रुवम्। ताम्रं तु कान्तिदं यन्त्रं सुवर्णं शत्रुनाशनम्।। ५।।

राजतं क्षेमदं चैव स्फाटिकं सर्वसिद्धिदम्। खण्डिते स्फुटिते भग्ने भ्रष्टे मानविवर्जिते।। ६।।

दग्धेऽनर्हपशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु । अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते ।। ७।।

दशस्वपि च नो कुर्युः सन्निधानं दिवौकसः। दग्धं च स्फुटितं यन्त्रं हृतं चौरेण वा प्रिये।। ८।।

उपवासं प्रकुर्वीत दिनमेकमतन्द्रितः। लक्षमात्रं जपेद्विद्यां होमतर्पणपूर्विकाम्।। ९।।

सद्भक्त्या च गुरुं तोष्य ब्राह्मणानपि भोजयेत्। लक्षमयुतमित्येके।।

---

१. 'न्यान्येन' क.। 'न्मानने' ख. पाठः। २. 'पूजयेत्' क. पाठः। ३. 'द्विशतं' ग. पाठः।

कदाचिल्लुप्तचिह्नं वा स्फुटता[1]दिविदूषितम्। भग्नं करोति यो मूर्खो मृत्युस्तस्य ध्रुवं भवेत्।।१।।
तस्माच्च तीर्थराजे वा गङ्गादिसरितां वरे। समुद्रे वा क्षिपेद् देवि अन्यथा दुःखमाप्नुयात्।। २।।

इति। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

रक्तासनोपविष्टस्तु यन्त्रोद्धारं[2] समाचरेत्। शक्त्योपविष्टां शक्तिं तु विलिखेद्विस्तृतां सकृत्।। १।।
वह्निना तां पुटीकुर्यात् सन्धिभेदक्रमेण तु। अग्नीशासुरवायव्यरेखा विस्तार्य योजयेत्।। २।।
दशकोणद्वयं देवि जायते तद्वदेव हि। मध्यकोणचतुष्कस्य रेखे आकृष्य बुद्धिमान्।। ३।।
कुर्यात् तत्सन्धिभेदेन मन्वस्रं जायते यथा। समत्रिकोणशक्त्यैकं सुखदं नेत्रयोर्यथा।। ४।।
सुश्रीकं सन्धिभेदेन ऋजुरेखाविजृम्भितम्। बहिरष्टदलं पद्मकिञ्जल्कं समालिखेत्।। ५।।
तद्वत् षोडशपत्रं हि विलिखेत् पद्ममुत्तमम्। सुवृत्तं परमेशानि ततो भूबिम्बमालिखेत्।। ६।।
चतुर्द्वारं विशोभाढ्यं पुष्पं तत्र विनिक्षिपेत्। इति।

काश्मीरे दर्पणे भूर्जे अर्चापीठं लिखेद्बुधः। शलाकया सुवर्णस्य मिश्रया घुसृणेन्दुभिः।। १।।
सिन्दूररजसा मिश्रैः पट्टे धातुमये लिखेत्। अथवा भूतले देवि सुरेखां कुङ्कुमेन वा।। २।।
सिन्दूररजसा वापि लिखेत् सर्वार्थसिद्धये। एतच्चक्रं महेशानि मध्ये बिन्दुविराजितम्।। ३।।
ततस्त्रिकोणं चाष्टारं दशारं च दशारकम्। मनुकोणं महेशानि मध्यचक्रमिदं प्रिये।। ४।।
बैन्दवादष्टकोणान्तं सर्वमध्यं सुरेश्वरि । चत्वारिंशद्भगैर्युक्तं त्रिभगैरपि पार्वति।। ५।।
वसुपत्रं कलापत्रं चतुरस्रं क्रमात् प्रिये। भगात्मकमिदं भद्रे नवयोन्यङ्कितं भवेत्।। ६।।

इति। ज्ञानार्णवे—

श्रीचक्रमपि देवेशि मेरुरूपं न संशयः। लकारः पृथिवीबीजं तत्रोर्वीपुरमुच्यते[3]।। १।।
सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशकात्मकः । तस्मात् षोडशपत्रं तु हकारः शिव उच्यते।। २।।
अष्टमूर्तिस्तथा[4] भद्रे तस्माद्वसुदलं भवेत्। ईकारस्तु महामाया भुवनानि चतुर्दश।। ३।।
पालयन्ती परा तस्माच्छक्रकोणं भवेत् प्रिये। शक्तिरेका दशस्थाने स्थित्वा सूते जगत्त्रयम्।।४।।
विश्वयोनिरिति ख्याता सा विष्णोर्दशरूपका। रकारात् परमेशानि चक्रं व्याप्य विजृम्भते।। ५।।
दशकोणपरा तस्माद्रकाराज्ज्योतिरव्ययः । कलादशान्वितो वह्निर्दशकोणप्रवर्तकः ।। ६।।
ककारान्मादनं देवि शिवं चाष्टस्वरूपकम्। योनिरस्य तदा चक्रे[5] वसुयोन्यङ्कितं भवेत्।। ७।।
अर्धमात्रा गुणान् सूते भेदरूपा यतस्ततः[6]। त्रिकोणरूपा योनिस्तु बिन्दुना बैन्दवं[7] भवेत्।। ८।।
कामेश्वरस्य रूपं तद्विश्वाधारस्वरूपकम् । श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यावर्णसम्भवम्।। ९।।

---

१. 'टना' ख. पाठः। २. 'चक्रो' क.ख. पाठः। ३. 'तेन भूबिम्ब उच्यते' ग. पाठः। ४. 'सदा' ग. पाठः। ५. 'चक्रं' ग. पाठः।
६. 'अर्धमात्रा गुणा तत्र नादरूपा यतःस्थितः' ग. पाठः। ७. 'भैरवी' क. ख. ग. पाठः।

तत्र प्राङ्मुख आसीनश्चक्रराजं समालिखेत्। भूप्रदेशे समे चाढ्ये[१] सिन्दूररजसाऽथवा।। १०।।
कुङ्कुमस्य रजोभिश्च भूमौ चक्रं समालिखेत्। ऋजुरेखं नेत्ररम्यं सन्धिभेदं सममृजु ।। ११।।
अथवा हेमरूप्याभ्यां ताम्रेण रत्न[२]धातुभिः। पट्टं विरच्य श्रीकाष्ठे रक्तचन्दनसम्भवे।। १२।।
पट्टं संस्थाप्य विलिखेद् लेखन्या हेमया प्रिये। रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च कस्तूरीचन्दनेन्दुभिः।। १३।।
ईशानादग्निपर्यन्तमृजुरेखां समालिखेत्। ईशादग्नेस्तदग्राभ्यां रेखे आकृष्य देशिकः।। १४।
एकीकृत्य च वारुण्यां शक्तिरेका परा प्रिये। त्रिकोणाकाररूपेयं तस्या उपरि संलिखेत्।। १५।।
त्रिकोणाकाररूपं तु शक्तिद्वयमुदाहृतम्। पूर्वशक्त्यग्रभागे तु मानयष्टिवदालिखेत्।। १६।।
रेखान्तु परमेशानि वायुराक्षसकोणगाम्। सन्धिभेदक्रमेणैव तयोः शक्त्योस्ततः परम्।। १७।।
रेखे आकृष्य कोणाभ्यां तदग्रात् पूर्वगे कुरु। वह्निमण्डलमेतत्तु पूर्वाग्रं वीरवन्दिते।। १८।।
तच्च त्रयमभूदन्ते ततः शृणु वरानने। पूर्वशक्तीशवह्निभ्यां कोणाभ्यां सुरवन्दिते।। १९।।
पूर्वरेखां तु विस्तार्य तथा पश्चिमवह्नितः। वायुराक्षसकोणाभ्यां रेखां पश्चिमगां तथा।।२०।।
विस्तार्य योजद्देवि शक्तिभेदक्रमेण तु। योन्यग्रगां पूर्वदेशे[३] दक्षिणोत्तरतः क्रमात्।। २१।।
तदा रेखे योनिसंस्थे पश्चिमस्यां दिशि क्रमात्। कोणाग्रगां योजयित्वा दशकोणं तदा भवेत्।।२२।।
तथैव देवदेवेशि द्वितीय[४] दशकोणगम्[५]। ईशानवह्नितो रेखे पूर्वयोन्यग्रयोः क्रमात्।। २३।।
विस्तार्य योजयेत् पश्चात् पश्चिमायां दिशि क्रमात्। वायुराक्षसकोणाग्ररेखे विस्तार्य सुन्दरी।।२४।।
पश्चिमाग्रे तथा देवि योजयेदिन्द्रदिग्गते। एकाग्र[६]पूर्वकोणाग्रचुम्बिनीं तु मनोहराम्।। २५।।
योजयेद् देवदेवेशि यथाशक्त्युद्भवं भवेत्। दशकोणेषु[७] देवेशि त्यक्त्वा कोणचतुष्टयम्।।२६।।
दशकोणान्तयो[८]र्देवि मध्यरेखां प्रकाशयेत्। द्वे दक्षिणे विभागे तु तथा चोत्तरभागके।। २७।।
षट्कोणस्य ततो देवि सन्धिभेदक्रमेण तु। योनिं वह्निं च संयोज्य शक्रारं जायते तथा।।२८।।
कक्षामध्यगतां रेखां निजरूपां तु योजयेत्। ऋज्वाकृतिर्यथा देवि जायतेऽतिमनोहरा।। २९।।
सम्मुखं[९] पञ्चशक्त्यग्रं प्रागग्रं चतुरग्निकम्[१०]। बिन्दुत्रिकोणवस्वारं चक्रभेदा[११] द्वरानने।। ३०।।
मध्यचक्रं तु जानीहि दशारयुगलं तथा। शक्रयोन्यङ्कितं देवि बाह्यमध्यगतं भवेत्।। ३१।।
एतच्चक्रं महेशानि सर्वसौभाग्यदं भवेत्। सर्वसाम्राज्यदं देवि सर्वोपद्रवनाशनम्[१२]।। ३२।।
अनेकहयमाणिक्यसुवर्णपरिपूरकम्। महामोक्षप्रदं देवि वाग्विलासकरं महत्।। ३३।।
एतद्बाह्यं[१३] महेशानि वृत्तं पूर्णेन्दुसन्निभम्। तद्युतं कुरु पद्माक्षि वसुपत्रं मनोहरम्।।३४।।
ततः षोडशपत्रं तु विलिखेत् सुरसुन्दरि। चतुरस्रं चतुर्द्वारसहितं परमेश्वरि।। ३५।।

---

१. 'शुद्धे' ग. पाठः। २. 'बहु' ग. पाठः। ३. 'योन्यग्रां पूर्वदेशेतु' क. ख. ग. पाठः। ४. 'यां' ग. पाठः। ५. 'गाम्' क. ख. पाठः। 'एकत्र' ग. पाठः। ७. 'णस्य' ग. पाठः। ८. 'न्तरे' ग. पाठः। ९. 'स्वमुखं' ग. पाठः। १०. 'रग्रकं' क.ग.पाठः। ११. 'मेतत्' ग. पाठः। १२. 'सर्वापद्विनिवारणम्' ग. पाठः। १३. 'ह्ये' ग. पाठः। १४. 'तदन्ते कुरु मीनाक्षि' ग. पाठः।

चतुष्षष्टिर्यतः[1]कोट्यो योगिनीनां महाप्रभम्। चक्रेऽस्मिन् सविशेषास्ताः साधकं मानयन्ति हि।।३६।।
चतुरस्रं मातृकोणैर्मण्डितं सिद्धिहेतवे । मुक्तामाणिक्यघटितसमुज्ज्वल[2]विराजितम्।। ३७।।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कल्पद्रुमफलप्रदम्। षोडशारं चन्द्रबिम्बरूपं तु स्वकलालयम्।। ३८।।
सर्वाशापूरकं देवि क्षरत्पीयूषवर्षवत् । अष्टपत्रं महेशानि जपाकुसुमसन्निभम् ।। ३९।।
सर्वसङ्क्षोभणं नाम सर्वकामप्रपूरकम्। एतत्त्रयं वरारोहे सृष्टिचक्रं वसुप्रदम् ।। ४०।।
पूर्वाम्नायादिदेव्या तु मण्डितं सर्वसिद्धिदम्। चतुर्दशारं देवेशि दाडिमीकुसुमप्रभम्।। ४१।।
अनन्तफलदं भद्रे सर्वसौभाग्यदं सदा। दशारं तप्तहेमाभं सिन्दूरसदृशं प्रिये।। ४२।।
सर्वार्थसाधकं चक्रं मनश्चिन्तितदं सदा। द्वितीयमपि पङ्क्त्यस्रं जपाकुसुमसन्निभम्।। ४३।।
सर्वरक्षाकरं चक्रं महाज्ञानमयं शिवे। एतत्त्रयं महेशानि स्थितिचक्रं सुखप्रदम्।। ४४।।
दक्षिणाम्नायपूज्यं[3] तु यथेप्सितफलप्रदम्। अष्टकोणं वरारोहे बालार्ककिरणारुणम्।। ४५।।
पद्मरागामलप्रख्यं सर्वरोगहरं सदा । उद्यत्सूर्यसहस्राभं बन्धूककुसुमप्रभम् ।। ४६।।
सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं स्वकलालयमीश्वरि। त्रिकोणं सर्वसम्भूतिकारणं भूतिदं सदा।। ४७।।
बिन्दुचक्रं वरारोहे सर्वानन्दमयं प्रिये[4]। सदाशिवमयं चक्रनायकं परमेश्वरि ।। ४८।।
एतच्चक्रं तु संहाररूपं ब्रह्ममयं सदा। पश्चिमाम्नायसंसेव्यं त्रयमुत्तरसेवितम्[5]।। ४९।।
अस्मिंश्चक्रे षडध्वानो वर्तन्ते वीरवन्दिते। चक्रपत्रेषु[6] देवेशि पदाध्वा तु निगद्यते।। ५०।।
पत्रसन्धिविभेदे[7] तु भुवनाध्वा व्यवस्थितः। वर्णाध्वा मातृकारूपी कथयामि तवानघे।। ५१।।
वर्गाष्टकं मातृकाया दिक्षु सिद्धीर्यतः प्रिये। पार्थिवं तन्मयं विद्धि षोडशारं कलात्मकम्।। ५२।।
अष्टपत्रं कादिवर्गैः क्षान्तैः[8] दिक्षु विदिक्षु च। कादिढान्ताः शक्रवर्णाः शक्रकोणेषु संस्थिताः।। ५३।।
णकारादिभकारान्ता दशवर्णा दशारके। मकारादिक्षकारान्ता द्वितीये तु दशारके।। ५४।।
वर्गाष्टकं चाष्टकोणे त्रिकोणे कथयामि ते। अकथादित्रिकोणान्तं[9] हक्षयुग्मं तु मध्यमम्।। ५५।।
वर्णाध्वा कथितो देवि मातृकापीठरूपकः। षट्त्रिंशत्तत्त्वभंरितं[10] चक्रमूलानुरूपतः।। ५६।।
पञ्चसिंहासनोन्नद्ध[11]कलाध्वा चक्रपालनात्। सा बाला भैरवीयुक्ता महात्रिपुरभैरवी।। ५७।।
त्रिपुराद्यम्बिकाद्यान्ता[12] चक्रं व्याप्य विजृम्भते। मन्त्राध्वा च समाख्यातो निश्चयेन सदा प्रिये।।५८।।
एवं षडध्वविमलं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत्। इति।

सुभगोदये —

षण्णवत्यङ्गुलायामं चतुरस्त्रं महीतलम्। तच्चतुर्धा विभज्यादौ चतुर्विंशाङ्गुलं क्रमात्।। १।।

---

१. 'कलाः' ग. पाठः। २. 'समस्थल' ग. पाठः। ३. 'पूर्वं' क.ग. पाठः। ४. 'परम्' ग. पाठः। ५. 'पूजितम्' ग. पाठः। ६. 'चक्रत्रयेषु' ग. पाठः। ७. 'यन्त्रसंधिविभागे' ग. पाठः। ८. 'क्षान्तैः' ग. पाठः। ९. 'त्रिरेखां तु' ग. पाठः। १०. 'रचितं' ग. पाठः। ११. 'द्धः' ग. पाठः। १२. 'कान्ते च' ग. पाठः।

गुहाननरसाङ्गाग्निवेदाग्नित्रिशरर्तुषु । तासां सम्मार्जयेत् भागानग्रयोरुभयोरिमान् ॥ २॥
सूर्ये गुणं निशानाथे वेदं सोमसुते कलाम्। जीवे पुराणं शुक्रे तु स्वरं राहौ शरं पुनः॥ ३॥
केतौ गुणं पञ्चशक्तिचतुर्वह्निक्रियान्तरे। रेखायुग्मं शनिं सूर्याद्धरावृत्ते नियोजयेत्॥ ४॥
केतूर्ध्ववृत्तं भूपुत्रं राहोरादित्यमानयेत्। चन्द्रात् केतुं कवेः सोमं बुधाद्राहुं गुरोः कुजम्॥ ५॥
केतोर्बुधं रवेः सौरिमेवं षट्चक्रसम्भवः। अष्टाष्टाङ्गुलमानेन बहिश्चक्रत्रयं लिखेत्॥ ६॥
वसुपत्रं कलापत्रं मेदिनीसदनत्रयम्। तत्र क्रमान्मध्ययोनिस्तिर्यग्रेखाः समन्ततः॥ ७॥
सार्धं च द्विगुणं चेति कुर्याद् वारत्रयं बुधः। सम्प्रदायविशेषेण क्षमा विश्वकलाश्रये॥ ८॥
मध्ये गुणत्रयमयं विलिखेद्वर्तुलत्रयम्। चक्रराजमिदं प्रोक्तं मध्ये बिन्दुविभूषितम्॥ ९॥
महासौभाग्यजननं भोगमोक्षफलप्रदम्[१]। सिन्दूररजसा भूमौ लिखित्वा चक्रमर्चयेत्॥ १०॥
अथवा हेमरूप्यादिपट्टे पीठोपरि स्थितम्। इति।

अयमुद्धारः स्थितिक्रमः, दक्षिणामूर्तिज्ञानार्णवयोः सृष्टिक्रम उद्धारः प्रदर्शितः। संहारक्रमेणोद्धारस्तु श्रीतन्त्रराजे —

भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्यं सुसमे चतुरस्रके। प्रमृज्य तिर्यङ्मध्यस्थं सूत्रं तिर्यङ् निपातयेत्॥ १॥
सूत्राणि नव तेषु द्वे वृत्तस्पृष्टोभयान्तके। विधाय तद्द्वयोरन्तान्मध्यसूत्रान्ततः क्रमात्॥ २॥
कृते सूत्रचतुष्के तु षट्कोणं स्यात् त्रिसप्तगम्[२]। द्व्यष्टाग्रतः समारम्भान्नवम[३]प्रथमान्तरा॥३॥
कुर्यात् सूत्रचतुष्कं तु चतुर्मर्मानुगुण्यतः । नवमप्रथमाग्राभ्यां तुर्यसप्तमकावधि॥ ४॥
कुर्यात् सूत्रचतुष्कं[४] तु मर्माष्टकविभेदनात्। ततश्चतुर्थषष्ठान्तद्वयारम्भात् तथाष्टगम्॥ ५॥
द्वितीयगं च सूत्राणां चतुष्कं पातयेत् तथा। चतुर्मर्मानुगुण्येन ततः पञ्चमकान्तयोः॥ ६॥
तृतीयगं सूत्रयुगं कुर्यान्मर्मद्वयाश्रयम्। मार्जयेन्मध्यगं ब्रह्मसूत्रं स्याच्चक्रमुत्तमम् ॥ ७॥
बहिरष्टच्छदाम्भोजं तथा तद्द्विगुणच्छदम्। विधाय षड्भिर्वृत्तैश्च चतुरस्रं[५] तथाष्टभिः॥ ८॥
सूत्रैर्विधाय तस्यैव प्राक्प्रत्यग्द्वारसंयुतम्। दक्षिणोत्तरतो रेखात्रयात् स्थानद्वयं[६] तथा॥ ९॥
कोणेषु तिर्यक्सूत्रैश्च चतुर्भिस्तान्यनुक्रमात्। द्विधा कुर्याच्च चत्वारि पदानि परमेश्वरि॥ १०॥
ललिताचार्चक्रमिदं लभ्यं सद्गुरुतः क्रमात्। इति। आचार्यैरप्युक्तम् —

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रत्रिवलयत्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण[७]कोणाः परिणताः॥ १॥

इति। चतुर्भिश्चतुःसंख्यासंख्येयैः श्रीकण्ठैः, शृणाति श्रीर्विषं कण्ठे यस्य सः श्रीकण्ठो हरस्ते कोणा अपि श्रीकण्ठास्तदात्मनः श्रीकण्ठात्मकैरित्यर्थः। शिवयुवतिभिः शक्तिभिः शक्त्यात्मकैरित्यर्थः। पञ्चभिः पञ्चसंख्यासंख्येयैः। अपिशब्दो भेदे। प्रभिन्नाभिः प्रकर्षेण भिन्नाभिः। प्रकर्षस्तु शिवशक्तिचक्रमध्ये बैन्दवमानस्य विद्यमानत्वात्, एतच्च समयिमतेन

१. 'लं लभेत्' क. पाठः। २. 'कम्' ख. पाठः। ३. 'मं' ख. पाठः। ४. 'ष्के' ख. पाठः। ५. 'स्रे' ख. पाठः।
६. 'यात्' ख. पाठः। ७. 'भवन' ग. पाठः।

सृष्टिक्रमेण पञ्चचक्रलेखने ज्ञेयम्। कौलमतेन संहारक्रमेण नवयोनिचक्रलेखने ऊर्ध्वाधोमुखतयावस्थितेः प्रभिन्नत्वं ज्ञेयं, तेनोभयं पृथक् पृथक् स्थितम्। शम्भोरिति पञ्चमी। शम्भुशब्देन चत्वारः श्रीकण्ठा उच्यन्ते। नवभिर्नवसंख्यैः। अपिशब्दो वक्ष्यमाणबाहुल्यं समुच्चिनोति। मूलप्रकृतिभिः प्रपञ्चस्य मूलकारणैरत एव तेषां योनिशब्दव्यवहारः। नवयोनयो नवधात्वात्मकाः। तथा चोक्तं कामिकायाम्– "त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिधातवः शक्तिमूलकाः,। मज्जाशुक्रप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः।। नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः"।। जीवधातूनामजीवाधिष्ठानत्वादोजोधातुरेव जीवधातुरित्युच्यते। यथोक्तं वाग्भट्टेन– "रज आदिशुक्रान्तानां धातूनां प्रसादश्रेष्ठो जीवाधारभूतो धातुरोजः इति (दशमो) धातुरेकैव परा शक्तिस्तदीश्वरी"। दशमी योनिर्बैन्दवस्थानं, तदीश्वरी तस्य देहस्येत्यर्थः।

एवं पिण्डाण्डमुत्पन्नं तद्ब्रह्माण्डं समुद्बभौ। पञ्च तानि च शाक्तानि मायादीनि शिवस्य तु।। १।।
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ। पञ्चविंशतितत्त्वानि तत्रैवान्तर्भवन्ति ते ।। २।।

एकादशेन्द्रियाणि शब्दादितन्मात्रास्तच्छब्देन परमृश्यन्ते। "शिवशक्त्यात्मकं विद्धि जगदेतच्चराचरम्।" चरं पिण्डाण्डमचरं ब्रह्माण्डमित्यर्थः। हे भगवति चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शम्भोः सकाशात् प्रभिन्नाभिः पञ्चभिः शिवयुवतिभिर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः सार्धं परिणताः सन्तश्चतुश्चत्वारिंशदिति। अत्रेदमनुसन्धेयम्– अत्र चक्रे अष्टाविंशतिर्मर्मस्थानानि सन्धयस्तु चतुर्विंशतिः। ननु मर्माणि चतुर्विंतिरेव कथमष्टाविंशतिः।

द्विरेखासङ्गमस्थानं सन्धिरित्यभिधीयते। त्रिरेखासङ्गमस्थानं मर्म मर्मविदो विदुः।। १।।

इत्यष्टदलषोडशारमेखलात्रयभूपुरत्रयाणां शिवचक्राणां त्रिरेखासङ्गमस्थानत्वाभावेऽपि वाचनिकी मर्मसंज्ञा,। यथोक्तं चन्द्रज्ञानविद्यायाम् –

मन्वस्रद्विदशांराष्टकोणवृत्तचतुष्टयम्। अष्टाविंशतिमर्माणि चतुर्विंशतिसन्धयः।। १।। इति।

रुद्रयामले–

पृश्नयो नाम मुन्याद्याः सर्वे चक्रसमाश्रयाः। सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्वसेविताम्।। १।।
अंग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्। अग्नवन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम्।। २।।
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्। त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणं च मिश्रकम्।। ३।।
चतुर्दशारं वह्नेस्तु चतुरस्रं च भानुमत्। एतत्प्रसादादिन्द्राद्या वसवोऽष्टौ मरुद्गणाः।। ४।।
ये ये समृद्धा लोकेस्मिंस्त्रिपुराचक्रसेवकाः। पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।। ५।।
महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते तया शिवः। इति।

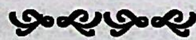
भैरवयामले चन्द्रज्ञानविद्यायां गौरीं प्रति महेश्वरेणोक्तम् –

साधु साधु महाभागे पृष्टं त्रैलोक्यसुन्दरि। गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं न कुत्रापि प्रकाशितम्।। १।।
कलाविद्या पराशक्तिः श्रीचक्राकाररूपिणी। तन्मध्ये बैन्दवस्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी।। २।।
सदाशिवेन सम्पृक्ता सर्वसत्त्वातिगा सती। चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि ।। ३।।
पञ्चभूतात्मकं चैव तन्मात्रात्मकमेव च। इन्द्रियात्मकमेवं च मनस्तत्त्वात्मकं तथा।। ४।।
मायादितत्त्वरूपं च तत्त्वातीतं च बैन्दवम्। बैन्दवे जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी ।। ५।।

सदाशिवेन सम्पृक्ता तत्त्वातीता महेश्वरी। ज्योतीरूपा वराकारा यस्य देहोद्भवा: शिवे।। ६।।
किरणाश्च सहस्रं च द्विसहस्रं च लक्षणम्। कोटिरर्बुदमेतेषां परा संख्या न विद्यते।। ७।।
तमेवानुप्रविश्येव भाति लोकं चराचरम्। यस्या देव्या महेशानि भासा सर्वं विभासते।। ८।।
यद्भावरहितं किञ्चिन्न च यच्च प्रकाश्यते। तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिद्रूपायाश्चितिं विना।। ९।।
आन्ध्यमापद्यते नूनं जगदेतच्चाराचरम् । तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरि।। १०।।
मध्ये षष्ट्युत्तरं ते मे त्रिशतं किरणा: शिवे। ब्रह्माण्डं व्यश्नुवानास्ते सोमसूर्यानलात्मना।। ११।।
अग्नेरष्टोत्तरशतं षोडशोत्तरकं रवे:। षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य किरणा: शिवे।। १२।।
ब्रह्माण्डं भासयन्तस्ते पिण्डाण्डमपि शाङ्करि। दिवा सूर्यस्तथा रात्रौ सोमो वह्निश्च सन्ध्ययो:।।१३।।
प्रकाशयन्त: कालं ते तस्मात् कालात्मकास्त्रय:। षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं दिनान्येव तु हायन:।।१४।।
हायनात्मा महादेव: प्रजापतिरिति श्रुत:। प्रजापतिर्लोककर्ता मरीचिप्रमुखान् मुनीन्।। १५।।
सृजत्येतांल्लोकपालांस्ते सर्वे लोकरक्षका:। संहारश्च हरायत्त उत्पत्तिर्भवनिर्मिता।। १६।।
रक्षा तु मृडसंलग्ना सृष्टिस्थितिलये शिव:। नियुक्त: परमेशान्या जगदेवं प्रवर्तते।। १७।।

इति। तमेवानुप्रविश्येत्यादिना ''तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं बिभाती'' ति श्रुत्यर्थ उक्त:।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रेऽष्टम: श्वास:।। ८।।



अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

नवमः श्वासः



अत्र "मेरुप्रस्तारकं यन्त्रं नित्यातादात्म्यकं स्मृतम्" इत्यत्र मेरुयन्त्रे सृष्टिक्रमेण पूजने तु प्रमाणमुक्तम्। तत्रायमर्थः— मध्याद्यणिमाद्यन्तपूजा सृष्टिपूजा, तत्र मध्यादि षोडशनित्यादीत्यर्थः। अत एव सृष्टिचक्रं षोडशनित्यातादात्म्यम्, तथा संहारचक्रं मातृकातादात्म्यं, स्थितिचक्रं वशिन्यादितादात्म्यमिति भावः। एवं श्रीचक्रराजमुद्धृत्य समष्टिविद्यया पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। अथवा लोहरत्नादिनिर्मितं वा श्रीपर्ण्यादिसम्भवे पीठे पुरतः संस्थाप्य पुष्पं दद्यात्। समष्टिविद्या तु-प्रणवतारत्रयपूर्वकं मूलमन्त्रमुच्चार्य समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुलकौलनिगर्भरहस्यातिरहस्यपरापररहस्ययोगिनी-युतश्रीचक्रपादुकां पूजयामि नमः, इति। प्रोक्तश्रीचक्रोद्धारस्तु उभयमतसाधारणः, परं तु कादिमते चतुरस्रे पूर्वपश्चिमद्वारद्वयमुक्तमिति विशेषः। लोपामुद्रोपासकानां विशेषः भैरवयामले—

लोपामुद्रोपासकैस्तु प्रोक्तश्रीचक्रमध्यतः। बिन्दुमध्ये प्रेतबीजं विलिखेत् परमेश्वरि ॥ १ ॥
तद्बाह्यस्थत्रिकोणेषु पूर्वदक्षिणसौम्यके। द्वारत्रयं प्रकर्तव्यं यथा द्वाराणि भूपुरे ॥ २ ॥
मन्वस्रबाह्यतश्चाष्टदलाग्रेषु महेश्वरि। ग्रन्थयस्तु प्रकर्तव्यास्त्रिशूलाष्टकमेव च ॥ ३ ॥
ग्रन्थयः प्रणवाभ्यां च सम्पुटत्वेन योजिताः। पूर्वादिग्रन्थिषु तथा पूजयेदष्ट भैरवान् ॥ ४ ॥
तदग्रेषु दश प्रोक्तान् बटुकान् पूजयेत् क्रमात्। त्रिशूलेषु महादेवि पूजयेदष्ट भैरवीः ॥ ५ ॥
वृत्तत्रये तु देवेशि भूर्भूवःस्वर्निवासिकाः। योगिनीः पूजयेत् तासां मन्त्रास्तु परमेश्वरि ॥ ६ ॥
पातालवासिनीभ्यस्तु योगिनीभ्यो नमो नमः। भूर्लोकवासिनीभ्यस्तु योगिनीभ्यो नमो नमः॥७॥
भुवर्लोकनिवासाभ्यो योगिनीभ्यो नमो नमः। (स्वर्लोकवासिनीभ्यस्तु योगिनीभ्यो नमो नमः)॥८॥

इति वृत्तत्रये पूज्यमिति विशेषः। अत्र सृष्टिस्थितिसंहारभेदेन प्रस्तारभेदेन च श्रीचक्रभेदा बहवः सन्ति, ते भेदा अग्रे वक्ष्यन्ते—इति तु सङ्क्षेपः। अत्र पात्रासादनपद्धतिर्लिख्यते— तत्र ध्यानमानसपूजान्ते स्वर्णादि पट्टे कुङ्कुमादिना पूजायन्त्रं विलिख्य स्वपुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्य पात्रासादनं कुर्यात्। अत्र पूजायां पात्राण्यतीव प्रशस्तानि। तदुक्तं रुद्रयामले—

विना पात्रेण यः कुर्यात् प्रतिष्ठां याज्ञिकी[२] क्रिया। विफला जायते सर्वा वाहनादिधनापहा॥ १ ॥
बलिहीने तु दुर्भिक्षं गन्धहीने त्वभाग्यता। धूपहीने तथोद्वेगं वस्त्रहीने धनक्षयम् ॥ २ ॥
छत्रहीने हरेच्छत्रं वितानेन वको भवेत्। वितानं विमानं, तेन हीने।

---

१. 'वान्' क. पाठः। २. 'कां' ग. पाठः।

वेदिहीने तु नाशः स्यान्नगरस्य पुरस्य च। कलशैर्बन्धुनाशश्च भवेद्वै गिरिकन्यके ।। ३।।

कलशैर्हीने इत्यनुषज्यते।

तोरणानामभावे तु हन्याज्ज्ञातीन् सबान्धवान्। दक्षिणारहिते सर्वं व्यर्थं स्यान्नात्र संशयः।।४।।
मन्त्रविद्याविहीने तु संपूर्णमपि नश्यति । पात्रमन्त्रसमायुक्तं सर्वदोषापहं भवेत्।। ५।।

इति। अन्यत्रापि —

एकपात्रं न कर्तव्यं यदि साक्षान्महेश्वरः। मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदश्च पदे पदे।। १।।
इह लोके दरिद्रः स्यात् परत्र नरकं व्रजेत्। आधारेण बिना भ्रंशो न च तृप्यन्ति देवताः।।२।।

इति तन्त्रान्तरवचनाच्चात्र तावत्पात्रतदाधारतत्प्रमाणतच्छोधनादिविचारः प्रदर्श्यते। तानि पात्राणि तन्त्रराजे— "त्रिलोहकाचमृत्पात्रे त्वेकस्मिन्नर्घ्यकल्पनम्" इति त्रिलोहः स्वर्णरजतताम्राणि। भैरवीतन्त्रे —

पात्रं काञ्चनकाचरूप्यजनितं मुक्ताकपालोद्भवं विश्वामित्रभवं च कामफलदं हैमं श्रिये स्फाटिकम्।
तारं प्रीतिदमिष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं कापालं स्फुटमत्रं सिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम्।। १।।

इति। कुलार्णवे—

हेमरौप्यशिलाताम्रकपालालाबुमृन्मयम्। नारिकेलं च शङ्खं च मुक्ताशुक्तिसमुद्भवम्।। १।।
पुण्यवृक्षकृतं रम्यं पात्रं संलोलितं शुभम्।

इति। भैरवयामले —

तारपात्रं वरारोहे विज्ञेयं चोत्तमोत्तमम्। नारिकेलोद्भवं देवि ज्ञेयं चोत्तममध्यमम्।। १।।
काचपात्रं तु सुश्रोणि ज्ञेयं चोत्तमकन्यसम्। मध्यमोत्तमकं हैमं तारं मध्यममध्यमम्।। २।।
ताम्रपात्रादिकं चैव प्रोक्तं मध्यमकन्यसम्। कन्यसोत्तमकं बैल्वं ब्रह्मवृक्षजमेव च।। ३।।
कन्यसमध्यमं प्रोक्तं मृन्मयं कन्यसाधमम्।

इति। महाहारकतन्त्रे —

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नारिकेलविधिं शुभम्। पुरा वै निर्मितं पात्रं विश्वामित्रेण धीमता।। १।।
विश्वामित्रकपालं[१] तु सर्वपात्रोत्तमोत्तमम्। तस्मिन् सम्पूजयेच्चैव सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।।२।।
तस्य दर्शनमात्रेण चैकविंशतिकं कुलम्। उद्धरिष्यत्यसंदेहो गृहस्थो भवति प्रिये।। ३।।
ब्रह्महत्यादिपापानि तथा विश्वासघातकम्। दृष्ट्वा पात्रं नारिकेलं सर्वपापं प्रणश्यति ।। ४।।
कन्याकोटिप्रदानानि तथा हेमशतानि च। यो ददाति महेशानि राहुग्रस्ते दिवाकरे।। ५।।
तत्फलं कोटिगुणितं नारिकेलार्घ्यदानतः। अलाभे तस्य पात्रस्य चान्यपात्रैस्तु पूजयेत्।। ६।।
दृष्ट्वार्घ्यपात्रं देवेशि ब्रह्माद्या देवतागणाः। नृत्यन्ति सर्वयोगिन्यः प्रीताः सिद्धिं ददन्ति च।।७।।

इति। देवीपुराणे —

हेमराजतपात्राणि काष्ठमृच्छैलजानि च। रत्नादीनि च पात्राणि शुभरेखाङ्कितानि च।। १।।
अर्घ्यनैवेद्यपूजार्थं बलिदाने न कल्पयेत्।

१. 'मन्त्र' ग. पाठः। २. 'पात्रं' क. ख. पाठः।

इति। शिवरहस्ये —

हेमपात्रेण[1] सर्वाणि ईहितानि भवन्त्युमे। अर्घ्यं दत्वा तु रौप्येण आयू राज्यं सुतांल्लभेत्।। १।।
ताम्रपात्रेण सौभाग्यं धर्मं मृण्मयसम्भवे। सर्वालाभे तु माहेयं स्वहस्तघटितं यदि ।। २।।
आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्न तु। सर्वत्र स्वर्णवत् ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम्।। ३।।
पात्राधारास्तथा कार्याः पात्राणीवोत्तमानि च। बलिहोमक्रियार्थं हि विना पात्रं न सिद्ध्यति।। ४।।
षट्त्रिंशदङ्गुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्तितम्। मध्यमं तु त्रिभागोनं कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलम्।। ५।।
वस्वङ्गुलविहीनं तु न पात्रं कारयेत् क्वचित्। नाभिविवररूपाणि पुण्डरीकाकृतीनि च।। ६।।
शङ्खनीलोत्पलाभानि पात्राणि परिकल्पयेत्। तत्तद्भूतसमानाभमण्डलाभानि कल्पयेत्।। ७।।
तदुक्तानि फलान्यत्र कारयेत् परमेश्वरि। यादृशं पात्ररूपं स्यादाधारं तादृगानयेत्।। ८।।

इति। देवीयामले—

वश्याकर्षणकर्माणि हेमपात्रे सुरेश्वरि। शान्तिके पौष्टिके चैव राजतं कारयेत् प्रिये।। १।।
लोहपात्रे समुन्नेये मारणोच्चाटने तथा। स्तम्भकार्येषु सर्वेषु विशेषेण तु मृन्मयम्।। २।।
मन्त्राणौषधिचूर्णैश्च घटितं पात्रमुत्तमम्। तत्पात्रेण वरारोहे देवतां यस्तु तर्पयेत्।। ३।।
षण्मासाभ्यन्तरे तस्य मन्त्रसिद्धिः प्रजायते। तथा मन्त्रार्णनक्षत्रवृक्षोत्थं पात्रमुत्तमम्।। ४।।
तेनोत्तमेन पात्रेण तर्पयेत् परदेवताम्। तथैव मन्त्रसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा।। ५।।
एतत्पात्रद्वयं देवि न वक्तव्यं कदाचन। मन्त्रर्क्षयोनिसम्भूतपात्रं चैवोत्तमोत्तमम्।। ६।।
परसिद्ध्याह्वानकरं तत्पात्रेण च तर्पणम्। पराभिचारशमनं स्वमन्त्राणां च सिद्धिदम्।। ७।।
अक्षरौषधिनक्षत्रयोन्युत्थानि महेश्वरि। पात्राणि श्रीगुरुमुखाज्ज्ञात्वार्चनविधौ क्षिपेत्।। ८।।
सर्वकार्येषु कर्तव्यं वैश्वामित्रं च सुव्रते। काष्ठपात्रं विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि।। ९।।

इति। कुलार्णवे—

आदौ कुम्भं तथा शङ्खं श्रीपात्रं शक्तिपात्रकम्। गुरुपात्रं भोगपात्रं बलिपात्रमनुक्रमात् ।। १।।
स्ववामाग्रात् तथा स्थाप्यमित्येतत् पात्रपञ्चकम्। अङ्गं[2] वीरं तथा गुह्यं योगिनीपात्रमेव च।।२।।
आत्मनो गणनाथस्य बटुकक्षेत्रपालयोः। प्रोक्षणीसहितानि स्युर्नव पात्राणि सुव्रते ।। ३।।
स्थापयेत् पृष्ठतो देव्या दूतीपात्रचतुष्टयम्। पात्राण्यष्टादशैतानि देव्याः प्रीतिकराणि च।। ४।।
सामान्यार्घ्यविशेषार्घ्यावात्मश्रीचक्रमध्यतः । आद्यपङ्क्तेरधः स्थाप्यौ विधिवत् परमेश्वरि।। ५।।

इति। सामान्यार्घ्यलक्षणं भविष्यपुराणे—

रक्तबिल्वाक्षतैर्पुष्पैर्दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः। सामान्यः सर्वदेवानामर्घ्योऽयं परिकीर्तितः।। १।।

रक्तमत्र कुङ्कुमम्।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः शङ्खं सामान्यकं भवेत्। अन्येषां देवि[3] देवानां सामान्यं चान्यदीश्वरि।।२।।

---

१. 'पात्राणि' क. ख. पाठः। २. 'लयाङ्गपात्रमित्यर्थः'। ३. 'अन्यासामपि' ग. पाठः।

अर्घ्यादिपञ्चपात्राणि तदधः स्थापयेद् बुधः। अर्घ्यपात्रं तु वायव्ये नैर्ऋत्यां पाद्यपात्रकम्॥ ३॥
आग्नेय्यां स्नानकलशमीशे त्वाचमनीयकम्। मध्ये तु मधुपर्कः स्यादित्येत्पात्रलक्षणम्॥ ४॥
आपः क्षीरं कुशाग्राणि अक्षता दधि तण्डुलाः। सहा सिद्धार्थका दूर्वा कुङ्कुमं रोचना निशा॥५॥
अर्घ्योऽयं देवदेव्यास्तु द्वादशाङ्ग उदाहृतः। सिद्धार्थः कुङ्कुमं दूर्वा लोष्टं लामज्जकं शशी॥६॥
अमूनि चात्र द्रव्याणि पाद्यस्य प्रवदन्ति षट्। इति।

सारसङ्ग्रहे— "पाद्यं श्यामकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताद्भिरुत्तमम्।" इति। तथा —

फलकच्चोरकर्पूरकुष्ठैलोशीरकाणि च। अमून्याचमनीयस्य द्रव्याणि प्रवदन्ति षट् ॥ १॥
मधुपर्के घृतं क्षौद्रं दधि प्रोक्तं मनीषिभिः। दध्यभावे पयः कार्यं मध्वभावे तथा गुडः॥ २॥
घृते प्रतिनिधिर्नास्ति जलं तत्र समाचरेत्। अष्टगन्धं समालोड्य स्नानाम्भः साधु साधयेत्॥३॥
पयोदधिघृतानां च शर्कराक्षौद्रयोस्तथा। पृथक् पात्राणि पञ्च स्युरेकं पञ्चामृतस्य च॥ ४॥
षट् पात्राणि विशिष्टानि पुनराचमनीयकम्। सप्तमं कोष्ठ्यतोयस्य चाष्टमं नवमं तथा॥ ५॥
उद्वर्तनस्य देवेशि दशमं शुद्धपाथसः। एतानि दश पात्राणि सौरे शैवे च वैष्णवे॥ ६॥
गाणपत्ये च मुख्यानि उपपात्राणि शाक्तके। अर्घ्यादिपञ्चपात्राणि त्रिधा संस्थापयेद् बुधः॥ ७॥
पुनराचमनीयस्य पात्रद्वयमुदाहृतम्। पञ्चायतनपूजायां पञ्चधार्घ्यादिपञ्चकम् ॥ ८॥
विशेषावरणं देवि विशेषार्घ्येण तर्पयेत्। सामान्यावरणं देवि सामान्यार्घ्येण सुन्दरि ॥ ९॥
श्रीपात्रस्थामृतेनैव देवीनां पूजनं भवेत्। शक्तीनां शक्तिपात्रेण गुरूणां गुरुपात्रतः ॥ १०॥
योगिनीनां चतुःषष्टिं नवावरणयोगिनीः। योगिनीपात्रतोयेन तर्पयेत् कुलनायिके ॥ ११॥
अन्यानि भोग्यवस्तूनि भोगपात्रेण साधयेत्। भैरवस्य च पात्रेण भैरवांस्तर्पयेद् बुधः॥ १२॥
वटुकस्य च पात्रेण वटुकांस्तर्पयेत् ततः। बलिपात्रेण देवेशि बल्युत्सर्जनमाचरेत् ॥ १३॥
वाराहीकुरुकुल्लादिबलिदेवीश्च तर्पयेत्। अत्रादिपदेन नवदुर्गाबलिः।
पञ्चभूतबलिं चैव सर्वभूतबलिं तथा। राजराजेश्वरस्यापि बलिं तेनैव कारयेत् ॥ १४॥
वीराणां वीरपात्रेण तर्पणं समुदाहृतम्। गुह्यपात्रामृतेनैव तर्पयेद् गुह्ययोगिनीः ॥ १५॥
भोगाङ्गं भोगपात्रेण लयाङ्गं चाङ्गपात्रतः। ऊर्ध्वाम्नायक्रमं चैव श्रीविद्यावृन्दपूजनम् ॥ १६॥
विशेषार्घ्येण देवेशि तर्पयेद् भक्तिभावतः। अन्तर्यागं चात्मपूजां चान्तर्हवनमेव च ॥ १७॥
आत्मपात्रस्थतोयेन कुर्याद् देशिकसत्तमः। दूतीयागे प्रयोक्तव्यं दूतीपात्रचतुष्टयम् ॥ १८॥
कुलसद्भावभावाय शक्तिपात्राणि सुन्दरि। पञ्च वा षट् च सप्ताष्टौ नव वा स्थापयेद् बुधः॥ १९॥
खण्डितं स्फुटितं दग्धं मानहीनमसुन्दरम्। अपवित्रं करोद्भ्रष्टं पशुस्पृष्टं विवर्जयेत्॥ २०॥
सदा शुद्धाम्लतोयेन प्रक्षाल्य स्थापयेद् बुधः। न कुर्यात् पात्रसाङ्कर्यं द्रव्याणां च विशेषतः॥२१॥
ऊर्ध्वाम्नायगुरून् देवि विशेषार्घ्येण तर्पयेत्। रश्मिचक्रं च देवेशि नान्यपात्रेण तर्पयेत्॥ २२॥

अन्यस्य गुरुवर्गस्य गुरुपात्रेण तर्पणम्। पात्रं यत्र भवेत् तत्र प्रोक्षण्यद्भिः समाचरेत्।। २३।।
समष्टिव्यष्टियजनं शङ्खतोयेन वै भवेत्। क्षेत्राधिपस्य पात्रेण क्षेत्रपालबलिर्भवेत् ।। २४।।
गणनाथस्य पात्रेण गणेशस्य बलिर्भवेत्। मध्यदेव्या बलिं देवि श्रीपात्रेण विसर्जयेत्।। २५।।
श्रीविद्याया महेशानि पूजायां च विशेषतः। बल्याधाराणि पात्राणि शृणु वक्ष्ये समासतः।।२६।।
श्रीगुरोर्बलिपात्रं च वाराह्या बलिपात्रकम्। त्रीणि वै कुरुकुल्लाया बटुकादेश्चतुष्टयम्।। २७।।
पञ्च वै पञ्चभूतानामेकं भूतबलेस्ततः। राजराजेश्वरस्यैकमेकं देव्यास्ततः परम् ।। २८।।
एकं तु नव[1]दुर्गाया धूपदीपात्रसंयुतम्। इत्यष्टादश पात्राणि सर्वविघ्नहराणि च ।। २९।।
पात्रपञ्चकमाख्यातं सिद्धद्रव्यस्य शोधने। पूजाद्रव्यस्य रचनद्रव्यार्थं चैकपात्रकम् ।। ३०।।

''कस्तूरिकागरुसुधाकरकुण्डगोलोत्थजाङ्गलगुडैः सपटीरपङ्कैर्युक्तैः स्वयम्भूकुसुमेने''ति योगिनीतन्त्रवचनात्।

अन्यानि भोग्यवस्तूनां गन्धादीनां विशेषतः। मनोहराणि पात्राणि स्थापयेत् पूजयेदपि।। ३१।।
मार्तण्डस्यार्घ्यदाने तु बृहदर्घ्यं महेश्वरि। एकं प्रस्थजलाग्राहि एकं तर्पणपात्रकम्।। ३२।।
द्वारादिपूजने शस्तमेकं सामान्यपात्रकम्। तदेव रविपूजायां सामान्यार्घ्यं भवेत्प्रिये।। ३३।।
पिधानोद्धरणीयुक्तं कलशानां चतुष्टयम्। दुकूलवस्त्रसंवीतं बृहदाधारसंयुतम् ।। ३४।।
शुद्धोदकामृतक्षीरसमयामृतपूरितम्। स्ववामाग्रात् ततः स्थाप्यं देव्या दक्षिणभागतः ।। ३५।।

इति। शुद्धोदककलशलक्षणं तु मत्स्यपुराणे—

.... दध्यक्षतसमन्वितम्। पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गदलान्वितम्।। १।।

पञ्च भङ्गदलानि —

चूताश्वत्थवटप्लक्षोदुम्बराणां च पल्लवाः। स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत्।। २।।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च। गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमह्रदगोकुलात् ।। ३।।
मृदमानीय राजेन्द्र सर्वौषधिसमन्विताम्। स्नानार्थं विन्यसेत् तत्र यजमानश्च धर्मवित्।। ४।।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च नदा ह्रदाः। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः।। ५।।

इति। रुद्रयामले —

श्रीकामस्तु न्यसेत् सम्यग्देशवृत्तिकरं शुभम्। काञ्चनं घृतगोधूमान् दूर्वारोचनया सह।। १।।
एतानि पञ्च द्रव्याणि सर्वेषु कलशेषु च। विशेषार्घ्यादिपात्रेषु श्रीपात्रेषु विशेषतः।। २।।
दद्याच्छ्रीकीर्तिसारोग्यपुत्रायुर्जयसिद्धये।

इति। देवीपुराणे —

अग्निर्ब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरगः। स्कन्दो भानुर्मातृगणा दिक्पालाश्च नवग्रहाः।। १।।
एषां घटेषु प्रत्येकं पूजयित्वा यथाविधि।

इति। गौतमीये —

---

१. 'वनदु' क. ख. पाठः।

हैमं रौप्यं तथा ताम्रं मार्तिक्यं वा स्वशक्तितः। षट्त्रिंशदङ्गुलं कुम्भं विस्तारोन्नतिशालिनम्॥ १॥
षोडशं द्वादशं वापि ततो न्यूनं न कारयेत्। अर्घ्यस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्यापि त्रयं भवेत्॥२॥
तथैवाचमनीयानि पात्राणि च विभागशः।

इति। भैरवीतन्त्रे —

यो वाष्टाङ्गार्घ्यमापूर्य देव्या मूर्ध्नि निवेदयेत्। दशवर्षसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ॥ १॥
आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिः सतण्डुलाः। तिलाः सिद्धार्थकाश्चैव अष्टाङ्गार्घ्यः प्रकीर्तितः॥२॥
दारवेणार्घ्यपात्रेण दत्त्वार्घ्यं विधिवन्नरः। देव्यै तदा महाराज अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३॥
ताम्रपात्रार्घ्यदानेन पुण्डरीकफलं लभेत्। रौप्यपात्रेण दत्त्वा वै विष्णुयागफलं लभेत् ॥ ४॥
अर्घ्यं दत्त्वा तु रौप्येण आयू राज्यं शुभं लभेत्। दत्त्वा सौवर्णपात्रेण लभेद्बहु सुवर्णकम्॥५॥
हेमपात्रेण सर्वाणि ईहितानि लभेन्मुने।

इति। भैरवयामले —

पात्रद्वयं तु निर्माल्यवासिन्याः शिवदिक्स्थितम्। पञ्चायतनपूजायां दश पात्राणि वै क्षिपेत्॥ १॥

इति। भैरवीतन्त्रे —

छागादिबलिदाने तु नव पात्राणि स्थापयेत्। बलिपात्राणि[१] पञ्च स्युः रुधिरस्यैकपात्रकम्॥ १॥
अपरं मांसखण्डानां मस्तकाधारमेव च। एकं पक्वस्य मांसस्य..............................॥२॥

इति। रुद्रयामले —

अर्घ्यादिपञ्चपात्राणि कुमारीपूजने पृथक्। स्थापनीयानि यत्नेन यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः॥ १॥

इति। वाराहीतन्त्रे —

दम्पतीयजने चैव सुवासिन्याः प्रपूजने। योगिनीनां समर्चायां पञ्चाशन्मिथुनार्चने॥ १॥
यजने कालनित्याया धातुदैवतपूजने। गुरुमण्डलपूजायां दिनेशानां तथैव च ॥ २॥
वारेशार्चननक्षत्रदेवतार्चनयोस्तथा। अक्षरौषधिपूजायां जपमालाप्रपूजने ॥ ३॥
पुस्तकस्य च पूजायामग्निपूजाविधौ तथा। अर्घ्यादिपञ्चपात्राणि सम्पाद्यानि पृथक् पृथक्॥ ४॥

इति। कुण्डप्रकाशे —

होमे तु दश पात्राणि आज्यस्थालीद्वयं तथा। चरुस्थालीद्वयं चैव प्रणीता प्रोक्षणी तथा॥ १॥
स्रुक्स्रुवौ पूर्णपात्रं च होमद्रव्यस्य चापरम्। मुख्यान्येतानि पात्राणि..........................॥२॥

इति। नारदीये —

देवाग्रतः स्ववामाग्रे त्रिकोणं चन्दनाम्भसा। वृत्तेन वेष्टितं बाह्ये चतुरस्रेण चैव हि॥ १॥
विरच्य मुद्रया मत्स्यरूपया साधको भुवि। इति।

सारसङ्ग्रहे—

---

१. 'नव पात्राणि' क. पाठः। 'बलिपात्रेण' ग. पाठः।

त्रिकोणं वृत्तसंवीतं चतुरस्रेण वेष्टितम्। गन्धलिप्ते स्ववामाग्रे विदध्यान्मत्स्यमुद्रया।। १।।
सम्पूज्य गन्धैर्देवार्घ्यमण्डलाय नमोऽणुना। अङ्गानि चतुरस्रस्य कोणेषु पुरतस्तथा।। २।।
दिक्षु चास्त्रं समभ्यर्च्य शङ्खाधारं प्रविन्यसेत्। मूलेन क्षालितं शङ्खाधारं संस्थापयामि च।। ३।।
कालं सबिन्दुकं तद्वद्भुजङ्गेशं समुद्धरेत्। वह्न्यन्ते मण्डलायेति तथा धर्मप्रदेति च।। ४।।
दशकलात्मने प्रोक्त्वा नमो गन्धादिभिर्यजेत्। वह्नेर्दश कलास्तत्र प्रादक्षिण्येन पूजयेत्।। ५।।

इति। कुलार्णवे —

आधारेण विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति मातरः। तस्माद् विधिवदाधारं कल्पयेत् कुलनायिके।। १।।
आधारं त्रिपदं प्राहुः षट्पदं वा चतुष्पदम्। अथवा वर्तुलाकारं कुर्याद् देवि मनोहरम्।। २।।

इत्येतानि सामान्यवचनानि, विशेषस्तु प्रागेवाभिहितः। रुद्रयामले —

धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी। सुश्रीः स्वरूपा[1] कपिला हव्यकव्यवहे तथा।। १।।
वह्नेश्चैताः कला ज्ञेया दश धर्मप्रदाः मताः।

इति। सारसङ्ग्रहे —

अस्त्रेण क्षालितं शङ्खं तत्र संस्थाप्य पूजयेत्। शङ्खमानं तु प्रादेशं चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम्।। १।।
अर्घ्यपात्रमिति प्रोक्त्वा स्थापयामीति मन्त्रतः। अहमर्थप्रदायेति वदेत द्वादशेत्यपि।। २।।
कलात्मने पदं प्रोक्त्वा अर्घ्यपात्राय हृन्मनुः। अनेन शङ्खमभ्यर्च्य कलाः सूर्यस्य पूजयेत्।।३।।

इति। यामले —

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः। सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा।।१।।
एता द्वादश सम्पूज्या रवेरर्थप्रदाः कलाः। इति।

सारसङ्ग्रहे —

ततः सुधामयैस्तोयैर्मूलान्ते मातृकां पठन्। विलोमां पूजयेत्तत्र[2] पूजकौ मनुनामुना।। १।।
अर्घ्यपात्रं पूरयामीत्युक्त्वा सम्पूरयेत् ततः।

इति। शारदातिलके —

.........................बिन्दुस्रुतसुधामयैः। तोयैः सुगन्धिपुष्पाढ्यैः पूजयेत्तं यथाविधि।। १।।

बिन्दुर्भ्रूमध्यं तत्र चन्द्रमण्डलस्य विद्यमानत्वात्। सारसङ्ग्रहे —

कर्णचन्द्रौ बिन्दुयुक्तौ कामप्रदपदं ततः। षोडशान्ते कलाशब्दमात्मने नम इत्यथ।। १।।
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य कलाषोडशकं यजेत्।

इति। कर्ण उकारः, चन्द्रः सकारो, बिन्दुरनुस्वारस्तेन उँसँ इति। यामले—

अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः। शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा।। १।।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरगाः कलाः। सोममण्डलमध्यस्थाः...........................।।२।।

---

१. 'सुरूपा' ग. पाठः। २. 'तस्मिन्' क. पाठः।

इति। सारसङ्ग्रहे —

प्राग्वत्तीर्थं समावाह्य मूलमन्त्रेण तत्र च। संयोज्य नेत्रमन्त्रेण पुष्पं न्यस्य शिखाणुना।। १ ।।
प्रदर्श्य गालिनीमुद्रां मुद्रया धेनुसंज्ञया। अमृतीकृत्य विधिवत् सुधाबीजेन साधकः ।। २ ।।
ध्यात्वेष्टदेवतां तत्र सकलीकृत्य देशिकः। अङ्गन्यासेन चास्त्रेण कलयेच्च दिशो दश ।। ३ ।।
नेत्रमन्त्रेण संवीक्ष्य मुद्रया शङ्खसंज्ञया। अवष्टभ्य (गुण्ठ्य) तदुद्दीप्य मुद्रया योनिरूपया।।४।।
गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम्। षडङ्गानि च सम्पूज्य मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः।। ५ ।।
अष्टकृत्वस्ततश्चार्घ्यं छादयेन्मत्स्यमुद्रया।

इति। नारदीये— ''वीक्षणं नेत्रमन्त्रेण न चेन्मूलेन मन्त्रवित्।'' इति मूलेनेति पञ्चाङ्गपरं तत्र नेत्रमन्त्राभावात्। अत्रापि सर्वत्र तत्तदङ्गमन्त्राणामेवोपादानं हृदयादिपदैरिति अङ्गरूपैः[१]। कवचेनावगुण्ठ्येति तत्तन्मुद्रयेति शेषः। सारसङ्ग्रहे— ''तच्छङ्खस्थं जलं किञ्चित् कुम्भतोये विनिक्षिपेत्'' इति। शारदातिलके—

अर्घ्यस्योत्तरतः कार्यं पाद्यं साचमनीयकम्। मधुपर्कं च संस्थाप्य त्रिकोणेषु यथाक्रमम्।। १ ।।
एकैकपात्रं[२] मन्त्रेण ह्यष्टकृत्वोऽभिमन्त्रयेत्।

इति। उत्तरतन्त्रे— ''तद्दद्यात् कांस्यपात्रेण रौक्मश्वेतभवेन वा।'' इति श्वेतं रूप्यम्। वाराहपुराणे—

परमं यत्परं धाम मधुसंज्ञं तदुच्यते। तदाप्यते यदा तेन मधुपर्कः सदा स्मृतः।। १ ।।

इति। शारदायाम् —

दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमाधायाद्भिः प्रपूरयेत्। किञ्चिदर्घ्याम्बु सङ्गृह्य प्रोक्षण्यम्भसि निक्षिपेत्।। १ ।।

इति। नारदपाञ्चरात्रे— ''पुनराचमनीयार्थे पात्रं संस्थापयेत्ततः।'' इति प्रपञ्चसारे—

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपाः। दूर्वा चेति क्रमादर्घ्यद्रव्याष्टकमुदीरितम्।। १ ।।

इति। अक्षतास्तण्डुलाः। नारदपाञ्चरात्रे विष्णोरर्घ्यमुक्तम् —

सिद्धार्थकास्तिला दूर्वाः सयवास्तिलतण्डुलाः। तोयक्षीरघृतोपेतमिदमर्घ्यमुदाहृतम्।।

इति। सिद्धार्थाः सर्षपाः। दूर्वाः पत्त्रत्रयान्विताः। ''पत्त्रत्रयान्विता दूर्वाः प्रशस्ता अर्घ्यकर्मणि।'' इति। सोमशम्भुवचनात्। प्रपञ्चसारे—

पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते। जातीलवङ्गकक्कोलैर्मतमाचमनीयकम्।।

जाती जातीफलम्। ''तथाचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातीफलं मुने।'' इत्यगस्त्यसंहितावचनात्। जातीफलादीनि चूर्णितानि देयानि। ''चूर्णयित्वा यथान्यायं दद्यादाचमनीयकम्।'' इति फेत्कारिणीतन्त्रवचनात्। लिङ्गपुराणे—

कुशाग्राण्यक्षताश्चैव यवव्रीहितिलानि च। आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं चार्घ्यपात्रके।। १ ।।
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम् । दापयेत् प्रोक्षणीपात्रे भसितं प्रणवेन च।। २ ।।
उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये चैव प्रकल्पयेत्। जातीकक्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकम्।। ३ ।।
चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयकम्। बहुमूलं दूर्वा।

---

१. 'त्यगस्त्यः' क. पाठः। २. 'त्रम' ग. पाठः।

सहस्रपरमा देवि शतमूला शताङ्कुरा। सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वप्ननाशिनी।। १।।

शतशब्दस्य बहुत्ववाचकत्वात्। प्रपञ्चसारे—"शुद्धाभिरद्भिर्विहितं पुनराचमनीयकम्।" इत्यत्र शुद्धाभिरित्युक्तेर्जात्यादि न देयमित्यवगम्यते। अर्घ्यादिद्रव्यालाभे तु शौनकः— "एषामभावे पुष्पादि तत्तद्भावनया क्षिपेत्।" इति। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे— "द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाः शुभाः।" इति। भसितं तु शिवपूजायामेव। आद्याचारे (आद्याभावे) तु अनुकल्पास्तत्प्रमाणवचनानि च तत्प्रयोगे प्रदर्श्यन्ते।।

अथ पात्रासादनप्रयोगः— तत्रादौ शुद्धोदककलशस्थापनमत्र कालीमते प्रथमतः शङ्खस्थापनं कृत्वा तदनन्तरं कलशस्थापनं विधेयम्। कुलार्णवे —

शङ्खस्य वामभागे तु कलशस्थापनं भवेत्। मण्डले स्थापयेत् कुम्भं सौवर्णं राजतं तथा।। १।।
ताम्रं भूमिमयं वापि यद्वा लोहजवर्जितम्।

इति। कादिमते तु "आदौ कुम्भं तथा शङ्ख "मित्यादिरीत्या विधेयम्, इदं तु दीक्षायां वैपरीत्यं बोध्यम्। अत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति। स्ववामभागे त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं विरच्य पाशुपतास्त्रेण तन्मण्डलं प्रोक्ष्य ओंह्रींआधारशक्तये नमः इति त्रिकोणे, ओंअखण्डमण्डलाय नमः इति षट्कोणे, ओं सूर्यमण्डलाय नम इति वृत्ते, ओंसर्वतोव्यापकमण्डलाय नम इति चतुरस्रे, इति। कोणेषु कामरूपपीठाय नम इति त्रिकोणे, पूर्णगिरिपीठाय नम इति षट्कोणे, ओं जालन्धरपीठाय नम इति वृत्ते, ओं उडियानपीठाय नम इति चतुरस्रे,— इति सम्पूज्य, षट्कोणे मूलविद्यायाः षडङ्गानि, त्रिकोणकोणेषु मूलविद्यायाः कूटत्रयं, मध्ये सम्पूर्णमूलविद्यां पुनर्व्यस्तसमस्तकूटैर्मण्डलचतुष्टयं सर्वमेव पूजयेत्। ततः पाशुपतास्त्रेण सुवर्णादिनिर्मितमाधारं प्रक्षाल्य मण्डलोपरि संस्थाप्य ओंऐंह्रींश्रींमं धर्मप्रददशकलात्मने वह्निमण्डलाय श्रीपरदेवतायाः कलशाधाराय नमः, इति तदुपरि सम्पूज्य, तत्र वह्नेर्दश कला वृत्ताकारेण पूजयेत्। ४ यं धूम्रार्चिषे नमः, ४ रं ऊष्मायै नमः, ४ लं ज्वलिन्यै नमः, ४ वं ज्वालिन्यै नमः, ४ शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, ४ सं सुरूपायै नमः, ४ हं कपिलायै नमः, ४ ळं हव्यवहायै नमः, ४ क्षं कव्यवहायै नमः— इति सम्पूज्य "अभयेष्टकरा रक्ता आग्नेय्यो धर्मदाः कलाः" इति रीत्या ध्यात्वा, वह्नेः कला इहागच्छतागच्छतेति क्रमेणावाह्य वह्निकलानां प्राणा इह प्राणा इत्याद्यमुष्यपदस्थानयोजितप्राणप्रतिष्ठाविद्यया तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, तदुपरि हेमादिनिर्मितं सुलक्षणं रक्तवस्त्रग्रीवं रक्तचन्दनचर्चितं पाशुपतास्त्रेण प्रक्षालितं कलशं संस्थाप्य, तत्र ४ अं अर्थप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय श्रीपरदेवतायाः कलशाय नमः, इति सम्पूज्य, सूर्यस्य द्वादशकला वृत्ताकारेण पूजयेत्। ४ कंभं तपिन्यै नमः, ४ खबं तापिन्यै नमः, ४ गंफं धूम्रायै नमः, ४ घंपं मरीच्यै नमः, ४ ङनं ज्वालिन्यै नमः, ४ चंधं रुच्यै नमः, ४ छंदं सुषुम्नायै नमः, ४ जंथं भोगदायै नमः, ४ झंतं विश्वायै नमः, ञंणं बोधिन्यै नमः, ४ टंढं धारिण्यै नमः, ठंडं क्षमायै नमः,— इति सम्पूज्य, "अभयेष्टकराः पीताः सौरा अर्थप्रदाः कलाः" इति रीत्या ध्यात्वा, प्राग्वत्तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय तन्मध्ये विलोममातृकासहितां मूलविद्यामुच्चरन् शुद्धोदकमापूर्य, ४ उं कामप्रदषोडशकलात्मने सोममण्डलाय श्रीपरदेवतायाः कलशामृताय नमः इति सम्पूज्य, सोमस्य षोडश कला वृत्ताकारेण पूजयेत्। ४ अं अमृतायै नमः, ४ आं मानदायै नमः, ४ इं पूषायै नमः, ४ ईं तुष्ट्यै नमः, ४ उं पुष्ट्यै नमः, ४ ऊं रत्यै नमः, ४ ऋं धृत्यै नमः, ४ ॠं शशिन्यै नमः, ४ ऌं चन्द्रिकायै नमः, ४ ॡं कान्त्यै नमः, ४ एं ज्योत्स्नायै नमः, ४ ऐं श्रियै नमः, ४ ओं प्रीत्यै नमः, ४ औं अङ्गदायै नमः, ४ अं पूर्णायै नमः, ४ अः पूर्णामृतायै

नमः— इति सम्पूज्य "अभयेष्टकराः श्वेताः सौम्याः कामप्रदाः कलाः" इति क्रमेण ध्यात्वा, प्राग्वत्तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय तन्मध्येऽधिबिन्द्वक्षतगजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमह्रदगोकुलमृदः[१] काञ्चनगोघृतगोधूमदूर्वारोचनसर्वौषधीः संस्थाप्य, ४ अग्नये नमः, ४ ब्रह्मणे नमः, ४ भवान्यै नमः, ४ गजवक्त्राय नमः, ४ महोरगाय नमः, ४ स्कन्दाय नमः, ४ भानवे नमः, ४ मातृ[२]गणेभ्यो नमः, ४ दिक्पालेभ्यो नमः, ४ नवग्रहेभ्यो नमः, इति तज्जले सम्पूज्य तन्मध्ये[३] गन्धाष्टकं निक्षिप्य, तत्र ४ वं वरुणाय नमः, इति वरुणं पञ्चोपचारैराराध्य,

सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च नदा ह्रदाः। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ १ ॥

इति। क्रोमित्यङ्कुशमुद्रया तीर्थान्याकृष्य

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥ १ ॥

इत्यावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्ता मुद्राः प्रदर्श्य, मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्य, तेनैव कुशैस्त्रिः सन्ताड्य कवचेनावगुण्ठ्य, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, तन्मुखे पञ्च पल्लवान्निक्षिप्य,

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥१ ॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥ २॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।

इति ध्यात्वा, तदुपरि उद्धरणीसहितपिधानपात्रं संस्थाप्य सूक्ष्मवस्त्रेणाच्छादयेत्, इति शुद्धोदककलशस्थापनविधिः॥ अत्र क्षीरकलशस्थापनविधिस्तु शुद्धोदककलशस्थापनवदेव बोध्यः॥ ततो दूतीपात्रचतुष्टयं गृहीत्वा कुलगेहे गत्वा तत्र दूतीयजनं विधिवदाचर्य्य तदुत्पन्नकुण्डगोलाख्यं द्रव्यं गौप्येनैकैकस्मिन्पात्रे कृत्वा तदानीय, स्वाग्रे स्थापयित्वा, तत्रैवाद्यादिचतुष्टयमपि पृथक् पृथक् पात्रचतुष्टये संस्थाप्य पञ्चपात्रस्थद्रव्यपञ्चकस्य संस्कारं कुर्यात्। तद्यथा— तत्रादावाद्यस्य संस्कारः —

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्। कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते.नाशयाम्यहम् ॥ १ ॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे। अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥ २॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि। तेन सत्येन मे देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥ ३॥

ॐ ४ "वांवींवूंवैंवौंवः ब्रह्मशापविमोचिकायै सुधादेव्यै नमः" इति तदुपरि दशधा जपेत्। ४ "ह्रींश्रींक्रांक्रीं— क्रूंक्रैंक्रौंक्रः ब्रह्मशापं विमोचय अमृतं (स्रावय २) स्वाहा" इति दशधा जपेत्। ततो मूलविद्यां तदुपर्यष्टधा जपेदित्याद्यशुद्धिः॥ अथ द्वितीयशोधनम्—४ "ॐ प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥" ४ ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्" इति तदुपरि दशधा प्रजप्य मूलविद्यामपि दशधा जपेदिति द्वितीयशोधनम्॥ अथ तृतीयशोधनम्—४ "ओं त्र्यम्बकं[४] यजमाहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्" इति तदुपरि दशधा प्रजप्य मूलमन्त्रमपि दशधा जपेदिति तृतीयशोधनम्॥ अथ चतुर्थशोधनम्—

कृसरं मण्डलाकारं चन्द्रबिम्बनिभं शुभम्। चरुकं च मनोहारि शर्कराद्यैश्च पूरितम्॥ १ ॥
पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्तिता।

तच्छोधनं तु—४ "ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥" इति तदुपरि दशधा प्रजप्य मूलविद्यामपि दशधा जपेदिति चतुर्थशोधनम्॥ अथ

१. 'लात्' ग. पाठः। २. 'तृका' क. पाठः। ३. 'पूजन्मध्ये' क. पाठः। ४. 'त्रियम्बकं'

पञ्चमशोधनम्—४ "ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि शुक्रशापं प्रमोचय अमृतं स्रावय २ अमृतं कुरु २ स्वाहा" इति तदुपरि दशधा प्रजप्य मूलविद्यामपि दशधा जपेत्, इति पञ्चमशुद्धिः।। एवं सामान्यतः पञ्च द्रव्याणि संशोध्य घटादिपात्रेषु निक्षिप्य विशिष्य द्वितीयवारं शोधयेत्। ततो देवीपूजान्ते आत्मसमर्पणसमये तृतीयवारं शोधयित्वात्मसमर्पणं कुर्यात्। तच्च श्रीगुरुमुखादवगन्तव्यम्।

तदुक्तं कुलार्णवे—

आसवं पललं मत्स्यं मुद्रा गोलोत्थमेव च। एतानि पञ्च द्रव्याणि त्रिधा संशोधयेत्ततः।। १।।
शुद्ध्यन्ति नान्यथा देवि न चेदुक्तं प्रयाति च। इति।

त्रिप्रकारशोधनं न चेद् उक्तं श्रुतिस्मृतिपुराणादौ उक्तमेतत्पञ्चद्रव्यसंसर्गप्रयुक्तदोषं प्रयाति प्राप्नोतीत्यर्थः। दूतीयागविधिस्तु स्थूलपद्धत्यादौ बोद्धव्यः। स्वयम्भूशोधनं तु गोलोत्थशोधनवत् ज्ञेयम्।। अथ समयाशोधनं कुलार्णवे—

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी। संवित्प्रयोगः कर्तव्यः पूजादौ साधकोत्तमैः।। १।।
कर्तव्या च महापूजा करणीयासुनिश्चितैः। इति

अयं प्रयोगः कुलीनैः सर्वत्र पूजादौ कर्तव्यः। अन्यत्रापि— "आनन्देन विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति देवताः।" इति। सा च ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा— इति चतुर्विधा शुक्लरक्तपीतकृष्णपुष्पभेदैः।

तासां शुद्धयस्तु —

संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे। भैरवाणां च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा।। १।।

"ॐ ब्राह्म्यै नमः स्वाहा" इति तदुपरि दशधा प्रजप्य मूलमन्त्रमप्यष्टधा जपेदिति ब्राह्मीशुद्धिः।

सिद्धिमूलकरे देवि मूलबोधप्रबोधिनी। राजपुत्रवशङ्करि शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि।। १।।

"ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा" इति दशधा प्रजप्य मूलमप्यष्टधा जपेत्— इति क्षत्रियाशुद्धिः।।

अज्ञानेन्धनदीपाग्रे ज्ञानाग्रे ज्ञानरूपिणी। आनन्दाद्याहुतिं मत्वा सम्यग् ज्ञानं प्रयच्छ मे।। १।।

"ह्रींवैश्यायै नमः स्वाहा" इति दशधा प्रजप्य मूलमप्यष्टधा जपेदिति वैश्याशुद्धिः।।

नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रदर्शिनि। त्रैलोक्यविजये मातः समाधिफलदा भव।। १।।

"श्रीं शूद्रायै नमः स्वाहा" इति दशधा प्रजप्य मूलमष्टधा जपेदिति शूद्राशुद्धिः।। अथ सामान्यतः सर्वासां शोधनप्रकारस्तु—मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्य, तेनैव कुशदूर्वादिना त्रिः सन्ताड्य, कवचेनावगुण्ठ्य वमिति अमृतीकृत्य ४ "ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षय त्वं सिद्धिं देहि स्वाहा" इति तदुपरि दशधा प्रजप्य मूलमष्टधा जपेत्। तदुपर्यावाहनादिदशमुद्राः प्रदर्श्य, शुद्धोदककलशस्थापनवत् कलशस्थापनं विधाय, विजयामृतेनापूर्य चन्द्रकलापूजादिकं सर्वं शुद्धोदककलशस्थापनवदेव विधाय, दिग्बन्धच्छोटिकातालत्रयपूर्वकं पार्ष्णिघात—करास्फोटनसमुदञ्चितवक्त्रैः पातालभूनभोलीनान् विघ्नान्निरस्य, मूलमन्त्रेण सप्तधा ब्रह्मरन्ध्रे तर्पयित्वा, सहस्रदलकमलकर्णिकामध्यवर्तिनं श्रीगुरुं सङ्केतविद्यया श्रीगुरुपादुकाविद्यान्ते श्रीगुरुपादुकां तर्पयामीति त्रिधा सन्तर्प्य, मूलान्ते श्रीपरदेवतां तर्पयामीति तत्त्वमुद्रया मूलदेवीं त्रिधा तर्पयित्वा, ४ मूलं "ऐंवदवद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि स्वाहा"— इति मन्त्रमुच्चरन् कलशात् पात्रान्तरेण गृहीतं विजयामृतं स्वयं प्राश्य, कलशोपर्युद्धरणीयुक्तपात्रेणाच्छाद्य तत्सर्वं सूक्ष्मवस्त्रेण च्छादयेदिति विजयाकलशस्थापनविधिः।।

अथानुकल्पद्रव्याणि कुलार्णवे —

आद्याभावे तु वटक[1] जले संयोज्य पूजयेत्। सतक्रं वटकं[2] वापि सङ्गृह्य च विचक्षणः।। १।।
गुडमिश्रेण तक्रेण तेन वा मधुभाजिना। सौवीरेणाथवा कुर्यादितत्कर्म न लोपयेत्।। २।।
द्वितीयाभावे लशुनमार्द्रकं नागरं तु वा। आधाय पूजयेद्देवीमन्यथा निष्फलं भवेत्।। ३।।

इति। वीरतन्त्रे –

लवणार्द्रकपिण्याकगोधूममाषपञ्चकम्। लशुनं च महेशानि द्वितीयप्रतिनिधौ स्मृतम्।। १।।
तृतीयादेरभावे तु योजयेदेतदेव हि।

इति। चतुर्थाद्यनुकल्पस्तु नास्ति। पञ्चमाद्यनुकल्पस्त्वपराजितापुष्पं हयारिपुष्पं च समानीय चन्दनादिनापराजितापुष्पमापूर्य हयारिकुसुमं तत्र संयोज्योभयं शिवशक्तिसमायोगत्वेन परिचिन्त्य कुलद्रव्योत्पत्तिं विभाव्य, तदुपरि यथाशक्त्या निजविद्यां जपित्वा तत्कुसुमद्वयं विशेषार्घ्यमध्ये निक्षिपेत्। अन्यान्यपि क्षीरादीन्यनुकल्पद्रव्याणि यथाधिकारमवधेयानि।।

अथ कालीमतरीत्या सामान्यार्घ्यस्थापनम् –

तत्र स्ववामाग्रे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं चन्दनादिना यथासम्भवद्रव्येण रजोभिर्जलेन वा विरच्य पाशुपतास्त्रेण तन्मण्डलं सम्प्रोक्ष्य "ओंह्रीं आधारशक्तये नमः"– इति त्रिकोणमध्ये, एवं कोणत्रये वृत्ते चतुरस्रे च, ओं अखण्डमण्डलाय नमः। ओं पूर्णमण्डलाय नमः। ओं सर्वतोव्यापकमण्डलाय नम इति मण्डलं सम्पूज्य, पाशुपतास्त्रेण सुवर्णादिनिर्मितमाधारं प्रक्षाल्य मण्डलोपरि संस्थाप्य मं धर्मप्रददशकलात्मने वह्निमण्डलाय श्रीपरदेवतायाः शङ्खाधाराय नमः, इति शङ्खाधारं सम्पूज्य, वह्निरूपमाधारं विचिन्त्य पुनः पाशुपतास्त्रेण शङ्खं प्रक्षाल्याधारोपरि संस्थाप्य, अं अर्थप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय श्रीपरदेवतायाः शङ्खपात्राय नमः, इति शङ्खं सम्पूज्य, सूर्यरूपं शङ्खं सञ्चिन्त्य विलोममातृकां मूलतद्दिननित्याविद्यासहिता– मुच्चरन् शुद्धतोयेन त्रिभागं शङ्खं पूरयेद्भागमेकं विशेषपूरणार्थमवशेषयेत्। ततः उं कामप्रदषोडशकलात्मने सोममण्डलाय श्रीपरदेवतायाः शङ्खामृताय नमः– इति जलमध्ये सम्पूज्य, तज्जलं चन्द्ररूपं विचिन्त्य, सुगन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलश्वेतसर्षपदधिदूर्वादीनि शङ्खजले विन्यस्य "पृथिव्यां यानि तीर्थानि करस्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर।।" इति सूर्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया तीर्थान्याकृष्य शङ्खजले विन्यस्य, "गङ्गे च यमुने चे" ति तीर्थान्यावाह्य आवाहनादिदशमुद्राः प्रदर्श्य, पञ्चोपचारैस्तानि सम्पूज्य, वषडिति गालिनीमुद्रां प्रदर्श्य, वौषडिति वीक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य, अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च मूलविद्यायाः षडङ्गानि सम्पूज्य तथैव षडङ्गमुद्राः प्रदर्श्य, दक्षाङ्गुष्ठं जले निक्षिप्य मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य, जलं स्पृशन् मूलविद्यामष्टधा प्रजप्य, नाराचमुद्रया पाशुपतास्त्रेण संरक्ष्य, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, ऐमिति योनिमुद्रां प्रदर्श्य, श्रीमिति शङ्खमुद्रां फट् इति चक्रमुद्रां ह्रीमिति परमीकरणमुद्रां च प्रदर्श्य, तज्जलं तेजोमयं विचिन्तयेत्, इति शङ्खस्थापनम्।। अत्र कादिमतानुसारेण प्रधानकलशसामान्यविशेषपात्राणां स्थापनप्रकारमग्रे लेखिष्यामि श्रीपात्रस्थापनमपि वक्ष्यामि। शक्त्यादिपात्राणां स्थापनं तु सामान्यपात्रवदेव। विशेषस्तु विशेषार्घ्यबिन्दुं दत्त्वा तत्तन्मन्त्रेण दशधा २ प्रजपेत्। शक्तिपात्रं बालया, गुरुपात्रं गुरुपादुकाविद्यया, भोगपात्रं समष्टिविद्यया, सर्वेषां बलिपात्राणामभि[3]मन्त्रणं तत्तद्देवतामन्त्रैः, अङ्गपात्रं षडङ्गयुवतीमन्त्रैर्वीरपात्रं कामराजेन, गुह्यपात्रं वाग्भवेन, योगिनीपात्रं नवचक्रेश्वरीविद्याभिः सकृत्सकृदात्मपात्रमात्माष्टाक्षरेण, प्रोक्षणीपात्रं मूलषडङ्गमन्त्रैर्दूतीपात्रचतुष्टयं बालयैवाभिमन्त्रयेत्। तदुक्तं श्रीकुलार्णवे–

१. 'वटुकं' ग. पाठः। २. 'वटुकं' ग. पाठः। ३. 'मामभि' ग. पाठः।

शक्तिपात्रं वरारोहे दशधा प्रजपेत् सुधीः। करेणाच्छाद्य दक्षेण कुमारीं त्रिपुरेश्वरीम्॥ १॥
तथैव गुरुपात्रं च पादुकाविद्यया शिवे। समष्टिविद्यया देवि भोगपात्रेऽभिमन्त्रणम्॥ २॥
मनुर्भिर्बलिदेवीनां तत्पात्राणां सुरेश्वरि। षडङ्गयुवतीमन्त्रैरङ्गपात्रं सकृत्सकृत् ॥ ३॥
वीरपात्रं महादेवि कामराजेन सुव्रते। गुह्यपात्रं तु कुण्डल्या बीजेन परमेश्वरि॥ ४॥
नवचक्रेश्वरीभिश्च योगिनीपात्रमम्बिके। आत्माष्टाक्षरमन्त्रेण चात्मपात्रं महेश्वरि॥ ५॥
विद्याषडङ्गमन्त्रैश्च प्रोक्षणीपात्रमद्रिजे। कुमार्यैव महेशानि दूतीपात्रचतुष्टयम्॥ ६॥

इत्यादिप्रमाणवचनानि तत्तत्तन्त्रोक्तानि बोध्यानि तथैवार्घ्यादिपञ्चपात्राणामपि तत्तद्देवतात्मकमन्त्रैरभिमन्त्रणं बोध्यम्। यत्तु "अर्घ्ये षडङ्गमूलाभ्यां संसाध्य विधिवद्यजेत्"। इत्यादिक्रमस्तु सङ्क्षेपपूजायां ज्ञेयः। स क्रमस्तु—प्राग्वन्मण्डलं विलिख्य तत्राक्षतैः सम्पूज्य, तत्र क्षालितमाधारं संस्थाप्य तं वह्निरूपं[1] विचिन्त्य, तदुपरि अस्त्रक्षालितमर्घ्यादि संस्थाप्य, पात्रं सूर्यरूपं विचिन्त्य सम्पूज्य, तस्मिन् मूलविद्यासहितविलोममातृकामुच्चरन् जलेनापूर्य तज्जलं चन्द्ररूपं विचिन्त्य संपूज्य, तस्मिन् प्राग्वत् पात्रपञ्चके पृथक् पृथक् शोधितं द्रव्यपञ्चकं क्रमेण निक्षिप्य, षडङ्गमन्त्रैर्दशधा अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वित्यादिक्रमेणाक्षतैः सम्पूज्य श्रीविद्यायां तार्तीयकूटमन्यत्र तत्तद्देवतामन्त्रं दशधा प्रजप्य तज्जलं तेजोरूपं विचिन्तयेत्। इति कादिमते सङ्क्षेपतः पात्रासादनम्॥

विद्यातार्तीयकूटेन मूलदेव्याः षडङ्गकैः। दशधा जपपूजाभ्यामर्घ्यं संसाध्य पूजयेत्॥ १॥

इति कादिमतवचनात्। वस्तुतस्त्वयमापत्कल्पः, मुख्यपूजायामापत्कल्पो गर्हितस्तत्र मुख्यकल्प एव साधीयान्। कुमारीपूजनेऽर्घ्यादिपञ्चपात्राणामभिमन्त्रणं बालयैव, मालापूजाविधौ तु प्रासादेन[2], अक्षरौषधिपूजने पञ्चभूतमन्त्रैः, पञ्चायतनपूजायामपि तत्तत्पात्राणि तत्तन्मन्त्रैरेव, पञ्चाशन्मिथुनपूजायां च मातृकया, धातुदैवतपूजायां भैरव्या, कालनित्यायजने तत्तद्दिननित्याविद्यया, पुस्तकपूजायां तु प्रासादेनैव, अग्निपूजायां तन्मन्त्रेणैव, दम्पतीसुवासिनीयोगिनीनां यजनादिषु बालयैवाभिमन्त्रणं कुर्यात्। उद्धरणीपिधानानामपि पाशुपतास्त्रेण क्षालनं तेनैवाभिमन्त्रणम्। नैवेद्यपात्रादिभोग्यवस्तूनां पात्राणां तत्तद्देवतामूलमन्त्रषडङ्गमन्त्रेषूक्तास्त्रमन्त्रेण क्षालनं तेनैवाभिमन्त्रणं च। इदं सर्वं गुरुतः शास्त्रतश्च ज्ञात्वा पूजायां योजनीयमिति। नारवैश्वमित्राक्षरौषधिचूर्णघटितमन्त्रनक्षत्रवृक्षोत्थतादृशयोन्युत्थपात्राणां संस्कारः प्रागुक्तसङ्क्षेपकल्परीत्यैव ज्ञेयस्तेषु संस्कारबाहुल्ये प्रयोजनाभावात्। सिद्धद्रव्याणां संस्कारः प्रतिदिनं विधेयः। अन्यदिनसंस्कृतद्रव्यमन्यदिनपूजायां गर्हितं, स्वयम्भूकुसुमस्य तु संस्कृतस्य पुनरन्यदिने संस्कारो नास्ति। तदुक्तं कुलार्णवे—

स्वयम्भूकुसुमं सम्यक् शोधयित्वा तु देशिकः। निक्षिपेत्तेन पूजाया देव्याः सम्मीलनेन च॥१॥
तेन प्रीता महादेवी सर्वसिद्धिं ददाति च। अन्यानि सिद्धद्रव्याणि प्रत्यहं शोधयेद् बुधः॥२॥
एकस्मिन् दिवसे शुद्धमन्यस्मिन् गर्हितं भवेत्।

इत्येतेन सिद्धद्रव्याणि स्वयम्भूकुसुमरहितानि प्रत्यहं पूजायां नवीनान्येव प्रशस्तानीत्यर्थः। अत्र यन्त्रलिखनद्रव्यस्य शोधनम्— तत्र कस्तूर्यगुरुकर्पूरकुण्डगोलोद्भवद्रव्यकेसरगुडचन्दनस्वयम्भूकुसुमात्मकाष्टद्रव्याण्येकस्मिन् पात्रे

---

१. 'भूतं' क. पाठः। २. 'तत्त्वप्रासादेन' क. पाठः।

संस्थाप्यामृतेश्वरीदीपिनीविद्याभ्यां सप्तवारमभिमन्त्रयेत्। तदुक्तं भैरवीतन्त्रे—

कस्तूर्यगुरुकर्पूरगोलोत्थं जाङ्गलं गुडम्। मलयोत्थं महादेवि स्वयम्भूकुसुमं तथा॥ १॥

सर्वमेकत्र संयोज्य दीपिन्यामृतविद्यया। पृथक्पृथक् सप्तवारं हस्तं दत्त्वाभिमन्त्रयेत्॥२॥

तेन शुद्धं भवेद्द्रव्यं तेन द्रव्येण वै लिखेत्।

इति। अत्र गोलोत्थं स्वयम्भूकुसमं च प्राग्वत्पात्रान्तरेण शोधितमेव ग्राह्यम्॥

अथ कालीमतरीत्या कलशादिस्थापनम्— तत्र स्ववामाग्रे वक्ष्यमाणविशेषार्घ्यमण्डलवत् मण्डलं विरच्य तथैव सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना क्षालितमाधारं संस्थाप्य तथैव सम्पूज्य, सुवर्णादिरचितं कलशं धूपवासितं हुँहुँ ब्रह्माण्डचषकाय स्वाहा— इति वामकरेण प्रक्षालितं, ऐं सन्दीपिनि ज्वालामालिनि ह्रीं— इति सन्दीपिनीविद्यया योनिमुद्रया दीपितं, कवचेनावगुठितं, ओं नमः ह्रीं नमः क्षं नमः हं नमः सः नमः—इति विन्यस्य पञ्चमन्त्रं ओं २ श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या महाकलशं स्थापयामि— इति तत्र कलशं संस्थाप्य तत्र वक्ष्यमाणविशेषार्घ्यपात्रवत् सूर्यकलान्तं सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिनैव कर्पूरादिसुवासितं पर्युषितपरिस्रुतपयः समापूर्य, तत्रान्नादिकं निक्षिप्य तन्मध्ये विशेषार्घ्ये वक्ष्यमाणं मण्डलं विभाव्य वक्ष्यमाण-विधिना सोमकलान्तं सम्पूज्य, तच्चतुरस्रं परितः ओं ३ हसखफ्रें पथिकदेवताभ्यो हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें ग्रामचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें पथिकदेवताभ्यो हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें दृष्टिचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें क्रोधचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें सृष्टिचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें स्पर्शचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें तपनवेधचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें घटचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें सर्वजनदृष्टिस्पर्शचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें निर्दोव (ष) चण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें सर्वजनदृष्टिस्पर्शचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। ओं ३ हसखफ्रें पशुपाशचण्डालिनि हुंफट् स्वाहा नमः। इति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन पूजयेत्। इत्येवं दश दोषान्निरस्य ओं ३ कांकींकूंकैंकौंकः विकारशोषिणि अस्य विकारान् हन हन स्वाहा— इति हेतुमध्ये सम्पूज्य

स्वादिष्ठयादिभिः पूर्वमृग्भिः पञ्चभिरायतः। विष्णुर्योनिं त्रयेणैव त्रिभिष्ट्वादित्रयेण च॥ १॥

इमं म इति च द्वाभ्यां ता मन्देत्येकया तथा। श्रोणामेकेति चैकेन शुक्रशापं विमोचयेत्॥२॥

इति कुलार्णववचनादुक्तपञ्चदशमन्त्रैः सकृत्सकृदभिमन्त्रयेत्। मन्त्रास्तु ऋग्वेदे यथा— "स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः॥ १॥ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहत। द्रुणा सधस्थमासदत्॥२॥ वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम्॥३॥ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा। अभि वाजमुत श्रवः॥४॥ त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे। इन्दो त्वे न आशसः"॥५॥ (९। १। १—५) "विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते[1]॥ १॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा॥२॥ हिरण्मयी अरणी यं निर्मथतो अश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे"॥३॥ (१०। १८४। १—३) त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः। अग्ने दक्षैः पुनीहि नः॥ १॥ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसयो धिया। विश्वेदेवाः पुनीत मां जातवेदः पुनीहि माम्॥२॥ प्रप्यापयस्व प्रस्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः। देवेभ्य उत्तमं हविः"(९/६७/२६—२८)

१. 'दधामि ते' क पाठः।

इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि[1]स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥ १॥ (१०।७५।५)
सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते॥ २॥
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आधत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे।
कृतं तीर्थं सुप्रयाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम्॥ १॥ (१०।४०।१३)
श्रोणामेकमुदकं गामवाजति मासमेकः पिंशति सूनंयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किंस्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः॥४॥(१।१६१।१०)

इत्यभिमन्त्र्य, "ॐ ३ ह्रांह्रींह्वूंह्रैंह्रौंह्रः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतस्वरूपिणि अमृतं स्रावय २ शुक्रशापात् सुधां मोचय २ मोचिकायै नमः। ॐ ३ जूंसः स्वाहा" इति विद्ययाष्टवारमभिमन्त्र्य ॐ ३ सिद्धायै नमः, ॐ ३ रक्तायै नमः, ॐ ३ शुक्लायै नमः, ॐ ३ उत्पलायै नमः, इति चतुरस्रस्य चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन स्वाग्रादितः सम्पूज्य मध्यत्रिकोणं विशेषार्घ्ये वक्ष्यमाणरूपं विभाव्य, ॐ ३ हसक्षमलवरयूँ आनन्दभैरवाय वौषट् आनन्दभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ओं ३ सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वषट् आनन्दभैरवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। एवं सर्वत्र। ॐ ३ सुरानन्दभैरवाय वौषट्० ॐ ३ सुरानन्दभैरव्यै वषट् सुरानन्दभैरवीश्री०। ॐ ३ अमृतानन्दभैरवाय० ॐ ३ अमृतानन्दभैरव्यै० ॐ ३ तरुणानन्दभैरवाय० ॐ ३ तरुणानन्दभैरव्यै०, ॐ ३ उन्मनानन्दभैरवाय० ॐ ३ उन्मनानन्दभैरव्यै०, ॐ ३ ज्ञानानन्दभैरवाय० ॐ ३ ज्ञानानन्दभैरव्यै०, ॐ ३ मुक्तानन्दभैरवाय० ॐ ३ मुक्तानन्दभैरव्यै०, ॐ ३ परमानन्दभैरवाय० ॐ ३ परमानन्दभैरव्यै०, ॐ ३ कालभैरवाय० ॐ ३ कालभैरव्यै०,— इति भैरवमिथुननवकं मध्ये दिक्षु च सम्पूज्य सन्तर्प्य मूलविद्यया वीक्षणमुद्रया संवीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य अस्त्रमन्त्रेण कुशैस्त्रिः सन्ताड्य कवचमन्त्रेणाभ्युक्ष्याघ्राय वामनासारन्ध्रेण प्रविश्य ब्रह्मरन्ध्रं गत्वा, तत्रस्थचिच्चन्द्रमण्डलमध्यगतपरमा— मृतवारिधौ मिलित्वातन्मयेन राजदन्तविवरात् नेत्रमार्गेण विनिर्गतं तज्जलं विभाव्य, संरोधमुद्रया संरुध्य, कवचमन्त्रेणावगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्य, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य, तत्र देवीं ध्यात्वा गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य मूलविद्ययाष्टवारमभिमन्त्र्य, ॐ ३ नमो भगवति माहेश्वरि २ वारुणीजलमूर्तये ऊर्ध्वबिन्दुग्राहिणि महालक्ष्मीश्वरिपरमधाग्नि परमाकाशतासुरि सोमसूर्याग्निभक्षिणि आगच्छागच्छ विश २ स्वभोगद्रव्यं गृहण २ स्वाहा, इति तत्कलशाब्दिन्दुं वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां धृतद्वितीयखण्डेनादायोर्द्ध्वमुत्क्षिपेत्। ततः कलशवदनं पात्रान्तरेणाच्छाद्योद्धरणपात्रमादाय वामकरे निधाय, ॐ ३ अमोघायै नमः, ॐ ३ सूक्ष्मायै० ॐ ३ आनन्दायै०, ॐ ३ शान्त्यै नमः,— इति शक्तिचतुष्टयं वामकरस्थपात्रे सम्पूज्य कुम्भस्याच्छादनपात्रस्योपरि स्थापयेदिति कलशस्थापनं विधाय, ततः कलशदक्षिणभागे शुद्धोदकेन चतुरस्रवृत्तकोणात्मकं मण्डलं चन्दनादिलिप्तभूमौ वहन्नासापुटाध्वना त्रितारमुच्चरन् निर्माय प्रणवत्रितारादिनमोन्तया मूलविद्यया त्रिकोणमध्यं सम्पूज्य कूटत्रयेण त्रिषु कोणेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य चतुरस्रे अग्नीशनिर्ऋतिवायव्यकोणेषु हृदयाद्यङ्गचतुष्टयं मध्ये नेत्रं प्रागादिचतुर्दिक्षु अस्त्रमिति षडङ्गमन्त्रैः सम्पूज्य, तत्र मूलेन क्षालितमाधारं संस्थाप्य ओंऐंह्रींश्रीं प्रथमकूटमुच्चार्य मं वह्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीपरदेवतायाः

१. 'द्रु' क. पाठः। २. 'ग्रामे' क. पाठः। ३. 'वहन्नासाकरोर्ध्वपुटाभ्यां कराभ्यां' क. ग. पाठः।

सामान्यार्घ्याधाराय नमः, इति सम्पूज्य, (तत्र वक्ष्यमाणप्रकारेण वह्नेर्दश कलाः सम्पूज्य, तत्रास्त्रेण क्षालितं पात्रं संस्थाप्य ओंऐंह्रींश्रीं द्वितीयकूटमुच्चार्य अं सूर्यमण्डलाय अर्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीपरदेवतायाः सामान्यार्घ्यपात्राय नमः, इति पात्रं सम्पूज्य) तत्र वक्ष्यमाणप्रकारेण सूर्यस्य द्वादश कलाः सम्पूज्य, गन्धादिसुवासितशुद्धतोयेन प्रणवत्रितारमूलविद्यान्ते विलोममातृकामुच्चरंस्तत्पात्रमापूर्य, ओं ३ तृतीयकूटं उं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने श्रीपरदेवतायाः सामान्यार्घ्यामृताय नमः, इति जलं सम्पूज्य वक्ष्यमाणप्रकारेण सोमस्य शोडष कलाः सम्पूज्य, तत्र प्राग्वत् सवितृमण्डलात्तीर्थमावाह्य कलशामृतबिन्दुं दत्वा, तत्र मूलेन गन्धपुष्पादिकं निक्षिप्य प्राग्वत् षडङ्गमन्त्रैः संपूज्य, हसक्षमलवरयूं, सहक्षमलवरयीं, इति नवात्मकमिथुनमन्त्रेण त्रिरभिमन्त्र्य, हसौं वरुणाय नमः स्हौं वारुणीदेव्यै नमः, इति वरुणमिथुनमन्त्रेण च त्रिरभिमन्त्र्य मूलेनाष्टधाभिमन्त्र्य धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्शयेदिति सामान्यार्घ्यं विधाय, तत्समीपे सामान्यार्घ्यजलेन यक्षकर्दमादिगन्धद्रव्यमिश्रितेन भूमिं विलिप्य, तत्र वहच्छ्वासोर्ध्वपुटाभ्यां[1] चतुरस्रवृत्तषट्कोणत्रिकोणात्मकं मण्डलं विधाय, तन्मण्डलं शङ्खमुद्रामुद्रितवामकरेणावष्टभ्य तन्मध्यत्रिकोणमध्ये सबिन्दुतुर्यस्वरूपा कामकला विलिख्य ओंऐंह्रींश्रीं श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्याधारमण्डलाय नमः, इति मण्डलं सम्पूज्य, ४ नमोन्तमूलेन त्रिकोणमध्यं सम्पूज्य, त्रिकोणाग्निकोणे ४ प्रथमकूटं नमः, वामे ४ द्वितीयं नमः, दक्षिणे ४ तृतीयं नमः— इति त्रिकोणं प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पूजयित्वा षट्कोणकोणेषु प्रादक्षिण्येन स्वाग्रमारभ्य मूलकूटत्रयस्य द्विरावृत्या, चतुरस्रे प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, तच्चतुरस्रे स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च प्रादक्षिण्येन ४ ग्लूं गगनरत्नाय नमः, ४ स्लूं स्वर्गरत्नाय नमः, ४ म्लूं मर्त्यरत्नाय नमः, ४ प्लूं पातालरत्नाय नमः, ४ न्लूं नागरत्नाय नमः, इति पञ्चरत्नानि सम्पूज्य, पुनः षट्कोणेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन न्यासोक्तषडासनानि सम्पूज्य, चतुरस्रवृत्तषट्कोणत्रिकोणेषु ४ कामरूपपीठाय नमः, ४ जालन्धरपीठाय नमः, ४ पूर्णगिरिपीठाय नमः, ५ उड्यानपीठाय नमः, इति पीठचतुष्टयं सम्पूज्य, शाम्भवदीक्षावांश्चेच्चतुरस्रे स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च पञ्चप्रणवपुटितैः प्रणवपञ्चकैः पूजयेत्। तद्यथा— ऐंह्रींश्रीं हसखफ्रें हसौः ऐं हसौः हसखफ्रें श्रींह्रींऐं नमः। एवं ५ ह्रीं ५ नमः, ५ श्रीं ५ नमः, ५ हसखफ्रें ५ नमः, ५ हसौः ५ नमः— इति सम्पूजयेत्। ततः मूलं० सर्वशक्तिमयीश्रीपरदेवतायाः पीठचतुष्टयात्मकार्घ्यमण्डलाय नमः,— इति समस्तं मण्डलं संपूज्य, तत्र मूलेन प्रक्षालितमाधारं गृहीत्वा, ४ श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्याधारं स्थापयामीति मण्डलोपरि संस्थाप्य, ४ प्रथमकूटमुच्चार्य मं वह्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्यपात्राधाराय नमः,— इत्याधारं संपूज्य, तदुपरि धूम्रार्चिरादिदशकलाः इहागच्छतागच्छत, इति वह्नेर्दशकलाः समावाह्य तासां प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। तत्र पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण ममपदस्थाने धूम्राचिरादीनामिति पदं निक्षिप्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमाधारं स्पृशन् पठेदिति प्राणप्रतिष्ठां विधााय, ४ यं धूम्रार्चिषे नमः, ४ रं ऊष्मायै नमः, ४ लं ज्वलिन्यै नमः, ४ ज्वालिन्यै नमः, ४ शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, ४ षं सुश्रिये नमः, ४ सं सुरूपायै नमः, ४ हं कपिलायै नमः, ४ ळं हव्यवाहायै नमः, ४ क्षं कव्यवाहायै नमः, इति ताः सम्पूज्य, स्वर्णादिरचितं पात्रमस्त्रेण प्रक्षाल्य, ४ श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्यपात्रं संस्थापयामि नमः, इति तत्र संस्थाप्य, ४ द्वितीयकूटमुच्चार्य अं अर्कमण्डलायार्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्यपात्राय नमः— इति पात्रमध्ये संपूज्य, पूर्वोक्तमण्डलं विभाव्य पूर्ववत् पञ्चरत्नान्तं सम्पूज्य, तथैव पञ्चप्रणवैस्तमभ्यर्च्य,

---

१. 'पुटहस्ताभ्यां' क. पाठः।

तत्र सूर्यस्य द्वादश कलाः प्राग्वत् समावाह्य प्राग्वत् तन्नामपुरःसरं तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय वृत्ताकारेण प्रादक्षिण्येन ताः पूजयेत्। तद्यथा— ४ कंभं तपिन्यै नमः, ४ खंबं तापिन्यै नमः, ४ गंफं धूम्रायै नमः, ४ घंपं मरीच्यै नमः, ४ ङंनं ज्वालिन्यै नमः, ४ चंधं रुच्यै नमः, छंदं सुषुम्नायै नमः, ४ जंथं भोगदायै नमः, झंतं विश्वायै नमः, ४ ञंणं बोधिन्यै नमः, ४ टंढं धारिण्यै नमः, ४ ठंडं क्षमायै नमः— इति सम्पूज्य, कलशस्थं जलमुद्धरणपात्रेणोद्धृत्य मूलविद्यान्ते विलोममातृकामुच्चरन् तत्पात्रमापूर्य, तत्रालादिकं निक्षिप्य ऐं, इत्यङ्गुष्ठानामिकाभ्यां पुष्पेण तत्पात्रस्थं जलमालोड्य तत्पुष्पं निरस्य, क्लीमिति चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमरोचनाजटामांसीशिलारसात्मक-गन्धाष्टकपङ्कलोलितं चन्दनादिपङ्कलोलितं वा पुष्पं निक्षिप्य, सौः इति गालिनीमुद्रया निरीक्ष्य, ४ तृतीयकूटं उं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्यामृताय नमः— इति पात्रस्थजलमध्ये सम्पूज्य तत्र पूर्वोक्तं मण्डलं विभाव्य, पूर्ववत् पञ्चरत्नान्तं सम्पूज्य, शाम्भवदीक्षायुक्तश्चेत्तथैव पञ्चप्रणवैः पूजयेत्। ततस्तत्र सोमस्य षोडशकलाः प्राग्वत् समावाह्य प्राग्वत् तन्नामपुरःसरं तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय वृत्ताकारेण स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ताः पूजयेत्। तद्यथा— ४ अं अमृतायै नमः, ४ आं मानदायै०, ४ इं पूषायै०, ४ ईं तुष्ट्यै०, ४ उं पुष्ट्यै०, ४ ऊं रत्यै०, ८ ऋं धृत्यै०, ४ ॠं शशिन्यै०, ४ ऌं चन्द्रिकायै०, ४ ॡं कान्त्यै०, ४ एं ज्योत्स्नायै०, ४ ऐं श्रियै०, ४ ओं प्रीत्यै०, ४ औं अङ्गदायै०, ४ अं पूर्णायै०, ४ अः पूर्णामृतायै०,— इति सम्पूज्य पूजितमण्डलमध्यत्रिकोणमकथादित्रिरेखं विभाव्य, तत्कोणत्रये मूलविद्यायाः, कूटत्रयं मध्यस्थबिन्दौ कामकलां तत्पार्श्वतः सबिन्दू हक्षौ तत्पृष्ठे ळकारं तत्पार्श्वयोः हंसःवर्णौ विभाव्य पुष्पाक्षतगर्भितां योनिमुद्रां बद्ध्वा गुरूपदिष्टप्रकारेण मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य, षट्चक्रभेदक्रमेण सुषुम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रस्थचिच्चन्द्र-मण्डलसम्भूतमशेषरससम्भृतमापूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह ऐंप्लूंग्लौंजूंसः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा— इति तस्मिन्नर्घ्यामृते पुष्पाक्षतप्रक्षेपेण तदमृतधारां संयोज्य, वमिति धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, ओंह्रींहंसः स्वाहा— इत्यात्माष्टाक्षरमन्त्रेण त्रिरभिमन्त्र्य पुनरुच्चार्यात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीति जलमध्ये सम्पूज्य, पुनः प्रणवेन त्रिरभिमन्त्र्य हंसः अजपाशक्तिश्री० इति संपूज्य, मातृकया बिन्दुरहितया त्रिरभिमन्त्र्य पुनस्तामुच्चार्य मातृकासरस्वतीश्री०, इति जलमध्ये संपूज्य, मूलतार्तीयकूटेन दशधाभिमन्त्र्य पुनस्तार्तीयकूटमुच्चार्य त्रिपुरामृतेश्वरीश्री०, इति जलमध्ये संपूज्य, ४ हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं, इत्यानन्दभैरवमिथुनविद्याभ्यां त्रिरभिमन्त्र्य, ४ हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वौषट् आनन्दभैरवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, इति त्रिः सम्पूज्य सन्तर्प्य, ४ सहक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वषट् सुधादेवीश्री० इति सम्पूज्य सन्तर्प्य, हसौं वरुणाय नमः स्हौं वारुणीदेव्यै नमः— इति वरुणमिथुनविद्याभ्यां त्रिरभिमन्त्र्य, ४ पुनः पृथगुच्चार्य वरुणश्रीपा० वारुणीदेवीश्रीपा० इति सम्पूज्य सन्तर्प्य, ततो बालया वक्ष्यमाणषोडशनित्यामन्त्रैश्च सकृत्सकृदभिमन्त्र्य, तद्दिननित्याविद्यया तत्तत्तिथिनित्याविद्यया च पृथक् पृथक् त्रिरभिमन्त्र्य, प्रासादपरापराप्रासादमन्त्राभ्यामूर्ध्वाम्नायदीक्षितश्चेत् हसौःस्हौः इति मन्त्राभ्यां त्रिरभिमन्त्र्य, ततश्चरणादिदीक्षितश्चेच्चरणकुल[1]योगिनीविद्याभ्यां त्रिस्त्रिरभिमन्त्र्य, ततः सौः इत्यनुत्तरपराविद्यया दीक्षितश्चेत्तया त्रिरभिमन्त्र्य, पूर्णाभिषिक्तश्चेत्कामकलाविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य, षडन्वय-शाम्भवदीक्षायुक्तश्चेत् तद्विद्याभिस्त्रिरभिमन्त्र्य, ततो वक्ष्यमाणपाञ्चभौतिकमन्त्रैस्त्रिरभिमन्त्र्य, सृष्ट्यादिदशकला

१. 'कुशल' क. ख. पाठः।

जलमध्ये समावाह्य, प्राग्वत् तन्नामपुरःसरं तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, वामदेव ऋषिः जगती छन्दः सूर्यो देवता "ओं हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्"।। इत्यनयर्चा सकृदभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य ब्रह्मणे नमः इति जलमध्ये सम्पूज्य, ४ कं सृष्ट्यै नमः इत्यादिप्रागुक्तकलामातृकान्यासोक्तप्रकारेण कचवर्गकलाः सम्पूज्य, ततः टतवर्गोत्थजरादिदशकलाः समावाह्य प्राग्वत्तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "ओं प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।" इत्यनचा ऋचा सकृदभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य विष्णवे नमः इति संपूज्य टं जरायै नमः इत्यादि ताः सम्पूज्य, पुनः पयवर्गोत्थकलास्तीक्ष्णाद्याः समावाह्य प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बकरुद्रो देवता "ओं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात।।" इत्यभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य रुद्राय नमः इति सम्पूज्य पं तीक्ष्णायै नमः इत्यादिभिः सम्पूज्य पुनः षकारादिक्षकारान्तपञ्चवर्णोत्थाः पीतादिपञ्चकलाः समावाह्य, प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय गायत्र्याभिमन्त्र्य पुनरुच्चार्य ईश्वराय नमः इति सम्पूज्य षं पीतायै नमः इत्यादि ताः संपूज्य, ततः स्वरोत्था निवृत्त्यादिकलाः समावाह्य प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "विष्णुर्योनिं कल्पयतु" इति मन्त्रस्य त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुर्देवता सदाशिवप्रीत्यर्थे विनियोगः। "विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते"।। इत्यभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य सदाशिवाय नमः इति जलमध्ये सम्पूज्य, अं निवृत्त्यै नमः इत्यादिना सम्पूज्य मातृकया द्विरभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य मातृकासरस्वतीश्री० इति संपूज्य "४ ऐं अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधामयि। स्वच्छन्दस्फुरणामत्र विधेह्यकुंलरूपिणि"।। इत्यनेन त्रिरभिमन्त्र्य। "क्लीं अकुलस्थामृताकारे सिद्धिज्ञानकरे परे। अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि।।" इति च त्रिरभिमन्त्र्य, "सौः त्वद्रूपेणैकरस्यत्वं दत्त्वा ह्येतत्स्वरूपिणि। भूत्वा परामृताकारे मयि चित्स्फुरणं कुरु।।" इति च त्रिरभिमन्त्र्य। "ऐंप्लूंह्रौं जूंसः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय २ स्वाहा" इत्यमृतेश्वरीविद्यया चतुर्वारमभिमन्त्र्य, पुनस्तामुच्चार्य अमृतेश्वरीश्री० इति सकृत् सम्पूज्य, ततः ऐं वदवद वाग्वादिनि ऐंक्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय २ महाक्षोभं कुरु २ क्लींसौः मोक्षं कुरु २ सौः ह्सौः इति दीपिनीविद्यया पञ्चवारमभिमन्त्र्य, ततस्तत्र मूलविद्यामष्टधा जपित्वा तन्मध्ये चतुरस्रं पश्चिमद्वारं विचिन्त्य, तद्द्वारपार्श्वयोः कुलवटुकनाथतद्वल्लभाम्बाश्री० इति दक्षिणवामयोः सम्पूज्य तदन्तः प्राग्वत् षडासनानि सम्पूज्य, तन्मध्यत्रिकोणमध्यस्थबिन्दुमध्ये कामकलायां वक्ष्यमाणप्रकारेण देवीमावाह्य ध्यात्वा, षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य, गन्धादिभिः संपूज्य, वक्ष्यमाणसमष्टियोगिनीमन्त्रेण त्रिः सकृद्वा पुष्पाञ्जलीं दत्त्वा धूपदीपौ निवेद्य, योनिधेनुमहायोनित्रिशिखापद्मसंक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाखेचरीबीजयोनिपाशाङ्कुशधनुर्बा– णाख्या अष्टादश मुद्राः प्रदर्श्य नमस्कारमुद्रया प्रणमेत्। अत्रतावत्कर्तुमशक्तश्चेदभिमन्त्रणपूजनयोरन्यतरत् कुर्यात्। अत्राप्यशक्तश्चेदात्माष्टाक्षरपूजान्तं कृत्वानन्दभैरवमिथुनं सम्पूज्य सन्तर्प्य सृष्ट्यादिकलापूजामारभ्य शेषं प्राग्वत् समापयेत्, इति विशेषार्घ्यस्थापनविधिः।। ततस्तत्परतस्तेनैव विधिना श्रीपात्राख्यं पात्रान्तरं स्थापयेत्। तेन मूलदेव्यतिरिक्तावरणदेवतास्तर्पयेत्। पूजासमर्पणादिकं मूलदेव्यास्तर्पणं च विशेषार्घ्येणैव। तत्रानङ्गकु–

---

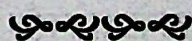
१. 'ह्यमृतरूपिणि' ग. पाठः। २. 'ताद्रूप्येणै' ग. पाठः। ३. 'थें त' ग. पाठः।

कुसुमादिपर्यन्तमावरणत्रयपूजासमर्पणमर्घ्यदानं च सामान्यार्घ्यजलेनैव कुर्यात्— इति श्रीपात्रस्थापनविधिः।।

ततस्तदनुक्रमेणैव तदधः पङ्क्त्याकारेण पाद्याचमनीयमधुपर्कार्थं पात्रद्वयं शुद्धजलेनापूर्य, तृतीयं मधुपर्कद्रव्येणापूर्य तेषु विशेषार्घ्यजलं किञ्चित्किञ्चिद् दत्त्वा मूलविद्यया पृथक् पृथगष्टवारमभिमन्त्रयेत्। मधुपर्के तु कांस्यपात्रं प्रशस्तं ताम्रपात्रवर्जमन्यद्वा पात्रान्तरेणाच्छादितं कुर्यात्। गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वाः सामान्यार्घ्ये निःक्षिपेत्। पाद्यपात्रे श्यामाकतण्डुलदूर्वाकमलापराजितापुष्पोशीररोचनाख्यद्रव्याष्टकं निः क्षिपेत्। आचमनीयपात्रे जातीफललवङ्गकक्कोलचूर्णानि निःक्षिपेत्। उक्तद्रव्याभावे तत्तद्वस्तुभावनया तण्डुलान् निःक्षिपेत्। मधुपर्कपात्रे दधिमधुघृतानि निःक्षिप्य विशेषार्घ्यबिन्दुना संस्कुर्यात्। दध्याद्यलाभे जलेनैव तद्भावनया पूरयेत्। ततः स्वदक्षिणाग्रे पाद्यादिपात्रविधानेनैव पुनराचमनीयपात्रमपि स्थापयेत्। अत्राप्यशक्तौ पाद्यादित्रयमेकस्मिन्नेव पात्रे दद्यात्। ततः स्वगुरुमुखादवगतविनियोगविधौ पात्रचतुष्टयं सामान्यार्घ्यविधिना प्रोक्षणीपात्रात् परतः स्थापयेत्। तेषां नामानि तु गुरुपात्रं, शक्तिपात्रं, वटुकपात्रं, आत्मपात्रं चेति। गुरुपादुकाविद्यया गुरुपात्रं, बालया शक्तिपात्रं, बटुकपात्रं तन्मन्त्रेणात्मपात्रमात्माष्टाक्षरमन्त्रेण चेति तत्तन्मन्त्रेण तत्तत्पात्रमष्टधाभिमन्त्रयेत्। ततः प्रोक्षणीपात्रोदकेन पात्रान्तरोद्धृतेन ओंऐंह्रींश्रींऐं प्रथमकूटमुच्चार्य आत्मतत्त्वात्मने नमः। ४ क्लीं द्वितीयं विद्यातत्त्वात्मने नमः। ४ सौः तृतीयं शिवतत्त्वात्मने नमः। ४ ऐंक्लींसौः समस्तमूलमुच्चार्य सर्वतत्त्वात्मने नमः, इति स्वात्मानं प्रोक्ष्य पुनर्मूलेन यागभूमिं यागोपकरणानि च श्रीचक्रं च प्रोक्ष्य सर्ववस्तुषु धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्— इत्यर्घ्यादिपात्रस्थापनविधिः।। अत्र श्रीपात्रस्थापनाशक्तौ विशेषार्घ्येणैव प्रोक्तपूजादिकं कुर्यात्।।

अथ सङ्क्षेपतः पात्रासादनप्रयोगः— तत्र स्ववामभागे चन्दनादिना त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्रात्मकं मण्डलं विलिख्य, तत्र पीठचतुष्टयात्मकं सम्पूज्य, ४ मं धर्मप्रददशकलात्मने वह्निमण्डलाय श्रीपरदेवतायाः कलशाधाराय नमः, इति सम्पूज्य, तदुपरि प्रागादिप्रादक्षिण्येन प्राग्वत् धूम्रार्चिरार्चिरादिदशकलाः सम्पूज्य, तत्रास्त्रक्षालितं सुधूपितं कलशं स्थाप्य, ४ अं अर्थप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय श्रीपरदेवतायाः कलशपात्राय नमः— इति सम्पूज्य कलशोपरि प्रागादिप्रादक्षिण्येन तपिन्यादिद्वादशकलाः सम्पूज्य, तस्मिन्नधिकारिभेदेन[1] विहितं क्षीराज्यमध्वासवान्यतमं साङ्गं पृथक्पात्रेषु प्राक्संस्कृतं द्रव्यं मूलविद्यासहितविलोमानुलोममातृ- कामुच्चरन् समापूर्य, तत्र षडङ्गयुवती-गुरुपङ्क्तित्रय-षडशनित्या-तद्दिननित्या-रत्नेश्वरीः संपूज्य, ४ उं कामप्रदषोडशकलात्मने सोममण्डलाय श्रीपरदेवतायाः कलशामृताय नमः— इति च संपूज्य, प्रागादिप्रादक्षिण्येनामृतादिषोडशकलाः सम्पूज्य, तदमृतं परब्रह्ममयं सञ्चिन्त्योद्धरणीसहितपिधानपात्रेणाच्छाद्य सूक्ष्मवस्त्रेण समाच्छादयेदिति कलशस्थापनविधिः।। अन्यानि च पात्राणि एतदुक्तरीत्या तत्तन्मन्त्रैः स्थापयेदिति सङ्क्षेपः।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे नवमः श्वासः।। ९।।



१. 'कार' क. पाठः।

अथ
श्रीविद्यार्णवतन्त्रे
दशमः श्वासः

अथात्मपूजा– तत्र स्वपुरतस्त्रिकोणमण्डले साधारं पात्रं संस्थाप्य, कलशोदकेनापूर्य विशेषार्घ्यबिन्दुं दत्त्वा, स्वदेहं चन्दनादिभिरलङ्कृत्यात्मानमिष्टदेवतारूपं ध्यायन् गुरुगणपतिपरदेवताः प्रणम्य मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं प्राग्वत् कुण्डलिनीं ध्यात्वा, तद्रूपिणीं मूलविद्यां परिभाव्य तत्तेजसा परिणतं स्वेष्टदेवतारूपं स्वदेहं भावयन् आत्मपूजां कुर्यात्। प्रागुक्तयोगपीठन्यासरीत्या स्वदेहं योगपीठत्वेन विभाव्य, हृत्कमलकर्णिकायां श्रीचक्राधिरूढां श्रीपरदेवतां विभाव्य, वक्ष्यमाणक्रमेण षोडशोपचारैराराध्य, पुष्पाञ्जलिपञ्चकं स्वदेहे समर्प्य धूपदीपौ निवेद्यान्तर्हवनं कुर्यात्। तत्र मूलाधारे त्र्यस्रं कुण्डं विभाव्य, तन्मध्ये कालाग्निमेव कामाग्निं वासनारूपेन्धनप्रज्वलितं प्राणादिपञ्चवायुभिः सन्धुक्षितं कुण्डलिनीरूपपरदेवताधिष्ठितं चिदग्निमण्डलं विभाव्य, प्रणवत्रितारादिमूलविद्यान्ते "धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्" इदं जुहोमि स्वाहा– इति पुण्यपापकृत्याकृत्यसङ्कल्पविकल्पधर्मात्मकं हविःसप्तकं सप्तावृत्त्या हुत्वा, ततः प्रणवत्रितारादिमूलविद्यान्ते "प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहं पूर्णवह्नौ[1] जुहोम्यहम्।" अधर्मे जुहोमि स्वाहेति पूर्णाहुतिं दत्त्वा निरस्तनिखिलप्रपञ्चो निष्कलब्रह्मरूपं साधकः कियत्क्षणं तिष्ठेत्। ततो देवीरूपमात्मानं ध्यात्वा श्रीगुरुपादुकां प्रणम्य शिरस्यन्नपूर्णां[2] ध्यात्वा तद्विद्यां यथाशक्ति जपित्वा समर्प्य प्राणायामर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलविद्यामष्टोत्तरशतवारं जपित्वा जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणमेदित्यात्मपूजा।। अथ शक्तिशोधनम्। तदुक्तं भावचूडामणौ–

"अदीक्षितकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते। बलाद्वा यत्नतो वापि अभिषेकं समाचरेत्।। १।।
आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुच्चरेत्। नमःशब्दं समुच्चार्य इमां शक्तिं ततो वदेत्।। २।।
पवित्रं कुरु शब्दान्ते मम शक्तिं कुरु प्रिये। वह्निजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्रः सुरेश्वरि ।। ३।।
तस्याः कर्णेऽभेदबुद्ध्या मायाबीजं समुच्चरेत्।" इति शक्तिशोधनम्।। ततः शोधितद्रव्यं तु अर्घ्ये निःक्षिपेत्।

तथा श्रीचक्रक्रमे–"पूर्वशोधितद्रव्यं तु गुप्तेनैव च सङ्क्षिपेत्।" इति। स्वतन्त्रे–

अर्घ्यद्रव्यमर्घ्यपात्रे निःक्षिप्य प्रयतः सुधीः। कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं स्वयम्भूकुसुमं तथा।। १।।
अर्घ्यं दत्वा महेशानि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। सुधया चार्घ्यदानेन योगिनीनां भवेत् प्रियः।। २।।
महायोगी भवेद् देवि पीठप्रक्षालितैर्जलैः। इति।

भैरवतन्त्रे–

पञ्चमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः। केवलैः पञ्चमैर्वापि सिद्धो भवति साधकः।। १।।

इति। तथा–

---

१. 'पूर्णवृत्तौ ग. पाठः। २. 'हपूर्णां' ख. पाठः।

पूजयेदथ पर्यङ्कमध्ये मण्डूकमप्यतः। कालाग्निरुद्रमाधारशक्तिं कूर्ममनन्तकम्[1] ॥ १॥
वराहं पृथिवीं कन्दं सुनालं केसराण्यपि। पद्मं च कर्णिकां चैव मण्डलं च समर्चयेत्॥ २॥
धर्मं वैराग्यमैश्वर्यं ज्ञानमज्ञानमेव च । अनैश्वर्यमवैराग्यमधर्ममपि पूजयेत् ॥ ३॥
ज्ञानविद्यात्मकं चैवमात्मनश्चापि पूजयेत्। गन्धपुष्पाक्षतादीनि दत्त्वा तत्र निधापयेत्[2]॥ ४॥
तत्रोपरि कुलं स्थाप्य पूजानुष्ठानमेव च। पूजयेच्च ततस्तस्यां पञ्च कामान् समाहितः॥ ५॥
ओङ्कारादिनमोन्तैश्च कुसुमैर्गन्धसंयुतैः । अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु पूजयेत् कुलनायकम् ॥ ६॥
वाग्भवं कामराजं च स्त्रीबीजं कामराजकम्। ब्लूमात्मकं ततो दत्त्वा आधारशक्तिमुद्धरेत्॥ ७॥
श्रीपादुकां ततो दत्त्वा पूजयामि पदं ततः। अनेन मनुना तस्या ललाटे तु मनोहरम् ॥ ८॥
त्रिकोणं तत्र संलिख्य सिन्दूराद्यैर्वरानने। इति।

उत्तरतन्त्रे —

तस्या मूर्ध्नि त्रिकोणं च मन्त्रमालिख्य साधकः। महाप्रेतासनं मध्ये बालां च पूजयेत्ततः॥ १॥

ह्सौं सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः — इति पूजयेत्। कुलार्णवे—

गणेशं च कुलाध्यक्षं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्। त्रिकोणेषु तु सम्पूज्य वसन्तं मदनं प्रिये।।२॥
स्तनयोः पूजयेत् पश्चान्मुखे तस्याः सुधाकरम्। इति।

उत्तरतन्त्रे—

मौलौ गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके। दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम्॥ १॥ इति।

ज्ञानार्णवे—

दक्षपादादिमूर्धान्तं वाममूर्धादि सुन्दरि। पादान्तं पूजयेत् सर्वाः कला वै कामसोमयोः॥ १॥

"श्रद्धा प्रीती रतिश्चैवे"त्यादि मातृकाश्वासे द्रष्टव्याः। उत्तरतन्त्रे— "स्वरैरेवं प्रपूज्या हि सर्वकार्यार्थसिद्धये।" इति। ललितातन्त्रे—

भगे तदीये विज्ञेया नाड्यस्तिस्रः प्रवाहिकाः। एका तु वाहिका चान्द्री सौरी चान्या तु वाहिका॥ १॥
आग्नेयी चापरा ज्ञेया पूजयेत् तास्तु साधकः। अम्बु स्रवति चान्द्री सा पुष्पं स्रवति भानवी।।२॥
बीजं स्रवति चाग्नेयी तासु नामभिरर्चयेत्। वाग्भवाद्यैर्नमोयुक्तैः पूजयेत् सुप्रसन्नधीः॥ ३॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

पूजयेन्मदनागारे रक्तचन्दनचर्चिते। भगमालामनुं प्रोच्य त्रितारानन्तरं तथा॥ १॥
'ऐंह्रींश्रींऐंजूंब्लूं'[3] चैव क्लिन्ने चैव ततः परम् (?)। सर्वाणीति भगानीति वशमानय मे ततः।।२॥

ख्रींह्रींक्लींब्लूं[4] भगमालिन्यै नमः।

ऐंह्रींश्रीमिति मन्त्रेण गन्धाद्यैस्तां समर्चयेत्। इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासौ महेश्वरि।।३॥
अथैवं च विधानेन तां षोडशोपचारकैः। इष्टदेवीं प्रपूज्याथ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥ ४॥

---

१. 'रम्' ग. पाठः। २. 'निधूपयेत्' क.ख. पाठः। ३. 'ऐंक्लींसौःऐं' इति क. पाठः। ४. 'ब्लूं' इति क. पुस्तके नास्ति।

अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम्। मूलमन्त्रं ततः ओंनमः शिवाय ततः परम्।।५।।
यजेत् तत्पुरुषाघोरसद्योजातादिसंज्ञकैः। तारं च शान्त्यतीतां च तदङ्गे तदनन्तरम्।।६।।
समग्रविद्यामुच्चार्य त्रिकोणं चैव पूजयेत्। इति।

उत्तरतन्त्रे–

अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि। वज्रेश्वरीं कालिकां च तथा दिक्चरवासिनीम्।। १।।
महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेत्तत्र साधकः। तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमेव च।। २।।
शिवं च तत्र निःक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया। धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।।३।।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्। स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः।। ४।।
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम्। प्रकाशाकाशहस्ताभ्यावलम्ब्योन्मनीस्रुचा।।५।।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्ण[१]मग्नौ जुहोम्यहम्। स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्तितः।।६।। इति।

ज्ञानार्णवे–

शिवशक्तिसमायोगो योग एव न संशयः। सीत्कारो मन्त्ररूपं च वचनं स्तवनं भवेत्।। १।।
आलिङ्गनं तु कस्तूरी कर्पूरं चुम्बनं भवेत्। नखदन्तक्षतादीनि पुष्पाणि विविधानि च।।२।।
मैथुनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातो विसर्जनम्। इति।

कुलार्णवे–

आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं तथा। दर्शनस्पर्शने योनेर्विकारं(सो)लिङ्गघर्षणम्।। १।।
प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नव पुष्पाणि पूजयेत्[२]। इति।

यामले–

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम्। कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः।। १।।
तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति हि। यत्कामं कुरुते मन्त्री तत् क्षणादेव सिद्ध्यति।।२।।

इति। ज्ञानार्णवे–

कुलद्रव्यं च संशोध्य शिवशक्तिमयं प्रिये। बीजामृतं परं ब्रह्म जपन्निक्षिप्य[३] सुन्दरि।। १।।
अर्घ्यपात्रामृतैर्यत्नान्निर्विकल्पः सदानघः। श्रीविद्याक्रममभ्यर्च्य परब्रह्ममयो भवेत्।। २।।
इति ते कथितं ज्ञानं सारं रम्यं[४] वरानने। सविकल्पस्तु सततं पापभाग्जायते नरः।। ३।।
विचिकित्सापरो मन्त्री जायते गुरुतल्पगः। अत एव वरारोहे निर्विकल्पः सदा भवेत्।। ४।। इति।

कुलार्णवे–

कुलामृतं समादाय तदर्घ्ये निक्षिपेद् बुधः। तदर्घ्येण समाराध्य पूजाशेषं समापयेत्।। १।।

शोधितस्य कुलामृतसंज्ञा। शोधनमन्त्रस्तु श्रीक्रमे–

ओंअमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि प्रिये। देवि पदं शुक्रशापं प्रमोचय पदद्वयम्।। १।।

---

१. 'हं पूर्ण' क. ख. पाठः। २. 'योजयेत्' ग. पाठः। ३. 'जपं' ग. 'मयं' ख. पाठः। ४. 'सामरस्यं' घ. पाठः।

अमृतं स्रावयद्वन्द्वममृतं कुरुयुग्मकम्। स्वाहापदं ततो देवि शुक्रशुद्धिर्भवेत् प्रिये।।२।।
शुक्लैरक्षततण्डुलैः सुगन्धिकुसुमैर्युतैः। अर्घ्यद्रव्यैश्च देवेशि योनौ देवीं प्रपूजयेत्।।३।। इति।
उत्तरतन्त्रे—
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैः कुलसाधकः। विधाय वन्दितां तां च तदुच्छिष्टं स्वयं चरेत्।। १।।
इति। शिवागमे च—
अविचारं[१] शक्त्युच्छिष्टं पिबेच्चक्रपुरो यदि। घोरं च नरकं याति कुलमार्गात् पतेद् ध्रुवम्।। १।।
तस्माद्विचार्य यत्नेन शक्त्युच्छिष्टं पिबेत् सुधीः। आनन्दं कारयेद्वीरस्तत्त्वं[२] निर्भ्रान्तितः पिबेत्।।२।।

इति सङ्क्षेपतः शक्तिशोधनं, विशेषस्त्वग्रे प्रयोगविधौ वक्ष्यते।। अथ पीठपूजा प्रयोगरूपे—तत्रार्घ्योदकेन श्रीचक्रमभ्युक्ष्य स्ववामतः पीठोपरि ४ गुरुपादुकाविद्यामुच्चार्य श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, दक्षिणे गं गणपतिश्री० इति सम्पूज्य, सर्वाधस्तादारभ्यातलादिसप्तपातालादिभावनयोपर्युपरि ४ मण्डूकाय नमः, ४ कालाग्निरुद्राय नमः, ४ मूलप्रकृत्यै नमः, ४ आधारशक्तये०, ४ कूर्माय०, ४ वराहाय०, ४ अनन्ताय०, ४ पृथिव्यै०, अमृताम्भोनिधये०, ४ रत्नद्वीपाय०, ४ नानावृक्षमहोद्यानाय०, ४ कल्पवृक्षवाटिकायै०, हरिचन्दनवाटिकायै०, ४ मन्दारवाटिकायै०, ४ पारिजातवाटिकायै०, ४ पुष्परागरत्नप्राकाराय०, ४ पद्मरागरत्नप्राकाराय०, गोमेदरत्नप्राकाराय०, ४ इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय०, ४ वज्ररत्नप्राकाराय०, ४ वैदूर्यरत्नप्राकाराय०, ४ माणिक्यमण्डपाय०, ४ सहस्रस्तम्भमण्डपाय नमः, ४ अमृतवापिकायै०, आनन्दवापिकायै०, ४ विमर्शवापिकायै०, ४ बालातपोद्गाराय०, ४ चन्द्रिकोद्गाराय०, ४ महाशृङ्गारपरिखायै०, ४ महापद्माटव्यै०, ४ चिन्तामणिगृहराजाय०, ४ पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय०, ४ दक्षिणाम्नायदक्षिणद्वाराय०, ४ पश्चिमाम्नायपश्चिमद्वाराय०, ४ उत्तराम्नायोत्तरद्वाराय०, ४ रत्नद्वीपवलयाय०, ४ महासिंहासनाय नमः। ततो महासिंहासनं पञ्चप्रेतमयं ध्यात्वा तस्य वायव्यादिकोणचतुष्टयगतपादचतुष्टयत्वेन स्थितान् ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरान् पीतश्यामरक्तसितार्कप्रभांश्चतुर्भुजानुपविष्टांस्तेषां स्कन्धेषु सुलग्नमुत्तानशायिनमुदक्शीर्षं सदाशिवमिन्दुप्रभं ध्यात्वा पूजयेत्। तद्यथा—वायव्ये ४ लां पृथिव्याधिपतये ब्रह्मणे नमः ब्रह्मप्रेतासनश्री०, ईशाने ४ वामपामधिपतये विष्णवे नमः विष्णुप्रेतासनश्री०, आग्नेये ४ रां तेजोऽधिपतये रुद्राय नमः रुद्रप्रेतासनश्री०, नैर्ऋते ४ यां वाय्वधिपतये ईश्वराय नमः ईश्वरप्रेतासनश्री०, मध्ये ४ ह्सौः वियदधिपतये सदाशिवाय नमः सदाशिवमहाप्रेतासनश्री०— इति पञ्चप्रेतासनं सम्पूज्य, तस्य वायव्यादिकोणचतुष्टये धर्मादिचतुष्टयं तस्य पश्चिमादिचतुर्दिक्ष्वधर्मादिचतुष्टयं च प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तन्मध्ये मायाविद्ये सम्पूज्य, तदुपरि पञ्चशत[३] फणविराजितायानन्ताय नम इति सम्पूज्य, तन्मध्ये मौलावष्टदलकमलं कामेश्वरीपीठं ध्यात्वा, पद्माय नमः इत्यादिपरेतत्त्वान्तं सम्पूज्याष्टदलकेसरेषु मध्ये च मोहिन्यादिनवशक्तीर्योगपीठन्यासोक्ताः सम्पूज्य, न्यासोक्तपीठमन्त्रेण समस्तं पीठं संपूज्य, तदुपरि श्रीचक्रं विभाव्य ४ समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टियोगिनीमन्त्रेण समस्तचक्रं सम्पूज्य, बिन्दुचक्रे ४ मूलं ओंह्रौंक्लींऐं[४] भगवति ब्लूं नित्याकामेश्वरि स्त्रीं सर्वसत्त्ववशंकरि सः त्रिपुरभैरवि ऐंविच्चे ह्रींश्रीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यम्बाश्री०, इति पूर्णविद्यया त्रिः सम्पूज्य, पुनर्मूलेन त्रिः सम्पूज्य श्रीचक्रं पुरत्रयात्मकं ध्यात्वा, चतुरस्रत्रयषोडशदलाष्टदलात्मके प्रथमचक्रे ४ प्रथमकूटमुच्चार्य शरीरात्मने नमः, चतुर्दशारदशारद्वयात्मके मध्यचक्रे ४ द्वितीयं बुद्ध्यात्मने नमः, अष्टारत्रिकोणबिन्द्वात्मकान्तश्चक्रे ४ तृतीयं प्राणात्मने नमः, इति सम्पूज्य, पुनर्बाह्यतृतीये बाह्यमध्यान्तरभेदेन प्रोक्तक्रमेण कूटत्रयेण सम्पूज्य, तथा मध्यचक्रत्रये आभ्यन्तरत्रये च सम्पूज्य,

१ 'रात्' ग. पाठः। २ 'स्ततो' क. ख. पाठः। ३ 'पञ्चदश' ग. पाठः। ४ 'ओंह्रोंक्लींऐं' ग. पाठः।

त्रिकोणचक्रस्य कोणत्रये मध्ये च पीठचतुष्टयं सम्पूज्य, बिन्दुचक्रे महोड्यानपीठे हिरण्मयसहस्रदलकमलाय नमः, इति सम्पूज्य, चतुरस्रपद्मद्वये चतुर्दशारदशारद्वयाष्टार[1] त्रिकोणबिन्दुचक्रेषु षडासनानि संपूज्य, चतुरस्रे ४ नादशक्तिश्री०, षोडशदले बिन्दुशक्तिश्री०, अष्टदले ४ कलाशक्तिश्री०, चतुर्दशारे ४ ज्येष्ठाशक्तिश्री०, बाह्यदशारे ४ रौद्रीशक्तिश्री०, अन्तर्दशारे ४ वामाशक्तिश्री०, अष्टकोणे ४ विषघ्नीशक्तिश्री०, त्रिकोणे, ४ दूतरीशक्तिश्री०, बिन्दौ ४ सर्वानन्दाशक्तिश्री० इति नव शक्तीः संपूज्य, षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकं श्रीचक्रं ध्यात्वा ४ अं ५० शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामाया-कलाविद्यारागकालनियतिपुरुषप्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धा-काशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मने श्रीमहा– त्रिपुरसुन्दर्याः योगपीठाय नमः, इति समस्तं पीठं पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, ततस्तदुपरि मध्ये प्रसूनतूलिकां कल्पयामीति पुष्पं निःक्षिप्य, तदुपरि ४ ह्रींश्रीं महात्रिपुरसुन्दर्याः सकलचैतन्यानन्दमयीं श्रीकामेश्वरकामेश्वरीमूर्तिं कल्पयामीति पुष्पादिप्रक्षेपेण ध्यानोक्तां मूर्तिं भावयन् शक्त्युत्थापनमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य परस्यै कामेश्वरकामेश्वरीमूर्त्यै नमः, इति कल्पितमूर्तिं पूजयेदिति योगपीठपूजा।।

अथ श्रीचक्रपूजा—तत्र प्रथमं स्वहृत्कमले श्रीचक्रं ध्यात्वा तन्मध्ये देवीं ध्यायेत्

ततो ध्यानं प्रवक्ष्यामि त्रिदशैः सेवनीयकम्। ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम्।। १।।
जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम् । पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदरसन्निभाम् ।। २।।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम्। कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम्।।३।।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम्। किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।। ४।।
पिनाकधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम्। आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ।। ५।।
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम्। सुगण्डमण्डलाभोगजिते[2]न्द्वमृतमण्डलाम्।। ६।।
विश्वकर्मावि[3]निर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम्। ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम्।। ७।।
दाडिमीबीजवज्राभदन्तपङ्क्तिविराजिताम्। रत्नद्वी(दी)पसमुद्भासिजिह्वां मधुरभाषिणीम्।। ८।।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् । अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।। ९।।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणाललसितैर्भुजैः। मणिकङ्कणकेयूरभारखिन्नैः प्रशोभिताम्[4]।। १०।।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् । काराम्बुजनखज्योतिर्वितानितनभस्तलाम्[5]।। ११।।
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् । त्रिवलीवलनायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ।। १२।।
लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम्। अनर्घरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम्।। १३।।
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजीवराङ्कुशाम्। कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम्।। १४।।
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम्। गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम्।। १५।।
नूपुरैर्विलसत्पादपङ्कजातिमनोहराम् । ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजाम् ।। १६।।
तनुदीर्घाङ्गुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम्। शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम्।। १७।।
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम्। रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ।। १८।।

१.'सत्रिकोण' ग.पाठः। २. 'जीवे' ख. पाठः। ३. 'दि' क. पाठः। ४. 'प्रसेविताम्' ग. पाठः। ५. 'विराजितनभस्थलाम्' घ. पाठः।

रत्नपुष्पनिविष्टां च रक्ताभरणमण्डिताम्। चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पञ्चबाणधनुर्धराम्।। १९।।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलापूरिताननाम्। महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम्।। २०।।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्। जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम्।। २१।।
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम्। सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम्।। २२।।
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां परमानन्दनन्दिताम्। एवं ध्यायेत् परेशानीं महात्रिपुरसुन्दरीम्।।२३।।

इत्येवं स्वैक्येन ध्यात्वा मूलविद्यया शिरसि पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पुनर्हृदयकमले यथोक्तरूपां भगवतीं साङ्गां सावरणां ध्यात्वा, देवीं मानसैरुपचारैः सम्पूज्य नैवेद्यं दत्त्वा भोजनावसरेऽन्तर्वैश्वदेवं कुर्यात्।। तद्यथा– तत्र मूलाधारे आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मेत्यादिचतुष्टयक्लृप्तं चतुरस्रं कुण्डल्यग्निसमुज्ज्वलं कुण्डं ध्यात्वा, तत्र श्रीदेवतां ध्यात्वा तन्मुखे मूलविद्यान्ते ''अहन्तां जुहोमि स्वाहा'' इत्याद्यहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणि सुषुम्नास्रुग्युक्तमनःस्रुवेण प्रत्येकं हुत्वा, पुनर्हृदयकमले भुक्तवतीं ध्यात्वा उत्तरापोशाना[1] दिसर्वोपचारैराराध्य, मूलविद्यां यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य मूलविद्यया व्यापकं विन्यस्य, कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय मातृकाम्भोजत्वेन कल्पयित्वा त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा, हृदि श्रीचक्रराजे देवीं यथोक्तरूपां सपरिवारां ध्यात्वा तेजोरूपतामापा[2]द्यान्तर्मुद्राप्रयोगेण मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य तया सह षट्चक्रभेदक्रमेण हृदयान्तः स्फुरन्तीं तां तेजोमयीं सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, परतेजःसङ्गमेनामृतमहाम्बुधौ क्षणं विश्रम्य शिवशक्तिसामरस्यसुखमनुभूय, ४ हस्त्रैं हसकलह्रीं[3] हस्त्रौः नमः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि

''महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।। एह्येहि देवदेवेशि त्रिपुरे देवपूजिते। परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु सिद्धये।। देवेशि भक्तसुलभे परिवारसमन्विते। यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव।।''

इत्यावाहनमन्त्रमुच्चार्य वहन्नासापुटाध्वना त्रिखण्डामुद्रामुद्रितकरस्थपुष्पाञ्जलौ तत्तेजः समानीय,'श्रीपीठान्तः– कल्पितमूर्तेः शिरसि ब्रह्मरन्ध्रस्थाने सन्निवेश्य, कामेश्वराङ्कस्थां सावरणां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं सर्वावयवभावेन ध्यायन् मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि इह तिष्ठ तिष्ठेति स्थापिन्या मुद्रया संस्थाप्य, तथैव इह संनिधेहि सन्निधेहीति सन्निधापनीयमुद्रया सन्निधाप्य, पुनस्तथैव सन्निरुध्यस्व २ इति सन्निरोधिन्या सन्निरुध्य, तथैव सम्मुखीभव २ इति तन्मुद्रया सम्मुखीकृत्य, तथैवावगुण्ठिता भव २ इति तन्मुद्रयावगुण्ठ्य, देव्यङ्गे षडङ्गविन्यासेन सकलीकृत्य, तथैव धेनुमुद्रयामृत-धारयाभिषेचनेनामृतीकृत्य, तथैव महामुद्रया, परमीकृत्य एता आवाहन्यादि- नवमुद्राः प्रदर्श्य, ततो मूलविद्यां पूर्वोक्तदीपिनीविद्यामकारादिक्षकारान्तां मातृकां चोच्चार्य मूलेन देवीं त्रिः सम्प्रोक्ष्य, ४ ''श्रींह्रींक्लींहंगणपकालिके सौः सकलह्रींक्लींह्रींक्रीं'श्रीं'' इति जीवन्यासविद्यया देव्या हृदयकमले जीवं संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। तत्र पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण देवीं हृदये स्पृशन् तन्मन्त्रं त्रिः सकृद्वा पठेदित्येवं प्राणप्रतिष्ठां विधाय, ततः सङ्क्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाखेचरीबीजयोन्याख्या नवमुद्राः ''द्रांद्रींक्लींब्लूंसःक्रों हसखफ्रें हसौं ऐं'' इत्येकैकबीजोच्चारणपूर्वकमेकैकां मुद्रां प्रदर्श्य, आंह्रीं इति पाशमुद्रां क्रोंक्रों इत्यङ्कुशमुद्रां धंधं इति धनुर्मुद्रां द्रांद्रींक्लींब्लूंसःयांरांलांवांसां, इति दशभिर्बीजैर्बाणमुद्रां च प्रदर्श्य, ४ मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामीति देवीं सम्पूज्य, पुनः ४ मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां तर्पयामीति सव्यहस्ताङ्गुष्ठानामिकाभ्यां

१. 'उक्तापासना' क. पाठः। 'उक्तोपा' ख. पाठः। २. 'माया' क. पाठः। ३. 'री' ग. पाठः। ४. 'ब्लींक्लीं' ग. पाठः।

विशेषार्घ्यबिन्दुभिस्त्रिवारादन्यूनमष्टोत्तरसहस्रावधि यथाशक्ति श्रीपरदेवताया मुखकमले तर्पयित्वा आसनादिषोडशोपचारान् कुर्यात्। ततो मूलविद्यामुच्चार्य भगवति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि तुभ्यमिदमासनं कल्पयामि अत्र आस्यतां भवत्येति वार्क्षपौष्पचार्मवास्त्रतैजसाद्यन्यतममासनं कल्पयित्वा देव्या वामभागे निवेश्य, सिंहासनपद्ममुद्रे प्रदर्श्य प्रणम्य, हंहंहं इदमिदं गृहाण स्वाहेति प्रार्थनमुद्रया निवेद्य मूलेन पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततो मूलविद्यामुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि स्वागतमिति कुशलप्रश्नं कृत्वा, स्वागतकुशलमुद्रे प्रदर्श्य मूलेन पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततो मूलं० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहेति देव्याः शिरसि सामान्यार्घ्यात् किञ्चिज्जलमुद्धृत्य दद्यात्। ततो निवेदनमन्त्रेण निवेद्यार्घ्यमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततः पाद्यपात्राज्जलमुद्धृत्य ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै पाद्यं परिकल्पयामि नमः, इति देव्याः पादयोः पाद्यं दत्त्वा, प्राग्वन्निवेद्य पाद्यमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। एवमाचमनीयं परिकल्पयामि सुधेति मुखे, मधुपर्कं कल्पयामि सुधा, इति मुखे दत्त्वा तन्मुद्रे प्रदर्श्य, ततः पुनराचमनीयपात्रस्थशुद्धजलेन पूर्ववदाचमनीयं मुखे दत्त्वा, ततो रत्नपादुके उपनीय

"पादुके परिधायाम्ब त्रिपुरे रत्ननिर्मिते। स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थे शक्रदिग्गतम्॥"

इति प्रार्थ्य रत्नपादुके परिधाप्य स्नानमण्डपं नीत्वा स्नानवस्त्रं परिधाप्य कनकासने समुपवेश्य प्राग्वदर्घ्यपाद्याचमनीयानि दत्त्वा, ४ मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै स्नानीयं कल्पयामि नमः, इति सुगन्धितैलामलकादिस्नानीयद्रव्याणि परिकल्प्य प्राग्वन्निवेद्य, महाराजोपचारवदभ्यङ्गोद्वर्तनकेशप्रसाधनानि विधायोष्णोदकेन निर्मलस्नानं कारयित्वा वैदिकपौराणिकमन्त्रैः पञ्चगव्यैः पञ्चामृतेन च स्नपयित्वा, पुनः शुद्धजलेन स्नपयित्वा, इक्षुरसनारिकेलसलिलपनसाम्रादिविविधफलरसैः कर्पूरादिसुवासितैः स्नपयित्वा, पुनर्जलेनाभिषिच्य देवाङ्गनाभिः सुवर्णादिघटैर्नानातीर्थोपहृतैः सलिलैः स्नपयित्वा, प्राग्वत्पुष्पाञ्जलिं मूलेन दत्त्वा स्नानमुद्रां प्रदर्श्याचमनीयं कल्पयित्वा, केशाङ्गमार्जनार्थे वस्त्रं दत्त्वा जलप्रच्यवनं कारयित्वा, नानारत्नखचितं रत्नदुकूलद्वयं वमिति[1] प्रोक्ष्य मूलेनाभिमन्त्र्य बृहस्पतिदैवताभ्यां वासोभ्यां नमः, इति सम्पूज्य ४ मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै वाससी परिकल्पयामि नमः, इति परिधाप्य वस्त्रमुद्रां प्रदर्श्य पुनराचमनीयनिवेदनं पुष्पाञ्जलिदानं च कृत्वा, पट्टसूत्रभवं स्वर्णादिरचितं वा कण्ठसूत्रं विष्णुदैवताय कण्ठसूत्राय नमः, इति पूजितं देव्यै समर्प्योपवीतमुद्रां प्रदर्श्य मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि

"पादुके परिधायाम्ब त्रिपुरे रत्ननिर्मिते। आगच्छ निर्मलं याम्यमलङ्कारस्य मण्डपम्॥"

इति प्रार्थ्यालङ्कारमण्डपं नीत्वा सिंहासने समुपवेश्यालङ्कारान् पुरतो निधाय वमिति प्रोक्ष्य मूलेनाभिमन्त्र्य, विष्णुदैवतेभ्योऽलङ्कारेभ्यो नमः, इति सम्पूज्य, मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै मुकुटाद्यलङ्कारान् परिकल्पयामि नमः इति सामान्यत उत्सृज्य, विशेषतो मुकुटं परिकल्पयामि नमः, इत्यादि-मुकुट-ललाटाभरण-कर्णपूर-हार-ग्रैवेयकाङ्गुलीयक-प्रालम्बिका-रत्नसूत्राक्षरावली-कर्णोत्तंस-पार्श्वभूषण-नखद्योताङ्गुलीयककण्ठ-लम्बार्धहार-मृदुमारललन्तिकाङ्गद-केयूर-वलय-बाहुवेष्टन-सीमन्तिक-गण्डभूषण-भ्रूभूषण-नाभिभूषण-रत्नमाला-मणिमेखला। शृङ्खला-दन्तरत्न-कर्णक[2]-नीवीरत्न-जानुभूषण-पादाङ्गुलीयक-नूपुरगुच्छक-पादकटक-हंसक-क्षुद्रघण्टिका-मुखपत्रमिति चत्वारिंशद्भिरन्यैश्च चूडारत्नताटङ्कादिनानाविधैः स्त्र्यलङ्करणैरङ्कृत्य, पूर्ववन्निवेदनमन्त्रेण निवेद्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वाभरणमुद्रां प्रदर्श्य, रत्नपादुके उपनीय ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि

---

१. 'तुभ्यमिति' ख. पाठः। २. 'कर्णिका' ख. पाठः।

"पादुकायुगमारुह्य पञ्चवाद्यपुरःसरम्। यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह।।"

इति प्रार्थ्य च्छत्रचामरादिनानोपकरणहस्ताभिः शक्तिभिः सह यागमण्डपं नीत्वा, कामेश्वराङ्के भगवतीं समुपवेश्य परिवारदेवताश्च यथास्थानं समुपवेशयेत्।। "ततः श्रीचक्रमारूढां ध्यायेत् त्रिपुरसुन्दरी"मित्यादिप्रागुक्तरीत्या ध्यात्वा मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा चन्दनागरुकस्तूर्यादिगन्धपञ्चकं चूर्णघृष्टदाहजसमर्दजप्राण्यङ्गजमिति पञ्चविधं गन्धं तदन्यतमं वा प्राग्वत् प्रोक्ष्य विष्णुदैवताय गन्धाय नमः, इति सम्पूज्य, ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै गन्धं परिकल्पयामीति गन्धं समर्प्य, प्राग्वन्निवेद्य गन्धमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सुगन्धरूपाणि नानाविधपुष्पाण्यानीय प्रोक्ष्य वनस्पतिदेवताभ्यः पुष्पेभ्यो नमः, इति सम्पूज्य ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै पुष्पाणि परिकल्पयामि वौषडिति पुष्पाणि निवेद्य पुष्पमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, धूपग्राहिण्यां धूपमानीय प्रोक्ष्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य क्लीं सुरभितेजसे स्वाहा, इति मन्त्रेण दशाङ्गं शर्कराघृतमिश्रितं गुग्गुलं वा निःक्षिप्य गन्धर्वदैवत्याय धूपाय नमः, इति धूपं सम्पूज्य, ४ मूलम्—

"वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।"

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै धूपं परिकल्पयामि नमः, इति धूपमुत्सृज्य धूममुद्रां प्रदर्श्य, वामभागे घण्टां निधायास्त्रेण प्रोक्ष्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य पुनरस्त्रेण गन्धादिभिः सम्पूज्य "ओंगजध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा" इति घण्टामन्त्रेणाभिमन्त्र्य वामहस्तेन वादयन् दक्षिणहस्तेन धूपपात्रं चालयन् नीचैर्धूपं निवेद्य तत्पात्रं देव्या वामभागे निधाय, दीपपात्रं गोघृतेनापूर्य तस्मिन् कर्पूरगर्भिणीं वर्तिं निःक्षिप्य ह्रीमिति प्रज्वाल्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य विष्णुदैवत्याय दीपाय नमः, इति सम्पूज्य ४ मूलं "स्वप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्"।। श्रीत्रिपुरसुन्दरीपादुकायै दीपं परिकल्पयामि नमः, इति दीपमुत्सृज्य दीपमुद्रां प्रदर्श्य प्राग्वन्निवेद्य घण्टावादनपूर्वकमुच्चैर्दीपं प्रदर्श्य तत्पात्रं देव्या दक्षिणभागे निवेश्य, देव्यग्रे चतुरस्रमण्डलं जलेन निर्माय स्वर्णादिपात्रं नानाव्यञ्जनभरितं षड्रसोपेतं पञ्चविधनैवेद्योपेतं तस्मिन् मण्डले साधारं निधाय, मूलेन निरीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्य तेनैव कुशैस्त्रिः सन्ताड्य कवचेनाभ्युक्ष्य "ओंजूंसः वौषट्" इत्यनेन सप्ताभिमन्त्रितेन जलेन पुनः प्रोक्ष्यास्त्रमन्त्रेण चक्रमुद्रां प्रदर्श्याधोमुखवामकरेण नैवेद्यं स्पृशन् यमिति बीजेन सप्तधा जपन् तद्गतदोषान् संशोध्य, अधोमुखदक्षकरेण स्पृशन् रमिति वह्निबीजं सप्तवारं जपन् तद्गतदोषान् सन्दह्य अधोमुखवामकरेण स्पृशन् वमिति बीजेन सप्तधाभिमन्त्रणेन तदमृतीकृत्य, मूलेन विशेषार्घ्यबिन्दुभिः प्रोक्ष्य विष्णुदैवत्याय नैवेद्याय नमः, इति संपूज्यास्त्रेण संरक्ष्य, मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य "ओंक्लींकामदुघे अमोघे वरदे विच्चे स्फुर २ श्रींश्रींश्रीं" इति कामधेनुविद्यया धेनुमुद्रयामृतीकृत्य (महामुद्रया परमीकृत्य,) देव्यै प्राग्वत् पाद्याचमनीये दत्त्वा, मूलविद्यया देवीं सम्पूज्य पात्रान्तरे जलममृतीकृत्य, चुलुकेनादाय वामाङ्गुष्ठेन नैवेद्यपात्रं स्पृशन् मूलमुच्चार्य साङ्गायै सायुधायै सपरिवारायै सर्वात्मिकायै भगवत्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै नैवेद्यं कल्पयामि नमः, इति नैवेद्योपरि चुलुकोदकं समर्पयेत्। ततः कृताञ्जलिः— मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि

"हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्। पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि।।"

इत्यन्ते प्रागुक्तमनुना निवेद्य पात्रान्तरे जलममृतीकृत्य देव्या दक्षिणहस्ते तज्जलं किञ्चिद् दत्त्वा ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा, इति देवीं प्राशयित्वा, वामकरेण ग्रासमुद्रां विकचोत्पलसन्निभां दर्शयन् दक्षिणहस्तेन प्राणादिपञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत्। तद्यथा—४ ऐंओं प्राणाय स्वाहा, इत्यङ्गुष्ठेन कनिष्ठानामिके स्पृशेत्। ४ क्लींओं अपानाय स्वाहा, इत्यङ्गुष्ठेन तर्जनीमध्यमे स्पृशेत्। ४ सौःओं व्यानाय स्वाहा, इत्यङ्गुष्ठेनानामिकामध्यमे स्पृशेत्। ४ ऐंक्लीं उदानाय

स्वाहा, इत्यङ्गुष्ठेनानामिकामध्यमातर्जनीः स्पृशेत्। ४ ऐंक्लींसौः समानाय स्वाहा, इत्यङ्गुष्ठेन सर्वाः स्पृशेत्,— इति प्राणादिपञ्चमुद्राः प्रदर्शयन् पञ्च ग्रासान् ग्राहयित्वा, कृताञ्जलिर्मूलविद्यामुच्चार्य ऐं आत्मतत्त्वव्यापिकाश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी तृप्यतु। पुनः मूलं क्लीं विद्यातत्त्व०। ३ मूलं सौः शिवतत्त्व०। मूलं ऐंक्लींसौः सर्वतत्त्व०, इति तत्त्वैर्ग्रासचतुष्टयं ग्राहयित्वा कृताञ्जलिर्मूलविद्यामुच्चार्य नैवेद्यमुद्रां करद्वयेन प्रदर्शयन् ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि—

"चित्पात्रे सद्धविः सौख्यविविधानेकभक्ष्ययुक्। निवेदयामि ते देवि सानुगायै जुषाण तत्॥"

इत्यनेन मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं समर्प्य नैवेद्यजातं तादात्म्येन सपरिवारायै देव्यै निवेदयेत्। ततः स्वर्णादिपात्रस्थं कर्पूरादिसुवासितं जलं धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि

"नमस्ते देवदेवेशि सर्वतृप्तिकरं परम्। अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्॥ अमृतानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्॥" इति देव्यै जलं निवेद्यास्त्रमन्त्रेण जवनिकया भोजनस्थलं संवेष्ट्य घण्टां वादयन् भुञ्जानां परदेवतां ध्यायेत्। तद्यथा—

"ब्रह्मेशाद्यैः सरसमभितः सूपविष्टैः समेता शिञ्जद्बालव्यजननिकरैर्वीज्यमाना सखीभिः।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरा पङ्क्तिभोक्तॄन् हसन्ती भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसान् चिद्विलासा॥"

इति ध्यात्वा, मूलविद्यां दशधा जपित्वा जलं समर्प्य भुक्तवतीं सन्तृप्तां देवीं विभाव्य, धेनुमुद्रया पात्रान्तरे जलममृतीकृत्य "ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा" इति देव्या हस्ते उत्तरापोशानजलं दत्त्वा तया तत्प्राशितं विभाव्य गतसारं नैवेद्यं समुद्धृत्य नैर्ऋत्यां दिशि स्थापयेत्। ततोऽस्त्रमन्त्रेण तत्स्थानं प्रोक्षिण्यद्भिः संशोध्य, हस्तमुखप्रक्षालनार्थे देव्यै जलं दत्त्वा करोद्वर्तनार्थे सुगन्धचूर्णं च दत्त्वा गण्डूषाणि कारयित्वा कर्पूरशकलैर्दन्तधावनं कारयित्वा, पुनर्गण्डूषाणि कारयित्वा चरणप्रक्षालनमाचमनीयं च दत्त्वा कर्पूरादिनानासुगन्धमिश्रितं ताम्बूलमानीय प्रोक्ष्य वनस्पतिदैवत्याय ताम्बूलाय नमः, इति सम्पूज्य, मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै ताम्बूलं कल्पयामि नमः, इत्युत्सृज्य, ४ मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि

"तमालदलकर्पूरपूगभारतरङ्गितम्। संशोधितं सुगन्धं च ताम्बूलं परिगृह्यताम्॥

इत्यन्ते 'ओंहंहंहं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा' इति देव्यै ताम्बूलं निवेद्य, योनिमुद्रया प्रणम्य, मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि, इति सम्पूज्य वक्ष्यमाणप्रकारेण पूजां विधाय, क्लीमिति नमस्कारमुद्रां बद्ध्वा मूलेन प्रदर्श्य प्रणम्य हूमिति त्यजेत्। शाक्तश्चेदनुलोमविलोमेन मूलविद्यया सम्पुटितैर्मातृकाक्षरैः शुद्धमातृकास्थानेषु देव्या देहे गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूजयेत्। षडङ्गपूजामपि देव्या देहे कुर्यात्— इति लयाङ्गपूजां विधाय सङ्क्षोभणयादिमुद्राः प्रदर्श्य, विशेषार्घ्यबिन्दुभिस्त्रिर्वामहस्तेन सन्तर्प्यावरणपूजां कुर्यात्॥

अथ लयाङ्गपूजा तु तन्त्रान्तरे—

समूलैर्मातृकावर्णैरनुलोमविलोमगैः। तत्तत्स्थानेषु देव्यङ्गे गन्धाम्भोभ्यक्तपुष्पकैः॥ १॥
पूजयित्वा प्रथमतः षडङ्गैः पूजयेत् सुधीः। लयाङ्गमेतत् संप्रोक्तं देवताभावसिद्धिदम्॥ २॥
षडङ्गावरणं चक्रे कल्पोक्तविधिना यजेत्। भोगाङ्गं तत्समुद्दिष्टं देवताप्रीतिकारकम्॥ ३॥

इति। अत्र लयाङ्गभोगाङ्गपूजा त्वावश्यकी "लयाङ्गं कल्पयेद् देहे देव्यास्तु परमेश्वरि" इति ज्ञानार्णवोक्तत्वात्, अत्र लयाङ्गभोगाङ्गे मतद्वयसम्मते। देवशुद्धौ विशेषमाह कुलार्णवे—

मूलमन्त्रेण दीपिन्या मालिन्याघ्योंदकेन च। त्रिवारं प्रोक्षयेदेवं देवशुद्धिरितीरिता॥ १॥

इदं तु कालीमते। कादिमते तु—

मूलमन्त्रेण दीपिन्या मधु (पर्का?मत्या) र्घ्यबिन्दुभिः। त्रिवारं प्रोक्षयेदेवं देवशुद्धिरितीरिता॥ १॥

इति त्रिपुरार्णवोक्तत्वात्। अत्र समष्टिपूजा व्यष्टिपूजा च कर्तव्या। तदुक्तं स्वच्छन्दसङ्ग्रहे—

समष्टिपूजा प्रारम्भे व्यष्टिपूजावसानके। कर्तव्या सिद्धिमिच्छद्भिर्देवताप्रीतिकारिणी॥ १॥
रश्मिरूपा महादेव्याः सर्वावरणदेवताः। स्वच्छादर्शे यथा यन्त्रे तथैव प्रतिबिम्बिताः॥२॥
प्रतिबिम्बितदेवानां पूजा शास्त्रोक्तमार्गतः। समष्टिपूजा सा प्रोक्ता व्यष्टिपूजा तथोच्यते॥ ३॥
रश्मिरूपा महादेव्या अत्र पूजितदेवताः। श्रीसुन्दर्यङ्गलीनास्ताः सन्तु सर्वसुखावहाः॥ ४॥
एवमुक्त्वा तु देव्यङ्गे विलीना यन्त्रदेवताः। बिम्बीभूता विभाव्यैवं तत्तत्स्थानेषु देशिकाः॥ ५॥
देव्यङ्गेषु यजेत् पुष्पैर्व्यष्टिपूजा समीरिता। इति।

आवरणपूजाप्रारम्भे तु ४ मूलं "संविन्मये परे देवि परामृतचरुप्रिये। अनुज्ञां देहि देवेशि परिवारार्चनाय मे॥"
इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वावरणपूजामारभेदिति सम्प्रदायः।

तारत्रयं ध्रुवो माया हंसःसोहं शुचिप्रिया। सर्वसौभाग्यजननीपादुकां पूजयामि च॥ १॥
नत्यन्तमनुना देव्यै दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम्। प्रदर्शयेद्योनिमुद्रां ततः सम्प्रार्थयेद् बुधः॥ २॥
सर्वमन्त्रमये देवि सर्वदेवनमस्कृते। अनुज्ञां देहि देवेशि परिवारार्चनाय मे॥ ३॥
इति सम्प्रार्थ्य देव्यङ्गान्निर्याता[1] विस्फुलिङ्गवत्। वह्नेः समस्तावरणदेवता रश्मिरूपिणः॥४॥
देव्याज्ञया स्थिताः स्वस्वस्थानेषु परिचिन्तयेत्। मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्॥५॥
अगस्त्यनन्दिसूर्याश्च विष्णुस्कन्दशिवास्तथा। दुर्वासाश्च तथा शक्रः उन्मनी वरुणस्तथा॥ ६॥
धर्मराजोऽनलो नागराजो वायुर्बुधस्तथा। ईशानश्च रतिश्चैव तथा नारायणस्तथा॥ ७॥
ब्रह्मा जीवो महादेव्युपासकाः पञ्चविंशतिः। एतैरुपासिता विद्या जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिकाः॥ ८॥
तुरीया बिन्दुचक्रेऽस्मिन् विशेषार्घ्यामृतेन च। पूजनीयाः प्रयत्नेन तारत्रयपुटाः क्रमात्॥ ९॥
अमुकोपासिता श्री च विद्या श्रीपादुकां ततः। पूजयामि नमश्चोक्त्वा यजेत् पञ्चोपचारकैः॥ १०॥
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधारिण्यो रक्तविग्रहाः। चिन्तनीयाः प्रयत्नेन सर्वसौभाग्यदा बुधैः॥ ११॥
दर्शयेद्योनिमुद्रां वै सर्वसौभाग्यवाक्प्रदाम्। अनेन क्रमयोगेन विद्यावृन्दं प्रपूजयेत्[2]॥ १२॥
विद्यावृन्दमयीं पूजां पुष्पाञ्जलिविधानतः। निवेदयेन्महादेव्यै तर्पणादि समाचरेत्॥ १३॥
एतस्मिन् समये देवि तिथिनित्याः समर्चयेत्। विभाव्य च महात्र्यस्रं दक्षपूर्वोत्तरक्रमात्॥ १४॥
रेखासु तिसृषु देवि[3] पञ्च पञ्च विभागतः। प्रतिपत्तिथिमारभ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे॥ १५॥
एकैकां पूजयेन्नित्यां महासौभाग्यभाग्भवेत्। कृष्णपक्षे विचित्रादिकामेश्वर्यन्तमेव हि॥ १६॥
एकैकवृद्ध्या हान्या च दर्शान्तं क्रमतो यजेत्। कामेश्वर्यादिका नित्या विचित्रान्ताः क्रमाद्यजेत्॥१७॥

१. 'निर्गता' क. ख. पाठः। २. 'विचिन्तयेत्' ग. पाठः। ३. 'त्रिवु' देवेशि' क. ख. पाठः।

पञ्चोपचारैर्गन्धाद्यैः श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः । तत्तद्विद्यां समुच्चार्य तारत्रितयसम्पुटाम् ॥ १८॥
उच्चार्यामुकनित्याश्रीपादुकां पूजयामि च। नमःपदं महादेवि सर्वत्रायं क्रमः स्मृतः ॥ १९॥
कामेश्वरी महानित्या ततो वै भगमालिनी। नित्यक्लिन्ना महानित्या भेरुण्डा वह्निवासिनी॥२०॥
महावज्रेश्वरी[१] नित्या शिवदूती तथैव च। त्वरिता च महादेवि ततो वै कुलसुन्दरी॥ २१॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला। ज्वालामालिन्यथ ततश्चित्रा त्रिपुरसुन्दरी॥ २२॥
रक्तां रक्तदुकूलाङ्गलेपनां रक्तभूषणाम्। पाशाङ्कुशौ धनुर्बाणान् पुस्तकं चाक्षमालिकाम्॥ २३॥
वराभीती च दधतीं त्रैलोक्यवशकारिणीम्। एवं कामेश्वरीं ध्यायेद् वश्यसौभाग्यवाक्प्रदाम्॥२४॥
कदम्बवनमध्यस्थामुद्यत्सूर्यसमद्युतिम् । नानाभूषणसम्पन्नां त्रैलोक्याकर्षणक्षमाम् ॥ २५॥
पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च तौलिकागतलेखिनीम्। वरदं चाभयं चैव दधतीं विश्वमातरम्॥ २६॥
एवं ध्यायेन्महादेवीं भगमालां विचक्षणः। रक्तां रक्ताङ्गवसनां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम्॥ २७॥
स्विद्यद्वक्त्रां मदाघूर्णलोचनां रत्नमूर्छिताम्[२]। पाशाङ्कुशौ कपालं च महाभीतिहरं तथा॥ २८॥
दधतीं संस्मरेन्नित्यक्लिन्नां पद्मासनस्थिताम्। चन्द्रकोटिप्रतीकाशां स्रवन्तीममृतद्रवम् ॥ २९॥
नीलकण्ठां त्रिनेत्रां च नानाभरणभूषिताम्। इन्द्रनीलस्फुरत्कान्तिं शिखिवाहनशोभिताम्॥ ३०॥
पाशाङ्कुशौ कपालं च च्छुरिकां वरदाभये। दधतीं चिन्तयेद् देवीं भेरुण्डां विषनाशिनीम्॥३१॥
ध्यायेत् तप्तसुवर्णाभां नानालङ्कार[३]भूषिताम्। पाशाङ्कुशौ स्वस्तिकं च शक्तिं च वरदाभये॥३२॥
दधतीं रत्नमुकुटां देवीं वै वह्निवासिनीम् । जपाकुसुमसङ्काशां रक्तांशुकविराजिताम्॥ ३३॥
माणिक्यभूषणां नित्यां नानाभूषाविभूषिताम्। पाशाङ्कुशौ कपालस्थसुधापानविघूर्णिताम्॥ ३४॥
अभयं दधतीं ध्यायेन्महावज्रेश्वरीं[४] पराम् । दूर्वावर्णां त्रिनेत्रां च महासिंहसमासनाम्॥ ३५॥
शङ्खारिचापबाणांश्च सृणिपाशौ वराभये । दधतीं चिन्तयेन्नित्यां शिवदूतीं परां शिवाम्॥ ३६॥
श्यामाङ्गीं रक्तसत्पाणिचरणाम्बुजशोभिताम्। वृषलाहिसुमञ्जीरां फणारत्नविभूषिताम् ॥ ३७॥
पर्णांशुकां पर्णभूषां वैश्याहिद्वन्द्वमेखलाम्। तनुमध्यां पीनवृत्तकुचयुग्मां वराभये ॥ ३८॥
दधतीं शिखिपिच्छाभां वलयाङ्गदशोभिताम्। गुञ्जारुणां नृपाहीन्द्रकेयूरां रत्नभूषिताम्॥ ३९॥
द्विजनागस्फुरत्कर्णभूषां मत्तारुणेक्षणाम् । नीलकुञ्चितधम्मिल्लवरपुष्पां कपालिनीम् ॥ ४०॥
कैरातीं शिखिपिच्छाढ्यनिकेतनविराजिताम् । स्फुरत्सिंहासनप्रौढां संस्मरेत् त्वरितां बुधः॥ ४१॥
ध्यायेद् देवीं महेशानीं कदम्बवनमध्यगाम्। रत्नमण्डपमध्ये तु महाकल्पवनान्तरे॥ ४२॥
मुक्तातपत्रच्छायायां रत्नसिंहासने स्थिताम् । अनर्घरत्नघटितमुकुटां रत्नकुण्डलाम् ॥ ४३॥
हारग्रैवेयसद्रत्नचित्रितां कङ्कणोज्ज्वलाम्। हीरमुक्तालसद्भूषां शुक्लक्षौमविराजिताम् ॥ ४४॥
हीरमञ्जीरसुभगारक्तोत्पलपदाम्बुजाम् । शुभ्राङ्गरागसुभगां कर्पूरशकलोज्ज्वलाम् ॥ ४५॥

१. 'विद्येश्वरी' क. पाठः। २. 'रत्नभूषणाम्' ख. पाठः। ३. 'भरण' ग. पाठः। ४. 'विद्येश्वरी' क. पाठः।

पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्। वरदानरतां दिव्यां महासारस्वतंप्रदाम् ॥ ४६॥
एवं ध्यायेन्महानित्यां देवेशीं कुलसुन्दरीम्।..(?)॥ ४७॥
एवं नित्यां महादेवीं चिन्तयेद्देशिकोत्तमः। शुभ्रवस्त्रासनां रम्यां चन्द्रकुन्दसमद्युतिम्॥ ४८॥
सुप्रसन्नां शशिमुखीं नानारत्नविभूषिताम् । अनन्तमुक्ताभरणां स्रवन्तीममृतद्रवम् ॥ ४९॥
वरदाभयशोभाढ्यां स्मरेन्नीलपताकिकाम् । ....(?)॥ ५०॥
ध्यायेद् देवीं महानित्यां स्वर्णाभरणभूषिताम्। उद्यद्विद्युल्लताकान्तिस्वर्णांशुकविराजिताम्॥ ५१॥
महासिंहासनप्रौढां ज्वालामालां करालिनीम्। अरिशङ्खौ खड्गखेटौ त्रिशूलं डमरुं तथा॥ ५२॥
पानपात्रं च वरदं दधतीं शत्रुनाशिनीम्। शुभ्राङ्गीं ज्ञानदां नित्यां विचित्रवसनां सदा॥ ५३॥
विचित्रतिलकां नित्यां विचित्रां कुङ्कुमोज्ज्वलाम्। वरदाभयशोभाढ्यां नानाशस्त्रधरां क्वचित्॥५४॥
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रये॥५५॥

इति षोडशनित्याध्यानानि॥

एतस्मिन् समये देवि गुरून् सम्पूजयेद् बुधः। प्राङ्मध्ययोन्यन्तराले गुरुपङ्क्तित्रयं यजेत्॥ १॥
गुरुमन्त्रेण नाम्नापि निजं सम्पूजयेद्गुरुम्। अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च गुरून् सम्यक् प्रतर्पयेत्॥ २॥
आनन्दनाथशब्दान्ता अम्बान्ताः शक्तयः क्रमात्। गुरुन् सम्पूजयेद् देवि परमादिगुरूस्तथा॥ ३॥
परापरगुरूंश्चैव परमेष्ठिगुरूंस्तथा । गुरुशक्तीर्यजेद् देवि ततः श्रीगुरुपादुकाः ॥ ४॥
इति सामान्यतो देवि गुरुपात्रोदकैर्यजेत्। अथादिशिवनाथश्च ज्ञानाम्बा च सदाशिवः॥ ५॥
इच्छाम्बा ईश्वरश्चैव अम्बिका रुद्र एव च। रौद्री विष्णुस्तथा ज्येष्ठा ब्रह्मा वामा पराभिधाः॥६॥
रुद्रसंख्याश्च दिव्यौघाः सनकश्च सनन्दनः। सनातनश्चापि सनत्कुमारस्तु तथैव च ॥ ७॥
सनत्सुजातश्च विभुर्दत्तात्रेयोऽथ रोचनः। वामदेवस्तथा व्यासः शुकः सिद्धौघसंज्ञकाः॥ ८॥
परापराख्या गुरवो नृसिंहश्च महेश्वरः । भास्करश्च महादेवि ततस्तस्मान्महाशिवः ॥ ९॥
सदाशिवो मानवौघा अपराख्या महेश्वरि। एते सामान्यगुरवः श्रीनाथादीन् यजेत्ततः ॥ १०॥
परप्रकाशाभिधश्च ततः परशिवस्तथा । परशक्तिश्च कौलेशः शुक्लदेवी कुलेश्वरः ॥ ११॥
कामेश्वरी च दिव्यौघाः पराख्या गुरवः क्रमात्। भोगः क्लिन्नस्तु समयः सहजो वेदसंख्यकाः॥ १२॥
परापराख्याः सिद्धौघा गगनो विश्व एव च। विमलो मदनश्चैव भुवनो लील[1] एव च॥ १३॥
आत्मा प्रियो मानवौघा अपराख्या निजास्तथा। कामराजाख्यविद्याया गुरवोऽत्र प्रकीर्तिताः॥ १४॥
अज्ञातगुरुशिष्याणां कथ्यन्ते गुरवः क्रमात्। गुरुभ्यो नम इत्युक्त्वा पादुकाभ्यो नमो वदेत्॥ १५॥
तथैव परमेशानि परमाश्च परापराः। परमेष्ठिन आचार्यास्ततो निजगुरून् यजेत्॥ १६॥
परमादिशिवश्चैव कामेश्वर्यम्बिका तथा। दिव्यौघश्च महौघश्च सर्वाख्यस्तदनन्तरम्॥ १७॥

१. 'नील' क. पाठः।

प्रज्ञादेवी प्रकाशश्च दिव्यौघाः सम्प्रकीर्तिताः। लोपामुद्रा प्रभा माया दिव्यश्चित्रस्तथैव च॥ १८॥
कैवल्यानन्दनाथश्च देव्यात्मानन्दनाथकः । महोदयश्च सिद्धौघाश्चिदानन्दस्तथैव च ॥ १९॥
ऋद्ध्यम्बा च तथा विश्वः शक्त्यम्बा च रमा तथा। कमलश्च परश्चैव मनोहर इति क्रमात्॥२०॥
आत्मा च प्रमितश्चैव मानवौघाः प्रकीर्तिताः। लोपामुद्राख्यविद्याया गुरवश्च निजास्ततः॥ २१॥
परप्रकाशश्च तथा विमर्शस्तु परादिकः। कामेश्वरी[1] च मोक्षश्चाप्यमृतः पुरुषस्ततः ॥ २२॥
अघोरश्चैव दिव्यौघाः प्रकामः सद्गुरुस्तथा। सिद्धौघ उत्तमश्चैते चत्वारः परिकीर्तिताः॥ २३॥
सिद्धौघाश्च महेशानि तत उत्तमसंज्ञकः। परमाख्यश्च सर्वज्ञः सर्वसंज्ञश्च[2] सिद्धकः ॥ २४॥
गोविन्दः शङ्करश्चैते मानवौघाः प्रकीर्तिताः। श्रीविद्यामात्रगुरवस्ततो निजगुरुक्रमात् ॥ २५॥
एते तुरीयाविषये गुरवः सर्व एव हि । ज्ञानमुद्रासुधापूर्णकपालाढ्यकरद्वयाः ॥ २६॥
गुरवो रक्तवर्णाः स्युर्जटाभारशिरोधराः। एतान् पञ्चोपचारैस्तु यजेत् सङ्घट्टमुद्रया ॥ २७॥
गुरुक्रमं प्रपूज्याथ यजेदाम्नायदेवताः । वसुकोणे तु पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः ॥ २८॥
पूर्वाम्नायेश्वरीं देवीमुन्मनीं पूर्वदिग्गताम्। दक्षिणम्नायेश्वरीं च भोगिनीं दक्षिणे यजेत्॥ २९॥
पश्चिमाम्नायेश्वरीं च कुब्जिकां पश्चिमे यजेत्। उत्तराम्नायेश्वरीं च कालिकामुत्तरे यजेत्॥ ३०॥
ऊर्ध्वाम्नायेश्वरीं देवीं महात्रिपुरसुन्दरीम्। वराभयकरा रक्ताः पाशाङ्कुशधराः शुभाः॥ ३१॥
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य योनिमुद्रां च दर्शयेत्। आम्नायं तु प्रपूज्याथ सम्यगायतनं यजेत्॥ ३२॥
अन्तर्दशारे पूर्वादि गुरुपात्रामृतेन च । ब्राह्म्यदर्शनगायत्रीं पूर्वायतनदेवताम् ॥ ३३॥
नारायणं वैष्णवाख्यं याम्यायतनदेवताम्। सौरदर्शनसूर्यं च पश्चिमायतनाधिपम् ॥ ३४॥
बौद्धदर्शनबुद्धं च उत्तरायतनाधिपम् । ऊर्ध्वायतनशैवाख्यदर्शनेशं शिवं यजेत् ॥ ३५॥
ऊर्ध्वायतनशाक्ताख्यदर्शनेशीं पराभिधाम्। शक्तिं यजेद्बिन्दुचक्रे देवताः परिचिन्तयेत्॥ ३६॥
वराभयकरा रक्ताः स्वस्वायुधकरद्वयाः । पञ्चोपचारैराराध्य लिङ्गमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ३७॥
प्रपूज्यायतनं पश्चात् पञ्चरत्नं प्रपूजयेत् । बहिर्दशारे पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः ॥ ३८॥
श्रीविद्या सिद्धलक्ष्मीश्च मातङ्गी भुवनेश्वरी। वाराहीति महेशानि पञ्चरत्नं प्रकीर्तितम्॥ ३९॥
श्रीविद्यापूजनस्थाने चक्रराजे महेश्वरि । महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता ॥ ४०॥
सर्वसौभाग्यजननीपादुकां पूजयामि च। इत्युच्चार्य यजेत्तत्र योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्॥ ४१॥
पाशाङ्कुशकरा रक्ता निजायुधकरद्वयाः। पञ्चरत्नं प्रपूज्याथ पञ्च कल्पलता यजेत्॥ ४२॥
चतुर्दशारे पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः। श्रीविद्या त्वरिता चैव पारिजातेश्वरी तथा॥ ४३॥
त्रिकूटा पञ्चबाणेशी पञ्च कल्पलताः स्मृताः। पाशाङ्कुशकरा रक्ता निजायुधकरद्वयाः॥ ४४॥

---

१. 'कामेश्वरी च दिव्यौघा मोक्षश्चामृतसंज्ञकः। पुरुषोऽघोरवायौ च प्रकामः सद्गुरुस्तथा। सिद्धौघाश्च महेशानि तत उत्तम उद्धवः' क. ग. पाठः। २. 'सर्वः स्वस्थ' क. पाठः।

लतानां पूजनान्ते च पञ्चसिंहासनं यजेत्। अष्टपत्रे तु पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः।। ४५।।
बाला सम्पत्प्रदा चैव चैतन्या तदनन्तरम्। द्वितीया चैतन्यरूपा कामेशी तदनन्तरम्।। ४६।।
(उन्मनी च यजेदेताः पूर्वस्थां च दिशि क्रमात्। सिंहासनं च ब्रह्माख्यं यजेच्च तदनन्तरम्।। ४७।।
अघोरभैरवी चैव भैरवी च महादिका)। ललिताभैरवी चैव कामेशी भैरवी तथा ।। ४८।।
रक्तनेत्रा भोगिनी च विष्णुसिंहासनं ततः। दक्षिणे संस्थिताश्चैव यजेत् सौभाग्यहेतवे ।। ४९।।
षट्कूटाभैरवी नित्याभैरवी तदनन्तरम् । मृतसञ्जीविनी चैव मृत्युञ्जयपरा तथा ।। ५०।।
वज्रप्रस्तारिणी चैव कुब्जिका रौद्रमेव च। सिंहासनं यजेद्देवि पश्चिमायां दिशि क्रमात्।। ५१।।
सिंहासने तूत्तरे तु प्रयजेद्भुवनेश्वरीम् । कमलेशीभैरवीं च सिद्धकौलेशभैरवीम् ।। ५२।।
डामराख्यां भैरवीं च कामिनीभैरवीं तथा। कालिकामीश्वराख्यं च यजेत् सिंहासनं बुधः।। ५३।।
बिन्दुमध्ये महेशानि ऊर्ध्वसिंहासनस्थिताः। प्रथमा सुन्दरी चैव द्वितीया सुन्दरी तथा।। ५४।।
तृतीया सुन्दरी चैव चतुर्थी सुन्दरी तथा। पञ्चमी सुन्दरी चैव महात्रिपुरसुन्दरी ।। ५५।।
सदाशिवाख्यं देवेशि यजेत् सिंहासनं ततः। वराभयकरा रक्ताः पाशाङ्कुशकराः शुभाः।। ५६।।
सिंहासनाभ्यर्चनान्ते पञ्चकोशार्चनं भवेत्। षोडशारे तु पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः।। ५७।।
श्रीविद्या च परज्योतिः परनिष्कलशाम्भवी। अजपा मातृका चेति पञ्च कोशाः प्रकीर्तिताः।। ५८।।
कोशान्ते पूजयेल्लक्ष्मीः पञ्च सर्वसमृद्धये। चतुरस्रे तु पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः ।। ५९।।
श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तथैव च। त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्या लक्ष्म्यः पञ्च प्रकीर्तिताः।।६०।।
पाशाङ्कुशकरा रक्ता निजायुधकरद्वयाः। पञ्च लक्ष्मीः पूजयित्वा पञ्च कामदुघा यजेत्।।६१।।
सृष्टिचक्रे तु पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः । श्रीविद्यामृतपीठेशी सुधासूरमृतेश्वरी ।। ६२।।
अन्नपूर्णेति विख्याताः पञ्च कामदुघाः क्रमात्। पाशाङ्कुशसुधापात्रकलशा रक्तविग्रहाः।। ६३।।
पूजयित्वा कामदुघाः समयाः पञ्च पूजयेत्। स्थितिचक्रे तु पूर्वादि श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः।। ६४।।
बगला कालरात्रिश्च जयदुर्गा तथैव च। वज्रवैरोचनी देवी समयाः पञ्च कीर्तिताः।। ६५।।
पाशाङ्कुशकरा रक्ता निजायुधकरद्वयाः। समयापूजनान्ते तु षडङ्गावरणं यजेत्।। ६६।।
संहारचक्रे अग्नीशासुरवायव्यकोणके । बिन्दुमध्ये चतुर्दिक्षु श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः ।। ६७।।
मध्ये दिक्षु क्रमेणैव यजेत् सर्वार्थसिद्धये। सर्वज्ञा नित्यतृप्ता च तथानादिप्रबोधिनी।। ६८।।
स्वतन्त्रा च महाशक्तिर्नित्यालुप्ता तथैव च। नित्यानन्ता च कथिता तथा भोगषडङ्गके।। ६९।।
तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः । वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ।। ७०।।
एतानि तु महादेवि विशेषावरणानि वै। तुरीयोपासकानां च एतान्यावश्यकानि वै।। ७१।।
कूटविद्यासु वै तत्तद्गुरवस्तत्तदङ्गकम् । अत्र मध्यविधानीशे नवावृत्तिरथाम्बिके ।। ७२।।

देवि मध्यविधानीहावरणानि शृणु प्रिये। तुरीयोपासकानां च एतान्यावश्यकानि वै[1] ॥ ७३॥
अष्टारपार्श्वयोरग्रे सामान्यामृतबिन्दुभिः। उदीच्यां प्रयजेद्[2] देवि क्षोभणद्रावणौ ततः ॥ ७४॥
आकर्षवश्यबाणौ च दक्षिणे तु समर्चयेत्। अग्रे सम्मोहनं यष्ट्वा चिन्तयेद् बाणदेवताः॥ ७५॥
वराभयकरा रक्ताः सृणिबाणधनुर्धराः । अन्तर्दशारे देवेशि पार्श्वयोरग्रयोस्तथा॥ ७६॥
बाणवद् यजनं कुर्यात्पञ्चकामान् वरानने । काममन्मथकन्दर्पकरध्वजसंज्ञकाः ॥ ७७॥
मीनकेतुर्महेशानि पञ्च कामाः प्रकीर्तिताः । वराभयकरा रक्ताः पञ्चबाणधुनर्धराः॥ ७८॥
बहिर्दशारे षड्वाचः कामवत् पूजयेत् प्रिये। सामान्यपात्रसुधया लीना वागपरा परा॥ ७९॥
मध्यमा वाक् च पश्यन्ती वैखरीति प्रकीर्तिताः। ज्ञानमुद्राभयाः शुक्ला वीणापुस्तकपाणयः॥८०॥
चतुर्दशारचक्रे च पार्श्वयोरुभयोस्तथा। अग्रे च बिन्दुमध्ये च सामान्यामृतबिन्दुभिः ॥ ८१॥
वेदसंख्या अवस्थाश्च यजेत् सर्वार्थसिद्धये। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यश्च तुरीया च प्रकीर्तिताः॥ ८२॥
वराभयकरा रक्ता धृतपाशाङ्कुशाः शुभाः। अथाष्टदलमूले च वृत्ते वेष्टनया शिवे॥ ८३॥
सामान्यपात्रसुधया यजेद्वामादिदेवताः। वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री अम्बिकेच्छा तथैव च॥ ८४॥
ज्ञाना क्रिया कुब्जिका च विम्वी चित्रा विषघ्निका। भूचरी खेचरी चैव जया च विजया तथा॥ ८५॥
नन्दा सुनन्दा देवेशि शक्तयः परिकीर्तिताः। दलाष्टमूलवृत्ते तु वामाद्या दिव्यभूषणाः॥ ८६॥
पाशाङ्कुशधरा रक्ता वरदानरतास्तथा । मुक्ताच्छत्रं शरच्चन्द्रचन्द्रिकारम्यचामरैः ॥ ८७॥
उशीरक्षिप्तचन्द्रार्कक्लृप्तव्यजनयुग्मकम्। प्रान्तमुक्तावलीराजत्स्वर्णादर्शं च पीठिकाम्॥ ८८॥
अलङ्कारमयीं पेटीं करण्डं शशिपूरितम्। नवरत्नस्फुरद्दीप्तिं ताम्बूलस्य करण्डकम् ॥ ८९॥
कर्पूरमृगनाभ्याढ्यकुङ्कुमक्षोदभाजनम् । चषकं स्वर्णरचितं[3] सुधाकुम्भं कमण्डलुम् ॥ ९०॥
मल्लिकामालतीजातीशतपत्राढ्यदामभिः। पूर्णं रत्नमयं भाण्डं कङ्कतीं गजदन्तजाम्॥ ९१॥
कज्जलस्य शलाकां च दधाना निजशक्तयः। ततः षोडशपत्राब्जमूलवृत्ते महेश्वरि ॥ ९२॥
वेष्टनत्वेन सामान्यसुधया रश्मिपूजनम्। विदध्याद्भावचिन्मायानाथेच्छातुष्टिपुष्टयः ॥ ९३॥
स्थितिमुक्ती भुक्तिश (?) सदसत्सदसदात्मिकाः। क्रियात्मज्ञानलोकाश्च देववेदौ तथैव च॥९४॥
संविज्जन्मस्पन्दसंज्ञानिस्पन्दाः कुण्डली तथा। शब्दवर्णस्वराश्चैव वर्गसंयोगमन्त्रकाः॥ ९५॥
भैरवी भूतरश्मिश्च रश्मिवृन्दं प्रकीर्तितम्। षोडशारमूलवृत्ते रक्ता भावादिरश्मयः॥ ९६॥
पाशाङ्कुशसुधाकुम्भपानपात्रधराः शुभाः । ततः षोडशपात्राब्जबाह्ये प्रथमवृत्तके ॥ ९७॥
वेष्टनत्वेन सामान्यसुधया योगिनीर्यजेत्। डाकिनी राकिणी चैव लाकिनी काकिनी तथा॥९८॥
शाकिनी हाकिनी चैव याकिनी योगिनी तथा। षोडशारबाह्यवृत्ते योगिन्यो डाकिनीमुखाः॥९९॥
पाशाङ्कुशकपालासिधारिण्यः शववाहनाः। मुण्डमालासमायुक्ता दंष्ट्राभीममुखाम्बुजाः॥ १००॥

१. इदं पद्यार्धं क. पुस्तके नास्ति। २. 'पूजयेत्' क. पाठः। ३. 'स्पर्शन' ख. पाठः।

चतुर्वक्त्रा रक्तवर्णा भीमरूपा[1] मदोद्धताः। मध्यवृत्ते वेष्टनत्वे सामान्यसुधया शिवे॥ १॥
भैरवीः पूजयेद् देवि भैरवी तदनन्तरम्। महाभैरव्यथ सिंहभैरवी धूम्रभैरवी ॥ २॥
भीमाद्योन्मनभैरव्यौ वशीकरणभैरवी। मोहनाख्या भैरवीति भैरव्यः कथिताः प्रिये॥ ३॥
षोडशारबहिर्मध्यवृत्ते तु भैरवीमुखाः। पाशाङ्कुशकरा[2] भीमाः कपालशूलपाणयः॥ ४॥
मुण्डमालाधरा रक्ता भीमदंष्ट्राः शवासनाः। ततः सामान्यसुधया भैरवान् दश पूजयेत्॥ ५॥
हेरुकं चैव वेतालं त्रिपुरान्तकमेव च। अग्निजिह्वं च कालान्तं करालं चैकपादकम्॥ ६॥
भीमरूपं महादेवि अचलं हाटकेश्वरम्। षोडशारान्त्यवृत्ते तु हेरुकाद्या दश स्थिताः॥ ७॥
भैरवा भीमदंष्ट्रास्यास्त्रिशूलटङ्कधारिणः। मेघश्यामाः शवारूढाः कपालदण्डधारिणः॥ ८॥
पूजनं कथितं मध्यविधावरणसंज्ञकम्। शृणु वक्ष्ये महादेवि नवावरणपूजनम् ॥ ९॥
एतच्चक्रं महेशानि मध्ये बिन्दुविराजितम्। ततस्त्रिकोणं चाष्टारं दशारं च दशारकम् ॥ १०॥
मनुकोणं महेशानि मध्यचक्रमिदं प्रिये। बैन्दवादष्टकोणान्तं सर्वमध्यमिदं भवेत्॥ ११॥
चत्वारिंशद्भगैर्युक्तं त्रिभगैरपि पार्वति। वसुपत्रं कलापत्रं चतुरस्रं क्रमात् प्रिये ॥ १२॥
भगात्मकमिदं सर्वं नवयोन्यङ्कितं भवेत्। चतुष्षष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्॥ १३॥
चक्रेऽस्मिन् सविशेषास्ताः साधकं मानयन्ति हि। विना गुरूपदेशेन साधकं भक्षयन्ति हि॥ १४॥
त्रैलोक्यमोहने चक्रे बाह्यरेखां समाश्रिताः। सामान्यपात्रसुधया पूजयेत् सिद्धिदेवताः॥ १५॥
चतुरस्रान्तरेखायां पश्चिमादिषु वै क्रमात्। द्वारेषु वायुकोणादिकोणेषु ह्यध ऊर्ध्वतः॥ १६॥
दक्षिणावर्तयोगेन यजेत् सर्वार्थसिद्धये। अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा॥ १७॥
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं भुक्तिरेव च। इच्छा प्राप्तिः सर्वकामा मोक्षसिद्धिः क्रमात् प्रिये।१८॥
सद्यःसन्तप्तहेमाभाः पाशाङ्कुशधराः शुभाः। महाभरणरत्नानि[3] ससुवर्णानि वै निधीन्[4]॥ १९॥
प्रयच्छन्त्यः साधकेभ्यः पद्मयुग्मधरास्तथा। त्रैलोक्यमोहने चक्रे मध्यरेखासमाश्रिताः॥ २०॥
तप्तजाम्बूनदाभासाः पञ्चाशत् पीठदेवताः। पाशाङ्कुशाभयवरकराः प्रकटरूपकाः॥ २१॥
ताः पूजयित्वा च ततो ब्राह्म्याद्याः सिद्धिवद्यजेत्। पूर्वद्वारादिद्वारेषु शुचिकोणादिषु क्रमात्।।२२॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराह्यैन्द्री च चामुण्डा महालक्ष्मीः क्रमात् प्रिये।२३॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तसंज्ञकः। कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः।।२४॥
कामरूपं च मलयं कौह्लाख्यं च कुलान्तकम्। चोहारपीठं देवेशि जालन्धरमतः परम्।।२५॥
उड्यानं देविकोट्टं च पीठाष्टकमुदाहृतम्। मातरो भैरवाङ्कस्थाः स्मेरवक्त्राः मदालसाः।।२६॥
ब्राह्मीप्रभृतयो दिव्या योगिन्याः प्रकटाः शुभाः। पाशाङ्कुशधराः सर्वाः क्रमेण दधतीः स्मरेत्।।२७॥
विद्यां शूलं च शक्तिं च चक्रं चैव गदां ततः। वज्रवैदूर्यमालाञ्च पद्मं च वरदं तथा॥ २८॥

१. 'महोद्धताः'ग.ख.ग.पाठः।२.'वरा'क.ग.पाठः। ३. 'भञ्जन'क. 'भोजनं'ख.पाठः।४.'ससुवर्णमहानिधीन्'ग.पाठः।५.'कोटं'ख.पाठः।

भैरवास्त्वसिताङ्गाद्याः पीठाष्टकनिवासिनः। शूलं कपालं प्रेतं च बिभ्राणाः क्षुद्रदुन्दुभिम्॥ २९॥
गजत्वगम्बरा भीमाः कुटिलालकशोभिनः। पाशाङ्कुशवराभीतिकराः पीठाष्टदेवताः॥ ३०॥
तत्र जाम्बूनदप्रख्या योगिन्यः प्रकटाः शुभाः। एवं तृतीयरेखायां सिद्धिवत् पूजयेत् प्रिये॥३१॥
मुद्रादेवीः प्रयत्नेन सर्वसङ्क्षोभणादिकाः। सर्वसङ्क्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा॥ ३२॥
सर्वाकर्षणिका सर्ववशीकारिणिका तथा। सर्वोन्मादिनिका चैव ततः सर्वमहाङ्कुशा॥ ३३॥
सर्वखेचरिका सर्वबीजमुद्रा तथैव च। सर्वयोनिस्ततः सर्वत्रिखण्डा परिकीर्तिता॥ ३४॥
सर्वसङ्क्षोभिणीमुख्या मुद्रास्ताः सौम्यविग्रहाः। धृतपाशाङ्कुशाः सर्वाः स्वस्वमुद्राकरास्तथा॥३५॥
तप्तचामीकराभासा योगिन्यः प्रकटाः शुभाः। पाशाङ्कुशोत्पलाभीतिपाणयो रक्तविग्रहाः॥३६॥
प्रकटाः कामरूपादिचतुष्पीठादिदेवताः। अणिमासिद्धिपुरतश्चक्रेशीं त्रिपुरां यजेत्॥ ३७॥
पञ्चोपचारैराराध्य मुद्रामाद्यां च दर्शयेत्। एताः प्रकटयोगिन्यश्चतुरस्रे व्यवस्थिताः॥ ३८॥
त्रैलोक्यमोहिनीचक्रे समुद्राः सायुधास्तथा। सवाहनाश्च सपरिवाराश्चैव ससिद्धयः॥ ३९॥
साङ्गोपाङ्गाश्च सर्वोपचारैः सम्पूजितास्तथा। तर्पिताः सन्त्विति वदेज्जलं तत्र विनिःक्षिपेत्॥४०॥
अभीष्टसिद्धिं मे देहि त्रिपुरे देवपूजिते। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥ ४१॥
इत्युच्चार्य महादेव्यै दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः। इति ते कथितं भद्रे प्रथमावरणार्चनम्॥ ४२॥
अथ वक्ष्ये महेशानि द्वितीयावरणार्चनम्। ततः षोडशपत्रेषु कामाकर्षिणिकां यजेत्॥ ४३॥
सामान्यपात्रसुधया पश्चिमादिक्रमेण तु। कामाकर्षिणिका चैव बुद्ध्याकर्षिणिका तथा॥ ४४॥
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षिणिका तथा। स्पर्शाकर्षिणिका चैव रूपाकर्षिणिका तथा॥४५॥
रसाकर्षिणिका चैव गन्धाकर्षिणिका तथा। चित्ताकर्षिणिका चैव धैर्याकर्षिणिका तथा॥४६॥
स्मृत्याकर्षिणिका चैव नामाकर्षिणिका तथा। बीजाकर्षिणिका चैवामृताकर्षिणिका तथा॥४७॥
आत्माकर्षिणिका चैव शरीराकर्षिणी तथा। सर्वाशापूरके चक्रे दलषोडशके स्थिताः॥४८॥
कामाकर्षिणिकाद्याश्च योगिन्यो गुप्तसंज्ञकाः। कलाषोडशरूपाश्च चन्द्रमण्डलमध्यगाः॥४९॥
स्वरवर्णा[1] रक्तवर्णाः स्रवत्पीयूषविग्रहाः। पाशाङ्कुश(धराः) सुधापूर्णकाश्मरीघटदानदाः[2](?)॥५०॥
चक्रेशीं त्रिपुरेशीं च कामाकर्षिणिकाग्रतः। यजेद्विद्राविणीं मुद्रां दर्शयेद्भाग्यहेतवे॥ ५१॥
एतास्तु गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापूरके तथा। चक्रे समुद्रा इत्यादि देव्यै पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥५२॥
अभीष्टसिद्धिं मे देहि त्रिपुरे देवपूजिते। भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्॥ ५३॥
इत्युच्चार्य च देवेश्यै दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः। सर्वसङ्क्षोभणे चक्रे दलाष्टविजृम्भिते॥ ५४॥
यजेत् सामान्यसुधया अनङ्गकुसुमादिकाः। पूर्वादिदिक्षु पत्रेषु आग्नेयादिविदिक्षु च॥ ५५॥
अनङ्गकुसुमानङ्गमेखला तदनन्तरम्। अनङ्गमदना पश्चादनङ्गमदनातुरा॥ ५६॥

---
१. 'भग्ना' क. ख. पाठः। २. 'काश्मीरचन्दनानना:' ख. पाठः।

अनङ्गरेखानङ्गवेगिन्यथानङ्गाङ्कुशा ततः। अनङ्गमालिनी ह्येता बन्धूककुसुमप्रभाः ॥ ५७॥
पाशाङ्कुशस्फुरत्कुन्दनीलोत्पलकराः शुभाः। अनङ्गकुसुमाग्रे तु यजेत् त्रिपुरसुन्दरीम्॥ ५८॥
चक्रेशीं दर्शयेन्मुद्रां सर्वाकर्षिणिकां ततः। एता गुप्ततराश्चैव योगिन्यः सर्वसं ततः[1]॥ ५९॥
क्षोभणे च तथा चक्रे समुद्रेत्यादिना ततः। देव्यै पुष्पाञ्जलिं दद्यादभीष्ठेति च मन्त्रवित्॥ ६०॥
चतुर्दशारके चक्रे सर्वसौभाग्यदाभिधे। सामान्याद्भिः पश्चिमादिवामावर्तक्रमेण च ॥ ६१॥
सर्वसङ्क्षोभिणीमुख्याः शक्तीर्वै पूजयेत् प्रिये। सर्वसङ्क्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा॥ ६२॥
सर्वाकर्षिण्यथ ततः सर्वाह्लादिन्यनन्तरम्। सर्वसम्मोहिनी सर्वस्तम्भिनी सर्वजृम्भिणी ॥ ६३॥
सर्ववशङ्करी शक्तिः तथा सर्वार्थरञ्जिनी। ततः सर्वोन्मादिनी च तथा सर्वार्थसाधिनी ॥ ६४॥
ततो वै सर्वसम्पत्तिपूरणी शक्तिरेव च । सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी ॥ ६५॥
सर्वसौभाग्यदे चक्रे सर्वसङ्क्षोभिणीमुखाः। सम्प्रदायाख्ययोगिन्यः सर्वाभरणभूषिताः ॥ ६६॥
इन्द्रगोपनिभाः सर्वाः सगर्वोन्मत्तयौवनाः। पाशाङ्कुशौ दर्पणं च पानपात्रं सुधामयम्॥ ६७॥
बिभ्रत्यः सर्वसुभगाः साधकाभीष्टदायिकाः। सर्वसङ्क्षोभिणीपूर्वे यजेत् त्रिपुरवासिनीम्॥ ६८॥
सर्ववश्यकरीं मुद्रां दर्शयित्वा विचक्षणः। तत एताः सम्प्रदाययोगिन्य इति वै क्रमात्॥ ६९॥
देव्यै पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ततः सर्वार्थसाधके। बहिर्दशारके चक्रे सामान्यसुधया शिवे॥ ७०॥
पूर्ववत् पूजयेद् देवि सर्वसिद्धिप्रदामुखाः। सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा॥ ७१॥
सर्वप्रियङ्करी देवी सर्वमङ्गलकारिणी । सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी॥ ७२॥
सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्नविनाशिनी। सर्वाङ्गसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी॥ ७३॥
सर्वार्थसाधके चक्रे कुलकौलाभिधाः पराः। सर्वसिद्धिप्रदाद्याश्च योगिन्यः सर्वकामदाः॥ ७४॥
जपाकुसुमसङ्काशाः स्फुरन्मणिविभूषिताः । महासौभाग्यगम्भीराः पीनवृत्तघनस्तनाः॥ ७५॥
रत्नपेटीविनिःक्षिप्तसाधकेप्सितभूषणाः। नानारत्नमयान् दीपान् दधत्यो हसिताननाः॥ ७६॥
पाशाङ्कुशधराः सर्वा रत्नदानपरास्तथा। सर्वसिद्धिप्रदाग्रे तु चक्रेशीं त्रिपुरां यजेत्॥ ७७॥
ततः सर्वोन्मादिनीं च मुद्रां सन्दर्शयेद् बुधः। एताश्च कुलकौलाख्ययोगिन्य इति पूर्ववत्॥७८॥
देव्यै पुष्पाञ्जलिं दद्यात्ततः षष्ठावृतिं यजेत्। सर्वरक्षाकरे चक्रेऽन्तर्दशारे महेश्वरि॥ ७९॥
सामान्यपात्रसुधया पश्चिमादिक्रमेण तु। सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा॥ ८०॥
सर्वज्ञानमयी चैव सर्वव्याधिविनाशिनी। सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा॥ ८१॥
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी। पूजनीया प्रयत्नेन सर्वेप्सितफलप्रदा॥ ८२॥
सर्वरक्षाकरे चक्रे[2] निगर्भाख्याः शुभप्रदाः। सर्वज्ञाद्याश्च योगिन्यो ज्वलत्पावकतेजसः॥ ८३॥
उद्यत्सूर्यसहस्राभा मुक्तालङ्कारभूषिताः। पाशटङ्कायुधज्ञानमुद्रावरदसत्कराः ॥ ८४॥

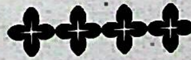
१. 'सर्वतस्तथा' ग. 'संमता' ख. पाठः। २. 'सर्वकामप्रदा देव्यो' क.ग. पाठः।

सर्वज्ञापुरतो देवि यजेत् त्रिपुरमालिनीम् । देव्यै सन्दर्शयेद् देवि मुद्रां सर्वमहाङ्कुशाम् ।। ८५ ।।
एता निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकराभिधे । चक्रे समुद्रा इत्यादि दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।। ८६ ।।
सर्वरोगहराष्टारचक्रे सामान्यबिन्दुभिः। पश्चिमादिक्रमेणैव वशिन्याद्या यजेत् क्रमात् ।। ८७ ।।
वशिनी कामेश्वरी च मोदिनी विमलारुणा। जयिनी सर्वेश्वरी च कौलिनी वागधीश्वरी ।। ८८ ।।
सर्वरोगहरे चक्रे रहस्याख्याः शुभप्रदाः। योगिन्यः कामदायिन्यो दाडिमीकुसुमप्रभाः ।। ८९ ।।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तगन्धानुलेपनाः । नानाभरणसम्पन्नाः पञ्चबाणधनुर्धराः ।। ९० ।।
पुस्तकं वरदानं च दधाना वाक्प्रदा इमाः। यजेत् त्रिपुरसिद्धां च चक्रेशीं वशिनीपुरः ।। ९१ ।।
मुद्रां प्रदर्शयेत् सर्वखेचरीं भाग्यहेतवे। एता रहस्ययोगिन्य इत्यादि च महेश्वरि[1] ।। ९२ ।।
अभीष्टसिद्धिमिति च देव्यै पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्। अन्तराले महाचक्रे सर्वसिद्धिप्रदाभिधे ।। ९३ ।।
सामान्यपात्रसुधया यजेदायुधदेवताः। कामेश्वरस्य कामेश्या जृम्भका[2] बाणदेवताः ।। ९४ ।।
मोहकाश्चापदेव्यश्च पाशदेव्यो वशङ्कराः। स्तम्भकाख्या महादेवि तथैवाङ्कुशदेवताः ।। ९५ ।।
ततः श्रीपात्रसुधया निजाग्रादित्रिकोणके। वाग्भवाख्ये सूर्यचक्रे कामरूपे च पीठके ।। ९६ ।।
मित्रेशनाथात्मिका च तथा जाग्रदधिष्ठिता। रुद्रात्मशक्तिसहिता कामेशी सर्वसिद्धिदा ।। ९७ ।।
ततो वै कामराजाख्ये सोमचक्रे महेश्वरि। पीठे पूर्णगिरौ चैवोड्डीशनाथात्मिका ततः ।। ९८ ।।
तथा स्वप्नाधिष्ठिता च विष्णुशक्तिरुदीरिता। वज्रेश्वरी महादेवी ततस्तृतीयकोणके ।। ९९ ।।
शक्त्याख्ये वह्निचक्रे च पीठे जालन्धरे ततः। षष्ठेशनाथात्मिका च तथा सुषुप्त्यधिष्ठिता ।। १०० ।।
ब्रह्मात्मशक्तिरुदिता देवी श्रीभगमालिनी। बिन्दुमध्ये महेशानि कूटत्रयविजृम्भिते ।। १०१ ।।
समस्तव्योमचक्रे च पीठे चोड्यानसंज्ञके। चर्य्यानाथात्मिका चैव तुरीयाधिष्ठिता ततः ।। १०२ ।।
परब्रह्मात्मशक्तिः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे योगिन्यः सिद्धिदायिकाः ।। १०३ ।।
अतिरहस्यसंज्ञास्ता आयुधाष्टकदेवताः। कामेश्वरीमुखास्तिस्रः कोणत्रयविराजिताः ।। २०४ ।।
आयुधाष्टकदेव्यस्ता यौवनोन्मत्तविग्रहाः। रक्ताः विद्युल्लताकारा उद्दामकुसुमान्विताः ।। १०५ ।।
नवरत्नविशोभाढ्याः स्वस्वायुधधराः क्रमात्। वराभये सुधापात्रं धारयन्त्यः सुखावहाः ।। १०६ ।।
कामेश्वरी शुक्लवर्णा शुक्लमाल्यानुलेपना। मुक्ताफलस्फुरद्भूषा नानाभरणभूषिता ।। १०७ ।।
पुस्तकं चाक्षसूत्रं च वरदं चाभयं तथा। दधती चाग्रकोणस्था रुद्रशक्तिः प्रकीर्तिता ।। १०८ ।।
वज्रेश्वरी कुङ्कुमाभा स्फुरद्रत्नविभूषणा। बालार्कवसना नीलकर्णचुम्बिविलोचना ।। १०९ ।।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषुवरदाभयशोभिता । दक्षकोणस्थिता देवी विष्णुशक्तिरियं मता ।। ११० ।।
सद्यः सन्तप्तहेमाभा भगमाला सुशोभना। अनर्घरत्नघटितभूषणा भुवनेश्वरी ।। १११ ।।
पाशाङ्कुशज्ञानमुद्रावरदानकराम्बुजा । ब्रह्मशक्तिर्महेशानी तापत्रयनिकृन्तनी ।। ११२ ।।

१. 'महेशितुः' क. ग. पाठः। २. 'जम्भ' क. पाठः।

उदक्कोणस्थिता देवी सर्वकामफलप्रदा। चक्रेशीं त्रिपुराम्बां च कामेशीपुरतो यजेत्।। ११३।।
पञ्चोपचारैराराध्य बीजमुद्रां प्रदर्शयेत्। एता अतिरहस्याख्या योगिन्य इति पूर्ववत् ।। ११४।।
पुष्पाञ्जलिं प्रदद्याद्वै देव्यै देवि महेश्वरि। बिन्दुचक्रे महेशानि सर्वानन्दमयाभिधे ।। ११५।।
पश्चिमादिक्रमेणैव श्रीपात्रसुधया शिवे । कूटत्रयक्रमेणैव रतिः प्रीतिर्मनोभवा ।। ११६।।
पूजनीया प्रयत्नेन श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी । सर्वमन्त्रेश्वरी चैव सर्वचक्रेश्वरी तथा ।। ११९।।
सर्वतन्त्रेश्वरी चैव सर्वयोगेश्वरी तथा । (सर्वभोगेश्वरी चैव सर्ववीरेश्वरी तथा ।। ११८।।
सर्वपीठेश्वरी चैव सर्ववागीश्वरी तथा । सर्वविद्येश्वरी चैव सर्वसिद्धेश्वरी तथा ।। ११९।।
सर्वलोकेश्वरी चैव सर्वयोगेश्वरी तथा। (..........................) सर्वचक्रेश्वरी तथा[१]) ।। १२०।।
सर्वानन्दमये चक्रे परे शब्दातिगोचरे। परापररहस्याख्या योगिन्य इतिपूर्वकाः[२] ।। १२१।।
उद्यत्सूर्यसहस्राभा नानालङ्कारभूषिताः। पाशाङ्कुशधराः सर्वा ज्ञानमुद्राभये तथा ।। १२२।।
दधाना यौवनप्रौढाः पीनवृत्तघनस्तनाः। श्रीविद्याभिमुखाः सर्वा देवताः परिचिन्तयेत् ।। १२३।।
श्रीविद्यां चापि सर्वासामाभिमुख्ये स्थिता[३] स्मरेत्। अथवा रश्मयः सर्वा देवीरूपेण चिन्तयेत्।।१२४।।
श्रीचक्रे परमेशानि स्वतन्त्रे स्वस्वसंन्निभाः। चक्रेशीं[४] रतिपूर्वे[५] तु महात्रिपुरभैरवीम्।। १२५।।
पूजयित्वा ततः सर्वयोनिमुद्रां प्रदर्शयेत्। परापररहस्याख्या योगिनीत्यादिना प्रिये ।। १२६।।
देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा तर्पयेच्च त्रिधा त्रिधा।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगव-
च्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्य-शिष्य-
श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये
तन्त्रे दशमः श्वासः।। १०।।



अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

एकादशः श्वासः



अथोर्ध्वाम्नायावरणानि। तथा कुलार्णवे—

नवावरणपूजां च कृत्वा देवीं प्रतर्प्य च। षोडशैरुपचारैस्तु साङ्ग सावरणं शिवम्[1]।। १।।
पूजयेन्मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। महाषोढोदिताशेषपरिवारांश्च शाम्भवि ।। २।।
प्रणवादिनमोन्तेन तत्तन्नाम्ना प्रपूजयेत्। इति।

उत्तरतन्त्रे —

बिन्दावासनरूपेण स्थितं च परमं शिवम्। पराप्रासादमन्त्रेण तुरीयाविद्ययाथवा।। १।।
षोडशैरुपचारैस्तु पूजयेत् तर्पयेत् त्रिधा। गुरुपात्रामृतेनैवाथवा श्रीपात्रबिन्दुभिः।। २।।
पञ्चप्रणवमुच्चार्य शिवशक्त्यात्मकादि च। परमादिशिवश्री च पादुकां तर्पयामि च।। ३।।
तर्पयेद् दशधा प्रोक्तदशमुद्राश्च दर्शयेत्। बिन्दुचक्रे च पूर्वादिचतुर्दिक्षु च मध्यतः।। ४।।
गुरुपात्रामृतेनैव षडङ्गावरणं यजेत्। ईशतत्पुरुषाघोरवामसद्यादिमूलकैः ।। ५।।
षडङ्गावरणमिष्ट्वा[2] ब्रह्मविष्ण्वोस्तथैव च। रुद्रशम्भुपराणां च विश्रान्तिचरणान् यजेत्।। ६।।
आदिनाथादिगुरवो दिव्यसिद्धौघमानवाः। पूजनीयाः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये।। ७।।
ततोऽष्टकोणसन्धिस्थग्रन्थ्यष्टकविभेदतः। युग्मशः पार्श्वयुग्मेषु श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः।। ८।।
कुलयोगिनिपूर्वादिमूलविद्यास्तु षोडश। धृतपाशाङ्कुशा रक्ता वरदाभयपाणयः।। ९।।
पूजयेत् तर्पयेच्चापि ततोऽन्तर्दशकोणके। चतुर्दिक्षु तथोर्ध्वाधः श्रीपात्रामृतबिन्दुभिः।। १०।।
यजेत् षडाधारविद्यास्तद्बाह्यस्थदशारके। ईशानस्य कला इष्ट्वा[3] मन्वस्रे पुरुषस्य तु।। ११।।
अघोरस्य कला ह्यष्टौ दलग्रन्थिषु संयजेत्। षोडशच्छदपद्मे तु वामदेवकला यजेत्।। १२।।
सद्योजातकला भूमिपुरे सम्पूजयेत् ततः। श्रीचक्रस्थान्तरालेषु केसरेषु च वै क्रमात्।। १३।।
चतुरस्रप्रक्रमेण सामान्यार्घ्यस्थबिन्दुभिः। महाषोढोदिताशेषदेवताः परिपूजयेत् ।। १४।।
सर्वावरणसम्पूर्णां सम्पूज्य तदनन्तरम्। इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् —

नैवेद्यं षड्रसोपेतं कामधेनुपवित्रितम्। दद्यात् कर्पूरसहितं ताम्बूलं परशक्तये ।। १।।
नित्यहोमं प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना प्रिये। यथाशक्ति जपं कुर्यात् स्तुतिं च परमेश्वरि।।२।।

---

१. 'साङ्गां सावरणां शिवाम्' क. पाठः। २. 'यष्ट्वा' क. ग. पाठः। ३. 'यष्ट्वा' क. ग. पाठः।

आदिश्लोकद्वयेनापि तथा सौभाग्यदेवताम्। इति।

आदिश्लोकद्वयं तु—

श्रीमच्छ्रीकोशहृदयं पञ्चसिंहासनात्मकम्। फलं कल्पलतानां च चारुरत्नस्फुरत्कलम्[१]॥ १॥

चतुरायतनानन्दि चतुरन्वयकोशगम् । नित्यानन्दि परंब्रह्मधाम नौमि सुखाप्तये॥ २॥ इति।

तथा—

सौवर्णे रौप्यकांस्यादिपात्रे वसुदलं लिखेत्। गन्धेन चुलुकं मध्ये मुद्रां वा तत्र वै न्यसेत्॥ ३॥

वसुपत्रेषु चाज्येन पूरितान् नव दीपकान्। भ्रामयेद्रत्नविद्याभिस्त्रिधा भृत्वा[२] तु मस्तके॥ ४॥

मूलेन तां[३] स्मरेदन्ते सर्वविघ्नोपशान्तये। इति।

रत्नविद्या तु ज्ञानार्णवे—

गसौ च पमना: पश्चादिन्द्रस्था: क्रमश: शिवे। वामकर्णविशोभाढ्या बिन्दुभूषितमस्तका:॥ १॥

रमामायासम्पुटेन रत्नेशीयं नवाक्षरी।

"श्रींह्रींग्लूंस्लूंप्लूंम्लूंन्लूंह्रींश्रीं" इति। स्वच्छन्दसङ्ग्रहे—

प्रद्योतन ऋषि: प्रोक्तस्त्रिष्टुप् छन्द: प्रकीर्तितम्। रत्नेश्वरी देवता स्यान्मायाबीजं तु बीजकम्॥ १॥

श्रीबीजं शक्तिरुद्दिष्टा ग्लूँबीजं कीलकं स्मृतम्। स्वप्रकाशे तु देवेशि विनियोग: प्रकीर्तित:॥२॥

मायया दीर्घभाजा च षडङ्गानि प्रविन्यसेत्।

रत्नेश्वरीं रत्नविभूषिताङ्गीं माणिक्यमौलिं तरुणार्ककान्तिम्।
करैर्वहन्तीं नव रत्नदीपान् प्रकाशमानां मनसा स्मरामि॥ इति।

तथा —

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके। आरा(र्ति ?त्रि)कमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये॥ १॥

मण्डलं वामत: कुर्यात् साधको भूमिजानुक:। वहत्पुटेन हस्ताभ्यां मण्डलोद्धारलक्षणम्॥ २॥

चतुरस्रे व्योमचक्रं क्रमेणानेन पूजयेत्। तारं च भुवनेशानीं व्यापकादि च मण्डलम्॥ ३॥

ङेन्तं वाग्भवहृन्मन्त्रो मनु: सूर्याक्षरो भवेत्। अन्नोदमिश्रं भागेन साधारं पुष्पपूजितम्॥ ४॥

संस्थाप्य पात्रं तत्रैव बलिं हरेत् । तारं परं सर्वविघ्नकृद्भ्य: सर्व च भू लिखेत्॥ ५॥

तेभ्यो हुंवह्निजाया च त्रिवारोच्चारणाद्बलि:। पूर्वोक्तबलिदानं तु कुर्याद्विघ्नोपशान्तये॥ ६॥

चतुर्धा बलिदानं तु त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। तत: कुमारी: सन्तर्प्य त्रिपुरेश्यानयाथवा[४]॥ ७॥

मयूखान् परमेश्वर्या: सम्भाव्य मनुवित्तम:। खेचर्या: शक्तिचक्रस्य स्वामिनीं संविदं[५] पराम्॥ ८॥

योजयेदात्मनि ज्ञानगहने कृपया गुरो:। शिवकोणे देशिकेभ्यो निर्माल्यं सिद्धये क्षिपेत्॥ ९॥

अर्घ्यपात्रं ततो देवि गुरवे गुरुमन्त्रवित्। नाममन्त्रेण च स्वस्य तर्पयेदुपदेशत:॥ १०॥

वाममार्गेण देवेशि तत्त्वमुद्राधर: शुचि:। पुनराधारगं कुर्यादाचारे दीपलक्षणम्॥ ११॥

---

१. 'लाम्' क. पाठ:। २ 'धृत्वा' ग. पाठ:। ३. 'वा' क. पाठ:। ४ 'नवाथवा' क. पाठ:। ५. 'संपदं' ग. पाठ:।

आरात्रिकस्य मध्यस्थं मूलेनैव तु भक्षयेत्। कपालिन्या वापि पात्रं तया[1] वापि समुद्धरेत्।। १२।।
द्वितीयं तत्त्वगं दक्षे संयोगेनैव पार्वति। तत्त्वत्रयेण संयोगात्तर्पयेत् स्वान्तवासिनीम्।। १३।।
प्रथमं ब्रह्मरूपत्वं द्वितीयं सर्वमन्त्रवित्। तृतीयमीशरूपं च विज्ञेयं मुनिसत्तमैः ।। १४।।
किञ्चिदुल्लास्य मुद्राभिः पञ्चभिः परमेश्वरि। श्रीगुरोराज्ञया देवि स्वयं श्रीत्रिपुरा भवेत्।। १५।।
अधोमुखानि सर्वाणि पात्राण्यग्नौ प्रतिष्ठयेत्। आकृष्य मन्त्रात् तत्रस्थं[2] शेषिकाभ्योऽक्षतादिकम्।।१६।।
दत्त्वा तु परमेशानि सुखीभूयान्न संशयः। अनर्घ्यमपि विज्ञेयमक्षरैः कथितं मया ।। १७।।
अलाक्षरेण न्यायेन चन्द्रदीपेन च प्रिये । गोपितव्यं त्वया भद्रे जननीजारगर्भवत् ।। १८।।

इति। अत्र नित्यहोमविधानं दीक्षाप्रकरणे वक्ष्यामः प्रयोगरूपम्। तथा दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विद्यायन्त्रं समाहितः । सहस्रजन्मजं पापं हन्ति मासेन देशिकः।। १।।
पूजयेद्रत्नखचितैश्चम्पकैः स्वर्णजैः प्रिये। अवश्यं सर्वकालेषु परमाज्ञाधरो भवेत्।। २।।
नाशयेत् सर्वपापानि कोटिजन्मभवान्यपि। समुद्रलयां पृथ्वीं संप्राप्य सुखमेधते।। ३।।
नित्यं यः पूजयेद् देवीं चम्पकै रजतोद्भवैः। स बुद्धिमान् भवेद्देवि सर्वत्र विजयी भवेत्।। ४।।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं वृषशून्यमथापि वा। स्वयम्भूबाणदेशे वा शैवस्थाने महेश्वरि।। ५।।
तत्र स्थित्वा जपेन्मन्त्रं प्रवालाक्षस्रजा तथा। मुक्तारुद्राक्षपद्माक्षस्फटिकोद्भवया तथा।। ६।।
माणिक्यपद्मरागादिमनोहर्य्या जपेद् बुधः। जात्वा लक्षैकमात्रे तु भूचर्य्यो विघ्नकारिकाः।। ७।।
तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि। तदा लक्षत्रयं कुर्यान्नियमेन शुचिर्बुधः।। ८।।
मानसेनाथवा वाचोपांशुना वा जपेत् सुधीः। मानसोच्चारणं देवि जपकोटिफलप्रदम्।। ९।।
उपांशूच्चारणं देवि वाचिकात् शतधा भवेत्। वाचिकं मुखमात्रं[3] स्याच्छ्रीगुरोराज्ञया प्रिये।। १०।।
तद्दशांशेन होमः स्यात् कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः । कुसुम्भपुष्पैर्जुहुयान्मधुरत्रयसम्प्लुतैः।। ११।।
सिद्धा भवति विद्येयं सर्वविद्यास्वरूपिणी। योनिकुण्डे भगाकारे वर्तुलेन्द्वर्धयोः प्रिये।। १२।।
नवत्रिकोणचक्रे वा चतुरस्रेऽथ वस्वरे। वाक्पतिर्योनिकुण्डे तु भगे चाकर्षणं भवेत्।। १३।।
वर्तुलं श्रीपदं देवि चन्द्रार्धे तु त्रयं भवेत्। नवत्रिकोणे महतीखेचरीसिद्धिवान् भवेत्।। १४।।
चतुरस्रे तु सकलं शुभजातं भवेत् सदा। शान्तिकं पौष्टिकं लक्ष्मीरारोग्यं वसुकोणके[4]।।१५।।
पद्माङ्के दश सिद्धीस्तु साधयेन्नात्र संशयः। मल्लिकामालवीभिश्च त्रिमध्वक्तैर्वचस्पतिः।। १६।।
करवीरज(या?पा)पुष्पैः सघृतैर्भुवनत्रये। योषिद्वश्या ततो देवि कर्पूरं कुङ्कुमं मदम् ।। १७।।
मृगस्य मिश्रितं कृत्वा कामसौभाग्यवान् भवेत्। चाम्पेयैः पाटलै रम्यैराम्रैरन्यैः फलैर्हुनेत्।।१८।।
सप्ताहं मासमात्रं वा लक्ष्मीः प्राप्नोति मान्त्रिकः। श्रीखण्डं चागरुं देवि कर्पूरं गुग्गुलं हुनेत्।।१९।।
समग्रपुरसुन्दर्यो वश्यास्तस्य भवन्ति हि। हुत्वा फलं त्रिमध्वक्तं खेचरत्वं चतुष्पथे।। २०।।

१. 'त्वया' क. पाठः। २. 'मन्त्रा तन्त्रस्यं' क. पाठः। ३. 'तुस्वमात्रं' क. पाठः। ४. 'च सुखादिकम्' क. ग. पाठः।

दधिक्षीरमधुसर्पिर्लाजान् हुत्वा न कालभाक्। अथवा नवलक्षं तु जपेद्विद्यां समाहितः।। २१।।
तद्दशांशेन होमस्तु पूर्वोक्तविधिना यजेत्। साधयेत् स्वर्गभूलोकपातालतलवासिनः।। २२।।
राजिकालवणाभ्यां तु क्षोभयेज्जगतीमिमाम्। दध्ना शताष्टकं हुत्वा कालमृत्युं विनाशयेत्।।२३।।
घृतक्षीरद्वयादायुष्यतोऽष्टशतकं हुनेत् । मध्वाज्यगुग्गुलेनैव राजेन्द्रं वशमानयेत् ।। २४।।
आरोग्यं घृतदूर्वाभ्यां हवनेन शताष्टकम्। मध्वाज्याक्तै रक्तवर्णैः करवीरैः सगुग्गुलैः।। २५।।
हुनेल्लक्षं वशीकुर्याद्विंशतिं धरणीभुजाम्। मध्वक्तकरवीरैस्तु साङ्गं भूपं वशं नयेत्।। २६।।
सप्तरात्रेण साज्येन शशिना पूर्ववद्यजेत्। पाटलैर्यूथिकाकुन्दैः शतपत्रैश्च जातिभिः।। २७।।
मालतीनववल्लीभिर्मल्लिकापद्मकिंशुकैः । पूजनाद्धवनाद्वापि मिश्रैर्वाऽमिश्रितैरपि ।। २८।।
सर्वसौभाग्यमाप्नोति बुद्ध्या वाक्पतिरुच्यते। मुचुकुन्दैर्बिल्वपत्रैः फलैरसितनीरजैः ।। २९।।
नागरै[1] राजचम्पैश्च सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि। नारिकेलैश्च खर्जूरैर्द्राक्षाभिश्चूतसत्फलैः ।। ३०।।
मनसा चिन्तितं कार्यं साधकस्य तु होमतः। पूजनेन च होमेन श्रीविद्यां परितोषयेत्।। ३१।।
चरुं विकीर्य सर्वत्र कुमारीपूजनादिभिः। पूर्वोक्तबलिदानेन गुरुं सन्तोष्य च क्रमात्।। ३२।।
सुवासिनीश्च सम्पूज्य दद्याद्भूरि धनं सताम्। समग्रं कुसुमं होमे कूष्माण्डं बहुधा हुनेत्।। ३३।।
नारिकेलान्तरफलैः सकलैस्तु मनःप्रियम्। समग्रेणैव चूतस्य फलेन बदरं तथा।। ३४।।
पनसैः फलगर्भस्थैर्गर्भैर्विलोकितैर्हुनेत्। जम्बूफलं समग्रं स्याद् द्राक्षां चैव तथा हुनेत्।। ३५।।
रम्भाफलं मनोभागं लघु चेत् खण्डितं नहि। फलं लघु समग्रं स्यात् कस्तूरी कुङ्कुमं शशी।।३६।।
गुञ्जामात्रं हुनेद्देवि तिलराजीशतं हुनेत् । तथैव लवणं लाजा मुष्टिमात्रं हुनेद्बुधः ।। ३७।।
अन्नं तु ग्रासमात्रं हि पक्वान्नैश्च तथा हुनेत्। पूर्णं[2] तु क्रमुकार्धेन श्रीखण्डं क्रमुकाकृति।।३८।।
तथागुरु हुनेत्प्राज्यं मनःसन्तोषकारि यत् । तच्चतुर्गुणभेदन दधिदुग्धैर्हुनेत् सदा ।। ३९।
सर्वासामाहुतीनां तु मानं देवि मनःप्रियम्। कुण्डस्य पूजनं वक्ष्ये महाविघ्नविनाशनम्।। ४०।।
चतुर्विंशतिसंख्याभिरङ्गुलीभिः सुविस्तृतम्। खातं च रचयेत् कुण्डं सर्वत्र सुमनोहरम्।। ४१।।
चतुरस्रं सर्वनेत्रसुभगं मेखलास्ततः। सर्वत्रैकाङ्गुलं त्यक्त्वा तिस्रः कार्याः सुशोभनाः।। ४२।।
आदित्यवसुवेदानां संख्याङ्गुलिभिरुन्नताः । चतुरङ्गुलविस्तारास्तिस्रोऽपि परमेश्वरि।। ४३।।
कुण्डस्य पश्चिमे भागे योनिं कुर्यात् सुलक्षणाम्। रव्यङ्गुलिसुविस्तारा[3] वस्वङ्गुलिसुविस्तृताम्।।४४।।
मध्ये षडङ्गुलां देवि व्यङ्गुलोच्चां[4] मनोरमाम्। लक्षणं चतुरस्रस्य कथितं तव सुन्दरि।।४५।।
एतस्मिन्माने[5] यद्वान्यत् तदन्येषु यथा भवेत्। तेन मानेन सर्वाणि कुण्डानि रचयेद् बुधः।।४६।।
गोमयोदकसंलिप्ते पूर्वात्पश्चिमदिग्गताः[6]। दक्षिणाद्युत्तरान्तं तु तिस्रस्तिस्रश्च कारयेत्।। ४७।।
प्रणवेणाभ्युक्ष्य मध्ये कल्पयेद्यागविष्टरम्। शर्करां विकिरेत्तत्र त्रिकोणं तत्पुटं लिखेत्।।४८।।

---

१ 'गरैः' क.ग.पाठः। २ 'पूर्वं' क.पाठः। ३ 'स्तु' ख.पाठः। ४ 'ल्यु' ख.पाठः। ५ 'माति' क.पाठः। ६ 'तः' क.ग.पाठः।

तद्बहिर्वसुपत्रं च ततो भूमण्डलं लिखेत् । उपर्युपरि भेदेन तत्र पीठं समर्चयेत् ।। ४९।।
मण्डूकं च तथा रुद्रं कालाग्न्याद्यं ततः परम्। आधारशक्तिकूर्मौ च ततोऽनन्तं वराहकम्।। ५०।।
पृथिवीं च तथा कन्दं नालं पद्मं च कर्णिकाम्। पत्राणि केसराण्येवं तत्तत्स्थानेषु पूजयेत्।। ५१।।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं पीठदिक्षु च। अधर्मांश्चैव कोणेषु पीठस्य परिपूजयेत् ।। ५२।।
पुनस्तारेण सम्पूज्य यागविष्टरकं न्यसेत्। मध्ये ऋतुमतीं वेदमातरं वेदमस्तकाम्।। ५३।।
पुरुषाधिष्ठितां ध्यात्वा तद्योनौ सम्पुटस्थिताम्। वह्निं कुण्डे परिभ्राम्य किञ्चिदङ्गारकं त्यजेत्।।५४।।
अस्त्रमन्त्रेण सकलान् भूतान् सन्त्रासयेत् सुधीः। पश्चात् प्रज्वालयेद्वह्निं ज्ञानाग्नेः सङ्क्रमेण तु।। ५५।।
दीपाद्दीपान्तरन्यायात् स्फुरन्तं सर्वतो मुखम्। श्वासमार्गेण मनुविद्योनिमार्गेण सङ्क्षिपेत्।। ५६।।
कुण्डत्रिकोणमध्ये तु तत्र प्रक्षालयेच्छुचिम्। आदौ व्याहृतिभिः पश्चाद्वह्निमन्त्रेण च क्रमात्।। ५७।।
चितिपिङ्गलहनद्वन्दं दहद्वन्दं पच द्विधा। सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मनुना प्रार्थयेत् ततः।। ५८।।
अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्।। ५९।।
उपस्थानं विधायेत्थं जिह्वाङ्गानि प्रविन्यसेत्। सषशा वलरा यश्च रमस्वस्वरया(रयषष्ठस्वरा)न्विताः।।६०।।
बिन्दुनादाङ्किताः सप्त जिह्वार्णाः परिकीर्तिताः। पद्मरागा सुवर्णा च तृतीया भद्रलोहिता[१]।। ६१।।
लोहिता च तथा श्वेता धूमिनी च करालिका। क्रमेण योजयेद्बीजैर्विन्यसेत् परमेश्वरि ।। ६२।।
पल्लिङ्गगुदमूर्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात् । सुराश्च पितरश्चैव गन्धर्वा यक्षपन्नगाः।। ६३।।
पिशाचा राक्षसाश्चैव स्मर्तव्यास्तासु सप्तसु। सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषस्तथा।। ६४।।
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतीरितैः। ङेहृदन्तैः षडङ्गानि ततो मूर्त्यष्टकं न्यसेत्।। ६५।।
जातवेदः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च। अश्वोदर्यश्चतुर्थः स्याद्वैश्वानर उमे ततः।। ६६।।
षष्ठः कौमारतेजाश्च विश्वदेवमुखौ न्यसेत् । मूर्धांसपार्श्वकट्यन्धुकटिपाश्वांसकेषु च।। ६७।।
ङेन्तास्तु सकला ज्ञेया अग्निमूर्त्यङ्गकाः क्रमात्। एवं विन्यस्तदेहः सन् पर्युक्ष्यार्घ्यजलेन च।।६८।।
दिक्षु दर्भैः परिस्तीर्य ततस्तु परिषेचयेत्। वैश्वानर ततो जातवेद पश्चादिहावह ।। ६९।।
लोहिताक्ष च सर्वान्ते कर्माण्यपि च साधय। स्वाहान्तोऽगुणरयं तारं वक्त्रे चितिपिङ्गलोऽर्चि[२] च।।७०।।
अनेन वह्निमभ्यर्च्य ततो जिह्वाः समर्चयेत्। मध्ये च कोणषट्के च ततोऽङ्गानि प्रपूजयेत्।।७१।।
मूर्तयो वसुपत्रेषु भूबिम्बे दिगधीश्वराः । पुनर्वैश्वानरं जप्त्वा त्रिनेत्रमरुणप्रभम् ।। ७२।।
शुक्लाम्बरं रक्तरत्नभूषणं पद्मसंस्थितम् । वरं शक्तिं स्वस्तिकं चाभीतिं हस्तैश्च बिभ्रतम्।।७३।।
अनेकहेममालाभिरङ्कितं संस्मरेद्बुधः । अर्घ्योदकेन पात्राणि प्रोक्षयेच्छुद्धये ततः।। ७४।।
उन्मुखीकृत्य सर्वाणि तत्र तत्र विनिक्षिपेत्। प्रणीताप्रोक्षणीयुग्मे जलं स्थाल्यां घृतं तथा।।७५।।
अन्यत् सर्वेषु पात्रेषु होमद्रव्याणि सङ्क्षिपेत्। स्रुक्पात्रे च स्रुवे पात्रे घृते पुष्पं विनिक्षिपेत्।।७६।।

१. 'रुद्र' इति पाठान्तरम्। २. 'चक्रं' क.ग. पाठः।

स्थालीं पूर्वा(धूपा)न्वितां कुर्यात् सर्वतो धूपयेत् प्रिये। मेखलासु च सर्वासु वेष्टयेद्दीपमालिकाः।।७७।।
त्रिपङ्क्त्या चाभितः कुण्डं ततो व्याहृतिभिर्हुनेत्। ब्रह्माणं दक्षिणेऽभ्यर्च्य हुनेद्वैश्वानराणुना।।७८।।
गर्भाधानादिसंस्कारं चिन्तयेत् सिद्धिहेतवे। अनेन विधिनाभ्यर्च्य श्रीचक्रं तत्र चिन्तयेत्।। ७९।।
तदन्तरे समावाह्य महात्रिपुरसुन्दरीम् । समस्तचक्रचक्रेशीसहितां होमयेत् ततः ।। ८०।।
दशाज्याहुतिभिः पश्चात् पूजनादिक्रमेण च। समस्तचक्रचक्रेशीः प्रकटाद्याश्च योगिनीः।। ८१।।
होमयेच्च घृतेनैव चैकैकामाहुतिं क्रमात् । ततः पूर्वोक्तसुद्रव्यैर्होमयेत् सुभगां पराम्।। ८२।।
हवनं पद्मरागायां सर्वसिद्धिप्रदं भवेत् । रुद्ररक्ता सुवर्णा च सर्वकामफलाप्तये ।। ८३।।
लोहियातां भवेच्छान्तिः स्तम्भनं च क्रमाद्भवेत्। उच्चाटनं च धूमिन्यां करालिन्यां च मारणम्।।८४।।
इति ते कथितं दिव्यं होमलक्षणमुत्तमम्। कृतं[१] विघ्नौघशमनं नान्यथा वरवर्णिनि।। ८५।।
दीपस्थानं समाश्रित्य जपहोमौ समाचरेत्। वसुकोष्ठं लिखेत् कूर्मं मध्ये स्थाने प्रकल्पयेत्।।८६।।
स्वरान् द्वन्द्वविभागेन पूर्वादिक्रमतो लिखेत्। काद्या वर्गास्तु सप्तैते पूर्वादिक्रमतो लिखेत्।।८७।।
ळक्षवर्णोऽष्टमे योज्यः कूर्मचक्रमिदं भवेत्। स्थानाक्षरं यत्र देवि सिद्धिस्तत्र न संशयः।। ८८।।
स्थानाक्षरं मुखं ज्ञेयं पार्श्वयोस्तस्य वै करौ। तत्र शून्यं फलं मध्यकोष्ठयुग्मं तु मृत्युदम्।।८९।।
उदरं कच्छपस्यैतत्पादौ तु पश्चिमौ क्रमात्। रोगहानिकरौ पुच्छं तयोर्मध्यगतं भवेत्।। ९०।।
दारिद्र्यदं दुःखदं च तस्माद्वक्त्रं समाश्रयेत्। तथैव सिद्धिर्नान्यत्र श्रीगुरोराज्ञया प्रिये।। ९१।।
देशं वा कल्पयेत् स्थानं नगरं ग्राममेव च। दीपावासोऽपि कर्तव्यः किं पुनर्हवने यजेत्।।९२।।

इति। स्वच्छन्दसङ्ग्रहे—

चक्रराजं समालिख्य सिन्दूररजसा प्रिये। स्वयम्भूकुसुमाक्तैश्च कुसुमैरक्षतैर्यजेत् ।।१।।
नवावरणदेवीनां गायत्रीभिः समन्ततः। गायत्रीं सम्यगुच्चार्य तदन्तेऽप्यमुकं ततः।। २।।
वशमानय मेऽन्ते च तत्तत्पल्लवमुच्चरेत्। ततश्चामुकदेवीश्रीपादुकां पूजयामि च।। ३।।
एवमाकर्षणे मोहे स्तम्भनोच्चाटकर्मसु। सप्ताहाभ्यन्तरे मन्त्री वाञ्छितं समवाप्नुयात्।।४।। इति।

अस्यार्थः — क्वचिद्विविक्ते देशे सिन्दूरादिरक्तद्रव्यैश्चक्रराजं विलिख्यार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजानन्तरं यथोक्तपीठपूजां विधाय स्वयम्भूकुसुमाक्तैरक्षतैः पुष्पैर्वावरणपूजां कुर्यात्। तत्र वश्ये तारत्रयपूर्वकतत्तद्गायत्रीमुच्चार्यामुकदेवि अमुकं मे वशमानय अथवा वशं कुरु कुरु वौषट् अमुकदेवीश्रीपादुकां पूजयामि, इति प्रयोगः। एवं प्रत्यावरणं प्रतिदेवीः पूजयेत्। आकर्षणे अमुकमाकर्षयाकर्षयेति,. एवं स्तम्भनादिप्रयोगेषु योजनीयमित्यर्थः।। तथा —

मूलाधारादिचक्रेषु श्रीचक्रं भावयन् पृथक्। तत्तद्भूतार्णकिरणैर्वृताश्चक्रस्थदेवताः ।। १।।

पार्थिवैः स्तम्भनं कुर्यादित्यादि प्राक्प्रोक्तफलानि ज्ञेयानि। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चक्रराजस्य साधनम्। एवं संसिद्धविद्याया विनियोगक्रमं शृणु।। १।।

---

१. 'कुतः' क. पाठः।

कृत्वा सिन्दूररजसा चक्रं तत्र विचिन्तयेत्। साध्यप्रतिकृतिं नाम लेखन्यैका[1] शुभा ततः।।२।।
ज्वलन्तीं तु क्षणाद् देवि मोहिता भयवर्जिता। त्यक्त्वा लज्जां समायाति ह्यथान्यत् कथ्यते प्रिये।।३।।
तन्मध्यसंस्थितो मन्त्री चिन्तयेदरुणप्रभम्। आत्मानं च तथा साध्यं तथा सौभाग्यसुन्दरः।। ४।।
अरुणैरुपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रयाः वृतः। यस्य नाम्ना पुनः सम्यक् स भवेद् दास एव हि।। ५।।
अदृष्टस्त्रीनामवर्णांश्चक्रमध्ये विलिख्य तु। योनिमुद्राधरो भूत्वा वेगादाकर्षणं भवेत्।। ६।।
देवकन्यां राजकन्यां नागकन्यामथापि वा। गोरोचनाकुङ्कुमाभ्यां समभागं च चन्दनम्।। ७।।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या तिलकं सर्वमोहनम्। पुष्पं फलं जलं चान्नं गन्धं वस्त्रं च भूषणम्।। ८।।
ताम्बूलं पूर्वजप्तं[2] च यस्मै सम्प्रेष्यते स तु। अङ्गना वीक्षणादेव दासी चास्य भवेत् प्रिये।।९।।
करवीरै रक्तवर्णैस्त्रिमध्वक्तैः प्रपूजयेत्। चिन्तयन् मासमात्रं हि साध्याख्यां ललनां ततः।। १०।।
इति कुर्वन् महेशानीं पूजयेदरुणप्रभाम्। सिन्दूररचिते चक्रे राजानं मोहयेत् क्षणात् ।। ११।।
त्रैलोक्यदुर्लभां चापि रम्भां वाकर्षयेद् द्रुतम्। चिताङ्गारेण चक्रं तु लिखेद्रक्तद्रवेण हि।। १२।।
बद्ध्वा बाहावथ क्वापि ज्वरं नाशयति क्षणात्। अर्कनिम्बद्रवाभ्यां तु लेखन्यार्कस्य संलिखेत्।।१३।।
गोमूत्रे स्थापयेत् तच्च भवेद्विद्वेषणं क्षणात्। धूपयेच्चन्दनं रात्रौ वस्त्रं वा धारयेत् ततः।। १४।।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या मोहयेद्भुवनत्रयम् । लिप्तगोमयभूमौ तु लिखेद्रोचनया ततः।। १५।।
सुरूपां प्रतिमां रम्यां भूषाढ्यां परिचिन्तयेत्। तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजितम्[3]।। १६।।
जन्मनाम महाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम् । सर्वाङ्गसन्धिसंलीनं कामकूटं समालिखेत्।। १७।।
साध्याशाभिमुखो भूत्वा श्रीविद्यान्यासविग्रहः। क्षोभिणीबीजमुद्राभ्यां विद्यामष्टशतं जपेत्।।१८।।
योजयेत् तां कामगेहे चन्द्रसूर्यकलात्मके। सानुरागातिविमला कामसायकपीडिता ।। १९।।
त्रैलोक्यसुन्दरी नाम क्षणादायाति मोहिता। अथवा मातृकाचक्रं बाह्यं संवेष्ट्य मन्त्रवित्।।२०।।
चक्रं प्रपूजयेत् सम्यग् विद्यां पूर्णां च धारयेत्। अवध्यः सर्वदुष्टानां व्याघ्रादीनां न संशयः।।२१।।
श्रीखण्डागुरुकस्तूरीकर्पूरैश्च सकुङ्कुमैः । स्वनाम क्रमतो लेख्यं पूर्ववन्मातृकां लिखेत्।। २२।।
तेनाजरामरत्वं तु साधकस्य न संशयः । अनेनैव प्रकारेण रोचनागुरुकुङ्कुमैः ।। २३।।
चक्रं विलिख्य साध्यार्णं साधकार्णविदर्भितम्। त्रैलोक्यमोहनो मन्त्री भवत्येव न संशयः।।२४।।
कामकूटेन देवेशि सन्दर्भ्य पृथगक्षरम्। साध्यनाम्नस्त्रिकोणान्तर्मातृकां वेष्टयेद्बहिः।। २५।।
स्वर्णमध्यगतं धार्यं शिखायां यत्र कुत्रचित्। लोकपालाश्च राजानो दुष्टास्त्रैलोक्यसंस्थिताः।।२६।।
ते सर्वे वशमायान्ति सन्निपातादयो ज्वराः। अनेन विधिना नाम पुरीं सन्दर्भ्य सङ्क्षिपेत्।। २७।।
चतुष्पथे मध्यदेशे दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात्। तस्य सौभाग्यमायाति राजानः किङ्कराः सदा।।२८।।
स्फुरत्तेजोमयीं पृथ्वीं प्रज्वलन्तीं चराचरम्। चक्रान्तश्चिन्तयेन्नित्यं मासषट्कं ततो नरः।। २९।।

१. 'कृत्वा लेखनीकां' ग. पाठः। २. 'पूर्ण' क. पाठः। ३. 'योषिताम्' क. पाठः।

तेन कन्दर्पसुभगो लोके भवति निश्चयात् । दृष्ट्याकर्षयते लोकान् विषं नाशयति ज्वरान्[१] ।।३०।।
तथा विषं च हरति दृष्ट्यावेशं करोति च। रात्रौ सिन्दूरलिखितं पूजयेदेकचित्ततः।। ३१।।
करोत्याकर्षणं दूराद्योजनानां शतादपि[२]। अखण्डं दिक्षु कोणेषु क्रमेण परिपूजयेत्।। ३२।।
यदा[३] तदैव लोकोऽयं वश्यो भवति नान्यथा। भूर्जपत्रे लिखेच्चक्रं रोचनागुरुकुङ्कुमैः।।३३।।
स्वनामदर्भितं कुर्याद् देशं वा पुट[४]भेदनम्। मण्डलं विषमस्थानं भूमौ चक्रं निधापयेत्।। ३४।।
धारयेद्वा ततो मन्त्री पुरं क्षोभयति क्षणात्। उन्मत्तरसलाक्षार्कक्षीरकुङ्कुमरोचनाः।। ३५।।
कस्तूर्यलक्तसहिता एकीकृत्य तु संलिखेत्। यन्नाम तस्य[५] देवेशि चौरजं व्याघ्रजं भयम्।।३६।।
ग्रहजं व्याधिजं चैव रिपुजं सिंहजं भयम्। अहिजं वाजिजं वास्ति सर्वान् मोहयति क्षणात्।।३७।।
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु मध्यगां संलिखेद् बुधः। त्रिकोणोभयगां चैव साध्यनामाङ्कितामधः।। ३८।।
तच्चक्रं धारयेत् तस्मात् सप्ताहात् किङ्करो भवेत्। पीतद्रव्येण चक्रान्ते लिखेद्विद्यामधस्ततः।।३९।।
साध्यनाम विलिख्यैतत्पूर्वस्यां दिशि सङ्क्षिपेत्। तस्माद्ब्रह्मापि जीवोऽपि सर्वज्ञो मूकतां व्रजेत्।।४०।।
अनेन विधिना नीलीरसेन विलिखेच्च तत्। दक्षिणाभिमुखो मन्त्री बह्नौ दग्ध्वा रिपून् दहेत्।।४१।।
महिषाश्वपुरीषेण गोमूत्रेण च संलिखेत् । आरनालस्थितं कुर्याद्भवेद्विद्वेषणं क्षणात्।। ४२।।
साध्यनाम लिखेन्मध्ये काकपक्षेण सञ्चयेत्। संलिख्य रोचनाद्रव्यैराकाशे दृष्टिगं यथा।। ४३।।
शत्रूनुच्चाटयेदाशु हठोच्चाटोऽयमीरितः । महानीलीरसोद्भिन्नरोचनादुग्धमिश्रितैः ।। ४४।।
लाक्षारसैर्लिखेच्चक्रं चतुर्वर्णान् वशं नयेत्। अनेन विधिना नीरे स्थापयेत् तज्जलेन तु।। ४५।।
सौभाग्यं महदाप्नोति स्नानपानान्न संशयः। पीतं चक्रं यजेत् पूर्वे स्तम्भयेत् सर्ववादिनः।।४६।।
सिन्दूरलिखितं चक्रमुत्तरे लोकवश्यकृत्। पश्चिमे पूजितं चक्रं गौरिकालिखितं ततः[६]।। ४७।।
मन्त्रिणो देवता वश्याः किं पुनर्योषितः प्रिये। तथैव दक्षिणास्यस्तु कृष्णं चक्रं समर्चयेत्।।४८।।
साध्यस्य मन्त्रहानिः स्यान्मरणं च विशेषतः। क्रमाद्दिगन्तरास्यः सन् वह्निकोणादिषु क्रमात्।।४९।।
स्तम्भं विद्वेषणं व्याधिमुच्चाटं कुरुते नरः। दुग्धे वश्यकरं क्षिप्तं रोचनालिखितं हठात्।। ५०।।
दग्धं तद्वह्निमध्यस्थं सर्वशत्रून् विनाशयेत्। गोमूत्रमध्यगं चैतद्भवेदुच्चाटनं रिपोः।। ५१।।
विद्वेषणं भवेच्चक्रे तेनैव परमेश्वरि । सिन्दूरेण लिखेच्चक्रं निर्जने तु चतुष्पथे।। ५२।।
सर्वां बाह्यत आरभ्य मध्यान्तं मातृकां लिखेत्। कुलाचारक्रमेणैव रात्रौ सम्पूजयेत् क्रमम्[७]।।५३।।
साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः। चतुर्दश्यां निशि स्वस्थो रुद्रभूमौ प्रपूजयेत्।।५४।।
षण्मासंख्यजातेन साक्षाद्रुद्र इवापरः । अञ्जनं विवरं सिद्धिं गुटिकां पादुकाञ्जनम्।। ५५।।
खड्गं वेतालसौभाग्यं यक्षिणीं चेटकादिकम्। सकलं सिद्धिजजनं मन्त्री प्राप्नोति नान्यथा।।५६।।

१. 'त्' क. पाठः। २. 'तैरपि' क. पाठः। ३. 'यथा तथैव' ग. पाठः। ४. 'पुर' क. पाठः। ५. 'यस्य' क. पाठः।
६. 'हठात्' ग. पाठः। ७. 'मात्' ग. पाठः।

चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां प्रत्यष्टम्यां समाहितः। एकविंशतिरात्रं तु निशि प्रेतस्थितो जले।। ५७।।
श्रीचक्रं पूजयेत् तद्वत् सुरपूज्यस्तु साधकः। पाशाङ्कुशधनुर्बाणैः पौरुषेयैर्महेश्वरि।। ५८।।
कामो भूत्वा सर्वभूश्च(स्वर्गभूमि)पातालतलयोषिताम्। हर्ता कर्ता स्वयं चैव महदाकर्षणं भवेत्।।५९।।
तत्तत्कामेश्वरीशस्त्रैर्देव्यात्मा भुवनत्रये। पुरुषाकर्षणं चैतद्राजानः किङ्कराः प्रिये।। ६०।।
एतत्कामकलाध्यानं कथितं बीजभेदतः। वाग्भवाराधने देवि ज्ञानं सारस्वतं भवेत्।। ६१।।
श्वेताभरणवस्त्राभ्यां श्वेतपुष्पैः समर्चयेत्। अनेन विधिना देवि वाग्भवाराधनं भवेत्।। ६२।।
अथ कामकलानाम सामर्थ्यं शृणु पार्वति। काममन्मथकन्दर्पा मकरध्वज एवं च।। ६३।।
महाकामश्च पूर्वोक्ताः पञ्च कामाः क्रमेण तु। कामं मन्मथमध्यस्थं देवि कन्दर्पवेश्मगम्।। ६४।।
तत्पुटस्थं मीनकेतुं महाकामेशमस्तकम्। अनेन कामतत्त्वेन मोहयेज्जगतीमिमाम्।। ६५।।
मूलादिसृष्टिसंहारबिसतन्तुतनीयसीम्। तस्मात् कुण्डलिनी शक्तिः शक्तिकूटे महेश्वरि।।६६।।
त्रिकूटा त्रिपुरा देवी सर्वसिद्धिप्रदा भवेत्। चतुषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्।।६७।।
चक्रमेतत्समाश्रित्य सता[1] सिद्धिप्रदाः सदा। इति।

अथ नानावैदिकमन्त्रमिश्रिताः श्रीविद्यामन्त्रा उद्ध्रियन्ते। स्वच्छन्दसङ्ग्रहे—

प्रणवं कमला माया कामपिण्डं च गाणपम्। ततो वाग्भवकूटं च यद्ध्यकच्च वृत्रहन्।। १।।
कामराजं महाकूटमुदगा अभिसूर्य च। शक्तिकूटं समालिख्य सर्वं तदिन्द्र ते वशे।। २।।
ङेऽन्तं गणपतिं पश्चाद्वरान्ते वरदेति च। ततः सर्वजनं मेऽन्ते वशमानय ठद्वयम्।। ३।।
गणराजेश्वरो मन्त्रः सर्वैश्वर्यफलप्रदः। सर्ववश्यकरः पुंसामायुरारोग्यसिद्धिदः ।। ४।।
महागणपतेर्मन्त्रं त्रैष्टुभं जातवेदसम्। अर्धं संवादसूक्तस्य पुनरर्धं क्रमाल्लिखेत्।। ५।।
चतुःखण्डानि चोक्तानि त्रिकूटैर्गर्भितानि च। प्रत्यहं जपतः पुंसो यथाशक्ति विशेषतः।।६।।
जगत्सम्मोहनं वश्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम्। इति।

अस्यार्थः— ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं कएईलह्रीं यद्ध्यकच्च वृत्रहन् हसकहलह्रीं उदगा अभिसूर्य सकलह्रीं सर्वं तदिन्द्र ते वशे गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।। कएईलह्रीं "जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः" हसकहलह्रीं "संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ इळस्पदे समिध्यते स नो वसून्याभर,। सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वे सञ्जानाना उपासते" सकलह्रीं।। समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।" समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।" इत्युद्धारः।।

भद्रन्नो अभिमन्त्रस्य गर्भस्थां सुन्दरीं जपेत्। कुबेर इव वित्ताढ्यो जायते भुवि मानवः।। १।। इति। अस्यार्थः— "भद्रं नो अभिवातय मनः कएईलह्रीं मरुतामोजसे स्वाहा हसकहलह्रीं इन्द्रो विश्वस्य राजति सकलह्रीं शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे"।। इति।।

१. 'स्थिता' क. ग. पाठः।

यद्वाग्देवीं च चत्वारि ससर्परीयुगं ततः। ऋक्पञ्चकं समाख्यातं महासारस्वतप्रदम्।। १।। इति।

अस्यार्थः— "यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि कएईलह्रीं राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा हसकहलह्रीं चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि सकलह्रीं क्वस्विदस्याः परमं जगाम"।। १।। "देवीं वाचमजनयन्त देवाः कएईलह्रीं तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति हसकहलह्रीं सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना सकलह्रीं धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु"।।२।। "चत्वारि वाक्परिमिता पदानि कएईलह्रीं तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः हसकहलह्रीं गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति सकलह्रीं तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति"।।३।। "ससर्परमतिं बाधमाना कएईलह्रीं बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता हसकहलह्रीं आसूर्यस्य दुहिता ततान सकलह्रीं श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम्"।।४।। "ससर्परीरभन्तूयमेभ्यः कएईलह्रीं अधिश्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु हसकहलह्रीं सा पक्ष्यानव्यमायुर्दधाना सकलह्रीं या मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः।।५।। इति पञ्चमन्त्राः।। तथा—

यच्छन्दसा शरीरं मे यो देवानामिति त्रयम्। सुन्दरीं गर्भगं जप्यात् पृथक् पृथगतन्द्रितः।। १।।
मेधावी श्रुतिधारी च नीरोगी च प्रियंवदः। बहुश्रुतः शास्त्रकर्ता श्रुतान् वेदागमानपि ।। २।।
न विस्मरति मर्त्योऽसौ सर्वज्ञो भवति ध्रुवम्। इति।

अस्यार्थः— "यच्छन्दसामृषयो विश्वरूपः कएईलह्रीं छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव हसकहलह्रीं स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु सकलह्रीं अमृतस्य देव धारणो भूयासम्"।। १।। "शरीरं मे विचर्षणं कएईलह्रीं जिह्वा मे मधुमत्तमा हसकहलह्रीं मनसः काममाकूतिं सकलह्रीं वाचः सत्यमशीमहि"।।२।। "यो देवानां प्रथमं पुरस्तात् कएईलह्रीं विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिभिः हसकहलह्रीं हिरण्यगर्भो पश्यत जायमानं सकलह्रीं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु"।।३।। इति त्रयो मन्त्राः।। तथा—

एवापित्रे यूयमस्मानेवेन्द्राग्नी त्रयं भवेत्। चतुर्थी त्वं सोम प्रचेति पञ्चमी तु प्रजापते।। १।।
एतत्पञ्चर्चगर्भस्थां सुन्दरीं प्रजपेत् पृथक्। यो नरस्तस्य नियतं धनधान्यधरासुतैः।। २।।
गोगजाश्वाविमहिषशस्यभूषादिसङ्कुलम् । लक्ष्मीं समावहेद्रम्यां पुत्रपौत्रादिगामिनीम्।।३।।

इति। अस्यार्थः— "एवा पित्रे विश्वेदेवाय वृष्णे कएईलह्रीं यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः हसकहलह्रीं बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तः सकलह्रीं वयं स्याम पतयो रयीणाम्"।। १।। यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा कएईलह्रीं निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः हसकहलह्रीं जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा सकलह्रीं वयं स्याम पतयो रयीणाम्"।।२।। "एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य कएईलह्रीं विश्वास्मभ्यं सञ्जयतं धनानि हसकहलह्रीं तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां सकलह्रीं अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः"।।३।। "त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा कएईलह्रीं त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् हसकहलह्रीं तव प्रणीति पितरो न इन्दो सकलह्रीं देवेषु रत्नमभजन्त धीराः"।।४।। "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः कएईलह्रीं विश्वा जातानि परिता बभूव हसकहलह्रीं यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु सकलह्रीं वयं स्याम पतयो रयीणाम्"।। ५।। इति पञ्चमन्त्राः।। तथा—

अथ या लक्ष्म्यश्वदायिगर्भस्थां[1] सुन्दरीं यजेत्। धनैर्धान्यैश्च विभवैरन्यैश्चाश्वगवादिभिः।। १।।
आपूरयन्ती सततं तत्रैव रमते रमा।।

इति। अस्यार्थः— "या लक्ष्मीः सिन्धुसम्भवा कएईलह्रीं भूतिर्धेनुपरूवसूः हसकहलह्रीं पद्मा विश्वावसुर्देवी सकलह्रीं सदा नो जुषतां गृहम्"।। "अश्वदायि गोदायि कएईलह्रीं धनधायि महाधने हसकहलह्रीं धनं मे जुषतां देवी सकलह्रीं सर्वकामार्थसिद्धये[2]"।। इति मन्त्रद्वयम्।।

१. 'यीं' क. पाठः। २. 'अश्वदायी गोदायी धनदायीमहाधने। धनं मे जुषतां देवी सर्वान्कामांश्च देहि मे' इति ऋग्वेदे पाठः।

कलातिथ्यृचसूक्तस्थमन्त्रपादचतुष्टयैः। सम्पुटीकृत्य जपतां फलान्याचक्ष्महे स्फुटम्।। १।।

इति। अस्यार्थः— कलाऋचसूक्तं पुरुषसूक्तं "सहस्रशीर्षे" त्यादि यजुर्वेदे प्रसिद्धम्। तिथ्यृचसूक्तं श्रीसूक्तं "हिरण्यवर्णामित्यादि ऋग्वेदे प्रसिद्धम्। सम्पुटीकरणं तु— "सहस्रशीर्षः पुरुषः कएईलह्रीं सहस्राक्षः सहस्रपात् हसकहलह्रीं स भूमिं विश्वतो वृत्वा सकलह्रीं अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्"।। पुरुष एवेदं सर्वं कएईलह्रीं यद्भूतं यच्च भव्यम् हसकहलह्रीं उतामृतत्वस्येशानो सकलह्रीं यदन्नेनातिरोहति।। एतावानस्य महिमा कएईलह्रीं अतो ज्यायांश्च पुरुषः हसकहलह्रीं पादोऽस्य विश्वा भूतानि सकलह्रीं त्रिपादस्यामृतं दिवि।। त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः कएईलह्रीं पादोऽस्येहाभवत्पुनः हसकहलह्रीं ततो विश्वं व्यक्रमत् सकलह्रीं साशनानशने अभि।। तस्माद्विराडजायत कएईलह्रीं विराजो अधि पुरुषः हसकहलह्रीं स जातो अतिरिच्यत सकलह्रीं पश्चाद्भूमिमथो पुरः।। यत्पुरुषेण हविषा कएईलह्रीं देवा यज्ञमतन्वत हसकहलह्रीं वसन्तोऽस्यासीदाज्यं सकलह्रीं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।" इत्यादिक्रमेण षोडशमन्त्राणां पादैः सम्पुटं कृत्वा जपेत्।। पुरुषसूक्तमन्त्र— पादैर्लोपायाः सम्पुटं श्रीसूक्तमन्त्रपादैः कामराजविद्यायाः सम्पुटमिति ज्ञेयम्।। तदुक्तं कुलार्णवे—

लोपाम्बा[1] सम्पुटीकृत्य पौरुषैश्च जपेद् बुधः। श्रीसूक्तैः कामराजाख्यां प्रजपेद्यत्नतो बुधः।। १।।

इति। पौरुषैः पुरुषसूक्तस्थमन्त्रपादैः श्रीसूक्तैः श्रीसूक्तमन्त्रपादैः। एवं "हिरण्यवर्णां हरिणीं कएईलह्रीं सुवर्णरजतस्रजम् हसकहलह्रीं चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं सकलह्रीं जातवेदो ममावह"।। एवं क्रमेण प्रत्येकं जपेत्।। तथा—

प्रथमेन सुतावाप्तिर्द्वितीया जीवसूर्भवेत्। तृतीयेन चतुर्थेन वन्ध्यादोषविनाशनम्।। २।।
पञ्चमेनाथ षष्ठेन पुत्रं दीर्घायुषं लभेत्। सप्तमेन तु गर्भस्य स्थिरता ह्यष्टमेन तु।। ३।।
सुखप्रसूतिर्नवमाद् गर्भदोषान् विनाशयेत्। दशमेन परेणापि पुष्पदोषान् विनाशयेत्।।४।।
द्वादशेन तु कन्यायाः सूतिदोषमपास्य च। पुमपत्यं भवत्येव चतुर्भिस्तत्परैर्ध्रुवम्।।५।।
सर्वे दोषा विनश्यन्ति गर्भजा नात्र संशयः। इति।

अथ श्रीसूक्तफलानि —

प्रथमे सम्पदां प्राप्तिर्द्वितीयेन पशून् वहेत्। तृतीयेन भवेद्धान्यं चतुर्थेन महीं लभेत्।। १।।
भृत्यान् पञ्चममन्त्रेण षष्ठेन तु महद्यशः। सप्तमाद्राजसम्मानमष्टमेन धृतिः स्थिरा।। २।।
नवमेन तुरङ्गाप्तिर्दशमेन गजाँल्लभेत्। एकादशेन वस्त्राणि द्वादशेन सुताँल्लभेत्।। ३।।
त्रयोदशेन रत्नानि चतुर्दशमहामनोः। पृथिवीं शस्यसम्पन्नां[2] श्रियं पञ्चदशेन तु।। ४।।
रुद्रमन्त्रैस्तथा कृत्वा[3] तत्तत्कर्माणि साधयेत्। श्रीविद्यावृन्दनिवहस्त्वेवं सम्पुटितो यदि।। ५।।
पञ्चाशच्च सहस्राणि दशलक्षमितानि च। जायन्ते तत्क्रमं ज्ञात्वा गुरुतः शास्त्रतोऽपि वा।। ६।।
विनियुञ्ज्यात् प्रयोगेषु तत्तत्कर्मण्यतन्द्रितः। दीक्षा तु षोडशार्णायाः(षड्दर्शनविधा भवेत्।। ७।।
तत्रादौ शाक्तदीक्षायाः[4])क्रमं वक्ष्ये यथाविधि। चतुर्विंशतिहस्तं तु मण्डपं कारयेद् बुधः।। ८।।
नव कुण्डानि कुर्वीत चतुरस्राणि वै क्रमात्। योनिकुण्डानि वा कुर्यादर्धचन्द्रनिभानि वा।। ९।।

---

१. 'लोपाख्यां' ख. पाठः। २. 'सम्पूर्णां' ग. पाठः। ३. 'कृत्या' क. पाठः। ४. बन्धचिह्नान्तर्गतं क. पुस्तके नास्ति।

त्रिकोणानि च वृत्तानि षट्कोणान्यम्बुजानि वा। अष्टास्राण्यथवाचार्य्यकुण्डमीशे[१]न्द्रमध्यतः।।१०।।
सार्धहस्तद्वयं त्यक्त्वा वेदिकान्तः प्रकल्पयेत्। हस्तमात्रं परित्यज्य कुण्डान्यन्यानि कल्पयेत्।।११।।
इति।। कुण्डलक्षणं त्वग्रे वक्ष्यामः। श्रीकुलार्णवे—
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वैष्णवानां विशेषतः। दीक्षायां षोडशार्णायां जपहोमेषु ऋत्विजाम्।। १।।
मन्त्रान् वक्ष्ये शृणु प्राज्ञे कुण्डेष्वष्टसु वै क्रमात्। नारायणं वासुदेवं वाराहं वैष्णवं तथा।। २।।
श्रीकण्ठं नारसिंहं च गोपालं कार्ष्णमेव च। पञ्चदश्यां समायोज्य जपे होमे च पार्वति।। ३।।
वैदिके तु विशेषेण गायत्रीं वेदमातरम् । जातवेदसपञ्चर्चं देवीलक्ष्म्योस्तु सूक्तके ।। ४।।
शैवे तु शिवपञ्चार्णमघोरं शरभं तथा । प्रासादं वा पाशुपातं दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम्।। ५।।
मृत्युञ्जयं दशार्णं च क्रमेण परमेश्वरि । सौरे तु घृणिमन्त्रं च षडर्णं वेदवर्णकम्।। ६।।
त्र्यक्षरं षोडशार्णं च द्वादशार्णं षडर्णकम्। अजपाख्यं तु शाक्ते तु बालामन्त्रश्च भैरवी।। ७।।
त्रिपुरा वासिनी सिद्धा मालिनी त्रिपुरादिका। भैरवी त्रिपुराम्बा च बौद्धे पद्मावती तथा।। ८।।
उग्रताराप्येकजटा तारा नीलसरस्वती । मातङ्गी सुमुखी चैव चण्डमातङ्गिनी तथा।। ९।।
ऊर्ध्वाम्नायक्रमेणैव द्वे द्वे विद्ये तथैव च। मूलविद्याः षोडशैव दीक्षायां श्रीगुरोर्मनोः।। १०।।
शुक्लं मिश्रं च रक्तं च विश्रान्तिचरणत्रयम् । शम्भोश्चरणविद्ये द्वे पराप्रासादसंज्ञके।। ११।।
पञ्च ब्रह्मात्मका मन्त्रा अष्टात्रिंशत्कलास्त्रिधा। एकार्णं गाणपत्ये तु महागणपतिं तथा।। १२।।
क्षिप्रसंज्ञं गणेशं च वक्रतुण्डं तथैव च । लक्ष्मीगणपतिं चैव हेरम्बगणपं तथा।। १३।।
विर्याख्यगणपं चैव तथा शक्तिगणेश्वरम्। दक्षिणाकालिकायास्तु एकार्णं त्र्यर्णमेव च।। १४।।
सिद्धकाली षडर्णा च मुनवस्वर्णकौ तथा । दशाक्षरद्वयं चैव तारायां षोडशाक्षरी ।।१५।।
आद्यहीनाश्चाष्ट तारा भुवनेश्या गुणार्णकम्। श्रीवाक्कामपरारुद्धा त्रिविधा त्रिपुटा तथा।। १६।।
पञ्चदश्या विशेषेण त्रिचतुष्पञ्चकूटकाः । षट्कूटा सप्तकूटा स्यादष्टकूटा तु पञ्चमी।। १७।।
नित्यापञ्चदशीनां अङ्गाङ्गित्वं परस्परम्। पीताम्बराष्टवाराह्यो दीक्षायां तु परस्परम्।। १८।।
दुर्गाया महिषार्दिन्या शूलिनी वनदुर्गिका। जयाख्या च नवार्णा च शान्त्यग्निलवणात्मिका।।१९।।
अतिदुर्गा च सम्प्रोक्ता गायत्र्यास्तदनन्तरम्। पञ्चायतनभेदैस्तु सौरे शाक्ते च वैष्णवे।। २०।।
शैवे च गाणपत्ये च प्रागुक्ता मन्त्रनायकाः। वैष्णवाष्टकमध्ये तु हित्वा स्वाष्टदशाक्षरम्।।२१।।
तुरीया वेदमाता च संयोज्या परमेश्वरि । शैवं पाशुपतं हित्वा तत्र त्रैयम्बकं क्षिपेत्।। ३२।।
सौरेऽप्यष्टाक्षरं हित्वा उद्यन्मन्त्रं नियोजयेत्। गाणपत्ये गणानां त्वा हित्वोच्छिष्टं गणेश्वरम्।।२३।।
शाक्ते प्रागवच्च संयोज्य दीक्षाहोमजपादिषु। एतदायतनानां चाप्यङ्गाङ्गित्वं परस्परम् ।। २४।।
शाक्ते सम्यक् प्रवक्ष्यामि चक्रेश्वर्यः प्रकीर्तिताः। षट्शाम्भवोपदेशे तु ह्यङ्गाङ्गित्वं परस्परम्।।२५।।

१. 'शेन' क. पाठः।

त्र्यक्षरं चतुरर्णं चाप्येकाक्षरमतः परम् । सिद्धलक्ष्मी राज्यलक्ष्मीर्वान्यद्भेदत्रयं पुनः।। २६।।
पुनरन्यन्मिलित्वात्र चाङ्गाङ्गित्वं परस्परम्। अन्यविद्यासु मन्त्रेषु तत्तद्भेदैः परस्परम्।। २७।।
अङ्गाङ्गित्वं प्रकर्तव्यं तत्तत्कर्मणि निश्चयात्। पञ्चायतनदीक्षायां पूजायां च विशेषतः।।२८।।
अङ्गाङ्गित्वं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि समाहितः। महागणेशमन्त्रेण घृणिमन्त्रेण संयुता।। २९।।
पराप्रासादमन्त्रेण लक्ष्मीनारायणेन च। संयोज्य षोडशार्णां तु दीक्षायां जपपूजनात्[१]।। ३०।।
दक्षिणाकालिकायास्तु तथैव परिकीर्तितः। तारायाश्छिन्नमस्ताया विशेषोऽत्र निगद्यते।।३१।।
मार्तण्डभैरवश्चैव मञ्जुघोषस्तथैव च । उच्छिष्टगणनाथश्च मुकुन्दो बाल एव च।। ३२।।
भुवनेश्या महादेव्या यावन्तो वैष्णवाः प्रिये। गाणपत्याश्च सौराश्च शैवाश्चापि विशेषतः।।३३।।
भैरवी बगला चण्डा मातङ्गी चापराजिता । दीक्षायां जपहोमे च पूजने च विशेषतः।। ३४।।
पञ्चायतनतन्त्रेषु[२] तारावत् परिकीर्तिता । दुर्गा च भुवनेशीव[३]न्महालक्ष्मीस्तथैव च।। ३५।।
अन्यास्तु सम्प्रदायेन प्रयोज्या देशिकोत्तमैः। इति।।

तथा च कादिमते श्रीतन्त्रराजे—

षडष्टद्वादशार्णानां वैष्णवानामशेषतः । मन्त्राणां परतत्त्वार्थवाचकत्वादभदेता ।।१।।
ललिताविद्यया तद्वत् प्रासादस्य त्रयात्मनः। तथैव च परायाश्च गायत्र्याश्चोक्तरूपतः।।२।।
व्याहृतीनां महावाक्यपरमात्माजपात्मनाम्। प्रणवस्य च ताद्रूप्ययोगात् स्यात्तत्तदात्मता।।३।।(२६/४६)

इति।। अथ सम्प्रदायाम्नायक्रमस्तं त्वग्रे वदिष्यामः।। अथ (श्रीविद्यायाः[४] श्रीचक्र आवरणपूजायां नारायणादि) प्रोक्तमन्त्राणां ऋष्यादिन्यासध्यानानि यथा तन्त्रान्तरेषु—ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि साध्यनारायणाय ऋषये नमः, मुखे देव्यै गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदये श्रीपरमात्मने देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममेष्टार्थे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलेन व्यापकं करयोर्विन्यस्य क्रुद्धोल्काय स्वाहा हृदयाय नमः, महोल्काय स्वाहा शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय स्वाहा शिखायै वषट्, द्युल्काय स्वाहा कवचाय हुं, सहस्रोल्काय स्वाहा अस्त्राय फट्, इति मन्त्रानङ्गुलीषु हृदयादिषु विन्यस्य ध्यायेत्।

हस्तैश्चक्रदरौ गदासरसिजे बिभ्राणमर्कोल्लासत्—
कान्तिं श्रीधरणीविभूषितलसत्पार्श्वं किरीटान्वितम्।
श्रीवत्साङ्कसकौस्तुभोरुपदकं केयूरहारोज्ज्वलं
राजत्कुण्डलमण्डितं हृदि भजे पीताम्बरं शार्ङ्गिणम्।।१।।

इति ध्यात्वा "ओं नमो नारायणाय" इत्यष्टाक्षरं जपेत्।।

अथ वासुदेवमन्त्रस्य—ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि प्रजापतिऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीवासुदेवदेवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलेन करयोर्व्यापकं कृत्वा, ओं हृदयाय नमः, नमो शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्,

१. नें' ग. पाठः। २. 'मन्त्रे तु' ग. पाठः। ३. शी च' ग. पाठः। ४. बन्धचिह्नान्तर्गतं क. पुस्तके नास्ति।

वासुदेवाय कवचाय हुं, नमो भगवते वासुदेवाय अस्त्राय फट्।

ततः समाहितो भूत्वा वासुदेवं हृदि स्मरेत्। मध्ये दुग्धाम्बुधिद्वीपे दिव्ययोषानिषेविते॥ १॥
तत्र सञ्चिन्त्य विपिनमखिलर्तुनिषेवितम् । तन्मध्ये कल्पवृक्षं च दिव्यमद्भुतदर्शनम्॥ २॥
तस्याधस्ताद्रत्नमञ्चकमलं[1] विमलप्रभम् । शरत्पूर्णेन्दुविलसत्प्रभापटलराजितम् ॥ ३॥
तत्र सञ्चिन्तयेद्देवं वासुदेवं स्मिताननम् । कुन्देन्द्वाभं गदाचक्रपद्मशङ्खलसत्करम् ॥ ४॥
चन्द्रायुतलसत्कान्त्या मोहयन्तं जगत्त्रयम्। केयूराङ्गदसंराजद्दोर्दण्डं रत्नभूषणम् ॥ ५॥
श्रीवत्साङ्कं लसद्रत्नमुकुटं कौस्तुभान्वितम् । अरविन्ददलाताम्रसुरम्यायतलोचनम्[2] ॥ ६॥
कुण्डलप्रोल्लसद्गण्डमण्डलं पीतवाससम्। ग्रैवेयहारसंशोभिकम्बुकण्ठं सुकङ्कणम्॥ ७॥
विशालवक्षःसंराजत्प्रफुल्लवनमालकम् । सनकादिमुनीन्द्रैश्च तत्त्वनिर्णयकाङ्क्षया॥ ८॥
निषेवितं दित्यदितिजातगन्धर्वसञ्चयैः । सिद्धविद्याधराद्यैश्च सेवितं च महोरगैः ॥ ९॥

इति ध्यात्वा जपादिकं विदध्यात्॥

अथ वराहमन्त्रस्य—ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि भार्गवाय ऋषये नमः, मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये श्रीवराहदेवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, एकशृङ्गाय हृदयाय नमः, व्योमोल्काय शिरसे स्वाहा, तेजोऽधिपतये शिखायै वषट्, विश्वरूपाय कवचाय हुं, महादंष्ट्रायास्त्राय फट्, इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्। ध्यानम्—

जानोः पदावधि सुवर्णनिभं च नाभेराजानु चन्द्रधवलं च गलाद्धृदन्तम्।
वह्निप्रभं शशिनिभं शिरसो गलान्तं मौलिस्थलाद्वियत[3] एन्दुनिभं च कान्तम्॥ १॥
संबिभ्रतं करतलैररिशङ्खखड्गान् खेटं गदां तदनु शक्तिवराभयानि।
सर्वंसहाधरणशोभिसदेकदंष्ट्रमाद्यं वराहमनिशं प्रभजे स्वचित्ते॥ २॥

इति ध्यात्वा "ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वर्पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा" अयं मन्त्रो योज्यः॥

अथ विष्णोः— ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि कपिलाय ऋषये नमः, मुखे गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदये श्रीभोगवामनाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टावाप्तये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ओं नमो हृदयाय नमः, भगवते शिरसे स्वाहा, विष्णवे शिखायै वषट्, सुरपतये कवचाय हुं, महाबलाय नेत्राभ्यां वौषट्, स्वाहास्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रानिविन्यस्य ध्यायेत्। ध्यानम्—

नीलवर्णश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाब्जधृक्। सर्वान् भोगान् ददात्येष भक्तानां भोगवामनः॥ १॥

इति ध्यात्वा "ॐ नमो भगवते विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा" इति॥

अथ श्रीकरमन्त्रस्य— ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीकराय देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टाप्तये विनियोग,

१. 'मञ्चं कमलवि' क. पाठः। २. 'सरसा' ग. पाठः। ३. 'द्विपदमन्द' क. ग. पाठः।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, उं भीषय २ हुं हृदयाय नमः, इति, त्तिं त्रासय २ हुं शिरसे स्वाहा, ष्ठं मर्दय २ हुं शिखायै वषट्, श्रीं प्रध्वंसय २ हुं कवचाय हुं, कं रक्षय २ हुं अस्त्राय फट्। ततः नेत्रयोः रं, उदरे स्वां, पृष्ठे हां इति विन्यस्य ध्यायेत्।

ततः सञ्चिन्तयेद्विष्णुं श्रीकरं हृदयाम्बुजे। लोलकल्लोलजालेन फेनिले सोर्मिमालके।। १।।
दुग्धाम्बुधावत्र मध्ये द्वीपं शुक्लमयं शुभम्। हेमस्थलीसमाकीर्णं नानामणिगणैः शुभम्।।२।।
वनं सञ्चिन्त्यतेत्तत्र सकलर्तुनिषेवितम्। कल्पद्रुमसमूहैश्च वारितातपमुत्तमम्।। ३।।
षट्पदालीकलारावसङ्कुलं लोलपल्लवम्। पुष्पव्रजपरागौघतुषारपरिपूरितम्।। ४।।
हिरण्मयानां वृक्षाणां मणिपुष्पेषु चञ्चलम्। इन्दिन्दिरालिक्रमणशीलशक्रमणीरुचम्।। ५।।
अङ्गीकरोति यत्रापि रमन्तेऽप्सरसः सुरैः। औदार्यशोभनैश्वर्यसौभाग्यादिगुणैर्युतैः।। ६।।
रूपाभिराममधुराकृतिभिः सुकुमारकैः। मन्दस्मितलसद्दन्तमरीचिद्योतिताननाः।। ७।।
मनोज्ञा जितचन्द्राभा मदस्फुरितलोचनाः। जल्पाकपुंस्कोकिलोद्यद्देववृन्दं निरन्तरम्।। ८।।
उन्निद्रितोद्यन्मदनाः पीनस्तनघटालसाः। सुश्रोणिभरादत्यर्थमन्दगामिन्य उत्तमाः।। ९।।
एवं भूताश्चाप्सरसः क्रीडन्ते यत्र चामरैः। मारसेनापतिरिव वनलक्ष्म्या गृहं यथा।। १०।।
जन्मस्थानमृतूनां च कल्पवृक्षतरोरधः[२]। इन्दिरायाः सोदरस्य नवरत्नमयस्य च।। ११।।
शिखावलिसमुद्द्योतिशीतलस्य तले शुभे। स्वर्णकुट्टिमसंशोभिमहारत्नमनोरमे।। १२।।
उद्यदर्कप्रभाभास्वत्पीठसन्निहितस्य च। प्रसिद्धविक्रमौघस्य पक्षिराजस्य चोपरि।। १३।।
उपविष्टं गालिताच्छशुचिहाटकसन्निभम्। रत्नोद्यन्मकराकारचारुकुण्डलमण्डितम्।। १४।।
किरीटमणिसंदीप्तदिक्चक्रं चारुभूषणम्। शशिखण्डलसच्छुभ्रक्लृप्तामलविशेषकम्।। १५।।
अतिचञ्चलसच्चिल्लिं मुकुटोज्ज्वलगण्डकम्। स्मितसंशोभिवक्त्रेन्दुकपोलफलकोज्ज्वलम्।।१६।।
दशनावलिरश्म्योघविराजितशुभाधरम्। पक्वबिम्बाधरं रम्यरक्तपद्मपलाशवत्।। १७।।
आयतारुणनेत्रं च सम्यक् पक्ष्मविराजितम्। उरुहारमणिव्रातदीधितिप्रोल्लसद्गलम्।। १८।।
दिव्यरत्नाङ्गदद्योतिबाहुजालधरं हरिम्। गदाकमलशङ्खारिधारिणं बाहुदण्डकैः।। १९।।
कपाटविपुलेनाथ कमलानिलयेन च। लसत्कौस्तुभदीप्त्योघविद्योतिततलेन च।। २०।।
वक्षसा सुविराजन्तं त्रैलोक्यनिलयेन च। त्रिवलीशोभिना सम्यग्रोमराजिलसद्रुचा।। २१।।
उदरेण विराजन्तं रम्यं कटितटेन च। पीतपट्टांशुकरुचा विलसन्मणिमेखलम्।। २२।।
शरतूणसदृक्पीनरम्योरुपरिभूषितम्। केकिकण्ठलसत्कान्तिजङ्घायुगमनोहरम्।। २३।।
रक्तोत्पलाभचरणं पादाग्रजितकच्छपम्। शशरक्तसदृक्कान्तिध्वजाब्जाङ्कितपत्तलम्।।२४।।
करसद्रक्तकमलरमयालिङ्गितं सदा। क्षमया चोपगूढं च नवमाणिक्यशोभितम्।। २५।।
नवयौवनकान्त्योघसंशोभिसकलाङ्गकम्। सुरासुरर्षिप्रमुखैः सेवितं चाप्सरोगणैः।। २६।।

---

१. 'युताः' ग. पाठः। २. 'क्षं स्मरेब्धुः' ग. पाठः।

पूर्णेन्दुबिम्बसदृशवितानसमलङ्कृतम्। सुरयोषाकराब्जालिलसच्चामरराजितम्।। २७।।
विद्युल्लतासंविलोलवैजयन्तीसुशोभितम्। यक्षविद्याधरव्यूहचारणादिनिषेवितम्।। २८।।

इत्येवं ध्यात्वा, "उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा"। अयं मन्त्रो (षोडशार्णायां) योज्यः।।

अथ नृसिंहमन्त्रः— ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये श्रीनृसिंहदेवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, उग्रं वीरं हृदयाय नमः, महाविष्णुं शिरसे स्वाहा, ज्वलन्तं सर्वतो मुखं शिखायै वषट्, नृसिंह भीषणं कवचाय हुं, भद्रं मृत्युमृत्युं नेत्रत्रयाय वौषट्, नमाम्यहं अस्त्राय फट्, इति विन्यस्य ध्यायेत्—

नृसिंहं भजे जानुविन्यस्तबाहुं त्रिनेत्रं भुजप्रोल्लसच्चक्रशङ्खम्।
कृशानूपमज्योतिषा ग्रस्तदैत्यं शिरःशोभिदंष्ट्रासुदीप्तद्विजिह्वम्।। १।।

इति ध्यात्वा, "उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं विश्वतोमुखम्। नृसिहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्" इति मन्त्रो योज्यः।।

अथ गोपालमन्त्रः— ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि नारदाय ऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदये श्रीकृष्णाय देवतायै नमः, गुह्ये क्लीं बीजाय नमः, पादयोः स्वाहाशक्तये नमः, सर्वाङ्गे कृष्णाय प्रकृतये नमः, हृदि श्रीदुर्गायै अधिष्ठात्र्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलेन करयोर्व्यापकं कृत्वा, आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, असुरान्तचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

दरारिचापसद्बाणगुणांशुकककराम्बुजम्। वेणुमादाय हस्ताभ्यां वादयन्तं मुदान्वितम्।। १।।
रविमण्डलगं कृष्णं ध्यायेदिष्टफलाप्तये।

इति ध्यात्वा "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" इति मन्त्रो योज्यः।।

अथ कृष्णमन्त्रः— ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि नारदऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीकृष्णदेवतायै नमः, गुह्ये क्लींबीजाय नमः, इत्यादि विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, पूर्णज्ञानात्मने हृदयाय नमः, पूर्णैश्वर्यात्मने शिरसे स्वाहा, पूर्णप्रभात्मने शिखायै वषट्, पूर्णानन्दात्मने कवचाय हुं, पूर्णतेज आत्मने नेत्राभ्यां वौषट्, पूर्णशक्त्यात्मने अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

ध्यायेद्धरिन्मणिनिभं जगदेकवन्द्यं सौन्दर्यसारमरिशङ्खवराभयानि।
दोर्भिर्दधानमजितं सरमं च भैष्मीसत्यासमेतमखिलप्रदमिन्दिरेशम्।। १।।

इति ध्यात्वा "क्लीं कृष्णाय नमः" इति मन्त्रो योज्यः।। योगस्तु— "ॐ हसकलह्रीं नमो हसकहलह्रीं नारायणाय सकलह्रीं"।। १।। "ॐ हसकलह्रीं नमो हसकहलह्रीं भगवते सकलह्रीं वासुदेवाय"।। २।। "ॐ नमो भगवते हसकलह्रीं वराहरूपाय हसकहलह्रीं भूर्भुवःस्वर्पतये सकलह्रीं भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा"।।३।। "ॐ नमो भगवते हसकलह्रीं विष्णवे हसकहलह्रीं सुरपतये सकलह्रीं महाबलाय स्वाहा"।।४।। "उत्तिष्ठ हसकलह्रीं श्रीकर हसकहलह्रीं स्वाहा सकलह्रीं"।। ५।। "उग्रं वीरं महाविष्णुं हसकलह्रीं ज्वलन्तं सर्वतो मुखं हसकहलह्रीं नृसिंहभीषणं भद्रं सकलह्रीं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्"।।६।। "क्लींकृष्णाय हसकलह्रीं गोविन्दाय हसकहलह्रीं गोपीजनवल्लभाय

सकलह्रीं स्वाहा''।। ७।। ''क्लीं हसकलह्रीं कृष्णाय हसकहलह्रीं नमः सकलह्रीं''।। ८।। एवं योग इत्यर्थः।।

वैदिकदर्शने तु मन्त्रानाह— ततःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा अस्य श्रीगायत्रीमन्त्रस्य शिरसि विश्वामित्राय ऋषये नमः, मुखे गायत्र्यै च्छन्दसे नमः, हृदये श्रीपरमात्मने देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः, वरेण्यं विष्णवात्मने शिरसे स्वाहा, भर्गोदेवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट्, धीमहि ईश्वरात्मने कवचाय हुं, धियो यो नः सदाशिवात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्, प्रचोदयात् परमात्मने अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकरां शूलं[1] कपालं गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।१।।

इति ध्यात्वा, ''तत्सवितुवरेण्यं हसकलह्री भर्गो देवस्य धीमहि हसकहलह्री धियो यो न सकलह्री प्रचोदयात्''।।

अथ जातवेदसे मन्त्रस्य—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा अस्य जातवेदमन्त्रस्य शिरसि मारीचपुत्रकश्यपाय[2] ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये श्रीजातवेदाग्नये दुर्गायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः, सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, निदहाति वेदः शिखायै वषट्, स नः पर्षदति कवचाय हुं, दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्, सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत्।।१।।

इति ध्यात्वा, ''जातवेदसे सुनवाम सोमं हसकलह्री आरातीयतो निदहाति वेदः हसकहलह्री स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सकलह्रीं सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।''

अथ तामग्निवर्णामिति मन्त्रस्य— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादीन् प्राग्वद्विन्यस्य ममाभष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्, इति विन्यस्य प्राग्वद् ध्यात्वा, ''तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं, हसकलह्री वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टां हसकहलह्रीं दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सकलह्रीं सुतरसि तरसे नमः''।। इति जपेत्।।

अथाग्ने इत्यस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते ऋष्यादिषडङ्गन्यासं ध्यानं च प्राग्वत् विधाय ''अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् हसकलह्री स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा हसकहलह्री पूश्च पृथिवी बहुला न उर्वी

---

१. 'शम्भं' ख. शुभ्रं' क. पाठः। २. 'मरीचि' ग. पाठः।

सकलह्रीं भवा तोकाय तनयाय शंयोः''।। इति जपेत्।।

अथ विश्वानि न इत्यस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासध्यानानि प्राग्वद्विधाय, ''विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः हसकलह्रीं सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि हसकहलह्रीं अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो सकलह्रीं अस्माकं बोध्यविता तनूनाम्''।। इति जपेत्।।

अथ पृतनाजितमित्यस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादिध्यानान्तं विधाय ''पृतनाजितं सहमानमुग्रं सकलह्रीं अग्निं हुवेम परमात्सधस्तात् हसकहलह्रीं स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा सकलह्रीं क्षामद्देवो दुरितात्यग्निः''।। ततः[1] श्रीसूक्तदेवीसूक्ते ऋग्वेदे प्रसिद्धे।।

अथ शैवे प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे पङ्क्त्यै च्छन्दसे नमः, हृदये श्रीसदाशिवाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, सर्वज्ञाय हृदयाय नमः, नित्यतृप्ताय शिरसे स्वाहा, अनादिबोधाय शिखायै वषट्, स्वतन्त्राय कवचाय हुं, नित्यमलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्, नित्यमनन्तशक्तये अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

गोक्षीरफेनधवलं रजताद्रिसमप्रभम् । चारुचन्द्रकलाराजज्जटामुकुटमण्डितम्।। १ ।।
पञ्चवक्त्रधरं शम्भुं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम्। शार्दूलचर्मवसनं रत्नाभरणभूषितम्।। २ ।।

इति ध्यात्वा, ''हसकलह्रीं ॐ हसकहलह्रीं नमः सकलह्रीं शिवाय'' इति मन्त्रं जपेत्।।

अथाघोरास्त्रस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अघोराय ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये श्रीअघोररुद्राय देवतायै नमः, गुह्ये ह्रींबीजाय नमः, पादयोः हूंशक्तये नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रीं स्फुर स्फुर हृदयाय नमः, प्रस्फुर प्रस्फुर शिरसे स्वाहा, घोर घोरतर तनुरूप शिखायै वषट्, चटचट प्रचट प्रचट कवचाय हुं, कहकह वमवम नेत्रत्रयाय वौषट्, बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री ध्यायेद्देवमनन्यधीः। कालमेघनिभं देवं भीमदंष्ट्रं त्रिलोचनम्।। १ ।।
भुजङ्गभूषणं रक्तवसनालेपसंयुतम् । परशुं करवालं च बाणांस्त्रिशिखमेव च।। २ ।।
दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादिक्रमतः परैः। डमरुं खेटकं चापं नृकपालं च पार्वति।। ३ ।।
काम्यकर्मसु रक्ताभमसितं चाभिचारके। निग्रहे ग्रहभूतादिमुक्त्यै मुक्तानिभं स्मरेत्।।४।।

इति। एवं ध्यात्वा, ''ॐह्रींस्फुरस्फुर प्रस्फुरप्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप हसकलह्रीं चटचट प्रचटप्रचट कहकह हसकहलह्रीं वमवम बन्धबन्ध सकलह्रीं घातयघातय हुंफट्'' इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ शरभप्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये: नमः, मुखे पङ्क्त्यै छन्दसे नमः, हृदये शरभशाल्वाय पक्षिराजाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐनमो भगवते हृदयाय नमः, शरभशाल्वाय शिरसे स्वाहा, पक्षिराजाय शिखायै वषट्, मम शत्रून्नाशय नाशय कवचाय हुं, हुं फट् नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा, अस्त्राय फट्। ध्यानम्—

---

१. ' एवं ' ख. पाठः।

अष्टापदं पक्षतिमूलराजद्वज्राङ्कुरं हाटकपक्षकूटम्।
हेमाङ्गमङ्गीकृतपद्मरागं चञ्चूपुटोल्लासिमुखारविन्दरम्।। १।।
सूर्यानलेन्दुद्युतिराजमाननेत्रत्रयोल्लासितपद्मरागम्' ।
नीलाश्मदीप्ताखिलरोमसङ्घं शीतांशुखण्डोज्ज्वलितोत्तमाङ्गम्।। २।।
विप्राहिद्वन्द्वबद्धोत्तमकपिलजटाभारसञ्चारिगङ्गा-
सङ्गाक्रान्तोत्तमाङ्गात् क्रमगलितपृषत्सङ्घहाराभिरामम्।
अग्रोद्यन्नागबन्धक्रमघटितसटाग्रन्थिपञ्चाङ्गुलोद्य-
त्पुच्छस्थग्रन्थिबाहूद्भवभुजयुगलोल्लासिमालाभिरामम्।। ३।।
कक्ष्यासम्बद्धवैश्याहिपयुगललसच्चन्द्रतीव्रांशुलीला-
घण्टाटोपाकुलाशादशकपतिकुलं वैरिसङ्घैककालम्।
पाशाकारांसलोलद्वृषलकुलभवाशीर्विशाधीशभोग-
स्फूर्जत्फुत्कारघोरं खुरपुटनिकरक्षुणसर्वंसहं तम्।। ४।।
भक्षयन्तं पक्षिरूपं भक्तानां वैरिसञ्चयम्। शरभं शाल्वरूपं च ध्यायेदेकाग्रमानसः।। ५।।

इति शरभरूपं शिवं ध्यात्वा "ॐनमो भगवते शरभशाल्वाय हसकलह्रीं पक्षिराजाय हसकहलह्रीं मम शत्रून् नाशय नाशय सकलह्रीं घघे[2]हुंफट् स्वाहा" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ प्रासादमन्त्रस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीसदाशिवाय देवतायै नमः, गुह्ये हं बीजाय नमः, पादयोः औं शक्तये नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, हां हृदयाय नमः, हीं शिरसे स्वाहा, हूं शिखायै वषट्, हैं कवचाय हुम्, हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, हः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

ध्यायेद्देवं ततो वत्स हृदि चैकाग्रमानसः। सिन्दूरपुञ्जशोणाङ्गं स्मेरवक्त्रं त्रिलोचनम्।। १।।
मणिमौलिलसच्चन्द्रकलालङ्कृतमस्तकम्। दक्षिणोर्ध्वकरे टङ्कं दधानं तदधो वरम्।। २।।
वामोर्ध्वहस्ते हरिणं तदधोऽभयमादरात्। पीनवृत्तघनोत्तुङ्गस्तनाग्रे विनिवेश्य च।। ३।।
वामाङ्के सन्निविष्टायाः प्रियाया रक्तपङ्कजे। दधत्या दक्षिणे हस्ते चासीनं रक्तपङ्कजे।। ४।।
नानाभरणसन्दीप्तं दिव्यगन्धस्रगम्बरम्।

इति ध्यात्वा "ॐहौं हसकलह्रीं ह्रीं हसकहलह्रीं नमः सकलह्रीं शिवाय" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ पाशुपतास्त्रस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीपशुपतये देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओं हुंफट् हृदयाय नमः, श्लीं हुंफट् शिरसे स्वाहा, प हुंफट् शिखायै वषट्, शु हुंफट् कवचाय हुं, हुं हुंफट् नेत्रत्रयाय वौषट्, फट् हुं फट् अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

---

१. 'सिमुखारविन्दम्' ग. पाठः। २. 'घंघं' ग. पाठः।

ध्यायेत् पशुपतिं सम्यङ्मन्त्री चैकाग्रमानसः। पञ्चवक्त्रं दशभुजं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम्॥ १॥
अग्निज्वालानिभश्मश्रुसंयुतं भीमदंष्ट्रकम्। खड्ग बाणानक्षसूत्रं शक्तिं परशुमेव च॥ २॥
दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादिक्रमतो गुरुम्। खेटचापौ कुण्डिकां च त्रिशूलं ब्रह्मदण्डयुक्॥ ३॥
वामहस्तैश्च बिभ्राणं मध्याह्नार्कसमप्रभम्। नानाभरणसन्दीप्तं पन्नगेन्द्रैरलङ्कृतम् ॥ ४॥
स्फटिकौघनिभं शान्तं सर्वरक्षाकरं स्मरेत्।

इति। एवं ध्यात्वा "ॐम्लीं हसकलह्रीं पशु हसकहलह्रीं हुं सकलह्रीं फट्" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ दक्षिणामूर्तिमन्त्रस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि शुकाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीदक्षिणामूर्तये देवतायै नमः, गुह्ये ओं बीजाय नमः, पादयोः ह्रीं शक्त्ये नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलमन्त्रेण करशुद्धिं विधाय, ओंह्रां दक्षिणामूर्तये ह्रां हृदयाय नमः, ओंह्रींतुभ्यंह्रीं शिरसे स्वाहा, ओंह्रीं वटमूलनिवासिने ह्रूं शिखायै वषट्, ओंह्रीं ध्यानैकनिरताङ्गाय ह्रैं कवचाय हुं, ओंह्रीं नमो रुद्राय ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओंह्रीं सम्भवे ह्रः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

वटविटपिसमीपे भूमिभागे निषण्णं सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात्।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिरूपं जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि॥ १॥

इति ध्यात्वा, "ॐह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं हसकलह्रीं वटमूलनिवासिने हसकहलह्रीं ध्यानैकनिरताङ्गाय सकलह्रीं नमो रुद्राय शम्भवे ह्रींओं" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ मृत्युञ्जयस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि कहोलाय ऋषये नमः, मुखे निचृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीमृत्युञ्जयाय देवतायै नमः, गुह्ये ॐबीजाय नमः, पादयोः सः शक्तये नमः, नाभौ जूं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलमन्त्रेण करशुद्धिं विधाय, सां हृदयाय नमः, सीं शिरसे स्वाहा, सूं शिखायै वषट्, सैं कवचाय हुं, सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, सः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

ध्यायेद्देवं ततो वत्स समाहितमनाश्चिरम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभ्रपद्मासनस्थितम्॥ १॥
कपर्दमौलिविलसच्चन्द्रखण्डच्युतामृतैः । अभिषिक्तसमस्ताङ्गमर्केन्द्वनललोचनम् ॥ २॥
दक्षिणोर्ध्वकरे मुद्रां ज्ञानाख्यां तदधःकरे। अक्षमालां च वामोर्ध्वे पाशं वेदमधःकरे।।३॥
दधानं चिन्तयेद्देवं मृत्युरोगभयापहम्।

इति ध्यात्वा, "ॐ हसकलह्रीं जूं हसकहलह्रीं सः सकलह्रीं" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ दशाक्षरस्य प्रयोगः— ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदये सदाशिवाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ओं हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्, रुद्राय कवचाय हुं, ॐनमो भगवते नेत्रत्रयाय वौषट्, रुद्राय अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

आकीर्णं दिव्यभोगैरमरदितिसुतैरर्चितं शैलकन्या-
देहार्धं धारयन्तं स्फटिकमणिनिभं व्याघ्रचर्मोत्तरीयम्।
द्वैर्पीं कृत्तिं वसानं हिमकिरणकलाशेखरं नीलकण्ठं
हृष्टं व्याप्तं कलाभिर्धृतकपिलजटं भावयेऽहं महेशम्।। १।।

इति ध्यात्वा "ओं हसकलह्रीं नमो हसकहलह्रीं भगवते सकलह्रीं रुद्राय" इति जपेत्।।

अथ सौरदर्शनविधानम्। तत्रादौ घृणिमन्त्रस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि देवभागाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीसूर्याय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा सत्यतेजोज्वालामणि हुंफट् स्वाहा हृदयाय नमः, ब्रह्मतेजोज्वालामणि हुंफट् स्वाहा शिरसे स्वाहा, विष्णुतेजोज्वालामणि हुंफट् स्वाहा शिखायै वषट्, रुद्रतेजोज्वालामणि हुंफट् स्वाहा कवचाय हुं, अग्नितेजोज्वालामणि हुंफट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वतेजोज्वालामणि हुंफट् स्वाहा अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

रक्ताब्जयुग्माभयदानहस्तं केयूरहाराङ्गदकुण्डलाढ्यम् ।
माणिक्यमौलिं दिननाथमीडे बन्धूककान्तिं विलसत्त्रिनेत्रम्।। १।।

इति ध्यात्वा "घृणिः हसकलह्रीं सूर्य हसकहलह्रीं आदित्य सकलह्रीं ओं" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ षडर्णस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीसवित्रे देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, सूक्ष्मरूपाय स्वाहा हृदयाय नमः, सूक्ष्मतेजसे स्वाहा शिरसे स्वाहा, सूक्ष्माकाराय स्वाहा शिखायै वषट्, सूक्ष्मबालाय स्वाहा कवचाय हुं, सूक्ष्मकायाय स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, मूलमन्त्रमुच्चार्य अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

रक्तपद्मद्वयं हस्तैर्बिभ्राणं वरदाभये। बन्धूकाभं त्रिनेत्रं च रविं ध्यायेत् सुभूषितम्।। १।।

इति ध्यात्वा "ख हसकलह्रीं खो हसकहलह्रीं ल्काय सकलह्रीं स्वाहा" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ चतुर्णस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीसूर्यरूपिण्यै भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ओं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं शिरसे स्वाहा, ओं शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुं, ओं नेत्रत्रयाय वौषट् ह्रीं अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

भास्वद्रत्नसहस्रमौलिविलसच्चन्द्रार्धमुद्योत—
द्धस्ताब्जैर्दधदङ्कुशं गुणवराभीतीः सुतुङ्गस्तनम्।
पायाद्गालितकाञ्चनाम्बुजजपाविद्युज्ज्वलत्कान्तिभि—
र्विश्वं द्योतयदार्कमाश्वशिशिरं विश्वेशिकाया वपुः।। १।।

इति ध्यात्वा "ओं हसकलह्री ह्रीं हसकहलह्री हं सकलह्रीं सः" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ त्र्यक्षरस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अजाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीसूर्याय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा गुह्यादिपादपर्यन्तं हां नमः, कण्ठाद् गुह्यपर्यन्तं ह्रीं नमः, मूर्धादिकण्ठान्तं सः नमः, इति विन्यस्य

ह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः इति करषडङ्गन्यासान् विधाय ध्यायेत्—

अरुणकमलसंस्थं त्रीक्षणं भूरिभूषं ह्यरुणकमलयुग्माभीष्टदाभीतिहस्तम्।
अरुणतरशरीरं भावयामो दिनेशं ह्यरुणकरसुसेव्यं सर्वदेवौघवन्द्यम्॥ १॥

इति ध्यात्वा "ह्रां हसकलह्रीं ह्रीं हसकहलह्रीं सः सकलह्रीं" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ षोडशार्णप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे जगतीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीभास्कराय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओं ऐं हृदयाय नमः, क्लांक्लींक्लूं शिरसे स्वाहा, ह्रांह्रींह्रूं शिखायै वषट्, सः कवचाय हुं, श्रीभास्कराय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

माणिक्याढ्यरथारूढं मणिकुण्डलधारिणम्। हस्तैश्चाभीष्टदं शङ्खचक्रपद्मधरं विभुम्॥ १॥
किरीटिनं मेखलिनं कवचिं सुशरीरिणम्। नानारत्नसमोपेतं ऋषिसंख्याश्वशोभितम्॥ २॥
नक्षत्रग्रहराश्याद्यैः सेवितं मुनिमण्डलैः। सावित्र्या चैव गायत्र्या सरस्वत्या च शोभितम्॥ ३॥
नानादेवसमायुक्तं भास्करं चिन्तयेद् बुधः।

एवं ध्यात्वा "ओं ऐं हसकलह्रीं क्लांक्लींक्लूं हसकहलह्रीं ह्रांह्रींह्रूंसः सकलह्रीं श्रीभास्कराय स्वाहा" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ द्वादशाक्षरस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि देवभागाय ऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदये श्रीआदित्याय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्याप्तये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य प्राग्वद् ध्यात्वा "ओंआं हसकलह्रीं ह्रींश्रींघृणिः हसकलह्रीं सूरिय सकलह्रीं आदित्य ओं" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ षडक्षरस्य प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीआदित्याय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टावाप्तये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओं हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, क्लीं कवचाय हुं, ग्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रां अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य प्राग्व द्ध्यायेत्— "ओंश्रीं हसकलह्रीं ह्रींक्लीं हसकहलह्रीं ग्लौं सकलह्रीं ह्रां" इति मन्त्रं जपेत्।

अथात्माष्टाक्षरस्य प्रयोगः— तस्य न्यासध्यानादिकं प्रागेव प्रपञ्चयागमातृकाविधानेऽभिहितम्, "ओंह्रीं हसकलह्रीं हंसः हसकहलह्रीं सोऽहं सकलह्रीं स्वाहा" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ शाक्तदर्शनविधानम्॥ तत्रादौ बालामन्त्रस्य प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीबालायै देवतायै नमः, गुह्ये ऐं बीजाय नमः, पादयोः सौः शक्तये नमः, नाभौ क्लीं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ऐं हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, सौः शिखायै वषट्, ऐं कवचाय हुं, क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

भ्रमद्भ्रमरनीलाभधम्मिल्लामलपुष्पिकाम्। ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भिन्नमुक्तालेखाविराजिताम्॥ १॥

मुक्तालेखारत्नलग्नतिलकाञ्चितभालिकाम्। विशुद्धमुक्ताबिन्द्वाढ्यचन्द्ररेखाकिरीटिनीम्॥२॥
भ्रमद्भ्रमरनीलाभनयनत्रयराजिताम्।। सूर्यभास्वन्महारत्नकुण्डलालङ्कृतां पराम् ॥ ३॥
शुक्राकारस्फुरन्मुक्ताहारभूषणभूषिताम्। कङ्कणादिलसद्भूषामणिबन्धलसत्प्रभाम् ॥ ४॥
प्रवाललतिकारपाणिपल्लवशोभिताम्। वज्रवैडूर्यमुक्तालिमेखलां विमलप्रभाम् ॥ ५॥
रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवशोभिताम् । नक्षत्रमालासङ्काशमुक्तामञ्जीरमण्डिताम् ॥ ६॥
वामेन पाणिनैकेन पुस्तकं चापरेण तु। अभयं च प्रयच्छन्तीं साधकाय वरानने ॥ ७॥
अक्षमालां च वरदं दक्षपाणिद्वयेन तु। दधतीं चिन्तयेद्देवीं वश्यसौभाग्यवाक्प्रदाम्॥ ८॥
क्षीरकुन्देन्दुधवलां प्रसन्नां संस्मरेत् प्रिये।

इति ध्यात्वा "ऐं हसकलह्रीं क्लीं हसकहलह्रीं सौः सकलह्रीं" इति मन्त्रं जपेत्॥

अथ भैरव्याः प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीत्रिपुरभैरव्यै देवतायै नमः, गुह्ये वाग्भवकूटबीजाय नमः, पादयोः शक्तिकूटशक्तये नमः, नाभौ कामराजकूटकीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, बीजत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गादि विन्यस्य ध्यायेत्—

हृदयस्थारुणाम्भोजकर्णिकामध्यसंस्थिताम्। जपाकुसुमसङ्काशामरुणाम्बरभूषणाम्॥ १॥
स्मितधौतमहामोहां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्। विश्वसौन्दर्यसर्वस्वविश्वसागररूपिणीम्॥ २॥
आनन्दमधुरां देवीं मदघूर्णितलोचनाम्। ब्रह्माब्जनेत्ररुद्रेशशिवाख्यैर्मुण्डसंज्ञकैः॥ ३॥
मण्डिताङ्गीं महादेवीं मुक्ताजपवटीधराम्। पुस्तकालङ्कृतकरां वरदाभयधारिणीम्॥४॥
रक्ताङ्गरागसुभगां ध्यायेत् त्रिपुरभैरवीम्।

एवं ध्यात्वा "हसकलरैं हसकलह्रीं हसकलरीं हसकहलह्रीं हसौः सकलह्रीं" इति जपेत्॥

अथ चैतन्यभैरव्याः प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान्प्रागुक्तवद्विधाय ध्यायेत्—

उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम्। मुकुटोर्ध्वलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बराञ्चिताम्॥ १॥
पाशाङ्कुशधरां नित्यवामहस्तकपालिनीम्। वरदाभयहस्ताढ्यां पीनोन्नतघनस्तनीम्॥ २॥
एवं ध्यात्वा यजेद् देवीं पूर्वसिंहासनस्थिताम्[1]।

इति ध्यात्वा "सहैं हसकलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं सहौः सकलह्रीं" इति जपेत्॥

अथ कामेश्वरीभैरव्याः प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादिध्यानान्तं प्राग्वद्विधाय "सहैं हसकलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सकलह्रीं सहौः" इति जपेत्॥

अथ भैरव्याः प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादिषडङ्गन्यासान्तं पूर्ववद्विधाय ध्यायेत्—

उद्यत्सूर्यसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम्। नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम् ॥ १॥
स्रवद्रुधिरमुण्डालिकलितां रक्तवाससम्। त्रिशूलं डमरुं खड्गं तथा खेटकमेव च॥ २॥

---

१. 'प्रेत' क. पाठः।

पिनाकं च शरान्देवि पाशाङ्कुशयुगं क्रमात्। पुस्तकं चाक्षमालां च शवसिंहासनस्थिताम्॥३॥

एवं ध्यात्वा "हसखफ्रें हसकलह्रीं हसकलरीं हसकहलह्रीं हसौं सकलह्रीं" इति जपेत्॥ इति नित्याभैरवी॥

अथ भुवनेश्वरीभैरव्याः प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादिषडङ्गन्यासान्तं प्राग्वद्विधाय ध्यायेत्—

................ध्यायेद् देवीं चतुर्भुजाम्। जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमप्रभाम्॥ १॥

चन्द्ररेखाजटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससम्। नानालङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम्॥ २॥

प्रेतासनसमासीनां मुण्डमालाविभूषिताम्। पाशाङ्कुशवराभीतीर्दधानां च शिवां श्रये॥ ३॥

इति ध्यात्वा "हस्रैं हसकलह्रीं हसकलह्रीं हसकहलह्रीं ह्सौः सकलह्रीं" इति जपेत्॥ इयमेव सकलपूर्वा विधेया भुवनेश्वरीभैरवीभेदः। सम्पत्प्रदा सकाराद्या चेत्कौलेशभैरवी, सम्पत्प्रदाया आद्यन्ते रेफं हित्वा सकलसिद्धिदा भैरवी। एतासां विद्यानामृष्यादिकं प्राग्वत्॥

अथ बौद्धदर्शनाधिदेवतामन्त्राः। तत्रादौ पद्मावतीप्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्रणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीपद्मावत्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रांह्रींमित्यादिना षडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत्॥

पद्मासनस्थां नवकुङ्कुमाभां रक्तोत्पले संदधतीं त्रिनेत्राम्।

आबिभ्रातीमाभरणानि रक्तां पद्मावतीं पद्ममुखीं नमामि॥ १॥

इति ध्यात्वा "ह्रीं हसकलह्रीं पद्मावती हसकहलह्रीं स्वाहा सकलह्रीं" इति मन्त्रं जपेत्॥ "उग्रताराप्येकजटा तारा नीलसरस्वती" इत्युक्तत्वात्। एतासां मन्त्रास्तु—"ऐंह्रींश्रींक्लींसौः हुं उग्रतारे हुंफट्" इत्युग्रतारा। "त्रींहुंह्रींहुंफट्" इत्येकजटा। ऊँह्रींस्त्रींहूंफट्" इति तारा। "ह्रींस्त्रींहूं" इति नीलसरस्वती। एतासां चतसृणां जपे तु बीजान्तरित पञ्चदशीं[१] कूटत्रयं[२] प्रत्येकप्रत्येकं संयोज्य जपेत्॥ प्रयोगस्तु—प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अक्षोभ्याय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये अमुकतारायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओंह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः, ओंह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा, ओंह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै नमः, ओंह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुं, ओंह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ओंह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

विश्वव्यापकवारिमध्यविलसच्छ्वेताम्बुजन्मस्थितां
कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनै राजत्करां नीलभाम्।
काञ्चीकुण्डलहारकङ्कणलसत्केयूरमञ्जीरता—
मात्पैर्नागवरैर्विभूषिततनुमारक्तनेत्रत्रयाम्॥ १॥

पिङ्गोग्रैकजटां लसत्सुरसनां दंष्ट्राकरालाननां
व्याघ्रत्वक्परिधानशोभितकटिं श्वेतास्थिपट्टालिकाम्।
अक्षोभ्येण विराजमानशिरसं स्मेराननाम्भोरुहां
तारां शावहृदासनां दृढकुचामम्बां त्रिलोक्याः स्मरेत्॥ १॥

---

१. 'तां' ख. पाठः। २. 'शीं' ख. पाठः।

इति ध्यायेत्।।

अथ मातङ्गीप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीमातङ्गिन्यै देवतायै नमः, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ऐंह्रींश्रींओं नमो भगवति श्रीमातङ्गीश्वरि सर्वजनमनोहारि हृदयाय नमः, सर्वमुखराजिसर्वमुखरञ्जिनि शिरसे स्वाहा, सर्वराजवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि शिखायै वषट्, सर्वदुष्टमृगवशंकरि सर्वसत्त्ववशंकरि कवचाय हुं, सर्वलोकममुकं मे वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेन्मन्त्रदेवताम्। अमृतोदधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोरमे।। १।।
स्वर्णप्राकारसंवीते मण्डपे रत्ननिर्मिते । कदम्बबिल्वकद्वारि कल्पवृक्षोपशोभिते।। २।।
वेदिमध्ये सुखास्तीर्णे रत्नसिंहासने प्रभो। अष्टपत्रं महापद्मं केसरान्तःसकर्णिकम्।। ३।।
तन्मध्ये च त्रिकोणं स्यादष्टपत्रे ततो बहिः। पुनः षोडशपत्रं स्यात्तद्बाह्ये स्याच्चतुर्दलम्।। ४।।
वेदास्रं च चतुर्द्वारं मण्डलं प्रोक्तमुत्तमम्। तस्य मध्ये सुखासीनां श्यामवर्णां शुचिस्मिताम्।।५।।
कदम्बमालाभरणां पूजितां च सुरासुरैः । प्रलम्बालकसंयुक्तां चन्द्ररेखावतंसिताम्।। ६।।
ललाटे तिलकोपेतामीषत्प्रहसिताननाम्। किञ्चित्स्वेदाम्बुमधुरललाटफलकोज्ज्वलाम्।। ७।।
वलीतरङ्गमध्यान्तारोमराजिविराजिताम् । सर्वाभरणसंयुक्तां मुक्ताहारविभूषिताम् ।। ८।।
नानामणिगणोन्नद्धकटिसूत्रैरलङ्कृताम् । वलयै रत्नखचितैः केयूरैर्मणिभूषितैः ।। ९।।
भूषितां द्विभुजां बालां मदघूर्णितलोचनाम्। आपीनमण्डलाभोगसमुन्नतपयोधराम् ।। १०।।
प्रलम्बकर्णाभरणां कर्णोत्तंसविराजिताम्। तमालनीलां तरुणीं मधुमत्तां मतङ्गिनीम् ।। ११।।
चतुष्षष्टिकलारूपपार्श्वस्थशुकसारिकाम्। कोटिबालार्कसङ्काशां जपाकुसुमसन्निभाम् ।। १२।।
एवं वा पीतवर्णां च ध्यायेन्मातङ्गिनी पराम्।

एवं ध्यात्वा "ऐंह्रींश्रींओं नमो भगवति श्रीमातङ्गीश्वरि सर्वजनमनोहारि सर्वमुखराजि सर्वमुखरञ्जिनि हसकलह्रीं सर्वराजवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि हसकहलह्रीं सर्वदुष्टमृगवशंकरि सकलह्रीं सर्वलोकममुकं मे वशमानय स्वाहा" एवं जपेत्।।

अथ सुमुखीप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि तुम्बुरवे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीसुमुख्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ऐंह्रींश्रीं हृदयाय नमः, उच्छिष्ट शिरसे स्वाहा, चण्डालि शिखायै वषट्, मातङ्गि कवचाय हुं, सर्ववशंकरि नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः स्वाहा अस्त्रायं फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

स्मरेत् प्रथमपुष्पिणीं रुधिरबिन्दुनीलाम्बरां
गृहीतमधुपात्रिकां मदविघूर्णनेत्रत्रयाम्।
घनस्तनभरालसां गलितचूर्णिकां बालिकां
करस्फुरितवल्लकीं विमलशङ्खताटङ्किनीम्।।१।।

इति ध्यात्वा।। "ऐंह्रींश्रीं हसकलह्रीं उच्छिष्टचण्डालिमातङ्गि हसकहलह्रीं सर्ववशंकरि सकलह्रीं नमः स्वाहा" इति जपेत्।।

अथ चण्डमातङ्गिनीप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीचण्डमातङ्गिन्यै देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः— इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, मायया षड्दीर्घया षडङ्गानि विन्यस्य ध्यायेत्—

मातङ्गीं नवयावकार्द्रचरणामुल्लासिकृष्णांशुकां
वीणोल्लासिकरां समुन्नतकुचां मुक्ताप्रवालावलीम्।
हृद्याङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधरां बिम्बाधरां सस्मिता-
माकीर्णालकवेणिमब्जनयनां ध्यायेच्छुकश्यामलाम्।। १ ।।

इति ध्यात्वा "ह्रींनमः हसकलह्रीं हिलिहिलि हसकहलह्रीं चण्डमातङ्गिनी सकलह्रीं स्वाहा" इति जपेत्।।

अथ गाणपत्यदर्शनाधिदेवतामन्त्राः। आदावेकाक्षरगणपतिमन्त्रप्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे निचृच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीविघ्नेश्वराय देवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओंगणञ्जयाय[1] स्वाहा हृदयाय नमः, एकदंष्ट्राय हुंफट् शिरसे स्वाहा, अचलकर्णिने नमः शिखायै वषट्, गजवक्त्राय नमो नमः कवचाय हुं, महोदराय नेत्रत्रयाय वौषट्, चण्डाय हुं फट् अस्त्राय फट्। अथवा गाङ्गीमित्यादिना षडङ्गानि विधाय ध्यायेत्—

रक्ताभः शशिमौलिरङ्कुशगुणौ दन्तं वरं धारयन्
हस्ताब्जैर्द्विरदाननस्त्रिनयनो रक्ताङ्गरागावृतः।
बीजापूरबृहत्करोरुजठरो दानार्द्रगण्डस्थलो
विघ्नेशः[2] फणिभूषणो गणपतिर्भूयाद्भवद्भूतये।। १ ।।

इति ध्यात्वा "गं हसकलह्रीं गं हसकहलह्रीं गं सकलह्रीं" इति जपेत्।।

अथ महागणपतेः प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणयामत्रयं कृत्वा शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे निचृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीगणपतये देवतायै नमः, गुह्ये गं बीजाय नमः, पादयोः ह्रीं शक्तये नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओं गां हृदयाय नमः, श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं गूं शिखायै वषट्, क्लीं गैं कवचाय हुं, ग्लौं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, गं गः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

चक्राब्जत्रिशिखान् गुणैक्षवधून् रक्तोत्पलं सद्गदां
व्रीह्यग्रान्वितबीजपूररदनं कुम्भं करैर्बिभ्रतम्।
पद्मोद्यत्करया निजप्रमदयाश्लिष्टं जपासन्निभं
सार्धेन्दुं प्रभजे महागणपतिं नेत्रत्रयोद्भासितम्।। १ ।।

एवं ध्यात्वा "ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं हसकलह्रीं गणपतये वरवरद हसकहलह्रीं सर्वजनं मे वशमानय सकलह्रीं स्वाहा" इति जपेत्।।

---

१. 'ञ्जयाय' ग. पाठः। २. 'लोकेशः' ग. पाठः।

अथ क्षिप्रगणपतिप्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदि क्षिप्रप्रसादनाय गणपतये देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, गांगीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्—

सिन्दूराभमिभाननं त्रिनयनं हस्तेषु पाशाङ्कुशौ
बिभ्राणं मधुमत्कपालमनिशं सार्धेन्दुमौलिं भजे।
पुष्ट्याश्लिष्टतनुं ध्वजाग्रकरया पद्मोल्लसद्धस्तया
तद्योन्याहितपाणिमात्तवसुमत्पात्रोल्लसत्पुष्करम्।। १ ।।

एवं ध्यात्वा "गं हसकलह्रीं क्षिप्रप्रसादनाय हसकहलह्रीं नमः सकलह्रीं" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ वक्रतुण्डप्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि भार्गवऋषये नमः, मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये श्रीवक्रतुण्डाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टाप्तये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, व[1]हृदयाय नमः, क्र शिरसे स्वाहा, तु शिखायै वषट्, ण्डा कवचाय हुं, य नेत्रत्रयाय वौषट्, हूं अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत्—

रम्योद्भिन्नारुणतरमणिव्रातसंशोभिकान्तिं
सम्बिभ्राणं करकिसलयैः पाशमप्यङ्कुशाङ्गम्।
साभीतीष्टं त्रिनयनयुतं रत्नमाल्यांशुकाढ्य-
मम्भोजोद्यत्पुटगतममुं संस्मरेद्वक्रतुण्डम्।। १ ।।

इति ध्यात्वा "हसकलह्रीं वक्रतुण्डाय हसकहलह्रीं हूँ सकलह्रीं" इति मन्त्रं जपेत्।।

अथ लक्ष्मीगणेशप्रयोगः— तत्र प्रातः कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अन्तर्यामिऋषये नमः, मुखे निचृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीलक्ष्मीगणेशाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, श्रां गां इत्यादिना षडङ्गानि विन्यस्य ध्यायेत्—

हेमाभः पीतवस्त्रः करकमलतलैः सन्दधच्चक्रशङ्खौ
दन्ताभीती च नासाधृतकनकघटः पद्मसंस्थस्त्रिनेत्रः।
वामाङ्ग[2]विष्टलक्ष्म्या विधृतकमलया प्रोल्लसद्दक्षदोष्णा
श्लिष्टः सौवर्णकान्त्या गणप इह महाश्रीकरो वः श्रियेऽस्तु।। १ ।।

इति ध्यात्वा "श्रींगं सौम्याय हसकलह्रीं महागणपतये वरवरद हसकहलह्रीं सर्वजनं मे वशमानय सकलह्रीं स्वाहा" इति जपेत्।।

अथ हेरम्बस्य प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रीहेरम्बाय देवतायै नम इति विन्यस्य ममाभीष्टाप्तये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा गांगीं इत्यादिना षडङ्गानि विन्यस्य ध्यायेत्—

१. 'वमित्यादिबिन्दुयुक्तः' ग. पाठः। २. 'वामाङ्क' ग. पाठः।

मुक्ताविद्युत्पयोदामृतघुसृणनिभैः पञ्चभिर्नागवक्त्रै–
हेरम्बो भावनीयः शशिधरमुकुटो दृप्तसिंहाधिरूढः।
हस्तैर्बिभ्रत् त्रिशूलाङ्कुशकजपवटीमुद्गरान् पुंस्कपालं
टङ्काङ्को मोदक[1]स्याद्रदलसदभये दानमर्कौघदीप्तिः॥ १॥

एवं ध्यात्वा "ओं हसकलह्रीं गूं हसकहलह्रीं नमः सकलह्रीं" इति जपेत्॥

अथ विरिगणेशमन्त्रप्रयोगः– प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, विरिविरि हृदयाय नमः, गणपति शिरसे स्वाहा, वरवरद शिखायै वषट्, सर्वलोकं मे कवचाय हुं, वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट, स्वाहा अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य ध्यायेत् "सिन्दूराभमिभाननमिति प्राग्वत्।" "ह्रीं विरिविरि हसकलह्रीं गणपति वरवरद हसकहलह्रीं सर्वलोकं मे वशमानय सकलह्रीं स्वाहा" इति जपेत्॥

अथ शक्तिगणेशस्य प्रयोगः–तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे निचृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये शक्तिश्रीगणेशाय देवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रीं हृदयाय नमः, गं शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, महागणपतये कवचाय हुं, स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रींगंह्रीं महागणपतये स्वाहा अस्त्राय फट्, इति षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य प्राग्वद्ध्यात्वा–"ह्रींगंह्रीं हसकलह्रीं महागणपतये हसकहलह्रीं स्वाहा सकलह्रीं" इति जपेत्॥

अथोर्ध्वाम्नायक्रमेण श्रीविद्याषोडशार्णाया उपदेशे षोडशमूलविद्यास्वैकैकस्य द्वे द्वे विद्ये प्रयोज्ये। ता विद्यास्तु–"ओंऐंह्रींसहखफ्रें सहौः सहक्षमलवरयीं हौंह्रींहंसः सोऽहं स्वाहा" इत्येकादश बीजानि सर्वत्र विद्यादौ योज्यानि॥ ११ स्वप्रकाश[2] परिपूर्णपरापरमहाकुल[3] सिद्धविद्यामहाकुलयोगिनीह्रीं; इति कुलयोगिनीमूलविद्या॥२॥ ११ ऐंब्लूंक्लिन्ने क्लेदिनि क्लिन्नद्रवे[4] क्लेदय क्लेदय क्लींक्लीं महामद मोहयमोहय क्लीं नमः स्वाहाः इति रहस्ययोगिनीमूलविद्या॥ ३॥ ११ स्वच्छानन्द[5]परमहंसपरमात्मने स्वाहा हसक्षौं; इति शाम्भवीयोगिनीमूलविद्या॥ ४॥ ११ ह्रीं नित्यस्फुरत्तानन्दमयीं[6] महाबिन्दुव्यापकमातृस्वरूपिणी ह्रीं; इति हृल्लेखायोगिनीमूलविद्या॥ ५॥ ११ स्वच्छप्रकाशात्मिके ह्रीं कुलमहामालिनी[7] ह्रीं; इति समयविमलायोगिनी– मूलविद्या॥६॥ ११ हंसः नित्यप्रकाशात्मिके कुलकुण्डलिनी आज्ञासिद्धिमहाभैरवी आत्मानं बोधय बोधय अम्बे भगवति ह्रींहुं, इति परबोधिनीयोगिनीमूलविद्या॥७॥ ११ ओं मोक्षं कुरु; इति पञ्चाक्षरी योगिनीमूलविद्या ॥८॥ हसैं हसकलह्रीं हसौः; इति लोपामुद्राचैतन्यत्रिपुरायोगिनीमूलविद्या॥९॥ ऐं शुद्धसूक्ष्मनिराकारनिर्विकल्प परब्रह्मस्वरूपिणि क्लीं परानन्दमयीशक्तिः[8] सौः; इत्यनुत्तरकौलिनीयोगिनीमूलविद्या॥ १०॥ ११ स्वच्छनन्दपरमहंसपरमात्मने स्वाहा हस्ख्फ्रूं; इति गुरुत्तमविमर्शिनीयोगिनीमूलविद्या॥ ११॥ ११ अनाभासाव्योमातीता परापर व्योमातीता व्योमेश्वरी ह्रीं; इति

---

१. 'कास्या' ख. पाठः। २. 'स्वच्छ' ३. 'परपरमहासिद्धविद्याकुलयोगिनी' ४. 'महामदद्रवे क्लेदय २ क्लीं२ मोहय२' ५. 'नन्दनाथ' ६. 'त्ताचैतन्यानन्द' ७. 'ऐं कुलगर्भमातृके ह्रीं समयविमलेश्रीं' ८. 'नन्दशक्ति'।

अनाभासायोगिनीमूलविद्या[1]।। १२।। ११ ऐंईईऊं; इति सङ्केतसारविद्यायोगिनीमूलविद्या।। १३।। ११ ह्रीं विच्चे भगवति वाग्वादिनि महाह्रदे महामाया मतङ्गिनि ऐंब्लूंरंस्त्रीं; इत्यनुत्तरवाग्वादिनीयोगिनीमूलविद्या।। १४।। ११ हस्रैंहस्क्लींहस्रौः इत्यनुत्तरविद्यायोगिनीमूलविद्या।। १५।। ११ ह्रीं सर्वानन्दमये महाचक्रे बैन्दवे परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्तिः सर्वमन्त्रेश्वरी सर्वतन्त्रेश्वरी सर्वयोगीश्वरी सर्वज्ञानेश्वरी सर्वपीठेश्वरी जगदुत्पत्तिमातृकाह्रीं; इति तुरीयायोगिनीमूलविद्या ।। १६।। ☞तथोत्तरतन्त्रे–

पञ्चमाम्नायदीक्षायां चतुराम्नायदेवताः । अङ्गत्वेन समाख्याता द्वेद्वे विद्ये समभ्यसेत्।। १।।
सुरेन्द्रानलयोरैन्द्रौ याम्ये वै याम्यकोणयोः। वारुण्यौ पाशिमरुतोस्तत्परे सौम्यदिग्भवे।। २।।

इति। अस्यार्थः– पञ्चमाम्नाय ऊर्ध्वाम्नायस्तत्र दीक्षायां चतुराम्नायदेवताः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराम्नायदेवता इत्यर्थः। द्वेद्वे विद्ये एकैकस्याम्नायस्य[2] समभ्यसेत् योजयेत्। दिग्विभागमाह– सुरेन्द्रेति। प्राक्कुण्डाग्नेय कुण्डयोरैन्द्र्यौ पूर्वाम्नायविद्ये, याम्यकोणयोर्याम्यनैर्ऋतयोर्याम्ये दक्षिणाम्नायविद्ये, पाशिमरुतोः पश्चिमवायव्ययोर्वारुण्यौ पश्चिमाम्नायविद्ये, तत्परे उत्तरेशानकुण्डयोः सौम्यदिग्भवे उत्तरदिङ्मुखसम्भूते उत्तराम्नायविद्ये इत्यर्थः।। श्रीकुलार्णवे–

प्राक्कुण्डे भैरवी प्रोक्ता ह्याग्नेये भुवनेश्वरी। पीताम्बरा भोगिनी वा याम्यकुण्डे प्रशस्यते।। १।।
वाराही नैर्ऋते कुण्डे पश्चिमे चापराजिता । भवानी वायुकोणे तु श्यामा तारा तु तत्परे।। २।।

इति। तत्रैव–

पञ्चकुण्डात्मके पक्षे चतुःसमयदेवताः। चतुराम्नायविद्या वा प्रयोज्याः परमेश्वरि।। १।।

इति।। अथ श्रीगुरुविद्यादीक्षायां त्वङ्गत्वेन चरणादिविद्याः प्रयोज्याः, पराप्रासाददीक्षायां तु पञ्चब्रह्ममन्त्राः पञ्चानां त्रयाणां विभागमाह–अष्टात्रिंशत्कलास्त्रिधेति+। पञ्चब्रह्ममन्त्राणामष्टात्रिंशत्कलाः षोडश द्वादश दश क्रमेण प्रयोज्या इत्यर्थः। प्रसङ्गतोऽन्यासां विद्यानां दीक्षायां क्रममाह–दक्षिणेति आद्यहीनेति स्पष्टोऽर्थः।

☞षोडशमूलविद्यानां अष्टमश्वासोक्तोद्धारानुसारतोऽयं पाठः साधीयान्। तथा हि–(१) ओंऐंह्रींश्रीं स्वच्छप्रकाशपरिपूर्णपरापरमहासिद्धविद्याकुलयोगिनिह्रीं इति कुलयोगिनीमूलविद्या०। (२) ४ हसौः स्वात्मानं बोधय २ स्हौः इति श्रीप्रासादपराम्बामूलविद्या०। (३) ओंऐंह्रींश्रीं ऐंब्लूं क्लिन्ने क्लेदिनि महामदद्रवे क्लींक्लीं मोहय २ क्लींनमः स्वाहा, इति अतिरहस्यातियोगिनीमूलविद्या०। (४) ओंऐंह्रींश्रीं हंसः स्वच्छानन्द परमहंसपरमात्मने स्वाहा सहक्ष्मौं इति शाम्भवीयोगिनीमूलविद्या०। (५) ओंऐंह्रींश्रीं ह्रीं नित्युस्फुरत्तात्मचैतन्यानन्दमयमहाबिन्दुव्यापकमातृस्वरूपिणि ओंऐंह्रींश्रींह्रीं इति ह्रल्लेखायोगिनीमूलविद्या०। (६) ४ स्वच्छप्रकाशात्मिके ह्रीं कुलमहामालिनि वाक्कुलगर्भमातृके ह्रीं समयविमलेश्रीं इति समयविमलायोगिनीमूलविद्या०। (७) ४ हंसः नित्यप्रकाशात्मिके कुलकुण्डलिनि आज्ञासिद्धे महाभैरवि आत्मानं बोधय २ अम्बे भगवति ह्रींहुं, इति परबोधिनीयोगिनीमूलविद्या०। (८) ४ ओं मोक्षं कुरु इति कुलपञ्चाक्षरीयोगिनीमूलविद्या०। (९) हसकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं इति चैतन्यत्रिपुरायोगिनीमूलविद्या०। (१०) ४ ऐं शुद्धसूक्ष्मनिराकारनिर्विकल्पपरब्रह्मस्वरूपिणि क्लीं परानन्दशक्तिसौः इति शांभवानन्दनाथानुत्तरकौलिनीयोगिनी–मूलविद्या०। (११) ४ हंसः सोहं स्वच्छानन्दपरमहंसपरमात्मने स्वाहा इति गुरूत्तमविमर्शिनीयोगिनीमूलविद्या०। (१२) ४ अनामाख्यव्योमातीतनाथपरापरव्योमातीतव्योमेश्वर्यम्बा, इति अनामाख्यायोगिनीमूलविद्या०। (१३) ४ ऐंइंईउं इति सङ्केतसाराख्ययोगिनीमूलविद्या०। (१४) ४ ह्रीं भगवति विच्चे वाग्वादिनि क्लीं महाह्रदमहामातङ्गिनि ऐं क्लिन्ने ब्लूंस्त्रीं, इति अनुत्तरवाग्वादिनीयोगिनीमूलविद्या०। (१५) ४ हसौः हसखफ्रें हसकलरीं हसौः इति अनुत्तरशाङ्करीयोगिनीमूलविद्या०। (१५) तुरीयविद्यामुच्चार्य सर्वानन्दमये महाचक्रे बैन्दवे परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्तिः सर्वमन्त्रेश्वरी सकलजगदुत्पत्तिमातृकाशून्या–शून्यविवर्जितशक्तिश्रीत्रिपुरसुन्दरीमूलविद्याश्रीपा०।।

---

१. 'अनामाख्या' २. १. 'एकैकस्यै कस्य' क. ग. पाठः। + इदं (११ शे श्वासे २४५ पत्रे १२ श्लोके) द्रष्टव्यम्।

भुवनेश्वर्यास्तु गुणार्णकं पाशाङ्कुशभुवनेश्वरी। श्रीः श्रियाभिषिक्तभुवनेश्वरी,वाक् वाग्भवरुद्धा भुवनेश्वरी, कामराजरुद्धा पराबीजरुद्धा। त्रिविधा त्रिपुटेति श्रीबीजादिका, कामबीजादिका, मायाबीजादिकेत्यर्थः। पञ्चदश्या इति—अत्र जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयातीतेति पञ्चविधाः। जाग्रद्विद्यायाः (जाग्रद्विद्या, स्वप्नविद्यायाः) स्वप्नविद्या, सुषुप्तिविद्यायाः सुषुप्तिविद्या, तुरीयविद्यायाः तुरीयविद्या, तुरीयातीतायास्तुरीयातीतविद्या एवं प्रयोज्या इत्यर्थः। श्रीकुलार्णवे—

पराप्रासादमन्त्रश्च लक्ष्मीनारायणस्तथा। चिदम्बरमहामन्त्रः पक्षिरूपश्च शारभः॥ १॥
षडेव शाम्भवाश्चैव महामृत्युञ्जयस्तथा। लक्ष्मीजनार्दनो लक्ष्मीवासुदेवस्तथैव च॥ २॥
राजराजेश्वरश्चैव पञ्चवक्त्रश्च मारुतिः। मार्तण्डभैरवश्चैव महागणपतिस्तथा॥ ३॥
उच्छिष्टगणनाथश्च वक्रतुण्डस्तथैव च। गाणपत्याः श्रिया युक्ताः सीतारामस्तथैव च॥ ४॥
नृसिंहानुष्टुभं चैव पञ्चबाणास्तथैव च। पञ्चकामाश्च देवेशि जैना बौद्धास्तथैव च॥ ५॥
शम्भोरूर्ध्वमुखादेव निर्गता बीरवन्दिते। शिवपञ्चाक्षरीभेदाः प्रासादाख्याः शिवास्तथा॥ ६॥
विष्णोरष्टाक्षरीभेदा वासुदेवाह्वयास्तथा। गाणपत्ये तथैकार्णभेदा घृणिमनुस्तथा॥ ७॥
पूर्वाम्नायास्तु कथिता वराहस्तुम्बुरुस्तथा। हरिद्रागणपश्चैव वटुकाः क्षेत्रपालकाः॥ ८॥
शास्तृमन्त्रा नृसिंहाख्यास्तथा हरिहरात्मकाः। श्रीकृष्णमन्त्रभेदाश्च दधिवामनसंज्ञकाः॥ ९॥
दक्षिणाम्नायविख्यातास्तथोच्छिष्टाणुभेदकाः। पुरुषोत्तमसंज्ञाश्च मालामन्त्रास्तथैव च॥ १०॥
अघोररुद्रभेदाश्च येऽपि बौद्धप्रभेदकाः। पश्चिमाम्नायविख्याता दक्षिणामूर्तिरेव च॥ ११॥
ग्रहाणां लोकपालानां मन्त्राश्चण्डेश्वरस्य तु। वेतालाश्चेटकाश्चैव ये वै हरिहरात्मकाः॥ १२॥
वीरभद्राश्च सुब्रह्मण्यादयो मातृपुत्रकाः। उत्तराम्नायविख्याताः शीघ्रकालफलप्रदाः॥ १३॥
अथेष्टदेवताप्रीत्यै यजेदायतनान्यपि।

आयतनानि चतुरायतनानि। तानि तु मध्यस्थस्वेष्टदेवताया अङ्गभूतानि। तत्स्थापनक्रममाह तत्रैव—

तत्राथ पञ्चायतनस्य वक्ष्ये संस्थापनं भक्तिविभेदभिन्नम्।
भास्वद्गणश्रीपतिपार्वतीशा विघ्नेश्वरार्काद्रिसुता हरिश्च॥ १॥
कृष्णैकदन्तेननगेन्द्रजेशा मायेश्वरेभाननभास्कराजाः।
ईशेनविघ्नाधिपशक्तिकृष्णा मध्याग्निकोणक्रमतस्तु पूज्याः॥ २॥

इति। रत्नसागरे—

रविर्विनायको देवी विष्णुः शङ्करपूजने। गणेशार्काम्बिकेशानास्तथा नारायणार्चने॥ १॥
शिवो विघ्नो हरिः कात्यायनी सूर्यार्चने क्रमात्। देव्यर्चने शिवो विघ्नः सूर्यो विष्णुस्तथैव च॥२॥
शिवो रविर्भवानी च विष्णुर्विघ्नेश्वरार्चने। आग्नेयादिषु कोणेषु स्थाप्या अङ्गाङ्गिभावतः॥ ३॥
पूज्याश्चैव महेशानि व्यस्ताः स्युर्दुःखदाः सदा।

इति। अत्र सर्वत्र देवपूजायां तत्तत्पूजारूपं चक्रमुद्धृत्य तत्तत्कल्पोक्तविधिना तत्तत्पीठपूजापूर्वकं पञ्चायतन—

देवताः पूजयेत्। अन्यथा पूजाया नैष्फल्यं स्यात्। तदुक्तं कुलार्णवे—

देवस्य यन्त्ररूपस्य यन्त्रव्याप्तिमजानता। कृतार्चनादिकं सर्वं व्यर्थं भवति शाम्भवि॥ १॥
यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं देवता मन्त्ररूपिणी। यन्त्रे सम्पूजिता देवी सहसैव प्रसीदति॥ २॥
कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनियन्त्रणात्। यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः॥ ३॥
शरीरमिव जीवस्य दीपस्य स्नेहवत्प्रिये। सर्वेषामेव देवानां तथा यन्त्रं प्रतिष्ठितम्॥ ४॥
तस्माद्यन्त्रं लिखित्वा वा ध्यात्वा वा भजते शिवे। ज्ञात्वा गुरुमुखात् सर्वं पूजयेद्विधिना शिवे॥५॥
एकपीठे पृथक्पूजां विना यन्त्रं करोति यः। अङ्गाङ्गित्वमपि त्यक्त्वा देवताशापमाप्नुयात्॥६॥
एकपीठे सुरेशानि स्वे स्वे यन्त्रे पृथक् पृथक्। यजेदावरणोपेतान् देवाँस्तत्तद्विधानतः॥ ७॥
आवाह्य देवतामन्यामर्चयेच्चान्यदेवताः। उभाभ्यां लभते शापं मन्त्री चञ्चलमानसः॥ ८॥

इति। कुलप्रकाशतन्त्रे—

खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते। व्यङ्गेऽनर्हपशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ १॥
अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते। दशस्वपि च नो कुर्युः सन्निधानं दिवौकसः ॥ २॥

इति। अत्र पञ्चायतनपूजायामपि सम्प्रदायात् पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वदिशं प्रकल्प्य[1] तदनुसारेणाग्नेय्यादिकं परिकल्प्य चतुरायतनदेवताः पूजयेत्। धर्मादिपूजायामुक्तयुक्तेस्तुल्यन्यायात्। अत्र केचित्— प्रधानदेवतावाहनानन्तरमेव तदावरणपूजार्थं देवताग्रे प्राचीकल्पना, तत्पूर्वमेव चतुरायतनदेवतानां पूजायाः कार्यत्वात्कल्पनमयुक्तमिति यथास्थिताग्नेयादिदिक्षु चतुरायतनदेवताः पूजनीयाः, इत्याहुस्तन्न। काम्यपूजासु—

पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा वश्यकर्मणि पूजयेत्। दक्षिणाशामुखो भूत्वा मारणे पूजयेत्प्रिये॥ १॥
पश्चिमाभिमुखो भूत्वा पूजयेद् धनसिद्धये । उत्तराभिमुखो भूत्वा शान्तिकर्मणि पूजयेत्॥ २॥

इति ब्रह्मयामलवचनात्। "अग्निराक्षसवायव्यशम्भुकोणमुखोऽर्चयेत्।" इति कुलमूलावतारवचनादन्यत्राप्येवमनेकतन्त्रेषु दर्शनाच्च यथास्थितदिक्क्रमेण पूजायामीशानकोणस्थितायाः कदाचित्प्रधानदेवताया वामभागे कदाचिद्दक्षिणे कदाचिदग्रे कदाचित्पृष्ठे चेति स्थित्यनैयत्यप्रसङ्गात् यथास्थिताग्नेयादिषु स्थापनासम्भवात् प्रधानदेवतायाः पीठपूजानन्तरमेव चतुरायतनदेवतापूजनात् पीठपूजायामपि धर्मादिपूजने कल्पितप्राच्यनुसारेणैवाग्नेयादिकल्पनात् चतुरायतनदेवतानामङ्गत्वात् प्रधानदेवतामूर्तेः कल्पितत्वाच्च तदग्रे प्राचीकल्पनस्यैवोचितत्वादिति॥ अन्ये तु तान्त्रिकदीक्षावद्भिः—

शाम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो, हरौ शङ्करे-
भास्येनागसुता, रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः।
देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो, लम्बोदरेऽजेश्वरे-
नार्याः शङ्करमार्गतो हि सुखदा व्यस्तास्तु ते दुःखदाः॥ १॥

इति नारायणीयोक्तरीत्या कल्पितप्राच्यनुसारेण मध्येशानादिकोणेष्विष्टदेवतादिकाः पञ्च देवताः स्थाप्याः। तान्त्रिकदीक्षाहीनैस्तु भविष्यपुराणवचनेन पञ्चायतनदेवतायजनस्यावश्यकत्वं मत्वा वैदिकस्मार्तपौराणिकान्य-

---

१. 'परि' क. पाठः।

तमविधिना पञ्चायतनयजनं कुर्वद्भिर्यथास्थितेशानादिकोणेषु मध्ये च पञ्चायतनदेवताः स्थाप्या इत्याहुः; तदत्यन्तमसङ्गतं, तेषां पञ्चानां मध्ये एकस्यापीष्टदेवतात्वाभावनयाङ्गित्वाभावात् कस्यापि मध्ये स्थापनासम्भवात् "रविर्विनायको विष्णुश्चण्डिकेशश्च पञ्चमः। अनुक्रमेण पूज्यास्ते व्युत्क्रमेण भयावहाः"।। इति पुराणसारसमुच्चये तेषां पञ्चायतनदेवतानां यजनक्रमस्योक्तत्वाच्चेति। अत्र पञ्चायतनपूजायां गणेशव्यतिरिक्तचतुर्देवतोपासकैः प्रोक्तक्रमेण देवताः संस्थाप्य गणेशमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमप्राप्तदेवताचतुष्टयं सम्पूज्य मध्ये स्वेष्टदेवतां पूजयेत्। गणेशोपासकैस्तु सूर्यमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमप्राप्तदेवताचतुष्टयं सम्पूज्य गणेशं पूजयेदित्यागमसिद्धान्तः।। अत्र केचित्— पञ्चायतनपूजायां देव्याराधकः सूर्यगणेशशिवविष्णूनभ्यर्च्यान्ते देवीं पूजयेदिति स्मृत्युक्तम्—इति वदन्ति, तदसङ्गतम्, अप्रादक्षिण्यापत्तेः (अ) क्रमस्याप्यलाभतयास्तव्यस्तक्रमापत्तेश्च। वस्तुतस्तु "गणेशसूर्यविष्ण्वीशदुर्गां आवाह्य पूजयेत्"। इति योगिनीतन्त्रे देवीपूजायां पञ्चायतनपूजाक्रमदर्शनात्। "आदौ गणपतिं देवं सूर्यं विष्णुमुमापतिम्। दुर्गां च पूजयेद्विद्वान्" इति भैरवीतन्त्रेऽपि पञ्चायतनपूजाक्रमदर्शनाच्चायमेव तान्त्रिकसिद्धान्तः सत्सम्प्रदायसिद्धश्च। अन्यदेवतापासकैरपि तथैव गणेशादिक्रम एव कार्यः। एकत्रदृष्टन्यायादियं पञ्चायतनपूजा त्वावश्यंकार्या "शिवं भास्करमग्निं च केशवं कौशिकीमपि। मनसा नार्चय न्याति स्वर्गलोकादधोगतिम्।।" इति भविष्यपुराणे तदकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। मनसाप्यनर्चयन्नित्यर्थः। अग्निर्गणेशः। "यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः। महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते। पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः।" इति भविष्योत्तरपुराणवचनात्।।

अथ मध्यस्थापितमूर्तौ स्वेष्टदेवतामावाह्य पूजयेत्। तत्र मूर्तिस्तु तत्तद्ध्यानोक्तरूपा, तत्र तु[1] शिवलिङ्गशालग्रामादावपि भावनीया, शिवलिङ्गानां सर्वदैवतपूजाधिकरणत्वात्, तेषु सर्वाश्च देवताः पूज्याः "तेषां लिङ्गमणौ कुम्भे मण्डले च प्रपूजनम्। शालग्रामे च तद्बुध्या यन्त्रादौ च प्रपूजयेत्।। भूमावेव कृता पूजा पुत्रायुर्धननाशिनी" इति रुद्रयामलवचनात्। "शालग्रामशिलायां तु तत्तद्बुद्ध्या समर्चयेत्"। इति सोमशम्भुवचनात्। "लिङ्गस्थण्डिलयोर्वह्नौ सूर्यकुड्यपटेषु च। मण्डले फलके मूर्ध्नि हृदये दश कीर्तिताः।। एषु स्थानेषु देवेशि यजन्ति परमं शिवम्"। इति कुलार्णववचनाच्च, शिवमित्युपलक्षणम्। तेषामित्युक्तेः तेषां पञ्चायतनदेवतानां, यन्त्रादावित्यादिपदं प्रतिमादिपरम्।। "शालग्रामे मणौ यन्त्रे स्थण्डिले प्रतिमासु च। हरेः पूजा तु कर्तव्या केवले न तु भूतले"।। इति त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रवचनात्तत्तद्ध्यानोक्तरूपा प्रतिमा कार्या। सा तु— "मात्राङ्गुलप्रमाणेन दशपञ्चदशाङ्गुला। गृहे तु प्रतिमा पूज्या नाधिका तु प्रशस्यते"।। इति कपिलपाञ्चरात्रोक्तरूपा प्रतिमा कार्या दशाङ्गुलमिता पञ्चदशाङ्गुलमिता वेत्यर्थः। "दशाङ्गुलप्रमाणा सा तिथ्यङ्गुलमिताथवा। अभ्यर्च्या प्रतिमा विष्णोर्गृहेषु गृहमेधिभिः"।। इति हयग्रीव[2]पञ्चरात्रवचनात्। अत्रापि वेत्यनेन दशाङ्गुलमारभ्य पञ्चदशाङ्गुलपर्यन्तोच्चा प्रतिमा कार्येत्युक्तमिति साम्प्रदायिकाः। पूर्वश्लोकस्याप्ययमेवार्थः, इति वदन्ति। मात्राङ्गुलप्रमाणं तु मण्डपनिर्माणप्रकरणे बोद्धव्यम्। शिवलिङ्गनिर्माणप्रकारस्तु शिल्पिशास्त्रे—

लिङ्गमस्तकमध्यात्तु सूत्रं स्यादाप्रणालकम्। लिङ्गप्रणालिपुष्टत्वं[3] तावदेव प्रकीर्तितम्।। १।।
उच्चत्वे च तथा पीठे पञ्चसूत्रं प्रचक्षते। पञ्चसूत्रसमायुक्तं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ।। २।।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव धनारोग्यसुखप्रदम्। इति।

---

१. 'सा तु' ग. पाठः। २. 'शीर्ष' ख. पाठः। ३. 'तुष्टत्वं' क. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

द्वादशः श्वासः



अथ श्रीचक्रनिर्माणप्रकारः। श्रीरुद्रयामले—

ततः कुङ्कुमसिन्दूरैः कार्यं यन्त्रं तु योगिना। सौवर्णे राजसे ताम्रे स्फाटिके वैद्रुमे तथा।। १।।
चक्रे यथोक्तविधिना पूज्या देवी नरोत्तमैः। इति।

तन्त्रराजे—

रत्ने हेमनि रूप्ये वा ताम्रे दृषदि च क्रमात्। कृत्वा चक्रस्य निर्माणं स्थापयेत् पूजयेदपि।। २।।
लक्ष्मीकान्तियशःपुत्रधनारोग्यादिसिद्धये।

दृषदि गण्डकीशिलायाम्। ''गण्डकीभवपाषाणे स्वर्णे रजतताम्रयो''रिति दक्षिणमूर्तिसंहितावचनात्।।

अथ धातुविशेषे पूज्यकालसंख्याविशेषमाह रत्नसागरे—

याजज्जीवं सुवर्णे स्याद्रूप्ये द्वाविंशतिः प्रिये। ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदर्धं भूर्जपत्रके।। १।। इति।

तन्त्रान्तरे—

ताम्रे द्वादशकं वर्षं स्फाटिकादौ तु सर्वदा। तेषां मध्ये स्फ़ाटिके तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत्।। १।। इति।

लक्षसागरे—

भूमौ सिन्दूररजसा रचितं सर्वकामदम्। सुवर्णरचितं यन्त्रं सर्वराजवशङ्करम्।। १।।
रजतेन कृतं यन्त्रमायुरारोग्यकान्तिदम्। ताम्रैस्तु[१] रचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम्।। २।।
यन्त्रं हि स्फाटिके देवि मनोऽभिलषितप्रदम्। माणिक्यलि(ख्य?खि)तं यन्त्रं राज्यदं भुक्तिदं मतम्।।३।।
गोमेदरचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदायकम्। क्लृप्तं मरकते यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम्।। ४।।
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं मतम्। इति।।

देव्युवाच—

लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं कथं कार्यं महेश्वर। तन्मे वदस्व कृपया[२] यद्यहं तव वल्लभा।। १।।

ईश्वर उवाच—

भागा दश सुवर्णस्य रजतस्य च षोडश। ताम्रस्य रविभागेन पीठं कुर्यान्मनोहरम्।। १।।
तस्मिन् पीठे तु निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत्। शान्तिदं पुष्टिदं प्रोक्तं सर्वशत्रुनिवर्हणम्।। २।।
आयुरारोग्यजनकं कान्तिदं पुष्टिदं मतम्।। इति।

अथ चक्रस्य प्रस्तारभेदेन त्रैविध्यं च तत्रैव—

---

१. 'ताम्रे तु' क. पाठः। २. 'वदस्व कृपया देव' ग. पाठः।

त्रैविध्यं तस्य चक्रस्य भूप्रस्तारोऽर्धमेरुकम्। पातालवासिनां देवि प्रस्तारो निम्नरेखकः[१]।। १।।
ऊर्ध्वरेखो महेशानि मर्त्यलोकनिवासिनाम्। स्वर्गलोकादिवासानां यन्त्रराण्मेरुसंज्ञकः।। २।।
भूपुरं तु समारभ्य बैन्दवान्तं महेश्वरि। क्रमात्समुन्नतं सर्वं मेरुरूपं मयोदितम्।। ३।।
समोर्ध्वरेखा[२]नवकमूर्ध्वरेखं प्रकीर्तितम्। निम्नरेखासमायोगाद्भूप्रस्तारो मयोदितः।। ४।।
यन्त्रराजस्वरूपं ते मया स्नेहात् प्रकाशितम्। गोपितव्यं त्वया भद्रे स्वगुह्यमिव सन्ततम्।।५।। इति।

अथैतत्प्रस्तारत्रयस्य फलानि प्रस्तारान्तरं च श्रीतन्त्रराजे—

चतुरस्रं समारभ्य नवचक्राण्यनुक्रमात्। उन्नतोन्नतमामध्याच्चक्रं स्यान्निधनं धनम्।। १।।
सिद्धि[३]क्रमादुन्नतं तदप्रजत्वं श्रियं लभेत्। एकद्विषट्क्रमोन्नामं श्रियै कीर्त्यै च कल्पते[४]।। २।।
नवानि समरूपाणि सर्वाभीष्टार्थसिद्धये।। इति।

तथा कुलमूलावतारे—

उच्छ्रितं क्रमशो देवि वित्तप्राप्तिस्ततो मृतिः। भूचक्रं षोडशारं चाप्यष्टारं च समं भवेत्।। १।।
शेषमुन्नतमीशानि चार्थाप्त्यप्रजदं भवेत्। चतुरस्रं समं देवि षोडशारादिबिन्दुकम्।। २।।
मिथः समुन्नतं देवि श्रियै कीर्त्यै च कल्पते[६]। चतुरस्रं समारभ्य बिन्द्वन्तं समरेखकम्।। ३।।
तथा श्रीः कीर्तिरारोग्यममृतायोपकल्पते।। इति।

अथ श्रीचक्राधिकरणे निषिद्धधातूनन्यानि निषिद्धाधिकरणानि चाह तन्त्रराजे—

सीसकांस्यादिषु पुनः पूर्वोक्तविपरीतकृत्। फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन।। १।।
स्थापितं यदि मोहेन लोभेनाज्ञानतोऽपि वा। कुलं वित्तमपत्यं च निर्मूलयति सर्वदा।। २।।इति।

कुलमूलावतारे—

अग्निरङ्गुलविस्तारं प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरम्। पलप्रमाणं कर्तव्यमर्चापीठं मनोहरम्।। १।।
यवार्धोच्चं प्रकुर्वीत चतुरस्रं समन्ततः। तस्मिन् पीठे च निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत्।। २।।

इति। सौत्रामणीतन्त्रे—

ऋजुरेखा भवेल्लक्ष्मीर्वक्ररेखा दरिद्रता। अग्निरङ्गुलविस्तारो यवार्धेनोच्छितिर्भवेत्।। १।। इति।।

लक्षसागरे— "अग्निरङ्गुलि हेमस्य" (?) इत्यादि प्रागुक्तश्रीचक्रनिर्माणप्रस्तावे सृष्ट्यादिप्रपञ्चो न प्रपञ्चितोऽधुना विशेषमाह उत्तरतन्त्रे—

सृष्टिक्रमेण पूजा हि सृष्टिचक्रेऽभिधीयते। स्थितिक्रमेण पूजा स्यात् स्थितिचक्रे महेश्वरि।। १।।
संहारक्रमयोगेन पूजा संहारचक्रके। इति।

अथ श्रीचक्रं त्रिविधं सृष्टिस्थितिसंहारभेदात्। तदुक्तं मातृकासर्वस्वे—

श्रीचक्रं त्रिविधं प्रोक्तं सृष्टिस्थितिलयात्मकम्। प्रत्येकं त्रिविधं ज्ञेयं तत्साङ्कर्यात् प्रयत्नतः।। १।।
मूलभेदा नवैव स्युस्तत्त[७]द्भेदा ह्यनेकधा।।

---

१. 'रोर्ध्व' क. पाठः। २. 'कम्' क. पाठः। ३. 'खं' क. ग. पाठः। ४. 'त्रित्रि' ग. पाठः। ५. 'कल्प्यते' क. पाठः। ६. 'कल्प्यते' ख. पाठः। ७. 'तत्प्रभेदा' क. पाठः।

अत्र सृष्टिसृष्ट्यात्मकं स्थितिस्थित्यात्मकं लयलयात्मकं चेति त्रिविधम्। सृष्टिस्थित्यात्मकं स्थितिसृष्ट्यात्मकं सृष्टिलयात्मकं लयसृष्ट्यात्मकं स्थितिलयात्मकं लयस्थित्यात्मकम्, एते नव भेदाः। एवं सर्वे द्वादश भेदाः। अथ विवेकस्तु तत्रैव—

सृष्टिचक्रं समाख्यातं नवचक्राण्यनुक्रमात्। उन्नतोन्नतमामध्यं विज्ञेयं देशिकोत्तमैः॥ १॥
श्रीचक्रं सृष्टिसृष्ट्याख्यं प्रतिरेखं ततोऽन्नतम्[1]। समोर्ध्वरेखानवकं समे पीठे च यद्भवेत्॥ २॥
स्थितिचक्रं तदेवोक्तं स्थूलरेखं महेश्वरि। सूक्ष्मरेखं भवेत्तत्र स्थितिस्थित्यात्मकं शिवे॥ ३॥
लयात्मकं निम्नरेखं स्थूलं लयलयात्मकम्।

सूक्ष्मं पातालरेखं लयात्मकं, स्थूले पातालरेखं लयलयात्मकमित्यर्थः। ''सृष्टिस्थित्यात्मकं चे''ति सृष्टिस्थित्यात्मकं त्वित्यर्थः।

अर्धमेर्वात्मकं यन्त्रं द्विधा ख्यातं महेश्वरि। अर्धं क्रमादुन्नतं यच्चतुरस्रादितस्ततः॥ १॥
तदूर्ध्वं समरेखं स्यात्सृष्टिस्थित्यात्मकं शिवे। वैपरीत्येन चैतस्य स्थितिसृष्ट्यात्मता भवेत्॥ २॥
चतुरस्रं समारभ्य चक्रत्रयमपीश्वरि। क्रमोन्नतं तदूर्ध्वं तु समं स्यान्निम्नरेखकम्॥ ३॥
सृष्टिसंहाररूपं स्याद्वैपरीत्येन तस्य तु। लयसृष्ट्यात्मकत्वं तु प्रोक्तं ज्ञेयं मनीषिभिः॥ ४॥
अर्धं पातालरेखं तु तदूर्ध्वं चोर्ध्वरेखकम्। लयस्थित्यात्मकं प्रोक्तं वैपरीत्येन तस्य तु॥ ५॥
स्थितिसंहाररूपं तु विज्ञेयं देशिकोत्तमैः। स्थितिस्थित्यात्मकं चक्रं प्रशस्तं गृहमेधिनाम्॥ ६॥
आयुःकीर्तिधनारोग्यपुत्रपौत्रविवर्धनम्। सृष्टिस्थित्यात्मकं चक्रमप्रजत्वं श्रियं लभेत्॥ ७॥
पञ्चाशद्वर्षतश्चोर्ध्वं पुत्रपौत्रप्रदं भवेत्। स्थितिसृष्ट्यात्मकं यन्त्रं पुत्रायुर्धनवृद्धिदम्॥ ८॥
पञ्चाशद्वर्षतश्चोर्ध्वमपत्यध्वंसकृद्भवेत्। अन्ये प्रोक्तास्तु ये भेदाः श्रीचक्रस्य महेश्वरि॥ ९॥
यतिवैखानसानां तु विशेषो वर्णिनामिति।

उत्तरतन्त्रे —

कूर्मपृष्ठे[2] तु यद्यन्त्रं न पूज्यं श्रेय इच्छता। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यैव समाचरेत्॥ १॥
सृष्टिचक्रे महेशानि पूजा सृष्ट्यन्तता भवेत्। स्थितिचक्रे तु स्थित्यन्ता संहारे तु लयान्तता॥ २॥
गुरुपारम्पर्यतो वा पितृभ्रातृक्रमाच्च वा। प्राप्तं श्रीगुरुणा दत्तं गुरुज्येष्ठकनिष्ठकैः॥ ३॥
दत्तं भाग्यवशाद् देवि लभ्यते यदि साधकः। पूजां तत्र प्रकुर्वीत स्थित्यन्तां परमेश्वरि॥ ४॥
दुष्टयन्त्रमपि प्रोक्तं फलदं नान्यथा शिवे। इति।

पितृपितामहक्रमतो गुरुपारम्पर्यक्रमतश्च कालवशाद्भाग्यवशाद् दुष्टयन्त्रं प्राप्यते चेत्तस्मिन् यन्त्रे पूजा तु प्रथमतः संहारक्रमेण ततः सृष्टिक्रमेण ततः स्थितिक्रमेण विधेया, शुभफलदं भवतीत्यर्थः॥

अथ दीक्षापूर्णाभिषेकाङ्गकुण्डमण्डपविधिः। दीक्षाङ्गभूतमण्डपरचनार्थं प्राचीपरिज्ञानस्यावश्यकत्वात् तत्परिज्ञानप्रकारः प्रदर्श्यते। तत्र दिव्यसारस्वततन्त्रे—

निर्मले दिवसे वृक्षप्रासादादिविवर्जिते। स्थाने समतले श्लक्ष्णं कृत्वा हंसपदं सुधीः॥ १॥

---

१. 'ततोन्नतम्' क. पाठः। २. 'ष्ठं' क. पाठः।

तदवष्टम्भतः कुर्याद् द्वादशाङ्गुलमानतः। वृत्तं तु परितो भ्रान्त्या तन्मध्ये स्थापयेद् बुधः।। २।।
सूच्यग्रं सरलं शङ्कुं वर्तुलं द्वादशाङ्गुलम्। षडङ्गुलपरीणाहमूलं शिल्पिवरेण तु।। ३।।
रचितं यत्नतस्तस्मिन् वृत्ते पूर्वापराह्णयोः। शङ्क्वग्रच्छायासम्पातस्थानयोश्चिह्नयुग्मकम्।। ४।।
कृत्वा चिह्नद्वय[१]प्राप्ति सूत्रं प्राक्प्रत्यगायतम्। दत्त्वा वृत्तायतार्धेन सूत्रेणेच्छाधिकेन वा।। ५।।
पूर्वपश्चिमयोर्वृत्तद्वयं श्लिष्टं परस्परम्। विधाय च तयोः सन्धिद्वयप्रापि प्रसारयेत्।। ६।।
मध्यचिह्नस्पृष्टमध्यं तत्सूत्रं दक्षिणोत्तरम्। एतस्यार्धांशमानेन कृत्वा कोणेषु लाञ्छनम्।। ७।।
तेषु सूत्राष्टकन्यासाच्चतुरस्रं समं भवेत्। इति।

अथैतद्रचनाप्रकारः— अत्र मेघाद्यनावृतसूर्ये निर्मलनभोमण्डले दिवसे वृक्षप्रासादाद्यनावृते भूप्रदेशे समे स्थाने क्व[२]चिद्बिन्दुं कृत्वा, तदवष्टम्भतः प्रतिदिशं द्वादशाङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तत्र षडङ्गुलमानपरिणाहमूल-मुत्तरोत्तरपरिणाहापचयेन सूचीमात्रकृताग्रपरिणाहमृज्वाकृतिं द्वादशाङ्गुलोच्छ्रायोपेतं वृत्ताकारं शिल्पिवरेण निर्मितं शङ्कुं वृत्तमध्यस्थबिन्दु- मध्यशङ्कुमूलपरिणाहमध्यं यथा भवति तथा संस्थाप्य, तच्छङ्कुच्छायाग्रस्य पूर्वाह्णे तद्वृत्तरेखापश्चिमभागे यत्र सम्पातस्तत्र चिह्नं कृत्वा, अपराह्णेऽपि शङ्कुच्छायाग्रस्य तद्वृत्तरेखापूर्वभागे यत्र सम्पातो भवति तत्र च चिह्नं विधाय, तच्चिह्नद्वयप्रापि सूत्रं विधाय पूर्वपश्चिमं परिकल्प्य, तच्चिह्नद्वयावष्टम्भेन तच्चिह्नान्तरालस्थमानस्य स्वेष्टाधिकार्ध- मानेनान्योन्यं संश्लिष्टं पूर्वापरं वृत्तद्वयं विधाय, वृत्तरेखादक्षिणोत्तरसन्धिद्वयप्रापि प्राक्पश्चिमसूत्रमध्यगत्या तिर्यग्रूपेण यत्सूत्रं तद् दक्षिणोत्तरं परिकल्प्य पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरसूत्रद्वयाग्रचतुष्कसम्पाताद्वक्ष्यमाणमानेन तुल्यरूपकल्पितसूत्राग्रैस्तेषां मण्डपकुण्डादीनां प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरात्मकदिक्चतुष्टयं परिकल्पयेदिति स्थूलदृष्ट्या प्राचीसाधनविधिः प्रदर्शितः।। सूक्ष्मप्रकारस्तु तन्त्रान्तरे— "सुसमे भूतले कृत्वे"त्यारभ्योक्तप्रकारेण पूर्वदिनकृत्यमुक्त्वा,

दिनान्तरेऽपि देवेशि प्राग्वच्चिह्नद्वयं सुधीः। कृत्वा वृत्ते तु यत्र स्याच्छायायाः परमेश्वरि।। १।।
प्रवेशो निर्गमश्चैव तत्र पूर्वदिने यदा। प्रविष्टनिर्गता च्छाया यदा तन्मध्यनाडिकाः।। २।।
छायादिना तु विज्ञाय च्छायापगमचिह्नयोः। अन्तरं दिनयोरिष्टैश्चतुराद्यैर्विभागतः।। ३।।
विभज्य तत्र चिह्नानि कृत्वा ताभिः सुरेश्वरि। नाडीभिः कल्पिता भागा गुणनीयाः प्रयत्नतः।। ४।।
षष्ट्या हृतं तु लब्धांशैः पूर्वेद्युर्यत्कृतं भवेत्। प्राचीसूत्रं पूर्वभागे उत्तरे तूत्तरायणे।। ५।।
अयने दक्षिणे चैव दक्षिणस्यां दिशि ध्रुवम्। चाल्यते चेत् स्फुटा सा स्यात्प्राची तु परमेश्वरि।। ६।।

इति प्राचीसाधनं विधाय,

व्यासद्विगुणरज्ज्वान्तौ पाशौ कृत्वाङ्कयेदिमाम्। व्यासार्धमाने शङ्क्वर्धं सार्धेऽस्मिन् कर्षणाय च।। १।।
प्राच्यन्तशङ्कोस्तत्पाशौ कृत्वा चाकर्षकर्षणे। शङ्क्वङ्केऽर्वाक्श्रोणिरेवमुद्ग्व्यत्यस्य चांसकौ।। २।।

इति शिल्पिशास्त्रोक्तरीत्या मण्डपक्षेत्रमुद्दिष्टमानादधिकविस्तारायामसमचतुरस्रं कल्पयेत्।। अस्यार्थः— कुण्डमण्डपादेर्व्यासो यावानिष्टस्तावद्द्विगुणरज्जुमुभयतः पाशं कृत्वा, तामेकतः पाशाद् व्यासार्धमात्रे शङ्क्वर्धे चिह्नयेत्। ततः शङ्क्वङ्कादग्रतो व्यासार्धमानेन चिह्नापकर्षणतः कुण्डमण्डपादौ प्राचीसूत्रं प्रमाणेन दत्त्वा, तदन्तयोः शङ्कुं

---

१. 'यं' क. पाठः। २. 'किञ्चित्' क. पाठः।

निखन्य, तयोस्तद्रज्जुपाशौ कुर्याद्यथा व्यासार्धदङ्के यतः कृतः स पाशः प्रतीच्यां स्यात् कर्षचिह्नदक्षिणत आकृष्य व्यासार्धचिह्ने दक्षिणश्रोणिशङ्कुं दत्वा तस्यैवोत्तरदिक्श्रोण्यां च शङ्कुं दद्यात्। ततः पाशौ व्यत्यस्यैवमंसौ साध्याविति। एवं समचतुरस्रं क्षेत्रं कृत्वा बाहुमात्रोदिष्टमानाभ्यधिकां चतुरस्रां भुवं बाहुमात्रखननादिस्तुषाङ्गारादिलोष्ठादिकं निरस्य शुद्धमृद्भिरापूर्य दृढीकृत्य,

कीलेनैकीकृते मूले पृथक्सूक्ष्मसमाग्रयोः। दण्डयोरग्रनैकट्येऽन्यस्तिर्यङ्मध्यचिह्नतः॥ १॥
कीलादिना योजनीये दण्डः समतया द्वयोः। मूलदेशे लम्बसूत्रमस्पृशन्द्धारवद्धुवम्॥ २॥
भूस्थेऽग्रयुग्मे मध्याङ्कात् तिर्यग्दण्डगताद्यतः। स्खलेत्तत्पूरयेदन्यन्निम्नयेद्वापि युक्तितः॥ ३॥
अङ्के यावत् सूत्रमेति भूरेवं समतां व्रजेत्। इति।

अयमर्थः[1]:— समस्थौल्यदीर्घरज्ज्वोः कीलेन प्रोतमूलयोर्दण्डयोरग्रनिकटे तादृशं तिर्यगदण्डं तदर्धदीर्घे कीलेन योजयित्वा तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा दण्डत्रयेण दीर्घत्रिकोणाकारं विधाय, दीर्घदण्डयोर्मूलाल्लम्बमानं सूत्रमग्रे लघुपाषाणादिबद्धं तिर्यगदण्डस्य मध्यचिह्नोपरि भूमिं यथा न स्पृशति तथा विधाय भूमिं स्पृष्ट्वाग्रयोस्तयोर्मूलं धृत्वा शनैराकृष्टे तिर्यग्दण्ड-मध्याङ्काद्यत्र सूत्रं चलति तत्र निम्ना भूस्तां पूरयेत्। अन्यत्र खनित्वा वा यथा मध्यचिह्ने सूत्रमेति तथा सर्वत्र कुर्यादिति शिल्पिशास्त्रोक्तप्रकारेण[2] भूमिं समीकृत्य तत्रोत्तममध्यमकनिष्ठाद्यन्यतमं मण्डपं कुर्यात्॥ मण्डपलक्षणं तु तन्त्रान्तरे—

राज्ञां होमाभिषेकेषु दीक्षादानव्रतादिषु[3]। भानोर्गत्या दिशो ज्ञात्वा पुण्याहं वाचयेत् सुधीः॥ १॥
ततः पञ्चनिनादेन मण्डपं रचयेच्छुभम्। ज्येष्ठमध्याधमत्वेन तन्मानं त्रिविधं मतम्॥ २॥
षोडशाष्टादशमितैर्हस्तैर्मानमिहोत्तमम्। हस्तैर्विंशतिभिः केचिन्मानमुत्तममूचिरे॥ ३॥
मध्यमं द्वादशकरैश्चतुर्दशकरैर्मितम्। अधमं दशभिर्हस्तैर्मितमाहुर्मनीषिणः॥ ४॥
केचित्तु नवभिस्तद्वत् सप्तभिर्वाथ पञ्चभिः। हस्तैर्मितं वदन्त्येवं विस्तारायामसंयुतम्॥ ५॥
स्तम्भैः षोडशभिर्युक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम्। दिक्षु द्वाराणि चत्वारि साष्टाङ्गुलकरद्वयात्॥ ६॥
साध्याङ्गुलकरद्वन्द्वाद्विदधीत करद्वयात्। ततो मण्डपसूत्रं तु त्रिगुणं परिकल्पयेत्॥ ७॥
पूर्वादिषु[4] क्रमात्तस्य मध्यभागस्तु वेदिका। इष्टकाभिर्मृदा वा सा कार्या दर्पणसन्निभा॥ ८॥
वेदीकोणेषु विन्यस्याः स्तम्भा देवस्वरूपकाः। ते चोत्तमे तदर्धोच्चा मध्यमाधमयोः पुनः॥ ९॥
अष्टहस्तोन्नतिभृतस्ततो द्वादश शोभनाः। ऋजवः पञ्चहस्तास्ते सशिखास्तु समन्ततः॥ १०॥
चतुष्कोणेषु चत्वारश्चाष्टौ ते सूत्रकोटिषु। समान्तरालाः सर्वे ते स्थाप्याः षोडश देशिकैः॥ ११॥
पञ्चमां[5]शोन्मितांस्तांश्च निखनेद् भुवि देशिकः। मध्यस्तम्भचतुष्काग्रादेकीभूताग्रकं पुनः॥ १२॥
कृत्वा काष्ठचतुष्कं तु तदग्रे कलशं शुभम्। शोभितं कलशेनाथ मुखस्थेन सुदारुजम्॥ १३॥
निर्मितं शिल्पिभिः सम्यक्स्थापयेद् देशिकोत्तमः। आच्छादयेत्ततो वंशैः कटैः[6]करदलैश्च तम्॥ १४॥
मण्डपद्वारबाह्ये च युग्मं युग्मं दिशां क्रमात्। अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटोत्थं तोरणं न्यसेत्॥ १५॥
सप्तषट्पञ्चककरं निखनेद्भुवि पूर्ववत्। विशालता च तस्याथ दशभिस्त्वङ्गुलैर्मता॥ १६॥

१.'अस्यार्थः' क.पाठः। २.'प्रमाणेन' क.पाठः। ३.'प्रसादि' क. पाठः। ४. 'दिप्रक्रमा' क. पाठः ५. 'पञ्चविंशो' क. पाठः। ६. 'कटः' क. पाठः।

पञ्चाङ्गुल[1]मितस्थौल्यं विषमं चतुरस्रकम्। मध्यभागे तोरणयोस्तिर्यक् काष्ठं प्रविन्यसेत्।। १७।।
सार्धहस्तद्वयात् (पाद) हस्तयुग्घस्तयुग्मतः। अग्निमीळीति मन्त्रेण विन्यसेत्पूर्वतोरणम्।। १८।।
इषे त्वेत्यादिमन्त्रेण दक्षिणं तोरणं न्यसेत्। अग्न आयेति मन्त्रेण पश्चिमस्य निवेशनम्।। १९।।
शन्नो देवीति मन्त्रेण दद्यादुत्तरतोरणम्। ऊर्ध्वे ध्वजं च बध्नीयात् घण्टाचामरभूषितम्।। २०।।
पञ्चहस्तो ध्वजः प्रोक्तो दण्डस्तु दशहस्तकः। ततस्तु लोकपालानां पताका बाहुसम्मिताः।। २१।।
द्वादशाङ्गुलवितारास्तत्तन्मूर्त्या च लाञ्छिताः। पीतारक्तश्यामधूम्राश्वेतधूम्रासितार्जुनाः।। २२।।
आयुधाङ्काः पताकाः स्युः पुष्पगन्धसमन्विताः। यथायोग्यं दण्डयुतास्तत्तन्मन्त्रेण तान्न्यसेत्।।२३।।
चन्द्रमण्डलगौरेण वितानेन विभूषितम्। दुकूलवेष्टितस्तम्भं नानादीपाद्यलङ्कृतम्।। २४।।
आम्रपल्लवमालाभिः शोभितं द्वारमुत्तमम्। वेष्टितं दर्भरज्ज्वा च विदध्यान्मण्डपं शुभम्।। २५।।

इति।। उत्तरतन्त्रे—

विंशत्यूर्ध्वशतैर्हस्तैर्मण्डपश्चोत्तमो मतः। अष्टोत्तरशतैर्हस्तैः शत[2]हस्तैरथापि वा।। १।।
एकाशीतिमितैर्हस्तैर्द्वासप्ततिकरैरपि। षष्टिहस्तैरष्टचत्वारिंशद्भिर्हस्तकैः क्रमात्।। २।।
षट्त्रिंशद्भिश्च त्रिंशद्भिः सप्तविंशतिहस्तकैः। चतुर्विंशतिहस्तैर्वा मण्डपं कारयेद् बुधः।। ३।।
चतुरस्रं तथा वृत्तं षट्कोणं चाष्टकोणकम्। त्रिकोणमष्टपत्राभं नवकोणं द्विकोणकम्।। ४।।
पञ्चकोणं सप्तकोणं रुद्रकोणं तथैव च। द्वादशं षोडशं चाष्टादशविंशतिकोणकम्।। ५।।
चतुर्विंशतिकोणं च सप्तविंशतिकोणकम्। द्वात्रिंशत्कोणकं चैव षट्त्रिंशत्कोणकं तथा।। ६।।
अष्टत्वारिंशदस्रं मत्स्याकारो ध्वजाकृतिः। शूर्पकुन्तासिशृङ्गाटधनुर्मद्दरकाकृतिः।। ७।।
मण्डपास्तत्र कर्तव्याः कुण्डान्यपि विशेषतः। पूर्णाभिषेके दीक्षायामभिषेकादिशान्तिषु।। ८।।
तत्तत्काम्यप्रयोगेषु तत्तत्कुण्डानि देशिकैः। कर्तव्यानि विशेषेण तत्तत्कर्मण्यतन्द्रितैः।। ९।। इति।

अत्र यावन्तो मण्डपभेदा उक्तास्तावन्तः कुण्डभेदा अपि ज्ञेयाः।। अथैतन्मण्डपरचनाप्रकारः—अत्र पूर्णाभिषेकादिषु चतुर्विंशतिहस्तपरिमिताः कुण्डमण्डपा ये उक्तास्ते कर्तव्याः। चतुर्विंशतिविंशति–अष्टादशषोडशहस्तैर्वोत्तमो मण्डपः चतुर्धा। चतुर्दशहस्तैर्द्वादशहस्तैर्वा मध्यमो द्विविधः। दशहस्तैर्नवहस्तैः सप्तहस्तैः पञ्चहस्तैश्च समायामविस्तारैश्च कनिष्ठश्चतुर्विधः। अत्र पक्षे त्रिविधे यथावकाशं ऋत्विक्सदस्यसामाजिकाद्युपवेशादेः सौकर्ययुक्तं मण्डपं कुर्यात्।। हस्तस्तु चतुर्विंशाङ्गुलदैर्घ्यः। अङ्गुलमानं तु महाकपिलपञ्चरात्रे—

वातायनपथं प्राप्य ये भान्ति रविरश्मयः। तेषु सूक्ष्मा विसर्पन्ते रेणुका[3]स्त्रसरेणवः।। १।।
परमाणोरष्टगुणस्त्रसरेणुरुदाहृतः । तेऽष्टौ केशाह्वयास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम्।। २।।
तदष्टकं यवस्तेऽष्टावङ्गुलिः समुदाहृता। सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा।। ३।।
षट्यवा साधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलमितीरितम्। विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानान्तराङ्गुलम्।। ४।।
शालिभिर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तरं भवेत्। आचार्यदक्षिणकरे मध्यमाङ्गुलिमध्यगम्।। ५।।

---

१. 'लार्पित' ग. पाठः। २. 'शतैर्ह' ग. पाठः। ३. 'नवः' क. पाठः।

पर्वणोरन्तरं दीर्घं मानाङ्गुलमुदाहृतम्। विनाङ्गुष्ठेन शेषाभिर्मुष्टिमङ्गुलिभिः कृतम्॥ ६॥
चतुर्धा विभजेदेको भागो मुष्ट्यङ्गुलः स्मृतः। यं कश्चित्पौरुषायामं विभज्य दशधा पुनः॥ ७॥
एकं द्वादशधा भागं कृत्वा तेष्वेकमङ्गुलम्। देहलब्धाङ्गुलं नाम जानीयात् तस्य तत्पुनः॥८॥
उच्छ्रायः प्रतिमायाः स्यान्महामानाङ्गुलाश्रयः। महामानाङ्गुलिरिति मात्राङ्गुलिरिहोच्यते॥ ९॥
प्रासादादींश्च तेनैव कुर्यान्मानान्तरेण वै। वेदिकापीठशिविकारथादीनां विधिः पुनः॥ १०॥
मानान्तराङ्गुलेनैव भवेन्नान्येन केनचित्। यागोपकरणानां[1] च कुर्यान्मानाङ्गुलेन वै॥ ११॥
होमाङ्गादिस्रुवादीनि कुण्डं मुष्ट्यङ्गुलाश्रयम्। देहलब्धाङ्गुलेनैव प्रतिमाङ्गानि कल्पयेत्॥ १२॥
चतुर्विंशतिसंख्याभिर्हस्तस्त्वङ्गुलिभिर्भवेत्। इति॥

अत्राचार्यो यजमानः। "एतावदुक्तं यन्मानं यजमानस्य तद्भवे"दिति तन्त्रान्तरे, "कर्तुर्दक्षिणहस्तस्ये"ति शारदावचनात्॥ उत्तरतन्त्रे विशेषः —

नवैकादश कुण्डानि कुर्यादुत्तममण्डपे। चतुष्कुण्डी मध्यमे स्यात्कनिष्ठेऽप्येककुण्डकम्॥ १॥

इत्येवमुक्तप्रकारमात्राङ्गुलात्मकाङ्गुलादिर्भिर्हस्तादि परिकल्प्य प्रोक्तं मण्डपं कुर्यात्। तत्र प्रोक्तविधिना समीकृते भूतले पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः स्वस्ति वाचयित्वा यथोद्दिष्टमानहस्तविस्तारं समचतुरस्रं कोणचतुष्टयनिखातशङ्कुचतुष्टयं विधाय पूर्वापरायतं दक्षिणोरायतं च मध्यसूत्रं दूरीकृत्य, तच्चतुरस्रक्षेत्रं पुनर्नवधा विभज्य परितः कोणचतुष्टये स्तम्भचतुष्टयं दिक्चतुष्टयगतपूर्वापरायतदक्षिणोत्तरायतचतुष्ककोट्यष्टकगतस्तम्भाष्टकमिति सम्भूय द्वादश स्तम्भानतिस्थूलान्नातिकृशानवक्रानव्रणानेकजातीयान् सुवृत्तान् पञ्चहस्तसमुच्छ्रायान् खातप्रविष्टस्वस्वपञ्चमांशान् प्रमाणाद्बहिर्हस्तस्थौल्यतृतीयांशान् स्थूलवितस्त्युन्नतिशिखायुक्तान् मध्यविभक्ते कोणचतुष्टये स्तम्भचतुष्टयं पूर्वस्तम्भसजातीयं पूर्वतः[2] किञ्चित्स्थूलमुत्तममण्डपे तन्मानस्यार्धमानोच्चमन्यमण्डपेऽष्टहस्तोच्चं पूर्ववत् सशिखं पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलमिति सम्भूय षोडश स्तम्भान्निखाय, तेषामुपरि सजातीयानि ऋजून्यव्रणानि शिखाप्रवेशयोग्यवेधयुक्तकोटिद्वयवत्[3] तिर्यक्काष्ठानि शिल्पिभिः परिकल्पितानि द्वादशस्तम्भाग्रेषु मध्यस्तम्भचतुष्टयाग्रेषु च चतुरस्राकारेण समारोप्य, मध्यस्तम्भचतुष्टय-शिखाग्रप्रविष्टमूलवेधयुक्तमेकीकृताग्रकाष्ठचतुष्टयनिविष्टसजातीयकाष्ठकलशं कमलाकृतिशोभिताग्रं दिग्विदिक्स्थ-द्वादशस्तम्भशिखाग्रपोतमूलमध्यस्तम्भचतुष्टयाग्रस्पृष्टाग्रमध्यतिर्यक्काष्ठचतुष्टयमध्यगताग्रम् ऋज्वाकृति यथा-योग्यदीर्घस्थौल्ययुतप्रसारितद्वादशकाष्ठयुतमन्यैरपि काष्ठैर्यथायोग्यं दृढीकृतं नारिकेलदलैर्वंशकटैर्वा सम्यगाच्छादितं तैरेव निःशेषपिहितकोणचतुष्टयं चुतर्दिक्षूत्तममध्यमकनिष्ठेषु साष्टाङ्गुलहस्तद्वय-सचतुरङ्गुलहस्तद्वय-द्विहस्तविस्तारयुतशाखद्वारचतुष्टयोपेतं मण्डपं विरच्य, मण्डपस्य पूर्वद्वाराद्बहिर्हस्तमात्रं परित्यज्याश्वत्थवृक्षस्योत्तम-मध्यमकनिष्ठेषु सप्तषट्पञ्चहस्तोच्छ्रितं दशाङ्गुलविस्तृतं पञ्चाङ्गुस्थूलविस्तारस्य दशाङ्गुलत्वात् स्थौल्यस्य पञ्चाङ्गुलत्वाद् वैषम्यं बोद्धव्यम्। विषमचतुरस्रं प्रमाणातिरिक्तवितस्त्युन्नतशिखं द्वारस्योभयपार्श्वयोरुत्तममध्यमकनिष्ठेषु सार्धहस्तद्वयसपादहस्तद्वय-हस्तद्वयान्तरालं यथापूर्वं पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलफलकद्वयं "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्" इति मन्त्रेण निखाय, तत्सजातीयकाष्ठेन समानविस्तारस्थौल्यं विषमचतुरस्रं

१. 'योगो' ग. पाठः। २. 'पूर्ववत्' ग. पाठः। ३. 'द्वयवृत्तीनि' ग. पाठः।

कोटिद्वयेऽपि शिखाप्रवेशयोग्यवेधयुतं तिर्यक्तिर्यक्फलकं समारोप्य, दर्भमालां च बध्नीयात्। एवं दक्षिणद्वार उदुम्बरतरुमयं तोरणं "इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।।" इति मन्त्रेण न्यसेत्। ततः पश्चिमद्वारे प्लक्षमयं तोरणं प्राग्वन्निर्मितं "अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि" इति मन्त्रेण न्यसेत्। ततः उत्तरद्वारे वटवृक्षमयं तोरणं प्राग्वन्निर्मितं "शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः" इति न्यसेत्। ततस्तेषामुपरिगततिर्यक्फलकेषु मध्यतः सुषिरं विधाय, तेषु तोरणसजातीयकाष्ठेन निर्मितमुत्तममध्यमकनिष्ठेषु त्रयोदशैकादशनवाङ्गुलमात्रदैर्घ्यं तच्चतुर्थांशविस्तारं, शैवे त्रिशूलाकारं, वैष्णवे चक्राकारं, तोरणोपरिगततिर्यक्फलकस्य द्वादशांशमात्रदीर्घं प्रागादिक्रमेण शङ्खचक्रगदापद्मलाञ्छितं प्रतितोरणमेकैकं कीलमारोपयेत्।।

तत्र त्रिशूलनिर्माणप्रकारस्तु पिङ्गलामते—

शूलेन निर्मिताः कुर्याद् द्वारशाखास्तु मस्तके। शूलं नवाङ्गुलं दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः।। १ ।।
ऋजुर्वै मध्यशृङ्गः स्यात् किञ्चिद्वक्रं च पार्श्वयोः। हीने चैवं समाख्यातं द्व्यङ्गुलं रोपयेत्तथा।। २ ।।
शेषाणां द्व्यङ्गुला वृद्धिर्विंशश्चाङ्गुलवृद्धितः[1]। इति।

हीने कनिष्ठमण्डपे। शेषाणां मध्यमोत्तमानां विशः प्रवेशः।। वास्तुशास्त्रे—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाम्बुजम्। प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम्।। १ ।। इति।

द्वादशांशं तिर्यक्फलकस्य स्वदारुजं तत्तत्तोरणसजातीयकाष्ठसम्भवं, तेन कनिष्ठमण्डपे चतुरङ्गुलोच्चं, मध्यमे सार्धचतुरङ्गुलमुत्तमे पञ्चाङ्गुलमिति।। केचित्तु— "तत्र हस्तोन्मिताः कीलाः संस्थाप्या वैष्णवे तथा। शङ्खचक्रगदापद्मलाञ्छिताः, शूलसन्निभाः।। शैवे" इति तन्त्रान्तरवचनाद्धस्तमात्रं कीलं वदन्ति। तत्र तिर्यक्फलकेषु तदा तु हस्तमात्रेषु कीलेषूक्तमानेनैवाग्रदेशेषु शङ्खचक्राकारं वा त्रिशूलाकारं वा कार्यं बिलप्रवेशश्च तथैव कार्यः, उर्वरितं तु तेषां दण्डवद्दृश्यत इति। ततो मण्डपाग्रे दशहस्तदैर्घ्यवंशदण्डावलम्बितं हस्तमात्रविस्तृतं पञ्चहस्तदैर्घ्यं दातव्यम्। मन्त्रदेवता[2]वाहनमूर्त्यङ्कितघण्टादिभूषिताग्रं सुश्वेतं च तथैव तत्तद्दैवतवर्णानुरूपवर्णं वा ध्वजमारोप्य दशदिक्षु बाहुमात्रदीर्घा यथायोग्यमानदण्डावलम्बितास्तत्तल्लोकपालवर्णानुरूपवर्णास्तत्तल्लोकपालवाहनमूर्त्यङ्किताः द्वादशाङ्गुलविस्तृता लोकपालानां वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण पताकाश्च बध्नीयात्। तत्रेन्द्रस्य पीतवर्णा, वह्नेः पिङ्गलवर्णा, यमस्य कृष्णवर्णा, निर्ऋतेः श्यामवर्णा, वरुणस्य श्वेतवर्णा, वायोर्धूम्रवर्णाः, सोमस्यामलवर्णा, ईशानस्य श्वेतवर्णा, ब्रह्मणो रक्तवर्णा, अनन्तस्य श्वेतवर्णाः, इति पताकाभिरलङ्कृत्य, मण्डपाभ्यन्तरं सुश्वेतवितानपुष्पमालाभिरलङ्कृत्या-म्राश्वत्थदलग्रथितदर्भरज्जुरूपवन्दनमालया मण्डपमन्तर्बहिश्च परिवेष्ट्य, स्तम्भान् दुकूलेन संवेष्ट्य, तन्मध्यस्तम्भ-चतुष्टयमध्यगते चतुरस्ररूपे मध्यखण्डेऽपक्वेष्टकादिभिः स्निग्धमृद्भिर्वा चतुरस्रां दर्पणोदरनिभपार्श्वचतुष्टयमध्यप्रदेशां समतलां[3] वेद्यायामस्यैकादशांशेन नवमांशेन सप्तमांशेन पञ्चमांशेन चतुर्थांशेन तृतीयांशेन वा समुन्नतां हस्तमात्रोन्नतां वा वेदीं विदध्यात्। तदुक्तं तन्त्रान्तरे— "उच्छ्रायोऽस्या ईशनवसप्तेष्वब्धित्रिभागकै"रिति।। कपिलपञ्चरात्रे—

चतुर्थांशोच्छ्रितस्तस्यास्त्रिपञ्चसप्तमोऽपि वा। नवैकादशभागैस्तामिष्टकाभिः प्रकल्पयेत्।। १ ।। इति।

तन्त्रराजे— 'विदध्यान्मध्यतो वेदीं करमात्रसमुन्नताम्" इति। शारदायाम्—

१. 'द्विदः' क. पाठः। २. 'दैवता' क. पाठः। ३. 'तरां' क. पाठः।

नक्षत्रग्रहवाराणामनुकूले शुभेऽहनि। ततो भूमितले शुद्धे तुषाङ्गारविवर्जिते ॥ १॥
पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्। पञ्चभिः सप्तभिर्हस्तैर्नवभिर्वा मितान्तरम्॥ २॥
षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यगाः। अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः संस्थाप्या द्वादशाभितः॥ ३॥
पञ्चहस्तप्रमाणास्ते निश्छिद्रा ऋजवः शुभाः। तत्पञ्चमांशं निखनेन्मेदिन्यां तन्त्रवित्तमः॥ ४॥
नारिकेलदलैर्वंशैश्छादयेत् तत्समन्ततः। द्वारेषु तोरणानि स्युः क्रमात् क्षीरमहीरुहाम्॥ ५॥
स्तम्भोच्छ्रायः स्मृतस्तेषां सप्तहस्तैः पृथक् पृथक्। दशाङ्गुलप्रमाणेन तत्परीणाह ईरितः॥ ६॥
तिर्यक्फलकमानं स्यात् स्तम्भानां मध्यमानतः[1]। शूलानि कल्पयेन्मध्ये तोरणे हस्तमानतः॥७॥
दिक्षु ध्वजान्निबध्नीयाल्लोकपालसमप्रभान्। वितानदर्भमालाद्यैरलङ्कुर्वीत मण्डपम्॥ ८॥
तत्त्रिभागमिते क्षेत्रेऽरत्निमात्रसमुन्नताम्। चतुरस्रां ततो वेदीं मण्डलाय प्रकल्पयेत्॥ ९॥

इति मण्डपनिर्माणविधिः॥ अत्र कनिष्ठमण्डपेषु दशहस्तमण्डपेऽपि मध्यत्र्यंशाधिकरायता देवी, कुण्डवेद्योरन्तरालमुभयतः पदद्वयमात्रं तद्बहिरुभयतः कण्ठमेखलासहितकुण्डद्वयव्याप्तभूमिश्चतुर्हस्तमिता, तद्बहिःपार्श्वद्वयेऽपि कुम्भस्थापनार्थं हस्तद्वयमिति समस्तमण्डपभूमिर्व्याप्ता। अतः परमाचार्यऋत्विक्सदस्याद्युपवेशनस्थानमपि न लभ्यते, इति नायं पक्षः समीचीनः। तस्मादयं पक्षस्त्वेकैककुण्डैकमेखलादिसङ्क्षेपचिकीर्षायामेतावता चारितार्थ्यात्तद्विषय इति ज्ञेयः। इत्थं मण्डपं विधाय तस्मिन् मण्डपे पूर्वाद्यष्टदिक्षु चतुरस्रयोन्यर्धचन्द्रत्रिकोणवृत्तषट्कोणपद्माष्टास्राख्यान्यष्टौ कुण्डानि कुर्यात्॥

तत्रादौ चतुरस्रकुण्डनिर्माणप्रकारमाह शारदायाम्—

प्राक्प्रोक्ते मण्डपे विद्वान् वेदिकाया बहिस्त्रिधा। क्षेत्रं विभज्य मध्येंऽशे[2] पूर्वादि परिकल्पयेत्॥१॥
अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात्। चतुरस्रं योनिमर्धचन्द्रं त्र्यस्रं च वर्तुलम्॥ २॥
षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामतः। आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः॥ ३॥
हस्तामान[3]मितां भूमिं पूर्ववत्परिसूत्रयेत्[4]। समन्तात् कुण्डमेतत् स्याच्चतुरस्रं शुभावहम्॥ ४॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः। चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं पञ्चधा विभजेत् सुधीः॥ ५॥
न्यसेत् पुरस्तादेकांशं कोणार्धार्धप्रमाणतः। भ्रामयेत् कोणमानेन तदान्यदपि मन्त्रवित्॥ ६॥
सूत्रयुग्मं ततो दद्यात् कुण्डं योनिनिभं भवेत्। चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेत् पुनः[5]॥ ७॥
एकमेकं त्यजेदंशमध ऊर्ध्वं च तन्त्रवित्। ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानाद्भ्रामयेत् ततः॥ ८॥
अर्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत्। चतुर्धा भेदिते क्षेत्रे न्यसेदुभयपार्श्वयोः॥ ९॥
एकैकमंशं तन्मानादग्रतो लाञ्छयेत्ततः। सूत्रत्रयमधः[6] कुर्यात् त्र्यक्षं कुण्डमुदाहृतम्॥ १०॥
अष्टादशांशे क्षेत्रेंऽशे[7] न्यसेदेकं बहिर्बुधः। भ्रामयेत्तेन मानेन वृत्तं कुण्डमनुत्तमम्॥ ११॥
अष्टधा विभजेत् क्षेत्रं मध्यसूत्रस्य पार्श्वयोः। भागं न्यसेदेकमेकं [8]मानेनानेन मध्यतः॥ १२॥

१. 'नामर्धमानतः' ख. पाठः। २. 'मध्यांशे' ख. पाठः। ३. 'मात्र' ख. पाठः। ४. 'परिकल्पयेत्' ख. पाठः।
५. 'सुधी' ग. पाठः। ६. 'सूत्रयुग्मं ततः' ख. पाठः। ७. 'त्रे च' ख. पाठः। ८. 'भागेना' ख. पाठः।

कुर्यात् पार्श्वयुगे मत्स्यचतुष्कं तन्त्रवित्तमः। सूत्रषट्कं ततो दद्यात् षडश्रं कुण्डमुत्तमम्॥ १३॥
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं विभज्याष्टादशांशतः। एकभागं बहिर्न्यस्य भ्रामयेत्तेन वर्तुलम्॥ १४॥
वृत्तादि कर्णिकादीनां बहिस्त्रीणि प्रकल्पयेत्। पद्मकुण्डमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम्॥ १५॥
पूर्वोक्तं विभजेत् क्षेत्रं चतुर्विंशतिभागतः। भागमेकं बहिर्न्यस्य चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥ १६॥
अंसयोश्चतुरश्रस्य[1] कोणार्धार्धप्रमाणतः। बाह्यस्य चतुरस्रस्य कोणाभ्यां परिलाञ्छयेत्॥ १७॥
दिशं प्रति यथान्यायमष्टौ सूत्राणि पातयेत्। अष्टाश्रं कुण्डमेतद्धि तन्त्रविद्भिरुदीरितम्।।१८। इति।

श्रीतन्त्रराजे– (२९ पृ० २३ श्लो०)

प्राक्प्रत्यक्सूत्रमास्फाल्य तन्मध्ये चिह्नकल्पनम्। कृत्वा तत्पूर्वतः पश्चाद्द्वादशाङ्गुलमानतः॥ १॥
ततस्तदग्रा[2]ण्यालम्ब्य मध्यचिह्नस्य मानतः। कुर्याद्धंसपदं कोष्ठान्यभितस्तेषु पातयेत्॥ २॥
परं प्रमृज्य तत्रापि विदध्याच्चिह्नयुग्मकम्। प्राक्प्रत्यक्चिह्नमानेन तयोरेवावलम्बतः॥ ३॥
दक्षिणोत्तरतो हंसपदे कृत्वा तयोस्ततः। प्रसार्य सूत्रं तस्यापि[3] मार्जयित्वोक्तमानतः॥ ४॥
चतुष्टयं तु सूत्राणां चतुरस्रं भवेत्समम्। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः–तत्र वेद्याः पूर्वभागे मुष्ट्यङ्गुलमानेन हस्तमात्रां भुवं परित्यज्य, प्राक्कल्पितदिक्क्रमेण प्राक्प्रत्यगायतं सूत्रमास्फाल्य, तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा तच्चिह्नात्पूर्वतः पश्चिमतश्च मुष्ट्यङ्गुलै[4]र्द्वादशमानेन चिह्नं कृत्वा, तत्तदधिकांशं मार्जयित्वा, तच्चिह्नद्वयावष्टम्भेन तत्सूत्रार्धात् किञ्चिदधिकमानभ्रमेण पूर्वापरतः किञ्चिदन्योन्यसंश्लिष्टं वृत्तद्वयं विधाय, तयोर्दक्षिणोत्तरसंदंशरूपहंसपदद्वयप्रापि प्राक्प्रत्यक्ब्रह्मसूत्रमध्यगतहंसपदभेदं दक्षिणोत्तरं सूत्रमास्फाल्य, तत्रापि मध्यचिह्नाद्द्वादशाङ्गुलमानेन दक्षिणोत्तरं चिह्नद्वयं विधाय तत्तदधिकांशं मार्जयित्वा, तत्सूत्राग्रचतुष्टयावलम्बेन द्वादशाङ्गुलमानेन चतुर्ष्वपि कोणेषु हंसपदं विधाय, तत्तदग्रात्तत्तद्धंसपदप्रापिप्राक्सूत्रद्वयं दक्षिणोत्तरं सूत्रद्वयं च सम्भूय सूत्रचतुष्टयमास्फाल्य चतुश्रं कुर्यात्। ततस्तत्प्राक्प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रमाननिम्नं समचतुरस्रं तत्र खातं कृत्वा, तत्परितः कुण्डमानस्य चतुर्विंशांशमितां भुवं परित्यज्य, तद्बहिर्द्वादशाङ्गुलविस्तारां चतुरङ्गुलोत्सेधां मेखलां कृत्वा, तदुपरि बाह्ये परितश्चतुरङ्गुलमानं त्यक्त्वाष्टाङ्गुलविस्तारां चतुरङ्गुलोन्नतां द्वितीयां मेखलां कृत्वा, तदुपरि बाह्ये चतुरङ्गुलं त्यक्त्वा विस्तारोत्सेधाभ्यां चतुरङ्गुलमितां तृतीया मेखलां कुर्यात्। एवं कृते प्रथमा मेखला द्वादशाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता, द्वितीयाष्टाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता, तृतीया चतुरङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता च भवतीति। अत्र केचित्– प्रथमा मेखला चतुरङ्गुलविस्तृता नवाङ्गुलोन्नता, द्वितीया तु त्र्यङ्गुलविस्तृता पञ्चाङ्गुलोन्नता, तृतीया तु द्व्यङ्गुलविस्तृता द्व्यङ्गुलोन्नतेति मेखलामानमाहुः। एतन्मेखलया सह हस्तमात्रखातपक्षे ज्ञेयम्, तत्र पञ्चदशाङ्गुलनिम्नखातस्यैव विश्वकर्मणोक्तत्वात्, तदूर्ध्वे नवाङ्गुलोच्छ्रायस्यैवावश्यकत्वात्। हस्तमात्रखातपक्षे तु– "सर्वेषां मेखलामानं वितस्त्यष्टतदर्धकैः। विस्तारोत्सेधयोः कुर्यात्" इति तन्त्रराजवचनात्।

सत्त्वपूर्वकगुणान्विताः क्रमाद् द्वादशाष्टचतुरङ्गुलोच्छ्रिताः।
सर्वतोऽङ्गुलचतुष्कविस्तृता मेखलाः सकलसिद्धिदा मताः॥ १॥ (५–३३)

---

१. 'अंशयोः' ग. पाठः। 'अन्तस्थ' ख. पाठः। २. 'तदस्रा' क. पाठः। ३. 'तच्चापि' ख. पाठः। ४. 'ले द्वा' क. पाठः।

इति प्रपञ्चसारवचनाच्च पूर्वोक्त एव पक्षः समीचीन इति।। ततः सर्वबाह्यस्थमेखलाया बहिश्चतुरङ्गुलायामविस्तारोत्सेधं चतुरश्रं पीठं मृदा कृत्वा, तदुपरि निहितमूलद्वादशाङ्गुलदीर्घोत्तरोत्तरहीनपरिणाहमध्यमेखलासंलग्नरन्ध्रनालयुतां मूले कुम्भद्वययुक्तां मध्ये सगर्भामुपरितनमेखलोपरिगतामष्टाङ्गुलमानमूलां तत्प्रदेशादुभयपार्श्वतः क्रमेण सङ्कुचितामेकाङ्गुलविस्ताराग्रां द्वादशाङ्गुलमानायामामेकाङ्गुलोत्सेधमेखलायुक्तामश्वत्थपत्राकारां मूलात्किञ्चित् क्रमान्निम्नामीषत्कुण्डप्रविष्टाग्रां योनिं कुर्यात्। अथ कुण्डमध्यस्थहंसपदावलम्बेन प्रतिदिशं चतुरङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनः षडङ्गुलमानेन च वृत्तं कृत्वा तद्वृत्तं कर्णिकां च परिकल्प्य, वृत्तद्वयान्तरालवीथ्यामष्टदलानि कृत्वा षडङ्गुलोच्चनाभिं कुर्यात्।। इति चतुरस्रकुण्डनिर्माणविधिः।।

अथ योनिकुण्डमाह तन्त्रराजे—

तन्मध्यपञ्चमांशेन विकास्य ब्रह्मसूत्रकम्। पूर्वतः पश्चिमद्वन्द्वकोष्ठयोर्मध्यदेशतः ।। १।।
तत्कोणमानेन तथा भ्रामयेत्पश्चिमाग्रकात्। उत्तराग्रावधि तथा दक्षिणाग्रावधि प्रिये।। २।।
तन्मध्यतिर्यक्सूत्राग्रद्वयावष्टम्भतस्तथा । विकासितब्रह्मसूत्रावधि सूत्रद्वयं भवेत् ।। ३।।
योनिकुण्डमिदं भद्रे स्याच्चतुर्षूभयात्मसु। तस्मिन्नेवान्यकुण्डानि वदामि सम[1]मानतः।। ४।।
चतुरस्राभितो या तु त्याज्या भूः सान्यतः स्थिता। लभ्यते सर्वकुण्डेषु तेन सर्वाणि सर्वतः।। ५।।
तत्समान्येव जायन्ते षण्णवत्यङ्गुलात्मना।। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं निर्माय चतुष्कोष्ठयुतस्य ब्रह्मसूत्रस्य तन्मानपञ्चमांशेन पूर्वस्यां दिशि वर्द्धयित्वा तत्कोष्ठचतुष्टयात्मकचतुरस्रस्य पश्चिमभागस्थदक्षिणोत्तरकोष्ठयोर्निर्ऋत्यादीशानान्तमाग्नेयादिवायव्यान्तं चतुष्कोणसूत्रद्वयास्फालनेन लक्षितसूत्रद्वयसम्पातनविदितमध्यदेशावष्टम्भतस्तत्कोणावधिमानेनोत्तरकोष्ठे प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रपश्चिमाग्रादिदक्षिणोत्तरतिर्यक्सूत्रोत्तराग्रावधि तद्दक्षिणकोष्ठे तत्सूत्रपश्चिमाग्रादि तत्तिर्यक्सूत्रदक्षिणाग्रावधि भ्रमादर्धचन्द्रद्वयमुत्पाद्य, तन्मध्यतिर्यक्सूत्राग्रमारभ्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्राग्रावधि सूत्रद्वयास्फालनेन योन्याकारं क्षेत्रं परिकल्प्य, तद्बहिश्च कण्ठमेखलयोर्यथोक्तमानेनोक्तयुक्त्या योनिमण्डलद्वयं निष्पाद्य, प्राग्वत् खातं कृत्वा योन्याकारमेव कण्ठमेखलादि कल्पयेदिति ''कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानां च तादृशम्। कुर्यात्सर्वेषु कुण्डेषु'' इति कुलप्रकाशवचनात्।।

अथार्धचन्द्राकारकुण्डमाह तन्त्रराजे—

तन्मध्यदशमांशं तु परित्यज्याध ऊर्ध्वतः। शेषांशांशकमानेन तन्मध्याद् भ्रामयेत् तथा।। १।।
अर्धचन्द्रकृतिर्येन भवेत् कुण्डं तदीरितम्। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं निर्माय तद्विष्कम्भमानं दशधा विभज्य तेष्वेकैकांशं प्राक्पश्चिमयोः परित्यज्य चिह्नद्वयं कृत्वा, तत्पश्चिमचिह्नात् दक्षिणोत्तरायतं तिर्यक्सूत्रं तच्चतुरस्राद्बहिरप्यंशत्रयमानेन दक्षिणोत्तरयोर्वर्द्धयित्वा तदग्रद्वयावधि तत्कल्पितपश्चिमब्रह्मसूत्रसन्धिमध्यावलम्बनेन वार्धचन्द्रनिभं मण्डलद्वयं कृत्वा प्राग्रेखामध्यगतब्रह्मसूत्रसन्धिमारभ्याष्टांशमानसूत्रभ्रमादर्धचन्द्राकारं कुण्डं भवेत्। इत्यर्धचन्द्राकारं कुण्डं निर्माय तद्बहिरप्युक्तयुक्त्या एकाङ्गुलमानेन द्वादशाङ्गुलमानेन वार्धचन्द्रनिभं मण्डलद्वयं कृत्वा प्रथमकृतमण्डलमध्ये हस्तमात्रं निम्नं खातं कृत्वा बहिः कण्ठस्थानं परित्यज्य प्राग्वन्मेखलादिकं कुर्यादिति।।

---

१. 'तव' ख. पाठः।

अथ त्रिकोणकुण्डमाह तत्रैव—

तस्यैव[१] षष्ठमंशं तु पार्श्वयोस्तु विकासयेत्। प्रत्येकं पश्चिमं सूत्रं तन्मानेनाथ सूत्रयोः।। १।।

विन्यासाद्[२]ब्रह्मसूत्रान्तं तद्द्वयाग्रावलम्बनात्। कुण्डं त्रिकोणमुदितम्। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं कृत्वा तद्ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्गत्या प्रसार्य तच्चतुरस्रविष्कम्भमानं षोढा विभज्य, तेष्वेकैकांशेन पश्चिमतिर्यक्सूत्राग्रद्वयं पार्श्वद्वयेऽपि बहिः प्रसार्य, तदग्रद्वयात् तत्सूत्रमानोपेतसूत्रद्वयस्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्रस्य च यत्र सम्पातस्तदवध्यास्फाल्य त्रिकोणकुण्डं परिकल्प्य, तद्बहिरेकांशमानेन तद्बहिर्द्वादशांश-मानेनोक्तयुक्त्या त्रिकोणद्वयं निष्पाद्य खातकण्ठमेखलादि प्राग्वत्कल्पयेदिति।।

अथ वृत्तकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्याष्टादशशांशेन प्राक्सूत्राग्रं विकासयेत्। तिर्यक्सूत्राद्बहिस्तेन मानेन भ्रमयेत्तथा।। १।।

मध्यचिह्नावलम्बेन तद्भवेद्वृत्तमण्डलम्[३]। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं क्षेत्रं साधयित्वा, तन्मध्ये विष्कम्भमानमष्टादशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानतश्चतुरस्राद्बहिर्ब्रह्मसूत्रस्थप्रागग्रं विस्तार्य[४], मध्यचिह्नमवलम्ब्य विस्तारितब्रह्मसूत्राग्रमानेन परितो भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनश्चतुरस्रस्य चतुर्विंशमानेन कण्ठार्थं वृत्तं कृत्वा, तद्बहिः पुनर्द्वादशाङ्गुलमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, प्रथमकृतवृत्तमध्ये हस्तमात्रं निम्नं खातं कृत्वा कण्ठवृत्ताद्बहिर्द्वादशाङ्गुलान्तरालं वीथ्यां प्राग्वन्मेखलात्रयं योन्यादिकं रचयेदिति।। अत्र वृत्तकुण्डे योनिर्नास्तीति कश्चित्[५], तन्न योनिकुण्डे योनिः, पद्मकुण्डे नाभिश्च नास्तीति तान्त्रिकसिद्धान्तः।।

अथ षडस्रकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्यषोडशांशेन विकास्य ब्रह्मसूत्रकम्। तेन मानेन च तथा कृत्वा वृत्तमतिस्फुटम्।। १।।

तद्वृत्ते वृत्तमध्यस्य कुर्यादर्धेन लाञ्छनम्। तत्र षट्सूत्रपातेन भवेत् कुण्डं षडस्रकम्।। २।।

इति।। अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं विधाय, तन्मध्यामानं षोडशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं विकाश्य, तन्मानेन चतुरस्रमध्यस्थहंसपदमध्यावलम्बेन भ्रमाद्वृत्तं निष्पाद्य, तन्मध्यविष्कम्भमानार्धेन तन्मध्यतिर्यक्सूत्रदक्षिणाग्रादिपरितो वृत्ते चिह्नषट्कं विधाय, तत्र चिह्नात् चिह्नं ज्यारूपं सूत्रषट्कमास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनेन षट्कोणकुण्डक्षेत्रं निष्पाद्य, तद्बहिरेकांशतो द्वादशांशतश्चोक्तयुक्त्या षट्कोणद्वयं निष्पाद्य खातादीनि प्राग्वत् कल्पयेदिति।।

अथ पद्मकुण्डमाह लक्षणसङ्ग्रहे—

चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं विभजेदष्टधाम्बिके। अष्टमांशप्रमाणेन कर्कटेन तु मध्यतः।। १।।

वर्तुलं भ्रामयेत्सेयं कर्णिका केसराः पुनः। अष्टमांशद्वयेनैव मध्यतो वर्तुलं भवेत्।। २।।

तृतीयेनाष्टमांशेन पत्राणां मध्यभूर्मता। चतुर्थं तु भवेत् क्षेत्रं व्यासतुल्येन च भ्रमात्।। ३।।

चतुर्विंशतिधा भक्त्वा ब्रह्मसूत्रं वरानने। तस्यैकं भागमादाय भक्त्वा[६] षोडशधा पुनः।। ४।।

पञ्चभिः षोडशैर्भागैर्न्यूनं पञ्चकमष्टकम्। भागमादाय तद्बाह्ये पञ्चमं मण्डलं शिवे।। ५।।

---

१. 'तत्रैव' क. पाठः। २. 'विन्यसेद् ब्रह्मसूत्रं तु द्वयाग्रावधिलम्बनात्' क. ग. पाठः। ३. 'तत्कुण्डकं' ख. पाठः।
४. 'निःसार्य' ख. पाठः। ५. 'केचित्' ग. पाठः। ६. 'भङ्क्त्वा' ग. पाठः।

मध्यतो भ्रामयेत् सर्वै: पत्राणामग्रभूर्मता। शास्त्रोक्तविधिना देवि तत: पद्मं समालिखेत्।। ६।।
बाह्यवृतान्तरालं यत्तन्मानं[1] केसराग्रत:। तन्मानं कर्कटं कृत्वा केसराग्रे विधाय[2] च।। ७।।
गुरूपदिष्टमार्गेण षोडशार्धनिशाकरान्। लिखिता कृतिहस्तेन पत्राग्राणि समालिखेत्।। ८।।
कर्णिकाव्यासमानेन परित्यज्य तदुच्चताम्। निखनेदवशिष्टं तु केसराणां च मण्डलम्।। ९।।
खनेदन्तस्तथाकारं कुर्वन् पत्रभुवं खनेत्। पत्राकारा यथा सम्यग्जायन्ते परमेश्वरि।। १०।।
पद्मकुण्डमिति प्रोक्तम्। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकार:— तत्र प्राग्वच्चतुरस्रीकृतं क्षेत्रमष्टधा विभज्य, तनमध्यचिह्नावलम्बेन परितस्तेष्वेकांशमानेन कर्णिकार्थं वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्यंशद्वयमानेन केसरार्थं वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरप्यंशत्रयमानेन तद्दलार्थं वृत्तं विरच्य, तद्बहिरप्यंशचतुष्टयमानेन वृत्तं भ्रामयित्वा, तद्बहिरपि सार्धषड्यवमानेन चतुरस्रक्षेत्राद्बहि: वृत्तमेकं भ्रामयेदिति वृत्तपञ्चकं कृत्वा, द्वितीयवृत्तपञ्चमवृत्तयोरन्तरालमानकर्कटेन केसरवृत्ताग्रात् सर्वबाह्यवृत्तस्पृष्टशृङ्गद्वयाग्रकान् षोडशार्धचन्द्रान्निष्पाद्य साग्राण्यष्टदलानि कृत्वा, तन्मध्यकर्णिकावृत्तं विहाय केसराणि कर्णिकां परित: प्रकाशयत् केसरवृत्तं दलमध्यवृत्तं च सम्यक् खनित्वा, चतुर्थपञ्चमवृत्तयोर्दलानि साग्राणि यथा भवन्ति चतुरस्रकुण्डस्य विस्तारायामखातसमानक्षेत्रफलवत् क्षेत्रफलं च यथा भवति तथा गुरूक्तयुक्त्या खननं विधाय बहि: पद्माकारेणैव कण्ठमेखलादिकं कुर्यादिति।।

अथाष्टास्रकुण्डमाह तन्त्रराजे—

"तन्मध्यस्य चतुर्विंशमाने बाह्येऽपि पूर्ववत्। विधाय चतुरस्रं तु पूर्वकोणार्धमानत:।। १।।
कोणादभित एवास्य कृत्वा चिह्नानि चाष्ट वै। तेषु चिह्नेषु कृत्वाष्टसूत्राणि परित: शिवे।। २।।
कुर्यादष्टास्रकं कुण्डं" इति।। अथैतत्कुण्डरचनाप्रकार:— तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं विधाय तन्मध्यसूत्रमानं चतुर्विंशतिधा विभज्य, तेष्वेकांशमानं तद्बहि: प्रतिदिशं प्रसारितसूत्राग्रे पूर्ववच्चतुरस्रं प्रोक्तक्रमेण विधाय, तत्र पूर्वचतुरस्रस्थकोण-सूत्रस्यार्धमानेन बाह्यचतुरस्रे कोणचतुष्टयव्यत्यासावष्टम्भादुभयत: प्रतिरेखं चिह्नद्वयं क्रमात्सम्भूयाष्टचिह्नानि कृत्वा, चिह्नात् चिह्नं प्राग्वत्सूत्राष्टकमास्फाल्य तद्बहिर्गतकोणमार्जनादष्टाश्रं कुण्डं भवति। इत्थमष्टाश्रकुण्डक्षेत्रं परिकल्प्य खातकण्ठमेखलादिकं यथावत्कुर्यादिति दीक्षायामष्टौ कुण्डानि कार्याणि।।

अथ प्रसक्त्या काम्यहोमार्थं पञ्चाश्रसप्ताश्रकुण्डयोरपि लक्षणमुच्यते। तत्रादौ पञ्चास्रकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्यसप्तमांशेन ब्रह्मसूत्रं विकास्य तत्। मानेन परितो भ्रान्त्या कृत्वा वृत्तं यथा तत:[3]।। १।।
तत्त्र्यंशमानात् तद्वृत्ते कृत्वा चिह्नानि तत्र वै। पातयेत् पञ्च सूत्राणि तत् स्यात्पञ्चास्रकुण्डकम्।।२।।
इति।। अथैतत्कुण्डरचनाप्रकार:— तत्र प्राग्वच्चतुरस्रक्षेत्रं कृत्वा तन्मध्यमानस्य सप्तमांशेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्विकाश्य, तन्मानेन तच्चतुरश्रमध्यस्थहंसपदालवम्बनेन भ्रमाद् वृत्तं निष्पाद्य, तच्चतुरश्रमध्यसूत्रं चतुर्धा कृत्वा तेष्वंशत्रयेण अंशत्रयेण तद्वृत्तं ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादिपरित: पञ्च चिह्नानि विधाय, तत्र चिह्नात् चिह्नं ज्यारूपाणि पञ्च सूत्राण्यास्फाल्य तत्तच्चाप(रूप)वृत्तखण्डमार्जनात् पञ्चाश्रकुण्डं भवति। इत्थं पञ्चाश्रकुण्डक्षेत्रं परिकल्प्य, तद्बहिरपि प्रोक्तयुक्त्या कण्ठमेखलार्थं पञ्चास्रद्वयं परिकल्प्य खातादिकं कुर्यादिति।।

अथ सप्तास्रकुण्डमाह तत्रैव—

१. 'नके' ख. पाठ:। २. 'निधाय' ग. पाठ:। ३. 'यथा च तत्' क. पाठ:।

"तन्मध्यदशमांशेन विकाश्य ब्रह्मसूत्रकम्। तेन मानेन सम्भ्रान्त्या कृत्वा वृत्तं तथा ततः।। १।।
तच्चतुष्षष्टिभागेषु त्रयस्त्रिंशांशमानतः। वृत्ते विधाय चिह्नानि सप्त सूत्राणि पातयेत्।। २।।

तत्सप्तास्रं भवेत्कुण्डम्" इति।। अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— तत्र प्राग्वत्समचतुरस्रं कृत्वा तन्मध्यमानं दशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानेन ब्रह्मसूत्रं बहिर्विकाश्य तन्मानेन तच्चतुरस्रमध्यस्थहंसपदमवष्टभ्य वृत्तं कृत्वा, तच्चतुरस्रमध्यसूत्रप्रमाणं चतुष्षष्टिधा विभज्य, तेषु त्रयस्त्रिंशदंशमानेन ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादारभ्य वृत्ते सप्त चिह्नानि कृत्वा चिह्नाच्चिह्नं ज्यारूपेण सप्त सूत्राण्यास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनादेतत्सप्तास्रं कुण्डं भवेदिति।। इति दशविधकुण्डनिर्माणप्रकारः।। अत्र दीक्षायामष्टौ कुण्डानि प्रागाद्यष्टदिक्षु नवममाचार्यकुण्डं चतुरस्रमेवेन्द्रेशानयोर्मध्ये कुर्यादिति सम्भूय नव कुण्डानि कार्याणि। अष्टकुण्डकरणाशक्तौ प्रागादिचतुर्दिक्षु चतुरस्रार्धचन्द्रवृत्तपद्माख्यानि चत्वार्येव कुण्डानि कुर्यात्। अत्राप्यशक्ताविन्द्रेशानयोर्मध्ये चतुरस्रमाचार्यकुण्डमेकमेव कुर्यादिति।। अथैतेषां कुण्डानां काम्यहोमेषु कुण्डभेदेन फलभेदः। तत्र कुलप्रकाशतन्त्रे—

चतुरस्रे स्तम्भनं स्यात्सर्वसिद्धिकरं च तत्। भोगाः पुत्रा योनिकुण्डे ह्यर्धचन्द्रे शुभावहम्।। १।।
मारणे केचिदिच्छन्ति त्रिकोणं द्वेषकारकम्। रिपुघातकरं केचिद्वृत्तं शान्तिकरं जगुः।। २।।
षट्कोणमुच्चाटमृतिभेदेषु सुविशिष्यते। वृष्टिदं पुष्टिदं वापि पद्मकुण्डं विदुर्बुधाः।। ३।।
अष्टकोणं तु मुक्तौ स्यादरोगेऽपीति केचन। पञ्चकोणं चाभिचारशमने भूतकृन्तने।। ४।।
सप्तास्रमेव विज्ञाय काम्यकर्माणि साधयेत्।। इति।

अथ वर्णभेदेन कुण्डभेदः। कुलमूलावतारे—

वर्णानामादितः कुण्डान्युक्तानि क्रमतः शिवे। चतुरस्रं वृत्तमर्धचन्द्रं त्र्यस्रमिति क्रमात्।। १।।
सर्वेषां चतुरस्रं वा दीक्षायामुत्तमं शिवे। इति।

अथ वेदिकापरितः कुण्डनिर्माणे विशेषमाह तन्त्रराजे—

कुण्डान्यष्टौ चतुष्कं च तेषां रूपं च नामकम्[१]। निर्माणं सकलं वक्ष्ये यथाविधि तवानघे।। १।।
तुलाकुलीरमेषाणां मकरस्य च देशतः। विदध्याद् वृत्तकुण्डानि चरराशिचतुष्टये।। २।।
वृषे सिंहे वृश्चिके च कुम्भे च स्थिरराशिषु। विदध्याच्चतुरस्राणि ततः कुण्डान्यनुक्रमात्।। ३।।
मिथुने कन्याकायां च चापे मीने क्रमेण वै। उभयात्मसु कुर्वीत योनिकुण्डानि मङ्गले।। ४।।
अमङ्गलेषु कुर्वीत चरेष्वर्धशशाङ्ककम्। स्थिरेष्वपि त्रिकोणानि परेषु तु चतुष्टये।। ५।।
पञ्चास्रं च षडस्रं च सप्तास्रं चाष्टकोणकम्। इति।

राशिस्थितिमाह तत्रैव—

प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा। कुलीरसिंहावथ तन्निर्ऋत्यां कन्यका तथा।। १।।
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम्। नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनमीशे तु संस्थितम्।। २।।

इति।। अथ कुण्डस्वरूपं तद्वासना च, प्रथमतन्त्रे—

---

१. 'मानकं' क. पाठः।

परं शरीरं प्रकृतेः कुण्डरूपं पुरः शिरः। याम्यसौम्यकरौ कुण्डमुदरं पश्चिमे तथा।। १।।
योनिश्च चरणौ प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु शाम्भवि। इति।

अथ होमसंख्याभेदेन कुण्डमानभेदस्तत्र लक्षसागरे—

पञ्चाशत्प्रमिते होमे कुण्डं रत्निमितं भवेत्। अरत्निमात्रं तु शते सहस्रमितहोमके।। १।।
चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं द्विहस्तमयुते मतम्। चतुर्हस्तमितं लक्षे षट्करं दशलक्षके।। २।।
कोटिहोमे चाष्टहस्तं कुण्डं कुर्यान्महेश्वरि। इति।

प्रकारान्तरं च तत्रैव—

एकलक्षं समारभ्य यावत्स्याद् दशलक्षकम्। तथैकहस्तमारभ्य दशहस्तं विवर्द्धयेत्।। १।।
कोट्यां दशकरं कुण्डं प्रशस्तं परमेश्वरि। इति।

एतत्पत्रपुष्पकेवलघृतहोमेष्विति ज्ञेयम्। तत्रातिविस्तारस्य प्रयोजनाभावात्।। अथैतेषां द्विहस्तादिकुण्डविशेषाणां मानाङ्गुलक्षेत्रफलानि लक्षसागरे—

फलाङ्गुलानि यावन्ति हस्तक्षेत्रे भवन्ति हि। द्विहस्तस्य च कुण्डस्य ततो द्वैगुण्यमिष्यते।। १।।
हस्तक्षेत्राङ्गुलान्यत्र षट्सप्तत्या सहैव च। शतानि पञ्च विद्यन्ते तन्मूलं ब्रह्मसूत्रकम्।। २।।
चतुर्विंशत्यङ्गुलानि विदध्याद्विधिवत्पुनः। अङ्गुलानि द्विपञ्चाशदेकादशशतानि च।। ३।।
तद्बीजं मध्यतो लिक्षाचतुष्टकं चार्धसंयुतम्। चतस्रश्च तथा यूका यवाः सप्त तथैव च।। ४।।
अङ्गुलानि त्रयस्त्रिंशन्मानं सूत्रे तु मध्यमे। सप्तदशशतान्यष्टाविंशतिस्त्वङ्गुलानि च।। ५।।
क्षेत्रस्य तु त्रिहस्तस्य मानमेतदुदीरितम्। तन्मूलमङ्गुलान्येकचत्वारिंशच्चतुर्यवाः ।। ६।।
यूकाचतुष्टयं किञ्चिन्न्यूनं लिक्षाचतुष्टयम्। चतुरङ्गुलयुक्तानि त्रयोविंशच्छतानि च।। ७।।
चतुर्हस्तस्य कुण्डस्य मानमेवमुदीरितम्। मूलं तस्याङ्गुलान्यष्टचत्वारिंशन्मितं भवेत्।। ८।।
ब्रह्मसूत्रं ततः पञ्चहस्तक्षेत्राङ्गुलानि तु। द्विसहस्रं शतान्यष्टावशीतिर्बीजमुच्यते।। ९।।
षट्पञ्चाशदङ्गुलानि चतुस्त्रिंशच्छतानि च। तन्मूलमष्टपञ्चाशदङ्गुलानि च षड्यवाः।। १०।।
किञ्चिद्भागादिकं यूकाद्वयं सप्तकरस्य च। वेदसंख्यासहस्राणि द्वाविंशत्सहितानि च।। ११।।
मूलं चतुर्यवैः साकं त्रिषष्टिरङ्गुलानि च। ब्रह्मसूत्रं ततश्चाष्टहस्तक्षेत्राङ्गुलानि च।। १२।।
वेदसंख्यासहस्राणि साष्यानि षट्शतानि च। अङ्गुलानि तथा सप्तषष्टिः सप्त यवाः पुनः।।१३।।
किञ्चिदूनं मूलमस्य नवहस्तेषु दृश्यते। शतानि त्वेकपञ्चाशच्चतुर्भिरधिकानि च।। १४।।
अशीतिरङ्गुलान्यत्र क्षेत्रं मानमितं भवेत्। द्वासप्ततिरङ्गुलानि मूलमस्य प्रकीर्तितम्।। १५।।
पञ्चाङ्गुलानि क्षेत्रस्य दशहस्तमितस्य च। सहस्राणीषुसंख्यानि मुनिसंख्यशतानि च।। १६।।
षष्टिश्च कथितान्यस्य तन्मूलं ब्रह्मसूत्रकम्। वर्धयेत् पञ्चसप्तत्याधिकैः सप्तयवैस्तथा।। १७।।
अस्याधिकाभ्यां लिक्षाभ्यां साकमेवं प्रकल्पयेत्। अतियत्नं समास्थाय कुण्डान्यारचयेत् सुधीः।।१८।।
द्विहस्तादिमितानां च निर्माणं दुर्घटं शिवे। इति।

अतियत्नमिति—अत्र त्रसरेण्वादिदशपर्यन्तान् मानभेदान् सम्यग्ज्ञात्वा तत्कुण्डविस्तारायामसमाननिम्नखातं यथोक्तमानकण्ठमेखलादिकं च कुर्यादित्यर्थः। दुर्घटं चातियत्नसाध्यत्वात्। त्रसरेण्वादिमानभेदास्तु लक्षणसङ्ग्रहे—

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः। प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते।। १।।
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो ह्यष्टौ स्युः परमाणवः। त्रसरेणुरष्टगुणो रथरेणुस्तु संस्मृतः।। २।।
रथरेणवस्तु ते ह्यष्टौ बालाग्रं तन्मतं बुधैः। बालाग्राण्यष्ट लिक्षा तु यूका लिक्षाष्टकं स्मृतम्।। ३।।
अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम्। रत्निरङ्गुलिपर्वाणं विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः।। ४।।
कर एव कलांशेन हीनोऽरत्निरुदाहृतः। चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु।। ५।। इति।

अथास्य कुण्डविस्तारायामसमाननिम्नखातकरणे मेखलादीनां च प्रमाणवचनानि। तथा च—

विंशत्या चतुराधिकाभिरङ्गुलीभिः सूत्रेणाप्यथ परिसूत्र्य भूमिभागम्।
ताभिश्च प्रखनतु तावतीभिरेकां त्यक्त्वा चाङ्गुलिमपि मेखलाश्च कार्याः।। १।।

इति प्रपञ्चसारवचनात्।। "यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्"। इति शारदावचनात्। "कुण्डविस्तारवन्निम्न"-मिति वायवीयसंहितावचनात्।

चतुरस्रं चतुष्कोष्ठं सूत्रैः कृत्वा यथा पुरा। हस्तमानेन तन्मध्ये तावन्निम्नायतं खनेत्।। १।।

इति दिव्यसारस्वतप्रयोगसारवचनात्। "चतुर्विंशाङ्गुलायामं तावत्खातसमन्वितम्।" इति गणेश्वरपरामर्शिनीवचनात्। "चतुर्विंशतिसंख्याभिरङ्गुलीभिः सविस्तृतम्। खातं च रचयेत्कुण्डं" इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनाच्च कुण्डं विस्तारायामसमाननिम्नखातं कर्तव्यमिति सिद्धान्तः।। अत्र केचित्— "हस्तमात्रं खनेत् तिर्यगूर्ध्वमेखलया सह"। इति होमसारवचनात्। "पञ्चत्रिमेखलोच्छ्रायं ज्ञात्वा शेषमधः खनेत्"। इति प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहवचनात्। "व्यासात् खातकरः प्रोक्तो निम्नस्तिथ्यङ्गुलेन तु।" इति विश्वकर्मवचनात्। "कुण्डं निजाङ्गुले तिर्यगूर्ध्वमेखलया सह"। इति प्रथमतन्त्रे वचनात्। "खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वमेखलया सह।" इति सिद्धान्तशेखरवचनाच्च मेखलया सह हस्तमानं खातं वदन्ति, एतन्न रम्यं मेखलयानुगमनेन खातस्याप्यनुगमनप्रसङ्गात्। "खातं कुण्डायतेस्तुल्यमङ्गत्वं तस्य कीर्तितम्। सन्निपत्योपकारेण मेखलादेर्विशिष्यते।।" इति योगिनीहृदयवचनात् सन्निपत्योपकारस्य खातस्यारादुपकाराङ्गमेखलया सह निर्वाहानौचित्यात् तथोक्तपक्षस्यैव नियुक्तत्वात्।। किञ्च—

मध्यमाङ्गुलिमध्यस्थपर्वणः परिणाहतः। तृतीयांशो भवेदत्र तन्त्रे सर्वत्र चाङ्गुलिः।। १।।
तैश्चतुर्भिर्भवेन्मुष्टिर्वितस्तिस्तत्त्रिभिर्गुणैः। अरत्निस्तद्द्वयेन स्याद्धस्तस्तद्द्वयतः शिवे।। २।।
तद्द्वयं तु भवेद्व्यामस्तन्माना स्यान्नरोन्नतिः। षणवत्यङ्गुला सा स्यात् तन्मानैः कुण्डकल्पनम्।।३।।

इति श्रीतन्त्रराजवचनात् कुण्डस्य षण्णवत्यङ्गुलायामविस्तारस्यावश्यकत्वात्, पञ्चदशाङ्गुलखातपक्षे खातमध्यादारभ्य मेखलोर्ध्वपर्यन्तस्य द्वादशपञ्चदशनवेति षट्त्रिंशदङ्गुलमात्रदर्शनात् तस्य पार्श्वद्वयेऽपि द्वैगुण्येन द्वासप्तत्यङ्गुलमात्रया चतुर्विंशत्यङ्गुलस्य तृतीयांशस्य न्यूनत्वाद्, द्वादशाङ्गुलोच्चमेखलासहितहस्तमात्रखाते तु पार्श्वद्वयेऽपि मध्यप्रदेशाद् द्वादशचतुर्विंशतिर्द्वादशेति गणनयाष्टाचत्वारिंशद्द्वैगुण्येन षण्णवतिरिति प्रोक्तसंख्यापरिपूर्णत्वात् हस्तमात्रखात-युक्तद्वादशाङ्गुलोच्चमेखलापक्ष एव ज्ञेयानिति। एकाङ्गुलविस्तारस्य कण्ठस्य विद्यमानत्वात् पार्श्वद्वयेऽपि तद्ग्रहणेन व्यङ्गुलविस्ताराधिक्यात् षण्णवत्यङ्गुलायामत्वं कुण्डस्यानुपपन्नमिति चेन्न कण्ठस्यानावश्यकत्वात्। अत एव

तन्त्रराजे कण्ठो नोक्त:। तर्हि कण्ठाकरणेऽपि दोष: श्रूयते। सत्यं तस्य तन्त्रराजविरोधादेव न्यूनमेखलान्यूनखातपरत्वं कल्पनीयमिति। तस्मान्मेखलया सह खातप्रतिपादकवचनानि रत्न्यरत्न्यादिषु कुण्डेषु पञ्चाशदादिहोमविधानेन खाताधिक्यप्रयोजनाभावात् तद्विषयकाणि, इति मन्तव्यानि। अथात्र "मेखला: पञ्च वा कार्या: षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकै:।" इति लक्षणसङ्ग्रहवचनात्। "षड्बाणाब्धिवह्निनेत्रमिता: स्यु: पञ्च मेखला:।" इति सिद्धान्तशेखरवचनाच्च पञ्च वा मेखला: कार्या:।।

तथा पिङ्गलामते –

षष्ठांशेनाष्टमांशेन मेखलाद्वितयं मतम्। एका षडङ्गुलोत्सेधविस्तरा मेखला मता।। १।। इति।

अथ कुण्डानामयथाकरणे दोषा भवन्तीत्याह वशिष्ठ: –

अनेकदोषदं कुण्डमत्रं न्यूनाधिकं यदि। तस्मात्सम्यक् परीक्ष्यैवं कर्तव्यं शुभमिच्छता।। १।। इति।

तत्र दोषानाह विश्वकर्मा –

खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षय:। वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले।। १।।
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षय:। भार्याविनाशकं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम्।। २।।
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम्। इति।

तथा क्रियासागरे–

न्यूनाधिकप्रमाणं यत्कुण्डं जर्जरमेखलम्। शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत्।। १।। इति।

तथा जयद्रथयामले–

सूत्राधिके सुहृद्द्वेषो मानहीने दरिद्रता। वाग्रोध: कण्ठहीने स्यादसिद्धिर्न्यूनखातके।। १।।
अधिके चासुरभोगो मानेनाधिकमेखले। व्याधय: सम्प्रवर्तन्ते वियोनौ स्यादपस्मृति:।। २।।
उच्चाट: स्फुटिते छिद्रसङ्कुले वाच्यता भवेत्। इति।

इत्थं निन्दाश्रवणाद् यथोक्तलक्षणसम्पन्नानि सर्वाणि कुण्डानि कार्याणि इति।। अथ कण्ठ:। तत्र वशिष्ठ:– "कण्ठोऽष्टयवमात्र: स्यात् कुण्डे तु करमात्रके"। इति।। तथा कालोत्तरे–

खाताद्बाह्योऽङ्गुल: कण्ठ: सर्वकुण्डेष्वयं विधि:। चतुर्विंशतिकं भागमङ्गुलं परिकल्पयेत्।। १।।

इति।। अथ योनि: वायवीयसंहितायाम्–

मेखलामध्यत: कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा। योनिं सुशोभनां किञ्चिन्निम्नामुन्नालिकां शनै:।। १।।
अग्रेण कुण्डाभिमुखीं किञ्चिद[2]स्पृष्टमेखलाम्। कुम्भद्वयसमायुक्तामश्वत्थदलसन्निभाम्।। २।।

इति।। तथा च वसिष्ठसंहितायाम्–

योनिश्च मध्यमे भागे प्राङ्मुखी मध्यसंस्थिता। अष्टाङ्गुलैश्च विस्तीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलै:।। १।।
पृष्ठोन्नता गजोष्ठी च सच्छिद्रा मध्यतोन्नता। इति।

सच्छिद्रा मध्ये। "मध्ये त्वाज्यधृति: स्मृता" इति त्रैलोक्यसारवचनात्, आज्यधृतिरिति योनिमध्ये गर्तं कर्तव्यमित्याहु: साम्प्रदायिका:।। तथा लक्षणसङ्ग्रहे–

१. 'झर्झर' क. ग. पाठ:। २. 'दुत्स्पृष्ट' ग. पाठ:।

ईषत्कुण्डप्रविष्टाग्रा जिनांशकृतमेखला[१]। मेखलार्थं पृथग्भूमिर्न ग्राह्या बाह्यतः प्रिये।। १।।

इति। "योनिक्षेत्रे तु सा कार्या" इति नारदः। "कुण्डे त्र्यंशेन विस्तारा योनिरुच्छ्रायतोऽङ्गुला। कुण्डार्धेन तु दीर्घा स्यात्।" इति। तथा त्रैलोक्यसारे– "दैर्घ्यात् सूर्याङ्गुला नालत्र्यंशोना विस्तरेण तु। एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु"। इति नालत्र्यंशोनाष्टाङ्गुलविस्तारा नालस्य द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यादिति। स्वायम्भुवेऽपि– "मेखलामध्यतो योनिः कुण्डार्धा त्र्यंशविस्तृता" इति। विस्तारो मूलदेशे पिप्पलपत्राकृतित्वात्, द्विहस्तादिकुण्डेष्वनया रीत्या तत्तत्कुण्डार्धदीर्घा तत्तत्तृतीयांशविस्तारा तत्तच्चतुर्विंशांशोच्चा च योनिः कार्या।।

तदुक्तं सोमशम्भौ–

कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोऽङ्गुलसंज्ञकः। विभज्य तेन कर्तव्या मेखलाकण्ठनाभयः।। १।।

इति। सिद्धान्तशेखरेऽपि– "चतुर्विंशतिमो भागः कुण्डानामङ्गुलं स्मृतम्।" इति। "दीर्घार्कपर्वभिर्योनिर्विस्तारेण षडङ्गुला। उन्नतिर्द्व्यङ्गुलेनोना स्यात्"। इत्युक्तम्। अत्राष्टाङ्गुलषडङ्गुलयोरेकाङ्गुलद्व्यङ्गुलयोश्च विकल्पः। तथा "होतुरग्रे योनिरासामुपर्यश्वत्थपत्रवत्"। इति शारदावचनाद् योनिः सर्वत्र होतुरग्रे प्रोक्तविधिना स्थाप्येति। तत्र चतुष्कुण्डपक्षे चतुरस्रे अर्धचन्द्रे कुण्डे च योनिर्दक्षिणभागस्थमेखलोपरि स्थाप्या तयोर्होत्रोरुत्तराभिमुखत्वात्। अन्यकुण्डयोः पश्चिममेखलोपरि योनिः स्थाप्या तयोर्होत्रोः पूर्वाभिमुखत्वात्।

दक्षस्था पूर्वयाम्ये तु जलस्था पश्चिमोत्तरे। पञ्चमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षिणदिक्स्थिता।। १।।

इति त्रैलोक्यसारवचनात्। पञ्चमस्याचार्यकुण्डस्येत्यर्थः। अत्र कुण्डपक्षे तु– "प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी। शेषाणां प्राङ्मुखी प्रोक्ता" इति तन्त्रान्तरवचनात् पूर्वाग्नेययाम्येषु उदङ्मुखी योनिरन्येषु प्राङ्मुखी नवमस्य तु प्राग्वदेव। एतेन योनिकुण्डेऽपि योनिः कर्तव्येति केचित्। तन्न "योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं च वर्जयेत्"। इति विश्वकर्मवचनात्। आसां मेखलानां नालमुक्तं तन्त्रराजे– "बहिःस्थमेखलामध्यादारभ्य निजनालकम्। वितस्तिमात्रकम्" इति। बहिःस्थमेखलामध्यात् तन्मध्यगतचतुरस्रपीठादित्यर्थः। तथैव तट्टीकाकृता मनोरमाकारेण व्याख्यातत्वात्। आचार्यचरणैस्तु– "योनिस्तत्पश्चिमायामथ दिशि चतुरस्रस्थलारब्धनाला" इत्युक्तं, तत्र पद्मपादाचार्यैः– मेखलात्रयाद्बहिश्चतुरङ्गुलायामविस्तारं कृत्वा तत्र नालं स्थाप्यमिति व्याख्यातम्। वितस्तिमात्रं द्वादशाङ्गुलमात्रम्।। प्रयोगसारे तु–

योन्याः पश्चिमतो नालमायामे चतुरङ्गुलम्। त्रिद्व्येकाङ्गुलविस्तारं क्रमान्न्यूनाग्रमिष्यते।। १।।

इति चतुरङ्गुलमानेन नालमुक्तम्। एतच्चतुरङ्गुलषडङ्गुलादि स्वल्पमेखलापक्षे ज्ञेयम्।। नाभिमाह तन्त्रराजे–

नाभिं कुर्यात्तु सर्वत्र कुण्डमध्ये विधानतः। अष्टच्छदं सरोजं तु विदध्याच्चारुविग्रहम्।। १।।
चतुर्भिरङ्गुलैः कुर्यात् कर्णिकां दलमेव च। विस्तारादपि चोत्सेधं षड्भिः षड्भिरुदाहृतम्।।२।।

इति।। शारदायाम्–

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभम्। तत्तत्कुण्डानुरूपं वा मानमस्य निगद्यते।। १।।
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेधतारतः। द्वित्रिवेदाङ्गुलोपेतः कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्।। २।।
यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः। नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्त्वा ततः कुर्वीत कर्णिकाम्।। ३।।
बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत्।

---

१. 'मध्ये................जिनांशकृत्' क. पाठः।

इति नाभिलक्षणमुक्तं तत्र यथारम्यं ज्ञेयम्। ''आतपे क्षत्रिये नाभिः प्राण्यङ्गेऽपि द्वयो''रिति नाभिशब्दः पुंलिङ्गेऽप्यस्ति।।

अथ वास्तुपूजा। तत्र श्रीतन्त्रराजे—

चतुरस्राकृतिः कश्चिदसुरः सर्वनाशकः। पुरा तस्य वधायैव सर्वे देवाः समुद्यमम्।। १।।
कृत्वा निहन्तुमुद्युक्तास्तैरवध्योऽभवद्वरात्। आवयोस्तन्निरासाय मामेत्याकथयंस्तथा।। २।।
कथयास्माकमधुना तद्वास्तुपुरुषस्य तु। दर्पशान्तिर्न चेदस्य[1] विश्वमासीदुपद्रुतम्।। ३।।
इत्युक्तं तैर्मया प्रोक्तं निधनं तस्य दुःशकम्। खात्वा तमवनौ तस्य शरीरे स्थापये[2]त्तथा।। ४।।
नित्यशश्च त्रिपञ्चाशन्निःस्पन्दाक्रमणाय वै। नियोज्य तेषां ये पूजाविमुखास्तैः कृतानि तु।। ५।।
सुकृतानि समादध्युर्दुष्कृतानि च कुर्वते। तस्मात्तेषामर्चनं तु प्रत्यब्दं कुर्वतां सदा।। ६।।
शुभान्येवाशु जायन्ते नाशुभानि कदापि च। इति।

तच्चक्रादिकमाह—

तच्चक्रादिविधानं तु यथावदभिधीयते। कृत्वा समतलां भूमिं चतुरस्राकृतिं शुभाम्।। १।।
अष्टाष्टकोद्यतपदां कोणसूत्रसमन्विताम्। चतुष्पदयुते तस्यां मध्यकोष्ठे च देशिकः।। २।।
ब्रह्माणमर्चयेत्तत्र चतुष्पदयुते पुनः। प्रादक्षिण्येन पूर्वादि यजेत् कोष्ठचतुष्टये।। ३।।
अर्यकं[3] च विवस्वन्तं मित्रमन्यं महीधरम्। कोणार्धकोष्ठयोरेकमेकं मन्त्री समर्चयेत्।। ४।।
वह्न्यादीशान्तमभितो वक्ष्यमाणेष्वनुक्रमात्। सावित्रः सविता शक्र इन्द्रजिद्रुद्रतञ्जितौ।। ५।।
आपापवत्सकौ चेति प्रोक्तास्तेऽष्टौ तु नामतः। कोणर्धकोणपार्श्वेषु वह्न्यादीशान्तमर्चयेत्।। ६।।
शर्वं गुहं चार्यमणं जम्भकं पिलिपिच्छकम्[4]। चरकिं च विदारिं च पूतनां चैव देशिकः।। ७।।
ततः पूर्वादिपरतो यजेदष्टौ दिशं प्रति। ईशानश्चा(थ पर्जन्यो जयन्तः शक्रभास्करौ।। ८।।
सत्यो वृषोऽन्तरिक्षश्च पूर्वाशाकोष्ठगाः क्रमात्। अग्निः पूषा च वितथो यमोऽथ गृहरक्षकः।। ९।।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणकोष्ठगाः। निर्ऋतिश्च) तथा दौवारिकः सुग्रीवकस्तथा।। १०।।
वरुणः पुष्पदन्तश्चासुरः शोषाख्यरोगकौ। पश्चिमाशास्थकोष्ठेषु पूज्या एते यथाक्रमम्।। ११।।
वायुर्नागस्तथा मुख्यः सोमो भल्लाटकस्तथा। अर्गलो दितिरप्येवमदितिश्च यथाक्रमम्।। १२।।
कोष्ठेषूत्तरसंस्थेषु देवा एते समीरिताः। चित्रै रजोभिरापूर्य देवतानां पदानि वै।। १३।।
व्रीहिमुद्गयवैः क्षौद्रघृतदुग्धाप्लुतैः क्रमात्। अष्टोत्तरशतं चाष्टोत्तरविंशतिमेव वा।। १४।।
प्रत्येकं तद्धुनेद् द्रव्यैर्मन्त्रैस्तद्वच्च पायसैः। बलिं च तेषां कुर्वीत पायसैर्व्यञ्जनान्वितैः।। १५।।
ससितैर्दुग्धकदलीफलापूपादिसंयुतैः। इति।

अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः—पूजाविधिं च वक्ष्यते—तत्र मण्डपस्य नैर्ऋतकोणे हस्तमात्रविस्तारायामां वितस्त्युन्नतां समचतुरस्रां वेदिकामतिश्लक्ष्णां कृत्वा प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च नव नव रेखाः कृत्वा समान्तरालानि चतुष्षष्टिकोष्ठानि कृत्वा, तत्र वायुकोणादाग्नेयकोणगतं नैर्ऋतकोणादीशानगतं चेति कर्णसूत्रद्वयमास्फाल्य वास्तुचक्रं

---

१. 'चेत्तेन' ख. पाठः। २. 'स्वार्थे णिच्' तेनात्र तिष्ठेदित्यर्थः। ३. 'आर्यकं' ग. पाठः। ४. 'पिञ्जकम्' क. पाठः।

निर्माय, तन्मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य तद्बहिः प्रागादिचतुर्दिक्षु प्रतिदिशं चत्वारि कोष्ठानि मध्यकोष्ठसंलग्नान्येकीकृत्य, त्रिपञ्चाशद्देवतास्थानानि परिकल्प्य, तानि स्थानानि वक्ष्यमाणरजोभिर्मनोहरं यथा भवति तथा सम्यगापूर्य, पुष्पाञ्जलिमादाय "ब्रह्मादित्रिपञ्चाशद्देवता इहागच्छतागच्छतेति" पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेणावाह्य "ब्रह्मादित्रिपञ्चाशद्देवता यथास्थानमिह तिष्ठत तिष्ठतेति" संस्थाप्य "ब्रह्मादिभ्य इदमासनम्" इति पुटपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सर्वमध्ये ब्रह्मणे नमः। पूर्वादिचतुर्दिक्षु ॐ अर्यकाय[१] नमः, ॐ विवस्वते नमः, ॐ मित्राय नमः, ॐ महीधराय नमः, इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्याग्नेयादिकोण-चतुष्कगतार्धकोष्ठाष्टके प्रादक्षिण्येनाग्नेयादीशानपर्यन्तं ॐ सावित्राय नमः, ॐ सवित्रे नमः, ॐ शक्राय नमः, ॐ शक्रजिते नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ रुद्रजिते नमः, ॐ आपाय नमः, ॐ आपवत्सकाय नमः, इति सम्पूज्य तद्बहिः-स्थवेद्यामाग्नेयादिकोणचतुष्कगतकर्णसूत्रभिन्नकोष्ठचतुष्टयपार्श्वगतकोष्ठाष्टके आग्नेयादीशानपर्यन्तं ॐ शर्वाय नमः, ॐ गुहाय नमः, ॐ अर्यम्णे नमः, ओं जम्भकाय नमः, ओं पिलिपिच्छकाय नमः, ॐ चरिक्यै नमः, ॐ विदार्यै नमः, ॐ पूतनायै नमः, इति सम्पूज्य; तद्बहिर्गतवीथीचतुष्टये प्राचीदिग्गतवीथ्यामीशानाद्याग्नेयान्तं ॐ ईशानाय नमः, ॐ पर्जन्याय नमः, ओं जयन्ताय नमः, ॐ शक्राय नमः, ॐ भास्कराय नमः, ॐ सत्याय नमः, ॐ वृषाय नमः, ॐ अन्तरिक्षाय नमः, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य, दक्षिणवीथ्यामाग्नेयादिनैर्ऋतान्तं ॐ अग्नये नमः, ॐ पूष्णे नमः, ॐ वितथाय नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ गृहरक्षकाय नमः, ओं गन्धर्वाय नमः, ओं भृङ्गराजाय नमः, ओं मृगाय नमः, इति सम्पूज्य; ततः पश्चिमवीथ्यां नैर्ऋतादिवायव्यान्तं ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ दौवारिकाय नमः, ॐ सुग्रीवाय नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ पुष्पदन्ताय नमः, ॐ असुराय नमः, ॐ शोषाय नमः, ॐ रोगाय नमः, इति सम्पूज्योत्तरवीथ्यां वायव्यादीशानान्तं ॐ वायवे नमः, ॐ नागाय नमः, ओं मुख्याय नमः, ओं सोमाय नमः, ॐ भल्लाटकाय नमः, ॐ अर्गलाय नमः, ॐ दित्यै नमः, ॐ अदित्यै नमः, इति गन्धपुष्पाद्यैस्त्रिपञ्चाशद्देवताः सम्पूज्य, कुण्डस्थण्डिलादौ वक्ष्यमाणविधिनाग्निस्थापनं कृत्वा ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, अर्यकाय[२] स्वाहा, इत्यादिपूजितदेवतानां स्वाहान्तैर्नाममन्त्रैः प्रत्येकं व्रीहियवमुद्गैर्घृतमधुदुग्धपरिप्लुतैः सघृतैः पायसैश्चैकैकद्रव्येणाष्टोत्तरशतसंख्यमष्टाविंशतिसंख्यं वैकेकदेवतानाम्ना हुत्वा ॐ ब्रह्मणे एष बलिर्नमः, इत्यादि पूजितदेवताभ्यस्तत्तन्नाम्ना तिलदुग्धकदलीफलापूपनानाव्यञ्जनान्वितपायसै-स्तत्तत्पदे तस्यै तस्यै बलिं निवेदयेत्।। इति वास्तुपूजाविधिः।।

अथ वास्तुपूजाफलं तदकरणे फलवैपरीत्यं च तन्त्रराजे—

एवं सिंहगते भानौ पूर्णायां प्रतिवत्सरम्। स्वगेहे वास्तुपूजायां मण्डले तु समाचरेत्।। १।।
न बालमरणव्याधिभूतप्रेतादिकानि च। न सर्पपीडा नान्योन्यकलहाद्यशुभानि च।। २।।
पुत्रपौत्रधनारोग्यपशुदासीसमृद्धिभाक्। अरोगी विजयी ख्यातः चिरं जीवति तद्गृहे।। ३।।
राजवेश्मसु सर्वत्र तथा च महिषीगृहे। सचिवामात्यसेनानीभवनेषु पुरे तथा।। ४।।
विदध्यात् प्रतिवर्षं तु प्रोक्तसिद्ध्यै त देशिकः। न चेदुक्तान्यथारूपफलैः क्लेशोऽनिशं भवेत्।। ५।।

इति।। अथाङ्कुरार्पणविधिः तन्त्रान्तरे—

सप्तभिर्नवभिर्वापि दिनैर्दीक्षादिनात् पुरा। बीजारोपणकर्मेदं कर्तव्यं सर्वकामदम्।। १।।
मण्डपोत्तरदिग्भागे सुसंवृततरे परे। भवने मण्डले कुर्यादिके प्राग्वरुणायतम्।। २।।

---

१. 'आर्यकाय' ग. पाठः। २. 'आर्यकाय' ग. पाठः।

यास्योदीच्यायतं खन्ये प्रवदन्ति मनीषिणः। पदानि द्वादशात्र स्युस्तेषु स्थानत्रयं भवेत्॥ ३॥
चतुष्टयपदोपेतं पदान्यापूरयेत् ततः। पीतरक्तसितश्यामै रजोभिर्वह्निपूर्वकम्॥ ४॥
ईशान्तं क्रमतस्त्वाहुः पात्राणि त्रिविधानि च। वैष्णव्यः पालिकाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशाङ्गुलोच्छ्रिताः॥५॥
वैरिञ्च्यः पञ्चमुख्यश्चाप्युच्छ्रिताः षोडशाङ्गुलैः। शैवाः शरावाश्चत्वारो भान्वङ्गुलसमुच्छ्रयाः॥६॥
प्रक्षाल्य सूत्रैः संवेष्ट्य स्थानेष्वग्न्यादि विन्यसेत्। शालिपूर्णेषु गन्धादिदर्भकूर्चयुतेषु च॥ ७॥
पूरयेत् तानि पात्राणि वालुकामृत्करीषकैः। शङ्खस्वनेन नादैश्च पञ्चभिर्ब्राह्मणाशिषा॥ ८॥
क्षालयेद् दुग्धवंबीजैस्ततो बीजानि निर्वपेत्। तानि प्रियङ्गुश्यामाकतिलसर्षपशालयः॥ ९॥
मुद्गाढकीसुनिष्पावखल्वमाषाः प्रकीर्तिताः। हरिद्राद्भिश्च संसिच्य वस्त्रैराच्छादयेद्गुरुः॥ १०॥
सन्ध्ययोरुभयो रात्रौ प्रदद्यादुत्तमं बलिम्। त्रिविधस्यापि पात्रस्य सप्तस्वपि दिनेषु च॥ ११॥
प्रथमेऽहनि भूतेभ्यस्तिला लाजा हरिद्रया। दधिसक्त्वन्नमित्युक्तं[1] पितृभ्यस्तिलतण्डुलाः॥ १२॥
तृतीयेऽहनि यक्षेभ्यः करम्भा लाजसंयुताः। चतुर्थेऽहनि नागेभ्यो नारिकेलघृताप्लुतम्॥ १३॥
सक्तुपिष्टं च सम्प्रोक्तं पञ्चमे ब्रह्मणे बलिम्। पद्माक्षताश्च षष्ठेऽह्नि शिवायापूपसंयुतम्॥ १४॥
अन्नं स्यात्सप्तमे चाह्नि विष्णवे स्याद्गुडौदनम्। यदि स्यान्नवरात्रं च तदोभयदिने बलिम्॥ १५॥
विष्णवे स्याच्च दुग्धान्नं कृसरं च क्रमात्ततः। प्रणवाद्यैर्हृदन्तैः स्वनामभिर्बलिमन्त्रकः॥ १६॥

इति॥ करम्भा दधिसक्तवः। पद्माक्षताः पद्मबीजानि। कृसरस्तिलमुद्गैः सह सिद्ध ओदनः॥ अथैतन्मण्डलरचनाप्रकारः—तत्र दीक्षादिनात्पूर्वमेव नवभिः सप्तभिर्वा दिनैः प्राङ्निर्मितमण्डपस्योत्तरभागे सुसंवृतं गृहं निर्माय, तत्र गोमयोपलिप्ते सुसमे भूतले प्राक्प्रत्यगायताः पञ्चहस्तदीर्घाः पञ्च रेखा याम्योदीच्यायता वितस्त्यन्तरालाश्चैकादश रेखाः कृत्वा, चत्वारिंशत्कोष्ठोपेतं सार्धद्वयहस्तविस्तारोपेतं मण्डलं कृत्वा, तत्रोदग्गतकोष्ठान्येकीकृत्य वीथीः कृत्वा मध्यचतुष्कोभयपार्श्वयोः कोष्ठद्वयं कोष्ठद्वयं सम्मार्ज्यावशिष्टचतुष्कत्रयात्मकं द्वादशपदोपेतं मंण्डलं निर्माय, चतुश्चतुः कोष्ठैरेकमेकं स्थानं ब्रह्मविष्णुरुद्राणां पश्चिममध्यमपूर्वक्रमेण परिकल्प्य, तत्र पश्चिमादिचतुष्कत्रयेऽपि प्रतिचतुष्कं आग्नेयकोष्ठमारभ्य ईशानकोष्ठपर्यन्तं पीतरक्तश्वेतश्यामवर्णैः रजोभिः प्रतिचतुष्कमेकेन रजसा एकैकं कोष्ठमिति क्रमेण द्वादश कोष्ठान्यापूर्य, तत्र स्थानत्रये मध्यमचतुष्के विष्णुदैवत्याश्चतुर्विंशत्यङ्गुलोन्नतविस्तृतियुक्ता डमरुकाकाराश्चतस्रः पालिका मध्ये पिप्पलदलाम्रपल्लवैः सह श्वेतसूत्रेण संवेष्टिताः संस्थाप्य, तथा पश्चिमचतुष्केऽप्येकस्मिन् पात्रे पञ्च पात्राणि यथा भवन्ति तथा शिल्पिवरनिर्मितानि प्राग्वत् डमरुकाकाराणि षोडशाङ्गुलोन्नतविस्तृतियुक्तानि ब्रह्मदैवत्यानि चत्वारि पात्राणि तथैव पिप्पलादिदलयुक्तानि संस्थाप्य, तथा पूर्वचतुष्के द्वादशाङ्गुलोन्नतविस्तृतिभृतः शिवदैवत्याः प्राग्वत् पिप्पलादिदलयुक्ताश्चत्वारः शरावाः संस्थाप्याः, इत द्वादशपात्राणि प्रक्षालितानि द्वादशकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकमेकं पात्रं शालिपुञ्जेषु गन्धाक्षतकूर्चयुक्तेषु संस्थाप्य, तानि तानि पात्राणि बालुकामृत्करीषकैः सम्पूर्यैकस्मिन् नूतनभाण्डे स्वर्णादिरचिते मृण्मये वा प्रियङ्गुश्यामाकतिलसर्षपशालिमुद्गाढकीनिष्पावखल्वमाषाख्यानि दशधान्यान्येकीकृत्य, वमिति अमृतबीजेन गोदुग्धैः प्रक्षाल्य, शङ्खस्वनादिपञ्चवाद्यपुरःसरं तेषु पात्रेषु ब्रह्मदैवत्येषु प्रथमं, ततो विष्णुदैवत्येषु

१. 'द्वितीयदिवसे' इत्यध्याहारः।

ततः शिवदैवत्येष्विति क्रमेण बीजानि निर्वाप्य, हरिद्रामिश्रजलैः संसिच्य, मूतनवस्त्रैराच्छाद्य सन्ध्ययोरर्धरात्रे च सप्तस्वपि दिनेषु प्रतिदिनं बलिं दद्यात्। तत्र प्रथमदिवसे तिललाजासक्तुशाल्योदनानि हरिद्राचूर्णसंयुक्तान्येकीकृत्य कवलत्रयं निष्पाद्य, त्रिविधस्यापि पात्रस्य समीपे "सर्वभूतानि इहागच्छतेह तिष्ठतेति" भूतान्यावाह्य संस्थाप्य "ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः" इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, सर्वभूतबलिद्रव्याय नमः इति बलिद्रव्यं सम्पूज्य हस्ततले जलं गृहीत्वा वामहस्तेन बलिपात्रं स्पृशन् "ओं सर्वभूतेभ्य एष बलिर्नमः" इति बलिपात्रोपरि जलं निःक्षिप्य बलिमुत्सृजेत्। एवं विष्णुपात्रसमीपे शिवपात्रचतुष्कसमीपे च बलिं दद्यादिति प्रोक्तकालत्रयेऽपि बलिदानविधिः। अत्र मण्डलस्य चतुर्दिक्षु बलिर्देयः, इति केचिदाहुस्तत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति। ततो द्वितीयदिने पितृभ्यस्तिलतण्डुलैः प्रागुक्तपरिपाट्यैव प्रोक्तकालत्रयेऽपि बलिं दद्यात्। चतुर्थेऽह्नि नागेभ्यो नारिकेलजलाप्लुतसक्तुपिष्टबलिः। पञ्चमदिवसे ब्रह्मणे पद्माक्षतबलिः। षष्ठदिवसे शिवायापूपसंयुतौदनबलिः। सप्तमदिवसे विष्णवे गुडौदनबलिः। नवरात्रपक्षे विष्णव एवाष्टमदिवसे दुग्धौदनबलिः, नवमदिने कृसरबलिर्देयः। अत्र सर्वत्र बलिदाने प्रथमदिनप्रोक्त एव विधिर्ज्ञेयः, तत्तन्नाम्ना पूजनं बल्युत्सर्जनं च ज्ञेयमिति। अत्र नवस्वपि दिनेषु प्रतिदिनं तत्तद्देवताया बलिदानानन्तरं दशदिक्पालेभ्योऽपि तत्तद्दिक्षु "ॐ इन्द्राय एष बलिर्नमः" इत्यादितत्तन्नाम्ना घृतशर्करासहितपायसेन बलिर्देयः॥ इति बीजारोपणविधिः॥

अथ दीक्षाकालः। तत्रादौ मासाः। तत्र मन्थानभैरवतन्त्रे—

चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्याद्वैशाखे सर्वसिद्धिदा। ज्यैष्ठे मृत्युप्रदा सा स्यादाषाढे बन्धुनाशिनी॥ १॥

श्रावणे वृद्धिदा नृणां नभस्ते दुःखदा मता। आश्विने सर्वसिद्धिः स्यात् कार्तिके ज्ञानदायिनी॥२॥

शुभदा मार्गशीर्षे च पौषे मेधाविनाशिनी। माघे सुवर्णलाभः स्यात् फाल्गुने सर्वसिद्धिदा॥ ३॥

इति॥ तथा तन्त्रान्तरे—

मधुमासे भवेद्दुःखं माधवे रत्नसञ्चयः। मरणं भवति ज्यैष्ठे चाषाढे बन्धुनाशनम्॥ १॥

समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः। प्रजानामाश्विने मासे सर्वतः शुभमेव हि॥ २॥

ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि। पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्धनम्॥ ३॥

फाल्गुनेऽपि समृद्धिः स्यान्मलमासं परित्यजेत्[१]। इति।.........,....................................(?)

ददन्मन्त्रं लभेन्मन्त्री दारिद्र्यं सप्तजन्मसु।

इति शिवयामलवचनादाश्विनमासो दीक्षायां विहितोऽपि निषिद्धः। महाबलचतुर्दशी शिवरात्रिः॥ तथा श्रीकण्ठसंहितायाम्—

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा। मार्गफाल्गुनके श्रेष्ठा ज्यैष्ठे चैव तु साधमा॥ १॥

माघमासे तु शुभदा दुष्टा साषाढमासके। आनन्ददा श्रावणे सा पौषे भाद्रे च निन्दिता॥ २॥

इति॥ तथा च ज्ञानार्णवे— "शुक्लपक्षे शुभदिने शुभवारे वरानने। मन्त्राद्यारम्भणं कुर्यात्" इति॥ तथा कालोत्तरे— "मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे भूमिकामैः सिते तथा। दीक्षा कार्या महादेवि" इति॥ तथा शैवागमे—

शुक्लपक्षे प्रकुर्वीत कृष्णे वा देशिकोत्तमः। शुक्ले सर्वसमृद्धिः स्यात् कृष्णे मध्यमतो भवेत्॥ १॥

---

१. 'विवर्जयेत्' क. पाठः।

इति।। अथ नक्षत्राणि चिन्तामणौ—

अश्विनी रोहिणी चार्द्रा तथा पुष्योत्तरात्रयम्। हस्तचित्रास्वातिमैत्रविशाखाश्च धनिष्ठया।। १।।
पुनर्वसू रेवती च दीक्षायामुत्तमा मता।

इति। मैत्रमनुराधा। तथा कामधेनौ—

रोहिणी मृगशीर्षं च तथा पुष्यश्च हस्तकः। स्वातीराधे रेवती च तथा चाप्युत्तरात्रयम्।। २।।
शुभान्येतानि दीक्षायां नक्षत्राणि वरानने।

इति।। अथ निषिद्धानि पिङ्गलामते—

कृत्तिकायां मनस्तापो भरण्यां च महापदः। पूर्वायां दण्डयेद्राजा मघायां मृत्युमादिशेत्।। १।।
मूलेन कलहं विद्याज्ज्येष्ठा भवति हानिदा। पूर्वाषाढे भयं प्रोक्तं श्रवणेऽनेकरोगदा।। २।।
शतभिषायां क्षोभदा सन्तापं भाद्रपदा भवेत्।

इति।। अथ तिथयः—

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा। त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा।। १।।

इति। तथा श्रीकण्ठसंहितायाम्—

द्वितीया सप्तमी श्रेष्ठा षष्ठी सर्वत्र निन्दिता। द्वादश्यामपि कर्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा।। १।।

इति। विजयमालिनीतन्त्रे—

पञ्चम्येकादशी शुक्ला सप्तमी च त्रयोदशी। दशमी शुक्लपक्षस्य द्वादशी च विशेषतः।। १।।

इति। रत्नसागरे—

तृतीया विहिता नित्यं षष्ठी सर्वत्र निन्दिता। सप्तम्यां धनलाभः स्यादष्टम्यां गुरुनाशनम्।। १।।
नवम्यामृक्थनाशः स्याद्दशमी सुखदायिनी। एकादश्यां भवेल्लाभो धनस्य वृषभस्य च।। २।।
द्वादश्यां धनलाभः स्यात् त्रयोदश्यां सदोदयः। शिष्यहानिश्चतुर्दश्यां पौर्णमासी तु सिद्धिदा।।३।।
अमायां पुत्रनाशः स्यात् प्रतिपद्वृद्धि[1]नाशिनी।

इति।। अथ देवताविशेषे तिथिविशेषः। कालोत्तरे—

ब्रह्मणः पौर्णमास्युक्ता द्वादशी चक्रधारिणः। चतुर्दशी शिवस्योक्ता वाचः प्रोक्ता त्रयोदशी।। १।।
द्वितीया तु श्रियः प्रोक्ता पार्वत्याश्च तृतीयका। चतुर्थी गणनाथस्य भानोः प्रोक्ता तु सप्तमी।।२।।

इति।। अथ वासराणि तत्र मन्त्रसद्भावे—

मन्त्रारम्भो रवौ शुक्ले बुधे जीवे विशेषतः। शनौ मृत्युः क्षयं भौमे सोमे सर्वत्र निष्फलम्।। १।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

रवौ गुरौ बुधे शुक्रे कर्तव्यं परमेश्वरि। इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद्विचक्षणः।। १।।

इति। विजयमालिनीतन्त्रे—

रवौ बुद्धिमवाप्नोति शुक्रे चैव धनागमम्। बुधेऽभियोगरहिता गुरौ पुत्रान्वितो भवेत्।। १।।
शन्यङ्गारकयोर्मृत्युरविद्या सोमके भवेत्। इति ज्ञात्वा वारारोहे दीक्षां दद्याद्विशालधीः।। २।।

१. 'बुद्धि' ग. पाठः।

इति।। अथ योगास्तन्त्ररत्नावल्याम्—

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा। सुकर्मा च धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवः सिद्धिश्च हर्षणः।। १।।
वरीयांश्च शिवः सिद्धौ ब्रह्मा ऐन्द्रश्च षोडश।

इति।। तथात्र योगास्तत्र वशिष्ठः —

पूर्वाषाढां प्रतिपदं पञ्चमीं कृत्तिकामथ। पूर्वाभाद्रपदा षष्ठी दशमी रोहिणी तथा।। १।।
द्वादश्यां सर्पनक्षत्रमार्यम्णं च त्रयोदशी। नक्षत्रलुम्पा इत्येते देवानामपि नाशदाः।। २।।

इति। सर्पनक्षत्रमाश्लेषा। उत्तराफाल्गुनी आर्यम्णम्।। अथ ज्योतिषशास्त्रे करणानि—

शुभानि करणान्याहुर्दीक्षायां तु विशेषतः। शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत्।। १।।

इति। अत्रादिपदेन किंस्तुघ्नचतुष्पदनागानां ग्रहणम्। अथ लग्नानि तन्त्रान्तरे—

मन्त्राद्यारम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत्। वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम्।। १।।
कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात् सिंहे मेधाविनाशनम्। कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः।।२।।
वृश्चिके सर्वसिद्धिः स्याद्धनुर्ज्ञानविनाशनम्। मकरः पुत्रदः प्रोक्तः कुम्भो धनसमृद्धिदः।। ३।।
मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं राशिफलं प्रिये।

इति। तथा च रुद्रयामले—

मीने सिंहे तथा चापे वृषे हानिः प्रजायते। मेषे सर्वसमृद्धिः स्यात् कन्या रत्नप्रदा भवेत्।। १।।
तुलाया धनधान्यं स्याद् वृश्चिके सर्वसिद्धयः। मकरे पुत्रलाभः स्यात्कुम्भे पशुसमृद्धयः।। २।।
मिथुने पशुनाशः स्यात् कर्कटो राज्यदो मतः। एवं लग्नफलं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्याद् विशालधीः।।३।।
वृषमीने तथा चापं सिंहलग्नं विवर्जयेत्। सुखदं शुभदं नित्यं कन्याद्यं सर्वसिद्धिदम्।। ४।।

इति।। अथ दीक्षालग्नात् स्थानविशेषेषु स्थितानां ग्रहाणां शुभाशुभफलानि—

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः। दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशकाः।।५।।

इति। आयः एकादशस्थानम्। लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानां केन्द्रसंज्ञा। पञ्चमनवमस्थानयोस्त्रिकोणसंज्ञा। सूर्यशनिराहुकेतुकुजाः पापयुतो बुधः क्षीणशशी च पापाः। गुरुभृगुसुतपापरहितबुधपूर्णचन्द्राः शुभाः। रन्ध्रमष्टमस्थानम्। सर्वे नवग्रहा अपि।। अथ चन्द्रफलम्— "जन्मत्रिषट्सप्तैकादशपङ्क्तिगः शशी शुभफलप्रदो मतः। नेत्रद्वादशवसुपञ्चवेदग्रहराशिगः शशी दुष्टः स्मृतः"।। अथ दीक्षायां कालः, तत्र शैवागमे—

अधोमुखे शुभे भे च चन्द्रशुद्धौ विशेषतः। कृष्णे ताराबलं कुर्यात् स्वनामादिविचिन्तनम्।। १।।
धर्मदः प्रातःकालः स्यात् सङ्गवो राज्यदः स्मृतः। मध्याह्ने सर्वसिद्धिः स्यात् सायाह्ने सर्वतो भवेत्।।२।।
रजनी मन्त्रदाने तु निषिद्धा देशिकोत्तमैः। दिवा सर्वं प्रकुर्वीत सिद्धिदं परमं स्मृतम्।। ३।।

इति।। अधोमुखनक्षत्राणि तु—

मूलाग्नेयमघाद्विदैवभरणीसार्पाणि पूर्वात्रयं
ज्योतिर्विद्भिरधोमुखं हि नवकं भानामिदं कीर्तितम्।

वापीकूपतटाकगर्तपरिखाखातो निधेरुद्धृतिः
क्षेपो द्यूतबिलप्रवेशगणनारम्भाः प्रसिद्ध्यन्ति च॥ १॥

इति। द्विदैवं विशाखा "विशाखानक्षत्रस्येन्द्राग्नी देवते"ति श्रुतिः॥ अंथ दीक्षायाः कालविशेषस्तत्र ज्ञानार्णवे—

मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। ग्रहणाद् देवदेवेशि कालः सप्त दिनावधि॥ १॥
पवित्रपर्व देवेशि वाममेवाशुभे दिने। कालचर्चा न कर्तव्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ २॥
पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये।

इति। तथा रत्नसागरे—

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासेऽनन्तवामनपर्वणोः। मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत्॥ १॥

इति। अत्र यद्यपि

सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्। सूर्यग्रहणकालेन सवो नान्यः कदाचन॥ १॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्। न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि॥ २॥
ददातीष्टं च गृह्णीयात् तस्मिन् काले गुरोर्नरः। सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाभ्यासेन वेगतः॥ ३॥

इति चिन्तामणिकालकोद्भवयोः सूर्यग्रहणस्यैव विधायकवचनदर्शनात्।

चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा वनचारिणाम्। जनकस्य तु या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्ममु॥ १॥

इति योगिनीतन्त्रे चन्द्रग्रहे दीक्षानिषेधवचनदर्शनात् प्रागुक्तरजनीमन्त्रनिषेधवचनाच्चेति सूर्योपरागकालोऽप्युपराग- साधारणतया प्रागुक्तशिवयामलवचनेन निषिद्धत्वान्नात्यन्तं प्रशस्त इत्यवधेयम्। किन्तु—

चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रस्य कथनमुपदेशः स उच्यते॥ १॥

इति कालिकोद्भववचनान्मन्त्रान्तरेषु विधिवद्दीक्षितानां दोषावह इति॥ अथ क्रियावती दीक्षा, उत्तरतन्त्रे—

अथ वक्ष्यामि दीक्षाणां विधानं मन्त्रकाम्यया। याभिर्विना न लभ्यन्ते सर्वमन्त्रफलानि वै॥ १॥
आत्मलाभं ददत्येताः क्षिण्वन्ति दुरितान्यपि। तेन दीक्षा इति प्रोक्तास्तासां तत्त्वविचारकैः॥ २॥
ताश्च क्रमेण कथिताः क्रियामय्यर्पणमपि। कलामयी वेधमयी चतस्रो ज्ञानदाः शुभाः॥ ३॥

इति। पञ्चमीश्वरीतन्त्रे—

पुण्याहं वाचयित्वादौ ब्राह्मणैः स्वस्तिपूर्वकम्। पञ्चवाद्यनिनादैश्च वेदघोषैः सुहृद्वृतः॥ १॥
गत्वा गुरुगृहं शिष्यः प्रणम्य गुरुपादुकाम्। दत्त्वा वरणसामग्रीं सङ्कल्प्य वृणुयाद्गुरुम्॥ २॥
उच्चार्यामुकमन्त्रस्य ग्रहणाय द्विजोत्तमः। गुरुत्वेनेति सम्भाष्य त्वामहं च ततो वृणे॥ ३॥
इत्युक्त्वा वृणुयाच्छिष्यो वृतोऽस्मीति ततो गुरुः। यथोचितं गुरो कर्म कुरुष्वेति वदेच्छिशुः॥ ४॥
करवाणीति चोच्चार्य पञ्चवाद्यपुरःसरम्। ततः शिष्येण सहितो यायाद्यागगृहं गुरुः॥ ५॥
पुण्याहवाचनं कृत्वा शिष्यो भक्तिपरायणः। हारकुण्डलकेयूरमुद्रिकाङ्गदभूषणैः॥ ६॥
हेमयज्ञोपवीतैश्च मधुपर्कैर्यथाविधि। महार्घवस्त्रताम्बूलैः फलपुष्पसुगन्धकैः॥ ७॥
अवित्तशाठ्यमभ्यर्च्य यथावद् वृणुयाद् गुरुम्। ऋत्विजोऽपि तथाभ्यर्च्य वृणुयादुक्तसंख्यकान्॥ ८॥

इति।। अथ मधुपर्कविधानमुक्तं डामरे–

मधुपर्कविधानं ते यथावत् कथयाम्यहम्। श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः।। १।।
अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च। सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्योऽग्रे ग्रन्थिभूषिताः।। २।।
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्। सुखोष्णोदकसम्पूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगण्डकाः।। ३।।
शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः। दूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीयाः पृथक् पृथक्।। ४।।
कमण्डलुः सुताम्रस्य आचम्योदकपूरितः। सम्पुटा मधुपर्कार्थं कांस्या दध्यादिपूरिताः।। ५।।
महान्त्यर्घ्याणि द्रव्याणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम्। मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत्।। ६।।
पादुका आहरेत्तत्र चर्मभूषणभूषिताः। अन्यत्स्मार्ते यदप्युक्तं मधुपर्कस्य पूजने।। ७।।
तत्कृत्वा फलमाप्नोति महायज्ञार्हणोपमम्। अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं स्मृतम्।। ८।।
भक्त्या तद्द्विगुणं दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान्। अन्यैर्द्विजैः समं यत्र देशिकस्य प्रपूजनम्।। ९।।
तस्मिन् यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टौ यथा क्षितिः। ऐशिकेन्द्रो विधोनन स्नात्वा निर्वर्तिताह्निकः।। १०।।
मौनमास्थाय भूषाढ्यो गच्छेद्यागगृहं प्रति। आचार्यः पूर्वदिवसे उपवेश्य समासने।। ११।।
शिष्यं मूलेन सज्ञप्तं दद्याद्वै दन्तधावनम्। दन्तान् विशोध्य पुरतः स्थण्डिले हस्तमात्रके।। १२।।
चतुरस्रे पूजयेत् तत्परीक्षेत ततो गुरुः। ईशानाग्रे ज्ञानलाभः प्रागग्रे भूतिरुत्तमा।। १३।।
आग्नेयाग्रे मनस्तापो बन्धुनाशश्च दक्षिणे। राक्षसाग्रे मृत्युभयं वारुण्यग्रे मनःशुचम्।। १४।।
वायव्याग्रे व्यग्रता च कौवेराग्रे सुखावहम्। अमङ्गलस्थानपाते प्रायश्चित्तं समाचरेत्।। १५।।

प्रायश्चित्तमग्रे पुरश्चरणप्रकरणे वक्ष्यते।।

ततः स्वप्नपरीक्षां च कुर्याद् देशिकसत्तमः। क्रूरस्वप्नेऽधमा दीक्षा ह्यक्रूरे मध्यमा मता।। १६।।
उत्तमस्वप्नपूर्वा तु दीक्षा सर्वोत्तमा मता।

स्वप्नलक्षणानि तन्निवेदनप्रकारं दुःस्वप्ने प्रायश्चित्तं चाग्रे पुरश्चरणप्रकरणे वक्ष्यते।।

एवं विचार्य पुरतो गुरुः पूजां समाचरेत्। विधायाचमनं तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च।। १७।।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत्। ततश्च देशिको विघ्नान् दिव्यानालोकनेन च।। १८।।
अन्तरिक्षगतानस्त्रोदकैरुत्सारयेत् ततः। पार्थिवान् पार्ष्णिघातैस्तत्त्रिभिरुत्सार्य यत्नतः।। १९।।
अङ्गं सङ्कोच्य किञ्चित्तु शाखां वामगतां स्पृशन्। उत्सारितानां भूतानां ददद्वर्त्म तु दक्षिणे।। २०।।
पादेन दक्षिणेनाथ प्रविशेद्यागमण्डपम्।

इति। द्वारपूजा वक्ष्यते। दक्षिणपादपुरःसरं प्रवेशः पुंदैवतविषयः, शाक्ते तु वामपादपुरःसरमेव ''वामपादं पुरस्कृत्य प्रविशेद्यागमण्डपम्।'' इति त्रिपुरार्णववचनात्। तथा–

ब्रह्माणं वास्त्वधीशं च नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत्। अर्घ्याम्बुना च गव्येन यागस्थाने सुसेचिते[1]।।२१।।
वीक्षणाद्यैस्ततः शुद्धिं चतुर्द्वारान्तमाचरेत्। संवीक्ष्य मूलमनुना ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत् ततः।। २२।।

---

१. 'सुसिञ्चिते' क. पाठः। 'चिन्तिते' ख. पाठः।

कुर्यात् ताडनमस्त्रेण कवचेनाथ सेचयेत्। श्रीखण्डागरुचन्द्रैश्च भूषितेऽस्त्रेण सप्तधा॥ २३॥
जप्तांश्चन्दनसिद्धार्थदूर्वाभस्माक्षतान् कुशान्। सजलान् विकिरेन्मन्त्री प्रत्यूहघ्नान् हि मण्डलम्॥२४॥
मार्जयेदस्त्रमन्त्रेण तान् मन्त्री दर्भमुष्टिना। आसनाय तु वार्द्धान्या ईशाने स्थापयेच्च तान्॥ २५॥
पुण्याहं वाचयित्वाथ विप्रान् सन्तोष्य यत्नतः। वेदिकायां लिखेत् पश्चात् सर्वतोभद्रमण्डलम्॥२६॥
तल्लक्षणमथो वक्ष्ये सर्वतन्त्रानुसारतः। देशिको वेदिकामध्ये गोमयेनोपलेपिते॥ २७॥
पूर्वोक्तक्रमयोगेन चतुरस्रं प्रकल्पयेत्। चतुष्कोष्ठसमायुक्तं कर्णसूत्रविभूषितम्॥ २८॥
तत्र कोष्ठचतुष्कान्तःसूत्राणां स्याच्चतुष्टयम्। कोणस्थकोष्ठमध्येषु दृश्यन्ते मत्स्यका यथा॥२९॥
ऐन्द्रावारुणगं युग्मं सौम्ययाम्यगतद्वयम्। मकरेष्वेषु सूत्राणि दद्याच्चत्वारि मन्त्रवित्॥ ३०॥
पूर्वपश्चिमगं तद्वद्दक्षोत्तरगतं पुनः। मकरान् पूर्ववत् कुर्यात् तत्र सूत्राणि पातयेत्॥ ३१॥
शतयुग्मं च पञ्चाशत्षट्पदानि यथा पुनः। प्रादुर्भवन्ति रम्याणि सूत्राण्येवं विकाशयेत्॥ ३२॥
षट्त्रिंशत्कोष्ठकैर्मध्ये सरोजं परिकल्पयेत्। तद्बहिः परितः पीठमेकपङ्क्त्या प्रकल्पयेत्॥ ३३॥
पङ्क्तिद्वयेन तद्बाह्ये वीथीकल्पनमीरितम्। ततोऽन्त्यपङ्क्तियुग्मेन द्वारशोभा विधानतः॥ ३४॥
उपशोभाश्च कोणानि मन्त्रवित् परिकल्पयेत्। अथ वक्ष्ये विधानेन सरोजलेखनक्रमम्॥ ३५॥
सरोजस्थानजं भागं द्वादशं तु परित्यजेत्। ततो वृत्तत्रयं मध्ये कुर्यात् सम्यग् यथाविधि॥ ३६॥
कर्णिकां मध्यवृत्तेन द्वितीयेन तु केसरान्। अन्त्यवृत्तेन पत्राणि पत्राग्रांस्त्यक्त[1]भागतः॥ ३७॥
अन्त्यवर्तुलमध्यस्य परिमाणं च यद्भवेत्। किञ्जल्काग्रेषु संस्थाप्य पार्श्वतस्त्वर्धचन्द्रकान्॥ ३८॥
संलिख्य सन्धिसम्बद्धसूत्रन्यासं विधाय च। दलाग्रमानतो वृत्तं कुर्यात् सम्यग् विचक्षणः॥ ३९॥
वृत्तान्तर्मध्यसूत्रस्य पार्श्वयोस्तु यथाविधि। बहिरेकेन कुर्वीत पत्राग्राणि विधानवित्॥ ४०॥
किञ्जल्कान् पत्रमूलेषु द्विशः कुर्वीत देशिकः। सामान्यं कमलं ह्येतच्छास्त्रे सर्वत्र गीयते॥ ४१॥
त्रिभिः पदैस्तु पीठस्य पादान् कोणेषु कल्पयेत्। अतिरिक्तैः पदैः पीठगात्राणि रचयेत्ततः॥ ४२॥
वीथीपङ्क्तिद्वयं सम्यगेकीकृत्य प्रमार्जयेत्। कोष्ठद्वयेन चैकेन प्रत्येकं द्वारपार्श्वयोः॥ ४३॥
शोभा भवत्यतः कोष्ठैरेकतस्त्रिभिरेव च। उपशोभास्ततः कोष्ठैः षड्भिः कोणानि कल्पयेत्॥४४॥
रजोभिर्भूषयेत् पञ्चवर्णैरेतत्तु मण्डलम्। निशारजो भवेत्पीतं शुक्लं तण्डुलजं स्मृतम्॥ ४५॥
रक्तं कौसुम्भमुद्दिष्टं कृष्णमाहुर्मनीषिणः। पुलाकदाहसम्भूतं श्यामं बिल्वच्छदोत्थितम्॥ ४६॥
पञ्चवर्णाः समाख्याता दीक्षामण्डलकर्मणि। उत्सेधतारतो रेखाः शुक्ला अङ्गुलमानतः॥ ४७॥
तारो विस्तारः।
सर्वाः सीमागतः[2] कार्याः शुभ्रा मण्डलकर्मणि। पीतवर्णेन चूर्णेन कर्णिकां पूरयेत्ततः॥ ४८॥
किञ्जल्कान् रक्तवर्णेन दलानि श्वेतवर्णतः। श्यामेन रजसा सन्धिं मन्त्रविच्चाभिपूरयेत्॥ ४९॥

---

१. 'ग्रात्यक्त' ख. पाठः। २ 'ग्रतः' क. पाठः।

अथवा कर्णिकां मन्त्री पीतेनैव प्रपूरयेत्। किञ्जल्कान् पीतरक्तेन पीठगात्राणि शुभ्रतः[१] ।। ५० ।।
वीथीचतुष्कमध्येषु कल्पवल्लीः प्रकल्पयेत्। पत्रमूलफलाकारमण्डिता हृदयङ्गमाः ।। ५१ ।।
नानावर्णरजोभिस्ता रञ्जयेत् कुशली गुरुः। शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कं पूरयेत्ततः ।। ५२ ।।
रक्तवर्णेन तच्छोभाः पीतेनैवोपशोभिकाः। कृष्णवर्णेन कोणानि बही रेखात्रयं ततः ।। ५३ ।।
शुक्लारुणाख्यकृष्णैस्तु रजोभिर्भूषयेत् क्रमात्। समान्यं सर्वतोभद्रं मण्डलं ह्येतदुत्तमम् ।। ५४ ।।
अन्यानि मण्डलान्यत्र वक्ष्यन्तेऽपि प्रसङ्गतः। पूर्वोक्ते चतुरस्रे तु तावत् सूत्राणि पातयेत् ।। ५५ ।।
यावत्स्यात् कोष्ठशतकं चत्वारिंशत्समन्वितम्। वेदान्वितं तु तन्मध्ये पद्मं षट्त्रिंशता शुभम् ।। ५६ ।।
एकपङ्क्त्या भवेत्पीठं वीथी नैवात्र दृश्यते। पूर्ववद्द्वारशोभा स्यादुपशोभात्र नास्ति वै ।। ५७ ।।
षड्भिः कोष्ठैस्तथा कुर्यात्कोणानि प्रोक्तवर्त्मना। अन्यत्सर्वं विधातव्यं प्रोक्तमण्डलवच्छुभम् ।।५८ ।।
एतन्मण्डलमन्यत्तु चतुरस्रे सुशोभने। पातयेत्। क्रमशः सूत्रं यावत्कोष्ठानि सर्वतः ।। ५९ ।।
(षष्टिस्तथा चतुर्युक्तानि स्युस्तन्मध्यतस्ततः। पद्मं चतुर्भिः कोष्ठैः स्यात् कुर्यात् तत्परितः पुनः ।।६० ।।
चतुर्वीथीर्मण्डलान्तावसाना दिग्गतेषु च)। चतुष्केषु तु पद्मानि विदध्यान्मन्त्रवित्तमः ।। ६१ ।।
चतुष्काणि विदिक्स्थानि चत्वारि विभजेत् सुधीः। यावत्षोडश कोष्ठानि भवन्त्येतानि मार्जयेत् ।।६२ ।।
तथा यावत्स्वस्तिकानामाकारः प्रकटीभवेत्। रजोभिः शुक्लहारिद्ररक्तनीलैः प्रपूरयेत् ।। ६३ ।।
स्वस्तिकानि शतं चान्यत्पूर्ववत्परिकल्पयेत्। उदितं मण्डलं ह्येतन्नवनाभं सुशोभनम् ।। ६४ ।।
एतदेवोक्तमार्गेण स्वस्तिकाख्यमनुत्तमम्। मण्डलं स्यात्तु पञ्चाब्जं सर्वकामफलप्रदम् ।। ६५ ।।
दीक्षायां वा महादाने देवपूजाव्रतादिषु। एतन्मण्डलमध्ये तु कुर्यादन्यतमं बुधः ।। ६६ ।।
एवं मण्डलमालिख्य प्रोक्तेष्वन्यतमं गुरुः। वेदिकायामासने स प्राङ्मुखं संविशेदथ ।। ६७ ।।
बद्धपद्मासनो मौनी ऋजुकायो जितेन्द्रियः। देशिकेन्द्रस्तु संस्थाप्य पूजोपकरणानि तु ।। ६८ ।।
दक्षिणे वामभागे तु स्थापयेत् कलशं शुभम्। सुगन्धिजलपूर्णं च हस्तप्रक्षालनाय च ।। ६९ ।।
पश्चात्पात्रं विधायाथ दीपान् प्रज्वालयेच्छुभान्। व्यजनं मुकुरं छत्रं चामरं दिक्षु मन्त्रवित् ।। ७० ।।
संस्कुर्यात् तानि सर्वाणि वक्ष्यमाणविधानतः। करशुद्धिं विधायाथ कुर्यात् तालत्रयं बुधः ।। ७१ ।।
शरमन्त्रेण दिग्बन्धं कुर्यान्मन्त्री समाहितः। महस्तु तत उत्पन्नं रक्षयेत्तं हि सर्वतः ।। ७२ ।।
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा प्राणस्थापनमाचरेत्। न्यासादिकं ततः कुर्याद्देशिको यतमानसः ।। ७३ ।।
ऋषिं न्यसेत् ततो मूर्ध्नि च्छन्दो वक्त्रगतं न्यसेत्। देवतां हृदये न्यस्य मूलमन्त्रस्य देशिकः ।।७४ ।।
षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री पञ्चाङ्गं वा यथाविधि। यस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गं नेत्रं तस्य विहीयते ।। ७५ ।।
अङ्गैर्विहीनस्य मनोरङ्गं तैरेव कल्प्यते। तत्तन्मन्त्रोक्तमार्गेण न्यासानन्यान् समाचरेत् ।। ७६ ।।
शरीरे स्वस्य मन्त्रस्य योगपीठं प्रकल्पयेत्। देहात्मके ततः पीठे ध्यायेन्मन्त्रस्य देवताम् ।।७७ ।।

---

१. 'कल्पयेत्' ग. पाठः। २. 'बन्धचिह्नान्तर्गतमिदं क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति'।

दर्शयित्वा ततो मुद्राः स्थापयेदर्घ्यमुत्तमम्। जलेन पूरितां दक्षे प्रोक्षणीं स्थापयेत् ततः।। ७८।।
तत्राल्पमल्पं शङ्खाम्बु तत उत्तरतो न्यसेत्। पाद्यमाचमनीयं च मधुपर्कं च मन्त्रवित्।। ७९।।
ततो मूलाणुना मन्त्री प्रोक्षण्यद्भिः समाहितः। स्वात्मानं मण्डलं चान्यत्पूजोपकरणादिकम्।।८०।।
प्रोक्षयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्देहे स्वे देशिकोत्तमः। योगपीठं समभ्यर्च्य न्यासमार्गेण मन्त्रवित्।। ८१।।
पीठान्तं च ततस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम्। देवतात्मा ततः पञ्च कुर्याद्वा सुमनोञ्जलीन्।। ८२।।
शीर्षे हृदि तथाधारे चरणे सर्वगात्रके। पूजयेच्च निवेद्येन रहितैश्चन्दनादिभिः ८३।।
सर्वोपचारैस्तच्छेषं गुर्वादिष्टेन कर्मणा। समापयेदिदं सर्वं प्रोक्षण्यद्भिः समाचरेत्।। ८४।।
पानीयं प्रोक्षणीसंस्थं त्यक्त्वा सम्पूर्य पूर्ववत्। उपचारैश्चन्दनाद्यैर्मण्डलं पूजयेद्गुरुः।। ८५।।
पूरयेत् कर्णिकां पूर्वं शालिभिस्तण्डुलैस्ततः। दर्भान् न्यसेदूपर्येषां साक्षतं कूर्चकं ततः।। ८६।।
छिन्नमूलाः कुशा दीर्घाः सप्तविंशतिसंख्यकाः। ब्रह्मग्रन्थियुतास्त्वग्रदेशे कूर्च इहोच्यते।। ८७।।
यजेदाधारशक्त्यादिपीठमन्त्रावसानकम्। स्वर्णादिरचितं तत्र कलशं छिद्रवर्जितम्।। ८८।।
त्रिगुणात्मकसूत्रेण वेष्टितं सर्वतो बहिः। चन्दनागुरुकर्पूरैर्मध्ये सम्यक् प्रधूपितम्।। ८९।।
ध्रुवं जपविधानेन स्थापयेद्देशिकोत्तमः। नव रत्नानि निःक्षिप्य कुम्भे कूर्चमथोपरि।। ९०।।
दूर्वाचन्दनसंयुक्तं विन्यसेदक्षतान्वितम्। पुष्पं नीलं च वैडूर्यं विद्रुमं मौक्तिकं तथा।। ९१।।
ततो मरकतं वज्रं गोमेदं पद्मरागकम्। मौक्तिकानि च रत्नानि देशिकस्तन्त्रवित्तमः[1]।। ९२।।
क्षाद्यान्तक्रमतो मन्त्री मातृकां मनसा जपन्। मूलमन्त्रं जपन्नन्ते चिन्तयन्नैक्यमात्मनः।। ९३।।
घटस्य पीठभेदं च चिन्तयेत् साधकोत्तमः। पञ्चाशदोषधिक्वाथैः पूरयेत्तदनन्तरम्।। ९४।।
दुग्धवृक्षत्वचा क्वाथैर्ब्रह्मभूरुट्त्वगुद्भवैः। गन्धपङ्कप्रसूनादिवासितैर्वा शुभैर्जलैः ।। ९५।।
क्वाथादितोयैरापूर्य शङ्खं तस्मिन् विलोडयेत्। गन्धाष्टकं शुभं मन्त्री सर्वसम्पत्प्रदायकम्।। ९६।।
कलाः सर्वाः समावाह्य पूजयेच्च यथाविधि। कलादिदेवतारूपं शङ्खनीरं घटे क्षिपेत्।। ९७।।
चन्दनागरुकर्पूरकाश्मीरै रोचनान्वितैः। ससिह्लकजटामांसीसटीभिः शक्तिसम्भवम्।। ९८।।
गन्धाष्टकं शुभं वश्यं शक्तिमन्त्रेषु योजयेत्।

इति। काश्मीरं कुङ्कुमम्। सिह्लकं शिलारसः। सटी कचोरः। "चन्दनागरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचनाः। जटामांसीकपियुताः शक्तेर्गन्धाष्टकं मतम्"।। इति शारदातिलकवचनात्।

ह्रीवेरं चन्दनं कुष्ठमगरुं कुङ्कुमं मुरम्। सेव्यकं च जटा मांसी वैष्णवं तदुदीरितम्।। १।।

ह्रीवेरं बालकं। सेव्यकमुशीरम्। मुरं मोरहरीति प्रसिद्धम्।

"मुरा गन्धवती दैत्या गन्धाढ्या गन्धमादिनी। सुरभिर्भूतगन्धा च कुठी गन्धकुठी स्मृता।। १।।

एकाङ्गी"ति नानार्थवचनादेकाङ्ग्येव मुरशब्देनोच्यते। एकाङ्गी छर्व्युरिति लोके प्रसिद्धा।।

१. 'कैस्त...........मैः' क. ग. पाठः।

जलकाश्मीरकुष्ठैस्तु रक्तचन्दनचन्दनैः। तमालागरुकर्पूरैः शाम्भवं चाष्टगन्धकम्॥ १॥

जलं बालकम्।

गन्धाष्टकस्य संयोगात् सामर्थ्याद्देशिकस्य च। सशक्तिकं जलं कुम्भे भवेदेव न संशयः॥९९॥
आदौ कृशानुसम्बन्धि कलादशकमर्चयेत्। कलाद्वादशकं सौरं पूजयेत् तदनन्तरम्॥ १००॥
कलाषोडशकं चान्द्रं यजेत् पश्चाद्गुरूत्तमः। वेदादिभेदसञ्जाताः कलाः पञ्चाशतैर्युताः॥ १०१॥
सन्निधाप्य समभ्यर्च्य ततो मन्त्री तु ताः क्रमात्। मध्ये मध्ये ऋचः पञ्च पूजनीया इमा अपि॥ १०२॥
आत्ममन्त्रं समुच्चार्य शुचिषत्पदमुच्चरेत्। वसुरन्तमन्त्रपदं रिक्षसद्धोपदं ततः॥ १०३॥
पदं ता वेदिषपदे दतिथिर्दुपदं ततः। रोणसत्पदमुच्चार्य नृषद्वरपदे वदेत्॥ १०४॥
वदेत् सदृतसद् व्योमसदब्जा गोपदं वदेत्। वदेज्जा ऋतजेत्यस्माददिजाशब्दमुच्चरेत्॥ १०५॥
सप्तमस्वरमुच्चार्य सबिन्द्वाषाढिनं वदेत्। उक्त्वा बृहत्पदं वान्ते प्रथमो मन्त्र ईरितः॥ १०६॥

इति। आत्ममन्त्रः हंस इति। सप्तमस्वर ऋकारः। आषाढी तकारः। अन्यानि पदानि स्वरूपाणि॥ तथा—

लोहितो वह्निसहितः पूतना द्व्यान्तिका ततः। उक्त्वा ष्णुः स्तवते पश्चाद्वीर्येण मृपदं वदेत्॥ १०७॥
गो न भीमश्च कुचरो गिरिष्ठाश्च ततो वदेत्। यस्योरुषु त्रिषु पदं ततो विक्रमणेष्वधि॥ १०८॥
क्षियन्ति तु पदं ब्रूयाद् भुवनानि ततो वदेत्। तोयस्थो माधवः पश्चाद्वान्तं स्यात्तोयशान्तियुक्॥ १०९॥
द्वितीयो मनुराख्यातस्तृतीयः प्रोच्यतेऽधुना।

लोहितः पकारः, वह्नी रेफस्तेन प्र, पूतना तकारः। तोयं वकारः, तत्स्थो माधव इकारः, तेन वि, वान्तं श, तोयं व, शान्ति आ तेन श्वा। अन्यानि पदानि स्वरूपाणि॥

णान्तोऽग्निमान्तोपान्त्यस्य कलायुक् पतृतीयकः। चतुर्मुखः सचन्द्रार्धस्ततः स्याच्च यजामहे॥ ११०॥
परं सुगन्धिं पुष्टीति वर्धनं च ततो भवेत्। पदमुर्वारुकमिव बन्धनान्मृपदं वदेत्॥ १११॥
त्योर्मुक्षीयपदे पश्चान्मामृतात्पदमुच्चरेत्।

णान्तस्तकारः अग्नी रेफः मान्तो यकारः, उपान्त्यकला बिन्दुरेतेन त्र्यं, पतृतीयो बकारः, चतुर्मुखः ककारः चन्द्रार्धो बिन्दुस्तेन कं, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि॥

गायत्र्यात्मा चतुर्थः स्यान्मन्त्रः ख्यातो जगत्यलम्। तोयस्था शाल्मली प्रोक्ता सहजाढान्तविष्णुयुक्॥
अग्निश्च केवलः प्रोक्तो योनिं कल्पपदं वदेत्। यतु त्वष्टापदं पश्चात् ततो रूपाणि पिंशतु॥ ११३॥
आसिञ्चतु प्रजा पश्चात्पतिर्धातापदं वदेत्। गर्भं दधात्विति पदमाषाढी पद्मनाभयुक्॥ ११४॥
पञ्चैते वैदिका मन्त्रास्तेष्वेकैकं प्रपूजयेत्।

तोयं वकारः शाल्मली इकारस्तेन वि, सहजा षकारः, ढान्तो णकारो, विष्णुयुक् उकारयुक्तस्तेन ष्णु। अग्नी रेफः, केवलो विस्वरः। आषाढी तकारः, पद्मनाभ एकारस्तेन ते इति॥

तारस्य पञ्चभेदोत्थकलानामन्तरे सुधीः। आवाह्यादौ कलाः पश्चात् सन्निधाप्य च देशिकः॥ ११५॥
प्राणान् संस्थाप्य गन्धाद्यैः पूजयेत् साधकोत्तमः। यत्र यत्र कलापूजाविधिस्तत्रैवमेव हि॥ ११६॥

तारस्य पञ्चभेदोत्थकलानां पूजयेत् सुधीः। कलादशकमावाह्य सृष्ट्याद्याः सन्निधाप्य च॥ ११७॥
हंसः शुचिषदित्याद्यामृचं सञ्जप्य पूजयेत्। प्राणसंस्थापनं कृत्वा कलानां पूजयेच्च ताः॥ ११८॥
एवं जराद्यास्तीक्ष्णाद्याः पीताद्याश्च विधानतः। निवृत्त्याद्याश्चापि यजेदुक्तयुक्त्या विचक्षणः॥ ११९॥
अकारोकारकौ प्रोक्तौ मकारो बिन्दुनादकौ। शक्तिसान्तावमी सप्त ध्रुवभेदाः समीरिताः॥ १२०॥
अन्तिमौ द्वाविमौ भेदौ पृथगेव समीरितौ।

शक्तिः सकारः, सान्तो हकारः॥

ततो रसालपनसपिप्पलद्रुमपल्लवैः। सुत्रामवल्लरीनद्धैः कल्पवृक्षमनीषया॥ १२१॥
कलशस्थापनं मन्त्री विदधीत समाहितः। पश्चादक्षतसंयुक्तां सफलां शुभचक्रिकाम्॥ १२२॥
देशिकेन्द्रः समादाय स्थापयेत् पल्लवोपरि। कल्पवृक्षफलानां हि मत्या विशदधीर्गुरुः॥ १२३॥
पट्टाम्बरयुगेनैव घटं पश्चात् प्रवेष्टयेत्। प्रधानकुम्भं संस्थाप्य वेद्यामेवं गुरूत्तमः॥ १२४॥
तोरणानां समीपेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम्। प्रागवन्मण्डलमालिख्य पद्मं चाष्टदलं शुभम्॥ १२५॥
प्रागुक्तविधिना तेषु कुम्भान् संस्थाप्य देशिकः। ध्रुवं धरां वाक्पतिं च विघ्नेशं तेषु पूजयेत्॥ १२६॥
आग्नेयादिषु कोणेषु कुम्भान् संस्थाप्य पूर्ववत्। अमृतं दुर्जयं चैव सिद्धार्थं मङ्गलं तथा॥ १२७॥
सम्पूज्य वह्निकोणादिष्विन्द्रादीनथ पूजयेत्। पूर्वादिष्वष्टकुम्भेषु तेषां मन्त्रैस्तु वैदिकैः॥ १२८॥
पुनः पूर्वादिकुम्भेषु पूजयेद् दिग्गजानपि। ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ॥ १२९॥
पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च देशिकः। पुनर्वेद्यां गुरुर्गत्वा उपविश्य निजासने॥ १३०॥
सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रेण मूर्तिं तस्मिन् गुरूत्तमः। तस्यां मूर्तौ समावाह्य पूजयेदिष्टदेवताम्॥ १३१॥
स्मृत्वा मूलमनुं मन्त्री सम्यङ्नाडीपथा ततः। निर्गमय्य च चैतन्यं नासिकाग्रविनिर्गतम्॥ १३२॥
अञ्जलौ मातृकापद्मे महः पुष्पान्विते गुरुः। मस्तकान्तं समुत्थाप्य तस्यामावाहयेत् ततः॥ १३३॥
संस्थापनं प्रथमतः सन्निधानमतः परम्। सन्निरोधं च सकलीकरणं त्ववगुण्ठनम्॥ १३४॥
अमृतीकरणं परमीकरणं स्वस्वमुद्रया।

सन्निरोधं चेति चकारात्सम्मुखीकरणमपि ज्ञेयम्॥

क्रमाद् विदध्याच्च तत उपचारान् प्रकल्पयेत्। आसनादिप्रसूनान्तानुपचारान् प्रकल्प्य च॥ १३५॥
तत्तन्मन्त्रविधानेषु प्रोक्ताङ्गावरणान्यपि। सर्वान्ते लोकपालानां तदस्त्राणां च पूजनम्॥ १३६॥
विधाय पूजामेवं हि धूपदीपनिवेद्यकैः। इति।

प्रपञ्चसारे—

कृते निवेद्ये च ततो मण्डलं परितः क्रमात्। मङ्गलाङ्कुरपात्राणि स्थापनीयानि मन्त्रिणा॥ १॥

इति॥ तथा—

वेदिकाया दक्षभागे कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम्। संस्थाप्य वह्निं संस्कृत्य वैश्वदेवं समाचरेत्॥ १३७॥
तत्र प्रणवपूर्वाभिर्हुत्वा व्याहृतिभिः पुनः। मूलाणुना ततो हुत्वा साज्येन हविषा सुधीः॥ १३८॥

पञ्चविंशतिधा पश्चाद्धुत्वा व्याहृतिभिः पुनः। सम्पूज्य तां चन्दनाद्यैः पीठमूर्तौ तु योजयेत्॥ १३९॥
अग्निं विसृज्य शिष्टेन पायसेन बलिं हरेत्। पार्षदेभ्यश्चन्दनादिपुष्पाक्षतसमन्वितम्॥ १४०॥
तत उत्थाप्य नैवेद्यं तत्स्थलं शोधयेत् सुधीः। पुनर्यजेच्चोपचारैः पञ्चभिर्दर्शयेत् ततः॥ १४१॥
छत्रं च चामरं पश्चाद् दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम्।

छत्रं चेति चकाराद्दर्पणव्यजनेऽपि गृह्येते॥

सहस्रं च जपेन्मन्त्री मूलमन्त्रं समाहितः। देवतायै निवेद्याथ तं जपं सम्पदे ततः॥ १४२॥
ईशानदिशि यः पूर्वं स्थापितो विकिरोऽत्र च। सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं करकं जलपूरितम्॥ १४३॥
न्यसेदत्र यजेदस्त्रदेवतां घोररूपिणीम्। पश्चिमास्याम्[1] खड्गखेटधारिणीं सिंहसंस्थिताम्॥ १४४॥
तिष्ठन् सम्पूज्य च ततो गृहीत्वा तं प्रदक्षिणम्। भ्रमेदन्तस्तु रक्षेति लोकेशानामितीरयन्॥ १४५॥
नालयुक्तेनोदकेन देवतां भावयेत्ततः। स्वस्थाने स्थापयेत्तं तु फण्मन्त्रेण ततोऽर्चयेत्॥ १४६॥
उपविश्य तु भूयोऽस्त्रं गन्धाद्यैर्मन्त्रवित्तमः। ततो वह्निं सुसंस्कृत्य चरुं गोपयसा पचेत्॥ १४७॥
नवे ताम्रादिजे पात्रे क्षालिते च शराणुना। मूलाणुनाभिमन्त्र्याथ तण्डुलान् शालिसम्भवान्॥ १४८॥
तिथिप्रसृतिमानेन शराणुं प्रजपन् क्षिपेत्। प्रक्षालितेन पात्रेण पात्रवक्त्रं पिधाय च॥ १४९॥
हुंमन्त्रेण ततो मूलमनुना देशिकोत्तमः। पचेद् गुरुः प्राङ्मुखस्तु स्विन्ने तमभिघारयेत्॥ १५०॥
मूलेन स्रुवसंस्थेन घृतेनाथावतारयेत्। हुंमन्त्रेणास्त्रसङ्क्लृप्ते कुशास्तीर्णे विभज्य तत्॥ १५१॥
त्रिधा त्वेकं देवतायै परं वह्नौ निवेदयेत्। शिष्टं शिष्येण सहितो गुरुर्भुञ्जीत मन्त्रवित्॥ १५२॥
कृताचमन आचान्तं शिष्यमानीय मन्त्रवित्। प्रादेशमात्रं ह्रक्लृप्तं यथोक्तं दन्तधावनम्॥ १५३॥
शिष्याय दद्यात्स रदान् विशोध्य क्षालितं त्यजेत्।

आचान्तमत्र च यथाविधि तच्छिखाया बन्धैः सुरक्षितममुं प्रविधाय मन्त्री।
वेद्यां शयीत कुशसंस्तरणे रजन्यां शिष्येण सार्धममुना गदितोऽधिवासः॥ १५४॥

ताम्रादीत्यादिपदेन मृण्मयग्रहणम्। तल्लक्षणमुक्तं कात्यायनेन—

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी। मृण्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते॥ १॥

इति। समिन्मात्रा प्रादेशप्रमाणा "प्रादेशान्नाधिकानूना" इति कपिलवचनात्। तिथिप्रसृतिः पञ्चदशप्रसृतिः, शराणुरस्त्रमन्त्रः, तण्डुलांस्त्रिःक्षालितान्। तदुक्तं गोबिलेन "त्रिःफलीकृतांस्तण्डुलान् त्रिर्देवेभ्यः प्रक्षालयेदित्याहु"-रिति॥ कुशलो दक्षस्तेन शृतमिव प्रदक्षिणम्। ततः ऊर्ध्वमवदानक्रियाक्षममिति[2]। स्विन्न इति—

सुशाखोत्तश्च सुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः। न चातिशिथिलः पाच्यो न च वीतरसो भवेत्॥ १॥

इत्युक्तलक्षणे घृतेन संस्कृते, हुंमन्त्रेणावतारयेदिति पूर्वेणान्वयः। अत्र हुंमन्त्रेणेत्यादिषु तत्तत्कल्पोक्तकवचमन्त्रा-स्त्रमन्त्रादयो ज्ञेयाः, न तु हुंमात्रं फण्मात्रं वा॥ अथाग्निस्थापनं नारदपञ्चरात्रे—

कुण्डस्यारम्भकाले तु संस्कारा न कृता यदि। निष्पन्नस्य च ते सर्वे विधेयाः स्युः क्रमेण वै॥ १॥

---

१. 'मस्यां' क. पाठः। २. एतस्य मूलपद्यं न दृश्यते।

इति।। उत्तरतन्त्रे–

होमकर्म ततो वक्ष्ये सकलागमसम्मतम्। सुसंस्कृते गुरोः कुण्डे संस्कारैश्च यथाविधि।। १।।
ते दशाष्टाधिकाः प्रोक्ताः सर्वागमविशारदैः। मूलाणुना च संवीक्ष्य सम्प्रोक्ष्यास्त्राणुना ततः।। २।।
कुशैः सन्ताड्य चास्त्रेण प्रोक्षयेत् कवचाणुना। खननं स्याच्छरेणाथ तेनैवोद्धार ईरितः।। ३।।
पूरणं च हृदास्त्रेण समीकुर्याच्च सेचनम्। कवचेनाथ शस्त्रेण कुट्टनं वर्मणा मतम्।। ४।।
मार्जनं च विलेपं च सञ्चिन्त्य च कलात्मताम्। कुर्यात् त्रिसूत्रीकरणं नमोमन्त्रेण पूरयेत्।। ५।।
शरेण वज्रीकरणं कुशैः कुर्याच्चतुष्पथम् । कवचेनेन्द्रियाणां चाप्युद्घाटनमथाचरेत्।। ६।।
एवमुक्तैस्तु संस्कारैर्होमे कुण्डानि देशिकः। संस्कुर्यादथवा तानि चतुर्भिः प्रथमोदितैः।। ७।।

शरेण तत्तदङ्गभूतास्त्रमन्त्रेण, प्रोक्षणमुत्तानहस्ताग्रेण। अभ्युक्षणं मुष्टिबन्धेनासेचनम्। उद्धारः खातमृदा। पूरणमन्यमृदा। उक्तं च नारदपञ्चरात्रे–

गृहीत्वा चैकदेशात्तु कुण्डमध्यात्तु मृत्तिकाम्। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु हृदयेनाथ पूरयेत्।। १।।

सेचनमभ्युक्षणमेव, शस्त्रेणास्त्रमन्त्रेण। वर्मणेत्येतदग्रिमेषु चतुर्षु सम्बध्नाति। तदुक्तं सोमशाम्भुना–

सम्मार्जनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम्। त्रिसूत्रीपरिधानं च वर्मणाभ्युक्षणं हृदा।। १।। इति।

कलारूपप्रकल्पनं सोमसूर्याग्निकलारूपप्रकल्पनम्। त्रिसूत्रीकरणं सूत्रत्रयकल्पनम्। हृदयेन पूजनं तु मेखलात्रयस्यैव।। तदुक्तं नारदपञ्चरात्रे–

समभ्यर्च्य ततो बाह्ये मध्यतः प्रणवेन च। तेनैव विधिना नाभिं पूजयेच्चन्द्रसन्निभाम्।। १।।
मेखलात्रयपूजायां हृन्मन्त्रं तु प्रपूजयेत्। इति।

वज्रीकरणं वज्रवद्दृढचिन्तनम्। चतुष्पथं कुशैश्चतुर्दिक्षु मार्गचतुष्टयकरणम्। शारदातिलके तु–"तनुत्रेण तनुयादक्षपाटन"– मित्युक्तम्। अक्षपाटनलक्षणं तु नारदपञ्चरात्रे–

अच्छिन्नाग्रैस्तदा दर्भैरस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः। कुण्डभित्तिगणं सर्वं वर्मणा परिभूषयेत्।। १।।
इत्येवमक्षपाटाख्यं कुण्डसंस्कारमुत्तमम्।

अत्रेन्द्रियाणामुद्घाटनमिति यदुक्तं तत्त्वेवमेव कर्तव्यम्। अक्षशब्दस्येन्द्रियवाचकत्वादक्षपाटनमिन्द्रियाणामुद्घाटनमित्यर्थः। हुंकारेण राक्षसनिवारणमिति केचित्। आदिक्षान्तानां वर्णानां पाटनं व्याप्तिरित्यपरे। पक्षान्तरमाह– अथ वेति। प्रथमोदितैर्वीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणैः। तथा– "त्रिंशस्त्रिंशो लिखेल्लेखाः प्रागुदग्रा हृदाणुना"। उदग्रा इति दिव्यत्वादुदगग्राः।

स्मृताश्च प्राङ्मुखाग्राणां देवा विषावीशवासवाः। उदङ्मुखाग्ररेखाणां ब्रह्मसूर्येन्दवः क्रमात्।। १।।

अत्र रेखालिखने कुत आरम्भः कुत्रावसानमित्याकाङ्क्षायामाह सौत्रामणीतन्त्रे–

प्राचीमूर्धमुदक्संस्थं दक्षिणारम्भमालिखेत्। उदगग्रं पुरःसंस्थं पश्चिमारम्भमालिखेत्।। १।।

प्राचीमूर्धं प्रागग्रम्। उदगग्रं पुरःसंस्थं पूर्वावसानकम्। नारदपञ्चरात्रे–

उल्लिखेदस्त्रराजेन दर्भकाण्डेन यत्नतः। भूमावभ्यन्तरे कुण्डे दक्षिणाशादितः क्रमात्।। १।।
उत्तराशावधिं यावद्द्याद्रेखात्रयं समम्। प्रत्यग्भागात्समारभ्य यावत्पूर्वावधिं तथा।। २।।

इति।। अत्र हृन्मन्त्रास्त्रमन्त्रयोर्विकल्पः। तथा—''अथवाग्नियुगान्तःस्थं वह्निगेहं (कोणं) लिखेत् क्रमात्''।। अग्नियुगं त्रिकोणद्वयरूपं षट्कोणं, वह्निकोणं त्रिकोणम्। अथ रेखाषट्कोणयोर्विकल्पः। तथा यामले—''षट्कोणेनावृतं देवि त्रिकोणं तत्र संलिखेत्।'' इति। अत एव नारदपञ्चरात्रे रेखामात्रमुक्तम्। शारदातिलके—''वर्मणाभ्युक्ष्य तारेण योगपीठमथार्चयेत्''। इति। सौत्रामणीतन्त्रे तु— ''प्रोक्षयेद्वाग्भवेन वे''त्युक्तं वाशब्दः प्रणवापेक्षया। अभ्युक्ष्य कुशसलिलेन। ''अभ्युक्ष्य च कुशाम्भोभि''रिति योगिनीतन्त्रवचनात्। प्रपञ्चसारे— ''प्राणाग्निहोत्रविधिनाप्यावसथीयेऽनलस्थाने''। प्राणाग्निहोत्रविधिरपि तत्रैव ''मध्येन्द्रवरुणशशियमदिग्गतानि क्रमेण कुण्डानि। आवसथ्यसभ्याहवनीयान्वाहार्यगार्हपत्यानि''।। इति। उत्तरतन्त्रे—''सम्प्रोक्ष्य प्रणवेनाथ योगपीठं समर्चयेत्''। योगपीठार्चनं प्रयोगे वक्ष्यते।

तत्र शक्तिं च संस्मृत्य सम्यगृतुमतीं शुभाम्। अतीन्द्रियाभां सकलजगदात्मस्वरूपिणीम्।। १।।
ईशानसहितां तत्र सम्यग्गन्धादिभिर्यजेत्। शक्तिमन्त्रेण तां शक्तिमीशनं मूलमन्त्रतः।। २।।
अभ्यर्च्य मूलवित् सम्यक् मणिजं वाऽऽरणेयकम्। कुलीनद्विजगेहोत्थं पात्रे हुतवहं ततः।। ३।।
आनीयास्त्रेण नैर्ऋत्यां क्रव्यादांशं परित्यजेत्। देवांशं मूलमन्त्रेण स्थापयेदग्रतः सुधीः।। ४।।
पश्चात्तमग्निं संस्कारैः संस्कुर्याद्वीक्षणादिभिः। प्रदीपकलिकाकारं तेज आवाह्य यत्नतः।। ५।।
ऐक्यं जाठरबैन्दववह्निभ्यां पार्थिवस्य च। स्मृत्वाग्निबीजकेनास्य चैतन्यं योजयेदथ।। ६।।
ओङ्कारेणाभिमन्त्र्याथ धेनुमुद्रामृतीकृतम् । संरक्ष्य च शेरणाथ कवचेनावगुण्ठयेत्।। ७।।
ततः सम्पूज्य कुण्डस्य भ्रामयेत् त्रिःप्रदक्षिणम्। प्रणवेन ततः स्वस्य सम्मुखं स्वीयकुण्डके।। ८।।
देव्या योनौ तत्र जानुसृष्टभूमिश्च देशिकः। शिवबीजमिति ध्यात्वा निक्षिपेदाशुशुक्षणिम्।। ९।।
तत आचमनीयं च देव्या देवस्य कल्पयेत्।

वैष्णवयागे तु नारदपञ्चरात्रे—

तत्र नारायणाख्यस्य शक्तिर्विद्योतलक्षणा। लक्ष्म्याकृतिपदं प्राप्ता अमृतामृतजीवनी।। १।।

इति।। तत्र कपिलपञ्चरात्रे—

कामोन्मत्तं ततः कृष्णं लक्ष्मीमृतुमतीं स्मरेत्। तयोः सङ्गमयोगेन वह्निः सञ्जातसंस्थितिः।। १।।

इति।। कुम्भसम्भवोऽप्याह—

लक्ष्मीमृतुमतीं भद्रां प्रभां नारायणस्य च। ग्राम्यधर्मेण सञ्जातमग्निं तत्र विचिन्तयेत्।। १।।

पात्रे ताम्रादिपात्रे।। यदाहात्रिः—

पात्रान्तरेण पिहिते ताम्रपात्रादिके शिवे[१]। अग्निप्रणयनं कुर्याच्छरावे तादृशेऽपि वा।। १।।

पिहिते कवचमन्त्रेण। तदुक्तं पिङ्गलामते—

अस्त्रेणाग्निं समाधाय कवचेन पिधाय च। क्रव्यादांशं च नैर्ऋत्यां त्यजेदस्त्रेण पार्वति।। १।।

इति।। तथा नारदपञ्चरात्रे— ''तैजसे ताम्रपात्रे वा मृण्मयेऽभिनवेऽपि वा''। इति।। तैजसपदं गोवलीवर्दन्यायेन

१. 'शुभे' क. पाठः।

ताम्रेतरपरम्। एतेन—

शरावे भिन्नपात्रे वा कपाले चोल्मुकेऽपि वा। नाग्निप्रणयनं कुर्याद् व्याधिहानिभयावहम्॥ १॥

इति सरस्वतीसारलिखितवचनं पुरातनमृत्पात्रपरमभिनवेत्युक्तेः। भैरवीतन्त्रे तु—"योनावेवं विन्यसेत् स्वाभिवक्त्रं पश्चादेवं मूलमन्त्रेण मन्त्री" इत्युक्तं तदत्र प्रणवमूलमन्त्रयोर्विकल्पः॥ जाठर इति— बिन्दुः परमात्मा तस्याग्नीषोमकत्वात्तद्भवो वह्निर्बैन्दवः"। पार्थिवो भौमः। अमृतीकृतं वंबीजेन। "अमृतीकरणं ततो विदध्याज्जलबीजेन सबिन्दुना कृशानोः।" इति योगिनीतन्त्रवचनात्। शरेणास्त्रेण। उत्तरतन्त्रे—

उक्त्वा चितिपिङ्गलपदं हनयुग्मं पचद्वयम्। दहयुग्मं च सर्वज्ञं आज्ञापय ततो द्विठः॥ १॥

अमुं मन्त्रं प्राभाष्यैव कृशानुं ज्वालयेत्ततः। इति।

द्विठः स्वाहाकारः। प्रपञ्चसारे—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्॥ १॥

अनेन ज्वलितं मन्त्रेणोपतिष्ठेद्धुताशनम्।

इति॥ सर्वज्ञमिति शब्दकर्मणि द्वितीया। मन्त्रे तु सम्बुद्ध्यन्तं ज्ञेयम्। "सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा" इति दक्षिणामूर्तिवचनात्। ज्वालयेत् कुशैर्मुखेन वा। "ततः प्रज्वालयेत् कुशैः" इति कुम्भसम्भवचनात्। मुखेनैव धमेदग्निं मुखादेषोऽध्यजायत" इति कात्यायनवचनाच्च। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

ततः प्रविन्यसेज्जिह्वा देहे मन्त्रैर्विभावसोः। सलिङ्गगुदमूर्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात्॥ १॥

ससर्वाङ्गेषु सर्वास्ता[1] वक्ष्यन्ते त्रिविधा अपि। हिरण्या कनका रक्ता कृष्णा चैव तु सुप्रभा॥२॥

बहुरूपातिरक्ता च जिह्वाः सप्तेति सात्त्विकाः। अनलेरर्घिबिन्द्वन्तसादियान्ताक्षरान्विताः॥ ३॥

इति॥ अनलो रेफः, ईरः यकारः, अर्घिरूकारः। अयं क्रमो बीजोद्धारसौकर्यायैव। न्यासे तु—

सलिङ्गगुदमूर्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात्। विन्यसेदतिरक्तान्ताः सर्वाङ्गे बहुरूपिणीम्॥ १॥

इति सिद्धान्तशेखरवचनात् सर्वाङ्गे बहुरूपां न्यसेत्। प्रपञ्चसारे—

मन्त्री प्रविन्यसेद्भूयो वह्नेरङ्गानि वै क्रमात्। सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठ पुरुषस्तथा॥ १॥

धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतीरितः। अङ्गमन्त्रान् क्रमादष्ट मूर्तीश्चापि प्रविन्यसेत्॥ २॥

मूर्धांसपार्श्वकट्यन्धुकटिपार्श्वांसकेषु च। प्रादक्षिण्येन विन्यसेद् यथावद्देशिकोत्तमः॥ ३॥

जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च। अश्वोदरजसंज्ञश्च सवैश्वानर एव च॥ ४॥

कौमारतेजाश्च तथा विश्वदेवमुखाह्वयौ। स्युरष्ट मूर्तयो वह्नेरग्नये पदपूर्विकाः॥ ५॥

प्रणवादिनमोन्ताश्च" इति। प्रादक्षिण्येन शिर आरभ्य वामांसादिक्रमेण दक्षिणांसावधि न्यसेदिति। अन्धु लिङ्गं, गुदमिति केचित्। मुखशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते[2]। "कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखस्तथा" इति शारदातिलकवचनात्। उत्तरतन्त्रे—

प्रादक्षिण्यक्रमेणैव संसिच्य च ततो जलैः। मेखलोपरि संशुद्धैः पुनर्दर्भचतुष्टयैः॥ १॥

दिक्क्रमेण परिस्तीर्य दिक्ष्वैन्द्रीवर्जमात्मवित्। निक्षिपेत् परिधीन् ब्रह्मविष्ण्वीशांस्तत्र पूजयेत्॥२॥

१. 'जिह्वास्ता' क. पाठः। २. 'सम्बध्नाति' क. पाठः।

दर्भचतुष्टयैः प्रागुदगग्रैः। "पूर्वाग्रैरुत्तराग्रैश्च दर्भैरग्निं परिस्तरेत्"। इति गणेश्वरपरामर्शिनीवचनात्। "प्रागग्रैरथ दर्भैर्धनददिशाग्रैः परिस्तरेत् कुण्डम्।" इति भैरवीतन्त्रवचनात्। त्रिमेखलकुण्डे मध्यमेखलायां परिस्तरणपरिधिप्रक्षेपः कार्यः। तदुक्तं योगिनीतन्त्रे—

एकमेखलके कुण्डे मेखलाधः परिस्तरेत्। द्विमेखले द्वितीयायां मध्यमायां त्रिमेखले।। १।।

इति।। ननु पश्चिममेखलासंलग्नतया नालस्य विद्यमानत्वान्मध्यमेखलायां परिस्तरणपरिधिप्रक्षेपः कथं भवेदित्याकाङ्क्षायामाह उत्तरतन्त्रे—

नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनस्य तु। रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान् मध्यस्थमेखलोपरि।। १।।

इति। "स्थण्डिले सिकतानां तु बाह्ये भूमेः परिस्तरेत्"। इति परिधयस्तु कात्यायनेनोक्ताः— "परिधीन् परिदधात्यार्द्रनैकवृक्षीयान् बाहुमात्रान् पलाशवैकङ्कतकाश्मर्यबैल्वादि" इति। "स्थण्डिले सिकतानां बाह्येऽथ विन्यसेत् परिधी"निति च। ऐन्द्रीवर्जे परिधीन् दिक्षु क्षिपेदिति सम्बन्धः। दिक्षु पश्चिमदक्षिणोत्तरासु। "स्थविष्ठो मध्यमः। अणीयान् द्राघीयान् दक्षिणार्थः। कनिष्ठो ह्रसिष्ठ उत्तरार्थः' इति सूत्रितत्वात्। "पश्चिमे उत्तराग्रमन्ययोः पूर्वाग्रं चे"ति। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्— "प्रणीताप्रोक्षणीयुग्मे जलं चाथ घृतं तथा" इति।। तत्पात्रस्थापनप्रकारमाह कुम्भसम्भवः—

प्राणानायम्य विधिवत् परिस्तीर्य कुशान्तरैः। स्वगृह्योक्तविधानेन वायुदेशात्ततो[2] मुने।। १।।
पात्राण्यासाद्य विधिवदिध्मं तन्त्रेण मन्त्रवित्। तान्यवोक्ष्य पवित्रेण चोत्तानानि विधाय च।। २।।
पुनः प्रोक्ष्य नयेत्[3] पात्रं परिपूर्य शुभाम्बुना। दत्त्वाक्षतान् पवित्रं च तदुत्पूय निधापयेत्।। ३।।
दिश्युत्तरस्यां तत्पात्रं प्रणीतेत्युच्यते बुधैः। ततः किञ्चित् प्रणीताम्बु प्रोक्षण्यादाय तज्जलैः।। ४।।
यज्ञसाधनसम्भारं प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रतः। इति।

उत्तरतन्त्रे—

आसनं च ततो वह्नेः कल्पयित्वा प्रपूजयेत्।
आसनं योगपीठं च प्रयोगे वक्ष्यते तथा—
कोणषट्के च मध्ये च जिह्वा अङ्गानि केसरे। तद्बाह्ये वसुमूर्तीश्च मध्ये वह्निं ततो यजेत्।। १।।
वक्ष्यमाणेन विधिना गन्धपुष्पादिभिः सुधीः। इति।

प्रपञ्चसारे—

कोणषट्के च मध्ये च जिह्वाभिः केसरेषु च। अङ्गमन्त्रैस्ततो बाह्ये चाष्टभिः मूर्तिभिः क्रमात्।। १।।
ततोऽग्निमनुना तेन मन्त्री मध्ये च संयजेत्। वैश्वानर जातवेद प्रोक्त्वा चेहावहेति च।। २।।
लोहिताक्षपदं सर्वकर्माणीति समीरयेत्। ब्रूयाच्च साधयेत्यन्तं वह्निजायान्तिको मनुः।। ३।।

इति। मन्त्रे सर्वाणि पदानि सम्बुद्ध्यन्तानि ज्ञेयानि।।

त्रिनयनमरुणप्ताबद्धमौलिं सुशुक्लांशुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम्।
अभिमतवरशक्तिस्वस्तिकाभीतिहस्तं नमत कनकमालालङ्कृतांसं कृशानुम्।। ४।।
जिह्वा ज्वालारुचः प्रोक्ता वराभययुतानि च। अङ्गानि मूर्तयः शक्तिस्वस्तिकोद्यतदोर्द्वयाः।। ५।।

१. 'नमेत्' क. पाठः। २. 'दितो' ग. पाठः। ३. 'नमेत्' क. पाठः।

कोणषट्के च मध्ये चे''ति सम्बन्धः। तदुक्तं सोमशम्भुना—

''रुद्रेन्द्रवह्निमांसादवरुणानिलगोचरे। हिरण्याद्याः स्थिता वह्ने रसनाः षडनुक्रमात्॥ १॥

मध्यतो बहुरूपा तु'' इति॥ गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

मध्ये च कोणषट्के च जिह्वाः सप्त यजेत्ततः। हिरण्या तप्तहेमाभा शूलपाणिदिशि स्थिता॥ १॥

वैदूर्यवर्णा कनका प्राच्यां दिशि समाश्रिता। तरुणादित्यसङ्काशा रक्ता जिह्वाग्निसंस्थिता॥ २॥

कृष्णाञ्जनचयप्रख्या नैर्ऋत्यां दिशि संस्थिता। सुप्रभा पद्मरागाभा वारुण्यां दिशि संस्थिता॥ ३॥

अतिरक्ता जपाभासा वायव्यां दिशि संस्थिता। बहुरूपा यथार्थाभा दक्षिणोत्तरमध्यगा॥ ४॥

इति॥ नारदपञ्चरात्रे—

प्रभा दीप्ता प्रकाशा च मरीचिस्तापिनी तथा। कराला लेलिहा चेति कुण्डं व्याप्य व्यवस्थिताः॥ १॥

ईशपूर्वाग्निदिग्भागे प्रभाद्यं त्रितयं स्थितम्। रक्षोवारुणवायव्ये मरीच्याद्यं त्रयं तथा॥ २॥

सौम्ये च मध्यमे याम्ये स्थितैका लेलिहाभिधा। इति।

हिरण्यादीनामेव नामान्तराणि प्रभादीनि। यद्वा वैष्णवयागे त्वेताः स्वतन्त्राः। तथा वायवीयसंहितायाम्—

हिरण्या प्रागुदग्जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिता। रक्ताग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभा मता॥ १॥

अतिरिक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभाः''। अन्या च अरुणा।

''त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपासमाह्वया। तच्छिखैका दक्षिणतो ज्वलन्ती वामतः परा।''

इति सात्त्विकजिह्वाः। राजस्यस्तामस्यश्च वक्ष्यन्ते॥ केचित्तु—

कुण्डस्य मध्ये ह्यथ सा प्रशस्ता जिह्वा हिरण्या भुवि कार्मणादौ॥

स्तम्भनादिषु मता कनकान्तर्द्वेषणादिषु मता खलु रक्ता।

मारणे निगदिता भुवि कृष्णा सुप्रभा बुधवरैरिह शान्त्याम्॥ १॥

उच्चाटनेऽतिरक्तान्तः'' इति वदन्ति। ज्वालारुच इति जिह्वानां ध्यानम्। ''जिह्वाः सर्वाः परिज्ञेया ज्वालाभासाः स्वरूपतः''। इति प्रयोगसारवचनात्। ''एता ज्वालारुचा वीता वराभययुता अपि''। इति गणेश्वरपरामर्शिनीवचनाच्च। प्रपञ्चसारे—

संस्कृतेन घृतेनाभिद्योतनोद्द्योतनेन च। व्याहृत्यनन्तरं तेन जुहुयान्मनुना त्रिशः॥ १॥

अभिद्योतनोद्द्योतनाख्यसंस्कारद्वयसंस्कृतेनेति सम्बन्धः। अपरे तु संस्कारान्तरप्यङ्गीकुर्वन्ति। पिङ्गलामते—

''कुण्डे चाष्टादश ज्ञेयाः संस्काराः शिवशास्त्रतः। घृते स्रुचि स्रुवे चाष्टौ'' इति॥ उत्तरतन्त्रे—

समादाय घृतस्थालीमस्त्रमन्त्रेण सेचयेत्। घृतं तत्र समापूर्य वीक्षणादिसुसंस्कृतम्॥ १॥

वायव्ये बाह्यतोऽङ्गारान् कृत्वा तेषु हृदा न्यसेत्। तापनं तु समुद्दिष्टं कुशद्वयमतः क्षिपेत्॥ २॥

आज्ये प्रज्वलितं वह्नौ विन्यसेत्तु घृतान्वितम्। पवित्रीकरणं दर्भद्वयेन ज्वलितेन तु॥ ३॥

वर्मणाज्यं च नीराज्यं वह्नौ दर्भद्वयं क्षिपेत्। अभिद्योतनमेतत् स्यादुद्द्योतनमथोच्यते॥ ४॥

कुशं प्रज्वलितं वह्नौ विन्यसेत्तद् हृदा क्षिपेत्। वह्नावुद्वास्य च घृतमङ्गारानग्निषु क्षिपेत्॥ ५॥

अपः संस्पृश्य मन्त्रज्ञः कुर्यादुत्पवनं ततः। अस्त्रमन्त्रं जपन्मन्त्री कुशौ प्रादेशमात्रकौ॥ ६॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च गृहीत्वा घृतमुत्पवेत्। ततो हृदा कुशाभ्यां तु स्वाभिमुख्येन सम्प्लवेत्॥७॥

घृतं तत्स्यात् सम्प्लवनं षट् संस्काराः प्रकीर्तिताः।

इति।। आज्यमिति—

उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम्। अधमं छागलीजातं तस्माद्गव्यं प्रशस्यते।। १।।

इति पिङ्गलामतोक्तं वीक्षणादिसुसंस्कृतं घृतं समापूर्य मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य पश्चादुक्तसंस्कारैः संस्कुर्यात्।। उक्तं च शैवागमे—

गव्यमाज्यं समादाय मूलमन्त्राभिमन्त्रितम्। स्वकां ब्रह्ममयीं मूर्तिं सञ्चिन्त्य परितापयेत्।। १।।

इति।। वायवीयसंहितायाम्— "न्यस्य मन्त्रं घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसंज्ञिताम्" इति। बाह्यतः कुण्डव्यासादिति शेषः। प्रज्वलितं कुशद्वयं हृदा आज्ये क्षिपेदित्यन्वयः। नीराज्याभितः परिभ्राम्य दर्भद्वयं, दर्भाणामग्नौ प्रक्षेपः प्रतिपत्तिकर्म, अत एव मन्त्रोऽपि नोक्तस्तेन दर्भनाशे सति अकृतेऽपि प्रक्षेपे न वैगुण्यमिति। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां हस्तद्वयेनेति शेषः। उत्पवेदग्निसम्मुखमित्यर्थः।। शैवागमे—

प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः। धृताभ्यां सम्मुखं वह्नेरस्त्रेणोत्पवमाचरेत्।। १।।

इति।। उभयत्र वह्निप्रक्षेप एव कुशानां प्रतिपत्तिकर्म।। पुनस्तत्रैव—

गृहीत्वा स्रुक्स्रुवावूर्ध्वमुखावधोमुखौ क्रमात्। प्रताप्याग्नौ त्रिधा दर्भमूलध्याग्रकैः स्पृशेत्।। १।।

मूलमध्याग्रदेशे तु आत्मविद्याशिवात्मकम्। क्रमात्तत्त्वत्रयं न्यस्येत् ह्रींह्रींहूंबीजकैः प्रिये।। २।।

स्रुचि शक्तिं स्रुवे शम्भुं विन्यस्य हृदयाणुना। त्रिसूत्रवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभिः।। ३।।

कुशानामुपरिष्टात्तु स्थाप्यावेतौ स्वदक्षिणे।

दर्भमूलादिभिः स्रुक्स्रुवयोर्मूलादिस्पर्शः। स्पर्शमभिधायोक्तमुत्तरतन्त्रे—

तत आदाय वामेन प्रोक्षयेद्दक्षपाणिना। भूयोऽग्नौ तौ प्रताप्याथ कुशानग्नौ निवेदयेत्।। १।।

प्रताप्य त्रिश इति शेषः।। उक्तं च पिङ्गलामते—

पुनस्त्रिशः प्रताप्याधोमुखावग्नौ कुशान् क्षिपेत्। मूलमध्याग्रके न्यसेच्छक्तीरिच्छादिकाः क्रमात्।। १।।

इति। इच्छाज्ञानक्रियाः शक्तयः।। उत्तरतन्त्रे—

कुशद्वयं घृते न्यस्य ततः प्रादेशसम्मितम्। सग्रन्थि कृत्वा साग्रं[1] द्वौ शुक्लकृष्णौ विचिन्तयेत्।। १।।

पक्षौ वाम इडां दक्षे पिङ्गलां मध्यतस्ततः। सुषुम्नां संस्मरेन्मन्त्री ततो होमं समाचरेत्।। २।।

सग्रन्थि कुशद्वयमित्यन्वयः।।

दक्षभागाद्गृहीत्वाज्यं स्रुवेणाथ हृदाणुना। जुहुयाद्दक्षनेत्रेऽग्नेः स्वाहान्तायाग्नये ततः[2]।। १।।

गृहीत्वा वामभागाच्च घृतं वामेऽग्निलोचने। जुहुयाच्च हृदा सोमाय स्वाहेति च देशिकः।। २।।

गृहीत्वा मध्यतस्त्वाज्यमग्नेरलिकलोचने। हृदाणुनाग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति जुहुयात् सुधीः।। ३।।

दक्षभागाद्गृहीत्वा तु हृदाज्यं जुहुयात् सुधीः। वक्त्रे वह्नेः स्विष्टकृते स्वाहेति च ततो गुरुः।।४।।

सर्वत्र हृन्मन्त्रस्त्वाज्यग्रहणे ज्ञेयः।। शारदातिलके—

सताराभिर्व्याहृतिभिराज्येन जुहुयात् पुनः। जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवारं देशिकोत्तमः।। १।।

---

१. 'साग्रौ' क. ग. पाठः। २. 'त्वतः' क. पाठः।

व्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ताभिस्तिसृभि:। प्रपञ्चसारे–

गर्भाधानादिका वह्ने: समुद्वाहावसानिका:। क्रियास्तारेण वै कुर्यादाज्याहुत्यष्टभि: क्रमात्।। १।।

इति।। शारदातिलके– "गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा" इति। वायवीयसंहितायाम्–

जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत्। नालापनयनं कृत्वा तत: संशोध्य सूतकम्।। १।।
शिवाग्निरिति नामास्य कृत्वाहुतिपुर:सरम्। पित्रोर्विसर्जनं कृत्वा चूडोपनयनादिकम् ।। २।।
अथोद्वाहावसानं यत् कृत्वा संस्कारमस्य तु।

इति। शिवाग्निरिति शैवे। अन्यत्र तु नारायणाग्निर्दुर्गाग्निरित्यादि।। उत्तरतन्त्रे–

गर्भाधानं पुंसवनं समीन्तोन्नयनं तथा। जातकर्म ततो नामकरणं चोपनिष्क्रमम्।। १।।
अन्नप्राशनचौलोपनयनानि तत: परम्। महानाम्न्यं महापूर्वव्रतं च तदनन्तरम् ।। २।।
अथौपनिषदं चैव गोदानं तदनन्तरम् ।समावर्तनमुद्वाहं संस्कारा मरणान्तिका:।। ३।।
क्रूरकर्मणि कर्तव्या मरणान्ताश्च देशिकै:। इति।

एतन्मन्त्रश्च[1] नारदपञ्चरात्रे–

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तत: कर्म समुच्चरेत्। सम्पादयामि स्वाहेति सर्वकर्मस्वयं विधि:।। १।।

इति।। सौत्रामणीतन्त्रे– "विवाहान्ता वाग्भवेन" इत्युक्तम्, तदेतयोर्विकल्प:। उत्तरतन्त्रे– विवाहानन्तरम् "अभ्यर्च्य वह्निं पितरौ संयोज्यात्मनि मन्त्रवित्"। इत्युक्तं यथासम्प्रदायं ज्ञेयम्।। तथा–

आद्यन्ते घृतसंश्लिष्टा: पञ्चाथ समिधो हुनेत्। जुहुयाद्रसनाङ्गाष्टमूर्तिमन्त्रै: सकृद्घृतै:।। १।।

इति।। गणेश्वरपरामर्शिन्याम्–

ततो (ऽपि) जुहुयादङ्गमन्त्राद्यैश्च सकृत् सकृत्। तन्नामान्ते निशितधी: स्वाहान्तैश्च यथाक्रमम्।। १।।

इति।। विष्णुधर्मोत्तरे–

मन्त्रेणोङ्कारपूर्वेण स्वाहान्तेन विचक्षण:। स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै[2] मन्त्रदेवताम्।। १।।

इति।। श्रुतिरपि– "यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेद्वषट् करिष्यन्" इति। स्वाहान्तमन्त्रस्तु तदन्तो न कर्तव्य:।। उत्तरतन्त्रे–

चतुर्वारं स्रुवेणाज्यं गृहीत्वा स्रुचि नि:क्षिपेत्। तेनैव तां पिधायाग्नौ हुनेत्तिष्ठन् गुरु: स्वयम्।। १।।
वौषडन्तेन वह्नेस्तु मनुना सम्पदे तत:[3]।

इति।। प्रपञ्चसारे–

जिह्वायां मध्यसंस्थायां मन्त्री ज्वालावलीतनौ। ताराद्यैर्दशभिर्मन्त्रै:[4] पूर्वपूर्वसमन्वितै:।। १।।
मनुना गाणपत्येन हुनेत् पूर्वं दशाहुती:। जुहुयाच्च चतुर्वारं समस्तेनैव तेन तु।। २।।
आज्येन साध्यमनुना पञ्चविंशतिसंख्यकम्। जुहुयात् सर्वहोमेषु सुधीरनलतृप्तये।। ३।।
तान्त्रिकाणामयं न्यायो हुतानां समुदीरित:।

इति।। गाणपत्येन महागणेशमन्त्रेण।। गणेश्वरपरामर्शिन्याम्–

---

१. 'एतत्पर्याय:' क. ग. पाठ:। २. 'जपन्' ग. पाठ:। ३. 'स्वपदेन तु' क. ग. पाठ:। ४. 'भेदै:' ख. पाठ:।

महागणेशमन्त्रेण पूर्वपूर्वयुतेन च। तारादिबीजषट्केषु करणेष्वद्रिवर्णकैः।। १।।
भिन्नेन दशधा तेन समस्तेन हुनेत् प्रिये।

इति।। मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते। इषवः पञ्च, करणानीन्द्रियाणि पञ्च, अद्रयः सप्त, बीजषट्क– इषु पदच्छेदः। चरुहोमे तु चरुमिदानीं श्रपयेत्, तत्प्रकारः प्रागेव प्रपञ्चितः।। उत्तरतन्त्रे–

सम्पूज्य देवतापीठं वह्नौ सम्यक् ततो गुरुः। अग्निरूपधरां तत्र पूजयेदिष्टदेवताम्।। १।।
आज्येन साध्यमनुना पञ्चविंशतिसंख्यकम्। हुनेन्मन्त्री चा(ज्य? ग्नि) मुखे वक्त्रैकीकरणं मतम्।।२।।
आत्माग्निदेवतानां च चिन्तयन्नैक्यमात्मवित्। एकादशाथ मूलेन हुनेदाज्येन चाहुतीः।। ३।।
नाडीसन्धानमेवं हि प्रोक्तं देशिकसत्तमैः। अङ्गप्रभृत्यावृतीनामेकैकामाहुतिं हुनेत्।। ४।।
पूर्वादिदिक्षु कुण्डेषु सर्वेष्वपि यथाविधि। गुरुर्वह्निं प्रविहरेत् संस्कृतेषूक्तवर्त्मना।। ५।।
सर्वर्त्विजश्चन्दनाद्यैः सम्पूज्य प्रोक्तदेवताम्। सर्वावरणसंयुक्तां मूलेन जुहुयुस्ततः।। ६।।
पञ्चविंशतिधा सर्पिसंयुतेन पयोन्धसा।

इति।। वायवीयसंहितायाम्–

स्रुवेणाज्यं समित्पाणिस्रुचा शेषं करेण वा। तत्तद्द्रव्येण होतव्यं तीर्थेनार्षेण वा तथा।। १।।

इति।। छन्दोगपरिशिष्टे–"दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्च्चिषि तच्च पावके"। इति।।

योऽनर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः। मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चोपजायते।। १।।

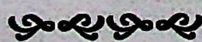
इति।। तथा प्रपञ्चसारे–

हुते तु[१] देशिकः पश्चान्मण्डले बलिमाहरेत्[२]। नक्षत्राणां सवाराणां सराशीनां यथाक्रमम्।। १।।
दद्याद् बलिं गन्धपुष्पधूपदीपकमादरात्। ताराणामश्विन्यादीनां राशिः पादाधिकं द्वयम्।। २।।
मेषादियुक्त[३]नक्षत्रसंज्ञापूर्वमनन्तरम्। देवताभ्यः पदं प्रोक्त्वा दिवानक्तं वदेत्तथा ।। ३।।
चारिभ्यश्चाथ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वै नमो वदेत्। एवं राशौ तु सम्पूर्णे तस्मिंस्तद्वत् प्रयोजयेत्।।४।।
तथा राश्यधिपानां च ग्रहाणां तत्र तत्र च। सप्तानां करणानां च दद्यान्मीनाह्वमेषयोः।। ५।।
अन्तराले बलिस्त्वेवं सम्प्रोक्तः कलशात्मकः। पुनर्निवेद्यमुद्धृत्य पूर्ववत् परिपूज्य च।। ६।।
मुखवासादिकं दत्त्वा तदा[४]तद्युक्तया पुनः। स्तुत्वा यथावत् प्रणमेद्भक्तियुक्तस्तु साधकः।। ७।।

इति।। मीनाह्वमेषयोरन्तराले ईशानपूर्वदिशोर्मध्ये।। तथा तन्त्रराजे–

प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा। कुलीरसिंहौ च तथा नैर्ऋत्यां कन्यका स्थिता।। १।।
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम्। नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनमीशे तु संस्थितम्।। २।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य–श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य–
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य–श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य–श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे द्वादशः श्वासः।। १२।।



१. 'हुनेत्तु' क. ग. पाठः। २. 'मारभेत्' ख. पाठः। ३. 'दिमुक्त्वा' ख. पाठः। ४. 'स्तुत्या' पाठः।

अथ
श्रीविद्यार्णवतन्त्रे
त्रयोदशः श्वासः



उत्तरतन्त्रे—

समुत्थायोषसि तिलैर्जुहुयुः सर्पिरन्वितैः । पुनः सोध्येन मनुना अष्टोत्तरसहस्रकम् ।। १ ।।
द्रव्यैर्विधानप्रोक्तैर्वा हुनेदष्टाधिकं शतम्। शिष्यं स्नातं पञ्चगव्यं पाययेन्मन्त्रवित्तमः ।। २ ।।
कुण्डस्याभ्याशमानीय दिव्यदृष्ट्यावलोकयेत्। हृत्पुण्डरीकाच्चैतन्यं तस्य स्वात्मनि योजयेत्।।३।।
आचार्यस्तत अध्वानं षड्विधं शोधयेत् क्रमात्। ते कलातत्त्वभुवनार्णपदा मन्त्रपूर्वकाः।। ४।।
अध्वानः षट् च सम्प्रोक्तास्तेषां लक्षणमुच्यते। कला निवृत्तिप्रमुखास्तदध्वा पञ्च कीर्तिताः।। ५।।
शैवादिनिगमैर्भिन्नास्तत्त्वाध्वानो बहुक्रमाः। तत्र शैवानि तत्त्वानि षट्त्रिंशत्प्रमितान्यथ।। ६।।
वक्ष्यन्ते शिवशक्ती च सदाशिव इतीरितः। विद्या चैतानि शुद्धानि शुद्धाशुद्धानि सप्त च।। ७।।
माया विद्या कला रागः कालो नियतिरेव च। पुरुषश्चाप्यशुद्धानि प्रकृतिर्बुद्ध्यहङ्कृतिः।। ८।।
मनश्चेन्द्रियदशकं तन्मात्रा भूतपञ्चकम्। उक्तानि शैवतत्त्वानि षट्त्रिंशन्मन्त्रवेदिभिः।। ९।।
अथ वैष्णवतत्त्वानि द्वात्रिंशत्प्रमितानि च। वक्ष्यन्ते जीवसहितः प्राणो बुद्धिर्मनस्ततः।। १०।।
दशेन्द्रियाणि तन्मात्रा भूतानां पञ्चकं तथा। हृत्पद्मं तेजसां चैव त्रयं चत्वार एव च।। ११।।
वासुदेवादयः, सौराण्युच्यन्ते भूतपञ्चकम्। तन्मात्राश्चेन्द्रियाणि स्युर्मनोऽहङ्कारबुद्धयः।। १२।।
प्रधानं चेति शक्तेस्तु तत्त्वानि स्युर्दशैव हि। (निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च ततो बिन्दुकला पुनः।। १३।।
नादः शक्तिः सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतेर्विदुः। सप्त तत्त्वानि प्रोक्तानि तन्त्रज्ञैस्त्रिपदात्मनः)।। १४।।
आत्मविद्याशिवा एते विपरीतास्त एव च। सर्वतत्त्वं च सम्प्रोक्तास्तत्त्वाध्वानस्तु देशिकैः।। १५।।
भुवनानीह सर्वाणि भुवनाध्वा प्रकीर्तितः।। इति।

भुवनानि लोकाः। ते तु कुलार्णवे—

अतलो वितलश्चैव सुतलश्च महातलः। रसातलश्च तदनु तलातल इति स्मृताः।। १।।
पातालो भूर्भुवः स्वश्च महर्जनतपाह्वयाः। सत्यलोकश्च सम्प्रोक्ता लोका एते यथाक्रमम्।। २।।
आदिक्षान्तांस्तथा वर्णान् वर्णाध्वानं प्रचक्षते। पदाध्वा वर्णवृन्दं स्यान्मन्त्राध्वा पदसञ्चयः।। ३।।
शिष्ये स्मरेत् तान् पादान्धुनाभिहृद्भालमूर्धसु। कूर्चेन च गुरुः शिष्यं स्पृशन् कुण्डे स्वके हुनेत्।।४।।
तिलैर्घृताक्तैस्ताराद्यममुकाध्वानमत्र च। शोधयामि द्विठान्तेन मन्त्रेणाष्टाहुतीः पृथक्।। ५।।

इति।। कुलार्णवे—

शूद्रसङ्करजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते। पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्यात् पापविमोचनम्॥ १॥

इति॥ तथा—

षडध्वनः क्रमात् सम्यक् प्रविलाप्य शिवावधि। सृजेत् सृष्ट्या विलीनांस्ताञ् शिवान्तांश्च गुरूत्तमः॥१॥
देशिकेन्द्रश्च तं शिष्यं दृष्ट्या दृष्ट्वा च दिव्यया। तच्चैतन्यं स्थितं तस्मिंस्तस्मिन्नेव नियोजयेत्॥२॥
हुनेन्महाव्याहृतिभिस्ततो देशिकसत्तमः। अङ्गप्रभृत्यावृतीनां हुनेद्भूयो घृतेन वै॥ ३॥
भूरग्नये च पश्चाच्च पृथिव्यै च युतो मनुः। भुवः स्याद्वायवे चान्तरिक्षाय च युतो मनुः॥ ४॥
स्वरादित्याय च दिवे च युतो मनुरीरितः। भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यश्च पूर्वतः॥ ५॥
दिग्भ्यस्ततो वदेदेष मन्त्रः प्रोक्तस्तुरीयकः। महते च द्विठान्ताः स्युर्महाव्याहृतिमन्त्रकाः॥ ६॥

महते इति पदं भूरित्यादिचतसृष्वप्यन्वेति। द्विठः स्वाहाकारः॥

ब्रह्मार्पणाह्वमन्त्रेण सर्वकर्मच्छिदे सुधीः। जुहुयादाहुतीरष्टौ केवलाज्येन मन्त्रवित्॥ ७॥
वदेदितः परं पूर्वप्राणबुद्धिस्ततो वदेत्। देहधर्माधिकारं च जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु॥ ८॥
वदेत् स्वावस्थासु मनसा वाचा पदमुद्धरेत्। कर्मणा चैव हस्ताभ्यां पद्भ्यामुक्त्वोदरेण च॥ ९॥
वदेच्छिश्ना च यच्छब्दं स्मृतं यत्पदमुच्चरेत्। उक्तं च यत्कृतं तच्च सर्वं ब्रह्मार्पणं भव॥ १०॥
तु स्वाहान्तश्च सम्प्रोक्तो ब्रह्मार्पणमनूत्तमः। हुत्वा पूर्णाहुतिं मन्त्री स्रुचा मूलाणुना ततः॥ ११॥

इति। ब्रह्मार्पणमन्त्रः प्रयोगे स्पष्टीक्रियते॥ कपिलपञ्चरात्रे—

अर्चयित्वा यथान्यायं जुहुयाद्वै पुनः सुधीः। न्यूनातिरिक्तपूर्णार्थं ददामि सघृतं तिलम्॥ १॥
विष्णुबीजं समुच्चार्य साङ्गं कुरु कुरु द्विठः। यानुलोमाष्टमं वर्णं षष्ठोपान्त्यस्वराकुलम्॥ २॥
प्रणवेन समायुक्तं विष्णुबीजं प्रकीर्तितम्।

इति। यानुलोमाष्टमो हकारः, षष्ठस्वरः ऊकारः, उपान्त्यस्वरो बिन्दुः॥ शैवागमे—

कृत्वा तु मृडनामाग्निमभ्यर्च्य प्रयतः पठेत्। सहस्रार्चिर्महातेजः नमस्ते बहुरूपधृक् (त्) ॥ १॥
सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते। त्वं रौद्रो रौद्रकर्मा च घोरहा त्वं नमामि ते॥ २॥
विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे। सर्पिषा स्रुचमापूर्य पुष्पं चोपर्यधोमुखम्॥ ३॥
स्रुगुपरि स्रुचं दत्त्वा पुष्पं तत्र प्रदापयेत्। सव्योत्तरकराभ्यां च सम्पुटाभ्यां च शङ्खवत्॥ ४॥
सङ्गृह्योत्थाय संलग्नौ नाभौ तिर्यङ्निधाय च। पूर्णादर्वीति मन्त्रेण मूलेन च सुसंयतः॥ ५॥
दद्यात् पूर्णाहुतीस्तिस्रः सर्वकामप्रपूरणीः।

इति। पुष्पदानं स्रुगुपरि॥ तदुक्तं वायवीयसंहितायाम्—

ततो होमावशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम्। निधाय पुष्पं तस्याग्रे स्रुवेणाधोमुखेन ताम्॥ १॥
सद्दर्भेण समाच्छाद्य मूलेनाञ्जलिना ततः। वौषडन्तेन जुहुयाद्धारां जपसमन्विताम्॥ २॥

इति। पूर्णादर्वीति शाखाविशेषे वैदिकहोमे। मूलेन वौषडन्तेन। ''स्वाहाकारं ततो होमे पूर्णायां वौषडेव हि'' इति तदीयवचनात्।

हुत्वा च हविषा दद्यात् स्रुचा पूर्णाहुतित्रयम्। वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन सुरोत्तम॥ १॥

इति हयशीर्षपञ्चरात्रवचनाच्च॥ घृताभावे तु नारदपञ्चरात्रे—

अभावे तु घृतस्यैव होमद्रव्येण पूरयेत्। तस्योपरि घृतं दद्यात्तदूर्ध्वं कुसुमादिकम्॥ १॥

इति॥ देवीहोमे तु, पूर्णायागे—

आज्येन स्रुवमापूर्य तेनापूर्य स्रुचं ततः। तदूर्ध्वेऽधोमुखं कृत्वा स्रुवमुत्थाय मन्त्रवित्॥ १॥
ऋजुकायस्तयोर्मूलं नाभिमूले निधाय च। मूलं नमोन्तमुच्चार्य वामपादपुरःसरम्॥ २॥
दद्यात् पूर्णाहुतीर्मन्त्री परामृतधिया ततः।

इति॥ गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

ओं भो भो वह्ने! महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सन्निधिं कुरु सादरम्॥ १॥
इति मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य वह्निमुद्वासयेदपि।

इति॥ उत्तरतन्त्रे—

"पुनः सम्पूज्य गन्धाद्यैर्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। कुण्डादुद्वास्य चाचार्यो देवतां कलशे न्यसेत्॥ १॥
साङ्गां सावरणां तत्र पूजयेच्च यथाविधि। सप्तव्याहृत्यग्निजिह्वादीनामेकाहुतिं क्रमात्॥ २॥

हुत्वाद्भिः परिषिच्याग्निम्" इति॥ कपिलपञ्चरात्रे—

ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणाय प्रदापयेत्। द्वात्रिंशत्पलताम्रेण निर्मितं ताम्रपात्रकम्॥ १॥
तण्डुलेन समापूर्य सहिरण्यं सदक्षिणम्। गुरुर्वृताय तत्तस्मै पूर्णपात्रं विदुर्बुधाः॥ २॥

इति॥ उत्तरतन्त्रे —

...........................संयोज्यात्मनि मन्त्रवित्। ततः परिस्तरानग्नौ परिधीन् निक्षिपेन्न तु॥ १॥
नित्ये नैमित्तिके तांस्तु क्षिपेद् देशिकसत्तमः। वस्त्रेण नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रे निबध्य च॥ २॥
कुण्डाद्धस्ते समादाय नयेन्मण्डलसन्निधौ। सुमनोभिः प्रयूर्यास्य ह्यञ्जलिं क्षेपयेद् घटे॥ ३॥
मूलमन्त्रोच्चारपूर्वं देवताप्रीतये गुरुः। नेत्रबन्धमपास्योपवेशयेत् कुशसंस्तरे॥ ४॥
ततश्च पाठयेच्छिष्यं मन्त्रमेनं गुरूत्तमः। अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया॥ ५॥
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः। अतः पूजाविधानेन संहरेज्जनयेच्च तम्॥ ६॥
तान् मनूक्तान् शिशोर्देहे न्यासान् सर्वान् प्रविन्यसेत्। पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य कलशस्थेष्टदेवताम्॥ ७॥
तन्त्रोक्तवर्त्मना तत्र सकलीकृतिमाचरेत्। अथोपवेशयेच्छिष्यं भूषितं मण्डलान्तरे॥ ८॥
कुम्भास्यस्थसुरद्रुंश्च मूर्ध्नि न्यस्य शिशोर्गुरुः। अथ पञ्चनिनादैश्च विप्राशीर्वचनैः सह॥ ९॥
सुस्थितं नियतात्मानं सिञ्चेत् कलशपुष्करैः। येन प्रकारेण पुरा पूरितश्च सुधारसैः॥ १०॥
तोयैरक्षरसंयुक्तैर्घटस्तेनैव वर्त्मना। तथैवैनं चाभिषिञ्चेदाशु सम्पदवाप्तये॥ ११॥
गृहीत्वाभ्यर्चितं पूर्वं करकं ह्यस्त्ररूपिणम्। तत्तोयैरभिषिञ्चेत् तं रक्षायै देशिकोत्तमः॥ १२॥
जलने शिष्टेन शिशुं गुरुराचामयेत् ततः। तद्देवतास्वरूपं च विदध्यात् सकलीकृतिम्॥ १३॥

वाससी विमले रम्ये परिधायाज्ञया गुरोः। आचम्य निकटे तस्य निवेशेद्वाग्यतः शिशुः।। १४।।
गुरुः सम्पूज्य शिष्यस्थदेवतां भावयंस्तयोः। ऐक्यं गुरुर्विनीतस्य सम्यक् तस्य मनुं त्रिशः।।१५।।
दक्षकर्णे वदेद्विद्वान् विप्रायोदकपूर्वकम्। अन्येभ्यस्तु वदेदेवमेवं मन्त्री विचक्षणः।। १६।।

इति।। अगस्त्यः—

स्वयंज्योर्तिमयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद् गुरुः। आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषतः।। १।।

इति।। तथा —

अष्टोत्तरशतं शिष्यः प्रजपेद्गुरुणोदितम्। अष्टाविंशतिवारं वा ह्यष्टकृत्वोऽथवा जपः।। १।।
गुरुदेवात्ममन्त्राणामैक्यं शिष्यो विभावयेत्। प्रणामं विभवे कुर्यात् साधको भक्तिमान् मुहुः।। २।।
सोऽष्टाङ्गश्चाथ पञ्चाङ्गः पूजाकर्मसु सम्मतः। हस्ताभ्यां चरणाभ्यां च जानुभ्यां वक्षसा तथा।। ३।।
मूर्ध्ना दृष्ट्या तथा वाचा चित्तेनाष्टाङ्ग ईरितः। हस्तजानुशिरोवाक्यधीभिः पञ्चाङ्ग ईरितः।। ४।।
आचार्याज्ञां ततः कुर्यात् सद्यः शिष्यो विभाव्य च। अलङ्कारांश्च वासांसि दद्याद्वृत्विग्भ्य आदरात्।।५।।
ईश्वरार्पणबुद्ध्या तु द्विजाशीर्भिश्च नन्दितः। प्रदद्याद्गुरवे शिष्यो विचार्यार्धं तदर्धकम्।। ७।।
तत्पादाब्जरजोभूषो भवेत् साधकसत्तमः।

इति।। तन्त्रराजे —

गुरवे दक्षिणां दद्यात् प्रत्यक्षाय शिवात्मने। सर्वस्वं वा तदर्धं वा तदर्धं वा तदाज्ञया।। १।।
न चेत्तच्छक्तिसङ्क्रान्तिः कथमस्य भविष्यति । गजाश्वमहिषीमेषपशुदासीमहीयुतम्।। २।।
सुवर्णं भूषणं वासो भवनं चान्यदीप्सितम्। स्वदेहं स्वात्मप्राणांश्च दद्यात् स्वशक्तिभक्तितः।। ३।।

इति।। तथा —

ततो नानाविधैर्भक्ष्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरैः। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् प्रदद्याद् भूरिदक्षिणाम्।। १।।
एवं क्रियामयी दीक्षा सम्बद्धात्र निरूपिता।

इति।। अत्रोदकपूर्वकमित्यनेन गोहिरण्यवन्मन्त्रस्य प्रदानं प्रतीयते। दाने तु स्वस्वत्वपरित्यागपूर्वकं विधिवत् परस्वत्वप्रतिपादनरूपं भवति। तत्तु क्वापि शिष्याय मन्त्रं दत्त्वा पुनस्तं मन्त्रं गुरुर्न जपति नाराधयति च। तं पुनरन्यस्मै कस्मैचित् न ददाति, इति वचनं सम्प्रदायो वा न दृश्यते। तस्मादुदकदानं त्वौपचारिकमिति वाच्यम्। तर्हि चतुर्णामपि वर्णानामुदकदानं साधारणं कथं न स्याद् दीक्षायां विशेषाभावादौपचारिकत्वाच्च। तस्मादुदकदानं मन्त्रदानरूपमेव। तत्र परस्वत्वापादने कृतेऽपि स्वस्वत्वापरित्यागराहित्यं तु कन्यादानवद्भवितुमर्हतीत्यास्तां विचारः।।

अनन्तरोक्तवर्णात्मदीक्षां वक्ष्ये यथाविधि। पुंस्प्रकृत्यात्मकत्वं हि वर्णानां समुदीरितम्।। १।।
तादृक्त्वं च शरीरस्य प्रोक्तमेवात्र देशिकैः। ततस्तनौ शिशोर्न्यसेद्वर्णान् देशिकसत्तमः।। २।।
संहरेद्वैपरीत्येन वर्णान् तत्स्थानसंस्थितान्। देशिकेन्द्रस्य सामर्थ्यादाज्ञया देवतात्मनः।। ३।।
देवतात्मा भवेच्छिष्यस्तदा संलीनतत्त्वकः। ततस्तु शिष्यचैतन्यं परमात्मनि योजयेत्।। ४।।

तानर्णांस्तत उत्पाद्य न्यसेच्छिशुशरीरके। तस्मिंश्च सृष्टिक्रमतस्तच्चैतंन्यं पुनर्न्यसेत्।। ५।।
भवेच्छिष्यो देवतात्मा नित्यानन्दात्मकः शिशुः। ज्ञानदार्णमयी दीक्षा कथिता सर्वसिद्धिदा।। ६।।
अथोच्यते कलात्मा सा दीक्षा दिव्यत्वदायिनी। कला निवृत्तिप्रमुखा भूतानां पञ्च चेरिताः।। ७।।
शिष्यकाये भूतमये वेधयेत् ताः क्रमात् सुधीः। पादादिजानुपर्यन्तं निवृत्तिः संस्थिता कला।। ८।।
जान्वोः सकाशादानाभि प्रतिष्ठाख्या कला स्मृता। नाभितः कण्ठपर्यन्तं विद्याख्या संस्थिता कला।।९।।
कण्ठतो ह्यालललाटं तु शान्त्याख्या संस्थिता कला। भालाच्छिरोवधि प्रोक्ता शान्त्यतीता कला तथा।।१०।।
अयथाक्रमतो[1] विद्वान् वेधयेत् स्थानतोऽन्यतः[2]। स्थानेष्वीशाज्ञया चैषा कलादीक्षा समीरिता।।११।।
अथ वेधात्मिका दीक्षा प्रोच्यते भवमोचनी। चतुर्दले स्मरेत् पत्रे मूलाधारे शिशोस्तनौ।। १२।।
धामत्रितयसंयुक्ते त्रिकोणोक्तबिले सुधीः। त्रिरावर्तमयीं देवीं विद्युत्पुञ्जस्वरूपिणीम्।। १३।।
महादेवमयीं साक्षाज् ज्ञानमात्रस्वरूपिणीम्। अणोरणीयसीं देवीं चक्रषट्कप्रभेदिनीम्।। १४।।
सुषुम्नावर्त्मना दिव्यां यान्तीं शिवगृहं प्रति। सान्तान् वादीन् दलस्थार्णान् पत्रयौनौ समाहरेत्।।१५।।
षड्दले कमले तं तु लान्तबाद्यर्णयुग्दले। स्वाधिष्ठाने गुरुः सम्यग् योजयित्वा तु वेधयेत्।।१६।।
तान[3]र्णानानयेद्विष्णौ विष्णुं तं नाभिपङ्कजे। फान्तडाद्यर्णसंयुक्ते दिग्दले वेधयेत् स्वयम्।। १७।।
वर्णांस्तान् योजयेद्रुद्रे रुद्रं तं हृत्सरोरुहे। ठान्तकाद्यर्णपत्राब्जे वेधयेदीश्वरे स्वयम्।। १८।।
वर्णांस्तानाहरेदस्मिन् कण्ठपद्मे च तं तथा। कलामयदले पद्मे स्वरान् संयोज्य यत्नतः।। १९।।
सदाशिवे च संयोज्य तांस्तद्भ्रूमध्यपद्मके। द्विदले हक्षसंयुक्ते वेधयित्वा तु देशिकः।। २०।।
हक्षौ तावाहरेद् बिन्दौ कलायामाहरेच्च तम्। कलां नादे समायोज्य नादं नादान्तके पुनः।। २१।।
नादान्तमुन्मनीमध्ये विषुवक्त्रे तथोन्मनीम्। विषुवक्त्रं स्वके वक्त्रे संहरेद् देशिकः स्वयम्।। २२।।
शक्त्या सहैवमात्मानं नयेत्परशिवावधि। देशिकाज्ञावशाच्छिष्यो दग्धाज्ञानस्तदा क्षितौ।। २३।।
पतेदवाप्तविज्ञानः सर्वज्ञो जायते ततः। सदाशिवः स्वयं भूयात् सत्यमेव न संशयः।। २४।।
ज्ञानप्रदा मया प्रोक्ता दीक्षा वेधात्मिका शुभा। चतस्रस्त्वेममुद्दिष्य दीक्षाः सम्यक् शुभावहाः।।२५।।

इति। श्रीकुलार्णवे—

हस्ते शिवपुरं ध्यात्वा जपन् मूलाङ्गमालिनीम्। गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षा भवेदियम्।। १।।
चित्तं तत्त्वे समाधाय परतत्त्वोपबृंहितान्। उच्चरेत् संहतान् मन्त्रान् वाग्दीक्षेति निगद्यते।। २।।
निमील्य नयने ध्यात्वा परतत्त्वं प्रसन्नधीः। सम्यक् पश्येद्गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सा भवेत् प्रिये।।३।।
गुरोरालोकमात्रेण भाषणात् स्पर्शनादपि। सद्यः सञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शाम्भवी मता।। ४।।
ज्ञेया सिद्धान्तशास्त्रार्थसम्प्रदायादिहेतुभिः। अन्तरेणोपदिष्टा ये मन्त्राः स्युर्विफला यतः।। ५।।
देवास्तमेव शंसन्ति पारम्पर्यप्रवर्तकम्। गुरुमन्त्रागमाभिज्ञं समयाचारपालकम् ।। ६।।

---

१. 'अयथाक्रमः संहारक्रम इत्यर्थः। 'सयथा' क.ग. पाठः। २. 'अन्यथा। स्थाने स्वीयाज्ञया' ग. पाठः। ३. 'बान्ता' क. पाठः।

गुरुः शिष्याधिकारार्थं विरक्तोऽपि शिवाज्ञया। कश्चित्कालं विधायैतत् सुशिष्याय समर्पयेत्।। ७।।
तस्यार्पिताधिकारस्य योगः साक्षात्परे शिवे। ततस्तु शाश्वती मुक्तिरिति शङ्करभाषितम्।। ८।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साक्षात् परशिवोदितम्। सम्प्रदायमविच्छिन्नं सदा कुर्याद्गुरुः प्रिये।। ९।।
भुक्तिमुक्तिप्रसिद्ध्यर्थं परीक्ष्य विधिवद्गुरुः। पश्चादुपदिशेन्मन्त्रमन्यथा निष्फलं भवेत्।। १०।।
अन्यायेन च यो दद्याद्गृह्णात्यन्यायतश्च यः। ददतो गृह्णतो देवि कुलशापो भविष्यति।।११।।
गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्। उपदेशं ददद् गृह्णन् तौ प्रयातां पिशाचताम्।। १२।।
अशास्त्रीयोपदेशं तु यो गृह्णाति ददाति च। भुञ्जाते तावुभौ घोरान् नरकानेकविंशतिम्।। १३।।
असंस्कृत्योपदेशं तु यः करोति विमूढधीः। विन्यस्यति च तं मन्त्रं सैकते शालिबीजवत्।। १४।।
अनर्हे तत्त्वविज्ञानं न तिष्ठति कदाचन। तस्मात् परीक्ष्य वक्तव्यमन्यथा निष्फलं भवेत्।। १५।।
सुशिष्यायातिभक्ताय यज्ज्ञानमुपदिश्यते। तत् प्रापयति तत्तत्त्वं गौः क्षीरात्तु घृतं यथा।। १६।।
धनेच्छाभयलोभाद्यैरयोग्यं परिदीक्षयेत्। देवताशापमाप्नोति कृतं च विकृतं भवेत्।। १७।।

इति।। (अथ पूर्णाभिषेकविधिर्लिख्यते[1]) उत्तरतन्त्रे—

पूर्णाभिषेकं वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम्। विना येनाभिषेकेण साधकः पूर्णबोधताम्।। १।।
आचार्यत्वं च नाप्नोति सद्गतिं च समीहिताम्। तस्माद् गुरुः प्रियं शिष्यं बोधयित्वाभिषेचयेत्।।२।।
विरच्य विपुलं चक्रं मण्डपेऽतिमनोरमे। खारीतोयभृतं कुम्भं स्थापयेच्चक्रमध्यतः।। ३।।
अन्येषु कलशान् रत्नवस्त्रहेमसमन्वितान्। दलेषु विधिवत् स्थाप्य तत्रावाह्येष्टदेवताम्।। ४।।
अभ्यर्च्य मध्ये चान्येषु चाङ्गावरणदेवताः। शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे प्राग्वत् तैरभिषेचयेत्।। ५।।
अयं पूर्णाभिषेकः स्यात् साधकाभीष्टसिद्धिदः।

इति।। खारीप्रमाणं तु स्कन्दपुराणे—

पलद्वयं तु प्रसृतं कुडवं द्विगुणं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थमाढकं तैश्चतुर्गुणैः।। १।।
चतुर्गुणो भवेद् द्रोणः कुम्भस्तद्द्वयतः स्मृतः। कुम्भैस्तैरष्टभिः खारी.......................।।

इति।। अथ दीक्षाप्रयोगः— तत्रैवं विचार्य विहितकालेषु दीक्षादिनात् पूर्वदिने शिष्यः प्रातःस्नातः कृतनित्यक्रियः समलङ्कृतः पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः कृतस्वस्तिवाचनः प्रियसुहृद्भिः सार्धं स्वयं गुरुगृहं गत्वा तं विधिवत् प्रणम्य तदाज्ञया प्राणायामपुरःसरम् ओं अद्यामुकमासेऽमुकराशिगते सवितर्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रो, ब्राह्मणश्चेदमुकशर्मा, क्षत्रियश्चेदमुकवर्मा, वैश्यश्चेदमुकगुप्तः, शूद्रश्चेदमुकदासोऽहं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रग्रहणं करिष्ये, इति कुशहस्तः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा सङ्कल्पं विधाय, प्रमाणोक्तमधुपर्कसामग्रीभिः स्वशाखोक्तविधिना श्रीगुरुं मधुपर्केणाभ्यर्च्य, धौतोत्तरीयप्रच्छदपटस्वर्णाङ्गुलीयककर्णाभरणस्वर्णयज्ञोपवीतहारकेयूराङ्गदादिनानाभरणच्छत्रचामरोपानद्युगलशय्या-तल्पास्तरणसम्पन्नां वरणसामग्रीं गुरुसन्निधौ निधाय, अद्येत्यादि प्राग्वत् तिथ्युल्लेखनान्तेऽमुकशर्मेत्यादि यथावर्णविहितमुच्चार्याहं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रग्रहणार्थममुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिन-

१. 'क'पुस्तके इदं नास्ति।

ममुकमेभिर्यथाशक्ति विहितवरणसाधनैर्गुरुत्वेन वृणे, इति गुरुपादयोः प्रणम्य वरणसामग्रीं निवेदयेत्। ततो वृतोऽस्मीति गुरुणा प्रतिवचने दत्ते, शिष्यः कृताञ्जलिर्यथोक्तं गुरो कर्म कुरुष्वेति ब्रूयात्। ततो गुरुः करवाणीति प्रतिब्रूयात्। इत्थं गुरुवरणं विधाय तदनुज्ञयाष्टौ ब्राह्मणान् वेदवेदाङ्गपारगान् स्वेष्टदेवतोपासकान् प्रागुक्तगुरुवरणोक्तसामग्रीभिस्तथैव ऋत्विक्त्वेन वृणुयात्। चतुष्कुण्डपक्षे चत्वार एव ऋत्विजः कार्याः। ततः शिष्येणैवंवृतो गुरुः कृतनित्यक्रियः समलङ्कृतः पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः सुहृज्जनैश्च वृतः शिष्येण सह समण्डपद्वारं गत्वा तत्र वक्ष्यमाणविधिना द्वारपूजां विधाय, तथैव भूतोत्सादनपूर्वकं मण्डपान्तः प्रविश्य, तथैव पञ्चगव्यार्घ्यतोयप्रोक्षणपूर्वकं वक्ष्यमाणवीक्षणादिचतुर्भिः संस्कारैः संस्कृतमण्डपाभ्यन्तरे चन्दनागरुकर्पूरधूपिते चन्दनसर्षपदूर्वाभस्माक्षतलाजान् अस्त्रमन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्रितान् मण्डपान्तर्विकीर्य, अस्त्रमन्त्रेण कुशमुष्टिना सम्मार्ज्य मण्डपस्येशानकोणे संस्थाप्य, ब्राह्मणैः पुण्याहवाचनं कारयित्वा वास्तुपुरुषपूजादिकं विधाय भैरवाज्ञापुरःसरं वेदिकायामास्तीर्य वक्ष्यमाणविधिना सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखोपविष्टः[१] स्वपुरतः सुसमे भूतले वेदिकोपरि सर्वतोभद्रमण्डलं कुर्यात्। तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायाश्च सप्तदशसप्तदश रेखाः कृत्वा षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयकोष्ठयुतं चतुरस्रमण्डलं कृत्वा तन्मध्यगतषट्त्रिंशत्कोष्ठान्येकीकृत्य तद्बहिश्चतुर्दिक्ष्वेकपङ्क्तिं परितः सम्मार्ज्यैकीकृत्य पीठं परिकल्प्य, तद्बहिश्चतुर्दिगगतपङ्क्तिद्वयमेकीकृत्य सम्मार्ज्य वीथीं परिकल्प्य, सर्वमध्यगतसरोजस्थाने बहिः परितः द्वादशभागं परित्यज्य सर्वमध्यावलम्बनेन समान्तरालवृत्तत्रयं निष्पाद्य, तत्र सर्ववृत्तमध्यकर्णिकां परिकल्प्य, तद्बहिर्गतवृत्तवीथीं केसरार्थं परिकल्प्य, केसरस्थानं षोडशधा विभज्य तच्चिह्नावलम्बनेन द्वितीयतृतीयवृत्तयोरन्तरालमानसूत्रमानेन गुरूक्तयुक्त्या षोडशार्धचन्द्रान् परिकल्प्य तेनाष्टदलनानि कृत्वा, तृतीयवृत्ताद्बहिस्त्यक्तैकांशतो मध्य[२]चिह्नावलम्बनेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, गुरूक्तयुक्त्या पत्राग्राणि विधायैकैकदलमूले केसरद्वयं यथा दृश्यते तथा विरच्य पद्मं कृत्वा, पद्मबहिर्गतैकपङ्क्तिरूपचतुरस्रपीठस्य कोणचतुष्टयेऽपि कोष्ठत्रयेण कोष्ठत्रयेण पीठपादान् परिकल्प्यावशिष्टकोष्ठैरेकीभूतैः पीठगात्राणि विधाय, तद्बहिर्गतपङ्क्तिद्वयकोष्ठानि सम्यक् प्रमार्ज्य तद्बहिर्गतपङ्क्तेश्चतुर्दिक्षु मध्ये मध्ये कोष्ठद्वयं कोष्ठद्वयमेकीकृत्य सर्वबाह्यगतपङ्क्तेरपि चतुर्दिक्षु प्रतिदिशं कोष्ठचतुष्टयमार्जनेन द्वारचतुष्टयं परिकल्प्य, द्वारचतुष्टयस्यापि पार्श्वयोः पङ्क्तिद्वयगतकोष्ठेषु अन्तःपङ्क्तेः कोष्ठत्रयं बहिःपङ्क्तेः कोष्ठमेकमिति कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य शोभां विधाय, तत्पार्श्वयोरप्यन्तःपङ्क्तेः कोष्ठमेकं बहिःपङ्क्तेः कोष्ठत्रयमिति कोष्ठचतुष्टयम् २ एकीकृत्योपशोभां विधायावशिष्टैः षड्भिः कोष्ठैश्चत्वारि कोणानि कल्पयेत्, इति सर्वतोभद्रमण्डलं निर्माय सरोजकर्णिकाकेसरदलाग्रपीठवीथीद्वारशोभोपशोभाकोणस्थानानि पञ्चवर्णरजोभिर्भूषयेत्। पञ्चवर्णरजांसि तु– हरिद्राचूर्णं पीतं रजः, तण्डुलचूर्णं शुक्लं, कुसुम्भकुसुमचूर्णं रक्तं, दग्धतण्डुलचूर्णं कृष्णं, बिल्वपत्रचूर्णं श्याममिति। रजोविन्यासप्रकारस्तु—सीमागताः सर्वरेखाः शुक्लरजसा एकाङ्गुलोत्सेधविस्तारयुताः कार्याः। पीतरजसा कमलकर्णिकां केसराणि च सम्यक् समापूर्य शुक्लरजसा दलानि च सम्पूर्य श्यामरजसा दलसन्धीनापूरयेत्। अथवा कर्णिकां पीतेन, केसरान् पीतरक्ताभ्यां, दलानि रक्तेन, दलसन्धीन् कृष्णेन रजसा सम्पूर्य, पीतेन कृष्णेन वा पीठगर्भमापूर्य पीठपादान् रक्तेनापूर्य, पीठगात्राणि शुभ्ररजसापूर्य, वीथीचतुष्टये कल्पवल्लीः कोरकपुष्प-पल्लवफलमण्डिता नानावर्णरजोभिरारचय्य, शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कमापूर्य रक्तवर्णेन, द्वारशोभाः पीतेनोपशोभाः कृष्णेन कोणानि चापूर्य, तद्बही रेखात्रयमेकैकाङ्गुलान्तरालं शुक्लरक्तकृष्णरजोभिः कुर्यादिति सर्वतोभद्रमण्डलं विधाय, वेदीपरितो

१. 'खः उपविश्य' क. पाठः। २. 'मध्यात्' क. पाठः।

दीपान् प्रज्वाल्य वक्ष्यमाणविधिना पूजाद्रव्याण्यासाद्य, तथैव तानि संस्कृत्य छत्रचामरद्वयदर्पणव्यजनादिकं च यथायथं निधाय गुर्वादिवन्दनपूर्वकं करशुद्धितालत्रयदिग्बन्धनाग्निप्राकारत्रयभूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठामातृकान्यासयोगपीठन्यास-मूलमन्त्रन्यासांश्च विधाय, मुद्राविरचनस्वेष्टदेवताध्यानमानसपूजान्ते वैश्वदेवमूलमन्त्रजपतत्समर्पणार्घ्यस्थापनात्म-पूजान्तर्हवनमूलमन्त्रजपतत्समर्पणानि विधाय "सर्वतोभद्रमण्डलाय नमः" इति मण्डलं गन्धादिपञ्चोपचारैः, सम्पूज्यार्घ्यजलेन प्रोक्ष्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना पीठपूजां विधाय, तत्कर्णिकां शालिभिरापूर्य तण्डुलान् कुशान् दूर्वाः सप्तविंशतिभिः कुशैरेकीकृताग्रविरचितब्रह्मग्रन्थिकं कूर्चं च निधाय, तत्र वक्ष्यमाणविधिना शालिपुञ्जोपरि वह्निमण्डलं बह्निकलाश्च सम्पूज्य, तत्र स्वर्णादिनिर्मितं त्रिगुणीकृतसूत्रवेष्टितसर्वाङ्गं चन्दनागरुकर्पूरधूपधूपितं कुम्भं प्रणवमुच्चरन् संस्थाप्य, तत्र पुष्परागनीलवैदूर्यविद्रुममौक्तिकमरकतवज्रगोमेदपद्मरागाख्यानि नवरत्नानि ससुवर्णानि निक्षिप्य, कुम्भस्योपरि गन्धाक्षतदूर्वान्वितप्रागुक्तलक्षणं कूर्चं च निधाय, तत्र क्षंलमित्यादिविलोममातृकान्ते मूलमन्त्रं त्रिर्जपन् आत्मनः कुम्भस्य योगपीठस्य चैक्यं भावयन् वक्ष्यमाणपञ्चाशदक्षरौषधिक्वाथैरश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटक्वाथैः पलाशवृक्षत्वचाक्वाथैः कर्पूरचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमवासितैस्तीर्थजलैर्वा कुम्भमापूर्य, स्वपुरतो वक्ष्यमाणविधिना शङ्खं संस्थाप्य, कुम्भपूरितजलसजातीयजलेनापूर्य तत्र गन्धाष्टकं विलोड्य, तत्र वक्ष्यमाणवह्निकलाः सूर्यकलाः सोमकलाश्चावाह्य तासां पृथक् पृथक् प्राणप्रतिष्ठां विधाय सम्पूज्य, प्रणवोत्थैकपञ्चाशत्कलाः कलामातृकान्यासोक्ताः सम्पूज्याः। तत्र प्रथममकाराद्ब्रह्मण उत्पन्नाः कचवर्गोत्थाः सृष्ट्यादिदशकलाः समावाह्य, हंसः शुचिषदिति ऋचो वामदेव ऋषिर्जगतीच्छन्दः सूर्यो देवतेति ऋष्यादीन् स्मृत्वा "ॐ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥" इति मन्त्रमुच्चार्य "ब्रह्मणे नमः" इति सम्पूज्य, पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण मम पदस्थाने सृष्ट्यादीनामिति पदं दत्त्वा सृष्ट्यादीनां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "ओंकँ सृष्ट्यै नमः" इत्यादिं दशकलाः सम्पूज्याः। उकाराद्विष्णोरुत्पन्नाष्टतवर्गोत्था जरादिदशकलाः समावाह्य, ओं प्रतद्विष्णुरिति मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुदेवता, इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा "ओं प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा"॥ इति पठित्वा "विष्णवे नमः" इति सम्पूज्य, प्राग्वज्जरादि दशकलानां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "ओंटं जरायै नमः" इत्यादिदशकलाः सम्पूज्याः। मकाराद्रुद्रादुत्पन्नाः पथयर्गोत्थास्तीक्ष्णादिदशकलाः समावाह्य, ॐ त्र्यम्बकमिति मन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः त्र्यम्बकरुद्रो देवता, इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा "ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥" इति पठित्वा "रुद्राय नमः" इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "ॐ पं तीक्ष्णायै नमः" इत्यादिदशकलाः सम्पूज्याः। ईश्वराद् बिन्दोरुत्पन्नाः षकारादिक्षकारान्ताः पञ्चवर्णोत्थाः पीतादिपञ्चकला आवाह्य ऋष्यादिस्मरणपूर्वकं गायत्रीमुच्चार्य "ईश्वराय नमः" इति सम्पूज्यः, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "ॐ पं पीतायै नमः" इत्यादिपञ्चकलाः सम्पूज्याः। ततो नादोत्थाः सदाशिवादुत्पन्नाः स्वरजा निवृत्त्याद्याः षोडशकलाः समावाह्य "विष्णुर्योनिं कल्पयित्वे" ति मन्त्रस्य त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषिरनष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवतेति ऋष्यादिकं स्मृत्वा" ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयत त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥" इति पठित्वा "सदाशिवाय नमः" इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय "अं निवृत्यै नमः" इत्यादिषोडशकलाः सम्पूज्याः। इत्थं चतुर्नवतिदेवताः शङ्खे सम्पूज्य सकलकलामयं शङ्खजलं मूलमन्त्रेण कुम्भे संयोज्य, ततोऽश्वत्थपनसाम्रपल्लवान् इन्द्रवारुणीलतया संवेष्ट्य कल्पवृक्षधिया कलशे निधाय, तदुपरि कलशसजातीयं तण्डुलपूर्णं

नारिकेलफलाढ्यकल्पवृक्षफलबुद्ध्या पात्रं संस्थाप्य पट्टवस्त्रयुगेन घटं संवेष्टयेदिति वेद्यां प्रधानकुम्भस्थापनं विधाय, पूर्वादितोरणसमीपे प्रागुक्तमण्डलेऽपि अष्टदलकमलेषु वा शालिपुञ्जोपरि प्रागुक्तविधिना प्रतिद्वारमेकमेकं संस्थाप्य, तत्र पूर्वदिग्गतकुम्भे ध्रुवं, दक्षिणे धरां, पश्चिमे वाक्पतिमुत्तरे विघ्नेशं च सम्पूज्य, तद्वदाग्नेयादिकोणचतुष्टये कुम्भान् संस्थाप्याग्नेयकुम्भेऽमृतं, नैर्ऋते दुर्जयं, वायव्ये सिद्धार्थमीशाने मङ्गलं च सम्पूज्य, पुनः पूर्वादिकुम्भेष्विन्द्रादिलोकपालानावाह्य वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण[1] सम्पूज्य पुनः पूर्वाद्यष्टदिक्षु कुम्भाद् बहिः "ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ। पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च पूजयेत्"॥ इति दिग्गजान् सम्पूज्य, पुनर्गुरुर्वेद्यां गत्वा स्वासने समुपवेश्य स्वेष्टमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, तस्य मन्त्रस्यर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं सकलन्यासजालं विधाय देवतां ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, प्रधानकुम्भे वक्ष्यमाणप्रकारेण मूर्तिं परिकल्प्य, तत्र स्वेष्टदेवतामावाह्य वक्ष्यमाणप्रकारेण षोडशोपचारैः साङ्गावरणं तत्तत्कल्पोक्तविधिना सम्पूज्य, वेद्या दक्षिणभागे हस्तमात्रायामविस्तारमङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं बालुकाभिः समचतुरस्रं स्थण्डिलं कृत्वा वक्ष्यमाणनित्यहोमप्रोक्तविधिना वह्निं संस्थाप्य चरुं श्रपयित्वा तत्र देवतामावाह्य सम्पूज्य, नित्यहोमोक्तविधिना साज्येन तेन चरुद्रव्येण हुत्वा, पुनर्देवं सम्पूज्य, कुम्भस्थमूर्तौ संयोज्य, तथैव वह्निं सम्पूज्य विसृज्य वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं तत्तत्कल्पोक्तबलिदानं च विधाय, देवायोत्तरापोशानादिनीराजनान्तं नित्यपूजोक्तविधिना विधाय, प्राणायामत्रयऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा देवाय वक्ष्यमाणविधिना जपं समर्प्य, पूर्वमण्डपस्येशानकोणे स्थापितविकिरपुञ्जोपरि सुवर्णगर्भं वस्त्रयुग्मवेष्टितं जलपूरितं करकं विन्यस्य, तत्रास्त्रदेवतां सिंहरूपां दक्षवामकरयोः खड्गखेटकधारिणीं घोररूपां पश्चिमाभिमुखां ध्यात्वा, तिष्ठन् गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य नमस्कृत्य, तं करकं कराभ्यामुद्धृत्य मण्डपाभ्यन्तरे प्रदक्षिणं भ्रमन् करकं स्वस्थाने निवेश्योपविश्यास्त्रमन्त्रेण पुनस्तामस्त्रदेवतां पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, ततः प्राक्कृतेषु कुण्डेषु इन्द्रेशानयोर्मध्यगताचार्यकुण्डे गुरुरग्निस्थानं कुर्यात्।

तत्रादौ कुण्डं गोमयेनोपलिप्य कुण्डसमीपे नित्यपूजोक्तविधिना स्वासनमास्तीर्य सम्पूज्य, तत्रोदङ्मुखः प्राङ्मुखो वोपविश्य मूलमन्त्रेण प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, देवतां ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य मूलं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य श्रीगुरुं प्रणम्य कुण्डसंस्कारान् कुर्यात्॥ तत्रादौ कुण्डं मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्यास्त्रेणैव कुशैस्त्रिः सन्ताड्य कवचेनाभ्युक्ष्यास्त्रेण कुण्डमध्ये किञ्चित् खात्वास्त्रमन्त्रेण तां मृदमङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उद्धृत्य बहिस्त्यक्त्वा हृन्मन्त्रेण शुद्धमृत्तिकया खातमापूर्य अस्त्रमन्त्रेण समीकृत्य कवचमन्त्रेण जलैः संसिच्यास्त्रमन्त्रेण काष्ठादिना कुट्टयित्वा, दृढीकृत्य, कवचमन्त्रेण कुशैः कुण्डं सम्मार्ज्य कवचेनैव गोमयाद्भिः संलिप्य, कवचेनैवाग्निसूर्यसोमाना-मष्टत्रिंशत्कलारूपं सञ्चिन्त्य, कवचेनैव मेखलात्रयेऽपि त्रिगुणीकृतसूत्रेण प्रतिमेखलं त्रिस्त्रिः संवेष्ट्य "ॐ अमुककुण्डाय एतदासनं नमः" इत्याद्यासनादिदीपान्तैरुपचारैः प्रथमचतुरस्रादितत्तत्कुण्डनाम्ना[2] चतुर्थीनमोऽन्तेन सम्पूज्य, तथैव नाभिं च सम्पूज्य, मेखलात्रयं तथैव हृन्मन्त्रेण सम्पूज्यास्त्रमन्त्रेण कुण्डं वज्रवद्दृढं सञ्चिन्त्य, हृन्मन्त्रेण कुशैः कुण्डस्य चतुर्दिक्षु वह्निज्वालाविलासाय चतुष्पथं मार्गचतुष्टयं परिकल्प्य, कवचमन्त्रेणाच्छिन्नाग्रैः कुशैरस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः कुण्डभित्तिगणं सर्वमाच्छादयन् अक्षपाटनं कुर्यात्, इत्यष्टादश संस्कारान् कुर्यात्। अशक्तौ[3] प्रथमोदितैश्चतुर्भिरेव संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य, तत्र हृन्मन्त्रेणास्त्रमन्त्रेण वा दक्षिणमध्योत्तरेषु प्रागग्राः पश्चिममध्यपूर्वेषूदगग्रा इति तिस्रस्तिस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य प्रणवेनाभ्युक्ष्य, प्रागग्रासु रेखासु दक्षिणरेखायां विष्णवे नमः। मध्यरेखायां रुद्राय नमः।

---

१. 'वेदतन्त्रोक्तमन्त्रैः' ग. पाठः। २. 'नाम' क. पाठः। ३. 'अशक्तौ' क. पाठः।

उत्तरस्याम् इन्द्राय नमः। उदगग्रासु रेखासु पश्चिमायां ब्रह्मणे नमः। मध्यमायां सूर्याय नमः। पूर्वरेखायां सोमाय नमः। इति सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणयोगपीठक्रमेण मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सम्पूज्य, तत्र पद्मकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यान्तं ॐ जयायै नमः। एवं विजयायै नमः। अजितायै नमः। अपराजितायै नमः। नित्यायै नमः। विलासिन्यै नमः। दोग्ध्र्यै नमः। अघोरायै नमः। मङ्गलायै नमः, इति सम्पूज्य "ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय[1] नमः" इति मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र भुवनेश्वरीं तत्तन्मन्त्रेणावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधायासनादिषोडशोपचारैराराध्य, तत्र श्रीशिवं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण तथैव सम्पूज्य देवीमृतुस्नातां देवं च कामोन्मत्तं विचिन्त्य, स्वर्णादिपात्रेण मृत्पात्रं चेत् नूतनेन सूर्यकान्तादिभवमरणिभवं श्रोत्रियगृहाग्निमस्त्रमन्त्रेण पात्रं कृत्वा कवचमन्त्रेण सजातीयेन पात्रान्तरेण[2] पिधाय, कन्यया सुवासिन्या वा समानीतं गुरुरादायास्त्रमन्त्रेणैकमङ्गारं तन्मध्यात् क्रव्यादांशं नैर्ऋतकोणे परित्यज्य, देवांशं मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्यास्त्रेण कुशैः सन्ताड्य कवचेनाभ्युक्ष्य, तत्र स्वमूलाधारस्थवह्निमण्डलगतपरमात्मस्वरूपाग्नीषोमात्म-कादिन्दोः सकाशाद्वह्निं, मणिपूरगतजाठरानलेन सह सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना निष्कास्य, रमिति वह्निबीजमुच्चरन् पुरतः पात्रस्थिते वह्नौ वह्निचैतन्यं संयोज्य औदर्यबैन्दवपार्थिववह्नीनामैक्यं विभावयन्, प्रणवेनाभिमन्त्र्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठ्य 'ॐ रं वह्नये नमः, इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, जानुभ्यामवनिं गतस्तत्पात्रं कराभ्यामादाय कुण्डोपरि त्रिःप्रदक्षिणं परिभ्राम्य, देव्या योनौ शिवबीजमिति ध्यायन् स्वाभिमुखं कुण्डमध्ये प्रणवमुच्चरन् तमग्निं निक्षिप्य, मैथुनधिया देवदेव्योराचमनं दत्त्वा "ॐ चित्पिङ्गल हनहन पचपच दहदह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा" इति मन्त्रमुच्चरन् मुखेन फूत्कृत्य कुशैरग्निं प्रज्वाल्य काष्ठैः पटूकृत्य, कृताञ्जलिस्तिष्ठन् "ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्"।। इति ज्वलन्तं बह्निमुपस्थाय[3] वक्ष्यमाणवह्निमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि भृगुऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये अग्नये देवतायै नमः। गुह्ये रंबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः, इति विन्यस्य दीक्षाङ्गहोमे विनियोगः, इति कृताञ्जलिर्वदेत्। लिङ्गे सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे षरयूं क़रकायै नमः। शिरसि शरयूं रक्तायै नमः। मुखे वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः ररयूं रक्तायै नमः। सर्वाङ्गे यरयूं बहुरूपायै नमः, इति सप्तजिह्वा विन्यस्य, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुं। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। धनुर्धरायास्त्राय फट्। इति षडङ्गानि विन्यस्य, शिरसि अग्नये जातवेदसे नमः। वामांसे अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां अग्नये अश्वोदरजाय नमः। लिङ्गे अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षकट्यां अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षपार्श्वे अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे अग्नये देवमुखाय नमः, इति मूर्तीर्विन्यस्य, वह्निरूपं स्वात्मानं ध्यात्वा सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य, कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे स्रुक्स्रुवौ प्रोक्षणीपात्रे आज्यस्थाली चरुस्थाली परिधित्रयं समित्पञ्चात्मकमिध्मं लूनमूलसाग्रकुशमुष्टिरिति पात्राण्यधोमुखानि संस्थाप्य, अन्यान्यपि दध्य[4]क्षतादिबलिद्रव्याणि गन्धपुष्पादिपूजाद्रव्याणि च यथायथं संस्थाप्याधोमुखानि स्रुक्स्रुवादीनि सपवित्राधोमुखहस्तसेकरूपावोक्षण[5]पूर्वकमुत्तानीकृत्य, प्रणीतपात्रं प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय शुद्धजलैरापूर्य तत्र गन्धाक्षतान् निक्षिप्य, प्रादेशमात्रं साग्रं कुशद्वयं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं जलाग्रे उत्तराग्रं पवित्रं निधाय करद्वयानामिका-ङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रं मूलाग्रे विधृत्यास्त्रमन्त्रमुच्चरन् पवित्रमध्येन जलं पात्राद्बहिस्त्रिवारं भूमौ निक्षिपेत्, इत्युत्पवनं

---

१. 'यै' क. पाठः। २. 'रै वि' क. पाठः। ३. 'वेश्य' ग. पाठः। ४. 'गन्धा' क. ग. पाठः। ५. 'वेक्षण' ग. पाठः।

विधाय तन्मध्ये किञ्चित् घृतं निक्षिप्य, तत्पात्रं कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे निधाय तदुपरि प्रागग्रान् दर्भान् निक्षिपेत्, इति प्रणीतापात्रं संस्थाप्य, प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य शुद्धजलैरापूर्य तन्मध्ये प्रणीतापात्रजलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य किञ्चिद्दत्त्वा, तेन जलेन मूलमन्त्रेण सर्वाणि पात्राणि होमद्रव्याणि पूजाद्रव्याणि च प्रोक्षयेत्, इति द्रव्यासादनं विधाय प्रोक्षणीयजलेनाग्निं परिषिच्यागर्भैश्चतुर्भिर्दर्भैः प्राचीदिशमारभ्य प्राच्यामुत्तराग्रैरीशानाद्याग्नेयान्तं परिस्तीर्य, पुनर्दक्षिणस्यां प्रागग्रैः पूर्वपरिस्तरणमूलमग्रैराच्छादयन्, पुनः पश्चिमायामुत्तराग्रैर्दक्षिणपरिस्तरणमूलं मूलेनाच्छादयन्, पुनरुत्तरस्यां प्रागग्रैः पश्चिमपरिस्तरणाग्रं पूर्वपरिस्तरणाग्रमग्रेण च परिस्तीर्य, परिधित्रयमादाय सर्वतः स्थूलं पश्चिम उत्तराग्रं, ततः कनिष्ठं दक्षिणे पूर्वाग्रं, पश्चिमपरिधेर्मूलोपरि मूलं यथा भवति तथा पुनस्ततोऽपि कनिष्ठमुत्तरस्यां पूर्वाग्रं, पश्चिमपरधिराग्रोपरि मूलमिति कुण्डस्य मध्यमेखलोपरि परिस्तरणोपरि परिधित्रयं निक्षिपेत्। अत्र पश्चिममेखलायां तु परिस्तरणपरिधिस्थापनं योनिनालोर्ध्वमेखलयोरन्तराले कार्यमिति। पश्चिमपरिधौ ॐ ब्रह्मणे नमः। दक्षिणपरिधौ ॐ विष्णवे नमः। उत्तरपरिधौ ॐ रुद्राय नमः। इति सम्पूज्य, स्वेष्टदेवतादीक्षितं ब्राह्मणमाहूय, कुण्डस्य दक्षिणे भागे कुशासने समुपवेश्य, अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहममुकगोत्रामुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणं ममेष्टदीक्षाङ्ग-भूतहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्मत्वेन त्वां वृणे इति वस्त्रालङ्कारादिभिवृणुयात्। ततस्तं गन्धादिभिः सम्पूज्य, ब्राह्मणालाभे कुशवटुं वा सम्पूज्य वह्निमन्त्रेणार्घ्यपाद्याद्याचमनीयमधुपर्कपात्राणि संस्थाप्य संस्कृत्य, कुण्डमध्ये षट्कोणगर्भितकर्णिकं सकेसरं चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवेष्टितमष्टदलकमलं वह्ने पूजापीठं विभाव्य, तत्र प्रागुक्तविधिना मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं समभ्यर्च्य, अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन पीतायै नमः, श्वेतायै० अरुणायै० कृष्णायै० धूम्रायै० तीव्रायै० विस्फुलिङ्गिन्यै० रुचिरायै० ज्वालिन्यै नमः, इति मध्यान्तं नवशक्तीः सम्पूज्य, 'रं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तन्मध्ये वह्निम्—

करैर्वरस्वस्तिकशक्त्यभीतीर्दधानमम्भोजगतं त्रिनेत्रम्।
सिन्दूरवर्णं तपनीयभूषं वह्निं जटाभूषितमौलिमीडे॥ १॥

इति ध्यात्वा, सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य "ॐ वैश्वानर जातवेद लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये नमः" इत्याग्निं त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रमुच्चार्याग्नये एतदासनं नमः, एवमग्ने एष ते अर्घः स्वाहा, एतत्ते पाद्यं नमः, एतत्ते आचमनीयं स्वधा, एष ते मधुपर्कः स्वधा, एतत्ते पुनराचमनीयं स्वधा, एतत्ते स्नानं नमः, इति पुरश्चरणमुखमूर्धादिसर्वाङ्गोद्देशेन मेखलाया बहिः पात्रान्तरे अर्घ्यपाद्यादिस्नानान्तां वह्नेस्तत्तदङ्गभावनां परिकल्प्य, पुनराचमनीयं दत्त्वा वह्नावेव वस्त्रं दत्त्वा पुनराचमनीयं दत्त्वा यज्ञोपवीतं निवेद्य बहिः पुनराचमनीयं दत्त्वा गन्धपुष्पे वह्नावेव निवेदयेत्, इति वह्निमन्त्रेणासनादिपुष्पान्तानुपचारानुपचर्य षट्कोणेषु देवाग्रादिकोणमारभ्य मध्यान्तं सरयूं हिरण्यायै नमः। षरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः। वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं प्रभायै नमः। ररयूं अतिरक्तायै नमः। यरयूं बहुरूपायै नमः, इति सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेवताग्रतदादिचतुर्दिक्षु ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा नमः। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् नमः। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं नमः। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् नमः। ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट् नमः। इति षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदले देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। एवं अग्नये सप्तजिह्वाय०, अग्नये हव्यवाहनाय०, अग्नयेऽश्वोदरजाय०,

अग्नये वैश्वानराय०, अग्नये कौमारतेजसे० अग्नये विश्वमुखाय०, अग्नये देवमुखाय नमः, इति प्रादक्षिण्येनाष्टमूर्तीः सम्पूज्य, तद्बहिश्चातुरस्रे इन्द्रादीन् सायुधान् सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रेण वह्निं सम्पूज्य, धूपदीपादि दत्त्वा नैवेद्यमुत्सृज्याग्नौ प्रक्षिप्य[1] प्रागवदाचमनीयं दत्त्वा; ततः स्रुक्स्रुवौ प्राञ्चावधोमुखावग्नौ संताप्य तयोरग्रं कुशाग्रैर्मध्यं मध्यैर्मूलं मूलैरिति त्रिः सम्मृज्याग्नौ तान् प्रक्षिप्य, स्रुक्स्रुवौ स्वदक्षिणभागे कुशास्तरे निधाय, आज्यस्थालीमादायास्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, तदुपर्युत्तराग्रं प्रादेशमात्रं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं कुशद्वयरूपं पवित्रं निधाय, पात्रान्तरस्थं शुद्धं गोघृतं दुर्गन्धादिदूषणरहितं वीक्षणादिचतुःसंस्कारैः संस्कृतं वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृतं मूलेनाष्टधाभिमन्त्रितमाज्यस्थाल्यां निक्षिप्य, कुण्डादङ्गारानुद्धृत्य मेखलाया बहिर्भूमौ वायव्यकोणे निक्षिप्य, तेष्वाज्यस्थालीं हृन्मन्त्रेण निधाय, कुशद्वयं प्रज्वाल्य हृन्मन्त्रेणाज्ये निक्षिप्य शेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनर्दर्भद्वयं प्रज्वाल्य कवचमन्त्रेणाज्यस्थालीमभितः परिभ्राम्य दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनः कुशान् प्रज्वाल्य हृन्मन्त्रेणाज्ये प्रदर्श्य दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, आज्यस्थालीमुद्धृत्य प्रादक्षिण्येन कुण्डं परितो भ्रामयन् आनीय स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, बाह्यस्थानङ्गारान् कुण्डमध्ये निक्षिप्य, अपः संस्पृश्याङ्गुष्ठानामिकाभ्यां करद्वयेन पवित्रं मूलाग्रे धृत्वा मन्त्रमुच्चरन् पवित्रमध्येन घृतमुत्पूय, हृन्मन्त्रमुच्चरन् तथैव पवित्रमध्येन स्वाभिमुखं घृतं त्रिः सम्प्लाव्य, तत्पवित्रमाज्यस्थाल्यां प्रागग्रं मध्ये निवेश्य, भागद्वयं कृत्वा दक्षिणभागं शुक्लपक्षं वामभागं कृष्णपक्षं परिकल्प्य, पुनस्तथैव वामभागे इडां दक्षिणभागे पिङ्गलां मध्ये सुषुम्नामिति नाडीत्रयं सञ्चिन्त्य, स्रुवेण दक्षिणभागात् हृन्मन्त्रेणाज्यमादाय "अग्नये स्वाहा" इति वह्नेर्दक्षिणनेत्रे हुत्वा अग्नये इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय, पुनर्हृन्मन्त्रेण वामभागादाज्यं गृहीत्वा "सोमाय स्वाहा" इति वह्नेर्वामनेत्रे हुत्वा सोमाय इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय, पुनर्हृदयमन्त्रेण मध्यादाज्यं गृहीत्वा "ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा" इति वह्नेर्ललाटलोचने हुत्वा इदमग्नीषोमाभ्यां न मम, इत्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुनर्दक्षिणभागाद्धृदाज्यं गृहीत्वा "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" इति वह्नेर्वक्त्रे हुत्वा अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय "ॐ भूः स्वाहा" अग्नये इदं न मम, "ॐभुवः स्वाहा" वायवे इदं न मम, "ॐस्वः स्वाहा" सूर्याय इदं न मम, "ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा" प्राजतये इदं न मम, "ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा" इति वह्निमन्त्रेण वारत्रयं हुत्वा अग्नये, इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं कृत्वा "ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा" एवं पुंसवनं, सीमन्तोन्नयनम्, इति प्रतिकर्माज्याहुत्यष्टकं हुत्वा, वागीश्वराज्जातं वह्निं प्रागुक्तरूपं ध्यायन् "अग्नेजार्तकर्म०" इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा, वह्नेर्नालच्छेदं कृत्वा सूतकं संशोध्य "वह्नेर्नामकरणं सं०" इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा शिवाग्निरिति तस्य नाम कृत्वा "ओंवह्नेरुपनिष्क्रमणं सं०, अग्नेरन्नप्राशनं सं०, अग्नेश्चौलं सं०, अग्नेरुपनयनं सं०, अग्नेर्महानाम्न्यं सं०, अग्नेर्महाव्रतं सं०, अग्नेरौपनिषदं सं०, अग्नेर्गोदानं सं०, अग्नेः समावर्तनं सं०, अग्नेरुद्वाहं संपादयामि स्वाहा" इति प्रतिकर्माष्यवाज्याहुतीर्हुत्वा, वह्नेर्गर्भाधानाद्युद्वाहान्तान् संस्कारान् विधाय, वह्नेः पितरौ देवदेव्यौ प्राग्वत् सम्पूज्य विसृज्य, मूलाग्रेषु घृतसंसिक्ताः पञ्च समिधस्तूष्णीमेकदैवाञ्जलिना वह्नौ समर्प्य, ॐ सरयूं हिरण्यायै स्वाहा, एवं षरयूं करकायै० शरयूं रक्तायै०, वरयूं कृष्णायै०, लरयूं सुप्रभायै०, ररयूं अतिरक्तायै०, यरयूं बहुरूपायै०। ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा, एवं स्वस्तिपूर्णाय शिरसे०, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै० धूमव्यापिने कवचाय०, सप्तजिह्वाय

१. 'एव दत्त्वा' क. पाठः।

नेत्रत्रयाय० धनुर्द्धराय अस्त्राय० ओं अग्नये जातवेदसे स्वाहा, एवं अग्नये सप्तजिह्वाय०, अग्नये हव्यवाहनाय०, अग्नये अश्वोदराय०, अग्नये वैश्वानराय०, अग्नये कौमारतेजसे०, अग्नये विश्वमुखाय०, अग्नये देवमुखाय०, इति जिह्वाङ्गमूर्तिमन्त्रैरेकैकाहुतिं दत्त्वा, ओं लं इन्द्राय स्वाहा, इन्द्राय इदं न मम, एवं अग्नये०, यमाय०, निर्ऋतये०, वरुणाय०, वायवे०, कुवेराय०, ईशानाय०, ब्रह्मणे०, अनन्ताय०, वज्राय०, शक्तये०, दण्डाय०, खड्गाय०, पाशाय०, अङ्कुशाय०, गदायै०, शूलाय०, पद्माय०, चक्राय०। एवं तत्तन्नामभिरेकैकामाहुतिं हुत्वा सर्वत्र तत्तन्नामोद्देशत्यागं कुर्यात्। ततः स्रुवेणाज्यमादाय चतुर्वारं निक्षिप्याधोमुखं स्रुचो मुखे निधायोत्थाय, प्रागुक्तवह्निमन्त्रमुच्चार्य स्वाहास्थाने वौषडित्यग्नौ तिष्ठन् स्रुचा हुत्वोपविश्य, ओं स्वाहा, ओंश्रीं स्वाहा, ओंश्रींह्रीं स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लीं स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लींग्लौं स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा, ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणतपये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा, इति दशधा विभक्तेन महागणपतिमन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा, "ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणतपये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा" इति समस्तव्यस्तमन्त्रेण चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्। इत्यग्निस्थापनविधिः॥

इत्थमग्निस्थापनं विधाय नूतनताम्रादिपात्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, तत्र मूलमन्त्रेणाष्टधाभिमन्त्रितांस्तण्डुलान् पञ्चदशप्रसृतिमितान् त्रिःप्रक्षालितानस्त्रमन्त्रं जपन्निक्षिप्य, तत्र गोदुग्धं वाष्पं यावत्तावत् पक्वं भवति तावन्निक्षिप्य, प्रक्षालितेन पात्रेण कवचमन्त्रमुच्चरन् तत्पात्रवदनं पिधाय यदा तद्दुग्धं वाष्पवशादुपर्यायाति तदा मेक्षणेन प्रदक्षिणमूर्ध्वमवघट्टयन् मूलमन्त्रं स्मरन् प्राङ्मुखो गुरुश्चरुं पचित्वा, शृते तस्मिन् मूलमन्त्रेणाज्यं स्रुवेण निक्षिप्य कवचमन्त्रेण तत्पात्रमवतार्य अस्त्रमन्त्रेणाभिमन्त्रितं कुशास्तरे चरुं निक्षिप्य त्रिधा विभज्यैकं भागं देवाय कुम्भस्थाय निवेद्य, मण्डपपरितः पूर्वमङ्कुरार्पणकर्मणि कृताङ्कुरभाजनानि निक्षिप्य, घृतपूर्णान्[1] पिष्टमयदीपांश्च निधाय, कुण्डसमीपं गत्वा स्वासने समुपविश्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मूलमन्त्रेणार्घ्यादिपात्रस्थापनं विधाय, कुण्डमध्ये वह्नेर्मुखे पूजाचक्रं विभाव्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मण्डूकादिपीठमन्वन्तं सम्पूज्य, तत्र देवतामावाह्य वक्ष्यमाणविधिना साङ्गं सावरणं सर्वोपचारैः पूजयेत्। अत्रार्घ्यादिस्नानान्तमग्निपूजावदेव कुण्डाद्बहिः पात्रान्तरे देवमुद्दिश्य कल्पयेत्। अन्यत्सर्वं कुण्डमध्ये एव कल्पयेत्। ततो मूलमन्त्रेण वह्निदेवतयोर्वक्त्रैकीकरणार्थं पञ्चविंशत्याज्याहुतीर्हुत्वा, स्वात्माग्निदेवतानामैक्यं विभावयन् मूलेन नाडीसन्धानार्थमेकादशवारं घृतैर्हुत्वा, षडङ्गावरणदेवतानामेकैकामाहुतिं हुत्वा, प्राङ्निर्मितचरोस्तृतीयांशं नवधा विभज्यैकांशेन मूलेन पञ्चविंशतिधा हुत्वा, प्रागादिदिक्स्थकुण्डेषु ऋत्विग्भिः प्रागुक्तविधिनाष्टादशसंस्कारैः संस्कृतेषु गुरुः स्वकुण्डादग्निमुद्धृत्योद्धृत्य निक्षिपेत्। ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे वह्निं प्रागुक्तविधिना प्रज्वाल्योपस्थाय परिषेचनपरिस्तरणपरिधिप्रक्षेपणपूजादिभिः सम्यक् परितोष्य, समिद्धे तस्मिन् स्वेष्टदेवतानित्यपूजोक्तविधिना देवमावाह्य, ताम्बूलान्तैरुपचारैः सम्यक् सम्पूज्य वक्त्रैकीकरणनाडीसन्धानाङ्गावरणहोमान्ते मूलमन्त्रेण गुरुणा विभज्य दत्तेन घृतमिश्रेण पायसेन पञ्चविंशतिधा स्वस्वकुण्डे जुहुयुः॥

अथ गुरुः सर्वतोभद्रमण्डलस्य पूर्वादिवीथीचतुष्टये मेषादिराशिस्थानेषु, प्राच्यां मेषवृषौ, आग्नेय्यां मिथुनं, दक्षिणे कर्कटसिंहौ, नैर्ऋते कन्यां, पश्चिमे तुलावृश्चिकौ, वायव्ये धनुः, उत्तरे मकरकुम्भौ, ईशाने मीनः, इति विभक्तेषु राशिस्थानेषु राश्यधिनाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्यः करणेभ्यश्च हुतशेषेण पायसेन बलिं दद्यात्। यथा— मेषवृश्चिकस्थानयोः कंखंगंघंङं मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः। एवं चं ५ वृषतुलाराश्यधिपतये

१. 'न्तान्' क. पाठः।

शुक्राय एष०। टं ५ मिथुनकन्याराश्यधिपतये बुधाय एष०। यं १० कर्कटराश्यधिपतये सोमाय एष०। अं १६ सिंहराश्यधिपतये सूर्याय एष०। तं ६ धनुर्मीनाधिपतये गुरवे एष०। पं० ५ मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः॥ पुनः क्रमेण मेषादिस्थानेषु मेषराश्यंशभूताश्विनीभरणीकृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तंचरेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्ध० इत्यादि प्राग्वत्[१]। एवं वृषराश्यंशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगशिरोर्ध-नक्षत्रदेवताभ्यो०। मिथुनराश्यंशभूतमृगशिरउत्तरार्धार्द्रापुनर्वसुपादत्रयनक्षत्रदेवताभ्यो०। एवमग्रेऽपि मन्त्रा ऊह्याः॥ ततो मीनमेषयोरन्तराले ववकरणाय एष० इत्यादि। एवं वृषमिथुनयोरन्तराले वालवाय एष०। मिथुनकर्कयोर्मध्ये कौलवाय०। सिंहकन्ययोर्मध्ये तैतिलाय०। कन्यातुलयोर्मध्ये गराय०। वृश्चिकधन्वोर्मध्ये वणिजे०। धनुर्मकरयोर्मध्ये विष्टये एष गन्धाक्षतपुष्पयुतपायसबलिर्नमः, इति बलिं दद्यात्। अत्र राशिद्वयाधिपतीनां राशिद्वयस्थानेऽपि बलिर्देयः, इति सम्प्रदायः॥ ततो गुरुः कुम्भस्थाय देवायोत्तरापोशानादिनीराजनान्तं वक्ष्यमाणविधिना कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य क्षमापयेत्। ततस्तृतीयं भागं शिष्येण सह गुरुर्भुक्त्वा स्वयमाचान्तः स्वाचान्ताय शिष्याय षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृताय प्रादेशमात्रं यथोक्तहृन्मन्त्रेणाष्टधाभिमन्त्रितं दन्तकाष्ठं दद्यात्। शिष्योऽपि तेन दन्तधावनं विधाय, दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरतः परित्यज्याचम्य गुरोः समीपं गच्छेत्। ततो गुरुः शिष्यं शिखाबन्धनेन मूलमन्त्राभिमन्त्रितेन संरक्ष्य, तेन सार्धं वेद्यां कुशास्तरणे तस्यां रात्रौ शयनं कुर्यादित्यधिवासः॥

अत्र प्राक्प्रोक्तविधिनोर्ध्वाम्नायाद्याम्नायदेवतानां दीक्षायां तत्तन्मन्त्रहोमस्तत्तद्देवतापूजनक्रम ऋत्विग्भिर्विधेयः। नवग्रहपूजा तु आगमोक्तैर्वैदिकमन्त्रैर्वा विधेया ईशानकोणवेद्यां पृथगेवेति सम्प्रदायः। "पञ्चषट्कूटविद्याभ्यां शोधितं बहुवासरैः" इति क्रमे प्रोक्तक्रमेणैव दीक्षाप्रयोगक्रमः साधीयान् तत्राङ्गत्वेनान्यमन्त्राकथनात्। षड्दर्शनाङ्गभूतप्रधान-विद्यादीक्षाविधौ तु षड्दर्शनेष्वङ्गत्वेन ये ये मन्त्रा अभिहितास्तद्रीत्यैवर्त्विक्सामयिकैर्होमजपपूजादयो विधेयाः। गुरुणापि तथैव साङ्गोपाङ्गपूर्ण[२]रूपेणोपदेशः कार्यः। पूर्णाभिषेकविधिमग्रे तत्प्रकरणे वक्ष्यामः॥ वैदिकदर्शनप्राधान्येन यत्रोपदेशस्तत्र श्रुतिस्मृत्युक्तविधिनैव विशेषो बोद्धव्यः, अन्यत्साम्यम्॥

अथ वैदिकदर्शनदीक्षाया आदौ गणाधिपपूजादिमण्डपपूजाप्रयोगः। तत्रादौ गणेशपूजा—यजमान आसनोपर्युपविश्याचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा, कुशाक्षतान् हस्ते गृहीत्वा सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा— अद्येत्यादिमास-पक्षाद्युल्लेखानन्तरं करिष्यमाणामुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मणि प्रत्यूहशान्तये गणपतिपूजनमहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्यावाहनादिषोडशोपचारैः "गणानां त्वा" इति मन्त्रेण गणपतिं सम्पूज्य बद्धाञ्जलिः प्रार्थयेत्।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ। अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥ १॥

पूजा सम्पूर्णतां यातु वाचयित्वा विसर्जयेत्।

इति॥ ततः पीठेऽक्षतपुञ्जेषु गौर्यादिषोडशमातृका ब्राह्म्यादिसप्तमातृकाश्च पूजयेत्। तास्तु—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥ १॥
धृतिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिरात्मनः कुलदेवता। ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा॥ २॥
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः।

---

१. 'गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः' ग. पाठः। २. 'पूर्व' क. पाठः।

इति। पूजाप्रकारस्तु—पूजोपकरणान्युपकल्प्य प्राङ्मुख उपविश्य कुशयवतिलान्यादाय, अद्येहेत्यादि० करिष्यमाणमन्त्रदीक्षाङ्गभूततया गौर्यादिषोडशमातृपूजनं ब्राह्म्यादिसप्तमातृपूजनं च करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, अक्षतैः "ॐभूर्भुवःस्वः गौरीहागच्छ इह तिष्ठे"त्यावाह्य स्वशाखोक्तमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य, गौर्यै नमः इदमासनमित्यादिरीत्या पदार्थानुसमयेन सर्वाः प्रत्येकमुत्तरसंस्थाः पूज्याः। एवं ब्राह्म्याद्या अपि। यदा तु मातॄणां गणदेवतात्वं तदा प्रत्येकं नाम गृहीत्वा गौर्यादिभ्य इति चोक्त्वा युगपत्पूजयेत्, एवं ब्राह्म्याद्या अपि। ततः स्वाचारतो "वसोः पवित्रमसी"ति कुड्यलग्नाः पञ्च सप्त वा घृतेन धाराः कुर्यात्। तत्पूजनमपि केचिदाहुः। ततः शान्तिपाठः। ततो यथाचारं वृद्धिश्राद्धं सङ्कल्पपूर्वकं स्वशाखोक्तं कुर्यात्॥ ततः पुण्याहवाचनम्—तच्चावनिकृतजानुमण्डल इत्यादि पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रीन् ब्राह्मणान् श्रावयेत्। ते च पुण्याहमिति त्रिः प्रतिब्रूयुः। ॐ स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रिः। ॐ स्वस्ति इति त्रिः प्रतिवचनम्। ॐ ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रिः। ॐ ऋध्यतामिति त्रिः प्रतिवचनम्। ततो मण्डपाद्बहिः पश्चिमदेशे उपलिप्ते यजमानः प्राङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य, अद्येहेत्यादि अमुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्म कर्तुमाचार्यर्त्विजां वरणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, आचार्यमुदङ्मुखमुपवेश्य सिताम्बरहेमकुण्डलसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामं कृत्वा वद्धाञ्जलिः, "दीक्षादाने त्वं मे गुरुर्भव" इति प्रार्थ्य, भवानि इति तेनोक्ते, अमुकप्रवरान्वितामुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणममुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोऽमुकशर्माहम् एभिर्गन्ध[1]पुष्पाक्षतताम्बूलहेमाभरणाङ्गुलीयकवासोभिरमुकमन्त्रदीक्षादाने गुरुत्वेन त्वां वृणे॥ वृतोऽस्मीति स वदेत्। एवं पूर्वकुण्डे गायत्रीहोमार्थमेकमाग्नेयदक्षिणनैर्ऋतपश्चिमवायव्यसौम्येशानकुण्डेषु होमार्थं सप्त ब्राह्मणान्, एवं नव ब्राह्मणान् वृणुयात्। ततः पूर्वद्वारपालनार्थं द्वावृग्वेदिनौ, दक्षिणद्वारपालनार्थं द्वौ यजुर्वेदिनौ, पश्चिमद्वारपालनार्थं द्वौ सामगौ, उत्तरद्वारपालनार्थं द्वावथर्वाणौ, एवमष्टौ पृथक् पृथग् वृणुयात्। वरणवाक्यं प्राग्वदेव। एवं पुस्तकाचार्यं वृणुयात्। अत्र द्वारपालकास्तु सर्वदर्शनसाधारणाः। ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः सपत्नीकः सशिष्यर्त्विक् आचार्यो मङ्गलघोषे जायमाने सम्पूर्णकलशहस्तो "भद्रं कर्णेभिः" इत्यादिमन्त्रघोषेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य, पश्चिमद्वारेण प्रविश्य मण्डपान्तः पश्चिमदेशे उपविश्याचम्य प्राणानायम्य, देशकालौ स्मृत्वा करिष्यमाणदीक्षादानाङ्गतया अद्य गणेशपूजामण्डपदेवतास्थापनादि करिष्ये, इति सङ्कल्प्य षोडशोपचारैर्गणेशं प्रपूज्य गौरसर्षपान् सर्वतो मण्डपान्तर्विकिरेत्।

तत्र मन्त्रा रक्षोघ्नाः—

यदत्रं संश्रितं[2] भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु॥ १॥

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे॥ २॥

इति पञ्चगव्येन कुशैः सर्वत्र सर्वतः प्रोक्षयेत् "शुची वो हव्ये"ति "आपो हि ष्ठे"ति ऋचा। ततः कृताञ्जलिः स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमिति मन्त्रद्वयं जपेत्। ततः पूर्वस्यां दिशि मण्डपद्वाराद् बहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदृढनामकं सुशोभननामकं वा शङ्खाङ्कितम् "अग्निमीळे पुरोहित"मिति निधाय, नाम्ना सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा राहुं बृहस्पतिं तत्र न्यसेत्। तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र मन्त्राः— "मही द्यौ"रिति भूमिं स्पृशन् प्रार्थ्य, "ओषध्यः स" मिति यवान् क्षिप्त्वा, "आकलशेष्वि"ति "आजिघ्र कलश"मिति वा कलशं निधाय, "इमं मे गङ्गे" इति जलेनापूर्य, "गन्धद्वारां" इति गन्धं "या ओषधी" रिति सर्वौषधीः, "ओषधयः स" मिति यवान्, "काण्डात्काण्डा"-

१. 'चन्दनपुष्प' क. पाठः। २. 'संस्थितं' क. पाठः।

दिति दूर्वाः, "अश्वत्थे वो" इति पञ्चपल्लवान् "स्योना पृथिवि" इति पञ्च मृदः "याः फलिनी"रिति फलम्, "स हि रत्नानी"ति पञ्च रत्नानि, "हिरण्यरूप"मिति हिरण्यं क्षिप्त्वा "युवा सुवासा" इति वस्त्रेण रक्तसूत्रेण च मुखे वेष्टयेत्। "पूर्णा दर्वी"त्युपरि धान्यपूर्णशरावं निधाय तत्र ध्रुवमावाह्य पूजयेत्।। ततो दक्षिणे औदुम्बरं वा सुभद्रं विकटं वा चक्राङ्कितं तोरणं "इषे त्वोर्जे त्वा" इति निधाय नाम्ना पूर्ववत् सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च न्यसेत्। ततः पूर्ववत् कलशं स्थापयित्वा तत्र धरामावाह्य पूजयेत्।। ततः पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुहोत्रं सुप्रभं पद्माङ्कितं तोरणं "शन्नो देवी"रिति नाम्ना पूर्ववत् सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत्। पूर्ववत् कलशं निधाय वाक्पतिमावाह्य पूजयेत्।। तत उत्तरे वाटमाश्वत्थं पालाशं वा पूर्णसुकर्म सुभीमं वा गदाङ्कितं तोरणम् "अग्न आयाहि" इति निधाय नाम्ना सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सोमकेतुशनींस्तत्र न्यसेत्। ततः पूर्ववत् कलशं निधाय तत्र विघ्नेशमावाह्य पूजयेत्।। ततः पुनः पूर्वद्वारे द्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दध्यक्षतभूषितं पूर्ववन्मन्त्रैः स्थापयेत्। प्रतिकलशं मन्त्रावृत्तिः। ऐरावतकलशद्वयं न्यस्य पूजयेत्। तत्र ऋग्वेदिनौ ऋत्विजौ

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्र्यः सोमदेवता। अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।। १।।

इति प्रार्थ्य प्रत्येकमग्निमीळे इति गन्धादिना पूजयेत्। ततः

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन् नमस्ते।। १।।

भो इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं द्वारकलशे आवाह्य तत्र "त्रातारमिन्द्र"मितीन्द्रं सम्पूज्य, "आशुः शिशान" इति पीतां पताकां पीतं च ध्वजद्वयमपि पञ्चहस्तदण्डमुच्छ्रयेत्। "इन्द्रं वो विश्वतस्परि" इति वा मन्त्रः। तत्र सहस्राक्षं मत्तैरावणस्थितं पीतकिरीटकुण्डलधरं दक्षिणवामकरस्थवज्रोत्पलमिन्द्रं ध्यात्वा,

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः।। १।।

इति नत्वा इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माष(भक्त)बलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्याग्नेये गत्वा पूर्ववत् कलशं निधाय तत्र पुण्डरीकं पूजयित्वाऽमृतं च प्रपूज्य,

एह्येहि वैश्वानर[1]हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट ।
तेजोवता लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते।। १।।

भो अग्ने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमग्निं कलशे आवाह्य, "त्वन्नो अग्ने" इत्यग्निं गन्धादिना प्रपूज्य, "अग्निं दूत"मिति रक्तां पताकां रक्तध्वजं पञ्चहस्तदण्डमुच्छ्रयेत्। ततः छागस्थं रक्तं दक्षिणवामकरधृतरक्तकमण्डलुं यज्ञोपवीतिनमग्निं ध्यात्वा,

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः। धूम्रकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः।। १।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादिकमुक्त्वा अग्नये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्य दक्षिणे गत्वा प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत् कलशद्वयं संस्थाप्य वामनगजं तत्र न्यस्य पूजयेत्। ततो यजुर्वेदविदावृत्विजौ

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः। काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।। १।।

इति प्रत्येकं प्रार्थ्य गन्धादिना "इषे त्वोर्जे त्वा" इति पूजयेत्। ततः

---

१. "सर्वामर" क. ख. पाठः।

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्म[1]मूर्ते।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश[2] शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते॥ १॥

भो यमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गदिविशिष्टं यममावाह्य "यमाय सोम"मिति गन्धादिभिः पूजयित्वा कृष्णां पताकां कृष्णं च ध्वजं पञ्चहस्तायतं दण्डं "आयं गौ"रित्युच्छ्रयेत्। ततो महिषारूढं धृतदण्डपाशदक्षिणवामकरद्वयं कृष्णाञ्जनचय[3]निभमग्निसमनयनं यमं ध्यात्वा,

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्॥ १॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि यमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्॥

ततः आचम्य नैर्ऋत्यां पूर्ववत् कलशं स्थापयित्वा कुमुदगजं दुर्जयं च पूजयित्वा,

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन् नमस्ते॥ १॥

भो निर्ऋते इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमावाह्य "मो षु ण" इति "असुन्वन्त"मिति वा निर्ऋतिं गन्धादिभिः पूजयित्वा नीलां पताकां ध्वजं च पञ्चहस्तदण्डं "मो षु ण" इत्युच्छ्रयेत्। ततो नरारूढं खड्गहस्तं नीलवर्णं नीलाभरणं निर्ऋतिं ध्यात्वा,

नरारूढं महाकायं खड्गहस्तं महाबलम्। नीलं रक्षोगणैर्जुष्टं नीलाभरणभूषितम्॥ १॥
निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकनायकम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्॥ १॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि निर्ऋतये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्॥

तत आचम्य पश्चिमद्वारे प्रतिशाखं कलशद्वयं पूर्ववत् स्थापयित्वा अञ्जनं दिग्गजं न्यस्य पूजयेत्। ततः सामवेदविदावृत्विजौ

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः। भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥ १॥

इति प्रार्थ्य गन्धादिना "अग्न आयाहि" इति पूजयेत्। ततः

एह्येहि यादो[4]गणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः[5]।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते॥ १॥

भो वरुणेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं वरुणमावाह्य, "तत्त्वा यामि" इति गन्धादिभिः पूजयित्वा श्वेतां पताकां ध्वजं च "इमं मे वरुण" इत्युच्छयेत्। ततो मकरस्थं पाशहस्तं शुक्लवर्णं किरीटधारिणं वरुणं ध्यात्वा,

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां निधिमीश्वरम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमो नमः॥ १॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि वरुणायै एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्॥

तत आचम्य वायव्यां पूर्ववत् कलशं निधाय पुष्पदन्तं सिद्धार्थं च सम्पूज्य,

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः।
प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥ १॥

भो वायो इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं वायुमावाह्य "तव वायवृतस्पते" इति गन्धादिना पूजयित्वा धूम्रां पताकां ध्वजं च "वायो शत"मित्युच्छ्रयेत्। ततो मृगाधिरूढं चित्राम्बरध्वजधरदक्षवामहस्तं वायुं ध्यात्वा—

१.'दिव्य' ख.पाठः। २.'शुभाचारविचारसाक्षिन्' ग.पाठः। ३.'योपमं' क.पाठः। ४.'पाथो' ग.पाठः। ५.'न्ययुत प्रचेत' ग. पाठः।

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवाहनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।। १।।
अनाकारो महौजाश्च पशुदृष्टगतिर्दिवि। तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि च। २।।

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि वायवे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्योत्तरद्वारे प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं प्राग्वत् स्थापयित्वा सार्वभौमं दिग्गजं न्यस्य प्रपूज्याथर्वविदावृत्विजौ–

बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो गुरुदैवतः। वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।। १।।

इति प्रार्थ्य "शन्नो देवी"रिति गन्धादिना प्रपूज्य, ततः–

एह्येहि यक्षेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।। १।।

भो सोमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं सोममावाह्य "सोमो धेनुं" "वयं सोमे"ति वा पूजयित्वा हरितां श्वेतां पताकां ध्वजं च "आप्यायस्व" इति न्यस्य नरयुतविमानस्थं कुण्डलहारकेयूररुचिरं वरगदाधरदक्षिणवामभुजद्वयं मुकुटिनं महोदरं महाकायं हरितवर्णं कुबेरं ध्यात्वा,

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः। तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः।। १।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि सोमायैतं माषभक्तबलिं समर्पययामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्य ऐशान्यां पूर्ववत् कलशं निधाय सुप्रतीकं दिग्गजं मङ्गल[1] च तत्र सम्पूज्य

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलखट्वाङ्गधारिन् स्वगणेन सार्धम्।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।। १।।

भो ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमीशानमावाह्य "तमीशन"मिति गन्धादिनां प्रपूज्य श्वेतां सर्ववर्णां वा पताकां ध्वजं च "अभि त्वा देव सवितः" इत्युच्छ्रयेत्। ततो वृषारूढं दक्षिणवामहस्तधृतवरत्रिशूलं त्रिनेत्रं शुभ्रवर्णमीशानं ध्यात्वा,

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्।। १।।
सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्ल ईश्वरः। शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः।। २।।

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि ईशानायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्येऽधः

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम्।। १।।

भो अनन्तेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमनन्तमावाह्य "आयं गौ" रिति गन्धादिभिरभ्यर्च्य मेघवर्णां श्वेतां पताकां ध्वजं च "आयं गौ" रित्युच्छ्रयेत्।

अनन्तशयनासीनं फणासप्तकमण्डितम्। पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षभागकरद्वयम्।। १।।
चक्रगदाधरोर्ध्वाधोवामभागकरद्वयम्।

इति नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा,

---

१. 'मण्डलं' क. पाठः।

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्। पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः।। १।।

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि अनन्तायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्य पश्चिमनैर्ऋतमध्ये ऊर्ध्वम्

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्रलोकेन सार्धं पितृदेवताभिः।
सर्वस्व धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय।। १।।

भो ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं ब्रह्माणमावाह्य "ब्रह्म जज्ञान"मिति गन्धादिभिरभ्यर्च्य रक्तां पताकां ध्वजं च तेनैवोच्छ्रित्य अक्षसूत्रकुशमुष्टिधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरं स्रुवकमण्डलुधरोर्ध्वाधोवामकरद्वयं चतुर्मुखं श्मश्रुल[1]जटिलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः। यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः।। १।।

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि ब्रह्मणे एवं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।।

तत आचम्य मण्डपमध्ये चामरकिङ्किणीयुतात्युच्चदण्डो दशषोडशहस्तदण्डो वा दशहस्तदीर्घस्त्रिहस्तविस्तारः पञ्चहस्तदीर्घो हस्तविस्तारो वा महाध्वजो विचित्रवर्णः "इन्द्रस्य वृष्णो" इति संस्थाप्यः। "ब्रह्म जज्ञान"मिति च तत्रैव ब्रह्मपूजनं कार्यम्। ततो मण्डपषोडशस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः। ततः पूर्वस्यां दिशि किञ्चिद्भूमिमुपलिप्योपविश्य,

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे।। १।।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो[2] गावो देवमातर एव च ।। २।।
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपाला गणैः सह।। ३।।
रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः। इति।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ब्रह्मणे नमः। विष्णवे०, शिवाय०, देवेभ्यो०, दानवेभ्यो०, गन्धर्वेभ्यो०, यक्षेभ्यो०, राक्षसेभ्यो०, पन्नगेभ्यो०, ऋषिभ्यो०, मनुष्येभ्यो०, गोभ्यो०, देवमातृभ्यो नमः। इति प्रत्येकं सम्पूज्य पुष्पादियुतं पूर्ववन्मन्त्रैरेव तस्यां भूमावेवैतेभ्य एव माषभक्तबलिं दद्यात्।।

तत आचार्यः सर्त्विक् प्रक्षालितपादपाणिराचान्तः प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमदेशे उपविश्याचम्य "भो ब्राह्मणा यथाविहितं कर्म कुरुध्व"मिति ब्रूयात्। ततो गुरुर्महावेद्युपरि पुष्पाणि विकीर्य उपरि च वितानं पञ्चवर्णं फलपुष्पोपशोभितं वेदिमानं बध्नीयात्। ग्रहवेद्यां च तन्मानं बध्नीयात्, सर्वतोभद्रं च लिखेत्। पूर्णाभिषेकदीक्षायां तु नवहस्त[3]परिमितमध्यवेद्यां श्रीचक्रं तत्तदिष्टदेवताचक्रं वा रचयेत्।

नवहस्तं त्रिहस्तं वा श्रीचक्रमभिषेचने। स्थण्डिले नित्यपूजायां हस्तमात्रं प्रशस्यते।। १।।

इति तन्त्रराजवचनात्। तस्मिन् पक्षे ग्रहवेदी सर्वतोभद्रमण्डलवेदी चैशान्यां क्रियते। गुरुमण्डलवेदी वायव्ये, मिथुनपूजावेदी आग्नेये, तद्दिननित्यापूजावेदी वास्तुमण्डलसमीपे, इति सम्प्रदायः। तथा[4]त्रावसरे आचार्यः स्वगृह्योक्तविधिना स्वकुण्डेऽग्निस्थापनं कुर्यात्। तेनैव क्रमेणान्यकुण्डेष्वपि स्वस्वशाखोक्तविधिना ऋत्विजोऽग्निस्थापनं कुर्युः। गुरुश्च सर्वकर्माध्यक्षस्तिष्ठेत्। एवमग्निषु प्रणीतेषु गुरुर्ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रे च, अद्येहेत्यादि दीक्षादानाख्यकर्माङ्गतया मण्डपदेवतास्थापनं करिष्ये, इत सङ्कल्प्य ब्रह्मादीन् स्थापयेत्। मध्ये ब्रह्मा "ब्रह्म जज्ञानं" गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्

१. 'श्मश्रुजटिलं' क. पाठः। २. 'मुनयो' क. पाठः। ३.'नवहस्तदशहस्त' ग. पाठः। ४. 'यथा' क. पाठः।

ब्रह्मस्थापने पूजने च विनियोगः। एवमुत्तरत्र "ॐ ब्रह्म जज्ञानं"। १। उत्तरे सोमः। २। "ॐ अभि त्वा देव सवितः"। ३। पूर्वे इन्द्रः "इन्द्रं वो" मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री। ४। आग्नेये अग्निः "अग्नि" काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री "अग्निं दूतं वृणीमहे"। ५। दक्षिणे यमः "यमाय सोमं" वैवस्वतो यमो यमोऽनुष्टुप्। ६। नैर्ऋत्यां निर्ऋतिः "मोषुणो" घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री। ७। पश्चिमे वरुणः "तत्त्वा यामि" शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप्। ८। वायव्यां वायुः "वायो शतं' गौतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप्। ९। वायुसोममध्येऽष्टौ वसवः "ज्मया अत्र" मैत्रावरुणो वसिष्ठो वसवस्त्रिष्टुप्। १०। सोमेशानमध्ये एकादश रुद्राः "आ रुद्रासः" श्यावाश्वस्यैकादश रुद्रा जगती "आ रुद्रासः"। ११। ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादित्याः "त्यानु क्षत्रियान्" सांमदो (मत्स्यो) मगे द्वादशादित्या गायत्री। १२। इन्द्राग्निमध्ये अश्विनौ "अश्विना" राहूगणो गौतमोऽश्विनौ उष्णिक् १३। अग्नियममध्ये विश्वेदेवाः सपैतृकाः "ओमासः' मधुच्छन्दा विश्वेदेवा गायत्री। १४। यमनिर्ऋतिमध्ये सप्तयक्षाः "अभि त्यं" वामदेवः सप्तयक्षाः प्रकृतिः "ॐ अभि त्यं देवं सवितारमोण्यो कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभिः प्रियं मतिकविं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीतः सुक्रतुः प्रिया स्वः"। १५। निर्ऋतिवरुणमध्ये भूतनागाः "आयं" गौः सार्पकराज्ञी सर्पा गायत्री "आयं गौः"। १६। वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः "अप्सरसाम्" एतश ऋष्यशृङ्गो गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्टुप्। "ॐ अप्सरसां गन्धर्वाणां"। १७। ब्रह्मसोममध्ये स्कन्दनन्दीश्वरशूलमहाकालाः "कुमारं" कुमारः स्कन्दस्त्रिष्टुप् "कुमारं माता"। १८। "ऋषभं" ऋषभो वैराजोऽनुष्टुप् "ऋषभं मा"। १९। ब्रह्मेशानमध्ये दक्षादिः सप्तकोणे वा "अदितिः" लोक्यो बृहस्पतिर्दक्षोऽनुष्टुप् "ॐअदितिर्ह्यजनिष्ट"। २०। ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गा विष्णुश्च "तामग्निवर्णां" सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् "ओं तामग्निवर्णां"। २१। "इदं विष्णुः" काण्वो मेधातिथिर्गायत्री "ॐ इदं विष्णुः"। २२। ब्रह्माग्नेयमध्ये स्वधा "उदीरतां" शंखः स्वधा त्रिष्टुप् "उदीरतामवर"। २३। ब्रह्मयममध्ये विष्णुमृत्युरोगाः "परं मृत्यो" सङ्कुसुको मृत्युरोगास्त्रिष्टुप्। २४। ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये गणपतिः "गणनां त्वा" गृत्समदो गणपतिर्जगती। २५। ब्रह्मवरुणमध्ये आपः "शन्नो" अम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री। २६। ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः "मरुतो यस्य" राहूगणो गौतमो मरुतो गायत्री। २७। ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः पृथ्वी "स्योना" मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री।२८। तत्रैव गङ्गादिनद्यः "इमं मे" सिन्धुक्षित् प्रैयमेधो, गङ्गायमुनासरस्वत्यो जगती।२९। तत्रैव सप्त सागराः "धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च। यदापो अघ्न्या इत् वरुणेति शपामहे ततो वरुणा नो मुञ्च। मयि वायो मोषधीर्हिंसीरतो विश्वव्यचा भूस्त्वेतो वरुण नो मुञ्च।३०। तदुपरि मेरुं नाम्ना पूजयेत्। बाह्ये सोमादिसमीपे क्रमेणायुधानि— गदां० त्रिशूलं० वज्रं० शक्ति० खड्गं० पाशं० अङ्कुशं०। तद्बाह्ये उत्तरादितः—गौतमः भरद्वाजः विश्वामित्रः कश्यपः जमदग्निः वशिष्ठः अत्रिः अरुन्धतीति।८। तद्बाह्ये पूर्वादि ऐन्द्री कौमारी ब्राह्मी वाराही चामुण्डा वैष्णवी माहेश्वरी वैनायकी इत्यष्टौ शक्तयः, एतान् स्वस्वमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सह वा पूजयेत्। एवमग्निं प्रणीय देवतास्थापनवेद्यां ग्रहादिपञ्चाशीतिदेवतास्थापनं कुर्यात्। तत्रायं प्रयोगः— अद्येहेत्यादि दीक्षादानाख्यकर्मणि ग्रहादिपीठदेवतास्थापनमहं करिष्ये। प्रणवस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता देवीगायत्री छन्दः, व्याहृतीनां क्रमेण जमदग्निभरद्वाजभृगवो ऋषयः अग्निवायुसूर्या देवताः देवीगायत्रीदेवीउष्णिक्—देवीबृहत्यः छन्दांसि सूर्याद्यावाहने विनियोगः। तत्राग्रपीठमध्ये वर्तुले द्वादशाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं सूर्यं रक्तपुष्पाक्षतैः आकृष्णेति हिरण्यस्तूप ऋषिः सविता देवता त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यावाहने विनियोगः। "आकृष्णेन" ॐभूर्भुवःस्वः कलिङ्गदेशोद्भव काश्यपसगोत्र सूर्येहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्। १। तत आग्नये चतुरस्रे चतुर्विंशाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं सोमं श्वेतपुष्पाक्षतैः आप्यायस्वेति गौतमः सोमो गायत्री सोमावाहने विनियोगः। "ॐ आप्यायस्व०" ॐभूर्भुवःस्वः यमुनातीरोद्भव

आत्रेयसगोत्र सोमेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।२। ततो दक्षिणे त्रिकोणे त्र्यङ्गुले मण्डले दक्षिणमुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः अग्निर्मूर्धेति विरूपः आङ्गिरसोऽङ्गारको गायत्री अङ्गारकावाहने विनियोगः। "ॐ अग्निर्मूर्धा" ॐभूर्भुवःस्वः सरस्वतीसमुद्भव भारद्वाजसगोत्र भौमेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्। ३। तत ऐशाने बाणाकारे चतुरङ्गुले मण्डले उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैः उद्बुध्यध्वमिति बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप् बुधावाहने विनियोगः। "ओं उद्बुध्यध्वं" ॐभूर्भुवःस्वः मगधदेशोद्भवात्रेयसगोत्र बुधेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्। ४। तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे षडङ्गुले उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैः बृहस्पते इति गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् बृहस्पत्यावाहने विनियोगः। "बृहस्पतेऽति य" ॐभूर्भुवःस्वः सिन्धुदेशोद्भवाङ्गिरसगोत्र बृहस्पते इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्। ५। ततः पूर्वे पञ्चकोणे नवाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं शुक्रं शुभ्रपुष्पाक्षतैः शुक्र इति पाराशरः शुक्रो द्विपदा विराट् शुक्रावाहने विनियोगः। "ॐ शुक्रः शुशुक्वान्" ॐभूर्भुवःस्वः भोजराड्देशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्रेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्। ६। ततः पश्चिमे धनुषि क्षङ्गुले मण्डले प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः शमग्निरिति इरिंबिठिः शनैश्चर उष्णिक् शन्यावाहने विनियोगः। "शमग्निः" ॐभूर्भुवःस्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपसगोत्र शने इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति संस्थापयेत्।७। ततः कृष्णशूर्पमण्डले दक्षिणमुखं राहुं धूम्रपुष्पाक्षतैः कया न इति वामदेवो राहुर्गायत्री विनियोगः। "ओं कया नः" ॐभूर्भुवःस्वः पूर्वदेशोद्भव पाटलिसगोत्र राहो इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्। ८। ततो वायव्ये ध्वजाकारे मण्डले दक्षिणमुखान् केतून् कृष्णपुष्पाक्षतैः केतुं कृण्वन् इति मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री केत्वावाहने विनियोगः। "ओं केतुं कृण्वन्" ॐभूर्भुवःस्वः मध्यदेशोद्भवा जैमिनिगोत्राः केतव इहागच्छतेत्यावाह्येह तिष्ठतेति स्थापयेत्।। ९।।

अथाधिदेवताः श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात् सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः। "त्र्यम्बकं" वशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप्। विनियोगः सर्वत्र देयः। "त्र्यम्बकं" ॐभूर्भुवःस्वः ईश्वरः। १। "गौरीर्मिमाय" दीर्घतमा उमा जगती सोमदक्षिणे।२। "यदक्रन्दो" दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप्।३। "विष्णो" दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप्। ४। "ब्रह्म जज्ञानं" गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्। ५। "इन्द्रं वो" मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री। ६। "यमाय सोमं" यमो यमोऽनुष्टुप्।७। "मोषुणो" घोरः कण्वो गायत्री।८। "उभो वाजं" प्रस्कण्वश्चित्रगुप्तो बृहती।९। एवमेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ग्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहृतीरुक्त्वा इहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत्। "अग्निं" काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री, "अग्निं दूतं"। १। "अप्सु" मेधातिथिरापोऽनुष्टुप्। २। "स्योना" मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री।३। "इदं विष्णुः" मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री। ४। "इन्द्र श्रेष्ठानि" गृत्समद इन्द्रस्त्रिष्टुप्। ५। "इन्द्राणी" वृषाकपिरिन्द्राणी पङ्क्तिः। ६। "प्रजापते नहि" हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्। ७। "आयं गौः" सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री। ८। "ब्रह्म जज्ञानं" गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्। ९। ततः शुक्लपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पञ्च०। "गणानां त्वा" गृत्समदो गणपतिर्जगती, राहोः (वामे) विनायकम्। १। "जातवेदसे" कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप्, शनेरुत्तरतो दुर्गा०। २। "तववायवृतस्पते" आङ्गिरसो वायुर्गायत्री, रवेरुत्तरतो वायुं०। एतान् मन्त्रान् पठन्ति साम्प्रदायिकाः। ३। "आदित्प्रत्नस्य" वत्स आकाशो गायत्री, राहोर्दक्षिणे आकाशम्। ४। "एषो उषा" प्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री। अश्विनाविहागच्छतेह तिष्ठतेति केतोर्दक्षिणेऽश्विनौ।। ५।।

अथ लोकपालाः— "इन्द्रं विश्वा जेता" माधुच्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप्, इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रं०। एवमुत्तरत्र। १। "अग्निः" मेधातिथिरग्निर्गायत्री। २। "यमाय सोमं" यमो यमोऽनुष्टुप्।३। "मोषुणो" घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री।४। "त्वन्नो अग्ने" वामदेवो वरुणस्त्रिष्टुप्। ५। "तव वायो" व्यश्व्यो वायुर्गायत्री। ६। "सोमो धेनुं"

गौतमः सोमस्त्रिष्टुप्।७। ''तमीशानं'' गौतमः सोम ईशानो गायत्री। ८। ''सहस्रशीर्षः नारायणोऽनन्तोऽनुष्टुप्, ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम्०। ९। ''ब्रह्म जज्ञानं'' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्। १०। नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणम्० १२। ततः उत्तरे ''क्षेत्रस्य'' वामदेवः क्षेत्रपालोऽनुष्टुप्। ''वास्तोष्पते'' वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप्। ततः

सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।। १।।

इत्यनेन चोत्तरे गरुत्मन्तमावाह्य। रवेः पूर्वे शेषं, सोमस्याग्रे वासुकिं, भौमाग्रे तक्षकं, बुधोत्तरे कार्कोटकं, बृहस्पतेरग्रे पद्मकं, शनिपश्चिमे शङ्खपालं, राहोः पुरः कम्बलं, केतोः पुरः कुलिकं। पीठात् प्राच्यामश्विन्यादसप्तनक्षत्राणि, विष्कम्भादिसप्तयोगान् ववबालवकरणे सप्तद्वीपानि ऋग्वेदं च। दक्षिणे पुष्यादिसप्तनक्षत्राणि, धृत्यादिसप्तयोगान्, कौलवतैतिले करणे, सप्तसागरान् यजुर्वेदं च। पश्चिमे स्वात्यादिसप्तनक्षत्राणि, वज्रादिसप्तयोगान्, गरवणिजे करणे, सप्तपातालानि सामवेदं च। उत्तरेऽभिजिदादिसप्तनक्षत्राणि, साध्यादिषट्योगान्, विष्टिकरणं, भूरादिसप्तलोकान् अथर्ववेदं च। वायव्ये ध्रुवं सप्तर्षींश्च। अथ यथावकाशं गङ्गादिसप्तसरितः, सप्त कुलाचलान्, अष्टौ वसून, द्वादशादित्यान्, एकादश रुद्रान्, एकोनपञ्चाशन्मरुतः, षोडश मातृः, षड्ऋतून्, द्वादश मासान्, द्वे अयने, पञ्चदश तिथीन्, षष्टिं संवत्सरान्, नागान् सर्पान्, यक्षान्, गन्धर्वान्, विद्याधरान्, अप्सरसः, रक्षांसि, भूतानि, मनुष्यान् इति। ततो वेद्यैशान्यां कलशं स्थाप्य, तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याभ्यर्च्चयेत्। यथा कलशाभिमन्त्रणम्—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य[1] स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।। १।।

कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।। २।।

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः। अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा।। ३।।

आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः। देवदानवसंवादे मध्यमाने महोदधौ ।। ४।।

उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि[2] देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।।५।।

त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।। ६।।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः। त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः।। ७।।

त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।। ८।।

इति। ततः फलपुष्पामालोल्लसितं वितानं वृहस्पतिदैवतं सूर्यादिभ्य इदं न ममेत्युत्सृज्य ग्रहवेद्युपरि बध्नीयात्। एवं वेदोक्तमण्डपप्रतिष्ठादिकं विदध्यादिति। अन्यत्सर्वं प्रागुक्तविधिना विधेयम्।

ततो गुरुः सशिष्यः प्रातरुत्थाय कृतावश्यकक्रियः प्रादेशमात्रं शिष्याय यथोक्तं दन्तकाष्ठं मूलमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितं दत्त्वा दन्तधावनं कारयेत्। दन्तान् विशोध्य दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरश्चतुरस्रे हस्तमात्रे वा स्थण्डिले त्यजेत्। ततो गुरुस्तत्परीक्षां कुर्यात्। तत्र शुभाशुभफलानि प्रागेव प्रमाणनिरूपणे प्रोक्तानि, प्रायश्चित्तं चाग्रे वक्ष्यते। ततः शिष्योऽपि स्नातः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः समलङ्कृतः श्रीगुरुं प्रणम्य तदाज्ञया तत्पार्श्वे उपविशेत्। ततो गुरुश्च ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे तथैव देवं साङ्गं सावरणं सम्पूज्य सघृतैस्तिलैस्तत्तत्कल्पोक्तपुरश्चरणहोमद्रव्यैर्वाऽष्टोत्तरसहस्र-मष्टोत्तरशतं वा जुहुयुः। ततो गुरुः शिष्यं शूद्रव्यतिरिक्तं पञ्चगव्यं पाययित्वा कुण्डसमीपं नीत्वा दिव्यदृष्ट्या विलोक्य

१. 'तत्र' क. पाठः। २. 'भूतानि' क. पाठः।

तस्य हृदयारविन्दात् जीवात्मानं भूतशुद्ध्युक्तपरिपाट्या तद्देहाद् ब्रह्मरन्ध्रमार्गात् निःसार्य स्वात्मनि गुरूक्तयुक्त्या योगबलेन संयोज्य शिष्यषडध्वशोधनं कुर्यात्। तत्र शिष्यस्य पादयोः कलाध्वानं निवृत्तिप्रतिष्ठाविद्याशान्तिशान्त्यतीताश्चेति पञ्चकलात्मकं सञ्चिन्त्य, ततस्तस्य लिङ्गप्रदेशे शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलाविद्याकालराग-नियतिपुरुषप्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्नि-सलिलपृथिव्यात्मकषट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं शिवतत्त्वाध्वानं ध्यायेत्। इति शैवदीक्षायाम्।। वैष्णवदीक्षायां तु— जीवप्राणधियो मन इन्द्रियदशकं तन्मात्राः, भूतानां पञ्चकमपि हृत्पद्मतेजसां त्रितयं तद्वच्च वासुदेवप्रमुखाश्चत्वार उपदिष्टा इति। इन्द्रियदशकं प्रागुक्तं श्रोत्रादयो वागादयश्च। तन्मात्राश्च शब्दादयः। भूतपञ्चकमाकाशादि। तेजसां त्रितयं सोमसूर्याग्निमयं, वासुदेवप्रमुखाश्च वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वारः।। सौरदीक्षायां तु— भूततन्मात्रेन्द्रियाणि मनो गर्वश्च बुद्धिश्च धीस्तथा प्रधानं चेति। इन्द्रियाणि दश ज्ञानकर्मभेदात्। गर्वोऽहङ्कारः। प्रधानं प्रकृतितत्त्वम्।। शक्तिदीक्षायां तु— (निवृत्त्याद्याः पञ्च कलाः, बिन्दुः नादः शक्ति सदाशिवः शिव इति दश तत्त्वानि।। त्रिपददीक्षायां तु)— "आत्मविद्याशिवा एते विपरीतास्त एव च। सर्वतत्त्वं चे"ति। विपरीताः शिवविद्यात्मानः इति क्रमेण त एव च आत्मविद्याशिवा एवेति सप्त तत्त्वानि। इत्थं तत्तद्दीक्षायां तत्तदध्वानं चिन्तयेदिति।। गाणपत्यदीक्षायां तु शैवतत्त्वान्येव ज्ञातव्यानि।। ततः शिष्यस्य नाभौ अतलवितलसुतलमहातलतलातलरसातलपातालभूर्भुवःस्वर्महर्जनस्तपःसत्यलोकात्मनाचतुर्दशभुवना-ध्वानं सञ्चिन्त्य, (ततस्तस्य हृदये आदिक्षान्तार्णस्वरूपं वर्णाध्वानं भावयेत्। ततः शिष्यललाटे वर्णसङ्घमयं पदाध्वानं विभावयेत्।) ततः शिष्यशिरसि पदसमुदायमयं मूलमन्त्रस्वरूपं मन्त्राध्वानं भावयेत्, इति शिष्यशरीरेऽध्वषट्कं सञ्चिन्त्य, तं कूर्चेन स्पृशन् गुरुः स्वकुण्डे "ओं अमुकस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा" इति घृताक्तैस्तिलैरष्टधा हुत्वा कलाध्वानं तत्त्वाध्वनि विलीनं विभाव्य "ओं अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा" इत्यष्टधा हुत्वा तत्त्वाध्वानं भुवनाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः "ओं अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा" इत्यष्टधा हुत्वा भुवनाध्वानं वर्णाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः "ओं अमुकस्य वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहा" इत्यष्टधा हुत्वा तं पदाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः "ओं अमुकस्य पदाध्वानं शोधयामि स्वाहा" इत्यष्टधा हुत्वा तं मन्त्राध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः "ओं अमुकस्य मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहा" इत्यष्टधा हुत्वा तं ब्रह्मरन्ध्रस्थपरशिवे लीनं विभाव्य पुनः संहृतिप्रतिलोमेन परमशिवस्य सकाशात् मन्त्राध्वानं सृष्ट्वा, ततः पदाध्वानं तस्माद्वर्णाध्वानं ततो भुवनाध्वानं तस्मात्तत्त्वाध्वानं ततः कलाध्वानं च सृष्ट्वा तत्तत्स्थाने संस्थाप्य, शिष्यं दिव्यदृष्ट्या विलोक्य, स्वस्मिन् स्थितं शिष्यचैतन्यं ततो हृदयारविन्दे आवाहनोक्तप्रकारेण तद्ब्रह्मरन्ध्रे नियोजयेत्। अथ शूद्रसङ्करजातीनामध्वशोधनं न कार्यम्। तेषां पादोदकप्रदानेन शोधनं कुर्यात्। ततः पूर्ववत् स्वेष्टदेवताया अङ्गावरणदेवतानां घृतेनैकैकामाहुतिं दत्त्वा[1], ओं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ओं भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ओं स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ओं भुर्भूवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा, इत्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा, इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा—

---

१. 'हुत्वा' ग. पाठः।

ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते।। १।।
त्वं रौद्र घोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे।।२।।

इत्यग्निं प्रार्थ्य अग्निमन्त्रेण प्राग्वदग्निं सम्पूज्य, न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलं ओंहूं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा, इति तिलैराहुतिं हुत्वा, घृतेन स्रुवमापूर्य तदुपरि पुष्पमधोमुखं स्रुचं च निधाय शङ्खवत्सम्पुटाभ्यां कराभ्यां गृहीत्वोत्थाय, स्रुक्स्रुवयोर्मूलं नाभौ निधाय वौषडन्तेन मन्त्रेणाहुतित्रयं दत्त्वा, प्राग्वत्तत्र देवं सम्पूज्य, वह्नेः सकाशादुद्वास्य कलशे विसृज्य, प्राग्वद् व्याहृत्याग्निजिह्वाङ्गमूर्तिमन्त्रैरेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा प्राग्वत् प्रोक्षणीयजलेनाग्निं परिषिच्य—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्।। १।।

इत्यग्निं प्रार्थ्य, संहारमुद्रया तं स्वात्मन्युद्वास्य परिधीन् परिस्तरणांश्च तूष्णीमग्नौ प्रक्षिप्य, प्रणीतापात्रमुद्वास्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, ॐ प्राच्यै दिशे नमः, एवं दक्षिणायै० प्रतीच्यै० उदीच्यै० ऊर्ध्वायै दिशे नमः, इति तत्तद्दिशि प्रणीताजलमुत्क्षिप्य, अधरायै दिशे नमः, इति भूमौ जलं निक्षिप्य, भूमौ पतितजलेन स्वात्मानं शिष्यं च कुशैः सम्प्रोक्षयेदिति प्रणीतोद्वासनं विधाय, ब्रह्माणमुद्वास्य ब्रह्मस्थाने ब्राह्मणाय सहिरण्यं पूर्णपात्रं दापयेद् इति दीक्षाङ्गहोमविधिः।। पूर्णपात्रस्वरूपं तु दीक्षाप्रकरणेऽभिहितम्।। ततो नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रे नूतनवस्त्रपट्टेन बद्ध्वा तं हस्तेन गृहीत्वा कुम्भसमीपे[1] गत्वा तेन सह, तस्याञ्जलिं पुष्पैरापूर्य स्वयं मूलमन्त्रमुच्चरन्, घटस्थदेवतायै पुष्पाञ्जलिं दापयित्वा तस्य नेत्रबन्धनं विमुच्य कुशास्तरे, तमुपवेश्य—

"अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः"।। १।।

इति मन्त्रं पाठयित्वा कुम्भे देवं साङ्गावरणं सर्वोपचारैः सम्पूज्य, प्रागुक्तभूतशुद्धिविधिना शिष्यस्य देहं संस्मृत्य संशोध्योत्पाद्य, तस्य देहे मूलमन्त्रस्य ऋष्याद्यखिलन्यासजालं विधाय, पुनः कुम्भस्थदेवतां गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, मण्डपद्वारदेवताः सलोकपालाङ्गावरणदेवता गणेशादिचतुरायतनदेवताः स्वस्वाङ्गावरणसहिता देवस्याङ्गे विलीना इति विभाव्य, तं प्रागुक्तविधिना षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य तेजोरूपमापाद्य, तत्तेजोरूपं कलशजलं परब्रह्ममयं सञ्चिन्तयन्, शिष्यं समलङ्कृतं वेद्याः समीपे पूर्वेशानोत्तरान्यतमदिशि सर्वतोभद्रादिमण्डले पूर्वाभिमुखं भद्रपीठे समुपवेश्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं गुरुः कुम्भं समुद्धृत्य, कुम्भस्थाम्रपल्लवादिकं कल्पवृक्षशाखाबुद्ध्या शिष्यशिरसि निधाय, वेदघोषं कुर्वद्भिर्ऋत्विग्भिरन्यैश्च ब्राह्मणैः सह मूलमन्त्रेण विलोममातृकया ते पूर्वाभिमुखोपविष्टमुत्तराभिमुखस्तिष्ठन् अभिषिच्य, पुनः पूर्वमभ्यर्चितमस्त्ररूपं गृहीत्वा, तत्तोयैरभिषिच्य तत्करकावशिष्टजलेन शिष्यमाचामयित्वा, देवतास्वरूपं तं प्राग्वत् षडङ्गन्यासेन सकलीकृत्य, शुद्धे नूतने वाससी परिधाप्य स्वाचान्तं स्वसमीपे समुपवेश्य, शिष्यदेहे सङ्क्रान्तं देवं तस्यैव देहे गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य शिष्यदेवतयोरैक्यं विभावयन्, सुविनीतस्य शिष्यस्य दक्षिणकर्णे श्रीमूलमन्त्रं गणेशादिचतुरायतनमन्त्रपूर्वकं, गणेशदीक्षायां सूर्यादिपूर्वकं तत्तदङ्गतया पूजनक्रमेण वारत्रयं च वदेत्। शिष्यो ब्राह्मणश्चेत्तस्य हस्ते मन्त्रदानरूपेणोदकं दद्यात्, अन्येभ्यस्त्वेवमेव वदेत्। ततः शिष्यः स्वगुरूपदिष्टमन्त्रमृष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिवारमष्टधा वा जपित्वा, जपं समर्प्य गुरुमन्त्रदेवतानामैक्यं विभाव्य, साष्टाङ्गं बहुशो गुरुं प्रणम्य पुनः पञ्चाङ्गं प्रणमेत्। तत्राष्टाङ्गपञ्चाङ्ग्योर्लक्षणमुक्तं प्रागेव प्रमाणे। इत्थं प्रणम्य गुरवे ऋत्विग्भ्यश्च प्रमाणोक्तां दक्षिणां दद्यात्, इति क्रियामयी दीक्षा।।

१. 'कुण्डात् मण्डलसमीपे' ख. पाठः।

अथैवं विस्तरतः क्रियादीक्षां कर्तुमशक्तश्चेत् पूर्वोक्ते कनिष्ठमण्डपे प्राग्वद्वेदिकायां मण्डलं कृत्वा तथैव तत्र कुम्भस्थापनं कृत्वा, ऋत्विग्वरणाशक्तौ गुरुश्चतुरस्रमेव कुण्डं कृत्वा, तत्राग्निस्थापनाद्यखिलं कृत्वोक्तविधिनाभिषिच्य दीक्षां दद्यात्। मण्डपकरणाशक्तौ क्वचित् प्रशस्ते स्थले प्राग्वत् मण्डलं तत्तद्देवतापूजाचक्रं च वा कृत्वा, तदशक्तौ प्रागुक्तविधिना स्थण्डिलं कृत्वा तत्रोक्तविधिनाग्निं संस्थाप्योक्तविधिना होमादिकं कृत्वाभिषिच्य मन्त्रं दद्यात्।। अथ येऽग्नेवर्णाद्यास्तानाह, तत्र नारदपञ्चरात्रे—

अग्नेर्भासश्च गन्धाश्च शब्दाश्चाकृतयस्तथा। विकाशाश्च शिखाश्चैव संवेद्याः कर्मसिद्धये।। १।।
पद्मरागद्युतिः श्रेष्ठो लाक्षारससमप्रभः। बालार्कवर्णो हुतभुग्जपाभः शस्यते बुधैः।। २।।
इन्द्रगोपकसङ्काशः शोणिताभोऽथ पावकः। शक्रचापनिभः श्रेष्ठः कुसुम्भाभस्तथैव च।। ३।।
रक्तानां पुष्पजातीनां वर्णेनाग्निरिहोच्यते। इति।

अथ गन्धः—

सुगन्धद्रव्यगन्धोऽग्निर्घृतगन्धः सुशोभनः। आयुर्दः पद्मगन्धः स्याद् बिल्वगन्धश्च सुव्रतः।। १।।
नागचम्पकपुन्नागपाटलीयूथिकानिभः। पद्मेन्दीवरकह्लारसर्पिर्गुग्गुलसन्निभः।। २।।
पावकस्य शुभो गन्धः' इति।। अथ शब्दः—

जीमूतवल्लकीशिखिमृदङ्गध्वनितुल्यकः। शब्दोऽग्नेः सिद्धये होतुरन्यथा स्यादसिद्धिदः।। १।।

इति।। शारदातिलके— "भेरीवारिदहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः"। इति।। अथाकृतिः—

वृत्ताकारो द्विजश्रेष्ठ ध्वजचामरसन्निभः। विमानानां हयानां च प्रासादानां वृषस्य च।। १।।
आकारेणाथ हंसानां मयूराणां च सिद्धिदः। तदाकृतिः सदा वह्निः सद्यः सिद्धिकरः स्मृतः।। २।।
शेषाणां दंष्ट्रिणां रूपं न शस्तं होमकर्मणि। यद्रूपं कथितं चैतद्यदि तस्य प्रतीक्षणम्।। ३।।
अन्योन्यत्वं प्रपद्येत तदा सिद्धिकरोऽनलः। इति।

अथ शिखाः—

विषमाश्च शिखा वह्नेस्त्र्याद्यश्च शुभावहाः। ह्रस्वा ह्रस्वोन्नता दीर्घाग्निज्वालाः सिद्धिदाः स्मृताः।। १।।

इति।। तथा शारदातिलके—

प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभाः शिखिनः शिखाः। शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः।। १।।

इति।। तथा नारदपञ्चरात्रे—

प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ निर्धूमे सगुणे तथा। हृद्ये तुष्टिप्रदे चैव होतव्यं सिद्धिमिच्छता।। १।।
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः सुशब्दश्चापि यो भवेत्। नित्यमेवं शुभकरो यदन्यैर्वर्जितोऽगुणैः।। २।।

इति।। अथ निषिद्धः—

अल्पतेजाश्च रूक्षश्च विस्फुलिङ्गसमन्वितः। धूमावलीढज्वालश्च कृशानुर्नैव सिद्धिदः।। १।।
दुर्गन्धश्चावलीढश्च सितकृष्णश्च यो भवेत्। भूमिं च विलिखेद्यस्तु सोऽपि दद्यात् पराभवम्।। २।।

इति।। तथा शारदातिलके—

कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत्। श्वेतो राष्ट्रं निहन्त्याशु वायसस्वरसन्निभः॥ १॥
खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत्। पूतिगन्धो हुतवहो होतुर्दुःखप्रदो भवेत्॥ २॥
छिन्नावृत्ता[1] शिखा कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम्। शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः॥ ३॥
हानिं तुरङ्गजातीनां गवां च कुरुतेऽचिरात्।

इति॥ यथा तन्त्रसारे—

खरोष्ट्रमहिषादीनां रुतमत्र न सिद्धये। रूक्षश्चटचटाशब्दस्त्वपसव्यगतिस्तथा ॥ १॥
उल्लिखेद्वसुधां यश्च यश्चाधःशिख एव च। नेष्यतेऽसौ मुनिश्रेष्ठ शास्त्रेऽस्मिन् पारमेश्वरे॥ २॥

इति॥ अत्रैवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तमुक्तं कुलप्रकाशतन्त्रे—

एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः। मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतीः॥ १॥
पञ्चविंशतिरेकैकस्मिन् दोषे॥ अथ वह्नेः सात्त्विकादिजिह्वाभेदाः— तत्र दीक्षाङ्गहोमे सात्त्विक[2]शान्तिकहोमे हिरण्याद्याः प्रागेवोक्ताः। अथ वश्यादिकाम्यहोमेषु राजस्यो जिह्वाः कुलमूलावतारे—

राजस्यः पद्मरागैका सुवर्णा भद्रलोहिता। चतुर्थी लोहिता श्वेता धूमिन्यन्या करालिका॥ १॥

इति॥ तामस्योऽपि तत्रैव—

........................तामस्यो विश्वमूर्तिका। स्फुलिङ्गिनी धूम्रवर्णा[3] चतुर्थी तु मनोजवा॥ १॥
पञ्चमी लोहिताख्या स्यात् कराली गदिता तथा। काली च सप्तमी प्रोक्ता ज्ञातव्याः कार्यभेदतः॥२॥
यागक्रियाकाम्यहोमक्रूरहोमेषु च क्रमात्॥

इति॥ अथ जिह्वानामधिदेवताः कुलप्रकाशतन्त्रे—

जिह्वानामधिदेवताः स्युर्विबुधाः पितरस्तथा। गन्धर्वयक्षनागाश्च पिशाचा राक्षसास्तथा॥ १॥
रसनासु सुरादीनां जुहुयात् कार्यसिद्धये। तृप्ता दद्युस्ततो देवा वाञ्छितां सिद्धिमुत्तमाम्॥ २॥
रसनाः स्वीयनामाभाः कृशानोः प्रायशो मताः।

इति॥ उत्तरतन्त्रे—

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु देशिकः। शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषकर्मसु॥ १॥

इति॥ अथात्र होमकाले वह्नेर्जिह्वाशिरःकर्णादिकं ज्ञात्वा जिह्वायामेव जुहुयात्। तथा चोक्तं महाकपिलपञ्चरात्रे राहुकल्पे च —

सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तस्य होमयेत्। चक्षुःकर्णादिकं ज्ञात्वा होमयेद् देशिकोत्तमः॥ १॥
अग्निकर्णे हुतं यत्तत्[4] कुर्याच्च व्याधितो भयम्। नासिकायां महद्दुःखं चक्षुषोर्नाशनं भवेत्॥२॥
केशे दारिद्र्यदं प्रोक्तं तस्माज्जिह्वासु होमयेत्। यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ यत्र धूमस्तु नासिका॥३॥
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिरः। यत्र प्रज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वाः प्रकीर्तिताः॥ ४॥

इति॥ तथा शारदातिलके—

---

१. 'वर्ता' ख. पाठः। २. 'कादि' क. पाठः। ३. 'र्णे' क. पाठः। ४. 'तु' क. पाठः।

आस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेः विपश्चित् सर्वकर्मसु। कर्णहोमे भवेद्व्याधिर्नेत्रे त्वन्धत्वमीरितम्॥ १॥
नासिकायां मनःपीडा मस्तके धनसंक्षयः। सधूमोऽग्निः शिरः प्रोक्तं निर्धूमश्चक्षुरेव च॥ २॥
ज्वलन् कृशो भवेत्कर्णः काष्ठमग्नेश्च नासिका। अग्निर्विजायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः॥ ३॥
तन्मूलं तत्र विज्ञेयं चतुरङ्गुलमानतः।

इति॥ अथ स्रुक्स्रुवौ उत्तरतन्त्रे—

स्रुक्स्रुवौ शिंशपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिराम्रजौ। चन्दनद्वयदेवद्रुविकङ्कतशमीभवौ॥ १॥
बिल्वोदुम्बरपलाशनागकेसरसम्भवौ। बकुलाशोकपुन्नागप्लक्षन्यग्रोधचम्पकैः ॥ २॥
निर्मिता विति॥ शारदातिलके—

श्रीपर्णीशिंशपाक्षीरशाखिष्वेकतमं बुधः। गृहीत्वा विभजेद्धस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुनः ॥ १॥
विंशत्यंशैर्भवेद् दण्डो वेदिस्तैरष्टभिर्भवेत्। एकांशेन मितः कण्ठः सप्तभागमितं मुखम्॥ २॥
वेदित्र्यंशेन विस्तारः कण्ठस्य परिकीर्तितः। अग्रं कण्ठसमानं स्यान्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत्॥ ३॥
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय वै। वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका॥ ४॥
विदधीत बहिस्तस्या एकांशे नाभिपङ्कजम्[1]। तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्धांशतो बहिः॥ ५॥
अंशेनैकेन परितो दलान्यष्टौ[2] प्रकल्पयेत्। मेखला मुखवेद्योः स्यात् परितोऽर्धांशमानतः॥ ६॥
दण्डमूलाग्रयोः कुम्भौ गुणवेदाङ्गुलैः क्रमात्। द (ग) ण्डीयुगं यमांशैः स्याद्दण्डस्यानाह ईरितः॥७॥
षड्भिरंशैः पृष्ठभागो वेद्याः कूर्माकृतिर्भवेत्। हंसस्य वा हस्तिनो वा पोत्रिणो वा मुखं लिखेत्॥८॥
मुखस्य पृष्ठभागेऽस्याः सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः। स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैरारचयेत् स्रुवम्॥ ९॥
द्वाविंशत्या दण्डमानमंशैरेतस्य कीर्तितम्। चतुर्भिरंशैराऩाहः कर्षाज्य[3]ग्राहि तच्छिरः॥ १०॥
अंशद्वयेन निखनेत् पङ्कं मृगपदाकृतिम्। दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी भवेत् कङ्कणभूषिता॥ ११॥

इति। गण्डीयुगं कङ्कणाकारं, "कङ्कणभूषिते"ति स्वयमुक्तत्वात्। "गण्डी कङ्कणवद् भवे"दिति वायवीयसंहितावचनाच्च। अन्यत्र तु गण्डी कुम्भः। तत्र तस्यैवावश्यकत्वात्। वायवीयसंहितायां—"स्रुक्स्रुवौ तैजसौ वापि" इति॥ स्रुक्स्रुवाभावे कुम्भसम्भवः—

पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरौ स्रुक्स्रुवौ मुने। विदध्याद्वाश्वत्थपत्रे सङ्क्षिप्ते होमकर्मणि॥ १॥

इति॥ अथैतद्रचनाप्रकारमाह— तत्र शिंशपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिराम्रचन्दनदेवदारुविकङ्कतशमीपलाशोदुम्बरबिल्वपनसबकुलाशोकनागकेसरपुन्नागचम्पकवटवृक्षाणामन्यतममशुष्कमव्रणमशीर्णं घुणादिभिरदुष्टमुद्दिष्टमानादधिकस्थूलदीर्घं समचतुरस्रं काष्ठं गृहीत्वा, तत्र मुष्ट्यङ्गुलेन चतुर्विंशत्यङ्गुलमानं षट्त्रिंशदंशेन विभज्य, तेषु विंशत्यंशं दण्डार्थं विभज्यावशिष्टषोडशभागेष्वग्रप्रदेशे भागाष्टकं मुखार्थं परिकल्प्यावशिष्टभागाष्टकेन समचतुरस्रां वेदीं कृत्वा तन्मध्यचिह्नं कृत्वा तच्चिह्नमवलम्ब्यार्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्येकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तराले भागत्रयं निम्नं मध्ये वृत्ताकारां कर्णिकां स्थापयित्वा तद्बहिर्गर्तं कृत्वा तद्बहिरर्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरपि एकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तरालेऽष्टदलानि परिकल्प्य तद्बहिरर्धांशमाने सुसमाकारां चित्रितां वा शोभां

१. 'नाभितोघटम्' क. पाठः। २.' नि परिक' ख. पाठः। ३. 'कर्षार्ध' क. पाठः।

विदध्यात्। ततोऽग्रेऽवशिष्टांशेन वेद्यास्तृतीयांशेन पार्श्वद्वयखण्डनेन मध्ये एकांशेन कण्ठं विधाय कण्ठतः किञ्चिदुच्चमवशिष्टं सप्तभिरंशैरग्रं कण्ठसमानविस्तारं समतलमधस्तादधोऽधः क्षीयमाणविस्तारं कृत्वा, मुखेऽपि वेदीवत् मेखलां परिकल्प्य कण्ठादधो मुखस्य मेखलामभिन्दन् प्रणालिकाकारमेकांशमाननिम्नं कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं खातं कृत्वा कर्णिकामध्यस्थ-खातमध्यात् मुखमध्यस्थप्रणालिकाकारखातमध्ये यथा घृतं निःसरति तथा तप्तलोहशलाकया कण्ठवेदिपरिधिभेदनं सुषिरं विधाय, तथैवाग्रेऽपि मुखपरिधिभेदनं घृतनिर्गमाय कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं रन्ध्रं कुर्यात्। ततो वेद्याः पृष्ठभागे कूर्माकारं मध्ये किञ्चित्समतलं भूमौ यथा निश्चलं तिष्ठति तथा कृत्वा मुखस्य पृष्ठभागे मध्ये किञ्चिन्निम्नं कृत्वा, मुखरन्ध्राधस्ताद् उच्चभागं हंसमुखाकारं गजमुखाकारं वराहमुखाकारं वा सुरम्यं कारयित्वा, दण्डस्याग्रे वेधत एकाङ्गेन कङ्कणाकारत्रयं चतुष्टयं वा कृत्वा तदर्धांशचतुष्टयेन मुखकण्ठमध्यमूलादिसुशोभितमूर्ध्वमुखं निर्माय, तदधः पुनरेकांशेन प्राग्वत् कङ्कणानि कृत्वा तदधो नवांशमानं सुवर्तुलं षडंशमानदैर्घ्यं सूत्रेण वेष्टनयोग्यस्थलं दण्डमध्यं कृत्वा तदधः पुनरेकांशेन कङ्कणानि तदर्धांशत्रयेण प्राग्वदूर्ध्वमुखं कुम्भं तदधः पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यात्, इति स्रुचं निर्माय, स्रुचः षट्त्रिंशभागेषु चतुर्विंशतिभागदैर्घ्यमग्रप्रदेशेंऽशद्वयमानेन वर्तुलाकारं स्थूलशिरोभागयुतं सुवर्तुलं स्रुवं निर्माय, तस्य मुखप्रदेशे पङ्कमध्यगतमृगपदाकारं कर्षमात्रग्राहि खातं कृत्वा तदधस्त्वेकांशमानेन प्राग्वत् कङ्कणानि तदर्धोंऽशचतुष्टये कुम्भं तत एकांशेन पुनः कङ्कणानि तत एकादशांशमानं चतुरंशमानदैर्घ्यसूत्रवेष्टनयोग्यस्थलं कृत्वा पुनरेकांशेन कङ्कणानि ततोंऽशत्रयेण कुम्भं पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यादिति स्रुवनिर्माणप्रकारः॥ एवं स्वर्णरौप्यताम्रमयौ वा स्रुक्स्रुवौ कार्यौ। स्रुवाभावे पालाशस्य मध्यपत्रद्वयं पिप्पलदलद्वयं वा होमे ग्राह्यं, संस्कारोऽपि स्रुक्स्रुवयोरिव पत्रयोरपि कार्यः॥ अथ होमद्रव्यप्रमाणानि, तत्र शारदायाम्—

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्। उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः॥ १॥
तत्समं मधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्। दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः॥ २॥
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः सक्तवोऽपि तथोदिताः[1]। गुडं पलार्धमानं स्याच्छर्करापि तथा स्मृता॥ ३॥
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः[3] स्मृतः। एकैकं पत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत्॥ ४॥
कदलीनागरङ्गाणां फलान्येकैकशो विदुः। मातुलिङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा कृतम्॥ ५॥
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः। त्रिधाकृतं[4] बिल्वफलं कपित्थं खण्डितं द्विधा[5]॥६॥
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा। फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः॥ ७॥
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला। व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गमाषयवा अपि॥ ८॥
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः। गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानतः॥ ९॥
तिलाश्चुलुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः। शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः॥ १०॥
पुरं बदरमानं स्याद्रामठं तत्समं स्मृतम्। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च॥ ११॥
तिन्तिणीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः।

इति॥ उत्तरतन्त्रे—''पायसं चाक्षसम्मितम्'' इति। कर्षलक्षणं तत्रैव—''माषो दश गुञ्जाः स्यात् षोडशमाषो निगद्यते कर्षः'' इति। तैलस्याप्येतदेव परिमाणम्। शुक्तिः कर्षद्वयम्, प्रसृतिमात्रं पलद्वयमात्रं, मुष्टिः पलं, पलार्धं कर्षद्वयं, ग्रासार्धमशीतिरक्तिकामितम्॥ कुलमूलावतारे—

१. 'मताः' ख. पाठः। २.'मता' क. पाठः। ३.'पर्वमितः' क. पाठः। ४. 'तथाभूतं' क. पाठः। ५. 'त्रिधा' ख. पाठः।

गुञ्जाभिर्दशभिर्माषः शाणो माषचतुष्टयम्। द्वौ शाणौ घटकः कोलो बदरं इक्षमंश्च(?)सः।। १।।
तौ द्वौ पाणितलं कर्षः सुवर्णं कवलग्रहः। पिचुर्बिडालपदकं तिन्दुकोऽक्षश्च तद्द्वयम्।। २।।
शुक्तिरष्टात्मिका ते द्वे पलं बिल्वचतुर्थिका। मुष्टिराम्रं प्रगुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा।। ३।।

इति। मातुलुङ्ग[1]बीजपूरम्। उर्वारुकं कर्कटी। तदर्धांशाः शुक्तिमिताः। चुलुकमात्राः पाणितलप्रमाणाः, कर्षमात्रा इत्यर्थः। अक्षसम्मितं कर्षद्वयमात्रं। पुरं गुग्गुलः। बदरमानमशीतिगुञ्जामितं। रामठं हिङ्गुः।। नारदपञ्चरात्रे—"तृतीयं खण्डं मूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणतः।" इति। शैवागमेऽपि—"खण्डत्रयं स्यान्मूलानां सूक्ष्माण्येवं च होमयेत्।" एवं केवलमखण्डमिति यावत्। "कन्दानामष्टमं भागं लतानामङ्गुलद्वयम्"।। इति।।

अथ समिधः। तत्र नारदपञ्चरात्रे—

समित्प्रादेशमात्रेण समच्छेदान्विता तथा। विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्राः स्थूलाः कृशा द्विधा।। १।।
क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वचः परिवर्जिताः। विशीर्णायुःक्षयं कुर्यात् द्विदला व्याधिसम्भवा।। २।।
ह्रस्वायां मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकारी मता। स्थूलाभिहरते लक्ष्मीं कृशायां जायते क्षयः।। ३।।
द्विधायां नेत्रदोषः स्युः कीटदष्टार्थनाशिनी। द्वेषं प्रकुरुते दीर्घा प्राणघ्न्यो निस्त्वचः कृताः।। ४।।
सक्षीरा नाधिकान्यूनाः समिधः सर्वकामदाः। आर्द्रत्वचं समच्छेदां जर्झर्यङ्गुलवर्तुलाम्।। ५।।
ईदृशीं होमयेत् प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम्। श्रौते स्मार्ते च तन्त्रोक्ते समिधः परिकीर्तिताः।।६।।

इति। तथा वायवीयसंहितायाम्—

ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशाङ्गुलाः। अवक्रा न स्वयं शुष्काः सत्वचो निर्व्रणाः समाः।। १।।
दशाङ्गुला वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः। प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि।।२।।

इति।। अथ प्रकृते क्रियादीक्षाशक्तानां वर्णदीक्षादिविधिर्लिख्यते— तत्र पुंस्प्रकृत्यात्मकानकारादिक्षकारान्तान् मातृकावर्णान् पुंस्प्रकृत्यात्मके शिष्यदेहे यथाविधि विन्यस्य, पुनः संहारक्रमेण मूर्धादिहृदयान्तस्थं क्षकारं नाभ्यन्तस्थळकारे संहरामि, हृदादिनाभिपर्यन्तस्थळकारं हृदादिवामपादाग्रस्थे हकारे संहरामि, हृदादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकारं हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे संहरामि, हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थं सकारं हृदादिवामपाण्यग्रावधिस्थे षकारे संहरामि, हृदादिवामपाण्यग्रावधिस्थं षकारं हृदादिदक्षिणपाण्यग्रावधिस्थे शकारे संहरामि, एवं युक्त्या शकारं वकारे संहरामी'त्यादि, मुखवृत्तस्थमाकारं शिरःस्थे अकारे संहारामि, एवं युक्त्या वर्णान् संहृत्य, पुनस्तच्चैतन्यं सकलतत्त्वग्रामसमेतं परमात्मनि संयोज्य विलीनसकलतत्त्वसमूहं विगतनिखिलकलुषं दिव्यतनुं शिष्यं विचिन्त्य, पुनः परमात्मनः सकाशादकारादिक्षकारान्तान् वर्णानुत्पाद्य वक्ष्यमाणसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यदेहे मातृकावर्णान् विन्यस्य, पुनस्तच्चैतन्यं तत्त्वग्रामसमेतं तस्मिन् संयोज्योक्तविधिनोपदेशं कुर्यात्, इति वर्णात्मदीक्षा।।

अथ कलादीक्षा—तत्र पादतलतो जानुपर्यन्तं निवृत्तिकलां, जानुतो नाभिपर्यन्तं प्रतिष्ठाकलां, नाभितः कण्ठपर्यन्तं विद्याकलां, कण्ठतो ललाटपर्यन्तं शान्तिकलां, ललाटात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शान्त्यतीताकलां च शिष्यदेहे सञ्चिन्त्य, निवृत्तिकलां प्रतिष्ठाकलायां संहरामि, प्रतिष्ठाकलां विद्याकलायां संहरामि, विद्याकलां शान्तिकलायां संहरामि, शान्तिकलां शान्त्यतीताकलायां संहरामि, इति क्रमात् संहृत्य वेधयित्वा, तां परमात्मनि संहृत्य प्राग्वत्तस्य शरीरं संशोध्य समुत्पाद्य, परमात्मनः सकाशाच्छान्त्यतीताकलां ततः शान्तिं ततो विद्यां ततः प्रतिष्ठां ततो निवृत्तिं च सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तत्स्थाने संयोज्योपदेशादिकं कुर्यादिति। एवमष्टत्रिंशत्कलाभिर्वोक्तयुक्त्या संहारसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यं संस्कृत्य दीक्षां दद्यात्, इति कलादीक्षा।।

---

१. 'लिङ्गं' क. पाठः।

अथ स्पर्शदीक्षा—तत्र गुरुः स्वहस्ततले शिवरूपं स्वगुरुं ध्यायन् मूलविद्यां षडङ्गमातृकां च जपन् शिष्यस्य शिरसि स्वदक्षिणकरं निधायोपदिशेत्, इति स्पर्शदीक्षा।।

अथ वाग्दीक्षा—तत्र गुरुः परचिद्रूपे शिवे चित्तं निधाय तदुद्भूतान् समस्तमन्त्रान् ध्यायंस्तन्मनाः स्वयं शिष्यायोपदिशेन्मन्त्रान्, इति वाग्दीक्षा।।

अथ दृग्दीक्षा—तत्र गुरुः स्वनेत्रे निमील्य परमात्मस्वरूपिणीं देवतां ध्यात्वा प्रसन्नचित्तो दिव्यचक्षुषा शिष्यं निरीक्ष्य मन्त्रोपदेशं कुर्यात्, इति दृग्दीक्षा। पश्चादुक्तमेतद् दीक्षात्रयं विरक्तानां शिष्याणां तत्त्वविदा गुरुणा कर्यमिति। स्त्रीणां तु वाग्दीक्षैव विहिता नान्या।

अथ वेधदीक्षा— तत्र गुरुः शिष्यस्य मूलाधारे चतुर्दलपङ्कजमध्यत्रिकोणमध्ये यथोक्तरूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा तत्पत्रचतुष्टयमध्यस्थवादिसान्ताक्षरचतुष्टयं तन्मध्यस्थिते कमलासने संहृत्य, तं ब्राह्मणं तादूर्ध्वगतस्वाधिष्ठानाख्यषट्-पत्रकमलमध्यस्थिते विष्णौ संयोज्य वेधयित्वा, तत्पत्रषट्कमध्यस्थबादिलान्तवर्णषट्कं विष्णौ संयोज्य, तदूर्ध्वे नाभिमण्डले दशदलकमलात्मके मणिपूराख्ये[1] विष्णुं संयोज्य, तत्पत्रदशकमध्यस्थडादिफान्तवर्णदशकसहितं विष्णुं तत्पङ्कजमध्यस्थे रुद्रे संयोज्य वेधयित्वा, तं रुद्रमनाहताख्ये हृत्पद्मे कादिठान्तद्वादशवर्णाढ्यद्वादशदलसंयुक्ते संयोज्य, तैरक्षरैः सार्धं तं रुद्रं तन्मध्यस्थितेश्वरे संयोज्य वेधयित्वा, कण्ठदेशे षोडशस्वराढ्यषोडशदलकमले विशुद्धचक्रे तमीश्वरं संयोज्य, तैः स्वरैः सार्धं ईश्वर तन्मध्यस्थे सदाशिवे संयोज्य वेधयित्वा, तं सदाशिवं भ्रूमध्यद्विदलपङ्कज माज्ञाचक्रं नीत्वा तत्पत्रद्वयहक्षवर्णद्वयसहितं सदाशिवं तन्मध्यवर्तिनि बिन्दौ संयोज्य वेधयित्वा, तं बिन्दुं तदूर्ध्वस्थितायां कलायां संयोज्य, तां पुनर्नादे तं नादान्ते त[2]मुन्मन्यां तां विषुचक्रे विषुचक्रं[3] गुरुवक्त्रे चेत्युत्तरोत्तरं संयोज्य वेधयित्वा, जीवात्मना सह तां कुण्डलिनीं परशिवे संयोज्य वेधयेत्। एवं कृते शिष्यो गुर्वाज्ञया छिन्नसंसारपाशो विसंज्ञः सद्यः क्षितितले पतति। ततो गुरुः संहृतविपरीतक्रमेण परशिवात् कुण्डलिनीमुत्पाद्य तया हृतमखिलं सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तच्चक्रे तां तां देवतां संयोज्य, हृदये जीवं, मूलाधारे कुण्डलिनीं संयोज्योपदेशादिकं कुर्यात्। ततः सञ्जातदिव्यबोधो भूतभविष्यद्वर्तमानज्ञः सदाशिवो भवति, इति वेधदीक्षा।। प्रायः कलौ वेधदीक्षाकरो गुरुस्तद्योग्यः शिष्यश्च दुर्लभ इत्याहुराचार्याः। प्रसङ्गादत्रापि लिखितेयमिति शिवम्।।

अथैवं दीक्षितानां सद्भक्तियुक्तानां गुरुतः शास्त्रतश्चाधिगताशेषरहस्यपरमार्थानां गुरुः शिष्याणां पूर्णाभिषेकाख्यं द्वितीयमभिषेकं कुर्यात्। तत्र प्रागुक्ते मण्डपे वेदिकायां वक्ष्यमाणं विपुलं तत्पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पञ्चरजोभिः कर्णिकादलकेसरकोणादिकमापूर्य, तस्य मध्ये खारीतोयपूर्णकुम्भं प्रागुक्तविधिना संस्थाप्यान्येषु दलेषु कोणेषु चतुरस्रेषु च सर्वावरणदेवतापूजास्थानेषु प्रस्थद्वयजलपूर्णकलशान् संस्थाप्य, तत्र मध्यकुम्भे देवतामावाह्य प्रागुक्तविधिना षोडशोपचारैः सम्पूज्यान्येषु कलशेषु तथैवाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य दीक्षोक्तविधिना शिष्यजन्मनक्षत्रे प्राग्वत् पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं स्वेष्टदेवताभक्तैर्ब्राह्मणैः सह तं सम्यगभिषिञ्चेत्। ततः शिष्योऽपि प्राग्वत् श्रीगुरुं प्रणम्य दक्षिणादिकं दत्त्वा ब्राह्मणान् भूरिदक्षिणादिभिः सन्तोषयेदिति पूर्णाभिषेकविधिः।।

पूर्णाभिषेकहीनो यः साधको म्रियते यदि। पिशाचत्वमवाप्नोति नरकं च प्रपद्यते।। १ ।।

इति कुलार्णववचनादावश्यकोऽयमभिषेकः।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीमगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे त्रयोदशः श्वासः।। १३ ।।

---

१. 'रचक्रे' क. पाठः। २. 'नादान्तं' क. पाठः। ३. 'विषुवक्त्रं' ख. पाठः।

अथ
श्रीविद्यार्णवतन्त्रे
चतुर्दशः श्वासः

अथ कादिमते पूर्णाभिषेकविधिः।। श्रीतन्त्रराजे—(२ प० ५२ श्लो०)

उक्तलक्षणसम्पन्नं शिष्यमाचारभूषणम् । पञ्चषट्कूटविद्याभ्यां शोधितं बहुवासरैः ।। १।।

कलशैरभिषिच्यामुं श्रीचक्रे सन्निवेश्य च। आधारे हृदये मूर्ध्नि चक्रं सञ्चिन्त्य मध्यतः।। २।।

स्वान्तादावाह्य संस्थाप्य सम्पूज्य न्याससंयुतम्। त्रिशो विद्यां जपेत्कर्णे देव्यात्मा पूर्णमानसः।। ३।।

देवतागुरुमन्त्रात्मतत्त्वैक्यं भावयन् मुदा[1]। शतं जपेत्तदग्रस्थो निकटे त्रिदिनं वसेत्।। ४।।

न चेत्[2] सञ्चारिणी शक्तिर्गुरुमेति न संशयः। तस्मात्तदन्तिके तस्य पूजादेशादिकृद्वसेत्।। ५।।

तादात्म्यमात्मनो लब्धुं गुरोर्मन्त्रात्मनो यतः। ततस्तदा समारभ्य तदायत्तो धनादिभिः।। ६।।

अथाभिषेकं द्विविधं समवाप्य तदाज्ञया। अनुग्रहादि कुर्वीत सिद्धये नान्यथा भवेत्।। ७।।

विधाय चक्रं तन्मध्ये योन्यां कुम्भं निधाय तम्[3]। क्वाथोदकैः समापूर्याभिषिच्याभिवदेन्मनुम्।। ८।।

क्रमागतसंमाचारनिरते भक्तिशालिनि। द्वितीयमभिषेकं तु कुर्याद् देव्यात्मसिद्धये।। ९।।

विरच्य विपुलं चक्रं प्रतियोनि च षोडश। त्रिकोणानि विधायात्र मध्ये कुम्भं तु विन्यसेत्।। १०।।

सौवर्णं राजतं ताम्रं काचं मार्तिकमेव च। पूरितं खारितोयेन क्वथितेनाक्षरौषधैः।। ११।।

निक्षिप्य नवरत्नानि धान्यानि विविधानि च। हिरण्यानि सताम्राणि वासोभ्यामभिवेष्टयेत्।। १२।।

रक्ताभ्यां चन्दनैश्चूतपनसाश्वत्थपलवैः। शतक्रतुलताबद्धैर्मातुलुङ्ग[4]फलान्वितैः ।। १३।।

पिधाय कलशानन्यानन्येष्वेकैकशो न्यसेत्। सार्धं सहस्रं षट्त्रिंशत्पञ्चसंख्या क्रमोदिता[5]।। १४।।

मध्ये चक्रे[6] सुतोयादि कृत्वावाह्याभिपूज्य च। कालात्मनित्यामन्त्रांश्च जपित्वापूर्ववासरे।। १५।।

---

१. 'येद्धिया' ख. पाठः। २. 'नो चेत्' ख. पाठः। ३. 'च' क. ग. पाठः। ४. 'लिङ्ग' ग. पाठः।

५. 'संख्याक्रमोदितान्' ग. पाठः। ६. 'चक्रेषु' ख. पाठः।

जन्मर्क्षे प्रातरुत्थाय स्वनित्यां तत्र पूजयेत्।। सहस्रं प्रजयेत् पश्चाद्धोमं कृत्वा समन्ततः।। १६।।
शृङ्गकाहलशङ्खादिवाद्यसङ्गीतनर्तनैः। मुदितैर्योगिनीवृन्दैरेकैकं देवतात्मभिः ।। १७।।
वृत्तैः सुपूजितैः सार्धमभिषिञ्चेत् स्वयं गुरुः। स्वक्रमं तस्य कथयेत्तदा प्रभृति सोऽपि तम्।। १८।।
अनुतिष्ठेदविच्छिन्नपर्यायं तस्य विच्युतौ। सहस्रं प्रजपेद् विद्यामभिषेकसमन्वितम्।। १९।।
अथवा षणवत्यस्तु कलशास्तत्र विन्यसेत्। तेषु शक्तीः समावाह्य सम्पूज्यैवाभिषेचयेत्।। २०।।
एकं वा कलशं जन्मदिने कृत्वाभिषेचयेत्। एवं नैमित्तिकं नित्यमविच्छिन्नं समाचरेत्।। २१।।

इति। मातृकार्णवे—

शिष्यायोपदिशेद्विद्या नित्याः पञ्चदशात्मिकाः। त्रिकूटाश्च चतुष्कूटाः पञ्चकूटास्तथैव च।। १।।
षट्कूटाः सप्तकूटाश्च वसुकूटा नवात्मिकाः। दशैकादशकूटाश्च रविकूटास्तथैव च।। २।।
त्रयोदशात्मिकाश्चैव चतुर्दशाभिधास्तथा। तथा पञ्चदशाख्याश्च तथा षोडशकूटकाः।। ३।।
अङ्गप्रत्यङ्गविद्याश्च तथा चावृतिदेवताः। पञ्चायतनविद्याश्च न्यासजालं तथैव च।। ४।।
शुद्धाशुद्धाश्च शबलाः सर्वाश्चोपदिशेत् क्रमात्। ता विद्याः प्रजपेच्छिष्यः क्रमप्राप्ताः क्रमेण वै।। ५।।
गुरुसेवापरो नित्यं गुर्वाज्ञापालको वसेत्। क्रमप्राप्तमहाविद्यानिचये[१] भक्तिशालिनि।। ६।।
द्वितीयमभिषकं तु कुर्याद्दिव्यात्मसिद्धये। प्राक्प्रोक्तविधिना सम्यङ्मण्डपं कारयेद् बुधः।। ७।।
चतुर्विंशत्युत्तरैश्च शतहस्तैश्च मण्डपम्। सुदिने शुभनक्षत्रे सुमुहूर्ते शुभोदये ।। ८।।
गणेशं पूजयेदादौ पञ्चवाद्यपुरःसरम्। प्राक्प्रोक्तविधिना सम्यक् कुर्यात् पुण्याहवाचनम्।। ९।।
मातृकापूजनं चैव वृद्धिश्राद्धं तथैव च। ब्राह्मणान् पूजयेत् पश्चात् स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।। १०।।
सुवर्णभूषणैर्वस्त्रैः श्रीगुरुं वृणुयाद् बुधः। तदाज्ञयान्यविप्रांश्च वृणुयात् स्वर्णवस्त्रकैः।। ११।।
एवं तु पुस्तकाचार्यमृत्विजो वसुसंख्यकान्। ब्राह्मणान् नवसंख्यांश्च ह्यष्टौ च द्वारपालकान्।।१२।।
चतुरः शान्तिपाठाय द्विजानन्यान् शुचिव्रतान्। स्वविद्योपासकान् भक्त्या स्वर्णरत्नाङ्गुलीयकैः।।१३।।
द्विजाज्ञया गुरुर्मध्यवेद्यां चक्रं लिखेत् सुधीः। श्रीगुरूक्तप्रकारेण समसूत्रं मनोहरम्।। १४।।
प्रतिरेखं प्रयत्नेन पूरयेद्रक्ततण्डुलैः। सप्तसप्ततिकोणेषु योनिषु प्रतियोनि च।। १५।।
षोडशारचयेत् सूत्रैस्त्रिभिः षोडशसंख्यया। सर्वत्र शालिपुञ्जेषु कलशान् स्थापयेद् बुधः।। १६।।
मध्यस्थयोनिमध्ये च खारीतोयभृतं घटम्। प्रस्थमात्रग्राहिघटान् इतरेषु निधापयेत्।। १७।।
पदेषु कामेश्यादीनां प्रतिदेवि च षोडश। अष्टायुधानां स्थानेषु प्रतिहेति च षोडश।। १८।।
प्रतिस्थानं षोडशैव सिद्धिमुद्रापदेषु च। पार्श्वयोरेकमेकं च देव्याः पृष्ठे घटत्रयम्।। १९।।
हेमरत्नफलैर्वासोद्वयपल्लवशोभितान्। गुरुमण्डलनिर्माणं षट्कोणाष्टाब्जमध्यतः।। २०।।
कमलाष्टास्रयोर्मध्ये तिथीशानां च मण्डलम्। ग्रहमण्डलमीशाने सर्वतोभद्रमण्डलम्।। २१।।

---

१. 'निश्चये' ग. पाठः।

वारेशमण्डलं मध्ये अष्टास्राचार्यकुण्डयोः। आग्नेयपूर्वमध्ये तु कुर्यान्नक्षत्रमण्डलम्।। २२।।
योन्यर्धचन्द्रमध्ये तु नित्यामण्डलमुत्तमम्। याम्यनैर्ऋतमध्ये तद्दिननित्याप्रपूजने।। २३।।

मण्डलं रचयेदिति शेषः।

नैर्ऋत्ये वास्तुपूजायां मण्डलं रचयेद् बुधः। वृत्तत्रिकोणमध्ये तु धातुदैवतमण्डलम्।। २४।।
षट्कोणवृत्तयोर्मध्ये मिथुनानाञ्च मण्डलम्। आग्नेये कुरुकुल्लाया वाराह्या वायुगोचरे।। २५।।
शेषिकाबलिदेवीनां मण्डलान्यन्तरान्तरा। इति।

गुरुमण्डलसर्वतोभद्रमण्डलपूजाक्रमः प्रागेवाभिहितः।।

अथ नवग्रहादिपूजाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे— (२८ प० ७२ श्लो०)

ग्रहाणां मातृकाविद्याविग्रहं विग्रहं यतः। तेन तेषां तु पूजार्थं वक्ष्ये तद्धाममण्डलम्।। १।।
सुधास्वरैर्भवेदिन्दोर्मण्डलं भास्करस्य तु। सुधाव्यञ्जनरूपं स्यादितरे तन्मया यतः ।। २।।
तेन तेषां मण्डलानि तैस्तैर्वर्णैर्वदामि ते। तेषां नवानां पूजासु तन्मयं नवमण्डलम्।। ३।।
चन्द्रार्कयोः पृथक्पूजास्वभ्यर्च्यं मण्डलं तयोः। क्रमेण शृणु देवेशि सर्वश्रेयस्करात्मकम्।। ४।।
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक् च चतुःसूत्रनिपातनात्। त्रिहस्तमात्रे जनयेन्नव कोष्ठानि तेषु वै।। ५।।
मध्ये प्राक्कोष्ठयोः[1] कृत्वा वृत्तत्रयमतिस्फुटम्। तन्मध्ये तिर्यगुर्ध्वं च सूत्रद्वयनिपातनात्।। ६।।
विधाय नवधा मध्यमीशादि विलिखेत् क्रमात्। वाताद्यष्टस्वरान् मध्ये प्रणवं नभसा युतम्।।७।।
वृत्तवीथ्योः स्वरोपेतं नभसा मातृकां लिखेत्। तत्रार्कमर्चयेत् तस्य नामभिर्द्वादशोदितैः।। ८।।
प्रणवाद्यैर्नमोन्तैश्च भानोः सर्वत्र सर्वदा। सोमस्याद्यं स्वसंयुक्तं कृत्वा तेन तथार्चयेत्।। ९।।
तन्नाम्ना तत्र विलिखेद् विन्द्वाढ्यं च स्वराष्टकम्। षोडशस्वरयुक्तं च मातृकां च स्वयोगतः।।१०।।
विलिखेद् वृत्तयोर्मध्ये मध्यकोष्ठेऽपि तं लिखेत्। दाहवह्निस्वसहितमर्चयेत्तत्र मण्डले।। ११।।
सोममुक्तक्रमेणैव प्रोक्तकालेषु सर्वदा। निवेद्य शर्करादुग्धपायसैश्चोपचारकैः ।। १२।।
सप्तस्वन्येषु कोष्ठेषु कृत्वा वृत्तत्रयं तथा। तत्तद्वर्गादिवर्णं च स्वरैस्तां मातृकामपि ।। १३।।
विलिख्य मध्यं च तथा कृत्वा तेषु च तत्क्रमात्। तत्तद्वर्गाक्षराण्याख्यात्र्यक्षरैरालिखेदपि।। १४।।
मध्ये प्रणवगर्भस्थवर्गाद्यक्षरमालिखेत्। एवं कृतेषु नवसु पूजयेच्च नव ग्रहान् ।। १५।।
अग्न्यादीशान्तमभितो लिखेन्नामान्यनुक्रमात्। त्र्यक्षराणि चतुर्थ्यन्तान्यर्च्चयेत्तैश्च तानिति।। १६।।
भौमं बुधं तथा सौरिं गुरुं राहुं च शुक्रकम्। केतुमेतैस्तु सर्वत्र मन्त्रानुक्तौ च पूजनम्।। १७।।
एवं नवग्रहाणां तु मण्डलान्युदितानि वै। तेष्वेव तेषामर्चातस्ते कुर्युस्तदनुग्रहम्।। १८।।
भास्करेन्द्वोश्च तद्वारद्वये दर्शे च पूर्णिके। स्वोच्चयोः स्थितयोः पूजां[2] मण्डलं शृणु पार्वति।।१९।।
विलिख्य वृत्तयुगलं तन्मध्ये तिर्यगूर्ध्वतः। रेखाभिर्नवभिर्[3]मध्ये त्वेकाशीतिपदं लिखेत्।। २०।।

१. 'प्रकोष्ठयोः' ख. पाठः। २. 'स्थितपूजां च; ख. पाठः। ३. 'दशभिः' ग. पाठः।

ईशकोष्ठादि परितः प्रवेशेनामृतार्णकान्। मायान्ताशीतिसंख्यातान् मध्ये दावगतं च तत्।। २१।।
वृत्तयोरन्तरा कृत्वा मातृकां ग्रथितां च तैः। पञ्चभिश्चालिखेत्तत्र बिम्बे सोमं समर्चयेत्।। २२।।
कर्पूरचन्दनाभ्यां तदालिखेदिन्दुबिम्बकम्। रक्तचन्दनसिन्दूरगैरिकेष्वेकतो[१] रवेः ।। २३।।
कृत्वा बिम्बं तत्र तं च पूजयेत् प्रोक्तरूपतः। द्विवृत्तान्तस्तिर्यगूर्ध्वं कृत्वा रेखाः समान्तराः।। २४।।
एकोनविंशं तन्मध्येष्वा[२]लिखेत् प्राग्वदुदीरितान्। प्राणादिकान्नभोन्तांस्तु स्वैरुपेतान् स्वरैर्युतान्।।२५।।
वृत्तयोरन्तरा तैश्च पञ्चविंशतिवर्णकैः। स्वरैर्भान्तयुतैर्वह्निदशार्णैर्ग्रथितां लिपिम्।। २६।।
विलिख्य विशदाकारं त्रिहस्तायामविस्तरम्। तन्मध्ये भानुमावाह्य पूजयेत् प्राग्वदीश्वरि।। २७।।
पीठे वा सुधया क्लिप्ते भूतले वा शिलातले। सुसमेऽनावृते कृत्वा बिम्बान्युक्तानि पूजयेत्।।२८।।
एवं सर्वत्र तन्त्रेऽस्मिन् ग्रहपूजा समीरिता। विशेषादेशरहिते तत्र तत्क्रमतोऽर्चयेत्।। २९।।

अस्यार्थः प्रयोगे वक्ष्यते। वास्तुमण्डलपूजा प्रागेव प्रदर्शिता।। अथ तिथिवारर्क्षदेवताः पिङ्गलामते—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वारतिथ्यृक्षदेवताः। रवौ सूर्यशिवौ देवि चन्द्रे सोमाम्बिके ततः।। १।।
भौमे तु मङ्गलगुहौ शुद्ध(बुधो)विष्णुस्ततः परे। परे गुरुचतुर्वक्त्रौ भृगौ शुक्रपुरन्दरौ।। २।।
मन्दे वारे (धने)श्वरः कालो वारेशाः परिकीर्तिताः।

इति। परे बुधवारे। परे गुरुवारे। तथा—

ब्रह्मा विधाता विष्णुश्च यमः शीतकरो गुरुः। इन्द्रश्च वसवो नागा धर्मः शिवदिवाकरौ।। १।।
मन्मथश्च कलिश्चैव विश्वेदेवास्तिथीश्वराः। दर्शे तु पितरो देवि पूज्याः सर्वोपचारकैः।। २।।
अश्विनौ च यमो वह्निर्ब्रह्मेन्दुश्च शिवोऽदितिः। गुरुः सर्पाश्च पितरो भगोऽर्यमदिनेश्वरौ।। ३।।
त्वष्टा वायुरथेन्द्राग्नी मित्रश्चेन्द्रस्ततः प्रिये। निर्ऋतिश्चैव तोयं च विश्वेदेवाः प्रजापतिः।। ४।।
विष्णुश्च वसवो देवि वरुणाश्चाज एकपात्। अहिर्बुध्न्यश्च पूषा च प्रोक्ता नक्षत्रदेवताः।। ५।।
एताः सर्वोपचारैस्तु तद्दिनेषु समर्चयेत्। प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैर्हृदन्तैर्नामभिरीश्वरि।। ६।।

इति। अत्रेन्द्राग्नी इत्येकस्यैव नक्षत्रस्य देवताद्वयम्। "विशाखानक्षत्रमिन्द्राग्निदेवते"ति श्रुतेः। उत्तराषाढानक्षत्रस्य विश्वेदेवाः, श्रवणस्य विष्णुः। एतयोर्मध्ये प्रजापतिरिति यदुक्तं तदभिजितमस्ति, तज्ज्योतिःशास्त्रेऽवगन्तव्यम्।। अथ तद्दिननित्यापूजाविधिः। श्रीतन्त्रराजे— (२५ प० ७८ श्लो०)

आसां तु नित्याविद्यानामङ्गानि च शृणु प्रिये। द्विरुक्तै[३]स्तैः षडङ्गानि कुर्यादर्णैः कराङ्गयोः।। १।।
विन्यस्य मातृकामुक्तां[४] जपेद्विद्या[५]स्तथैकशः। रक्ता रक्ताम्बरा रक्तभूषणस्रग्विलेपनाः।। २।।
पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखाः स्मरेत्। तदावृतीनां पञ्चानां शक्तीस्तत्सदृशीः स्मरेत्।। ३।।
चतुरस्रद्वयं कृत्वा द्वारद्वयविभूषितम्। अष्टपत्राम्बुजं मध्ये नवयोनौ च तां यजेत्।। ४।।
अङ्गावृतिं[६] मध्ययोनावन्तरे स्वायुधावृतीः[७]। पृष्ठतो गुरुपङ्क्तिं च कोणेष्वष्टसु च क्रमात्।। ५।।

१. 'कैरेकतो' ख. पाठः। २. 'मध्ये तान्' ग. पाठः। ३. 'क्त्या' ख. पाठः। ४. 'युक्तां' ख. पाठः।
५. 'द्यान्तमे' ख. पाठः। ६. 'वृत्तीः' ग. पाठः। ७. 'वृतिम्' ग. पाठः।

बहिर्दलेष्वपि तथा यजेद्वर्णैर्विलोमतः। रूपिणीशक्तिसहितैर्मायासप्ताक्षरीयुतैः ॥ ६॥
ब्राह्म्यादिशक्तीस्तद्बाह्ये चतुरस्रद्वये[1] यजेत्। आसां बलिप्रदानं च करोतु कुरुकुल्लया॥ ७॥
सप्ताक्षर्या केवलया प्रोक्तरूपां[2] स्मरन् धिया।

इति॥ अथ प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते तद्दिननित्याविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ह्रींश्रीं-दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदये कालनित्यायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य "रक्तां रक्ताम्बरा"मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजादिकं विधाय, स्वपुरतः स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना सकेसरमष्टदलकमलं विरच्य, तन्मध्ये नवयोनिचक्रं विधायाष्टदलाद्बहिश्चतुरस्रद्वयमन्तर्विभागेन प्राक्पश्चिमयोर्द्वारद्वययुतं कृत्वा, तन्मध्ये योनौ तद्दिननित्याविद्याया अक्षरत्रयं लिखित्वा श्रीपर्ण्यादिपीठे स्वपुरतः संस्थाप्य, तत्र तद्दिननित्याविद्यया पुष्पाञ्जलिं दत्त्वार्घ्यादिपात्राणि संस्थाप्यात्मपूजां विधाय श्रीचक्रपीठपूजां विधायावाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैरुपचर्य्य, लयाङ्गपूजनं कृत्वा योनिमुद्रां पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्य मध्ययोनिमध्येऽग्नीशासुरवायव्यकोणेषु देव्यग्रे तदादिचतुर्दिक्षु च प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, मध्ययोनेर्बहिरष्टकोणाभ्यन्तरस्थान्तरालेषु प्राग्वदायुधचतुष्टयं सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे योनिमध्ये योन्यन्तराले गुरुपङ्क्तित्रयस्थाने रेखात्रयं विभाव्य, तासु प्रथमरेखायां प्रकाशानन्दादिगुरुत्रयं, मध्यरेखायां श्रीज्ञानानन्दनाथादिगुरुत्रयं तृतीयरेखायां स्वभावानन्दादिगुरुत्रयं चेति गुरुपङ्क्तित्रयं पूजयेत्। ततोऽष्टयोनिषु देव्यग्रमारभ्य वामावर्तेन तद्दिननित्याविद्याया मध्याक्षरं षोडशस्वरयुक्तं कृत्वा मायाबीजपूर्वकं तेषामाद्यक्षरमुच्चार्य रूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि, द्वितीयं रूपिणीशक्तिपादुकां पूयजामि, इत्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्याष्टदलेषु वामावर्तेनावशिष्टाक्षरशक्तीः सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रवीथ्यां वामावर्तेन ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीर्मायाबीजादिकाः सम्पूज्य, लोकपालार्चनादिनैवेद्यदानान्ते कुरुकुल्लाविद्यया सप्ताक्षर्या बलिदानं च विधाय सर्वं समापयेदिति तद्दिननित्यायाः पूजाविधिः॥

अथ डाकिन्यादिषड्धातुदेवतापूजाविधिर्लिख्यते। तत्र श्रीतन्त्रराजे— (१६ प० ७२ श्लो०)

भूमौ विधाय षट्कोणसप्तकं प्रोक्तदिक्क्रमात्। मध्ये च तत्र तां नित्यानित्यां गन्धादिभिर्यजेत्॥ १॥
अभितस्तत्षडस्रेषु तत्षट्कं तत्क्रमाद्यजेत्। बाह्येष्वपि च ताः प्राग्वत् प्रोक्तवर्णाः समर्चयेत्॥ २॥
तासां षण्णामपि तथा षट्कोणेषु सशक्तयः। षट्त्रिंशत्ताः समा देव्याः सर्वरूपायुधादिभिः॥ ३॥
प्राग्वत् स्वराणां[3] पञ्च स्युरपूर्वाः कादिमान्तकाः। परेषु यवलक्षार्णरहितै[4]स्तैस्तथार्चयेत्॥ ४॥
तेषामपि च चक्राणां शक्तीनां च विलोमतः। पूजा निग्रहसंज्ञा स्यात्सा शत्रूणां विपत्तये॥ ५॥

इति॥ अथ प्रयोगः— तत्र वेदिकायां गोमयोपलिप्ते पशुदृष्टिरहिते स्वासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते नित्यानित्यापूजोक्तविधिना प्राणायामादिमानसपूजान्तं कृत्वा, स्वपुरतः क्वचिद्बिन्दुं कृत्वा तदवष्टम्भतः परितश्चतुर्विंशाङ्गुलमानभ्रमाद्वृत्तं निष्पाद्य, तन्मध्ये प्राक्प्रत्यगायतं ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य तद्ब्रह्मसूत्रस्यार्धमानेन तस्मिन् वृत्ते ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वाग्रादितः पश्चिमाग्रादितश्च दक्षिण(भागे)चिह्नद्वयमुत्तरभागे चिह्नद्वयमिति सम्भूय चिह्नचतुष्टयं कृत्वा, चिह्नात् चिह्नं दक्षिणोत्तरायतं तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य, पश्चिमतिर्यक्सूत्राग्रद्वयमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वाग्रावधि सूत्रद्वयं विन्यस्य, पुनः पूर्वतिर्यक्सूत्रस्य कोटिद्वयमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रावधि सूत्रद्वयमास्फाल्य षट्कोणं जायते। ततो वह्निकोणादिवायुकोणान्तं तथेशानादिनिर्ऋत्यन्तं ब्रह्मसूत्रद्वयमास्फाल्य

१. 'स्रे तथा' ग. पाठः। २. 'रूपाः' ग. पाठः। ३. 'स्वरेषु' ख. पाठः। ४. 'ताः' ख. पाठः।

समेतानि तानि त्रीण्यपि सूत्राणि प्रत्येकं त्रिधा विभज्य चिह्नानि कृत्वा, पश्चिमवायव्येशानपूर्वाग्नेयनिर्ऋतिदिग्गतेषु षट्सु ब्रह्मसूत्रतृतीयांशस्थानेषु मध्ये च तत्तदर्धमानसूत्रप्रमाणेन वृत्तसप्तकं कृत्वा, ब्रह्मसूत्रत्रयं प्रत्येकं चतुर्विंशतिधा विभज्य, मध्यवृत्तमध्यगतबिन्दुमारभ्य परितः षट्सु वृत्तेषु दशमांशदशमांशस्थानेषु तत्तन्मध्यगतब्रह्मसूत्रचिह्नानि कृत्वा, पुनर्मध्यवृत्तस्य च मध्यादितः आग्नेयकोणगतवृत्तब्रह्मसूत्रे प्राग्वद्दशमांशे चिह्नं कृत्वा, तथैवाग्नेयमध्यवृत्तयोरन्तरालादितो वाव्यवृत्त-मध्यगतब्रह्मसूत्रे दशमांशे चिह्नं कृत्वा, तथैवेशाननिर्ऋतिकोणगतवृत्तयोरप्युक्तयुक्त्या प्रतिवृत्तं चिह्नद्वय विधाय, तथैव प्राक्प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रादितः पूर्वाग्रादितश्च प्राग्वद्दशमांशे चिह्नद्वयं विधाय, सप्तस्वपि वृत्तेषु चिह्ने चिह्ने प्रतिवृत्तं तिर्यग्रेखाद्वयं कृत्वा तेषु प्रागुक्तयुक्त्या षट्कोणसप्तकं निष्पाद्य, तेषु प्रतिषट्कोणं मध्ये च षट्सु त्रिकोणेषु वृत्तानि कृत्वा ब्रह्मसूत्राणि मार्जयेदिति पूजाचक्रमुद्धृत्य, तन्मध्ये नित्यानित्याविद्यया पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, नित्याविद्यया-र्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मध्यषट्कोणे नित्यानित्यापूजोक्तविधिना पीठपूजादिपुष्पोपचारान्ते, तत्रोक्तविधिना डाकिन्यादिषट्कं सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा वक्ष्यमाणनैवेद्यषट्कं निवेद्य, ताम्बूलादि सर्वं च निवेद्य निर्ऋतिकोणे धूम्रवर्णे मध्ये डाकिनीमावाह्य धूम्रवर्णां नित्यांसमानमुखभुजादियुतां ध्यात्वा, डांडीमित्यादिषडङ्गमन्त्रैर्जातियुतैः षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विदध्यात्। एवमुत्तरत्रापि राकिण्यादीनामाद्यक्षरैः षड्दीर्घजातियुतैस्तासां सकलीकरणं प्राणप्रतिष्ठां च कुर्यात्। ततः स्वाभिमुखीमासनादि पुष्पन्तैरुपचारैरभ्यर्च्य तदावरणशक्तीश्च निर्ऋतिकोणे ह्रींआंअंशक्तिपादुकां पूजयामि। एवं वायव्यकोणे २ कंशक्तिपादुकां पूजयामि। पूर्वकोणे २ खंशक्तिपादु०। आग्नेयकोणे २ गंशक्तिपा०। ईशानकोणे घंशक्तिपा०। पश्चिमकोणे २ ङंशक्तिपादु०। इति सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा पायसान्नं निवेद्य, ताम्बूलादिप्रणामान्तैरुपचारैः परितोष्य वायव्यषट्कोणे सिन्दूरवर्णे राकिणीमावाह्य, सिन्दूरवर्णां नित्यानित्यासमानमुखभुजादियुतां ध्यात्वासनादि-पुष्पोपचारान्ते राकिण्यादि वामाग्रदक्षिणाग्रपृष्ठवामदक्षिणसम्मुखस्थेषु षट्सु ह्रींआंअंशक्तिपादु०। एवं चंशक्तिपा०। छंशक्तिपा०। जंशक्तिपा०। झंशक्तिपादुकां०। ञंशक्तिपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्त्वा गुडौदनं निवेद्य ताम्बूलादि प्राग्वत्कल्पयेत्। ततः पूर्वदिग्गतषट्कोणे नीलवर्णे लाकिनीमावाह्य नीलवर्णां प्राग्वन्मुखभुजादियुतां ध्यात्वासनादिपुष्पोपचारान्ते प्रोक्तरीत्या षट्कोणेषु ह्रींआंअंशक्तिपादु०। २ टंशक्तिपा०। २ ठंशक्तिपा०। २ डंशक्तिपा०। २ ढंशक्तिपा०। २ णंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा मुद्गौदनं निवेद्य शेषं प्राग्वत् कुर्यात्। आग्नेयदिग्गतषट्कोणे उद्यदादित्यवर्णे तादृशीं काकिनीमावाह्य प्राग्वद् ध्यात्वाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षट्कोणेषु ह्रींआंअंशक्तिपा०। २ तंशक्तिपा०। २ थंशक्तिपा०। २ दंशक्तिपा०। २ धंशक्तिपा०। २ नंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य निवेद्य शेषं प्राग्वत् कुर्यात्। तत ईशानदिग्गतषट्कोणे हेमवर्णे शाकिनीमावाह्य स्वर्णवर्णां ध्यात्वाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते २ अंशक्तिपा०। २ पंशक्तिपा०। २ फंशक्तिपा०। २ बंशक्तिपा०। भंशक्तिपा०। २ मंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य तिलमिश्रान्नं निवेद्य शेषं प्राग्वत् कुर्यात्। अथ पश्चिमषट्कोणे शुभ्रवर्णे हाकिनीमावाह्य प्राग्वद्भुजादियुतां शुभ्रवर्णां ध्यात्वाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते २ अंशक्तिपा०। २ रंशक्तिपा०। २ शंशक्तिपा०। २ षंशक्तिपा०। २ संशक्तिपा०। २ हंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा शुद्धान्नं निवेद्य ताम्बूलादि प्राग्वत् कल्पयेत्। ततो नित्यां प्राग्वत्तद्विद्यया सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा स्तुतिप्रणामादिभिः परितोष्य डाकिन्याद्याः सावरणा अस्यां संयोज्य तां च स्वहृदि उद्वास्य तन्मयः सुखं विहरेदिति॥

अथ पञ्चाशन्मिथुनपूजा।। तत्र श्रीतन्त्रराजे– (१६ प० ९५ श्लो०)

आदिक्षान्ताक्षरैः प्राग्वद्रूपिणीशक्तिसंयुतैः। बीजद्वयाद्यैः सप्ताक्षर्य्यन्तैः पञ्चदशाक्षरैः।। १।।

पञ्चाशच्छक्तयः पूज्याः पञ्चाशत्क्षेत्रपालकैः। तेषां बीजद्वयं वर्णा रूपक्षेत्रेशसंयुताः।। २।।

सप्ताक्षर्य्या च संयुक्ता मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः। चतुष्षष्टिपदे मध्यचतुष्के दिनविद्यया।। ३।।

मनीषितं समालिख्य तेषु तन्मिथुनानि वै। घटिकाक्रमयोगेन ह्न्मायामध्यगेऽर्चयेत्।। ४।।

दिनेषु घटिकायोगात् पञ्चाशन्मिथुनान्यपि। एवं मण्डलमासार्धात्प्राप्नोत्येवाभिवाञ्छितम्।। ५।।

नित्यशस्ताः समावाह्य तस्मिंश्चक्रे समर्चनात्। समस्तवाञ्छितप्राप्तिः सदा भवति सर्वतः।। ६।।

इति। आदिक्षान्तेत्यादि सर्वत इत्यन्तस्य श्लोकषट्कस्यायमर्थः– तत्र प्रागवच्छुभस्थाने समान्तरालानि नव सूत्राणि प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च विन्यस्य चतुष्षष्टिपदोपेतं चतुरस्रचक्रं कृत्वा, तस्मिंश्चक्रे मध्यकोष्ठचतुष्कमेकीकृत्य, तत्र तद्दिननित्याक्षराणि स्वाभिमतप्रार्थनमध्यमालिख्य तदनन्तरे बाह्याधःपङ्क्तिस्थमध्यद्वये दक्षिणं कोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेणामुक्तक्रमं निर्गमगत्या चक्रवामपङ्क्त्याधःकोष्ठावधि षष्टिकोष्ठेषु तद्दिनोदयाक्षरादीनि मातृकायाः पञ्चाशदक्षराणि विसर्गस्वरसहितानि ह्रीमिति बीजमध्यगतानि विलिख्यावशिष्टेषु पुनरप्युदयादीनि दशाक्षराणि समालिख्य, तेषु लिखितक्रमेणोदयाक्षरादिषु षष्टिघटिकासु तत्र घटिकामिथुनं[१] षोडशभिरुपचारैरभ्यर्च्य तत्फलमवाप्नुयात्। अत्र पूजामन्त्रस्तु "ह्रींश्रींअंरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि" इत्यादिशक्तिविद्याः पञ्चाशत्, "ह्रींश्रींअंरूपक्षेत्रेशपादुकां पूजयामि" इत्यादयः क्षेत्रेशाः पञ्चाशदित्येवं पञ्चाशदक्षरादीनि षष्टिमिथुनानि यथाक्रममेकैकशःस्थ (?) विलम्बेन पूजयेत्। प्रतिघटिकापूजनस्य तदेककाम्यकर्मविषयत्वात्।। इति पञ्चाशन्मिथुनपूजा।। अथ कामेश्वर्यादिपञ्चदशनित्यानां पूजाविधिर्लिख्यते। तत्र कामेश्वरीनित्यायजनविधिः श्रीतन्त्रराजे– (७ प० १ श्लो०)

अथ षोडशनित्यासु द्वितीया या समीरिता। कामीश्वरीति तां सर्वकामदां शृणु तत्त्वतः।। १।।

तत्त्वन्यासं ध्यानभेदांस्तच्छक्तीस्तत्प्रपूजनम्।

मन्त्रोद्धारस्तु तत्रैव – (३–६)

शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो ललिता स्याद् द्वितीयकः। शून्यमग्नियुतं पश्चाद्रयो व्याप्तेन संयुतः।। १।।

प्राणो रसाग्निसहितः शून्ययुग्मं चरान्वितम्। नभो गोत्रा पुनश्चैषा दाहेन समयोजिता।। २।।

अम्बु स्याच्चरसंयुक्तं वनशक्तियुतं च हृत्। एषा कामेश्वरी नित्या कामदैकादशाक्षरी।। ३।।

इति। ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः ११ इति। तथा त्रिपुरार्णवे–

(ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तस्त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम्। कामेश्वरीदेवता स्याद्ब्रह्मबीजं तु बीजकम्।।

शक्तिः कामकला प्रोक्ता धराबीजं तु कीलकम्।)

तन्त्रराजे – (७–६)

मूलविद्याक्षरैरेवं कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्। एकेन हृदयं शीर्षं तावताथो द्वयं द्वयात्।। १।।

चतुर्भिर्नयनं तद्वदस्त्रमेकेन चोदितम्। दिक्श्रोत्रनासाद्वितये जिह्वाहृन्नाभिगुह्यके।। २।।

---

१. 'तत्तन्मिथुनानि' ख. पाठः।

व्यापकत्वेन सर्वाङ्गे मूर्धादिप्रपदावधि। न्यसेद्विद्याक्षराण्येषु स्थानेषु तदनन्तरम्।। ३।।
समस्तेन व्यापकं तु कुर्यादुक्तक्रमेण वै। अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि नित्यपूजासु चोदितम्।। ४।।
येन देवी सुप्रसन्ना ददातीष्टमयत्नतः। बालार्ककोटिसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।। ५।।
हारग्रैवेयकाञ्चीभिरूर्मिकानूपुरादिभिः । मण्डितां रक्तवसनां रक्ताभरणशोभिताम् ।। ६।।
षड्भुजां त्रीक्षणामिन्दुकलाकलितमौलिकाम्। पञ्चाष्टषोडशद्वन्द्वषट्कोणचतुरस्रगाम्।। ७।।
मन्दस्मितोल्लसद्वक्त्रां(दया ?लज्जा)मन्थरवीक्षणाम्। पाशाङ्कुशौ च पुण्ड्रेक्षुचापं पुष्पशिलीमुखम्।।८।।
रत्नपात्रं सीधु[1]पूर्णं वरदं बिभ्रतीं करैः। एवं ध्यात्वार्चयेद् देवीं नित्यपूजासु सिद्धये।। ९।।
प्रयोगादिषु सर्वत्र वक्ष्ये ध्यानानि तत्र वै। मदनोन्मादनौ पश्चात्तथा दीपनमोहनौ।। १०।।
शोषणश्चेति कथिता बाणाः पञ्च पुरोदिताः। कुसुमा मेखला पश्चान्मदना मदनातुरा।। ११।।
अनङ्गपदपूर्वास्ताः पञ्चमी मदवेगिनी। ततो भुवनपाला स्याच्छशिरेखा त्वनन्तरा।। १२।।
रेखा गगनपूर्वान्या पूज्या पत्रेषु चाष्टसु। श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव धृतिः कान्तिर्मनोरमा।। १३।।
मनोहराष्टमी प्रोक्ता देवी चात्र[2] मनोरथा। मदनोन्मादिनी पश्चान्मोहिनी शङ्खिनी[3] ततः।। १४।।
शोषिणी च वशङ्करी शिञ्जिनी सुभगा ततः। सस्वराः षोडश प्रोक्ताः प्रियदर्शिनि[4]कान्तिकाः।।१५।।
पूज्यास्ताः प्रतिपत्रं तु प्रत्येकं षोडशच्छदे। पूषा चेद्धा सुमनसा रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा।। १६।।
ऋद्धिः[5] सौम्या मरीचिश्च परतस्त्वंशुमालिनी। शशिनी चाङ्गिरा च्छाया ततः सम्पूर्णमण्डला।।१७।।
तुष्ट्यमृताख्या कथिताः कलाः स्युः सस्वरा विधोः। षोडशस्वपि पत्रेषु पूजयेत्ता यथाक्रमम्।।१८।।
बहिः षट्कोणकोणेषु डाकिन्याद्यास्तथार्चयेत्। तद्बहिश्चतुरस्रस्थलोकेशास्तत्समा यजेत्।। १९।।
वटुकं गणपं दुर्गां क्षेत्रेशं चाभितो यजेत्। अग्न्याद्यस्रेषु विद्यादिसप्ताक्षर्य्यन्तरास्थितैः।। २०।।
तन्नामभिर्बलिं तेभ्यो दद्याद्गन्धादिचोदितैः। ततस्तामङ्गविद्याभ्यां क्लृप्तार्घ्यः पूजयेच्छिवाम्।।२१।।
प्रागुक्तैरुपचाराद्यैर्होमं कुर्यात्ततस्तथा। घृताक्तैर्मधुराक्तैर्वा प्रसूनैररुणैः शुभैः।। २२।।
अन्नाद्याभ्यां प्रजुहुयात्ततः प्राग्वत्समापयेत्। इति।

अथ प्रयोगः— तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते कामेश्वरीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये कामेश्वरीदेवतायै नमः। गुह्ये कंबीजाय नमः। पादयोः ईंशक्तये नमः। नाभौ लंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम कर्तव्यपूर्णाभिषेकाख्यद्वितीयदीक्षाफलसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ऐं हृदयाय नमः। सकलह्रीं शिरसे स्वाहा। नित्य शिखायै वषट्। क्लिन्ने कवचाय हुं। मदद्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ऐं नमः। वामे सकलह्रीं नमः। दक्षश्रोत्रे नि नमः। वामे त्य नमः। दक्षनसि क्लि नमः। वामे न्ने नमः। जिह्वायां म नमः। हृदये द नमः। नाभौ द्र नमः। गुह्ये वे नमः। सौः इति सर्वाङ्गे व्यापकं विन्यस्य, ध्यानं विधाय मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पञ्चदलकमलं कृत्वा तद्बहिरष्टदलं तद्बहिः षोडशदलं

१. 'सुधा' ख. पाठः। २. 'सा' ख. पाठः। ३. 'दीपिनी' ख. पाठः। ४. 'र्शन' ख. पाठः। ५. 'बुद्धि' ख. पाठः।

तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रमिति पूजाचक्रं निर्माय स्वपुरतश्चन्दनादिपीठे संस्थाप्य, तत्र कामेश्वरीविद्यया पुष्पाञ्जलिं विनिःक्षिप्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पीठपूजां कृत्वा, तत्र कामेश्वरीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादि-पुष्पोपचारान्ते लयान्तं सम्पूज्य, पञ्चदलकमलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेव्यग्रतस्तदादिचक्षुर्दिक्षु च षडङ्गानि सम्पूज्य, देव्याः, पृष्ठभागे पञ्चदलाष्टदलयोरन्तराले प्राग्वद्दिननित्यापूजोक्तगुरुत्रयं सम्पूज्य, पञ्चदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ह्रींश्रींद्रांमदनबाणाय नमः। २ द्रींउन्मादनबाणाय नमः। २ क्लींदीपनबाणाय नमः। २ ब्लूं मोहनबाणाय नमः। २ सः शोषणबाणाय नमः। इति सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन, २ अनङ्गकुसुमापा०। २ अनङ्गमेखलापा०। २ अनङ्गमदनापा०। २ अनङ्गमदनातुरापा०। २ अनङ्गमदवेगिनीपा०। २ अनङ्गभुवनपालापा०। २ अनङ्गशशिरेखा पा०। २ अनङ्गगगनरेखापादुकां पूजयामि नमः। ततः षोडशदलेषु २ अं श्रद्धापादुकां पूजयामि नमः। २ आंप्रीतिपा०। २ इंरतिपा०। २ ईंधृतिपा०। २ उंकान्तिपा०। २ ऊंमनोरमापा०। ऋंमनोहरापा०। ॠंमनोरथापा० २ लृंमदनापा०। २ लॄंउन्मादिनी पा०। २ एंमोहिनीपा०। २ ऐं (शान्ति?शंखिनी)पा०। २ ओंशोषिणीपा०। २ औंवशंकरीपा०। २ अंशिञ्जिनीपा०। २ अःसुभगापा० इति सम्पूज्य, तद्बहिः षोडशदलाग्रेषु—२ अंपूषापादुकां०। २ आंइद्धापा०। २ इंसुमनसापा०। २ ईंरतिपा०। उंप्रीतिपादुकां०। २ ऊंधृतिपा०। २ ऋंऋद्धिपा०। २ ॠंसौम्यापा०। २ लृंमरीचिपा०। २ लॄंअंशुमालिनीपा०। २ एंशशिनीपा०। २ ऐंअङ्गिरापा०। २ ओंछायापा०। २ औं सम्पूर्णमण्डलापा०। २ अंतुष्टिपा०। २ अःअमृतापा०।, इति सम्पूज्य, तद्बहिः षट्कोणेषु— दक्षिणाग्रकोणे २ ऐंडाकिनीपा०। वामाग्रे २ ऐंराकिणीपा०। पृष्ठकोणे २ ऐंलाकिनीपा०। पृष्ठवामे २ ऐंकाकिनी०। पृष्ठदक्षिणे २ ऐंशाकिनी०। देव्यग्रे २ ऐंहाकिनीपा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणाद्बहिश्चतुरस्राभ्यन्तरे आग्नेयकोणे २ ऐंवटुकपा०। नैर्ऋते २ गंगणपतिपा०। वायव्ये ऐंदुर्गापा०। ईशाने २ ऐंक्षंक्षेत्रेशपा०, इति सम्पूज्य, तद्बहिः चतुरस्रे देव्याः पृष्ठभागमारभ्य पूर्वादिदशदिक्षु २ ऐंलंइन्द्रशक्तिपा०। २ ऐंरंअग्निशक्तिपा०, इत्यादिलोकपालांस्तदायुधानि च शक्त्यन्तैस्तन्नामभिः सम्पूज्य, धूपदीपनैवेद्यान्ते कुरुकुल्लाबलिं वटुकगणपदुर्गाक्षेत्रेशबलिं च दत्त्वा जपादिकं शेषं समापयेत्। अत्र पञ्चदशनित्यास्वपि पूजादौ सर्वभूतबलिं पूजान्ते सप्ताक्षर्या कुरुकुल्लाबलिं दद्यात्, इति कामेश्वरीनित्यायजनविधिः॥

अथ भगमालिनीनित्यायजनविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे— (८ प०)

अथ षोडशनित्यासु तृतीयां भगमालिनीम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि साङ्गां सावरणां क्रमात्॥ १॥
तदङ्गान्यथ तद्ध्यानं तदावरणदेवताः। तत्पूजायाः क्रममिति मन्त्रोद्धारस्तथैव च॥ २(३/९)॥
कामेश्वर्यादिरादिः स्याद्रसश्चाथ स्थिरा रसा। धरायुक् सचरा पश्चात् स्थिरा पश्चाद्रसः स्मृतः॥ ३॥
स्थिराशून्येऽग्निसंयुक्ते रसः स्यात्तदनन्तरम्। स्थिरा भूसहिता गोत्रा सदाहोऽग्नी रसः स्थिरा॥४॥
नभश्च मरुता युक्तं रसा चरसमन्विता। ततो रसः स्थिरा पश्चान्मरुता सह योजिता॥ ५॥
अम्बु हंसश्च सचरो रसोऽथ स्यात् स्थिरायुतः। स्थिरा धरान्वितो हंसो व्याप्तेन च चरेण तु॥ ६॥
रसः स्थिरा ततो व्याप्तं भूयुतं शून्यमग्नियुक्। रसः स्थिराः ततः साग्निः शून्यं जवियुतो मरुत्॥७॥
रयः शून्यं याग्नियुतं हृद्दाहः साम्बवतः परम्। रसः स्थिराम्बु च वियत् स्वयुतं प्राण एव च॥८॥
दाहोऽग्नियूग्रसस्तस्मात् स्थिरा क्ष्मा दाहसंयुता। सचरः स्याज्जवी पूर्वविद्यातार्तीयतः क्रमात्॥९॥

चतुष्टयमथार्णानां रसस्तदनु च स्थिरा। हृदम्बुयुक् क्षमया दाहः सचरः स्याज्जवी च हृत्।। १०।।
दाहोऽम्बुमरुता युक्तो व्योम साग्नी रसस्तथा। स्थिरा तु मरुता युक्ता शून्यं साग्नि नभश्चरौ।। ११।।
हंसो व्याप्तमरुद्युक्तः शून्यं व्याप्तमतोऽम्बु च। दाहो गोत्रा चरयुता तथा दाहस्तथा रयः।। १२।।
हृद्रसासहितं दाहरयौ चरसमन्वितौ। रसः स्थिरा ततः प्राणो रसाग्निसहितो भवेत्।। १३।।
शून्ययुग्मं चरयुतं ततः पूर्वमतः परम्। शून्ययुग्मं च गोत्रा स्याद्दाहयुक्ताम्बुना चरः।। १४।।
प्राणो रसाचरयुतो गोत्रा व्याप्तमतः परम्। गोत्रा दाहमरुद्युक्ता त्वम्बु व्याप्तमतो भवेत्।। १५।।
वातो नभश्च भूयुक्तं वाश्चरेण समन्वितम्। रसः स्थिराम्ब्वग्नियुतं वायुयुग्मं चरान्वितम्।। १६।।
ग्रासो धरायुतः पश्चाद्रसः शक्त्या समन्वितः। ग्रासो भृसहितो देवि रसो व्याप्तं ततश्च हृत्।। १७।।
दाहेनाम्बु च हृत्पश्चाद्रयोऽम्बुमरुदन्वितः। शून्यं च केवलं भद्रे रसश्च सचरा स्थिरा।। १८।।
वियदम्बुयुतं दाहस्त्वग्नियुक् स्वयुतः शुचिः। भूमी रसाक्ष्मास्वयुता पञ्चैकान्तरिताः स्थिताः।। १९।।
तदन्तरितबीजानि स्वसंयुक्तानि पञ्च वै। तानि क्रमाज्ज्या सचरो रसो भूश्च नभोयुता।। २०।।
हंसश्चरयुतो द्विः स्यात् ततः प्राणो रसाग्नियुक्। शून्ययुग्मं चरयुतं हृद्दाहोऽम्बुमरुद्युतः।। २१।।
व्योमाग्निसहितं पश्चाद्रसश्च मरुता स्थिरा। शून्यं साग्नि नभः कुर्याच्चरेण सहितं प्रिये।। २२।।
अम्बु पश्चाद्वियत् तस्मान्नभश्च मरुदन्वितम्। शून्यं व्याप्तं च ह्युक्तं रयदाहस्ववह्निभिः।। २३।।
हंसः सदाहोऽम्बुरसाचरस्वैः संयुतो भवेत्। हंसः स्याद् दाहवह्निस्वैर्युक्तमन्त्यमुदीरितम्।। २४।।
पञ्चत्रिंशच्छतार्णैः स्यान्नित्याऽसौ भगमालिनी। इति।

ऐं भगभुने भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐंब्लूंजंब्लूंमोंब्लूंहेंब्लूंहें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रींहब्लेंह्रीं इति।। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिरस्यास्तु सुभगो गायत्रीच्छन्द उच्यते। देवतेयं तु बीजं तु हरब्लेमात्मकं प्रिये।। १।।
शक्तिः श्रीबीजमन्त्यं तु कीलकं परमेश्वरि। इति।

इयं, भगमालिनीनित्या। तन्त्रराजे— (८/३)

अङ्गानि मन्त्रवर्णैः स्यादाद्येन हृदुदीरितम्। ततश्चतुर्भिः शीर्षं स्याच्छिखा त्रिभिरुदीरिता।। १।।
चतुष्टयत्रयैः शेषाण्यङ्गानि षडिति क्रमात्। अरुणामरुणाकल्पां सुन्दरीं सुस्मितानंनाम्।। २।।
त्रिनेत्रां बाहुभिः षड्भिरुपेतां कमलासनाम्। कह्लारपाशपुण्ड्रेक्षुकोदण्डान् वामबाहुभिः।। ३।।
दधानां दक्षिणैः पद्ममङ्कुशं पुष्पसायकम्। तथाविधाभिः परितो वृतां शक्तिभिरात्मभिः[1]।। ४।।
अक्षरोत्थाभिरन्याभिः स्मरोन्मादमदात्मभिः। पञ्चत्रिंशच्छतार्णैस्तै रूपिणीशक्तिपञ्चकम्।। ५।।
सप्ताक्षरीं च संयोज्य शक्तीस्तत्संख्यका यजेत्। मदनां मोहिनीं लोलां भञ्जनी[2]मुद्यमां शुभाम्।। ६।।

१. 'शक्तिगणैस्तुतैः' ख. पाठः। तथाविधाभिः शक्तिगणैरित्युक्तिर्दिव्यत्वात्। २. 'जम्भिनीं' ख. पाठः।

ह्लादिनीं द्राविणीं प्रीतिं रतिं रक्तां मनोरमाम्। सर्वोन्मादां सर्वमुखां सभङ्गा[1]ममितोद्यमाम्॥ ७॥
अनल्पां व्यक्तविभवां विविधक्षोभविग्रहे। एताः स्युः शक्तयः पञ्चपञ्चाशद्भिः शतं त्विति[2]॥ ८॥
ताभिर्वृतां तु तां देवीं पूजयेद्वाञ्छिताप्तये। अथ पूजाक्रमं देवि शृणु सर्वार्थदायकम्॥ ९॥
येन विश्वं वशे भूयादपि स्थावरजङ्गमम्। चतुरस्रद्वयं कृत्वा कुर्याद् द्वारं तु पश्चिमे॥ १०॥
तन्मध्येऽब्जं पञ्चदलं कृत्वा तत्कर्णिकागतम्। योनिद्वयं ततो मध्ये तिर्यग्रेखाविधानतः॥ ११॥
योनीः कुर्याच्च तत्संख्या योनयः परिकीर्तिताः[3]। अग्राद्विलोमगास्तासु शक्तीः संस्थाप्य पूजयेत्॥ १२॥
मध्ये वृत्तद्वयं[4] कृत्वा तत्र विंशतिरेखया। निष्पाद्य तावतीर्योनीर्मदनाद्याः समर्चयेत्॥ १३॥
वृत्तान्तराले त्वभितो यजेदङ्गानि षट् क्रमात्। तन्मध्ये भगमालां तामावाह्योक्तस्वरूपिणीम्॥ १४॥
संस्थापनादिभिर्युक्तामर्चयेदुपचारकैः। अर्घ्यमङ्गैश्च मूलेन संस्थाप्याभ्युक्ष्य मूलतः ॥ १५॥
द्वारस्य पार्श्वयो रागद्वेषशक्ती तथार्चयेत्। शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसं गन्धं च पूर्ववत्॥ १६॥
तदन्तवृत्तयोर्मध्ये षडङ्गानि तथार्चयेत्। तदन्तर्भगमालायां मदनाद्यास्तथार्चयेत्॥ १७॥
मध्यस्थदेवीमभितो यजेत्तान्यायुधान्यपि। ततो देवीं षोडशभिरुपचारैरुदीरितैः॥ १८॥
पूजयेदाद्यवर्णेन विदध्यात्तद्बलिद्वयम्। जपेदष्टोत्तरशतमग्रे देव्यास्तु नित्यशः॥ १९॥
प्राग्वदग्निमुखं कृत्वा होमं कुर्याद् दशांशतः। संयोज्य बिन्दौ तां प्राग्वन्मूलेनाभ्यर्च्य तां तथा॥२०॥
स्वात्मन्युद्वासयेदुक्तप्रकारेण महेश्वरि। देव्यात्मा वशयेद्विश्वं नरनारीनराधिपान् ॥ २१॥

इति॥ अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनपूजनादियोगपीठन्यासान्तं कृत्वा मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि सुभगाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीभगमालिनीनित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये हरब्लें बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ हृदयाय नमः। ॐ भगसुभगे शिरसे स्वाहा। ॐ भगिनि शिखायै वषट्। ॐ भगोदरि कवचाय हुं। ॐ भगमाले नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ भगावहे अस्त्राय फट्, इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय प्राग्वन्मूलविद्यया व्यापकं विन्यस्य अरुणामित्यादि यथोक्तरूपां ध्यात्वा, मानसपूजां विधाय स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिभिरन्तर्बहिर्विभागेन चतुरस्रद्वयेन चुरङ्गुलान्तरालां समचतुरस्रां वीथीं कृत्वा, तस्याः पश्चिमभागे मध्ये द्वारं विधाय, तस्य चतुरस्रस्य मध्ये पञ्चदलं पद्मं विरच्य, वृत्तद्वययुक्तायां तत्कर्णिकायां समत्रिरेखां कर्णिकामध्यवृत्तस्पष्टकोणाग्रकां[5] यथामानां योनिं कृत्वा, तस्या एकां रेखां चतुर्विंशतिधा विभज्य तैरंशैस्त्रयोविंशतिचिह्नानि कृत्वा तस्यास्तिसृषु रेखास्वपि तथा कृत्वा, तेष्वेकांशमानमभितस्त्यक्त्वा तदन्तः प्राग्वत्समत्रिरेखां योनिं विधाय, तस्यां योन्यामेकां रेखामेकविंशतिधा विभज्य, तेषु विंशतिचिह्नानि प्रतिरेखमिति रेखात्रयेऽपि प्रत्येकं कृत्वा, तेषु बाह्याभ्यन्तरचिह्नेषु चिह्नाच्चिह्नमिति क्रमेण पञ्चचत्वारिंशद् रेखास्तिर्यग्रूपाः प्रतिपार्श्वं विलिखेदिति। एवं कृते बाह्यरेखाग्राण्याभ्यन्तररेखाग्राणि च त्रिकोणानि पञ्चत्रिंशदधिकशतसंख्यानि सम्भवन्ति। तदन्तस्त्र्यस्ररेखात्रयस्पृष्टरेखं भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य तदन्तरेऽपि तद्व्यासपञ्चमांशमानभ्रमेण

१. 'अनङ्गा' ख. पाठः। २. 'द्वयम्' ख. पाठः। ३. 'पञ्चत्रिंशच्छतं संख्या योनयः परितः स्थिताः' ख. पाठः।
४. 'त्रयं' ख. पाठः। ५. 'स्पृष्टास्त्रत्रयां' ख. पाठः।

वृत्तं विधाय, तदन्तरेऽप्येकांशमाने वृत्तान्तरं कृत्वा पूर्ववृत्तयोर्विष्कम्भषोडशांशसहितं विष्कम्भमानं त्रिगुणीकृत्य, तत्र समुदायमानं दशधा विभज्य तेष्वैकैकांशेन चिह्नानि परितस्तद्वृत्तद्वये प्रतिवृत्तं दशदश विधाय, तेषु क्रमेण बाह्याभ्यन्तरं तस्माद्बाह्यमिति गोमूत्रिकाक्रमेण तिर्यग्रूपा विंशतिरेखा विलिखेत्। एवं कृते बाह्याभ्यन्तरवृत्तस्पृष्टाग्राणि च त्रिकोणान्यभितो विंशतिसंख्यकानि सम्भवन्ति। इत्थं पूजाचक्रं निर्माय प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य भगमालिनीविद्यया मूर्तिं सङ्कल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते देव्याः पृष्ठभागे वृत्ताभ्यन्तरे एव प्राग्वत् प्रकाशानन्दादिगुरुपङ्क्तित्रयं पूजयित्वा, पञ्चदलकर्णिकामध्यगतवृत्तद्वयान्तराले प्राग्वदग्नीशासुरवायव्यदेव्यग्रतस्तदादिचतुर्दिक्षु षडङ्गानि सम्पूज्य, द्वारस्य वामदक्षिणपार्श्वयोः ओंऐंरागशक्तिपा०, ओंऐंद्वेषशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, पञ्चदलकर्णिकामध्यगतयोनिद्वयान्तराले पञ्चत्रिंशदधिकशतशक्तीः सम्पूज्य, तदन्तर्वृत्तद्वयान्तरालस्थविंशतित्रिकोणेषु देव्यग्रमारभ्य, वामावर्तेन ओंऐंमदनापादुकां पू०, एवं २ मोहिनीपा०, २ लोलापा०, २ भङ्गिनीपा०, उद्यमापा०, २ शुभापा०, २ ह्लादिनीपा०, २ द्राविणीपा०, प्रीतिपा०, २ रतिपा०, २ रक्तपा०, २ मनोरमापा०, २ सर्वोन्मादापा०, सर्वसुखापा०, २ अभङ्गापा०, २ अभितोद्यमापा०, २ अनल्पापा०, व्यक्तविभवापा०, २ विविधविग्रहापा०, क्षोभविग्रहापा०, इति सम्पूज्य तदन्तरा वृत्तवीथिं रेखाभिः षोढा विभज्य, तेषु षट्सु खण्डेषु देव्यग्रखण्डमारभ्य, ओंऐंइक्षुकोदण्डाय नमः, एवं २ पाशाय०,२ कह्लाराय०, २ पद्माय०, २ अङ्कुशाय०, पुष्पसायकेभ्यो नमः, इति सम्पूज्य तदन्तरा वृत्तवीथिं सम्पूज्य धूपदीपादि सर्वं प्राग्वत् समापयेत्, इति भगमालिनीनित्यायजनविधिः।।

अथ नित्यक्लिन्नानित्यापूजाविधिः।। तत्र श्रीतन्त्रराजे– (९ प० श्लो० १)

अथ षोडशनित्यासु चतुर्थीं शृणु पार्वति। नित्यक्लिन्नाभिधानां तां तन्मन्त्रं प्रागुदीरितम्।। १।।

इति। तदुद्धारस्तु तत्रैव– (३/३२)

हंसस्तु दाहवह्निस्वैर्युक्तः प्रथममुच्यते। कामेश्वर्यास्तृतीयादिवर्णानामष्टकं भवेत्।। १।।

हृदम्बु मरुता युक्तं हंसश्च मरुता युतः। एकादशाक्षरी नित्यक्लिन्ना नित्या समीरिता।। २।।

इति। तथा– "तदङ्गानि च तद्ध्यानं तच्छक्तीस्ताभिरर्चनम्।" इति। त्रिपुरार्णवे–

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो विराट् छन्द इतीरितम्। नित्यक्लिन्ना देवतोक्ता वनिता द्राविणी परा।। १।।

बीजमाद्यं वह्निजाया शक्तिर्न्नेकीलकं मतम्। इति।

तन्त्रराजे– (९। ३)

आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम्। ततो द्वाभ्यां पुनर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वयेन च।। १।।

कुर्याच्छेषाणि चाङ्गानि[१] करयोश्च न्यसेत् क्रमात्। तन्त्रे यत्रोक्तं तत्र तत्र करद्वये।। २।।

न्यसेदङ्गुष्ठमूलादिकनिष्ठाग्रान्तमूर्ध्वगम्। शेषं तलद्वये न्यस्य हृद्दृक्श्रोत्रनसोर्द्वयोः।। ३।।

त्वचि ध्वजे च पायौ च पादयोर्णकान् न्यसेत्। अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम्।। ४।।

अरुणस्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम्। नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माम्बुमौक्तिकैः।। ५।।

विराजमानां मुकुटलसदर्धेन्दुशेखराम्। चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम्।। ६।।

१. 'ङ्गानां' ग. पाठः।

अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम्। ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यक्लिन्नानित्यां स्वशक्तिभिः।। ७।।
क्षोभिणी मोहिनी लोला त्रिकोणादिषु शक्तयः। नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा।।८।।
मदद्रवा द्राविणी च द्रविणा चाष्टपत्रगा। मदाविला मङ्गला च मन्मथार्ता मनस्विनी।। ९।।
मोहामोदा मानमयी माया मन्दा मनोवती। चतुरस्रगताः पूज्या मदारुणचलेक्षणाः।। १०।।
मध्यनित्यासमाकारवर्णबाह्वायुधान्विताः। चतुरस्रद्वयं कृत्वा प्राक्प्रत्यक्द्वारसंयुतम्।। ११।।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं तन्मध्ये त्र्यस्रकं तथा। अर्घ्यं षडङ्गमूलाभ्यां कृत्वा तां प्राङ्मुखोऽर्चयेत्।।१२।।
चतुरस्रे पश्चिमादिनिर्ऋत्यन्तं भजेच्च ताम्[1]। द्वारपार्श्वेषु कोणेषु दिक्षु ता दश पूजयेत्।। १३।।
तदन्तष्टपत्रेषु पश्चिमादिप्रदक्षिणम्। अर्चयेदष्टशक्तीस्तास्तदन्तर्योनिकोणगाः।। १४।।
अग्रा[2]त्प्रदक्षिणं तिस्रः शक्तीश्चोक्तविधानतः। कर्णिकायोनिमध्यस्थदेशे वाय्वीशवह्निषु।। १५।।
निर्ऋत्यां पुरतो दिक्षु यजेदङ्गानि षट् क्रमात्। ततो देवीं तु तां नित्यां नित्यक्लिन्नामुदीरितैः।।१६।।
उपचारैरर्चयेच्च बलिं दद्याच्च पूर्ववत्। तदग्रतो जपेद्विद्यां सहस्रं यदि वा शतम्।। १७।।
ततोऽभ्यर्च्य शिवां होमं कुर्यादुक्तक्रमेण तु। आज्यसिक्तान्धसाज्येन पुष्पैर्वा सौरभान्वितैः।। १८।।
जुहुयात् प्राग्वदुदितसंख्यं प्राग्वत् समापयेत्। अभ्यर्च्य देवीमथ तां स्वात्मन्युद्वास्य पूर्ववत्।।१९।।
न्यासं कृत्वा स्तोत्रयुगं जपित्वा तन्मयश्चरेत्। इति।

अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते नित्यक्लिन्नाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नानित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः। नाभौ न्नेकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मद कवचाय हुं। द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, हृदये ह्रीं नमः। दक्षनेत्रे निंनमः। वामे त्यंनमः। दक्षश्रोत्रे क्लिंनमः। वामे न्नेंनमः। दक्षिणनासायां मंनमः। वामे दंनमः। त्वचि द्रंनमः। लिङ्गे वेंनमः। गुदे स्वांनमः। पादयोः हांनमः, इति विन्यस्य प्राग्वन्मूलविद्यया व्यापकं कृत्वा, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पूर्वपश्चिमयोर्द्वारद्वययुतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तन्मध्येऽष्टदलपद्मं निर्माय तत्कर्णिकायां स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं कृत्वा, प्राग्वत् स्वपुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र नित्यक्लिन्नाविद्यया तन्मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते कोणान्तः प्राग्वद् देवीं परितः षडङ्गानि सम्पूज्य, तद्बहिर्देव्याः पृष्ठभागे प्राग्वत् प्रकाशानन्दादिगुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, चतुरस्रे देव्यग्रतस्तद्द्वारस्य दक्षिणे ऐंह्रींश्रींमदाविलापादुकां पूजयामि नमः। उत्तरे ह्रींश्रींमङ्गलापा०। एवं २ मन्मथार्तापा०। २ मनस्विनीपा०। २ मोहापा०। २ आमोदापा०। २ मानमयीपा०। २ मायापा०। २ मन्दापा०। २ मनोवती०, इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्यान्तस्त्रिकोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य २ क्षोभिणीपा०, २ मोहिनीपा०, २ लोलापा०, इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पुनर्मध्ये नित्यक्लिन्नां तद्विद्यया सम्पूज्य धूपदीपादिकं सर्वं कृत्वा प्राग्वत् समापयेत्, इति नित्यक्लिन्ना-

१. 'ताः' ग. पाठः। २. 'अग्रात्' ख. पाठः।

नित्यायजनविधिः॥

अथ भेरुडानित्यापूजाविधिर्लिख्यते। तत्र श्रीतन्त्रराजे– (१० प० । श्लो० १)

अथ षोडशनित्यासु भेरुण्डा पञ्चमी तु या। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे कथयामि यथाविधि॥ १॥

मन्त्रोद्धारस्तृतीयेऽभूदङ्गान्यावृतिदेवताः। पूजाक्रमं चे'' ति।

मन्त्रोद्धारस्तु-तृतीयपटले – (३ । ३५)

भूः स्वेन युक्ता प्रथमं प्राणो दाहेन तद्युतम्। रसो दाहेन तद्युक्तं प्राणो दाहवनस्वयुक्॥ १॥

कं च दाहेन तद्युक्तं प्रभा दाहेन तद्युता। ज्या च दाहेन तद्युक्ता नित्यक्लिन्नान्ततो द्वयम्॥ २॥

एषा नवाक्षरी नित्या भेरुण्डा सर्वसिद्धिदा।

इति। ''ओंक्रोंभ्रोंक्रोंझ्रोंछ्रोंज्रों स्वाहा''। त्रिपुरार्णवे–

ऋषिरस्या महाविष्णुर्गायत्री छन्द उच्यते। देवतेयं वरारोहे तृतीयं बीजमुच्यते॥ १॥

वह्निजाया तु शक्तिः स्यात् कीलकं सृणिरेव च।

इति। तन्त्रराजे– (१० । ४)

आद्यन्तद्वयमध्यस्थैः[1] षड्भिः कुर्यात् षडङ्गकम्। रन्ध्राज्ञामुखकण्ठेषु हृन्नाभ्याधारपद्द्वये॥ १॥

न्यसेन्मन्त्रार्णनवकं मातृकान्यासपूर्वकम्। ततः शक्तीरावृतिस्था ध्यानं तु शृणु पार्वति॥ २॥

बाह्यावृतौ तु ब्राह्म्याद्या युगशक्तीश्च पूजयेत्। तदन्तरष्टपत्रेषु विजयां विमलां शुभाम्॥ ३॥

विश्वां विभूतिं विनतां विविधां विमलां[2] क्रमात्। तदन्तरष्टकोणेषु कमलां कामिनीं तथा॥ ४॥

किरातीं कीर्तिसहितां कुर्दिनीं[3] कुलसुन्दरीम्। कल्याणीं कालकोलां च पूजयेदुक्तयोगतः॥ ५॥

डाकिनीं राकिणीं तद्वल्लाकिनीं काकिनीं तथा। शाकिनीं हाकिनीं षट्सु कोणेषु क्रमतोऽर्च्चयेत्॥६॥

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्[4]। अष्टकोणान्तरालेषु पूजयेदायुधाष्टकम्॥ ७॥

चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम्। तदन्तरष्टपत्राब्जं वृत्तयुग्ममथान्तरा॥ ८॥

अष्टास्रं भूपुरद्वन्द्वात्तच्च वृत्तसमन्वितम्। तदन्तस्तादृशं कुर्यात् षट्कोणं वा तु विग्रहम्॥ ९॥

तदन्तस्तादृशीं कुर्याद्योनिं तन्मध्यतो यजेत्। भेरुण्डां पञ्चमीं नित्यामुक्तशक्तिभिरावृताम्॥ १०॥

अर्घ्यं षडङ्गमूलाभ्यां संसाध्य प्राङ्मुखो यजेत्। बलिं च षोडशार्णेन दद्यादाद्यन्तयोः क्रमात्॥ ११॥

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि देव्याः सर्वार्थसाधकम्[5]। तदावृत्तिस्थशक्तीनां क्रमेण शृणु पार्वति॥ १२॥

तप्तकाञ्चनसङ्काशदेहां नेत्रत्रयान्विताम्। चारुस्मिताञ्चितमुखीं दिव्यालङ्कारभूषिताम्॥ १३॥

ताटङ्कहारकेयूररत्नस्तवकमण्डिताम्। रशनानूपुरोर्म्यादिभूषणैरतिसुन्दरीम्॥ १४॥

पाशाङ्कुशौ खेटखड्गौ गदावज्रधनुःशरान्। करैर्दधानामासीनां पूजायामन्यदास्थिताम्॥ १५॥

शक्तीश्च तत्समाकारतेजोहेतिभिरन्विताः। पूजयेत्तद्वदभितः स्मितसौम्यमुखां सदा॥ १६॥

---

१. 'आद्यमेकमक्षरमन्त्यद्वयं च हित्वावशिष्टैर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यादित्यर्थः।' २. 'विरतां' ख. पाठः। ३. 'कुट्टनी' ख. पाठः। ४. 'अर्चयेदन्तरावृतौ' ख. पाठः। ५. 'सिद्धिदम्' ख. पाठः।

एवं देवीमावृतिभिरावृतामर्चयेत् तथा। बलिमाद्यन्तयोर्दद्यात् पूर्वोक्तविधिना युतम्।। १७।।

इति।। अथ प्रयोगः— प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते भेरुण्डाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ॐमहाविष्णवे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीभेरुण्डानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये भ्रांबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः। नाभौ क्रोंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियागः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा क्रों हृदयाय नमः। भ्रों शिरसे स्वाहा। क्रों शिखायै वषट्। झ्रों कवचाय हुं। छ्रों नेत्रत्रयाय वौषट्। ज्रों अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः। आज्ञायां क्रों नमः। मुखे भ्रों नमः। कण्ठे क्रों नमः। हृदि झ्रों नमः। नाभौ छ्रों नमः। मूलाधारे ज्रों नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामपादे हां नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद्व्यापकं कृत्वा "तप्तकाञ्चनसङ्काशदेहा" मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तदन्तरष्टदलं पद्मं तदन्तर्वृत्तं तदन्तरष्टास्रं पुनस्तदन्तवृत्तं तदन्तः षट्कोणं तदन्तर्वृत्तं तन्मध्ये स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणरूपां योनिं च कृत्वा, प्राग्वत् संस्थाप्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्यावाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते योनिमुद्रां प्रदर्श्यासनादिपुष्पोपचारान्ते योन्यन्तर्देव्यभितः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, योनिवृत्तयोरन्तराले देव्याः पृष्ठभागे प्राग्वद्गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, चतुरस्रद्वयपार्श्वयोः २ ब्राह्मीपादुकां पूजयामि नमः। २ माहेश्वरीपा०, पश्चिमद्वारपार्श्वयोः २ कौमारीपा०, २ वैष्णवीपा०, पूर्वद्वारस्योत्तरदक्षिणपार्श्वयोः २ वाराहीपा०, २ इन्द्राणीपा०, दक्षिणद्वारपार्श्वयोः २ चामुण्डापा०, २ महालक्ष्मीपा०, इति सम्पूज्य, चतुरस्रवायुकोणे २ कृतयुगशक्तिपादु०, ईशाने २ त्रेतायुगशक्तिपा०, आग्नेये २ द्वापरयुगशक्तिपा०, निर्ऋतिकोणे २ कलियुगशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, तदन्तरष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ विजयापा० २ विमलापा०, २ शुभापा०, २ विश्वापा०, विभूतिपा०, २ विनतापा०, २ विविधापा०, २ विमना[1]पा०, इति सम्पूज्य, तदन्तरष्टकोणेषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ कमलापा०, २ कामिनीपा०, २ किरातीपा०, २ कीर्तिपा०, २ कुर्दिनीपा०, २ कुलसुन्दरीपा०, २ कल्याणीपा०, २ कालकोलापा०, इति सम्पूज्य, तदन्तः षट्कोणेषु देव्या वामाग्रकोणे २ डाकिनीपा०, २ दक्षिणाग्रकोणे २ राकिणीपा०, पृष्ठकोणे २ लाकिनीपा०, पृष्ठवामाग्रकोणे २ काकिनीपा०, दक्षिणपृष्ठकोणे २ शाकिनीपा०, देव्यग्रकोणे २ हाकिनीपा० इति सम्पूज्य, ततस्त्रिकोणे देव्यग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ इच्छाशक्तिपा०, २ ज्ञानशक्तिपा०, २ क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्याष्टकोणषट्कोणयोरन्तराले देव्या दक्षिणाग्रादितः पृष्ठदक्षिणाग्रान्तं स्थानचतुष्टयं परिकल्प्य २ शरेभ्यो नमः, खड्गाय नमः, २ अङ्कुशाय नमः, २ पाशाय नमः, इति दक्षिणाधःकरादितदूर्ध्वकरान्तस्थान्यायुधानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठवामभागमारभ्य वामाग्रावधि स्थानचतुष्टयं परिकल्प्य, तेषु २ गदायै नमः, २ चर्मणे नमः, २ धनुषे नमः, २ वज्राय नमः, इति सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालांस्तदायुधानि च सम्पूज्य, पुनर्मध्यस्थनित्यां तद्विद्यया सम्पूज्य धूपादिसर्वं प्राग्वत्समापयेत्, इति भेरुण्डानित्यापूजाविधिः।।

अथ वह्निवासिनीनित्यापूजाविधिः। श्रीतन्त्रराजे— (११ प० १ श्लो०)

अथ षोडशनित्यासु या षष्ठी समुदीरिता। सा विद्या वह्निवासिन्याः कथिताभून्नवाक्षरी।। १।।
तदङ्गानि लिपिन्यासं ध्यानं शक्तिभिरर्चनम्। इति।

तथा तत्रैव — (२ प० ३८ श्लो०)

भेरुण्डाद्यमिहाद्यं स्यान्नित्यक्लिन्नाद्यनन्तरम्। ततोऽम्बु शून्यं हंसाग्नियुतमम्बु मरुद्युतम्।। १।।

---

१. 'विरता' ख. पाठः।

हृदग्निना युतं शून्यं व्याप्तेन शुचिना च युक्। शून्यं नभः शक्तियुतं नवार्णेयमुदीरिता।। २।।
नित्या सर्वार्थदा वह्निवासिनी विश्वघस्मरा। इति।

"ओंह्रींवह्निवासिन्यै नमः"।। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिर्वसिष्ठश्छन्दः स्याद्गायत्री देवता त्वियम्। आद्यन्तं बीजशक्ती स्यात् कीलकं मध्यमेन च।। १।।

इति। तन्त्रराजे — (११। ३)

विद्याद्वितीयबीजेन स्वरान् दीर्घान्नियोजयेत्। मायान्तान् षड्भिरेवाङ्गान्याचरेत् स्वकराङ्गयोः।। १।।
नवाक्षराणि विद्याया नवरन्ध्रेषु विन्यसेत्। व्यापकं तु समस्तेन कुर्याद् देव्यात्मसिद्धये।। २।।
सर्वास्वपि च विद्यासु व्यापकं न्यासमाचरेत्[१]। तेन तत्तन्मयो भूयात्[२] साधकस्तेन सिद्धयः।। ३।।
तस्याचिरेण देवीनां प्रसादात् सम्भवन्ति च। मातृकायाः षडङ्गं च मातृकान्यासमेव च।। ४।।
सर्वासां प्रथमं कृत्वा पश्चात् तत्रोदितं न्यसेत्। ललितायास्तु वर्गैस्तत् प्रोक्तमष्टाभिरेव च।। ५।।
तेन तस्यास्तु लिपिशो न्यासो नैव समीरितः। तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम्।। ६।।
चारुस्मेरमुखाम्भोजां विलसन्नयनत्रयाम्। अष्टाभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम्।। ७।।
पद्मरागकिरीटांशुसम्भेदारुणिताम्बराम् । पीतकौशेयवसनां रक्तमञ्जीरमेखलाम्।। ८।।
रत्नमौक्तिकसम्भिन्नस्तबकाभरणोज्ज्वलाम् । रक्ताब्जकम्बुपुण्ड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलम् ।। ९।।
दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृङ्गकम्। पुष्पेषु मातुलिङ्गं च दधानां दक्षिणैः करैः।। १०।।
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। एवं ध्यात्वार्चयेद्वह्निवासिनीं विश्वविग्रहाम्।। ११।।
ज्वालिनीविस्फुलिङ्गिन्यौ मङ्गला सुमनोहरा। कनका कितवा विश्वा विविधा चेति शक्तयः।। १२।।
अष्टकोणेषु सम्पूज्यास्तदग्रात्तु प्रदक्षिणम्। दलेषु द्वादशस्वेता राशिशक्तीः समर्चयेत्।। १३।।
मायासप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरीरितैः। घस्मरा सर्वभक्षा च विश्वा च विविधोद्भवा।। १४।।
चित्ररूपा निःसपत्ना निरातङ्का च पावनी। अचिन्त्यवैभवा रक्ता दशमी परिकीर्तिता।। १५।।
बलिदेवीति सम्प्रोक्ता कुरुकुल्लाद्यविद्यया। यत्र नोक्ता देवता तु बलिकर्मणि तत्र ताम्।। १६।।
सप्ताक्षर्या समोपेतां विदध्याद्बलिदेवताम्। वृत्तयोर्नवयोनिं तु कृत्वा तद्बहिरम्बुजम्।। १७।।
द्वादशच्छदसंयुक्तां विदध्याद् वृत्तयुग्मकम्। तद्बहिश्चतुरस्रे द्वे द्वारद्वयसमन्विते ।। १८।।
पूर्वपश्चिमयोस्तस्मिंश्चक्रे देवीं तथार्चयेत्।

इति।। अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनादियोगपीठन्यासान्ते वह्निवासिनीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि वशिष्ठऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि वह्निवासिनीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये (ओं) ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः नमःशक्तये नमः। नाभौ वह्निवासिन्यै कीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा षड्दीर्घयुक्तद्वितीयबीजेन षडङ्गन्यासं कृत्वा, दक्षनेत्रे ओं नमः। वामे ह्रीं नमः। दक्षकर्णे वं नमः। वामे हिं नमः। दक्षनसि

१. 'तत्समाचरेत्' ख. पाठः। २. 'भूत्वा' ग. पाठः।

वां नमः। वामे सिं नमः। मुखे न्यैं नमः। लिङ्गे नं नमः। गुदे मं नमः, इति विन्यस्य मूलेन व्यापकं विधाय, तप्तकाञ्चनसङ्काशामित्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना द्वादशदलकमलं विलिख्य तत्कर्णिकायां वृत्तद्वयं विधाय, तन्मध्ये प्राग्वन्नवयोनिचक्रं कृत्वा, पश्चाद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोर्द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र वह्निवासिनीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपूजोपचारान्ते बाह्याभ्यन्तरवृत्तयोरन्तराले प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन २ ज्वालिनीपादुकां पूजयामि नमः। २ विस्फुलिङ्गिनीपा०। २ मङ्गलापा०। २ मनोहरापा०। २ कनकापा०। २ कितवापा०। २ विश्वापा०। २ विविधापा०, इति सम्पूज्य, द्वादशदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन २ मेषापादुकां पूजयामि नमः। २ वृषापा०। २ मिथुनापा०। २ कर्कटापा०। २ सिंहापा०। २ कन्यापा०। २ तुलापा०। २ कीटापा०। २ चापापा०। २ मकरापा०। २ कुम्भापा०। २ मीनापा०। इति सम्पूज्य, चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ घस्मरापा०। २ सर्वभक्षापा०। २ विश्वापा०। २ विविधोद्भवापा०। २ चित्ररूपापा०, इति पश्चिमद्वारपार्श्वद्वयवायव्योत्तरेशानेषु सम्पूज्य, पूर्वद्वारस्योत्तरदक्षिणपार्श्वद्वयाग्नेयदक्षिणनिर्ऋतिकोणेषु च २ निःसपत्नापादुकां पूजयामि नमः। २ निरातङ्कापा०। २ पावनीपा०। २ अचिन्त्यवैभवापा०। २ रक्तापा०, इति सम्पूज्य, तद्बहिः प्राग्वल्लोकपालांश्च तदायुधानि च सम्पूज्य धूपदीपादिसर्वं प्राग्वत्समापयेत्— इति वह्निवासिनीनित्यायजनविधिः॥

अथ वज्रेश्वरीनित्यायजनविधिः॥ तत्र श्रीतन्त्रराजे— (१२ प०)

अथ षोडशनित्यासु सप्तमी या समीरिता। तस्या विधानं वक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसाधकम्॥ १॥

प्रोक्तैव विद्या प्रागेव द्वादशाक्षरविग्रहा। तदङ्गानि लिपिन्यासं ध्यानं शक्तिभिरर्चनम्॥ १॥

इति। तथा— (३। ४१)

द्वितीयं वह्निवासिन्या नित्यक्लिन्नाचतुर्थकम्। पञ्चमं भगमालाद्यं भेरुण्डाया द्वितीयकम्॥ १॥

नित्यक्लिन्नाद्वितीयं च तृतीयं षष्ठसप्तमौ। अष्टमं नवमं च स्यादेतदाद्यमितीरितम्॥ २॥

महावज्रेश्वरीनित्या द्वादशार्णा समीरिता। इति।

''ह्रींक्लिन्नेऐंक्रोंनित्यमदद्रवेह्रीं''॥ त्रिपुरार्णवे—''ऋषिर्ब्रह्मा च गीयते। गायत्री छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी।'' परमेश्वरी वज्रेश्वरी॥ ''आद्यन्ते बीजशक्ती तु वाग्भवं कीलकं भवेत्।'' इति। तन्त्रराजे— (१२। ४)

द्वयमेकैकमप्यत्र द्वयं द्वयमथ द्वयम्। मायया पुटितं कृत्वा कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्॥ १॥

(प्रत्येकं शक्तिपुटितैर्मन्त्राणैर्दशभिर्न्यसेत्।) दृक्श्रोत्रनासावाग्वक्षोनाभिगुह्येषु च क्रमात्॥ २॥

रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमालाविभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥ ३॥

पाशाङ्कुशाविक्षुचापं दाडिमीसायकं तथा। दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयामद[1]सुशीतलैः॥ ४॥

पश्यन्तीं साधकं त्र्यस्रषट्कोणाब्जमहीपुरे। चक्रमध्ये सुखासीनां स्मरेवक्त्रसरोरुहाम्॥ ५॥

शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम्। सिंहासनेऽभितः प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः॥ ६॥

वृतां ताभिर्विनोदानि यातायातादिभिः सदा। कुर्वाणामरुणाम्भोधौ चिन्तयेन्मन्त्रनायिकाम्॥ ७॥

---

१. 'दम' ख. पाठः।

इच्छाज्ञानक्रियास्तत्र त्रिकोणस्थाश्च शक्तयः। डाकिन्याद्याः षडस्रस्था यत्र[1] द्वादशपत्रगाः॥ ८॥
हृल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिनी मदनातुरा[2]। निरञ्जना रागवती तथैव मदनावती॥ ९॥
मेखला द्राविणी वेगवती द्वादशशक्तयः। ततः षोडशपत्रस्थाः शक्तीराकर्णयाम्बिके॥ १०॥
कमलां कामिनीं कल्पां कलां कलितकौतुके। किरातां कालकदने कौशिकीं कम्बुवाहिनीम्।॥११॥
कातरां कपटां कीर्तिं कुमारीं कुङ्कुमामपि। चतुरस्रस्थाश्च शक्तीराकर्णय च ताः क्रमात्॥ १२॥
भञ्जिनी[3] वेगिनी भोगा चपला पेशला सती। रतिः श्रद्धा भोगलोला मदोन्मत्ते मनस्विनी॥ १३॥
दिक्षु द्वारेषु पार्श्वेषु कोणादिषु च संस्थिताः। द्वादशैता महादेव्याश्चतुरस्राभितो यजेत्॥ १४॥
कृत्वार्घ्यमङ्गमूलाभ्यां प्रोक्तरूपां ततोऽर्चयेत्। शोणाब्धिं हेमपोतं च सिंहासनमतः परम्॥ १५॥
तत्र चक्रं ततो देवीं प्राग्वदावाह्य शक्तिभिः। मायासप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरर्चयेत्॥ १६॥
बलिं दद्याच्च तदनु सप्ताक्षर्या पुरोक्तया। देव्यास्तु कुरुकुल्लाया होमं कुर्याद्यथाविधि॥ १७॥
घृताक्तैररुणैः पुष्पैर्घृतैर्वा होममाचरेत्। प्राग्वत् समापयेदित्थमर्चनं ते समीरितम्॥ १८॥

इति॥ अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि वज्रेश्वरीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयो ह्रींशक्तये नमः। नाभौ ऐंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रींक्लिन्ने हृदयाय नमः। ऐं शिरसे स्वाहा। क्रों शिखायै वषट्। नित्य कवचाय हुं। मद नेत्रत्रयाय वौषट्। द्रवेह्रीं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ह्रींक्लिंह्रीं नमः। वामनेत्रे ह्रींन्नेह्रीं नमः। दक्षकर्णे ह्रींऐंह्रीं नमः। वामकर्णे ह्रींक्रोंह्रीं नमः। दक्षनसि ह्रींनिंह्रीं नमः। वामनसि ह्रींत्यंह्रीं नमः। मुखे ह्रींमंह्रीं नमः। वक्षसि ह्रींदंह्रीं नमः। नाभौ ह्रींद्रंह्रीं नमः। लिङ्गे ह्रींवेंह्रीं नमः, इति विन्यस्य मूलेन व्यापकं विधाय, "रक्तां रक्ताम्बरा"मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजां विधाय, प्राग्वत्स्वर्णादिपीठे कुङ्कुमादिना स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणरूपां योनिं विधाय तद्बहिर्द्वादशदलपद्मं तद्बहिः षोडशदलपद्मं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यात्, इति पूजाचक्रं निर्माय प्राग्वत्स्वपुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठार्चने मण्डूकादिपृथिव्यन्तमभ्यर्च्य, तदनु शोणसमुद्राय नमः। कनकपोताय नमः। रत्नसिंहासनाय नमः, इति संपूज्य तदनु धर्मादिपीठमन्वन्तं प्राग्वत्सम्पूज्य, तत्र मूलविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैरुपचर्य्य, त्रिकोणमध्ये प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणयोरन्तराले देव्याः पृष्ठे प्राग्वद्गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्यान्तस्त्रिकोणे देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ह्रींहृल्लेखापादुकां पूजयामि। ह्रींक्लेदिनीपा०। ह्रींक्लिन्नापा०। ह्रींक्षोभिणीपा०। ह्रींमदनापा०। ह्रींमदनातुरापा०। ह्रींनिरञ्जनापा०। ह्रींरागवतीपा०। ह्रींमदनावतीपा०। ह्रींमेखलापा०। ह्रींद्राविणीपा०। ह्रींवेगवतीपा०, इति सम्पूज्य, तद्बहिः षोडशदलेषु कमलापा०, कामिनीपा०, कल्पापा०, कलापा०, कलितापा०, कौतुकापा०, किरातापा०, कालापा०, कदनापा०, कौशिकीपा०, कम्बुवाहिनीपा०, कातरापा०, कपटापा०, कीर्तिपा०, कुमारीपा०, कुङ्कुमापा०, इति प्राग्वत्सम्पूज्य, चतुरस्रे देव्यग्रादिद्वारचतुष्टयस्य पार्श्वेषु पश्चिमद्वारस्य दक्षिणभागादिप्रादक्षिण्येन भञ्जिनीपा०, वेगिनीपा०, भोगापा०, चपलापा०, पेशलापा०, सतीपा०, रतिपा०, श्रद्धापा०, प्रीतिपा०, इति सम्पूज्य,

१. 'पद्म' ख. पाठः। २. 'मदना इति मदनातुरा इति चात्र द्वे शक्ती। ३. 'जम्बिका' ख. पाठः।

वायव्यादिकोणचतुष्टये प्राग्वत् प्रादक्षिण्येन भोगलोलापा०, मदनापा०, उन्मत्तापा०, मनस्विनीपा०, इति निर्ऋत्यन्तं सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालार्चादि शेषं समापयेत्, इति वज्रेश्वरीनित्यायजनविधि:।।

अथ शिवादूतीनित्यायजनविधि:। तत्र श्रीतन्त्रराजे — (१३ प०)

अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्ता त्वष्टमी तदा। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे समीहितफलप्रदम्।। १।।

विद्योद्धार: कृत: पूर्वमथ न्यासक्रमं तथा। तथावरणशक्तीश्च तद्ध्यानं तत्प्रपूजनम्।। २।।

इति। तत्रैव — (३। ४४)

वज्रेश्वर्यन्त्यमाद्यं स्याद्वियदग्नियुतं तत:। अम्बु स्यान्मरुता युक्तं गोत्रा क्ष्मासंयुता तत:।। १।।

रयो व्याप्तेन शुचिता युतं स्यात्तदनन्तरम्। अन्त्यार्णौ वह्निवासिन्या दूती नित्या समीरिता।।२।।

इति। ''ह्रींशिवादूत्यै नम:''।। त्रिपुरार्णवे—''ऋषी रुद्रोऽथ गायत्री छन्द: स्याद् देवता शिवा।।'' शिवादूती इति। ''आद्यन्ते बीजशक्ती च मध्यं कीलकमुच्यते''।। इति। श्रीतन्त्रराजे—(१३। ५)

कृत्वा प्राग्वत् षडङ्गानि विद्याद्येनोक्तवर्त्मना[1]। तेनैव पुटितैरर्णैर्न्यसेच्छ्रोत्रादिपञ्चसु।। १।।

षष्ठं मनसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत्। प्राग्वदर्घ्यं[2] समुद्दिष्टं तच्छक्ती: शृणु पार्वति।।२।।

विह्वलाकर्षिणी लोला नित्या च वन(मदन)मालिनी। विनोदा कौतुका पुण्या पुराणा चतुरस्रगा:।।३।।

वागीशी[3] वरदा विश्वा विनदा विघ्नकारिणी। वीरा विघ्नहरा विद्येत्युक्त्वा यन्त्राष्टशक्तय:।। ४।।

सुमुखी सुन्दरी सारा सुमना[4] च सरस्वती। समया सर्वगा विद्येत्युक्तास्त्वष्टास्रशक्तय:।। ५।।

डाकिन्याद्या: षडस्रेषु सर्वास्त्वग्रात् प्रदक्षिणम्। मूलदेवीसमाकारवर्णाकार(युध)समन्विता:।। ६।।

शिवां वार्णीं दूरसिद्धां त्यैविग्रहवतीमपि। नादां मनोन्मनीं षट्सु पत्रेषु परितोऽर्चयेत्।। ७।।

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्। मध्ये देवीं हेतिवृतां पूजयेदष्टमीं शिवाम्।। ८।।

तस्या ध्यानं शृणु प्राज्ञे यन्मयं विश्वमीरितम्। तथापि भक्तसन्त्राणहेतो: क्लृप्तां परां तनुम्।।९।।

निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम् । नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम् ।। १०।।

नानाभरणसम्भिन्नदेहकान्तिविराजिताम्। शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभि: ।।११।।

पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभि:। दक्षिणैरङ्कुशं खड्गं कुठारं कमलं तथा ।। १२।।

दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम्। ध्यात्वैवं पूजयेद् देवीं दूतीं दुर्नीति[5]नाशिनीम्।। १३।।

वृत्तद्वयं बहिस्त्र्यस्रं तद्द्वयं षड्दलाम्बुजम्। (तथा षडस्रमष्टास्रं तद्वदष्टदलाम्बुजम्) ।। १४।।

भूपुरे वह्निवासिन्या:[6] कृत्वा तन्मध्यगां शिवाम्। आवाह्याभ्यर्च्य तच्छक्ती: प्रागुक्तविधिना स्थिता:।। १५।।

जप्त्वा हुत्वा नमस्कृत्य स्वात्मन्युद्वासयेत् तथा। इति।

अथ प्रयोग:—तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि रुद्राय ऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये श्रीशिवादूतीनित्यायै नम:। गुह्ये ह्रींबीजाय नम:। पादयो: नम:शक्तये नम:। नाभौ शिवादूत्यै कीलकाय नम:, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोग:— इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रांह्रींमित्यादिना

१. 'दीर्घस्वरषट्कजातियुक्तेनेत्यर्थ:।' २. 'पश्चादूर्ध्वं' ग. पाठ:। ३. 'वागीशा वरदा विश्वा विभवा' ख. पाठ:। ४. 'समरा' ख. पाठ:। ५. 'दुरित' ख. पाठ:। ६. 'वह्निवासिनीनित्यासपर्यावद् भूपुरे चतुरस्रद्वयं कुर्यादित्यर्थ:।

करषडङ्गन्यासं विधाय, श्रोत्रयोः ह्रींसिंह्रीं नमः। सर्वाङ्गे ह्रींवांह्रीं नमः। चक्षुयोः ह्रींदूंह्रीं नमः। जिह्वायां ह्रींत्यैंह्रीं नमः। घ्राणयोः ह्रींनंह्रीं नमः। मनसि ह्रींमंःह्रीं नमः, इत्यादिसमस्तविद्यया व्यापकं विधाय "निदाघकाल" इत्यादि ध्यात्वा मानसपूजां विधाय, प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना षड्दलपद्मं विधाय तदन्तर्वृत्तं (वृत्तद्वयं) मध्ये स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं, (तदन्तर्वृत्तद्वयं) पश्चाद्बहिः षट्कोणं, तद्बहिरष्टकोणं, तद्बहिरष्टदलपद्मं, तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोर्द्वारयुतं चतुरस्रं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मूलेन मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादि-पुष्पोपचारान्ते त्रिकोणे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणवृत्तयोरन्तराले प्राग्वद् गुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य, चक्षुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणाभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन ॐ विह्वलापादु०, आकर्षिणीपा०, लोलापा०, नित्यापा०, मदनापा०, मालिनीपा०, विनोदापा०, कौतुकापा०, पुण्यापा०, पुराणापा०, इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु प्राग्वत् वागीशीपा०, वरदापा०, विश्वापा०, विनदापा०, विघ्नकारिणीपा०, वीरापा०, विघ्नहरापा०, विद्यापा०, इति सम्पूज्याष्टकोणे प्राग्वत् सुमुखीपा०, सुन्दरीपा०, सारापा०, सुमनापा०, संरस्वतीपा०, समयापा०, सर्वगापा०, सिद्धापा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य हाकिनीपा०, शाकिनीपा०, काकिनीपा०, लाकिनीपा०, राकिणीपा०, डाकिनीपा०, इति सम्पूज्य, षट्पत्रेषु शिवापा०, वाणीपा०, दूरसिद्धापा०, त्यैविग्रहवतीपा०, नादापा०, मनोन्मनीपा०, इति सम्पूज्यान्तस्त्रिकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन इच्छशक्तिपा०, ज्ञानशक्तिपा०, क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, त्रिकोणान्तर्वृत्तयोरन्तराले देव्या दक्षिणाधःकरादिवामाधःकरान्तान्यायुधस्थानानि परिकल्प्य, कमलाय नमः। कुठाराय नमः। खड्गाय नमः। अङ्कुशाय नमः। रत्नचषकाय नमः। गदायै नमः। खेटाय नमः। पाशाय नमः। इति सम्पूज्य पुनर्मध्ये देवीं सम्पूज्य धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत् समापयेत् — इति शिवादूतीनित्यायजनविधिः॥

अथ त्वरितानित्यायजनविधिः। श्रीतन्त्रराजे— (१४ प०)

अथ षोडशनित्यासु नवमी या समीरिता। प्रोक्तैव त्वरिता विद्या प्रागेव द्वादशाक्षरा॥ १॥
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे होमयन्त्रादिभिः समम्[1]। येन मन्त्री मन्मथाभो विक्षोभयति भूतलम्॥ २॥

इति। तत्रैव — (३। ४७)

आद्यं तु वह्निवासिन्या दूत्यादिस्तदनन्तरम्। हंसो धरास्वसंयुक्तः तेजश्चरसमन्वितम्॥ १॥
वायुः प्रभाचरयुता ग्रासः शक्तिसमन्वितः। ह्वदा रयेण दाहेन वह्निः स्यादष्टमं प्रिये॥ २॥
हंसः क्ष्मास्वयुतो ग्रासश्चरयुक्तो द्वितीयकम्। द्युतिर्नादयुता नित्या त्वरिता द्वादशाक्षरी॥ ३॥

इति। "ॐह्रींहुंखेचछेक्षःस्त्रीहूंक्षेह्रींफट्"॥ तथा त्रिपुरार्णवे—

ऋषिः सौरिर्विराट् छन्दो देवतेयं च पार्वति। कवचं स्त्री शक्तिबीजे क्षेच कीलकमीरितम्॥ १॥

इयं तु त्वरिता नित्या। तन्त्रराजे— (१४। ३)

विद्याचतुर्थवर्णादिसप्तभिस्त्वक्षरैस्तथा। कुर्यादङ्गानि युग्मार्णैः षट् क्रमेण कराङ्गयोः॥ १॥
शिरोललाटकण्ठेषु ह्नाभ्याधारकेषु च। ऊरुयुग्मे तथा जानुयुग्मे जङ्घाद्वये तथा। २॥
पादयुग्मे तथा वर्णान्मन्त्रजान् दश विन्यसेत्। द्वितीयोपान्त्यमध्यस्थैर्मन्त्रार्णैरितरैरपि॥३॥
ताराद्यैः शृणु तद्ध्यानं तच्छक्तीस्तत्प्रपूजनम्। श्यामवर्णां शुभाकारां नवयौवनशोभिनीम्॥ ४॥

---

१. 'संह' ख. पाठः।

द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पिताभरणोज्ज्वलाम्। ताटङ्कमङ्गदं तद्वद्रशनानूपुरान्वितैः।। ५।।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः। पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपुच्छकृतैः शुभैः।। ६।।
वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। वर्हिवर्हकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम्।। ७।।
गुञ्जागुणलसद्वक्षःकुचकुङ्कुममण्डनाम्। त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्।। ८।।
पाशाङ्कुशवराभीतिलसद्भुजचतुष्टयाम्। ध्यात्वैवं तोतुलां देवीं पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम्।। ९।।
तदग्रस्थां च फट्कारीं शरचापकरोज्ज्वलाम्। प्रसादे फलदाने च साधकानां त्वरान्विताम्।। १०।।
यतः सा त्वरितोत्युक्ता मया शक्ति[1]र्नवम्यसौ। कृष्णवर्णो गदापाणिर्वर्वरो[2]र्ध्वशिरोरुहः।। ११।।
किङ्करस्त्वग्रतस्तस्याः पूज्यः सर्वार्थसिद्धये। तद्द्वारपार्श्वयोः पूज्ये जयाविजयसंज्ञिके।। १२।।
शक्ती तत्सदृशौ स्वर्णवेत्रवेल्लत्कराम्बुजे। हुंकारी खेचरी चण्डा छेदिनी क्षेपिणी ततः।। १३।।
स्त्रीहुंकार्यौ क्षेमकरी लोकपालसमा इमाः। पूज्याः पद्माष्टपत्रेषु स्थिता मन्त्रार्णशक्तयः।। १४।।
याभिर्नित्यार्चिताभिः स्यान्नरो नारीषु मन्मथः। शृणु पूजाविधिं तस्यास्त्वरिताया महेश्वरि।। १५।।
प्राग्वदर्घ्यं विधायेशीमष्टसिंहाङ्घ्रिके शुभे। आसने हेमरचितं विदध्याद् भूपुरद्वयम्।। १६।।
पश्चिमद्वारसंयुक्तं तदन्तर्वृत्तयुग्मकम्। तदन्तरष्टपत्राब्जं विधायात्र परां शिवाम्।। १७।।
प्राग्वदावाह्य परितः शक्तिभिर्वेष्टितां तथा[3]। मुद्रादर्शनपूर्वं तु पूजयेत्तां यथोदिताम्।। १८।।
अग्रपत्राग्रके वृत्तमध्ये वाच्यौ पुरोदितौ[4]। किङ्करस्य बलिं दद्याद् देव्यग्रे प्रागुदीरितैः।। १९।।
स्वसमानगणाकीर्णमण्डलस्थस्य भक्तितः। एवं पूजां विधायाग्रे जपेद्विद्यां सहस्रकम्।। २०।।
शतं वा कृतहोमस्तु पूजां प्राग्वत् समापयेत्। इति।

अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनादियोगपीठन्यासान्ते त्वरिताविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सौरये ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदि त्वरितानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ओंबीजाय नमः। पादयो हुं शक्तये नमः। नाभौ क्षे कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ओंखेच हृदयाय नमः। चछे शिरसे स्वाहा। छेक्षः शिखायै वषट्। क्षःस्त्री कवचाय हुम्। स्त्रीहूं नेत्रत्रयाय वौषट्। हूंक्षे अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, शिरसि ह्रींओंह्रींनमः। ललाटे ह्रींहुंह्रींनमः। कण्ठे ह्रींखेंह्रींनमः। हृदि, ह्रींचह्रींनमः। नाभौ ह्रींछेंह्रींनमः। मूलाधारे ह्रींक्षःह्रींनमः। ऊरुद्वये ह्रींस्त्रींह्रींनमः। जानुद्वये ह्रींहूंह्रींनमः। जङ्घाद्वये ह्रींक्षेंह्रींनमः। पादद्वये ह्रींफट्ह्रींनमः, इति मायापुटितवर्णान् विन्यस्य समस्तविद्यया व्यापकं विन्यस्य ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पश्चिमादिद्वारयुतं चतुरस्रद्वयं विधाय, तदन्तर्वृत्तद्वयोपेतमष्टदलपद्ममिति पूजाचक्रं विधाय, प्राग्वत्पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेशीपीठमभ्यर्च्य, तत्र मूलविद्यया मूर्तिं कल्पयित्वावाहनादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकान्तः प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, पश्चाद् बहिर्वृत्तत्रयान्तरालस्थवीथीद्वये देव्यग्रदलाग्रबाह्ये फट्कारीपादु०। बाह्यवीथ्यां देव्यग्र एव किङ्करपा०। (द्वारपार्श्वयोः जयापा०, विजयापा०। अष्टपत्रेषु हुंकारीपा०, खेचरीपा०) चण्डापा०, छेदिनीपा०, क्षेपिणीपा०, स्त्रीकारीपा०, हूंकारीपा०, क्षेमकरीपा०, इति सम्पूज्य

१. 'नित्या' ख. पाठः। २. 'वर्वरा कुटिलेत्यर्थः'। ३. 'पराम्' ग. पाठः। ४. 'पुरोदितौ फट्कारीकिङ्करौ'।

प्राग्वल्लोकपालार्चादिसर्वं समापयेदिति। अत्र कुरुकुल्लाबलिदानानन्तरं किङ्करस्यापि देव्यग्रेऽन्नादिभिर्बलिं दद्यात्, इति त्वरितानित्यायजनविधिः।।

अथ कुलसुन्दरीपूजाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे— (१५ प०)

अथ षोडशनित्यासु दशमी या समीरिता। विद्योक्ता कुलसुन्दर्यास्तस्याः पूजाविधिं शृणु।। १ ।।
तद्ध्यानमथ तन्न्यासं तच्छक्तीस्तत्समर्चनम्। इति।

तत्रैव— (३। ५१)

शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो रसावह्निसमन्वितः। प्राणो द्वितीयः स्वयुतो वनहृच्छक्तिभिः परः।। १ ।।
इतीरिता त्र्यक्षरी स्यान्नित्या सा कुलसुन्दरी। इति।

"ऐंक्लींसौः"।। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि विन्यसेत्। छन्दः पङ्क्तिस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य देवताम्।। १ ।।
हृदये परमेशानीं विन्यसेत् कुलसुन्दरीम्। वाग्भवं बीजमित्युक्तं शक्तिस्तार्तीयमीरितम्।। २ ।।
कामबीजं कीलकं स्यात् पुरुषार्थे नियोजितम्। इति।

तन्त्रराजे— (१५। १२)

त्रिभिस्तैरुदितैर्मूलवर्णैः कुर्यात् षडङ्गकम्। आद्यमध्यावसानेषु पूजाजपविधौ क्रमात्।। १ ।।
प्रत्येकं तैस्त्रिभिर्बीजैर्दीर्घस्वरसमन्वितैः[1]। कुर्यात् कराङ्गवक्त्राणां न्यासं प्रोक्तं यथाविधि।। २ ।।
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदक् च पश्चिमापरनामभिः। शुचिनत्यन्तरस्थैस्तैस्तदात्मसु यथाक्रमम्।। ३ ।।
आधाररन्ध्रहृत्स्वेकं द्वितीयं लोचनत्रये। तृतीयं श्रोत्रचिबुके चतुर्थं घ्राणतालुषु ।। ४ ।।
पञ्चमं (त्रा?चां) सनाभीषु तथोरुपाणिपद्द्वये। मूलमध्याग्रतो न्यस्येन्नवधा मूलवर्णकैः।। ५ ।।
लोहितां लोहिताकारशक्तिवृन्दनिषेविताम्। लोहितांशुकभूषास्रग्लेपनां षण्मुखाम्बुजाम्।। ६ ।।
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां तथा चारुस्मितान्विताम्। अनर्घ्यरत्नघटितमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।। ७ ।।
ताटङ्कहारकेयूररशनानूपुरोज्ज्वलाम्। रत्नस्तबकसम्भिन्नलसद्वक्षःस्थलां शुभाम्।। ८ ।।
कारुण्यानन्दपरमामरुणाम्बुजविष्टराम्। भुजैर्द्वादशभिर्युक्तां सर्वेशीं सर्ववाङ्मयीम्।। ९ ।।
प्रवालाक्षस्रजं पद्मं कुण्डिकां रत्ननिर्मिताम्। रत्नपूर्णं तु चषकं लुङ्गीं व्याख्यानमुद्रिकाम्।। १० ।।
दधानां दक्षिणैर्वामैः पुस्तकं चारुणोत्पलम्। हैमीं च लेखनीं रत्नमालां कम्बु वरं भुजैः।। ११ ।।
अभितः स्तूयमानां च देवगन्धर्वकिन्नरैः। यक्षराक्षसदेवर्षिसिद्धविद्याधरादिभिः।। १२ ।।
ध्यात्वैवमर्चयेत् नित्यं वाग्लक्ष्मीकान्तिसिद्धये। सितां केवलवाक्सिद्ध्यै लक्ष्म्यै हेमप्रभामपि।।१३।।
धूमाभां वैरिविद्विष्ट्यै मृतये निग्रहाय च। नीलां च मूकीकरणे स्मरेत्तत्तदपेक्षया।। १४ ।।
भाषा सरस्वती वाणी संस्कृता प्राकृतापरा। बहुरूपा[3] चित्ररूपा रम्या[4]प्यानन्दकौतुके।। १५ ।।

---

१. प्रथमे कूटे दीर्घस्वरयोजनं नाम आँईऊँऐँऔंअः इति केवलदीर्घस्वरषट्कोच्चारणम्। २. 'ततः पाणिपदद्वये' ख.ग.पाठः। ३. ' खड्गरूपा वित्तरूपा' ख. पाठः। ४. 'रमा' ग. पाठः।

एवंमेकादश प्रोक्ता नवयोनिषु पूजयेत्। बहिरष्टच्छदाम्भोजे ब्राह्म्याद्यास्ताः समर्चयेत्॥ १६॥
चतुरस्रे लोकपालान् शक्तिरूपान् समर्चयेत्। इन्द्राग्नियमरक्षोभिर्वरुणानिलसोमकान्॥ १७॥
ईशानन्तविधीन् प्रागाद्यष्टदिक्ष्वधरोत्तरम्। शक्त्यन्तैर्नामभिः प्राग्वत् पूजयेत् सर्वसिद्धये॥ १८॥
चतुरस्रद्वयं कुर्यात् प्राक्प्रत्यग्द्वारसंयुतम्। तन्मध्ये वृत्तयुग्मस्थं कुर्यादष्टच्छदाम्बुजम्॥ १९॥
चतुस्त्रिपञ्चचत्वारि²भागतो नवयोनिकम्। कृत्वात्र तां समावाह्य प्राग्वत् सम्यग्यथार्चयेत्॥ २०॥
एकादशस्वन्तशक्ती मध्ययोनेस्तु पार्श्वयोः। तथैव लोकपालान्तशक्ती द्वारद्वयेऽर्चयेत्॥ २१॥
विशेष (एव?एष) सामान्यमन्यदर्चनमम्बिके। सप्ताक्षर्या बलिं दद्यात् पूजान्ते कुरुकुल्लया॥२२॥
एवं नित्यार्चनं कुर्यान्नित्यहोमं घृतेन वै। इति।

अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदये कुलसुन्दरीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ऐंबीजाय नमः। पादयोः सौः शक्तये नमः। नाभौ क्लीं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा पूजारम्भे जपारम्भे आं हृदयाय नमः। ईं शिरसे स्वाहा। ऊं शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुं। औं नेत्रत्रयाय वौषट्। अः अस्त्राय फट्, इति कराङ्गयोर्विन्यस्य, शिरसि ऐंआं ऊर्ध्ववक्त्राय नमः। मुखे ऐंईं पूर्ववक्त्राय नमः। दक्षकर्णे ऐंऊं दक्षिणवक्त्राय नमः। वामकर्णे ऐंएं उत्तरवक्त्राय नमः। चूडाधः ऐंऔं पश्चिमवक्त्राय नमः। चिबुके ऐंअः अपरवक्त्राय नमः, इति विन्यसेत्। पूजामध्ये त्वावरणपूजारम्भे विद्याया मध्यबीजं षड्दीर्घस्वरैर्भिन्नं कृत्वा क्लांक्लीमित्यादिना न्यसेत्। पूजान्तेऽपि विद्याया अन्त्यबीजं तथैव स्वरभिन्नं कृत्वा सांसीमित्यादिना न्यसेत्। मध्ये जपान्ते च। जपमध्यमुद्दिष्ट-संख्याया अर्धजपानन्तरमिति। अथ प्रकृते प्रथमकूटस्य वक्त्रन्यासानन्तरं भूत्वा (यः) आधारे ऐं। ब्रह्मरन्ध्रे क्लीं। हृदये सौः। दक्षनेत्रे ऐं। वामनेत्रे क्लीं। ललाटनेत्रे सौः। दक्षश्रोत्रे ऐं। वामे क्लीं। चिबुके सौः। दक्षनसि ऐं। वामे क्लीं। तालुनि सौः। दक्षांसे ऐं। वामे क्लीं। नाभौ सौः। दक्षदोर्मूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। वामदोर्मूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। दक्षोरुमूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। वामोरुमूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः, एवं पाणिपादद्वये इति विन्यस्य ततो मूलविद्यया व्यापकं कुर्यात्। पूजाजपमध्यान्तयोरपि मध्यबीजान्त्यबीजाभ्यां वक्त्रन्यासानन्तरं मूलबीजैर्नवविधन्यासं व्यापकस्य न्यासं च कुर्यादिति सम्प्रदायः। ततो ध्यानमानसपूजान्ते प्राग्वत्स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिनाष्टदलपद्मं कृत्वा तत्कर्णिकायां प्राग्वन्नवयोनिचक्रं³ विधाय, पद्माद्बहिर्वृत्तद्वयं तद्बहिः पूर्वपश्चिमद्वारद्वययुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिज्ञानात्मान्ते प्राग्वत् पीठपूजान्तं कृत्वाष्टदलकेसरेषु वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्र्यै०, अम्बिकायै०, इच्छायै०, ज्ञानायै०, क्रियायै०, कुलिकायै०, चित्रायै०, विषघ्न्यै०, दूतर्यै०, आनन्दायै०, इति द्वादशशक्तीः सम्पूज्य, हसौं सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः, इति

---

१. 'एता' ख. पाठः। २. चत्वारीति स्वातन्त्र्योक्तिः। ३. तद्यथा— वृत्तव्यासे प्राक्प्रत्यग्रूपं ब्रह्मसूत्रं कृत्वा तत्षोडशधा विभज्य प्रागादिचतुस्त्रिपञ्चमांशेषु चिह्नानि विधाय, तेषु चिह्नेषु त्रिषु तिर्यक् सूत्रत्रयं वृत्तावसानकं निष्पाद्य, तेषु मध्यमसूत्रस्य दक्षिणोत्तर-वृत्तसन्धिद्वयमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमवृत्तसन्ध्यवधि सूत्रद्वयमास्फाल्य, पश्चिमसूत्रस्य दक्षिणोत्तरवृत्तसन्धिद्वयमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वस्वतृत्तसन्ध्यवधिसूत्रद्वयमास्फाल्य ततः प्राक्सूत्रदक्षिणोत्तरवृत्तसन्धिद्वयमारभ्य पश्चिमसूत्रस्य ब्रह्मसूत्रसन्ध्यवधि सूत्रद्वयमास्फाल्य प्रथमास्फालितं ब्रह्मसूत्रं सम्मार्जयेत्। एवं कृते वृत्तस्पृष्टाष्टास्रकं सुसमं नवयोनिचक्रं निष्पन्नं भवति।

समस्तं पीठं सम्पूज्य, तत्र कुलसुन्दरीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते प्रागुक्तषड्वक्त्रन्यासमन्त्रैर्देव्या वक्त्रषट्कं सम्पूज्यासनादिपूजोपचारान्ते, ततस्त्रिकोणस्याग्रकोणे २ भाषापा०, इति सम्पूज्याष्टयोनिषु देव्यग्रयोनिमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ सरस्वतीपा०, २ वाणीपा०, २ संस्कृतापा०, २ प्राकृतापा०, २ परापा०, २ बहुरूपापा०, २ चित्ररूपापा०, २ रम्यापा०, इत्यष्टौ शक्ती सम्पूज्य, अन्तर्योन्यां देव्याः पृष्ठदक्षिणकोणे आनन्दापा०, तद्वामे कौतुकापा०, इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु प्राग्वद्ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, चतुरस्रे प्राग्वल्लोकपालान् इन्द्रशक्तिपा०, इत्यादि शक्तिरूपान् सम्पूज्य, तदायुधान्यपि तथैव शक्तिरूपाणि सम्पूज्य धूपादिसर्वं कृत्वा प्राग्वत्समापयेत्, इति कुलसुन्दरीनित्यासपर्याविधिः।।

अथ नित्यानित्यायजनविधिः। श्रीतन्त्रराजे— (१६ प०)

अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्तैकादशी तु ताम्। नित्यानित्यां शृणु प्राज्ञे तदायत्तमिदं जगत्।। १।।
विद्योद्धारः कृतः पूर्वं तद्विधानमिहोच्यते। यासौ समस्तभूतानां देहस्थितिविधायिनी।। २।।
न्यासध्यानं ततः शक्तीस्ताभिः पूजां च साधनम्। इति।

तत्रैव — (३। ५३)

हंसश्च हृत्प्राणरसादाहकुर्भिः समन्वितः। विद्यया कुलसुन्दर्या योजितः सम्प्रदायतः।। १।।

इति। "हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः"।। इति। त्रिपुरार्णवे— 'नित्यानित्या तु बाला चे'ति अत्र बालानित्यानित्ययोरभेदात् करषडङ्गार्घ्यादिकं बालाया इव ज्ञेयम्। तन्त्रराजे— (१६। ४)

दीर्घस्वरसमेताभ्यां हंसहृद्भ्यां षडङ्गकम्। भ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिगुह्याधारेषु च क्रमात्।। १।।
विद्याक्षराणि क्रमशो न्यसेद्बिन्दुयुतानि च। व्यापकं तु समस्तेन विधाय विधिना युतम्।। २।।
ध्यायेत्तां सर्वसम्पत्तिहेतोः सर्वात्मिकां शुभाम्[1]। उद्यद्भास्करबिम्बाभां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।।३।।
पद्मरागकृताकल्पामरुणांशुकधारिणीम्। चारुस्मितलसद्वक्त्रषट्सरोजविराजिताम्।। ४।।
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां भुजैर्द्वादशभिर्युताम्। पाशाक्षगुणपुण्ड्रेक्षुचापखेटत्रिशूलकान्।। ५।।
वरं वामैर्दधानां चाप्यङ्कुशं पुस्तकं तथा। पुष्पेषु मण्डलाग्रं[2] च कपालमभयं तथा।। ६।।
दधानां दक्षिणैर्हस्तैर्ध्यायेद् देवीमनन्यधीः। अनन्ताः शक्तयो देव्यास्त्वाकर्णय वदामि ते।। ७।।
ललिताशक्तिवृन्दाश्च बीजद्वयमथो क्रमात्। पूर्णमण्डलवर्णाः स्युरन्ते शक्तीति संयुताः।। ८।।
सप्ताक्षर्या युतां संज्ञा विद्याः स्यु[3]र्द्वादशाक्षराः। षट्सप्तत्या पञ्चशतं यजेत्ताभिर्वृतां शिवाम्।। ९।।
षट्कोणकोणेष्वासीना डाकिन्याद्यास्तथार्चयेत्। रक्षोनिलेन्द्रवह्नीशवरुणेषु क्रमाच्च ताः।। १०।।
डाकिनी राकिणी पश्चाल्लाकिनी काकिनी तथा। शाकिनी हाकिनी मूलदेवीसदृशविग्रहाः।। ११।।
हेतीस्तामभितः शक्तिरूपास्तन्मुकुटानताः। कृतन्यासार्घसङ्कल्पः पूजयेदीरितक्रमात्।। १२।।
सतिलद्वयहोमं तु जपेद्विद्यां यथोदिताम्। षट्कोणाद्बहिरब्जं तु शतार्धैकदलान्वितम्।। १३।।
कृत्वा तेष्वपि ताभिस्तु वृता पूज्या तु मध्यतः। द्विचतुष्षड्दलशतैर्द्वादशाष्टदलच्छदैः।। १४।।
पद्मैरावृतषट्कोणे यजेल्लब्ध्वीरितार्चना। चतुरस्रद्वयं बाह्ये चतुर्द्वारसमन्वितम्।। १५।।

---

१ 'शिवाम्' ख. पाठः। २. 'मण्डलाग्रं खड्गम्'। ३. 'विद्या स्यात्' ग. पाठः।

विधाय तेषु शाखाश्च शक्तीनां विंशतिं यजेत्। ब्राह्म्यादिलोकपालाख्याः षोडशद्वारसंस्थिताः।।१६।।
अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः। इति।

अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वदासनयोगपीठन्यासान्ते नित्यानित्याविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदि नित्यानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ऐंबीजाय नमः। पादयोः ॐशक्तये नमः। नाभौ ईंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्सां हृदयाय नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं शिखायै वषट्। ह्सैं कवचाय हुं। ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, भ्रूमध्ये हंनमः। कण्ठे संनमः। हृदि कंनमः। नाभौ लंनमः। गुह्ये रंनमः। मूलाधारे डंनमः, समस्तविद्यया व्यापकं विधाय "उद्यद्भास्करबिम्बाभा"मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना षट्कोणं विधाय, तन्मध्ये वृत्तं कृत्वा षट्कोणाद्बहिः षोडशदलयुतानि षट्त्रिंशत्पद्मानि, द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्दलयुतानि अष्टादशपद्मानि वा तद्बहिर्विभागेन कृत्वा तद्बहिश्चतुरस्रद्वयं चतुर्द्वारोपेतं कुर्यादिति पूजामण्डलं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते कुलसुन्दरीपीठमभ्यर्च्य मूलेन मूर्तिं परिकल्प्यावाह्यासनादिपुष्पोपचारान्ते पीठमध्ये देवीपरितः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे षट्कोणवृत्तयोरन्तराले प्राग्वद्गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, निर्ऋतिकोणे २ डाकिनीपा०। वायव्ये २ राकिणीपा०। पूर्वकोणे २ लाकिनीपा०। आग्नेये २ काकिनीपा०। ईशाने २ शाकिनीपा०। पश्चिमकोणे २ हाकिनीपा०, इति सम्पूज्य, बहिःषोडशदले देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ अशक्तिपा० इत्यादि षोडशशक्तीः पूजयेत्। एवमन्येष्वपि पञ्च(षट्)त्रिंशद्वर्णशक्तीः प्रतिपद्मं षोडशशक्तीरिति प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णशक्तीः पूजयेत्। अष्टादशपद्मपक्षे तु प्रतिपद्मं द्वात्रिंशत्संख्याकाः प्रोक्तशक्तयः पूज्याः। अथ षट्कोणाद्बहिरेकपञ्चाशद्दलमितं पद्मं विरच्य, तद्दलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनैकपञ्चाशद्वर्णशक्तीः पूजयेत्। यथा— षट्कोणाद्बहिः षोडशदलपद्मं तद्बहिर्द्वादशदलं तद्बहिर्दशदलं तद्बहिः षड्दलं तद्बहिश्चतुर्दलं तद्बहिर्द्विदलमिति पद्मषट्कं निर्माय, तेषु षोडशदलेषु स्वरशक्तीर्द्वादशदलेषु कादिठान्तवर्णशक्तीर्दशदलेषु डादिफान्तवर्णशक्तीः षड्दलेषु बादिलान्तवर्णशक्तीः चतुर्दलेषु वादिसान्तवर्णशक्तीर्द्विदलयोर्हक्षवर्णशक्ती इति पञ्चाशच्छक्तीः पूजयेत्। एवमुत्तममध्यमकनिष्ठपक्षेष्वेकपक्षानुसारेण वर्णशक्तीः सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण इन्द्रादीशानान्तलोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तं कोणचतुष्टये २ अनन्तशक्तिपा०, २ ब्रह्मशक्तिपा०, २ नियतिशक्तिपा०, २ कालशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणान्तवृत्तयोरन्तराले द्वादश स्थानानि परिकल्प्य २ अभयशक्तिपा०, २ कपालशक्तिपा०, २ खड्गशक्तिपा०, २ इषुशक्तिपा०, २ पुस्तकशक्तिपा०, २ अङ्कुशशक्तिपा०, २ पाशशक्तिपा०, २ अक्षगुणशक्तिपा०, २ इक्षुचापशक्तिपा०, २ खेटकशक्तिपा०, २ त्रिशूलशक्तिपा०, २ वरशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, पुनर्मध्ये देवीं तद्विद्ययाभ्यर्च्य धूपादि सर्वं कृत्वा समापयेत्, इति नित्यानित्यायजनविधिः।।

अथ नीलपताकार्चाविधिः।। श्रीतन्त्रराजे— (१७ प०)
अथ षोडशनित्यासु द्वादशी या समीरिता। तस्या नीलपताकाया विधानं सर्वसिद्धिदम्।। १।।
न्यासक्रमविधानं च ध्यानं शक्तीः प्रपूजनम्। इति।

तत्रैव — (३। ५६)
त्वरितोपान्त्यमाद्यं स्याद् द्युतिर्दाहचरस्वयुक्। हृच्च दाहक्ष्मास्वयुतं (वज्रेशीपञ्चमं ततः।। १।।

मरुत् स्वयुक्तो मध्याद्ये दशम्याः क्रमशः स्मृते। भूमी रसाक्ष्मास्वयुता) वज्रेशी पष्ठतः क्रमात्।। २।।
षडक्षराणि त्वरितातृतीयं तदनन्तरम्। द्युतिर्दाहचरस्वेन अस्या आद्यमनन्तरम्।। ३।।
उक्ता नीलपताकाख्या नित्या सप्तदशाक्षरी।

"ह्रींफ्रेंस्रूंओंआंक्लींऐंब्लूंनित्यमदद्रवेहुंफ्रेंह्रीं" इति। त्रिपुरार्णवे—

"ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः। नित्या नीलपताकाख्या ह्रीबीजं ह्रींच शक्तिकम्।।१।।
कामबीजं कीलकं स्या"दिति।। श्रीतन्त्रराजे— (१७। ५)

मूलविद्याक्षरैरङ्गान्याचरेत् षडपि क्रमात्। द्विचतुष्टयषट्त्र्यर्णैः क्रमेण षडितीरितैः ।। १।।
श्रोत्राक्षिनासायुगले वाचि कण्ठे हृदि क्रमात्। नाभावाधारके पादसन्धिषु त्रिषु च क्रमात्।। २।।
मन्त्राक्षराणि क्रमशो न्यसेत् सप्तदशापि च। व्यापकं च समस्तेन विदध्याच्च यथाविधि।। ३।।
इन्द्रनीलनिभां भास्वन्मणिमौलिविराजिताम्। पञ्चवक्त्रां त्रिनयनामरुणांशुकधारिणीम् ।। ४।।
दशहस्तां लसन्मुक्ताप्रायाभरणभूषिताम्। रत्नस्तबकसम्भिन्नदेहां चारुस्मिताननाम् ।। ५।।
पाशं पताकां चर्मापि शार्ङ्गचापं वरं करैः। दधानां वामपार्श्वस्थैः सर्वाभरणभूषितैः।। ६।।
अङ्कुशं च ततः शक्तिं खड्गं बाणं तथाभयम्। दधानां दक्षिणैर्हस्तैरासीनां पद्मविष्टरे।। ७।।
स्वाकारवर्णवेषास्यपाण्यायुधविभूषणैः। शक्तिवृन्दैर्वृतां ध्याये द्देवीं नित्यार्चनक्रमे ।। ८।।
त्रिषट्कोणयुतं पद्ममष्टपत्रं ततो बहिः। द्व्य(अ)ष्टारं भूपुरद्वन्द्वाद् वृत्ते तत्पुरयुग्मकम्।। ९।।
चतुर्द्वारयुतं दिक्षु शाखाभिश्च समन्वितम्। कृत्वा तामावृतां शक्तिगणैस्तत्रार्चयेच्छिवाम्।। १०।।
(इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्। अग्रात् प्रदक्षिणेनैव यजेदावृत्तिपञ्चकम्[१])।। ११।।
डाकिन्याद्या यजेत् षट्सु कोणेषु परितः क्रमात्। ब्राह्म्यादीरष्टपत्रेषु तत्कोणेषु बहिस्तथा।। १२।।
प्रागुक्तास्ता यजेच्छक्तीर्नित्यानित्यादिषूदिताः। बलिद्वयं च कुर्वीत पूजां प्राग्वत् समापयेत्।।१३।।
सर्वत्र नित्यहोमं तु कुर्यादन्नाज्यतोऽपि वा। तिलतण्डुलकैर्वापि प्रोक्तं द्रव्यानुदीरिते[२]।। १४।।

इति।। अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते नीलपताकाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये नीलपताकानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयोः ह्रींशक्तये नमः। नाभौ क्लींकीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रींफ्रें हृदयाय नमः। स्रूंओंआंक्लीं शिरसे स्वाहा। ऐंब्लूंनित्यमदशिखायै वषट्। द्रकवचाय हुं। वेनेत्रत्रयाय वौषट्। हुंअस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षकर्णे ह्रींनमः। वामे फ्रेंनमः। दक्षनेत्रे स्रूंनमः। वामे ओंनमः। दक्षनसि आंनमः। वामे क्लींनमः। मुखे ऐंनमः। कण्ठे ब्लूंनमः। हृदि निंनमः। नाभौ त्यंनमः। मूलाधारे मंनमः। दक्षोरुमूले दंनमः। जानुनि द्रंनमः। गुल्फसन्धौ वेंनमः। वामोरुमूले हुंनमः। जानुनि फ्रेंनमः। गुल्फसन्धौ ह्रींनमः, इति विन्यस्य मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्वृत्तद्वयं तदन्तरष्टदलकमलं तदन्तः षट्कोणं तदन्तस्त्रिकोणमिति, पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते

---

१ 'बन्धचिह्नान्तर्गतं क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति। २. 'रणे' ख. पाठः।

भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र नीलपताकाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते त्रिकोणाभ्यन्तरे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले प्राग्वद् गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले २ अभयाय नमः। २ बाणाय नमः। २ खड्गाय नमः। २ शक्तये नमः। २ अङ्कुशाय नमः। २ पाशाय नमः। २ पताकायै नमः। २ चर्मणे नमः। २ शार्ङ्गचापाय नमः। २ वराय नमः, इति सम्पूज्य, त्रिकोणस्याग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन २ इच्छाशक्तिपा०। २ ज्ञानशक्तिपा०। २ क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्य षट्कोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन २ हाकिनीपा०, एवं शाकिनी०। काकिनी० लाकिनी० राकिणी० डाकिनी० इत्यादि सम्पूज्याष्टदलेक्षु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ब्राह्मीपादु०, एवमष्ट मातृकाः सम्पूज्याष्टकोणेषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन (२ सुसुखीपा०) २ सुन्दरीपा०, २ सारापा०, २ सुमनापा०, २ सरस्वतीपा०, २ समयापा०, २ सर्वगापा०, २ सिद्धापा०, इति सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ विह्वलापा०। २ आकर्षिणीपा०। २ लोलापा०। २ नित्यापा०। २ मदनापा०। २ मालिनीपा०। २ विनोदापा०। २ कौतुकापा०। २ पुण्यापा०। २ पुराणापा०, इति सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेणेन्द्रादीशानपर्यन्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्याग्नेयादिकोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्य, वज्रादीन्यायुधानि प्राग्वच्छक्तिरूपाणि सम्पूज्य पुनर्मध्ये नीलपताकानित्यां तद्विद्ययाभ्यर्च्य धूपादि सर्वं प्राग्वत् कल्पयेत्, इति नीलपताकानित्यापूजाविधिः।

अथ विजयानित्यार्चाविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१८ प०)

अथ षोडशनित्यासु सम्प्रोक्ता या त्रयोदशी। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे विद्या प्रागुदिता तव॥ १॥
तदङ्गान्यक्षरन्यासं ध्यानार्चा[1]स्यास्तु शक्तिभिः॥ इति।

तत्रैव – (३। ६१)

रसो नभस्तथा दाहो व्याप्तं क्ष्मा वनपूर्विका। स्वेन युक्ता भवेन्नित्या विजयैकाक्षरा मता॥ १॥
"भमरयउऔं" इति। त्रिपुरार्णवे– "ऋषिरस्या अहिश्छन्दो गायत्री देवता स्वयम्"। इति। स्वयं विजया।

तन्त्रराजे – (१८। ३)

विद्याया व्यञ्जनैर्दीर्घस्वरयुक्तैश्चतुष्टयम्। शेषाभ्यां च द्वयं कुर्यात् षडङ्गानि कराङ्गयोः॥ १॥
ज्ञानेन्द्रियेषु श्रोत्रादिष्वपि चित्तेषु विन्यसेत्। अक्षराणि क्रमाद्बिन्दुयुतान्यन्यत्तु पूर्ववत्॥ २॥
पञ्चवक्त्रां दशभुजां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्। भास्वन्मुकुटविन्यस्तचन्द्ररेखाविराजिताम्॥ ३॥
सर्वाभरणसंयुक्तां पीताम्बरसमुज्ज्वलाम्। उद्यद्भास्वद्बिम्बतुल्यदेहकान्तिं शुचिस्मिताम्॥ ४॥
शङ्खं पाशं खेटचापौ कह्लारं वामबाहुभिः। चक्रं तथाङ्कुशं खड्गं सायकं मातुलुङ्गकम्॥। ५॥
दधानां दक्षिणैर्हस्तैः प्रयोगे भीमदर्शनाम्। (उपासनेऽतिसौम्यां च सिंहोपरि कृतासनाम्)॥ ६॥
व्याघ्रारूढाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। समरे पूजनेऽन्येषु प्रयोगेषु सुखासनाम्॥ ७॥
शक्तयश्चापि पूजायां सुखासनसमन्विताः। सर्वा देव्याः समाकारमुखपाण्यायुधा अपि॥ ८॥
चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारोपशोभितम्। शाखाष्टकसमोपेतं तत्र प्राग्वत् समर्चयेत्॥ ९॥

---

१. 'ध्यानार्चे' ख. पाठः।

तदन्तर्वृत्तयुग्मान्तरष्टकोणं विधाय तत्। तदन्तश्च तथा पद्मं षोडशच्छदसंयुतम् ॥ १०॥
तथैवाष्टच्छदं पद्मं विधायावाह्य तत्र ताम्। तत्तच्छक्त्यावृतां सम्यगुपचारैस्तथार्चयेत्॥ ११॥
अन्नाज्याभ्यां नित्यहोमं कुर्याद्वा तिलतण्डुलैः। बलिद्वयं प्रकुर्वीत पूजां चापि समापयेत्॥ १२॥
ललितारहिताः पञ्चदशनित्यास्तिथीश्वराः। चन्द्रखण्डलसन्मौलियुताः सा तन्मयी सदा॥ १३॥

इति। अत्र कामेश्वर्यादिपञ्चदशनित्यानां वृद्धिक्षयोपेतचन्द्रकलापञ्चदशकरूपपञ्चदशतिथिमयत्वाच्च तासां चन्द्रकलाधारणत्वम्, ललितायास्तु तासां कलानां कारणभूताक्षयेन्दुकलारूपत्वात् तस्यास्तद्धारणं नास्ति।

तथा—

मायासप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरर्चयेत्। तदावरणगाः शक्तीस्तत्समाकारहेतिकाः ॥ १४॥
अग्रात्प्रदक्षिणेनैव ताः सर्वास्तेषु पूजयेत्। तासां क्रमेण नामानि शृणु वक्ष्ये यथाविधि॥ १५॥
नित्यानित्यावदुदितमर्चनं चतुरस्रके। ब्राह्म्यादिलोकपालाश्च षोडशद्वारसंस्थिताः[1]॥ १६॥
(अन्तःस्थिताष्टकोणेषु पूजयेदुक्तविग्रहाः। जयां च विजयां दुर्गां भद्रां भद्रकरीमपि॥ १७॥
क्षेमां क्षेमङ्करीं नित्यामष्टकोणेषु भक्तितः)। तदन्तः षोडशदलेष्वर्चयेत् षोडशाभितः॥ १८॥
शक्तीस्ता गन्धपुष्पादियुतो भक्तिसमन्वितः। विदारिकां विश्वमयीं विश्वां विश्वविभञ्जिकाम्॥ १९॥
वीरां विक्षोभिणीं विद्यां विनोदाश्चितविग्रहाम्। वीतशोकां विषग्रीवां विपुलां विजयप्रदाम्॥ २०॥
विभवां विविधां विप्रां प्रोक्ताकारसमन्विताः। तदन्तरष्टपत्रेषु शक्तीरष्टाभितो यजेत्॥ २१॥
प्रोक्तक्रमेण गन्धाद्यैर्भक्तिनिघ्नाशयो वशी। मनोहरां मङ्गलां च मदोत्सिक्तां मनस्विनीम्॥ २२॥
मानिनीं मधुरां मायां मोहिनीमुक्तविग्रहाः। एवं पूजाजपध्यानहोमोपासनतो वशी॥ २३॥
भजते नित्यशो देवीं योऽसौ स्यात् सर्वतः सुखी। इति।

अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते विजयाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि अहिर्बुध्न्यऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि विजयानित्यादेवतायै नमः, इति विन्यस्य भां हृदयाय नमः। मीं शिरसे स्वाहा। रूं शिखायै वषट्। यैं कवचाय हुं। उं नेत्रत्रयाय वौषट्। औं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, श्रोत्रयोः भंनमः। सर्वाङ्गे मंनमः। नेत्रयोः रंनमः। जिह्वायां यंनमः। नासायां उंनमः। चित्ते औंनमः, इति विन्यस्य प्राग्वद्विजयाविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं विधाय, तदन्तर्वृत्तयुग्मं तदन्तरष्टकोणं तदन्तः षोडशदलं पद्मं तदन्तरष्टदलपद्ममिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद्भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तस्मिन् विजयाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य तद्वामपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेणेन्द्रादीशानान्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तकोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्याष्टकोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ जयापा०, २ विजयापा०, २ दुर्गापा०, २ भद्रापा०, २ भद्रकंरीपा०, २ क्षेमापा०, २ क्षेमङ्करीपा०, २ नित्यापा०, इति सम्पूज्य, षोडशदलेषु २ विदारिकापा०, २ विश्वमयीपा०, २ विश्वापा०, २

१. 'इदं पद्यार्धं ख. पुस्तके नास्ति।

विश्वभञ्जिकापा०, २ वीरापा०, २ विक्षोभिणीपा०, २ विद्यापा०, २ विनोदापा०, २ अञ्चितविग्रहापा०, २ वीतशोकापा०, २ विषग्रीवापा०, २ विपुलापा०, २ विजयप्रदापा०, २ विभवापा०, २ विविधापा०, २ विप्रापा०, इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु २ मनोहरापा०, २ मङ्गलापा०, २ मदोत्सिक्तापा०, २ मनस्विनीपा०, २ मानिनीपा०, २ मधुरापा०, २ मायापा०, २ मोहिनीपा०, इति सम्पूज्याष्टदलकमलकर्णिकायां २ मातुलुङ्गाय नमः। २ सायकेभ्यो नमः। २ खड्गाय नमः। २ अङ्कुशाय नमः। २ चक्राय नमः। २ शङ्खाय नमः। २ पाशाय नमः। २ खेटाय नमः। २ चापाय नमः। २ कह्लाराय नमः, इति सम्पूज्य, पुनर्मध्ये विजयानित्यां तद्विद्यया सम्पूज्य धूपादि सर्वं प्राग्वत् समापयेत्, इति विजयानित्यापूजाविधिः॥

अथ सर्वमङ्गलासपर्याविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे— (१९ प०)

अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्ता तु चतुर्दशी। एकाक्षरा तु सा प्रोक्ता विद्या सा सर्वमङ्गला॥ १॥

न्यासक्रमं ध्यानविधिं शक्तीरावरणस्थिताः। पूजाक्रमं साधनं च विनियोगादिकान् क्रमात्॥ २॥

इति। तत्रैव — (३। ६३)

हृदम्बुवनयुक्तं स्वं नित्या स्यात् सर्वमङ्गला। एकाक्षर्यानया सिद्धो जायते खेचरः क्षणात्॥ १॥

"स्वौं" इति। त्रिपुरार्णवे— "ऋषिश्चन्द्रो महेशानि गायत्री छन्द उच्यते। देवतेय"मिति। इयं सर्वमङ्गला। तन्त्रराजे—(१९।३)

मूलविद्याक्षरैर्दीर्घस्वरभिन्नैः षडङ्गकम्। तानि तत्स्वरभिन्नानि तानि षट्सु[1] मनोवधि॥ १॥

सुवर्णवर्णां रुचिरां मुक्तामाणिक्यभूषणाम्। माणिक्यमुकुटां नेत्रद्वयप्रेङ्खद्दयापराम्[2]॥ २॥

द्विभुजां स्वासनां पद्मे त्वष्टषोडशतद्द्वयैः। पत्ररूपेते सचतुर्द्वारभूसद्मयुग्मके॥ ३॥

मातुलुङ्गफलं दक्षे दधानां करपङ्कजे। वामेन निजभक्तानां प्रयच्छन्तीं धनादिकम्॥ ४॥

स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। षट्सप्ततिभिरन्याभिरक्षरोत्थाभिरन्विताम्॥ ५॥

प्रयोगेष्वन्यदा नित्यसपर्यासूक्तशक्तिकाम्। ताः शक्तीः शृणु देवेशि या नित्यावरणस्थिताः॥ ६॥

भद्रां भवानीं भव्यां च विशालाक्षीं शुचिस्मिताम्[3]। कुङ्कुमां[4] कमलां कल्पां पूजयेदष्टपत्रके॥ ७॥

कलां च पूरणीं नित्याममृतां जीवितां दयाम्। अशोकाममलां पूर्णां पुण्यां भाग्यामथोद्यताम्॥ ८॥

विवेकां विभवां विश्वां विनतां चाष्टयुग्मके। पूजयेदभितः शक्तीः प्रादक्षिण्यक्रमेण वै॥ ९॥

कामिनीं खेचरीं चार्यां[5] पुराणां परमेश्वरीम्। गौरीं शिवाममेयां च विमलां विजयां पराम्॥ १०॥

पवित्रां पद्मिनीं विद्यां[6] विश्वेशीं शिववल्लभाम्। अशेषरूपामानन्दामम्बुजाक्षीमनिन्दिताम्॥ ११॥

वरदां वाक्प्रदां वाणीं विविधां वेदविग्रहाम्। वन्द्यां वागीश्वरीं सत्यां सं(ज्ञा?य)तां[7] च सरस्वतीम्॥ १२॥

निर्मलां नादरूपां च पूजयेत् षोडशद्वये। प्राग्वद्रन्ध्रादिभिः सर्वाः क्रमादन्वर्थसंज्ञिताः॥ १३॥

ब्राह्म्याद्या लोकपालाख्याः शक्तीर्द्वारेषु पूजयेत्। पश्चिमादिचतुर्दिक्षु चतस्रः प्रोक्तविग्रहाः॥ १४॥

---

१. 'स्वेषु' ख. पाठः। स्वेषु श्रोत्रादिषु ज्ञानेन्द्रियेषु पञ्चसु नमः षष्ठेष्वित्यर्थः। २. 'भराम्' ख. पाठः। ३. 'सुविस्मिताम्' ख.पाठः। ४. 'करुणां' ख. पाठः। ५. 'सर्वाम्' ख. पाठः। ६. 'दिव्याम्' ख. पाठः। ७. 'विद्यां सन्ध्यां संयातां' ख. पाठः।

अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः। बलिद्वयं च होमं च कुर्यात् प्राग्वत् समापनम्।। १५।।
जपं तु नित्यशः कुर्यादग्रे तस्याः सहस्रकम्। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते सर्वमङ्गलाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि चन्द्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि सर्वमङ्गलानित्यादेवतायै नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, स्वां हृदयाय नमः। स्वीं शिरसे स्वाहा। स्वूं शिखायै वषट्। स्वैं कवचाय हुं। स्वौं नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, श्रोत्रयोः स्वांनमः। सर्वाङ्गे स्वींनमः। नेत्रयोः स्वूंनमः। जिह्वायां स्वैंनमः। नासायां स्वौंनमः। मनसि स्वः नमः, इति विन्यस्य समस्तविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्द्वात्रिंशद्दलं तदन्तः षोडशदलं तदन्तरष्टदलमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्याद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठे सर्वमङ्गलाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्या-वाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, कर्णिकायां देव्या दक्षिणवामयोः बीजपूराय नमः। खड्गाय नमः, इति सम्पूज्याष्टदलेषु २ भद्रापा०, २ भवानीपा०, २ भव्यापा०, २ विशालाक्षीपा०, २ शुचिस्मितापा०, २ कुङ्कुमापा०, २ कमलापा०, २ कल्पापा०, २ इति सम्पूज्य, षोडशपत्रेषु २ कलापा०, २ पूरणीपा०, २ नित्यापा०, २ अमृतापा०, २ जीवितापा०, २ दयापा०, २ अशोकापा०, २ अमलापा०, २ पूर्णापा०, २ पुण्यापा०, २ भाग्यापा०, २ उद्यतापा०, २ विवेकापा०, २ विभवापा०, २ विश्वापा०, २ विनतापा०, इति सम्पूज्य, द्वात्रिंशद्दलेषु २ कामिनीपा०, २ खेचरीपा०, २ आर्यापा०, २ पुराणापा०, २ परमेश्वरीपा०, २ गौरीपा०, २ शिवापा०, २ अमेयापा०, २ विमलापा०, २ विजयापा०, २ परापा०, २ पवित्रापा०, २ पद्मिनीपा०, २ विद्यापा०, २ विश्वेशीपा०, २ शिववल्लभापा०, २ अशेषरूपापा०, २ आनन्दापा०, २ अम्बुजाक्षीपा०, २ अनिन्दितापा०, २ वरदापा०, २ वाक्प्रदापा०, २ वाणीपा०, २ विविधापा०, २ वेदविग्रहापा०, २ वन्द्यापा०, २ वागीश्वरीपा०, २ सत्यापा०, २ संयतापा०, २ सरस्वतीपा०, २ निर्मलापा०, २ नादरूपापा०, इति सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य तत्तद्द्वारपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य पूर्वादिक्रमेणेन्द्रादीशानान्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तं कोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्य, पुनर्मध्ये सर्वमङ्गलाविद्यया देवीं सम्पूज्य प्राग्वत् समापयेत्, इति सर्वमङ्गलानित्यापूजाविधिः।।

अथ ज्वालामालिनीनित्यापूजाविधिः।। श्रीतन्त्रराजे — (२० व०)

अथ षोडशनित्यासु पञ्चदश्युदिता तु या। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे ज्वालामालिन्युदाहृता।। १ ।।
न्यासं ध्यानं तथा शक्तीः पूजामपि च साधनम्। इति।

तत्रैव— (३। ६४)

भूःशून्ये नभसा भूश्च रसश्चाथ स्थिराम्बु च। रयोऽग्निना युतो ज्याम्बु मरुद्युक्ता रसा मरुत्।। १ ।।
नभश्च मरुता युक्तं रसाशून्येऽग्निसंयुते। गोत्रा चरेण सहिता अम्बु पूर्वाक्षरं तथा।। २ ।।
अम्ब्वग्नी हृत् सदाहाम्बु रसक्ष्मारयहृत्स्वयुक्। हंसश्च मरुता दाहः प्राणश्च मरुता युतः।। ३ ।।
दाहः साग्निः प्राणचरौ ज्या मरुत्सहिता रयः। चरेणाम्बु च गोत्रा हृत्साग्नि ज्याम्बुरसा स्वयुक्।।४।।

रयः साग्नि ज्याम्बु रसा पुनरेतौ जवी ततः। दाहेनानेन ते द्विः स्यात् हंसो दाहमरुत्स्वयुक्।।५।।
हंसश्च दाहवह्निस्वैर्दाहक्ष्मास्वयुतश्च सः। सप्त दाहास्ततोऽस्याः स्युरष्टमाद्यास्तु पञ्च वै।। ६।।
उपान्त्याधःस्थितं नीलपताकाया अनन्तरम्। त्वरितान्त्यं च भेरुण्डा अष्टमं नवमं तथा।। ७।।
ज्वालामाला[1] तु नित्यासौ त्रिषष्ट्यर्णा समीरिता। इति।।

"ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रांह्रींह्रूं रररररर ज्वालामालिनि हुंफट्[2] स्वाहा" इति।। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिस्तु कश्यपश्छन्दो गायत्रं देवता त्वियम्। रेफास्त्रे बीजशक्ती तु कीलकं कवचं प्रिये।। १।।

इति। इयं ज्वालामालिनी।। तन्त्रराजे — (२०। ३)

एकद्वयचतुष्पञ्चचतुष्टयदशाक्षरैः। कुर्यादङ्गानि मूलार्णैरादितः षट् कराङ्गयोः ।। १।।
ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। षड्वक्त्रां द्वादशभुजां सर्वाभरणभूषिताम्।। २।।
पाशाङ्कुशौ खेटखड्गौ चापबाणौ गदादरौ। शूलवह्नी वराभीती दधानां करपङ्कजैः।। ३।।
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। चारुस्मितलसद्वक्त्रसरोजां त्रीक्षणान्विताम्।। ४।।
ध्यात्वैवमुपचारैस्तैरर्चयेत्तां तु नित्यशः। चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम्।। ५।।
सशाखमष्टपत्त्राब्जमन्तरष्टास्रके[3] ततः। षट्कोणं मध्यतस्त्र्यस्रं विधायात्र शिवां यजेत्।। ६।।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीरर्चयेत् त्र्यस्रगाः क्रमात्। डाकिन्याद्याश्च षट्कोणे त्वष्टास्रे घस्मरादिकाः।।७।।
घस्मरा विश्वकवला लोलाक्षी लोलजिह्विका। सर्वभक्षा सहस्राक्षी निःसङ्गा संहृतिप्रिया।। ८।।
बहिरष्टच्छदेऽप्येताः[4] पूजयेच्च प्रदक्षिणम्। अचिन्त्यामप्रमेयां च पूर्णरूपां दुरासदाम्।। ९।।
सर्वां [5]संसिद्धिरूपां च पावनामेकरूपिणीम्। बहिर्द्वारेषु कोणेषु पूजयेत् प्रागुदीरिताः।। १०।।
प्राग्वत् कृतार्चश्चक्रे तामुक्ते प्रोक्तक्रमाद्यजेत्। बलिहोमावसानान्तमिति सम्यक् समीरितम्।। ११।।

इति।। अथ प्रयोगः— तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते ज्वालामालिनीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि कश्यपाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि ज्वालामालिनीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये रं बीजाय नमः। पादयोः फट्शक्तये नमः। नाभौ हुं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ओं हृदयाय नमः। नमः शिरसे स्वाहा। भगवति शिखायै वषट्। ज्वालामालिनि कवचाय हुं। देवदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्। भूतसंहारकारिके अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा मूलेन व्यापकं विन्यस्य ध्यात्वा, मानसपूजान्ते स्वपुरतश्चन्दनादिना पूजायन्त्रं विलिख्य, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, मूलेन मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादि-पुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले २ अभीत्यै नमः। २ वह्नये नमः। २ शङ्खाय नमः। २ बाणेभ्यो नमः। २ खड्गाय नमः। २ अङ्कुशाय नमः। २ पाशाय नमः। २ खेटाय नमः। २ चापाय नमः। २ गदायै नमः। २ शूलाय नमः। २ वराय नमः, इति सम्पूज्य, त्रिकोणे २, इच्छाशक्तिपा०, २ ज्ञानशक्तिपा०, २ क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणेषु देव्या वामाग्रकोणे २ डाकिनीपा०। दक्षिणाग्रकोणे २

---

१. 'लिनिनित्या' ख. पाठः। २. 'हुह्रींस्वाहा' ग.पाठः। ३. 'कं' ख.पाठः। ४. 'देष्वेताः' ख. पाठः। ५.'सर्वगां सिद्धि' ख.पाठः।

राकिणीपा०। पृष्ठकोणे २ लाकिनीपा०। पृष्ठवामकोणे २ काकिनीपा०। पृष्ठदक्षे २ शाकिनीपा०। अग्रकोणे २ हाकिनीपा० इति सम्पूज्य, अष्टकोणेषु २ घस्मरापा०। २ विश्वकवलापा०। २ लोलाक्षीपा०। २ लोलजिह्विकापा०। २ सर्वभक्षापा०। २ सहस्राक्षीपा०। २ निःसङ्गापा०। २ संहृतिप्रियापा०। इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु—२ अचिन्त्यापा०, २ अप्रमेयापा०, २ पूर्णरूपापा०, २ दुरासदापा०, २ सर्वापा०, २ संसिद्धिरूपापा०, २ पावनापा०, २ एकरूपिणीपा०, इति सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य तद्द्वारपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, पुनर्ज्वालामालिनीविद्यया मध्ये तां सम्पूज्य धूपादिकं सर्वं प्राग्वत् कृत्वा समापयेत्, इति ज्वालामालिनीनित्यायजनविधिः।।

अथ चित्रानित्यायजनविधिः। श्रीतन्त्रराजे— (२१ प०)

अथ षोडशनित्यासु या चित्रा षोडशी शिवे। प्रोक्ता तत्कल्पमधुना शृणु सर्वार्थसिद्धिदम्।। १।।

विद्या प्रागेव कथिता तदङ्गन्याससंयुतम्। ध्यानं शक्तीः पूजनं च............................।। २।।

इति। तत्रैव— (३। ७२) "वायुप्राणवनस्वैः सा चित्रा स्यादक्षरद्वया"। इति। "चकौं"।। त्रिपुरार्णवे— "ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते। विचित्रा देवते"ति।। तन्त्रराजे — (२१। ४)

विद्यादिवायुना कुर्याद् दीर्घस्वरयुजा क्रमात्। षडङ्गानि यथापूर्वं मातृकां विद्यया न्यसेत्।। १।।

उद्यदादित्यबिम्बाभां स्वर्णरत्नविभूषणाम्। नवरत्नकिरीटां च चित्रपट्टांशुकोज्ज्वलाम्।। २।।

चतुर्भुजां त्रिनयनां शुचिस्मितलसन्मुखीम्। सर्वानन्दमयीं नित्यां समस्तेप्सितदायिनीम्।। ३।।

चतुर्भिश्च भुजैः पाशमङ्कुशं वरदाभये। दधानां मङ्गलपद्मकर्णिकानवयोनिगाम् ।। ४।।

तच्छक्तिभिश्च तच्चक्रे तथैवार्चनमीरितम्। नवयोनावष्टवर्गयुता ब्राह्म्यादिका यजेत् ।। ५।।

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीरर्चयेन्मध्यकोणतः। हेतीश्च परितो देव्याः पूजयेत् तद्भुजान्तिके।। ६।।

सर्वासामपि नित्यानां नाथान् देव्यास्तु पश्चिमे। पूजयेत् तत्तदाकारांस्तत्तन्मन्त्रैर्यथाविधि ।। ७।।

गुरुमण्डलपूजादि साधारणमुदीरितम्। सर्वासामपि नित्यानां यदाद्यास्पदगा[2] इमाः ।। ८।।

इति।। अथ प्रयोगः— तत्र योगपीठन्यासान्ते चित्राविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि चित्रादेवतायै नमः, इति विन्यस्य, चां हृदयाय नमः। चीं शिरसे स्वाहा। चूं शिखायै वषट्। चैं कवचाय हुं। चौं नेत्राभ्यां वौषट्। चः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, चकौं अंनम इत्यादि चकौं क्षंनम इत्यन्तं मातृकां विन्यस्य ध्यानमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्द्वात्रिंशद्दलं पद्मं तदन्तरष्टदलं पद्मं तदन्तर्नवयोनिमिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य तस्मिंश्चित्राविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्तं प्राग्वत् त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तराले गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तरालेष्वेव दक्षिणवामयोश्चतुर्षु स्थानेषु २ अभयाय नमः, २ अङ्कुशाय नमः, ३ पाशाय नमः, २ वराय नमः, इति सम्पूज्यान्तस्त्रिकोणे देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनेच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः सम्पूज्याष्टयोनिषु २ अं १६ ब्राह्मीपा०। २ कं ५ माहेश्वरीपा०। २ चं ५ कौमारीपा०। २ टं ५ वैष्णवीपा०। २ तं ५ वाराहीपा०। २

---

१. 'नव' ख. पाठः। २. 'स्यन्दजाः' ख. पाठः।

पं ५ इन्द्राणीपा०। २ यं ४ चामुण्डापा०। २ शं ५ महालक्ष्मीपा०। अष्टदलादिषु सर्वमङ्गलापूजोक्तशक्तीः सम्पूज्य तथैव[1] सर्वे समापयेत्, इति चित्रानित्यापूजाविधिः॥

अथ कुरुकुल्लासपर्याविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे– (२० प०)

अथ षोडशनित्यानां या प्रोक्ता बलिदेवता। सा विद्या कुरुकुल्लायाः पञ्चविंशाक्षरो मनुः[2]॥ १॥

इति॥ तत्रैव– (३। ८९)

प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनराद्यं रसे मरुत्। व्याप्तं मरुच्छक्तियुक्तं भूः स्वयुक्ता ततस्त्रयम्॥ १॥

अस्यादौ तु रसायुग्मं चरेण समयोजितम्। दाहेन वह्निशक्तिभ्यां युतो हंसस्ततः परम्॥ २॥

नभो द्विर्हृत्सदाहाम्बु ज्या शून्यं स्वेन संयुतम्। अम्बु पश्चाद्वियद्युक्तं मरुता तु नभः प्रिये॥ ३॥

शून्यं व्याप्तं भुवा हंसः पूर्वान्त्यौ स्यान्मनुत्रयम्। अस्य षष्ठादिपञ्चार्णादन्त्यौ स्यादाद्य ईरितः॥४॥

एकादशाक्षरादन्त्यौ द्वितीयः समुदीरितः। तृतीयः पञ्चविंशार्णः प्रोक्ता मन्त्रा इति क्रमात्॥ ५॥

"ओंकुरुकुल्ले स्वाहा" इति सप्ताक्षरी॥ १॥ "कुरुकुल्लायाः ओंकुरुकुल्लेह्रीः स्वाहा" इति त्रयोदशाक्षरी॥ २॥ "कुरुकुल्लायाः ओंकुरुकुल्लेह्रीः मम सर्वजनं वशमानय ह्रीं स्वाहा" इति पञ्चविंशाक्षरी॥ ३॥ इति। तत्रैव– (२२।२)

सैव त्रिखण्डा तत्रैव प्रोक्ता विद्या तु संख्यया। सप्तभिः प्रथमा प्रोक्ता त्रयोदशयुता परा॥ १॥

तृतीया तु पञ्चविंशदक्षरा परिकीर्तिता[2]। एवं सा त्रिभिरप्येतैर्विद्यारूपैरभीष्टदा॥ २॥

इति। त्रिपुरार्णवे– "ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम्। देवता कुरुकुल्ला" इति॥ तन्त्रराजे–(२२। ४)

इक्षिवराघृतदुग्धाब्धिमध्यगे नवरत्नके। द्वीपे तां ललितां नित्यविनोदानन्दितां यजेत्॥ १॥

तत्तीरे पूजयेद् देवीं पञ्चमीं तीरपालिकाम्। तत्सागरेषु परितोरत्नपोतचरीं यजेत्॥ २॥

तदाज्ञया रत्नपोतं तन्नाम्नैव समर्चयेत्। बलिचक्रं च तेनैव तन्मध्ये तु समर्चयेत्॥ ३॥

पूर्वपश्चिमदिग्द्वारसंयुतं चतुरस्रकम्। कृत्वा तदन्तः पद्मं च साष्टपत्रं सकर्णिकम्॥ ४॥

कर्णिकायां चारु कृत्वा नवयोनिं समर्चयेत्। षडङ्गं बालया कृत्वा तेनार्घ्यमपि साधयेत्॥ ५॥

त्रिखण्डामुद्रया मूलमन्त्रेणाद्येन चावहेत्। ध्यात्वैवं परिचारैस्तां देवीं गन्धादिभिः क्रमात्॥ ६॥

विकीर्णकुन्तलां नग्नां रक्तामानन्दविग्रहाम्। दधानां चिन्तयेद् बाणचापपाशसृणीः करैः॥ ७॥

तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः। ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः तदानन्दारुणोक्षणाः॥ ८॥

हृल्लेखया स्थापनादीनुपचारान् समाचरेत्। ततस्तदाज्ञयारोहेद् भ्रामिणीं द्राविणीं यजेत्॥ ९॥

पश्चिमद्वारमारभ्य दक्षशाखादि पूजयेत्। सूर्यं सोमं तिथिं वारं योगर्क्षकरणान्यपि॥ १०॥

(य?प)क्षिणीश्च तथा (तारां?मासं) पूर्वद्वारस्य शाखयोः। व्योमवाय्वग्नितोयक्ष्मारूपिणीशक्तिसंयुतम्॥११॥

शब्दं स्पर्शं च रूपं रसं गन्धं च पूर्ववत्। प्राणं[4] बुद्धिं तथा शक्तिमष्टपत्रेषु पूजयेत्॥ १२॥

---

१. एतदुक्तं भवति– अष्टयोनेर्बहिः तद्बदष्टपत्रेषु सर्वमङ्गलापूजोक्ता भद्राद्यष्टशक्तीरभ्यर्च्य तद्बहिः तद्वत्षोडशपत्रेषु तत्रोक्ताः कलाद्याः षोडशशक्तीरभ्यर्च्य तद्बहिस्तद्वत् द्वात्रिंशद्दलेषु कामिन्यादिद्वात्रिंशच्छक्तीः समभ्यर्च्य, तद्बहिश्चतुरस्रे प्राग्वत् पश्चिमद्वारात् ब्राह्म्यादीः पूर्वद्वारादिन्द्रादिका आग्नेयादनन्तादिकाश्च पूजयेदिति। तत्र बलिद्वयं पूजासमाप्त्यादिकम्॥

२. 'रोदिता' ख. पाठः। ३. 'सकलेष्टदा' ख. पाठः। ४. 'प्राणान्' ख. पाठः।

बाह्यान्तरस्थ[1]कोणेषु वाग्देव्यष्टकमर्चयेत्। ततो बाणान् धनुः पाशमङ्कुशं चाभितो यजेत्॥१३॥
मध्ये त्रिकोणकोणेषु सेच्छाज्ञानक्रियात्मिकाः। शक्तीर्यष्ट्वाथ तन्मध्ये संविदासनमर्चयेत्॥ १४॥
ततस्तां पञ्चविंशार्णमूलमन्त्रेण पूजयेत्। ततस्तदाज्ञया पोतपरीतं द्वीपमागतः॥ १५॥
पश्चिमं पुष्परागं च सम्प्राप्यावतरेत् क्रमात्। परीयमाणे दिक्ष्वेतानर्चयेत् तत्र तत्र वै॥ १६॥
इक्षिवराघृतदुग्धाब्धीन् पश्चिमादिविलोमतः। नमोन्तैर्नामभिः पूर्वमर्चयेद्गन्धपुष्पकैः ॥ १७॥
नवरत्नमयं द्वीपमित्यादि प्रागुदीरितम्। एवं समर्चितं देव्या ललितायाः प्रियङ्करम्॥ १८॥
एवं देवी पूजयितुः शीघ्रं बहु मनीषितम्। प्रसीदति[2] यतस्तस्मात् पूजयेदेवमीश्वरि॥ १९॥
देवीनां कुरुकुल्लां तु पोता[3]दुपरि पूजयेत्। पञ्चविंशार्णमूलेन पूजान्ते परमेश्वरि ॥ २०॥
देव्या बलिः सामाख्यातस्ताराशक्तेस्तु विद्यया। तां शृणु त्वं प्रिये! वच्मि ताराविद्यां दशाक्षरीम्॥२१॥
भूःस्वेन मरुता युक्तो रयो दाहश्वरान्वितः। रयो धरान्वितः पश्चाद्रययुग्मं मरुद्युतम्॥ २२॥
एतत् तृतीयं षष्ठं स्याच्चतुर्थं सप्तमं प्रिये[4]। षष्ठं तदष्टमं विद्याद् हृदम्बुमरुदन्वितम्॥ २३॥
हंसश्च मरुता युक्तः प्रोक्ता विद्या दशाक्षरी।

"ॐतारेतुतारेतुरे स्वाहा"॥ इति॥

अनयास्या बलिं दद्याद् विद्यया परमेश्वरि। ध्यानं देव्याः शृणु प्राज्ञे समस्तापन्निकृन्तनम्॥ १॥
अस्यास्तोयेषु सर्वत्र बाधो न भवति स्मृतेः। श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां वरपङ्कजे॥ २॥
दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृताम्। शक्तिभिः स्मेरवदनां रक्तमौक्तिकभूषणाम् ॥ ३॥
रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत्॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र वेदिकोपरि भूमौ चन्दनादिना सिन्दूरेण वा सनवयोनिकर्णिकमष्टदलकमलं कृत्वा तद्बहिः प्राक्पश्चिमद्वारद्वययुक्तं चतुरस्रद्वयमिति पूजाचक्रं निर्माय कुरुकुल्लाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीकुरुकुल्लादेवतायै नमः, इति विन्यस्य करिष्यमाणबलिदाने विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा बालाबीजत्रयेण मूलविद्यावत् करषडङ्गन्यासं कृत्वा कुरुकुल्लाविद्यया व्यापकं विन्यस्य "विकीर्णकुन्तला"-मिति ध्यात्वा, मानसपूजान्ते प्रोक्षणीपात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपृथिव्यन्तं श्रीचक्रपूजावदभ्यर्च्य, तथैव पश्चिमादिविलोमेनेक्षु—इराघृतदुग्धान् सम्पूज्य इक्षुसागरतीरे द्वीपस्य नैर्ऋतकोणे २ वाराहीविद्यामुच्चार्य वाराहीदेवीपा०, इति मूलदेव्यभिमुखोपविष्टां वाराहीं सम्पूज्य, तदनुज्ञया २ ह्रींरत्नपोताय नमः, इति रत्नपोतं सम्पूज्य, तदुपरि रत्नसिंहासनादिमनोन्मनीशक्त्यन्तं श्रीचक्रपूजाक्रमेण सम्पूज्य, ततस्तन्मध्ये संविदासनाय नमः, इति देव्या भर्तृभूतं पुरुषं सम्पूज्य, तत्र पञ्चविंशाक्षर्या कुरुकुल्लाविद्यया त्रिखण्डामुद्रया च तां समावाह्य, ह्रीः इति स्थापनादिपरमी-करणान्तमुद्राः प्रदर्श्य तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय, पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्यासनादिपुष्पोपचारान्ते "श्रीकुरुकुल्ले परिवारपूजार्थमनुज्ञां देहि" इति प्रार्थ्य, तदनुज्ञया साधकः स्वयं रत्नपोतमारुह्य रत्नपोतस्य पूर्वपश्चिमकोट्योः ह्रींभ्रामिणीश्रीपा०, ह्रींद्राविणीपा०, इति सम्पूज्य पश्चिमद्वारस्य दक्षिणशाखामारभ्य नवशक्ती प्रादक्षिण्येन पूजयेत्।

---

१. 'तदन्तरष्ट' ख. पाठः। २. 'प्रयच्छतीत्यर्थः। ३. 'तोयात्' ख. पाठः। ४. भवेत्' ख. पाठः।

तद्यथा— पश्चिमद्वारदक्षिणशाखायां २ ह्रीः सूर्यरूपिणीशक्तिपा०। वायव्यकोणे २ ह्रीः सोमरूपिणी० २ उत्तरे २ ह्रीः तिथिरू०। ईशाने २ ह्रीः वाररू०। पूर्वद्वारस्योत्तरतः शाखायां २ ह्रीः योगरू०। दक्षशाखायां २ ह्रीः ऋक्षरू०। आग्नेये २ ह्रीः करणरू०। दक्षिणे २ ह्रीः पक्षरू०। नैर्ऋते २ ह्रीः मासरू०, इति सम्पूज्य, ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन व्योमरू०। शब्दरू०। वायुरू०। स्पर्शरू०। अग्निरू०। रूपरू०। तोयरू०। रसरू०। क्ष्मारू०। गन्धरू०। प्राणरू०। बुद्धिरू०। शक्तिरू० इति सम्पूज्य, अन्तरष्टयोनिषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन वशिन्यादिवाग्देवताष्टकं सम्पूज्य, तदन्तर्योनेर्बहिः बाणरू०, चापरू०, पाशरू०, अङ्कुशरू०, इति सम्पूज्य, ततो मध्ययोन्यां देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन इच्छारू०, ज्ञानरू०, क्रियारू०, इति सम्पूज्य, ततो मध्ये प्राग्वत् संविदासनमभ्यर्च्य तस्मिन्, पञ्चविंशाक्षर्या कुरुकुल्लां गन्धादिभिः सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वाऽन्यत्सर्वं समाप्य "ॐ तारेतुतारेतुरेस्वाहा" इति मन्त्रेण कुरुकुल्लापूजाङ्गत्वेन बलिं दत्त्वा समापयेत्, इति कुरुकुल्लापूजाविधिः॥

अथ वाराहीसपर्याविधिः॥ तन्त्रराजे— (२३ प०)

अथ षोडशनित्यानामङ्गभूता तु पञ्चमी। तद्द्विधा कथिता पूर्वं तदङ्गानि च पूजनम्॥ १॥
साधनं सिद्धमन्त्रस्य प्रयोगध्यानपूजनैः। होमैर्यन्त्रैश्च वक्ष्यामि समस्ताभीष्टसिद्धये॥ २॥

इति। तत्रैव — (३। ७३)

शुचिः स्वेनाथ शून्यं स्यान्नभसा भूरसः स्थिरा। अम्बु पश्चाद्रयः साग्निर्मरुताम्बुरयौ तथा॥ १॥
इलायुतोऽग्निरेतानि पुनरम्बु मरुद्युतम्। दाहश्च मरुता हंसस्त्वग्निरेतत्त्रयं पुनः॥ २॥
अम्बुदाहौ मरुद्युक्तौ हंसोऽथ धरया नभः। तेजोऽग्निना युतः[1] पश्च वातः स्वेन समायुतः॥ ३॥
तोयं चरेण तत्पूर्वं तोयमग्नियुतं ततः। शून्यं व्याप्तेन शुचिना शून्यं शक्त्या नभोयुतम्॥४॥
दाहो धरास्वसहितस्तोयं चरसमन्वितम्। एतत्पूर्वमधः प्रोक्तचतुष्टयमतः परम्॥ ५॥
ज्या स्वेन युक्ता सचरो रसश्चैतस्य पूर्वकम्। रसोऽग्निना पुनः प्रोक्तचतुष्कात् त्रयमन्ततः॥ ६॥
नभो भुवा चरेणापि हंसस्त्वेतस्य पूर्वकम्। हंसो[2]ऽग्निना प्राक् त्रितयं हृदयं[3] स्वसमायुतम्॥ ७॥
रसश्चरेण तत्पूर्वमग्निना च रसो युतः। पश्चादुक्तत्रयं वातो धरया च नभः प्रिये॥ ८॥
प्राणः स्वेन युतः पश्चाद्हृदयं स्वयुतं रसः। व्याप्तमेतत्त्रयं पश्चाद् हृद् दाहेनाम्बुसंयुतम्॥ ९॥
गोत्रा धरायुता स्पर्शो नादयुक्तो जवी युतः। दाहेन पूर्वं पूर्वं च पूर्वं च मरुता युतम्॥ १०॥
शून्यं मरुत्स्वसहितं हृद् दाहेनाम्बुना चरः। स्पर्शो मरुत्स्वसहितो हृद् दाहेनाम्बुना युतम्॥ ११॥
ज्याग्निः स्वसंयुतो हंसस्तथाम्बु मरुता सह। हृदयेन स्वेन युतं रसश्च स्वेन संयुतः॥ १२॥
प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनस्तौ वह्निना वियत्। वार्दाहयुक्तमम्बु स्याद्वियद् व्याप्तस्वसंयुतम्॥ १३॥
पूर्वद्विरुक्तवर्णौ च शुचिः स्वेन युतस्तथा। स्थिरा रसा वनस्वेन दावौ हंसो धरास्वयुक्॥ १४॥
द्युतिर्नादवती पश्चाद् हृदम्बु मरुता युतम्। हंसश्च मरुता विद्या दशोत्तरशताक्षरी॥ १५॥

इति। "ऐं नमो भगवति वात्तालि वात्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि वराहमुखि अन्धे अन्धिन्यै नमः रुन्धे रुन्धिन्यै नमः जम्भे जम्भिन्यै नमः मोहे मोहिन्यै नमः स्तम्भे स्तम्भिन्यै नमः अमुकं स्तम्भय स्तम्भय सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरुः ऐं ठलौं ठठ हुंफट् स्वाहा।" इति॥ वर्णाः ११०॥ त्रिपुरार्णवे— ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिर्गायत्रीच्छन्द ईरितम्।" इति। तन्त्रराजे—(२३ । ३)

अङ्गानि कृत्वा मन्त्रार्णैः सप्तभिः षड्युगेन च। दशभिः सप्तभिः सप्तसंख्यैर्जातिभिरन्वितम्॥ १॥
त्रिकोणवृत्तषट्कोणवृत्तद्वयसमन्वितम्। विधाय चक्रं तत्रैव स्वनाम्नावाह्य पूजयेत्॥ २॥
दशोत्तरशताक्षर्या वाराहीविद्यया प्रिये। सर्वमध्ये समभ्यर्च्य वामदक्षाग्रकोणतः॥ ३॥

१. 'पुनः' ख. पाठः। २. 'रसो' ग. पाठः। ३. 'हृदसः' ग. पाठः।

क्रोधिनीं स्तम्भिनीं चण्डोच्चण्डां च[1] स्वस्वनामभिः। आद्यबीजान्त्यसप्राणैरुपेतामथ पूजयेत्॥४॥

षट्सु कोणेषु स्वाग्रादि ब्राह्म्याद्या[2] वामतोऽर्चयेत्। वृत्ते चैव महालक्ष्मीं पञ्चमीं मध्यतस्तथा॥५॥

बलिं तु षोडशार्णेन कृत्वाभ्यर्च्योपचारकैः। इति।

अथ प्रयोगः— वेद्यां त्रिकोणषट्कोणवृत्तद्वयचतुरस्रात्मकं मण्डलं निर्माय मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीवाराहीदेवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ऐं नमो भगवति हृदयाय नमः। वार्त्तालि २ शिरसे स्वाहा। वाराहि २ शिखायै वषट्। वराहमुखि २ कवचाय हुं। अन्धे अन्धिन्यै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। रुन्धे रुन्धिन्यै नमः अस्त्राय फट्। इति करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्—

ध्यायेच्च देवीं कोलास्यां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्। आकण्ठवनितारूपां ज्वलत्पिङ्गशिरोरुहाम्॥ १॥

त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शङ्खमथाङ्कुशम्[3]। पाशं च मुसलं सीरमभयं वरदं तथा॥ २॥

दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत्।

इति ध्यात्वा, मानसपूजान्तेऽर्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजां विधाय, भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य मूलेन मूर्तिं परिकल्प्य, तद्विद्यया समावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधायासनादिपुष्पोपचारान्ते त्रिकोणस्य वामकोणे २ क्रों क्रोधिन्यै नमः। दक्षकोणे २ स्तं स्तम्भिन्यै नमः। अग्रे २ क्षोंक्रों चण्डोच्चण्डायै नमः। ततः षट्कोणकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन आं ब्राह्म्यै नमः। ईं माहेश्वर्यै नमः। ऊं कौमार्यै नमः। ॠं वैष्णव्यै नमः। ॡं वाराह्यै नमः। ऐं इन्द्राण्यै नमः, इति सम्पूज्य, तद्बहिर्वृत्तद्वये औं चामुण्डायै नमः। अः महालक्ष्म्यै नमः, इति देव्यग्रे पूजयेत्। ततश्चतुरस्रे इन्द्रादींस्तद्बहिश्च वज्रादीन् सम्पूज्य पुनर्मध्ये देवीं तद्विद्यया सम्पूज्य, धूपादिकं सर्वं प्राग्वत्, समापयेत्, इति वाराहीपूजाविधिः॥

अथ वारेशानां पूजाप्रयोगः— तत्र तद्वेदिकायां षट्कोणात्मकं मण्डलं विधाय मूलेन प्राणानायम्य, करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन वारेशपूजनमहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य तद्दिनवारेशो षट्कोणमध्ये आवाह्यासनादि-पुष्पोपचारान्तैरुपचारैरभ्यर्च्य, तदुत्तरवारेशादीन् षट्कोणेषु द्वौ द्वौ क्रमेण स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य धूपादिकं सर्वं निवेद्यान्यत्सर्वं प्राग्वत्समापयेत्॥ वारेशास्तु— रविवारस्य सूर्यशिवौ। चन्द्रवारस्य सोमाम्बिके। मङ्गलवारस्य भौमकुमारौ। सौम्यवारस्य ब्रह्मबुधौ। गुरुवारस्य बृहस्पतिविष्णू। भृगुवारस्य शुक्ररमे। शनिवारस्य कुबेरसौरी। इति वारेशार्चनविधिः॥

अथ तिथीशार्चनप्रयोगः— तत्र तद्वेदिकायां चतुर्दशारमण्डलं विलिख्य मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन तिथीशपूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य मध्ये तत्तत्तिथीशमावाह्यासनादिपुष्पोपचारान्तमभ्यर्च्य स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन तदुत्तरतिथीशादीन् चतुर्दशारेषु प्राक्षिण्यक्रमेणाभ्यर्च्य धूपादिकं कृत्वा प्राग्वत्समापयेत्॥ तिथीशास्तु— प्रतिपद्यग्निः। द्वितीयायामश्विनौ। तृतीयायामुमा। चतुर्थ्यां विघ्नराजः। पञ्चम्यां सर्पः। षष्ठ्यां षण्मुखः। सप्तम्यां रविः। अष्टम्यां मातरः। नवम्यां दुर्गा। दशम्यां दिशः। एकादश्यां धनदः। द्वादश्यां केशवः। त्रयोदश्यां यमः। चतुर्दश्यां हरः। पञ्चदश्यां चन्द्रः। अमावास्यायां पितरः, इति तिथीशपूजाक्रमः॥

अथ नक्षत्रदेवतापूजाक्रमः— तत्र तद्वेद्यां सप्तविंशत्यरात्मकं पूजाचक्रं विधाय मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, अद्येहेत्यादि करिष्माणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन नक्षत्रेशपूजां करिष्ये, इति सङ्कल्प्य तत्तत्तिथिनक्षत्रेशं मध्ये आसनादिपुष्पोप-चारान्तैरुपचारैः सम्पूज्य सप्तविंशत्यृक्षेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन तदुक्तनक्षत्रेशमारभ्य सम्पूज्य धूपदीपादिकं दत्वा

---

१. 'चैव' ख पाठः। २. 'षट्कोणे च तथाग्नादि ब्राह्म्यादि' ग. पाठः। ३ 'म्बुजम्' क. पाठः।

प्राग्वत् समापयेत्।। नक्षत्रेशास्तु— अश्विन्यामश्विनौ। भरण्यां यमः। कृत्तिकायामग्निः। रोहिण्यां धाता। मृगशिरसि चन्द्रः। आर्द्रायां शिवः। पुनर्वसावदितिः। पुष्ये गुरुः। आश्लेषायां सर्पः। मघायां पितरः। पूर्वायामर्यमा। उत्तरायां भगः। हस्ते सूर्यः। चित्रायां त्वष्टा। स्वात्यां मारुतः। विशाखायामिन्द्राग्नी। अनुराधायां मित्रः। ज्येष्ठायामिन्द्रः। मूलायां निर्ऋतिः। पूर्वाषाढायां तोयं। उत्तराषाढायां विश्वेदेवाः। अभिजिति प्रजापतिः। श्रवणे हरिः। धनिष्ठायां वसवः। शतभिषजि वरुणः। पूर्वाभाद्रपदायामजैकपात्। उत्तराभाद्रपदायामहिर्बुध्न्यः। रेवत्यां पूषा, इति नक्षत्रेशसपर्याविधिः।।

अथ नवग्रहपूजाविधिः। तत्र प्रयोगः— हस्तत्रयायामविस्तारवेदिकायां प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च चतुःसूत्राणि पातयित्वा समान्तरालं नवकोष्ठात्मकं चक्रं निष्पाद्य समस्तकोष्ठान्तरालेषु वृत्तत्रयं रचयित्वा, तत्तन्मध्ये सूत्रद्वयनिपातेन नव कोष्ठानि निष्पाद्य, मध्यकोष्ठे अष्टदिक्षु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन अंआंइंईंउंऊंऋंॠं इति वाताद्यष्टस्वरान् विलिख्य, मध्यकोष्ठे मों इति विलिख्य वृत्तत्रयस्यान्तरालद्वयेऽभ्यन्तरान्तराले मंमांमिंमींमुंमूंमृंमॄंमेंमैंमोंमौंमंमः इति विलिख्य, बाह्यान्तराले अंआंइत्यादिक्षःइ त्यन्तं मातृकां विलिख्य तत्र भास्करं पूजयेत्। ततः पूर्वदिग्गतनवकोष्ठात्मकमण्डले मध्यकोष्ठे सोंसोमाय नमः। ह्रीमिति विलिख्याष्टसु कोष्ठेषु पूर्वादि लृंलॄंएंऐंओंऔंअंअः इत्यष्टौ स्वरान् विलिख्याभ्यन्तरान्तराले हंहामित्यादिषोडशस्वरसंयुक्तं हकारं विलिख्य तद्बहिः बिन्दुयुतां मातृकां च विलिख्य तत्र सोमं पूजयेत्।। तत आग्नेयदिग्गतनवकोष्ठात्मकमण्डलमध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं ककारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु "कं ५ मङ्गल" इत्यष्टाक्षराणि विलिख्य, अभ्यन्तराले षोडशस्वरयुतं ककारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां विलिख्य तत्र भौमं पूजयेत्।। ततो दक्षिणमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं चकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु "चं ५ बुधाय" इति विलिख्य, अभ्यन्तरान्तराले चंचामित्यादिषोडशस्वरयुक्तं चकारं विलिख्य तद्बहिर्मातृकां च विलिख्य तत्र बुधं पूजयेत्।। ततो निर्ऋतिमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं टकारं लिखित्वा तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "टं ५ सौरये" इत्यष्टवर्णान् विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं टकारं तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य मध्ये षोडशोपचारैः शनैश्चरं पूजयेत्।। ततो पश्चिममण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं तकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु "तं ५ गुरवे" इति विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं तकारं तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र गुरुं षोडशोपचारैः पूजयेत्।। ततो वायव्यमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं पकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "पं ५ शुक्राय" इत्यष्टवक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं पकारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र शुक्रं षोडशोपचारैः पूजयेत्। तत उत्तरमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं यकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेसु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "यं ५ राहवे" इत्यष्टावाक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं यकारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र राहुं षोडशोपचारैः पूजयेत्।। तत ईशानमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं षकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "षं ५ केतवे" इत्यष्टावक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं षकारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र षोडशोपचारैः केतुं पूजयेत्, इति नवग्रहपूजाविधिः।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य–श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य–
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य–श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य–श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे चतुर्दशः श्वासः।। १४।।

अथ
श्रीविद्यार्णवतन्त्रे
पञ्चदश: श्वास:



अथ दैशिकवर: प्रात: प्रवोधकाले ''त्रिपुरात्मानमात्मानं भावयन् मूर्ध्नि रन्ध्रगम्। ज्योतीरूपं च नाथाङ्घ्रिमुत्तिष्ठेन्न्यस्तविग्रह:।।'' इति। (तन्त्रराजे—५। १७) न्यस्तविग्रहो वक्ष्यमाणन्यासै: करशुद्धिषडङ्गचतुरासनवागुदेवताष्टकाख्यै: कृतन्यासशरीर:। ''नमस्ते नाथ भगवन्'' इत्यादिश्लोकै: स्तुत्वा ह्सौंश्रींहसक्षमलवयरूं अमुकानन्दनाथ ह्सौंश्रींसहक्षमलवयरीं अमुकदेव्यम्बापादुकां पूजयामीति गुरुमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा कुण्डलिन्या मूलादिमूर्धान्तं गमनानुसन्धानपुर:सरं त्रिपुरात्मानमात्मानं भावयित्वा त्रिपुरार्णवोक्तं स्तोत्रं पठेत्—

प्रातर्नमामि जगतां जनन्याश्चरणाम्बुजम्। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या जनन्या जगतां सदा।। १ ।।
प्रसन्नाया: स्वभक्तानां नमिताया हरादिभि:। प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि चरणाम्बुजम्।। २ ।।
हरिर्हरो विरिञ्चिश्च सृष्ट्यादीन् कुरुते यया। (प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि पदपङ्कजम्)।। ३ ।।
यत्पाद्यमम्बु शिरसि भाति गङ्गा महेशितु:। प्रात: पाशाङ्कुशशरपाशहस्तां नमाम्यहम्।। ४।।
उद्यदादित्यसङ्काशां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्। प्रातर्नमामि पादाब्जं ययेदं भासते जगत्।। ५।।
तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या यत्प्रसादान्निवर्तते। य: श्लोकपञ्चकमिदं प्रातर्नित्यं पठेन्नर:।। ६ ।।
तस्मै दद्यादात्मपदं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।

इति स्तुत्वोद्वास्य ''नानावर्णायुधाकारवाहनाभरणा: स्त्रिय:। सर्वगा: सर्वदा: सर्वसिद्धिदा बलिदानत:''।। (तं ५। १८) स्युरिति विध्राणात् (?) स्वपुरत: साधारेऽन्नव्यञ्जनपुष्पाम्बुपूर्णे ''ॐह्रींसर्वविघ्नकृद्भ्य: सर्वभूतेभ्यो हूं स्वाहा'' इति षोडशाक्षरमन्त्रेण करतलयोस्त्रिरास्फालनपूर्वं प्रसारिततर्जनीद्वयाभ्यामुभयकरमुष्टिभ्यामूर्ध्वाध:स्थितिरूपाभ्यां दैवतेभ्यो निवेदितबलिद्रव्यदर्शनरूपया मुद्रया बलिर्देय:। ततश्चावश्यकं कृत्वा ''क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नम:'' इति मन्त्रेण दन्तधावनं कृत्वा मूलदिननित्याभ्यां मुखप्रक्षालनं स्नानं तिलकं च कृत्वा वैदिकसन्ध्यां निर्वर्त्य तान्त्रिकसन्ध्यां कुर्यात्। ततस्त्रिराचम्य प्राणायामं कुर्यात्। ''आधारे हृदये रन्ध्रे विद्याखण्डत्रयं स्मरेत्।। लोहितं तत्प्रभावेधाल्लोहितं च निजं वपु:।।'' (तं ५। ३२) भावयन्, ''वामेन नासारन्ध्रेण पूरयेदमृतात्मना। स्मरन्नम्बु मरुत् पश्चाद् दक्षिणेनापसारयेत्।। एवं सुसाधिते पश्चाद् द्वात्रिंशन्मात्रयाहरेत्। धारयेत्तच्चतुष्षष्ट्या रेचयेत्तत्तुरीयत:।।'' (तं २७। ६८) एवं क्रमेण त्रीन् षट् द्वादश षोडश विंशतिं वा प्राणायामान् कृत्वा अंआंसौ: इति करशुद्धिं विधाय। ऐंक्लींसौ: हृदयाय नम:,

अङ्गुष्ठयोः। ३ शिरसे स्वाहा तर्जन्योः। ३ शिखायै वषट् मध्यमयोः। ३ कवचाय हुं अनामिकयोः। ३ नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकयोः। ३ अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः॥ ३ हृदयाय नमो हृदये। ३ शिरसे स्वाहा शिरसि। ३ शिखायै वषट् शिखायाम्। ३ कवचाय हुं कवचे। ३ नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रये। ३ अस्त्राय फडिति प्रसारिततलाभ्यां पाणिभ्यां तालत्रयपूर्वकं सशब्दं तर्जनीज्येष्ठायोगाद् दिग्विदिक्षूपर्यधो मध्ये विघ्नहृदस्त्रं न्यसेदिति षडङ्गं कृत्वा सन्ध्यावन्दनं कुर्यात्। तदुक्तं तन्त्रराजे—

नाथैस्तत्त्वैश्च नित्याभिः कालनित्या तु विद्यया। आधरे हृदये शीर्षे वह्नौ सूर्ये निशाकरे॥ १॥

ध्यायंस्त्रिसन्ध्यं प्रजपेत् सवर्गं व्यञ्जनस्वरम्। न्यसेच्च मातृकास्थाने तदा तद्देहशुद्धये॥ २॥

इति। विशेषस्तु त्रिपुरार्णवे—

सन्ध्या चतुर्विधा ज्ञेया बाला कौमारयौवना। प्रौढा च निष्कला चेति सन्ध्या देवि प्रकीर्तिता॥ १॥

प्रातःकाले महादेवी विद्या वागीश्वरी मता। कामेश्वरी च मध्याह्ने सायाह्ने पुरभैरवी॥ २॥

मध्यरात्रे महादेवी ज्ञेया त्रिपुरसुन्दरी। इति।

ततः स्वपुरतो धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य तेन जलेन कुशैरकारादिक्षकारान्तैः सबिन्दुमातृकाक्षरैः प्रत्यक्षरं स्वशिरः प्रोक्ष्य मूलविद्यया त्रिःप्रोक्ष्य सूर्यमण्डले देवीं यथोक्तरूपां ध्यात्वा, दक्षहस्तेन जलमादाय लंवंरंयंहं इति मन्त्रैः सप्तवारमभिमन्त्र्य मूलेन च त्रिवारमभिमन्त्र्य, तज्जलबिन्दुभिरङ्गुष्ठानामिकाभ्यां मूलविद्यया स्वशिरः प्रोक्ष्यावशिष्टजलं वामहस्ते निधाय तेजोरूपं तज्जलमिडयाकृष्य स्वदेहान्तःस्थितं सकलकलुषं प्रक्षाल्य, तज्जलं कृष्णवर्णं पिङ्गलया निर्गतं मत्वा तज्जलं पुनर्दक्षिणहस्ते कृत्वा स्ववामभागे ज्वलद्वज्रशिलां ध्यात्वा "ॐम्लींपशुहुंफट्" इति पाशुपतास्त्रेण तस्यां शिलायामास्फाल्य, हस्तौ प्रक्षाल्य मूलविद्यया जलमादाय प्रवहन्नाड्या सहस्रदलकमलगतपरमातृतेनैकीभूतं विभाव्य, राजदन्तविवरान्नेत्रमार्गेण निर्गमय्य तज्जलं वामकरे निधाय, तेन जलेन, "अमृतमालिनि स्वाहा" इति मन्त्रेण स्वशिरस्त्रिः प्रोक्ष्य ह्रींश्रीं प्रथमकूटं आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। २ द्वितीयकूटं विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा। २ तृतीयकूटं शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। समस्तविद्यामुच्चार्य सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। एवमाचम्याञ्जलिना जलं गृहीत्वोत्थाय २ प्रथमकूटं वागीश्वर्यै विद्महे द्वितीयकूटं कामेश्वर्यै धीमहि तृतीयकूटं तन्नः शक्तिः प्रचोदयाद् इति त्रिरर्घ्यं दत्त्वा "ह्रांह्रींसः सूर्य एष तेऽर्घः स्वाहा" इति सूर्यायार्घ्यत्रयं दत्त्वा मूलविद्यया देवीं त्रिःसन्तर्प्य "ह्रांह्रींसः सूर्यं तर्पयामि नमः" इति त्रिःसन्तर्प्य, मूलाधारे प्रथमकूटं तडित्कोटिसमप्रभं मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सञ्चिन्त्य तत्तेजः सुषुम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा वहन्नासाध्वनाकाशस्थवह्निमण्डले समावाह्य तत्तेजस उद्भूतां वागीश्वरीं ध्यायेत्—

पीतां पीताम्बरां पीतस्रग्विभूषानुलेपनाम्। तडित्कोटिसमाभासां बालामक्षस्रगुज्ज्वलाम्॥ १॥

पुस्तकाब्जकराम्भोजां वह्निपीठनिषेदुषीम्। वाग्भवां वाग्भवोद्भूतां त्रीक्षणां सस्मितां स्मरेत्॥ २॥

इत्याकाशस्थवह्निमण्डलान्तर्ध्यात्वा "प्रथमकूटं त्रिपुरावागीश्वरीपादुकां पूजयामि" इति गन्धादिभिः सम्पूज्य वाग्भवगायत्रीमुच्चार्य त्रिपुरावागीश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा, इति त्रिरर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य पुनः "प्रथमकूटं त्रिपुरावागीश्वरीपादुकां तर्पयामी"ति त्रिःसन्तर्प्य, श्रीगुरुं प्रणम्य पूर्ववत्करषडङ्गन्यासं विधाय मातृकान्यासस्थानेषु प्रणवत्रितारमूलविद्यातद्दिननित्याविद्या हंसः २ अं नमः इत्यादिमातृकां विन्यस्य पूर्वोक्तगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा वाग्भवगायत्रीं जपेत्। ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे वागीश्वर्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्, इति जपित्वा मूलविद्यां प्रातरित्थं जपेत्। यथा–

प्रातर्मूलाधारगते कमले वह्निमण्डले। वाग्बीजरूपां नित्यां तां विद्युत्पटलभास्वराम्॥ २॥

पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम्। स्वेच्छागृहीतवपुषं युगनित्याक्षरात्मिकाम्॥ ३॥

घटिकावरणोपेतां परितः प्राञ्जलीनथ। ज्ञानमुद्रावरकरान् वाग्भवोपास्तितत्परान्॥ ३॥

नवनाथान् स्मरेन्मूलपङ्कजे योनिमण्डले। इति।

इत्थं संन्ध्याचतुष्टये ह्रींश्रींमूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः अंआंइंईंउंऊंऋंॠंह्रींश्रींप्रकाशानन्दरूपिणीश्रीमहा–त्रिपुरसुन्दरीपा०। प्राग्वत् हंसः इत्यन्तमुच्चार्य ऌंॡंएंऐंओंऔंअंअः ह्रींश्रीं विमर्शानन्दरूपि०। पुनर्हंस इत्यन्तमुच्चार्य कंखंगंघंङं ह्रींश्रीं आनन्दानन्दरू०। पुनस्तथैवोच्चार्य चंछंजंझंञंह्रींश्रीं ज्ञानन्दरू०। पुनस्तथैवोच्चार्य टंठंडंढंणंह्रींश्रीं सत्यानन्दरू०। पुनस्तथैव तंथंदंधंनंह्रींश्रीं पूर्णानन्दरू०। पुनस्तथैव पंफंबंभंमंह्रींश्रीं स्वभावानन्दरू०। पुनस्तथैवोच्चार्य यंरंलंवंशंह्रींश्रीं प्रतिभानन्दरू०। पुनरपि तथैव षंसंहंक्षंह्रींश्रीं सुभगानन्दरू०। इति नवनाथात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत्। ततस्तद्दिननित्याविद्यां यथाशक्ति जपेत्, इति कालनित्याजपः॥ ततो मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यामुद्यत्सूर्यसहस्रसमप्रभां ध्यायन् मूलविद्यामष्टोत्तरशतं जप्त्वा बहिराकाशस्थवह्निमण्डले पूर्वोक्तरूपां वाग्भवेश्वरीं ध्यायन् प्रातर्वाग्भवकूट–मष्टोत्तरशतं जपेत्। ततः प्राणायामादिपूर्वकं कृतं जपं देव्यै निवेद्य प्रणम्य स्तुत्वा सूर्यमण्डलाद्वह्निमण्डलाच्च मूलदेवीं वाग्भवेश्वरीं च हृदये मूलाधारे च विसृज्य श्रीगुरुं प्रणमेत्॥ इति प्रातः सन्ध्याविधिः॥ अत्र कर्मकालेषु गुरुध्यानमुक्तं रुद्रयामले "दीक्षाकाले यथारूपं स्वस्यानुग्रहकर्मणि। दृष्टं तत्तेन भावेन ध्यायन्नाह्निकमाचरेत्॥" इति गुरोरिति शेषः। एतद्गुरुध्यानं प्रातःस्मरणातिरिक्तस्थलेषु ज्ञेयम्।

प्रातःसन्ध्येयमीशानि सर्वकर्मसु सर्वदा। कर्तव्या मन्त्रिणा नित्यं मन्त्रसिद्धिसमृद्धये ॥ १॥

प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य देवतापूजनं चरेत्। अशुद्धः स दुराचारः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ २॥

प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य देवपूजादिकं चरेत्। होमान् कृत्वा महेशानि नारकी जायते नरः॥ ३॥

प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य होमं वा तर्पणं शिवे। कुर्वन्नकारणं विप्रस्त्यजञ् श्वा च भवेद्ध्रुवम्॥४॥

पिशाचो जायते देवि अपि वेदाङ्गपारगः। सन्ध्यानामपि सर्वासां प्रातःसन्ध्या गरीयसी॥ ५॥

तस्मात्तां च त्यजेद्विप्रस्त्यजन्नरकमाप्नुयात्।

इति त्रिपुरार्णववचनादियमवश्यं कर्तव्येति शिववचनम्। अथ घटिकापारायणत्वेन षष्टिजपं कुर्यात्। स च पञ्चभिर्दिवसैर्मातृकायाः षडावृत्तिरूपः। तथा तन्त्रराजे – (२५।१२)

आरभ्य भानोरुदयमेकशो घटिकाक्रमात्। एकैकं मातृकावर्णाः पञ्चाशत् परिवृत्तितः॥ १॥

इति। सूर्योदयकालेऽकारः उदेति। ततो द्वितीयघटिकादिपञ्चाशद्घटिकापर्यन्तासु घटिकासु आकारादिक्षकारान्ता वर्णा विसर्गस्वररहिताः स्वस्वघटिकोदयकाले समुद्यन्ति। तत एकपञ्चाशत्तमघटिकामारभ्य शिष्टदशघटिकासु अकारादिॡकारान्ता दश वर्णाः स्वघटिकोदयकाले समुद्यन्ति। इत्थं द्वितीयदिवसे सूर्योदयकाले एकार उदेति, ततः स्वघटिकोदयकाले ऐकाराद्या एकोनचत्वारिंशद्वर्णाश्चाकाराद्याः विंशतिवर्णाश्च सुमद्यन्ति। तृतीयदिवसे सूर्योदये चकार उदेति, ततः स्वस्वघटिकोदयकाले छकारादिक्षकारान्ता (अकारादिणकारान्ताश्च) एकोनषष्टिवर्णाः समुद्यन्ति। चतुर्थदिवसे सूर्योदयकाले तकार उदेति, ततः (स्व) स्वघटिकोदयकाले थकारादिक्षकारान्ता अकारादिमकारान्ताश्च एकोनषष्टिवर्णाः समुद्यन्ति। पञ्चमदिवसे सूर्योदयकाले यकार उदेति, ततः स्वस्वघटिकोदयकाले यादिक्षकारान्ता (अकारादिक्षकारान्ता) श्चैकोनषष्टिवर्णाः समुद्यन्ति। एवं पञ्चभिर्दिवसैर्मातृकायाः षडावृत्तिर्भवति॥ एवं क्रमेणैभिर्वर्णैर्घटिकापारायणाख्यः षष्टिजपः कार्यः॥ तत्प्रकारः प्रदर्श्यते—तत्राकारादिक्षान्ताः पञ्चाशद्वर्णा विसर्गरहिता दश दश भूत्वा पञ्च वर्गा अत एव तन्नामानो भविन्त, तैः षष्टिजपः कार्यः। तत्प्रकारस्तु—२ मूलं तद्दिननित्यविद्या हंसः अंनमः। (एवं क्षान्तान् पञ्च वर्गान् जप्त्वा पुनरकारादि–ॡकारान्तं प्रथमं वर्गमावर्तयेत्। एवं षष्टिजपः। द्वितीयदिने) २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः एं०। एवं क्षान्तांश्चतुरो वर्गानावर्त्य पुनराद्यद्वितीयवर्गावावर्तयेत्। एवं षष्टिजपः। तृतीयदिने २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः चं०। एवं क्षान्तांस्त्रीन् वर्गान् (जप्त्वा पुनरकारादिणकारान्तान् त्रीन् वर्गा) नावर्तयेत्। एवं ६०। (चतुर्थदिने २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः तं०।) एवं क्षान्तौ द्वौ वर्गौ जप्त्वा पुनः अकारादिमकारान्तान् चतुरो वर्गानावर्तयेत्। एवं ६०।) पञ्चमदिने २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः यं०। एंव क्षान्तं वर्गं जपित्वा पुनरकारादिक्षकारान्तान् पञ्चाशद्वर्णानावर्तयेत्। एवं षष्टिजपः। एवं षडावृत्तयः। ततः षष्ठे षष्ठे दिने पुनरकारादित आरम्भ्योक्तरीत्या घटिकापारायणजपमनवरतं कुर्यात्। अत्राधुना वर्तमानसमये साधकैर्ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रकारेणाहर्गणेन कलियुगस्य गतदिनानि ज्ञात्वा स्वक्रमारम्भ-दिनपर्यन्तं गणयित्वा पञ्चभिराहृत्योर्वरितदिनेनोदयाक्षरं ज्ञात्वा यस्मिन् दिने अकार उदयाक्षरं भवति तस्मिन् दिने आरभ्य घटिकापारायणं प्रोक्तक्रमेण कार्यमिति घटिकापारायणजपः प्रातरेव कार्यः॥

अथ मध्यन्दिनसन्ध्या— तत्र प्राणायामादिसूर्यतर्पणपर्यन्तं प्रातःसन्ध्यावदेव विधाय बीजसन्ध्यां कुर्यात्। तद्यथा— तत्र मध्याह्नेऽनाहतचक्रे मूलविद्यायाः कामराजकूटं रक्तवर्णं ध्यायेत्। तत्तेजः सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना निःसार्य सूर्यमण्डले समावाह्य तदुद्भूतां कामेश्वरीं ध्यायेत्। यथा—

रक्ता सुरक्ताम्बरभूषणाढ्यां पाशाङ्कुशाभीतिवरान् दधानाम्।
शुचिस्मितामुद्भटयौवनाढ्यां कामेश्वरीं संस्मरत त्रिनेत्राम्॥ १॥

इति ध्यात्वा, २ कामराजकूटं श्रीत्रिपुराकामेश्वरीपा० इति त्रिः सम्पूज्य, पुनः कामराजकूटगायत्रीमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा इति त्रिरर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य, पुनः कामराजकूटमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वरीपादुकां तर्पयामि इति त्रिः सन्तर्प्य, प्राणायामादिपुरःसरं पूर्ववन्मातृकां विन्यस्य, प्राग्वत् तुरीयविद्यागायत्रीं जपित्वा कामकूटगायत्रीं जपेत्। सा यथा— क्लीं त्रिपुरादेव्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्। इति यथाशक्ति जपित्वा

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत्।। तद्यथा—

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले। कामराजात्मिकां देवीमर्ककोटिसमप्रभाम्।। १।।
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षुचापपाशाङ्कुशान्विताम्। परितश्चात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः।। २।।
रक्तमाल्याम्बरालेपभूषाभिः परिवारिताम्। युगनित्याक्षरमयीं घटिकावरणां स्मरेत्।। ३।।
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डधराः शोणवपुर्धराः। हृत्पङ्कजे च ताः कामराजोपास्तिपरायणाः।। ४।।

इति देवीं ध्यात्वा, २ मूलविद्या तद्दिननित्याविद्या हंसः अं १६ शिवतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादु०। २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः कंशक्तितत्त्व०। २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः खंसदाशिवतत्त्वरू०। एवं गंईश्वरतत्त्वरू०। घंशुद्धविद्यातत्त्वरू०। ङंमायातत्त्वरू०। चंकलातत्त्वरू०। छंविद्यातत्त्वरू०। जंरागतत्त्वरू०। झंकालतत्त्वरू०। ञंनियतितत्त्वरू०। टंपुरुषतत्त्वरू०। ठंप्रकृतितत्त्वरू०। डंअहङ्कारतत्त्वरू०। ढंबुद्धितत्त्वरू०। णंमनस्तत्त्वरू०। तंश्रोत्रतत्त्वरू०। थंत्वक्तत्त्वरू०। दंचक्षुस्तत्त्वरू०। धंजिह्वातत्त्वरू०। नंघ्राणतत्त्वरू०। पंवाक्तत्त्वरू०। फंपाणितत्त्वरू०। बंपादतत्त्वरू०। भंपायुतत्त्वरू०। मंउपस्थतत्त्वरू०। यंशब्दतत्त्वरू०। रंस्पर्शतत्त्वरू०। लंरूपतत्त्व०। वंरसतत्त्व०। शंगन्धतत्त्व०। षंआकाशतत्त्व०। संवायुतत्त्व०। हंतेजस्तत्त्व०। ळंजलतत्त्व०। २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः क्षंपृथिवीतत्त्वरू०। इति षट्त्रिंशत्तत्त्वयोगेन मूलविद्या जपित्वा, ततः कालनित्याविद्यामष्टोत्तरशतं जपित्वा, हृदयकमलमध्ये कामराजकूटं बालार्ककोटिप्रभं हृदयामिमूलाधारान्तं व्याप्तरश्मिकदम्बकं च ध्यायन्, कामराजकूटमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा प्राणायामादिपूर्वकं जपं समर्प्य प्रणम्य मूलदेवीं कामेश्वरीं हृदये विसृजेत्।। इति मध्याह्नसन्ध्याविधिः।।

अथ सायंसन्ध्याविधिः— तत्र प्राणायामादिसूर्यतर्पणान्तं प्राग्वद्विधाय बीजसन्ध्यां कुर्यात्। सायमाज्ञाचक्रे हक्षाख्ये चन्द्रमण्डले मूलविद्यायास्तृतीयकूटमुच्चार्य त्रिपुरामृतेश्वरीपा० इति गन्धादिभिस्त्रिः सम्पूज्य, वक्ष्यमाणतार्तीयकूटगायत्रीमुच्चार्य श्रीत्रिपुरामृतेश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा इति त्रिरर्घ्यं दत्त्वा, पुनस्तार्तीयकूटमुच्चार्य श्रीत्रिपुरामृतेश्वरीं तर्पयामि इति त्रिःसन्तर्प्य, प्राणायामादिपूर्विकां तुरीयविद्यागायत्रीं प्राग्वज्जप्त्वा शक्तिकूटगायत्रीं जपेत्।। यथा—२ सौः त्रिपुरादेव्यै विद्महे शक्तिकामेश्वर्यै धीमहि तन्नोऽमृता प्रचोदयात्। इति शक्तिगायत्रीमष्टाविंशतिवारं जपित्वा सायाह्ने षोडशनित्यात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत्।

तद्यथा—

सायमाज्ञासरोजस्थचन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम्। शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम्।। १।।
युगनित्याक्षरां देवीं घटिकावरणां पराम्। चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम्।। २।।
पुस्तकं चाक्षसूत्रं च दधानाः स्मेरवक्त्रकाः। नित्याः षोडश चाज्ञायां सायंकाले तु संस्मरेत्।।३।।

इति देवीं ध्यात्वा, (१) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः कामेश्वरीविद्यामुच्चार्य अं कामेश्वरीनित्यारूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः।। (२) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः भगमालिनीविद्यामुच्चार्य आं भगमालिनीनित्यारूपिणीश्रीमहा०।। (३) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः नित्यक्लिन्नाविद्यामुच्चार्य इं नित्यक्लिन्नानित्यारूपिणी श्री०।। (४) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः भेरुण्डाविद्यामुच्चार्य ईं भेरुण्डानित्यारूपिणी०।। (५) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः वह्निवासिनीविद्यामुच्चार्य उं वह्निवासिनीनित्यारू०।। (६) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः वज्रेश्वरीविद्यामुच्चार्य ऊं वज्रेश्वरीनित्यारू०।। (७) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः शिवादूतीविद्यामुच्चार्य ऋं शिवादूतीनित्यारू०।।

(८) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः त्वरिताविद्यामुच्चार्य ऋं त्वरितानित्यारू०।। (९) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः कुलसुन्दरीविद्यामुच्चार्य लृं कुलसुन्दरीनित्यारू०।। (१०) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः नित्यानित्याविद्यामुच्चार्य लॄं नित्यानित्यारू०।। (११) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः नीलपताकाविद्यामुच्चार्य एं नीलपताकानित्यारू०।। (१२) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः विजयाविद्यामुच्चार्य ऐं विजयानित्यारू०।। (१३) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः सर्वमङ्गलाविद्यामुच्चार्य ओं सर्वमङ्गलानित्यारू०।। (१४) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः ज्वालामालिनीविद्यामुच्चार्य औं ज्वालामालिनीनित्यारू०।। (१५) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः विचित्रानित्याविद्यामुच्चार्य अं विचित्रानित्यारू०।। (१६) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः पञ्चदशीविद्यामुच्चार्य अः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्यारूपिणीश्री०, इति षोडशनित्यात्मकत्वेन जपित्वा प्राग्वत् कालनित्याविद्यां च जपित्वा, भ्रूमध्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तृतीयकूटं शरच्चन्द्रकोटिनिभं ध्यायन्नष्टोत्तरशतं तार्तीयकूटं जपेत्। ततः प्राणायामपूर्वकं जपं समर्प्य स्तुत्वा देवीं प्रणम्य सूर्यमण्डलस्थमूलदेवीममृतेश्वरीं हृदि भ्रूमध्ये च विसृजेत्।। इति सायंसन्ध्याविधिः।।

ततोऽर्धरात्रे तुरीयसन्ध्यामुपासीत। सायं यथार्कमण्डले देवीध्यानं बिना प्राणायामाद्याचमनपर्यन्तं पूर्ववद्विधाय, सहस्रारकमले तुरीयकूटं मूलविद्यात्रयोदशाक्षररूपं पद्मरागसमप्रभं ध्यात्वा वहन्नासापुटेन तारकमण्डलाद्बहिः परमाकाशे समावाह्य तदुद्भूतां भगवतीं यथोक्तरूपां ध्यायन् तुरीयकूटमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहेति त्रिरर्घ्यं दत्त्वा, पुनस्तुरीयकूटमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां सन्तर्पयामीति त्रिः सन्तर्प्य, प्राणायामादिपूर्वकं प्रागुक्तां तुरीयगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा कालनित्याविद्यामष्टोत्तरशतवारं जपित्वा प्राणायामादिपूर्वकं जपं समर्प्य देवीं स्तुत्वा परमाकाशात् सहस्रदलकमलकर्णिकायामुद्वास्य कामकलारूपमात्मानं ध्यायेत्।। इति तुरीयसन्ध्याविधिः।।

एतत्सन्ध्याचतुष्टयोपासनमेतद्विद्योपासकानामावश्यकम्। तत्राप्यशक्तौ ध्यानरूपमेवार्धरात्रसन्ध्योपासनं कार्यमिति। अकृते द्वितीयदिने प्रायश्चित्तार्थमष्टोत्तरशतं मूलविद्यां जपित्वा पुनः कर्म कर्तुमधिकारी भवति, इति शिवशासनम्।। "स्नानसन्ध्यार्चनालोपे जपेदष्टोत्तरं शत"मिति तन्त्रराजवचनात्। जपेन्मूविद्यामिति शेषः। अत्र—

सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते।। १।।

इति वचनात् सन्ध्याचतुष्टयं साधकैरवश्यं कर्तव्यमिति। अत्र प्रमादात्सन्ध्यालोपो यदि भवति तदा त्वन्यसन्ध्यासमये प्रोक्तप्रायश्चित्तपूर्वकं पूर्वसन्ध्याक्रियां विधाय तत्कालसन्ध्यां कुर्यात्।। उक्तं च त्रिपुरार्णवे—

सन्ध्याहीनोऽन्यसन्ध्यायां पूर्वसन्ध्याक्रियामथ। विधायोत्तरसन्ध्यायाः क्रियां कुर्यात् समाहितः।। १।।

इति। सन्ध्यावन्दनानन्तरं पित्रादितर्पणं कुर्यात्। तत्र प्राणायामत्रयमृष्यादिन्यासपूर्वकं स्वपुरतो जले पूर्ववत्तीर्थमावाह्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य, तत्र श्रीचक्रं विभाव्य तन्मध्ये वक्ष्यमाणप्रकारेण पीठपूजापुरःसरं देवीमावाह्य, षोडशोपचारैर्जले देवीं सम्पूज्य, वक्ष्यमाणविधिनाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य, २ मूलविद्यामुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां तर्पयामीत्यष्टोत्तरशतं तदर्धमष्टाविंशतिवारं वा यथाशक्ति तत्तीर्थजलैः परदेवतामुखकमले परमामृतबुद्ध्या सन्तर्प्यावरणदेवता यथाक्रमं पूजोक्तमन्त्रैः पूजयामीति स्थाने तर्पयामीत्यन्तैरेकैकाञ्जलिना तर्पयेत्। तदशक्तौ वटुकादिचतुष्टयषडङ्गयुवती-गुरुपङ्क्तित्रय-सप्तदशनित्याभिः सहितां चतुरस्रवृत्तोपेतत्रिकोणमण्डलमध्यस्थां सायुधत्रिकोणावरणशक्तियुतां मूलदेवीं तर्पयेत्। तत्राप्यशक्तौ संस्कृते जले देवीं ध्यात्वा सम्पूज्य देवीमेव तर्पयेत्, इति नित्यतर्पणविधिः।। अथ—"रक्तगन्धाम्बरः स्रग्वी रक्तभूषाविभूषितः। प्रसन्नचेताः कर्पूरवासितास्योऽङ्गरागवान्।। पद्मासनः

प्राग्वदन: प्राणानाम्य संयत:।'' (तं० ५। १९) इति। एतादृशो दैदिकवर: प्राग्वत् षोडशार्णमनुना विघ्नशान्तये सर्वभूतबलिं दत्त्वा मूर्ध्नि नाथान् गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलार्चनास्तोत्रस्वात्मनिरूप(वेद)नमिति नवोपचारैरभ्यर्च्य, स्वनाथं तन्मयीभूतमात्मानं तदात्मकं ध्यात्वा, पश्चात् तदाज्ञया न्यासत्रयं शिष्यदेहे विधाय ध्यानमानसपूजान्ते मध्यस्थकलशाधारे दशकलात्मकं वह्निमण्डलं ध्यात्वा, तत्तत्कलास्थानेषु प्राक्प्रोक्तप्रकारेण शैवाष्टत्रिंशत्कला महाषोढोक्तमूर्त्यष्टत्रिंशत्कलाश्च भावयित्वा सर्वासामैक्यं भावयन्, कलशपात्रं, शक्त्यष्टगन्धै: संलिप्य पट्टवस्त्रयुगेनाच्छाद्य, तदुपरि फलं पञ्चपल्लवादिकं नि:क्षिप्य पुष्पमालाभि: संवेष्ट्य, तदुपरि श्रीचक्रं भावयित्वाभ्यर्च्यात्माष्टाक्षरमन्त्रेणात्मपूजां विधाय पीठपूजामारभेत्। तत्र तावत् पश्चिममिक्षुरससमुद्रं प्राप्य, तदन्तरे पश्चिमकोणे तीरपालिकां पञ्चमी[1]मुक्तप्रकारेण षोडशोपचारैराराध्य, तदाज्ञया सागरे उत्तरपश्चिमकोणे रत्नपोतं प्राप्य ह्री: रत्नपोताय नम:, इत्यादि कुरुकुल्लापूजां विधाय, तदाज्ञया रत्नद्वीपं परितो विलोमेन परीयमाणे पश्चिमे ह्रींश्रीं इक्षुरससागराय नम:। दक्षिणे—इरासागराय०। पूर्वे—घृतसागराय०। उत्तरे—दुग्धसागराय नम:। इति सम्पूज्य, रत्नद्वीपस्य पश्चिमे पुष्पं दत्त्वा पुष्पदण्डमासाद्य तदाज्ञयावतरेत्। तत: ''कोटियोजनविस्तीर्णसमायामं महाद्भुतम्। नवरत्नमयं द्वीपं तन्मानाद्रिभिरावृतम्। सहस्रादित्यसङ्काशम्'' इति ध्यात्वा ह्रींश्रींअं ५१ नवखण्डविराजिताय नवरत्नमयद्वीपाय नम:। तत्रैव कल्पवृक्षोद्यानाय नम:। तत्रैव देव्यवेक्षणान् षड्ऋतून् ध्यात्वा, वसन्तादिषड्ऋतुभ्यो नम:। पश्चिमे देव्यभिमुखान् इन्द्रियाश्वान् ध्यात्वा २ इन्द्रियाश्वेभ्यो नम:। पूर्वे देव्यभिमुखानिन्द्रियार्थगजान् ध्यात्वा २ इन्द्रियार्थगजेभ्यो नम:। तत: पश्चिमादिमध्यान्तं विलोमेन नवरत्नानि पूजयेत्। २ पुष्परत्नाय नम:। नैर्ऋते २ नीलरत्नाय नम:। दक्षिणे २ वैदूर्यरत्नाय नम:। आग्नेये २ विद्रुमरत्नाय नम:। पूर्वे २ मौक्तिकरत्नाय नम:। ईशाने २ मरकतरत्नाय नम:। उत्तरे २ वज्ररत्नाय नम:। वायव्ये २ गोमेदरत्नाय नम:। मध्ये ह्रींश्रींपद्मरागरत्नाय नम:। ततस्तेनैव क्रमेण देव्यवेक्षिणीनवचक्रेश्वरीशक्तिपादुकां पूजयामि नम:। एवं २ कालमुद्रामातृकारत्नदेशगुरुतत्त्वग्रहमूर्तिस्वरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि। तत: करुणातोयपरिधये नम:। ततस्तन्मध्ये रत्नद्वीपस्य तृतीयाशं कोट्यादित्यसमत्विषं माणिक्यमण्डपं ध्यात्वा, मण्डपाद्बहि: पश्चिमादिविलोमेन २ कालचक्रेश्वरीपा०। २ मुद्राचक्रेश्वरीपा०। २ मातृकाचक्रेश्वरीपा०। २ रत्नचक्रेश्वरीपा०। निर्ऋत्यादिकोणेषु विलोमेन देव्यवेक्षिणी: शक्तीर्ध्यात्वा; २ देशस्वरूपिणीशक्तिपा०। २ कालस्वरूपिणीशक्तिपा०। २ आकारस्वरूपिणीशक्तिपा०। २ शक्ति(ब्द) स्वरूपिणीशक्तिपा०। ततो मण्डपान्तर्देव्यवेक्षिणी: पार्श्वयो: षड्क्त्युपविष्य: सङ्गीतयोगिनीर्ध्यात्वा २ सङ्गीतयोगिनीशक्तिपा०। तत: सिंहासनपरिसरे देव्यवेक्षिणी: शक्तीर्ध्यात्वा, २ समस्तगुप्तप्रकटसिद्धयोगिनीचक्रश्रीपा०।। इति पीठपूजा।।

अथार्घ्यस्थापनम्—तत्र त्रिलोहकाचमृत्पात्रेभ्योऽन्यतमं पात्रं स्वपुरत: साधारं संस्थाप्याम्बुभिरापूर्याधारपात्राम्बुष्वग्निसूर्यसोमात्मकत्वं सञ्चिन्त्य विद्याखण्डत्रयात्मकमष्टात्रिंशत्कलात्मकत्वं ज्ञात्वाम्बुनि रोचनाचन्द्रकाश्मीरलघुकस्तूरिका: क्रमेण पृथिव्यादिभूतात्मिका मत्वा क्षिप्त्वा, तार्तीयेन धेनुमुद्रा योनिमुद्रां च प्रदर्श्य तत्र श्रीचक्रं ध्यात्वार्घ्यस्य समीरनिर्ऋति-ईशानवह्निकोणेषु मध्ये पश्चिमाद्यनुलोमेन चतुर्दिक्षु षडङ्गमन्त्रैर्दशदशवारमभ्यर्च्य षोडशविद्यानित्याभिश्चैकैकवारं तार्तीयेन दशवारं दिननित्यया च त्रिवारं जपित्वाभ्यर्च्य तेनार्घ्यवारिणा विद्यया स्वात्मपूजोपकरणान्यशेषं प्रोक्षयेदित्यर्घ्यं विधाय न्यासान् कुर्यात्। तत उक्तरीत्या प्राणानायम्य अंआंसौ: इति विद्यया

---

१. सर्वमन्त्रासनविद्यामित्यर्थ:।

वामदक्षिणकरपृष्ठयोरन्योन्यमार्जनात् करशुद्धिं कृत्वा, पादयोः २ ह्रींक्लींसौः देव्यात्मासनाय नमः। जङ्घयोः २ हैंहक्लींहसौः चक्रासनाय नमः। जान्वोः २ ह्सैंह्सक्लींह्सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः। लिङ्गे २ ह्रींश्रींब्लें साध्यसिद्धासनाय नमः, इति चतुरासनन्यासं कृत्वा कुलसुन्दरीविद्यया द्विरावृत्त्या करषडङ्गन्यासं कृत्वा प्राग्वद्वशिन्यादि-अष्टवाग्देवतान्यासं कुर्यात्। ततो मूलाद्यषडङ्गेन (द्वेन) मूर्धादिहृदन्तं मूलापरेण हृदादिप्रपदान्तं मूलान्तेन प्रपदादिहृदन्तमञ्जलिना व्यापकं कुर्यात्। इति न्यासाः॥

ततः कलशोपरि स्वतन्त्रोक्तश्रीयन्त्रं विभाव्य बैन्दवे ह्रींश्रींसौः इति शक्त्युत्थापनमुद्रया मूर्तिं परिकल्प्य ह्स्त्रैंहसकलरींह्स्त्रौं(स्त्रौः) नमः इति पुष्पगर्भां त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा तस्यां मूलहृन्मूर्धसु(मूल?) वह्निसूर्यसोमात्मकत्वानुसन्धानरूपया त्रिपुरामुद्रया तत्तेजस्त्रयरूपिणीं देवतां वहन्नासापुटेन स्वान्तादानीय कल्पितमूर्तावावाह्य सावरणां ध्यायेत्—

लोहितां ललितां बाणचापपाशसृणीः करैः। दधानां कामराजाङ्के यन्त्रितां मुदितां स्मरेत्॥ १॥
हारग्रैवेयरत्नादिमुद्रिकानूपुरान्विताम्। नवरत्नमयैश्चित्रैः स्तवकैश्चोपशोभिताम्॥ २॥
वलयैरङ्गदै रत्नमयैरप्यङ्गुलीयकैः। विराजमानां तां दिव्यां दिव्यांशुकविधारिणीम्॥ ३॥
शुचिस्मितां शक्तिवृन्दगीताकर्णननन्दिताम्। सहजासवसम्भोगैः सञ्जातानन्दविग्रहाम्॥ ४॥
दयामदात् प्रागपाङ्गपरिपालितसाधकाम्। परितो भूषणैश्चित्रैः कार्ष्णचामरकादिभिः॥ ५॥
विराजमानान् द्विरदानश्वानपि तथाविधान्। शक्तिभिर्दर्शितानग्रे पश्यन्तीममितोत्सवाम्॥ ६॥
स्वसमानामितोदारनित्याभिः सेवितां पराम्। मध्यप्रधानदेव्यास्तु समुल्लासात्मकत्वतः॥ ७॥
नवावरणशक्तीनां ध्यानं देव्या समं भवेत्। कामाङ्कयन्त्रादन्यत्र भूषावर्णायुधादिकम्॥ ८॥
तत्समं परमेशानि चक्रस्थानामशेषतः। (तं० ४। ६५) इति।

ततः स्थापनी-सन्निरोधिनी-अवगुण्ठनी-सन्निधापनीति मुद्राचतुष्कं तार्तीयेन प्रदर्श्य सर्वसङ्क्षोभिन्यादिमुद्रानवकं हेतिमुद्राचतुष्कं च प्रदर्श्य देवीमुपचारैः समर्चयेत्। तार्तीयदिननित्याभ्यां "पाद्यार्घ्याचमनस्नानवसनाभरणानि च। गन्धं पुष्पं धूपदीपौ नैवेद्याचमनं पुनः। ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणं च नमस्क्रियाम्"॥ (तं० ५। ३) इति षोडशोचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै पाद्यं परिकल्पयामीति क्रमेण कुर्यात् क्षौद्रदुग्धनारिकेलाम्बुफलादिभिः कुर्यात्। विशेषस्तु अर्घं स्वाहा, आचमनीयं स्वधा, इत्यादि। पुष्पाणि वौषडिति। ततोऽनुज्ञां लब्ध्वा परिवारार्चनं कुर्यात्। तत्र देवीपृष्ठभागे त्रिकोणाद्बहिरन्तराले देवीवामभागादिदक्षभागान्तं पङ्क्त्युपविष्टांस्त्रीन् देव्यवेक्षिणीदेवीरूपान् दिव्यसिद्धमानवाख्यान् नवनाथान् पूजयेत्। यथा—ह्रींश्रीं प्रकाशानन्दशक्तिपादुकां पूजयामीत्यादिक्रमेण पूजयेत्। ततो देवीमूर्तौ तन्मयीस्तद्रूपाः पञ्चदशतिथिनित्याः पूजयेत्। ह्रींश्रीं कामेश्वरीनित्याविद्यामुच्चार्य कामेश्वरीनित्यापदुकां पूजयामीत्यादिक्रमेण तिथिनित्याः पूजयेत्॥ अथावरणपूजा—तत्र चतुरस्रे पश्चिमद्वारशाखायाम् २ अणिमासिद्धिपा०। २ लघिमासिद्धिपा०। २ महिमासिद्धिपा०। २ ईशित्वसिद्धिपा०। २ वशित्वसिद्धिपा०। २ प्राकाम्यासिद्धिपा०। २ भुक्तिसिद्धिपा०। २ इच्छासिद्धिपा०। २ रससिद्धिपा०। २ सर्वकामासिद्धिपा०। २ ब्राह्मीपा०। २ माहेश्वरीपा०। २ कौमारीपा०। २ वैष्णवीपा०। २ वाराहीपा०। २ इन्द्राणीपा०। २ चामुण्डापा०। २ महालक्ष्मीपा०, (२ द्रां सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्रापा०। २

द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रापा०। २ क्लीं सर्वाकर्षिणीमु०। २ ब्लूं सर्वशक्तिकरणीमु०।२ स: सर्वोन्मादिनीमु०। २ क्रों सर्वमहाङ्कुशामु०। २ हस्रैं हसकलरीं हसरौ: त्रिखण्डामु०। २ हसखफ्रें खेचरीमुद्रापा०। २ ह्सौ बीजमुद्रापा० २ ऐं महायोनिमुद्रापा०।) इति सम्पूज्य अणिमासिद्ध्यग्रे—२ मूलं त्रिपुराचक्रेश्वरीनित्यापा० इति सम्पूज्य, एता: प्रकटयोगिन्य: त्रैलोक्यमोहने चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते पूजां निवेद्य द्रामिति सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति प्रथमावरणम्।। १।।

ततः षोडशदले देव्यग्रदलमारभ्य वामावर्तेन—२ अंकामाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ आंबुद्ध्याकर्षिणी-नित्याकलापा०। २ इंअहङ्काराकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ईंशब्दाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ उंस्पर्शाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ऊंरूपाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ऋंरसाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ॠंगन्धाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ऌंचित्ता-कर्षिणीनित्याकलापा०। २ ॡंधैर्याकर्षिणीनित्याकलापा०। २ एंस्मृत्याकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ऐंनामा-कर्षिणीनित्याकलापा०। २ ओंबीजाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ औंआत्माकर्षिणीनित्याकलापा०। २ अंअमृताकर्षिणी-नित्याकलापा०। २ अ:शरीराकर्षिणीनित्याकलापा०। इति सम्पूज्य २ मूलं त्रिपुरेश्वरीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति कामाकर्षिण्यग्रे सम्पूज्य, एता गुप्तयोगिन्य: सर्वाशापरिपूरके चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य द्रामिति सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति द्वितीयावरणपूजा।। २।।

ततोऽष्टदले प्रागादिदिक्षु—२ अनङ्गकुसुमापा०। २ अनङ्गमेखलापा०। २ अनङ्गमदनापा०। २ अनङ्गमदनातुरापा०। २ २ अनङ्गरेखापा०। २ अनङ्गवेगिनीपा०। २ अनङ्गाङ्कुशापा०। २ अनङ्गमालिनीपा०। इति सम्पूज्य, अनङ्गकुसुमाग्रे—२ मूलं त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता गुप्ततरयोगिन्य: सर्वसङ्क्षोभणे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य क्लीमिति सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति तृतीयावरणपूजा।। ३।।

ततश्चतुर्दशारे देव्यग्रादिवामावर्तेन—२ सर्वसङ्क्षोभिणीशक्तिपा०। २ सर्वविद्राविणीशक्तिपा०। २ सर्वाकर्षिणीशक्तिपा०। २ सर्वाह्लादिनीशक्तिपा०। २ सर्वसम्मोहिनीशक्तिपा०। २ सर्वस्तम्भिनीशक्तिपा०। २ सर्वजृम्भिनीशक्तिपा०। २ सर्ववशङ्करीशक्तिपा०। २ सर्वरञ्जिनीशक्तिपा०। २ सर्वोन्मादिनीशक्तिपा०। २ सर्वार्थसाधिनीशक्तिपा०। २ सर्वसम्पत्प्रपूरणीशक्तिपा०। २ सर्वमन्त्रमयीशक्तिपा०। २ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिपा०। इति सम्पूज्य, सर्वसङ्क्षोभिण्यग्रे २ मूलं त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वरीनित्यापा०, इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता: सम्प्रदाययोगिन्य: सर्वसौभाग्यदे[1] चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य ब्लूमिति सर्ववशङ्करणीमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति चतुर्थावरणपूजा।। ४।।

ततो बहिर्दशारे देव्यग्रादिवामावर्तेन—२ सर्वसिद्धिप्रदादेवीपा०। २ सर्वसम्पत्प्रदादेवीपा०। २ सर्वप्रियङ्करीदेवीपा०। २ सर्वमङ्गलकारिणीदेवीपा०। २ सर्वकामप्रदादेवीपा०। २ सर्वदु:खविमोचिनीदेवीपा०। २ सर्वमृत्युप्रशमनीदेवीपा०। २ सर्वविघ्ननिवारिणीदेवीपा०। २ सर्वाङ्गसुन्दरीदेवीपा०। २ सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीपा०, इति सम्पूज्य, सर्वसिद्धिप्रदादेव्यग्रे २ मूलं त्रिपुराश्रीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता: कुलकौलयोगिन्य: सर्वार्थसाधके चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य स: इति सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति पञ्चमावरणपूजा।। ५।।

ततोऽन्तर्दशारे देव्यग्रादिवामावर्तेन— २ सर्वज्ञाशक्तिपा०। २ सर्वशक्तिशक्तिपा०। २ सर्वैश्वर्यप्रदाशक्तिपा०।

---

१. "दायके" ख. पाठ:।

२ सर्वज्ञानमयीशक्तिपा०। २ सर्वव्याधिविनाशिनीशक्तिपा०। २ सर्वाधारस्वरूपाशक्तिपा०। २ सर्वपापहराशक्तिपा०। २ सर्वानन्दमयीशक्तिपा०। २ सर्वरक्षास्वरूपिणीशक्तिपा०। २ सर्वेप्सितफलप्रदाशक्तिपा०। इति सम्पूज्य, सर्वज्ञाशक्त्यग्रे २ मूलं त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य क्रों इति महाङ्कुशामुद्रां प्रदर्शयेत्।। इत षष्ठावरणपूजा।। ६।।

ततोऽष्टारे देव्यग्रादिवामावर्तेन— २ अं १६ ब्लूँवशिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि नमः। २ कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतापा०। २ न्ब्लूं मोदिनीवाग्देवतापा०। २ य्लूं विमलावाग्देवतापा०। २ ज्म्रीं अरुणावाग्देवतापा०। २ हसलवयूँजयिनीवाग्देवतापा०। २ झमरयूंसर्वेश्वरीवाग्देवतापा०। २ क्ष्म्रींकौलिनीवाग्देवतापा०। इति सम्पूज्य, वशिन्यग्रे २ मूलं त्रिपुरसिद्धाचक्रेश्वरीनित्यापा०। इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, २ एता रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य २ हसखफ्रें इति सर्वखेचरीमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति सप्तमावरणपूजा।। ७।।

ततोऽन्तराले देवीभुजान्तिके समीरराक्षसाग्नीशकोणेषु ह्रींश्रींयांरांलांवांसांद्रांद्रींक्लींब्लूंसः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरकामेश्वरीबाणेभ्यो नमः। ह्रींश्रींथंधं सर्वमोहनकामेश्वरीधनुर्भ्यां नमः। ह्रींश्रींह्रींआं सर्ववशङ्करकामेश्वरकामेश्वरीपाशाभ्यां नमः। ह्रींश्रींक्रोंक्रों सर्वस्तम्भनकामेश्वरकामेश्वर्यङ्कुशाभ्यां नमः। ततस्त्रिकोणे देव्यग्रादिवामावर्तेन २ वाग्भवकूटं कामपीठे कामेश्वरीदेवीपा०। २ कामराजकूटं पूर्णगिरिपीठे वज्रेश्वरीदेवीपा०। २ शक्तिकूटं जालन्धरपीठे भगमालिनीदेवीपा० इति सम्पूज्य, कामेश्वर्यग्रे २ मूलं त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरीनित्यापा०। इति चक्रेश्वरी सम्पूज्य, २ मूलं एताः परापररहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे पूजां गृह्णन्तु इति, तस्या वामहस्ते निवेद्य ह्सौः इति बीजमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इत्यष्टमावरणपूजा।।८।।

ततो बिन्दुस्थाने—२ मूलं उड्यानपीठे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीपा० इति सम्पूज्य, २ महात्रिपुरसुन्दरी-चक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, २ एषा अतिरहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे पूजां गृह्णातु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य ऐमिति सर्वमहायोनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।। इति नवमावरणपूजा।। ९।।

ततः पुनरपि प्रसन्नपूजात्वेन षोडशोपचारैः पुनराराध्य सङ्क्षोभण्यादिमुद्राः प्रदर्श्य देवतागुरुस्वात्मनामैक्य-सिद्धिकरणभावनायोगपूर्वकं मूलं दशधा जपेत्। तद्भावना तु— मूलखण्डत्रयमपि तुर्यस्वरावसानं कृत्वा तत्स्वरस्य च बिन्दुत्रयं मत्वा, तदूर्ध्वे बिन्दुना देव्या वदनं भावयन् तदधःस्थबिन्दुद्वयेन देव्याः कुचयुगं भावयन् तच्छेषार्धमात्रया[१] शेषाङ्गानि देव्या भावयन् देवताया मन्त्रात्मकत्वं गुरोरपि मन्त्रात्मकत्वं भावयन्नात्मश्च सर्वात्मकत्वम्। एतेन त्रयाणां मन्त्रात्मकत्वत्रितयात्मकत्वभावना फलितसर्वैक्यभावनारूपा। ततः स्वात्मानं देवतारूपं स्मरन् स्वात्मनि ताः पञ्चदशनित्यास्तत्तद्विद्याभिरभ्यर्च्य पञ्चभूतमन्त्रैरात्मानमभ्यर्चयेत्।

यथा—२ अआएकचटतपयषप्राणशक्तिपादुकां पूजयामि। २ इईऐखछठथफरक्षअग्निशक्तिपा०। २ उऊओगजडदबलळभूमिशक्तिपा०। २ ऋॠऔघझढधभवसअम्बुशक्तिपा०। २ लृॡअंङञणनमशहखशक्तिपा०। २ ततो "ओंह्रींहंसःसोऽहं स्वाहा" इत्यात्माष्टाक्षरमन्त्रेणात्मानमभ्यर्च्यात्मनि प्रपञ्चेन यागभावनां कृत्वा, स्वतन्त्रोक्तमाद्योपान्तं योनिमुद्राबन्धनं कृत्वा मन्त्रवीर्ययोजनं च कृत्वा, पूर्वोक्तभावनापूर्वं स्वतन्त्रोक्तं मन्त्रार्थचिन्तनं कुर्वन् स्वतन्त्रोक्तमालया सहस्रं शतं वा तद्दिनजपसंख्यं वा मूलमन्त्रं जपेत्।। ततः किञ्चित्कालं शक्त्युत्थापनमुद्रां बद्ध्वा मूलेन पुष्पाञ्जलिं

---

१. शेषरेखारूपया इत्यर्थः।

कृत्वाभ्यर्च्य नित्यहोमं कुर्यात्। तत आचार्यकुण्डे तत्रार्घ्याम्बुना तार्तीयदिननित्याभ्यां कुशैः रेखाश्चतस्रः प्रागग्रा उदगग्राश्च संलिखेत्। तन्मध्यकोष्ठे ताभ्यां वह्निमाधाय "क्रव्यादेभ्यो नमः" इत्यङ्गारशकलं दक्षिणदिश्यपास्य, ताभ्यां प्रदक्षिण्येन भ्रामयित्वाम्बुना परिषिच्य, ताभ्यां चतुर्दिक्षु प्रागग्रैरुदगग्रैश्च कुशैः परिस्तीर्य, वह्निं प्रज्वाल्य ज्वालिनीमुद्रां प्रदर्श्य देवीरूपं विभाव्य ह्रींश्रीं अग्नये नमः इत्यभ्यर्च्य, ह्रींश्रींहिरण्यायै नमः, इत्यादिभिस्तदा जिह्वामन्त्रैरभ्यर्च्य, "हिरण्या कनका रक्ता" इति दक्षिणवक्त्रस्थजिह्वानां "सुप्रभातिरक्ता बहुरूपा" इति तद्वामवक्त्रस्थजिह्वानां च स्मरणपूर्वकं प्रत्येकं तासु क्रमेण नवनव घृताहुतीर्हुत्वा, तार्तीयदिननित्याभ्यां हुत्वा बहुरूपाजिह्वास्मरणपूर्वकं तस्यां मृगीहंसीसूकरीष्वन्यतमया मुद्रयान्नपायसतिलतण्डुलद्रव्येष्वन्यतमद्रव्येण पूजाक्रमेणैव हुत्वा तद्दिननित्ययात्माष्टाक्षरेण भूतमन्त्रैश्च जुहुयात्। ततो मूलेन सहस्राहुतीर्हुत्वा हुतसंख्यं मूलं जपेत्। तत ऋत्विजः स्वस्वकुण्डेषु आचार्यकुण्डादग्निं गृहीत्वा संस्कृतेष्वष्टस्वग्निं प्रज्वाल्य प्रागुक्तमन्त्रैर्जुहुयुर्हुतसंख्याकजपं च कुर्युः। शान्तिपाठका द्वारपालकाश्च नित्याकवचं पठेयुः। मण्डपपूजा तु प्रागेवोक्ता। ततो गुरुर्मध्यत्रिकोणस्थषोडशकलशेषु सर्वमध्यस्थकलशे ललितां, पञ्चदशकलेषु पञ्चदश नित्याः (पूजयेत्।) एवं षोडशीकृतस्थानस्थितषोडशकलशेषु पूजाक्रमो बोद्धव्यः। तानि स्थानानि चतुरस्ररेखात्रयान्तरालगतवीथीद्वये सिद्धिदशकस्थानेषु ब्राह्म्याद्यष्टकस्थानेषु षोडशदलेषु आयुधाष्टकपूजास्थानेषु चतुर्दशद्विदशाष्टारचक्रचतुष्टयगतद्विचत्वारिंशत्त्रिकोणेषु पञ्चनवतिसंख्येषु श्रीचक्रगताष्टारदेवतापूजास्थानत्रिकोणेषु प्रतित्रिकोणं रेखात्रयेऽपि प्रतिरेखं समान्तरालानि त्रीणि त्रीणि चिह्नानि कृत्वा तेषु चिह्नाच्चिह्नमिति क्रमेण नवतिर्यग्रेखाभिः षोडशीकृतत्रिकोणेषु षण्णवतित्रिकोणगर्भगतेषु पञ्चत्रिंशदधिकसार्धसहस्रसंख्याकेषु त्रिकोणेषु स्थापिततावत्संख्याककलशेषु जलपूर्णेषु वस्त्रयुग्मवेष्टितेषु पञ्चरत्नपञ्चपल्लवसप्तमृत्तिकाचन्दनपुष्पयुतेषु देवता आवाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य मध्यमकुम्भं स्पृशन् वक्ष्यमाणषट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याकाः कालनित्याविद्याः पूजयेत्।। तास्तु श्रीतन्त्रराजे– (२५।१)

> अथ षोडशनित्यानां षट्त्रिंशत्तत्त्वविग्रहैः। वर्णैस्तज्जनितैर्मन्त्रैर्यन्त्रैः कालात्मतां क्रमात्।। १ ।।
> कथयामि प्रयोगांश्च नानाभीष्टाप्तिकारकान्[१]। यज्ज्ञानोपास्तिभेदाभ्यां मन्त्राः सिद्ध्यन्ति वर्णिनः।।२ ।।
> स्वराः षोडश नित्याः स्युः कादिक्षान्ताः स्वरान्विताः। ते तु तत्त्वानि षट्त्रिंशद्वर्गा नाथा नवात्मकाः।।३ ।।

इति। अत्र षोडशस्वरात्मकत्वेन अकारस्त्वेकं व्यञ्जनं ककारादिपञ्चत्रिंशद्व्यञ्जनानि सम्भूय षट्त्रिंशद्व्यञ्जनानि षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाणीत्यर्थः।। अथैकपञ्चाशदक्षराणां तु वर्गविभागमाह–

> अष्टावष्टौ स्वरे वर्गः परतः पञ्च पञ्च च। मातृणां तु स्वरैरेको वर्गः पूर्वदुत्तरम्[२]।। ४।।

इति। अत्र स्वराणां तु अष्टावष्टौ क्रमेण वर्गद्वयं ककारादिपञ्चत्रिंशद्वर्णाः पञ्चपञ्चविभागेन सप्त वर्गाः, (एते नव वर्गा नवनाथानामित्यर्थः। ब्राह्म्याद्यष्टमातृणां वर्गास्तु–षोडशस्वराणामेको वर्गः, उत्तरं पूर्ववत्। कादीनां सप्त वर्गाः।) एतेऽष्टौ वर्गा अष्टमातृणामित्यर्थः।। पूर्णमण्डलवर्णक्रममाह–

> नित्यानां तत्त्वसंयोगे वर्णसंख्या समीरिता। षट्सप्तत्या पञ्चशतं तावदब्दैस्तु पूर्णता।। ५।।

इति। नित्यानां षोडशस्वराणां तत्त्वसंयोगात् षट्त्रिंशद्व्यञ्जनसंयोगात् (५७६)। अत्र व्यञ्जनात्मकस्याकारस्य षोडशस्वरसंयोगेन अआइई उऊऋॠ ऌॡएऐ ओऔअंअः, इति षोडश जाताः। एवं ककारस्य षोडशस्वरसंयोगेन ककाकिकी–

१. 'कारणान्' ख. पाठः। २ 'तत्संख्यानां च यन्त्राणां तावदब्दैस्तु पूर्णता; ख. अधिक: पाठः।

कुकूकृकॄ-क्लृक्लॄकेकै-कोकौकंकः। एवमन्येषामक्षराणां खकारादीनां क्षकारान्तानां षोडशस्वरयोगः कर्तव्यः। तेन षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतवर्णाः (५७६) पूर्णमण्डलाख्या भवन्ति॥ तथा–

पूर्णकालसमावृत्तिर्युगपर्या[1]यनामभाक्। त्रिसहस्रसमावृत्त्या प्रोक्ता कृतयुगावधिः ॥ ६॥
तस्य तुर्यांशतुर्यांशहान्या त्रेतादिसम्भवः। मायांधराग्निवातस्वैः कृताद्यर्णाः समीरिताः॥ ७॥
तान् दिनाक्षरसंयुक्तान् मध्ययोनौ समालिखेत्। दिनार्णेषु स्वरा न्यासे बिन्दुरूपा अनुक्रमात्॥ ८॥
वामोर्ध्वदक्षपार्श्वेषु पञ्च पञ्च समीरिताः। तत्तद्युगार्णांस्तत्स्थाने स्वरूपेण व्यवस्थिताः⇒॥ ९॥
व्यञ्जनेषु तु सर्वत्र सुश्लिष्टाः स्वेन संयुताः। सर्वत्र यन्त्रविन्यासप्रतिष्ठार्चाद्यनुग्रहे॥ १०॥
निग्रहे वास्तुविन्यासे गर्भन्यासेष्टसिद्धिकृत्। आरभ्य भानोरुदयमेकशो घटिकाक्रमात्॥ ११॥
एकैकं मातृकावर्णापञ्चाशत्परिवृत्तितः। दिवसैः पञ्चभिस्तस्याः षडावृत्तिरुदीरिता॥ १२॥
एवं युगादिमारभ्य कालोऽर्णात्मा[2] प्रवर्तते। योनौ त्रिकोणमालिख्य तस्मिन् योनिं समालिखेत्।१३॥
तेषु पर्यायनित्यार्णवर्णानालिख्य बाह्यतः। युगार्णं घटिकार्णेन मध्ये विन्यस्य तत्र वै॥ १४॥
नित्याः षोडश देवेशि पूजयेन्नित्यमर्चकः। उत्तमा नित्यनित्यं हि मध्यमा पर्वपर्वणि॥ १५॥
अधमा मासमात्रेण मासादूर्ध्वमयोग्यता। पूर्णमण्डलवर्णाः स्युः प्रथमे त्वादितः क्रमात्॥ १६॥
षट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णास्तद्द्वितीया मरुता क्रमात्। तृतीया सर्वतो वह्निरेवं विद्यास्तु त्र्यक्षराः॥ १७॥
त्रैपुराः सर्वसिद्धीनामाकराः कथिताः क्रमात्। एताः पुस्तकमारोप्य पीठे संस्थाप्य पूजयेत्॥ १८॥
यत्र तत्र गदालक्ष्मीग्रहदुर्भिक्षशत्रवः। भूतापमृत्युकृत्याद्या न भवन्ति पुरादिके ॥ १९॥
अभीप्सितानि सिद्ध्यन्ति तस्य योऽर्चति नित्यशः। सषट्त्रिंशत्सप्तशतं सहस्राणि च विंशतिः।२०॥
तासां संख्या समाख्याता तदावृत्तिस्तदाप्तिकृत्। स्तम्भनाद्येषु तद्वर्णास्तद्रूपा हेतिवाहनैः॥ २१॥
एतैर्ग्रथितजापेन मन्त्राः सिद्ध्यन्ति वर्णिनः। नाथावृत्तिर्मन्त्रराशौ द्विसहस्रं शतत्रयम्॥ २२॥
चत्वारि चेति विज्ञेयास्तत्त्वावृत्तिरुदीरिता। पूर्णमण्डलसंख्यैव नित्यावृत्तिः सहस्रतः[3]॥ २३॥
द्विशतं षण्णवत्यग्रा[4] निःशेषं समुदीरिता।..॥

इति। एतदग्रे प्रपञ्चयिष्यामः। प्रकृते प्रख्यातघटस्य सषट्त्रिंशत्सप्तशतोत्तरविंशतिसहस्रसंख्याककालनित्याविद्याभिरभिमन्त्रणमुक्तं, ताः कालनित्याविद्या त्रिपुरार्णवादिग्रन्थेषु प्रोक्तास्तास्तु श्रीतन्त्रराजेऽपि सूचिताः॥ तन्त्रराजोक्ता अत्र उद्ध्रियन्ते। यथा– अकारादिक्षकारान्ताः षट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णाः षोडशनित्यात्मभिः षोडशस्वरैः प्रत्येकं संयोजिताः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकाः पूर्णमण्डलाख्या भवन्ति। कालनित्याविद्यानां प्रागुक्तसंख्यानामेकैको वर्णः षट्त्रिंशद्विद्यानामादिवर्ण इति सर्वे वर्णा वाग्भवाख्या भवन्ति॥ प्रागुक्तषट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णास्तु सर्वासां विद्यानामाकारेण कृतसन्धिकाः पुनः पुनः क्रमेण कामराजाद्या द्वितीयवर्णा भवन्ति। ईकारस्तु सर्वासां विद्यानां शक्तिकूटाख्यस्तृतीयवर्णो भवति॥

अथैता विद्याः क्रमेण पारायणजपपरिपाट्यैव प्रदर्श्यन्ते। तत्र साधको मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा अद्येहेत्यादि०

१.'युगकल्पादि' ख.पाठः। २.'कालात्मार्णैः' ख.पाठः। ३.'शः'ख.पाठः। ४.'त्यग्र'ख.पाठः।⇒ अःउंइंअं इति युगार्णाः।

करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाख्ये कर्मणि षट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याककालनित्याविद्याभिः पूर्णकलशाभिमन्त्रणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, मस्तकदक्षबाहुमूलादिषट्त्रिंशत्स्थानेषु प्रतिस्थानं षोडशदलपद्मं विभाव्य, तेष्वकारादिक्षकारान्तान् षट्त्रिंशत्तत्ववर्णान् प्रत्येकं षोडशस्वरसंयुक्तान् विभाव्य, मध्ये तत्प्रथमाक्षरं विन्यस्य, पूर्वादिदलेषु तत्तदक्षरविकृतषोडशवर्णांस्तदादिकान् विन्यसेदिति। एवं पूर्णमण्डलवर्णान् विन्यस्य पुनः सहितनित्याविद्यया सहितमूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदये कालनित्याविद्यारूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः, इति ऋष्यादिकं विन्यस्य पूर्णकलशाभिमन्त्रणे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, तत्तद्दिननित्याविद्याक्षरैस्त्रिभिर्द्विरावृत्त्या यथाविधि करषडङ्गन्यासं प्राक्प्रोक्तचतुरासनन्यासं वाग्देवताष्टकन्यासं च विधाय, "रक्तां रक्ताम्बरां रक्तस्रग्विभूषानुलेपनाम्। पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखां स्मरेत्" इति कालनित्यां हृदये ध्यात्वा वक्ष्यमाणविधिना हृदये श्रीचक्रं कालचक्रमध्यगतं विभाव्य, तत्र देवीं सावरणां कालनित्याविद्याभिश्च परिवृतां ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, कालनित्याजपमारभेत्।। तत्रादावङ्गविद्यास्त्रिपुरार्णवोक्ताः प्रोच्यन्ते।। तत्र– ॐ मूलं दि० अह्सौः हंसः। मू० दि० आह्सौः हंसः। मू० दि० इह्सौः हंसः। मू० दि० ईह्सौः हंसः। मू० दि० उह्सौः हंसः। मू० दि० ऊह्सौः हंसः। मू० दि० ऋह्सौः हंसः। मू० दि० ॠह्सौः हंसः। मू० दि० ऌह्सौः हंसः। मू० दि० ॡह्सौः हंसः। मू० दि० एह्सौः हंसः। मू० दि० ऐह्सौः हंसः। मू० दि० ओह्सौः हंसः। मू० दि० औह्सौः हंसः। मू० दि० अंह्सौः हंसः। मू० दि० अःह्सौः हंसः। एवं कादिक्षान्तम्। एवमेकपञ्चाशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपित्वा, केवलमूलविद्यां त्रिर्जपित्वा "ऐं वदवद वाग्वादिनि ऐंक्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय क्लेदय महाक्षोभं कुरुकुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरुकुरु सौःह्सौः" इति दीपिनीविद्यामेकवारं जपित्वा, प्रागुक्तश्रीगुरुपादुकामेकवारं जपित्वा पुनश्चत्वारिंशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत्।। यथा– मूलं आक्षाहमाईहंसः मूलं ईळाहसाईहंसः मूलं ऊहाहसाईहंसः। मूलं ॡ षाहसाईहंसः। मूलं ऐंशाहसाईहंसः मूलं औवाहसाईहंसः मूलं अः लाहसाईहंसः, इत्यष्टधा जपित्वा पुनः मूलं आक्षाईहंसः। मूलं अक्षासाईहंसः। मूलं ईळाईहंसः। (मूलं इळाईहंसः।) मूलं ऊहाईहंसः। मूलं उहाईहंसः। मूलं ॠषाईहंसः। मूलं ऋषाईहंसः। मूलं ॡसाईहंसः। मूलं ऌसाईहंसः। मूलं ऐशाईहंसः। मूलं एशाईहंसः। मूलं औवाईहंसः। मूलं ओवाईहंसः। मूलं अःलाईहंसः। मूलं अंलाईहंसः, इति षोडशधा जपित्वा, पुनः मूलं अकाईहंसः। एवं इचाईहंसः। उटाईहंसः। ऋताईहंसः। ऌपाईहंसः। एयाईहंसः। ओशाईहंसः। अंळाईहंसः, इत्यष्टधा जपित्वा, पुनः– मूलं आक्षाईहंसः। ईळाईहंसः। ऊहाईहंसः। ॠसाईहंसः। ॡषाईहंसः। ऐशाईहंसः। औवाईहंसः। अःलाईहंसः। इत्यष्टधा जपित्वा पश्चात् कालनित्याविद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत्। अयमङ्गविद्याजपो वर्गद्वयस्यादौ प्रत्यहं कार्यः।।

अथ कालनित्याजपः। २ मू० अआईहंसः। २ मू० अकाईहंसः। २ मू० अगाईहंसः। २ मू० अघाईहंसः। २ मू० अङाईहंसः। २ मू० अचाईहंसः। २ मू० अछाईहंसः। २ मू० अजाईहंसः। २ मू० अझाईहंसः। २ मू० अञाईहंसः। २ मू० अटाईहंसः। २ मू० अठाईहंसः। २ मू० अडाईहंसः। २ मू० अढाईहंसः। २ मू० अणाईहंसः। २ मू० अताईहंसः। २ मू० अथाईहंसः। २ मू० अदाईहंसः। २ मू० अधाईहंसः। २ मू० अनाईहंसः। २ मू० अपाईहंसः। २ मू० अफाईहंसः। २ मू० अबाईहंसः। २ मू० अभाईहंसः। २ मू० अमाईहंसः। २ मू० अयाईहंसः। २ मू० अराईहंसः। २ मू० अलाईहंसः। २ मू० अवाईहंसः। २ मू० अशाईहंसः। २ मू० अषाईहंसः। २ मू० असाईहंसः। २ मू० अहाईहंसः। २ मू० अळाईहंसः। २ मू० अक्षाईहंसः। इति जपित्वा, पुनः

२ मू० आआईहंसः। २ मू० आकाईहंसः। एवं बीजद्वयमूलविद्या सर्वत्र योज्या। आखाई। आगाई। आघाई। आङाई। आचाई। आछाई। आजाई। आझाई। आञाई। आटाई। आठाई। आडाई। आढाई। आणाई। आताई। आथाई। आदाई। आधाई। आनाई। आपाई। आफाई। आबाई। आभाई। आमाई। आयाई। आराई। आलाई। आवाई। आशाई। आषाई। आसाई। आहाई। आळाई। आक्षाई, इति जपित्वा; पुनः—२ मूलं इआई। इकाई। इखाई। इगाई। इघाई। इङाई। इचाई। इछाई। इजाई। इझाई। इञाई। इटाई। इठाई। इडाई। इढाई। इणाई। इताई। इथाई। इदाई। इधाई। इनाई। इपाई। इफाई। इबाई। इभाई। इमाई। इयाई। इराई। इलाई। इवाई। इशाई। इषाई। इसाई। इहाई। इळाई। इक्षाई, इति जपित्वा; पुनः—२ मूलं ईआई। ईकाई। ईखाई। ईगाई। ईघाई। ईङाई। ईचाई। ईछाई। ईजाई। ईझाई। ईञाई। ईटाई। ईठाई। ईडाई। ईढाई। ईणाई। ईताई। ईथाई। ईदाई। ईधाई। ईनाई। ईपाई। ईफाई। ईबाई। ईभाई। ईमाई। ईयाई। ईराई। ईलाई। ईवाई। ईशाई। ईषाई। ईसाई। ईहाई। ईळाई। ईक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— २ मूलं उआई। उकाई। उखाई। उगाई। उघाई। उङाई। उचाई। उछाई। उजाई। उझाई। उञाई। उटाई। उठाई। उडाई। उढाई। उणाई। उताई। उथाई। उदाई। उधाई। उनाई। उपाई। उफाई। उबाई। उभाई। उमाई। उयाई। उराई। उलाई। उवाई। उशाई। उषाई। उसाई। उहाई। उळाई। उक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— २ मूलं ऊआई। ऊकाई। ऊखाई। ऊगाई। ऊघाई। ऊङाई। ऊचाई। ऊछाई। ऊजाई। ऊझाई। ऊञाई। ऊटाई। ऊठाई। ऊडाई। ऊढाई। ऊणाई। ऊताई। ऊथाई। ऊदाई। ऊधाई। ऊनाई। ऊपाई। ऊफाई। ऊबाई। ऊभाई। ऊमाई। ऊयाई। ऊराई। ऊलाई। ऊवाई। ऊशाई। ऊषाई। ऊसाई। ऊहाई। ऊळाई। ऊक्षाई, इति पठित्वा; पुनः— २ मूलं ऋआईहंसः। ऋकाई। ऋखाई। ऋगाई। ऋघाई। ऋङाई। ऋचाई। ऋछाई। ऋजाई। ऋझाई। ऋञाई। ऋटाई। ऋठाई। ऋडाई। ऋढाई। ऋणाई। ऋताई। ऋथाई। ऋदाई। ऋधाई। ऋनाई। ऋपाई। ऋफाई। ऋबाई। ऋभाई। ऋमाई। ऋयाई। ऋराई। ऋलाई। ऋवाई। ऋशाई। ऋषाई। ऋसाई। ऋहाई। ऋळाई। ऋक्षाई, इति पठित्वा; पुनः— २ मूलं ॠआई। ॠकाई। ॠखाई। ॠगाई। ॠघाई। ॠङाई। ॠचाई। ॠछाई। ॠजाई। ॠझाई। ॠञाई। ॠटाई। ॠठाई। ॠडाई। ॠढाई। ॠणाई। ॠताई। ॠथाई। ॠदाई। ॠधाई। ॠनाई। ॠपाई। ॠफाई। ॠबाई। ॠभाई। ॠमाई। ॠयाई। ॠराई। ॠलाई। ॠवाई। ॠशाई। ॠषाई। ॠसाई। ॠहाई। ॠळाई। ॠक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— ऌआई। ऌकाई। ऌखाई। ऌगाई। ऌघाई। ऌङाई। ऌचाई। ऌछाई। ऌजाई। ऌझाई। ऌञाई। ऌटाई। ऌठाई। ऌडाई। ऌढाई। ऌणाई। ऌताई। ऌथाई। ऌदाई। ऌधाई। ऌनाई। ऌपाई। ऌफाई। ऌबाई। ऌभाई। ऌमाई। ऌयाई। ऌराई। ऌलाई। ऌवाई। ऌशाई। ॡषाई। ऌसाई। ऌहाई। ऌळाई। ऌक्षाई, इति पठित्वा; पुनः— ॡआई। ॡकाई। ॡखाई। ॡगाई। ॡघाई। ॡङाई। ॡचाई। ॡछाई। ॡजाई। ॡझाई। ॡञाई। ॡटाई। ॡठाई। ॡडाई। ॡढाई। ॡणाई। ॡताई। ॡथाई। ॡदाई। ॡधाई। ॡनाई। ॡपाई। ॡफाई। ॡबाई। ॡभाई। ॡमाई। ॡयाई। ॡराई। ॡलाई। ॡवाई। ॡशाई। ॡषाई। ॡसाई। ॡहाई। ॡळाई। ॡक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— एआई। एकाई। एखाई। एगाई। एघाई। एङाई। एचाई। एछाई। एजाई। एझाई। एञाई। एटाई। एठाई। एडाई। एढाई। एणाई। एताई। एथाई। एदाई। एधाई। एनाई। एपाई। एफाई। एबाई। एभाई। एमाई। एयाई। एराई। एलाई। एवाई। एशाई। एषाई। एसाई। एहाई। एळाई। एक्षाई, इति जपित्वा; पुनः—

ऐआई। ऐकाई। ऐखाई। ऐगाई। ऐघाई। ऐङाई। ऐचाई। ऐछाई। ऐजाई। ऐझाई। ऐञाई। ऐटाई। ऐठाई। ऐडाई। ऐढाई। ऐणाई। ऐताई। ऐथाई। ऐदाई। ऐधाई। ऐनाई। ऐपाई। ऐफाई। ऐबाई। ऐभाई। ऐमाई। ऐयाई। ऐराई। ऐलाई। ऐवाई। ऐशाई। ऐषाई। ऐसाई। ऐहाई। ऐळाई। ऐक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— ओआई। ओकाई। ओखाई। ओगाई। ओघाई। ओङाई। ओचाई। ओछाई। ओजाई। ओझाई। ओञाई। ओटाई। ओठाई। ओडाई। ओढाई। ओणाई। ओताई। ओथाई। ओदाई। ओधाई। ओनाई। ओपाई। ओफाई। ओबाई। ओभाई। ओमाई। ओयाई। ओराई। ओलाई। ओवाई। ओशाई। ओषाई। ओसाई। ओहाई। ओळाई। ओक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— औआई। औकाई। औखाई। औगाई। औघाई। औङाई। औचाई। औछाई। औजाई। औझाई। औञाई। औटाई। औठाई। औडाई। औढाई। औणाई। औताई। औथाई। औदाई। औधाई। औनाई। औपाई। औफाई। औबाई। औभाई। ओमाई। औयाई। औराई। औलाई। औवाई। औशाई। औषाई। औसाई। औहाई। औळाई। औक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— अंआई। अंकाई। अंखाई। अंगाई। अंघाई। अंङाई। अंचाई। अंछाई। अंजाई। अंझाई। अंञाई। अंटाई। अंठाई। अंडाई। अंढाई। अंणाई। अंताई। अंथाई। अंदाई। अंधाई। अंनाई। अंपाई। अंफाई। अंबाई। अंभाई। अंमाई। अंयाई। अंराई। अंलाई। अंवाई। अंशाई। अंषाई। अंसाई। अंहाई। अंळाई। अंक्षाई, इति जपित्वा; पुनः— अःआई। अःकाई। अःखाई। अःगाई। अःघाई। अःङाई। अःचाई। अःछाई। अःजाई। अःझाई। अःञाई। अःटाई। अःठाई। अःडाई। अःढाई। अःणाई। अःताई। अःथाई। अःदाई। अःधाई। अःनाई। अःपाई। अःफाई। अःबाई। अःभाई। अःमाई। अःयाई। अःराई। अःलाई। अःवाई। अःशाई। अःषाई। अःसाई। अःहाई। अःळाई। अःक्षाई, हंसः, इत्यन्तं जपेत्, एवं षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याको (५७६) जपो भवति। मूलविद्याया अत्र पारायणे प्रथमं, तद्दिनयुगाक्षरात् षोडशस्वरभिन्नादुत्पन्नषट्सप्तत्युरपञ्चशतविद्याभिः सह (५७६) मूलविद्यां जपित्वा पश्चत्तद्दिनाक्षरजनितविद्याभि- स्तावत्संख्याभिः सह प्रोक्तक्रमेण मूलविद्यां जपेत्। युगाक्षरदिनाक्षरे तु तत्तद्दिनविद्यायाः प्रथमाक्षरं द्वितीयाक्षरं वा बोद्धव्यम्। युगाक्षरोत्थविद्याजपे विशेषस्तु—यस्मिन् युगे यत्स्वरयुगं युगाक्षरं भवति तत्स्वरमारभ्य प्रतिस्वरं षट्त्रिंशत्क्रमेण तद्दिसर्गान्तिमविद्यापर्यन्तं जपित्वा पुनस्तदक्षरस्य प्रथमस्वरमारभ्य आरब्धस्वरस्य पूर्वस्वरान्तिमविद्यावधि जपेत्। तदा मूलविद्यायाः षट्सप्तत्युत्तरपंञ्चशतसंख्याको जपो भवति। अत्र युग.... षट्त्रिंशद्दिनात्मको जपो भवति(?)। प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णेषु षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकेष्वेकैकस्याक्षरस्यैकैकयुगं प्रति युगाक्षरत्वं भवति। एतत्सर्वं गुरुतः शास्त्रतश्च सम्यग्विज्ञाय पारायणजपः कार्यः। एवं द्विपञ्चाशदुत्तरैकादशशत(११५२)संख्याको जपो भवति। मूलविद्याया अङ्गविद्याजपस्त्वेकैकवर्गादावेकनवतिसंख्याकः, तेन वर्गद्वयादौ जपाद् द्व्यशीत्युत्तरशत (१८२) संख्याको भवति। केवलमूलविद्याजपोऽपि वारचतुष्टयं त्रिस्त्रिरावृत्त्या द्वादशधा भवति, सम्भूय षट्चत्वारिंशताधिकसहस्रसंख्याको (१०४६) जपो भवति। मूलविद्यायाः एवमुक्तसंख्याकं जपमुक्तविधिना कृत्वा, पुनः केवलां मूलविद्यां त्रिर्जपित्वा, प्रागुक्तदीपिनीविद्यां गुरुपादुकाविद्यां च सकृत् सकृज्जपित्वा, "ङरलकसहैं हसकलङीं सहकलरङौः नमः" इत्युत्तीर्णविद्यां सकृज्जपित्वा मम सकलमनोरथान् साधय साधय तुभ्यं नमः इति प्रार्थनीविद्यां सकृत् कृताञ्जलिर्जपेत्। इति वर्गद्वयस्याप्यन्ते बोद्धव्यम्। एवमङ्गविद्याजपमूलमन्त्रजपादिकं

पारायणे प्रशस्तम्। कुम्भाभिमन्त्रणादौ तु केवलकालनित्या एवावर्तनीया: 'दिनतो वारंत: पक्षा'दित्यादिना तत्रैवोक्तत्वात्, बहुदिनसाध्येऽप्यत्रापि प्राशस्त्यम्। दिनत्रयदिनचतुष्टयसाध्ये तु केवला एवेति तु सम्प्रदाय:। ततो वर्गान्ते इदं स्तोत्रं पठित्वा द्वितीयवर्गारम्भो विधेय:। यथा त्रिपुरार्णवे—

क्षमाम्ब्वग्नीरणखार्केन्दुयष्ट्टप्राययुगस्वरै:। मातृभैरवगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ १॥
कादिवर्गाष्टकाकारसमस्ताष्टकविग्रहाम्। अष्टशक्त्यावृतां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ २॥
स्वरषोडशकानां तु षट्त्रिंशद्भि: परापरै:। षट्त्रिंशत्तत्त्वगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ ३॥
षट्त्रिंशत्तत्त्वसंस्थाप्य शिवचन्द्रकलास्वपि। कादितत्त्वान्तरां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ ४॥
आईमायाद्वयोपाधिविचित्रेन्दुकलावतीम्। सर्वात्मिकां परां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ ५॥
षडध्वपिण्डयोनिस्थां मण्डलत्रयकुण्डलीम्। लिङ्गत्रयातिगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ ६॥
स्वयम्भूहृदयां बाणभ्रूकामान्त:स्थितेतराम्। प्राच्यां प्रत्यक्चितिं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ ७॥
अक्षरान्तर्गताशेषनामरूपां क्रियां पराम्। शक्तिं विश्वेश्वरीं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ ८॥
वर्गान्ते पठितव्यं स्यात् स्तोत्रमेतत्समाहितै:।...॥

इति स्तुत्वा, प्रागवत् प्राणायामत्रयं कृत्वा "गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिता॥" इति देव्यै जपं समर्प्य, द्वितीयवर्गजपस्यारम्भो विधेय:॥ यथा— मू० दि० कआईहंस: एवं सर्वत्र। ककाई कखाई। कगाई। कघाई। कङाई। कचाई। कछाई। कजाई। कझाई। कञाई। कटाई। कठाई। कडाई। कढाई। कणाई। कताई। कथाई। कदाई। कधाई। कनाई। कपाई। कफाई। कबाई। कभाई। कमाई। कयाई। करा‌ई। कलाई। कवाई। कशाई। कषाई। कसाई। कहाई। कळाई। कक्षाई॥ इति जपित्वा; पुन:— काआईहंस: इत्यादि काक्षाईहंस: इत्यन्तं जपित्वा; एवं किआईहंस: इत्यादि किक्षाईहंस: इत्यन्तं जपित्वा; कीआईहंस: इत्यादि कीक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; कुआईहंस: इत्यादि कुक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; पुन:—कूआईहंस: इत्यादि कूक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; कृआईहंस: इत्यादि कृक्षाई इत्यन्तं जपित्वां; क्लृआईहंस: इत्यादि क्लृक्षाई इत्यन्तं जपित्वा पुन: क्लॄआईहंस: इत्यारभ्य क्लॄक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; एवं केआईहंस: इत्यारभ्य केक्षाईहंस इत्यन्तं जपित्वा, कैआईहंस: इत्यारभ्य केक्षाईहंस इत्यन्तं जपित्वा, कोआईहंस: इत्यारभ्य कोक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; पुन: कौआईहंस: इत्यादि कौक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; पुन: कंआईहंस इत्यादि कंक्षाई इत्यन्तं जपित्वा; पुन: क:आईहंस: इत्यादि क:क्षाई इत्यन्तं जपेत्॥ पुन: प्रागवत्। खआई इत्यादि ख:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ गआई इत्यादि ग:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ घक्षाई इत्यादि घ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ ङआई इत्यादि ङक्षाई इत्यन्तं ५७६॥ चआई इत्यादि च:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ छआई इत्यादि छ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ जआई इत्यादि ज:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ झआई इत्यादि झ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ ञआई इत्यादि ञ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ टआई इत्यादि ट:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ ठआई इत्यादि ठ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ डआई इत्यादि ड:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ ढआई इत्यादि ढ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ णआई इत्यादि ण:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ तआई इत्यादि त:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ थआई इत्यादि थ:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ दआई इत्यादि द:क्षाई इत्यन्तं ५७६॥ धआई इत्यादि ध:क्षाई इत्यन्तं

५७६ ।। नआई इत्यादि नःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। पआई इत्यादि पःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। फआई इत्यादि फःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। बआई इत्यादि बःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। भआई इत्यादि भःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। मआई इत्यादि मःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। यआई इत्यादि यःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। रआई इत्यादि रःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। लआई इत्यादि लःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। वआई इत्यादि वःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। शआई इत्यादि शःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। षआई इत्यादि षःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। सआई इत्यादि सःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। हआई इत्यादि हःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। ळआई इत्यादि ळःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। क्षआई इत्यादि क्षःक्षाई इत्यन्तं ५७६ ।। अत्र पारायणे पर्यायभेदः पञ्चधा भवति। तन्त्रराजे—(२५। ९६)

दिनतो वारतः पक्षान्मासात् षट्त्रिंशता दिनैः। जपन्तो वारमेकं तु विद्या नित्यात्मिकास्तु ताः।। १ ।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं विजयं वाञ्छितं क्रमात्। लभन्ते ललिता याभिः सम्प्रदायवती भवेत्।। २ ।।
एकस्मिन् दिवसे त्वेकवारावृत्तौ विधिस्त्वयम्। मध्याह्ने तु समारभ्य मध्यरात्रौ समापयेत्।। ३ ।।
वारेषु चैकदा जापे प्रथमे रविवारके। वशिन्याः प्रथमं वर्गं कामेश्वर्या द्वितीयकम्।। ४ ।।
जप्त्वा वर्गद्वयं मन्त्री सोमवारादिषट्स्वपि। दिनेषु मोदिनीवर्गादिकैकं प्रजपेत् सुधीः।। ५ ।।
पक्षेऽपि चैकदा जापे प्रथमादितिथिष्वथ। पङ्क्तिद्वयस्था विद्यास्तु प्रजपेत् प्रतिवासरम्।। ६ ।।
पञ्चमीदशमीपञ्चदशीषु तिथिषु क्रमात्। पूर्णासु प्रजपेद् विद्याश्चतुष्पङ्क्तिभवाः सुधीः।। ७ ।।
मासे प्रतिदिने विद्वानेवं पूर्णा भवन्ति ताः। नैताभिः सदृशी कापि विद्या लोकेषु विद्यते।। ८ ।।
तस्मादाभिरुपायैस्तैः साधयेत् सर्वमीप्सितम्। यद्यन्निजेप्सितं तत्तद्दुःकरं सुकरं भवेत्।। ९ ।।
जपतर्पणहोमार्चासेकैः संसाधयेत्[1] स्थिरः। पञ्चाशद्वारमावर्त्य विद्या भक्तिसमन्वितः।। १० ।।
मुच्यते निगडैः कृच्छ्रैर्वैरिरोधैः सुदारुणैः। शतवारं समावर्त्य विद्याविभववैभवाः ।। ११ ।।
लभन्ते तनयान् वन्ध्या अपि सर्वगुणान्वितान्। अध्यर्धशतवारं तु विद्या आवर्त्य भक्तितः।। १२ ।।
गुणरूपादिसम्पन्नां भार्यां विन्दन्त्ययत्नतः। तावदावर्त्य कन्या वा पतिं सर्वगुणान्वितम्।। १३ ।।
लभन्ते पुत्रपौत्राद्यैरेधन्ते सम्पदान्विताः। द्विशतं ताः समावर्त्य दारिद्र्यान्मुच्यते ध्रुवम्।। १४ ।।
त्रिशतैर्भूमिशस्याढ्यश्चतुर्भिश्च शतैर्धनी। पञ्चभिश्च शतैर्भूपो भवेत् षड्भिः शतैर्नृपः।। १५ ।।
सप्तभिस्तु शतैस्तस्य न मुञ्चत्यन्वयं रमा। अष्टभिस्तु शतैस्तासां नृपाः सर्वेऽथ किङ्कराः।। १६ ।।
नवभिस्तु शतैरेवं कन्दर्पो वनिताजने। एवं नवशतं जप्त्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्।। १७ ।।
समस्तभजनं तासामुक्तं सर्वार्थसिद्धिदम्।..।।

इति। एतेषां श्लोकानां विषमपदव्याख्या— दिनत इति सार्धद्वयश्लोकः स्पष्टः। एकवारावृत्तौ षट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याभिः कालनित्याविद्याभिः समूलविद्यायास्तावत्संख्याजपे प्रोक्तविधिना प्रत्यहं क्रियमाणे इत्यर्थः। वारेषु रविवारादिशनिवारान्तेषु सप्तसु वशिन्यादीनां वर्गाः प्राक्प्रोक्ताः, "वर्गः पङ्क्तिर्योनिः" इति पर्यायः। सेकोऽभिषेकः। स्थिरो निश्चलभक्तिमान्। पञ्चाशदित्यादिभिः श्लोकैः प्रपञ्चितः काम्यजपः केवलंकालनित्याविद्यानामेव, अयं क्रमो गुरुतः शास्त्रतश्च बोद्धव्यः।। कालचक्ररचनाप्रकारस्त्वग्रे वक्ष्यते। प्रकृते कुम्भाभिमन्त्रणोत्तरं सर्वत्र षोडशीकृतकलशेषु

१. 'सन्तर्पयेत्' क. पाठः।

प्रतिषोडशकं मध्ये ललितां पञ्चदशसु पञ्चदश नित्याश्चावाह्य षोडशोपचारैराराध्य पुनर्मध्यप्रधानकुम्भसमीपमागत्य प्रसन्नपूजां विधायारात्रिकां निवेद्य प्रागुक्तगुरुस्तुतिं "नमस्ते नाथ भगवन्" इत्यादि पठित्वा द्वादशश्लोकान् पठेत्। तद्यथा– (तन्त्रराज०२। ८८)

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्। देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्॥ १॥
प्रणमामि महादेवीं मातृकां परमेश्वरीम्। कालहल्लोहलोल्लोलकलनाशमकारिणीम्॥ २॥
यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः। रवितार्क्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः ॥ ३॥
यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्। वन्दे सर्वेश्वरी देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम्॥ ४॥
यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेमतज्जगत्त्रयम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धिमातृकाम्॥ ५॥
यदेकादशमाधारबीजकोणत्रयोद्भवम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते॥ ६॥
अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवार्गिणीम्। ज्येष्ठाङ्गबाहुहृत्पृष्ठकदिपादनिवासिनीम् ॥ ७॥
तामीकाराक्षरोद्धारसाराधारां परापराम्। प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्॥ ८॥
अद्यापि यस्या जानन्ति न मनामपि देवताः। केयं कस्मात् क्व केनेति स्वरूपारूपभावनाम्॥९॥
वन्दे तामहमक्षय्यक्षकाराक्षररूपिणीम्। देवीं कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं परौलिजाम्॥ १०॥
वर्गानुक्रमयोगेन यस्यां मात्रष्टकं स्थितम्। वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यष्टकेश्वरीम्॥ ११॥
कामपूर्णजकाराख्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम्। चतुराज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम् ॥ १२॥
इति द्वादशभिः श्लोकैः स्तवनं सर्वसिद्धिकृत्। देव्यास्त्वखण्डरूपायाः स्तवनं तव तद्यतः॥ १३॥

इति स्तुत्वा नित्याकवचं पठेत्– (तन्त्रराजे २९ प० ५२ श्लो०)

समस्तापद्विमुक्त्यर्थं सर्वसम्पदवाप्तये। भूतप्रेतपिशाचादिपीडाशान्त्यै सुखाप्तये॥ १॥
समस्तरोगनाशाय समरे विजयाय च। चौरसिंहद्वीपिगजगवयादिभयानके ॥ २॥
अरण्ये शैलगहने मार्गे दुर्भिक्षके तथा। सलिलाग्निमरुत्पीडा[1]स्वब्धौ पोतादिसङ्कटे॥ ३॥
प्रजप्य नित्याकवचं सकृत्सर्वं तरत्यसौ। सुखी जीवति निर्द्वन्द्वो निःसपत्नो जितेन्द्रियः॥ ४॥
शृणु तत्कवचं देवि वक्ष्ये तव नवा[2]त्मकम्। येनाहमपि युद्धेषु देवासुरजयी सदा॥ ५॥
सर्वतः सर्वदात्मानं ललिता पातु सर्वदा। कामेशी पुरतः पातु भगमाला त्वनन्तरम्॥ ६॥
दिशं पातु तथा दक्षपार्श्वं मे पातु सर्वदा। नित्यक्लिन्ना तु भेरुण्डा दिशं पातु सदा मम॥ ७॥
तथैव पश्चिमं भागं रक्षेत्सा वह्निवासिनी। महावज्रेश्वरी रक्षेदनन्तरदिशं सदा॥ ८॥
वामपार्श्वं सदा पातु दूती मे त्वरिता ततः। पालयेत्तु दिशं वात्यां रक्षेत्मां कुलसुन्दरी॥ ९॥
नित्या मामूर्ध्वतः पातु साधो मे पातु सर्वदा। नित्या नीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम्॥१०॥
करोतु मे मङ्गलानि सर्वदा सर्वमङ्गला। देहेन्द्रियमनःप्राणान् ज्वालामालिनिविग्रहा॥ ११॥
पालयेदनिशं चित्रा चित्तं मे पातु सर्वदा। कामात् क्रोधात् तथा लोभान्मोहान्मानान्मदादपि॥ १२॥

---

१. 'दिमनः पीडा' ख. पाठः। २. 'तदात्मकम्' ख. पाठः।

पापान्मत्सरतः शोकात् संशयात् सर्वतः सदा। स्नैमित्याच्च समुद्योगादशुभेषु तु कर्मसु॥ १३॥
असत्यात्[1] क्रूरचिन्तातो हिंसातश्चोरतस्तथा। रक्षन्तु मां सर्वदा ताः कुर्वन्त्विच्छां शुभेषु च॥ १४॥
नित्याः षोडश मां पान्तु गजारूढाः स्वशक्तिभिः। तथा हयसमारूढाः पान्तु मां सर्वतः सदा॥ १५॥
सिंहारूढास्तथा पान्तु मां तरक्षुगता अपि। रथारूढाश्च मां पान्तु सर्वतः सर्वदा रणे॥ १६॥
तार्क्ष्यारूढाश्च मां पान्तु तथा व्योमगतास्तु ताः। भूगताः सर्वदा पान्तु मां सर्वत्र च सर्वदा॥ १७॥
भूतप्रेतपिशाचापस्मारकृत्यादिकान् गदान्। द्रावयन्तु स्वशक्तीनां भीषणैरायुधैर्मम॥ १८॥
गजाश्वद्वीपिपञ्चास्यतार्क्ष्यारूढाखिलायुधाः। असंख्याः शक्तयो देव्यः पान्तु मां सर्वतः सदा॥ १९॥
सायं प्रातर्जपन्नित्याकवच सर्वरत्नकम्। कदाचिन्नाशुभं पश्येन्न शृणोति च तत्समः॥ २०॥

इति। नित्याकवचं पठित्वा, सम्यक् प्राथ्र्य वटुकयोगिनीक्षेत्रपालगणपतिभ्यः सर्वभूतेभ्यः कुरुकुल्लायै वाराह्यै च तन्मण्डलेषु तत्तन्मन्त्रैरन्नव्यञ्जनादिभिर्बलीनुत्सृज्य तत्रैव गुरुः सशिष्यर्त्विक्सामयिको महोत्सवैः सह तां रात्रिं नयेत्॥ इति अधिवासनविधिः॥

अत्रानुक्रमणिका तु– प्रथमदिने प्रोक्तमण्डपाद्बहिः क्वचिद्गोमयोपलिप्तशुभस्थाने स्वासनोपर्युपविश्य गणेशपूजा-मातृकापूजा-वृद्धिश्राद्ध-पुण्याहवाचन-आचार्यर्त्विग्वरणान्तकर्म प्रागुक्तविधिना विधाय मण्डपभूतापसारणं विधाय, मध्ये श्रीचक्रं विपुलं सुन्दरं विरच्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरमृत्विक्सामायिकैः सार्धं मध्ये वेदिकापरितो गुरुमण्डलादिप्रोक्तमण्डलानि तत्तद्वेदिकासु विधाय मण्डपप्रतिष्ठां विधाय, प्रथमतो वास्तुमण्डले बलिपूजां विधाय, गुरुमण्डलसर्वतोभद्रादिमण्डलेषु देवताः संस्थाप्य पूजयित्वा, श्रीचक्रे प्रोक्तस्थानेषु प्रोक्तकलशान् संस्थाप्य, कलशालङ्करणान्यपि विधाय कुण्डेष्वग्निस्थापनान्तं कर्म समापयेत्॥ इति प्रथमदिनकृत्यम्॥

द्वितीयदिने प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्तं विधाय नित्यकर्म निर्वर्त्य, पुनरपि तन्मण्डलदेवताः सम्पूज्य श्रीचक्रस्थमध्यकलशे देवीं सपरिवारां समावाह्य, षोडशोपचारैराराध्यान्यकलशेष्वपि ललितादिषोडशनित्याः समावाह्य सम्पूज्य, नित्यहोमजपनीराजनान्तं कर्म प्रहरद्वयमध्ये समाप्य, प्रहरद्वयोत्तरमारभ्य मध्यरात्रावधि षट्त्रिंशदुत्तरसप्तशता-धिकविंशतिसहस्र(२०७३६)कालनित्याभिर्मूलविद्यारहिताभिः कुम्भाभिमन्त्रणं विधाय प्रोक्तविधिनाधिवसेत्॥ इति द्वितीयदिनकृत्यम्॥

तृतीयदिने प्राग्वन्नित्यकर्म निर्वर्त्य शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे कुम्भे देवीं साङ्गावरणां सम्पूज्य मूलविद्यामष्टोत्तर-सहस्रं शतं वा जपित्वा, कुण्डेषु[2] नित्यहोमोक्तविधिना हुत्वा पूजाशेषं समाप्य, शृङ्गककाहलादिनानावादित्रघोष-पुरःसरं ब्राह्मणाशीर्वादैः सह गुरुः प्राङ्निमन्त्रितैर्देवतात्मभिः शक्तिसाधकैः सार्धं स्वयं प्रधानकुम्भं समुत्थाप्य प्रागुक्तविधिनाभिषिञ्चेत्। ततः शक्तयः सामयिकाश्च[3] कलशानुत्थाप्याभिषेकं कुर्युः। शिष्याय सालंकृताय दिननित्यापर्यायनित्योदयाक्षरादिकं स्वक्रमं कथयेत्। शिष्योऽपि तु तदारभ्याविच्छिन्नपर्यायं यथा भवति तथा गुरूक्तक्रमभजनं कुर्यात्। पर्यये गुर्वाज्ञामते विच्छिन्ने शिष्यः साभिषेकं मूलमष्टोत्तरसहस्रं जपेत् प्रायश्चित्तार्थमिति विच्छिन्नदिनानां प्रत्येकं सन्ध्यात्रयं षष्टिजपं घटिकाजपं शतावृत्तिजपं च प्रायश्चित्तं कृत्वा तद्दिनादिक्रमभजनं च कुर्यादिति। ततो गुरवे

१. 'न्यूक्रर' ख. पाठः। २. 'कुम्भेषु' ग. पाठः। ३. 'कांश्च' ग. पाठः।

"सर्वस्वं वा तदर्धं वा" इति प्रागुक्तरीत्या द्रव्यादिकं दत्त्वा ऋत्विक्सामयिकेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च दक्षिणादानैः सन्तोषं सम्भाव्य, चतुर्थदिने स्वगृहे श्रीगुरुसामयिकैः सार्धं महापूजां विधाय ब्राह्मणान् दीनान्धकृपणान् भोजयित्वा दक्षिणादिभिश्च सन्तोषयेदिति पूर्णाभिषेकविधिः।।

अथ पूर्णाभिषेके प्रागुक्तषोडशत्रिकोणकरणादिविस्ताराशक्तौ विपुलं श्रीचक्रमुद्धृत्य तत्र प्रागुक्तषण्णवतित्रिकोणेषु मध्यत्रिकोणे बृहत्कुम्भमन्येषु कलशान् प्राग्वत् संस्थाप्यावरणपूजां विधायाभिषिञ्चेत्। अथवा मध्यत्रिकोणस्थबिन्दुस्थान एव खारितोयपूरितं कुम्भं संस्थाप्य सम्पूज्याभिषिञ्चेत्। अत्र षण्णवतिकलशस्थापनपक्षे त्वावरणशक्तीनां प्रतिकलशमेकैकदेवतापूजनं कुम्भे मूलदेव्याः पूजनमिति। अत्रोत्तरः पक्षस्त्वशक्तविषयः।। इति पूर्णाभिषेकविधिः।। खारीलक्षणं तु भविष्यपुराणे—

पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः।। १।।

आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः। कुम्भो द्रोणद्वयं शूर्पः खारी द्रोणास्तु षोडश।। २।।

इति।। अथ कालचक्ररचनाप्रकारः— तत्र प्रथमतः क्वचिद्बिंदुं कृत्वा तं परितः षडङ्गुलमानेन वृत्तं कृत्वा तद्बहिरप्येकैकाङ्गुल (अन्तराल)मानतः षोडश वृत्तानीति प्रथमकृतवृत्तेन सह सप्तदश वृत्तानि निष्पादितानि, षट्त्रिंशद्रेखाभिर्विभज्य षोडशषोडशकोष्ठयुक्ताः षट्त्रिंशद्वीथीर्निष्पाद्य, तासु स्वाग्रवीथ्यां सर्वबाह्यस्थकोष्ठमारभ्य प्रवेशगत्या षोडश स्वरान् विलिख्य, ततः प्रादक्षिण्यक्रमप्राप्तद्वितीयवीथ्यां तथैव बाह्यकोष्ठमारभ्य "ककाकिकी" इत्यादि षोडशस्वरयुक्तं ककारं विलिख्य, तृतीयवीथ्यां "खखाखिखी" इत्यादि षोडशस्वरयुक्तं खकारं विलिख्य, चतुर्थवीथ्यां "गगागिगी" इत्यादि षोडश विलिख्य, पञ्चमवीथ्यां "घघाघिघी" इत्यादि षोडश विलिख्य, षष्ठवीथ्यां "ङङाङिङी" इत्यादि षोडशकं विलिख्य, सप्तमवीथ्यां "चचाचिची" इत्यादि षोडश विलिख्य, अष्टमवीथ्यां "छछाछिछी" इत्यादि षोडश विलिख्य, नवमवीथ्यां "जजाजिजी" इत्यादि षोडश विलिख्य, दशमवीथ्यां "झझाझिझी" इत्यादि षोडश विलिख्य, एकादशवीथ्यां "ञञाञिञी" इत्यादि षोडश विलिख्य, द्वादशवीथ्यां "टटाटिटी" इत्यादि षोडश विलिख्य, त्रयोदशवीथ्यां "ठठाठिठी" इत्यादि षोडश विलिख्य, चतुर्दशवीथ्यां "डडाडिडी" इत्यादि षोडश विलिख्य, पञ्चदशवीथ्यां "ढढाढिढी" इत्यादि षोडश विलिख्य, षोडशवीथ्यां "णणाणिणी" इत्यादि षोडश विलिख्य, सप्तदशवीथ्यां "ततातिती" इत्यादि षोडश विलिख्य, अष्टादशवीथ्यां "थथाथिथी" इत्यादि षोडश विलिख्य, एकोनविंशवीथ्यां "ददादिदी" इत्यादि षोडश विलिख्य, विंशवीथ्यां "धधाधिधी" इत्यादि षोडश विलिख्य, एकविंशवीथ्यां "ननानिनी" इत्यादि षोडश विलिख्य, द्वाविंशवीथ्यां "पपापिपी" इत्यादि षोडश विलिख्य, त्रयोविंशवीथ्यां "फफाफिफी" इत्यादि षोडश विलिख्य, चतुर्विंशवीथ्यां बवर्गं, २५ वीथ्यां भवर्गं २६ वीथ्यां मवर्गं, २७ वीथ्यां यवर्गं, २८ वीथ्यां रवर्गं, २९ वीथ्यां लवर्गं, ३० वीथ्यां ववर्गं, ३१ वीथ्यां शवर्गं, ३२ षवर्गं, ३३ सवर्गं, ३४ हवर्गं, ३५ वीथ्यां ळवर्गं, ३६ वीथ्यां क्षवर्गं, विलिखेत्, एषां षट्त्रिंशद्वीथिषु षट्सप्तत्युत्तर-पञ्चशतसंख्याकान् पूर्णमण्डलवर्णानालिख्य, कर्णिकायां "आईहंसः" इति वर्णचतुष्टयं विलिख्य, सर्वबाह्यवृत्ताद्बहिर्वृत्तत्रयं निष्पाद्य सकेसरमष्टदलकमलं विरच्य तद्बहिश्चतुरस्रं च कुर्यात्। अत्र वर्णविन्यासेन मध्यस्थदेवताभिमुखाः सर्वे वर्णा यथा भवन्ति तथा लेख्याः।। इति कालचक्ररचनाप्रकारः।।

एतच्चक्रस्य षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतभेदाः सन्ति। तथा तन्त्रराजे— (प० २५ श्लो० २९)

अथ यन्त्राणि वक्ष्यन्ते प्रोक्तसंख्यान्यनुक्रमात्। वृत्तं षट्त्रिंशदस्रं च तद्वदष्टादशास्रकम्[1] ।। १ ।।
द्वादशास्रं नवास्रं वा स्वरेऽष्टास्रं षडस्रकम्[2]। चतुरस्रमथ त्र्यस्रमिति भेदा नव क्रमात् ।। २ ।।
एतानि वर्णविन्यासभेदात् प्रत्येकमष्टधा। तेन द्वासप्ततिर्भेदास्तेषु नित्यार्णभेदतः ।। ३ ।।
प्रत्येकमष्टधेत्येवमुक्तसंख्याः समीरिताः। एतेष्वाद्यस्य वृत्तस्य विन्यासेनान्यदुन्नयेत् ।। ४ ।।
षडङ्गुलपरिभ्रान्त्या वृत्तमेकं तु वर्तयेत्। एवं पुनः पुनः कुर्यादेकैकाङ्गुलो बहिः ।। ५ ।।
यदा सप्तदशाभूवंस्तदा तद्विभजेदरैः। षट्त्रिंशद्भिस्ततस्तेषु न्यसेद्वर्णांस्तथादितः ।। ६ ।।
अनुलोमविलोमौ च बाह्याभ्यन्तरसम्पुटौ। बाह्यान्तरपरावृत्ती[3] तथा व्याकीर्णमित्यपि ।। ७ ।।

इति। अनुलोमः, विलोमः, बाह्यसम्पुटः, आभ्यन्तरसम्पुटः, बाह्यपरावृत्तिः, आभ्यन्तरपरावृत्तिः, बाह्यव्याकीर्णः, आभ्यन्तरव्याकीर्णः, एवमष्टौ भेदा वर्णविन्यासेन।

यन्त्राणां[4] पूर्वोक्तनां तु—

कर्णिकायां मरुद्वह्नी नाम्ना संलिख्य सर्वतः। योजयेद्बाह्यकोष्टस्थैः प्रागुक्तविधिना क्रमात् ।। ८ ।।
अन्येषामरविन्यासः षट्त्रिंशत्समुदीरितः। अष्टास्रे षोडशाराः स्युः षट्त्रिंशद्वृत्तमन्यवत् ।। ९ ।।
एतत् पटे समालिख्य बहिरष्टच्छदाम्बुजम्। कृत्वा दलेषु क्रमशो वाग्देव्यष्टकमालिखेत् ।। १० ।।
प्रोक्तरूपां ततस्तस्य प्रतिष्ठां सम्यगीरिताम्। विधाय पूजयेन्नित्यं पुस्तपूजोक्तसिद्धये ।। ११ ।।
उभयं यः प्रकुरुते तस्य वंशे स्थिरा रमा। न कदाचिच्छ्रियो हानिर्भविष्यति च तत्कुले ।। १२ ।।
वर्णौषधिक्वाथजलैरापूर्य कलशं महत्। तत्र देवीं समावाह्य सम्पूज्य विधिवन्निशि ।। १३ ।।
नित्यानां तत्त्वविद्याश्च जपित्वान्येद्गुरासने। सम्पूज्य शिष्यं संस्थाप्य भक्त्या तमभिषेचयेत् ।। १४ ।।

इति। अत्र तत्त्वनित्याः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकाः "तत्त्ववृत्तिरुदीरिता पूर्णमण्डलसंख्यैव" इति तत्रैवोक्तत्वात्।

एवं जन्मानुजन्मादिपौर्णमासीषु साधकः। कुर्यात् कर्षसुवर्णस्य मुद्रिका गौश्च दक्षिणा[5] ।। १५ ।।
एवं निरन्तरं वर्षं[6] योऽभिषिक्तः स साधकः। पार्थिवस्तस्य वन्द्यो वा भविष्यति न संशयः ।। १६ ।।
वर्षद्वयाभिषेकेण तद्गेहे स्यात्[7] स्थिरा रमा। वर्षत्रयाभिषेकेण सिद्ध्या विद्याधरो[8] भवेत् ।। १७ ।।
चतुर्वर्षाभिषेकेण खेचरीमेलनं भवेत्। पञ्चवर्षाभिषेकेण पञ्चत्वं नाधिगच्छति ।। १८ ।।
षड्वर्षमभिषेकेण लोकपालसमो भवेत्। सप्तवर्षाभिषेकेण दिवाकरसमो भवेत् ।। १९ ।।
अष्टवर्षाभिषेकेण चन्द्रमः सदृशो भवेत्। नववर्षाभिषेकेण देवीसारूप्यमाप्नुयात् ।। २० ।।
जयाय विद्याः षट्त्रिंशदेकपञ्चाशदेव वा। आवृत्तीर्जपहोमार्चातर्पणैः साधु साधयेत् ।। २१ ।।
तेन जित्वा रिपून् सर्वानेधते तपनो यथा। तथोत्पातेषु सर्वेषु तथा रोगाद्युपद्रवे ।। २२ ।।
तथा वाञ्छितसिद्ध्यर्थं तथा कृत्यानिवारणे। तथा कृत्यासमुत्पत्तावियं[9] सर्वार्थसिद्धिदा ।। २३ ।।

१.'शारकम्' ग. पाठः। २.'स्वरेचास्रं नवास्रकम्' ख. पाठः। ३.'वृत्तौ ख.ग. पाठः। ४.'णि पूर्वोक्तानि तु' ग. पाठः। ५. 'कां गाश्च दक्षिणाम्' ख. पाठः। ६.'वर्णे' ग. पाठः। ७.'तस्य वंशे' ख. पाठः। ८.'सिद्धिर्वैद्याधरी' ख. पाठः। ९.इत्थं सर्वार्थसिद्धदम्' ख. पाठः।

एतच्चक्रारमास्थाय ग्रहर्क्षादि प्रवर्तते। एतच्चक्रारविन्यासरूपा भूमिश्च दृश्यते।। २४।।
तस्मादेतन्मयं सर्वमेतस्य भजनेन च। सर्वे मनोरथाः सिद्धा भजनैः सम्प्रदायतः।। २५।।
कालप्राप्तक्रमं पूर्वमावर्त्यान्यक्रमं भजेत्। जपतर्पणहोमार्चास्नपनेष्वप्ययं क्रमः।। २६।।
अमुं ज्ञात्वा विधातव्यमन्यथानर्थमावहेत्। कृत्योत्पत्तौ शत्रुभङ्गे निग्रहे प्रतिलोमकम्।। २७।।
कालेन प्राप्तमन्यत्र सर्वत्र समुदीरितम्। वशीकरणरक्षासु सम्पुटद्वितयं क्रमात्।। २८।।
राजशत्रुजये प्रोक्ते परावृत्तक्रमेण वै। गोभूहिरण्यवाहादिलाभेषु च समीरितः।। २९।।
उच्चाटनेषु व्याकीर्णं[1] तेषु शान्त्यै क्रमं यजेत्[2]। एतद्विधाननिष्णातं प्रणमन्ति सुरासुराः।। ३०।।
तस्मिन्नरिकृताः पीडाः कृत्याद्या नैव सम्मुखाः। प्रत्युतैव परावृत्ताः कर्तारं नाशयन्ति वै।। ३१।।
यत्रासौ निवसत्येष तत्क्षेत्रं तत्तपोवनम्। श्मशाने पर्वते शून्ये विपिने क्षुद्रपीडने।। ३२।।
प्रतिष्ठिते यन्त्रराजे तत् स्याज्जनपदं महत्। सर्वव्याकीर्णचक्रेण स्थापितेनामरावती।। ३३।।
उच्चाटिता पुनर्देवि मयापि च न रक्ष्यते। शिलायां ताम्रपट्टे वा राजते हेमनिर्मिते।। ३४।।
विलिख्य भूमौ निखनेद् ग्रामराष्ट्रपुरादिषु। कृत्वा देवालयं तत्र चक्रं संस्थाप्य तस्य वै।। ३५।।
कर्णिकामध्यगे वेरं कुर्यात् सान्निध्यसिद्धये। ग्रामादिरक्षणे तत्र मध्ये चाष्टसु दिक्ष्वपि।। ३६।।
खात्वावटं पुनस्तेषु पाषाणैर्घट्टयेद्[3]दृढम्। समावाह्याभिपूज्यान्तः[4] स्थापयेन्मूलविद्यया।। ३७।।
पाषाणेन तदाच्छाद्य पीठं कृत्वोपरि स्थिरम्। नित्यशः पूजयेद्गन्धपुष्पधूपादिभिः समम्।। ३८।।
त्रिसन्ध्यमेवं कुर्वीत नान्यथा सिद्धिदायकम्। तत्कालोक्तानि मुण्डानि नव होमेषु सर्वतः।।३९।।
होतॄणां दक्षिणावस्त्रभूभूषादासगोधनैः। यद्यन्निजेप्सितं तत्तद् दुष्करं सुकरं भवेत्।। ४०।।

इत्यादि।। अत्र युगनित्यासु पूर्णमण्डलसंख्याकास्तत्त्वनित्या अपि तथैव। एतत्परिज्ञातं तु तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरं युगाक्षरं भवति। द्वितीयाक्षरं तत्त्वाक्षरं भवति। तद्दिननित्याविद्याया अपि परिज्ञानं तु ज्योतिःशास्त्रोक्तनीत्या गतकल्पाद्यहर्गणं विधाय पूर्णमण्डलसंख्यया भागे कृते उर्वरिताक्षरं तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरं (षट्त्रिंशताभागे द्वितीयाक्षरं) भवति। एवं वाग्भवं कामराजमित्यक्षरद्वयं जातं। शक्तिकूटस्थाने ईकारः सर्वासु विद्यास्वन्ते योजनीयाः। एवं तद्दिननित्याविद्यायाः परिज्ञाने जाते तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरं यत्स्वरयुक्तं भवति, तत्स्वरादितः पुनस्तत्स्वरपर्यन्तं प्राग्वदक्षरत्वेन संयोजिताः ५७६ संख्याका युगनित्याविद्या जायन्ते। एवं तद्दिननित्याविद्याया द्वितीयाक्षरं यद्भवति तद्गृहीत्वा प्राग्वदक्षरत्वेन योजिताः ५७६ संख्याकास्तत्त्वनित्याविद्या जायन्ते। तत्त्वनित्या दिननित्या इति पर्यायः। अत्र ५७६ वर्णा वाग्भवाख्या ३६ वर्णाः कामराजाख्या बोद्धव्याः।। पर्यायनित्याक्रमस्तु—यस्मिन्दिने आचार्यचरणानां दीक्षा जाता तद्दिनमारभ्याहर्गणस्य पूर्णमण्डलसंख्यया भागे कृते प्रथमाक्षरं लभ्यते। तथैवाहर्गणस्य षट्त्रिंशता भागे कृते द्वितीयाक्षरं लभ्यते, तृतीयबीजमीकारः। एवमक्षरत्रयात्मिका पर्यायनित्याविद्या भवति। एतस्या अपि प्राग्वत्प्रथमाक्षरं युगाक्षरं भवति, तद्द्वितीयाक्षरं तत्त्वाक्षरं भवति। एतेन युगनित्यादिननित्ये लभ्येते। अत्र कालनित्याविद्यास्तु २०७३६।। युगनित्यास्तु ५७६। तत्त्वनित्यास्तु ५७६। तद्दिननित्याविद्यास्तु ५७६। पर्यायनित्याविद्यास्तु ५७६। कालनित्यानां जपे

१. 'संकीर्णं' ग. पाठः। २.'भजेत्' ग. पाठः। ३. 'घटितं' ख. पाठः। ४. 'थ' ख. पाठः।

तु नाथावृत्तिः। प्रतिदिनं संख्या ज्ञातव्या। नित्यावृत्तिस्तु प्रतिदिनं १२९६ संख्या। एवं चेन्नाथावृत्तेर्नव दिनानि। नित्यावृत्तेः १३ दिनानीति बोध्यम्।। इति कादिमते पूर्णाभिषेकप्रयोगः।।

अथ नैमित्तिकपूजा—तत्र दीक्षितः प्राप्तपूर्णाभिषेकः कृतपुरश्चरणो नित्यार्चनानिरतो नैमित्तिकार्चनं कुर्यात्। पुरश्चरणविधिस्त्वग्रे वक्ष्यते। श्रीतन्त्रराजे—(६ प० २ श्लो०)

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सापेक्षं पूर्वपूर्वतः। अन्यथा भजनं चेच्छन् करोत्यापत्परम्पराम्।। १।।
नित्यार्चनरतैः सिद्धैः कार्यं नैमित्तिकार्चनम्। तद्विधानमतो वक्ष्ये चैत्राद्यं फाल्गुनावधि।। २।।

इति।। विशेषदिवसेषु क्रियमाणा महापूजा विशेषपूजेत्युच्यते। चैत्रादिफाल्गुनावधि वक्ष्यमाणा या पूजा सा तु नैमित्तिकपूजा। केचित्तु विशेषपूजाया नैमित्तिकेऽन्तर्भाव इति वदन्ति। इमां नैमित्तिकपूजां रात्रावेव कुर्यात्।। तदुक्तं कुलार्णवे—

"नित्यार्चनं दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्। उभयोः काम्यकर्माणि चेति शास्त्रस्य निर्णयः।। १।।"

इति।। विशेषदिवसास्तु तन्त्रराजादिग्रन्थेषूक्तानि दिनानि। तानि तु गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरूणां जन्मवारतिथिनक्षत्राणि स्वजन्मवारतिथिनक्षत्राणि विद्याप्राप्तिदिनं गुरोः क्षयदिनम् अष्टमीचतुर्दशीपूर्णिमामावस्यारविसंक्रमणयुगादिदिनानि पुष्यनक्षत्र-रविवार-पीठोपपीठगमनदेशिकागमनवीरमहायोगिदर्शन-तीर्थगमन-व्रतदीक्षाद्युत्सवदिनानि, विशेषक्षेत्रगमन-देवतादर्शनाक्षरत्रयसम्पातदिनानि च।। अक्षरत्रयसम्पातदिनमित्येकस्याक्षरस्य दिनाक्षरत्वेनोदयाक्षरत्वेन युगाक्षरत्वेन च दर्शनं यस्मिन् दिने तद्दिनं विशेषपर्व। एतेषु दिनेषु नित्यपूजानन्तरं यथाबलं यथाश्रद्धं यथाकालं यथादेशं यथाविभवविस्तरं वित्तशाठ्यरहितो यथोक्तद्रव्यैर्यथागुरूपदेशं शक्तिसामयिकैः सार्द्धं विशेषपूजां कृत्वा यथाशास्त्रं गुरुं सामयिकांश्च तोषयेत्। अत्र गुरुपर्वदिनेषु गुरुपङ्क्तिपूजोक्तमानवौघगुरुसंख्याकान् साधकान् तत्तन्नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य यथाशक्ति दक्षिणादानादिभिः परितोषयेत्। तेषु पर्वसु गुरुमण्डलपूजापि विधेया।। श्रीतन्त्रराजे— (६ प० ४ श्लो०)

चैत्रे दमनकैः कुर्यात् समूलैर्वाथ गुच्छकैः। पूर्वपक्षचतुर्दश्यां निशि संस्थाप्य विद्यया।। ३।।
परेद्युर्नित्यपूजान्ते कुर्यादेतैस्तु पूजनम्। अस्मिन् मासे च पूर्णायां वसन्तोत्सवपूजनम्।। ४।।
कुर्यात् तत्कालसम्भूतैः प्रसूनैश्चन्द्रचन्दनैः। सौगन्धिकैः सकाश्मीरैः पूजां पूर्ववदुज्ज्वलाम्।। ५।।

इति। तत्र विधिस्तु—चैत्रे मासि पूर्णायां दमनैः सम्पूज्येत्। तद्यथा— चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां साधकः कृतनित्यक्रियः साधकैः सार्धं दमनसमीपं गत्वा मूलमन्त्रेण दमनमामन्त्र्य—कालीमते तु पूर्वोक्तचतुष्कल्पलताविद्याभिर्दमनमभिमन्त्र्य— "ॐ शिवप्रसादसम्भूत अत्र सन्निहितो भव। शिवकार्ये समुत्क्षिप्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया"।। इति दमनमामन्त्र्य, तत्र कामदेवं रतिं च वक्ष्यमाणतन्मन्त्र (त्तत्प्र)कारेण दमनकमूले ध्यात्वा सम्पूज्य गृहमागच्छेत्। ततश्चतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियः साधकः साधकैः सार्धं पुनर्दमनसमीपं गत्वास्त्रमन्त्रेण दमनं समूलमुत्पाट्य शस्त्रेण गुच्छान् क्षिप्त्वा[1] गृहमानीय, "अघोरे ऐंओंघोरे ह्रीं घोरतरे श्रीं सर्वतः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ह्रींश्रीं" इति मन्त्रेण दमनमभ्युक्ष्य पूजास्थाने क्वचित्पात्रे दमनं नवधा विभज्य मध्येऽष्टसु दिक्षु च संस्थाप्य, हृन्मन्त्रेण चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमादिपङ्कैः संलिप्य, हंनमः संनमः क्षंनमः मंनमः लंनमः वंनमः रंनमः यंनमः ऊंनमः, इति नवधा विभक्तं दमनं मध्यादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्यास्त्रेण संरक्ष्य, करद्वयेन त्रिशूलमुद्रां बद्ध्वा बवचमन्त्रेण दमनोपरि भ्रामयेत्। ततो नूतनवस्त्रेणाच्छाद्य रहसि

१. 'छित्वा' ख. पाठः।

दमनं स्थापयेदित्यधिवासनं चतुर्दश्यां रात्रौ कुर्यात्। ततः पौर्णमास्यां प्रातःस्नानादिनित्यपूजादिकं निर्वर्त्य सामयिकैः सार्धं स्वस्तिवाचनपुरःसरं दमनं पूजास्थानमानीय, पूर्वेद्युरधिवासनाकरणे चतुर्दश्यां सायन्तने प्रोक्तविधिना दमनमामन्त्र्य पूर्णिमायां दमनमानीय, यद्वा पूर्णिमायामेव दमनमामन्त्र्यानीय चोक्तविधिना सद्योधिवासनं वा विधाय, पुरतः सिन्दूरेण चतुरस्रवृत्तद्वयवेष्टितं नवयोनिचक्रं विधाय, तस्य नवयोनिषु स्वर्णादिरचितान्नव कलशान् यवपुञ्जोपरि दीक्षाप्रकरणवक्ष्यमाणविधिना मध्ययोनावेकं वा कुम्भं संस्थाप्य, स्वासनपूजादिपीठपूजान्तं विधाय, विस्तरतः सङ्क्षेपतो वा कृत्वा पञ्चायतनी चेत् गणेशादीन् दमनैः सम्पूज्य, स्वदक्षिणभागे सर्वतोभद्रमण्डलं प्रागुक्तं कृत्वा, तदशक्तावष्टदलकमलं वा सिन्दूरादिना कृत्वा, तन्मध्येऽशोकतरुं पञ्चवर्णरजोभिरारचय्य तस्याधस्त्रिकोणमण्डले कामदेवं तरुणमरुणवर्णं रक्तवस्त्राभरणमाल्यानुलेपनं वामदक्षिणयोः रतिप्रीतिभ्यां शोभितं पुष्पबाणेक्षुधनुर्धरं वसन्तसहितं ध्यात्वा "४ क्लीं कामाय नमः" इति मन्त्रेण गन्धादिपञ्चोपचारैः कामदेवं सम्पूज्य, तद्वामभागे रतिं गौरवर्णां सर्वालङ्कारभूषितां रक्तवस्त्रपरीधानां पद्मकरां ध्यात्वा "४ श्रींश्रींक्रों रत्यै नमः" इति मन्त्रेण रतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, कामस्य दक्षिणभागे प्रीतिं श्यामवर्णां (सर्वा)भरणभूषितां रक्तवस्त्रपरीधानां ताम्बूलकरां ध्यात्वा "४ श्रींश्रींश्रींक्षौं प्रीत्यै नमः" इति प्रीतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, ततः कामदेवस्याग्रे कदम्बवनमध्ये वसन्तं गौरवर्णं वामहस्तेन सुधाकुम्भं दक्षिणहस्तेन नानापुष्पसमुच्चयं दधानं रक्तवस्त्राभरणभूषितं रक्तमाल्यानुलेपनं ध्यात्वा "वं वसन्ताय नमः" इति मन्त्रेण पञ्चोपचारैर्वसन्तं सम्पूज्य, पुनर्मध्ये कामदेवं पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्याष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यचतुर्दिक्षु च "क्लां हृदयाय नमः" इत्यादि षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदलेषु अग्रादिप्रादक्षिण्येन ओं कामाय नमः। ओं भस्मशरीराय नमः। ओं अनङ्गाय नमः। ओं मन्मथाय नमः। ओं वसन्तसखाय नमः। ओं स्मराय नमः। ओं इक्षुधनुर्धराय नमः। ओं पुष्पबाणाय नमः। इत्यष्टौ कामान् सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रे लोकपालांस्तदायुधानि च पूजयेत्। पुनः कामदेवं तन्मन्त्रेण सम्पूज्य धूपदीपादिकं दत्त्वा प्रणम्य, "ओं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।।" इति कामगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा समर्प्य "नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे। मन्मथाय जगज्जेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च।।" इति कामदेवं प्रणम्य, मूलविद्यया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, मध्यकुम्भे प्राग्वद् देवीमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वत् तिथिनित्यादिलोकपालान्तान् उक्तक्रमेण दमनैः सम्पूज्य, "आवाहितासि देवेशि सद्यःकाले मया शिवे। कर्तव्यं तु यथाकालं पूर्णं सर्वं त्वदाज्ञया।।" इति विज्ञाप्य देवीं गन्धपुष्पादिभिः पुनः सम्पूज्य, प्राग्वद्धूपादिनैवेद्यानि समर्प्य, नैमित्तिकहोमं नित्यहोमोक्तविधिना कृत्वा राजोपचारान् महदारार्तिकं कुमारीसुवासिनीवटुकादिपूजां विधाय, सर्वान् भोजनवस्त्रालङ्कारदक्षिणाताम्बूलादिभिः परितोष्य, स्वगुरुमपि तथा परितोष्य तदभावे तत्कुलीनमन्यं वा परितोष्य, मूलविद्यां नित्यजपात् त्रिगुणां जपित्वा, देव्यै जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य "षोडशार्णे जगन्मातर्वाञ्छितार्थफलप्रदे। कामान् पूरय भो देवि कामं[1] कामेश्वरीश्वरि।।" इति देवीं प्रार्थ्य, पुनः कामदेवं तन्मन्त्रेण दमनैः सम्पूज्य रतिप्रीतिवसन्तांश्च दमनैः सम्पूज्य, धूपदीपादिकं निवेद्य कामदेवं वसन्तं विसृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय "समस्तचक्रचक्रेशि सर्वविद्याशरीरिणि। देवी मातर्ममैवं तु भवत्विष्टं त्वादाज्ञया।।" इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा विसृज्य, श्रीपात्रोद्वासनादि सर्वं समाप्य शक्तिसामयिकानन्यान् ब्राह्मणानपि भूरिदक्षिणाभोजनादिभिः परितोषयेत्।। इति दमनारोपणविधिः।। इयं दमनपूजां यदि चैत्रपूर्णिमायां न सम्पद्यते तदा पक्षद्वयेऽष्टमीनवमीचतुर्दश्यन्यतमतिथौ कार्या। चैत्रे मासि चेन्न भवेत् तदा वैशाखे ज्यैष्ठे वा मासि प्रोक्ततिथिष्वन्यतमतिथौ कुर्यात्। अथ चैत्रे मासि पूर्णायामेव तत्कालसम्भवैः सचन्दन-

---

१. 'हृत्स्थान् पूरय मे देवि कामान्' ख. पाठः।

कर्पूरकुङ्कुमकह्लारैर्वसन्तोत्सवपूजां कुर्यात्। अत्रापि नैमित्तिकपूजायां पूजाद्रव्याणि निशि पूर्वेद्युः क्वचित्पात्रे निधाय मूलविद्ययाभ्युक्ष्य मूलमन्त्रदिननित्याभ्यां गन्धाद्युपचारैरभ्यर्च्याधिवासनं विधाय, परेद्युर्नित्यकर्मान्ते तैः सविशेषपूजनं कृत्वा स्वगुरुपूजनं च कुर्यादित्यधिवासनं पूजनं च बोद्धव्यम्।। तथा—

वैशाखे मासि पूर्णायां पूजयेद्धिमपुष्करैः। अपि वा चन्द्रकस्तूरीचन्दनैः शिशिरोदकैः।। ६।।

इति।। एतस्यार्थः— वैशाखपूर्णायां हिमजलैः कर्पूरकस्तूरीचन्दनोन्मिश्रैः शीतलोदकैर्वा प्राग्वदधिवासनपूर्वकं विशेषपूजां कुर्यादित्यर्थः।। तथा—

ज्यैष्ठे मासि च पूर्णायां कदलीपनसाम्रजैः। फलैस्तु पूजयेद्देवीं पूर्ववत् सर्वसिद्धये।। ७।।

इति।। तत्र ज्येष्ठे मासि पूर्णायां विशेषपूजां विधाय कदलीपनसाम्रफलैर्महानैवेद्यैर्देवीं परितोष्य गुर्वादिपूजनं कुर्यात् इति।। तथा—

आषाढे मासि पूर्णायां चन्दनैः कुङ्कुमान्वितैः। एलाकक्कोल[१]लजातीभिरुपेतैः पूजयेच्छिवाम्।।८।।

इति। स्पष्ट एवैतस्यार्थः।। तथा—

श्रावणे मासि पूर्णायां पवित्रैः पूजयेच्छिवाम्। तद्विधानमिदं भद्रे शृणु सौभाग्यदायकम्।। ९।।
सौवर्णै राजतैर्वापि सूत्रैः पट्टसमुद्भवैः। कार्पाससम्भवै रक्तैर्नवधा गुणितैः शुभैः।।१०।।
कुर्यात् पवित्रं शक्तीनां सर्वासां षोडशाङ्गुलैः। नवाङ्गुलैर्वा तत्संख्यसरग्रन्थ्यादिसंयुतम्।। ११।।
अथवाऽऽवृतिशक्तीनां तत्तत्संख्याङ्गुलादिकम्। कृत्वाधिवासपूर्वं तु पूजयेत् तैर्यथाक्रमात्[२]।।१२।।
होमे त्वेकसरग्रन्थि तन्मानं स्यात् पवित्रकम्। अष्टोत्तरशतैः सूत्रैः कुर्याच्छक्त्यवतारकम्।। १३।।
पूजाविष्टरमानेन वितानादवलम्बयेत्। वाराहीकुरुकुल्लादिशक्तीनां मूलशक्तिवत् ।। १४।।
स्वमानेनात्मनः कुर्यात् पवित्रं तूक्तसंख्यया। क्रमागमज्ञशिष्याणामात्मवत् समुदीरितम्।। १५।।
अन्येषां योगि[३]शक्तीनामेकग्रन्थिसरान् नव। परिधानप्रमाणेन मण्डपस्यैकसूत्रतः ।। १६।।
सरग्रन्थ्यङ्गुलैर्युक्तं षण्णवत्या तु संख्यया। कृत्वा पवित्रत्रितयं तानि देव्यै समर्पयेत्।। १७।।
उक्तमानत्रयेऽप्येकं ग्राह्यं भवति सर्वतः। न कुर्यान्मानसाङ्कर्यं यदि कुर्याद्विनश्यति।। १८।।

इति।। अस्यार्थः— तत्र श्रावणे मासि पूर्णायां पवित्रारोपणं कर्म कुर्यात्। अत्र श्रावणे मासीत्युपलक्षणम्। मिथुनसङ्क्रमणमारभ्य तुलासङ्क्रमणपर्यन्तं पवित्रोत्सवस्य कालः। तिथयस्तु पक्षद्वयेऽपि चतुर्थ्यष्टमी नवमी चतुर्दशी पूर्णिमा चेति। अत्रोत्तरोत्तरं गौणः कालः। पवित्राणि तु सुवर्णरूप्यताम्रपट्टसूत्रसरीपद्मसूत्रदर्भमुञ्जशाणसूत्रवल्कलकार्पाससूत्रेष्वन्यतमेन सूत्रेण कुर्यात्। कार्पाससूत्रं सुवासिनीभिः कर्तितं त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य नवसूत्रस्यैकसरत्वेन कल्पितैरुक्तसंख्यैः सूत्रैः पवित्राणि कुर्यात्। तत्र षोडशाङ्गुलदैर्घ्याणि षोडशसूत्रैः षोडशग्रन्थियुक्तानि नवाङ्गुलदैर्घ्याणि नवसरग्रन्थियुक्तानि वा कुर्यात्। यस्मिन्नावरणे यावत्यः शक्तयस्तत्संख्याङ्गुलसरग्रन्थियुक्तानिं वा पवित्राणि कुर्यात्। तत्रावरणशक्तिसंख्याङ्गुलादिपक्षे मूलदेव्याः षोडशाङ्गुलायामादि, पञ्चदशनित्यानां पञ्चदशाङ्गुलादिकं वाराहीकुरुकुल्लयोश्च मूलदेव्या इव पवित्राणि कुर्यात्। आयुधानामष्टाङ्गुलदैर्घ्यसरग्रन्थियुक्तानि, गुरुपङ्क्तित्रयस्य तत्तदोघोक्तगुरुसंख्याङ्गुलादिकं नवाङ्गुलादिकं वा पवित्राणि

१. 'कक्कोल' ग. पाठः। २. 'मम्' ख. पाठः। ३. 'योग' ग. पाठः।

कुर्यात्। इत्थं श्रीचक्रे पूज्यदेवतावृन्दसमसंख्यातानि पवित्राणि उक्तपक्षेष्वेकपक्षानुसारीणि कृत्वाष्टोत्तरशतसरग्रन्थि-युक्तमेकं वितानात् पूजाविष्टरमानदैर्घ्यं बृहत्पवित्रमात्मनः क्रमागमज्ञशिष्याणां च स्कन्धादिनाभिपर्यन्तदैर्घ्यमङ्गी-कृतपक्षानुसारिसरग्रन्थि (युक्त) मन्येषां सामान्ययोगि[१]शक्तीनामेकग्रन्थिनवसरयुक्तानि, मण्डपस्यैकसूत्रेण वेष्टनप्रमाणं ग्रन्थिरहितं पवित्रं कुर्यात्। अत्रावरणशक्तिसमसंख्याङ्गुलादिपक्षे आत्मनः क्रमागमज्ञशिष्याणां च मूलदेवीवत् पवित्रेषु ग्रन्थयो मालामन्त्रेण कवचमन्त्रेण वा कार्याः। ग्रन्थिषु सूत्रवेष्टनसंख्या यथेष्टमेवेति। इत्थं पवित्राणि विधाय पवित्रारोपणदिनात् पूर्वदिने साधकः कृत्यनित्यक्रियो रात्रौ सामयिकैः सार्धं पवित्राणि पूजास्थानमानीय, पवित्रस्थाने तु सिन्दूरादिना चतुरस्रवृत्तवेष्टितं नवयोनिचक्रं कृत्वा, क्वचित्पात्रे तस्मिन् मण्डले पवित्राणि गोरोचनाकुङ्कुमरक्तचन्दनकस्तूरी-कर्पूरपङ्कैर्लिप्तानि लाक्षागैरिकाद्यैर्ग्रन्थिस्थानेषु विचित्रितानि संस्थाप्य कार्पाससूत्ररचितपवित्राणि च, एतेषां नवसूत्रेषु ॐकाराय नमः। ॐचन्द्रमसे नमः। ॐवह्नये नमः। ॐनागाय नमः। ॐब्रह्मणे नमः। ॐरवये नमः। ॐगुरवे नमः। ॐसदाशिवाय नमः। ॐसर्वदेवेभ्यो नमः। इति प्रतिसूत्रमेकां देवतां सम्पूज्य, शिरोमन्त्रेणाभिमन्त्र्य हृन्मन्त्रेणाभ्युक्ष्या-स्त्रमन्त्रेणावरुध्य पवित्रेषु मूलविद्याया षडङ्गैः सम्पूज्य षोडशनित्याश्च पूजयित्वा, तेषु सुगन्धकुङ्कुमानि निक्षिप्य पञ्चरत्नानि सर्वौषधीश्च निःक्षिपेत्। रत्नानि तु हीरकमुक्ताफलनील-पद्मरागमरकताख्यानि। सर्षप-कुष्ठ-हरिद्रा-दा[२]रुलोध्रमुस्तोशीरप्रियङ्गुमुराजटामांसी-शिलीराख्याः सर्वौषधयः। ततो नववस्त्रयुगेनाच्छादयेदित्यधिवासनं विधाय, परेद्युः साधकः कृतनित्यक्रियः समयिभिः सार्धं पूजास्थानं प्रविश्य, पूजामण्डपं वितानादिभिरलङ्कृत्य, पूजाविष्टरादूर्ध्वं वितानात् पूजाविष्टरपर्यन्तं शक्त्यवताराख्यं महापवित्रमालम्बयित्वा, आसनपूजादिन्यासजातं विधाय प्राग्वत् कुम्भस्थापनं विधायार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पीठपूजां विधाय, पञ्चायतनी चेत्, पञ्चायतनदेवताः सम्पूज्य पवित्रैः सम्भाव्य, तस्मिन् कुम्भे देवीमावाह्य सर्वोपचारैरभ्यर्च्य, नित्यपूजाक्रमेणैव रश्मिवृन्दं पवित्रैः सम्भाव्य, तदङ्गहवनं नैमित्तिकं च कृत्वा, गुरुं सन्तोष्य तस्मै पवित्रं समर्प्य, पूर्णाहुतिं कृत्वा अग्नये पवित्रार्पणं विधाय, गुर्वनुज्ञया स्वयमपि पवित्रधारणं कृत्वा, दमनपूजावच्छक्तिसामयिकान् पवित्रदानादिभिर्भोजनताम्बूलदक्षिणादानादिभिश्च परितोष्य, जपं नैमित्तिकत्वेन विधाय देवीं विसृज्य ब्राह्मणादीन् भोजनभूरिदक्षिणादिभिश्च परितोषयेत्। एतावत्कर्तुमशक्तश्चेत् षण्णवत्यङ्गुलायामसरग्रन्थि-युक्तानि पवित्राणि त्रीणि कृत्वा प्राग्वत् कुम्भस्थापनादिपूर्वकं तानि देव्यै समर्प्य शेषं समापयेत्॥ इति पवित्रारोपणविधिः॥

कालीमते तु दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

आषाढ उत्तमो मासः श्रावणो मध्यमः प्रिये। हीनो भाद्रपदो मासः पक्षौ सितसितेतरौ॥ १॥
प्रथमं शुक्लपक्षस्तु तदलाभे सितेतरः। चतुर्दश्यष्टमीपूर्णमासीतितिथिषु वै यजेत्[३]॥ २॥

इति। तन्त्रराजे— (६ प० २० श्लो०)

अथ भाद्रपदे मासि पूर्णायां केतकोद्भवैः। प्रसूनैरर्चयेद् देवीं पूर्वोक्तविधिना युतम्[४]॥ १॥

इति। अस्यार्थः—भाद्रपदपूर्णायां केतकपुष्पैः साधिवासं विशेषपूजां कुर्यादित्यर्थः॥ तथा—

आश्वयुज्यां विशेषस्तु दर्शान्तप्रतिपत्तिथिम्। आरभ्य पूजयेद् देवीं गन्धपुष्पोपहारकैः॥ २॥
होमे शतादितद्वृद्ध्या पूर्णायां षट्शताधिकम्। सहस्रं जुहुयान्नित्यं जपं चैव समाचरेत्॥ ३॥
कन्याकायां समावाह्य देवीं सम्पूज्य भक्तितः। हुत्वा भूषणवस्त्रादिदक्षिणां च समुद्रसेत्[५]॥४॥

१.'योग' ग. पाठः। २.'दारुहरिद्रा' ख. पाठः। ३.'क्रमात्' ग. पाठः। ४.'गन्धपुष्पोपहारकैः' ग.पाठः। ५.'समुद्धरेत्' ग. पाठः।

एवमेकादितद्'वृद्ध्या पूर्णान्तं पूजयेत् प्रिये। तेन विद्वान् भवेत् सिद्धो नृपतिं कुरुतेऽर्चकम्।।५।।

इति।। अत्राश्वयुजे मासि शुक्लप्रतिपदमारभ्य पूर्णिमापर्यन्तं पञ्चदशतिथिषु प्रत्यहं नित्यपूजानन्तरं नैमित्तिकत्वेन चक्रक्रमं सम्पूज्य, प्रतिपत्तिथिमारभ्यैकादिवृद्ध्या प्रतिपदि द्विशतं, द्वितीयायां त्रिशतं, तृतीयायां चतुःशतमित्यादिजपहोमौ विधाय पूर्णिमायां षोडशशतानि जपित्वा षोडशशतानि होमं कुर्यात्। प्रतिपदादितिथिष्वेकादितद्वृद्ध्या पूर्णायां षोडश कन्या यथा भवन्ति तथा कन्यापूजनं च कुर्यात्। ततः प्रत्यहं प्रातः कन्यकानिमन्त्रणं कृत्वा पूजाजपहोमान्ते तां सुस्नातां समलंकृतां पूजास्थाने मृद्वासने समुपवेश्य, तस्यां प्रागुक्तविधानाद्देवीमावाह्य सम्पूज्य, वस्त्रालङ्करण-भोजनताम्बूलदक्षिणादानादिभिः परितोष्य प्रणम्य विसृजेत्। एवं बहुकन्यापूजनेऽपि प्रत्येकं पूजनं कुर्यात्। अस्मिन्नेव मासि प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवम्यन्तासु नवसु रात्रिषु विशेषपूजां कृत्वा, एकादिवृद्ध्या जपादिकं च विधाय कुमारीपूजनं चैकादिवृद्ध्या कुर्यात्। तत्र नवरात्रे पूजने विशेषः। प्रतिपद्येकवर्षा, द्वितीयायां द्विवर्षा, एवं नवम्यां नववर्षा कन्या पूज्या।। तत्रापि तिथौ कुमारीः पूर्वदिनपूजिताश्च नवम्यां एकवर्षादिनववर्षान्ता नव कुमार्यो यथा भवन्ति तथा पूजयेत्।। तासां नामानि तु—प्रतिपदि शुद्धा। द्वितीयायां बाला। तृतीयायां ललिता। चतुर्थ्यां मालिनी। पञ्चम्यां वसुन्धरा। षष्ठ्यां सरस्वती। सप्तम्यां रमा। अष्टम्यां गौरी। नवम्यां दुर्गा। मन्त्रास्तु—ऐंह्रींश्रीं शुद्धायै नमः। ३ बालायै नमः। ३ ललितायै नमः, इत्यादि नाममन्त्रैः पूजयेत्।। अत्र—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते।। १।।
द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षान्तकन्यकाः। पूजयेदुक्तमार्गेण तस्मात् साधकसत्तमः।। २।।

इति स्कन्दपुराणवचनाद् द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षान्तकन्यकाः पूजयेत्।। अथवा नवयौवनसम्पन्ना यथोक्तलक्षणाः-सुवासिनीर्वा नवरात्रिषु पूजयेत्। इति।। तासां नामानि तु— २ ह्ल्लेखा, ३ गगना, ४ रक्ता, ५ महोच्छुष्मा, ६ करालिका, ७ इच्छा, ८ ज्ञाना, ९ क्रिया १० दुर्गा चेति।। अत्रापि मन्त्रास्त्रितारान्ते ह्ल्लेखायै नम इत्यादयः।।

अथ पूज्यापूज्यकुमारीणां लक्षणानि। तत्र प्रथमं पूज्यानां लक्षयानि श्रीकुलार्णवे—

अरोगिणीं सुपुष्टाङ्गीं सुरूपां व्रणवर्जिताम्। एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक् प्रपूजयेत्।। १।।

इति।। अथापूज्यकुमारीलक्षणानि तत्रैव—

हीनाधिकाङ्गीं दुष्टां च विशीलकुलसम्भवाम्। ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम्।। २।।
जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम्। सन्त्यजेद् रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्।।३।।

इति।। अथ फलविशेषे पूज्यकुमारीविशेषः।। तत्र स्कान्दे—

ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम्। लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम्।। १।।
दारुणे चान्त्यजातीयां पूजयेद्विधिना नरः।

इति। अथ पूज्यसुवासिनीलक्षणानि श्रीकुलार्णवे—

सुरूपा तरुणी शान्तानुकूला मुदिता शुचिः। शङ्काहीना भक्तियुक्ता गूढशास्त्रोपयोगिनी।। १।।
अलोलुपा सुशीला च स्मितास्या प्रियवादिनी। गुरुदैवतसद्भक्ता सुचित्ता कौलिकप्रिया।। २।।
विमत्सरा विशेषज्ञा देवताराधनोत्सुका। मन्त्रतन्त्रसमायुक्ता समयाचारपालिका ।। ३।।

१. 'संवृद्ध्या' ख. पाठः।

मनोहरा सदाचारा शक्तिरेषा सुलक्षणा।..॥ ४॥

इति॥ अथापूज्यसुवासिनीलक्षणानि तत्रैव—

दुष्टोग्रा कर्कशा स्तब्धा कुत्सिता कुलदूषिता। दुराचारा पराधीना भावहीना दुरालसा॥ १॥
निद्रासक्तातिदुर्मेधा हीनाङ्गी व्याधिपीडिता। दुर्गन्धा दुःखिता मूर्खा वृद्धोन्मत्ता रहस्यभित्॥ २॥
कुतर्का कुत्सितालापा निर्लज्जा कलहप्रिया। विरूपोन्मार्गगा क्रुद्धा पङ्ग्वन्धा विकृतानना॥ ३॥
ईदृशीं मन्त्रयुक्तां च शक्तिं यागे विवर्जयेत्।

इति॥ इयं नवरात्रपूजा चैत्रादिफाल्गुनान्तेषु द्वादशमासेषु चैत्राषाढाश्विनपौषमासचतुष्टये चैत्राश्विनमासयोर्वान्यतमे वा शुक्लपक्षेषु यथाविभवविस्तरं कार्या। तत्रापि नवरात्रकरणाशक्तौ तृतीयादिनवम्यन्तं सप्तरात्रं, पञ्चम्यादिपञ्चरात्रं, सप्तम्यादित्रिरात्रं वोक्ततिथिषु कुमारीपूजनादिभिर्नवरात्रोत्सवं कुर्यात्। एवमन्येऽपि नैमित्तिकपूजाविशेषा बहवः सन्ति। ते तु गुरुतः शास्त्रतश्च ज्ञातव्याः॥ श्रीतन्त्रराजे—(६ प० २५ श्लो०)

कार्तिके मासि पूर्णायां कुङ्कुमेन समर्चयेत्। रात्रौ प्रदीपकैर्होमं कुर्याद् घृतसमेधितैः॥ १॥
देव्यग्रे स्थापयेद् दीपान् विद्यया षोडश क्रमात्। शक्तीनामेकमेकं तु स्थापयेत् [1]तत्तदग्रतः॥ २॥
अथवा भाजने मध्ये त्वेकं तमभितो नव। कृत्वा निवेदयेन्मूलविद्यया सप्रसूनकम्॥ ३॥

इति॥ अयमर्थः— तत्र कार्तिकपूर्णायां कुङ्कुमेन देवीं सम्पूज्य रात्रौ कुण्डस्थण्डिलादौ अग्निस्थापनं कृत्वा, पिष्टमयैर्घृतपूरितैः कर्पूरवर्तिदीपितैः प्रदीपैर्नित्यहोमक्रमेणैव हुत्वा साङ्गायै सावरणायै दैव्यै दीपदानं च कुर्यात्। तत्र सुसमे भूतले सिन्दूरादिना विपुलं श्रीचक्रं विरच्य, तत्र देवीमावाह्य सम्पूज्य मध्ये बिन्दुचक्रे षोडश दीपान् शर्करादुग्धमिश्रयवगोधूमादिपिष्टरचितान् कर्पूरगर्भवर्तीन् घृतपूरितान् प्रज्वलितान् मूलविद्यया मूलदेव्यग्रे स्थापयित्वोत्सृज्य नित्यादिश्रीचक्रपूज्यसमस्तदेवताभ्यस्तत्तत्पूजास्थाने तत्तदग्रे तत्तन्मन्त्रेण एकमेकं स्थापयित्वोत्सृजेत्। एतावत्कारणाशक्तौ एकस्मिन् स्वर्णादिपात्रे नवयोनिचक्रमष्टदलं कमलं वा कुङ्कुमादिना निर्माय, तस्मिन् यथोक्तरूपान् नव दीपान् मध्येऽष्टसु योनिषु दलेषु वा संस्थाप्य देवीमभ्यर्च्योत्सृज्य समर्पयेदित्यर्थः॥ तथा—

मार्गशीर्षे च पूर्णायां नारिकेलाम्बु चन्द्रयुक्। निवेद्याभ्यर्चयेन्माषपिष्टापूपैर्यथाविधि॥ ४॥

इति॥ मार्गशीर्षपूर्णिमायां कर्पूरयुक्तनारिकेलजलैरर्घ्यस्थापनं विधाय सुगन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य, माषपिष्टनिर्मितापूपैर्नैवेद्यं च कुर्यात्। तथा—

पुष्ये मासि च पूर्णायां शर्कराभिर्गुडेन वा। पूजयेदिष्टसंसिद्ध्यै गव्यं दुग्धं निवेदयेत्॥ ५॥

इति॥ पौषपूर्णिमायां शर्कराभिस्तदभावे तु गुडेन सम्पूज्य योगसम्बन्धि दुग्धं काङ्क्षितावाप्तये निवेदयेत्। तथा—

माघे मासि च पूर्णायां तिलैः शुक्लैस्तथेतरैः। पूजयेद्दुग्धनैवेद्यैः[2] सितापूपादिभिः सदा॥ ६॥

इति॥ तत्र माघे मासि पूर्णिमायां शुक्लैः कृष्णैर्वा तिलैर्देवीं सावरणां सम्पूज्य शर्करादुग्धापूपादिनैवेद्यं निवेदयेत्॥ तथा—

फाल्गुने मासि पूर्णायां पङ्कजैः स्वर्णराजतैः। चूतसौगन्धिमधुकैः पूजयेदीप्सिताप्तये॥ ७॥

---

१. 'तु तद' ग. पाठः। २. 'घसिता' ख. पाठः।

इति।। तत्र फाल्गुने मासि पूर्णायां पङ्कजैः सुवर्णरजतपुष्पैः कह्लारैर्मधूकपुष्पैश्च देवीं सम्पूज्येत्।। तथा–

विषुवायनदर्शासु युगादिषु समर्चनम्। कुर्याद्वैशेषिकं पुण्येष्वागमोक्तेषु तेष्वपि।। ८।।

इति नैमित्तिकपूजा।।

अथ कालीमते पूर्णाभिषेकविधौ तु प्राग्वत् कुण्डमण्डपवेदिकादिकं च कुर्यात्। अत्र विशेषस्तु– सप्तविंशतिहस्तपरिमितं मण्डपं विधायाष्टदिक्षु कुण्डानि मध्ये नवहस्तपरिमितां वेदीं विधाय, वेद्यां श्रीचक्रं निर्माय कलशस्थापनादिकं सर्वं प्राग्वत् विधाय, गुरुः प्रातः कृत्यादिपीठन्यासान्तं कर्म विधाय महाशक्तिन्यासं कुर्यात्।। तत्र प्रथमं जगच्छून्याकारं निरालम्बं ध्यात्वा "हूं पृथिव्यै नमः" इति स्वासनाधः पृथिवीं सम्पूज्य स्वासनं वामहस्तेन स्पृशन् भुवनेश्वरीबीजं सप्तवारं जपित्वा, ४ ॐ जयायै नमः। ४ ॐ विजयायै नमः। ४ ॐ जयन्त्यै नमः। ४ ॐ अजितायै नमः। ४ ॐ अपराजितायै नमः। ४ ॐ सङ्गमायै नमः। ४ ॐ रम्भायै नमः, इति स्वासने सप्तशक्ती सम्पूजयेत्। मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, ॐ अस्य महाशक्तिन्यासस्य परशिव ऋषिः, अतिजगती छन्दः, श्रीपराशक्तिर्देवता, ऐं बीजं, श्रीं शक्तिः, सौः कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन महाशक्तिन्यासे विनियोगः। ऋष्यादिकं विन्यस्य द्विरावृत्त्या तारत्रयस्य करषडङ्गन्यासं विधाय न्यासं कुर्यात्। तत्र योनौ ॐऐंह्रींश्रीं नमः। नाभौ ४ ह्रांह्रींह्रूं नमः। कराग्रयोः क्लांक्लींक्लूं नमः। हृदये ४ ह्रांह्रींह्रूं नमः। ललाटे ४ सांसींसूं नमः। कर्णयोः ४ हांहींहूं नमः। भुजमूले ४ द्रांद्रींद्रूं नमः। बिन्दु (चिबु) काग्रे ४ सौःश्रींक्षौं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ४ ऐंआंसौः अंनमः, इति विन्यस्य, अकारादिक्षकारान्तानां सर्वेषां वर्णानां मूलभूतमकारं दुग्धस्य सर्पिर्वत्सूक्ष्मरूपेण स्थितं विभावयन् तन्मयानन्यवर्णान् वक्ष्यमाणेषु स्थानेषु विन्यसेत्। तत्र–तालुके ४ ऐंईंसौःआं नमः। नासाग्रे ४। ३ इं नमः। पश्चिमलिङ्गे सीवन्यां मूलाधारगतज्योतिर्लिङ्गे वा ४। ३ ईं नमः। गुदे ४। ३ उं नमः। पृष्ठे ४। ३ ऊं नमः। कटिसन्धौ ४। ३ ऋं नमः। वृषणान्ते ॐ ३। ३ ॠं नमः। पृष्ठमध्ये ॐ ३। ३ ऌं नमः। लम्बिकास्थाने ४। ३ ॡं नमः। सर्वाङ्गे ॐ ३। ३ एं नमः। पुनर्बिन्दुपरिगतत्रिरेखायां योनौ न्यासभावनया सर्वाङ्गे "ॐ ३। ३ ऐं नमः" इति विन्यस्य,

"योनिरित्युच्यते शक्तिरेषा ब्रह्माण्डभेदिनी। लेपं विलीनयेद् देहे रेफो[१] बिन्दुरिति स्मृतः।। १।।
दासप्ततिसहस्रेषु नाडीभेदेषु पञ्जरम्। व्याप्यमाना महाशक्तिः कामिनीनामृतुक्रमे ।। २।।
नाडीचक्रागतं रक्तं योनिमार्गे निपातितम्। पुष्पीभूते भगे पुष्पं मासपक्षादिषु क्रमात्[२]।। ३।।
ऐंकारोऽपि स्वयं योनिर्नात्र कार्या विचारणा। न्यस्तं वाप्यत्र देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम्।। ४।।

इत्यन्तं श्लोकसमुदायस्यार्थं चिन्तयन् महाकामकलायां ब्रह्मरन्ध्रस्थायां लयं भावयित्वा ब्रह्मरन्ध्रे ॐ ३। ३ ॐ नमः। नादमध्ये ॐ ३। ३ ॐ नमः। नादान्ते ॐ ३। ३ अं नमः। कण्ठे ॐ ३। ३ अः नमः। हृदि ॐ ३। ३ कं नमः। एवं मस्तके खं नमः। जङ्घयोः गं नमः। स्तनयोः घं नमः। नासिकान्ते ङं नमः। आज्ञायां चं नमः। वामकुक्षौ छं नमः। दक्षिणकुक्षौ जं नमः। ऊरुमूलयो झं नमः। दन्तपङ्क्त्योः ञं नमः। जिह्वाग्रे टं नमः। मुखे ठं नमः। कक्षयोः डं नमः। अस्थिसन्धिषु ढं नमः। चित्ते णं नमः। नाभौ तं नमः। ललाटे थं नमः। कर्णरन्ध्रयोः दं नमः। कपोलयोः धं नमः। नयनयोः नं नमः। श्वेतसहस्रदलकमले पं नमः। हृत्पद्मे फं नमः। स्कन्धयोः बं नमः। भ्रूमध्ये भं नमः। हनुमूले मं नमः। तालुमूले यं नमः। लिङ्गगुदयोर्मध्ये रं नमः। जिह्वायां लं नमः। सर्वाङ्गे वं नमः। वामादिदक्षिणशिरःपर्यन्तमापादतलवेष्टनत्वेन शं नमः। तालुमूले षं नमः। सर्वाङ्गे सं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे हं नमः। हस्तपादयोः सर्वाङ्गुलीषु क्षं नमः। प्रागुक्तमूलाधार–

१. 'लयं चित्तालये देहे रेफः' ख. पाठः। २ अतः परं "योनिरेखागतं बिन्दुरक्तं जानीहि पङ्कजम्। मारुतोऽपि भगाकारे ऐंकारे संस्थितो विदुः"।। ख. पुस्तकेऽधिकः पाठः।

स्थितकुण्डलिन्यां ओं ३। ३ इति विन्यस्य ओं ३। ३ समस्तमातृकामुच्चरन् तां कुण्डलिनीं सुषुम्नावर्त्मना षट्चक्रभेदक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा तत्रस्थाकुलसहस्रदलकमलकर्णिकामध्यस्थितपरमात्मनि शिवे विलीनां सम्भाव्य "ओं ३। ३ रक्ष रक्ष शूलिनि त्रैलोक्यानन्ददायिनि त्रिपुरे देवि रक्ष मां त्रिपुरेश्वरि रक्ष रक्ष महादेवि अस्मदीयमिदं वपुः ऐंह्रींश्रीं हसक्ष्फ्रें ह्सौः २ ह्सक्ष्फ्रें श्रींह्रींऐंश्री समयिनि मदिरानन्दसुन्दरि समस्तसुरासुरवन्दिते भुजङ्गभूपालमौलिमालालङ्कृतचरणकमले विकटदन्तच्छटाटोपनिवारिणि मदीयं शरीरं रक्ष रक्ष परमेश्वरि हुंफट् स्वाहा ओंभूःस्वाहा ओंभुवःस्वाहा ओंस्वःस्वाहा ओंभूर्भुवःस्वःस्वाहा नरान्त्रमालाभरणभूषिते महाकौलिनि महाब्रह्मवादिनि महाधनोन्मादन[1]कारिणि महाभोगप्रदे अस्मदीयं शरीरं वज्रमयं कुरु कुरु दुर्जनान् हन हन दुष्टमहीपालान् भक्षय भक्षय परचक्रं भञ्जय भञ्जय जयङ्करि गगनगामिनि त्रैलोक्यस्वामिनि यमलवरयूं भमलवरयूं वमलवरयूं शमलवरयूं श्रीभैरवि प्रसादय स्वाहा।

कुलाङ्गनाकुलं सर्वं मदीयं त्रिपुरेश्वरि। देवी रक्षतु दिव्याङ्गी दिव्यात्मा भोगदायिनी।। १।।
रक्ष रक्ष महादेवि शरीरं परमेश्वरि। मदीयं मदिरानन्दे आपादतलमस्तकम्"।। २।।

इत्यात्मरक्षां कृत्वा,

त्रिपुराख्या महादेवी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। न गुरोः सदृशं वस्तु न देवः शङ्करोपमः।। ३।।
न च कौलात्परो योगो न विद्या त्रैपुरीसमा। न च शान्तेः परं ज्ञानं न च क्षान्तेः परं सुखम्।। ४।।
न च शक्तिसमो न्यासो न विद्या त्रैपुरीसमा। दर्शनेषु समस्तेषु पाखण्डेषु विशेषतः।। ५।।
दिव्यरूपा महादेवी सर्वत्र परमेश्वरी।

इति मन्त्रविद्ययोर्महिमानं स्मृत्वा "पीठोपपीठशिरःस्था गगनगिरिभुवनगिरिभुवनगोकुलनिवासिनी जयति कुलशक्ति-महीतलपातालनिवासिनी कुलकौलविभेदिनी सकलजनमनआनन्दकारिणी करोतु मम चिन्तितं कार्यं भैरवीशतमेकं पुनातु परमेश्वरी मदनमण्डलालम्बिनी सप्तकोटिसहस्राणां मन्त्राणां परमेश्वरी"। इति मन्त्रं सकृज्जपित्वा,

"ऐं नमो भगवति त्रिकोणे त्रिधावर्ते महालिङ्गालङ्कृते त्रैलोक्योत्पत्तिस्थितिप्रलयकारिणि सहलह्रीं कन्दर्पानन्ददायिनि सहह्रीं ब्रह्मदण्डरेखे सहह्रौं चित्स्वरूपेण पाशाङ्कुशालङ्कृते वद वद वाग्वादिनि श्रीं मुष्टमहीपालराज्यप्रदे ऐं वं वरदाशिवहस्ते समस्तजनानन्दकारिणि क्लीं क्लीं कामराजबीजाश्रये द्रांद्रींक्लींब्लूंसः क्षोभय क्षोभय क्षोभिणि हसौःहसःह्सौः मथमथ अभयप्रदायिनि चतुर्भुजे त्रिनेत्रे प्रेतासनोच्चारिणी महाकपालमालालङ्कृते चन्द्रशेखरे त्रिपुरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदे ओंऐंओं नमः सिद्धं अं ५१ क्षमित्यादिविलोमेनाकारान्तं ५१ द्वंसिमःन ओंऐंओं सर्वबीजमातः श्रीसमयिनि मम मनोरथं देहि देहि स्वाहा"।। एवं जपित्वा, "ऐंईंसौःश्रीमन्त्रराजाय नमः" इति त्रैपुरमन्त्रस्य पूजां विधाय त्रिपुरादिमहानाम्ना त्रयोदशविद्याः पूजयेत्। (१) ओंऐंसहौ सहलह्रीं सहह्रौः ऐं सहह्रीं सहहूं कामत्रिपुरायै नमः। (२) ओंऐंह्रींक्लींहसौः त्रिपुरभैरव्यै नमः। (३) ओं ३ ऐंह्रींसः वाक्त्रिपुरायै नमः। (४) ओंऐंह्रींश्रींसौः महालक्ष्म्यै त्रिपुरायै नमः। (५) ओंऐंप्रेंक्लीं मोहिन्यै त्रिपुरायै नमः। (६) ओंऐंक्लींब्लूंस्त्रीं भ्रामरीत्रिपुरायै नमः। (७) ओं ३ ऐंह्रींश्रींप्रेंहसौः त्रैलोक्यस्वामिन्यै त्रिपुरायै नमः। (८) ओंऐंडांडींडूंडैंडौंडः हंस्यै त्रिपुरायै नमः। (९) ऐंऐंऐंसौः कौलिकायै त्रिपुरायै नमः। (१०) ऐंऐंसौः षण्डिकायै त्रिपुरायै नमः। (११) ऐंऐंसौः तालुमध्यमायै त्रिपुरायै नमः। (१२) ऐंऐंसौः कपालाङ्कुरवासिन्यै त्रिपुरायै नमः। (१३) ठःठःठः यथाशक्ति जपित्वा रक्तपुष्पैः शिरसि 'ऐं ईंसौः, आत्मदेहाय नमः" इति गन्धाक्षतैश्च सप्तधा सम्पूज्य धूपदीपौ निवेद्य तस्मिन्नेव त्रैपुरे देहे "ऐंईंसौः" इति वनिताक्षोभकरीं महाकामकलां ध्यायेत्।। ततः श्लोकशतकं न्यासानुसन्धानेन पठेत्। तत्र–

१. 'न्मर्दन' ख. पाठः।

शक्तिरुद्रमयं देहं मदीयं त्रिपुरे कुरु। देहि मे देवदेवेशि (वरं नि) त्यमभीप्सितम्।। १।।
मस्तकं मङ्गलादेवी ललाटं कुलसुन्दरी। नेत्रयुग्मं महाकाली कर्णौ रक्षतु कुण्डली।। २।।
कपाली कर्णगर्भं तु कपोलौ कमलावती। दन्तान् रक्षतु चामुण्डा चिबुके मेरुवासिनी।। ३।।
भ्रूमध्यं कण्ठदेशं च रक्षेन्मे भुवनेश्वरी। जिह्वां सरस्वती रक्षेत् तालुकं तालुवासिनी।। ४।।
स्थातु मे कपिला स्कन्धे स्कन्धां(वामां)से कुलमालिनी। कुक्षौ विनायकी स्थातु जयानन्दा स्तनद्वये।।
कण्ठकूपे महालक्ष्मीर्हृदये चण्डभैरवी। ब्रह्माणी नाभिदेशे तु स्थातु ज्वालावती गुदे।। ६।।
लिङ्गे लिङ्गप्रभा चैव मुण्डिनी मेदमण्डले। नाडीचक्रे महायोगा उद्भटा दक्षिणे करे।। ७।।
वामहस्ते महामाया विद्या हस्ताङ्गुलीषु च। वैष्णवी वामपादे च स्थातु चक्रायुधान्विता।। ८।।
तथा दक्षिणपादान्ते एकपादा सुरेश्वरी। पादाङ्गुलीषु कौबेरी रोमकूपे महोद्भटा ।। ९।।
मण्डली नस्यमूले तु वाराही मेदमण्डले। जालन्धरी जलस्थाने कामाक्षी काममध्यगा।। १०।।
उद्भटा नाभिलिङ्गान्ते नासाग्रे पूर्णपीठगा। पृष्ठवंशे जयादेवी अस्थिसन्धिषु चर्चिका।। ११।।
चर्मधारी त्वचायां तु स्थातु नित्यं महाशयाः। रक्तमध्ये मनोऽन्ते च स्थातु मे हिंसिनी शुभा।। १२।।
माहेश्वरी च कौमारी द्वे चैते स्थातु जङ्घयोः। वामदक्षिणयोश्चैव वीराली कटिसन्धिषु ।। १३।।
देवी रक्षतु मे गात्रं मस्तकं कुलकामिनी। पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।। १४।।
पञ्चभूतेषु भूतेशी सदा रक्षतु मे कुलम्। राज्यं ददातु मे चैन्द्री प्रजां चैव प्रजावती।। १५।।
माया ददातु मे नित्यं धनं धान्यं यशस्तथा। रणे राजकुले चैव शत्रुमध्ये महावने।। १६।।
रक्तनेत्रा महादेवी करोतु मम चिन्तितम्। समया समयं रक्षेद्विद्यां विद्या कुलागमे।। १७।।
साधकानां जगन्नाथा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। प्राणा करोतु मे सिद्धिं त्रैलोक्यविजया सुखम्।। १८।।
घण्टाली या महाविद्या सा मे यच्छतु मङ्गलम्। सप्तकोटिसहस्राणां मन्त्राणां नायिका तु या।। १९।।
सा मे सुरेश्वरी देवी सदा सिद्धिं प्रयच्छतु। उल्कामुखा मुखे स्थातु मार्जारी देहसन्धिषु।। २०।।
भद्रकाली तु या विद्या सा मे स्थातु शिवामये। त्रिकोणं च त्रिधावर्तं त्रैपुरं चक्रमुत्तमम्।। २१।।
मस्तके स्थातु मे नित्यं तस्यान्ते बहुरूपिणी। पूर्वोक्ता त्रैपुरी शक्तिः स्थातु मे मन्मथोत्थिता।।२२।।
क्षोभवती जगत्सर्वं मदिरानन्दविह्वला। निवासं कुरु मे देहे साम्प्रतं दिव्ययोगिनी।। २३।।
एह्येहि त्वं महादेवि सिद्धयोगिनि मे कुले। शत्रूणां घातनार्थाय जेतॄणां भोगदायिनी।। २४।।
महायोगिनि देहेऽस्मिन् सर्वदा निलयं कुरु। माहेन्द्री च शिखां स्थातु योनिमध्ये गणेश्वरी।।२५।।
प्रेताशी नाम विख्याता करोतु कुशलं मम। डाकिनी पूर्वभागे च मम सौख्यं प्रयच्छतु।। २६।।
शाकिनी पश्चिमाङ्गेषु दक्षिणे चापि रा (क्षसी ?किणी)। वामभागे महामाया करोतु कुशलं मम।।२७।।
सास्मदीयं शिरः पातु सदा तिष्ठतु भैरवी। या विशाला विशालाक्षी निर्मला मलवर्जिता।।२८।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या कालकल्पिता काली कालरात्री तु कथ्यते।।२९।।

सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या निशाचरराजन्यपूजिता च निशाचरी।। ३०।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या चोर्ध्वकेशिका नाम मुक्तेशी महाभया।। ३१।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या वीरेति समाख्याता वीराणां जयदायिनी।। ३२।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या मालिनी समाख्याता नासाग्रे विद्रुमाजिनी।।३३।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या कङ्कालकरालाङ्गी चण्डकङ्कालकुण्डला।। ३४।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । प्रचण्डा च विरूपाक्षी विरूपा विश्वरूपिणी।। ३५।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । खट्वाङ्गी कथ्यते या च रौद्री रुद्रेण पूजिता।। ३६।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । कलियोगिनी प्रसिद्धा च या लोके श्रूयते कलौ।। ३७।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । प्रेताक्षी कथ्यते या च फेत्कारोत्कटवर्जिता(?)।। ३८।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । धूम्राक्षी या समाख्याता शास्त्रेऽस्मिन् योगिनीमते।।३९।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । घोररूपा महादेवी कथ्यते या कुलागमे।। ४०।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । विश्वरूपा विशेषेण करोति च जगत्त्रयम्।। ४१।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । भयङ्करी समादिष्टा या चोक्ता वै कुलागमे।। ४२।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । कपालमालिका प्रोक्ता या देवी मुण्डधारिणी।। ४३।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । भीषणा भैरवी नाम या देवी भीमविक्रमा।। ४४।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । न्यग्रोधवासिनी या च कथ्यते च सुरार्चिता।। ४५।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । भैरवी भीषणी या च भैरवाष्टकवन्दिता ।। ४६।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । प्रोच्यते दीर्घलम्बोष्ठी महामाया महाबला।। ४७।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । खट्वाङ्गी या महाशक्तिः संसारार्णवतारिणी।। ४८।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या समस्तेषु मन्त्रेषु प्रोच्यते मन्त्रवादिनी।। ४९।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । कालघ्नी कथ्यते या च युगान्ते परमेश्वरी।। ५०।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । ग्राहिणीति समाख्याता सुरासुरमहोरगैः ।। ५१।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । चक्रिणी गद्यते या च एकपादा त्रिलोचना।। ५२।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । या विश्वबाहुका देवी विश्वनाथप्रिया सदा।। ५३।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । दर्शनेषु समस्तेषु विदिता परमेश्वरी ।। ५४।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । कण्टकोच्छेदनार्थाय शास्त्रे या कण्टकी स्मृता।। ५५।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । कीलकी कथ्यते या च सप्तहस्ता महाबला।। ५६।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । सङ्ग्रामे च महादेवी महामारीति कथ्यते ।। ५७।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । यमदूतीति विख्याता या सुरासुरपूजिता ।। ५८।।

सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । करालिनीति या देवी महाविद्या महाबला।। ५९।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । ललिताम्बा महाराज्ञी सर्वचक्रैकनायिका ।। ६०।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम । नासाग्रे कौलिकी स्थातु मदनस्था तथा मुखे।। ६१।।
व्योमजङ्घे कपोले च गालके चापहारिणी । सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम।। ६२।।
द्राविणी क्षोभिणी चैव स्तम्भिनी मोहिनी तथा। रौद्रकर्मा महाघण्टा चमरी त्वरिता मतिः।। ६३।।
रौद्री च कुलमाता च काकदृष्टिरधोमुखी। कपालकुण्डली दीर्घा कपाली कुलगामिनी।। ६४।।
दैवी रक्षतु मे गात्रं मस्तकं कुलमालिनी। भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।। ६५।।
पञ्चभूतेषु भूतेशी सदा रक्षतु मे कुलम्। राज्यं ददातु मे चैन्द्री प्रजां चैव प्रजावती।। ६६।।
माया ददातु मे नित्यं धनं धान्यं यशस्तथा। रणे राजकुले चैव शत्रुमध्ये महावने।। ६७।।
रक्तनेत्रा महादेवी करोतु मम चिन्तितम्। समया समये रक्षेत् विद्यां विद्या कुलागमे।। ६८।।
साधकानां जगन्नाथा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। द्विजटी त्रिजटी प्रोक्ता कन्दली ललिताखिला।। ६९।।
गायत्री चाम्बिका तारा पार्वती कमलप्रभा। मादिनी मदनोन्मादा मन्दारी मदनातुरा।। ७०।।
भीषणा भीषणी नाम प्रेतसिद्धा विभीषणा। क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा कान्तिर्बुद्धिस्तथा द्युतिः।। ७१।।
सन्ध्या धृती रतिः क्षान्तिर्ह्यनिशं परिपठ्यते। सुरनाथेति विख्याता नगरेतरदेवता ।। ७२।।
ग्रामदेवी ह्यधिष्ठात्री पीठे पीठेश्वरीं विदुः। काबेरी नर्मदा चैव गङ्गेति यमुनोच्यते।। ७३।।
गोदावरी महापुण्या प्रोच्यते चाप्यरुन्धती। त्रैलोक्येऽपि महादेवी स्त्रीनाम्नी या प्रकाशिता।। ७४।।
सा देवी रूपलक्षे तु स्थातु श्रीर्हृदये मम। सुवर्णरेखिणी प्रोक्ता विद्या या प्रोच्यते किल।। ७५।।
निर्मूलिनी भुजङ्गानां सा करोतु सुखं मम। कुरुकुल्लेति विख्याता पक्षिराजमुखोद्भवा।। ७६।।
या विद्या सा महारूपा जिह्वाग्रे स्थातु मे सदा। ओंकारिणीति विख्याता देहे स्थातु सदा मम।। ७७।।
विद्यापहारिणी नाम कलिरूपविदारिणी। भेरुण्डा स्थातु मे कण्ठे तोरला स्थातु मस्तके।। ७८।।
तथा शवलरेखापि मूले स्थातु सदा मम। जाङ्गली विषनाशाय वाचां सिद्धिं करोतु मे।। ७९।।
सर्वसिद्धिकरी विद्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। अहं ब्रह्मा अहं विष्णुरहं देवो महेश्वरः।। ८०।।
सर्वभूतनिवासोऽहं लोके श्रीशक्तिचिन्तकः। शक्तिन्यासेन पूतेन शरीरेण सुरासुराः ।। ८१।।
प्राधानादेशमात्रेण आशां (ज्ञां) कुर्वन्तु मे सदा। यत्किञ्चिद्योगिनीरूपं त्रैलोक्ये चास्ति शङ्कर।। ८२।।
तत्सर्वं तिष्ठते देहे शक्तिन्यासे उपासिते। कामिनी कुरुते चापि या न्यासं भक्तिनिर्मितम्।। ८३।।
तां देवीं दिव्यरूपस्थां संसारे त्रिपुरां विदुः। नमोऽस्तु ते जगन्मातर्नमोऽस्तु भुवनेश्वरि।। ८४।।
नमो भोगप्रदे देवि (नमस्तुभ्यं) महेश्वरि। प्रकटा गोपिताः सर्वा निर्वाणा भैरवी शिवा।। ८५।।
संभ्रमा विजया हंसा शुभा सानलदेवता। यक्षिणी चूडकन्या च तथा चाकाशगामिनी।। ८६।।
भूचरी चरिता कुम्भी सर्वागमनिवासिनी। चतुःषष्ट्याश्रया देवी योगिन्यो येन चिन्तिता।। ८७।।

आधारे लीयमानास्तु स योगी योगविद्भवेत्। ललाटे मण्डला स्थातु विरजा स्थातु मस्तके।।८८।।
एकाक्षी दक्षिणस्कन्धे वामे चैव त्रिलोचना। जयन्ती स्थातु मे कुक्षौ कट्यां कन्दर्पकुण्डली।।८९।।
मालिनी लिङ्गसन्धौ च हृदि स्थातु समाधिनी। अम्बिका पृष्ठवंशे च पार्श्वयोः स्थातु मेदिनी।।९०।।
दिग्गजाङ्गी कराग्रे च नागेन्द्री नखसन्धिषु। व्याघ्री चक्री च जङ्घायां स्थातु पादतले मही।। ९१।।
अमृता शङ्खिनी रन्ध्रे लोचने च विलासिनी। कालिन्दी मूलजिह्वां च रक्तं रक्षतु रक्तिनी।। ९२।।
लाङ्गली जङ्गली रक्षेदस्थिनी चास्थिसन्धिषु। मज्जिनी देहमज्जां तु शुक्रं शुक्रेश्वरी तथा।। ९३।।
त्वचं रक्षतु वेताली मम रोगप्रणाशिनी। रुद्धटा कुरुते शान्तिं सदैव मम विग्रहे।। ९४।।
पादा पादतले स्थातु पथि रक्षतु पन्थिनी। चोराग्निराजसर्पेभ्यो भयाद्रक्षतु भैरवी।। ९५।।
दुष्टानां दृष्टिबन्धं तु सदा करोतु बन्धिनी। चापेटी नाम या विद्या सा मे करोतु मङ्गलम्।। ९६।।
मर्कटी घण्टकर्णी च हनुमन्ती च रावणी। घुर्घुरा कीर्तिविख्याता वन्दे विद्याचतुष्टयम्।। ९७।।
चेटका ज्ञानदा विद्या कौमारी चरणावली। विघ्नराजैस्तता नाम तुष्टा सन्तानरूपिणी।। ९८।।
मूलाधा[1]रस्थिता हंसी पातकी दलनोद्धता। दशैता मन्त्रविद्यास्तु तिष्ठन्तु मम मस्तके।। ९९।।
शुभा मे चाग्रतः स्थातु लोहिता स्थातु दक्षिणे। वामाङ्गं रतिकाले च पश्चिमे स्थातु शृङ्खला।।१००।।
शिखायां शङ्खिनी रक्षेद्वस्त्रे वस्त्रवली शुभा। कवचे कवचाङ्गी च नेत्रे नेत्रकृतोत्सवा।। १०१।।
तिष्ठन्ति योगिनीरूपास्त्रैलोक्ये सचराचरे। योगिन्यो यास्तु ताः सर्वा देहं कुर्वन्तु मे वपुः।। १०२।।
पुत्राणां च तदा देयं भक्तानां तु विशेषतः। शक्तिन्यासमिदं देयं न देयं यस्य कस्यचित्।। १०३।।
मनुष्याणां महीलोके चिन्तितार्थफलप्रदम्। यः करोति महान्यासं षोढान्यासादिकं विभो।। १०४।।
स जीवन् शक्तिरूपो वै त्रैलोक्योन्मूलनक्षमः। शक्तिन्यासे कृते जीवेद् यः कश्चिच्छेदको भवेत्।।१०५।।
कर्मणा मनसा वाचा तस्य घातो भविष्यति।

इति शक्तिन्यासः। एवं महाशक्तिन्यासं स्वयं कृत्वा शिष्यस्य कारयित्वान्तर्यागं कुर्यात्। तद्यथा— मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा सामान्यार्घ्योदकेन स्वपुरतश्चतुरस्रं कृत्वा "ओंह्रीहंसः सोऽहं स्वाहा" इत्यात्ममनुना साधारं सकलशोदकमात्मपात्रं संस्थाप्य स्वदेहं शिष्यदेहं च श्रीचक्ररूपं विचिन्त्य "अंकं ३६ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियति-विद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वक्नेत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धिवाक्पाणिपादपायूपस्थ-शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्नि-सलिलभूमिजीवसर्वात्मने षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकाय श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीयोगपीठाय नमः"। इति पीठसमष्टिविद्यया हृदि पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य गन्धमाल्यादिभिर्भूषयित्वा देवीं सम्मुखीं हृदि ध्यात्वावाहनादिमुद्राः प्रदर्श्यासनाद्युपचारान् समर्प्य ध्यानपूर्वकं हृदि साङ्गामित्यादिना त्रिः सम्पूज्य सन्तर्प्य मूलेन गन्धादिताम्बूलान्तानुपचारान् समर्प्य तत्त्वचतुष्टयशोधनं कुर्यात्। यथा— ऐंअं १६ अःभूमिजीवसर्वात्मने अंआऐं "इदं विष्णुर्विचक्रमे०" (१। २२। १७) इदन्तापत्रसम्भूत-महन्तापरमामृतम्। पराहन्तामये वह्नौ जुहोमि शिवरूपतः।। मूलं० आत्मतत्त्वात्मने स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा" इत्यात्मपात्रान्तरेण किञ्चित् स्वीकृत्य क्लींकंखं इत्यादि २५ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियतिविद्या-पुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वक्नेत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धिवाक्पाण्यात्मने कं २५ क्लीं "सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः। दधानाः सोमं दिवि देवतासु मादेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः।।" अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने

---

१. 'मूलाकार' ख. पाठः।

मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ। कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्। मूलं० विद्यातत्त्वात्मने सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा, इति। पूर्ववत् किञ्चित् स्वीकृत्य, सौःयरं १० पादपायूपस्थशब्दस्पर्श-रूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलात्मने यं १० "वाममद्यसवितर्वर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः। वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे रया धिया वामभाजः स्याम" (य० ८। ६)॥ तृप्यन्तु मातरः सर्वा भैरवाः सविनायकाः। क्षेत्रपालाश्च योगिन्यो मम देहे व्यवस्थिताः॥ मूलं० शिवतत्त्वात्मने कारणदेहं शोधयामि स्वाहा, इति पूर्ववत् किञ्चित् स्वीकृत्य, ऐंक्लींसौः अं ५१ भूमिजीवसर्वात्मशिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियतिविद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोतत्वक्नेत्र-जिह्वामनोबुद्धिवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शाकाशवाय्वग्निसलिलात्मने अं ५१ ऐंक्लींसौः धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्"॥ मूलं० सर्वतत्त्वात्मने स्थूलसूक्ष्मकारणमहाकारणदेहं शोधयामि स्वाहा, इति पूर्ववत् किञ्चित् स्वीकृत्य, पुनराधारे (कुण्डे) अनादिवासनेन्धनज्वालिते आत्मचतुष्काकारचतुरस्रे कुण्डलिन्यधिष्ठितं चिदग्निं ध्यात्वा, मूलं० "हंसः चिदग्निमण्डलाय नमः" इति मनसा सम्पूज्य, मनसैव "पुण्यं जुहोमि स्वाहा"। एवं पापं० कृत्यं० अकृत्यं० सङ्कल्पं० विकल्पं० धर्मं० अधर्मं० चेति हुत्वा, आत्मपात्रं हस्ते सङ्गृह्य मूलं० हंसः "इतः पूर्वं प्राणबुद्धिमनोऽहङ्कारदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेवतायै समर्पितमस्तु स्वाहा"। इति सर्वं समर्प्य पात्रमाधारे संस्थाप्य, आधारादिब्रह्मरन्ध्रगां बिसतन्तुतनीयसीं विद्युत्कोटिप्रभामशेषजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं कुण्डलिनीं देवीरूपां ध्यात्वा, यथाशक्ति मूलमक्षमालया संजप्य निवेद्य, "मायान्ततत्त्वे सदहं शिवोऽहं शक्त्यन्ततत्त्वे चिदहं शिवोऽहम्। शिवान्ततत्त्वे सुखदः शिवोऽहमतः परं पूर्णमनुत्तरोऽहम्॥ दैशिकवागुपदेशविनश्यद्देहमरुन्मयशून्यविकल्पः। अद्वयबोधविमर्शसुखः सन्नद्य शिवोऽस्मि शिवोऽस्मि शिवोऽस्मि" इत्यनुसन्धाय प्रणम्य, शिष्यस्यापि बालाबीजत्रयस्थाने कूटत्रयं संयोज्य संशोध्य तथैव षोडशार्णायाः खण्डत्रयं विधाय संशोध्य श्रीपर्ण्यादिपीठे संस्थाप्य, प्रधानकलशं स्वयमुत्थाप्य ऋत्विक्सामयिकैरन्यान् कलशानुत्थाप्य तत्तन्मन्त्रोच्चारणपूर्वकं गुरुरभिषिञ्चेत्। अन्येऽप्यभिषेकं कुर्युः। ततो वस्त्रमाल्याद्यलङ्कृतं श्रीचक्रे समुपवेश्य पराप्रासादश्रीषोडशार्णविद्याभेदषट्शाम्भवक्रमचरणविद्या-आम्नाय-समया-पञ्चसिंहासन-षड्दर्शन-पञ्चपञ्चिकागण-पञ्चायतनविद्याः श्रीविद्यावृन्दभेदादिदशमहाविद्याः शैववैष्णव-गाणपत्यसौरशाक्तविद्या गुरुपादुकाविद्याः षोडशनित्याविद्या महाषोढोक्तविद्याद्यूर्ध्वाम्नायक्रमं सम्पूर्णमुपदिशेत्। स्वक्रममपि चोपदिशेत्। शिष्योऽपि गोभूहिरण्यवस्त्रगजाश्वमहिषीदासीदासगृहाद्यैः श्रीगुरुं तोषयित्वा भूरिदक्षिणादानादिभिर्ऋत्विक्-सामयिकान् सन्तोष्य रात्रौ महापूजां विधायापरेऽहनि दीनान्धकृपणैः सह ब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणादानैस्तोषयित्वा श्रीगुरोराज्ञयानुग्रहादिकं तदा प्रभृति कुर्यात्॥ इति कालीमतरीत्या पूर्णाभिषेकविधिः॥

॥ इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे पञ्चदशः श्वासः॥ १५॥



अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

षोडशः श्वासः



अथ कालीमतरीत्या पुरश्चरणविधिः।। तत्र–

पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः। किं होमैः किं जयैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः।। १।।

रहस्यानां हि मन्त्राणां यदि न स्यात् पुरस्क्रिया। पुरस्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं बीजमुच्यते।। २।।

वीर्यहीनो यथा देही सर्व(र्ग)कर्मसु न क्षमः। पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।। ३।।

इति वैशम्पायनेन पुरश्चरणस्यावश्यकत्वाभिधानात्, तस्य तु–"निर्ऋतिविधिहीनानां फलं हन्ति तु कर्मणाम्।" इति विधिहीनानुष्ठाने निन्दाश्रवणात्, तदनुष्ठानविधिर्विविच्य लिख्यते। अत्र पुरश्चरणशब्दनिरुक्तिर्वायवीयसंहितायाम्–

"साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते। पुरतश्चरणीयत्वाद् विनियोगाख्यकर्मणाम्।। १।।

पुरतो विनियोगस्य चरणाद्वा तथोदितम्।।"इति।

विनियोगलक्षणमुक्तं मन्त्रतन्त्रप्रकाशे–

धर्मार्थकाममोक्षाणां शास्त्रमार्गेण योजनम्। सिद्धमन्त्रस्य सम्प्रोक्तो विनियोगो विचक्षणैः।। १।।

पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोग विनिश्चितः। फलाय मन्त्रसेवाया राजसेवा यथा तथा।। २।।

चरणात् पूर्वमेवासौ पुरश्चरणमुच्यते।..।।

इति। एतेन 'विनियोगाख्यकर्मसामर्थ्यजनकक्रिया, ऐहिकामुष्मिकमन्त्रात्मबुद्धिहेतुक्रिया वा पुरश्चरणमित्युक्तम्। अत्र केचित्– "प्राप्यैनां जपविधिरादरेण कार्यो विद्वद्भिः सहुतविधिर्निजेष्टसिद्ध्यै।" (प्रप० ६ प० १२३ श्लो०) इति दीक्षाप्रकरणेऽभिधाय मध्ये मध्येऽपि तत्प्रकरणे पूजापमहोमानेवं विधाय "मन्त्रैस्तद्देवताभिष्टुतिभिरपि जपध्यानहोमार्चनादिभि" रित्युपसंहारे प्रपञ्चसारकारैः श्रीशङ्कराचार्यचरणैरभिधानात्। शारदातिलककृतापि सर्वत्र पूजाजपहोमानेवं विधाय प्रयोगाभिधानात्।।

नाजपात् सिद्ध्यते मन्त्रो नाहुताच्च फलप्रदः। अनर्चितो हरेत्कामांस्तस्मात् त्रितयमाचरेत्।। १।।

इति ब्रह्मप्रकाशतन्त्रवचनाच्चाङ्गत्रयात्मकं पुरश्चरणं वदन्ति। अन्ये तु–

संसारे दुःखभूयिष्ठे यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः। पञ्चाङ्गोपासनेनैव पुरश्चारी[२] सुखं व्रजेत्।। १।। इति।

पञ्चाङ्गानि महादेवि जपो होमश्च तर्पणम्। स्वाभिषेकश्च विप्राणामाराधनमपीश्वरि।। १।।

पूर्वपूर्वदशांशेन पुरश्चरणमुच्यते। ....।।

इति कुलमूलावतारवचनात् पञ्चाङ्गं वदन्ति। वैष्णवतन्त्रे–

जपो होमस्तर्पणं च सेको ब्राह्मणभोजनम्। पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते।। १।।

इति।। अपरे तु– "मूलमन्त्रदशांशं स्यादङ्गमन्त्रजपादिकम्" इति कपिलवचनात् "जपोऽङ्गानां दशांशेन कर्तव्यः

१. 'काम्यकर्मफलसिद्धिजनक' ख. पाठः। २. 'मन्त्रजापी' ख. पाठः।

सिद्धिमिच्छता'' इति वायवीयसंहितावचनात् षडङ्गं वदन्ति। इतरे तु—

जपो होमस्तर्पणं च स्वाभिषेकोऽघमर्षणम्। सूर्यार्घ्यं जलपानं च प्रणामं देवपूजनम्।। १।।

ब्राह्मणानां भोजनं च पूर्वपूर्वदशांशतः। दशांशो(ङ्गो)पासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते।। २।।

इति तन्त्रान्तरवचनाद् दशाङ्गं वदन्ति। क्वचिज्जपसमसंख्यो होमः होमसममपि तर्पणम्। क्वचित्सर्वाणि समान्येव। शतांशेनापि क्वचित् ''होमयेज्जपसंख्यया'' इति प्रयोगान्तरेषु, ''तर्पयेत्तावदेतेषां मनूनां हुतसंख्यया'' इति नर्तकगोपालविषये, ''यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद्धोमादिकं चरेत्'' इति ग्रहणकालीनपुरश्चरणादौ न (?तु) क्वचिदुक्तेस्तत्र जपसंख्याया अल्पीयस्त्वात्, ''अष्टदलं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं तिलैः शुभैः'' इति महिषमर्दिनीविषये, तत्र जपस्य भूयस्त्वात्, ''यद्वा जपचतुर्थांशं स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरेत्'' इति वैशम्पायनसंहितावचनात्, ''वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं घृतप्लुतैः। पायसान्नैः प्रजुहुयात्'' इति शारदातिलकवचनात्, क्षेत्रान्तरे जपस्याष्टभागेन सिद्ध्यति'' इति दक्षिणामूर्तिकल्पवचनात्, ''जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतैस्तिलतण्डुलैः'' इति सारसङ्ग्रहवचनाच्च होमस्यानियतत्वात्, ''तर्पयेत्तद्दशांशेन सघृतेन पयोम्बसा। कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः'' इति सनत्कुमारवचनात्, ''तर्पयेत्तावदन्येषां मनूनां हुतसंख्यया। तर्पणं विहितं नित्यम्'' इति शैवागमवचनाच्च तर्पणस्याप्यनियतत्वाच्च तत्तत्कल्पोक्तमेव पुरश्चरणं युक्तमित्यस्मत्सिद्धान्तः।। प्रकृते श्रीविद्याजपसंख्या च दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

जप्ते लक्षैकमात्रे तु देव्यौ तौ (योषितो) विघ्नकारिकाः। तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि।।

तदा लक्षत्रयं जप्यान्नियमेन शुचिर्बुधः।..।।

इति। वामकेश्वरे—

जप्ते लक्षैकमात्रे तु क्षुभ्यन्ते भूतलेऽङ्गनाः। यदि न क्षुभ्यतीत्थं हि साधकस्य मनो मनाक्।। १।।

सङ्क्षुभ्यन्ते ततः सर्वाः पाताले नागकन्यकाः। तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि।। २।।

ततः स्वर्गनिवासिन्यो विद्रवन्ति सुराङ्गनाः। एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः साधकोत्तमः।। ३।।

सङ्क्षोभयति देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम्।...।।

इति। जगत्क्षोभकृतफलस्यान्तरायरूपत्वात्। ज्ञानार्णवे श्रीविद्यायाः पुरश्चरणमुक्तम्— (प०१७)

यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं स्यात्पश्चिमामुखम्। स्वयम्भूर्बाणलिङ्गं वा वृषशून्यं जलस्थितम्।। १।।

पश्चिमायतनं वापि इतरं चापि सुव्रते। शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तके।। २।।

पवित्रे सुस्थले देवि जपेद्विद्यां प्रसन्नधीः। तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपवान्।। ३।।

ततो भवति विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी। एवं जपं यथाशक्ति कृत्वादौ साधकोत्तमः।। ४।।

किंशुकैर्हवनं कुर्याद् दशांशेन वरानने। कुसुम्भकुसुमैर्वापि मधुरत्रयमिश्रितैः।। ५।।

विधिनोक्तप्रकारेण विघ्नौघं नाशयेत् क्षणात्। र्सकामप्रदं राज्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।। ६।।

इति। इतरं पर्वतलिङ्गम्। एवं लक्षजपः श्रीविद्यायाः पुरश्चरणम्। दशांशहोमस्य तद्धर्मस्य कामप्रदत्वादिति फलस्य चाप्यभिधानात्, अन्तस्तद् धर्मोपदेशादिति न्यायात् तत्त्वनिर्णयात्, प्रयोगादौ विधानानुक्तानां प्रयोगानां कथं सिद्धिरित्याकाङ्क्षायां ''पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोगो विनिर्मितः'' इति वचनात् तदभिधानस्यैव योग्यत्वाच्च। तथा श्रीक्रमसंहितायामपि लोपामुद्राविद्यामुद्धृत्योक्तं ''लक्षमेवंविधं जप्त्वा सर्वपापहरो भवेत्'' इति

लक्षजपमात्रमेवोक्तमिति। वामकेश्वरतन्त्रेऽप्येवमेवोक्तमिति वदन्ति। वस्तुतस्तु विचार्यमाणदक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यतया ज्ञानार्णवे श्रीचक्रसाधनप्रकरणोक्तत्रिलक्षजप एव पुरश्चरणमिति भाति।

यथा ज्ञानार्णवे— (प० १४)

शृणु सर्वाङ्गसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्। यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता सदा शिवः॥ १॥
अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम्। पूज्यते तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः॥ २॥
नगरं वशमायाति देशं मण्डलमद्रिजे। योषितः सकला वश्या ज्वलत्कामाग्निपीडिताः॥ ३॥
विद्याविमूढहृदयाः साधके न्यस्तमानसाः। तद्दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषितः॥ ४॥
अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम्। अथ मुक्ताफलमयीं वाङ्मोक्षफलदायिनीम्॥ ५॥
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यं सर्वाराजवशङ्करीम्। यथा मुक्ताफलमयीं तथा स्फटिकनिर्मिताम्॥ ६॥
रुद्राक्षमालिका मोक्षे भवेत्सर्वसमृद्धिदा। प्रवालमाला वश्ये तु सर्वकार्यार्थसाधिका॥ ७॥
माणिक्यमाला फलदा[१] साम्राज्यफलदायिनी। पुत्रजीवकमाला तु वश्यदा भोगदा भवेत्॥ ८॥
अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन प्रपूजिताम्। समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं यदा शुचिः॥ ९॥
योषितो भ्रामयन्त्येनं मनस्तस्य सुनिश्चलम्। तदा द्वितीयलक्षं तु प्रजपेत् साधकोत्तमः॥ १०॥
पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम्। तासां कटाक्षजालैस्तु न मोहं याति साधकः॥ ११॥
तदा लक्षत्रयं कुर्यात् साधकः स्थिरमानसः। तृतीयलक्षे सम्प्राप्ते द्रावयन्ति सुराङ्गनाः॥ १२॥
अभिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमदकारिणः[२]। साधकं द्रावयन्त्येव ततश्चासौ मनःस्थिरः[३]॥ १३॥
तदा लक्षत्रयं साधुः सर्वपापनिकृन्तनम्। एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः स्वस्थमानसः॥ १४॥
सङ्क्षोभयति भूर्लोकस्वर्लोकतलवासिनः। पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरमपि प्रिये॥ १५॥

इति त्रिलक्षजपमुक्त्वा श्रीचक्रसाधनस्योक्तत्वात्, श्रीचक्रसाधनस्य काम्यप्रयोगत्वात्, काम्यप्रयोगस्य विद्यासिद्धेरपेक्षितत्वाद्विद्यासिद्धेः पुरश्चरणमूलकत्वात्, पुरश्चणमनुकत्वा काम्यप्रयोगकथनानौचित्यादक्षमालाभेदनिरूपणादक्षमालायाः पुरश्चरणप्रकरण एव वक्तव्यत्वाद्विघ्नबाहुल्यकथनादेवंविधानां विघ्नानां सिद्धिप्रतिबन्धकतया पुरश्चरणकाल एव निषिद्धत्वात्, काम्यजपेषु तूक्तविघ्नानामेव फलत्वेनाभिधानात् "व्रतस्थः स्थिरमानसः" इति नियममनःस्थैर्ययोः पुरश्चरणकाल एवात्यन्तमावश्यकत्वेन तत्कथनस्यौचित्यात्। दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीविद्यामन्त्रसाधनम्। शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरर्कसम्भवैः॥ १॥
श्रीचक्रं पूजयेद् देवि मासमात्रं समाहितः। सहस्रजन्मजं पापं हन्ति मासेन देशिकः॥ २॥

इत्यारभ्य प्रायश्चित्तपूर्वकं ज्ञानार्णवोक्तप्रकारेणैव स्थानाक्षमालोपांश्वादिजपलक्षणं प्रागुक्तप्रकारेण विघ्नत्रयकथनपूर्वकं च लक्षत्रयजपमुक्त्वा "तद्दशांशेन होमः स्यात् कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः। कुसुम्भपुष्पैर्जुहुयान्मधुरत्रयलोलितैः[४]" इति तद्दशांशहोमकथनादेव लक्षत्रयजप एष पुरश्चरणमिति तत्त्वम्। यत्तु ज्ञानार्णवे— "यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं सत्पश्चिमामुखम्।" इत्यारभ्य जपस्थानकथनपूर्वकं "तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपवान्" इत्युक्तं, स तु

१. 'सुभगे' ख. पाठः। २. 'गर्भिताः' ख. पाठः। ३. 'तत्रासौ स्थिरमानसः' ख. पाठः। ४. 'संयुतैः' ख. पाठः।

लक्षशब्दः पूर्वोक्तलक्षणत्रयस्मारको दक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यत्वात्। अत एव श्रीचक्रसाधनप्रकरणात् तत्रानुक्तस्थान-होमावेवात्रोक्तौ, अन्यथा त्वक्षमालादीनामप्यत्रैव वक्तुमुचितत्वात्। नवलक्षजपस्यापि पुरश्चरणं केचिद्वदन्ति। "मार्गेऽ-स्मिन्नवलक्षमक्षयफलाप्राप्त्यै ततो लक्षयेत्" इति क्वचित्फलाधिक्यार्थम्। तथा च वामकेश्वरे प्रत्येकलक्षफलस्मरणम्, तथा – (प० ५)

लक्षमेकं जपेद्देवि महापापैः प्रमुच्यते। लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मकृतानि च।। १।।
नाशयेत् त्रिपुरा देवी साधकस्य न संशयः। जप्त्वा लक्षत्रयं मन्त्री यन्त्रितो मन्त्रविग्रहः।। २।।
पातकं नाशयेदाशु यदि जन्मसहस्रकम्। जप्त्वा विद्यां चतुर्लक्षं महावागीश्वरो भवेत्।। ३।।
पञ्चलक्षाद् दरिद्रोऽपि साक्षाद्वैश्रवणो भवेत्। जप्त्वा षड्लक्षमेतस्या महाविद्याधरेश्वरः।। ४।।
जप्त्वैवं सप्त लक्षाणि खेचरीमेलनं भवेत्। अष्टलक्षप्रमाणं च जप्त्वा विद्यां महेश्वरि।। ५।।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशो जायते देवपूजितः। नवलक्षप्रमाणं च जप्त्वा त्रिपुरसुन्दरीम्।। ६।।
विधिवत् जायते मन्त्री हरमूर्तिरिवापरः। कर्ता हर्ता स्वयं गौरि लोके चाप्रहतः प्रभुः।। ७।।
प्रसन्नो मुदितो धीरः स्वच्छन्दगतिरीश्वरः।......................................।।

इति। अन्यत्रापि–"अथवा नवलक्षं तु जपेद् विद्यामनन्यधीः।" इति। "जपेल्लक्षं मन्त्रं" इत्यपि कुत्रचित्। तदसामर्थ्यपरं, पक्षत्रयमध्ये गुरुसम्प्रदायः। दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि–

अथवा नवलक्षं तु जपेद् विद्यां समाहितः। तद्दशांशेन होमं तु पूर्वोक्तविधिनाचरेत्।। १।।
साधयेत् स्वर्गभूलोकपातालतलवासिनः।

इति। ज्ञानार्णवे तु नवलक्षजपो नोक्तः किन्त्वेकलक्षमारभ्यैकलक्षस्येदं फलमित्यादि नवलक्षपर्यन्तस्य पृथक् पृथक् फलमुक्तं, न तु द्वितीयलक्षस्य तृतीयलक्षस्येति। तस्मात्तत्र सम्भूय पञ्चचत्वारिंशल्लक्षजपो जायते, तेन तत्र पुरश्चरणत्वशङ्कापि नास्ति, स तु काम्यजप एवेति निश्चितम्। अन्यच्च–"सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसंख्यापरिश्रमः।" इति।। अथ जपनिर्णयः–

यस्मिंश्च निगदेनैव मन्त्रसंख्या विधीयते । तत्र तु सर्वमन्त्राणां संख्यावृत्तिर्युगक्रमात्।। १।।
कल्पोक्तैव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत्। द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा।। २।।

इति। रुद्रयामले–"प्रजपेदुक्तसंख्यायाश्चतुर्गुणजपं कलौ" इति। अत्र केचित् प्रपञ्चयागशारदातिलकाद्युक्तजपस्यापि चतुर्गुणादिना कलौ पुरश्चरणमिति वदन्ति, तत्र नारदपञ्चरात्रादिदर्शनात् प्रपञ्चसाराद्युक्तजपश्चतुर्गुण एव। तथा नारदपञ्चरात्रे–

मार्गशीर्षस्य मासस्य त्रीण्यहान्येकमेव वा। उपोष्य शुक्लद्वादश्यामारभ्याष्टाक्षरं जपेत्।। १।।
अष्टलक्षमविच्छिन्नं पुरश्चरणकृद् द्विजः। शुक्लाचारः शुचिः स्नातो वाग्यतो विजितेन्द्रियः।। २।।
मन्त्रसिद्धिरदृष्टार्थां लक्षद्वयजपाद्भवेत्। ततो हि द्विगुणाभ्यासादैहिक्यामुष्मिकी च सा।। ३।।
एवमेषात्मशुद्धिः स्यादेतावान् प्रथमे युगे। त्रेतायां द्विगुणः प्रोक्तो द्वापरे त्रिगुणस्तथा।। ४।।
कलौ चतुर्गुणः प्रोक्तो द्वात्रिंशल्लक्षलक्षणा।...।।

इति। अदृष्टार्था मन्त्रसायुज्यकरी। ऐहिकी इहलोकसुखदा। आमुष्मिकी स्वर्गादिलोकदा। आत्मशुद्धिस्तत्त्वज्ञान-साधनभूतशुद्धिरिति। एवं द्वात्रिंशल्लक्षजपमत एव "द्वात्रिंशल्लक्षमानेन स तु मन्त्रं जपेत्पुन:" इत्याचार्यचरणैरप्युक्तम्। ज्ञानार्णवे बालाप्रकरणे "वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्प्रिये" इति बालायामभिधाय "न्यासपूजादिकं सर्वमस्या: पूर्ववदाचरेत्" इति भैरव्या मन्त्रे प्रदिष्टम्, लक्षत्रयजपं चतुर्गुणीकृत्य "दीक्षां प्राप्य जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रिय:" इति भैरव्यामभिधाय, बालायां तावद् "एषा बालेति विख्याता त्रैलोक्यवशकारिणी। जपपूजादिकं सर्वमस्या: पूर्ववदाचरेत्"।। इति शारदातिलककृतापि प्रदिष्टम्। तत्त्वार्धलक्षं द्वादशलक्षं "अतो द्वादशमन्त्राणि वदन्त्येके विपश्चित:" इति प्रयोगसारवचनादिति। प्रपञ्चसारे भैरवीप्रकरणे तु–(९। ९) "दीक्षां प्राप्य विशिष्टलक्षणयुज: सत्सम्प्रदायाद्गुरोर्लब्ध्वा मन्त्रममुं जपेत् सुनियतं तत्त्वार्धलक्षं वशी। "इति द्वादशलक्षमुक्तम्। तथा–"लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रम्" इति दक्षिणामूर्तिसंहितायामुक्तस्य त्रिपुटामन्त्रस्य "जपेच्च मन्त्रादित्यलक्षम्" इति "भानुलक्षं जपेदेनम्" इति प्रपञ्चसारशारदातिलकयोश्चतुर्गुणजप एवाभिहित:। तेन "एकत्र निर्णीत:" इति न्यायेन सर्वत्र चतुर्गुण एवाभिहित इति निर्णीतम्। न च तदर्द्धसंख्यकं वापि विरोधाभावादिति प्रपञ्चसारे अर्धजपाभिधानविरोध इति वाच्यम्। उक्तनारदवचनेनैव ह्यैहिकसिद्धिपरत्वादामुष्मिकपरत्वाद्वापि विरोधाभावाद् इति। "समुद्रगानां सरितां च तीरे जपेद्विविक्ते निज एव गेहे। विष्णोर्गृहे वा पुरुषो मनस्वी।" समुद्रगा साक्षादेव, अन्यथा सर्वासामपि परम्परया तथात्वाद् विशेषणवैयर्थ्यादिति। मनस्वी श्रद्धावान्। सनत्कुमार:–

नद्यां समुद्रगामिन्यां तीरे गोष्ठेऽथवा मुने। अश्वत्थबिल्वमूले वा सिन्धुतीरे जलाशये।। १।।
पश्चिमाभिमुखे देवगृहे वा शैलमस्तके।

इति। देव: शिव:। "प्रत्यङ्मुखे शिवस्थाने वृषभेण विवर्जिते" इति कुम्भसम्भववचनाच्च। नारदपञ्चरात्रे–

गिरिगोष्ठप्रविष्यन्दनद्यरण्याश्रमह्रदा:। देशा: पुण्या जपस्यैते यत्र वा जायते रुचि:।। १।।

इति। प्रविष्यन्द: प्रस्रवणम्। नदी पुण्यनदीतीरम्। अरण्यं पुण्यारण्यं पुष्करार्बुदादि। "पावनं वनम्" इति शारदातिलके। त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे–

बिल्वच्छायां समाश्रित्य मूलेऽश्वत्थस्य वा प्रिये। गुरोर्वा सन्निधौ गोष्ठे वृषशून्ये शिवालये।। १।।
नदीतीरेऽद्रिशृङ्गे वा तुलसीकाननेऽपि वा। अभीष्टदेवसान्निध्ये जपेन्मन्त्रं समाहित:।। ३।।

इति। नदीतीरे पुण्यनदीतीरे, अन्यनदीतीरस्य निषिद्धत्वात्। कपिलपञ्चरात्रे–

तीर्थक्षेत्रवनारामदेवालयनदीह्रदा:। हरेर्विविक्त इत्येते देशा: स्युर्मन्त्रसिद्धिदा:।। १।।

इति। वायवीयसंहितायाम्–

सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य ज्वलितस्य वा। विप्राणां च गवां चैव संनिधौ शस्यते जप:।। १।।
अथवा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति। गृहे जप: सम: प्रोक्तो गोष्ठे दशगुणस्तु स:।। २।।
आरामे च तथारण्ये सहस्रगुण उच्यते। अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षगुणस्तु स:।। ३।।
कोटिर्देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ।

इति। मम शिवस्य।। तथा शङ्ख:–"अनन्तं विष्णुसन्निधौ"। इति यामले–

म्लेछदुष्टमृगव्याधशङ्कातङ्कविवर्जिते। एकान्ते पावने निन्दारहिते भक्तिसंयुते।। १।।

सुदेशे धार्मिके राष्ट्रे सुभिक्षे निरुपद्रवे। रम्ये भक्तजनस्थाने निवसेन्न पराश्रये।। २।।
राजानः सचिवा राजपुरुषाः प्रभवो जनाः। चरन्ति येन मार्गेण न वसेत्तत्र तत्त्ववित्।। ३।।
जीर्णदेवालयोद्यानगृहवृक्षतलेषु च। नदीकूलाद्रिकूलेषु भूछिद्रादिषु नो वसेत्।। ४।।
पुण्यक्षेत्रादिकं गत्वा कुर्याद्भूमिपरिग्रहम्। ब्रूयादमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये ।। ५।।
मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्ध्यतामिति। भूमेः परिग्रहं कृत्वा परिमाणं च सर्वतः।। ६।।
नदीपर्वततीर्थादौ परिमाणेन खण्डितम्। ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नगरे तद्द्वयं स्मृतम्।। ७।।
क्षीरवृक्षमयान् कीलान् अस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान्। निखनेद्दशदिग्भागे तेष्वस्त्रं च प्रपूजयेत्।। ८।।
क्षेत्रेशकीलितो मन्त्रो न विघ्नैः परिभूयते। क्षेत्रपालादिकांस्तत्र पूजयेद्विधिवित्तमः ।। ९।।
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा ततः क्षेत्रं समाश्रयेत्। कूर्मचक्रमविज्ञाय यः कुर्याज्जपयज्ञकम्।। १०।।
तज्जपस्य फलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते। ....।।

इति। तन्त्रान्तरे—

कूर्मचक्रं परिज्ञाय यो जपादिविधौ स्थितः। प्राप्नोति सकलान्युक्तान्यन्यथा नाशमेति च।। १।।
तस्मात् कूर्मविभागं तु विज्ञायाखिलमाचरेत्। स चतुर्धा स्थितो लोके तत्प्रकारस्तथोच्यते।। २।।
प्रथमस्तु परः[1] कूर्मस्ततो देशगतस्तथा। ग्रामगो गृहगश्चेति चतुर्धा स व्यवस्थितः ।। ३।।
देशं ग्रामं गृहं वास्तुं नवधा विभजेत्ततः। प्रागादिपश्चिमान्तं तु कादिमान्तानि विन्यसेत्।। ४।।
अक्षराण्यथ यादीनि तथाष्टौ पदयोर्लिखेत्। ईशे द्वयमथो मध्ये स्वरान् प्रागादि विन्यसेत्।। ५।।
ईशान्तांस्तु द्विशः पश्चान्नामाद्यर्णं यतो[2] भवेत्। तन्मुखं पार्श्वयोः पाणी कुक्षिः पादौ ततस्ततः।।६।।
पुच्छमेकमथो मध्यं पृष्ठमेकं षडङ्गवत्। मुखे सर्वार्थसिद्धिः स्यात् करयोः सर्वसिद्धयः।। ७।।
कुक्षौ तु नित्यनैष्फल्यं पादयोर्नैव सिद्धयः। पुच्छे मृत्युस्तु नियतं पृष्ठे सर्वार्थसिद्धयः।। ८।।
तस्मात् तत् साधु विज्ञाय कुर्यात्सर्वं जपादिकम्।

इति।। अथ कादिमतरीत्या श्रीविद्यामधिकृत्य कुलमूलावतारे—

ब्रह्मनाडीगतानादिक्षान्तवर्णान् विभाव्य च। अर्णं बिन्दुयुतं कृत्वा स्वेष्टमन्त्रं जपेत्सुधीः।। १।।
अकारादिषु संयोज्य तथा कादिषु च क्रमात्। क्षार्णं मेरुमथो तत्र[3] कल्पयेज्जगदीश्वरि।। २।।
तदा लिपिर्भवेदक्षमालार्धशतसंख्यया। अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वार्थसाधकः।। ३।।
क्षकारं मेरुसंस्थाने लकारादिविलोमतः। एकैकान्तरितं मन्त्रं जपेदेवं फलप्रदम्।। ४।।

इति। अत्राष्टोत्तरसहस्रं वाष्टोत्तरशतं वा यदा जपः कार्यः स्यात्तदा "वर्गाष्टकविभेदेन भवेदष्टोत्तरं शतम्" इति। अत्र वर्गाष्टकजपस्तूद्दिष्टशतादिसंख्यावसान एव कर्तव्यः। एष कृतयुगजपः। कलावेतच्चतुर्गुणजपादिकं कार्यमिति। श्रीतन्त्रराजे—(५ प० ६८ श्लो०)

विद्यायाः साधनं सिद्धिं तद्व्रतं वर्ज्यमेव च। तदाभिमुख्यचिह्नानि विघ्नानि प्राक्तनाद्यतः।। १।।

---

१. 'परः कूर्मः पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तीर्णायाः पृथिव्याः धारकः इति। २. 'द्व्यक्षरतो' ग. पाठः। ३. 'कृत्वा' ख. पाठः।

शृणु क्रमेण देवेशि सर्वदा प्रीतिकारकम्। येन मर्त्योऽपि सिद्ध्येत जीवन्मुक्तो भवन्मयः॥ २॥
स्नातः सुगन्धसलिलैः प्राक्पूजाप्रोक्तरूपवान्। गुरुं वित्तेन सन्तोष्य रक्तागारे क्रमं भजेत्॥ ३॥
सन्ध्यात्रयेऽपि जपवान् सहस्रं मौनसंयुतः। मोचागुडसितापेतं पयः पायसमर्पयेत् ॥ ४॥
नीराजनं च कर्पूरैः कुर्यात् सन्ध्यासु तास्वपि। होमं दशांशतः कुर्यात्तर्पणं चेन्दुमज्जलैः॥ ५॥
स्वनित्यादूर्ध्वतो जाप्यं त्रिसहस्रं दिनं प्रति। कुर्यात्तेन भवेत् पूर्णं लक्षं पूर्णान्तमीश्वरि॥ ६॥
एवं लक्षत्रयं प्रोक्तं प्रथमे तु कृते युगे। त्रेतायां द्विगुणं तद्वद्द्वापरे त्रिगुणं स्मृतम्॥ ७॥
कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तमक्षराणां च संख्यया। तार्तीयसप्तसंख्या सा तेन स्यादेकविंशतिः॥ ८॥

इति। तार्तीयकूटस्य स्वरव्यञ्जनबिन्दून् पृथक्कृत्य सप्ताक्षराणि भवन्ति, तेषां सप्तानां वर्णानां प्रतिवर्णं त्रिलक्षमिति सम्भूयैकविंशतिलक्षजपः पुरश्चरणं कृतयुगे। कलावेतच्चतुर्गुणं जप इति पुरश्चरणमुक्तम्। पुरश्चरणं तु जपहोमतर्पण-(स्वाभिषेक)ब्राह्मणभेजनात्मकं पञ्चाङ्गरूपं भवति। अत्रैतदङ्गपञ्चकं पूर्ववत् दशांशतः कार्यमिति (तन्त्रराजे तु होमसंख्यासमसंख्यं तर्पणमिति) विशेषः। यथा तत्रैव–

तेनान्येषु युगेषु स्यात् संख्यावृद्धिरुदीरिता। वनिताक्षोभतो भोगान्न विघ्नं यदि जायते॥ ९॥
तासु संख्यासु पूर्णासु सम्प्रार्थ्य स्वं श्रयेत् क्रमम्। वर्ज्यानि शृणु देवेशि तद्दिनेषु सदैव हि[1]॥१०॥
नास्तिकैः सह संलापो मैथुनं परि[2]निन्दितम्। चिन्ता[3]शोकौ तथालापं देशान्तरपरिभ्रमम्[4]॥ ११॥
तद्वासरेषु वर्ज्यानि प्रोक्तान्यन्यानि शाङ्करि। शृणु सर्वत्र सर्वेषां सर्वदा नाशकानि च॥ १२॥
परक्षेत्रगृहस्त्रीषु वाञ्छा तन्निन्दनानि च। स्त्रीषु रोषं प्रहारं च दुष्टास्वपि न योजयेत्॥ १३॥
सिद्धि[5]चिह्नानि चोक्तानि वासनाकथने मया। आनुकूल्यस्य चिह्नानि शृणु साधयतस्तदा॥ १४॥

साधयतः पुरश्चरणे निविष्टस्य। तदा पुरश्चरणकाले।

स्वप्ने पोतेषु वनितावृन्दैः सम्मेलनं निशि। गजाद्रिसौधशृङ्गेषु विहारो राजदर्शनम्॥ १५॥
गजानामङ्गनानां च दर्शनं नृत्यगीतयोः। उत्सवं ससुरामांसदर्शनं स्पर्शनं तथा ॥ १६॥
निन्द्यानि शृणु देवेशि विघ्नानर्थकराणि च। कृष्णवर्णैर्भटैः स्वप्ने प्रहारस्तैललेपनम्॥ १७॥
मैथुनं परनारीभिरिन्द्रियच्यवनं तथा। राष्ट्रक्षोभो वह्निवायुज (ननी?लभी) बन्धुनाशनम्॥ १८॥
गुरावुपेक्षासम्पत्तिर्वस्तूनां व्याधिबाधनम्। अन्यमन्त्रार्चने श्रद्धा विघ्नो नित्यार्चनेऽनिशम्॥ १९॥
नाराणां बहुभिः पुण्यैः कृतैर्बहुषु जन्मसु। श्रद्धास्थैर्यं सम्प्रदायसिद्धि[6]नित्यार्चने भवेत्॥ २०॥

अथ कूर्मचक्रम्। तत्रैव– (५ प० ८८ श्लो०)

कूर्मस्थितिमविज्ञाय यो जपादिविधिस्थितः। स नाप्नोति फलान्युक्तान्यन्यथा नाशकानि च॥२१॥
तस्मात् कूर्मविभागं तु विज्ञायाखिलमाचरेत्। स चतुर्धा स्थितो लोके तत्प्रकारं शृणु प्रिये॥२२॥
प्रथमस्तु परः कूर्मस्ततो देशगतस्तथा। ग्रामगो गृहगश्चेति चतुर्धा तद्व्यवस्थितिः॥ २३॥

१. 'सर्वदापि च' ख. पाठः। २. 'पर' ख. पाठः। ३. 'निद्रा' ख. पाठः। ४. 'श्रमम्' ग. पाठः।
५. 'सिद्ध' ख. पाठः। ६. 'शुद्धि' ग. पाठः।

देशं ग्रामं गृहं वास्तुं नवधा विभजेत्ततः। प्रागादिपश्चिमान्तं तु कादिमान्तानि विन्यसेत्॥ २४॥
अक्षराणि समान्येव चत्वारि परयोर्न्यसेत्। ईशे द्वयमथो मध्ये स्वरान् प्रागादि विन्यसेत्॥ २५॥
ईशान्तासु द्विशः पश्चान्नामाद्यर्णं यतो भवेत्। तन्मुखं पार्श्वयोः पाणी कुक्षिः पादौ ततस्ततः॥२६॥
पुच्छमेकमतो मध्यं पृष्ठमेकं षडङ्गवान्। मुखे सर्वार्थसिद्धिः स्यात् करयोरल्पसिद्धिकृत्॥ २७॥
कुक्षौ तु नित्यनैष्फल्यं पादयोः सर्वहानिकृत्। पुच्छे मृतिस्तु नियता पृष्ठे सर्वार्थदायकम्॥ २८॥
तस्मात् तत्साधु विज्ञाय कुर्यात् सर्वं समाहितम्। व्यञ्जनं देशकूर्मे स्याद् गृहकूर्मे स्वरास्तथा॥२९॥
ग्रामादिकूर्मे द्वितयं परकूर्मे न तु[1] द्वयम्। नित्यं पूर्वमुखो यस्मात्तेन तत्सिद्धिरीरिता॥ ३०॥
एवं कूर्मविभागोऽयमीरितस्ते चतुर्विधः। मन्त्राणां येन सिद्धिः स्यात्सर्वेषां सर्वतस्तदा॥ ३१॥
संवर्द्धयायामविस्तारं हृत्वाष्टाभिस्तु शेषतः। विज्ञाय वर्गं तेष्वेकं नामाद्यं नाम्नि कल्पयेत्[2]॥३२॥
तत्तत्स्थानेषु नियतमनर्थशून्यता तथा[3]। वास्तुष्वज्ञातरूपेषु प्रसिद्धं नामतो भवेत्॥ ३३॥

इति। अत्र व्यञ्जनयुक्तेऽपि देशनामनि व्यञ्जनस्य प्राधान्यं देशकूर्मे ज्ञेयम्, तथैव ग्रामकूर्मे स्वरस्य ज्ञेयमिति। केवलस्वरयुक्ते तु सर्वत्र स्वरस्यारि(बहिः)कोष्ठं मुखं ज्ञेयम्। देवीयामले—

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। महाकाले च काश्यां च दीपस्थानं न चिन्तयेत्॥ १॥

इति। तत्र प्रयोगस्तु—तत्र समुद्रतीरनदीपर्वतशृङ्ग-समुद्रगामिनीनदीतीर-विष्णुगृहविविक्तनिजगृहगोष्ठाश्वत्थबिल्व-मूलजलाशयपश्चिमाभिमुखवृषशून्यशिवालयगुरुसन्निधितुलसीवनस्वेष्टदेवतासन्निधिपुण्यक्षेत्रतीर्थवनोपवननदीह्रदस्वाभि-मतस्थान-म्लेच्छदुष्टमृगव्यालशङ्कावर्जितैकान्तनिन्दारहितधार्मिक-स्वेष्टदेवताभक्तजनाश्रयसुभिक्षनिरुपद्रव(राज) तत्सचिवादिगमनागमनरहितस्थानान्येषामन्यतमं स्थानं ग्रामे क्रोशमात्रं, नगरे क्रोशद्वयमात्रं, नदीपर्वततीर्थादौ परिमाणरहितं "अमुकस्येह मन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये। मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्ध्यता"मिति मन्त्रेण भूमिपरिग्रहं विधाय क्षीरवृक्षभवान् वितस्तिमितान् दश कीलान् कृत्वास्त्रमन्त्रेण पृथगष्टधाभिमन्त्र्य पूर्वाद्यष्टसु दिक्षु इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये च निखनेत्। तेष्वस्त्रं च सम्पूज्य तेषु स्थानेष्विन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो माषभक्तबलिं दद्यात्। ततः क्षेत्रपालं गणेशं वास्तुपुरुषं सम्पूज्य प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रश्चतस्रो रेखा विलिख्य नव कोष्ठानि कृत्वा, तेषु पूर्वादिक्रमेण कचटतपयशाख्यान् सप्तवर्गान् सप्तकोष्ठेषु विलिख्येशानकोष्ठे लक्षौ विलिख्य, मध्यकोष्ठं तथैव नवधा विभज्य, पूर्वादिक्रमेण द्विशो द्विशः षोडशस्वरानष्टकोष्ठेषु विलिखेदिति कूर्मचक्रं निर्माय, तत्र मध्यनवके मध्ये पूर्वादिक्रमेणाष्टसु दिक्षु चामृतवृषभशैलराजवासुक्यार्थकृच्छक्तिपद्मयोनिमहाशङ्खच्छायाच्छत्रगणान् नवक्षेत्रपालान् प्रणवादिचतुर्थीनमोऽन्ततत्तन्नाम्ना सम्पूज्य, ग्रामनामाद्यक्षरयुक्तकोष्ठदिशि कूर्ममुखे तदलाभे मध्ये कूर्मपृष्ठे वा मुखादधःकोष्ठद्वयान्यतमे कूर्महस्ते वा गृहं जपार्थं शीतवातातपनिवारणक्षमं कुर्यात्। कालिकोद्भवे—

स्थानसाधकयोर्नाम्नोररित्वं यत्र विद्यते। तदक्षशास्त्रतो ज्ञात्वा तत्र सम्यक् परित्यजेत्॥ १॥

इति। अक्षशास्त्रे—

अरित्वमद्वयस्योक्तं गकारेण परस्परम्। ऋद्वयस्य ठकारेण ठकारस्यापि तेन च॥ २॥

---

१. 'न तत्' ख. पाठः। २. 'आद्यं नाम्नि प्रकल्पयेत्' ख. पाठः। ३. 'त्वन्यथा यतः' ग. पाठः 'सिद्धिः' ग. पाठः।

लृद्वयस्य पकारेण पकारस्यापि लृद्वयम्। ओद्वयस्य षकारेण षकारस्यौयुगेन च॥ २॥
जकारस्य टकारेण झकारस्य खकारतः। डकारस्य तकारेण फकारस्य धकारतः॥ ३॥
भकारस्य तु रेफेण यकारस्य सकारतः। अरित्वमेषां वर्णानामन्येषां मित्रभावना ॥ ४॥
कूर्मचक्रे रिपुस्थानं साधको यत्नतस्त्यजेत्। यथा गर्गस्य वैरी स्यादट्टहासं महत्पुरम्॥ ५॥
गयामरेश्वरस्यैवमाकाराद्येषु योजयेत्। ऋजुभट्टस्य ठक्काख्यं लृतकस्यारिः पद्मकम्॥ ६॥
ओड्डियाणं षण्मुखस्य रौद्रं षड्गुणकस्य च। जयन्तीं टङ्कधारस्य खंधारं ऋंऋ(झंझ)णस्य च॥७॥
डाकदेवस्य तारारख्यं धर्माख्यं फण्डिभट्टतः। भद्रस्य रम्यकं चैव यज्ञदत्तस्य सोमकः॥ ८॥
एवं क्रमेण संशोध्य वैरिस्थानं त्यजेद्बुधः।..॥ ९॥

इति॥ अथ माला—सा तु द्विविधा मातृकाक्षरमयी रुद्राक्षादिमणिमयी चेति। तत्र प्रथमामाहोत्तरतन्त्रे—

अकारादिक्षकारान्तैर्बिन्दुमन्मातृकाक्षरैः। अनुलोमविलोमस्थै क्लृप्तया वर्णमालया ॥ १॥
प्रत्येकवर्णयुक्मन्त्रा जप्ताः स्युः सर्वसिद्धिदाः। वैरिमन्त्रा अपि नृणां सुसिद्धाद्यास्तु किं पुनः॥२॥

इति। शारदातिलके—

आदिक्षान्तार्णयोगित्वादक्षमालेति कीर्तिता। तद्वर्णसंख्यमणिभिर्जपमालां प्रकल्पयेत्॥ १॥

इति। ज्ञानार्णवे—

अकारः प्रथमो देवि क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम्। अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी॥ १॥

इति। अत्र वर्गाष्टकजपस्तु उद्दिष्टसंख्यावसाने कार्यः। तदुक्तं मातृकार्णवे—

आरभ्याकारमादौ मनसि परिजपेन्मातृकां सावसानां
धृत्वा तच्चावसानं पुनरपि च पठेदान्तमेवावरोहे।
लान्तानष्टौ च वर्णांस्तदनु परिजपेद्भूय एवावसाने
क्षान्तं संहारयुक्तं पशुपतिगदिता यामले मालिकेयम्॥ १॥

इति। धृत्वा मेरुस्थाने। अवसानं क्षकारम्। लान्तान् कचटतपयशलाख्यान्। तदनूद्दिष्टसंख्यासमाप्त्यनन्तरम्॥ अवसाने उद्दिष्टशताद्यवसाने। एवोऽवधारणे॥ द्वितीया तूत्तरतन्त्रे—

अथ वक्ष्येऽक्षमालाया विधानं मन्त्रिकाम्यया। पञ्चविंशतिभिः प्रोक्ता मणिभिर्भुक्तिदायिनी॥ १॥
त्रिंशद्भिर्धनदा सप्तविंशत्याक्षैस्तु सर्वदा। अभिचारकरी पञ्चदशभिः परिकल्पिता॥ २॥
चतुष्पञ्चाशदक्षैः सा काम्यकर्मसु सिद्धिदा। अष्टोत्तरशतैः क्लृप्ता सर्वाभीष्टप्रदा मता॥ ३॥
मणयः शङ्खसम्भूताः प्रोक्ता लक्ष्मीप्रदा मताः। मुक्तिप्रदाः स्फटिकजाः पद्माक्षाः पुष्टिवर्धनाः॥४॥
भुक्तिमुक्तिप्रदाः प्रोक्ता रुद्राक्षाः सर्वसिद्धिदाः। पुत्रजीवभवाः पुत्रपशुधान्यसमृद्धिदाः॥ ५॥
विद्रुमोत्थास्तु मणयो धनसौभाग्यवश्यदाः। मौक्तिका मुक्तिदाः प्रोक्ताः सर्वसम्पत्समृद्धिदाः॥ ६॥
पापापहाः कुशमयाः कामदाः स्वर्णरूप्यजाः।..॥ ७॥

इति। तथा शारदातिलके— (२३ प० ११८ श्लो०)

रुद्राक्षमालिका सूते जपे जापिमनोरथान्। पद्माक्षैर्विहिता माला शत्रूणां नाशिनी मता।। १।।
कुशग्रन्थिमयी माला सद्यः पापप्रणाशिनी। पुत्रजीवफलैः क्लृप्ता कुरुते पुत्रसम्पदम्।। २।।
निर्मिता रूप्यमणिभिर्जपमालेप्सितप्रदा। हिरण्मयैर्विरचिता माला कामान् प्रयच्छति ।। ३।।
प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेत् पुष्कलं धनम्। सौभाग्यं स्फाटिकी माला मौक्तिकैर्विहिता श्रियम्।।४।।
निर्मिता शङ्खमणिभिः कुरुते कीर्तिमव्ययाम्। सर्वैरेतैर्विरचिता माला सा मुक्तये नृणाम्।। ५।।

इति।। सर्वैरिति, एकेन पञ्चभिः पञ्चभिरिति केचित्। मिश्रणे तु निषेधमाह उत्तरतन्त्रे—

इन्द्राक्षैर्यदि जप्येत रुद्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा। नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकं च यत्।। १।।
यदन्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि। तस्य कामं च मोक्षं च न ददाति प्रियङ्करी।। २।।
जन्मान्तरे जायतेऽसौ वेदवेदाङ्गपारगः। मिश्रीभावं ततो याति चण्डालैः पापकर्मभिः।। ३।।

इति। ब्रह्मयामले—

खड्गशृङ्गस्य या माला पितृणां मोक्षदायिनी। निशादारुकृता वश्ये लाक्षया ज्वरकर्मणि।। १।।
अर्कस्योच्चाटने कार्या श्रीफलैर्ज्ञानसाधने। गजदन्तस्य मणिभिः कुर्यात् सर्वार्थदायिनी।। २।।
राजसी सर्ववश्येषु मोहने ताम्रजा स्मृता। मारणे चायसी प्रोक्ता श्रीफलैर्बिल्वकाष्ठजैः।। ३।।
सा पुनस्त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा। तामसी चेति तास्वाद्या शतैरष्टोत्तरैः शुभैः।। ४।।
मणिभिः शङ्खसम्भूतैः श्वेतपद्मसमुद्भवैः। मणिभिः सात्त्विकी पुत्रजीवै रजतसम्भवैः।। ५।।
श्वेतचन्दनसम्भूतैरन्यैः श्वेततरूद्भवैः। कुशग्रन्थिभवैः क्लृप्ता राजसी चतुरुत्तरैः।। ६।।
पञ्चाशद्भी रक्तपद्मबीजैश्च रक्तचन्दनैः। सौवर्णै रक्ततरुजैः पीतसारसमुद्भवैः ।। ७।।
पद्मकाष्ठसमुद्भूतै रजनीकाष्ठसम्भवैः। देवदारुसमुद्भूतैः कृष्णाकाष्ठसंमुद्भवैः।। ८।।
मणिभिस्तामसी चाष्टाविंशद्भिर्मणिभिः कृता। सा शमीनिम्बबिम्बाक्षैरिन्द्रभद्रसमुद्भवैः।। ९।।
कपिशार्दूलऋक्षाणां जन्तूनामस्थिसम्भवैः। नराश्वरासभेभानां स्नायुभिर्ग्रथितैरपि।। १०।।
तत्तत्कार्यविभेदेन सा सा कार्या विपश्चिता।..।। ११।।

इति। कुशग्रन्थिमाला तु ब्राह्मणानामेव। "कुशग्रन्थ्या जपेद्विप्रः सुवर्णमणिभिर्नृपः। पुत्रजीवैर्जपेद्वैश्यः पद्माक्षैः सर्व एव च।।" इति नारदवचनात्। गोपालस्य जपे तु पद्माक्षमालातीव प्रशस्ता गौतमेन तन्मात्रविधानात्। यथा— "समाहितमना भूत्वा पद्मबीजाख्यमालया, जपेत्" इति। नारदपञ्चरात्रेऽपि—"जपस्य गणानां प्राहुः पद्माक्षैर्भक्तिवर्द्धनैः" इति। वैष्णवानामपि रुद्राक्षमालातीव प्रशस्ता। "यस्तु भागवतो भूत्वे"त्युपक्रम्य— "रुद्राक्षैश्चोत्तमाम्" इति वराहवचनात्।।

अथ जपमालासंस्कारकालः। तत्र योगिनीतन्त्रे—

द्वादश्यां वैष्णवी माला कर्तव्या साधकोत्तमैः। मन्त्रज्ञैर्विष्णुमन्त्रेण दिव्यभागे प्रयत्नतः।। १।।

इति। दिव्यभागे पूर्वाह्णे। "शक्तीनामपि कर्तव्या भुक्त्वा रात्रौ यथाविधि"। भोजनं तु दिवस एव।

अष्टम्यां च नवम्यां च त्रयोदश्यां तथैव च। चतुर्दश्यां तथा कुर्याच्छिवस्यापि सुरेश्वरि।। १।।

चतुर्थ्यां गणनाथस्य मध्याह्ने भास्करस्य तु। पूर्वाह्णे देवि कर्तव्या सप्तम्यां जगदीश्वरि ॥ ३॥

इति॥ अथ सूत्राणि तत्रैव—

पट्टसूत्रकृता माला देव्याः प्रीतिकरी सदा। कार्पासैर्वैष्णवी माला पद्मसूत्रैरथापि वा ॥ १॥

ऊर्णाभिर्वाल्कलैर्वापि शैवी माला प्रकीर्तिता। कार्पाससूत्रैरन्येषां विदध्याज्जपमालिकाम् ॥ २॥

इति। कार्पाससूत्रे विशेषस्तत्रैव। "ततो द्विजेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं ग्रन्थिवर्जितम्। त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य सूत्रं प्रक्षाल्य यत्नतः॥" कालोत्तरे स्कन्द उवाच—

देवदेव महादेव सृष्टिस्थितिलयेश्वर। रुद्राक्षैर्जपमाला तु कथं कार्या महेश्वर॥ १॥

संस्कारश्च कथं तात कर्तव्यः कीदृशं फलम्।...............................॥ २॥

ईश्वर उवाच

शृणु षण्मुख वक्ष्यामि रुद्राक्षैः क्रियते यथा। जपमाला विधानेन येन सा जपसिद्धिदा॥ ३॥

एकवक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च चतुर्वक्त्रैश्च पञ्चभिः। षड्वक्त्रैर्वाथ कर्तव्या (मिथो) मिश्रैस्तु वर्जयेत्॥ ४॥

मुखे मुखं तु कर्तव्यं मुखे मूलं तु वर्जयेत्। रुद्राक्षस्योत्तमं प्रोक्तं मुखं पृष्ठं तु निम्नगम्॥ ५॥

धात्रीफलप्रमाणेन श्रेष्ठमेतदुदाहृतम् । बदरार्धप्रमाणेन चणकान्मध्यमाधमे ॥ ६॥

ऊर्ध्ववक्त्रं तु मेर्वाख्यं कर्तव्यं तन्न लङ्घयेत्। नवेन[1] तन्तुना चैतद् ग्रथनीयमसंस्पृशत्॥ ७॥

इति। असंस्पृशत् त्वन्योन्यस्य। उत्तरतन्त्रे—

एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः। आद्यं स्थूलं ततस्तस्मात् न्यूनं न्यूनतरं तथा॥ १॥

विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा च सा यतः। ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं यथाविधि॥ २॥

अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम्। त्रिरावृत्त्याथ मध्येन चार्धवृत्त्यान्तदेशतः॥ ३॥

ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्तः स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञितः।.......................................॥ ४॥

इति। तथा कालोत्तरे—"एकभक्तं विधायाथ (दौ) साधको ग्रथयेत् स्वयम्।" एकभक्तं तु पूर्वदिने न तु तद्दिने, अन्यथा पूर्वाह्णे क्रियमाणायाः प्रतिष्ठायाः पूर्वं भोजनासम्भवादयुक्तत्वाच्च।

कृतनित्यक्रियः शुद्धः उक्तेष्वक्षेषु मन्त्रवित्। यथाकामं यथालाभमक्षानानीय यत्नतः॥ १॥

वक्त्रसाङ्कर्याकरणे यत्न उक्तः।

अन्योन्यसमरूपाणि नास्तिस्थूलकृशानि च। कीटादिभिरदष्टानि न जीर्णानि नवानि च॥ २॥

गव्यैस्तु पञ्चभिस्तानि प्रक्षाल्य च पृथक् पृथक्।.......................................॥ ३॥

आदौ पूर्वदिने। अक्षान् रुद्राक्षान्। यथाकामं वक्त्रभेदे फलभेदश्रवणात्। शक्तिव्यतिरिक्तमेकभक्तं ज्ञेयम्॥ पञ्चगव्यं तु नृसिंहपुराणे—

दुग्धं काञ्चनवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्। गोमूत्रं ताम्रवर्णाया नीलायाश्च भवेद् दधि॥ १॥

घृतं वै कृष्णवर्णाया इत्येतत्पञ्चगव्यकम्। गवां वर्णास्तु सुलभाः सन्ति देशेषु यत्र च॥ २॥

तत्र वर्णविभागेन पञ्चगव्यानि चाहरेत्। वर्णालाभे न दोषोऽस्ति मात्राहीनं तु वर्जयेत्॥ ३॥

---

१. 'नवत्रितन्तुना' ख. पाठः।

गोशकृद्द्विगुणं मूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम्। क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ।। ४।।
गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्। आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राब्णेत्यृचा दधि।। ५।।
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्। सद्योजातेति मन्त्रेण क्षालयेत् पञ्चगव्यकैः।।६।।

प्रक्षाल्येत्युक्तं कथं तदिति विवृणोति स्वयं। सद्य इति, पञ्चगव्यैर्जलैश्च। "क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः।" इति तत्त्वसारवचनात्।

चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत्। धूपयेत् तामघोरेण कृष्णागुरुसुगुग्गुलैः।। १।।
तत्पुरुषाख्यमन्त्रेण लेपयेच्चन्दनादिभिः"। ....।। २।।

आदिपदेन कर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादीनि गृह्यन्ते। "मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकं तु शतं शतम्। मेरुं च पञ्चमेनैव तथाघोरेण मन्त्रयेत्"।। इति। शैवागमे—

अश्वत्थपत्रनवकैः (कं) पद्माकारेण कल्पयेत्। सूत्रं मणींश्च गन्धाद्भिः क्षालितांस्तत्र निक्षिपेत्।। १।।
तारं शक्तिं मातृकां च सूत्रे रुद्राक्षके पृथक्। विन्यस्य पूजयेदाज्यैर्जुहुयाच्चैव शक्तितः।। २।।
मणिमेकैकमादाय सूत्रे तत्र तु योजयेत्। गोपुच्छसदृशी कार्या एकाग्रा वा समेरुका।। ३।।
मुद्राष्टकं दर्शयित्वा प्रत्येकं पूजयेत् क्रमात्। ग्रथितं पञ्चभिर्मन्त्रैः पूर्ववच्च सदा शिवे।। ४।।

इति। मन्त्रैः सद्योजातादिभिः पञ्चभिः। होमोऽप्येभिरेव मन्त्रैः। पूजाहोमयोरेकमन्त्रस्यावश्यकत्वात्। एकाग्रेति समरूपा। मुद्राष्टकं त्वावाहनादि, अनन्तरं पूजाविधानात्। अन्यमणिष्वप्ययं संस्कार इति यद् वदन्ति तदज्ञानविजृम्भितम्। "रुद्राक्षाणामयं प्रोक्तं संस्कारः श्रुतिचोदितः। इतरेषु तु तन्त्रोक्तः कर्तव्यो गुरुसाधकैः।" इति कालोत्तरवचनादेव।। अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं तदुत्पत्तिस्तन्मुखभेदास्तत्फलानि च। तत्र स्कन्दपुराणे—

त्रिपुरो नामदैत्यस्तु पुरासीदतिदुर्जयः। जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रदेवताः।। १।।
त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां पालनाय च। लोकानां भयनाशाय क्रतुधर्मप्रवृत्तये ।। २।।
सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलितं घोररूपकम्। चिन्तितं यन्मया पुत्र अघोरास्त्रमनुत्तमम्।। ३।।
निष्ठायास्तस्य भार्यायास्तावद्यावददृश्यत। दिव्यवर्षसहस्राणि चक्षुरुन्मीलितं तया[१]।। ४।।
पुष्टाभ्यामाकुलाक्षिभ्यां पपिता जलबिन्दवः। ते चास्रुबिन्दवो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः।। ५।।
स्थावरत्वमनुप्राप्ता मर्त्यानुग्रहकारणात्। फलन्ति सर्वकालं हि अविच्छिन्नफलप्रदाः।। ६।।

इति। वासिष्ठे लैङ्गे—

ब्रह्मेन्द्रमुख्यसकलामररक्षणार्थे शम्भोः पुरासुरविमर्दनकृत्यकाले।
तत् त्रैपुरेक्षणनिरोधभवाद्धि वारि रुद्राक्षवृक्षनिकराणि तदा बभूवुः।। १।।
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे
षट्षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादश द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितं चैकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति च शतं स स्वयं नीलकण्ठः।। २।।

१. 'मया' क. ग. पाठः।

रुद्राक्षबीजमिति ये भुवि धारयन्ति हस्ते च मूर्धनि तथोरसि भूमि (रि) भागे।
ते संवसन्ति सदृशाः यम(शत)पत्रनेत्रपद्मासनेन्द्रसुरकिन्नरपत्तनेषु ॥ ३॥
शिरो माला च षट्त्रिशद् [1]द्वादश कण्ठमालिका। कूर्परे षोडश प्रोक्ता द्वादश मणिबन्धयोः॥ ४॥
अष्टोत्तरशतैर्युक्तमुपवीतं विधीयते । तदर्धमुरसो माला शिखायामेकमुच्यते ॥ ५॥
कर्णयोश्चापि षट्संख्या धारणक्रम ईरितः। संख्याहीनं न कर्तव्यमधिकं नैव दुष्यति॥ ६॥
संख्याभेदे प्रवक्ष्यामि जपमाला तु या भवेत्। मोक्षार्थे पञ्चविंशत्या सप्तविंशतिः पौष्टिके॥ ७॥
त्रिंशच्च धनसम्पत्त्यै पञ्चदशाभिचारके। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुर्विधः॥ ८॥
श्वेतो रक्तः सुवर्णाभः कृष्णवर्णः क्रमादमी। एतेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो जपमालाकृते भृशम्॥ ९॥
अलाभे तु द्विजातीनामपि वा स्वस्वजातयः। अतिस्थूलोऽतिसूक्ष्मश्च स्फुटितो भङ्गुरो लघुः॥१०॥
छिन्नः पुराधृतो जीर्णो रुद्राक्षो न वरः स्मृतः। मणौ यदुन्नतं स्थानं मुखं पृष्ठं तु निम्नकम्॥ ११॥
घटयेदेकदिग् वत्स मणीन् सद्दन्तपङ्क्तिवत्। अन्योन्यघर्षणादेव जपहानिर्भवेद् ध्रुवम्॥ १२॥
दृढेन रज्जुना तेन वर्तनत्रयरूपतः। अन्योन्यमध्यदेशे तु कर्तव्याः ग्रन्थयः शुभाः॥ १३॥
चतुर्दशान्तं वक्त्राणि रुद्राक्षाणां क्रमाद्भवेत्। धारणस्य फलं तेषां वक्ष्यते विधिवत् क्रमात्॥ १४॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति। द्विवक्त्रं देवदेव्यौ तु गोवधं नाशयेद् ध्रुवम्॥१५॥
शिवक्त्रमनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां हरति क्षणात्। चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा गुरुहत्यां व्यपोहति॥१६॥
पञ्चवक्त्रः शिवः साक्षात् सर्वपापैः प्रमुच्यते। षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारयेद् दक्षिणे करे॥ १७॥
ब्रह्महत्यादिभिर्पापैर्मुच्यते नात्र संशयः। सप्तवक्त्रो महानागो ह्यनन्तो नाम नामतः॥ १८॥
गोवधस्वर्णचौर्याभ्यां मुच्यते सर्वदा नरः। अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद् देवो गणाधिपः॥ १९॥
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति सोऽन्ते याति परां गतिम्। नववक्त्रो भैरवः स्याद् धारयेद्वामहस्तके॥२०॥
भुक्तिदो मुक्तिदः प्रोक्तो मम तुल्यो बली भवेत्। दशवक्त्रो भवेद्वत्स साक्षाद् देवो जनार्दनः॥२१॥
पिशाचग्रहवेतालब्रह्मराक्षसपन्नगैः। सम्भवानि च दोषाणि क्षिप्रं नश्यन्ति धारणात् ॥ २२॥
वक्त्रैकादशरुद्राक्षं रुद्रा एकादश स्मृताः। शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २३॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजिपेयशतस्य च। गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्॥ २४॥
तत्फलं समवाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात्। वक्त्रद्वादशरुद्राक्षं भास्करद्वादशात्मकम् ॥ २५॥
बहुस्वर्णाश्वगोमेधफलं प्राप्नोति धारणात्। वक्त्रत्रयोदशं वत्स रुद्राक्षं यदि धारयेत्॥ २६॥
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यमुत्तमम्। चतुर्दशसुवक्त्रं वै रुद्राक्षं यदि धारयेत्॥ २७॥
मूर्ध्नि स्थिते तु वै नित्यं तस्मिन् यो म्रियते नरः। पवित्रमयवक्त्रस्तु(?)शशिखण्डशिराः स्वयम्॥२८॥
वन्द्यते सततं देवैः सत्यं च शृणु षण्मुख। बहुलं प्राप्यते पुण्यं भाग्यवान् जायते नरः॥ २९॥

१. 'द्वात्रिंशत्' ख. पाठः।

स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने। प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषत:।। ३०।।
रुद्राक्षधारी भूत्वा च यत्किञ्चित् कर्म वैदिकम्। यो विप्र: सततं कुर्यात् तत्कर्म सफलं भवेत्।।३१।।

इति। पद्मपुराणे—

कण्ठे शिरसि हस्ते च कर्णयोरुपवीतके। रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो भवति मानव:।। १।।

इति। शैवपुराणे—

रुद्राक्षान् धारयेद्विप्र: सन्ध्यादिषु च कर्मसु। तत्सर्वं सफलं प्रोक्तं लक्षकोटिगुणं ध्रुवम्।। १।।
लिङ्गदर्शनवत् पुण्यं भवेद्रुद्राक्षदर्शनात्। तत: कोटिशतं पुण्यं लभते धारणान्नर:।। २।।
शिरसा धारणाद् कोटि: कर्णयोर्दश कोटय:। गले बद्ध्वा कोटिशतं मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम्।। ३।।
अयुतं चोपवीते च लक्षकोटिर्भुजद्वये। अप्रमेयफलं हस्ते सुरुद्राक्षधरो भवेत्।। ४।।

इति। लैङ्गे वासिष्ठे—

खादन्मांसं पिबन्मद्यं सङ्गच्छन्नन्त्यजातिभि:। सद्यो भवति पूतात्मा रुद्राक्षे शिरसि स्थिते।। १।।

इति। स्कन्दपुराणे—

रुद्राक्षं कण्ठमाश्रित्य शुनोऽपि म्रियते यदि। सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादय:।। १।।
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकै:। मुच्यते सर्वपापेभ्यो नरो रुद्राक्षधारणात्।। २।।
रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयन् भक्तिवर्जित:। पापकर्मापि यो नित्यं रुद्रलोके महीयते।। ३।।

इति। शैवपुराणे—"अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्। कुर्याद्विप्रस्तु यो मोहान्न स प्राप्नोति तत्फलम्" इति। वासिष्ठे लैङ्गे—

रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने। सङ्कीर्णा सा भवेद् ब्रह्मंस्तेषां वंशपरम्परा।। १।।

इति। अथान्येषामक्षविशेषाणां तु योगिनीतन्त्रे—

उक्तेष्वक्षेषूक्तसूत्रैर्ग्रथितां साधकोत्तम:। मालां विधाय वै पात्रे क्वचिद्गन्धादिचर्चिताम्।। १।।
भूतशुद्ध्यादिकां पूजां समाप्य तत्र पूजेयत्। गणेशसूर्यविष्ण्वीशदुर्गाश्चावाह्य पूजयेत्।। २।।
पञ्चगव्ये तु तां क्षिप्त्वा हौंमन्त्रेण च मन्त्रवित्। तस्मादुत्तोल्य तां मालां स्वर्णपात्रे निधाय च।।३।।
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात्। तोयधूपान्तिकै: कृत्वा पञ्चामृताविधिं बुध:।। ४।।
क्रमात्तत्रैव संस्थाप्य [1]स्नापयेच्छीतलैर्जलै:। ततश्चन्दनसौगन्धिकस्तूरीकुङ्कुमादिभि:।। ५।।
तां संलिप्य हसौंबीजमष्टोत्तरशतं जपेत्। तस्यां नवग्रहांश्चापि दिक्पालांश्च प्रपूजयेत्।। ६।।
तत: सम्पूज्य च गुरुं गृह्णीयान्मालिकां शुभाम्।...।। ७।।

इति। भैरवीतन्त्रे—

आदौ गणपतिं देवं सूर्यं विष्णुमुमापतिम्। दुर्गां च पूजयेद् विद्वान् मालायां सुसमाहित:।। १।।
पञ्चगव्ये क्षिपेन्मालां प्रासादेनाभिमन्त्रिताम्। ततस्तूत्तोल्य तां मालां स्थापयेद्धेमपात्रके।। २।।

---

१. 'स्थापयेच्छीतले जले' क. ख. पाठ:।

अत्र प्रासादेन वक्ष्यमाणप्रासाद[1]मन्त्रेण।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य शीतलेन जलेन च। चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥ ३॥
अभिषेकं ततः कृत्वा मन्त्रेनानेन मन्त्रवित्। प्राणं जीवसमारूढमौकारस्वरभूषितम् ॥ ४॥
बिन्दुनादसमायुक्तं मन्त्रराजं प्रविन्यसेत्। नव ग्रहान् पूजयित्वा ततो दिक्पालपूजनम्॥ ५॥
तिलेन घृतयुक्तेन शक्तितो होमयेत्ततः। स्वर्णं तु दक्षिणां दद्याद् विप्रांस्तु परितोषयेत् ॥ ६॥

इति। अनेन प्रासादेन। प्रविन्यसेदष्टोत्तरशतं जपेदित्यर्थः। प्राणो हकारः, जीवः सकारः, हसौं इति। दक्षिणा आचार्याय। स्वर्णपात्राभावेऽश्वत्थपत्रं ग्राह्यमुक्तयोगिनीतन्त्रवचनात्। प्रकारान्तरं तु कुलिकातन्त्रे—

शिल्पिनं पूजयेदादौ वस्त्रगन्धानुलेपनैः। संहृष्टः कारयेन्मालां विशुद्धां स्वर्णरूप्यिणीम्॥ १॥
यथायोग्यं वेधवर्तीं मालां कुर्याद्विचक्षणः। वर्णमानेन सा कार्या पञ्चगव्ये त्र्यहं क्षिपेत्॥ २॥

वर्णमानेन मातृकावर्णमानेन तत्संख्ययेत्यर्थः। एतेन शतसंख्यैरक्षैर्माला कार्येति प्राप्यते।

सूत्रं चापि चतुर्थेऽह्नि क्षालयेदस्त्रमन्त्रकैः। समानवर्णसूत्रेण मापयेद्[2] हृदयाणुना॥ ३॥
सुवर्णादिगुणैर्वापि ग्रन्थयेत् साधकोत्तमः। ब्रह्मग्रन्थिं ततो दद्यान्नागपाशमथापि वा॥ ४॥
कवचेनाथ बध्नीयान्मालां ध्यानपरायणः। सर्वशेषे ततो मेरुं सूत्रद्वयसमन्वितम्॥ ५॥
ग्रन्थयेत् तारयोगेन बध्नीयात् साधकोत्तमः। एवं निष्पाद्य देवेशि प्रतिष्ठां च समाचरेत्॥ ६॥
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा यथाभागविधिक्रमात्। पूजयित्वा यथान्यायमिष्टदेवमनुक्रमात्॥ ७॥

मण्डलं स्वेष्टदेवतापूजाचक्रम्।

न्यासपूर्वं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्। जुहुयाच्च दशांशेन यस्य देवस्य यत्प्रियम्॥ ८॥

यत्प्रियमित्यनेन पुरश्चरणाङ्गहोमे यद्द्रव्यं यस्य देवस्योक्तं तेन होमयेदित्युक्तम्।

ततो मण्डलमध्ये तु तां मालां स्थापयेद् बुधः। अस्त्रमन्त्रं ततो न्यस्य मूलमन्त्रं ततो न्यसेत्॥ ९॥
अङ्गानि तानि विन्यस्य देववत् परिचिन्तयेत्। अभेदरूपमासाद्य मालां कुर्यात् तदात्मिकाम्॥ १०॥
ततो बलिं यथान्यायं दद्यात् तैः साधकोत्तमः। एवं प्रतिष्ठामापाद्य मालायामिष्टदेवताम्॥ ११॥
आचार्यं पूजयेन्मन्त्री शिल्पिनं च यथाविधि। नान्यमन्त्रं जपेत् तत्र यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः॥ १२॥

इति। अस्त्रादिर्जप्तव्यमन्त्रस्य ग्राह्यः। बलिं मालायास्तैर्होमद्रव्यैः। तथा उत्तरतन्त्रे—

दृढसूत्रं नियुञ्जीत जपे तु प्रीतितो यथा। जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतं जपेत्॥ १॥

इति। शैवागमे—

यदा संत्रुट्यते माला ग्रन्थयित्वा तु पूर्ववत्। प्रतिष्ठितायां तस्यां तु मन्त्रं जप्यादनन्यधीः॥ १॥

इति। (तथा[3]—"तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेन्नैव धूनयेत्। न स्पृशेद्वामहस्तेन करभ्रष्टं न कारयेत्॥ अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठेनान्यमक्षं न संस्पृशेत्। जपकाले सदा विद्वान् मेरुं नैव विलङ्घयेत्॥ परिवर्तनकाले तु शब्दं नैव च कारयेत्। कलहश्च भवेच्छब्दे चलन्त्यां च चलेन्मतिः॥ चलिते चैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसम्भवः। हस्तच्युते

१. 'प्रासादपरा' ख. पाठः। २. 'ग्रन्थयेत्' क. ख. पाठः। ३. 'बन्धचिह्नान्तर्गतमेतत्' क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

महाविघ्नः सूत्रच्छेदे विन्यश्यति।।'' इति, केचित्तु कराङ्गुलिभिरेव जपः कार्यः इति वदन्ति, तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्, वस्तुतस्तु पुरश्चरणेऽपि ज्ञेयम्। जपमालाभावे करेणैव जपगणना कार्या। उक्तं च नारदपञ्चरात्रे— ''अथाङ्गुलिभिरेवापि जपकर्म समारभेत्।'' प्रपञ्चसारेऽपि—(२०। ४०).

पद्मासनः प्राग्वदनोऽप्रलापी तन्मानसस्तर्जनिवर्जिताभिः।
अक्षस्रजा वाङ्गुलिभिर्जपेत् तं नातिद्रुतं नातिविलम्बितं च।। १।।

इति। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—''जपस्य गणनां कुर्यादथवाङ्गुलिपर्वभिः''। इति तत्प्रकारमाह श्रीभैरवीतन्त्रे—

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठानुक्रमेण तु। मध्यमामूलपर्यन्ता करमाला प्रकीर्तिता।। १।।

इति। गौतमोऽप्याह—''कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठमध्यमाभिर्जपेत् सदा'' इति। तदानामामध्यमूलकनिष्ठामूलमध्याग्रानामाग्र-मध्यमाग्रमध्यमूलपर्यन्तमिति नवसु पर्वसु गणनायां कृतायां नववारं जपो भवति। एवं द्वादशवारं पुनः पुनरावर्तयित्वाष्टोत्तरशतजपो भवति। द्वादशोत्तरशतावृत्त्याष्टोत्तरसहस्रजपो भवति। इत्थमयुतादिष्वप्यूहनीयम्। वस्तुतस्तु तन्त्रान्तरदर्शनात् तर्जनीसहिताङ्गुलिभिरेव जपः कार्यः। यदुक्तं कुलमूलावतारे—

अथ वक्ष्ये महेशानि जपस्य गणनाफलम्। अङ्गुलीजपसंख्याजं फलमेकगुणं स्मृतम्।। १।।
रेखयाष्टगुणं विद्यात् पुत्रजीवैर्दशाधिकम्। शतं स्याच्छेषमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम्।। २।।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते। पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।। ३।।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्। श्वेतपद्माक्षमालाभिर्जपे स्यादमितं फलम् ।। ४।।
अङ्गुलीभिर्जपं कुर्वन् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्जपेत्। अङ्गुष्ठेन विना जप्तं विफलं भवति प्रिये।।५।।
पर्वभिर्वाङ्गुलीनां तु जपेदनुदिनं प्रिये। मध्यमानामिकामध्यपर्वद्वयमिह प्रिये ।। ६।।
मेरुप्रकल्पनं कुर्वन् प्रदक्षिणमनुक्रमात् । अनामामूलपर्वादिकनिष्ठानुक्रमेण तु।। ७।।
तर्जन्यग्रादितो देवि मध्यमूलावसानकम्। गणयेच्च क्रमेणैवं किञ्चित् सङ्कोचयेत् तलम्।। ८।।
अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत जपकाले महेश्वरि। अङ्गुलीनां वियोगे तु च्छिद्रेषु स्रवते जपः।। ९।।
उल्लङ्घ्य गणनां देवि न मन्त्रं प्रजपेत् क्वचित्। यतस्तज्जपमीशानि बलाद् गृह्णन्ति राक्षसाः।।१०।।
अथवा मध्यमामध्यमूलपर्वद्वयं प्रिये। मेरुं कृत्वा जपेद् देवि तर्जनीमूलकावधि।। ११।।
अनामामध्यपर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमेण वै।...।। १२।।

इति। अत्राङ्गुलीजपो रेखाजपः पर्वजप (श्चेति त्रिविधः करमालाजपः, तत्र कनिष्ठाद्यङ्गुष्ठपर्यन्तं पुनः पुनर्गणना-ङ्गुलिजपः, कनिष्ठाद्यङ्गुलिगतरेखाभिर्जपो रेखाजपः, पर्वजपश्चेति स तु) प्रोक्तलक्षण एवेति। मातृकार्णवे—

स्वेष्टमन्त्रस्य ये वर्णाः स्वरव्यञ्जनभेदतः। पृथक्कृतास्तैः कुर्वीत वर्णमालां विशेषतः।। १।।
मेरुं च प्रणवं कुर्यात् जपेत् तन्मालया बुधः। शीघ्रं सिद्धिर्भवत्येव सत्यं सत्यं न संशयः।। २।।
अंशाधिक्यं तु विज्ञाय प्रस्तारक्रमभेदतः। तद्भूतवर्णदशके व्यञ्जनानां सुरेश्वरि।। ३।।
तत्तद्भूतस्वरैर्युक्तं कृत्वा योज्य स्वरत्रयम्। तत्तद्भूतप्रधानार्णं मेरुं कृत्वा विचक्षणः।। ४।।

तन्मन्त्रं प्रजपेत्तत्र मालया सिद्ध्यति ध्रुवम्। मन्त्रार्णौषधिचूर्णस्य गुटिकाकृतमालया।। ५।।
जपेत् सर्वार्थसिद्धि: स्यान्नात्र कार्या विचारणा।..।। ६।।

इति।। अथ पुरश्चरणकाले विहितानि, तत्र नारद:—

मन:संहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्। अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतव:।। १।।

इति। त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

लोभमात्सर्यरहित: कामक्रोधविवर्जित:। सर्वथा लभते सिद्धिमन्यथा निष्फलं भवेत्।। १।।

इति। कुम्भसम्भव:—

नित्यं नैमित्तिकं यद्यत् कुर्वन् वर्णाश्रमोदितम्। तदेव कर्म कुर्वीत तन्मनास्तत्परायण:।। १।।
दान्तस्त्रिषवणस्नायी मौनी सम्मर्जितान्तर:। यजेत वैष्णवं कर्म स्थिरधीर्नियतेन्द्रिय:।। २।।

इति। गौतम:—

स्वकर्मणि रतिर्यस्य तस्य सिद्धिरदूरत:। दूरतोऽपि न सिद्धि: स्यादितरस्य द्विजोत्तम।। १।।
क्रूरस्यापि न सिद्धि: स्यादिति सत्यं न संशय:।..।। २।।

इतरस्य स्वधर्मानिरतस्य, दूरतो चिरकालेनापि।। मन्त्रार्णवे—

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनं चाप्यनसूयता। नित्यं त्रिषवणस्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम्।। १।।
नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्तनम्। नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयो:।। २।।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्मा: स्युर्मन्त्रसिद्धिदा:।..।। ३।।

इति। (ब्रह्मचारित्वमष्टविधमैथुननिवृत्ति:) तदुक्तं गोरक्षेण—

स्मरणं कीर्तनं केलि: प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।। १।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिण:। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।। २।।

इति। अभिलाषपूर्वकस्मरणकीर्तनप्रेक्षणानि निषिद्धानि। केलि: परिहासादिबाह्यचेष्टा। गुह्यभाषणं सम्भोगार्थं रहोमन्त्रणम्। सङ्कल्पो मानसं कर्म। अध्यवसाय: सम्भोगनिश्चय:। त्रिषणवं स्नानं शक्तपरम्। ''स्नानं त्रिषवणं प्रोक्तमशक्त्या द्वि: सकृच्चरेत्''। इति वैशम्पायनवचनात्। क्षुद्रं कर्म तु— ''दम्भद्वेषौ तथोत्साद उच्चाटो भ्रममारणे। व्याधिश्च'' इति स्मृत्यन्तरमिति नारायणीयोक्तम्। नित्यपूजा नित्यं तर्पणपूर्वकमेव जपविधानात्, नैमित्तिकार्चनमयनादौ विशेषपूजा। तदुक्तं मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

अष्टोत्तरसहस्रं तु कृत्वा तर्पणमादरात्। जपेत् प्रतिदिनं यत्तु नित्य एष जप: स्मृत:।। १।।
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो:। द्वादश्यां पूर्णिमायां तु तेषु नैमित्तिको जप:।। २।।
नित्यात् त्रिगुणित: सोऽथ पूजा चैव हरेस्तथा।..।।

इति। कपिलपञ्चरात्रे—''मन्त्रश्च देवतातारातिथिवारेषु जप्यताम्''। इति। तथा च गौतम:—

ततो गुरो: पादपद्मं पुष्पाञ्जलिभिरर्चयेत्। तस्मादाशी: सदा ग्राह्या तत: सन्तोषमाचरेत्।। १।।
सन्तुष्टे तु गुरौ देव: सन्तुष्टो नान्यथा भवेत्।..।। २।।

इति। तथा श्रीभगवद्वाक्यम्—

सन्तुष्टो हि गुरुर्यस्य तस्य तुष्टं जगत्त्रयम्। नास्त्यसाध्यं जगत्यत्र सुप्रसन्ने गुरौ मुने।। १।।
हृदि न्यसेद् गुरोर्वाक्यं न कदाचिद्विलङ्घयेत्।..।। २।।

इति। कुम्भसम्भवः—

स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा। श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमन्त्रैः स्नायादनन्तरम्।। १।।
अनुतिष्ठेदनुष्ठेयं शुचिर्व्रततमोऽनिशम्।..।। २।।

इति। प्रपञ्चसारे—(१०। ४१) "अथ तु हविष्यप्राशी नक्ताशी वा जपेन्मनुं चैवम्" इति। वाशब्दः समुच्चये।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

भैक्षादिनियमाहारः सकृद्रात्रौ विधीयते। कन्दमूलफलैर्वापि कुर्यादशनमन्वहम्।। १।।

इति। त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

गुरुगोविप्रबालेषु दीनान्धकृपणेषु च। भवेच्छ्[1]द्धमतिर्मन्त्री न च द्रोहं समाचरेत्।। १।।
पश्चाद्रोभ्यः समभ्यर्च्य ग्रासं दद्यात् सुशोभनम्।..................................।। २।।

इति। गौतमः—

गोषु भक्तिः सदा कार्या गोषु शुश्रूषणं तथा। नित्यं गोषु प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदति।। १।।

इति।। अथ निषिद्धानि त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

नाप्रियं कस्यचिद् ब्रूयान्नानृतं वा कदाचन। न च्छायामाक्रमेद्विद्वान् विभीतककरञ्जयोः।। १।।
न कुर्यात् कस्यचित् किञ्चिन्न गृह्णीयाज्जपान्तरे। तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत मधु मांसं च वर्जयेत्।।२।।
स्त्रीषु सम्भाषणं नैव कुर्याद् देवि विमोहितः। न नग्नो न सुगन्धाढ्यो गीतवाद्ये विवर्जयेत्।। ३।।

इति। न गृह्णीयादिति सति सम्भवे, असम्भवे तु तद्दिनभैक्षमात्रं ग्राह्यमिति भक्षमानयुक्तेः। विमोहितः कामपरवशः।
प्रयोगसारे—"विभीतकार्ककारञ्जस्नुहीछायां न संश्रयेत्" इति। कुम्भसम्भवः—

वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं निःस्पृहो वनितादिषु। स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम्।। १।।
असत्याश्लीलयोर्नित्यं भाषणं परिवर्जयेत्। सभ्यैरपि न भाषेत जपहोमार्चनादिषु।। २।।
वर्जयेद् गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम्। ताम्बूलं गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च।। ३।।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं च विवर्जयेत्। असद्भाषणमत्यर्थं वर्जयेदन्यपूजनम्।। ४।।
कौटिल्यं क्षौरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम्। असङ्कल्पितकृत्यं च वर्जयेन्मर्दनादिकम्।। ५।।
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम्।..।। ६।।

सभ्यैरित्यत्र प्रायश्चित्तमाह नारदः—

सकृदुच्चारिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत्। प्रोक्ते पामरशब्देऽपि प्राणायामं सकृच्चरेत्।। १।।
बहुप्रलापे चाचम्य न्यस्याङ्गानि ततो जपेत्। क्षुते चैव तथास्पृश्यस्थानानां स्पर्शने तथा।। २।।

इति। योगियाज्ञवल्क्यः—

१. 'दार्यमतिः' ख. पाठः।

यदि वाग्यमलोप: स्याज्जपादिषु कथञ्चन। व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम्।। १।।

इति। वायवीयसंहितायाम्—

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषिते श्रुते। क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ।। १।।
अप आचम्य चैतेषां प्राणायामं षडङ्गकम्। कृत्वा सम्यग् जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम्।। २।।
मार्जारं कुक्कुटं क्रौञ्चं श्वानं गृध्रं खरं कपिम्। दृष्ट्वाचम्य चरेत् कर्म स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते।।३।।
एवमादींश्च नियमान् पुरश्चरणकृच्चरेत्।..।। ४।।

इति। तथा श्रीशिववचनम्—

क्रोधं क्षुतं मदं त्रीणि निष्ठीवनविजृम्भणे। दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि।। १।।
आचान्त: सम्भवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह। ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम्।।२।।

इति। मां महेश्वरम्। त्वया सह पार्वत्या सह।। लिङ्गपुराणे—

सूर्योऽग्निश्चन्द्रमाश्चैव ग्रहनक्षत्रतारका:। एते ज्योतींषि चोक्तानि विद्वद्भिर्ब्राह्मणस्तथा।। १।।

इति।। तथा—

क्रोधो मद: क्षुधा तन्द्रा निष्ठीवनविजृम्भणे। श्वनीचदर्शनं निद्रा प्रलापोऽमी जपद्विष:।। २।।

इति।। तथा विष्णुधर्मोत्तरे—

उपविष्टो जपेत् स्नात: क्षुतप्रस्खलितादिषु। पूजायां नाम कृष्णस्य सप्तवारं प्रकीर्तयेत्।। ३।।

इति। फेत्कारिणीतन्त्रे—

जपकाले यदा पश्येदशुचिं मन्त्रवित्तम:। प्राणायामं तत: कृत्वा तत: शेषं समापयेत्।। १।।
यदा चैवं भवेन्मन्त्री स्वयमप्यशुचि: पुन:। स्नात्वाचम्य यथान्यायं कृत्वा न्यासान् पुनर्जपेत्।।२।।

इति। न्यासमधिकारसम्पादकम्। एतेन मूत्रोत्सर्जनादावशुचिसम्भवे च[१] स्नानमन्यथा प्राणायामषडङ्गन्यासान् कृत्वा शेषं समापयेदिति प्रतीयते। वैशम्पायन:—

अस्नातस्य फलं नास्ति तथातर्पयत: पितॄन्। नाप्यतर्पयतो देवान् नासत्यमभिजल्पत:।। १।।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा।...।। २।।

इति।। योगिनीतन्त्रे—

अनास्थाजपमत्यन्तमश्रद्धां जपकर्मणि। आलस्यं भावनाशक्ति: सिद्धिनाशाय निश्चितम्।। १।।
त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परीवादं च वर्जयेत्। त्यजेद् दुर्जनसंस्पर्शं साशङ्कादिभवं त्यजेत्।। २।।

इति। वायवीयसंहितायाम्—

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृत:। अपवित्रकरोऽशुद्धा:[२] प्रलपन्न जपेत् क्वचित्।। १।।
असंवृतौ करौ कृत्वा शिरसि प्रावृतोऽपि वा। चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो भ्रान्त: क्षुधान्वित:।।२।।
अनासन: शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा। रथ्यायामशिबस्थाने जपेन्न तिमिरालये।। ३।।
उपानद्गूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा। प्रसार्य न जपेत् पादावुत्कटासन एव वा।। ४।।

१. 'वक्षेत्' ग. पाठ:। २. 'श्रद्ध:' ग. पाठ:।

इति। कपिलपञ्चरात्रे—

विक्षेपादथवालस्याज्जपहोमार्चनान्तरे। उत्तिष्ठति तदा न्यासं षडङ्गं विन्यसेत् पुन:।। १।।

इति। अपवित्रकर: पवित्रं कुश:। "अस्त्री कुशं कुशो दर्भपवित्रम्" इति हि कोश:। "विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुन:। राक्षसं तद्भवेत्सर्वं नेहामुत्रफलप्रदम्"। इति कूर्मपुराणवचनेन तस्यावश्यकत्वाभिधानात्। सूत्रं यज्ञोपवीतम्। विष्णुरपि—"स्नात: सुप्रक्षालितपाणिपाद: शुचिर्बद्धशिखो दर्भपाणिराचान्त: प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य मौनी ध्यानी देवता: पूजयेत्" इति। तत्र वामे बहुकुशा:, दक्षिणे पारिभाषिकं पवित्रम्। तथा सन्ध्योपक्रमे कात्यायन:—

सव्ये पाणौ कुशान् कृत्वा कुर्यादाचमनक्रियाम्। ह्रस्वा: प्रचरणीया: स्यु: कुशा दीर्घाश्च बर्हिष:।। १।।

दर्भा: पवित्रमित्युक्तमत: सन्ध्यादिकर्मसु। सव्य: सोपग्रह: कार्यो दक्षिण: सपवित्रक:।। २।।

इति। सव्ये वामे। ननु कीदृशा धार्या दक्षिणे धार्या न वेत्यत आह—ह्रस्वा: पार्वणपञ्चयज्ञादिप्रचारार्था:, दीर्घा बर्हि:संज्ञका: प्रस्तारपरिस्तरणार्था:। प्रचारादन्येषु सन्ध्यादिषु दर्भा बहव एव धार्या विशेषरहिता: कर्मसु शुद्धिसाधनं न त्वेक:। "कुशोपग्रह:" इति "कुशहस्त: समाहित:" इति "अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतै: कुशै:" इति पारस्करगोभिलादिभिरप्युक्तम्। अतो विशेषाभावात् सन्ध्यादिषु सव्य: सकुशमुष्टि:, दक्षिणस्तु "अनन्तर्गर्भिणं[1] साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्"।। इत्युक्तलक्षणपवित्रयुक्त:। अन्तर्गर्भभिन्नं, गर्भगर्भि द्वितीयमन्तर्गर्भि तृतीयं च विहाय चतुर्थं ग्राह्यम्। लघुहारीत:—

जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे। अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतै: कुशै:।। १।।

इति। सुवर्णधारणं तु दक्षिणेऽनामिकायाम्। "अनामिकायां तद्धार्यं दक्षिणस्य करस्य च" इति हेमधारणप्रकरणे देवीपुराणवचनात्। रजतं तु तर्जन्यां धार्यम् "यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते। दक्षिणस्तत्र विज्ञेय: कर्मणामपर: कर:" इति कात्यायनवचनात् तर्जनीमूलस्य पितृतीर्थत्वेन दैवतरजतधारणं तत्रैव न्याय्यमित्येतन्मूलमहाजनाचारेण निर्णीतप्रमाण्यात् "तर्जन्यां रजतं धार्यम्" इति स्मृतिसमुच्चयलिखितवचनाच्च। "सव्यापसव्यवलितं ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितम्। लङ्घयेत् पर्वमात्रं तु द्वितीयं नैव लङ्घयेत्" (इति वचनादनामामध्यपर्वणि सग्रन्थि पवित्रं धार्यम्। "कर्मकाले प्रकुर्वीत सपवित्रामनामिकाम्। लङ्घयेदेकपर्वास्या द्वितीयं नैव लङ्घयेत्") इति शङ्खवचनाच्च। सुवर्णरजतैरिति बहुवचनं बहुधारणस्य कर्माङ्गत्वं व्यनक्ति। तच्च दधित्ववत्सुवर्णत्वरजतत्वजात्योर्द्व्यणुकादारभ्य वृत्तेरेकधारणेऽप्युपपद्यते इति। वामनपुराणे—

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया। आज्येन च विना होम: फलं दास्यन्ति नैव ते।। १।।

इति। स्मृत्यर्थसारे—

कुशा: काशा यवा दूर्वा उशीराश्च समं शरै:। गोधूमा ब्रीहयो मुञ्जा दश दर्भा: सवल्वजा:।। १।।

नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान् समाहरेत्। अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्या: पुन: पुन:।। २।।

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज। नुद पापानि सर्वाणि भव स्वस्तिकरो मम।। ३।।

इति मन्त्रं समुच्चार्य तत: पूर्वोत्तरामुख:। हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत्।। ४।।

---

१. 'तं' ख. पाठ:।

अच्छिन्नाश्चाप्यशुष्काग्रा: पित्र्ये तु हरिता: शुभा:। अमूला देवकार्येषु प्रयोज्याश्च जपादिषु।। ५।।
सप्तपत्रा: कुशा: शस्ता दैवे पित्र्ये च कर्मणि। अनन्तर्गर्भिणौ साग्रौ प्रादेशे तु पवित्रके।। ६।।
चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । एकैकपर्णमुत्सृज्य वर्णे वर्णे यथाक्रमम्।। ७।।
सर्वेषां भवति द्वाभ्यां पवित्रं ग्रथितं तथा। त्रिभिस्तु शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिस्तथा।। ८।।
चतुर्भिश्चाभिचारे स्याद्विनिष्कारौश्च(?द्वेषे चैक)केन च। सपवित्र: सदर्भो वा कर्माङ्गाचमनं चरेत्।।९।।
नोच्छिष्टं तद्भवेत्तस्य भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत्। यै: कृत: पिण्डनिर्वाप: श्राद्धं वा पितृतर्पणम्।।१०।।
विण्मूत्रादिषु ये दर्भास्तेषां त्यागो विधीयते। नीवीमध्यस्थितास्त्याज्या यज्ञभूमौ स्थितास्तथा।।११।।
वामहस्ते स्थिते दर्भे न पिबेद् दक्षिणेन तु। वस्त्रादितोयग्रहणे न दोष: पिबतो भवेत्।। १२।।
न ब्रह्मग्रन्थिनाचामेन्न दूर्वाभि: कदाचन। स्नाने जपे दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे।। १३।।
सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा। कुशाभावे तु काशा: स्यु: काशा: कुशसमा: स्मृता।।१४।।
काशाभावे ग्रहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिता:। नार्द्रो लुनीयाद्रात्रौ वा लुनीयाद्वा न सन्ध्ययो:।।१५।।
दर्भाभावे स्वर्णरौप्यताम्रैरपि क्रियाश्चरेत्।..।। १६।।

इत्यास्तां विस्तर:। नारदपञ्चरात्रे—

अपवित्रकरो नग्न: शिरसि प्रावृतोऽपि वा। प्रलपन् वा जपेद्यावत् तावन्निष्फलमुच्यते।। १।।

इति। नग्नमाहात्रि:—

नग्नो मलिनवस्त्र: स्यान्नग्नश्चार्द्रपटस्तथा। नग्नो द्विगुणवस्त्र: स्यान्नग्न: स्निग्धपटस्तथा।। १।।
द्विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च।..।। २।।

इति। भविष्यपुराणे—

द्विकच्छ: कच्छशेषश्च बहि:कच्छस्तथैव च। एककच्छ: कच्छशून्यो नग्न: पञ्चविध: स्मृत:।।१।।

इति। देवल:— "बहुवासा भवेन्नग्नो नग्न: कौपीनवाससा"[१] इति। कात्यायन:—

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्। प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं चैव तर्पणम्।। १।।
आसनारूढपादस्तु जानुनोर्जङ्घयोस्तथा। कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपाद: स उच्यते।। २।।

इति। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे तु— उक्तनियमानभिधाय "शक्तावेवं सर्वमेतदशक्त: शक्तितो जपेत्" इत्युक्तम्।।

अथ जपस्तत्र कुम्भसम्भव:—

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य शश्वदावर्तनं हि यत्। अन्तरङ्गाक्षराणां च न्यासपूर्वो जप: स्मृत:।। १।।

इति। अङ्गेति सुतीक्ष्णसम्बोधनम्। अक्षराणामन्तरावर्तनं जप: इति सम्बन्ध:। तद्भेदानाह वायवीयसंहितायाम्—

जप: स्यादक्षरावृत्तिर्वाचिको[२] पांशुमानस:। य उच्चनीचस्वरितै: शब्दै: स्पष्टपदाक्षरै: ।। १।।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिक: स जप: स्मृत:। शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्।। २।।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्य: स्यादुपांशु: स जप: स्मृत:। जिह्वाजप: स विज्ञेय: केवलं जिह्वया जप:।।३।।

१. 'वर्जित' घ. पाठ:। २. 'स उच्चो' क. ग. पाठ:।

धिया यदक्षरश्रेणीं पदवर्णस्वरात्मिकाम्। उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तो मानसो जपः।। ४।।
उच्चैर्जपो विशिष्टः स्याद्यज्ञादेर्दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।। ५।।

इति। नारदपञ्चरात्रे—
वाचिकः सर्वकार्येषु उपांशुः सर्वसिद्धिषु। मानसः मोक्षकार्येषु ध्यायेदेव च सर्वतः।। १।।

इति। महाभारते—
सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञः प्रशस्यते। अहिंसया हि भूतानां जायते वा महाफलम्।। १।।
जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठः सर्वयज्ञफलं लभेत्।..।। २।।

इति। श्रीभगवद्वचनं च "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" इति। पाद्मनारदीययोः—
यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युः प्रदीप्तानि तपांसि च। ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।। १।।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति। प्रसन्ना विपुलान् भोगान् दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम्।। २।।

इति। भृगुसंहितायाम्—
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।। १।।

इति।। अथासनानि, तत्र नारदः—
कुशाजिनाम्बरैर्युक्तं चतुरङ्गुलमूर्ध्वतः। चतुर्हस्तं द्विहस्तं च सुदृढं मृदु निर्मलम्।। १।।
आसनं कल्पयित्वा तु जपकर्म समारभेत्।...।। २।।

इति। वैशम्पायनः—
सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम्। वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं श्रीविवर्धनम्।। १।।
कौशेयं पौष्टिकं ज्ञेयं कम्बलं दुःखमोचनम्।...।। २।।

इति। वस्त्रमाविकम्। वक्ष्यमाणब्रह्मयामलवचनेन केवलवस्त्रासने दोषश्रवणात्। "वस्त्रेषु कम्बलं श्रेष्ठमासनं देवतुष्टये" इत्युत्तरतन्त्रवचनात्। भृगुः—
काम्यार्थं कम्बलं चैवाभीष्टदं रक्तकम्बलम्। धर्मार्थकाममोक्षाप्तिश्चैलाजिनकुशोत्तरे।। १।।

इति। ब्रह्मयामले—
कम्बलौ श्वेतरक्तौ च विचित्रौ नीलपीतकौ। व्याघ्राजिनं च कौरङ्गमन्यैर्नानाविधासनैः।। १।।

इति।। अथ निषिद्धासनानि सारसङ्ग्रहे—
वंशेष्टकाश्मधरणीतृणपल्लवनिर्मितम्। वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्र्यव्याधिदुःखदम्।। १।।
नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही। विशेद्यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च स्नातकः।। २।।

इति। ब्रह्मयामले—
तृणपल्लवकाष्ठानि पाषाणं मृण्मयं तथा। वंशासनं च वस्त्रं च केवलं क्षितिरासनम्।। १।।
एवमष्टविधं देवि चासनं परिवर्जयेत्। तृणासने भवेद्रोगः पल्लवे चित्तविभ्रमः।। २।।
पाषाणे च तथोच्चाटो ज्वरः स्यान्मृण्मयासने। क्षित्यासनं भवेत् पीडापापविस्फोटदुःखदम्।। ३।।
वंशासने दरिद्रः स्याद्वस्त्रे स्थानविनाशनम्। चिन्ता च प्रबला हानिरुच्चाटो विविधो ज्वरः।। ४।।

शोकशूलादिका रोगा मृत्यु: स्याद् दारुकासने। इत्थं चाष्टासनं देवि वर्जयेत् सर्वकर्मसु।। ५।।

इति।। अथ जपपूर्वदिनकृत्यम्। तत्र त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

शुभे मुहूर्ते नक्षत्रे (शुद्धे काले यतव्रत:। गुरोराज्ञां समासाद्य तत: कर्म समारभेत्।। १।।

इति। सनत्कुमार:—

अथ वक्ष्यामि मन्त्रस्य पुरश्चरणमुत्तमम्। कृताभिषेको विधिवमन्मन्त्रं लब्ध्वा गुरोर्मुखात्।। १।।

शुभे मुहूर्ते नक्षत्रे) तिथौ स्नात्वा यथाविधि। भोजनाच्छादनाद्यैस्तु विप्रान् सन्तर्पयेद्यथा।। १।।

भूवित्तवस्त्रभूषाद्यैर्गुरुं सन्तोष्य चात्मन:। आरभेत जपं पश्चात् तदनुज्ञापुर:सरम्।। २।।

इति।। प्रथमतन्त्रे— "क्षेत्रपालांश्च सम्पूज्य बलिं दद्याद्यथाविधि"। बलिमन्त्रस्तु—

पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद्विदुषि स्यान्मुरुद्वयम्। भञ्जयद्वितयं भूयो तर्जयद्वितयं तथा।। १।।

ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरवतत्परम्। क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण द्वयं पावकसुन्दरी।। २।।

बलिमन्त्रोऽयमाख्यात: सर्वकामफलप्रद:। तथैवं परिवाराय बलिमेतेन चाहरेत्।। ३।।

इति। मन्त्र: प्रयोगे वक्ष्यते। ततश्चोपवास: कर्तव्य:।। अथ जपारम्भस्तत्र महाकपिलपञ्चरात्रे—

एवं नक्षत्रतिथ्यादौ करणे योगवासरे। मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधनं च शुभावहम्।। १।।

इति दीक्षापुरश्चरणयो: समाननक्षत्रादिकं ज्ञेयम्। तत्र प्रागुक्तविधिना विचार्य समीचीनसमयं ज्ञात्वा समारभेत्। तदुक्तं दक्षिणामूर्तिकल्पे—

साधयेत् प्रवरो विद्वान् पूर्वपक्षं समाश्रित:। पुण्ये मुहूर्ते नक्षत्रे तिथौ स्नात्वा यथाविधि।। १।।

नत्वा गुरुं गणेशं च नत्वा दुर्गां च मातृका:।

इति तथा। कुम्भसम्भव:—"तत: सङ्कल्प्य कुर्वीत पुरश्चरणमादरात्"।। नारदीये—"सङ्कल्पं तु बुध: कुर्यात् स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।" तथा देवल:—

अभुक्त्वा प्रातरेवाथ (राहारं) स्नात्वाचम्य समाहित:। सूर्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्।।१।।

प्रातर्व्रतमाचरेदिति सम्बन्ध:। व्रतं स्वकर्तव्यविषयो नियमसङ्कल्प:।। तदुक्तं कुम्भसम्भवेन—

कर्तव्यस्य समस्तस्य नियमग्रहणं व्रतम्। नियमव्यतिरेकेण सर्वं भवति निष्फलम्।। १।।

इति। अभुक्त्वा प्रातराहारमित्येकवचनादर्थात्पूर्वदिन एकभक्तं कार्यम्। अतश्चोपवासाशक्तस्यैकभक्तं ज्ञेयम्। सूर्यादिदेवताभ्य इति "सूर्य: सोम" इत्यादिना मत्स्यपुराणोक्तपर्यायेण निवेद्येत्यर्थ:। ते श्लोकास्तु प्रयोगे वक्ष्यन्ते। महाभारते—

गृहीत्वोदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुख:। उपवासं तु गृह्णीयात् तथा सङ्कल्पयेद् बुध:।। १।।

उदङ्मुख इति नियमग्रहणार्थम्। सङ्कल्पयेत् मनसा नियमयेदिति। तथा गौतम:— "अन्तर्जानुकरं कृत्वा सलिलं सकुशोदकम्। फलं समभिसन्धाय" इति। तथा कुम्भसम्भव:— "निष्कामानामनेनैव साक्षात्कारो भवेत्" इति। साक्षात्कार: स्वेष्टदेवतादर्शनम्, अनेन पुरश्चरणेनेति। अत्र यद्यपि "मनसा सङ्कल्पयति, वाचाभिलपति, कर्मणा चोपपादयति" इति हारीतवचनात् "तस्माद्यत्पुरुषो मनसाधिगच्छति, तद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति" इति श्रुतेश्च

---

१. 'तस्मै सपरि' घ. पाठ:।

मनसाधिगतस्य वाचाभिलापे क्रियमाणे येन रूपेण मनसाधिगच्छति तेनैव वाचाप्यभिलापः कर्तव्यः इति प्राप्यते, अतोऽमुककामेन मया इदं कर्तव्यमिति फलक्रियोल्लेख एव प्रतीयते, तथापि मासादीनामप्युल्लेखः कर्तव्यः। तथा च ब्रह्माण्डपुराणे— "मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्"। इति मासपक्षतिथीनां च सर्वशः सर्वप्रकारेण सामान्यविशेषभावेन। तत्र सामान्येन (मासपक्षतिथिपदेन, विशेषतः कार्तिकशुक्लप्रतिपदादिपदेन। दृश्यते च "अस्मिन् मासि सिते पक्षे" इत्यादिमुनीनां प्रयोगः। निमित्तानां च देशकालादीनां सर्वप्रकारेण तत्र सामान्येन) भारतवर्षपदेन, तस्य सर्वकर्मफलहेतुत्वात्। तदुक्तं विष्णुपुराणे—

"इतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात्प्रयाति हि। तिर्यक्त्वं नारकत्वं च यात्यतः पुरुषो मुने।। न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमिर्विधीयते"। इति।। विशेषेण काश्यादिपदेन, कालस्यापि सामान्यत अद्येत्यनेन विशेषतः सूर्योपरागादिपदेन च। न चैवं मासादीनां निमित्ततायामुल्लेखद्वयप्रसङ्गः संयोगपृथक्त्वन्यायेन सकृदुल्लेखस्यैवोभयार्थत्वात्, उल्लेखनं वचनप्रयोगमकुर्वतः फलाभावश्चाभिहितः। अत एव गरुडपुराणे श्राद्धप्रकरणे—"ॐ अद्यास्मिन् देशेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिगते सवितरि" इत्याद्यभिलापः। अग्निपुराणे—"अद्य सोमार्कग्रहणे सङ्क्रान्त्यादौ सुतीर्थके"। इति तथा—"मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथामले। गोपदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि" इति।। पद्मपुराणे— विधिवाक्ये "मकरस्थे रवौ माघे" इत्युक्तम्। एवमन्येष्वपि विधिवाक्येषु श्रूयते। फलं चात्र— "मन्त्रसिद्धिः सकामानां" इत्युक्तवचनात्। न चैहिकी एव मन्त्रसिद्धिरित्यभिलपनीयम्, उक्तनारदवचनेनोभयसिद्धेः पुरश्चरणफलत्वाभिधानादिति। तथा— "पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च। होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते"।। इति कुम्भसम्भवेन जपादीनामेव पुरश्चरणशब्देनाभिधानाच्च पुरश्चरणमहं करिष्ये इत्यभिलपनीयम्। न च पुरश्चरणस्य चिरसमयसाध्यत्वेन "अद्यामुकतिथौ पुरश्चरणं करिष्ये" इत्यनुपपन्नं स्यादिति। साम्प्रतं करिष्ये, इति कृधांतोः कृतिमात्रार्थत्वात् क्रियायाः कृतिसामान्यान्वितत्वेन वर्तमानतिथौ यया कयापि कृत्वा सम्पादितया तत्तत्तिथौ कृतेर्निर्वाहत्वोपपत्तेरिति। एवं जपमद्यारभ्य करिष्ये इत्यतः परमाशौचेऽपि न जपबाधः। तदुक्तं विष्णुना—

यज्ञव्रतविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे। प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे च सूतकम्।। १ ।।
प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः। नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिष्क्रिया।।२ ।।

इति। वस्तुतस्तु तान्त्रिकदीक्षावतामाशौचादिसम्भवेऽपि नित्यार्चनबाधोऽपि नास्ति। "जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः। नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम्" इति देवीयामलवचनात्।। "सूतके मृतके चैव धूमोद्गारादिके तथा। जपार्चाद्यं तथा कुर्यान्मन्त्रन्यासपुरःसरम्" इति मृडानीतन्त्रवचनात्। "शिवविष्ण्वर्चने दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः। ब्रह्मचारियतीनां च शरीरे नास्ति सूतकम्" इति विष्णुयामलवचनात्। "सूतके मृतके चैव नित्यं विष्णुमयस्य च। सानुष्ठानस्य विप्रेन्द्र सद्यः शुद्धिः प्रजायते" इति नारदपञ्चरात्रवचनात् "उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिः प्रजायते" इति पाराशरवचनाच्च। तत्र विप्राणामित्युक्तेः क्षत्रियादीनामधिकारो नास्तीति प्रतीयते। "ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि। स्त्रीशूद्रस्यापि संस्पर्शो वज्रपातात् सुदुःसहः"।। इति विष्णुवचनात्। "विप्रस्य तु सदैवाहं शुचेरप्यशुचेरपि। पूजां गृह्णामि शूद्रस्य पुनः स्वचारवर्तिनः।" इति शिववचनात्। "नैवाप्रपूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गं महेश्वरि। सूतके मृतके चापि न त्याज्यं शिवपूजनम्"।। इति लिङ्गपुराणवचनाच्चेति। शूद्रस्येत्युपलक्षणं विप्रस्येत्युक्तत्वादिति एतत्तान्त्रिकपूजायामेव,

पञ्चयज्ञादौ तु नाधिकारः। (अग्निहोत्रादिकर्मार्थं शुद्धिस्तात्कालिकी स्मृता। पञ्चयज्ञान् प्रकुर्वीत ह्यशुचिः पुनरेव सः''॥ इति गौतमवचनात्)। तात्कालिकी, यावता तत्कर्म सिद्ध्यति। नैमित्तिककाम्यपूजायां तु तान्त्रिकाणामपि नाधिकारः॥

सूतके मृतके चापि वर्तमाने तु नारद। कामतः पूजिते मन्त्रे शान्तिकादौ च कुत्रचित्॥ १॥
जपेत् पञ्चशतं मन्त्री सिंहमन्त्रस्य भक्तितः। शतत्रयमकामाच्च प्रायश्चित्तविधौ जपेत्॥ २॥

इति नारदपञ्चरात्रवचनात्। अकामात् नैमित्तिकार्चने। वायवीयसंहितायाम्—

एकभक्तविधानेन बिलम्बत्वरितं विंना। उक्तसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये॥ १॥
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया। जपेदेकमनाः प्रातःकालान्मध्यन्दिनावधि॥ २॥
यत्संख्यया समारब्धं तत्कर्तव्यं दिने दिने। यदि न्यूनाधिकं कुर्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः॥ ३॥

इति। अत्र ''दिवा चैव जपं कुर्यात्पौरश्चरणिको विधिः''। इति फेत्कारिणीतन्त्रेऽपि दिवापदाभिधानात्तु। ''जपं रात्रौ च वर्जयेत्'' इति कुम्भसम्भवेन रजनीजपनिषेधांच्च, देशकालाद्युपद्रवसम्भावनायां चतुर्थमुहूर्तपर्यन्तमपि जप्तव्यम्। पञ्चममुहूर्तस्य तु—'' राक्षसीनाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु।'' इति मत्स्यपुराणे निन्दितत्वादिति। अत्र मुहूर्तशब्देन भाग उच्यते, दिवसस्य पञ्चमभागे निषिद्ध इत्यर्थः। तथा पिङ्गलामते—

नध्यातो नार्चितो मन्त्रः सुसिद्धोऽपि प्रसीदति। नाजप्तः सिद्धिदानेच्छुर्नाहुतः फलदो भवेत्॥ १॥
पूजा ध्यानं जपं होमं तस्मात् कर्मचतुष्टयम्। प्रत्यहं साधकः कुर्यात् स्वयं चेत् सिद्धिमिच्छति॥२॥
जपस्यान्तः शिवं ध्यायेद् ध्यानस्यान्तः पुनर्जपेत्। जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिद्ध्यति मन्त्रवित्॥३॥

नारदः—

संख्यापूर्तौ निजैर्द्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः। यथोक्तकुण्डे जुहुयाद्यथाविधि समाहितः॥ १॥
अथवा प्रत्यहं जप्त्वा पूर्वस्मिंस्तावदेव हि। (जुहुयात्तद्दशांशतः)

इति। वैशम्पायनः—

नैरन्तर्य्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत्। दिवसातिक्रमात् पुंसो मन्त्रसिद्धिर्भवेत् नहि॥ १॥
यावत्संख्यं जपेद्धि पूर्वस्मिंस्तावदेव तु। दिनान्तरेऽपि प्रजपेदन्यथा सिद्धिरोधकृत्॥ २॥

गौतमः—

ध्यानार्चनजपानां च प्राणायामास्त्रयस्त्रयः। आद्यन्तयोर्विधीयन्ते नासिकापुटचारिणः॥ १॥

इति। उत्तरतन्त्रे—

जपादौ पूजयेन्माला तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः। निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा॥ १॥
इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम्।..॥ २॥
ओं मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥ १॥
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षिणे करे। बीजं गणपतेः पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम्॥ २॥
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन च।..॥ ३॥

इति। मण्डलस्यान्तर्निधाय वा सव्यहस्ते गतां वाभ्युक्ष्य पूजयेदिति सम्बन्धः। तथा—

जपं समारभेत् पश्चात् पूर्ववद्ध्यानमास्थितः। हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयन् मनसा शिवाम्॥ १॥
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथावर्णादिकं भवेत्। मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा पीतवर्णं हिरण्मयम्॥२॥
महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः। आज्ञाचक्रे ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः॥ ३॥
देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः। तत्त्वस्वरूपमेकं तद्यच्चक्रं प्रतिलम्भयेत्॥ ४॥
षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः। लम्भयेन्मूलमन्त्रेण चादिषोडशचक्रकम्॥ ५॥
आदिषोडशचक्रस्थां साधकानन्ददायिनीम्। चिन्तयन् साधको देवि जपकर्म समारभेत्॥ ६॥
भ्रुवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते। तत्प्रान्ते त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरङ्गुलम्॥ ७॥
रक्तं च कुलयोगज्ञैराज्ञाचक्रमितीष्यते। कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम्॥ ८॥
सुषुम्नेडापिङ्गलानां षट्कोणं तत्षडङ्गुलम्। तत्षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम्॥९॥
त्रयाणामपि नाडीनां हृदये चैकता भवेत्। तत्स्थानं षोडशारं स्यात् सप्ताङ्गुलप्रमाणतः॥ १०॥
तत्पीतमुक्तं योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम्। ध्येयानामपि[1] मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च॥ ११॥
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति गद्यते।...॥ १२॥

इति। तस्मात् प्रणवोच्चारात्। तदुक्तं तत्रैव—

निःसेतु च यथा तोयं क्षणान् निम्नं प्रसर्पति। मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम्॥ १॥
तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयः। पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्म समारभेत्॥ २॥

समारभेयुरित्यर्थः। छान्दसत्वादेकवचनम्। "मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः। चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसंज्ञकः। स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते"॥ अत्र शिवामित्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवतामित्यर्थः। सर्वपूजासु सङ्गतमिति स्वयमभिधानात्। तथा—

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्दक्षिणे करे। मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वा तु तर्जनीम्॥ १॥
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभावतः। स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम्[2]॥ २॥
प्रत्येकं बीजमादाय अङ्कादूर्ध्वेन भैरव। प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठौ न चालयेत्॥ ३॥
मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्न हि परस्परम्। पूर्वं जपप्रयुक्तेन चाङ्गुष्ठाग्रेण भैरव॥ ४॥
पूर्वबीजं जपन्यस्तु परबीजं तु संस्पृशेत्। अङ्गुष्ठेन भवेत्तस्य निष्फलः सः जपः सदा॥ ५॥
मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना। देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद्वामेन न स्पृशेत्॥ ६॥

इति। अङ्कादूर्ध्वेनाङ्गुष्ठाग्रेणेत्यर्थः। मालाबीजं तत्सम्बन्धिमणिः। शैवागमे—

तर्जन्या न स्पृशेत् सूत्रं कम्पयेन्न विधूनयेत्। न स्पृशेद्वामहस्तेन करभ्रष्टं न कारयेत्॥ १॥
अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठेनान्यमक्षं न संस्पृशेत्। जपकाले सदा विद्वान् मेरुं नैव विलङ्घयेत्॥ २॥
परिवर्तनकाले च सङ्घट्टं नैव कारयेत्। कलिः खटखटाशब्दे दोलमाने चलन्मतिः॥ ३॥

---

१. 'मध' ख. पाठः। २. 'चालनम्' ग. पाठः।

पतिते[1] चैव विद्वेष: स्फुटिते व्याधिसम्भव:। हस्तच्युते महाविघ्न: सूत्रच्छेदे विनश्यति।। ४।।

पतिते[2] मध्यमाया अङ्गुल्यन्तरगते। स्फुटिते मणौ। सूत्रच्छेदे गुणच्छेदेऽपीत्यर्थ:। तथा–

कासे क्षुते च जृम्भायामेकमावर्तनं त्यजेत्। प्रमादात् तर्जनीस्पर्शो भवेदावर्तनं त्यजेत्।। १।।

जपे निषिद्धसंस्पर्शे क्षालयित्वा पुनर्जपेत्।...।। २।।

इति। आवर्तनं मन्त्रस्य। योगिनीतन्त्रे–

सर्वास्वपि च मालासु मेरु: पार्श्वे विधीयते। न स्पृशेत्तं कदाचित्तु स्पृष्टे ह्यावर्तनं पुन:।। १।।

न स्पृशेत् तर्जन्येति, सर्वत्र तर्जनीस्पर्शस्यैव निषेधाद् अन्याङ्गुलीनामस्पर्शासम्भवाद्वेति। तथा महाकपिलपञ्चरात्रे–

एकचित्त: प्रशान्तात्माप्यक्षसूत्रकर: शुचि:। भुग्नग्रीवोन्नत: शान्त: कण्डून्मीलनवर्जित:।। १।।

सविसर्गं समात्रं च सबिन्दुं साक्षरं स्फुटम्। न द्रुतं नापि विश्रान्तं क्रमान्मन्त्रं जपेत् सुधी:।। २।।

इति। नारदपञ्चरात्रे–

अक्षरादक्षरं यावत् सर्वदोषविवर्जितम्। विलम्बितं च नातीव तथा स्पष्टपदोद्भवम्।। १।।

चित्तविक्षेपरहितमत्युत्कृष्टधियान्वितम्। एवं कृत्वा जपं विप्र विनिवेद्यश्च यागवत्।। २।।

इति। योगिनीतन्त्रे–

अष्टोत्तरशतं वापि जपान्ते शिरसि क्षिपेत्। त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम।। १।।

शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा। पुष्करं शिखिबीजस्थं सूक्ष्मसूक्ष्मान्वितं भवेत्।। २।।

आकाशशशिसंयुक्तं सिद्ध्यै हृदयसंयुतम्। एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो मालाया: परिकीर्तित:।। ३।।

ग्रहणे स्थापने चैव पूजने विनियोजयेत्।...।। ४।।

पुष्करं हकार:, शिखी रेफ:, सूक्ष्मसूक्ष्म: ईकार:, आकाशशशिभ्यां बिन्द्वर्धचन्द्राभ्यां युतं, सिद्ध्यै स्वरूपं, हृदयं नम:।

फेत्कारिणीतन्त्रे–"यथाशक्ति जपं कृत्वा प्राणायामत्रयं चरेत्" इति। नारदपञ्चरात्रे–

जपं तदनु कुर्वीत यथाशक्त्यायुतादिकम्। निवेदयेद् विभोस्तच्च वाक्कर्ममनसान्वितम्।। १।।

पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन् मन्त्रमूर्ते जनार्दन। गृहाणेमं जपं नाथ मम दीनस्य शाश्वत।। २।।

इत्युक्त्वार्घ्योदकं पुष्पे कृत्वा दक्षिणपाणिगम्। अग्रतो निक्षिपेद् विष्णोर्मूलमन्त्रेण नारद।। ३।।

मन्त्रात्मा भगवान् विष्णुरचिरात् सिद्धिदो भवेत्।

इति। शिवादावाह सोमशम्भु:–

मानसोपांशुवाष्पाणां(च्यानां)कुर्यादिकतमं जपम्। मूलस्याष्टशतं जप्त्वा न द्रुतं न विलम्बितम्।।१।।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिता।।२।।

भोगी श्लोकं पठित्वामुं दक्षहस्तेन शम्भवे। मूलमन्त्रार्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत्।। ३।।

इति। नारदपञ्चरात्रे–

सम्पूज्याथ जपं कुर्याद् यावद्वै प्रहरद्वयम्। तदूर्ध्वे पूर्ववत् स्नात्वा विशेषण विधानवित्।। १।।

---

१. 'चलिते' ख. पाठ:। २. 'चलिते' ख. पाठ:।

न्यासावसानमखिलं कर्म कुर्यात् पुरोदितम्। पूजाग्निहोमपर्यन्तं ततश्च जपमारभेत्।। २।।
यावद्दिनावसानं तु भूयः स्नात्वा ततो द्विजः। उपास्य पूर्ववत् सन्ध्यां देवं सम्पूजयेत् पुनः।। ३।।
विसृज्य भोजनं कुर्यात् सततं तारकोदये।..।। ४।।

सन्ध्यामुपास्य देवं पूर्ववत् पूजयेदिति सम्बन्धः।। अथातो वर्ज्यावर्ज्यानि[1] त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

भिक्षाशी वा हविष्याशी शाकमूलफलाशनः। पयोव्रती वा नियतो जपेदेकाग्रमानसः।। १।।

इति। भिक्षास्वरूपमाह कुम्भसम्भवः—

वैदिकाचारयुक्तानां शुचीनां श्रीमतां सताम्। सत्कुलस्थानजातानां भिक्षाशी वाग्रजन्मनाम्।। १।।

इति। नारदः—

चरुमूलफलक्षीरदधिभिक्षान्नसक्तवः। एतत्सप्तविधं प्रोक्तं पवित्रं व्रतभोजनम्।। १।।

इति। कपिलः—

यावो यवागूः शाकं च पयो भैक्षं हविष्यकम्। पूर्वं पूर्वं प्रशस्तं स्यादशनं मन्त्रसाधने।। १।।

इति। हविरुक्तं कुम्भसम्भवेन—

सितैकविधिहैमन्तं मुन्यन्नं स्वीयसंभृतम्[2]। अशूद्रावहतं पद्भ्यामनुत्तोल्यहतं च यत्।। १।।
दधि क्षीरं घृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्जितम्। तिलाश्चैव सिता मुद्गाः कन्दः केमुकवर्जितः।। २।।
नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा। आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी।। ३।।
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधः। अवैष्णवमलभ्यं चाप्यप्रशस्तं व्रतान्तरे।। ४।।
त्याज्यमेवात्र तत्सर्वं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः। लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतनः।। ५।।

मुन्यन्नं नीवारः। शातातपः—

हैमन्तिकं सिता स्विन्नं शालि[3]मुद्गास्तिला यवाः। कलायकङ्गुनीवारा वास्तूकं हिलमोचका।। १।।
षष्टिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत्। कन्दं सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिणी।। २।।
पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रे हरीतकी। पिप्पली जीरकं चैव नागरङ्गकतिन्तिणी।। ३।।
कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्। अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते।। ४।।

मूलकं हविरपि वैष्णवानां निषिद्धम्। तदुक्तं विष्णुयामले—

यत्र मांसं तथा मद्यं तथा वृन्ताकमूलके। निवेदयेन्नैव तत्र हरेरैकान्तिकी रतिः।। १।।

इति।। अथ वर्ज्यानि। तत्र कुम्भसम्भवः—

लवणं च पलं चैव क्षारं क्षौद्रं रसान्तरम्। माषमुद्गमसूराद्यान् कोद्रवांश्चणकानपि।। १।।

क्षारं लवणमिति सम्बन्धः। मुद्गाः सिताः। उत्तरतन्त्रे—

"स्विन्नं च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम्। माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि।। १।।
ताम्बूलं च द्विभुक्तं च दुस्संवादं प्रमत्तताम्।...।। २।।

---

१. 'भोज्यानि' ख. पाठः। २. 'संभवम्' ख. पाठः। ३. 'धान्यं' ख. पाठः।

वर्जयेत्'' इति। ब्रह्मयामले—

निश्चयोत्साहधैर्याच्च तत्त्वज्ञानस्य दर्शनात्। अल्पाशनादसङ्गाच्च षड्भिर्मन्त्रः प्रसिद्ध्यति ॥ १॥
प्रयासाद् बहुभक्ष्याच्च प्रजल्पान्नियमाग्रहात्। नीचसङ्गाच्च लौल्याच्च षड्भिर्मन्त्रो न सिद्ध्यति॥२॥
अशङ्कितमनाश्चैव शिवशक्तिमयत्वतः। देवीमन्त्रमयं साक्षाद् ध्यायेदात्मानमात्मनि ॥ ३॥
मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः। न सिद्ध्यति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि॥ ४॥
पर्युषं चारनालं च कोद्रवान्नं मसूरिकम्। कांस्यपात्रं च तैलं च मन्त्रवीर्यहराणि षट्॥ ५॥
वीर्यविज्ञानयोर्हन्ता ज्ञानहर्ता च पर्युषः। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मन्त्री पर्युषितं त्यजेत्॥ ६॥
आरनालं चान्यमग्नं मन्त्री दृष्ट्वा परित्यजेत्। फललोपो भवेन्नूनं मन्त्रीवीर्यं हरेद् ध्रुवम्॥ ७॥
तेन कारणभावेन मन्त्री क्षारांश्च वर्जयेत्। पित्तलं मृत्युदं नूनं क्षुद्रधान्यं च कोद्रवम्॥ ८॥
कोद्रवान्नं परित्याज्यं सर्वथा जपकर्मणि। मसूरी मानहन्त्री च परित्याज्याथ सर्वदा॥ ९॥
कांस्यपात्रमशुद्धं च तच्छप्तं विष्णुना पुरा। मन्त्रवीर्यं हरत्याशु यद्यपि स्यान्महेश्वरः॥ १०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कांस्यं त्याज्यं तु साधकैः। तिलतैलं मन्त्रपूतं पावनं देवदुर्लभम्॥ ११॥
मर्दयित्वा प्रयत्नेन स्नानं कार्यं हि सर्वदा। वर्जयेज्जपवेलायां भोज्यं नैव सदा बुधैः॥ १२॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं मन्त्रिणा तत्कदाचन।..॥ १३॥

इति॥ अथ भोजनपर्यायस्तत्र कुम्भसम्भवः—

उपस्तीर्याभिघायैतत् संस्कृत्य प्रोक्षणादिभिः। पाचयेद्वैदिकैर्मन्त्रैः पुनर्मूलेन मन्त्रवित्॥ १॥

वैदिकैः प्रोक्षणादिभिः पाचयेदिति सम्बन्धः। मूलेन मन्त्रयेदिति शेषः। तथा सोमशम्भुः—''हृदा सम्भोजयेन्मन्त्री पूतैराचामयेज्जलैः। हृदा हृदयमन्त्रेण, जलं च मूलेनाभिमन्त्रितं पिबेदिति। पलाशपत्रेण मध्यपत्रवर्जितेन कृतपत्रावल्यामेव भुञ्जीतेति वदन्ति, कांस्यभाजननिषेधादयं नियम इति तत्त्वम्॥ अथ शयनं विजयमालिनीतन्त्रे—''अधः शयानः शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः''। इति। नारदपञ्चरात्रे—

भुक्त्वा शयीत शयने सुशुद्धे च सुशीतले। अर्धरात्रे समुत्थाय पादशौचं चरेद् द्विजः॥ १॥
आचम्य देवं संस्मृत्य शीघ्रं सम्पूज्य पूर्ववत्। जपं कुर्याद्यथाशक्ति अर्पयेच्च[1] तथेश्वरि॥ २॥

इति। तथा वैशम्पायनः—

शयनं कुशशय्यायां विन्यसेच्छुचिवस्त्रधृत्। तद्वासः क्षालयेन्नित्यमन्यथा विघ्नमावहेत्॥ १॥

इति। तथा वायवीयसंहितायाम्—

अहतास्तरणास्तीर्णे सदर्भशयने शुचिः। मन्त्रिते च शिवं ध्यायन् प्राक्शिरस्को निशि स्वपेत्।१॥

इति। मन्त्रिते स्वेष्टमन्त्रेण। शिवमित्युपलक्षणम्॥ कापिलपञ्चरात्रे—

गुरुपादार्चनं कृत्वा उपवासी जितेन्द्रियः। दर्भशय्यां गतो रात्रौ दृष्ट्वा स्वप्नं निवेदयेत्॥ १॥

इति। योगिनीतन्त्रे—

---

१. 'अर्चयेत्' ग. पाठः।

यज्जाग्रतो, दूरमुदेति दैवमावृत्य मन्त्रान् प्रयतस्त्रिरेतान्।
लघ्वेकभुग् दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्।। १।।

मन्त्रानिति बहुवचनेन सकलं सूक्तं गृह्यते। तथा—

भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम स्वप्नस्य शाश्वत।। १।।
एवं सुप्त: कुशास्तीर्णे तत: प्रयतमानस:। निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाशुभम्।। २।।

इति। पिङ्गलामते—

तारो हिलिद्वयं शूलपाणये द्विठ ईरित:। स्वप्नमाणवमन्त्रोऽयं शम्भुना परिकीर्तित:।। १।।
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नम:।। २।।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्य्येष्वशेषत:। क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।। ३।।

इति। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

ॐ हृत्[1]सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नम:।। १।।
स्वप्नमाणवमन्त्रोऽयं कथितो नारदादिभि:।..।। २।।

इति।। अथ शुभसूचकस्वप्नास्तत्र योगिनीतन्त्रे—

त्रिविधं दर्शनं तस्य यथार्थमयथार्थकम्। अपावकं यत्स्वस्थानामख्यातानां हि दर्शनम्।। १।।
यथार्थं तदयथार्थमस्वस्थानां विकारजम्। अपावकं मानसं च यथार्थफलमुच्यते ।। २।।

एषां स्वरूपमाह—यदिति दर्शनं देवादीनां, विकारजं पित्रादीनां[2], मानसं मनोविकारजं।। आगमसिद्धान्ते—

आद्ये वर्षे वत्सरार्धे द्वितीये यामे पाको वर्षपादात् तृतीये।
मासे पाक: शर्वरीतुर्ययामे सद्य: पाको यो विसर्गेषु दृष्ट:।। १।।

आद्ये यामे दृष्टस्य स्वप्नस्य वर्षे वर्षमात्रे पाक: फलम्। एवमग्रेऽपि। विसर्गे निशान्ते। तथा "ज्व(द्व)रेऽधमा मध्यमा स्याद्दृष्टेनुत्तमोत्तमे"। न विद्यते उत्तमो यस्या: सा सिद्धिरुत्तमे स्वप्ने इत्यर्थ:।। तानेवाह तत्रैव—

स्वप्ने पश्यति वै देवं निजेष्टं सर्वतोमुखम्। गुरुं प्रसादसुमुखं निर्मलं चन्द्रमण्डलम्।। १।।
गङ्गां गां भारतीं भानुं लिङ्गिनं लिङ्गमैश्वरम्। प्रसन्नं तत्र जानीयात् सिद्धिं स्वप्ननिदर्शने।। २।।

प्रसन्नं निजेष्टदेवमत एव सिद्धिमपि।। नारदपञ्चरात्रे—

क्षितिलाभ: क्षतजाब्धितरणं चाग्निपूजनम्। होमश्च ज्वलिते वह्नौ सङ्ग्रामविजयस्तथा।। १।।
हंसकोकमयूराणां रथारोहणमेव च।...।। २।।

कोकश्चाक्रवाक:। कपिलपञ्चरात्रे—

कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम्। कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फलिनं[3] द्रुमम्।। १।।
पर्वतं च हयं मेध्यमाममासं सुरासवम्। एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात्।। २।।

इति।। श्रुतिरपि—

---

१. 'नम:' क. पाठ:। २. 'पित्तादीनां' ख. पाठ:। ३. 'फणिनं' क.ग. पाठ:।

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात् तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने।। १।।

इति।। भैरवीतन्त्रे—

नदीसमुद्रतरणमाकाशगमनं तथा। भास्करोदयनं चैव प्रज्वलन्तं हुताशनम्।। १।।

"ग्रहनक्षत्रताराणां चन्द्रमण्डलदर्शनम्।" नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि। तारा अन्यानीति।

हर्म्यस्यारोहणं चैव प्रासादशिखरेऽपि वा। नागाश्ववृषभेन्द्राणां तरुशैलाग्ररोहणम् ।। २।।

विमानगमनं चैव सिद्धमन्त्रस्य दर्शनम्। लाभः सिद्धतरोश्चैव देवीनां चैव दर्शनम्।। ३।।

एवमादनि संदृष्ट्वा नरः सिद्धिमवाप्नुयात्। स्वप्ने तु मदिरापानमाममांसस्य भक्षणम्।। ४।।

क्रिमिविष्टानुलेपं च रुधिरेणाभिषेचनम्। भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ।। ५।।

सिंहासनं रथं यानं ध्वजं राज्याभिषेचनम्। रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने दृष्ट्वा प्रसिद्ध्यति।। ६।।

इति। नारदपञ्चरात्रे—

गुरुर्देवो द्विजः कन्या गोगजाश्वाश्च केसरी। दर्पणं शङ्खभीर्य्यौ च तन्त्रीवाद्यं च रोचनम्।। १।।

ताम्बूलभक्षणं चैव तथा दध्यभिव(न)न्दनम्। सिद्धान्नमाममांसं च मद्यस्त्रीमदिरासवाः।। २।।

छत्रं यानं सितं वस्त्रं तथान्यश्वेतचन्दनम्। माल्यमुक्ताफले हारः पूर्णः समुदितः शशी।। ३।।

प्रचण्डकिरणः खस्थो निम्नगाथ महोदधिः। प्रफुल्लपादपः शाली रोचना कुङ्कुमं मधु।। ४।।

लाजाः सिद्धार्थकाबीजं नवभाण्डं च पायसम्। उपपन्नोऽप्यथाचार्यो गायत्री वरसङ्गता।। ५।।

मनःप्रीतिकराश्चान्ये लोके शंसापदं गताः। सर्वे स्वप्नाः शुभाः प्रोक्ताः सिद्धिमोक्षफलप्रदाः।। ६।।

इति। अथाशुभसूचकाः। नारदः—

अतोऽन्ये विपरीतास्तु मनसः खेदाराश्च ये। गर्हिता लोकविद्विष्टाः स्वप्नास्ते ह्यशुभावहाः।। १।।

अत उक्तशुभसूचकात्। कपिलपञ्चरात्रे—

चण्डालं कलभं काकं गर्तं शून्यममङ्गलम्। तैलाभ्यक्तं नरं नग्नं शुष्कवृक्षं सकण्ठकम्।। १।।

प्रासादमतलं दृष्ट्वा नरो रोगमवाप्नुयात्।..।। २।।

कलभं बालमुष्ट्रम्। तत्र प्रायश्चित्तमाह कपिलः— "दृष्ट्वा दुःस्वप्नकं चैव होमात् सिद्धिमवाप्नुयात्"।। तथा पिङ्गलामते—"शुभे शुभं भवेत्तस्य जुहुयादशुभे शतम्। अस्त्रेणेति क्रमाद्विद्वान्"। इति नारदपञ्चरात्रे—

दृष्ट्वा समाचरेद्धोमं दन्तकाष्ठोदितं मुने। केवलेनाथवाज्येन सिंहमन्त्रेण शान्तये।। १।।

दन्तकाष्ठप्रकरणे तावदाह स्वयमेव—

शतं सहस्रं साष्टं वा यथाशक्त्याथवा द्विजः। अस्त्रसम्पुटितेनैषां नाम्ना स्वाहान्वितेन च।। १।।

दोषाञ्जहि जहीत्येवं पदं नामावसानगम्।..।। २।।

अस्त्रसिंहमन्त्रयोर्विकल्पः। एषां दोषनिदानानाम्।। अथ स्वप्ननिवेदनं तत्रैव—

शिष्यस्तु शुचिराचान्तः पुष्पहस्तो गुरूत्तमम्। प्रणम्य शिरसा हृष्टस्तस्मै स्वप्नं निवेदयेत्।। १।।

स्वप्ने वाक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम्। अकस्माद्यदि जायेत नाख्यातव्यं गुरोर्विना।। २।।

मन्त्रप्रसादजनितं लिङ्गं च न गुरोर्विना। प्रकाशनीयं विप्रेन्द्र कस्यचित् सिद्धिमिच्छता।। ३।।
प्रकाशयति यो मोहादौत्सुक्यान्मन्त्रजं सुखम्। निकटस्थाश्च तास्तस्य सिद्धयो यान्ति दूरतः।। ४।।
आविर्भवन्ति दुःखानि शोकाश्च विविधा अपि।..।। ५।।

इति। वक्रतुण्डकल्पे–"चित्तप्रसादो मनसश्च तुष्टिरल्पाशिता स्पन्दपराङ्मुखत्वम्" इति। तथा भैरवीतन्त्रे–

ज्योतिः पश्यति सर्वत्र शरीरं वा प्रकाशयुक्। निजं शरीरमथवा देवतामयमेव हि।। १।।

इति। नारदपञ्चरात्रे–

मन्त्राराधनसक्तस्य प्रथमं वत्सरत्रयम्। जायन्ते बहवो विघ्ना नियमस्थस्य[1] नारद।। १।।
नोद्वेगं साधको याति कर्मणा मनसा यदि। तृतीयवत्सरादूर्ध्वं राजानश्च महीभृतः ।। २।।
प्रार्थयन्तेऽनुरोधेन गर्विता अपि मानिनः। प्रसादः क्रियातां नाथ ममोद्धरणकारणम्।। ३।।
प्रज्वलन्तं च पश्यन्ति तेजसा विभवेन च। अतस्ते मुनिशार्दूल निष्ठुरं वक्तुमक्षमाः।। ४।।
नवमाद्वत्सरादूर्ध्वं स्वयं सिद्ध्यति मन्त्रराट्। नानाश्चर्याणि हृदये मन्त्रसिद्धिमयानि वै।। ५।।
अत्यानन्दप्रदान्याशु प्रत्यक्षेऽपि बहिस्तथा। जडधीस्तु क्षणं विप्र क्षणमस्ति प्रहर्षितः।। ६।।
क्षणं दुन्दुभिनिर्घोषं शृणोति त्वन्तरिक्षतः। क्षणं च मधुरं वाद्यं नानागीतसमन्वितम्।। ७।।
आजिघ्रति क्षणं गन्धान् कर्पूरमृगनाभिजान्। उत्पतन्तं क्षणं वापि पश्यत्यात्मानमात्मना।। ८।।
चन्द्रार्ककिरणाकीर्णं क्षणमालोकयेन्नभः। गजगोवृषनादांश्च शृणुयाच्च क्षणं द्विजः।। ९।।
निर्भराम्बुदसङ्क्षोभं क्षणमाकर्षयत्यपि। तारकाणि विचित्राणि योगिनो नभसि स्थितान्।।१०।।
पश्यत्युद्ग्राहयतश्च क्षणं मन्त्रं व्रती सदा। क्षणं किलिकिलारावं हंसबर्हिरवं तथा।। ११।।
क्षणं मेघोदयं पश्येत् क्षणं रात्रिं दिने सति। रात्रौ च दिवसालोकं ससूर्यं क्षणमीक्षते।। १२।।
बलेन परिपूर्णश्च[2] तेजसा भास्करोपमः। पूर्णेन्दुसदृशः कान्त्या गमने विहगोपमः।। १३।।
रयेण युक्तः प्रोच्येत(शौचेन)गाम्भीर्येण सुखेन च। स्वल्पाशनेनाकृशता बहुनापि न चीयते।।१४।।
विण्मूत्रयोरथाल्पत्वं भवेन्निद्राजयस्तथा। जपध्यानगतो मन्त्री न खेदमधिगच्छति ।। १५।।
विना भोजनपानाभ्यां पक्षमासादिकं मुने। इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्महाविस्मयकारिभिः ।। १६।।
प्रवृत्तैः सम्प्रबोद्धव्यं प्रसन्नो मन्त्रराडिति।..।। १७।।

इति। तथा बौधायनः– "सिद्धेस्तु त्रीणि चिह्नानि दाता भोक्ता अयाचकः"। दाता भोक्ताप्ययाचक इत्यर्थः। प्रपञ्चसारे– (१० प० ४३ श्लोक)

ततोऽस्य प्रत्ययास्त्वेवं जायन्ते जपतो मनुम्। अधिष्ठितं निश्यदीपं निस्तमिस्रं गृहं भवेत्।। १।।
अर्काभस्तेजसासौ भवति नलिनजा सन्ततं किङ्करी स्या–
द्रोगा नश्यन्ति दृष्ट्वा द्रुतमथ धनधान्याकुलं तत्समीपम्।

---

१. 'नियमस्तस्य' क. पाठः। २. 'र्ण' ग. पाठः।

देवा नित्यं नमोऽस्मै विदधति फणिनो नैव दंशन्ति, पुत्राः
पौत्रा मित्राणि ऋद्धास्तनुविपदि परं धाम विष्णोः स भूयात्।। (१०प०४७ श्लो.)

इति। एवं कृतेऽपि न सिद्ध्यति चेत्तदा द्वयं त्रयं वा पुरश्चरणं कुर्यात्। तदुक्तं फेत्कारिणीतन्त्रे—

कर्मणा प्रबलेनैव प्रतिबन्धो विरोधिना। यदि सिद्धिं न लभते द्विस्त्रिर्वा पुनराचरेत्।। १।।

इति। अथ होमपर्यायो विचार्यते। तत्र वायवीयसंहितायाम्—

अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा। वेद्यामथायसे पात्रे मृण्मये वा नवे शुभे।१।।

इति। ज्ञानार्णवे—

नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत्। गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ सुस्थलरूपकम्।। १।।
हस्तमात्रं तु तत्कुर्याद्वालुकाभिः सुशोभनम्। अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः।। २।।

इति। क्रियासारे—

समोऽष्टदिक्षु प्राक्प्रह्वः प्रागुदक्प्रवणोऽपि वा। उदक्प्रह्वः प्रदेशो वा स्थण्डिलस्य स्थलं स्मृतम्।१।।

इति। प्रह्वः प्रवणः। तथा च कपिलः— "स्थण्डिलं वालुकाभिर्वा रक्तमृद्रजसाऽपि वा"।। तथा वशिष्ठः— "हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा सङ्क्षिप्ते होमकर्मणि"। अत्र सङ्क्षिप्ते इत्यभिधानात् सहस्रादिसंख्यो होमः स्थण्डिले न कर्तव्यः, इति केचित्। तत्र— "होमं समारभेत् कुण्डे स्थण्डिले वाथ पूजिते। अग्निप्रणयनं कृत्वा ह्याचार्यः सर्ववेदवित्।। तिलहोमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकम्।" इति वायुपुराणवचनात्, "कुण्डे वा स्थण्डिले वाथ तथा होमो विधीयते। अयुतं होमसंख्या च पलाशसमिधस्तथा।।" इति पद्मपुराणवचनाच्च। अत्र होमाशक्तौ तु "जपोऽशक्तस्य सर्वत्र" इति नारायणीयवचनात् जप एव कार्यः। तत्र ब्राह्मणैः पुरश्चरणजपसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः, क्षत्रियैः षड्गुणः, वैश्यैरष्टगुणः। "होमकर्मणि शक्तानां त्रयाणां जपसाम्यता। होमकर्मण्यशक्तानां वेदर्तुवसुसम्मितम्"। इति उत्तरतन्त्रवचनात्। तदशक्तौ[१] तु विप्राणां द्विगुणः, क्षत्रियाणां त्रिगुणः, वैश्यानां चतुर्गुणः, "होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः। इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिर्विधीयते।" इति गौतमवचनात्। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः। "होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्"। इति वशिष्ठवचनात्। एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोः प्राग्वत् षड्गुणाष्टगुणजपो भवति प्रागुक्तवचनात्। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याद्विगुणजपो वा कार्यः। "यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणो जपः। कर्तव्यः साङ्गसिद्ध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः"।। इति कुम्भसम्भवचनात्। तदशक्तेन पुरश्चरणसंख्याचतुर्गुणादिकरणाशक्तेन। एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोस्त्रिगुणचतुर्गुणजपो भवति प्रागुक्तगौतमवचनादेव। द्विजभक्तेतरशूद्राणां तु चतुर्गुणपक्षे दशगुणजपो भवति, द्विगुणपक्षे तु पञ्चगुणजपः इति। द्विजभक्तशूद्राणां तु यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रस्तस्य तद्वर्णविहितजप एवेति। तदुक्तमुत्तरतन्त्रे—

द्विजानां होमविरहे यः प्रोक्तः सूरिभिर्जपः। तद्योषितां स एवोक्तः शूद्रो यं वर्णमाश्रितः।। १।।
तत्स्त्रीणां विहितं जापं कुर्याद्भक्तिपरायणः।...।। २।।

इति। गौतमोऽप्याह—

---

१. 'तदा तत् कर्तुमशक्तौ' ग. पाठः।

होमाभावे द्विजानां तु जपः प्रोक्तः पुरा तु यः। तत्सुभ्रुवां च तद्भृत्य[१]शूद्राणां च स एव हि।१।।

इति। अतः स्त्रीशूद्रैर्होमानधिकाराज्जप एव कार्यः। उत्तरतन्त्रे—

ततो होमदशांशेन जले सम्पूज्य देवताम्। तर्पयामीति मन्त्रान्ते प्रोक्ताद्भिर्मूर्ध्नि तर्पयेत्।। १।।

इति। वैशम्पायनः—

तर्पणस्य दशांशेन नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरन्। अभिषिञ्चेत् स्वमूर्धानं जलैः कुम्भाख्यमुद्रया।। १।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

तदन्ते भोजयेद्विप्रान् सदाचारान् दशांशतः। नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरैः ।। १।।

सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये। विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गत्वमाप्नुयात्।। २।।

एकमङ्गं विहीयेत ततो नेष्टमवाप्नुयात्। अङ्गहीनं भवेद्यद्यत् कर्म नेष्टार्थसाधकम्।। ३।।

न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति मनोरथान्। त एव पूर्णतां यान्ति समस्तानि भवन्ति चेत्।। ४।।

अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत् सर्वकर्मसु। यानि यान्यपि कर्माणि हीयन्ते द्विजभोजनैः।। ५।।

निरर्थकानि तानि स्युर्बीजान्यूषरगानिवत्[२]। गुरुं सन्तोषयेत् पश्चाद्गोहिरण्याम्बरादिभिः।। ६।।

गुरौ तुष्टे हि सन्तुष्टो मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः। इत्थं पुरश्चरणतः प्रसन्ना देवता भवेत्।। ७।।

इति। श्रीकुलार्णवे—

यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छद्मनापि छलेन वा। परेरितं वा गाथां वा सञ्जपेद्यद्यनर्थकृत्।। १।।

पुस्तके लिखितान् मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये। ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्तितम्।। २।।

अनेककोटिमन्त्राश्च चित्तव्याकुलकारणम्। मन्त्रं गुरुमुखात् प्राप्तमेकं स्यात् सर्वसिद्धिदम्।। ३।।

इति।। अथ प्रयोगः— तत्र जपमाला, सा तु द्विविधा मातृकाक्षरमयी मणिमयी चेति। तत्र मणयस्तु— पुत्रजीवशङ्ख-विद्रुमरत्नमुक्ताफलपद्मबीजसुवर्णरजतकुशग्रन्थिरुद्राक्षा इत्यक्षविशेषा। अक्षसंख्या तु सात्त्विकराजसतामसभेदेनाष्टोत्तरशतं, चतुःपञ्चाशत्सप्तविंशतिश्चेति। अथ मालायाः संस्कारकालः— तत्र विष्णोर्द्वादशीपूर्वाह्णः। शक्तेरष्टमी-नवमीचतुर्दशीरात्रिः। गणेशस्य चतुर्थीमध्याह्नः। शिवस्य त्रयोदशी दिवा। सूर्यस्य सप्तमीपूर्वाह्ण इति। अथ मालायाः सूत्राणि—विष्णोः पद्मसूत्रं कार्पाससूत्रं वा, देव्याः पट्टसूत्रं, शिवस्योर्णाभव वाल्कलं वा, सूर्यगणेशयोः कर्पाससूत्रं पट्टसूत्रं वा, कार्पाससूत्रं चेद्ब्राह्मणीकर्तितं स्वसमानवर्णयोषित्कर्तितं वा त्रिगुणं त्रिगुणीकृतं कुर्यात्। अन्येषु सूत्रेषु यथायोग्यमेव कार्यमिति।। अथ संस्कारः— तत्र प्रमाणोक्तमात्रया गोमूत्रगोमयदुग्धदधिघृतकुशजलात्मकं पञ्चगव्यं सम्पाद्य, शक्तिव्यतिरिक्ते पूर्वदिने कृतैकभक्तः साधकः प्रातःकृतनित्यकृत्यः सूत्रं मणींश्च पृथक् पृथक् पञ्चगव्येन जलैश्च प्रक्षाल्य नवसु पिप्पलदलेषु पद्माकाररचितेषु सूत्रं मणींश्च संस्थाप्य, तेषु प्रणवं भुवनेश्वरीबीजं मातृकाक्षराणि च सूत्रे प्रतिबीजं बीजेष्वपि विन्यस्य मणीन् सूत्रं च गन्धादिभिः सम्पूज्य, कुण्डादौ नित्यहोमविधिनाग्निं संस्थाप्य यथाशक्ति सघृतैस्तिलैः केवलघृतैर्वा सद्यादिपञ्चमन्त्रैर्हुत्वा, होमाशक्तौ जपं वा विधाय सूत्रे रुद्राक्षपुत्रजीवपद्माक्षांश्चेत् मुखेन मुखं संयोजयन् यथामुखमन्यमणीनित्यारोप्यैकैकमणिमध्ये गुरूक्तविधिना ब्रह्मग्रन्थिं विधाय गोपुच्छाकारेण ग्रन्थयित्वा सर्वतः स्थूलं सजातीयमेकं मणिमूर्ध्वमुखं सूत्रद्वयमेकीकृत्य मेरुं ग्रन्थयित्वा सम्पन्नां मालां "ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय

१. 'भक्त' ख. पाठः। २. 'अयं' दिव्यपाठ।

वै नमः। भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः।।'' इति मन्त्रेण पञ्चगव्येन शीतलजलेन च प्रक्षाल्य, ''ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः'' इति मन्त्रेण चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमैर्विघृष्य, ''ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः'' इत्यगरूशीरकर्पूरशर्करागुग्गुल-मधुचन्दनघृतैर्धूपयित्वा, ''ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'' इति गन्धचन्दन-कस्तूरीकुङ्कुमकर्पूरैर्लेपयेत्। ततः ''ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्'' इति मन्त्रेण प्रतिबीजं शतं शतमभिमन्त्रयेत् (मेरुं चानेन 'अघोरेभ्योऽथ' इत्यननेनापि शतं शतमभिमन्त्रयेत्। प्रत्येकं तु सकृत्सकृदिति वा,) ततस्तत्र पूर्वोक्तवक्त्रभेदेन यस्य रुद्राक्षस्य या च देवता तामावाह्यावाहनस्थापनसन्निधापनसन्निरोधनसम्मुखीकरणसकलीकरणावगुण्ठनामृतीकरणपरमीकरणानि तत्तन्मुद्रया विधाय प्रागुक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिबीजं पञ्चोपचारैस्तां देवतां स्वेष्टदेवतावत् पूजयित्वेत्थं संस्कृतमालया जपं कुर्यात्। इति जपमालासंस्कारविधिः।।

इत्थं प्रतिष्ठितमालया जपं कुर्वन् यदा तत्सूत्रं जीर्णमिति जानाति, तदैव दृढं सूत्रं ग्रन्थयित्वा तया स्वेष्टमन्त्रमष्टोत्तरशतं प्रायश्चित्तार्थं जपित्वा पश्चात्तया मालया यथापूर्वं जपं कुर्यात्। अयं प्रतिष्ठाप्रकारस्तु रुद्राक्षस्यैव नान्येषाम्। अन्येषां पद्माक्षादीनां तु प्रतिष्ठाविधिः प्रदर्श्यते— तत्र ग्रथितां मालां कुत्रचित्पात्रे संस्थाप्य, तस्यां गणेशसूर्यविष्णुशिवदुर्गाः पृथक्पृथगावाह्य सम्पूज्य ह्रौमिति मन्त्रेण पञ्चगव्ये निक्षिप्य पुनस्तां तस्मादुद्धृत्य स्वर्णपात्रस्थे पिप्पलपत्रस्थे वा धूपवासिते पञ्चामृते निक्षिप्य, पुनस्तामुद्धृत्य शीतलजले निक्षिप्य प्रक्षाल्य चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूर-कुङ्कुमसौगन्धिकपङ्कैरनुलिप्य, तस्यां ह्रौमिति मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, नव ग्रहान् दश दिक्पालांश्च सम्पूज्य सघृतैस्तिलैर्यथाशक्ति स्वेष्टमन्त्रेण हुत्वा गुरवे यथाशक्ति काञ्चनं दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चान्नादिभिः तोषयेदिति।।

अथवा सूत्रं मणींश्च पञ्चगव्ये दिनत्रयं संस्थाप्य, चतुर्थदिने समुद्धृत्यास्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य हृन्मन्त्रेण ग्रन्थयित्वा स्थण्डिले स्वेष्टदेवतापूजामण्डलं विधाय, तत्र स्वेष्टदेवतां सम्पूज्य मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, स्वेष्टदेवताकल्पोक्त-पुरश्चरणहोमद्रव्येण घृतेन वा यथाशक्ति हुत्वा, मण्डलमध्ये मालां संस्थाप्य तस्यामस्त्रमन्त्रं मूलमन्त्रं षडङ्गमन्त्रांश्च विन्यस्य स्वेष्टदेवतारूपां तां विचिन्त्य वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं दत्त्वा, तस्यामिष्टदेवतां सम्पूज्याचार्यं दक्षिणादिभिः परितोष्य प्रणम्य ब्राह्मणांश्चान्नादिभिस्तोषयेदितीत्थं प्रतिष्ठितया मालया नित्यं मन्त्रं जपेत्।।

अथ पुरश्चरणकाले विहितानि—तत्र मनःसंहरणशौचमौनमन्त्रार्थचिन्तनाव्यग्रतानिर्वेदश्रद्धाजपोत्साहक्रोधत्याग-स्ववर्णाश्रमधर्मानुष्ठानपरितुष्टतेन्द्रियनिग्रहब्रह्मचर्यगुरुनति-केवलामलकस्नानमन्त्राभिमन्त्रितजलाभिषेकाः, त्रिषवणं द्विसवनमशक्तौ सकृद्वा स्नानं देवर्षिपितृस्वेष्टदेवतातर्पणं मध्यपत्ररहितपलाशपत्ररचितपत्रावल्यां रात्रौ मितभोजनं गोविप्रबालादिषु कृपा चेति।।

अथ तत्कालनिषिद्धानि—अप्रियानृतभाषणकरञ्जविभीतकार्कस्नुहीच्छायाक्रमण-प्रतिग्रहस्त्रीशूद्रपतितनास्तिको-च्छिष्टसम्भाषणस्नानतर्पणाद्यननुष्ठानबहुवस्त्रैकवस्त्रमलिनवस्त्रधारण-काम्यकर्मासङ्कल्पितस्ववर्णाश्रमाविहितकर्मा-चरणकांस्यभोजन-दिवाभोजनासद्भाषणान्यपूजनकौटिल्यक्षौराभ्यङ्गासाधुसमागमोष्णजलस्नानोन्मर्दनगीतवाद्यादि-श्रवणनृत्यदर्शनाष्टविधमैथुनतत्कथालापक्षुद्रकर्मास्थानस्पर्श-प्राणिहिंसाकञ्चुकोष्णीषधारणसंवृतकराप्रावरणकेश-मोक्षणशिरःप्रावरणचिन्ताक्रोधभ्रमत्वरामनोरथ-शयनोत्थानगमनान्धकारामङ्गलस्थानपादुकाधारणयानशय्याधिरोहण—

पादप्रसारणोत्कटासनक्षुतजृम्भाहिक्काविकलमनस्कानासनप्रौढपादनग्नकुशराहित्यादीनि।।

अथासनानि—तत्र व्याघ्रचर्ममृगाजिनवेत्रनिर्मितकम्बलकुशकटरक्तपटवस्त्रात्मकानि विहितानि।।

अथ निषिद्धासनानि—वंशरचितदारुमयपाषाणतृणवस्त्रपल्लवेष्टकानिर्मितानि केवलभूतलं चेति।।

अथ पुरश्चारणारम्भपूर्वदिनकृत्यम्— तत्र प्रातः स्नात्वा नित्यक्रियां निर्वर्त्य ब्राह्मणान् भोजनादिभिस्तोषयित्वा स्वगुरुमपि वस्त्राभरणधनधान्यादिभिः सन्तोष्य जपस्थाने त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डले "क्षं क्षेत्रपालाय नमः। क्षेत्रपाल इहागच्छ इहागच्छ" इति क्षेत्रपालमावाह्योक्तमन्त्रेण क्षेत्रपालं गन्धादिभिः सम्पूज्य तदग्रे त्रिकोणमण्डले साधारं सान्नव्यञ्जनोदकपूर्णं बलिपात्रं निधाय "एह्येहि विद्वि(दु)षि मुरुमुरु भञ्जय भञ्जय तर्जय तर्जय विघ्नविघ्न महाभैरव क्षेत्रपाल बलिं गृह्णगृह्ण स्वाहा" इति मन्त्रेण बलिं दत्त्वोपवसेत्।।

अथ जपारम्भदिनकृत्यम्— तत्र शुभे मासि चन्द्रतारानुकूले तिथिवारनक्षत्रादिशोधिते सुदिवसे प्रातः स्नात्वा गुरुविप्राज्ञामादाय ब्राह्मणैः स्वस्तिवाचनं कारयित्वा कुशहस्तः "ओं सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः।। ब्राह्म्यं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्"। इति पठित्वा ताम्रपात्रे कुशतिलाक्षतजलान्यादायोदङ्मुखः ओं अद्यामुके मासि अमुकराशिगते सवितरि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे, विशेषक्षेत्रे चेदमुकक्षेत्रे, अमुकशर्म्मा, क्षत्रियश्चेदमुकवर्मा, वैश्यश्चेदमुकगुप्तः, शूद्रश्चेदमुकदासः अमुकमन्त्रसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रस्यैयत्संख्याजपात्मकं पुरश्चरणं करिष्ये, अद्यारभ्यैतावद्दिनैरहं करिष्ये, इति वा सङ्कल्पं विधाय, गुरुगणपतिदुर्गामातृर्नत्वा पूजां समाप्य जपमारभेत। तत्र मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, हृदि देवं ध्यायन् जपमालां वामहस्ते कुत्रचित्पात्रे वा संस्थाप्यार्घ्योदकेन मूलमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य "ओं मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। चतुवर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव"।। इति गन्धपुष्पाक्षतैर्मालां सम्पूज्य "ओं अविघ्नं कुरु माले त्वं" इति मन्त्रेण दक्षिणहस्तेन मालामादाय, स्वशिरसि श्रीगुरुं, कण्ठे पीतवर्णे मूलमन्त्रं, हृदये स्वेष्टदेवतां, गुरुपादयोः स्वात्मानं च ध्यात्वा भ्रूमध्यस्थाज्ञाचक्रे गुरुदैवतमन्त्रात्मनामैक्यं विभाव्य, कण्ठस्थविशुद्धिचक्रे तच्चतुष्टयमेकीभूतं सुषुम्नावर्त्मनानीय तत्र देवतां ध्यात्वा, मूलमन्त्रेण हृदयस्थानाहतचक्रमानीय तत्रापि देवतां ध्यायन् हृदयसमीपे मालामानीय दक्षहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिमध्यपर्वणि संस्थाप्यैकचित्तो भुग्नग्रीवोन्नतगात्रः कण्डून्मीलनरहितः खटखटादिशब्दमकुर्वन् मन्त्रार्थगतचित्तो मालायाः प्रतिबीजं मन्त्रमुच्चरन्, पूर्वबीजजपसमयेऽपरं बीजमस्पृशन् प्रणवोच्चारणपूर्वकं मन्त्रमारभ्य प्रातःकालान्मध्यन्दिनावधि देशाद्युपद्रवसम्भावनायां त्वरया समापनीये वा सार्धप्रहरद्वयावधि जपित्वा, सर्वशेषावृत्त्यन्ते पुनः प्रणवमुच्चार्य जपं समाप्य "त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव। शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वि[र्य]१ च सर्वदा।" इति मन्त्रेण मालां स्वशिरसि निधाय, पुनः प्राणायामत्रयर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधायार्घ्योदकेन प्रागुक्तमन्त्रेण जपं समर्प्य प्रागुक्तमालापूजनमन्त्रेण मालां सम्पूज्य रहसि स्थापयेत्। अत्र प्रणवोच्चारणं तु त्रैवर्णिकानामेव। शूद्रादीनां तु औकारस्त्वाद्यन्तयोः प्रणवत्वेन ग्राह्यः इति। ततो मध्याह्नस्नानादिकं विधाय पुनः पूजां विस्तरतः कृत्वा, प्रतिदिनहोमपक्षे जपदशांशे कल्पोक्तद्रव्यैर्विधिना संस्कृते वह्नौ हुत्वा होमदशांशं तर्पणं तर्पणादशांशं मार्जनं मार्जनदशांशं ब्राह्मणभोजनं च प्रत्यहं कुर्यात्। प्रतिलक्षहोमपक्षे एकलक्षसंख्यं जपं समाप्य तद्दशांशहोमादिकं कृत्वाग्रिमलक्षजपमारभेत्। कल्पोक्तसंख्याजपसमाप्त्यनन्तरहोमपक्षे कल्पोक्तसंख्यं जपं समाप्य पश्चात् तद्दशांशहोमादिकं

१. 'विद्यां' ख. पाठः।

कुर्यात्, इति पक्षत्रयेऽप्येकः पक्षः कार्यः। होमपर्यायस्तु प्रागेव दीक्षाप्रकरणे प्रोक्तः। होमाशक्तौ तु जप एव कार्यः। तत्र ब्राह्मणैः पुरश्चरणसंख्याचतुर्गुणः कार्यः, क्षत्रियैः षड्गुणो, वैश्यैरष्टगुणः कार्यः। अत्राशक्तौ ब्राह्मणैः पुरश्चरण-संख्याद्विगुणो जपः कार्यः, क्षत्रियैस्त्रिगुणो, वैश्यैश्चतुर्गुण इति। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः। एतद्विप्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोः प्राग्वत् षड्गुणाष्टगुणजपो भवति। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याद्विगुणजपो वा कार्यः, एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोस्तु त्रिगुणचतुर्गुणजपो भवति। द्विजभक्तेतरशूद्राणां दशगुणो जपो भवति। चतुर्गुणद्विगुणपक्षे तु पञ्चगुणजप इति। द्विजभक्तशूद्राणां तु यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रस्तद्वर्णविहितजप एव, द्विजस्त्रीणामपि तथैवेति। स्त्रीशूद्राणां होमानधिकारात् जप एव विहितः इति। इत्थं होमं विधाय चन्दनागरुकर्पूरादिवासितैर्जलैर्होमसंख्यादशांशतः प्रागुक्तविधिना जले देवं ध्यात्वा सम्पूज्य सन्तर्प्य स्वात्मानं देवतारूपं ध्यायन्, कुम्भमुद्रया मूलमन्त्रान्ते "आत्मानमभिषिञ्चामि नमः" इति तर्पणसंख्यादशांशतः स्वमूर्ध्नि अभिषिच्याभिषेकसंख्यादशांशसंख्यकान् स्वेष्टदेवताभक्तान् सदाचारान् ब्राह्मणान् प्रातर्निमन्त्र्याहूयाभ्यङ्गादिना स्नापयित्वा वस्त्रगन्धादिभिरलङ्कृत्य, षड्रसैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्भोज्यैः स्वेष्टदेवताबुद्ध्या भोजयित्वा ताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोष्य विसृजेदिति प्रत्यहं लक्षान्ते वा समस्तसंख्यासमाप्तौ वा भक्तिपूर्वकं कुर्यादिति। ततः प्रकृते मध्याह्नपूजानन्तरं वैश्वदेवादिकमाह्निकं विधाय, स्वेष्टदेवतामन्त्रजपयानकीर्तनश्रवणादिना दिनशेषं नीत्वा, शक्तौ सायन्तनस्नानं विधाय देवं सम्पूज्य भुञ्जीत। तत्र भोज्यानि—भैक्षं शुक्लैकविधास्विन्नहैमन्तिकनीवारषष्टिकाकङ्गुयवाः शूद्रानवहता बहुशः पादाभ्यामनुत्तोल्यावहताः, गुडवर्जितमैक्षवं, कृष्णतिलमुद्गकलायाः, केमुकवर्जं कन्दविशेषाः, नारिकेलकदलीफललवलीपनसाम्रामलकार्द्रकहरीतकीवास्तुकालशाकहिलमोचकाः, सैन्धवसामुद्रे लवणेऽनुद्धृतसाराणि गव्यानि, पिप्पलीजीरकनागरङ्गतिन्त्रिणीमूलकानि।।

अथ वर्ज्यानि— गुडकृत्रिमलवणक्षारलवणस्विन्नपर्युषितनिःस्नेहकीटादिदूषितकाञ्जिकगृञ्जनबिल्वकरञ्जलशुन-मृणालकोद्रवमण्डकतैलपक्वमाषमसूरचणकगोधूमदेवधान्यादीनि, अतिभोजनं दिवाभोजनं च।।

अथ भोजनपर्यायः— तत्र स्वेष्टदेवताप्रसादमन्नं मध्यपत्ररहितपलाशपत्रैः कल्पितपंत्रावल्यां संस्थाप्य वैदिकमन्त्रैः संस्कृत्य मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य प्रतिद्रव्यं मूलमन्त्रेण सप्तवारं[1]मभिमन्त्र्य मितं मितं हृन्मन्त्रेणाश्नीयात्, मूलमन्त्रेण द्वात्रिंशद्वारमभिमन्त्रितं जलं च पिबेत्।।

अथ शयनम्— तत्र कुशनिर्मितायां शय्यायां प्रक्षालितायां क्षाराद्भिः प्रक्षालितं वस्त्रमास्तीर्य शय्यां मूलमन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य, "यज्जाग्रत" इति सूक्तस्य शिवसङ्कल्पऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः मनो देवता सूक्तजपे विनियोगः।।

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। १।।
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्ष्यमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। २।।
यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। ३।।

---

१. 'सप्तधा' क. पाठः।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। ४।।
यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। ५।।
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। ६।।

इति मन्त्रांस्त्रिः पठित्वा।

भगवन् देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम स्वप्तस्य शाश्वत।। १।।

इति। "ओं हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा"।

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।। १।।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः। क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।। २।।
नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।। ३।।

इति मन्त्रांश्च सकृज्जपित्वा प्राक्शिरा दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत। तत्र स्वस्थानां[1] प्रथमे प्रहरे दृष्टस्य स्वप्नस्य वर्षेण फलं, द्वितीये षष्ठे मासि, तृतीये मासत्रयेण, चतुर्थे मासेन, निशान्ते सद्यः फलं ज्ञेयमिति।।

अथ सिद्धिसूचकस्वप्नाः— प्रसादसुमुखस्वेष्टदेवतागुरुनिर्मलचन्द्रसूर्यमण्डल-गङ्गागोसरस्वतीसंन्यासिशिव-लिङ्गानां दर्शनं, भूमिलाभः रक्तसमुद्रतरणं युद्धजयो, होमवह्निपूजनं, हंसचक्रवाकमयूरसारसदर्शनं, रथारोहणकन्या-च्छत्रध्वदीपप्रासादगजवृषमाल्यसमुद्रसर्पकुलवृक्षपर्वतपवित्राममांसतुरगसुरासवस्त्रीदर्शनं, नदीतरणाकाशगमनग्रहनक्षत्रदर्शन-हर्म्यप्रासादशिखरगजाश्ववृषभतरुपर्वतशिखररोहणविमानगमनलाभदेवीदर्शनानि, मदिरापानाममांसभक्षणपुरीषानु-लेपनरक्ताभिषेकरत्नाभरणादिदर्शनानि।।

अथाशुभसूचकाः— चण्डालकलभकाकशून्यगर्तामङ्गलद्रव्यतैलाभ्यक्तनरनग्नशुष्कवृक्षकण्टकतरुतलरहितं-प्रासाददर्शनं रोगदम्। तत्र प्रायश्चित्तं नृसिंहमन्त्रं ओं क्ष्रौं जय जय लक्ष्मीनृसिंह दुःस्वप्नसूचितान् दोषान् जहि जहि ओं क्ष्रौं जय जय लक्ष्मीनृसिंह स्वाहा इति पठित्वा दुःस्वप्नसूचितान् दोषान् जहि २ पुनर्नृसिंहमन्त्रं पठित्वा स्वाहा, इत्यष्टोत्तरशतं घृतैर्जुहुयात्। अथवा एवमेवास्त्रमन्त्रेण वा होमः कार्यः। नृसिंहमन्त्रस्त्वेकाक्षरः, स च क्ष्रौमिति। अस्त्रमन्त्रस्तु स्वोपास्यमूलविद्यायाः।।

अथ स्वप्ननिवेदनम्— तत्र गुरुचरणारविन्दयुगलं प्रणम्य पुष्पहस्तः स्वप्नं तस्मै निवेदयेत्। गुरोरन्यत्र न प्रकाशयेत्।।

अथ सिद्धिचिह्नानि— चित्तप्रसादो मनस्तुष्टिः स्वल्पाशननिद्राजयज्योतिर्दर्शनाकस्मादतिहर्षान्तरिक्षस्थदुन्दुभि-शब्दमधुरवाद्यनानागीतश्रवणं, कर्पूरादिसुगन्धिपरिमलाघ्राणं, चन्द्रार्ककिरणाकीर्णाकाशालोकनानि। एवं कृतेऽपि न सिद्ध्यति चेद् द्विस्त्रिर्वा पुनः पुनः कुर्यात्।। अथ मन्त्रसिद्धेरन्यः पर्यायः। तत्र कुलप्रकाशतन्त्रे—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते। ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमपोषितः।। १।।
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रे जले स्थितः। स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः।। २।।

---

१. 'सुप्तानां' क. पाठः।

तावत्कालं जपित्वेत्थं ततो होमादिकं चरेत्।..।। ३।।

इति। अयमर्थः — तत्र सूर्योपरागे पूर्वदिनमुपोषितश्चन्द्रग्रहणे तद्दिन एवोपोषितो ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानं विधायाद्यामुके मासि अमुकराशिगते सूर्येऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकतीर्थे सूर्यग्रहणे चन्द्रग्रहणे वामुकगोत्रोऽमुकशर्म्मेत्यादि अमुकमन्त्र-सिद्धिकामोऽमुकग्रहणतत्समयमारभ्य विमुक्तिपर्यन्तममुकमन्त्रजपमहं करिष्ये, इति सङ्कल्पं कृत्वा विमुक्तिपर्यन्तं जपेत्। ग्रहणकालीनजपदशांशहोमं करिष्ये, इति होमसङ्कल्पः। होमाशक्तौ प्रागुक्तवत् जपः कार्यः।। अपरस्तु मन्त्रसिद्धिपर्यायः। तत्र कुम्भसम्भवः—

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी। देवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतानां चतुष्टयम्।। १।।

दशांशं होमयेत् पश्चात्तर्पयेदभिषेचयेत्। ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः...........................।। २।।

इति। अयमर्थः— तत्राद्येत्याद्यमुकमन्त्रसिद्धिकामः कृष्णाष्टमीमारभ्य तच्चतुर्दशीपर्यन्तममुकमन्त्रस्यायुतचतुष्टयजपमहं करिष्ये, इति सङ्कल्पं विधायायुतचतुष्टयजपं सप्तधा विभज्य चर्तुर्दशोत्तरसप्तशताधिकसहस्रपञ्चकं जपित्वा तद्दशांशहोमादिकं च कुर्यादिति।। अपरः प्रकारस्तु कालोत्तरे—

मन्त्री तु प्रजपेन्मन्त्रं मातृकाक्षरसम्पुटम्। अनुलोमविलोमेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।। १।।

त्रिषष्ट्यक्षरसंयुक्तमातृकाक्षरसम्पुटम्। क्रमोत्क्रमात् शतावृत्त्या मासात् सिद्धो भवेन्मनुः ।। २।।

मातृकाजपमात्रेण मन्त्राणां कोटिकोटयः। सिद्धाः स्युर्नैव सन्देहो यस्मात्सर्वं तदुद्भवम्।। ३।।

इति। अयमर्थः— क्रमोत्क्रमात् मातृकापुटितं मन्त्रं प्रतिदिनं शतं मासमात्रं जपेदिति। अत्राप्यद्येत्यादि० क्रमोत्क्रममातृकापुटितमन्त्रस्य मासमात्रं प्रतिदिनं शतशतसंख्यजपमहं करिष्ये, इति सङ्कल्पं विधाय प्रतिदिनं जपेत्। अत्र शतशब्दो न्यूनसंख्याव्यवच्छेदकः, तेनाष्टोत्तरशतसंख्यं जपेदित्यर्थः। मातृकासम्पुटप्रकारस्तु— अंआंइंईं उंऊंऋंॠं ऌंॡंएंऐं ओंऔंअंअः कंखंगंघंङं चंछंजंझंञं टंठंडंढंणं तंथंदंधंनं पंफंबंभंमं यंरंलंवं शंषंसंहंळंक्षं मूलं क्षंळंहंसंषंशंवंलं-रंयंमंभंबंफंपंनंधंदंथंतंणंढंडंठंटंञंझंजंछंचंङंघंगंखंकंअःअंऔंओंऐंएंॡंऌंॠंऋंऊंउंईंइंआंअं, इति शतवारं मूलमन्त्रं जपेदिति। त्रिषष्ट्यवर्णमातृका तु बह्वृचप्रातिशाख्ये ''त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः, तद्विवेकस्तु— स्वरा एकविंशति, स्पर्शाः पञ्चविंशतिः, यादयोऽष्टौ, यमाश्चत्वारः, अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीयाश्च, एवं त्रिषष्टिवर्णाः।। इति प्रागेवोक्तम् (३ श्वा. ६४ पृ.) एवं त्रिषष्ट्यवर्णमातृकया प्रत्यक्षरबिन्दुयुक्तया प्राग्वत् स्वेष्टमन्त्रं सम्पुटीकृत्य मासमात्रं प्रतिदिनमष्टोत्तरशतं जपेत्। सङ्कल्पोऽपि प्राग्वदेव।। अपरश्च प्रकारः कुलार्णवे—

मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्या पुटीकृतम्। क्रमोत्क्रमात् सहस्रं तु मासात् सिद्धो भवेन्मनुः।। १।।

इति। अयमर्थः— तत्र क्रमोत्क्रमभूतलिप्या पुटीकृत्य मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं मासमात्रं प्रतिदिनं जपेत्। सङ्कल्पस्तु पूर्ववदेव। भूतलिपयस्तु भूतलिपयस्तु— अइउऋऌ, एऐओऔ, हयरवल, ङकखघग, ञचछझज, णटठढड, नतथधद, मपफभब, शषस, एवं द्विचत्वारिंशदक्षराणि।। प्रागेवोक्ताः (३ श्वा० ६४ पृ०)। अष्टोत्तरशतमिति पाठे गुरुजप्तमन्त्रपरं ज्ञेयम्।। प्रकारान्तरं तु वायवीयसंहितायाम्—

त्रिकालं गन्धपुष्पाद्यैर्योऽर्चयेद् देवतां निशि। पुरश्चरणकृत्येन विनैवासौ प्रसीदति।। १।।

इति। अस्यार्थः— अद्येहेत्यादि० अमुकमन्त्रसिद्धिकामो रात्रौ त्रिकालपूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्पं कृत्वा वत्सरमात्रं रात्रौ

प्रतिदिनं त्रिकालं सर्वोपचारैर्देवीं साङ्गावरणां पूजयेत्। एवं षण्मासं त्रिमासं वा मासमात्रं वा पूजयेत्। पुरश्चरणमन्तरेणापि मन्त्रसिद्धिर्भवति इति।। अन्यप्रकारस्तु कादिमते—

यो मन्त्रस्तस्य (मन्त्रस्य) वर्णौषधिविनिर्मिता:। तत्तद्वर्णोक्तसंख्याभिर्गुटिका: मन्त्रसिद्धिदा:।। १।।

तथाभिषेकस्तद्धारणं तत्खादस्तद्विलेपनम्। तत्पूजा च तथा सिद्धिदायकास्तु न संशय:।। २।।

इति। अयमर्थ:— तत्र मन्त्रवर्णौषधिविनिर्मितमन्त्रवर्णसमसंख्यानां गुटिकानां धारणं, तद्भक्षणं, विलेपनं, ताभि: पूजां, तत्क्वाथजलै: स्नानं तद्भस्मधारणं च कुर्यात्। तेन मन्त्रसिद्धिर्भवति। वर्णौषधयस्तु प्रपञ्चसारे—(३ प० ५४ श्लो०)

चन्दनकुचन्दनागरुकर्पूरोशीररोगजलघुसृणा:।
कक्कोलजातिमांसीमुराचोरग्रन्थिरोचनापत्रा:।। १।।
पिप्पलबिल्व-गुहारुण-तृणक[1]-लवङ्गाह्वकुम्भिवन्दिन्य:।
सोडुम्बरकाश्मरिकास्थिराब्जदरपुष्पिकामयूरशिखा:।। २।।
प्लक्षाग्निमन्थसिंहीकुशाह्वदर्भाश्च कृष्णदरपुष्पी।
रोहिणटुण्टुकबृहती-पाटलचित्रातुलस्यपामार्गा:।। ३।।
शतमूलिलताद्विरेफा विष्णुक्रान्ता मुषल्यथाञ्जलिनी।
दूर्वा श्रीदेवीसहे तथैव लक्ष्मीसदाभद्रे।। ४।।
आदीनामिति कथिता वर्णानां क्रमवशादथौ[2]षधय:।
गुटिकाकषायभसितप्रभेदतो निखिलसिद्धिदायिन्य:।। ५।।

इति। अथैतासां नामानि यथा-चन्दनं रक्तचन्दनं अगरु-कर्पूर-उशीर-कुष्ठ-वाल-कुङ्कुम-कंकोल-जातीफल-जटा-मांसी-मुरा-चोर-ग्रन्थि-गोरोचना-पत्रा, पिप्पल-बिल्व-पृश्निपर्णी-चित्रक-लवङ्ग-कत्तृण-कट्फल-वन्दि-उदुम्बर-पाषाणभेद-पद्म-शङ्खपुष्पी-मयूरशिखा-प्लक्ष-अग्निमन्थ-सिंही-कुश-कृष्णशङ्खपुष्पी-रोहिण-स्योनाक-बृहती-पाटल-मूषकपर्णी-तुलसी-अपामार्ग-इन्द्रवल्ली-भृङ्गराज-अपराजिता-तालमूली-कृताञ्जलि-दूर्वा-श्रीदेवी-कुमारी-भारङ्गी-भद्रमुस्ता:, इत्येकपञ्चाशदौषधय: क्रमादकारादिक्षकारान्तैकपञ्चाशद्वर्णानामिति।। अपरप्रकारश्च मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

संस्कृतं पूजितं मन्त्रं दत्त्वा शिष्याय देशिक:। कुर्यादथ तयोरैक्यं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना।। १।।
मन्त्रं विदर्भयित्वा तु नामवर्णैर्यथाक्रमम्। आद्यन्ते सकलं नाम तत: प्रणवमालिखेत्।। २।।
स्वरा: पत्रेषु संलेख्या ध्यायेत् तानमृतात्मकान्। भूर्जे रोचनगन्धाद्यै: पद्ममध्ये सुशोभने।। ३।।
मृदा पवित्रयावेष्ट्य तत्पुन: सिक्थकेन तु। निक्षिपेन्मधुरे तत्तु मृण्मये लघुभाजने।। ४।।
क्षीरपूर्णे नवे कुम्भे तत् क्षिपेल्लघुभाजनम्। धारयेद् देशिक: कुम्भमग्निकुण्डसमीपत:।। ५।।
मन्त्रसाधकयोरैक्यसिद्ध्यर्थं जुहुयात् तत:। मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञ: सहस्रं शतमेव वा।। ६।।

१. 'कत्तृण' ग. पाठ:। २. 'दिहौ' ग. पाठ:।

कुम्भे सम्पातयेच्चैव मधुराणां त्रयं शुभम्। होमं समाप्य तं कुम्भं विनिक्षिप्य जलाशये॥ ७॥
स्वगुरुं ब्राह्मणान् स्वर्णै[1]स्तोषयेद्दक्षिणादिभिः। एतद्यो न विजानाति नासौ साधक उच्यते॥ ८॥
रहस्यं कथितं चैतन्न वदेद्यस्य कस्यचित्। उत्तमाय तु शिष्याय पुत्राय च वदेदिदम्॥ ९॥

इति। अयमर्थः— भूर्जपत्रे गोरोचनागन्धादिभिरष्टदलपद्मं विरच्य तत्कर्णिकायां साधकनामवर्णविदर्भितं मन्त्रमाद्यन्ते सकलं नाम प्रणवं च विलिख्य, पत्रेषु द्वन्द्वशः क्रमेण स्वरान् विलिख्य गुटिकीकृत्य[2], पवित्रमृदा संवेष्ट्य तदपि सिक्थकेन संवेष्ट्य मधुरत्रयपूरिते स्वल्पमृत्पात्रे निक्षिप्य, क्षीरपूर्णे नूतनकुम्भे सयन्त्रगुटिक[3]मृत्पात्रं निक्षिप्य, प्रागुक्त-विधिनाग्निं कुण्डादौ संस्कृत्य तत्समीपे तत्कुम्भं संस्थाप्य, ॐ अद्येत्यादि० अमुकमन्त्रसिद्धिकामो विद्यासाधकयो-रैक्यत्वसिद्ध्यर्थमष्टोत्तरसहस्रं शतं वा मधुरत्रयहोममहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, उपास्यमन्त्रेण सङ्कल्पितसंख्यं प्रत्याहुति कुम्भे सम्पातं स्रुवलग्नं हुतशेषं निक्षिपन् हुत्वा तं कुम्भं जलाशये निक्षिप्य गुरुब्राह्मणादीन् स्वर्णादिभि[4]स्तोषयेदिति। एवं कृतेऽपि न सिद्ध्यति तदा मन्त्रस्य द्रावणादिकं कुर्यात्। तदुक्तं महाहारकृतन्त्रे—

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणे। दाहनं च बुधः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः॥ १॥
द्रावणं वारुणैर्बीजैर्ग्रथनक्रमयोगतः। तन्मन्त्रं यन्त्र आलिख्य शिलाकर्पूरकुङ्कुमैः॥ २॥
उशीररोचनाभ्यां च मन्त्रं सङ्ग्रथितं लिखेत्। क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तं लिखितं क्षिपेत्॥ ३॥
पूजनाज्जपनाद्धोमाद् द्रावितः फलदो भवेत्। द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद्बोधनं तस्य कारयेत्॥ ४॥
सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य तं जपेत्। एवं बुद्धो भवेत् सिद्धो नोचेत्तस्य वशं कुरु॥ ५॥
कुचन्दनं तथा दारु हरिद्रा मदनं शिला। एतैस्तु लिखितो मन्त्रो भूर्जपत्रे सुशोभने॥ ६॥

मदनं कस्तूरी, शिला मनःशिला।

कण्ठे धृतो भवेत् सिद्धो नो चेत् कुर्यात्तु पीडनम्। अधरोत्तररूपेण पदानि परिजप्य वै॥ ७॥
ध्यायीत[5] देवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम्। विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चाङ्घ्रिणा॥ ८॥
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने। पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धश्चेन्नहि पोषयेत्॥ ९॥
बालांतृतीयबीजेन पुटितं मधुदुग्धतः। धारयेल्लिखितं मन्त्रमथवा शोषणं चरेत्॥ १०॥
द्वाभ्यां च वायुबीजाभ्यां लिखेन्मन्त्रं विदर्भितम्। भस्मना धारयेत् कण्ठे नो चेद्दाह्योऽग्निबीजतः॥ ११॥
मन्त्रार्णान् वह्निबीजेन चतुर्दिशि समावृतान्। लिखेत् पालाशतैलेन धारयेत् कण्ठदेशतः॥ १२॥
सिद्धः स्यान्नात्र सन्देहो मन्त्र इत्याह शङ्करः।..॥ १३॥

इति॥ अथैतेषां प्रयोगाः। तत्रादौ द्रावणम्—वमिति वरुणबीजेन ग्रथितं मूलमन्त्रं कर्पूरकुङ्कुमगोरोचनामनःशिलोशीरैः पूजाचक्ररूपयन्त्रमध्ये विलिख्य कस्मिंश्चित्पात्रे दुग्धमधुघृतजलमेकीकृत्य तत्र यन्त्रं निधाय पूजाजपहोमान् कुर्यादिति॥

अथ बोधनम्—तत्तु वाग्भवबीजसम्पुटितमन्त्रजपरूपम्॥

अथ वशीकरणम्— तत्र भूर्जपत्रे रक्तचन्दनदारुहरिद्राकस्तूरीमनःशिलाभिर्मूलमन्त्रमालिख्य कण्ठे धारयेदिति॥

---

१. 'स्वन्नैः' ग. पाठः। २. 'गुलिकीकृत्य' क. पाठः। ३. 'गुलिक' क. पाठः। ४. 'स्वन्नादिभिः' क. पाठः।
५. 'स्तुवीत' ख. पाठः॥

अथ पीडनम्— तत्राधरोत्तरभावेन मन्त्रपदानि प्रजप्य देवतामप्यधरोत्तरभावेन ध्यात्वा अर्कपत्रे अर्कदुग्धेन तं मन्त्रमालिख्य तत्पादेनाक्रम्याधरोत्तरक्रमपठितमन्त्रेण होमं च कुर्यादिति।।

अथ पोषणम्— तत्र बालातृतीयबीजपुटितं मन्त्रं गोदुग्धमधुभ्यां भूर्जादौ विलिख्य धारयेद् इति।।

अथ शोषणम्— तत्र यज्ञभस्मना वायुबीजविदर्भितं मन्त्रं विलिख्य कण्ठे धारयेदिति।।

अथ दाहनम्— पालाशबीजतैलेन वह्निबीजसम्पुटितं मन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य प्रतिवर्णमधश्चोर्ध्वं च वह्निबीजमालिख्य कण्ठे धारयेदिति। विदर्भलक्षणं तु (शारदातिलके—मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत्। विदर्भ एष विज्ञेयः, इति) तन्त्रान्तरे—"एकान्तरं तु ग्रथनं विदर्भो ह्यन्तरीकृतः" इति च।।

एकवीराकल्पे—

कर्माण्येतानि कुर्वीत प्रत्येकं मण्डलावधि। जपहोमादिकाङ्गानां संख्या चाष्टोत्तरं शतम्।। १।।
एवं यदि न सिद्धः स्यात्तदा मन्त्रं जपेत् सुधीः। अश्वत्थपत्रनवके मन्त्रं यन्त्रं च मालिकाम्।। २।।
विधानं पद्धतिं चैव संस्थाप्य सम्प्रपूज्य च। जले निक्षिप्य दीक्षार्थं शीघ्रं गुरुमथाश्रयेत्।। ३।।

इति। एतावत्सर्वं महाविद्याव्यतिरिक्तविषयं, महाविद्यानां तु मोक्षैकप्रधानत्वाद् भोगानामनुपादेयत्वात्, आर्थसमाज (?) इति न्यायाद् भवन्ति चेद्भोगास्तदा भवन्तु नाम, नो चेत्मा भूवन् महाविद्यानां त्यक्तमयोग्यत्वात्।। अथ प्रसङ्गतः सिद्धिलक्षणं तन्त्रान्तरे—

मनोरथामक्लेशः सिद्धेरुत्तमलक्षणम्। मृत्यूनां हरणं तद्वद् देवतादर्शनं तथा।। १।।
प्रयोगाणां तथाक्लेशसिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणम्। परकायप्रवेशश्च पुरप्रवेशनं तथा।। २।।
ऊर्ध्वोत्क्रमणमेवं हि चराचरपुरे गतिः। खेचरीमेलनं चैव तत्कथाश्रवणादिकम्।। ३।।
भूच्छिद्राणि च सम्पश्येत् पातालादिषु सङ्गमः। आकर्षणं सुरस्त्रीणां नागस्त्रीणां तथैव च।। ४।।
पादुका गुटिकास्तद्वदञ्जनं विवरं तथा। अणिमादींश्च सम्प्राप्य केवलं मोक्षमाप्नुयात्।। ५।।
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् प्रधानं सिद्धिलक्षणम्। ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्।। ६।।
नृपाणामङ्गनानां च वशीकरणमुत्तमम्। सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरः सुखी।। ७।।
रोगापहरणं दृष्ट्या विषापहरणं तथा। पाण्डित्यं च कवित्वं च चतुर्विधमयत्नतः।। ८।।
वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता। अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम्।। ९।।
सर्वभूतेष्वनुकम्पा सर्वज्ञादिगुणोदयः। इत्यादिगुणसम्पत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम्।। १०।।
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्। नृपाणामङ्गनानां च वात्सल्यं लोकवश्यता।। ११।।
महैश्वर्यं धनित्वं च पुत्रदारादिसम्पदः। अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मन्त्रिणः प्रथमभूमिकाः।। १२।।
तीर्थे मन्त्रोपदेशश्च श्रद्धा च जपकर्मणि। फलिष्यतीति विश्वासस्तत् सत्सिद्धेस्तु लक्षणम्।। १३।।
निर्बीजा मनवो ये च तेषु बीजानि योजयेत्। कामं वा विष[1]बीजं वा जपतां सिद्धिदो मनुः।।१४।।
स्थानस्था वरदा मन्त्रा ध्यानस्थाश्च फलप्रदाः। स्थानध्यानविहीनानां कोटिजापात् फलं नहि।।१५।।

---

१. 'विस' क. ग. पाठः।

मातृकापुटितं कृत्वा मूलमन्त्रं जपेत् सुधीः। क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तदन्ते केवलं मनुम्॥ १६॥
एवं तु प्रत्यहं जप्यात् यावन्मासं समाप्यते। निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः॥१७॥
गुरुं सन्तोषयेद्भक्त्या भूषणाच्छादनादिभिः। गुरोः सन्तोषमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्॥ १८॥
गुरुमूलमिदं सर्वमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः। गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरेश्वरि[1]॥ १९॥
एतेषां मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि। गुरोराज्ञां विना देवि सिद्धिहानिः प्रजायते॥ २०॥
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन। यस्य देवे च मन्त्रे च गुरौ च त्रिषु निश्चला॥ २१॥
न व्यवच्छिद्यते भक्तिस्तस्य सिद्धिरदूरतः। भावनारहितानां च क्षुद्राणां क्षुद्रचेतसाम्॥ २२॥
चतुर्गुणो जपः प्रोक्तः सिद्धये नान्यथा भवेत्।..॥ २३॥

इत्येकवीराकल्पवचनात् पशुभावानां (वनावतां) पुरश्चरणचतुष्टयान्मन्त्रसिद्धिः। अत एव "चतुर्धानुष्ठितो मन्त्रः" इति पूर्वमुक्तम्। क्षुद्राणां पशूनामित्यर्थः। भावना दिव्यवीरभावना॥ अथ दिव्यपुरश्चरणं तन्त्रान्तरे—

यदि विप्रः कुलश्रेष्ठः कुलद्रव्यपरायणः। तदानेन विधानेन कर्तव्यं कुलसाधनम्॥ १॥
मद्यं मांसं च मत्स्यं च मुद्रां मैथुनमेव च। अन्योन्यं नित्यता ज्ञेया कुलदेव्याः प्रपूजने॥ २॥

इति। कुलश्रेष्ठो दिव्यो वा वीरो वा, अनेन विधानेन वक्ष्यमाणेन विधानेन, विप्राणां पाशवमेवानुकल्पादिविधानमिति विप्रप्रदेन निरस्तम्। कुलार्णवे कुलक्रममुपक्रम्य—

ब्राह्मणैस्तु सदा कार्यं क्षत्रियैस्तु रणागमे। वैश्यैर्धनप्रयोगे च शूद्रैस्तु न[2] कदाचन॥ १॥

इति। "अनुकल्पस्तु विप्राणाम्" इत्यादिवचनानि पशुविप्रपराणि, बाहुल्येन विप्राः पशव एव भवन्तीति। कुलचूडामणौ—

पुरश्चरणकाले च कुलशक्तिं प्रपूजयेत्। दीक्षितां गन्धपुष्पाद्यैर्भक्ष्यैः पायससम्भवैः॥ १॥
आरम्भकाले वनितां स्वयं भक्ष्यान्नतेमनैः। शून्ये गेहे समानीय चार्घ्यादिकं विशोधयेत्॥ २॥
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिं चाभिमुखीं नयेत्। आसनं प्रथमं दद्यात् स्वागतं च वदेत् पुनः॥ ३॥
पाद्यमर्घ्यं च पानीयं मधुपर्कं जलं तथा। स्नापयेद् गन्धपुष्पाद्भिः केशसंस्कारमारभेत्॥ ४॥
धूपयित्वा ततः केशान् कौशेयं च निवेदयेत्। ततः स्थानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकायुगम्॥ ५॥
दत्त्वा तत्र समासीनां नानालङ्कारभूषणैः। भूषयित्वानुलेपं च गन्धं माल्यं निवेदयेत्॥ ६॥
दद्यान्मण्डलमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने। चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भोज्यं च पञ्चभक्षकम्॥ ७॥
नानाविधं पिष्टकं च नानारससमन्वितम्। दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम्॥ ८॥
उपलाखण्डपूर्णं च नानाविधरसायनम्। नारिकेलं कपित्थं च नागरङ्गं सुदर्शनम्॥ ९॥
लिम्पाकं बीजपूरं च दाडिमीफलमुत्तमम्। नानावन्यफलं चैव नानागन्धविलेपनम्॥ १०॥
चन्दनं मृगनाभिं च श्रीखण्डं नवपल्लवम्। टङ्कणं लोध्रकं चैव जलजं वनजं तथा॥ ११॥

१. 'सुरेष्वपि' ग. पाठः। २. 'रैव कदा' क. पाठः।

नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषणम्। आदावन्ते च मध्ये च जपपूर्तौ विशेषतः।। १२।।
न पूजयति चेत् कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते। पूर्वार्जिते फलं नास्ति का कथा परजन्मनि।।१३।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम्। ममापि क्रोधसन्तापशमनं विघ्ननाशनम्।। १४।।
यत्नतः पूजनीयाः स्युः कुला[1]कुलजनाङ्गनाः।..।। १५।।

इति। आदिमध्यावसानविधिस्त्वलाभेऽवधेयः, अत्यन्तालाभेऽपि आद्यन्तयोरावश्यकविधिः, आरम्भकाले चेति जपपूर्तौ विशेषत इति चोक्तेः।।

।। इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे षोडशः श्वासः।। १६।।



१. 'फुलात्' ग. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

सप्तदशः श्वासः



अथ रहस्यपुरश्चरणम्। तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—

अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्।। १।।
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः कानने वने।। २।।
तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानतः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः।। ३।।

इति।

अथावन्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शवमानीय तद्द्वारि तेनैव परिखन्य च ।। ४।।
तद्दिनात् तद्दिनं यावत् तावदष्टोत्तरं शतम्। स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा।। ५।।

इति।

अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।। ६।।
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।। ७।।

इति। मुण्डमालातन्त्रे—

अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः।। १।।
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम्। जपेदेकोऽपि विजने केवलं तिमिरालये।। २।।
अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत्। कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णाष्टमी भवेत्।। ३।।
सहस्रसंख्ये जप्ते तु पुरश्चरणमिष्यते। कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे।। ४।।
अष्टमीनवमीरात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः। दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्यमांसादिभिर्युतम्।। ५।।
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं नित्यं भक्तिपरायणः। चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी।। ६।।
तावज्जप्ते महेशानि पुरश्चरणमिष्यते। केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धाः भवन्ति हि।। ७।।

इति। स्वतन्त्रतन्त्रे—

रात्रौ मांसं रसं देवीं पूजयित्वा विधानतः। ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो गच्छेत् क्लेदयुतोऽपि च।।१ ।।
जपेल्लक्षं ततो देवीं होमयेज्ज्वलितेऽनले। योनिकुण्डे स्थिरः सर्पिर्मांसमत्स्यायुतं तथा।। २।।
दशांशं तर्पयेन्मत्स्यैर्मांसमिश्रैस्तु साधकः। तर्पणस्य दशांशेन चाभिषिच्य जगन्मयीम्।। ३।।
दशांशं भोजयेत् स्वादु साधकं देवताप्रियम्। आद्यं मांसं च मत्स्यं च चर्वणं च निवेदयेत्।। ४।।
ततस्तु तोषयेद्भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये।...।। ५।।

इति। दिव्यमतस्य श्रेष्ठत्वाल्लक्ष एव जप:, सहस्रमात्रमेव प्रात्यहिकमत एव "जपेल्लक्ष"मिति पूर्वदर्शितवचनैकवाक्यत्वात्। होमादौ च प्रथमादिपदार्थस्य प्राधान्यम्। कुण्डस्य योनिरूपतायां नियम:।।

कुलसम्भवे—

रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुने चापि तत्त्वत:। प्रजप्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये।। १ ।।

इति। तन्त्रान्तरे—

तावत्कालं जपेन्मन्त्रं यावच्छुक्रं न मुञ्चति। मुक्ते शुक्रे च देवेशि पुनर्मन्त्रं जपेत् सुधी:।। १ ।।
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्य: शय्यायां लक्षमानत:।...।। २ ।।

इति च। "शवासनाधिकफलं लिङ्गगेहप्रवेशनम्" इति च। योन्यभिमन्त्रणादिवत् दूतीयागवत्, अत्र च साधनातिरिक्तसमये नग्नस्त्रीदर्शनं निषिद्धमिति पूर्वोक्तम्। "यदि भाग्यवशाद्देवि कुलदृष्टि: प्रजायते। तदैव मानसीं पूजां स्वयं तासां प्रकल्पयेत्"।। इति कुत्रचिदभिहितं विहितमपि। एवं विरोधे व्यवस्थाबलात्कारेण विडम्बना न कर्वव्या इति निषेध:। भावपूर्वकस्तु विधि:।। तथा च तन्त्रान्तरे—

तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमप्रियं तथा। सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत्।। १ ।।
स्त्रियो देवा: स्त्रिय: प्राणा: स्त्रिय एव हि जीवितम्। स्त्रीगणेषु सदा भाव्यमभावे स्वस्त्रियामपि[1] ।।२ ।।
तद्धस्तापचितं[2] पुष्पं तद्धस्तापचितं जलम्। तद्धस्तापचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत्।। ३ ।।

इति। "दिव्यो वाप्यथ वीरो वा रात्रौ लक्षं जपं चरेत्" इत्युक्तेर्दिव्यवीरयो: समानमेव विधानम्। दिव्ये कुलरूपसाधनमावश्यकं "गान्धर्वेण क्रमेणैव पञ्चमी भुवि दुर्लभा" इति वचनात् श्रीविद्याविषये दिव्य एव क्रम:, अन्यत्रोभयोस्तुल्यत्वात्।। अथ वीरपुरश्चरणं कुलरूपं, भावचूडामणौ—

वीरसाधनकार्यं च कर्तव्यं वीरपूरुषै:। दिव्यैरपि च कर्तव्यं पशुभिर्न च पामरै:।। १ ।।
वीरं दिव्यं च यत्कर्म तत् पशोर्नेति निश्चितम्।.......................................।। २ ।।

इति। अत्र दिव्यैरपीत्यनेन दिव्यानुष्ठेयता च प्रतिपाद्यते। एवं सति दिव्ये वीरकर्म गुप्तं, वीरे दिव्यकर्म गुप्तं, तदपि कादाचित्कम्। दिव्यवीरवेषौ तु प्रकटौ, वस्तुतस्तु सर्वमेव गुप्तं "गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति। प्रकाशनात् सिद्धिहानिर्नात्र कार्या विचारणा"।। इत्यादितन्त्रान्तरवचनात्। "गोपयेन्मातृजारवत्" इति चोक्ते:, वीराणां पुरश्चरणादौ परकीयनारीं दीक्षितां यथाशक्ति पूजयेत्। तदुक्तं कुलचूडामणौ—

पुरश्चरणकाले तु परयोषां प्रपूजयेत्। दीक्षितां वस्त्रभूषाद्यैर्भोज्यै: पायससम्भवै: ।। १ ।।
आरम्भकाले नियतं स्वयं पक्वान्नतेमनम्। दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम्।। २ ।।
उपला[3]खण्डमार्द्रं च नानाविधरसायनम्। नारिकेलं कपित्थं च नागरङ्गं सुदर्शनम्।। ३ ।।
लिम्पाकं बीजपूरं च दाडिमीफलमुत्तमम्। नानावन्यफलं चैव नानागन्धविलेपनम्।। ४ ।।
चन्दनं मृगनाभिं च श्रीखण्डं नवपल्लवम्। टङ्कणं लोध्रकं चैव जलजं वनजं तथा।। ५ ।।
नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषितम्। शून्ये गेहे समानीय चार्घ्योदकविशोधितम्।। ६ ।।
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिं चाभिमुखीं नयेत्। ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा।। ७ ।।

१. 'अन्यथा सिद्धिहानिकृत्' ख. पाठ:। २. 'वचितं' ग. पाठ: एवमग्रेऽपि। ३. 'उपला शर्करायां तु इति विश्व:।

वेश्या नापितकन्या च रजकी नटकी तथा। विशेषवैदग्ध्ययुता: सर्वा एव कुलाङ्गना:।। ८।।
इति। दीक्षिता अष्टौ शक्ती: क्रमेण संस्थाप्यार्घ्यपात्रं स्थापयित्वाऽर्घ्योदकेन ता: प्रोक्ष्य, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्याष्टशक्तिरूपभेदं कृत्वा ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीनां नामभि: कृतसंज्ञका:।

आसनं प्रथमं दत्त्वा स्वागतं च पुन: पुन:। अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं मधुपर्कं जलं तत:।। ९।।
स्नापयेद्गन्धपुष्पादि केशसंस्कारमेव च। धूपयित्वा तत: केशान् कौशेयं च निवेदयेत्।। १०।।
तत: स्थानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकाद्वयम्। दत्त्वा तत्र समानीय नानालङ्कारभूषणै:।। ११।।
धूपयित्वानुलेपेन गन्धं माल्यं निवेदयेत्। तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां समानयेत्।। १२।।

ततस्तां शक्तिं यथाक्रमेण ब्रह्माण्यादिरूपां समावाह्य जीवन्यासादिकं कुर्यात्। यथा पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेणाऽमुष्यस्थाने ब्रह्माण्या: प्राणा इह प्राणा इत्यादिक्रमेण प्राणप्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थ:। एवं माहेश्वर्या इत्यादिकमूहनीयम्। ततो गन्धपुष्पदीपान्नव्यञ्जनादिकं दत्त्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तोत्रं पठेत्। तदुक्तं तत्रैव—

भोज्यं मण्डलमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने। चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भक्ष्यं भोज्यं निवेदयेत्।। १३।।
अदीक्षिता भवेद्या तु तदा मायां निवेदयेत्। तासां सव्येषु कर्णेषु ततस्तोत्रं समाचरेत्।। १४।।
मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। १५।।
माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। १६।।
कौमारि सर्वविद्येशे कुमारक्रीडने परे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। १७।।
विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। १८।।
वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। १९।।
शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। २०।।
चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।२१।।
महालक्ष्मि महोत्साहे क्षोभसन्तापनाशिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।। २२।।
मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते। एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते।। २३।।
एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयत:। विदग्धां वा समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते।। २४।।
कुलीनस्य द्वारदेवा: कथितास्तव पुत्रक। दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद्यदि ।। २५।।
तस्य पूजाफलं वत्स नीयते यक्षराक्षसै:। यदि व्रीडापरा सा तु भोजने तद्गृहाद्बहि:।। २६।।
स्थित: पठेत् स्मरेत् स्तोत्रं यावत् तृप्ति: प्रजायते। आचम्य मुखवासादि ताम्बूलं च निवेदयेत्[१]।।२७।।
ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धं चन्दनपङ्किलम्। विसृज्य प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत्।।२८।।
अन्या यदि न गच्छेत्तु निजकन्यां निजानुजाम्। अग्रजां मातुलानीं वा मातरं तत्सपत्निकाम्।।२९।।
पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशा योषितो यत:[२]। सर्वाभावे ह्येकतरा पूजनीया प्रयत्नत:।। ३०।।
एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञ: पूजार्हस्तत्र भैरव। सर्व एव सुरा: पूज्या: सत्यं ब्रह्मशिवादय:।। ३१।।

---

१. 'प्रदापयेत्' ग. पाठ:। २. 'नता:' क. पाठ:।

एका चेद्युवती तत्र पूजिता चावलोकिता। सर्वा एव परादेव्यः पूजिताः कुलभैरव॥ ३२॥

इति। वीरतन्त्रे—

यः कश्चित् कुरुते वीरसाधनं सुसमाहितः। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नात्र कार्या विचारणा॥ १॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं वीरसाधनम्। निर्भयेणैव शुचिना भूत्वा सर्वार्थसिद्धिदम्॥ २॥
नातः[1]परतरं किञ्चिद्विद्यते शीघ्रसिद्धिदम्। भैरवेण पुरा प्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ ३॥
घटी[2]बन्धेन वस्त्रं वै मूलेन परिधाप्य च। तद्बाह्ये च पुनर्वस्त्रं मूलेनाङ्गविलेपनम्॥ ४॥
धृतोष्णीषश्च मूलेन सिन्दूरेणोर्ध्वपुण्ड्रकम्। इष्टदेवं गुरुं नत्वा यात्रा प्रहरमध्यतः॥ ५॥
कार्या च साधकैः सार्धं हृदि मन्त्रं परामृशन्। अक्षुब्धो भुक्तभोज्यस्तु भुक्त्वा साधनमाचरेत्॥ ६॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि। भौमवारे तमिस्रायां साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥ ७॥
उपचारं समादाय कुलामृतरसादिकम्। निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः॥ ८॥
दिग्वासा विमलो भस्मभूषितो[3] मुक्तकेशकः।.................................॥ ९॥

इति। दिग्वस्त्रत्वं च कुत्रचिद्विहितम्। अन्यत्र च—

भूमिपुत्रसमायुक्ता सामावास्या शुभोदया। भद्रे पुष्करसंयोगे तस्यां वीरवरोत्तमः॥ १॥

इति। रुद्रयामले—

सत्यक्रमे चतुर्वर्णैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः। त्रेतायां पूजयेद् देवीं घृतेन सर्वजातिभिः॥ १॥
मधुभिः सर्ववर्णैश्च पूजयेद् द्वापरे युगे। पूजनीया कलौ देवी केवलैरासवैश्च तैः॥ २॥

इति। युगान्तरेष्वनुकल्पविधिः सर्ववर्णसाधारणः, कलौ प्रधानकल्पोऽपि तादृश एव।

गुडार्द्रकरसेनैव सुरा न ब्राह्मणस्य च। गौडी तु या क्षत्रियेण माध्वी वैश्येन तत्र वै॥ ३॥
कदलीमधुसंमिश्रशालित्वक्केवलैः सुरा[4]। सर्वा शूद्रस्य सम्प्रोक्ता यत्र वा तद्भविर्भवेत्॥ ४॥

इति कुत्रचित्। पूर्ववदेवास्य व्याख्यानं, वस्तुतोऽनुकल्पः प्रधानालाभे सम्भवति, न तु युगवर्णपरतया, गौडीमाध्वीति विशेषः कामनापरत्वेन। अथवा सुरा नेति भगवतीत्याध्याहारस्तेन सुरा न भवति चेदित्यर्थः। गौडीमाध्वीत्यत्र "गुडमधुचे"ति 'अण्' प्रत्ययः। शूद्राणामपि प्रधानालाभे कदल्यादीन्येव सुरा, सुरानुकल्पः। यद्वा तन्त्रेति पदं चितायामित्यर्थं बोधयति, वीरसाधनप्रकरणत्वात्। यत्र चितागमनशवस्पर्शादिकमनवद्यं तत्र प्रधानमनवद्यमिति कानुपपत्तिः। तत् तदा शिरश्चालने, प्रधानानुकल्पोभयविधानात्। गुडार्द्रकरसेनेति कदलीत्यादि च "नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे दद्यात्तथा मधु। दधि दुग्धं तथा ताम्रे गुडमिश्रं तथा दधि॥ गुडार्द्रकमथा वापि पूजनार्थं प्रकल्पयेत्"। इति तत्तदपि[6] तादृशपात्रादिसंयोगेन प्राधानतुल्यतै(तयै)व[7] भवतीति निषेधात् तादवस्थ्यमेव। तस्मात् प्रधानलाभेऽप्यनुकल्पपराण्येतानि वचनानि। अन्यच्च— "कुलागमक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम्" इति सकलतन्त्रस्वरसात्। कुलागमश्च कुलार्णवः। यथा— (प०५)

१. 'नास्या' क. पाठः। २. 'घटी' ग. पाठः। ३. 'भूषणः' क पाठः। ४. 'सदा' क. पाठः। ५. 'स्वार्थे कप्रत्ययः' क. पाठः। ६. 'यत्तदिति' क. पाठः। ७. 'तैव' क. पाठः।

शैवे च वैष्णवे शाक्ते सौरे सुगतदर्शने। बौद्धे पाशुपते सांख्ये मान्त्रे कालामुखे[१] तथा।। १।।
दक्षिणे वामसिद्धान्ते वैदिकादिषु पार्वति। विनालिपिशताभ्यां च पूजन निष्फलं भवेत्।। २।।
कुलद्रव्यैर्विना कुर्याज्जपं पूजां व्रतं तपः। निष्फलं तद्भवेद् देवि भस्मन्येव यथा हुतम्।। ३।।
यथा क्रतुषु विप्राणां सोमपानमदूषितम्। अलिपानं तथा देवि सोमवद्भोगमोक्षदम्।। ४।।

इत्यादि सहस्रशो वचनैर्ज्योतिष्टोमादियागेषु विहितवद् अत्रापि स्मृत्यनुमितवेदविहितत्वात् नाधर्मसाधनं, निषिद्धे तु जायत एवाधर्मः। श्रीधर्माचार्यकृते लघुस्तवे— "विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै"रिति। ज्ञानार्णवे— "वर्णानुक्रमभेदेन वर्णभेदा भवन्ति वै"। अपि च— "द्रवेण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम्"। इति। तथा—

एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकीं न कदाचन। नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे दद्यात्तथा मधु।। ५।।
राजन्यवैश्ययोर्दानं न द्विजस्य कदाचन। एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत्।। ६।।

इति। भैरवीतन्त्रे—

यत्रावश्यं विनिर्दिष्टं मदिरादानपूजनम्। ब्राह्मणस्ताम्रपात्रे तु मधु मद्यं प्रकल्पयेत्।। १।।
ब्राह्मणो मदिरां दत्त्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते। स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा स्वात्महत्यामवाप्नुयात्।। ३।।

इति नानाशास्त्रविचारेण विप्राणामनुकल्पप्रकारेण पूजनम्। "सात्त्विकेनैव भावेन ब्राह्मणस्तर्पयेच्छिवाम्"। इति। श्रीक्रमसंहितायामपि—

आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुरां वापि सुरेश्वरि। वर्णाश्रमोचितं धर्ममविचार्यार्पयन्ति ये।। १।।
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः।..।। २।।

इति। वस्तुतस्तु— "गुडार्द्रकरसेनैव सुरा न ब्राह्मणस्य च"। इति वचनाद् वामागमेऽपि विप्रे नाधिकारः। तथा च श्रुतिः— "नित्यं मद्यं ब्राह्मणो वर्जयेत्" इति नित्यपदं कामतो यत्र कुत्रचित्प्राप्तिवचनम्, तथा अकामतोऽपि नित्यं निषेधवचनं तन्निर्णयनिश्चितार्थं वेदेनैवोक्तत्वात्। ब्राह्मणस्य वामागमेऽपि निषेध एव बोध्यम्। तथा वचनेनाकारादिनाप्यर्थो बोध्यते। "ब्राह्मणस्य सदाऽपेया क्षत्रियस्य रणागमे। वैश्यस्य धनसंयोगे शूद्रस्य न कदाचन"।। इति। महाकालसंहितायाम् "क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः। माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः" इति। सारासारविचारस्त्वपेक्षित एव। तत्र विधिस्तु—

निःशङ्को निर्भयो वीरो निर्लज्जो निष्कुतूहलः। निर्णीतवेदशास्त्रार्थो वरदां वारुणीं पिबेत्।। १।।
तत्कर्म कुर्वतां पुंसां कर्मलोपो भवेद्यदि। तत् कथं तत् प्रकुर्वन्ति सप्तकोटिमुनीश्वराः।। २।।

इति। निषिद्धे निन्दा च—

आवृत्तिं गुरुपङ्क्तिं च वटुकादीनप्रपूज्य च। वीरोऽप्यत्र वृथापानाद् देवताशापमाप्नुयात्।। १।।
अयष्ट्वा भैरवं देवमकृत्वा मन्त्रतर्पणम्। पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।। २।।
अज्ञात्वा कौलिकाचारमयष्ट्वा गुरुपादुकाम्। योऽस्मिन् शास्त्रे प्रवर्तेत तं त्वं पीडयसे ध्रुवम्।।३।।

---

१. 'तथा व्रतमुखे' ख. पाठः।

कौलज्ञाने त्वप्रसिद्धो यो द्रव्यं[1] भोक्तुमिच्छति। स महापातकी देवि सर्वधर्मबहिष्कृतः।। ४।।
समयाचारहीनस्य स्वैरवृत्तेर्दुरात्मनः। न सिद्धयः कुलभ्रंशस्तत् सर्वं नरकाय च।। ५।।
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारतः। स सिद्धिमिह नाप्नोति परत्र च परां गतिम्।। ६।।
स्वेच्छया वर्तमानो यो दीक्षासंस्कारवर्जितः। न तस्य सद्गतिः क्वापि तपस्तीर्थव्रतादिषु।। ७।।
असंस्कृतं पिबन् मद्यं बलात्कारेण मैथुनम्। स्वप्रीत्यै आहृतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत्।। ८।।

इत्यादिवचनानि शतशो विधिनिषेधपराणि। प्रतिप्रसवस्तु—''क्वचिद्यदृच्छया प्राप्तमलिद्रव्यं तु भक्तितः। गृहीत्वा मूलमन्त्रेण गुरुं स्मृत्वा च पादुकाम्।। तत्त्वत्रयेण संयुक्तं गृह्णीयान्मूलमुच्चरन्''। इत्यपि संस्कृतपूजाविशेषद्रव्यपरम्। फलश्रुतिरपि—

सर्वसिद्धिकरी पैष्टी गौडी भोगप्रदायिनी। माध्वी मुक्तिकरी ज्ञेया सुराख्या त्रिविधा प्रिये।। ९।।
विद्याप्रदैक्षवी[2] प्रोक्ता द्राक्षा राज्यप्रदायिनी। तालजा स्तम्भने शस्ता खार्जूरी रिपुनाशिनी।। १०।।
नारिकेलभवा श्रीदा पानसाख्या शुभप्रदा। माधूकाख्या ज्ञानकरी दारिद्र्यरिपुहारिणी।। ११।।
मैरेयाख्या कुलेशानि सर्वपापप्रणाशिनी। क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मद्यं वल्कलसम्भवम् ।। १२।।
यस्यानन्दं निर्विशेषं सामोदं च मनोहरम्। द्रव्यं तदुत्तमं देवि देवताप्रीतिकारकम् ।। १३।।
सुरासन्दर्शनादेव तीर्थकोटिफलं लभेत्। तद्गन्धाघ्राणमात्रेण शतक्रतुफलं लभेत् ।।१४।।
देवि तत्पानतः साक्षाल्लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम्। मांससन्दर्शनादौ तु सुरादर्शनवत् फलम्।। १५।।

इति। तस्मात् कुलार्णवोक्तवचनान्येवादरणीयानीति सङ्गतं प्रतिभातीत्यलं जल्पितेन। नीलतन्त्रे—(प० ११)

देव्युवाच—

महानीलक्रमं देव सूचितं न प्रकाशितम्। कथयस्व महादेव सर्वसिद्धिप्रदं महत्।। १।।

भैरव उवाच

शृणु देवि वारारोहे वीरसाधनमुत्तमम्। सर्वसिद्धिप्रदं साक्षात् सर्वदेवनमस्कृतम्।। २।।
सर्वपापहरं देवि सर्वरोगविनाशनम्। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दिक्पालानां च भामिनि।। ३।।
भैरवाणां च सर्वेषां गन्धर्वाणां च योगिनाम्। स्वतः सिद्धिप्रदं देवि सर्वेषामालयं महत्।। ४।।
नान्यत् सिद्धिप्रदं देवि वीरसाधनवर्जितम्। महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः।। ५।।
महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूतहिते रतः। तेषां कृते महादेवि कथितं नीलसाधनम्।। ६।।
(अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि। कृष्णपक्षे विशेषेण यथाविधि च साधयेत्।। ७।।
भौमवारे तमिस्रायां यामे याते च भामिनि। तदर्धाभ्यन्तरे सम्यक् पूजोपकरणं बलिम्)।। ८।।
सामिषान्नं गुडं छागं सुरां पिष्टकमेव च[3]। नानाफलं च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसाधनम्।। ९।।
चितास्थानं समानीय सुहृद्भिः शस्त्रपाणिभिः। समानगुणसम्पन्नैः साधको वीतभीः स्वयम्।। १०।।
न वीक्षेत चतुर्दिक्षु देवताध्यानतत्परः। भीतश्चेत् साधकस्तत्र चतुर्दिक्षु च साधकाः।। ११।।

१. 'त्वसिद्धो यस्तद् द्रव्यं' ख. पाठः। २. 'देक्षुजा' क. पाठः। ३. 'पायसं' ख. पाठः।

नो चेत् स्वयं केवलोऽसौ भैरवः परिकीर्तितः। प्रक्षालितां चिताभूमिं गत्वा साधकसत्तमः॥ १२॥
प्र(अ)क्षालिता यदि प्रायः कारयेदस्थिसञ्चयम्। अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षणं यागभूमिषु॥ १३॥
गुरुपादरजो ध्यात्वा गणेशं वटुकं तथा। योगिनीर्मातृकाश्चैव वामपादपुरःसरम् ॥ १४॥
ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः। पिशाचा यक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥ १५॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरस्त्रियः। सिद्धिदास्ता भवन्त्वद्य तथा च मम रक्षकाः॥ १६॥
प्रणम्य मनुनानेन पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत्। श्मशानाधिपतिं पश्चाद्भैरवं कालभैरवम् ॥ १७॥
महाकालं यजेद्यत्नात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये। पाद्यादिभिश्च मन्त्रज्ञो बलिं पश्चान्निवेदयेत्॥ १८॥
शवबीजं पुनः पश्चात् श्मशानाधिपते परम्। इममन्ते सामिषान्नं बलिं गृह्ण ततः परम्॥ १९॥
गृह्ण—गृह्णापययुगं विघ्ननिवारणं ततः। कुरु सिद्धिं मे ततोऽन्ते प्रयच्छ स्वाहयान्वितम्॥२०॥
तारादिमनुना देवि प्रथमो बलिरीरितः। मायान्ते भैरवं पश्चाद्भयानक ततः परम् ॥ २१॥
पूर्ववन्मन्त्रमुद्धृत्य दक्षिणे बलिमाहरेत्। हूमन्ते च महाकालात् पश्चात् पूर्ववदुद्धरेत्॥ २२॥
पश्चिमे कालदेवाय प्रणवाद्येन कल्पयेत्। शब्दा(वा)न्ते कालशब्दान्ते भैरवेति पदं ततः॥२३॥
श्मशानाधिप इत्येवं पूर्ववच्चोत्तरे हरेत्। चितामध्ये ततो दद्याद् बलित्रयमनुत्तमम्॥ २४॥
कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने। गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्॥ २५॥
कालिकायै बलिं दत्त्वा भूतनाथाय दापयेत्। शब्दा(वा)न्ते भूतनाथान्ते श्मशानाधिप इत्यपि॥२६॥
प्रणवाद्येन मन्त्रेण दापयेद् बलिमुत्तमम्। हूं सर्वगणनाथान्ते धिप चैव तथा पुनः॥ २७॥
श्मशानमस्तके दत्त्वा पूर्ववच्च समुच्चरेत्[1]। ताराद्येन बलिं दत्त्वा पञ्चगव्येन सुन्दरि॥ २८॥
अस्थिसम्प्रोक्षणं कृत्वा पीठमन्त्रं न्यसेत् ततः। भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनुं न्यसेत्॥ २९॥
पीठमास्तीर्य तस्मिन् वै बद्धवीरासनस्तदा। वीरार्चनेन देवेशि लोष्ठान् दिक्षु परिक्षिपेत्॥ ३०॥
कूर्चबीजद्वयं देवि मायायुग्मं ततः परम्। कालिके घोरदंष्ट्रे च प्रचण्डे चण्डनायिके॥ ३१॥
दानवान् दारयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं ततः। परबीजं(वीरं) महाविघ्नं छेदयेति युगं ततः॥ ३२॥
द्विठान्तो वर्मशस्त्रान्तो वीरार्चनमनुर्मतः। अनेन मन्त्रितांल्लोष्ठान् दशदिक्षु विनिक्षिपेत्॥ ३॥
तन्मध्ये भैरवो देवो न विघ्नैः परिभूयते। यदि प्रमादादेवेशि साधको भयविह्वलः॥ ३४॥
तदा तैस्तैः सुहृद्वर्गैं रक्षितो नाभिभूयते। अर्केन्दुसितवाट्यालतूलनिर्मितवर्तिकम् ॥ ३५॥
प्रदीपं तत्र संस्थाप्य यन्त्रं तत्र प्रपूजयेत्। हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ॥ ३६॥
तदधश्चास्त्रमन्त्रेण निखनेत्[2] कुलदीपकम्। तत्तत्कल्पविधानेन भूतशुद्ध्यादिकं चरेत्॥ ३७॥
(मातृकाक्षरसंयुक्तां विद्यां षोढां न्यसेत्पुनः। क्रमाद्व्युत्क्रमयोगेन ताराषोढा प्रकीर्तिता॥ ३८॥
षोढाविन्यस्तदेहस्तु साक्षाद्विश्वेश्वरो भवेत्)। षोढा वा तारकं वापि विन्यस्य प्रजपेत् ततः॥ ३९॥

---

१. 'द्धरेत्' ख. पाठः। २. 'निक्षिप्य' ख. पाठः।

इति। तन्त्रान्तरे—

जपान्ते जपमध्ये च देहि देहीति भाषते। बलिं दद्यात् तदा देवि नो चेदन्ते भवेद् बलि:।। १।।

बलिस्तु छागादि:। सामिषान्नादि तु बलिपात्राणामर्थे। "चितापश्चिमभागे च उपविश्य जपं चरेत्" इति च क्वापि। "गुर्वापि सतीर्थ्यो वा शिष्यो वा साधकोऽपि वा। स्थाप्यो दक्षिणदिग्भागे भवेच्चोत्तरसाधक:। काण्डप्रक्षेपभूभागे किञ्चिद्दूरे विचक्षण:" इति च। रुद्रयामले—

ततः पञ्चोपचारेण पुरतो देवतां यजेत्। निमील्य चक्षुषी पश्चाद्देवीं ध्यात्वा मनुं जपेत्।। १।।
एकाक्षरीं दिक्सहस्रं त्र्यक्षरीमयुतं जपेत्। ततः परं तु मन्त्रज्ञो गजान्तकसहस्रकम्।। २।।
निशायां वा समारभ्य उदयान्तं समाचरेत्। यद्यसह्यं भयं कर्णे नेत्रे वस्त्रेण बन्धयेत्।। ३।।
ततोऽर्धरात्रपर्यन्तं यदि किञ्चिन्न लक्षयेत्। जयदुर्गाख्यमनुना चार्घ्यं तेनैव सर्षपान्।। ४।।
तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारक:। पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानामभयक्षम:।। ५।।
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारक:। इति क्षिप्त्वा तिलान् देवि चतुर्भागे शिवादित:।। ६।।
पुन: सप्तपदं गत्वा पुनस्तत्रैव संविशेत्। देवं तत्रापि सम्पूज्य प्रजपेन्मनुमुत्तमम्।। ७।।
निर्भय: प्रजपेत् तावद्यावत् सिद्धि: प्रजायते। भयेति (यादि) स्वप्नवज्ज्ञेयं परेऽह्नि शेषमाचरेत्।।८।।

इति। शेषं ब्राह्मणभोजनादिकम्। तिलकी पूर्वद्रव्येण उत्थाय च मनुं जपेत्" इति भयनिवारणं रक्षातिलकं च कुत्रचित्।

कुङ्कुमागरुकस्तूरी रोचना रक्तचन्दनम्। कर्पूरं पद्मरागं च केसरं हरिचन्दनम्।। ९।।
प्रत्येकं साधितं कृत्वा एकत्र साधयेद् बुध:। जिह्वाग्ररुधिरं वीर: श्मशाने च समाहित:।। १०।।
तेनैव गुटिकां कृत्वा भद्रकालिमनुं जपेत्। नीलां नीलपताकां च ललज्जिह्वां करालिकाम्।। ११।।
ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीतभी: स्वयम्। वियदस्त्रान्वितं देवि वामाक्षिचन्द्रभूषितम्।।१२।।
बीजं प्रत्येकवस्तूनां शृणु तासां च पार्वति। मूलमन्त्रं तु मन्त्रज्ञो जपेत् सार्धं शतत्रयम्।। १३।।
जिह्वाग्ररुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनि:स्वने। बलिं भुक्त्वा वरं देहि रुधिरं गहने वने।। १४।।
कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं पुन:। कालिकेति समाख्याता जीवानां हितकाम्यया।।१५।।
कूर्चयुग्मं महादेवि नीलाया: कथितं तव। वियदग्नियुतं देवि बलमिन्द्रसमायुतम्।। १६।।
चन्द्रखण्डसमायुक्तं ततो नीलपदं पुन:। तत: पताके हूंफट् स्यात् पूर्वकूटमनुर्मत:।। १७।।
जयश्रीधरणी देवी पताके वरणस्खले। इति नीलपताकेयं योज्यां वा नीलसाधने।। १८।।
या सा विद्या महातारा सा कालीति प्रकीर्तिता। पद्मरागं केसरं च गन्धद्रव्यं विशेषत:।। १९।।

इति। वियत् हकार:। अस्त्रान्वितं रेफान्वितम्। वामाक्षि ईकार:। चन्द्रोऽनुस्वार:। तेन ह्रीं इति बीजं, अस्त्रं कवचमिति क्रमेण तात्पर्यम्। किंत्वस्त्रं कवचमिति क्रमस्तेन हुंफट्, कूर्चयुग्मं हूंहूं, बल स्वरूपं, इन्द्र ईकार: तेन हरबलीं इति कूटम्। जयो नकार: श्री: ईकार: धरणी लकारस्तेन नील इति। वरणं कवचं तेन हुं, स्खलं अस्त्रं तेन फट्,। "अञ्जनाञ्चितलोचन:" इति च क्वापि। अन्यच्च—

स्वयं वै तत्र भगवान् भैरवो लगुडाङ्कितः। भ्रमतीतस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेन्मनुम्॥ १॥
यदि भाग्यवशाद् देवि लगुडस्तत्र लभ्यते। तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं विश्वम्भरो भवेत्॥ २॥
तत्र नत्वा महादेवं महाकालं च भामिनि। तद्भस्मतिलकं कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत्॥ ३॥

इति। तद्भस्म श्मशानभस्म, तिलकं विभूतिधारणमित्यर्थः॥ प्रयोगस्तु—तत्र प्रथमं विहितभौमामावास्यादिपर्व संलक्ष्य रात्रौ प्रहरार्धे गते अभुक्तो भुक्तभोज्यो वा मूलमन्त्रेण घटीबन्धेन वस्त्रं परिधाय उपरि सर्वाच्छादकवस्त्रान्तरेणाच्छाद्य, धृतोष्णीषो मुक्तकेशो दिगम्बरो वा मूलेन पूर्वसाधिततिलकं कृत्वा, अञ्जनाञ्चितनेत्रो रक्तचन्दनादिनाङ्गं विलिप्य मूलेनैव सिन्दूरेणोर्ध्वपुण्ड्रं कृत्वा, हृदि देवीं मूर्ध्नि गुरुं ध्यात्वा नत्वा, कुलामृतरसमामिषान्नपिष्टकमत्स्यवटुकादिपूजाबलिपात्र-सामग्रीं यथालाभं समादाय वल्यर्थं छागादि गन्धपुष्पाक्षतपञ्चगव्यं, पञ्चामृतादि च गृहीत्वा, खड्गपाणिभिः सुहृद्भिः रक्षकैः[१] कृतरक्षोऽघोरास्त्रादिना बद्धशिखो मूलविद्यां हृदि स्मरन् अप्रक्षालितां सद्यश्चितां प्रक्षालिता प्राचीनचितां वा गच्छेत्। प्रक्षालनपक्षे त्वस्थिसञ्चयं कुर्यात्। ततः काण्डप्रक्षेपमात्रभूम्यन्तरा चतुर्दिक्ष्ववेक्षकान् सुहृद उत्तरसाधकान् खड्गपाणीन् किञ्चिद्दूरतः, एकश्चेद् दक्षिणतस्तमुत्तरसाधकं काण्डान्तरा धृत्वा, पश्चिमतः[२] स्वयं सामान्यार्घ्यं कृत्वा मूलमन्त्रान्तेऽस्त्रमन्त्रेण पञ्चगव्येन यागभूमिं सम्प्रोक्ष्य, गुरुगणेशवटुकयोगिनीर्ब्राह्म्याद्यष्टमातृकाश्च नमस्कृत्य, वामपादमग्रे कृत्वा "ओं ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः। पिशाचा यज्ञसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥ योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरस्त्रियः। सिद्धिदास्ता भवन्त्यवद्य तथा च मम रक्षकाः"॥ इति मन्त्रेण नमस्कुर्वन् पुष्पाञ्जलित्रयं कवलत्रयं च चितामध्ये निक्षिपेत्। ततो बलिपात्राणि सप्त कृत्वा चतुर्दिक्षु चतुष्पात्राणि त्रीणि पात्राणि चितायां पश्चिममध्यपूर्वभागेषु त्रिकोणाकारतया वा संस्थापयेत्। पूर्वदिशि त्रिकोणोपरि श्मशानाधिपतिश्मशानस्तम्भं पाद्यादिभिरभ्यर्च्य "ओंहूं श्मशानाधिपते इमं सामिषान्नं (सामृतं) बलिं गृह्ण २ गृह्णापय २ विघ्ननिवारणं कुरु २ सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा" इति बलिं समर्पयेत्। दुग्धेन पञ्चगव्येन वा सर्वत्र सङ्कल्पः। एवं दक्षिणदिशि भैरवं सम्पूज्य "ओं श्मशानाधिप भैरव भयानक इम"मित्यादि। पश्चिमदिशि महाकालं सम्पूज्य "ओं हूँ श्मशानाधिप कालभैरव इम" मित्यादि। उत्तरदिशि कालभैरवं सम्पूज्य 'ओं हूँ श्मशानाधिप कालभैरव इम' मियादि। एवं चितायां प्रथमं श्मशानकालिकां सम्पूज्य "ओं हूँ श्मशानवासिनि महाभीमे कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने। गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्॥ (ओंह्रीं)कालिकायै स्वाहा"। एवं भूतनाथं सम्पूज्य, "ओं हूँ श्मशानाधिप भूतनाथ इम" मित्यादि। श्मशानमस्तके गणनाथं सम्पूज्य, "ओं हूँ श्मशानाधिप सर्वगणनाथ इम" मित्यादि। ततश्चितापश्चिमभागे दक्षिणभागे वा कियन्त्यस्थीनि एकत्र कृत्वा, ओं ह्रीं आधारशक्तये नमः" इति पञ्चगव्येन प्रोक्षयेत्। भूर्जे वा वटपत्रे वा पञ्चप्रेतपीठासनमन्त्रान् रक्तचन्दनादिना विलिख्य अस्थिषूपरि निधाय, तदुपरि कम्बलाजिनाद्यन्यतममासनमास्तीर्य सम्पूज्य, वीरासनेन तत्रोपविश्य "हूँहूँह्रींह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय २ हन २ परवीर[३] महाविघ्नं छेदय २ स्वाहा हुं फट्" इति वीरार्चनमन्त्रेण दश लोष्ठान्यभिमन्त्र्य दश दिक्षु क्षिपेत्। अर्कतूलकर्पूरश्वेतवाट्यालतूलैर्निर्मितवर्तिकं घृततैलादिकं चाघोरास्त्रमन्त्राभिमन्त्रितं रक्षार्थं दीपं मूलेन प्रज्वालयेत्। तत्र यन्त्रं प्रपूजयेत्। तथा यत्नेन भाव्यं यथा

---

१. 'सुहृदवेक्षकैः' ग. पाठः। २.'मस्थः' क. पाठः। ३. 'बीजं' क. पाठः।

जपसमाप्तिपर्यन्तं ज्वलति। ततस्तत्तत्कल्पोक्तविधिना भूतशुद्ध्यादिषोढान्यासजालं यथोचितं विन्यस्यार्घ्यादिकं संस्कृत्य, चितामध्ये महाचक्रं परिचिन्त्य पीठपूजान्ते देवता संस्थाप्य, यथासम्भवोपचारैः सम्पूज्यावरणपूजादि विधाय च यथोक्तसंख्यया विहितमालया देवताध्यानपूर्वकं जपेत्। एवं जप्ते यदि[1] न किञ्चिल्लक्षयेत् तदा "ऊँ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा" इति जयदुर्गामन्त्रेण देव्यै अर्घ्यं दत्त्वा, "तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः। पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानामभयक्षमः। भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः"॥ इति सर्वत्र तिलान् विकिरेत्। जयदुर्गामन्त्रेण सर्षपान् विकीर्य, उत्थाय सप्त पदानि गत्वा पुनस्तत्रोपविश्य, देवीं सम्पूज्य निर्भयो जपेत्। छागादिबलिविधानं यथोक्तक्रम[2]समये कर्तव्यम्। जपसमाप्तौ वरप्रार्थनां कृत्वा विसर्जनादि कृत्वा, सामग्रीं जले निक्षिप्य स्नात्वा गृहमागच्छेत्। भाग्येन लगुडलाभश्चेत्तदा तमादायागच्छेत्। इति चितासाधनम्॥ अथ शवसाधनं नीलतन्त्रे—

पूर्वोक्तमुपहारादि समादाय तु साधकः। साधयेच्च तथा सिद्धिसाधनस्थानमाश्रयेत्॥ १॥
गुरुध्यानादिकं सर्वं पूर्वोक्तं मनसा चरेत्। वीरार्चनाकृते भूमौ मायामोहो न विद्यते॥ २॥
ये चात्रेत्यादिमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत्। श्मशानाधिपतीनां तु पूर्ववद्बलिमाहरेत्॥३॥
अघोराख्येन मन्त्रेण शिखाबन्धनमाचरेत्। सुदर्शनेनात्मरक्षामुभाभ्यां वा प्रकल्पयेत्॥ ४॥
मायास्फुरद्वयं भूयः प्रस्फुरद्वितयं पुनः। घोरघोरतरस्यान्ते तनुरूपपदं ततः॥ ५॥
चटयुग्मं तदन्ते च प्रचटद्वितयं ततः। कहद्वन्द्वं वमद्वन्द्वं ततो बन्धयुगं पुनः॥ ६॥
घातयद्वितयं वर्म फडन्तः ससुदाहृतः। एकपञ्चाशदर्णोऽयमघोरास्त्रमयो मनुः॥ ७॥
हालाहलं समुद्धृत्य सहस्रारस्वरूपकम्। वर्मास्त्रान्तो महामन्त्रः सुदर्शनस्य कीर्तितः॥ ८॥
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासजालं प्रविन्यसेत्। जयदुर्गाख्यमनुना[3]सर्षपान् दिक्षु निक्षिपेत्॥ ९॥
तिलोऽसीति च मन्त्रेण तिलान् दिक्षु विनिक्षिपेत्। यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोऽमृतम्॥ १०॥
रज्जुबद्धं सर्पदष्टं चाण्डालं चाभिभूतकम्। तरुणं सुन्दरं शूरं बालं नष्टं समुज्ज्वलम्॥ ११॥
पलायनविशून्यं तु सन्मुखे रणवर्तिनम्। स्वेच्छामृतं द्विवर्षं च बद्धस्त्रीगोद्विजं तथा॥ १२॥
अन्नाभावमृतं क्लिष्टं सप्तार्धवर्षकं तथा। एवं चाष्टविधं त्यक्त्वा पूर्वोक्तान्यतमं शवम्॥ १३॥
गृहीत्वा मूलमन्त्रेण पूजास्थानं समानयेत्। चाण्डालं चाभिभूतं तु शीघ्रसिद्धिफलप्रदम्॥ १४॥
प्रणवाद्यस्त्रमन्त्रेण शवस्य प्रोक्षणं चरेत्। प्रणवं कूर्चबीजं च मृतकाय नमोऽस्तु फट्॥ १५॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् स्पर्शपूर्वकम्। रे वीर परमानन्द शिवा[4]नन्द कुलेश्वर॥ १६॥
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्कशङ्कर। वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने॥ १७॥
प्रणम्यानेन मन्त्रेण क्षालयेत् तदन्तरम्। तारं शक्तिर्मृतकाय नमोऽन्ते मन्त्रमुच्चरेत्॥ १८॥
शवस्नपनमन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रेषु देशितः। धूपेन धूपितं कृत्वा गन्धादिनाभिषिच्य (लिप्य) च॥ १९॥
रक्ताक्षो यदि देवेशि भक्षयेत् कुलसाधनम्। गत्वा शवस्य सानिध्यं धारयेत् कटिदेशतः॥ २०॥
यद्युपद्रावयेदस्य दद्यान्निष्ठीवनं शवे। पुनः प्रक्षालितं कृत्वा जपस्थानं समानयेत्॥ २१॥

---

१. 'यदि किञ्चिन्नेक्षते तदा' क. पाठः। २. 'क्तसमये' क. पाठः। ३. 'मन्त्रेण' ग. पाठः। ४. 'सदा' ग. पाठः।

कुशशय्यां परिष्कृत्य तत्र संस्थापयेच्छवम्। एलालवङ्गकर्पूरजातीखदिरसारकैः[1]।। २२।।
ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवं कुर्यादधोमुखम्। स्थापयित्वा तस्य पृष्ठं चन्दनेन विलेपयेत्।। २३।।
बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्त्रं विभाव्य[2] च। मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टंकसमन्वितम्।। २४।।
ततश्चैणेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत्। द्वादशाङ्गुलमानानि यज्ञकाष्ठानि दिक्षु च।। २५।।
संस्थाप्य पूजयेत् तत्र इन्द्रादिदश देवताः। विषमिन्द्राय सङ्लिख्य सुराधिपतये ततः।। २६।।
इदं बलिं गृहणद्वन्द्वं गृहणापययुगं ततः। विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ ठद्वयम्।। २७।।
अनेन मनुना पूर्वे बलिं दद्यात् तु सामिषम्। स्वस्वनामादिकं दत्त्वा पूर्ववद्बलिमाहरेत्।। २८।।
सर्वेषां लोकपालानां ततः साधकसत्तमः। शवाधिष्ठातृदेवेभ्यो बलिं दद्यात् सुरेश्वरि।। २९।।
सुरया सह चतुःषष्टियोगिनीभ्यो बलिं दिशेत्। पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम्।। ३०।।
संस्थाप्यासन[3]मभ्यर्च्य स्वमन्त्रान्ते त्रपां ततः। फडित्यनेन मन्त्रेण तत्राश्वारोहणं विशेत्।। ३१।।
कुशान् पादतले दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य च। दृढं निबद्ध्य जुटिकां कृतसङ्कल्पसाधकः।। ३२।।
शवोपरि समारुह्य प्राणायामं विधाय च। वीरार्चनेन सम्मन्त्र्य दिक्षु लोष्ठानि निक्षिपेत्।। ३३।।
ततो देवीं च सम्पूज्य उपचारैः सुविस्तरैः। शवास्ये विधिवद्देवि देवताप्यायनं चरेत्।। ३४।।
उत्थाय सन्मुखे स्थित्वा जपेद्भक्तिपरायणः। वशे मे भव देवेश ममामुकपदं ततः।। ३५।।
सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रमपदाम्बर। मूलं समुच्चरन् मन्त्री शवपादद्वयं पुनः।। ३६।।
पट्टसूत्रेण बध्नीयात् तदोत्थातुं न शक्नुयात्। भीम भीम महाभाव भव्यलोचन भावुक।। ३७।।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप। इति पादतले तस्य त्रिकोणं चक्रमुल्लिखेत्।। ३८।।
तदोत्थातुं न शक्नोति शवोऽपि निश्चलो भवेत्। उपविश्य पुनस्तस्य बाहू विस्तार्य पार्श्वयोः।।३९।।
हस्तयोः कुशमास्तीर्य पादौ तत्र निधापयेत्। ओष्ठौ तु सम्पुटौ कृत्वा स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः।।४०।।
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनी जपमथाचरेत्। श्मशाने प्रोक्तसंख्याभिर्जपं कुर्यात् कुलेश्वरि।।४१।।
अथवारम्भकालात्तु यावदुदयते रविः। यद्यर्धरात्रपर्यन्तं जप्ते किञ्चिन्न लक्ष्यते।। ४२।।
तदा पूर्ववदर्घ्यादि सप्तपादगतानि च। कृत्वोपविश्य तत्रैव जपं कुर्यादनन्यधीः।। ४३।।
चलाचला[4]द्भयं नास्ति भये जाते वदेत् पुनः। यत्प्रार्थयसि देवेश नरं वा कुञ्जरादिकम्।। ४४।।
दिनान्तरे तु दास्यामि स्वं नाम कथयस्व मे। इत्युक्ते संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत्।। ४५।।
पुनश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः। तदा सत्यवशं कार्यं[5] वरं च प्रार्थयेत् ततः।। ४६।।
यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा प्रयच्छेन्न च। तदा पुनर्जपेद् धीमान् एकाग्रमानसं स्मरन्।। ४७।।
नररूपं विना तत्र देवोऽपि नोपसर्पति। यत्नान्तरेण बोद्धव्यं नरो वा देवयोनयः।। ४८।।
माता वा तत्सुता वापि मातुलानी तथैव च। आगत्य विघ्नं चरते मायया रम्यविग्रहा।। ४९।।

१.'सार्द्रकैः' ख.पाठः। २.'विधाय' ख.पाठः। ३. 'शवं' ख.पाठः। ४. 'सनात्' ख.पाठः। ५.'ततः सत्यं कारयित्वा' ख. पाठः।

उत्तिष्ठ वत्स ते कार्यं सर्वं जातं न संशयः। प्रभातसमयो जातस्त्वत्पिता क्रोशते गृहे॥ ५०॥
प्रायशो मत्सरा लोका राजानो दण्डधारिणः। कदाचित् केनचित् शास्ति तदा किं ते करिष्यति॥ ५१॥
इत्यादिविविधैर्वाक्यैर्न च जापं परित्यजेत्। मृतपितृगणास्तत्र परदेशनिवासिनः॥ ५२॥
प्रयान्ति बान्धवास्तत्र देवरूपधरास्ततः। स्त्रीपुत्रसेवकाश्चैव गृहीत्वानीयते परैः॥ ५३॥
रुदन्ति पुत्रकाः सर्वे भ्रातरोऽनुजशिष्यकाः। निजकान्ताङ्गसंस्पर्शवस्त्रमाभरणादिकम्॥ ५४॥
गृहीत्वानीयते यत्तु पालकैस्तद्भयं त्यजेत्। यदि न क्षुभ्यते तत्र तदा किं वा न लभ्यते॥५५॥
स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान्। ऊरूं(हुंहु)गृह्णेति शब्दं वै त्रिवारान्ते वरं लभेत्॥५६॥
साधुनासाधुना वापि योषित्त्वे[1] वरदायिनी। तदा वीरपतेस्तस्य किं भूतेन न सिध्यति॥ ५७॥
निष्पापपुरुषे चैव कुले चैव सुसंस्कृता। असंस्कृततरा देवि पापयुक्ते न संशयः॥ ५८॥
सन्मुखेऽसन्मुखे वापि संस्कृतं वक्ति चापरम्। सैव देवी न सन्देहः स देवो भैरवः स्वयम्॥ ५९॥
न चेदेवं भवेच्चैव मायाकुटिलविग्रहा। न वरं वरयेत् तत्र न किञ्चिच्च वदेत् ततः॥ ६०॥
संस्कृतं च समाख्याति वक्ति वक्तव्यमीदृशः। न चेत् स्वयं लौकिकोक्त्या वरं ग्राह्यं निराकुलम्॥६१॥
अथवा उत्कटं किञ्चित् लभ्येताप्यात्मनो हितम्। शब्दो वा जायते सम्यक् मृ(ऋ)तं वापि न लभ्यते॥६२॥
सर्वं विचार्य ज्ञातव्यमेवं विघ्नाः प्रकीर्तिताः। देवताकृतयो देवि भैरवाकृतबुद्धयः॥ ६३॥
अवश्यं तत्र भेतव्यं न तत्र प्रत्ययः क्वचित्। भैरवो वटुकाद्याश्च कुलशास्त्रपरायणाः॥ ६४॥
एतच्छास्त्रप्रसङ्गेन कृत्या कुटिलविग्रहा। पुत्रो भूत्वा हरेद्विद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत्॥ ६५॥
तस्मात् तत्त्वपरो वीरो विचारे यत्नमाचरेत्। सत्ये कृते वरं लब्ध्वा सन्त्यजेच्च जपादिकम्॥६६॥
फलं जातमिति ज्ञात्वा जूटिकां मोचयेत् ततः। शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत् पादबन्धनम्॥६७॥
पदचक्रं मार्जयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत्। शवं जले वा गर्ते वा निक्षिप्य स्नानमाचरेत्॥ ६८॥
ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दत्त्वा दिनान्तरे। अग्रिमे दिवसे रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहम्॥६९॥
ते गृह्णन्तु मया दत्तं बलिमन्त्रोऽयमीरितः। अथ यैर्याचितश्चाश्वनरकुञ्जरशूकरान्॥ ७०॥
दत्त्वा पिष्टमयांस्तेन कर्तव्यं समुपोषणम्। यवक्षोदमयं वापि शालिक्षोदमयं च वा॥ ७१॥
चन्द्रहासेन विधिवत् तन्मन्त्रेण च घातयेत्। परेऽह्नि नित्यमाचर्य पञ्चगव्यं पिबेत् ततः॥ ७२॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् तत्र पञ्चविंशतिसंख्यया। पञ्चपञ्चविहीनान् वा क्रमाच्चैव दशावधि॥ ७३॥
ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमे स्थले। यदि न स्याद्द्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत्॥७४॥
तेन चेन्निर्धनत्वं स्यात्तदा देवः प्रकुप्यति। त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं गोपयेत् कुलसाधनम्॥ ७५॥
शय्यायां[2] यदि गच्छेद्वै तदा व्याधिं विनिर्दिशेत्। गीतं श्रुत्वा च बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात्॥७६॥
यदि वक्ति दिने वाक्यं तदा स मूकतां व्रजेत्। पञ्चदशदिनान्ता हि देहे देवस्य संस्थितिः॥७७॥

---

१. 'त्वे' ख. पाठः। २. 'सन्ध्यायां' क. ग. पाठः।

गोब्राह्मणदेवतानां निन्दां कुर्यान्न च क्वचित्। देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः।। ७८।।
प्रातर्नित्यक्रियान्ते तु पञ्चगव्योदकं पिबेत्। ततः स्नायात् तु तीर्थादौ प्राप्ते षोडशवासरे।।७९।।
स्वाहान्तं मूलमुच्चार्य तर्पयामि नमःपदम्। एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवतां[1] तर्पयेज्जलैः ।। ८०।।
स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद् देवस्य तर्पणम्। इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति निश्चितम्।। ८१।।
भुक्त्वैहैव वरान् भोगानन्ते याति हरेः पदम्। असाङ्गं साङ्गमेवापि निष्फलं सफलं च वा।। ८२।।
कृत्वा साधनमेवैतच्छक्तेः प्रियतरो भवेत्। शवाभावे श्मशाने वा कार्या वीरस्य साधना।। ८३।।
ये भावा यस्य वै प्रोक्तास्तैर्भावैर्यदि नार्चयेत्। दशाहक्रमयोगेन भ्रष्टो भवति साधकः।। ८४।।
नोपदिशेद्वीरभावं न पूजां तत्र सन्दिशेत्। कुलान्मन्त्रं गृहीत्वा तु यावत् सिद्धिः प्रजायते।। ८५।।

इति। तन्त्रान्तरे–

सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने। ब्राह्मणं गोमयं कृत्वा साधयेद्वीरसाधनम्।। १।।
मृतासनं विना यस्तु पूजयेत् पार्वतीं शिवाम्। तावत्कालं वसेद् घोरे यावदाभूतसम्प्लवम्।। २।।
महाशवाः प्रशस्ताः स्युर्देवतावीरसाधने। क्षुद्राः प्रयोगकर्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः।। ३।।
एवं नीलक्रमो देवि कथितश्च तवानघे। न कस्यचित् प्रवक्तव्यं मया प्रीत्या तवोदितम्।। ४।।

इति।। प्रयोगस्तु–तत्र पूर्वोक्तपर्व संलक्ष्य यथोक्तसमये पूर्वोक्तलक्षणस्तथा सामग्रीं समादायोत्तरसाधकसहितो विहितस्थानमासाद्य सामान्यार्घ्यं विधाय स्थानशोधनं कृत्वा गुरुगणेशादीन् नमस्कृत्य वीरार्चनमन्त्रं भूमौ लिखेत्। "ये चात्रे"त्यादिना पुष्पाञ्जलित्रयादि विधाय पूर्वोक्तसप्तबलिपात्राणि श्मशानाधिपतिभ्यो निवेद्य "ॐ ह्रींस्फुरस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चटचट प्रचटप्रचट कहकह वमवम बन्धबन्ध घातयघातय हुंफट्, इत्यघोरास्त्रेण शिखां बद्ध्वा "ॐ सहस्रार हुंफट्" इति सुदर्शनास्त्रेणात्मरक्षां कृत्वा स्वस्वकल्पोक्तभूतशुद्ध्यादिन्यासजालं विधाय जयदुर्गामन्त्रेण सर्षपान्, "तिलोऽसी"ति तिलान् विकिरेत्। विहितशवनिकटे गत्वा मूलेन वीक्ष्य अस्त्रमन्त्रेण शवं सम्प्रोक्ष्य "ॐहूंमृतकाय नमोऽस्तुफट्"इति पुष्पाञ्जलित्रयं शवोपरि निक्षिपेत्। "ॐ हूं रे वीर परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर। आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्कशङ्कर। वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने" इति स्पर्शपूर्वकं प्रणम्य "ॐह्रींमृतकाय नमः" इति पञ्चब्रह्ममन्त्रैश्च पञ्चगव्येन सुगन्धिजलेन च संस्नाप्य, धूपेन धूपितं कृत्वा गन्धादिना विलिप्य, कटिदेशे धृत्वा मूलमन्त्रं जपन् जपस्थानमानयेत्। आनीय वा संस्कारमाचरेत्। भूमौ कुशशय्यामास्तीर्य तदुपरि संस्थाप्य एलालवङ्गकर्पूरजातीखदिरसहितं ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवमधोमुखं कुर्यात्। तत्पृष्ठे चन्दनेन बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्राकारतया विलिप्य, तन्मध्ये चतुर्द्वारात्मकभूपुरसहितमष्टदलं विलिख्य, तत्र कम्बलाद्यासनमास्तीर्य, द्वादशाङ्गुलप्रमाणान् यज्ञकाष्ठोद्भवान् दश कीलान् दशदिक्षु निखाय तेष्विन्द्रादिदशदिक्पालान् सम्पूज्य पूर्वोक्तमन्त्रैः सामिषान्नबलिं दद्यात्। "ॐहूंशवाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः, ओंडांडाकिनीभ्यो नमः, ॐह्रींचतुःषष्टिकोटियोगिनीभ्यो नमः" इति बलित्रयं कियद्दूरे दद्यात्। पूजोपहारसामग्रीं समीपे उत्तरसाधकं दूरे स्थापयित्वा, मूलमन्त्रान्ते 'ह्रींफट् शवासनाय नमः' इत्यासनमभ्यर्च्य, मूलमन्त्रं स्मरन्नश्वारोहक्रमेण शवोपरि पूर्वमुखमुपविश्य, स्वपादतले कुशान् दत्त्वा

१. 'देवं वै' ख. पाठः।

शवकेशान् प्रसार्य दृढजूटिकां बद्ध्वा, स्ववामे अर्घ्यादिकं संस्कृत्य कृतसङ्कल्पः प्राणानायम्य वीरार्चनमन्त्रेण दशदिक्षु लोष्ठानि निक्षिपेत्। पूर्वोक्तरक्षादीपं दक्षिणे संस्थाप्य, बद्धजूटिकायां निजदेवतायाश्चक्रं परिचिन्त्य, पीठपूजान्ते देवीमावाह्य सावरणां सर्वोपचारैः सम्पूज्य वटुकादिबलिविधिं च विधाय, उत्थाय सम्मुखे स्थित्वा "वशे मे भव देवेश ममामुकसिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रमपदाम्बर" इति भक्तियुक्तः पठेत्। मूलमन्त्रेण पट्टसूत्रेण शवपादद्वयं बध्नीयात्। "ॐभीमभीम महाभाव[1] भव्यलोचन भाबुक। त्राहि मां देव देवेश शवानामधिपाधिप"।। इति शवपादतले त्रिकोणचक्रं लिखेत्। पुनस्तथैव शवोपर्युपविश्य, पार्श्वद्वये शवबाहू विस्तार्य हस्तयोः कुशमास्तीर्य निजपादद्वयं तत्र निधापयेत्। पुनः प्राणायामादि विधाय निर्भयः सन् देवताध्यानपूर्वकं श्मशानोक्तसंख्यया मौनी स्थिरकायवाङ्मना रहस्यमालया जपेत्। आरम्भादुदयपर्यन्तं वा जपेत्। कुत्रचित् शवस्योत्तानता श्रूयते, तदा हृदयोपर्यासनम्। शवास्ये देवतापूजा जपमध्येऽर्घ्यादिकं पूर्ववत्। अतिभयं चेद्भवति तदा छागादिबलिस्तु आदौ मध्ये समाप्तौ वा। एवमुक्तभयादिकं परिहृत्य सावधानतया जप्त्वा सत्यवचनेन वरं सम्प्रार्थ्य जपं त्यक्त्वा फलं जातमित्यवधार्य, देवतां विसर्जयित्वा शवजूटिकां मोचयित्वा शवं प्रक्षाल्य पादबन्धं विमुच्य पादचक्रं मार्जयित्वा, पूजाद्रव्याणि जले निक्षिप्य, जले गर्ते वा शवं निक्षिप्य स्नात्वा गृहं गच्छेत्। दिनान्तरे पूर्वसङ्कल्पितं बलिं पिष्टमयं रचयित्वा "ॐ अग्रिमे दिवसे रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहम्। ते गृह्णन्तु मया दत्तं नरकुञ्जरशूकरम्" इति खड्गेन पिष्टपुत्तलीं घातयेत्। दिनान्तरे नित्यं कृत्वा पञ्चगव्यं पीत्वा पञ्चविंशतिं विंशतिं पञ्चदश दश वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्। स्वयमपि स्नात्वा भुक्त्वा उत्तमे स्थले निवसेत्। एवं कुलसाधनं त्रिरात्रं षड्रात्रं वा गोपयेत्। पञ्चदशदिवसपर्यन्तं पञ्चगव्यप्राशनं, दिवा मौनं, स्त्रीनृत्यगीतवादित्रबहिर्गमनादिवर्जनं, सत्यभाषणं संयतेन्द्रियता च गोब्राह्मणदेवताभक्तिर्विशेषात्। षोडशदिने तीर्थादौ स्नात्वा सार्धशतत्रयसंख्यया देवतां तर्पयेदिति शवसाधनम्। "या या उग्रतरा देव्यस्तासामेवं विधिर्मतः" इति वचनादुग्रदेवताविषयमेतत्। अनयोर्दिव्यवीरक्रमयोः रहस्यमित्यपि नामान्तरम्।।

अथ सङ्क्षेपपुरश्चरणं तन्त्रान्तरे—

ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः। नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रेऽम्भसि स्थितः।। १ ।।
स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। होमयेत् तद्दशांशेन तद्दशांशेन तर्पयेत्।। २ ।।
अभिषिञ्चेद् दशांशेन दशांशं विप्रभोजनम्।...।। ३ ।।

इति। उपोषितोऽभुक्तः। समुद्रगामिन्यां साक्षात् परम्परया वा। असम्भवे तडागादौ जले स्थित्यसामर्थ्ये तीरे स्थितोऽपि। स्पर्शात् प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासविलम्बितस्पर्शाद् अङ्गवैगुण्येऽपि ग्रहणपुरश्चरणं कर्तव्यमेवमेव महाफलत्वात्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।। १ ।।
सूर्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्कः[2] सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।। २ ।।

इति। अत्र तिथिभेदेन पुरश्चरणभेदः। होमादिकं तु पूर्ववत्। निरातङ्कः शङ्कारहितः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः ।। १ ।।
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम्। एकाकी विजने जप्यात् केवलं वा शिवालये।।२ ।।

---

१. 'भयाभाव' क. पाठः। २. 'तावत्कालं जपेन्मन्त्रं' इति ताराविवृतौ पाठः।

अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत्।..॥ ३॥

इति। चतुर्थ्यादित्वमिति मतभेदेन। कृष्णपक्षनवम्यादि-प्रतिपदादि-षष्ठ्यादिपक्षा अपि कुत्रचिदुक्ताः। वस्तुतः प्रतिपदादिपक्षः साम्प्रदायिकः। रात्रावित्युपलक्षणम्। तावत्सहस्रकं तिथिसहस्रकम्। सहस्रं प्रत्यहमित्येव वा। अल्पाक्षरमन्त्रेषु संख्यावृद्धिक्रमः अन्यत्र सहस्रमेव। तदा तावदिति पादपूरणे। होमादिकं पूर्वोक्तमेव। पशुमतानुकल्पमेतत्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अन्यत्र गुरुमार्गस्य लङ्घनं नैव कारयेत्॥ १॥
अष्टमीसन्धिवेलायामष्टोत्तर(रं)लतागृहम्। प्रविश्य मन्त्री विधिवत्ताः समभ्यर्च्य यत्नतः॥ २॥
पूर्वोक्तकल्पमासाद्य पूजादिकं समाचरेत्। केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम्॥ ३॥
तासां तु पत्रमूले तु उग्रां सम्पूज्य कर्णके[1]। मन्त्रसिद्धिर्भवेत् सद्यो लतादर्शनपूजनात्॥ ४॥

इति। सन्धिवेला च शारदीयैव, पूर्वक्रमादष्टोत्तरं शतमित्यर्थः। अष्टावेव वा उत्तरं तदा श्रेष्ठमित्यर्थः। लतागृहमिति लतासङ्केतः। प्रविश्य सङ्गतीभूय वेष्टितो वा। पूर्वोक्तकल्पं शक्तिपूजाकल्पं, पत्रमूले मुद्रामूले उग्रां देवीं, कर्णके पार्श्वत्रये विद्याभागत्रयं सङ्लिख्येति शेषः। अष्टोत्तरशतजपस्तु प्रत्येकमवधेयः। कामदेवो दिव्यवेशधरः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । आकृष्टायाः कुलागारे भावेन[2] मन्त्रमुत्तमम् ॥ १॥
कर्णाकृष्टिलतागात्रे लिखित्वा मन्त्रमेव च। विधाय तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च॥ २॥
किञ्चिज्जप्त्वा मनुं नीत्वा देवताभावतत्परः। तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुखं पुनः॥३॥
प्रातः स्त्रीभ्यो बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः।...॥ ४॥

इति। आकृष्टया उपभुक्तायाः। कुलागारे मुद्रायां सम्पूर्णविद्याभावना। कर्णत्रये लेखनं भागत्रयस्य। संस्कारं शक्तिसंस्कारम्। निवेद्य सन्तर्प्य, किञ्चिदष्टोत्तरशतं जपः स्पर्शपूर्वकः, स्वयं जप्त्वाष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः।

अथवा विजने रम्ये स्थित्वा शय्यासने रतः। उदयान्तं दिवा जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥ १॥

शय्यासने शक्तिसहिते इति शेषः। दिव्यमतानुकल्पमेतत्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्॥ १॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः कानने वने॥ २॥
तत्र तद्विवरे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः॥ ३॥

इति। कुजे मङ्गले, नरमुण्डं सद्यः कृत्तं यथालाभं वा, शववन्मुण्डेऽपि विहितनिषिद्धता, हस्तार्धमानतो द्वादशाङ्गुलमानतः, कानने वनेऽतिगहने इत्यर्थः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शवमानीय तद्वारे तेनैव परिखन्य तम्॥ १॥
तद्दिनात्तद्दिनं यावत् तावदष्टोत्तरं शतम्। स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा॥ २॥

इति। तद्वारे मङ्गलादिवारे। तेनैव मानेनेत्यर्थः। तद्दिनादारम्भदिनादष्टोत्तरशतं प्रतिदिनं जपेदिति शेषः॥

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः॥ १॥

---

१. 'मस्तके' क. पाठः। २. 'भवने' क. पाठः।

दिग्वासा विमली भस्मभूषणो मुक्तकेशकः। कपालखड्गहस्तश्च जपेन्मातृकया यदि॥ २॥
तदा तस्य महादेवि सर्वसिद्धिः प्रजायते।..॥ ३॥

इति। निशायामर्धरात्रे, मृतहट्टे श्मशाने, उन्मत्तानन्दभैरवः प्रौढोल्लाससहितः, दिग्वासा दिगम्बरः। मातृकया मातृकामालया, जपेदष्टोत्तरशतमित्यर्थः। वीरमतानुकल्पमेतत्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजनं गुरोः॥ १॥
वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च। तत्सुतं तत्सुतां चैव तस्य पत्नीं तथैव च॥ २॥
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।..॥ ३॥

इति। मनुं जप्त्वा सहस्रमित्यर्थः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते। सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रजप्य च॥ १॥
केवलं देवभावेन सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।...॥ २॥

इति। प्रजप्य स्वमन्त्रोक्तसंख्ययेति शेषः। इदं तु गुरोरसान्निध्ये। सर्वमतानुकल्पमेतत्। एतेषु होमादिनियमाभावः। इति सङ्क्षेपपुरश्चरणानि॥

नानातन्त्रविचारेण नानाभावानुमोदनात्। पुरश्चरणरूपेण संसिद्ध्यै यततां नरः॥ १॥

अथ प्रयोगविशेषाः वैष्णवतन्त्रे—

एवं नित्यक्रमं कृत्वा नैमित्तिकमथाचरेत्। कृते नैमित्तिके विप्र नित्यस्य पूर्णता भवेत्॥ १॥
लक्षकृत्वो जपेन्मन्त्रमणिमादिगुणाँल्लभेत्। समुद्रगोदकाहारो जपेल्लक्षं समाहितः॥ २॥
जन्मस्थे भास्करे पद्मैर्होमाद्दशसहस्रकम्। कोटिजन्मोद्भवं पापं नाशमायाति निश्चितम्॥ ३॥
नाशयेत् सर्वपापानि वाक्सिद्धिं चापि विन्दति। पर्वताग्रे यजेद्देवं शाकमूलफलाशनः॥ ४॥
पुण्डरीकवरैर्देवं मासमेकं समर्चयेत्। धर्मार्थकाममोक्षाश्च करस्थाश्च भवन्ति हि॥ ५॥
लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् तस्य पुत्रपौत्रानुयायिनी। श्रीपुष्पैर्जुहुयात् तद्वद्वैशाखे मासि दुग्धपः॥ ६॥
सर्वाशुद्धिक्षयकरः सर्वसिद्धिविवर्धकः। देवाः सर्वे नमस्यन्ति भक्त्या तं पुरुषर्षभम्॥ ७॥
श्रीजलैस्तर्पयेद्देवं मात्स्यण्डीचन्द्रसंयुतैः। अष्टोत्तरशतं कृत्वा पूजान्ते भक्तितत्परः॥ ८॥
मण्डलात् स लभेत् सिद्धिं दुष्करं सुकरं तु वा। यद्यत् कामयते मन्त्री अनायासेन लभ्यते॥९॥
दुग्धबुद्ध्या जलैर्नित्यमष्टोत्तरशतं शतम्। तर्पयन्नखिलान् कामाँल्लभेन्मोक्षं च विन्दति॥ १०॥
कुशपुष्पैः समभ्यर्च्य मासमात्रं निरामयः। यशसे धर्मवृद्ध्यै[1] च ब्रह्मचारिव्रते स्थितः॥ ११॥
हयारिकुसुमैः शुभ्रैर्मण्डलात् ज्ञानवान् भवेत्। तथा रक्ताश्वमारेण अचलां भक्तिमाप्नुयात्॥ १२॥
तथा द्वाभ्यां समभ्यर्च्य भुक्ति मुक्तिं च विन्दति। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां वैश्यानां शेषजन्मनाम्॥१३॥
स्त्रीणां चैव विशेषण नैमित्तिकमिदं भवेत्। एतेषां मासमात्रं तु कृत्वा काम्यानि साधयेत्॥ १४॥

इति। एवं प्रणवपुटितमन्त्रमयुतसंख्यया त्रिरात्रजपेन बृहस्पतिसमः सर्वशास्त्रव्याख्याता भवति। रविवारे अश्वत्थवृक्षमालया

१. 'बुद्ध्यै' क. पाठः।

अष्टोत्तरशतं भूयो भूयो जपेत्। शान्तिरष्टोत्तरशतवर्षजीवनम्। अंशुकैर्मासमात्रपूजया मलिनकृच्छ्रघोरतरपापविमुक्तिः। पट्टसूत्रैः पूजयातुलसम्पत्तिः। विद्रुमपूजया त्रैलोक्यवशीकारः। माणिक्यपूजया सार्वभौमत्वं, पद्मरागेण पूजया राज्यत्वं, गारुत्मतैः पूजया ज्ञानं, हीरकेण पूजया सर्वसिद्धिः, स्वर्णपुष्पैः पूजया कुबेरसमसम्पत्तिः देहान्ते निर्वाणपदं। मासमात्रेणेति सर्वत्र योजनीयम्। तन्त्रान्तरे—"एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानथ साधये"दिति। शारदातिलके— (प० २३ श्लोक १२३)

अथाभिधास्ये तन्त्रेऽस्मिन् सम्यक्षट्कर्मलक्षणम्। सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिद्धिदम्।। १।।
शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने ततः। मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः।। २।।
रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता। वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम्।। ३।।
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं समुदाहृतम्। स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम्।। ४।।
उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्तितम्। प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम्।। ५।।
स्वदेवतादिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत्। रतिर्वाणी रमा लक्ष्मी[1]र्दुर्गा काली यथाक्रमम्।।६।।
षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत्। ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिवाय्वग्नीनां दिशो मताः।। ७।।
सूर्योदयात्[2] समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्। ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने।। ८।।
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्धैमन्तशैशिराः। हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि।। ९।।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः। प्रावृडुच्चाटने ज्ञेया शरन्मारणकर्मणि।। १०।।
पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः। वज्रं भद्रकमित्याहुरासनानि मनीषिणः।। ११।।
षण्मुद्राः क्रमतो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः। मुसलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु।। १२।।
जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निः सदेरितः। स्तम्भने पृथिवी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्तितम्।।१३।।
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूयोऽग्निर्मारणे मतः। तत्तद्भूतोदये सम्यक् तत्तन्मण्डलसंयुतम्।। १४।।
तत्तत्कर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निशितात्मना। शीतांशुसलिलक्षोणीव्योमवायुहविर्भुजाम्।। १५।।
वर्णाः स्युर्यन्त्रबीजानि षट्कर्मसु यथाक्रमम्। ग्रथनं च विदर्भश्च सम्पुटो रोधनं[3] तथा।। १६।।
योगः पल्लव इत्येते विन्यास्याः षट्सु कर्मसु। मन्त्रार्णान्तरितान् कुर्यान्नामवर्णान् यथाविधि।।१७।।
ग्रथनं तद्विजानीयात् प्रशस्तं शान्तिकर्मणि। मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत्।। १८।।
विदर्भ एष विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि। आदावन्ते च मन्त्रः स्यान्नाम्नोऽसौ सम्पूटो मतः।। १९।।
एष संस्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः। नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं मतम्।। २०।।
विद्वेषणविधाने तु प्रशस्तमिदमुत्तमम्। मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योगः प्रोच्चाटने मतः।। २१।।
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रो पल्लवो मारणे यतः। सितरक्तपीतमिश्रकृष्णधूम्राः प्रकीर्तिताः।। २२।।
वर्णतो मन्त्रतन्त्रोक्ता देवताः षट्सु कर्मसु। यन्त्राणां लेखनद्रव्यं चन्दनं रोचना निशा।। २३।।

१. 'ज्येष्ठा' ख. पाठः। २. 'यं' ख. पाठः। ३. 'बोधनं' क. पाठः।

गृहधूमश्चिताङ्गारो मारणेऽष्ट विषाणि च। श्येनाग्नि[1]लोणपिण्डानि धत्तूरकरसस्तथा।। २४।।
गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम्। देवताकालमुद्रादीन् सम्यग् ज्ञात्वा विचक्षणः।। २५।।
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत यथोक्तफलसिद्धये।..।। २६।।

एवं प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमुपक्रम्य। तत्रैव— (पृ० २३ श्लो० ९१)

इति संसाधितो मन्त्रः षट्कर्मफलदो भवेत्। स्थापयेन्मनुना तेन प्राणान् सर्वत्र देशिकः।। १।।
बीजान्तेऽमुष्यशब्दानामादौ दूतीः प्रयोजयेत्। मृता वैवस्वता भूयो जीवहा प्राणहा ततः।। २।।
आकृष्या ग्रथनी पश्चात् प्रमादा विस्फुलिङ्गिनी। क्षेत्रप्रतिहरीत्येताः प्राणदूत्यो नव स्मृताः।। ३।।
पाशेन बद्ध[2]चेष्टस्य शक्त्या स्वीकृतचेतसः। अङ्कुशेनाहृतस्यापि साध्यस्यासून् समाहरेत्।।४।।
द्वादशाङ्गुलमानेन कृत्वा साध्यस्य पुत्तलीम्। तस्यां प्राणात्मकं यन्त्रं सकीटं हृदये न्यसेत्।।५।।
निशीथसमये साध्ये सुप्ते तस्य हृदम्बुजे। दलेषु वायुवह्नीन्द्रवरुणानामतः परम्।। ६।।
ईशराक्षसशीतांशुयमानां कर्णिकान्तरे। यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गाकाराननुस्मरेत्।। ७।।
शिरोवस्त्र(बिन्दु)समुद्भूततन्तुसम्बद्धविग्रहान्। एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपान् धिया स्मरेत्।। ८।।
आत्महृत्पद्मगा भृगीः प्रस्थाप्य श्वासवर्त्मना। एकैकां साध्यहृत्पद्माद् भृङ्गानेकैकमानयेत्।। ९।।
पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री स्वचित्ते वा विधानवित्। तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत् वह्निबीजेन संयतः।। १०।।
आकृष्यान् साध्यहृद्भृङ्गांस्त संस्तम्भयेद्ध्रुवा। एवमेकादशावृत्तीः कुर्यात् सर्वेषु कर्मसु।। ११।।
वश्याकर्षणयोर्यादीनरुणान् संस्मरेद् बुधः। मोहविद्वेषयोर्धूम्रान् कृष्णान् मारणकर्मणि।। १२।।
पीतान् संस्तम्भने ध्यायेत् प्राणाकर्षणकर्मणि[3]। आकृष्य साध्यहृत्प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि।।१३।।
क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापनमीरितम्। प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मनस्तु भुजङ्गमान्।। १४।।
संस्मरेत् तत्र निपुणः सदा क्रूरेषु कर्मसु।..।। १५।।

वाय्वग्निशक्रवरुणेश्वरराक्षसेन्दु-प्रेतेशपत्रलिखितैरथ यादिवर्णैः।
बिन्द्वन्तिकैः क्षगतहंससमेतमध्यं प्राणात्मयन्त्रमथ वर्णवृतं धराढ्यम्[4]।। १६।।

इत्थं प्रयोगकुशलो मनुनानेन मन्त्रवित्। वशयेत् सकलान् देवान् किं पुनः पार्थिवानपि।। १७।।

इति। तन्त्रान्तरे—

साध्यनामार्णमेकैकं मन्त्रार्णे सम्प्रयोजितम्। ग्रथितं तत्समाख्यातं वश्याकृष्टिकरं परम्।। १।।
मन्त्रमादौ वदेत् सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम्। विपरीतं पुनश्चान्ते मन्त्रं तत्सम्पुटं भवेत्।। २।।
शान्तिपुष्टिकरं ज्ञेयं त्रैलोक्यैश्वर्यदायकम्। अर्धमर्धं तदाद्यन्ते मन्त्रं कुर्याद्विचक्षणः ।। ३।।
मध्ये वास्य भवेत् साध्यं ग्रस्तमित्यभिधीयते। अभिचारेषु सर्वेषु योजयेन्मारणेऽपि वा।। ४।।
अभिधानं वदेत्पूर्वं पश्चान्मन्त्रं तथा वदेत्। एतत् समस्तमित्युक्तं शत्रूच्चाटनकारकम्।। ५।।

१.'श्येना श्येनविष्ठा, अग्निः चित्रकं चीता इति ख्यातः। २.'रुद्ध' ख.पाठः। ३.'कर्मवित्' क. पाठः। ४.'स्थम्' ख.पाठः।

द्वौ द्वौ मन्त्राक्षरौ यत्र एकैकं साध्यवर्णकम्। विदिर्भितं तत्सम्प्रोक्तं दुष्टघ्नं वश्यलक्षणम्।। ६।।
मन्त्रार्णान्तरितं साध्यं समन्तात्तिष्ठते यदि। आक्रान्तं तद्विजानीयात् सद्यः सर्वार्थसाधनम्।। ७।।
स्तोभस्तम्भसमावेशवश्योच्चाटनकर्मसु। सकृत्पूर्वं वदेन्मन्त्रमन्ते चैव तथा पुनः ।। ८।।
मध्ये चास्य भवेत् साध्यमाद्यन्तमिति तद्विदुः। अन्योन्यप्रीतियुक्तानां विद्वेषणकरं परम्।। ९।।
आदौ चान्ते तथा मन्त्रं द्विवारं सम्प्रयोजयेत्। साध्यनाम सकृन्मध्ये गर्भस्थं सम्प्रचक्षते।। १०।।
मारणोच्चाटनं वश्यं प्रयुक्तं कारयेन्नृणाम्। हेतिनौसैन्यधीगर्भस्तम्भनं च गतेस्तथा।। ११।।
त्रिधा मन्त्रं वदेत् पूर्वं तथैवान्ते पुनस्त्रिधा। सकृत् साध्यं भवेन्मध्ये तद्विद्यात् सर्वतो वृतम्।।१२।।
सर्वोपसर्गशमनमपमृत्युनिवारणम्। सर्वसौभाग्यजननं मृतानाममृतप्रदम्।। १३।।
आदौ मन्त्रं ततो नाम पुनर्मन्त्रं समुच्चरेत्। एवमेव त्रिधा कुर्याद्भवेद्युक्तिविदिर्भितम्।। १४।।
सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं भूतापस्मारमर्दनम्। एकैकं साध्यवर्णं तु कृत्वा मन्त्रविदर्भितम्।। १५।।
पूर्ववत् कथितं चान्यत् तस्याद्यन्ते प्रकल्पयेत्। विदर्भग्रथितं नाम मन्त्रलक्षणमुत्तमम्।। १६।।
सर्वकर्मकरं प्रोक्तं सर्वैश्वर्यफलप्रदम्। एवमेते प्रयोगाः स्युः सिद्धमन्त्रस्य सिद्धिदाः।। १७।।

इति। एते ग्रथितादयस्तत्तत्कर्मसु यन्त्रलेखनादिविषये, इति बोद्धव्यम्। तन्त्रान्तरे—

सर्वेषां मन्त्रव्रातानां[1] प्रणवः शिर उच्यते। हुंफट्स्वाहावषट्वौषणनमः पल्लवसंज्ञकाः।। १।।
तत्तत्कर्मविधाने तु तत्तन्मन्त्रविचारणे। शिरःपल्लवसंयुक्तो मन्त्रो भवति सिद्धिदः।। २।।

इति। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चक्रराजस्य साधनम्। एवं संसिद्धविद्याया विनियोगक्रमं शृणु।। १।।
कृत्वा सिन्दूररजसा चक्रं तत्र विचिन्तयेत्। साध्यप्रतिकृतिं नाम लिखित्वा चिन्तयेत् ततः।। २।।
ज्वलन्ती तत्क्षणाद् देवि मोहिता भयवर्जिता। त्यक्त्वा लज्जां समायाति अथान्यत् कथ्यते प्रिये।।३।।
तन्मध्ये संस्थितो मन्त्री चिन्तयेदरुणप्रभम्। आत्मानं च तथा साध्यं तदा सौभाग्यसुन्दरः।। ४।।
अरुणैरुपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रयावृतः। यस्य नाम्ना युतः सम्यग् स भवेद् दास एव हि।। ५।।
अदृष्टस्त्रीनामवर्णांश्चक्रमध्ये विलिख्य तु। योनिमुद्राधरो भूत्वा वेगादाकर्षणं भवेत्।। ६।।
देवकन्यां राजकन्यां नागकन्यामथापि वा। गोरोचनाकुङ्कुमाभ्यां समभागं च चन्दनम्।। ७।।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या तिलकं सर्वमोहनम्। पुष्पं फलं जलं चान्नं गन्धं वस्त्रं च भूषणम्।। ८।।
ताम्बूलं पूर्वजप्तं च यस्मै सम्प्रेष्यते तु सः। अङ्गना वा क्षणादेव दासीवास्य भवेत् प्रिये।। ९।।
करवीरै रक्तवर्णैस्त्रिमध्वक्तैः प्रपूजयेत्। चिन्तयन् मासमात्रं हि साध्याख्यां ललनां ततः।। १०।।
इति कुर्वन् महेशानि पूजयेदरुणप्रभाम्। सिन्दूररचिते चक्रे राजानं मोहयेत् क्षणात्।। ११।।
त्रैलोक्यमोहनां वापि रम्भामाकर्षयेद् द्रुतम्। चिताङ्गारेण चक्रं तु लिखेद्रक्तद्रवेण हि।। १२।।

---

१. 'जातानां' ग. पाठः।

बाहौ वद्ध्वाथवा क्वापि ज्वरं नाशयति क्षणात्। अर्कनिम्बद्रवाभ्यां तु लेखन्यार्कस्य संलिखेत्।।१३।।
द्वयोर्नाम मध्यबाह्यदेशे चक्रस्य संलिखेत्। गोमूत्रे स्थापयेत् तच्च भवेद्विद्वेषणं क्षणात्।। १४।।
धूपयेच्चन्दनं रात्रौ वस्त्रं वा धारयेत् ततः। अष्टोत्तरशतावृत्त्या मोहयेद्भुवनत्रयम्।। १५।।
लिप्तगोमयभूमौ तु लिखेद्रोचनया ततः। सुरूपां प्रतिमां रम्यां भूषाढ्यां परिचिन्तियेत्।। १६।।
तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम्। जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम्।। १७।।
सर्वाङ्गसन्धिसंलीनं कामकूटं समालिखेत्। साध्याशाभिमुखो भूत्वा श्रीविद्यान्यासविग्रहः।। १८।।
क्षोभणीबीजमुद्राभ्यां विद्यामष्टशतं जपेत्। योजयेत् तां कामगेहे चन्द्रसूर्यकलात्मके।। १९।।
सानुरागातिविकला कामसायकपीडिता। त्रैलोक्यसुन्दरी नाम क्षणादायाति मोहिता।। २०।।
अथवा मातृकां चक्रबाह्ये संवेष्ट्य मन्त्रवित्। चक्रं प्रपूजयेत् सम्यक् विद्यां पूर्णां च धारयेत्।।२१।।
अवध्यः सर्वदुष्टानां व्याघ्रादीनां न संशयः। श्रीखण्डागरुकस्तूरीकर्पूरैश्च सकुङ्कुमैः।। २२।।
स्वनाम क्रमतो लेख्यं पूर्ववन्मातृकां लिखेत्। तेनाजरामरत्वं तु साधकस्य न संशयः।। २३।।
अनेनैव प्रकारेण रोचनागरुकुङ्कुमैः। चक्रं विलिख्य साध्यार्णसाधकार्णविदर्भितम्।। २४।।
त्रैलोक्यमोहनो मन्त्री भवत्येव न संशयः। कामकूटेन देवेशि सन्दर्भ्य पृथगक्षरम्।। २५।।
साध्यनाम्नस्त्रिकोणान्तर्मातृकां वेष्टयेद् बहिः। स्वर्णमध्यगतं धार्यं शिखायां यत्र कुत्रचित्।।२६।।
लोकपालाश्च राजानो दुष्टास्त्रैलोक्यसंस्थिताः। ते सर्वे वश्यमायान्ति सन्निपातादयो ज्वराः।।२७।।
अनेन विधिना नाम पुरं सन्दर्भ्य सङ्क्षिपेत्। चतुष्पथे मध्यदेशे दिक्षु पूर्वादितः क्रमात्।। २८।।
तस्य सौभाग्यमायाति राजानः किङ्कराः सदा। स्फुरत्तेजोमयीं पृथ्वीं प्रज्वलन्तीं चराचरम्।। २९।।
चक्रान्तश्चिन्तयेन्नित्यं मासषट्कं ततो नरः। तेन कन्दर्पसुभगो लोके भवति निश्चयात्।। ३०।।
दृष्ट्याकर्षयते लोकान् विषं नाशयति ज्वरान्। तथा विषं च हरति दृष्ट्यावेशं करोति च।। ३१।।
रात्रौ सिन्दूरलिखितं पूजयेदेकचित्ततः। करोत्याकर्षणं दूराद्योजनानां शतादपि।। ३२।।
अखण्डं दिक्षु कोणेषु क्रमेण परिपूजयेत्। यदा तदैव लोकोऽयं वश्यो भवति नान्यथा।। ३३।।
भूर्जपत्रे लिखेच्चक्रं रोचनागरुकुङ्कुमैः। स्वनामदर्भितं कुर्याद् देशं वा पुटभेदनम्।। ३४।।
मण्डलं विषमस्थानं भूमौ चक्रं निधापयेत्। धारयेद्वा ततो मन्त्री पुरं क्षोभयतीक्षणात्।। ३५।।
उन्मत्तरसलाक्षार्कक्षीरकुङ्कुमरोचनाः। कस्तूर्यलक्तसहिता एकीकृत्य तु संलिखेत्।। ३६।।
यन्नाम्ना तस्य देवेशि चौरजं व्याघ्रजं भयम्। ग्रहजं व्याधिजं चैव रिपुजं सिंहजं तथा।। ३७।।
अहिजं वाजिजं नास्ति सर्वान् मोहयति क्षणात्। रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु मध्यगां संलिखेद् बुधः।।३८।।
त्रिकोणोभयगां चैव साध्यनामाङ्कितामधः। तच्चक्रं धारयेत् तस्मात् सप्ताहादिज्वरो भवेत्।। ३९।।
पीतद्रव्येण चक्रान्तर्लिखेद्विद्यामधस्ततः। साध्यनाम विलिख्यैतत् पूर्वस्यां दिशि सङ्क्षिपेत्।।४०।।
तस्माद्ब्रह्मापि जीवोऽपि सर्वज्ञो मूकतां व्रजेत्। अनेन विधिना नीलीरसेन विलिखेत् ततः।।४१।।

दक्षिणाभिमुखो मन्त्री वह्नौ दग्ध्वा रिपून् दहेत्। महिषाश्वपुरीषेण गोमूत्रेण च संलिखेत्।। ४२।।
आरनालस्थितं कुर्याद् भवेद्विद्वेषणं क्षणात्। साध्यनाम लिखेन्मध्ये काकपक्षेण सञ्चयेत्।। ४३।।
संलिख्य रोचनाद्रव्यैराकाशे दृष्टिगं यथा। शत्रूनुच्चाटयेदाशु हठोच्चाटोऽयमीरितः ।। ४४।।
महानीलीरसोद्भिन्नरोचनादुग्धमिश्रितैः। लाक्षारसैर्लिखेच्चक्रं चतुर्वर्णान् वशं नयेत्।। ४५।।
अनेन विधिना नीरे स्थापयेत् तज्जलेन तु। सौभाग्यं महदाप्नोति स्नानपानान्न संशयः।। ४६।।
पीतं चक्रं यजेत् पूर्वे स्तम्भयत् सर्ववादिनः। सिन्दूरलिखितं चक्रमुत्तरे लोकवश्यकृत्।। ४७।।
पश्चिमे पूजितं चक्रं गैरिकालिखितं ततः। मन्त्रिणो देवता वश्याः किं पुनर्योषितः प्रिये।। ४८।।
तथैव दक्षिणास्यस्तु कृष्णं चक्रं समर्चयेत्। साध्यस्य मन्त्रहानिः स्यान्मारणं च विशेषतः।।४९।।
क्रमाद्दिगन्तरास्यः सन् वह्निकोणादिषु क्रमात्। स्तम्भं विद्वेषणं व्याधिमुच्चाटं कुरुते नरः।।५०।।
दुग्धे वश्यकरं क्षिप्रं रोचनालिखितं हठात्। दग्ध्वा तद्वह्निमध्यस्थं सर्वशत्रून् विनाशयेत्।। ५१।।
गोमूत्रमध्यगं चैतद् भवेदुच्चाटनं रिपोः। विद्वेषणं भवेच्चक्रे तेनैव परमेश्वरि।। ५२।।
सिन्दूरेण खिलेच्चक्रं निर्जने तु चतुष्पथे। सर्वसाध्यं समारभ्य[1] मध्यान्तं मातृकां लिखेत्।। ५३।।
कुलाचारक्रमेणैव रात्रौ सम्पूजयेत् क्रमम्। साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः।। ५४।।
चतुर्दश्यां निशि स्वस्थो रुद्रभूमौ प्रपूजयेत्। षण्मासक्रमयोगेन साक्षाद्रुद्र इवापरः।। ५५।।
अञ्जनं विवरं सिद्धं गुलिकां पादुकाजयम्। खड्गं वेतालसौभाग्यं यक्षिणीं चेटकादिकम्।। ५६।।
सकलं सिद्धिजननं मन्त्री प्राप्नोति नान्यथा। चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां प्रत्यष्टम्यां समाहितः।। ५७।।
एकविंशतिरात्रं तु निशि प्रेतशिलातले। श्रीचक्रं पूजयेत् तद्वत् सुरपूज्यस्तु साधकः।। ५८।।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणैः पौरुषेयैर्महेश्वरि। कामो भूत्वा स्वर्गभूस्थपातालतलयोषिताम्।। ५९।।
हर्ता कर्ता स्वयं चैव महदाकर्षणं भवेत्। तद्वत् कामेश्वरीशस्त्रैर्देव्यात्मा भुवनत्रये।। ६०।।
पुरुषाकर्षणं चैतद्राजानः किङ्कराः प्रिये। एतत् कामकलाध्यानं कथितं बीजभेदतः।। ६१।।
वाग्भवाराधने देवि ज्ञानं सारस्वतं भवेत्। श्वेताभां श्वेतवस्त्राढ्यां श्वेतपुष्पैः समर्चयेत्।। ६२।।
अनेन विधिना देवि वाग्भवाराधनं भवेत्। अथ कामकला नाम सामर्थ्यं शृणु पार्वति।। ६३।।
कामो मन्मथकन्दर्पौ मकरध्वज एव हि। महाकामश्च पूर्वोक्ताः पञ्चकामाः क्रमेण तु।। ६४।।
कामं मन्मथमध्यस्थं देवि कन्दर्पवेश्मगम्। तत्पुटस्थं मीनकेतुं महाकामेशमस्तकम्।। ६५।।
अनेन कामतत्त्वेन मोहयेज्जगतीमिमाम्। मूलादिसृष्टिसंहारबिसतन्तुस्वरूपिणी।। ६६।।
तस्मात् कुण्डलिनीशक्तिः शक्तिकूटे महेश्वरि। त्रिकूटा त्रिपुरा देवि सर्वसिद्धिप्रदा भवेत्।। ६७।।
चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महोजसाम्। चक्रमेतत् समाश्रित्य सतां सिद्धिप्रदाः सदा।।६८।।

इति। वामकेश्वरतन्त्रे च— (२ प०)

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगं यथाविधि। यत्रानेन विधानेन साधकेन प्रपूज्यते।। १।।

---

१. 'सर्वबाह्यत आरभ्य' ख. पाठः।

देशे वा नगरे ग्रामे जगत्क्षोभः प्रजायते। ज्वलत्कामाग्निसन्तापप्रतापोत्तप्तमानसाः।। २।।
पिपीलिकास्थिन्यायेन दूरादायान्ति योषितः। मन्त्रसम्मूढहृदयाः स्फुरज्जघनमण्डलाः।। ३।।
तद्दर्शनान्महादेवि जायन्ते सर्वयोषितः। जप्ते लक्षैकमात्रे तु क्षुभ्यन्ते भूतलेऽङ्गनाः।। ४।।
यदि न क्षुभ्यतीत्थं हि साधकस्य मनो मनाक्। सङ्क्षुभ्यन्ते ततः सर्वाः पालाते नागकन्यकाः।।५।।
तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि। ततः स्वर्गनिवासिन्यो विद्रवन्ति सुराङ्गनाः।। ६।।
एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः साधकोत्तमः। सङ्क्षोभयति देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम्।। ७।।
लिखित्वा विपुलं चक्रं तन्मध्ये प्रतिमां यदा। नाम्ना लिखति संयुक्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत् ततः।।८।।
शतयोजनमात्रस्था त्वद्दृष्टापि च या भवेत्। भयलज्जाविनिर्मुक्ता साप्यायाति विमोहिता।। ९।।
तन्मध्यगोऽथवा भूत्वा मन्त्री चिन्तयते यदा। सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम्।। १०।।
ततः सञ्जायते देवि सर्वसौभाग्यसुन्दरः। वल्लभः सर्वलोकस्य साधकः परमेश्वरि।। ११।।
सर्वरक्तोपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रयावृतः[१]। यस्य नाम्नैव संयुक्तं स भवेद् दासवद्वशी।। १२।।
अदृष्टायास्तु संयोज्य नाम चक्रस्य मध्यगम्। विरच्य योनिमुद्रां च तामाकर्षयति क्षणात्।। १३।।
यक्षिणीं वाथ गन्धर्वीं किन्नरीं वा सुरेश्वरि। सिद्धकन्यां नागकन्यां देवकन्यां[२] च खेचरीम्।। १४।।
विद्याधरीमप्सरसमृषिकन्यामथोर्वशीम्। मदनोद्भवविक्षोभस्फुरज्जघनमण्डलाम्[३] ।। १५।।
महाकामकलाध्यानात् क्षोभयेत् सर्वयोषितः। रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च समभागं च चन्दनम्।। १६।।
अष्टोत्तरशतं जप्तं तिलकं धारयेन्नरः[४]। ततो यमीक्षते वक्ति स्पृशते चिन्तयत्यलम्।। १७।।
अर्थेन च शरीरेण स वश्यं याति दासवत्। तथा पुष्पं फलं गन्धं पानं वस्त्रं महेश्वरि।। १८।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यस्याः सम्प्रेषते स्त्रियाः। सद्य आकृष्यते सा तु विमूढहृदया सती।। १९।।
हठाकृष्टिरियं भद्रे न क्वचित् प्रतिहन्यते। लिखेद्रोचनयैकान्ते प्रतिमामवनीतले।। २०।।
सुरूपां चारुशृङ्गारवेशाभरणभूषिताम्। तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम् ।। २१।।
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्त[५]र्विदर्भिताम्। सर्वाङ्गसन्धिसंलीनमालिख्य मदनाक्षरम् ।। २२।।
तदाशाभिमुखो भूत्वा त्रिपुरीकृतविग्रहः। बद्ध्वा तु क्षोभिणीमुद्रां विद्यामष्टोत्तरं जपेत्।। २३।।
नियोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यप्रभा(कला)कुले। ततो विचलिता[६]पाङ्गामनङ्गशरपीडिताम्।। २४।।
प्रोज्ज्वलन्मदनोल्लोल[७]प्रचलज्जघनस्थलाम्। शक्तिचक्रोज्ज्वलद्रश्मिकलना[८]कवलीकृताम्।। २५।।
दूरीकृतस्वचारित्रभयलज्जात्रपाङ्कुशाम्[९]। आकृष्टहृदयां नष्टधैर्यामुड्डीन[१०]जीविताम्।।२६।।
वप्रप्रासाद[११]निगडनदीयन्त्रसुरक्षिताम्। नवानुरागसन्धानवेपमानहृदम्बुजाम्।। २७।।

---

१. 'युतम्' ख. पाठः। २. 'राजकन्यां नागकन्यां' ग. पाठः। ३. 'झरज्जघनलम्बिकाम्' ख. पाठः। ४. 'दूबुधः' ख. पाठः। ५. 'शेन' ख. पाठः। ६. 'विह्वलिता' ख. पाठः। ७. 'प्रोच्छलन्मदकल्लोल' ख. पाठः। ८. 'शक्तिचक्रोच्छलच्छक्तिवलना' ख. पाठः। ९. 'नयांकुशाम्' ख. पाठः। १०. 'मुत्तीर्ण' ख. पाठः। ११. 'प्राकार' ख. पाठः।

मनोऽधिकमहामन्त्रपवना[१]पहृतांशुकाम्। विमूढामिव विक्षुब्धामिव श्रान्ता[२]मिव द्रुताम्।। २८।।
लिखितामिव नि:संज्ञामिव प्रमथितामिव[३]। विहस्तामिव सङ्कीर्णामिवाकुलितमानसाम्।। २९।।
निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिव। भ्रमन्मन्त्रानिलोद्धूतपत्रा[४]कारां नभस्तले।। ३०।।
भ्रमन्तीमानयेन्नारीं योजनानां शतादपि। अथवा मातृकां सर्वां लिखित्वा चक्रबाह्यत:।। ३१।।
धारयेद्बाहुमूले य: सोऽवध्य: सर्वजन्तुषु। तथैव हि महेशानि स्वसंज्ञाक्रमयोगत:।। ३२।।
चन्दनागरुकर्पूरैरजरामरतां व्रजेत्। एवं देवि विधानेन रोचनागरुकुङ्कुमै: ।। ३३।।
लिखित्वा चक्रयोगेन यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थितम्। साध्यनाम्ना स्वनाम्ना तु चक्रस्यान्तर्विदर्भितम्।।३४।।
करोति सकलान् लोकानचिरात् पादवर्तिन:। मध्यङ्गतेन बीजेन महाकामकलात्मना।। ३५।।
एकमेकमवष्टभ्य साध्यनामाक्षरं प्रिये। बहिरपि लिखेदेव[५] वेष्टयेन्मातृकाक्षरै:।। ३६।।
हेममध्यगतं कृत्वा धारयेद्वामके भुजे। शिखायामथवा वस्त्रे धारयेद्यत्र तत्र वा।। ३७।।
करोति दासभूतं हि त्रैलोक्यं सचराचरम्। सम्मोहयति राजानं वाजिनं दुष्टकुञ्जरम्।। ३८।।
चौरं केसरिणं सर्पं परतन्त्रं महाबलम्। शत्रून् वज्रशतं शस्त्रं वेतालं राक्षसं[६] तथा।। ३९।।
भूतप्रेतपिशाचांश्च धारिता चक्ररूपिणी। तेन मन्त्रेण[७] सन्दर्भ्य पुराणां नाम सुन्दरि।। ४०।।
मध्ये चतुष्पथे वापि चतुर्दिक्षु निधापयेत्। महान् कोलाहलस्तत्र[८] ततो लोकस्य जायते।। ४१।।
योषितां च विशेषेण त्वदृष्टाना[९]मपीश्वरि। एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्।। ४२।।
चतु:समुद्रपर्यन्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत् प्रिये। षण्मासध्यानयोगेन जायतेऽतिमनोहर:।। ४३।।
दृष्ट्वैवाकर्षयेल्लोकान् दृष्ट्वैव कुरुते वशम्। दृष्ट्वा सङ्क्षोभयेन्नारीं दृष्ट्वैवापहरेद्विषम्।। ४४।।
दृष्ट्वा करोति चावेशं[१०] दृष्ट्वा सर्वं विमोहयेत्। दृष्ट्वा चातुर्थिकादींश्च नाशयेद्विषमज्वरान्।।४५।।
एतत् प्रपूजितं रात्रौ चक्रं सिन्दूररञ्जितम्। करोति महदाकर्षं सुदूरादपि योषिताम्।। ४६।।
सदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं यदा देवि प्रपूज्यते। दिगनुक्रमयोगेन तदा सर्वं जगद्वशे।। ४७।।
भूर्जपत्रे विलिख्यैवं तरौ निर्विवरोदरे। रोचनागरुकाश्मीरैर्मध्ये सन्दर्भयेत् पुरम् ।। ४८।।
विपुलं देशमथवा विषयं मण्डलं तथा[११]। स्वनामसहितं देवि[१२] यदि भूमौ निधापयेत्।। ४९।।
धारयेदथवा हस्ते कण्ठे वा बाहुमूलत:। शिखायामथवा वस्त्रे यत्र तत्र स्थितं च वा।। ५०।।
चक्रमेतन्महाभागे पुरक्षोभणमुत्तमम्। अर्कक्षीरं कुङ्कुमं च धत्तूरकरसं तथा।। ५१।।
रोचनालक्तकं लाक्षारसं मृगमदोत्कटम्। एकीकृत्य चक्रमेतल्लिख्यते यस्य संज्ञया।। ५२।।
तस्य चौरग्रहव्याधिरिपुसिंहाहिवारिजम्। यक्षराक्षसवेतालभूतप्रेतपिशाचकात्[१३]।। ५३।।

---

१. 'मन्त्रवेगेनोप' ख. पाठ:। २. 'प्लुष्टां' ख. पाठ:। ३. 'प्रमुषितामिव' ख. पाठ:। ४.'पत्र्याकारां' ख. पाठ:। ५. 'प्यखिलैरेवं' ख. पाठ:। ६. 'डाकिनीं शाकिनी' ख. पाठ:। ७. 'चक्रेण' ख. पाठ:। ८. 'महाहल्लोहलो देवि' ख. पाठ:। ९. 'विद्विष्टानां' क. ग. पाठ:। १०. 'वागीशं' क.ग. पाठ:। ११.'च वा' ख. पाठ:। १२.'स्वनामदर्भितं कृत्वा' ख. पाठ:। १३. 'चजम्' ख. पाठ:।

लूतावृश्चिककीटादिकमलाशीतिकोद्भवम्। भयं न विद्यते तस्य परमन्त्राभिचारजम् ॥ ५४॥
नित्यं सन्धारणाद् देवि कालमृत्युयमादयः। न शक्ता हिंसितुं सम्यग्रोमैकमपि सर्वदा॥ ५५॥
अथवा मध्यगां देवीं त्रिकोणोदर(भय)गां तथा। अधस्तन्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमाङ्किताम्॥ ५६॥
निधापयेच्च सप्ताहाद् दासवत् किङ्करो भवेत्। पीतद्रव्येण संलिख्य धारये(दिन्द्रदिग्गतां)॥ ५७॥
नाम्ना सर्वज्ञभूतोऽपि मूको भवति तत्क्षणात्। महानीलीरसेनापि नाम संयोज्य पूर्ववत्॥ ५८॥
दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयते क्षणात्। एकं नीलपटं सम्यक् नीलसूत्रेण वेष्टयेत्॥ ५९॥
लम्बमानं तदाकाशे उच्चाटयति तत्क्षणात्। महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेणाङ्कितं लिखेत्॥ ६०॥
क्षिप्त्वारनालमध्यस्थं विद्विष्टः सर्वजन्तुषु। युक्त्वा रोचनया नाम काकपक्षेण संलिखेत्॥ ६१॥
नीलीकर्पटके सम्यङ्नीलसूत्रेण वेष्टयेत्। लम्बमानं तदाकाशे परमुच्चाटनं भवेत्॥ ६२॥
दुग्धलाक्षारोचनाभिर्महानीलीरसेन च। लिखित्वा धारयेच्चक्रं चातुर्वर्ण्यं वशं नयेत्॥ ६३॥
एतेनैव विधानेन जलमध्ये विनिक्षिपेत्। सौभाग्यमतुलं तस्य स्नानपानादिभिर्भवेत्॥ ६४॥
एतन्मध्यगतां देवि नगरीं[१] वा वराङ्गनाम्। सप्ताहात् क्षोभयेत् सत्यं ज्वलमानां विचिन्त्य ताम्॥६५॥
महापातकयुक्तात्मा यदि देवीं प्रपूजयेत्। शमीदूर्वासहा[२]श्वत्थपल्लवैरथवार्कजैः॥ ६६॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः। लिखित्वा पीतवर्णं तु चक्रमेतद्यदार्चयेत्॥ ६७॥
पूर्वाशाभिमुखो भुत्वा स्तम्भयेत् सर्ववादिनः। सिन्दूररेणुलिखितं पूजयेदुत्तरामुखः॥ ६८॥
यदा तदास्य वशगो लोको भवति सर्वथा। गैरिकेणैतदालिख्य पूजयेत् पश्चिमामुखः॥ ६९॥
यः स सर्वाङ्गनाकर्षवश्यक्षोभकरो भवेत्। दक्षिणाभिमुखो भूत्वा कृष्णं चक्रं समर्चयेत्॥ ७०॥
यस्य नाम्ना तस्य नित्यं मन्त्रहानिस्तु जायते। तद्वद् दिगन्तरालेषु पूजितं परमेश्वरि॥ ७१॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकारकम्। रोचनालिखितं देवि दुग्धमध्ये वशङ्करम्॥ ७२॥
क्षिप्तं गोमूत्रमध्ये तु शत्रूच्चाटनकारकम्। तैल[४]मध्यगतं चक्रं विद्वेषणकरं परम्॥ ७३॥
ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं सर्वशत्रुविनाशनम्। अथवा देवदेवेशि यदेकान्ते चतुष्पथे[५]॥ ७४॥
तत्समीपे लिखेच्चक्रं सिन्दूरेण महाप्रभम्। सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि॥ ७५॥
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत्। पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण यः॥ ७६॥
स तत्क्षणान्महादेवि साधकः खेचरो भवेत्। पूजयित्वा महेशानि तद्वदेकतरौ गिरौ॥ ७७॥
अजरामरतां सत्यं लभते नात्र संशयः। महाभूतदिने वापि श्मशाने यदि पूजयेत्॥ ७८॥
पूर्ववन्निशि देवेशि साधकः स्थिरमानसः। पादुकाखड्गवेतालसिद्धद्रव्यमहोदयान्॥ ७९॥
अञ्जनं विवरं चेटीं यक्षीं दूरगतिं तथा[६]। यत्किञ्चित् सिद्धिसन्तानं[७] विद्यते भुवनत्रये॥ ८०॥

---

१. 'पक्षस्य मध्यगम्' ख. पाठः। २. 'रे' ख. पाठः। ३. 'दूर्वाङ्कुरा' ख. पाठः। ४. 'तक्र' क. पाठः। ५. 'थम्' ख. पाठः।
६. 'अञ्जनं विवरं चेटकं यक्षिणीं तथा'। लभते इति सम्बन्धः। ख. पाठः। ७. 'निचयं' ख. पाठः।

तत्सर्वमेव सहसा साधयेत् साधकोत्तमः।..।। ८१ ।।

इति। अत्र सर्वत्र मण्डलावधि कर्तव्यता। जपे वायुतसंख्या ज्ञेया।। अथ कूटत्रयसाधनं तत्रैव—

एतस्याः शृणु देवेशि बीजत्रितयसाधनम्। धवलाम्बरसंवीतो धवलाम्बरमध्यगः[१]।। १।।

पूजयेद्धवलैः पुष्पैर्ब्रह्मचर्यधरो[२] नरः। धवलैरेव नैवेद्यैर्दधिक्षीरौदनादिभिः ।। २।।

सङ्कल्पधवलैर्वापि यथाकामफलप्रदाम्[३]। सम्पूज्य परमेशानि ध्यायेद्वागीश्वरीं पराम्।। ३।।

बीजरूपामुल्लसन्तीं ततोऽनङ्गपदावधि[४]। ब्रह्मग्रन्थिं विनिर्भिद्य जिह्वाग्रे बीज[५]रूपिणीम्।। ४।।

चिन्तयेन्नष्टहृदयो ग्राम्यो मूर्खोऽतिपातकी। शठोऽपि यः पदं स्पष्टमक्षरं वक्तुमक्षमः।। ५।।

जडो मूकोऽपि दुर्मेधा गतप्रज्ञो विनष्टधीः। सोऽपि सञ्जायते वाग्मी वाचस्पतिरिवापरः।। ६।।

सत्पण्डितघटाटोपजेताऽप्रतिहतप्रभः। सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्काररसारवित्।। ७।।

वातेद्धत[६]समुद्रोर्मिमालातुल्यैरुपन्यसेत्। सुकुमारतरस्फाररीत्यलङ्कारपूर्वकैः ।। ८।।

पदगुम्फैर्महाकाव्यकर्ता देवेशि जायते । वेदवेदाङ्गवेदान्तसिद्धान्तज्ञानपारगः।। ९।।

ज्योतिःशास्त्रेतिहासादिमीमांसास्मृतिवाक्यवित्। पुराणरसवादादिगारुडानेकमन्त्रवित्।। १०।।

पातालशास्त्रविज्ञानभूततन्त्रार्थतत्त्ववित् । विचित्रचित्रकर्मादिशिल्पानेकविचक्षणः ।। ११।।

महाव्याकरणोदारशब्दसंस्कृतसर्वगीः । सर्वभाषरुतज्ञानी समस्तलिपिकर्मकृत् ।। १२।।

नानाशास्त्रार्थशिक्षादिवेत्ता भुवनविश्रुतः। सर्ववाङ्मयवेत्ता च सर्वज्ञो देवि जायते।। १३।।

एवमेषा महादेवि वाग्भवस्य तु साधना। ततस्तु शृणु देवेशि कामराजस्य साधनम् ।। १४।।

तथा कामकलारूपा मदनाङ्कुरगोचरा[७]। उदयादित्यबिम्बाभा समुज्ज्वलवपुः प्रिये[८] ।। १५।।

स्फुरद्दीपशिखाकारा बिन्दुधाराप्रवर्षिणी। समस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीविता ।। १६।।

महास्वमहिमाक्रान्तस्वच्छा[९]हङ्कृतिभूमिका। क्रमेण तु ततोऽनङ्गपर्यन्तं प्रोल्लसन्त्यपि ।। १७।।

शरीरानङ्गपर्यन्तमेकैकमुभयात्मिका। ततो भवति देवेशि सर्वशृङ्गारमानिनाम्।। १८।।

रागिणां साधको देवि बाधको मदनाधिकः। तद्दृष्टिपथगा नारी सुरी वाप्यथवासुरी।। १९।।

विद्याधरी किन्नरी वा यक्षी नागाङ्गनाथवा। प्रचण्डतरभूपालकन्यका सिद्धकन्यका।। २०।।

ज्वलन्मदनदुःप्रेक्ष्यदहनोत्तप्तमानसा। क्लिन्ना प्रचलितापाङ्गा विमूढा मदविह्वला ।। २१।।

निवेदितात्मसर्वस्वा वशगा देवि जायते। चलज्जलेन्दुसदृशी बालार्ककिरणारुणा।। २२।।

चिन्तितां योषितां योनौ सङ्क्षोभयति तत्क्षणात्। सैव सिन्दूरवर्णाभा हृदये चिन्तिता सती।। २३।।

सम्मोहोन्मादनाविष्टचित्ताकर्षकरी स्मृता। नियोजिताथवा मूर्ध्नि वर्षन्ती रक्तबिन्दुभिः।। २४।।

धारणासम्प्रयोगेण करोति वशगं जगत्। अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगं भुवि दुर्लभम्।। २५।।

---

१. 'मध्यतः' ख. पाठः। २. 'रतो' ख. पाठः। ३. 'मं यथा लभत्' ख. पाठः। ४. 'पदादपि' क. पाठः। ५. 'दीप' ख. पाठः। ६.'वाताहत' ग.पाठः। ७.'लोचना' ख. 'गोचरे' क.पाठः। ८. 'तरुणारुणबिम्बार्ककिरणाभा महेश्वरि' ख.पाठः। ९. 'न्तिष्वसहं' ख.पाठः।

येन विज्ञातमात्रेण साधको मदनायते। कामस्थं काममध्यस्थं कामोदरपुटीकृतम्॥ २६॥
कामेन कामयेत् कामं कामं कामेषु निक्षिपेत्। कामेन कामितं कृत्वा कामस्थं क्षोभयेद् ध्रुवम्[१]॥२७॥
प्रवक्ष्यामि समासेन शक्तिबीजस्य साधनम्। शक्तिबीजस्वरूपा तु सृष्ट्वा संहरते यदा[२]॥ २८॥
सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरे परिचिन्तयेत्। ततो भवति देवेशि वैनतेय इवापरः॥ २९॥
नागानां दर्शनाद् देवि जडीकरणकारकः। दाहिनाममृतासारधीरधाराधरोपमः॥ ३०॥
स्थिरकृत्रिमशङ्काख्यविषोपविषनाशनः। दुष्टव्याधिग्रहानीकडाकिनीरूपिकागणैः॥ ३१॥
भूतप्रेतपिशाचाद्यै[३]स्त्रिनेत्र इव दृश्यते। अथवा येन विद्येयं परिपूर्णा विचिन्त्यते॥ ३२॥
जन्ममण्डलहृत्पद्ममुखमण्डलमध्यगा। केवलैव महेशानि पद्मरागसमप्रभा ॥ ३३॥
तस्याष्टगुणमैश्वर्यमचिरात्। सम्प्रवर्तते। मनसा संस्मरत्यस्या यदि नामापि साधकः॥ ३४॥
तदैव मातृचक्रस्य विदितो भवति प्रिये। यदैव ज्ञायते विद्या[४] महात्रिपुरसुन्दरी॥ ३५॥
तदैव मातृचक्राज्ञा सङ्क्रामत्यस्य विग्रहे। सर्वासां सर्वसंस्थानां योगिनीनां भवेत् प्रियः॥ ३६॥
पुत्रवत् परमेशानि ध्यानादेव हि साधकः। यदा तु परमेशानि परिपूर्णां प्रपूजयेत्॥ ३७॥
प्रयच्छन्ति तदैवास्य खेचरी[५]सिद्धिमुत्तमाम्। चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्॥ ३८॥
चक्रमेतत्समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते। आदौ सम्बन्धिनि पदे मध्ये बीजाष्टकं बहिः॥ ३९॥
कुलाङ्गनाभोगरङ्गे जायतेऽनङ्गवत् प्रिये। करशुद्ध्यादिविद्यानामेकैकं परमेश्वरि॥ ४०॥
रुद्रयामलतन्त्रे तु कर्म प्रोक्तं मया पुरा। तद्ध्यानै[६]र्मदनो भूत्वा पाशाङ्कुशधनुःशरैः॥ ४१॥
क्षोभयेत् सुरलोकस्थाः पातालतलयोषितः। तथैव शाक्तैर्देवेशि त्रिपुरीकृतविग्रहः॥ ४२॥
साधयेत् सिद्धगन्धर्वदेवविद्याधरानपि। तत्र शाक्ता महावज्रप्रस्तारजनिताः शराः॥ ४३॥
मादनास्त्वादि[७]परतः सर्वाधस्तान्नियोजिताः। आद्यन्तगो महापाशः पौरुषेयः प्रकीर्तितः॥ ४४॥
रुद्रशक्तिः कुण्डलाख्या माया स्त्रीपाश उच्यते। तुरीयमरुणावर्गाद् द्वितीयमपि पार्वति॥ ४५॥
पुंस्त्रीकोदण्डयुगलं कामाग्निव्यापकोऽङ्कुशः।..॥ ४६॥

इति। ज्ञानार्णवे—(१४ प०)

गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत्। अतीव सुन्दरीं रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां शुभाम्॥ १॥
ज्वलन्तीं नामसहितां कामबीजविदर्भिताम्। चिन्तयेत्तु ततो देवि योजनैस्तु[८] सहस्रशः॥ २॥
अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्रापि दुर्लभा। राजकन्याप्यदृश्या च भयलज्जाविवर्जिता॥ ३॥
आयाति साधकं सम्यङ्मन्त्रमूढा सती प्रिया। चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेद्यदा॥ ४॥
उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा। साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् परमेश्वरि॥ ५॥

---

१. 'कामस्थः क्षोभयेज्जगत्' ख. पाठः। २. 'सृष्ट्वा संहृतिसीमया' ख. पाठः। ३. 'चौद्यैः' ख. पाठः। ४. 'जपते विद्यां, ख. पाठः। ५. 'स्याः खेचर्यः' ख. पाठः। ६. 'मादनैः' ख. पाठः। ७. 'स्त्वाभिपरतः' ख. पाठः। ८. 'योजनात्' क. पाठः।

अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्पविग्रहः। सर्वसौन्दर्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः ॥ ६॥
सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासन्धितविग्रहः। चक्रं प्रपूजयेद् यस्य नामरूपविदर्भितम्॥ ७॥
स भवेद्दासवद्देवि धनाढ्यो वापि भूपतिः। चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषितः॥ ८॥
अदृष्टे वा महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः। हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम्॥ ९॥
नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम्। विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यां रिपुस्त्रियम्॥ १०॥
मदनोद्भवसन्तापां स्फुरज्जघनमण्डलाम्। कामबाणविभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषम्॥ ११॥
महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते। क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः॥ १२॥
रोचनाभागमेकं तु एकं भागं तु कुङ्कुमम्। अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत् समम्॥ १३॥
एकत्र तिलकं कुर्यात् त्रैलोक्यवशकारिणम्। अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत्॥ १४॥

इति। शारदायाम्— (प० १२ श्लोक ६५)

भाग[1]द्वयं मलयजं भागं कुङ्कुमकेसरम्। एकं गोरोचनायाश्च तानि पिष्ट्वा हिमाम्भसा॥ १॥
विदध्यात्तिलकं भाले यान् पश्येद्यैर्विलोक्यते। यान् स्पृशेत् स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात्॥२॥
कर्पूरकपिचोराणि समभागानि कारयेत्। चतुर्भागा जटामांसी तावती रोचना मता॥ ३॥
कुङ्कुमं सप्तभागं स्याद् द्विभागं चन्दनं मतम्। अगरुर्नवभागः स्यादिति भागक्रमेण तु॥ ४॥
हिमाद्भिः कन्यकापिष्टमेतत् सर्वं सुसाधितम्। विधाय तिलकं भाले कुर्याद्भूमिपतीन् नरान्॥५॥
वनितां मदगर्वाढ्यां मदोन्मत्तान्मतङ्गजान्। सिंहव्याघ्रान् महासर्पान् भूतवेतालराक्षसान्॥ ६॥
दर्शनादेव वशयेत् तिलकं धारयन्नरः।...॥ ७॥

इति। अन्यच्च—

समस्तमन्त्रकल्पोक्तैर्ध्यानहोमजपादिभिः। ये प्रयोगास्तु[2] कथिताः सिद्ध्यन्त्येव न संशयः॥ १॥

इति वचनात् मन्त्रान्तरेषु उक्तप्रयोगा अपि श्रीविद्याविषये विज्ञेयाः। अपि च—

तावदग्नौ न होतव्यं तत्र तन्त्रोदितं यथा। यावदात्ममहावह्नौ मनःपूर्णाहुतिं हुनेत् ॥ १॥
स्वयं हि त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्। पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ॥ २॥
शब्दस्पर्शादयो बाणा मनस्तस्या भवेद्धनुः। वश्यप्रतीतिजनिकाः शक्तयश्च क्रमेण याः॥ ३॥
पूर्वपश्चिमकौ द्वारौ प्राणापानात्मकौ स्मृतौ। कालाद्यामाभिभूतानि नवचक्राण्यनुक्रमात्॥ ४॥
कर्मधीन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्। विश्वासहस्त[3]पुष्पैस्तु पूजयेत् सर्वसिद्धये॥ ५॥

इत्यादिवचनैरान्तरोपासना श्रेष्ठेति बोध्यते॥ होम इत्युपलक्षणं जपादीनामप्यान्तरत्वमुक्तमेव तन्त्रान्तरेषु। प्रयोगाणामानन्त्याद् ग्रन्थबाहुल्यं मन्यमानेन दिङ्मात्रमेतत् प्रदर्शितम्। "एतादृशानि कर्माणि यः कुर्यात् साधकोत्तमः। आत्मसंरक्षणार्थाय मृत्युञ्जयजपं चरेत्" इति प्रायश्चित्तश्रवणात् प्रयोगाणामनिष्टोत्पादकत्वमवधार्यते। तस्माद्विद्वद्भिर्निष्कामोपासना कर्तव्येति सिद्धम्॥

---

१. 'पाद' ख. पाठः। २. 'गाः सुक' ख. पाठः। ३. 'विश्वाट्टहास' क. पाठः।

अथाधिकारिणः कुलार्णवे—

निरस्तदेह(हेय)कर्माणो मानवाः पुण्यकर्मिणः। समुत्पन्नकुलज्ञाना भजन्ते मां दृढव्रताः॥ १॥
पूर्णाभिषेकसहिता वेदशास्त्रार्थतत्त्वगाः। देवतागुरुभक्ताश्च नियताश्चार्चनप्रियाः ॥ २॥
कुलागमरहस्यज्ञा देवताराधनोत्सुकाः। गुरूपदेशसंयुक्ताः पूजयेयुः कुलेश्वरीम्॥ ३॥
शुद्धात्मा चातिसंहृष्टः क्रोधलौल्यविवर्जितः। पैशुन्यतादिविमुखः सुसुखस्तर्पयेच्छिवाम्॥ ४॥
कौलाः पशुव्रतस्थाश्चेत् पक्षद्वयविडम्बकाः। केशसंख्या स्मृता यावत्तावत्तिष्ठन्ति रौरवे॥ ५॥

इति। अन्यच्च—

लिङ्गत्रयविशेषज्ञः षडाधारविभेदकः। पीठस्थानानि चागत्य महापद्मवनं व्रजेत्॥ ६॥
आमूलाधारमागत्य ब्रह्मरन्ध्रं पुनः पुनः। चिच्चन्द्रमण्डले शक्तिसामरस्यसुखोदयः॥ ७॥
व्योमपङ्कजनिःष्यन्दसुधापानरतो नरः। मधुपो मांससम्भोक्ता त्वितरे मद्यपायिनः॥ ८॥
पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्। परे शिवे लयेच्चित्तं पलाशीति निगद्यते॥ ९॥
मनसा चेन्द्रियगणं नियम्यात्मनि योजयेत्। मत्स्याशी स भवेद्देवि शेषास्तु प्राणिघातकाः॥ १०॥
अथाहन्तां तथासत्यं पैशुन्यं क्रोधमेव च। अन्नं नानाविधं चैतदेतानग्नौ जुहोति यः॥ ११॥
कुलीनशेषभोक्ता स्यात् तदन्ये त्वघभोजिनः। पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरः॥ १२॥
य आस्ते मैथुनं तत् स्यादपरः स्त्रीनिषेवकः। अप्रबुद्धा पराशक्तिः प्रबुद्धा कौलिकस्य या॥ १३॥
शक्तिं तां सेवयेद्यस्तु स भवेच्छक्तिसेवकः। इत्यादिपञ्चमुद्राणां वासनां कुलनायिके॥ १४॥
ज्ञात्वा गुरुमुखाद् देवि सेवते यः स उच्यते।..॥ १५॥

इति। अपि च "मध्यानां मुखमुद्रादिकल्पनापरिकल्पनम्। ध्यानं शक्तिसमावेशः सा महत्सामरस्यता" इत्यादिवचनैरान्तरोपासननिष्ठितस्यैव च बाह्यपूजादिष्वधिकारो द्योत्यते नान्यस्य। अयमधिकारश्चातुर्वर्ण्यसाधारण्येनेति वचनानि पूर्वं प्रदर्शितानि। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्— (३१ प० ३५ श्लो०)

दीक्षितस्याधिकारोऽत्र नान्यस्य परमेश्वरि। पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा स्वयं ज्ञात्वा करोति यः॥ १॥
ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिपातकैः। लिप्यते नात्र सन्देहो नरके निवसत्यसौ॥ २॥

इति। अन्यत्रापि "गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः सुरेष्वपि" इति॥ अथ काम्यहोमविधिः। तत्रादौ तन्त्रोक्तपरिपाट्यग्निचक्रं विचार्य सौम्यक्रूरग्रहमुखेष्वाहुतिप्रवेशं विज्ञाय शुभग्रहमुखप्रवेशदिने शुभहोममशुभग्रहमुखप्रवेशदिने चाशुभहोमारम्भं कुर्यात्। तत्परिज्ञानप्रकारस्तु—सूर्यस्थितनक्षत्रमारभ्य चन्द्रस्थितनक्षत्रपर्यन्तं गणयित्वा प्रतिग्रहं त्रीणि त्रीणि नक्षत्राणि सूर्यादिनवग्रहेभ्यो विभज्य दद्यात्। तत्रादौ सूर्यस्ततो बुधस्ततः शुक्रस्ततः शनैश्चरस्ततश्चन्द्रस्ततो भौमस्ततो गुरुस्ततो राहुस्ततः केतुरिति ग्रहाणां क्रमो ज्ञेयः। अत्र यस्य त्रिके होमारम्भस्तन्मुखे तदाहुतिप्रवेशः, इत्यग्निचक्रपरिज्ञानप्रकारः॥ अत्र सौम्यहोमे—सूर्ये शोकः, बुधे धनागमः, शुक्रेऽभीष्टफललाभः, शनौ पीडा, चन्द्रे सौख्यं, भौमे बन्धनं, गुरौ धनप्राप्तिः, राहौ, केतौ मृत्युरिति ग्रहाणां फलानि॥

अथ स्वर्गमर्त्यपातालेषु वह्नेः स्थितिं विज्ञाय तत्फलानि च ज्ञात्वा काम्यहोमारम्भं कुर्यात्। तत्परिज्ञानप्रकारस्तु—

प्रतिपादादिहोमतिथिपर्यन्तं गणयित्वा तथा सूर्यवारादि होमारम्भवारपर्यन्तं च गणयित्वोभयत्र लब्धसंख्याकानङ्कानेकोनत्रिंशाङ्कैर्मेलयित्वा जाताङ्कसमुदायं त्रिभिर्हृत्वावशिष्टाङ्क एकश्चेदग्निः स्वर्गे वसति, द्वयं चेत् पाताले, शून्यश्चेत् मर्त्यलोके (इति पावकस्थितिं विज्ञाय तत्फलानि निर्दिशेत्। तत्र स्वर्गस्थिते वह्नावुत्पातः पाताले धनक्षयो मर्त्यलोक)स्थिते सकललोकप्राप्तिः। इत्थं वह्निचक्रं विज्ञाय प्रागुक्ते मण्डले प्रागुक्तद्वादशराशिस्थानगतेषु नवसु कुण्डेषु प्रागुक्तमङ्गलामङ्गलरूपेषु प्रागुक्तविधिनाग्निस्थापनं कृत्वा प्रागुक्तजिह्वाभेदान् विज्ञाय यथोक्तद्रव्यैर्यथाविधि जुहुयात्।। तत्र सौम्यहोमद्रव्याणि ज्ञानार्णवे—(१७। १५२)

मालतीजातिकामल्लीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः। घृतपूर्णैर्हुनेद् देवि वागीशत्वं प्रजायते ।। १।।
मूकस्यापि हि मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा। जपापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः।। २।।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः। कर्पूरं कुङ्कुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि।। ३।।
हवनान्मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत्। सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनापि[1] सुव्रते।। ४।।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्रोल्लसिताम्बराम्। प्राप्नोति मन्त्री महतीं[2] स्तम्भयेज्जगतीमिमाम्।।५।।
श्रीखण्डं गुग्गुलं चन्द्रमगुरु होमयेत् ततः। राजनागेन्द्रदेवानां पुरस्त्रीर्वशमानयेत्।। ६।।
सर्वलोका वशास्तस्य भवन्त्येव न संशयः। लाक्षाहोमाल्लभेद्राज्यं दारिद्र्यभरपीडितः।। ७।।
दुर्गोपसर्गशमनं पलत्रिमधुहोमतः। दूरस्थितानां देवेशि गुरुणा प्रोक्तमार्गतः ।। ८।।
होमः कार्यो वश्यकामैरन्यथा निष्फलं भवेत्। रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः।। ९।।
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः। परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्ववशं नयेत्।। १०।।
महापलेन देवेशि रिपोः सैन्यं विनाशयेत्। खेचरो जायते रात्रौ कृत्वा होमं चतुष्पथे।। ११।।
क्षीरं मधु दधि त्वाज्यं पृथग् हुत्वा वरानने। आयुर्धनमहारोग्यसमृद्धिर्जायते नृणाम्।। १२।।
क्रमेण शैलजे क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम्। दधि[3]माक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात्।। १३।।
सितया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः। कमलैररुणैर्होमः सम्यक् सम्पत्तिदायकः।। १४।।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं राजानो वश्यगाः क्षणात्। नीलोत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा।। १५।।
श्वेतोत्पलैः श्रियं वाचं लभते हवनात् प्रिये। श्वेतैस्तु होमात् कमलैर्लक्ष्मीं सौभाग्यमाप्नुयात्।।१६।।
कह्लारहवनान्मन्त्री सौभाग्यं च धनं लभेत्। पूर्णबदरहोमेन वशीकुर्यान्महीसुरान्।। १७।।
मातुलिङ्गफलोद्भूतहोमेन क्षत्रिया वशे। नारङ्गफलहोमेन वैश्या वश्या भवन्ति हि।। १८।।
कूष्माण्डफलहोमेन शूद्रा वश्यास्तथा परे। द्राक्षाफलैः सिद्धयोऽष्टौ लक्षहोमान्न संशयः।। १९।।
कदलीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः। वश्याः स्युर्दशसंख्याका भवन्त्येव न संशयः।। २०।।
खर्जूरीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः। वश्या विंशतिसंख्याका इत्याज्ञा पारमेश्वरी।। २१।।
नारिकेलफलैर्होमात् समृद्धिर्जायते प्रिये। लक्षमात्रेण मन्त्रज्ञो राजापर इव प्रिये।। २२।।
पक्वाम्रफलहोमेन लक्षमात्रेण सुन्दरि। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेदिनीं वशमानयेत्।। २३।।
पनसस्य फलैर्होमाल्लक्षेण शतभूभुजः। वश्या भवन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा।। २४।।

१. 'सौन्दर्येणापि' ग. पाठः। २. 'रजनीहोमात्' ग. पाठः। ३. 'दुग्ध' ग. पाठः।

तिलाज्यहोमाद् देवेशि कार्यसिद्धिर्भवेत् प्रिये। राजिकालवणाभ्यां तु दुष्टलोकान् वशं नयेत्।।२५।।
कुङ्कुमेन हुते[१] देवि त्रैलोक्यं वशमानयेत्। गुग्गुलस्य च होमेन सर्वदुःखानि नाशयेत्।। २६।।
वैरिणो वशगाः शीघ्रं चन्दनस्यापि होमतः। रक्तचन्दनहोमेन वश्या हि पुरुषाः स्त्रियः।। २७।।
कर्पूरस्य च होमेन वाग्वश्यं जायते नृणाम्। कस्तूरीहोमतो देवि राजानो राजमन्त्रिणः।। २८।।
वश्या भवन्ति सकलाः परिवारयुताः प्रिये। तिलतण्डुलहोमेन शान्तिर्भवति मन्दिरे।। २९।।
शर्करागुडहोमेन सितायुक्तेन मन्त्रिणः। त्रैलोक्यं वशमायाति धान्यसिद्धिमवाप्नुयात्।। ३०।।
नानाविधान्नहोमेन धान्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्। सोपस्करैश्च वटकैरुपसर्गान् विनाशयेत्।। ३१।।
बन्धूककुसुमैर्होमात् सर्वसत्त्वान् वशं नयेत्। जपापुष्पैर्जगद्वश्यं बाणपुष्पैश्च मोहनम्।। ३२।।
बकुलस्य हुनेत् पुष्पैः सौभाग्यं जायते महत्। दशाङ्गधूपहोमेन सौभाग्यमतुलं लभेत्।। ३३।।

इति। कुलमूलावतारे—

मांसी शिवा कौशिकसर्जमज्जाभागाः समं वृक्षरुजः क्रमार्धम्।
शैलेयमुस्ताकरजं च कुष्ठं सर्वार्थखण्डः कथितो दशाङ्गः।। १ ।।

इति। तथा—

जम्बूफलैः स्त्रियो वश्याः कूष्माण्डैर्दैत्यकन्यकाः। श्रीफलैरतुला लक्ष्मीः पत्रैर्वा सुरवन्दिते।। ३४।।
इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसाद्राजकन्यकाः। वश्या भवन्ति देवेशि नारिकेलजलेन वा।। ३५।।
केवलं घृतहोमेन वरदाः सर्वशक्तयः।...।। ३६।।

इति। तथा तन्त्रराजे— (३२ प०)

अथ होमं प्रवक्ष्यामि ललिताविद्यया शिवे। येन मर्त्योऽपि भुवने प्रख्यातो देवतासमः।। १ ।।
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे द्रव्यकालादिभेदतः। प्रोक्तेषु नवकुण्डेषु तत्तत्कर्मसु चोदिते[२]।। २।।
जुहुयादुक्तमार्गेण तत्राग्निध्यानपूर्वकम्। शुक्लप्रतिपदारम्भात् पूर्णान्तं कमलैर्हुनेत्।। ३।।
कैरवैर्हवनात् तेषु दिनेषु श्रियमाप्नुयात्। मधुरत्रयसंसिक्तैः पुष्पैरप्यरुणैः शुभैः ।। ४।।
अखण्डितैरब्दमात्रान्नरो नृपतिसन्निभः। तेष्वेव दिवसेष्वब्जैः सितैस्तद्धवनाद् घृतैः।। ५।।
कह्लारैर्हवनात् तेषु दिनेषु धनधान्यवान्। तथैवो[४]त्पलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम्।। ६।।
अरुणैरुत्पलैर्होमात् कन्यकां समवाप्नुयात्। केतकैर्हवनात् तेषु दिनेषु श्रियमाप्नुयात्।। ७।।
सौभाग्यं कीर्तिमारोग्यमवाप्नोत्यर्चनादपि। तैः षड्भिः कुङ्कुमक्षोदाप्लुतैस्तद्दिनहोमतः।। ८।।
अचलां च श्रियं प्राप्य सुखी जीवति भूतले। तैश्चन्दनाक्तैर्हवनात् तद्दिनेषु यथाविधि।। ९।।
पुत्रदासीदासयुतश्चिरं जीवति मानवः। तैरेवेन्दुद्रवाक्तैस्तु होमात् कन्दर्पसन्निभः।। १०।।
नारीजनैः सह नरो दीर्घायुर्बहु जीवति[५]। कृष्णप्रतिपदारम्भाद् दर्शान्तं जुहूयाच्च तैः[६]।। ११।।

१. 'हुनेत्' क. पाठः। २. 'चोदिते कुण्डे इत्यर्थः। ३. 'सितैः स्याद्धनवान् हुतैः। ४. 'तेष्वैव' ख. पाठः।
५. 'वनिताजनसन्दोहविनोदी भुवि जीवति' ख. पाठः। ६. 'सितैः' ख. पाठः।

घृताक्तैरब्दमात्रेण निःसपत्नां लभेच्छ्रियम्। तेष्वेव दिवसेष्वग्नौ गुडैः क्षौद्राप्लुतैर्हुनेत्॥ १२॥
कान्तिलक्ष्मीजयारोग्ययुतो जीवत्रि भूतले। द्राक्षाभिर्दुग्धसिक्ताभिस्तद्दिनैर्हवनान्नरः॥ १३॥
क्षीराहारी चिरं भूमौ जीवत्यकलुषाशयः। खर्जूरीफलहोमेन त्रिमध्वक्तेन तद्दिनैः॥ १४॥
आयुरारोग्यविजयसम्पन्नां श्रियमश्नुते। कदलीफलहोमेन तथा तद्दिवसेषु च॥ १५॥
पुण्यकीर्तिर्नृपैर्मान्यो जीवेद्वर्षशतं सुखी। नारिकेलफलक्षोदैः सिताक्षौद्रसमन्वितैः ॥ १६॥
हवनात् तद्दिनैरिष्टमखिलं समवाप्नुयात्। तैरिक्षुवारिसंसिक्तैर्हवनात् तद्दिनेषु वै ॥ १७॥
वासांसि नानावर्णानि महार्हाणि लभेत सः। 'सर्वैश्च तैस्त्रिमध्वक्तैर्हवनाच्छ्रियमाप्नुयात्॥ १८॥
तैः सवत्ससितागव्यपयोक्तैर्हवनादपि। महिषीक्षीरसंसिक्तैर्होमादिष्टमवाप्नुय्रातत्॥ १९॥
अजाक्षीरप्लुतैस्तैश्च तथाविक्षीरसंप्लुतैः। नारिकेलफलक्षोदराक्तैरपि तैर्हुनेत्॥ २०॥
तथा द्वादशभिर्द्रव्यैरेकैकैः संहतैस्तथा। नित्यशो हवनाद् दुग्धक्षौद्रसर्पिःसमन्वितैः॥ २१॥
(सम्पन्नसस्यां पृथिवीमवाप्नोति स निश्चितम्[2])। गोभूहिरण्यवासोभिः समृद्धो जीवति क्षितौ॥२२॥
रविवारे सितान्नैस्तु क्षीराक्तैर्हवनात् तथा। अब्दादन्नसमृद्धिः स्याद् घृताक्तैर्वा मधुप्लुतैः॥ २३॥
सोमवारे सितोपेतैर्नारिकेलफलैर्हुतैः। सम्पन्नशस्यां पृथिवीमवाप्नोति सुनिश्चितम्॥ २४॥
अङ्गारवारे क्षौद्राक्तैरन्नैर्होमाच्छ्रियं लभेत्। तैरिष्टभूमृण्मिलितैर्हवनात् तां महीं लभेत्॥ २५॥
बुधवारे घृताक्तैस्तु होमेन ,तिलतण्डुलैः। श्रियं सकलकल्याणनिलयां लभतेऽब्दतः॥ २६॥
गुरुवारे दुग्धसिक्तैः पनसास्थिपरागकैः। जुहुयादब्दमात्रेण लभते गेहमुत्तमम्॥ २७॥
सितवारे नारिकेलक्षोदैः सितसमन्वितैः। गुडान्वितैर्वा जुहुयात् श्रिया सुचिरमेधते॥ २८॥
शनिवारे तैलसिक्तैस्तिलैः शुद्धैस्तथेतरैः। हवनाल्लभते लक्ष्मीमब्दादतिमनोहराम् ॥ २९॥
तैः समस्तैः समस्ताक्तैर्जुहुयात् सप्तसु क्रमात्। तद्दिनैरिन्दिराढ्यः स्याद्विद्याहवनवैभवात्॥ ३०॥
तत्तद्दिनेषु तद्भक्त्या द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन् सुभोजयेत्[3]। घृतक्षीरसिता[4]क्षौद्रगुडापूपसमन्वितम्॥ ३१॥
अश्विन्यादिषु ऋक्षेषु नवस्वपि हुनेत् क्रमात्। शालिभिस्तण्डुलैर्मुद्गैर्माषैर्गौरितरैस्तिलैः॥ ३२॥
तथाविधैः सर्षपैश्च कोद्रवैरिन्दिराप्तये। क्षौद्रसर्पिस्तिलैर्दुग्धकेरोन्दे[5]क्षुरसाप्लुतैः॥ ३३॥
महिष्यजाविकाक्षीरप्लुतैस्तैर्नवसु क्रमात्। मघादिषु तथा होमं नवभिः स्यान्नवस्वपि॥ ३४॥
चणकैश्चणकान्नैश्च मुद्गान्नैः कृसरैस्तथा। माषान्नैश्च हरिद्रान्नैर्गुडान्नैः पायसैरपि॥ ३५॥
सुसिद्धान्नै[6]स्त्रिमध्वक्तैः कीर्तिलक्ष्मीजयाप्तये। तथा मूलादिनवके नवभि[7]र्जुहुयात् तथा॥ ३६॥
पृथुकैः सक्तुभिर्लाजैरिक्षुकाण्डैः पयःप्लुतैः। शालीचणकमुद्गोत्थैर्माषपिष्टतिलोद्भवैः ॥ ३७॥
अपूपैर्मधुराभ्यक्तैर्विजयं कीर्तिमिन्दिराम्। आरोग्यमायुः सौभाग्यं मान्यतां च लभेद् ध्रुवम्॥ ३८॥

---

१. 'षड्भि' ख.पाठः। २. 'बन्धचिह्नान्तर्गतं' ख.ग.पुस्तकयोर्नास्ति। ३.'तद्दिनेषु च तद्विद्याभक्तांस्त्रीन् द्वौ सुभोजयेत्' ख.पाठः।
४.'तिल' ख.पाठः। ५.'केरोन्दःनारिकेलरसः। ६.'शुद्धान्नैश्च' क.पाठः। 'दुग्धान्नैश्च' ख.पाठः। ७. 'बलिभिः' ख. पाठः।

सिद्धयोगेषु यद्द्रव्यैर्जुहुयात् तत्समृद्धिमान्। तथामृताख्ययोगेषु जुहुयाद्रोगशान्तये।। ३९।।
गुडूचीतिलदूर्वाभिस्त्रिमध्वाक्ताभिरादरात् । उच्चयोगेषु जुहुयादरुणैरुत्पलैरपि[1]।। ४०।।
उच्चैर्भवति सर्वेषां स्वकुलानां सुनिश्चितम्। पर्वताख्ये हुनेद्योगे यद्द्रव्यैस्तद्धि पर्वतम्।। ४१।।
भवेदस्याचिरेणैव कालेन परमेश्वरि। अथान्यमद्भुतं होममाकर्णय वदामि ते।। ४२।।
स्वक्षेत्रगे स्वोच्चगे वा जुहुयाद् ग्रहतृप्तये। पायसैर्घृतसिक्तैस्तु सितामिश्रैस्तु विद्यया।। ४३।।
सर्वदा यो हुतविधिमेनं कुर्याद्यथाविधि। तत्तत्प्रोक्तेषु कालेषु ग्रहार्तिः स्यान्न तत्कुले।। ४४।।
मासेषु जन्मत्रितये होमं कुर्याद्यथाविधि। दूर्वामृतातिलैर्नित्यं यावज्जीवं सुखी भवेत्।। ४५।।
तद्दिनेषु जपेद्विद्यां सहस्रं दिननित्यया। न तस्य कुत्रचित् कश्चित् कदाचित् क्लेशसम्भवः।। ४६।।
तर्पणं कारयेच्चन्द्रवासितैर्मधुरैर्जलैः। सौरभाढ्यैः प्रसूनैश्च पूजयेद्वापि तद्दिने ।। ४७।।
(अवन्ध्यजन्मत्रितये स्यात् कदाचिन्न मान्त्रिकः?)। यदि स्यात् तस्य रोगादिपीडा भवति निश्चितम्।।४८।।
उच्चस्थे वा स्वराशौ वा स्थिते चन्द्रे दिवाकरे। विद्यां जपेत् सहस्रं वा शतं वा पूजयेच्छिवाम्।।४९।।
यस्तस्य रोगतो बाधा कदाचिन्न भवेद्ध्रुवम्। तस्मादुक्तेषु कालेषु तथा कुर्वन् सुखी भवेत्।।५०।।
ग्रहरोगादिदारिद्र्यक्लेशयुक्तस्य मन्त्रिणः। मान्त्रिकत्वं भवेल्लोके शोक[2]हासास्पदं भवेत्।। ५१।।
पलाशपुष्पैश्च फलैः पत्रैः काण्डैश्च मूलकैः। हवनादब्दमात्रेण वाग्मी स्यात् कुण्ठवागपि।। ५२।।
अर्कपुष्पैस्त्रिमध्वक्तैर्होमादिष्टमवाप्नुयात्। मण्डलात् तस्य पत्रैश्च समिद्भिरपि मूलतः।। ५३।।
बिल्वप्रसूनैस्तु फलैः पत्रैः काण्डैस्तथा हुनेत्। मूलैश्च लक्ष्मीसंसिद्ध्यै ता तदन्वयगा भवेत्।।५४।।
पद्माक्षैर्मधुराभ्यक्तैर्होमात् तावद्दिनैर्नरः। इन्दिरां लभते रम्यां सर्वलोकचमत्कृताम् ।। ५५।।
चम्पकैर्मधुसंमिश्रैर्जुहुयात् तद्दिनावधि। आढ्यः स्यादप्रजाः पुत्रानवाप्नोति गुणान्वितान्[3]।। ५६।।
तैरेवाज्यप्लुतैर्होमान्मङ्गले तूच्चसंस्थिते। लभेत सर्वसस्याढ्यां भुवं भोक्ता च जायते।। ५७।।
तैः क्षीराक्तैर्हुतैश्चन्द्रे स्वोच्चगे तद्दिनैर्भवेत्। शतगुः साधकस्तद्वत् त्रिमध्वक्तैर्लभेत् त्रयम्।। ५८।।
पाटलैः क्षौद्रसंसिक्तैर्होमात् कन्यामवाप्नुयात्। तगरोत्थैरपि तथा लाजैश्च कुटजैरपि।। ५९।।
तैः क्षीरमिश्रैर्हवनाच्चतुर्भिर्लभते धनम्। अम्बराणि विचित्राणि महार्हाणि च तद्दिनैः।। ६०।।
शतपत्रैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। केसरैश्च कदम्बैश्च कुन्दैर्विचकिलैरपि।। ६१।।
मल्लिका-मालती-जाती-पुन्नागैश्च नमेरुभिः। जुहुयात् प्रथमारम्भे पञ्चम्यन्तं मधुप्लुतैः।। ६२।।
एकैकशः समस्तैश्च महालक्ष्मीमवाप्नुयात्। तैरेव क्षीरमिलितैर्होमात् स्वर्णमवाप्नुयात्।। ६३।।
तथाज्याक्तैश्च हवनाल्लभते भूषणैः श्रियम्। प्रसूनैः कर्णिकारोत्थैः क्षौद्राक्तैर्हवनाद्दिनैः।। ६४।।
उदितैरचलां लक्ष्मीमवाप्नोति सुनिश्चितम्। कह्लारै रक्तकुमुदैरुत्पलैः कमलद्वयैः ।। ६५।।
प्राग्वन्नन्दादिपूर्णान्तमेकैकैवाथ पञ्चभिः। हवनाल्लभते लक्ष्मीं सभूभूषणवाहनाम्।। ६६।।

१. 'शुभैः' ख. पाठः। २. 'लोक' ग. पाठः। ३. 'गुणाधिकान्' ख. पाठः।

त्रिमध्वक्तैस्तथैकैकैः सर्वैर्वा साधकोत्तमः[१]। केतकीकुसुमैः क्षौद्रप्लुतैर्होमाच्च तद्दिनैः।। ६७।।
वासांसि लभते चित्राण्यनर्घाणि बहून्यपि। सितैः प्रसूनैः क्षीराक्तैर्होमादाप्नोति तद्दिनैः।। ६८।।
सितानि वासांसि तथा मुक्तादामानि रूप्यकम्। हुनेन्मरुवकैः क्षौद्रप्लुतैर्वाञ्छितसिद्धये।। ६९।।
तथा दमनकैः पत्रैर्हवनाच्छ्रियमश्नुते। यद्वर्णानि प्रसूनानि जुहुयाद्विद्यया प्रिये।। ७०।।
तद्वर्णान्येव वासांसि लभते साधको ध्रुवम्। मरिचैः सर्षपैस्तैलप्लुतैर्होमान्निशासु वै।। ७१।।
लज्जामानकुलत्यागलोलामिष्टां समानयेत्। पाटलीकुन्दमन्दारशेफालिकुसुमोद्भवैः।। ७२।।
चम्पकाशोकपुन्नागनमेरुकुसुमैः शुभैः। हवनाद्वशयेत् सर्ववनिताः क्षौद्रसम्प्लुतैः।। ७३।।
तैरेवाज्यप्लुतैर्होमाद् वशयेत् पुरुषानपि। तै राज्यलक्ष्मीं लभते घृताक्तैर्हवनान्निशि।। ७४।।
समस्तजीवभुवनं वशयेत्तैः सितान्वितैः। अन्नैर्घृताप्लुतैर्नित्यं हवनादन्नवान् भवेत्।। ७५।।
तथैव जुहुयान्नित्यमायुषे तिलतण्डुलैः। मध्यरात्रे तु लवणैः सुश्लिष्टपरिचूर्णितैः।। ७६।।
त्रिमध्वक्तैर्हुतैः सर्वान् वशयेदङ्गनाजनान्। तथा दध्यन्वितैर्लोणैर्होमाद् द्वेष्यं वशं नयेत्।। ७७।।
तथा पुण्ड्रेक्षुतोयाक्तैर्हुतैः स्युर्वशगा नृपाः। आज्यैस्तु केवलैर्होमाद् दिनैरुक्तैर्धनी भवेत्।। ७८।।
नित्यशो घृतहोमेन श्रीमान् भोगी च जायते। स्नातोऽनुलिप्तः स्रग्वी च सितगन्धस्रगम्बरः।।७९।।
सम्पूज्य देवीं तुष्टात्मा संस्कृते हव्यवाहने। सवत्सायाः सितायाः गोः पयसि द्विगुणे पचेत्।।८०।।
प्रस्थमात्रं तण्डुलं तु शालिजं सितमेव च। सितदुग्धघृतोपेतं कृत्वा वै सिक्थकं महत्।। ८१।।
गृहीत्वा पाणिना विद्यां जपित्वा शतवारकम्। श्रियं मे देवि देहीति प्रोक्त्वा काष्ठोज्ज्वलेऽनले।।८२।।
हुत्वा समाप्य पूजां तु तथा भुक्त्वा तु तद्दिनम्। मौनी तु गमयेदब्दात् श्रियं प्राप्नोति पुष्कलाम्। ८३।
निरन्तरं नित्यशश्च जुहुयाच्चेत्तदन्वयम्। न कदापि रमा मुञ्चत्यद्भुता मन्त्रशक्तयः।। ८४।।
पायसैर्जुहुयात् पूर्णास्वर्कवारेषु साधकः। निवेदयेच्च पूजायामब्दादाढ्यतमो भवेत्।। ८५।।
सवत्सारुणवर्णाया गोः क्षीरान्नवनीतकम्। तद्दिनान्नं तु कह्लारप्रसूने निक्षिपेत्ततः।। ८६।।
तदुद्धृत्य हुनेदग्नौ भौमवारे तदुच्चके(गे)। काले तावद्दिनैर्लक्ष्मीं भूषा(म्या)ढ्यां लभते ध्रुवम्।।८७।।
तथा धवलरूपाया नवनीतं सिताम्बुजे। निधायादाय मौनेन हुनेदग्नौ भृगोर्दिने ।। ८८।।
सप्तवारप्रयोगेण महतीमाप्नुयाच्छ्रियम्। नृपमान्यां सर्वहृद्यां नानाभोगान्वितां शुभाम्।। ८९।।
तथारुणासमुद्भूतनवनीतं रवेर्दिने। निधाय विकचे पद्मे कर्णिकायां ततस्तु तत्।। ९०।।
जुहुयादष्टभिर्वारैराढ्यः स्यात् साधकः शिवे। कर्णिकारस्य पुष्पाणि तथा चम्पकजान्यपि।।९१।।
जुहुयान्नवनीताक्तान्युच्चे स्वोच्चगते गुरौ। निरातङ्कमहार्घ्यां च राजचौरापहारकैः।। ९२।।
प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं या तदन्वयगामिनी। केवलं नवनीतेन सितोपेतेन होमतः।। ९३।।
कीर्तिलक्ष्मीधनारोग्यविजयैरायुराप्नुयात्। बन्धूकैः किंशुकैश्चूतैस्त्रिमध्वक्तैर्हुतक्रिया ।। ९४।।

---

१. 'कोत्तमः' ग. पाठः।

सौभाग्यलक्ष्मीविजयकान्तिप्रज्ञावहा भवेत्। दध्यन्नहोमादन्नाढ्यः साधकः स्यात् त्रिमासतः॥९५॥
आर्द्रेषु तालपत्रस्य खण्डेषु निजवाञ्छितम्। विलिख्य नवनीतेन समेतं जुहुयान्निशि॥ ९६॥
मण्डलान्मासतो वारात् प्राप्नोत्येव स्व[१]वाञ्छितम्। तथा पालाशपर्णेषु विलिख्य दरदैर्हुनेत्॥९७॥
कुङ्कुमैश्चूतपत्रेषु लिखित्वा वा हुनेन्निशि। चन्दनैः पानसे पत्रे विलिख्य जुहुयात्तथा॥ ९८॥
पक्षक्षौदैर्विलिख्येष्टं नागवल्लीदलेषु तैः। हुतैरवाप्नोति निजवाञ्छितं प्रोक्तकालतः॥ ९९॥
कस्तरीलिखितं त्विष्टं पत्रे चम्पकभूरुहैः। तैर्हूतैस्तदवाप्नोति तद्दिनैस्तद्विधानतः॥ १००॥
एलालवङ्गकक्कोलजातीफलसमन्वितैः। सितैरालिख्य च स्वेष्टं पत्रं पद्मसमुद्भवे ॥ १०१॥
जुहुयात् तस्य संसिद्ध्यैर्बहुभिः किमिहोदितैः। नासाध्यमस्ति भुवने विद्याहोमैरुदीरितैः॥ १०२॥

इति। अथ क्रूरहोमः। तत्र तन्त्रराजे—(३१ प०)

सूक्ष्मं परं च होमं ते कथितं परमेश्वरि। इदानीं स्थूलहोमं तु कथयाम्यरिमर्दनम्॥ १॥
तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे कुर्याद्धोममुदीरितैः। विधानैर्द्वेषनिधनरोगनिग्रहचाटनम् ॥ २॥
आयुर्दायं रिपोर्ज्ञात्वा लग्नोक्तर्क्षानुकूलतः। तदात्मकग्रहाणां च स्थितिमष्टकवर्गकम्॥ ३॥
त्रयाणामानुकूल्येन[२] कुर्यात्तदभिचारकम्। अन्यथा क्रूरकर्माणि कुर्वाणं नाशयन्ति हि॥ ४॥
तान्येव कर्माणि तत[३]स्तत्त्रयप्रातिकूल्यतः। कुर्यात् तद्देवताभक्तिमास्तिक्यं वर्तनं गुरुम्॥ ५॥
तत्पार्श्ववर्तिमन्त्रज्ञानालोच्य रिपुनिग्रहम्। विदध्यादन्यथा शक्ति[४]नैष्फल्यं वात्मनाशनम्॥ ६॥
रिपोरष्टमलग्ने च काले त्वष्टमराशिगे। स्थाने कुर्यादनिष्टानि तद्विनाशाय साधकः॥ ७॥
प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा। कुलीरसिंहमथ तन्निर्ऋत्यां कन्यका स्थिता[५]॥ ८॥
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम्। नक्रकुम्भावुत्तरतो मीन ईशे तु सुस्थितम्॥ ९॥
एवं राशिक्रमं ज्ञात्वा कुर्यात् कर्माणि देशितः[६]। काले तु पञ्च पञ्च स्युर्घटिकाः क्रमयोगतः[७]॥१०॥
चैत्रादिषु च मासेषु द्वादशस्वपि भास्करः। मेषादिराशिगो याति तथान्यैर्ग्रहमण्डलैः॥ ११॥
देहेषु प्राणिनां तद्वदष्टाङ्गुलिविभेदतः। मूर्धादिचरणान्तं तु तान् द्वादशसु लक्षयेत्॥ १२॥
त्रयाणामानुगुण्येन कुर्यात् कर्माणि नान्यथा। शुभाशुभानि कर्माणि[८] फलन्त्येवं कृते ध्रुवम्॥१३॥
तथाहनि विषस्थानान्यमृतस्थानकानि च। ज्ञात्वा विदध्यात् पुत्तल्याः प्रयोगं सर्वतस्तथा॥ १४॥
सिते हृदि स्तनगले नासाक्षिणि तथा श्रुतौ। भ्रूशङ्खमूर्धमध्येषु तत्र भ्रूशङ्खमध्यतः॥ १५॥
कर्णे नेत्रे नासिकायां वर्तते पुरुषस्य तु। सव्यकण्ठे स्तनतटे हृदि नाभौ च गुह्यके॥ १६॥
जानुसन्ध्यङ्घ्रिपार्श्वेषु तथाङ्गुष्ठे च दक्षिणे। अङ्घ्रौ सन्धौ जानुगुह्ये नाभौ चेति सितेतरे॥ १७॥
तिष्ठेद्विषकला पुंसि स्त्रियां वामादि वर्तते। विषनाड्यां विषस्थाने वेधयेत् कण्ठकेन तु॥ १८॥
सङ्कोचकाख्येन तथा[९] तीव्रेणास्थिमयेन वै। बदरादिसमुत्थैर्वा तथाय:सारसूचिभिः॥ १९॥

---

१. 'स' क. पाठः। २. 'गुण्ये' ख. पाठः। ३. 'तथा' ख. पाठः। ४. 'शक्त्या' ख. पाठः। ५. 'तथा' ख. पाठः।
६. 'देशिकः' ग. पाठः। ७. 'भ्रम' क. पाठः। ८. 'सर्वाणि' क. पाठः। ९. 'तदा' ख. पाठः।

पुत्तल्यां यत्र तद्विद्धं तदङ्गं शत्रुदेहजम्। व्याधिना पीडितं कालादविधेयं भवेद् ध्रुवम्।। २०।।
तत्र तेनार्तिना क्लिष्टो जीवितेशपुरं व्रजेत्। पुत्तलीकरणं वक्ष्ये शृणु निग्रहसिद्धये।। २१।।
भौमशुक्रबुधाश्चन्द्रो भास्करः सौम्यभार्गवौ। मङ्गलौ गुरुमन्दार्किगुरवोंऽशकराशिपाः ।। २२।।
नक्षत्राणि चतुष्पादान्येवमष्टोत्तरं शतम्। एतावत्यश्च पुत्तल्यस्त्वंशकक्रमयोगतः ।। २३।।
प्रथमे नवके चन्द्रभास्करांशकयोः क्रमात्। षोडश द्वादश तथा मानमङ्गुलिसंख्यया।। २४।।
अन्यांशकेषु सर्वाश्च चतुर्दश समीरिताः। द्वितीये नवकेऽन्योषामध्यर्धाः स्युस्त्रयोदश।। २५।।
तृतीये नवकेऽन्येषां त्रयोदश समीरितम्। चन्द्रार्कयोरेकविधः प्रोक्तसंख्याक्रमस्तथा।। २६।।
पुत्तलीकरणे द्रव्यं चक्रिहस्तमृदान्वितम्। चितामृद्भस्मलवणं शुण्ठीपिप्पलिकायुतम् ।। २७।।
मरिचं गृहधूमं च लशुनं हिङ्गुसैन्धवम्। गैरिकं चेति कथितं पुत्तलीद्रव्यमीश्वरि।। २८।।
साध्यर्क्षवृक्षैः पिष्टैश्च माषचूर्णैश्च सिक्थकैः । वैरिदेहजरोमाद्यैरुपेतैः पुत्तलीक्रिया ।। २९।।
पुत्तलीदैर्घ्यमानं तु कृत्वाष्टांशमथैकतः। शीर्षे त्रयात् कटेरूर्ध्वं त्रयात् पादद्वयं तथा।। ३०।।
कटिप्रपदयोरेकमंशमेवं तु पुत्तलीम्। विधाय तन्त्रे सर्वत्र प्रयोगानाचरेत् ततः[1]।। ३१।।
पातालयोगे नीचाख्ये विषयोगे च मृत्युजे। नाशयोगे च दिनजमृत्यौ क्रकचयोगके।। ३२।।
चण्डीशचण्डायुधके महाशूले च काणके। रक्तस्थूणे कण्टकाख्ये स्थूणे पञ्चार्कसंज्ञके☜।। ३३।।
कुर्यात् प्रयोगान् प्रत्यर्थिभङ्गाय मरणाय च। निग्रहाय निरीक्ष्यैवं कुर्यात् सिद्धिमवाप्नुयात्।। ३४।।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटमारणे। विदध्यात् पुत्तलीः सम्यक् चतस्रः प्रोक्तयोगतः।। ३५।।
पिष्टेन सिक्थेन तथा चक्रिहस्तमृदापि च। साध्यनक्षत्रवृक्षेणाप्युक्तलक्षणसंयुताः।। ३६।।

☜क्रूरकर्मप्रयोगारम्भोक्तयोगानां ज्योतिःशास्त्रोक्तानां वचनानि तथा। तत्र नीचाख्यः पाताललयोगः—तैलिभे दशमांशस्थस्थौल्यो याति यदोदयम्। तदा नीचाह्वयो योगः पातालो गर्हितः शुभे।। विषयोगः—चतुर्थी सप्तमी चार्के चन्द्रे षष्ठ्यष्टमी तथा। इन्द्राहिधर्मा भौमे तु (वि) चिह्नाद्ये रवयो बुधे।। षडवत् स्वरयो जीवे विष्णुधर्मारुणस्थिते। एकादशी शुभेऽह्नि च मन्दे स्युस्तिथयो विषम्।। पञ्चद्विराकाः सप्ताद्य षडष्टतिथिभिर्विषम्। अश्विचित्रा जयास्येन्द्रश्रोणान्त्याः सूर्यवारतः। मृत्युयोगो यमर्क्षाणि मैत्रचित्रामघोत्तराः। चित्रा त्रीण्युत्तराषाढा श्रविष्ठा च पदक्रमात्।। चित्राप्युत्तरफाल्गुन्यो मैत्रस्वात्यैन्द्रवैष्णवम्। पौष्णतिष्यादितिश्रोणा मृत्युवोऽर्कादिवारगाः।। नाशयोगः— पित्रेन्द्राग्न्यैशमूलर्क्षवारुणाजाप्यभैर्युताः। सूर्यादिवाराः क्रमशो नाशयोगाः समीरिताः। दिनमृत्यवः— वसुहस्ते विशाखार्द्रे ब्रह्माही याम्यनैर्ऋते। द्वन्द्वेष्वेषु चतुर्थांशाः क्रमशो मृत्यवोऽह्नि चेत्।। क्रकचयोगः—तिथेश्च वारस्य च यत्र संख्यया त्रयोदश स्युर्मिलने कृते सति। स्मृतः स योगः क्रकचाभिधानको विवर्जनीयः शुभकर्मसु ध्रुवम्।। चण्डीशचण्डायुधम्—सूर्याधिष्ठितभाद्भुजङ्ग-पितृभत्वाष्ट्रेषु मैत्रे श्रुतौ पौष्णे च क्रमशे भानुगमया शीतांशुना संयुतम्। धिष्टे तपतिथे पतत्यवितथं चण्डीशचण्डायुधं तस्मिन्नात्महितेच्छुभिर्निजहितं कार्यं नकार्यं बुधैः।। महाशूलम्—कृत्तिकाद्याः सप्त सप्त ताराः पूर्वादिषु क्रमात्। भं ग्रहादिमुखं तत्र महाशूलमशोभनम्।। काणार्द्धनक्षत्राणि—त्यजेदजैकपादादेस्त्रिसप्तवासरात्परे। षडा वा नव काणाः स्युर्दोषघ्नं वारभे विना।। रक्तस्थूणम्—धान्यस्त्रं चतुरो राशींस्त्यजेद्विघ्नां रुतः स्फुटम्। तं जिष्टलब्धनक्षत्रं रक्तस्थूणमिति स्मृतम्। कण्टकस्थूणम्—भौमेनार्केन संयुक्ता दक्षाद्यावति मूलकं। मूलान्ता च त्रिभे स्थूणकण्टकाख्ये इमे क्रमात्। घूमाद्यावतिधामूल कण्टकावति घर्षकं। तावन्ति कण्टकस्थूणतत्त्रयमप्यदोषदम्। पञ्चार्कदोषाः— बालात् कोङ्गस्तु गोपाले सार्कशे सर्वसारथे। त्वर्के च पञ्चधूमाद्या लग्ने एतैर्युतैस्त्यजेत्।। इमे योगः श्रीतन्त्रराजटीकायां टीकाकृतोक्तः।

१. 'नरः' ख. पाठः।

आसने पादयो: स्थाने कुण्डमध्ये च साधक:। पिष्टमृत्तरुजा: खात्वा स्थापयेत् सिक्थमम्बरे।।३७।।
कुण्डमध्यादुपर्युर्ध्वपदां न्यक्‌शीर्षिकामपि। एवं साधारणं कृत्वा कुर्यात् कर्म समीरितम्।। ३८।।

इति। अथैतेषां विषमपदव्याख्या—तत्र निग्रहशब्दो युद्धादिषु पराजयविषय:। आयुर्दायमित्यादिनाशनमित्यन्तानां चतुर्णां श्लोकानामयमर्थ:— रिपोरभिचारकाले ज्योति:शास्त्रे होरास्कन्धोक्तप्रकारेण तस्य तात्कालीनायुर्दायं गोचराष्टकवर्गेषु ग्रहाणां स्थितिं च विचार्यैतत्त्रयानुकूल्ये सति तस्याभिचारकर्म कुर्यात्, तत्प्रातिकूल्ये तु न कुर्यात्। तमनवेक्ष्य क्रियमाणानि क्रूरकर्माणि यत: कुर्वाणमेव नाशयन्ति, अत: सर्वथा निरीक्ष्यैवं कुर्याद् इति। अथ च शत्रोर्देवताभक्तिमास्तिक्यमाचारं गुरुं तत्पार्श्ववर्तिनो मान्त्रिकानपि ज्ञात्वा तेषामानुभावादिकं तद्विद्भिरालोच्य तत्प्राबल्ये सति तदभिचारादिकं च कुर्यादिति।।

रिपोरित्यादिश्लोकस्यायमर्थ:— तत्र शत्रोर्जन्मर्क्षराशेश्चन्द्रलग्नराशेर्वाष्टमे लग्ने तदुदयकाले वक्ष्यमाणद्वादश-राशिस्थानेषु रिपोरष्टमराशिगे स्थाने तद्विनाशाय कर्म कुर्यादिति।।

प्राच्यामित्यादिश्लोकद्वयस्यायमेवार्थ:— तत्राभिचारादिकर्मकरणार्थं रचिते मण्डपादौ चतुरस्त्रीभूते नवधा विभक्ते पूर्वदिग्गतखण्डे उत्तरदक्षिणे क्रमेण मेषवृषयो: स्थानद्वयम्, आग्नेय्यां मिथुनस्य, दक्षिणे पूर्वपश्चिमक्रमेण कर्कसिंहयो:, नैर्ऋत्यां कन्याया:, पश्चिमे दक्षिणोत्तरक्रमेण (तुलावृश्चिकयो:, वायव्यां धनुष:, उत्तरे पश्चिमपूर्वक्रमेण मकर)कुम्भयो:, ईशाने मीनस्येति। सुस्थितमित्यनेन कालचक्रस्थराशिचक्रवन्न भ्रमतीत्युक्तम्।।

एवमित्यादिश्लोकस्यायमर्थ:— उक्तक्रमेण देशेषु राशिस्थितिक्रमं ज्ञात्वा कालेऽपि सूर्याधिष्ठितराश्यादित: प्रतिराशि पञ्चपञ्चघटिका भ्रमयोगेन द्वादशराश्युदयकालेऽपि ज्ञात्वा क्रूरकर्माणि कुर्यादिति। राशीनां न्यूनाधिकभावस्तु देश(काल)योर्वैषम्याद् गणितशास्त्रेषूक्त:, तदत्राप्रयोजकमिति।।

चैत्रादिष्वित्यस्य श्लोकस्यायमर्थ:—चैत्रादिषु सौरमासेषु मेषाद्येकैकराशिभुक्तिक्रमेण ज्योति:शास्त्रे तत्तद्ग्रहपरिवृत्तिप्रोक्तकालविशेषैश्चन्द्रादिग्रहमण्डलै: सह सूर्यो यातीति।।

देहेष्वित्यादिश्लोकस्यायमर्थ:— समस्तप्राणिनां देहेषु मेषादिमीनान्तक्रमेण अष्टाङ्गुलक्रमेण द्वादशस्थानेषु द्वादश राशीन् लक्षयेदिति।।

त्रयाणामित्याद्यस्यायमर्थ:— देशकालदेहात्मकानामानुकूल्येन वक्ष्यमाणकर्माणि कृतानि फलदानि भवन्तीत्यन्यथा न भवन्तीति।।

तथेत्यादिश्लोकस्यायमर्थ:— तत्राहनि प्रयोगदिवसे तथेत्यमृतस्थानकानीत्यत्रान्वय:। तानि तु पादाङ्गुष्ठपद-गुल्फजानुलिङ्गनाभिहृत्स्तनगलनासाक्षिकर्णभ्रूशङ्खमूर्धाख्यानि, एतेषु स्थानेषु शुक्लपक्षे पूर्व(पुरुष)दक्षिणपादाङ्गुष्ठमारभ्य मूर्धान्तं तत्पार्श्वस्थेषु पञ्चदशसु प्रोक्तेषु स्थानेषु तत्प्रथमादिपूर्णान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतिनिधि एकस्मिन् स्थाने एका कलेति यथाक्रममारोहक्रमादमृतकलाया: स्थितिर्भवति। कृष्णपक्षे तु शिरोवामभागादिवामपादाङ्गुष्ठान्तेषु प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु पूर्णानन्तरं प्रतिपदामारभ्यामावास्यान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममवरोहणक्रमेणामृत-कलास्थितिर्भवति। स्त्रीणां तु शिरोदक्षिणभागादि दक्षिणाङ्गुष्ठान्तं प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु पूर्णानन्तरं प्रतिपदादिदर्शान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममवरोहक्रमेण अमृतकलास्थितिर्भवति। दक्षपादाङ्गुष्ठादिशिरोदक्षिणभागान्तेषु प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु दर्शानन्तरं प्रतिपदमारभ्य पूर्णान्तपञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममारोहक्रमेणामृतकलाया: स्थितिर्भवति।। विषस्थानानि वक्ष्यमाणानि।

सितेत्यादिसार्धत्रयश्लोकस्यार्थः— तत्र शुक्लपक्षप्रथमा (तिपदा) दिदर्शान्तासु त्रिंशत्तिथिषु पुरुषाणां दक्षिणभागे हृदयादिमूर्धान्तेषु नवसु स्थानेषु पुनस्तद्वामपार्श्वे मूर्धादिपादाङ्गुष्ठान्तं पञ्चदशसु स्थानेषु पुनर्दक्षिणपादाङ्गुष्ठादिनाभ्यन्तं षट्सु स्थानेषु च सम्भूय त्रिंशत्स्थानेषु च स्त्रीणां तु तत्तत्तिथिषु तत्तत्स्थानेषु दक्षिणवामपार्श्वव्यत्ययक्रमेण विषपरिवृत्तिर्भवतीति।।

विषनाड्यामित्यादिसार्धत्रयश्लोकस्यार्थः— तत्र सप्तविंशतिनक्षत्रेषु प्रतिनक्षत्रं ज्योतिःशास्त्रे प्रोक्तविषात्मकनाडी-चतुष्टयकाले शत्रुप्रतिकृतिरूपपुत्तल्या देहे प्रोक्तविषस्थाने सङ्कोचकाख्यमत्स्यविशेषस्य देहोत्थतीव्रास्था बदरादिकण्टकैर्वा वेधात् शत्रोस्तत्तदङ्गव्याधिपीडातः प्रयोगस्य गौरवलाघवादिना शीघ्रं विलम्बेन वा मृत्युर्भवतीति।।

भौमेत्यादिश्लोकस्यायमर्थः— तत्रार्किः शनैश्चरः। भौमादयो ग्रहा मेषादिद्वादशराशीनामश्विन्यादित्रित्रिनक्षत्रो-द्भवद्वादशद्वादशांशकानां च क्रमेणाधिपतय इत्यर्थः।

नक्षत्राणीत्यस्य श्लोकस्यार्थः— अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राणि प्रतिनक्षत्रं चतुश्चरणक्रमेणाष्टोत्तरशतचरणै-रष्टोत्तरशतांशका भवन्ति, तेषामष्टोत्तरशतपुत्तलिका भवन्ति।।

प्रथमेत्यादिश्लोकत्रयस्यायमर्थः— तत्राश्विन्याद्यश्लेषान्तनवनक्षत्रांशकेषु सूर्यसोमयोरंशकपुत्तलीनां क्रमेण द्वादशाङ्गुलं षोडशाङ्गुलं च मानं भवति। भौमादीनां चतुर्दशाङ्गुलमानं, मघादिज्येष्ठान्तद्वितीयनवकांशकानां सोमसूर्ययोः प्राग्वद्भौमादीनां सार्धत्रयोदशाङ्गुलमानं, मूलादिरेवत्यन्ततृतीयनवकांशकानां भौमादीनां त्रयोदशाङ्गुलमानं, सूर्यसोमयोः प्राग्वत्।।

पुत्तलीकरणे इत्यादिश्लोकत्रयस्यार्थः— तत्र चक्रिहस्तमृत् कुलालहस्तमृत्, चितामृद्भस्मसहितं लवणं च शुण्ठ्यादिचूर्णितं, लशुनं रसोनरसं, साध्यर्क्षवृक्षः साध्यनक्षत्रवृक्षः, सिक्तकं मधूच्छिष्टं, शत्रुदेहजरोमाद्यैरित्याद्यशब्देन तन्नखपादपर्शु च गृह्यते। अत्रायं निर्गलितार्थः। शत्रुनक्षत्रवृक्षेणैका पुत्तली कार्या, कुलालहस्तमृत्तिकयेतरा, माषपिष्टेनापरा, मधूच्छिष्टेन चेतरा, इति चतस्रः पुत्तल्यः सर्वकर्मसु कार्याः। तत्र क्रूरकर्मणि शुण्ठ्यादिद्रव्याष्टकं चिताभस्मादिभस्म शत्रुदेहरोमादीनि च यथायोग्यं चूर्णीकृतानि मृत्तिकायां पिष्टे मधूच्छिष्टे च मेलयित्वा पश्चात् तत्तत्पुत्तलिका कार्येति।।

पुत्तलीदैर्घ्यमानमित्यादिश्लोकद्वयस्यार्थः— तत्र तत्तदंशकोक्तपुत्तलीदैर्घ्याङ्गुलमानमष्टधा विभज्य तेष्वेकांशेन कण्ठादूर्ध्वमंशेन[१] कटिप्रदेशमंशत्रयेण पार्ष्णिभागादूर्ध्वमर्धांशेन प्रपदादिशेषाङ्गं च कुर्यादिति।।

सर्पशीर्षस्रुचा होमं कुर्यादशुभकर्मसु। वैरियोन्यसृजा कृत्वा चत्वरे[२] जुहुयात् तथा।। ३९।।
त्रिकोणकुण्डे यमदिङ्मुखो भूत्वार्धरात्रके। श्मशाने निर्जने देशे विदध्यादभिचारकम्।। ४०।।
यत्राभिचारहोमं तु करोति भुवि साधकः। तत्राभितो नृपो रक्षां कारयेदात्मसिद्धये।। ४१।।
न चेदरातिर्नृपतिश्चारैर्ज्ञात्वा निहन्त्यमुम्। स्वराष्ट्रसन्धौ कुर्वीत न कुर्वीत स्वमण्डले।। ४२।।
यदि कुर्यात् प्रमादेन मान्त्रिकोऽज्ञानमोहितः। तद्राष्ट्रं पीडयन्त्येव शनकैर्वैरिभूभृतः।। ४३।।
अक्षद्रुमसमिद्धेऽग्नौ तत्फलैश्च[३] करञ्जकैः। हैमीदलरसाक्तैस्तु होमाच्छत्रून् विनाशयेत्।। ४४।।
नक्तमालसमिद्धेऽग्नौ तत्फलैर्वा तथा हुनेत्। रिपुरुग्रोऽपि रोगार्तः प्रयाति यमसादनम्।। ४५।।
उन्मत्तकाष्ठैः प्रज्वाल्य वह्निं तद्बीजकैर्हुनेत्। तत्पत्राम्बुप्लुतैर्मासादरातिर्मृतिमाप्नुयात्।। ४६।।

---

१. 'अर्धांशेन' क. पाठः। २. 'तथा तु' ख. पाठः। ३. ६. 'फलैर्वा' ख. पाठः।

आरग्वधसमिद्धेऽग्नौ तत्समिद्भिश्च तत्फलैः। वितस्तिमात्रैस्तैलाक्तैर्हवनाद्वैरिणो मृतिः॥ ४७॥
अरुष्करसमिद्धेऽग्नौ तद्‌बीजैस्तद्घृताप्लुतैः। होमादरातेस्तीव्रेण ज्वेरण स्यात् मृतिर्ध्रुवम्॥ ४८॥
सौवीराक्तैश्च कार्पासबीजैर्होमात् तु मण्डलात्[1]। अरातीनामथान्योन्यकलहान्निधनं भवेत्॥ ४९॥
सर्षपाज्याप्लुतैः शुण्ठीमागधीमरिचैर्हुनेत्। वैरिजन्मर्क्षवृक्षाग्नौ मण्डलात् तन्मृतिर्ज्वरात्॥ ५०॥
प्रागुक्तैः पुत्तलीं कृत्वा द्रव्यैरुक्तविधानतः। सर्षपारुष्करघृतसंसिक्तैर्जुहुयान्निशि॥ ५१॥
प्रागवद्‌हुत्वा तदङ्गैस्तु क्रुद्धचित्तोऽरुणाम्बरः। रक्तस्रग्गन्धपुष्पाक्तैर्होमाच्छत्रून् विनाशयेत्॥ ५२॥
अरुष्करघृताभ्यक्तैस्तद्‌बीजैः सर्पशीर्षकैः। हवनाद्वैरिणो दाहज्वरप्राप्तिस्त्रिभिर्दिनैः ॥ ५३॥
वैरिनक्षत्रयोन्युत्थमांसैस्तद्रक्तसम्प्लुतैः। हवनात् तत्तरूद्भूतसमिधां हवनादपि॥ ५४॥
दिनैः कैश्चिद्रिपुः क्लिष्टो नाशमेति सुनिश्चितम्। द्रुमकुड्यनिपातेन निर्घातेनापि खड्गतः॥ ५५॥
सलिले पावके सर्पदंशान्मत्तद्विपाद् गदात्। यक्षराक्षसगन्धर्वपिशाचैर्ब्रह्मराक्षसैः॥ ५६॥
अन्यैर्वा कारणैः क्षिप्रं नाशमेति रिपुर्ध्रुवम्। निम्बपत्रैश्च कार्पासबीजैस्तत्काष्ठकाण्डजैः[2]॥ ५७॥
हवनात् सर्षपस्नेहसिक्तैर्विद्वेषणं भवेत्। नीचयोगे हुनेद्वह्नौ रिपुवृक्षसमेधिते॥ ५८॥
तद्वृक्षखण्डैस्तैलाक्तैर्निशामध्ये रिपुर्दिनैः। उच्चाटितः[3] प्रयात्येव मन्त्रशक्त्याभिताडितः॥ ५९॥
मृत्युपत्रैश्च तत्काष्ठैस्तद्‌बीजैस्तच्छुचौ हुनेत्। अरातेर्दन्तिनो वाहा रोगैर्नश्यन्ति निश्चितम्॥ ६०॥
गैरिकैः पुत्तलीं[4] कृत्वा रिपोरष्टमराशिके। प्रागुक्तकण्टकाद्यैस्तु यदङ्गं वेधयेच्छनैः॥ ६१॥
विषनाड्यां विषस्थाने तथैव यमकण्टके। अर्धप्रहरके शीर्षे प्रहरे वा शनैः शनैः॥ ६२॥
अरातेस्तत्तदङ्गे स्यान्निधनं प्रहरादिना। ग्रन्थिभिर्वा कण्टकादिक्षतवृद्धिविदारणैः[5]॥ ६३॥
तन्नक्षत्रोक्तवृक्षोत्थपुत्तलीं स्थापितेरकाम्। गर्दभीमेहसलिले संस्थाप्य क्वाथयेच्छनैः॥ ६४॥
रिपुर्दाहज्वरग्रस्तः शनैर्याति यमालयम्। मधूच्छिष्टेन तां कृत्वा तापयेन्निशि तां शनैः॥ ६५॥
तेनोन्मादज्वरग्रस्तः प्रयाति निधनं शनैः। तां तत्कण्टकविद्धाङ्गीं खनेत् पितृगहे निशि॥ ६६॥
क्षणात् पिशाचाविष्टश्च रिपुर्याति यमालयम्। प्रागुक्तैरेव तद्द्रव्यैरशेषैः पुत्तलीं तथा॥ ६७॥
निर्माय कुण्डमध्ये तां खात्वा[6]रातिमहीरुहैः। समिद्धेऽग्नौ तत्समिद्भिस्तैलाक्तैर्जुहुयान्निशि॥ ६८॥
सन्निपातज्वरस्तस्य वक्रजिह्वोऽतिमूढधीः। प्रलपन् शनकैर्देहं त्यजन् याति यमालयम्॥ ६९॥
तथाविधां तां प्रतिमां निखनेत् कृष्णपक्षके। नवम्य[7]ङ्गारदिवसे मातृगेहेऽग्रपीठके॥ ७०॥
सप्ताहान्निधनं वैरी प्रयाति निशि ताडितः। भूताद्यैः शिरसि स्वीये निर्घातवदलक्षितम्॥ ७१॥
सर्षपं माषचूर्णं च तिलं शालिजतण्डुलम्। पिष्ट्वा साध्यर्क्षवृक्षस्य शकलैरपि संयुतम्॥ ७२॥
एरण्डबीजैर्मिलितं कृत्वा पुत्तलिकां ततः। तद्वक्षोऽन्तर्निधायारिनाम तालस्य पत्रगम्॥ ७३॥

---

१. 'मन्द्रजात्' ख. पाठः। २. 'स्तज्जैः करञ्जजैः' ख. पाठः। ३. 'उच्चाटनं' ख. पाठः। ४. 'प्रागुक्तपुत्तलीं' ख. पाठः।
५. 'विदारुणैः' ख. पाठः। ६. 'चैवा' वक् संयुक्तैः' ख. पाठः। ७. 'म्यां मातृदिवसे' ग. पाठः।

सञ्जप्य तां स्पृशन् विद्यां तार्तीयप्रतिलोमतः[1]। सहस्रवारं साध्यस्य वधर्क्षेऽष्टमराशिगे।। ७४।।
निबध्य तां पादयोस्तु भानुवृक्षोत्थतन्तुना। गृहीत्वा जीवहस्तेन तां जपन्निक्षिपेच्छुचौ।। ७५।।
हुत्वाग्नौ तैः सहस्रं तु तामूर्ध्वाङ्घ्रिमवाङ्मुखीम्। तद्दिने तापतृष्णादिविह्वलेन ज्वरेण सः।। ७६।।
ग्रस्तदेहो लुठन् भूमौ विसंज्ञः प्रलपन् मुहुः। प्रयाति निधनं तूर्णं प्रयोगबलतः शिवे।। ७७।।
साध्यर्क्षवृक्षसम्भूतां पुत्तलीमर्कदुग्धतः। वज्रीक्षीरेण चालिप्तां बद्धां प्राग्वदधोमुखीम्।। ७८।।
साध्यनामादिसंयुक्तां कुण्डादूर्ध्वं प्रलम्बयेत्। जुहुयात् तत्समिद्भिस्तु तत्क्षीरक्तैर्निशान्तरा।। ७९।।
ज्वरार्तिः स्यादरातेस्तु त्रिभिरेव दिनैस्ततः। यद्यस्ति तस्य रक्षेच्छा तां तडागोदरे खनेत्।। ८०।।
जम्बालमध्ये तेनास्मात् सौख्यं तस्य शनैः शनैः। तथा यदि न कुर्वीत चिरं रोगात्मको भवेत्।।८१।।
तथा तामामभाण्डें तु निवेश्याङ्गारवासरे। चण्डिकायतने खात्वा तद्योनिं पुरतो[2] बलिम्।। ८२।।
निहत्य दत्त्वारातिं तु निहन्यादुपसर्गकैः। स्वगेहे चुल्यधः खात्वा तदुपर्यग्निवर्धनात्।। ८३।।
अविच्छिन्नमरातेः स्याज्ज्वरादिगदसम्भवः। तां तथा[3] क्लृप्तरूपां तु रुरुजङ्घास्थिसंयुताम्।। ८४।।
निबध्य पूर्वसूत्रेण द्विषद्गेहे खनेन्निशि। राशौ तदष्टमे मासात् प्रयात्युच्चाटितोऽन्यतः।। ८५।।
तथाविधं पुत्तलिकायुगं कृत्वोक्तमार्गतः। बिडालमूषकाचर्मनद्धं साध्याख्यया युतम्।। ८६।।
निखनेत् तीरयो[4]र्नद्याः पितृगेहेऽथवा ततः। मातृगेहे नदीपूर्त्यां विद्वेषः स्याद्द्वयोः सदा।। ८७।।
ता एव प्राग्वदुत्पाद्य साध्याख्यादिसमन्विताः। तद्विद्याजपसिद्धास्ताः खनेदरिगृहे पुनः।। ८८।।
मध्येऽष्टदिक्षु तु तथा तत्कुलोत्सादनं[5] भवेत्। एवं निकटवर्तीनामभिचार उदीरितः।। ८९।।
दूरस्थितानां द्विषतां कथं स्यादभिचारकम्। वदामि ते शृणु प्राज्ञे सुदूरस्थस्य वैरिणः।। ९०।।
विनाशने प्रयोगं तु क्षिप्रमप्यभिचारकम्। येनारिर्निकटस्थात् तु प्रागेव निधनं व्रजेत्।। ९१।।
साध्यर्क्षवृक्षैः[6]पुत्तलिका विधायाष्टौ शतं क्रमात्। ताः प्राग्वदीरितक्षीरद्वयासिक्ताः ससंज्ञकाः।।९२।।
तत्तदंशकमानापघनास्ताः[7] मध्यरात्रतः। एकामेकां हुनेद्वैरिदिङ्मुखस्ता अशेषतः।। ९३।।
तत्तदंशककाले वा सुदूरस्थोऽपि नाशभाक्। कथं वा मान्त्रिकबली निहन्तुं शक्यतां व्रजेत्।।९४।।
तच्छृणु त्वं शिवे वच्मि प्रकारं तस्य निग्रहे। तैर्मान्त्रिकैस्तस्य पूर्वं विद्वेषं कारयेत् ततः।। ९५।।
तद्विद्विष्टे निधनं तस्मिन् सुशक्यं स्यादनाश्रयात्। भाग्यादिकं महारक्षाकरं मान्त्रिकसङ्गतम्।। ९६।।
राजानं राजपुत्रं वा कथं हन्यात् प्रयोगतः। तन्मे कथय देवेश यद्युपायस्तु विद्यते।। ९७।।
वदामि ते शृणु प्राज्ञे त्वमोघं घोरविग्रहम्। अभिचारमरातीनामाशु नाशकरं परम्।। ९८।।
सिद्धमन्त्राननतिस्निग्धान् षोडशातिस्थिराशयान्। तैरविच्छिन्नरूपं[8] तु होमयेद्यामदिक्क्रमात्।।९९।।
तेन तन्निधनं भूयाद्रक्षितस्याप्ययत्नतः[9]। अरातिनिधनं कुर्यादेवमुक्तविधानतः।। १००।।

---

१. 'लोमजाम्' ख.पाठः। २. 'तत्पुरः' ख.पाठः। ३. 'तथोक्तस्वरूपां' ख.पाठः। ४. 'तीरतः' क.पाठः। ५. 'कुलोत्पादनं' ख. पाठः। ६. 'तत्साध्यवृक्षैः' ख. पाठः। ७. 'कवेलायां' क. पाठः। ८. 'तैरवच्छिन्नदर्पं' ख. पाठः। ९. 'पि यत्नतः' ग.पाठः।

अथ काम्यहोमद्रव्याणां मानम्। ज्ञानार्णवे– (१७ प०)

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धिदम्। पुष्पं समग्रं जुहुयात् कमलं चापि पुष्कलम्।। १।।
कुसुम्भबाणपुष्पाणि यथेष्टानि हुनेत् प्रिये। शतसंख्या राजिकाः स्युस्तिलाश्च शतसंख्यया।। २।।
लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं गान्धारमात्रकम्[1]। (चुल्लकार्धं दधिक्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत्।। ३।।
स्थूलं फलं महेशानि कूष्माण्डं मातुलिङ्गकम्। मनःप्रियैश्च खण्डैश्च फलं भवति निश्चयात्)।। ४।।
रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि। नारिकेलस्य खण्डं हि स्थूलं कुर्यान्मनःप्रियम्।।५।।
पर्वस्थाने चेक्षुदण्डं मनःसन्तोषकारकम्। द्राक्षाफलं समग्रं स्यान्नारङ्गं खार्जूरं तथा।। ६।।
गुग्गुलुः क्रमुकार्धं तु कुङ्कुमं च तथा भवेत्। गुञ्जासमं तु कर्पूरं कस्तूरी घुसृणं तथा।। ७।।
चन्दनं चागुरु देवि क्रमुकेण समं भवेत्। मनःप्रियाहुतीः कृत्वा होमं कुर्यात् सुलोचने।। ८।।
एतदाहुतिमानं ते कथितं सर्वसिद्धिदम्। यथेच्छया वरारोहे श्रीविद्यां परितोषयेत्।। ९।।

इति। तथा शारदातिलके – (५ प० १४१ श्लो०)

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्। (उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः।। १।।
तत्समं मधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्।) दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः।। २।।
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः सक्तवोऽपि तथोदिताः। गुडः पलार्धमानः स्याच्छर्करापि तथा मता।। ३।।
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वमितः[2] स्मृतः। एकैकं पत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत्।। ४।।
कदलीनागरङ्गाणां फलान्येकैकशो विदुः। मातुलिङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधाकृतम्।। ५।।
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः। त्रिधाकृतं बिल्वफलं कपित्थं खण्डितं द्विधा।। ६।।
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा[3]। फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः।।७।।
दूर्वात्रयसमादिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला। ब्रीह्यो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गा माषा यवा अपि।। ८।।
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः। गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानतः।। ९।।
तिलाश्चुलुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः। शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः।। १०।।
पुरं बदरमानं स्याद्रामठं तत्समं स्मृतम्। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च।। ११।।
तिन्तिडीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः।.......................................।।

इति। कर्षलक्षणमुक्तं सारसङ्ग्रहे–''माषो दश गुञ्जाः स्यात् षोडशमाषो निगद्यते कर्षः''। इति। तैलस्याप्येतदेव परिमाणम्। शुक्तिः कर्षद्वयं (प्रसृतिमात्रं,) पलद्वयमात्रं, मुष्टिः पलं पलार्धं कर्षद्वयम्, ग्रासार्धमशीतिरक्तिकामितमिति। तदुक्तं पिङ्गलामते–

गुञ्जाभिर्दशभिर्माषः शाणो माषचतुष्टयम्। द्वौ शाणौ घटकः कोलो बदरं द्रक्षणश्च[4] सः।। १।।
तौ द्वौ पाणितलं कर्षः सुवर्णं कवलग्रहः। पिचुर्बिडालपदकं तिन्दुकोऽक्षश्च तद्द्वयम्।। २।।
शुक्तिरष्टात्मिका ते द्वे पलं बिल्वं चतुर्थिका। मुष्टिराम्रं प्रगुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा।। ३।।

---

१. 'तु पलमात्रकम्' ख. पाठः। २. 'पर्वावधि' ख. पाठः। ३. 'द्विधा' ख. पाठः। ४. 'ईक्षणश्च' ख. पाठः।

इति। मातुलुङ्गं बीजपुरं। उर्वारुकं कर्कटी। तदर्धांशा शुक्तिमिता:। चुलुकमात्रा: पाणितलप्रमाणा: कर्षमात्रा इत्यर्थ:। पुरं गुग्गुलु:। बदरमानमशीतिगुञ्जामितम्। रामठं हिङ्गु:। तथा नारदपञ्चरात्रे— "तृतीयं खण्डमूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणत:। इति। शैवागमेऽपि"—

"खण्डत्रयं स्यान्मूलानां सूक्ष्माण्येवं च होमयेत्। कन्दानामष्टमं भागं लतानामङ्गुलद्वयम्"।। १।।

इति। अथ समिध:। नारदपञ्चरात्रे—

समित् प्रादेशमात्रेण समच्छेदान्विता तथा। विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्रा: स्थूला: कृशा द्विधा।। १।।
क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वच: परिवर्जिता:। विशीर्णायु:क्षयं कुर्याद् द्विदला व्याधिसम्भवम्।। २।।
ह्रस्वया मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी मता। स्थूलाभिहरते लक्ष्मीं कृशायां जायते क्षय:।। ३।।
द्विधायां नेत्रदोषा: स्यु: कीटदष्टार्थनाशिनी। द्वेषं प्रकुरुते दीर्घा प्राणघ्यो निस्त्वच: स्मृता:।। ४।।
सक्षीरा नाधिकन्यूना: समिध: सर्वकामदा:। आर्द्रत्वचा समच्छेदा तर्जन्यङ्गुलिवर्तुला।। ५।।
ईदृशीं होमयेत् प्राज्ञ: प्राप्नोति विपुलां श्रियम्। श्रौते स्मार्ते च तन्त्रोक्ते समिध: परिकीर्तिता:।।६।।

इति। तथा वायवीयसंहितायाम्—

ता: पालाश्य: परा वापि याज्ञीया द्वादशाङ्गुला:। अवक्राश्चाप्यशुष्काश्च सत्वचो निर्व्रणा: समा:।।१।।
दशाङ्गुला वा विहिता: कनिष्ठाङ्गुलिसम्मिता। प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्या: सकला अपि।।२।।

इति।। अथ काम्यहोम(जप)विधि:। तत्र ज्ञानार्णवे—(१७ प०)

चक्रं समर्चयेद्देवि सकलं नियतव्रत:। बाह्यमध्यगतं वापि मध्यं वा चक्रमर्चयेत्[१]।। १।।
उपचारै: समाराध्य सहस्रं प्रजपेच्छुचि:। तदग्रे संस्थितो मन्त्री ततोऽनन्तफलं लभेत्।। २।।
ध्यात्वाथवा च.राजमन्त:पूजासमन्वितम्। जपारम्भं सुधी: कुर्यान्महापातकहा भवेत्।। ३।।
निगदेनोपांशुना वा मानसेनाथ वा जपेत्। निगद: परमेशानि स्पष्ट[२] वाचा निगद्यते।। ४।।
अव्यक्तस्तु स्फुरदोष्ठ उपांशु: परिकीर्तित:। मानसस्तु वरारोहे चिन्तनान्तररूपवान्[३]।। ५।।
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने। उपांशूचारितैकेन[४] तुल्यं भवति शैलजे।। ६।।
उपांशुर्लक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे। मानसोच्चारणात् तुल्यमेकेन परमेश्वरि।। ७।।
मुद्रासन्नद्धयोग: सन् पूर्वोक्तध्यानयोगत:। लक्षमात्रं जपेद्यस्तु सर्वपापै: प्रमुच्यते।। ८।।
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि। महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशय:।। ९।।
ततो लक्षत्रयं जप्त्वा यन्त्रमात्रकलेवर:। महापातककोटीस्तु नाशयेन्नात्र संशय:।। १०।।
चतुर्लक्षजपे देवि महावागीश्वरो भवेत्। कुबेर इव देवेशि पञ्चलक्षान्न संशय:।। ११।।
षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत्। सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरीमेलको भवेत्।। १२।।
अष्टलक्षजपान्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नर:। अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये।। १३।।
वश्या भवन्ति राजानो योषितस्तु विशेषत:। नवलक्षप्रमाणं हि जपेत् त्रिपुरसुन्दरीम्।। १४।।

१. 'साधकोऽर्चयेत्' ख. पाठ:। २. 'स्फुटं' ख. पाठ:। ३. 'चेतनारूपवाञ्जपेत्' ख. पाठ:। ४. 'उपांसुस्मरणैनैव' क.पाठ

रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता हर्ता साक्षान्न संशयः। सर्वैर्वन्द्यः सदा स्वस्थः[1] सर्वसौभाग्यवान् भवेत्।।१५।।

इति।। अथ कूटत्रयस्य पृथक् साधनविधिः ज्ञानार्णवे— (१६ प० २ श्लो०)

एषा विद्या वरारोहे पारम्पर्यक्रमागता। भवबन्धं नाशयन्ती संस्मृता पापहारिणी।। १।।
जपान्मृत्युजयं शान्तिं ध्यानात् सर्वार्थसाधनी। दुःखदौर्भाग्यदारिद्र्यभयघ्नी पूजिता भवेत्।। २।।
महाघौघप्रशमनी स्मरणान्नात्र संशयः। पृथग्बीजत्रयस्याहं साधनं कथयामि ते।। ३।।
शुक्लाम्बरधरो वीरो गन्धकस्तूरिमण्डितः। मुक्ताफलस्फुरद्भूषा[2]भूषणः शुभ्रमाल्यधृक्।। ४।।
शुभ्रमन्दिरसंविष्टो ब्रह्मचर्यसमन्वितः। पूजयेत् शुभकुसुमैर्नैवेद्यमपि चोज्ज्वलम्[3]।। ५।।
पायसं दुग्धसम्पूर्णं तथामृतफलौदनम् । घृतगोलकसम्पन्ननानाशुभ्रान्नपूरितम् ।। ६।।
नैवेद्यं दर्शयेद् दैव्यै वागीश्वर्यै सुरेश्वरि। मनःसङ्कल्पशुद्धो वा साधयेन्मोक्षवाङ्मयम्[4]।। ७।।
वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन् बुधः। कर्पूरधवलां शुभ्रपुष्पाभरणभूषिताम्।। ८।।
अत्यन्तशुभ्रवदनां वज्रमौक्तिकभूषणाम्। मुक्ताफलामलमणिजपमालालसत्कराम्।। ९।।
पुस्तकं वरदानं च दधतीमभयप्रदाम्। एवं ध्यायेन्महेशानि सर्वविद्याधरो भवेत्।। १०।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्रवत्पीयूषवर्षिणीम्। तस्माज्ज्योतिर्मयीं ध्यायेज्जिह्वाग्रेऽमृतरूपिणीम्।। ११।।
पाषाणेन समो वापि मूर्खो जीवसमो भवेत्। अथ कामकलासक्तः साधकः परमेश्वरि।। १२।।
रक्तालङ्कारसुभगो रक्तगन्धानुलेपनः। रक्तवस्त्रावृतः सम्यङ्मध्ये कामकलात्मकम्[5]।। १३।।
रक्तपुष्पैश्च विविधैः कुङ्कुमादिभिरर्चयेत्। मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तां स्फुरद्दीपस्वरूपिणीम्।। १४।।
बन्धूककुसुमारक्तकान्तिभूषणभूषिताम्। इक्षुकोदण्डपुष्पेषुवराभयलसत्कराम्।। १५।।
तदीयकान्तिसिन्दूरभरितभुवनत्रयाम्। चिन्तयेत् परमेशानि त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात्।। १६।।
राजानो वशमायान्ति पन्नगा राक्षसाः सुराः। कन्दर्प इव देवेशि योषितां मानहारकः।। १७।।
मनश्चिन्तितयोषित्तु दासीव वशगा भवेत्। चलज्जलेन्दुसङ्काशां तरुणारुणविग्रहाम्।। १८।।
चिन्तयेद्योषितां योनौ क्षोभयेत् सुरसुन्दरीम्। किं पुनर्मानुषीं देवि त्रैलोक्यमपि मोहयेत्।। १९।।
एषा वै चिन्तिता देवि सिन्दूराभा हृदि क्षणात्। आकर्षयेत्तदा शीघ्रं रम्भां वापि तिलोत्तमाम्।।२०।।
रक्तवर्णां स्त्रियं ध्यात्वा तदीयमहसा ततः। तस्या मूर्ध्नि स्मरेद् बीजं स्रवत्पीयूषवर्षणम्।। २१।।
ध्यायन् सम्मोहयेत् देवि मदनोत्तप्तमानसम्। क्षणमात्रेण देवेशि त्रैलोक्यं वशमानयेत्।। २२।।
एतत्कामकलाध्यानात् पञ्चकामा वरानने। मोहयन्ति जगत्सर्वं प्रयोगं शृणु पार्वति।। २३।।
पूर्वोक्तकामा देवेशि ज्ञातव्याः पञ्चसङ्ख्यकाः। विदर्भ्याद्येन कामेन मन्मथान्तर्गतं कुरु।। २४।।
कन्दर्पसम्पुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः। मकरध्वजसंज्ञं तु सर्वमेतद्वरानने ।। २५।।

---

१. 'सर्वबन्धविनिर्मुक्तः' ख. पाठः। 'स्वच्छ' क. पाठः। २. 'दाम' ख. पाठः। ३. 'नैवेद्यैरपि निर्मलैः' ख. पाठः।
४. 'वाग्भवाक्षरम्' ख. पाठः। ५. 'लात्मना' क. ग. पाठः।

मीनकेतुगतं कुर्यान्मोहयेज्जगतीमिमाम्। त्रैलोक्यमोहनो नाम प्रयोगोऽयं प्रकीर्तितः।। २६।।

इति।। अत्र विदर्भ्येत्यादि कुर्यादित्यन्तस्य पादोनश्लोकद्वयस्यायमर्थः— प्रथमं मन्मथकूटं क्लींकारमालिख्य तत्र ककारस्योदरे कामराजकूटं ह्रींकारमालिख्य, तस्य हकारोदरे मम रेफाध:[1] अमुकं तयोर्मध्ये वशमानयेति साध्यनाम ह्रींकारविदर्भितं विलिख्य, बीजद्वयाद्बहिस्तृतीयकन्दर्पकूटरूपेण ऐंकारद्वयेन त्रिकोणाकारेण (पुटितषट्कोणेनावेष्ट्य तस्य षट्सु कोणोदरेषु चतुर्थं मकरकेतनं कूटाक्षरं ब्लूङ्कारमालिख्य, षट्कोणान्तर्बहिर्मीनकेतनकूटाक्षरेण) स्त्रींकारेण संवेष्ट्य वाञ्छितार्थेषु विनियुञ्ज्यादिति। अत्र पञ्चमकूटाक्षरलेखनेन तदक्षरवह्निस्थानां सकलं यन्त्रं यथा भवति तथा गुरूक्तक्रमतः समालेख्यमिति रहस्यार्थः।। तथा—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शक्तिबीजस्य साधनम्। सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरं चिन्तयेत् परम्।। १।।
स्रवत्पीयूषधाराभिर्वर्षन्तीं विषहारिणीम्। हेमप्रभाभासमानगं विद्युन्निकरसुप्रभाम्।। २।।
स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णकलशं वरदाभये। ज्ञानमुद्रां च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम्।। ३।।
ध्यायन् विषं हरेन्मन्त्री नानाकारव्यवस्थितम्। तस्य संस्मरणाद्[2] देवि नीलकण्ठत्वमागतः।। ४।।
अहं मृत्युञ्जयो भूत्वा विचरामि जले स्थले। वैनतेयसमो मन्त्री विषभारसहस्रनुत्।। ५।।
भूतप्रेतपिशाचांश्च नाशयेद्रोगसञ्चयम्। चातुर्थिकज्वरान् सर्वानपस्मारांश्च नाशयेत्।। ६।।
अथ त्रिकूटा सम्पूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी। चिन्तिता साधकस्याशु त्रैलोक्यवशकारिणी।। ७।।
क्रमेण नाभिहृद्वक्त्रमण्डलस्थारुणप्रभा। पद्मरागमणिस्वच्छा चिन्तिता सुरवन्दिते ।। ८।।
तस्याष्टगुणमैश्वर्यं सौभाग्यं च प्रजायते। तन्नाम संस्मरन्[3] मन्त्री योगिनीनां भवेत् प्रियः।। ९।।
मातृचक्रं तस्य काये तेन सार्धं सुखी भवेत्। पुत्रवान् देवदेवेशि मन्त्री ध्यानान्न संशयः।। १०।।

इति।। तथा—

यदा चक्रस्थिता पूर्णा खेचरीसिद्धिदायिनी। चतुष्षष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्।। ११।।
चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते। आदौ सम्बोधनपदं मध्ये बीजाष्टकं बहिः।। १२।।
कलां ध्यात्वाङ्गनानङ्गे[4] कामराज इवापरः। पाशाङ्कुशधनुर्बाणैर्मादनैर्मोहयेत् प्रिये।। १३।।
त्रैलोक्यसुन्दरीर्देवीः किं पुनर्मर्त्ययोषितः। तथैव शक्तिबन्धैश्च शस्त्रैस्तन्मयविग्रहः।। १४।।
सिद्धगन्धर्वदेवांश्च वशीकुर्यान्न संशयः। एतामाराध्य देवेशि कामसौभाग्यसुन्दरः।। १५।।
हरिश्च परमेशानि त्रिपुराराधनात् प्रिये। त्रैलोक्यमोहनो भूत्वा स्थितिकर्ताभवत् सदा।। १६।।
एतत्समाराधनात्तु ब्रह्मा सृष्टिकोऽभवत्। चन्द्रसूर्यौ वरारोहे सृष्टिसंहारकारकौ ।। १७।।

इति।। अथ श्रीचक्रसाधनविधिः, तत्र ज्ञानार्णवे— (१४ प०)

शृणु सर्वाङ्गसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्। यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता सदाशिवः।। १।।
अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम्। पूज्यते तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः।। २।।
नगरं वशमायाति दशमण्डलमद्रिजे। योषितः सकलाः वश्या ज्वलत्कामाग्निपीडिताः।। ३।।

१.'रेफोपरि' ख.पाठः। २.'एतस्या स्मरणात्' ख.पाठः। ३.'मन्त्रमात्रं स्मरेत्'ख.पाठः। ४.'बीजविदर्भितत्'ख.पाठः। ५.'न्यसेदङ्गे'ख.पाठः।

विद्याविमूढहृदया: साधके न्यस्तमानसा:। तद्दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषित:।। ४।।

इति। तथा—

गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत्। अतीव सुन्दरं रम्यं तन्मध्ये प्रतिमां वराम्।। ५।।
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम्।...।। ६।।

इति। महाबीजं मूलविद्याया: द्वितीयकूटम्। विदर्भलक्षणं प्रागेवोक्तम्।

चिन्तयेत्तु तदा देवि योजनानां सहस्रश:[1]। अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्रापि दुर्लभा ।। ७।।
राजकन्याथवा चान्या[2] भयलज्जाविवर्जिता। आयाति साधकं सम्यङ्मन्त्रमूढा सती प्रिये।। ८।।
चक्रमध्यगतो भूत्वा[3] साधकश्चिन्तयेद्यदा। उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा ।। ९।।
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् परमेश्वरि। अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपवान् ।।१०।।
सर्वसौन्दर्यसुभग: सर्वलोकवशङ्कर:। सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहित(सन्नद्ध)विग्रह:।। ११।।
चक्रं प्रपूजयेद्यस्तु यस्य नाम विदर्भितम्। स भवेद् दासवद् देवि धनाढ्यो वापि भूपति:।। १२।।
चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषित:। अदृष्टाया महेशानि योनिमुद्राधरो बुध:।। १३।।
हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम्। नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम् ।। १४।।
विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यामृषिस्त्रियम्[4]। मदनोद्भवसन्तापस्फुरज्जघनमण्डलाम् ।। १५।।
कामबाणप्रभिन्नान्त:करणां लोलचक्षुषम्। महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते ।। १६।।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषित:।...।। १७।।

इति। अथ तिलकादिवश्यप्रयोग:। तथा—

रोचनाभागमेकं तु भागमेकं तु कुङ्कुमम्। अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत् समम्।। १८।।
एकत्र तिलकं कुर्यात् त्रैलोक्यवशकारिणम्। अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत्।। १९।।
राजानं नगरं ग्रामं येन यद्यत्प्रदृश्यते। मन्त्रिणा परमेशानि तत्सर्वं तस्य वश्यगम्।। २०।।
ताम्बूलं धूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि। दुग्धं घृतं चूर्णमात्रं[5] वस्त्रं कर्पूरमेव च।। २१।।
कस्तूरी घुसृणं चैलालवङ्गं जातिपत्रकम्। फलं वा वस्तु यद्यत् तु सकलं परमेश्वरि।। २२।।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्मै यस्मै प्रयच्छति। स वश्यो जायते देवि नात्र कार्या विचारणा।। २३।।
स्त्रियस्तु सकला वश्या दासीभूता भवन्ति हि। हठाकर्षणमेतत् ते कथितं नान्यथा भवेत्।।२४।।

इति। अथाकर्षणप्रयोग:। तथा—

रहस्यस्थानके मन्त्री लिखेद्रोचनया भुवि। चारुशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्।। २५।।
प्रतिमां सुन्दराङ्गीं तां[6] विलिख्य सुमनोहराम्। तद्भालकण्ठहृन्नाभि तत्तन्मण्डल(जन्मभूमिषु)योजितम्।।
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम्। सर्वसन्धिषु देहस्य मदनाक्षरमालिखेत् ।। २७।।
लीनं दाडिमपुष्पाभं चिन्तयेद् देहसन्धिषु। तदाशाभिमुखो भूत्वा स्वयं देवीस्वरूपक:।। २२।।

---

१. 'स्रकम्' ख. पाठ:। २. 'भार्या' ख. पाठ:। ३. 'गतां कृत्वा' ख. पाठ:। ४. 'रिपुस्त्रियम्' ख. पाठ:।
५. 'चूर्णपत्रं' ख. पाठ:। ६. 'मेतां' ख. पाठ:।

मुद्रां तु क्षोभिणीं बद्ध्वा मन्त्रमष्टशतं जपेत्। नियोज्य मदनागारे चन्द्रसूर्यकलात्मके।। २३।।
ततो विकलसर्वाङ्गीं कामबाणै: प्रतीडिताम्। अनन्यमनसं प्रेमभ्रममाणां मदालसाम्।। २४।।
एवमाकर्षयेन्नारीं योजनानां शतादपि।..।। २५।।

इति। तथा—

मातृकां विलिखेच्चक्रबाह्यत: सकलां प्रिये। भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्यपत्रेऽथ ताम्रजे।। २६।।
सोऽवध्य: सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषत:। तथैव मातृकायुक्तां स्वमाज्ञाचक्रमण्डिताम्।। २७।।
कर्पूरकुङ्कुमाद्यैस्तु अजरामरतां लभेत्। अनेनैव विधानेन रोचनागुरुकुङ्कुमै: ।। २८।।
लिखितं चक्रयोगेन साध्यनाम वरानने। विदर्भितं स्वनाम्ना तु यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थितम्।। २९।।
स्थावरं जङ्गमं वापि सकलं जनमण्डलम्। वशीकुर्यान्महेशानि पादाक्रान्तं न संशय:।। ३०।।
महात्रिपुरसुन्दर्या: कामकूटेन भास्वता। एकमेवमवष्टभ्य साध्यनामाक्षराणि हि ।। ३१।।
महात्रिपुरसुन्दर्या: कामकूटेन भास्वता। एकमेवमवष्टभ्य साध्ययनामाक्षराणि हि।। ३१।।
बहिरप्यालिखेद्वर्णैर्मातृकाया: प्रवेष्टयेत्। हेममध्यगतं कुर्याच्छिखायां वामके भुजे।। ३२।।
धारयेद्यत्र कुत्रापि त्रैलोक्यवशकारिणम्। राजेन्द्रमपि देवेशि दासभूतं करोति हि।। ३३।।
राजानो वाजिन: सर्वे महादुष्टा मदोत्कटा:। व्याघ्रा: केसरिणो मत्ता वश्यास्तस्य भवन्ति हि।।३४।।
पूर्वक्रमेण नगरं नाम सन्दर्भ्य शैलजे। मध्ये चतुष्पथे वापि चतुर्दिक्षु निधापयेत्।। ३५।।
महाक्षोभो योषितां तु जनानां महतामपि। तथैव सर्वदुष्टानां पुरस्थानां च जायते।। ३६।।
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्। ज्वलन्तीं सर्वराजेन्द्रमण्डितां सागराम्बराम्।। ३७।।
मासषट्कं चिन्तयेद्य: स सङ्क्षोभकरो भवेत्। कटाक्षक्षेपमात्रेण नार्यस्तस्य वशा: प्रिये।। ३८।।
राजानो ब्राह्मणा वैश्या: शूद्राश्च पशवो जगत्। दृष्ट्याकर्षयते देवि त्रैलोक्यं सचराचरम्।।३९।।
दृष्ट्या विषं नाशयते नात्र कार्या विचारणा। भूतप्रेतपिशाचांश्च ज्वरांश्चातुर्थिकादिकान्।। ४०।।
शूलगुल्मादिरोगांश्च दृष्ट्या नाशयति क्षणात्। एतत् सिन्दूरसुभगं रात्रौ सम्पूजितं प्रिये।। ४१।।
योजनानां शताद्देवि सम्यगाकर्षयेत् स्त्रियम्। यदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं सम्यग् देवि प्रपूज्यते।। ४२।।
तत्तद्दिक्षु स्थिताँल्लोकान् विदिक्स्थानपि सुन्दरि। वशमानयते शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवान्।। ४३।।
भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागरुकुङ्कुमै:। तन्मध्ये नगरं देशं मण्डलं खण्डमेव च।। ४४।।
नाम्ना विदर्भितं स्वस्य पूजयित्वा यथाविधि। भूमिमध्यगतं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्।। ४५।।
अथवा धारयेत् कण्ठे शिखायां बाहुमूलके। यत्र कुत्र स्थितं भद्रे क्षोभयेन्नगरं महत्।। ४६।।
अर्कक्षीरेण संयुक्तं धत्तूरकरसं तथा। रोचनाकुङ्कुमैश्चैव लाक्षालक्तकसंयुतम् ।। ४७।।
कस्तूरीद्रवसंयुक्तमेकीकृत्य तत: परम्। चक्रमेतत्समालिख्य यस्य नाम्ना महेश्वरि।। ४८।।
तस्य व्याघ्रभयं व्याधिरिपुसर्पगजादिकम्। चौरग्रहजलारिष्टं शाकिनीडाकिनीभवम् ।। ४९।।
भयं न विद्यते देवि परमन्त्राभिचारजम्। नित्यं समर्चयेद् देवि कालमृत्युं विनाशयेत्।। ५०।।
अथवा मध्यगां देवि त्रिकोणोभयमध्यगाम्। अधस्तान्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमान्विताम्।। ५१।।
निधापयेच्च सप्ताहाद् दासवत् किङ्करो भवेत्। पीतद्रव्यै: समालिख्य पीतपुष्पै: समर्चयेत्।।५२।।

१. 'समाहृत्याथ' ख. पाठ:। २. 'योजितम्' ख. पाठ:। ३. 'नूच्चाटकरं परम्' ख. पाठ:।

पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत् सर्ववादिनः। सहस्रवदनो देवि मूको भवति तत्क्षणात्॥ ५३॥
नाम्ना यस्य स वाग्मी हि पाषाण इव निश्चलः। जायते देवदेवेशि महानीलीरसेन तु॥ ५४॥
नाम संयोज्य विधिवद् दक्षिणाशामुखो बुधः। वह्नौ दग्ध्वा महेशानि मारयेद्वैरिणं प्रिये॥ ५५॥
महिषाश्वपुरीषाभ्यां सारमाकृष्य[1] शैलजे। गोमूत्रेण च संलिख्य नाम सन्दर्भ्य पूर्ववत्॥ ५६॥
(क्षिप्त्वारनालमध्यस्थं विद्वेषणकरं परम्। कृत्वा रोचनया नाम काकपक्षस्य मध्यगम्)॥ ५७॥
लम्बमानं तदाकाशे शत्रूच्चाटनकारकम्। महानीलीरोचनाभ्यां दुग्धलाक्षारसादिभिः॥ ५८॥
विलिख्य धारयेन्मन्त्री सर्ववर्णान् वशं नयेत्। अनेनैव विधानेन स्थापयेत्तीरमध्यगम्॥ ५९॥
तेनोदकेन संस्नातः पीतं तत्सर्ववश्यकृत्। सौभाग्यं जायते तेन पानीयेन न संशयः॥ ६०॥
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं नगरं वामलोचने। सप्ताहात् क्षोभयेत् सत्यं ज्वलमानं विचिन्तयेत्॥ ६१॥
अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम्। शिवां सम्पूजयेद् देवि सुगन्धैः कुसुमैः प्रिये॥ ६२॥
महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात् पापहा भवेत्। शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरथवार्कजैः॥ ६३॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः। पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पीतद्रव्यैः समर्चयेत्॥ ६४॥
पीतस्थाने समालिख्य स्तम्भयेत् सर्ववादिनः। उत्तराभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत्॥ ६५॥
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या सर्वलोकं वशं नयेत्। पश्चिमाभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत्॥ ६६॥
सम्पूज्य विधिवद्विद्वान् सर्वयोषिन्मनो हरेत्। वल्लभो जायते तासां दासीमिव वशं नयेत्॥ ६७॥
यमाशाभिमुखो भूत्वा चक्रं कृष्णं यदार्चयेत्। यस्य नामाङ्कितं तत्र मन्त्रहानिः प्रजायते॥ ६८॥
अग्निराक्षसवायव्यशम्भुकोणेषु पूजितम्। पूर्ववत् परमेशानि क्रमेण परितोषितम्[2]॥ ६९॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकारकम्[3]। रोचनालिखितं चक्रं क्षीरमध्ये क्षिपेद् बुधः॥ ७०॥
सर्ववश्यकरं देवि भवत्येव न संशयः। गोमूत्रमध्यगं सम्यक् शत्रूच्चाटकरं परम्॥ ७१॥
तैलस्थं चक्रराजं तु विद्वेषणकरं परम्। ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं शत्रुनाशकरं भवेत्॥ ७२॥
यद्येकान्ते चतुर्मार्गे सिन्दूररजसा लिखेत्। सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि॥ ७३॥
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत्। पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण तु॥ ७४॥
साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः। गिरावेकतरस्तद्वदर्चयेत् कुलमार्गतः॥ ७५॥
अजरामरतां लब्ध्वा सुखी भवति मान्त्रिकः। श्मशाने पूजयेच्चक्रं महाभूतदिने तु यः॥ ७६॥
पूर्वक्रमेण विधिवत् साधकः स्थिरमानसः। खड्गसिद्धिं च वेतालसिद्धिं च गुटिकां लभेत्॥ ७७॥
पादुकाञ्जनसिद्धिं च मनःसिद्धिं च धातुदाम्। समहावीरसिद्धिं तु यक्षिणीचेटकोद्भवाम्॥ ७८॥
तत्सर्वं लभते मन्त्री नात्र कार्या विचारणा।..॥ ७९॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे सप्तदशः श्वासः॥ १७॥

---

१. 'विद्या पुस्तकमित्यर्थः'। २. 'अनुद्यमः' ख. पाठः।

अथ

श्रीविद्यार्णवतन्त्रे

अष्टादश: श्वास:



अथ समयाचार: प्रयोगसारे—

देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने वा चतुष्पथे। पादुकासनविण्मूत्रमैथुनानि विवर्जयेत्॥ १॥
(देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवता:। सिद्धं सिद्धाधिवासांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्)॥ २॥
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम्। विरूपां मुक्तकेशीं च कामार्तां च न निन्दयेत्॥ ३॥
(कन्यायोनिं पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम्। नालोकयेत् परद्रव्यं परदारांश्च वर्जयेत्)॥ ४॥
धान्यगोगुरुदेवाग्निविद्या[1] कोशनरान् प्रति। नैव प्रसारयेत् पादौ नैतानपि च लङ्घयेत्॥ ५॥
आलस्यमदसम्मोहशाठ्यपैशुन्यविग्रहान्। असूयामात्मसम्मानं परनिन्दां च वर्जयेत्॥ ६॥

इति। आलस्यं मन्दता[2]। मदो विद्याधनाभिजात्यसम्पत्समुदितो मनस उल्लास:। मोहो मिथ्याभिनिवेश:। शाठ्यं शक्तिगूहणम्। पैशुन्यं परोक्षे परदोषप्रकाशनम्। असूया गुणेषु दोषारोप:। आत्मसम्मानं आत्मनि सम्यक्पूज्यत्वबुद्धि:॥

लिङ्गिनं व्रतिनं विप्रं वेदवेदाङ्गसंहिता:। पुराणागमशास्त्राणि कल्पांश्चापि न दूषयेत्॥ ७॥

वेदाङ्गानि प्रसिद्धानि। संहिता मन्वादिप्रणीतस्मृतिशास्त्राणि। आगमशास्त्राणि शिवाद्युक्तयामलादीनि। "आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं वै गिरिजामुखे। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते"॥ इत्यागमशब्दनिरुक्ति:। कल्पान् नक्षत्रकल्पो विधानकल्पोऽभिचारकल्प: शान्तिकल्पश्चेत्यथर्ववेदविभागरूपान् श्राद्धकल्पादिकानन्यांश्च॥

युगं मुसलमश्मानं दाम चुल्लीमुलूखलम्। शूर्पं सम्मार्जनीं दण्डं ध्वजं वैडूर्यमायुधम्॥ ८॥
कलशं चामरं छत्रं दर्पणं भूषणं तथा। भोगयोग्यानि चान्यानि यागद्रव्याणि यानि च॥ ९॥
महास्थानेषु वस्तूनि यानि वा देवतालये। दिव्योक्तानि[3] पदार्थानि भूताविष्टानि यानि वै॥ १०॥
लङ्घयेज्जातु नैतानि यद्वा न च पदा स्पृशेत्। या गोष्ठीर्लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी॥ ११॥
परहिंसारता या च न तामवतरेद् क्वचित्। प्रतिग्रहं न गृह्णीयादात्मभोगविधित्सया॥ १२॥

१. 'विद्या पुस्तकमित्यर्थ:'। २. 'अनुद्यम:' ख. पाठ:। ३. 'दिव्यात्तानि' क. पाठ:।

देवतागुरुपूजार्थं यत्नतोऽप्यर्जयेद्धनम्। धारयेदार्जवं सत्यं सौशील्यं समतां धृतिम्॥ १३॥
क्षान्तिं दयामनास्थां च दिव्यां शक्तिं च सर्वदा।...॥ १४॥

आर्जवमवक्रता। सत्यं यथादृष्टार्थभाषणम्। सौशील्यं सुस्वभावावस्थानम्। समता रागद्वेषादिराहित्यम्। धृतिं दुःखादिभिरवसीदतश्चित्तस्य स्थिरीकरणं, क्षान्तिः क्षमा, परिभवादिषूत्पद्यमानक्रोधप्रतिबन्धः। दया परदुःखासहनम्। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

विभीतकार्ककारञ्जस्नुहीच्छायां न संश्रयेत्। स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा॥ १॥
नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम्। एतत्स्पर्शं त्यजेद् दूरे खरश्वाजरजस्तथा॥ २॥

इति। लिङ्गपुराणे—

अजश्वानखरोष्ट्राणां मार्जनीभवरेणुकम्। संस्पृशेद्यदि मूढात्मा श्रियं हन्ति हरेरपि॥ १॥
न निन्देत् कारणं देवं न शास्त्रं तेन निर्मितम्। न गुरुं साधकं चैव लिङ्गच्छायां न लङ्घयेत्॥ २॥
नाद्याल्लङ्घेन्न निर्माल्यं तद्दद्याच्छिवदीक्षिते।...॥ ३॥

तदिति शिवनिर्माल्यम्। तथा नारदपञ्चरात्रे—

साधनस्य स्वभावेन केशश्मश्रुविलुञ्चितः[1]। सम्भवे नववस्त्रश्च मलयूकाविवर्जितः॥ १॥
सुविनीतः सदायश्च मन्त्रमाराधयेत् परम्।...॥ २॥

इति। साधनस्य स्वभावेनेत्यनेन पुरश्चरणमध्ये न वपनं कार्यमित्युक्त[2]मपनीतकेशश्मश्रुरित्यर्थः। अत्र तु—

गङ्गायां भास्करे क्षेत्रे पित्रोश्च मरणं विना। वृथा च्छिनत्ति यः केशांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥ १॥
प्रयागतीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः। कचानां वपनं कुर्याद् वृथा न विकचो भवेत्॥ २॥

इति। कालिकापुराणविष्णुभ्यां यद्वपनं निषिध्यते तददीक्षितपरम्। "जटिला मुण्डिताश्चैव शुक्लयज्ञोपवीतिनः ब्रह्मचर्यरताः शान्ता वेदान्तज्ञानतत्पराः"॥ इति कूर्मपुराणे शैवानां मुण्डितत्वोक्ते। तथा—

सामान्यसिद्ध्यै रक्षार्थं परेषां न कदाचन। प्रयोक्तव्यः स्वमन्त्रश्च आपद्यपि न चाचरेत्॥ १५॥
गारुडं भूतवादं च भयात् स्वार्थे[3] न चात्मनि। कृपया परया कुर्यादनाथेषु असंसदि॥ १६॥
सोमसूर्यान्तरस्थं च गवां चाश्वा (वाय्व)ग्निमध्यगम्। भावयेद् दैवतं विष्णुं गुरुं विप्रशरीरगम्॥ १७॥
मन्येत मातापितरौ विष्णुं तद्वत् प्रियातिथिम्। ज्ञेयो विश्वाश्रयो विष्णुरात्मा ज्ञेयश्च विष्णुवत्॥ १८॥
यत्र यत्र परीवादो मात्सर्याच्छ्रूयते गुरोः। तत्र तत्र न वस्तव्यं प्रयायात् संस्मरन् हरिम्॥ १९॥

---

१. 'विलम्बितः' ग. पाठः। २. 'त्युक्तेः अप' ग. पाठः। ३. 'चार्थे' ग. पाठः।

यै: कृता च गुरोर्निन्दा विभो: शास्त्रस्य नारद। नापि तै: सह वक्तव्यं वस्तव्यं वा कदाचन॥२०॥
कर्मणा मनसा वाचा न [1]कुर्यात् पारदारिकम्। न निन्द्या ब्राह्मणा देवा विष्णुर्धेनुस्तथैव च॥ २१॥
रुद्राश्चादित्या अग्निश्च लोकपाला ग्रहास्तथा। गुर्वी वैष्णवश्चापि पुरुष: पूर्वदीक्षित:॥ २२॥
न तेन कुत्रचित् कार्ये शापानुग्रहकर्मणी। न तेन मन्त्रो वक्तव्यो मुद्रा वा समया अपि॥ २३॥
स्वानुष्ठानेऽपि यत्कर्म सर्वं सर्वस्य गोपयेत्। मन्त्रगुप्तिश्च कर्तव्या सततं मन्त्रसिद्धये॥ २४॥

इति। तेन साधकेन। तन्त्रान्तरे—

सर्वभूतेष्वनुकम्पा दानं चातिथिपूजनम्। पञ्चेज्या तीर्थसेवा च स्वाध्यायो गुरुसेवनम्॥ १॥
सामान्यं सर्वलोकानामेष धर्म: सनातन:। ब्रह्मचारी दीक्षितश्चेत् त्रिसन्ध्यं देवमर्चयेत्॥ २॥
स्नानं त्रिषवणं तस्य वेदाध्ययनमेव च। भैक्ष्यं सम्प्रार्थयेत् साक्षाद् ध्यायेद् देवं निरन्तरम्॥ ३॥
गृहस्थो दीक्षया सिक्त: सर्वं पूर्ववदाचरेत्। न जपो नार्चनं नैव ध्यानं नापि विधिक्रम:॥ ४॥
केवलं सततं श्रीमच्चरणाम्भोजभागिनाम्। सन्न्यासिनां मुमुक्षूणां मानस: कथित: क्रम:॥ ५॥
परिव्राडविरक्तश्च विरक्तश्च गृही तथा। उभौ तौ नरके घोरे पच्येदाभूतसम्प्लवम्॥ ६॥
गृहस्थो धर्मपत्न्या च पूजयेद्देवमन्वहम्। दया दानं महार्हं च येन देव: प्रसीदति॥ ९॥
संन्यासिनां द्रव्यदाने नाधिकारोऽस्ति सुव्रत। वर्णिनां च वनस्थानां को वदेदनपेक्षितम्॥ ८॥

इति। अन्यत्रापि—

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत् स्मृत्वामृतमश्नुते। सर्वभूतहिते युक्त: समयाचारपालक:॥ १॥
अनित्यकर्मसन्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्पर:। मन्त्राणां साधनद्वारे शिवभावनतत्पर: ॥ २॥
परस्यां देवतायां तु सर्वकर्मनिवेदक:। अन्यमन्त्रार्चनश्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम् ॥ ३॥
कुलस्त्रीवीरनिन्दां च तद्द्रव्यस्यापहारणम्। स्त्रीषु रोषं प्रहारं च वर्जयेद्भक्तिमान् सदा॥ ४॥
स्त्रीमयं च जगत्सर्वं स्वयं चैव तथा भवेत्। स्त्रीषु द्वेषो न कर्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रिया:॥ ५॥
भक्ष्यं ताम्बूलमन्यच्च भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि। पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं लेह्यं तथा सुखम्॥ ६॥
सर्वं च युवतीरूपं भावयेद्यतमानस:। कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहित:॥ ७॥
बालां वा यौवनप्रौढां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा। कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्या विभावयेत्॥ ८॥
कुमारीपूजनं कुर्यात् सर्वकार्येषु सर्वदा। कुमारीपूजनाद् देवि सर्वसिद्धि: प्रजायते॥ ९॥

इति। कुमारीपूजनमग्रे वक्ष्याम:। अन्यच्च—

यस्मिन् मन्त्रे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृश:। कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव वा॥ १०॥
नाधर्मो जायते तेन किञ्च धर्मो महान् भवेत्। विस्मिता विलयं यान्ति पशव: शास्त्रमोहिता:॥११॥
भ्रान्तिस्तत्र न कर्तव्या सिद्धिहानि: प्रजायते। विशुद्धचित्तस्तत्सिद्धिं लभते चापवर्गजाम्॥ १२॥
निर्विकल्पस्तु मन्त्रज्ञो ब्रह्म साक्षान्न संशय:। भैरवो यदि सञ्जात: सिद्धिस्तत्र न संशय:॥ १३॥

---

१. 'हिंस्यात्परदारकान्' ग. पाठ:।

रात्रौ पूजा विशेषेण कर्तव्या सिद्धिमिच्छता। देव्यै निवेदितं यद्यत्तत् सर्वं भक्षयेन्नरः।। १४।।
यदन्ना देवता यस्य तदन्नः पुरुषोत्तमः। नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ते योगिनीगणाः।। १५।।
रक्तपानोद्यताः सर्वा मांसास्थिचर्वणोद्यताः।..।। १६।।

इति। कुलार्णवे—

असंस्कृतं वृथापानं बलात्कारेण मैथुनम्। स्वप्रीत्यै[१] आहृतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत्।। १।।
आत्मार्थं प्राणिनां हिंसा न कदाचिन्मयोदिता। बलिदानं विना देव्या हिंसा सर्वत्र वर्जयेत्।। २।।
अनिमित्तं तृणं वापि च्छेदयेन्न कदाचन। मामनादृत्य पुण्यं च पापं स्यात् प्रत्यवायतः।। ३।।
मन्निमित्तं कृतं पापं पुण्यं भवति शाम्भवि। यैरेवाप्यायनं द्रव्यैः सिद्धिस्तैरेव चोदिता।। ४।।
कुण्डीकुम्भ[२]कपालानि मधुपूर्णानि बिभृतः। किं न पश्यति लोकोऽयं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।। ५।।
श्रीगुरोः कुलशास्त्रेभ्यः सम्यग् विज्ञाय वासनाम्। पञ्चमुद्रा निषेवेत चान्यथा नरकं व्रजेत्।। ६।।
कुलद्रव्याणि सेवन्ते येऽन्यदर्शनमाश्रिताः। तदङ्गरोमसंख्याभि[३]र्जायन्ते भूतयोनिषु।। ७।।

इति। तथा— (८।७)

अदीक्षितैरनाचारैरतन्त्रज्ञैरदैवतैः। दूषकैः समयभ्रष्टैर्न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम् ।। १।।
अभिज्ञम्मन्यमानैश्च पाखण्डव्रतधारिभिः। पशुभिर्द्रव्यकर्मस्थैर्न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम्।। २।।
स्त्रीद्विष्टैर्गुरुभिः शप्तैर्भक्तिहीनैर्दुरात्मभिः। कुलोपदेशहीनैश्च न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम्।। ३।।
अनभिज्ञैरनर्हैश्च न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम्। पदवाक्यप्रमाणज्ञाः श्रुतिस्मृत्यर्थवेदिनः।। ४।।
कुलधर्मानभिज्ञा ये तान् सर्वान् वर्जयेत् प्रिये। स्वकुलेऽपि प्रसूता ये वृद्धाचारप्रवर्तिनः।। ५।।
त्वत्पूजाविमुखाः स्युश्चेत्तैः सङ्गं वर्जयेत् प्रिये। स्त्रीपुत्रमित्रबन्धूनां स्निग्धानामपि पार्वति।। ६।।
कुलाचारानभिज्ञायां सङ्गतिं वर्जयेत् प्रिये। अदृष्टपुरुषाणां च देशान्तरनिवासिनाम्।। ७।।
विना सङ्केतयोगेन न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम्। कुलीनं नावमन्येत पूजयेत् तं विचक्षणः।। ८।।
कुलीनेषु प्रसन्नेषु प्रसन्ना देवता भवेत्। स्वपात्रस्थितशेषं च न दद्याद्भैरवाय च।। ९।।
यदि दद्यात् कुलेशानि देवताशापमाप्नुयात्। आसनं भोजनं पात्रमुपानच्छयनानि च।। १०।।
अनभिज्ञैरनर्हैश्च सङ्करं नैव कारयेत्। कुलपूजान्तरायं तु यः करोति हि दुर्मतिः।। ११।।
स याति नरकं घोरमेकविंशतिभिः कुलैः। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलपूजारतो भवेत्।। १२।।
लभते सर्वसिद्धिं च नात्र कार्या विचारणा। आराधनासमर्थश्चेत् दद्यादर्चनसाधनम्।। १३।।
यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चनदर्शनम्। सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्।। १४।।
तत्फलं समवाप्नोति सकृत् कृत्वा क्रमार्चनम्। दत्त्वा[४] षोडशदानानि यत्फलं लभते नरः।। १५।।
तत्फलं समवाप्नोति दत्त्वा श्रीचक्रसाधनम्। सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत् फलमाप्नुयात्।। १६।।
तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्। बहुनोक्तेन किं देवि यथाशक्त्या ददाति यः।। १७।।

---

१. 'स्वप्रियेणा' ग. पाठः। २. 'कम्बु' ख. पाठः। ३. 'तैः' क. पाठः। ४. 'कृत्वा' क. पाठः।

कुलाचार्याय पूजार्थं कुलद्रव्यं स सर्ववित्। यथैवान्तश्चरा राज्ञः प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः॥ १८॥
तथान्तर्यागनिष्ठा ये प्रिया मे देवि नापरे। समर्पयन्ति ते भक्त्या त्वावाभ्यां पिशितासवम्॥ १९॥
उत्पादयति चानन्दं मत्प्रियः कौलिकः प्रिये। अनधीतोऽप्यशास्त्रज्ञो गुरुभक्तो दृढव्रतः॥ २०॥
कुलपूजारतो यस्तु स मे प्रियतमो भवेत्।..॥ २१॥

इति। तन्त्रान्तरे–

कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः। यदि भाग्यवशाद् देवि कुलदृष्टिः प्रजायते॥ १॥
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत्।..॥ २॥

तासां भगादिदेवीनाम्। तथा–

भगिनीं भगजिह्वां च भगास्यां भगसाक्षिणीम्। भगदन्तां भगाक्षीं च भगकर्णां भगत्वचाम्॥ ३॥
भगनासां भगस्तनीं भगस्थां भगसर्पिणीम्। सम्पूज्य ताभ्यो गन्धाद्यैर्मानसैर्गुरुमेव च॥ ४॥
नमस्कृत्य विधानेन स्वयमक्षोभितः सुधीः। बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा॥ ५॥
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्या विभावयेत्। तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमप्रियं तथा॥ ६॥
सर्वथा च न कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत्। स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियश्चैव विभूषणम्॥ ७॥
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा सिद्धिहानिकृत्[1]। जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत्॥ ८॥
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात् कुलजां शुभाम्। भक्षंस्ताम्बूलमन्यानि भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि[2]॥९॥
भुक्त्वा ह्यशेषभक्ष्याणि भुक्त्वा शेषं जपं चरेत्।..॥ १०॥

इति। वीरतन्त्रे–

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न च। न जपे कालनियमो चर्यादिषु[3] बलिष्वपि॥ १॥
स्वेच्छानियम उक्तश्च महामन्त्रस्य साधने।..॥ २॥

इति। महामन्त्रास्तु तत्रैव–

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी। भैरवी च्छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती मता॥ १॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका। एता एव महाविद्या दश विद्याः प्रकीर्तिताः॥ २॥
नात्र शुद्ध्याद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम्। न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम्॥ ३॥

इति। अत्र काली दक्षिणाकालिकादिभेदाः। तारा ताराभेदाः। महाविद्या षोडशीश्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। षोडशी पञ्चदशभेदसहिता। भुवनेश्वरी तद्भेदसहिता। भैरवी बालादिभेदसहिता। छिन्नमस्ता तद्भेदसहिता। विद्या धूमावती, तद्भेदा घर्मटीमर्कटीआर्द्रपटीतद्भेदसहिता। बगला तद्भेदसहिता, वाराह्यष्टभेदसहिता। सिद्धविद्या च, मातङ्गी सुमुखीश्यामालघुमातङ्गीराजमातङ्गीभेदसहिता। कमलात्मिका महालक्ष्मी भेदसहिता। तथा–

वस्त्रासनस्थानगेहदेहस्पर्शादिवारिणः। शुद्धिं न चाचरेदत्र निर्विकल्पमनाश्चरेत्॥ ४॥

---

१. 'स्वस्त्रियामपि' क.ख. पाठः। २. "भक्ष्यद्रव्याण्यथारुचिः" ख. पाठः। ३. 'नार्चादिषु' ख. पाठः।

इति। कुलार्णवे—

कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापं विशोधयेत्। याचयेदमृतं कौलं तदभावे कुलं भवेत्॥ १॥

कुलाचारेण यत् कृत्वा दण्डपात्रं तु भक्तितः। नमस्कृत्य च गृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत्॥ २॥

इति। अन्यत्रापि—

वृथा न गमयेत् कालं द्यूतक्रीडादिना सुधीः। गमयेद् देवतापूजाजपयागस्तवादिना॥ १॥

वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकाले प्रशस्यते। सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यो नात्र संशयः॥ २॥

शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जनार्दनः। शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा ध्रुवः॥३॥

शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न जानाति नारकी।..॥ ४॥

इति। वीरतन्त्रे—

स्नानादि मानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः। पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम्॥ १॥

सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित्। न विशेषो दिवा रात्रौ न सन्ध्यायां दिवानिशम्॥ २॥

सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः। महानिशि शुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत्॥ ३॥

रात्रावेव महापूजा कर्तव्या वीरवन्दिते। तद्दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते॥ ४॥

इति। महानिशा तु तत्रैव—

अर्धरात्रात् परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च। सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्दत्तं चाक्षयं भवेत्॥ ५॥

इति। गन्धर्वतन्त्रे—

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः। तदा वादी स्वसिद्धान्तहतः क्षितितलं व्रजेत्॥ १॥

पृथ्वीं कुलम्। नित्यश इति षोडशदिनं यावत्।

पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः। कवितां लभते सोऽपि अमृतत्वं च गच्छति॥ २॥

अत्रापि सहस्रमिति सम्बन्धः। पर्वतः स्तनः। नीलतन्त्रे—

पद्मं दृष्ट्वा यथा बिम्बं खञ्जनं शिखरं तथा। चामरं रविबिम्बं च तिलपुष्पं सरोरुहम्॥ १॥

त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावतः। मुखप्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यकम्॥ २॥

सुकेशं सुगतिं चैव सुगन्धिं सुखमेव च। लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति सादरम्॥ ३॥

पद्मं मुखं, बिम्बमधरम्, खञ्जनं चक्षुः, शिखरं स्तनं, चामरं केशं, रविबिम्बं सिन्दूरं, तिलपुष्पं नासिकां, सरोरुहं नाभिं, त्रिशूलं त्रिवलीमिति॥ भावचूडामणौ—

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने विजने वने। शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् सदा॥ १॥

महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत्। तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः॥ २॥

स भवेत् कुलदेवश्च कुलक्रमगतः शुचिः। ब्रह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि॥ ३॥

तत्सुधारससारेण तर्पयेन्मातृकानने। महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः॥ ४॥

रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत्। तिथिक्रमेण संख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि॥ ५॥

तदा मासेन सिद्धिः स्यात् सहस्रजपमानतः। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते॥ ६॥
तत्रैव महतीं सिद्धि[1] देवानामपि दुर्लभाम्।..॥ ७॥

इति। कुलचूडामणौ—

शृणु पुत्र रहस्यं मे समयाचारसम्भवम्। येन हीना च सिध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रशः॥ १॥
मानसः कुलशास्त्राणां कुलाचार्यानुचारिणाम्। तदा चरेत् तु सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः॥ २॥
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा। पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे॥ ३॥
चतुष्पथे जनशून्ये यदि दैवाद्रतिर्भवेत्। क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम्॥ ४॥
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितम्। क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम्॥ ५॥
कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च। कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये॥ ६॥
कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये। श्मशानं च शिवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन्॥ ७॥
प्रणम्यानेन मनुना[2] मन्त्री सुखमवापुयात्। घोरदंष्ट्रे करालास्ये फिटिशब्दप्रणादिनि॥ ८॥
घोरघोररवास्फारे नमस्ते विन्ध्य[3]वासिनि। भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि॥ ९॥
कृष्णावर्णं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम्। हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपूरुषान्॥ १०॥
महिषं कुलदेवं च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम्। प्रणम्य जयदुर्गां वा सर्वविघ्नैर्न लिप्यते॥ ११॥
जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते। भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते॥ १२॥
मद्यभाण्डं सदालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम्। दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणमेद्विमृशन् मनुम्॥ १३॥
घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये। नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते॥ १४॥
रक्तधारासमाकीर्णां वरदे त्वां नमाम्यहम्। सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे॥ १५॥
एतेषां दर्शने चैव यदि नैवं प्रकुर्वते। शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते॥ १६॥
कुलाचारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः। योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम्॥ १७॥
यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः। तथा कुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी॥ १८॥

इति। कुलाचारनियमस्तु यामले—

रविश्चन्द्रो गुरुः सौरश्चत्वारश्चाकुला इमे। भौमशुक्रौ कुलाख्यौ तु बुधवारः कुलाकुलः॥ १॥
द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम्। विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः॥ २॥
वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम्। कुलानि समयुग्भानि शेषभान्यकुलानि च॥ ३॥
तिथौ वारे च नक्षत्रे ह्यकुले स्थायिनो जयः। कुलाख्ये जयिनो नित्यं साम्यं चैव कुलाकुले॥४॥

इति। एवं कुलाचारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्यात्॥ अथ शिवाबलिः। कुलचूडामणौ—

बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः। मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत्॥ १॥
कालिकालीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी। पशुरूपधरायाति परिवारगणैः सह॥ २॥

१. 'ती सिद्धिः' ग. पाठः। २. 'मन्त्रेण' ख. पाठः। ३. 'चिड्डि' क. पाठः।

भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सस्वरम्। तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलभूषणम्।। ३।।
अवश्यमन्त्रदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम्। नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम्।। ४।।
तथैव कुलसेव्यानां नित्यता कुलपूजने। पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने।। ५।।
शिवारावेण तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम्। जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च।। ६।।
गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने। एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव।। ७।।
तत्रैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परमदुर्लभा। पशुशक्तिः पक्षिशक्तिर्नवशक्तिर्यथाक्रमात्।। ८।।
पूजनाद्द्विगुणं कर्म सगुणं साधयेत् ततः। तेन सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं पूजनं महत्।। ९।।
राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके। शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत्।। १०।।
गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव।। ११।।
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलार्चनप्रियैः। यदि न भुज्यते वत्स तदा नैव शुभं भवेत्।। १२।।
शुभं यदि भवेत् त्वत्र भुज्यते तदशेषतः। एवं ज्ञात्वा महादेव शान्तिस्वस्त्ययनं चरेत्।। १३।।

इति। कुलवर्त्म सर्वत्र गोपनीयम्। तन्त्रान्तरे—

निर्जने चैव कर्तव्यं न चैवं जनसन्निधौ। किं वा पक्षिपतङ्गादिदर्शने नैव कारयेत्।। १।।
पातालमण्डपे वापि गह्वरेषु नियन्त्रिते। निश्छिद्रमण्डपे वापि कर्तव्यं न च सन्निधौ।। २।।
कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम्। कुलं कुलपतिं चैव कुलमालां कुलाकुलम्।। ३।।
कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत्। प्रकाशात् कार्यहानिः स्यात् प्रकाशान्निधनादिकम्।।४।।
प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात् प्रकाशात् कुलहिंसनम्। प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन।। ५।।
पूजाकाले च देवेशि यदि कोऽप्यत्र गच्छति। दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम्।। ६।।
प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात्तत्प्रकाशान्न दूषणम्। गोपनाद्यदि व्यक्तिः स्यान्न गुप्तिरभिधीयते।। ७।।
कदाचिद्देहहानिः स्यान्न च व्यक्तिः[1] कदाचन। वरं पूजा न कर्तव्या व्यक्तिर्नैव कदाचन।। ८।।

इति। वीरतन्त्रे शिवाबलिमधिकृत्य—

नृपलं वैरिनाशाय समरे विजयाय च। छागलं परसैन्यस्य स्तम्भनाय विशेषतः।। १।।
सर्वरोगोपशमनं सर्वापद्विनिवारणम्। परवादिमुखस्तम्भे माहिषं शस्यते पलम्।। २।।
मृगजं सर्वशत्रूणामुच्चाटनकरं परम्। शशोत्थं वश्यकर्मादावाविकं कृष्टिकारकम्।। ३।।
पशूत्थं मोहने शस्तं विद्वेषे तुरगोद्भवम्। उच्चाटे चोष्ट्रजं शस्तं खरोत्थं प्रीतिनाशनम्।। ४।।
महामांसाष्टकस्येह फलं शृणु क्रमेण च। आयुःकीर्तिधनारोग्यपुत्रश्रीजयकान्तिदम्।। ५।।

इति। महामांसाष्टकं तत्रैव—

गोनरेभाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम्। महामांसाष्टकमिदं देवताप्रीतिकारकम्।। ६।।

---

१. 'हानिस्तु तव व्यक्तिः' ख. पाठः।

खेचराणां विशेषेण खेचरीसिद्धिदं फलम्। सर्वमांसं सुरायुक्तं दद्याद् देव्यै विशेषतः।। ७।।
मत्स्योत्थं मन्त्रसिद्ध्यै च कौक्कुटं कार्मणापहम्।..।। ८।।

इति। अथैतस्य प्रयोगः— "बिल्वमूले प्रान्तरे वा" इत्यादि विजनस्थले सन्ध्याकाले तत्र गत्वा बलिद्रव्यं क्वचित्संस्थाप्य स्वयमासने समुपविश्य पुरतः पाषाणादौ पूजायन्त्रमथवा त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्रात्मकं वा मण्डलं चन्दनादिना विरचय्य गुरुंगणपतिक्षेत्रेशान् प्रणम्य मूलेन प्राणायामत्रयर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासध्यानानि विधाय अद्येत्यादि अमुकदेवशर्मामुककामः श्रीपरदेवताप्रीत्यर्थं शिवाबलिविधिं करिष्ये इति सङ्कल्प्य "बलिमण्डलाय नमः" इति गन्धादिना मण्डलं सम्पूज्य, तत्र बलिद्रव्यं निक्षिप्य "बलिद्रव्याय नमः" इति बलिद्रव्यं सम्पूज्य, मूलविद्यामुच्चार्य "कालि काल्युमे शिवरूपिणि पशुरूपधरे परिवारगणैः सहात्रायाहि धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा" पुनर्मूलं अमुकदेवतायै सायुधायै सशक्तिकायै पशुरूपधरायै एष बलिर्नमः, इत्युत्सृज्य "गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव"।। इति प्रार्थ्य क्वचिद्दूरे गत्वा, एकान्ते स्वासनोपर्युपविश्य प्राणायामादिपूर्वकं मूलमन्त्रं जपेत्। यावदागत्य शिवाबलिं स्वीकृत्य रौति तावत्कालं जपित्वा जपं समर्प्य नद्यादौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य देवीं ध्यायन्मौनी पश्चादपश्यन् गृहमागच्छेदिति।।

अथ दूतीयागः। देव्रीयामले—श्रीमहादेव उवाच

दूतीयागविधिं वक्ष्ये कौलधर्मोत्तमोत्तमम्। तस्यानुष्ठानमात्रेण स्वयं ब्रह्मत्वमाप्नुयात्।। १।।
सन्ति नानाविधा धर्मा ऐहिकामुष्मिकप्रदाः। तत्सारं तु समालोक्य तथान्यन्मन्त्रसङ्ग्रहम्।। २।।
तन्मध्ये सारभूतं च सद्यःप्रत्ययकारकम्। न कस्यापि वरारोहे प्रोक्तवांस्त्रिदशेष्वपि[1]।। ३।।
दूतीयागे कृते मन्त्री सर्वज्ञो जायते ध्रुवम्। न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।। ४।।
देवा यक्षाश्च गन्धर्वा ऋषयश्च मुनीश्वराः। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तथान्ये पितृदेवताः।। ५।।
दूतीयागविधिं कृत्वा तत्तत्पदमवाप्नुयुः। विधिवत् सुकृती कृत्वा दूतीयागं तु पार्वति।। ६।।
कृतकृत्यो न सन्देहः सुन्दरी सुप्रसीदति। येषां वंशे प्रजायेत दूतीयागो महेश्वरि।। ७।।
ते धन्याश्च समृद्धार्थास्ते वन्द्याः सुहृदः समाः। कायेन मनसा वाचा सर्वथा न प्रकाशयेत्।। ८।।
सुतं पत्नीं शिरो दद्यान्न देयमिदमुत्तमम्। कुर्यात् प्रयत्नतश्चैव दूतिकायजनं प्रिये।। ९।।
यैः कृतं यजनं दूत्यास्तैरिष्टाः क्रतवोऽखिलाः। सर्वतीर्थमयः प्रोक्तः सर्वदेवमयो भवेत्।। १०।।
पुरश्चर्यादि सकलं कृतं तेन न संशयः। अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।। ११।।
आसमुद्रा च धरणी दत्ता तेन सदक्षिणा। मेरुमन्दरतुल्यानि सुवर्णान्यर्पितानि वै।। १२।।
गोकोटिदानाद्यत् पुण्यं तत्पुण्यं जायते प्रिये। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दूतीयागं समाचरेत्।। १३।।
पूजासम्पूर्णदं भद्रे सर्वारिष्टप्रशामकम्। यदनुष्ठानमात्रेण सर्वमाचरितं भवेत्।। १४।।
शक्तिपूजा प्रकर्तव्या विधिवद्भक्तिसंयुतैः। अथ दूतीं प्रवक्ष्यामि लक्षणानि च सुन्दरि।। १५।।
अचञ्चला सलज्जा च कुलगा(जा)मृदुभाषिणी। पट्वी सुशीला प्रियवाग् गुरुशुश्रूषणे रता।। १६।।

---

१. 'च' ग. पाठः।

दयाधर्मरता शान्ता हितदा सुखरूपिणी। रूपयौवनसम्पन्ना निश्चला मन्त्रतत्परा ।। १७।।
सदा तुष्टा सुपुष्टाङ्गी सुन्दरी मानिनी शुचिः। नातिकुब्जा च ह्रस्वा[1] च चारुसर्वाङ्गसंयुता।। १८।।
दीर्घकेशी विशालाक्षी सूत्रसुस्पष्टनासिका। पूर्णगण्डकपोला च रक्तोष्ठी च सुदन्तिका।। १९।।
वर्तुलाननगौरा च सुहनुः[2] कम्बुकण्ठिनी। सुबाहुवल्लीसंयुक्ता वृत्तपीनपयोधरा ।। २०।।
कृशमध्या सुनाभिः स्यादूरुस्तम्भातिमांसला। सरलाङ्गुलिकायुक्ता सर्वलक्षणसंयुता।। २१।।
कायेन मनसा वाचा स्वार्थलौल्यविवर्जिता। पूजनीया प्रयत्नेन पञ्चविंशतिवार्षिका।। २२।।
अप्रसूता विशेषेण श्यामा चैवोत्तमा मता।..।। २३।।

श्यामालक्षणं तु कामशास्त्रे—स्निग्धनखनयनदशना निरनुशया मानिनी स्थिरस्नेहा। सुस्पर्शशिशिरवराङ्गविवराङ्गना श्यामेति।।

अत ऊर्ध्वं न पूजा स्यादित्याज्ञा पारमेश्वरी। पूजिताश्चेद्वरारोहे[3] तर्पणं निष्फलं भवेत्।। २४।।
अर्चनेषु प्रयोक्तव्याः कामिन्यो भक्तिचेतसः। ता यदा रजसा युक्तास्ततः पूज्या महाफलाः।।२५।।
आत्मीयाश्च पराश्चैव पुष्पवतीः प्रपूज्येत्। तत्र द्वेषपरो मूर्खो दारिद्र्यं समवाप्नुयात्।। २६।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

याममात्रे गते रात्रौ कुलगेहं ततः पुमान्। ताम्बूलापूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः।। १।।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गो रक्तमाल्यानुलेपनः। रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारक्तगृहं गतः ।। २।।
रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः। पञ्चीकरणसङ्केतैः पूजयेत् कुलनायिकाम्।। ३।।

इति। कुलनायिका यथा तत्रैव—

नटी कापालिनी वेश्या पुक्कसी नापिताङ्गना। रजकी रञ्जकी चैव सैरन्ध्री च सुवासिनी।। ४।।
घटिका खटिका चैव तथा गोपालकन्यका। विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः।। ५।।
गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः। सङ्गोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः।। ६।।
अक्षताचारसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम्। सदापरिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम्।। ७।।
अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम्। विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बरविभूषिताम्।। ८।।
सुगन्धिरक्तकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम्। सदानुष्ठाननिरतां सात्त्विकीं भक्तिसंयुताम्।। ९।।
कालुष्यरहितां कुर्यात् सभायां भक्तवत्सलाम्। चातुर्यौदार्यदाक्षिण्यकरणादिगुणाधिकाम्।। १०।।
रूपयौवनसम्पन्ना शीलसौभाग्यशालिनीम्। सुधूपधूपितां तन्वीं दूतीकर्मसु योजयेत्।। ११।।

इति। कुमारीतन्त्रे—

नटी कापालिनी वेश्या रजकी नापिताङ्गना। ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका।। १।।

ब्राह्मणीति ब्राह्मणविषयम्।

मालाकारस्य कन्यापि नव कन्याः प्रकीर्तिताः। एवं भूतां यजेत्तां तु प्रसूनतूलिकोपरि।। २।।

---

१. 'खर्वा च दीर्घा' ख. पाठः। २. 'सुतनुः' ख. पाठः। ३. 'अपूजिता' इति पाठेऽर्थसङ्गतिः।

अर्थाद्वा कामतो वापि सौख्यादपि च यो नरः। लिङ्गयोनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं व्रजेत्।। ३।।

इति। देवीयामले—

अथ पूजाफलं वक्ष्ये उत्तरोत्तरतोत्तरम्। स्वशक्त्या अयुतं पुण्यं परशक्तिप्रपूजने।। १।।
ततो वेश्याधिका ज्ञेया रजक्यपि ततोऽधिका। रजक्याः क्षुरिकी श्रेष्ठा क्षुरिक्याश्चर्मकारिणी।। २।।
ततोऽधिकतरा प्रोक्ता हेतुनारी वरानने। ततोऽधिकान्त्यसम्भूता चण्डाली च ततोऽधिका।। ३।।
ततो मातङ्गिनी श्रेष्ठा मातङ्ग्याः पुक्कसी मता। पुक्कस्या अक्षता श्रेष्ठा ततोऽतिसुन्दरी स्मृता।। ४।।
सुन्दरीपरतः प्रोक्ता प्रीतिवत्यनुगामिनी[1]। तत्परा परमेशानि तन्मनाः शुभलक्षणा।। ५।।
समयाचारसम्पन्ना मन्त्रज्ञा भयवर्जिता। विदग्धा त्वप्रसूता च धैर्यस्वातन्त्र्यसंयुता।। ६।।
एवं गुणसमायुक्ताः पूजयेत् सर्वयोषितः। आत्मीयाश्च पराश्चैव शक्तिमात्रं[2] महेश्वरि।। ७।।
मन्त्राधिदेवताबुद्ध्या पूज्याः सर्वोपचारकैः। विविधैः फलताम्बूलैर्वस्त्रालङ्कारहेमभिः ।। ८।।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या बहुहेतुं प्रदापयेत्। सम्भोगवासनां धृत्वा यः कुर्याच्छक्तिपूजनम्।। ९।।
स दारिद्र्यमवाप्नोति नारकी च भवेद् ध्रुवम्। परमानन्दरूपेण देह[3]भावविवर्जितः।। १०।।
शक्त्या यदुक्तं देवेशि तदूचे शाम्भवी स्वयम्। तदाज्ञा तु प्रकर्तव्या तदा श्रेयः प्रवर्तते।। ११।।
शक्त्याज्ञां लङ्घये[4]न्मन्त्री तपस्तेपे निरर्थकम्। कृतं तत्रोपहासादि कुष्ठी भवति नान्यथा।। १२।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तद्वाक्यं तु समाचरेत्। व्यङ्गा वा विकृताङ्गी च काणाक्षी बधिरा तथा।। १३।।
मुण्डिनी विधवा मूका प्रलापिन्यनृतभाषिणी। अदीक्षिता भक्तिहीना गुरुसेवाविवर्जिता।। १४।।
दूषकी समयाद्भ्रष्टा घोरा कैतवचारिणी। वृद्धातुरा वक्रमुखी क्रोधदुर्गन्धकश्मला।। १५।।
सदा निष्ठुरवाक्या च अनाचारा च काकवाक्। दीर्घदन्ता च लम्बोष्ठी शुष्कस्तननितम्बिनी।।१६।।
कृष्णवर्णातिमलिना कृशा विकलचेतना। महास्थूलातिरोगार्ता प्रलम्बितपयोधरा।। १७।।
ईषन्नासिकनेत्रा च शुष्काङ्गी चोर्ध्वकेशिनी। कनिष्ठा क्रोडदन्ता च सदा स्वार्थसमन्विता।। १८।।
कुष्ठी हीनाङ्गिनी चैव पङ्ग्वन्धा चातुरालसा। श्वेताङ्गिनी रौद्रबिम्बा च्छागयोनिः पिशाचिका।।१९।।
मतिभ्रष्टातिविकला अतिदीर्घातिकुब्जिका। एतल्लक्षणसम्पन्नाः[5] शक्तीर्यत्नेन वर्जयेत्।। २०।।
शक्तिपात्रं न दातव्यं विधवायै कदाचन। अज्ञानाल्लोभतो मोहाद् दत्ते पूजा तु निष्फला।। २१।।
तस्माद् दूती प्रकर्तव्या लक्षणोक्ता तु पार्वति।..।। २२।।

इति। तथा ब्रह्मयामले—नारद उवाच

सर्वज्ञ जगतां नाथ शाक्तं चेच्छ्रुतिचोदितम्। मातङ्गीपूजनं तत्र कथं मुक्तिप्रदायकम्।। १।।
अर्चने प्रथिता वेश्या वेश्या सा तु रजस्वजा। रजस्वला च मातङ्गी सा दूती सर्वमङ्गला।। २।।
इति प्रोक्तं त्वया पूर्वमिदानीं तद्विपर्ययः। तव वाक्यमभूत् ब्रह्मन्नेतद्वद पितामह।। ३।।

---

१. 'नुकारिणी' ख. पाठः। २. 'त्रा' ग. पाठः। ३. 'हेतु' ख. पाठः। ४. 'ज्ञालङ्घको' ख. पाठः। ५. 'संयुक्ताः' क. पाठः।

ब्रह्मोवाच

मा कुरुष्वात्र सन्देहं वेदोक्तं शाक्तमुत्तमम्। अस्मिन् सर्वज्ञकल्पोऽसौ मातङ्गो मुनिपुङ्गवः।। ४।।
वर्षाणामयुतं वत्स तप उग्रं चचार ह। तेन प्रीता महादेवी देवानां हितकारिणी।। ५।।
वरं वृणीष्व भगवन् दास्यामि तव वाञ्छितम्। तच्छ्रुत्वां द्विजवर्यस्तां ययाचे धर्मसाधनम्।। ६।।
दे देवि जगतां मातः! प्रीता चेद्यदि साम्प्रतम्। अपत्यतां समासाद्य मत्कुलालम्बनं कुरु।। ७।।
इत्यभ्यर्थ्य मुनिश्रेष्ठो जनयामास तां सुताम्। श्यामलां चारुवदनां वीणाशुकसमन्विताम्।। ८।।
शारिकां ज्ञानसम्पन्नां जपमालां कराम्बुजैः। धारयन्तीं विशालाक्षीं शङ्खताटङ्कशोभिनीम्।। ९।।
सा बभूव महादेवी मातङ्गकुलनन्दिनी। मातङ्गीति तदा देवी विख्याता वरदायिनी।। १०।।
तां विलोक्य तदा शम्भुर्दूतीं चक्रे सुलक्षणाम्। त्रिपुराञ्जेतुकामेन योनिपूजा तदा कृता।। ११।।
प्रत्यालीढा स्थिता देवी पूजां स्वीकृत्य निश्चला। यदा दृष्टरजा भूत्वा तां बव्रे शङ्करः प्रियाम्।। १२।।
तदा प्रभृति सञ्जातो दूतीयागो मनोहरः। प्रणवेन तदा शम्भुस्तया सार्धं रतं भजन्।। १३।।
प्रणवान्तर्गतं मन्त्रं मातङ्गाख्यं च निर्गतम्। सर्वसौभाग्यजननं मालामन्त्रमभूत् तदा।। १४।।
रसावाप्तिपदं दिव्यमनिन्द्यं लोकरञ्जनम्। मातङ्गीमन्त्रमत्यर्थं मन्मथप्रतिपादकम्।। १५।।
आद्यन्तशून्या सा देवी तस्मात् ख्याता तदन्त्यजा। मातङ्गी चान्त्यवर्णस्था तदा सा अन्त्यजाभवत्।।
अन्त्यजानां द्विजानां च चक्रे ऐक्यं प्रशस्यते। सा देवी सर्ववर्णानां वरं दत्त्वा निरुत्तरम्।। १७।।
कृत्वा सङ्केतसमयं चक्रे मातङ्गमुत्तमम्। न दोषः सर्ववर्णानामिति दत्त्वा वरं तदा।। १८।।
न दोषं तत्र[१] विज्ञेयं सर्वतः श्रुतिचोदितम्। देवीमुद्दिश्य मोक्षार्थं कृतं यद् दोषवर्जितम्।। १९।।
एतच्छास्त्रमिदं दिव्यं न वाच्यं श्रुतिचोदितम्। अन्तर्यागमिदं ज्ञेयं बहिर्यागं च वैदिकम्।। २०।।
मन्त्रतन्त्रसमायुक्तं तद्द्वयं ब्रह्मबोधकम्। चक्र[२]सङ्केतसमयं सर्वं तुभ्यं प्रकाशितम्।। २१।।
गोपनीयं प्रयत्नेन वाच्यं पशुसन्निधौ। त्यज शङ्कां महाभाग सत्यमेतन्मयोदितम्।। २२।।
मातङ्गीपूजनं श्रेष्ठं दूतीयागे मनोहरे। योनिपूजां विना पूजा कृतापि ह्यकृता भवेत्।। २३।।
कृत्वा[३] केनापि सर्वज्ञ स भवेद्विगतामयः। आयुरारोग्यविभवानमिताँल्लभते नरः।। २४।।
अनेनैव विधानेन विषार्तो निर्विषो भवेत्। पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।। २५।।
मातङ्गीशक्तिमभ्यर्च्य तया साकं समर्चयेत्। मातङ्गी मन्मथोपेता सर्वकामार्थसिद्धये।। २६।।
शक्त्या साकं सदा पूज्या मातङ्गी मन्त्रदेवता। सा देवी शक्तिहीना तु न ददाति मनोरथम्।।२७।।
निःशङ्कां निर्मलां तन्वीं श्यामां चारुपयोधराम्। कौलिकान्वयसम्भूतां दीक्षितां क्रोधवर्जिताम्।।२८।।
दीक्षितां कौलिके यागे सुशीलां च दृढव्रताम्। त्रिंशत्संवत्सराधःस्थां षोडशाब्दाधिकामपि।।२९।।
पूजयेत् परया भक्त्या तस्या योनिं सुनिर्मलाम्। योनिमध्यगतां देवीं कालरात्रिमनुस्मरेत्।। ३०।।

१. 'दोषस्तस्य' ख. पाठः। २. 'चक्रे' ख. पाठः। ३. 'स्मृत्वा' ख. पाठः।

तत्र भोगं[1] समासाद्य देवीं सन्तर्पयेत् सदा। सकृज्जपेन संसिद्धिर्द्विस्त्रिर्वा नात्र संशयः।। ३१।।
पशुस्त्रीसङ्गमे प्राप्ते शुद्धिश्चेत् पशुबन्धनम्। अथवा गृहिणी पूज्या पूता पुष्पवतीष्टदा।। ३२।।
अर्चने कन्यकाः श्रेष्ठाः प्रमदाश्च[2] विशेषतः। तासां भोज्यं[3] प्रकर्त्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।।३३।।
शक्त्युल्लासकरं भोगमानन्दं मोक्ष उच्यते। दूत्यश्च भगिनी पुत्री पौत्री नप्त्री तथा स्नुषा।। ३४।।
रजकी चर्मकारी च मातङ्गी गृहिणी वरा। अर्चने प्रथिता वेश्या मन्त्रयुक्ता मनोहरा।। ३५।।
मातङ्गी यदि चेद्वेश्या वेश्या सापि रजस्वला। रजस्वला यदा चासीत् सर्वोत्कृष्टा इति स्मृता।।३६।।

इत्यादि। तथा कुलचूडामणौ—

तरुणोल्लाससङ्युक्तां पर्यङ्के तु निवेशयेत्। भयलज्जादिसर्वाणि परित्यज्याथ दूतिकाम्।। १।।
कञ्चुकं च परित्यज्य तथा वस्त्रं च पार्वति। आचार्यानुचरी रक्ता मनसा सुखदायिनी।। २।।
देहभावं परित्यज्य संसक्तभुजकौ प्रिये। चुम्बनालिङ्गने चैव नखदन्तक्षतानि च।। ३।।
बहुना च किमुक्तेन प्राणस्यैक्यं समाचरेत्। दूती यस्य सु[4]संज्ञाता सफलं तस्य जीवितम्।। ४।।
वंशद्वयं समुद्धृत्य लभते शाश्वतं पदम्। सर्वदा सुखमाप्नोति सर्वैश्वर्यं च लभ्यते।। ५।।
न तस्य दुरितं किञ्चित् न च मारीभयं भवेत्। चुम्बने परमैश्वर्यं नखदन्तक्षतैर्यशः।। ६।।
सम्भोगे च सुखं यद्यत् तद्विष्णोः परमं पदम्। न दद्याच्चुम्बनं यस्तु दरिद्रो जायते ध्रुवम्।। ७।।
आलिङ्गनं विना देवी कुष्ठी भवति पार्वति। विना दन्तक्षतं देवि लोके भवति निन्दितः।। ८।।
पञ्चमीं(मं) तु सकृद् दत्त्वा सावित्री जायते सती। द्वितीयेन च लक्ष्मीः स्यात् तृतीये पार्वती भवेत्।। ९।।
ततो दद्यात् सुखाधिक्यं तस्याः पुण्यं न गण्यते। आलिङ्गनैर्हरेद्रोगान् धनधान्यादि चुम्बनैः।। १०।।
नखदन्तक्षताद्यैश्च तदा मोक्षः प्रजायते। सायुज्यं सङ्गमेन स्यात् सत्यमेव न संशयः।। ११।।

इति।। पञ्चमयागप्रशंसा भैरवयामले—

कुर्यादुच्चाटने द्वेषे मारणे मोहने तथा। सुरूपां च सुवेशां च तरुणीं सुन्दरीं तथा।। १।।
प्रसन्नमुखशोभाढ्यां तथा सौभाग्यगर्विताम्। उदारवंशसम्भूतां पूजाग्रहणहर्षिताम्।। २।।
सुवासिनीमीदृशीं च पूजयित्वा विधानतः। तत्काले कार्यसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा।। ३।।
विशेषतो योनिपूजां कुर्यादीप्सितसिद्धये। सुरूपां तरुणीं वेश्यां योनिपूजां समाचरेत्।। ४।।
सर्वजनमोहनं स्यान्नात्र कार्या विचारणा। सुरूपां तरुणीं दासीं योनिपूजां समाचरेत्।। ५।।
सर्वलोकस्य वश्यार्थं नात्र सन्देह इष्यते। मातङ्गिन्याः सुरूपायाः सुगुणायास्तथैव च।। ६।।
तरुण्या योनिपूजां च स्तम्भनार्थं समाचरेत्। यस्या अङ्गे देवतास्ति तस्या योनिं प्रपूजयेत्।। ७।।
आकर्षणार्थं मन्त्रज्ञो नात्र सन्देहसम्भवः। सुरूपायास्तरुण्याश्च योगिन्या योनिपूजने।। ८।।
उच्चाटनादिकर्माणि जायन्ते नात्र संशयः। मदघूर्णितनेत्रायास्तरुण्या योनिपूजने।। ९।।

१. 'भागं' ख. पाठः। २. 'चेत्' ख. पाठः। ३. 'भोगं' ख. पाठः। ४. 'तु' ख. पाठः।

रजस्वलाया विद्वेषो भवत्येव न संशय:। विधवाया: सुरूपायास्तरुण्या योनिपूजने।। १०।।
मारणं जायते शीघ्रं नात्र सन्देहसम्भव:। परं तु निर्भयो[१] भूत्वा सर्वमेतत् समाचरेत्।। ११।।
रजस्वला या च भवेत् सर्वजातिसमुद्भवा। तस्यास्तु पूजने सर्वकार्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।। १२।।
सर्वकार्ये सुवासिन्या: पूजनं न्यासपूर्वकम्। भगमालिनिमन्त्रेण कुर्यात् प्रार्थनपूर्वकम्।। १३।।
सर्वकार्येषु निष्पत्तिर्भवत्येव न संशय:। षोडशैरुपचारैस्तु पूजा सर्वत्र शस्यते।। १४।।
यस्या अङ्गे देवतास्ति तस्या: पूजां समाचरेत्। वश्याकर्षणकर्माणि मनसा यद्यदीप्सितम्।। १५।।
तत्सर्वं भवति क्षिप्रं नात्र सन्देह इष्यते। अस्पृश्यायास्तरुण्यास्तु पूजा द्वेषार्थमीरिता।। १६।।
गुरुत: शास्त्रतो ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्। तांस्तान् प्रयोगान् कुर्वीत कार्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्[२]।।१७।।
परचक्रस्तम्भने च जलस्तम्भन एव च। मेघाकर्षे [३]भयावाप्तौ सर्वशत्रुनिवर्हणे।। १८।।

इति। अथैतत् प्रयोग:— तत्र साधक: प्रोक्तक्रमलक्षण:(कृतात्मपूजनक्रिय:) स्वशिरसि श्रीगुरुपादुकां ध्यात्वा सम्पूज्य प्रणम्य प्रोक्तक्रमेण श्रीगुरोराज्ञामादाय, सर्वलक्षणसम्पन्नां ब्रह्मविद्यादीक्षितां दूतीं प्रातर्निमन्त्रितां सादरं स्वयं गत्वा प्रणम्य समाहूयानीय पूजास्थाने मृद्वासने समुपवेश्य, तस्या: पादावुष्णजलेन प्रक्षाल्य सुखोपविष्टां तां प्रणम्य, कृताञ्जलि: सन् "भगवति श्रीपरदेवतायजनार्थं त्वं मे दूती भूत्वा मां कृतार्थं कुरु" इति तां प्रार्थ्य देव्यग्रत: स्वासने समुपविश्य, कृताञ्जलि: "अद्येत्यादि श्रीपरदेवताप्रीत्यर्थं दूतीयजनमहं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, स्ववामभागे दूतीं समुपवेश्य मूलविद्यया सुगन्धितैलेनाभ्यङ्गं कृत्वा, सुगन्धामलकाद्युद्वर्तनं विधायोष्णोदकेन स्नपयित्वा नीराजनं कृत्वा, सूक्ष्मवस्त्रेणाङ्गप्रोच्छनं विधाय रक्तपटवस्त्रयुगमारक्तकञ्चुकं च परिधाप्य नानाविधाभरणैरलङ्कृत्य, केशान् विजटीकृत्य धूपयित्वा संयम्य[४] सिन्दूरकज्जलालक्तकादिभि: सीमन्त-नयनचरणादि रञ्जयित्वा, रत्नेश्वरीविद्यया सकुङ्कुमचन्दनत्रिपुण्ड्रयुक्ते भालतले सिन्दूरतिलकं कृत्वा, सुगन्धकुसुममालाभि: सुगन्धानुलेपनैश्चालङ्कृत्य, स्ववामभागे मृद्वासने समुपवेश्य, स्वयं स्वासने समुपविष्ट: प्राणायामत्रयमृष्यादिन्यासांश्च विधाय, दूतीं देवीरूपां ध्यायन् प्राक्स्थापितशक्तिपात्रवत्स्वपुरत: पात्रान्तरं कलशस्थहेतुनापूर्य संस्कृत्य, तद्धेतुमुद्धरणपात्रेणोद्धृत्य भोगपात्रे कृत्वा सद्वितीयं भोगपात्रं तस्यै पुन: पुनर्निवेद्य, तरुणोल्लासयुक्तां ज्ञात्वा चक्रस्योत्तरभागे स्वर्णरूप्यविद्रुमगजदन्तादिनिर्मितं स्वच्छं (सुदृढं) नवं पट्टसूत्ररचितारक्तपट्टिकाभिर्गुम्फितं पर्यङ्कमास्तीर्य, तदुपरि पट्टवस्त्ररचितां बहुतरतूलभारभरितां तूलिकामास्तीर्य, तदुपर्युच्छीर्षकोपवर्हणादिकं निवेश्य तत्र सुगन्धपुष्पाणि कर्पूररजांसि च विकीर्य, तत्र प्रागुक्तविधिना योगपीठं सम्पूज्य, तदुपरि श्रीचक्रं विभाव्य, तथैव सम्पूज्य मञ्चकस्य पश्चिमे योगिनीबलिं पूर्वे क्षेत्रपालबलिं दक्षिणे गणेशबलिमुत्तरे वटुकबलिं चेति बलिचतुष्टयं दत्त्वा, पर्यङ्कोपरि दूतीं पश्चिमाभिमुखीं समुपवेश्य स्वयं पूर्वाभिमुख उपविश्य, मूलेन प्राणायामत्रयमृष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च कृत्वा, दूतीदेहे केवलां मातृकां विन्यस्य, वशिन्याद्यष्टकं विन्यस्य, शिरसि ४ द्रां द्रावणबाणाय नम:। पादयो: ४ द्रीं क्षोभणबाणाय नम:। मुखे ४ क्लीं वशीकरणबाणाय नम:। गुह्ये ४ ब्लूं आकर्षणबाणाय नम:। हृदि ४ स: सम्मोहनबाणाय नम:। इति पञ्च बाणान् विन्यस्य; तस्या ललाटे ४ ह्रीं कामाय नम:। गले ४ क्लीं मन्मथाय नम:। हृदि ४ ऐं कन्दर्पाय नम:।

---

१. 'भैरो' ख. पाठ:। २. 'तत:' क. पाठ:। ३. 'सुता' क. पाठ:। ४. 'सम्यक्' ग. पाठ:।

नाभौ ४ ब्लूं मकरध्वजाय नमः। मूलाधारे ४ स्त्रीं मेनकेतवे नमः, इति विन्यस्य तस्या देहे पूर्वोक्ताः कामकलाः सोमकलाश्चेति विन्यस्य, तस्याः शिरसि सुभगाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीभगमालिन्यै देवतायै नमः। गुह्ये ह्र्ब्लेंबीजाय नमः। पादयोः स्त्रीं शक्तये नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः, इति ऋष्यादिन्यासं विन्यस्य, तस्याः शरीरे भगमालिनीविद्यया मूर्धादिपादपर्यन्तं त्रिर्व्यापकं विन्यस्य, तस्याः शिरसि त्रिकोणं विभाव्य शिरस्त्रिकोणमध्ये वक्ष्यमाणविधिना बालां ध्यात्वा, तद्विद्यामुच्चार्य श्रीबालादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अग्रकोणे क्लींकामेश्वरीश्री०। वामकोणे ऐंवागीश्वरीश्री०। दक्षिणकोणे सौः कुलगणपतिश्री०, इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तस्या दक्षिणस्तने क्लींकामदेवश्री०। वामे वंवसन्तश्री०। योनौ श्रीरतिदेवीश्री०। नाभौ श्रीप्रीतिदेवीश्री०। पुनः शिरस्त्रिकोणाद्बहिः गंगणनाथश्री०। ४ सिंहपादश्री० ४ विजयपादश्री०। ४ अनङ्गपादश्री०। ४ भुजङ्गपादश्री०। ४ चित्रपादश्री०। (४ कनकपादश्री०) ४ कनकाध्यक्षपादश्री०। इति त्रिकोणाद्बहिः परितः स्वग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, शिरस्त्रिकोणस्य वामकोणे ४ मां महालक्ष्म्यै नमः। दक्षे ४ सं सरस्वत्यै नमः। तस्या रोमराजिषु ४ नं नन्दनोद्यानाय नमः। इति सम्पूज्य, तस्याः शिरस्त्रिकोणमध्ये नवयोन्याढ्यकर्णिकं सकेसरमष्टदलकमलं दलाग्रेषु त्रिशूलयुक्तं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रत्रयवेष्टिकं बालाचक्रं विभाव्य, तत्र मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सर्वं शिरस्येव सम्पूज्याष्टदलकेसरेषु ४ वामायै० ४ ज्येष्ठायै० ४ रौद्र्यै ० अम्बिकायै० ४ इच्छायै० ४ ज्ञानायै० ४ क्रियायै० ४ कुब्जिकायै० ४ विघ्न्यै० ४ विषघ्न्यै० ४ दूतयै० ४ आनन्दायै नमः, इति सम्पूज्य मध्ये ४ ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः, इति नवयोनिस्थत्रिकोणमध्ये सम्पूज्य, तत्र बालाविद्यामुच्चार्य "श्रीबालामूर्तिं कल्पयामि" इति पुष्पाञ्जलिना मूर्तिं परिकल्प्य, पुनर्बालामुच्चार्य 'श्रीबालामूर्तये नमः" इति मूर्तिं सम्पूज्य, कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय हृदयकमले वक्ष्यमाणरूपां देवीं ध्यात्वा पुनस्तेजोरूपां तामापाद्य, तत्तेजः सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा वहन्नासापुटाध्वना बहिर्निःसार्य करस्थपुष्पाञ्जलौ संयोज्य, ४ ऐंक्लींसौः श्रीभगवतीहागच्छागच्छेति दूत्याः शिरसि पुष्पाञ्जलिं निःक्षिप्यावाह्यावाहनीमुद्रां प्रदर्श्य, स्थापनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा वरदाभयपुस्तकाक्षमालापाशाङ्कुशधनुर्बाणकपाल-कमलाख्या दश मुद्राः प्रदर्श्य,

भ्रमद्भ्रमरनीलाभधम्मिल्लामलपुष्पिणीम्। ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भिन्नमुक्तालेखाविराजिताम्।। १।।
मुक्तालेखारन्ध्ररत्नतिलकां मुकुटोज्ज्वलाम्। विशुद्धमुक्तावज्राढ्यचन्द्रलेखाकिरीटिनीम्।। २।।
भ्रमद्भ्रमरनीलाभनेत्रत्रयविराजिताम्। सूर्यभास्वन्महारत्नकुण्डलालङ्कृतां पराम्।। ३।।
शुक्राकारस्फुरन्मुक्ताहारभूषणभूषिताम्। ग्रैवेयाङ्गदपत्रालीस्फुरत्कान्तिविराजिताम्।। ४।।
गङ्गातरङ्गकर्पूरशुभ्राम्बरविभूषिताम्। श्रीखण्डवल्लीसदृशबाहुवल्लीविराजिताम्।। ५।।
कङ्कणादिलसद्भूषामणिबन्धलसत्प्रभाम्। प्रवाललतिका[१]कारपाणिपल्लवशोभिताम्।। ६।।
वज्रवैडूर्यमुक्तालिमेखलां विमलप्रभाम्। रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवशोभिताम्।। ७।।
नक्षत्रमालासङ्काशमुक्तामञ्जीरमण्डिताम्। वामेन पाणिनैकेन पुस्तकं चापरेण तु।। ८।।

---

१. 'ललिता' ख. पाठः।

अभयं च प्रयच्छन्तीं साधकाय वरानने। अक्षमालां च वरदं दक्षपाणिद्वयेन तु॥ ९॥

दधतीं चिन्तयेत् देवीं वश्यसौभाग्यवाक्प्रदाम्। क्षीरकुन्देन्दुधवलां प्रसन्नां संस्मरेत् प्रिये॥ १०॥

इति ध्यात्वा, बालाविद्यामुच्चार्य भगवति एतत्ते आसनं नमः। एवं स्वागतं, पाद्यं अर्घ्यं, आचमनीयं मधुपर्कं, पुनराचमनीयं, स्नानं, वस्त्रं, आचमनीयं, आभरणानि समर्प्य, एष ते गन्धो नमः। इमानि ते पुष्पाणि वौषट्, इति पुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, प्राग्योनिमध्ययोन्योरन्तराले ४ ऐं परमगुरुभ्यो नमः। ४ ऐं परापरगुरुभ्यो नमः। ४ ऐं अपरगुरुभ्यो नमः, इति गुरुपङ्क्तित्रयं विभाव्य सम्पूज्य योनिमुद्रां बद्ध्वा, हृदि मुखे भूमध्ये ललाटे ब्रह्मरन्ध्रे च संस्थाप्य दर्शयेत्। ततः त्रिकोणस्य वामकोणे ४ ऐं रत्यै नमः। दक्षिणे ४ क्लीं प्रीत्यै० अग्रे ४ सौः मनोभवायै० इति सम्पूज्याष्टदलकेसरेषु अग्नीशनिर्ऋतिवायुकोणेष्वङ्गचतुष्टयं देव्यग्रे नेत्रं तदग्रादिचतुर्दिक्षु अस्त्रमिति प्राद्रक्षिण्येन षडङ्गानि सम्पूज्याष्टकोणत्रिकोणान्तरालेषु देव्यग्रमारभ्य चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन ४ द्रां द्राविण्यै० ४ द्रीं क्षोभिण्यै० ४ क्लीं वशीकरण्यै० ४ ब्लूं आकर्षिण्यै० अग्रे ४ सः सम्मोहिन्यै०। एष्वेव स्थानेषु ४ ह्रीं कामाय० नमः ४ क्लीं मन्मथाय नमः ४ ऐं कन्दर्पाय नमः ४ ब्लूं मकरध्वजाय नमः ४ स्त्रीं मेनकेतवे नमः। इति सम्पूज्य पूर्वाद्यष्टसु योनिषु ऐंक्लींब्लूंस्त्रींसः सुभगायै नमः। ५ भगायै० ५ भगसर्पिण्यै०। ५ अनङ्गमालिन्यै०। ५ अनङ्गायै०। ५ अनङ्गकुसुमायै०। ५ अनङ्गमेखलायै०। ५ अनङ्गमदनायै०, इति सम्पूज्याष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन— अं असिताङ्गभैरवाय नमः। आं ब्राह्म्यैव। इं रुरुभैरवाय०। ईं माहेश्वर्यै०। उं चण्डभैरवाय०। ऊं कौमार्यै०। ऋं क्रोधराजभैरवाय०। ॠं वैष्णव्यै०। ऌं उन्मत्तभैरवाय०। ॡं वाराह्यै०। एं कपालिभैरवाय०। ऐं इन्द्राण्यै०। ओं भीषणभैरवाय०। औं चामुण्डायै०। अं संहारभैरवाय०। अः महालक्ष्म्यै०। इति सम्पूज्य, अष्टदलान्तरालेषु कामरूपाय नमः। मलयाय०। कोलगिरये०। कोलान्तकाय०। चौहाराय०। जालन्धराय०। उड्डीयानाय०। देवीकोटाय०। इत्यग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, बहिर्वृत्ते देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनाष्टदिक्षु, हेरुकाय नमः। त्रिपुरान्तकाय०। वेतालाय०। अग्निजिह्वाय०। कालान्तकाय०। कपालिने०। एकपादाय०। भीमरूपाय०। इन्द्रेशानयोर्मध्ये हाटकेश्वराय०। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये मलयाय०, इति सम्पूज्य, तद्बहिः पूर्वादिदशदिक्षु इन्द्रादींस्तथायुधानि च सर्वचक्राद्बहिः सम्पूज्य, धूपदीपनैवेद्यानि समर्प्य तदभेदबुद्ध्या दूत्यै हेतुं समर्प्य, स्वदेहे प्राग्वच्छ्रीकण्ठादिमातृकां विन्यस्य, स्वशिवे ओंह्रीं क ५ ह ६ स ४ शिवाय नमः। इति दशार्णया विद्यया सम्पूज्य शिवाग्रे ह्रौं ईशानाय नमः। तत्पूर्वभागे ह्रें तत्पुरुषाय नमः। दक्षिणे ह्युं अघोराय नमः। वामे ह्रिंवामदेवाय०। तत्पृष्ठे ह्रां सद्योजाताय० इति सम्पूज्य, एतेष्वेव स्थानेषु निवृत्त्यै नमः। प्रतिष्ठायै०। विद्यायै०। शान्त्यै०। शान्त्यतीतायै०। इति सम्पूज्य, क्लां क्लीमित्यादिना षडङ्गानि विन्यस्य, मुष्कयोर्मध्ये मूलविद्यामुच्चार्य नन्दिकेश्वराय नमः। इति सम्पूज्य, तस्यै कारणं दत्त्वा तदवशेषास्वादनेन स्वयं तरुणोल्लासयुक्तस्तस्याः स्तनयोर्मध्ये स्पृशन् "ऐंह्रीं चपले चपलचित्ते रेतो मुञ्च २ ब्लूंक्लींस्त्रींह्रूंब्लें" इति द्राविणीविद्यां वारत्रयं जपित्वा, तस्या हृदयकमले प्रागुक्तानङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिभिः परिवृतां कामेश्वरीं रक्तवर्णां रक्तमाल्याभरणानुलेपनवसनालङ्कृता- भिक्षुकोदण्डपुष्पबाणधरां (चन्द्रशेखरां) ध्यायन् 'क्लींकामकलात्मिके रेतो मुञ्च २ स्वाहा' इति कामेश्वरीमन्त्रं तस्या हृदि विन्यस्य, "पशुसम्मोहने देवि स्वभक्तानन्ददायिनि। बिन्दुरूपे परानन्दे रेतः शीघ्रं तु मोचय"॥ इति हृदयं स्पृशन् पठित्वा "ऐंस्वोंस्त्रींब्लूंब्लः" इति योनिमुद्राबीजस्मरणात् तदीयमूलाधारदेशे शक्तिक्षोभं चिन्तयित्वा पुनस्तां शक्तिं मूलाधाराद् हृत्कमलं नीत्वा "ऐंक्लींस्त्रीं" इति क्षोभिणीविद्यां स्मरन् हृदये शक्तिक्षोभं विचिन्त्य, पुनस्तां शक्तिं भ्रूमध्यं नीत्वा तत्र "ऐंब्लूंऐंक्लीं" इति द्राविणीविद्यां स्मरन्, तयालातचक्रभ्रमणकुशलया सकलकमकाननं विह्वलीभूतं

चिन्तयन् ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, परामृतकलास्रावपूरेण सह पुनर्मूलाधारमानीय "ऐंगुह्ये रब्लौंब्लः ऐंह्रींश्रींक्लींह्रींब्लूं" इति सर्वाङ्गसुन्दरीविद्यां तत्र स्मरन् स्वयं परमानन्दनिर्भरमनास्तल्लयो भूत्वा कियत्क्षणं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्। इत्थं निरालम्बमुद्रा ततस्तत्स्मरकेतनेऽपि चिन्तनीया। ततस्तस्याः शिरसि वदने हृदये गुह्ये पादयोश्च "ग्लूंस्लूंप्लूंम्लूंन्लूं" इति पञ्चरत्नबीजानि विन्यस्य, तद्वराङ्गाङ्कुरं दक्षकराग्रेण गृहीत्वा वामकराग्रेण मूलविद्यया वाग्भवकूटमुच्चरन् तद्योनिपङ्कजं स्पृष्ट्वा,

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमतुलं शीतांशुवच्छीतलं
व्योकोशारुणपद्मरागरुचिरं दृष्ट्वा वराङ्गं ततः।
कस्तूरीघुसृणेन्दुचन्दनयुतं गोरोचनालेपितं
ध्यात्वा तत्र परां परापरकलां तन्मध्यगां चिन्तयेत्॥ १॥

इति तत्पङ्कजं तन्मध्ये परकलां च ध्यात्वा, तत्र वाग्भवकूटमवटोपरि अवटाभ्यन्तरे कामराजकूटं च विलिख्य, गन्धाक्षतरक्तकरवीरपुष्पैस्त्रिः सम्पूज्य, वराङ्गस्य वामभागे गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, तस्या वामपादाङ्गुष्ठे 'शाम्भव्यै नमः' दक्षपादाङ्गुष्ठे 'शम्भवे नमः' इति मूलविद्यया सम्पूज्य, नाभिदेशे 'बलिनाथेभ्यो नमः, इति देवताश्च सम्पूज्य, तां प्रणम्य तदाज्ञया स्वयमक्षुब्धः सन् नानाविधासनपरिष्वङ्गकरजरदघातादिविविधविचित्रलीलाविलासविशेषैस्तां सम्यक् परितोषयन् तदङ्गजमदनमथनं कृत्वा, तदङ्गं निष्पीड्य तन्निर्गतं तत्त्वामृतं सुगन्धकुसुमेनोद्धृत्य कलशविशेषार्घ्यश्रीपात्रेषु मूलविद्यया संयोज्य, तदवटं हेतुना प्रक्षाल्य तद्धेतुं कलशे निक्षिप्य, तां प्रणम्य भोजनताम्बूलवसनाभरणदक्षिणादानैः परितोष्य स्वात्मानं कृतकृत्यं मत्वा श्रीगुरुं प्रणमेत्। तत्र तत्त्वस्य उत्तममध्यमत्वादिविशेषो देवीयामले—

कुण्डोद्भवामृतं देवि उत्तमोत्तममेव च। उत्तमं रजोबीजानि मध्यमं केवलं रजः॥ १॥
अधमं पौरुषं वीर्यं तथान्यच्चाधमाधमम्।..॥ २॥ इति

अथ सङ्क्षेपतः शक्तिशोधनं स्वतन्त्रे—

अङ्गन्यासकरन्यासौ प्राणायाममतः परम्। विधाय मातृकान्यासं कुलाङ्गेऽपि प्रविन्यसेत्॥ १॥

इति। भावचूडामणौ—

अदीक्षितकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते। बलाद्वा यत्नतो वापि अभिषेकं समाचरेत्॥ १॥
आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुच्चरेत्। नमःशब्दं समुच्चार्य इमां शक्तिं ततो वदेत्॥ २॥
पवित्रं कुरु शब्दान्ते मम शक्तिं कुरु प्रिये। वह्निजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्रः सुरेश्वरि॥ ३॥

इति मन्त्रेणाभिषिच्य, तस्याः कर्णेऽभेदबुद्ध्या मायाबीजं समुच्चरेदिति शक्तिशोधनम्। ततोऽर्घ्यस्थापनानन्तरं पर्यङ्कमध्ये मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं पीठपूजां विधाय, गन्धपुष्पधूपदीपादिकं दत्त्वा समन्ततो धूपामोदं कृत्वा, तूलिकोपरि कुलं संस्थाप्य, तदुपरि पूर्वादिदिक्षु मध्ये च—ह्रीं कामाय नमः। क्लीं मन्मथाय नमः। ऐं कन्दर्पाय नमः। ब्लूं मकरध्वजाय नमः। स्त्रीं मेनकेतवे नमः। इति सम्पूज्य, तस्या ललाटे सिन्दूरेण त्रिकोणं विलिख्य 'ऐंक्लींस्त्रींह्रींब्लूं आधारशक्ति-श्रीपादुकां पूजयामि' इति। 'ह्सौः महाप्रेतपद्मासनाय नमः, इति सम्पूज्य बालां कामेशीं च पूजयेत्। कुलार्णवे—

गणेशं च कुलाध्यक्षं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्। त्रिकोणेषु च सम्पूज्य वसन्तं मदनं प्रिये॥ १॥
स्तनयोः पूजयेत् पश्चान्मुखं तस्याः सुधाकरम्।..॥ २॥

इति। उत्तरतन्त्रे—

मौलौ गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके। दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम्॥ १॥

अत्र स्थानवैपरीत्यमैच्छिकम्। ज्ञानार्णवे—

दक्षपादादिमूर्धान्तं वाममूर्धादि सुन्दरि। पादान्तं पूजयेत् सर्वाः कला वै कामसोमयोः॥ १॥
श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव दूतिः कान्तिर्मनोरमा। मनोहरा मनोरामा मदनोन्मादिनी तथा॥ २॥
मोदिनी दीपिनी चैव षोडशी च वशङ्करी। रञ्जनी चैव देवेशि षोडशी प्रियदर्शना॥ ३॥
स्वरषोडशसंयुक्ता एताः कामकला यजेत्। ततः सोमकलाः पूज्याः शिवाद्याश्चरणावधि॥ ४॥
पूषा रमा च सुभगा रतिः प्रीतिस्तथा धृतिः। शुद्धिः सौम्या मरीचिश्च शैलजा अंशुमालिनी॥ ५॥
अङ्गिरा वशिनी चैव च्छाया सम्पूर्णमण्डला। तथा तुष्ट्यमृते चैव कलाः सोमस्य षोडश॥ ६॥

इति। एवं स्वरादिकाः सम्पूज्य, तद्भगे— ऐं चान्द्र्यै नमः। ऐं सौर्यै नमः। ऐं आग्नेय्यै नमः, इति तिस्रो नाडीः सम्पूज्य भगमालामन्त्रेण पूजयेत्। 'ऐंह्रींश्रींऐंजूंब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि वशमानय मे स्त्रींह्रींक्लींब्लूं भगमालिन्यै नमः ऐंह्रींश्रीं, इति मन्त्रेण पूजयेत्। तन्त्रान्तरे—

इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासो महेश्वरि। अथैवं च विधानेन षोडशैरुपचारकैः॥ १॥
इष्टदेवीं प्रपूज्याथ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम्॥ २॥
मूलमन्त्रं ततः ओंनमः शिवाय ततः परम्। यजेत् तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकैः॥ ३॥

इति। उत्तरतन्त्रे—

अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि। वज्रेश्वरीं कालिकां च तथा दिक्[1]चरवासिनीम्॥ १॥
महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेदत्र साधकः। तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमेव च॥ २॥
शिवं च तत्र निक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया। धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा॥ ३॥
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्। स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः॥ ४॥
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् विद्यां त्रिर्भुवनेश्वरीम्।..॥ ५॥

जपेदिति अष्टोत्तरसहस्रं शतं वाक्षुब्धो जपेत्।

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामग्नौ जुहोम्यहम्॥ ६॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्तितः।..॥ ७॥

इति। यामलतन्त्रे—

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम्। कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः॥ १॥
तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति हि। यत्कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिद्ध्यति॥ २॥

१. 'ष्कर'

कुलद्रव्यं च संशोध्य शिवशक्तिमयं प्रिये। बीजामृतं परं ब्रह्म जपन् निक्षिप्य सुन्दरि।। ३।।
अर्घ्यपात्रामृतैर्यत्नान्निर्विकल्प: सदानघ:। श्रीविद्याक्रममभ्यर्च्य परब्रह्ममयो भवेत्।। ४।।

श्रीविद्येत्युपलक्षणम्। कुलामृतशोधनमन्त्रस्तु "ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि देवि शुक्रशापं प्रमोचय प्रमोचय अमृतं स्रावय स्रावय अमृतं कुरु २ स्वाहा" इति सप्तवारं जपेदिति।। इति कुलयाग:।। अयं प्रकारस्तु तादृशयायिस्थायिनाम्। शुद्धस्थायिनां तु प्रथमत एव स्ववामे शक्तिं संस्थाप्य प्राणायामादिकं कुर्यात्। तदुक्तं कुमारीकल्पे—

तत: षोडशवर्षीयां नारीमानीय मन्त्रवित्। युवतीं वा मदोन्मत्तां सुवेषां चारुहासिनीम्।। १।।
सदा रते साभिलाषां सिन्दूराङ्कितभालकाम्। साधक: श्रेयसे तन्वीं वामे संस्थापयेद् बुध:।। २।।
तस्यास्तु भूतशुद्ध्यादि कृत्वा वै मातृकां न्यसेत्। प्राणायामं तत: कृत्वा कारयित्वा यथाविधि।।३।।

इति। अत्र कुलयागोत्तरमन्तर्यजनं प्रशस्तम्। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

कुलयागं तत: कृत्वा ह्यन्तर्यजनमाचरेत्। अथान्तर्यजनं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम्।। १।।
गुरोर्ध्यानं प्रकुर्वीत यथापूर्वं विशालधी:। स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्पके हृदयाश्रिते।। २।।
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते।..।। ३।।

इति। अथवा—

इडा सुषुम्ना शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णे वहत: शरीरे।
ब्रह्माम्बुभि: स्नाति तयो: सदा य: किं तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा।। ४।।

इति स्नानम्।

शिवशक्त्यो: समावेशो यस्मिन् काले प्रजायते। सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थै: प्रतीयते।।५।।

इति सन्ध्या।

चन्द्रार्कानलसम्बन्धाद्गलितं यत् परामृतम्। तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम्।। ६।।

इति तर्पणम्।

ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम्। कलासारेण सम्पूर्य तर्पयेत् तेन खेचरीम्।। ७।।

इत्यर्घ्यदानम्। आधारे लिङ्गनाभावित्याद्यन्तर्मातृकान्यास:।

ईड्यमानहृदयोऽयं हृदये स्याच्चिदात्मक:। क्रियते तत्परत्वेन हृन्मन्त्रेण तत: परम्।। ८।।
सर्वाङ्गादिगुणोत्सङ्गे संविद्रूपे परात्मनि। क्रियते तत्परत्वेन शिरोमन्त्रेण देशिकै:।। ९।।
हृच्छिरोन्ते च चिद्धाम मनसा भावना दृढा। क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण देशिकै:।। १०।।
मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रेणानेन तेजसा। सर्वतो वर्ममन्त्रेण क्रियते देहसंवृति:।। ११।।
वौषडिति मनुं जप्त्वा क्रियते देहनेत्रकम्। ततोऽस्त्रेण च मन्त्रज्ञ: करोत्यस्त्रं चतुर्दिश:।। १२।।

इति षडङ्गं विधाय ध्यानं कुर्यात्।

यद् ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि। हृदयादिमयं तेज: स्यादेतन्मन्त्रसंज्ञितम्।। १३।।
आध्यात्मिकादिरूपं सत् साधकस्य विनाशयेत्। अविद्याया: स्वतन्त्रं यत्परं धाम समीरितम्।।१४।।

इति वा षडङ्गं विधाय ध्यानं कुर्यात्।

शक्तिद्वयपुटान्तःस्थं कमलद्वयशोभितम्। ज्योतिस्तत्त्वमयं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात्॥ १५॥

अथवा—

शृङ्गाटद्वयमध्यस्थं शक्तिद्वयपुटीकृतम्। सदा समरसं ध्येयं ध्यानं तत्कुलयोगिनाम्॥ १६॥

इति ध्यानम्।

अर्चयन् विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात् तन्मयो भवेत्। न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहंभावेन चिन्तयेत्॥ १७॥

अमायमनहङ्कारमरागममदं तथा। अमोहकमकर्मत्वमद्वेषाक्षोभकौ ततः॥ १८॥

अमात्सर्यमलोभं च दशपुष्पं विदुर्बुधाः। अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः॥ १९॥

दयापुष्पं ज्ञानपुष्पं क्षमापुष्पं च पञ्चमम्। इत्यष्टसप्तभिः पुष्पैः पूजयेत् परदेवताम्॥ २०॥

इति पूजनम्॥

माला पञ्चाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम्। ग्रथिता कुण्डलीशक्तिः कलान्ते मेरुसंस्थितिः॥२१॥

जप्त्वा जपं परं धाम्नि तेजोरूपे निवेदयेत्।..॥ २२॥

इति जपः।

अमूलमपरिच्छिन्नं विभाव्यात्मान्तरात्मकम्। परमात्मस्वरूपं च तथा ज्ञानात्मरूपकम्॥ २३॥

चतुरस्रं च चित्कुण्डमानन्दमेखलायुतम्। नाभौ विभाव्य तन्मध्ये जुहुयात् साधकोत्तमः॥ २४॥

मूलाग्नौ नाभिचैतन्यहविषा मनसा स्रुचा। ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा॥ २५॥

इति प्रथमाहुतिः। ततो मूलान्ते—

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा॥ २६॥

इति द्वितीयाहुतिः। मूलान्ते—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा॥ २७॥

इति तृतीयाहुतिः। ततो मूलान्ते—

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने[1] मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्॥ २८॥

इति चतुर्थ्याहुतिः।

इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत्। न तस्य पुण्यपापानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥ २९॥

इत्यन्तर्यागः॥

अथ मधुपर्काङ्गच्छागादिपशुबलिविधानम्—पशुं स्नपयित्वा "ओं पशवे पाद्यं नमः" एवमर्घ्याचमनगन्धान् दत्त्वा शृङ्गयोर्मध्ये सिन्दूरादिना तिलकं दापयित्वा, पशुशिरसि पुष्पाणि दत्त्वा "एतदधिपतयेऽग्नये नमः" इति पशुपृष्ठे पुष्पं दत्त्वा "मूलं० एतत्सम्प्रदानरूपायै साङ्गोपाङ्गायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः" इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, वामहस्तेन पशुस्कन्धं धृत्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिधा सम्प्रोक्ष्य, वाङ्मनःश्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणप्राणहस्तपादपायुमेढ्रमांस-

१. 'न एष' ख. पाठः।

रुधिरमेदोस्थिमज्जाशुक्रनाडीचक्ररोमपुच्छसर्वशृङ्गाणि ते आप्यायन्ताम्। एवं सर्वाङ्गानि ते शुन्धामि। अग्नि: पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्नि: स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता आप:। एवं ओं वायु: पशुरासीत्०। ओं सूर्य: पशुरासीत्०। ओं विष्णु: पशुरासीत्०। ओं रुद्र: पशुरासीत्०। ओं हंस: शुचिषत्०। ओं आपो हि ष्ठा मयोभुव:०। वरुणस्योत्तम्भनमसि०। पञ्चब्रह्ममन्त्रैर्गायत्र्या मूलमन्त्रेण च पशुं प्रोक्षयेत्। ततो गन्धाक्षतकुसुमै: श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तपादपायूपस्थशिर:स्कन्धपृष्ठपुच्छमुखकण्ठहृदयोदरवृषणरोमरुधिरमांसवसाप्राणास्थि-नाडीचक्रसर्वाङ्गेषु दिग्वातसूर्यप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रप्रजापतिचामुण्डाभद्रकालीगन्धर्ववीरभद्रसरस्वतीमहालक्ष्मीभैरवी-समुद्रवाराही-ओषधिवनस्पतिब्रह्मविष्णुरुद्रपरमात्मसदाशिवगङ्गायमुनाजीवात्ममरुद्गणेभ्यो नम:, इति पूजयेदिति पशुपूजा। तत: पशुकर्णे, पशुपाशाय विद्महे पशुरूपाय[1] धीमहि तन्न: पशु:[2] प्रचोदयात्। ओं हिलिहिलि किलिकिलि पशुरूपधरायै ह्रीं दुर्गायै वौषट्, मूलविद्यां च जपेत्। तत:-

यज्ञार्थं पशव: सृष्टा यज्ञार्थं पशुघातनम्। अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवध:।। १।।
शिवा[3]द्युत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गत:। [4]आबुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवस्त्वं शिवोऽसि हि।।२।।
पशो त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थित:। चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशय।। ३।।
पशुरूपं परित्यज्य त्वं गन्धर्वस्वरूपधृक्। गौरीरूपं समासाद्य मम कल्याणदो भव।। ४।।
पशुपाशविमोक्षाय हेतुकूटस्थिताय च। पशवे च नमस्तुभ्यं नमस्ते बलिरूपिणे।। ५।।
छेद्योऽसि बलिरूपस्त्वमाज्ञया परया गुरो:। छेदभेदोद्भवं दु:खं क्षमस्व पशुरूपधृत्[5]।। ६।।

इति सम्प्रार्थ्य सङ्कल्पं कुर्यात्। ओंअद्यामुके मासि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा दशवर्षदेवीप्रीतिकामो मधुपर्काङ्गत्वेनेमं छागं वह्निदैवत्यं दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै ह्रींदुर्गायै भद्रकाल्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै साङ्गायै सायुधायै सवाहनायै सपरिवारायै साङ्गोपाङ्गायै सशक्तिकायै तुभ्यमहं घातयिष्ये, इति पशुशिरसि अक्षतयुक्तं जलं दद्यात्।। अथ खड्गपूजा-खड्गमानीय पुरत: स्थापयित्वा, पाशुपतास्त्रेण प्रोक्ष्य, चक्रमुद्रया संरक्ष्य, धेनुयोनिमुद्रे दर्शयित्वा, सिन्दूरेणास्त्रमन्त्रं खड्गे विलिख्य, मूलेनास्त्रेण वाभिमन्त्र्य प्रार्थयेत्। "ओंअष्टबाहुर्महातेजा: श्याम आरक्तलोचन:। भीमदंष्ट्र: करालास्यो लोलजिह्वो भयानक:"।। इति ध्यात्वा, बाह्यप्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, पाद्यादिभि: सम्पूज्य "ओंखड्ग तीक्ष्ण च्छिन्दि २ कट्ठ २" इति त्रिर्जपित्वा "ओंअसिविशसन: खड्ग तीक्ष्णधारो दुरासद:। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते।। करवाल कृपाण त्वं चण्डिकाया: करे स्थित:। पशुरक्तप्रदानेन चामुण्डाप्रीतिमावह"।। इति सम्प्रार्थ्य, "ओं कालिकालि करालि कालिके कालरात्रिके च्छिन्धि २ फट् हुंफट् रुधिरं पिब २ मासं भक्षय २ अस्थीनि चर्वय २ स्वाहा" इति पशुस्कन्धे खड्ग स्पर्शयेत्। ततश्छेदयित्वा किञ्चिद्रक्तमाममांसखण्डं देव्या दक्षभागे स्थापयित्वा "ओं रक्तदन्तिकायै स्वाहा" इति समर्प्य, तेन रुधिरेण देवीं त्रिस्तर्पयेत्। तत: सदीपं शिरो देव्या वामतस्त्रिकोणमण्डले स्थापयित्वा जलं गृहीत्वा "ओं महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते।। ओं चामुण्डायै स्वाहा" इति समर्पयेत्। इति पशुबलिविधि:।

अथ कुमारीयजनविधि:। तत्र ज्ञानार्णवे-

होमादिकं तु सकलं कुमारीपूजनं विना। परिपूर्णफलं नैव सफलं पूजनाद्भवेत्।। १।।

---

१. 'विप्रकर्णाय' ग. पाठ:। २. 'जीव:' ग. पाठ:। ३. 'शिवायत्तं' ग. पाठ:। ४. 'तद्बु' ख. पाठ:। ५. 'क्' क. पाठ:।

पुष्पं कुमार्यै यद्दत्तं तन्मेरुसदृशं भवेत्। कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम्॥ २॥
कुमार्यै यज्जलं दत्तं तज्जलं सागरोपमम्। अन्नं तु मीननयने कुलाचलसमं भवेत्॥ ३॥
एकाब्दात् षोडशाब्दान्ताः कुमार्यः[1] पूजने शुभाः। विवाहरहिताः स्युश्चेदुत्तरोत्तरसिद्धिदाः॥ ४॥
विवाहितास्तु देवेशि बाला एव कुमारिकाः। सुवासिन्यो महाप्रौढाः संशयं त्यज सुव्रते॥ ५॥
कुमारीपूजनं देवी कुमारीमनुना भवेत्।..॥ ६॥

इति। त्रैलोक्यडामरतन्त्रे—

सर्वयज्ञोत्तमं भूप कुमारीपूजनं शृणु। कृते यस्मिन् महालक्ष्मीरचिरेण प्रसीदति॥ १॥
आमन्त्रयेद् दिने पूर्वे कुमारीमन्त्रपूर्वकम्। पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम्॥ २॥
मण्डले चरणौ तस्याः क्षालयेदुष्णवारिणा। अर्चयेद् हेमपात्रेण[2] वारिपुष्पाक्षतैः समम्॥ ३॥
सुविताने शुभे स्थाने पङ्कजोपरि पीठके। उपवेश्य कुमारीं तां स्वाङ्गे न्यासं समाचरेत्॥ ४॥

तत्तन्मन्त्रोक्तऋष्यादिन्यासम्।

आत्मानं विधिवत् पूज्य क्रोधदर्पविवर्जितः। अथ ध्यायेत् कुमारीं तां महालक्ष्मीस्वरूपिणीम्॥५॥
नवाक्षरेण मन्त्रेण सुसिद्धेन समाचरेत्।..॥ ६॥

महालक्ष्मीस्वरूपिणीमिति नवाक्षरेणेति च तत्प्रकरणात्, तेन स्वेष्टदेवतास्वरूपिणीं स्वेष्टमन्त्रेण यजेदित्यर्थः।

दद्यादाचमनं तस्यै दद्याद्वस्त्रं सकौतुकम्। सकङ्कणाङ्गुलीयानि कर्णालङ्करणे शुभे॥ ७॥
ग्रैवेयकं प्रदायाथ चन्दनेन विलेपयेत्। पूजयेत् पुष्पमालाभिर्दिव्यैर्धूपैः सुधूपयेत्॥ ८॥
कुर्यादारात्रिकं राजंस्तथोपचार्य तां मुहुः। भोजयेद्भक्तिभावेन पायसं शर्कराघृतम्॥ ९॥
सुपक्वान्नानि चान्नानि सर्वक्षोभविवर्जितः। फलेक्षु स्वादु चान्यच्च दद्यात् तस्यै पुनः पुनः॥ १०॥
यावत् सा भोजनं कुर्यात् तावन्मौनी जपेत् सुधीः। दद्यादाचमनं तस्यै ताम्बूलं च समर्पयेत्॥ ११॥
अनर्घ्येण च दानेन कुमारीं प्रणतोऽसकृत्। प्रदक्षिणनमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः॥ १२॥
विसर्जयेत् कुमारीं तां स्वगृहं हर्ष[3]निर्भरः। अनेन विधिना भक्त्या कुमारीपूजयाप्नुयात्॥ १३॥
यं यं प्रार्थयते कामं देवानामपि दुर्लभम्। कुमारीपूजनं कृत्वा तं तं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ १४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां कुमारी परमा कला। तत्पूजनेन राजेन्द्र त्रैलोक्यं स्यात् सुपूजितम्॥ १५॥
सम्यक् क्रतु[4]फलं तस्य यः कुमारीः प्रपूजयेत्। तस्मात् पूजय भूपाल कुमारीर्यतमानसः॥१६॥
स्वराज्यं प्राप्स्यसे विश्वं मा ते भूदत्र[5] संशयः।..॥ १७॥

इति॥ अथ प्रयोगः—तत्र साधकः कृतनित्यक्रियः पूजादिनात् पूर्वदिने कुमार्या गृहं गत्वा मूलविद्यां स्मरन्, कुमारिके भगवति पूजार्थं मया निमन्त्रितासि मां कृतार्थं कुरु, इति नारिकेलपूगीफलादिना निमन्त्र्य, पूजादिने नित्यपूजानन्तरं कुमारीं सुगन्धतैलादिना सुस्नातामलङ्कृतामाहूय, पूजागृहाद्बहिः क्वचिन्मण्डले तस्याश्चरणावुष्णजलेन स्वयं सम्यक्प्रक्षाल्य सूक्ष्मवस्त्रेण प्रोञ्छ्य पूजास्थानं नीत्वा, अष्टदले सिन्दूरादिरचिते शुभे पीठे शुभास्तरणे पश्चिमाभिमुखीं

१. 'कन्यकाः' ख.पाठः। २. 'गन्धमात्रेण' ख.पाठः। ३. 'भक्ति' ग.पाठः। ४. 'कृत' ग.पाठः। ५. 'नित्यं क्षिप्रमेव न' ग. पाठः।

समुपवेश्य, स्वयं तत्सम्मुखः स्वासने समुपविश्य अद्येत्यादि० अमुककामः कुमारीपूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य गुर्वादिवन्दनपूर्वकं मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिसमस्तन्यासजातं कृत्वात्मपूजां विधाय, पीठपूजापूर्वकं तस्यां देवीमावाह्य ध्यात्वा, मूलविद्ययाचमनं दत्त्वा वस्त्रालङ्कारगन्धपुष्पधूपदीपान्तानुपचारान् समर्प्य पायसादिनानाविधान्नपानैर्भोजयन् यावत्सा भोजनं करोति तावत्कालं मौनी मूलविद्यां जपेत्। ततो भुक्तवत्यास्तस्याः[१] करक्षालनगण्डूषाचमनानि दत्त्वा सकर्पूरं ताम्बूलं समर्प्यारात्रिकं कृत्वा छत्रचामरादिराजोपचारैराराध्य यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य विसृजेदिति।। अथात्र पूज्यापूज्यकुमारीलक्षणानि। तत्रादौ पूज्यकुमारीलक्षणानि स्कान्दे—

अरोगिणीं सुपुष्टाङ्गीं सुरूपां व्रणवर्जिताम्। एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक् प्रपूजयेत्।। १।।

इति।। अथापूज्यलक्षणानि तत्रैव—

हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठाङ्गीं विशीलकुलसम्भवाम्। ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम्।। २।।
जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम्। सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्।। ३।।

इति। अथ फलविशेषे पूज्यविशेषश्च तत्रैव—

ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम्। लाभार्थे वैश्यसम्भूतां सुतार्थे शूद्रवंशजाम्।। ४।।
दारुणे चान्त्यजातीनां पूजयेद्विधिना नरः।...।। ५।।

इति कुमारीपूजनम्।

अथ वटुकादिबलिपञ्चक[२]प्रयोगः— पूजाचक्रस्येशानादिकोणचतुष्टये त्रिकोणवृत्तचतुरस्रात्मकानि बलिमण्डलानि विरच्य तेष्वीशानमण्डले 'वां वटुकभैरवाय नमः' इति वटुकं गन्धादिभिः सम्पूज्य तत्रान्नव्यञ्जनतोयपुष्पादिभरितं साधारं ताम्रादिपात्रं संस्थाप्य वटुकबलिद्रव्याय नमः, इति वटुकबलिद्रव्यं सम्पूज्य "४ एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय २ सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा" इति पूर्वस्थापितार्घ्यपात्रात् पात्रान्तरेणोद्धृतजलेन वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बलिमुत्सृजेत्।

एवमाग्नेयमण्डले "यां योगिनीभ्यो नमः" इति योगिनीः सम्पूज्य,

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा
पाताले वाऽनले वा पवनसलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रं पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः।। १।।

यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यो हुंफट्स्वाहेति वामाङ्गुष्ठानामामध्याभिरर्घ्यजलधारया बलिमुत्सृजेत्।

ततो निर्ऋतिकोणगतमण्डले 'क्षां क्षेत्रपालाय नमः' इति क्षेत्रपालं सम्पूज्य प्रागवद् बलिपात्रं निधाय "क्षांक्षींक्षूंक्षैंक्षौंक्षः स्थानक्षेत्रपालधूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा" इति वामाङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तर्जन्यैकया वा प्रागवद्बलिपात्रेऽर्घ्यजलधारां दद्यात्।

ततो वायव्यमण्डले 'गां गणपतये नमः' इति गणपतिं सम्पूज्य प्रागवद् बलिपात्रं विधायाभ्यर्च्य 'गांगींगूंगणपतये

---

१. 'त्यां तस्यां' ख. पाठः। २. 'पञ्चमः— कुरुकुल्लाबलिः।

वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण २ स्वाहेति वामाङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां प्राग्वद्बलिमुत्सृजेत्' इति वटुकादिबलिचतुष्टयविधिः॥☼

अथ कुल्लिकादिलक्षणम्। तत्र श्रीरुद्रयामले ईश्वर उवाच

कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत्। महासेतुं विशुद्धे तु सहस्रारे तु चोद्धरेत्॥ १॥
मणिपूरे तु निर्वाणं महाकुण्डलिनीमधः। स्वाधिष्ठाने कामराजं राकिणीं मूर्ध्नि संस्थिताम्॥ २॥
विचिन्त्य विधिवद् देवि मूलाधारात् त्रिकं शिवे। विशुद्धान्तं स्मरेद् देवि बिसतन्तुतनीयसीम्॥३॥
वेदिस्थानं हि जिह्वान्तं मूलमन्त्रावृतं मुहुः। इच्छाक्रियास्वमनिशं स्वेष्टदेवीस्वरूपिणी॥ ४॥
ज्ञातव्या परमेशानि जपेन्मन्त्रमनुत्तमम्।..॥ ५॥

श्रीदेव्युवाच

कुल्लि[1]का कीदृशी नाथ सेतुर्वा देव कीदृशः। कीदृशो वा महासेतुर्निर्वाणं नाथ कीदृशम्॥ ५॥
अन्यद्वा कथितं यन्मे कीदृशं तद्वद प्रभो।...॥ ६॥

ईश्वर उवाच

गुह्याद्गुह्यतमं देवि तत्र स्नेहेन कथ्यते। विना येन महेशानि निष्फलं परमेश्वरि॥ ६॥
तारायाः कुल्लिका देवि महानीलसरस्वती। पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लिका परिकथ्यते॥ ७॥
काली कूर्चं वधूर्माया फडर्णा परमेश्वरी। छिन्नायास्तु महेशानि कुल्लिकाष्टाक्षरी भवेत्॥ ८॥
वज्रवैरोचन्यै च अन्ते हुंफट् प्रकीर्तितम्। सम्पत्प्रदायाः प्रथमं भैरव्याः कुल्लिका मता॥ ९॥

☼अत्र पञ्चमं कुरुकुल्लाबलिविधानं न दृश्यते अतोऽन्यत्र दृष्टमधस्तात् लिख्यते यथा सौभाग्यरत्नाकरे कुरुकुल्लाबलिः—तत्र देव्यग्रे किञ्चित् स्ववामे भूमौ चन्दनादिना सिन्दूरेण वा नवयोन्याख्यकर्णिकमष्टदलकमलं कृत्वा तद्बहिः प्राक्पश्चिमद्वारद्वययुक्तं चतुरस्रद्वयमिति बलिमण्डलं विधाय कुरुकुल्लाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, अस्या विद्याया दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः श्रीकुरुकुल्ला देवता बलिदाने विनियोगः इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा मूर्धादिषु विन्यस्य बालाबीजत्रयेण मूलविद्यावत् करषडङ्गन्यासान् कृत्वा कुरुकुल्लाविद्यया व्यापकं कृत्वा "विकीर्णकुन्तलां नग्नां रक्तमानन्दविग्रहाम्। दधानां चिन्तयेद् बाणचापपाशसृणीः करैः॥ तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः। अनुस्थात्ताः? स्फुरद्योन्यः सदानन्दारुणेक्षणाः"॥ दक्षाधःकरमारभ्य दक्षोर्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानम्, इति स्वैक्येन ध्यात्वा मानसैरुपचारैः पूजयित्वा प्रोक्षणीपात्रजलमुत्सृज्य शुद्धजलेनापूर्य तत्र विशेषार्घ्यजलं दत्त्वा षडङ्गेन सम्पूज्य कुरुकुल्लाविद्ययाष्ट-वारमभिमन्त्र्य तेनोदकेन मण्डलमभ्युक्ष्य, तत्र मण्डूकादिपृथिव्यन्तं श्रीचक्रपीठपूजावद् अभ्यर्च्य, तथैव पश्चिमादिविलोमेन इक्षुमदिराघृतदुग्धक्षीरान् सम्पूज्य, इक्षुरससागरतीरद्वीपस्य निर्ऋतिकोणे ४ वाराही विद्यामुच्चार्य श्रीवाराहीदेवीश्रीपादुकां पूजयामीति मूलदेव्यभिमुखोपविष्टां वाराहीं सम्पूज्य, ततो वाराह्यनुज्ञया ४ ह्रींरत्नपोताय नमः इति रत्नपोतं सम्पूज्य तदुपरि रत्नसिंहासनादि मनोन्मनीशक्त्यन्तं श्रीचक्रपीठपूजाक्रमेण सम्पूज्य, ततस्तन्मध्ये प्रणवत्रितारान्ते ह्रींबलिचक्राय नमः इति बलिचक्रं सम्पूज्य ततस्तन्मध्ये सु दमाय नमः इति देव्या भर्तृभूतं पुरुषं सम्पूज्य तत्र पञ्चविंशाक्षर्या

१. 'कुल्लुका' क. पाठः।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः कुल्लिका द्वादशाक्षरी। वाग्भवं प्रथमं बीजं कामराजं ततः परम्॥ १०॥
लज्जाबीजं ततः पश्चात् त्रिपुरेशी ततः परम्। भगवतीपदं दद्यादन्ते ठद्वयमुद्धरेत् ॥ ११॥
कालिकायाः स्वबीजं तु कूर्चं वधूं नियोजयेत्। लज्जास्त्रमन्तके दद्यात्तारा नीलसरस्वती॥ १२॥
अन्येषां तु महेशानि त्र्यक्षरी कुल्लिका भवेत्। तारं कूर्चं समुद्धृत्य पश्चादङ्कुशमुद्धरेत्॥ १३॥
इति ते कथिता देवि सङ्क्षेपात् कुल्लिका मया। अज्ञात्वा कुल्लिकामेनां जपते योऽधमः प्रिये॥ १५॥
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिस्तु जायते। वृथा च तज्जपं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः॥ १५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेन्मूर्ध्नि कुल्लिकाम्। अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियंवदे॥ १६॥
यस्याज्ञानेन विफलं जपहोमादिकं भवेत्। विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च॥ १७॥
वैश्यजातेः फडन्तश्च माया शूद्रस्य कथ्यते। जप्त्वा त्विदं तु देवेशि सुन्दर्या भुवनेश्वरी॥ १८॥
कालिकायाः स्वबीजं तु तारायाः कूर्चबीजकम्। अन्येषां तु वधूबीजं महासेतुर्वरानने॥ १९॥
आदौ जप्त्वा महासेतुं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। धने धनेशतुल्योऽसौ वाचि वागीश्वरोपमः॥ २०॥
युद्धे कृतान्तसदृशो नारीणां मदनोपमः। जयकारं भवेत्तस्य सर्वकाले न संशयः॥ २१॥
अथ वक्ष्यामि निर्वाणं शृणु देवि वरानने। प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मातृकाद्यं समुच्चरेत्॥ २२॥

कुरुकुल्लाविद्यया त्रिखण्डामुद्रया च तां समावाह्य, ह्रीमिति स्थापनादिपरमीकरणान्तमुद्राः प्रदर्श्य तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्य, आसनादिपुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य श्रीकुरुकुल्ले परिवारपूजार्थमनुज्ञां देहीति प्रार्थ्य तदनुज्ञया साधकः स्वयं रत्नपोतमारुह्य, रत्नपोतस्य पूर्वपश्चिमकोणे ४ ह्रीं: भ्रामिणीश्री०। ४ ह्रीं द्राविणीश्री०। इति सम्पूज्य पश्चिमद्वारस्य दक्षिणशाखामारभ्य नव शक्तीः प्रादक्षिण्येन पूजयेत्। तद्यथा पश्चिमद्वारदक्षिणशाखायां ४ ह्रीं: सूर्यरूपिणीशक्तिश्री० वायव्यकोणे ह्रीं: सोमरूपिणीशक्तिश्री० उत्तरे ४ ह्रीं: तिथिरूपिणीशक्तिः० ईशाने ४ ह्रीं: वाररूपिणीश०, पूर्वद्वारस्योत्तरशाखायां ४ ह्रीं: योगरूपिणीश० दक्षशाखायां ४ ह्रीं: ऋक्षरूपिणीश० आग्नेये ४ ह्रीं: करणरूपिणीश०, दक्षिणे ४ ह्रीं: पक्षिणीरूपिणीशक्तिश्री० नैर्ऋत्ये ४ ह्रीं: तारारूपिणीशक्तिश्री० ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ४ ह्रीं: व्योमरूपिणीशब्दशक्तिश्री० ४ ह्रीं: वायुरूपिणीस्पर्शशक्तिश्री० ४ ह्रीं: अग्निरूपिणीरसशक्तिश्री० ४ ह्रीं: तोयरूपिणीरसशक्तिश्री०४ ह्रीं: क्ष्मारूपिणीगन्धशक्तिश्री० ४ ह्रीं: प्राणरूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: बुद्धिरूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: शक्तिरूपिणीशक्तिश्री० ४ इति सम्पूज्य ज्यान्तरष्टयोनिषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्तवशिन्यादिवाग्देवताष्टकं सम्पूज्य, तदन्तर्योनेर्बहिर्देव्या दक्षिणभुजाग्रमारभ्य वामावर्तेन दक्षिणोर्ध्वभुजाग्रपर्यन्तेषु चतुःस्थानेषु ४ ह्रीं: बाणरूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: चापरूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: पाशरूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: अङ्कुशरूपिणीशक्तिश्री०। ततो मध्ययोनौ देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ४ ह्रीं: इच्छारूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: ज्ञानारूपिणीशक्तिश्री० ४ ह्रीं: क्रियारूपिणीशक्तिश्री०। ततो मध्ये प्रागवत्संविदासनं सम्पूज्य तस्मिन् कुरुकुल्लां प्रागुक्तरूपां ध्यात्वा पञ्चविंशार्णमूलविद्यया गन्धादिभिः पुनः सम्पूज्य धूपदीपौ निवेद्य, तदग्रे पात्रत्रयं साधारं सान्नव्यञ्जनजलपूर्णं सगन्धपुष्पं चतुरस्रवृत्तत्रिकोणमण्डले संस्थाप्य, तत्र विशेषार्घबिन्दुं दत्त्वा ४ श्रीकुरुकुल्लादेव्या बलिद्रव्याय नमः इति सम्पूज्य, स्ववामादिक्रमेण ४ कुरुकुल्ले स्वाहा श्रीकुरुकुल्ले एष ते बलिः'' इति प्रथमपात्रे दद्यात्। ४ कुरुकुल्लायाः ऊँ कुरुकुल्ले ह्रीं: स्वाहेति

एवं पुटितमूलं तु प्रजपेन्मणिपूरके। एवं निर्वाणमीशानि यो न जानाति पामरः।। २३।।
वर्षकोटिशतेनापि सिद्धिस्तस्य कदापि न। तस्मान् सर्वप्रयत्नेन यद्यदुक्तं महेश्वरि।। ३४।।
तत्तदाचर्य विधिवत् प्रजपेन्मन्त्रमुत्तमम्। ऋषिश्छन्दो देवता च तद्बीजं शक्तिकीलके।। २५।।
भावयेद्यत्नतो देवि ततः सेत्वादिकं जपेत्। एवं यद्रि जपेन्मन्त्री मन्त्रराजमनुत्तमम्।। २६।।
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। साक्षात् स एव जगतामधीशो नात्र संशयः।। २७।।
स शरण्यं स वै ज्ञानी स एव मन्त्रतत्त्ववित्। स एव नृत्यते भूमौ विचरेच्च यथामुखम्।। २८।।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते च वैरिणः।...।। २९।।
एवं कृत्वा सकलपुटितं यो जपेन्मन्त्रराजं तन्निर्वाणं भवनरुधितं कुल्लिकान्तानि जप्त्वा।
तेषां तद्वन्निखिलभुवने सिद्धयोऽष्टौ च हस्ते तेषां तत्त्वं वचसि वचनं पद्मपद्मान्तरे च।। २९।।

इति। अत्र तु ह्रींस्त्रींहूं इति तारायाः सभेदायाः कुल्लिका भवति। क्रींह्रींस्त्रींह्रींफट् इति पञ्चाक्षरी दक्षिणकालिकायाः सभेदाया कुल्लिका भवति। वज्रवैरोचन्यै हुंफट् इति छिन्नायाः सभेदायाः कुल्लिका भवति। ऐंक्लींह्रींऐंक्लींसौः भगवति स्वाहा इति द्वादशाक्षरी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः सभेदायाः सम्पत्प्रदायाः भैरव्याः सभेदायाश्च कुल्लिका भवति। ओंहूंक्रें इति त्र्यक्षरी अन्येषां मन्त्राणां विद्यानां च सर्वत्र कुल्लिका भवतीत्यर्थः। ब्राह्मणानां च प्रणवः सेतुर्भवति। क्षत्रियाणामपि स एव। वैश्यानां फडिति सेतुर्भवति। शूद्राणां तु मायाबीजं सेतुर्भवति। क्रीमिति कालिकाभेदानां महासेतुर्भवति। हूमिति तारायाः महासेतुर्भवति। अन्येषां तु स्त्रीमिति महासेतुर्भवति। ओंअं मूलं० ऐंअंओं, ओंआं

द्वितीयपात्रे तथैव विशेषार्घ्यधारां दद्यात्। ४ ततः कुरुकुल्लाया ओं कुरुकुल्ले ह्रीं: मम सर्वजनं वशमानय ह्रीं: स्वाहा, इति तथैव तृतीयपात्रे विशेषार्घ्यधारां दद्यात्। इत्थं बलिदानं कृत्वा नाराचमुद्रया बलिदानं ग्राहयित्वा पञ्चविंशार्णमूलविद्यया गन्धादिदीपान्तैरुपचारैर्गन्धपुष्पाक्षतैर्वा पूजयित्वा उक्तविधिना बलित्रयं दद्यात्। इति कुरुकुल्लाबलिः।। अत्र देव्यङ्गत्वे बलिदाने पूजायां देवीसम्मुखत्वेन पूर्वाभिमुखमुपविष्टाया अपि कुरुकुल्लायाः पश्चिमाभिमुखत्वं तदग्रस्यैव पश्चिमत्वं च बोद्धव्यम्। स्वतन्त्रपूजायां तु कुरुकुल्लायाः पश्चिमाभिमुखत्वं तदग्रस्यैव पश्चिमत्वं चेति।।

अथ वाराहीबलिः। तत्र देव्यग्रे किञ्चिन्नैर्ऋतिकोणे त्रिकोणवृत्तद्वयचतुरस्रात्मकं मण्डलं निर्माय ४ वाराहीबलिमण्डलाय नमः इति सम्पूज्य, ऐंग्लौंलूंवाराहीयोगपीठाय नमः इति योगपीठं आधारशक्त्यादिज्ञानात्मार्चान्ते सम्पूज्य, तत्र वाराहीं तद्विद्यया समावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय वाराहीमुद्रां योनिमुद्रां च प्रदर्श्य वाराहीविद्ययासनादिपुष्पान्तैरुपचारैर्गन्धादिपुष्पान्तैर्वा सम्पूज्यावरणनि पूजयेत्। तद्यथा त्रिकोणस्य वामकोणे ओं क्रोधिन्यै नमः, दक्षे ओं स्तम्भिन्यै नमः, अग्रे ओं दं चण्डोच्चण्डायै नमः। ततः षट्कोणकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ओंआंब्राह्म्यै नमः ओंईंमाहेश्वर्यै नमः ओंऊंकौमार्यै नमः ओंॠंवैष्णव्यै नमः ओंऐंइन्द्राण्यै नमः ओंऔंचामुण्डायै नमः इति सम्पूज्य बहिर्वृत्तद्वये ओंअःमहालक्ष्म्यै नमः इति देव्यग्रे पूजयेत्। ततश्चतुरस्रे इन्द्रादींस्तद्बहिर्वज्रादींश्च सम्पूज्य पुनर्मध्ये वाराहीं तद्विद्यया सम्पूज्य, तदग्रे प्राग्वद्बलिपात्रं निधाय ४ वाराहीबलिद्रव्याय नमः इति सम्पूज्य वाराहीविद्यामुच्चार्य श्रीवाराहि एष ते बलिर्नमः इति प्राग्वद्बलिमुत्सृज्य पुनस्तद्विद्यया तां सम्पूज्य नाराचमुद्रया बलिं ग्राहयित्वा योनिमुद्रया प्रणमेदिति वाराहीबलिः।।

मूलं० ऐंआंओं, ऊंइं मूलं० ऐंइंऊं इत्यादि प्रत्यक्षरसम्पुटितमूलं निर्वाणमित्युच्यते। केचित्तु— ओंअं मूलं० ऐंअं समस्तमातृका, अन्ते ऊोमिति मणिपूरके सप्तवारं जपेदिति वदन्ति। अत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति।

अथैतस्य प्रयोगः— मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा अस्याः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीविद्यायाः, शिरसि अमुकाय ऋषये नमः। मुखे अमुकच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये अमुकबीजाय नमः। पादयोः अमुकशक्तये नमः। नाभौ अमुककीलकाय नमः। इति विन्यस्य "ऐंक्लींह्रींऐंक्लींसौः भगवति स्वाहा" इति कुल्लिकां मूर्ध्नि सप्तधा त्रिधा वा जपेत्। ऊोमिति सेतुं हृदि तथैव स्मृत्वा; ह्रीमिति महासेतुं सहस्रारे तथैव स्मृत्वा, ऊंअं मूलं० ऊंऐंअं ५१ ऊं इति निर्वाणं मणिपूरके तथैव स्मरेत्। लिङ्गे क्लीमिति तथैव स्मरेत्। जिह्वायां मूलविद्यां तथैव स्मरेत्। मूर्ध्नि सहस्रारे ओंऐंह्रींश्रींरांरींरूंरैंरौंरः रमलवरयूं राकिणि मां रक्ष २ सर्वसत्त्ववशङ्करि देव्यागच्छ २ इमां पूजां गृहण २ ऐं घोरे देवि ह्रींसः परमघोरे हूं घोररूपे एह्येहि नमश्चामुण्डे डलरकसहैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि देवि वरदे विच्चे" इति राकिणीं मूर्ध्नि स्मरेदिति। इति कुल्लुकादिविधिः।। अथ प्राणप्रतिष्ठाविधानम्। कुलार्णवे—

तारं नारायणं सेन्दुं मायामङ्कुशमुद्धरेत्। याद्यान् सबिन्दून् सप्तार्णानुद्धृत्य वियदोयुतम्।। १।।
बिन्दुयुक्तं चाजपाख्यं परमात्ममनुं वदेत्। अमुष्य शब्दमुद्धृत्य प्राणा इह इतीरयेत्।। २।।
प्राणाः पाशादिकान् वर्णांस्तिथिसंख्यान् पुनर्वदेत्। अमुष्य जीव इह च स्थित इत्युद्धरेत् ततः।।३।।
पुनः पञ्चदशार्णान्ते अमुष्येति पदं वदेत्। सर्वेन्द्रियाणि च ततः पुनः पञ्चदशार्णकान्।। ४।।
अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणपदादथ। प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु च द्विठः।। ५।।
इत्थं प्राणप्रतिष्ठाख्यमनुः प्रोक्तो मनीषिभिः। चतुर्दशोत्तरैर्वर्णैर्मन्त्रः सर्वार्थसिद्धिदः।। ६।।

इति। तारः प्रणवः, नारायण आकारः सेन्दुः सानुस्वारः, माया भुवनेश्वरीबीजं, अङ्कुशः क्रोंबीजं, वियत् हकारः, ऊं स्वरूपं, बिन्दुरनुस्वारः तेन हों इति। अजपा हंस इति, परमात्ममनुः सोऽहमिति, द्विठः स्वाहाकारः, अमुष्यपदस्थाने साध्यपदं षष्ठ्यन्तं योज्यम्। स्वयं साध्यश्चेन्ममेति योज्यम्। अत्र केचित् पाशबीजादिपञ्चदशवर्णानामादावेवोच्चारणं न स्थानान्तरेषु, काम्यप्रयोगकाले तेषां स्थानान्तरेषूच्चारो जपपूजादिषु नास्तीत्याहुः। "प्रत्यमुष्यपदं पूर्वं प्रयोजये"दिति शारदातिलकवचनात्। तत्र स्वगुरुमतं प्रमाणम्। तथा—

ऋषयो ब्रह्मविष्णवीशा मन्त्रस्यास्य समीरिताः। छन्दांसि ऋग्यजुःसामान्याहुरागमपारगाः।। ७।।
प्राणशक्तिर्देवता स्यात् सर्वप्राणिहृदि स्थिता। पाशो बीजं शक्तिरेव शक्तिः कीलकमङ्कुशम्।। ८।।
विनियोगस्तु विज्ञेयः प्राणस्थापनकर्मणि। श्रीकण्ठं बिन्दुसंयुक्तं कवर्गं बिन्दुसंयुतम्।। ९।।
आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्यात्म च ने वदेत्। सबिन्द्वनन्तो हृन्मन्त्रः सूक्ष्मं बिन्दुयुतं वदेत्।। १०।।
बिन्दुयुक्तचवर्गान्ते शब्दस्पर्श च रूप च। रसगन्धात्मने त्वन्ते त्रिमूर्तीशं सबिन्दुकम्।। ११।।
वदेदयं शिरोमन्त्रस्त्वमरेशं सबिन्दुकम्। टवर्गं च तथोद्धृत्य श्रोत्रत्वक्चक्षुरित्यथ।। १२।।
जिह्वाघ्राणात्मनेऽर्घीशो बिन्दुयुक्तः शिखामनुः। झिण्ठीशं बिन्दुसंयुक्तं तवर्गं तादृशं वदेत्।। १३।।
वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने बिन्दुभौतिके। वर्माणुर्बिन्दुयुक् सद्यः पवर्गो बिन्दुसंयुतः।। १४।।

वचनादानविसर्गगमनानन्द चात्मने। अनुग्रहो बिन्दुयुक्तो नेत्रमन्त्र उदाहृतः ॥ १५॥
तिथिस्वरान्ते याद्यर्णान् दश बिन्दुविभूषितान्। उक्त्वा मनोबुद्ध्यहङ्कारान्तचित्तात्मने पदम्॥ १६॥
विसर्ग एष सम्प्रोक्तो मनुरस्त्राभिधानकः। एवं षडङ्गमनवस्तारबीजत्रयादिकाः ॥ १७॥
न्यस्तव्या जातियुक्ताश्च मन्त्रिभिः स्वकराङ्गयोः। नाभितः पादयुग्मान्तं कण्ठादानाभिमस्तकात्॥ १८॥
कण्ठान्तमिति बीजानि पाशादीनि प्रविन्यसेत्। ततो हृत्पद्ममध्ये तु ध्यात्वा वसुदलाम्बुजम्॥ १९॥
तस्य वाय्वग्निपूर्वेषु पश्चिमेशानयोरपि। नैर्ऋत्योत्तरयाम्येषु कर्णिकायां दलेषु च ॥ २०॥
यादिक्षान्तान्यक्षराणि बिन्दुयुक्तानि विन्यसेत्। एकैकशो लवर्ज्यानि ततो देवीं हृदि स्मरेत्॥ २१॥

इति॥ अस्य प्रयोगस्तु— अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य शिरसि ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यः ऋषिभ्यो नमः। मुखे ऋग्यजुःसामभ्यश्छन्देभ्यो नमः। हृदये पराप्राणशक्त्यै देवतायै नमः। गुह्ये आंबीजाय नमः। पादयोः ह्रींशक्तये नमः। नाभौ क्रोंकीलकाय नमः। इति विन्यस्यामुष्य प्राणप्रतिष्ठार्थे विनियोगः इति कृताञ्जलिर्वदेत्। ततः ओंआंह्रींक्रोंअंकं ५ आंआकाशवाय्वग्निसलिल-पृथिव्यात्मने आंहृदयाय नमः। ओंआंह्रींक्रोंइंचं ५ ईंशब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईंशिरसे स्वाहा। ओंआंह्रींक्रोंउंटं ५ ऊंश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊंशिखायै वषट्। ओंआंह्रींक्रोंएंतं ५ ऐंवाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐंकवचाय हुं। ओंआंह्रींक्रोंओंपं ५ औंवचनादानविसर्गगमनानन्दात्मने औंनेत्रत्रयाय वौषट्। ओंआंह्रींक्रोंअंयं १० अःमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अःअस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकरतलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततो नाभ्यादिपादद्वयाप्रान्तं आं नमः। कण्ठादिनाभ्यन्तं ह्रीं नमः। मूर्धादिकण्ठान्तं क्रों नमः। ततो हृदयकमले वायव्यदले यं नमः। आग्नेये रं नमः। पूर्वं लं नमः। पश्चिमे वं नमः। ईशाने शं नमः। नैर्ऋत्ये षं नमः। उत्तरे सं नमः। दक्षिणे हं नमः। कर्णिकायां क्षं नमः। इति विन्यस्य ओंआंह्रींक्रोंयंरंलंवंशंषंसंहोंहंसः सोहं अमुष्य प्राणा इह प्राणाः १५ अमुष्य जीव इह स्थितः १५ अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि १५ अमुष्य वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ओं, इति मन्त्रेण सर्वाङ्गे व्यापकं त्रिधा विन्यस्य ध्यायेत्।

रक्ताब्धिपोतारुणपद्मसंस्था पाशाङ्कुशाविक्षुशरासबाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराग्रै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम्॥ २२॥

एवं ध्यात्वा जगद्धात्रीं लक्षमेकं जपन्मनुम्। जुहुयाद् तद्दशांशं च चरुभिर्घृतसंयुतैः॥ २३॥
षट्कोणाढ्ये शक्तिपीठे विधिनानेन पूजयेत्। अर्चयेत् षट्सु कोणेषु ब्रह्माणं विष्णुमीश्वरम्॥२४॥
वाणीं लक्ष्मीं रमां पश्चात् षडङ्गानि प्रपूजयेत्। दलेषु मातरः पूज्यास्तद्बाह्ये लोकनायकाः॥ २५॥
एवं सम्पूजयेद् देवीं सुगन्धिकुसुमादिभिः। इति संसाधितो मन्त्रः षट्कर्मफलदो भवेत्॥ २६॥
स्थापयेन्मनुनानेन प्राणान् सर्वत्र देशिकः।...॥

इति। अत्र तदुपासनाविधिस्तु—प्राग्वत् प्रातःकृत्यादि योगपीठन्यासान्तं कृत्वा मूलेन प्राणायामत्रयर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधायान्तर्यागोत्तरं स्वपुरतः सिन्दूरादिना षट्कोणाष्टदलभूपुरात्मकं पूजायन्त्रं विलिख्य पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादि-स्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सम्पूज्य केसरेषु ओंजयायै नमः। विजयायै नमः। अजितायै नमः। अपराजितायै नमः। नित्यायै नमः। विलासिन्यै नमः। दोग्ध्र्यै नमः। अघोरायै नमः। मङ्गलायै नमः। इति सम्पूज्य,

ह्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, मूलमन्त्रेण मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते षट्कोणेषु देव्यग्रे देवीपृष्ठदक्षिणवामकोणेषु—ओंब्रह्मणे नमः। ओंविष्णवे नमः। ओंरुद्राय नमः। दक्षिणाग्रदेवीपृष्ठवामभागेषु—सरस्वत्यै नमः। लक्ष्म्यै० गौर्यै०। षट्कोणसन्धिषु प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याष्टसु पत्रेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्तब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य चतुरस्त्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं जुहुयात् तद्दशांशतः। साज्येन चरुणा पश्चात् तर्पणादि समाचरेत्।। १७।।

इति। शारदायाम्— (२३। ९२)

बीजान्तेऽमुष्य—शब्दानामादौ दूतीः प्रपूजयेत्। मृता वैवस्वता भूयो जीवहा प्राणहा पुनः।। १।।
आकृष्या प्रसना[1] पश्चाद्भ्रमदा विस्फुलिङ्गिनी। क्षेत्रप्रतिहरीत्येताः प्राणदूत्यो नव स्मृताः।। २।।
पाशेन बद्धचेष्टस्य शक्त्या स्वीकृतचेतसः। अङ्कुशेन हृतस्यापि साध्यस्यासून् समाहरेत्।। ३।।
द्वादशाङ्गुलमानेन कृत्वा साध्यस्य पुत्तलीम्। तस्याः प्राणात्मकं यन्त्रं सकीटं हृदये न्यसेत्।।४।।
निशीथसमये साध्ये सुप्ते तस्य हृदम्बुजे। दलेषु वायुवह्नीन्द्रवरुणानामतः परम्।। ५।।
ईशराक्षसशीतांशुयमानां कर्णिकान्तरे। यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गाकाराननुस्मरेत्।। ६।।
शिरोबिन्दुसमुद्भूततन्तुसम्बद्धविग्रहान्। एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपान् धिया स्मरेत्।। ७।।
आत्महृत्पद्मगा भृङ्गीः प्रस्थाप्य श्वासवर्त्मना। एकैकां साध्यहृत्पद्माद् भृङ्गानेकैमानयेत्।। ८।।
पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री स्वचित्ते वा विधानवित्। तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत वह्निबीजेन सर्वतः।। ९।।
आकृष्यान् साध्यहृद्भृङ्गान् भुवा संस्तम्भयेत्ततः। एवमेकादशावृत्ति कुर्यात् सर्वेषु कर्मसु।। १०।।
वश्याकर्षणयोर्यादीनरुणान् संस्मरेत् सुधीः। मोहविद्वेषयोर्धूम्रान् कृष्णान् मारणकर्मणि।। ११।।
पीतान् संस्तम्भने ध्यायेत् प्राणाकर्षणकर्मवित्[2]। आकृष्यान् साध्यहृत्प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि।।१२।।
क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापनमीरितम्। प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मनस्तु भुजङ्गमान्।। १३।।
संस्मरेत् तत्र निपुणः सदा क्रूरेषु कर्मसु।...।।

वाय्वग्निशक्रवरुणेश्वरराक्षसेन्दुप्रेतेशपत्रलिखितैरथ यादिवर्णैः।
बिन्द्वन्तगैः क्षगतहंससमेतसाध्यं प्राणात्मयन्त्रमथ वर्णवृतं धरास्थम्।। १४।।

इत्थं प्रयोगकुशलो मनुनानेन मन्त्रवित्। वशयेत् सकलान् देवान् किं पुनः पार्थिवाङ्गनान्।। १।।

इति। अत्र पुरश्चरणविधिमुक्त्वा विशेषो ब्रह्मयामले—

अत्र नित्यं हुनेन्मन्त्री जपाकिंशुकसम्भवैः। पुष्पै रक्तोत्पलैर्वापि मूलेन च नवाहुतीः।। १।।
हुत्वा बीजत्रयेणाथ हुनेदेकैकशः क्रमात्। यादिहंसान्तवर्णोत्थाः प्राणदूत्यो नव स्मृताः।। २।।
मृता वैवस्वता चैव जीवहा प्राणहा तथा। आकर्षिणी च ग्रसना भ्रमदा विस्फुलिङ्गिनी।। ३।।
क्षेत्रज्ञहारिणी चेति सम्प्रोक्तास्ता यथाक्रमम्। तत्तद्वर्णादिना नाम्ना तासां चैव हुनेत् क्रमात्।।४।।

आंह्रींक्रोंयं मृतायै स्वाहा इत्यादिप्रयोगः।

१. 'ग्रथनी पश्चात् प्रमादा' ख. पाठः। २. 'णि' ख. पाठः।

ध्यानं वक्ष्ये प्रयोगेषु यथा ध्येया महेश्वरि। गत्वा साध्यं दृढं बद्ध्वा पाशबीजेन सुन्दरि।। ५।।
शक्तिबीजेन तच्छक्तिं गृहीत्वाङ्कुशबीजतः। प्राणमांकृष्य साध्यस्य चानयन्तीं सदा स्मरेत्।। ६।।
निशीथसमये साध्ये सुप्ते तस्य हृदम्बुजे। दलेषु वायुवह्नीन्द्रवरुणानां सुरेश्वरि।। ७।।
ईशराक्षससौम्येषु दक्षिणे कर्णिकान्तरे। यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गाकाराननुस्मरेत्।। ८।।
शिरोबिन्दुसमुद्भूततन्तुसम्बद्धविग्रहान्। एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपान् धिया स्मरेत्।। ९।।
आत्महृत्पद्मगा भृङ्गीः प्रस्थाप्य श्वासवर्त्मना। एकैकान् साध्यहृत्पद्माद् भृङ्गानेकैकमानयेत्।। १०।।
पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री स्वचित्ते वा विधानवित्[1]। तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत बह्निबीजेन पार्वति।। ११।।
आकृष्टान् साध्यहृद्भृङ्गान् स्तम्भयेद्भूमिबीजतः। एवमेकादशावृत्तिं कुर्यात् सर्वेषु कर्मसु।। १२।।
वश्याकर्षणयोर्यादीनरुणान् संस्मरेत् प्रिये। मोहविद्वेषयोर्धूम्रान् कृष्णान् मारणकर्मणि।। १३।।
पीतान् संस्तम्भने देवि प्राणाकर्षणकर्मवित्। आकृष्टान् साध्यहृत्प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि।। १४।।
क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापनमीरितम्। प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मनस्तु भुजङ्गमान्।। १५।।
संस्मरेद् देवदेवेशि सदा क्रूरेषु कर्मसु । इत्थं प्रयोगकुशलो मनुनानेन सुन्दरि।। १६।।
वशयेत् सकलान् देवान् किं पुनः पार्थिवाङ्गनान्। वाय्वग्निशक्रवरुणशिवराक्षससोमगान्।। १७।।
दक्षिणान्तान् लिखेद्यादीन् हान्तानष्टसु पार्वति। दलेषु बिन्दुसंयुक्तान् क्षकारं कर्णिकान्तरे।। १८।।
विलिख्य तस्य मध्ये तु हंस इत्यक्षरद्वयम्। साध्यनामसमोपेतं विलिखेद्गिरिसम्भवे।। १९।।
वेष्टयेच्चतुरस्रेण यन्त्रं प्राणमनोरिदम्। क्रूरकर्मसु संप्रोक्तद्रव्यैरष्टविषादिभिः।। २०।।
कृतां पुत्तलिकां साध्यनरकेशसमन्विताम्। द्वादशाङ्गुलमानेन स्पष्टाङ्गीमतिमञ्जुलाम्।। २१।।
तस्यास्तु हृदये देवि प्राणयन्त्रं विनिक्षिपेत्। लिखितं शववस्त्रे च सकीटं वरवर्णिनि।। २२।।
प्राणान् संस्थापयेत्तस्यां साध्यस्य प्रोक्तरूपतः। छित्वा ताञ्जुहुयाद्रात्रौ साध्यं स्मृत्वा चितानले।।२३।।
सप्तरात्रप्रयोगेण मारयेत् रिपुमात्मनः।...।।

सकीटं सजीवं, संस्थापितसाध्यप्राणमिति यावत्। अष्टविषाणि तु—

श्येनाग्निलोणपिंण्डानि धत्तूरकरसस्तथा । गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदाहृतम्।। २४।।

इत्युक्तानि। श्येनः श्येनविष्ठा, अग्निश्चित्रकं, लोणपिण्डः कृत्रिमलवणं। अन्यत्सुगमम्। तथा—

कला आवाहयेत् कुम्भे प्रतिमादिषु मन्त्रवित्। शैवे च गाणपत्ये च षणवत्यः कलाः स्मृताः।।२५।।
पञ्चाशीतिः कलाः सौरे चतुर्नवतिर्वैष्णवे। शाक्ते तु सप्ततिः प्रोक्ताः शैव्यश्चेति च केचन।। २६।।

शैव्यः षण्णवतिकलाः शाक्तेऽपि योज्या इति केचन वदन्तीत्यर्थः। शैवीः कला आह—

तत्र तत्त्वानि षट्त्रिंशद् द्वात्रिंशत् कामसोमयोः। दूत्यो नव दश प्राणा यादयो नव वर्णकाः।।२७।।
कलाः शैवा(वीः)वदाम्यत्र शिवशक्तिसदाशिवाः। ईश्वरः शुद्धविद्या च माया विद्या कला तथा।।२८।।

---

१. 'स्थापयेत्क्रूरे स्वचित्तेतरकर्मसु' ख. पाठः।

राग: कालश्च नियति: पुरुष: प्रकृतिस्तथा। अहङ्कारश्च बुद्धिश्च मन:श्रोत्रत्वचस्तत:।। २९।।
जिह्वा घ्राणश्च वाक्पाणिपादा: पायुस्तत: परम्। उपस्थशब्दौ स्पर्शश्च रसो गन्धो वियन्मरुत्।।३०।।
वह्नि: सलिलपृथ्व्यौ च श्रद्धा प्रीती रतिर्धृति:। कान्तिर्मनोरमा चैव ततश्चैव मनोहरा।। ३१।।
मनोरथा च मदनोन्मादिनी मोहिनी तथा। शङ्खिनी शोषिणी चैव वशङ्करी च शिञ्जिनी।। ३२।।
सुतगा सस्वराश्चैव षोडशात्र समीरिता:। पूषा चेद्धा सुमनसा रति: प्रीतिर्धृतिस्तथा।। ३३।।
ऋद्धि: सौम्या मरीचिश्च ततश्चाप्यंशुमालिनी। शशिनी चाङ्गिरा च्छाया तत: सम्पूर्णमण्डला।।३४।।
तुष्ठामृताख्या: कथिता: कलास्ता: सस्वरा विधो:। अमृताद्या दश प्राणा यादयो नव वर्णका:।। ३५।।
षण्णवत्य: कला: प्रोक्ता: शैवे शाक्ते च गाणपे। अथ वक्ष्ये वैष्णवाख्या: कला: शृणु वरानने।।३६।।
जीवप्राणौ बुद्धिमन:श्रोत्राद्या विंशतिस्तथा। हृत्पद्मं सूर्यसोमाग्निवासुदेवाह्वयास्तत:।। ३७।।
सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नश्चानिरुद्धस्तत: परम्। श्रद्धादयोऽत्र विज्ञेया: सौरा: शृणु वदामि ते।। ३८।।
आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीशब्द एव च। स्पर्शो रूपं रसो गन्ध: श्रोत्रं त्वक् चक्षुरेव च।। ३९।।
जिह्वा घ्राणं च वाक्पाणी पादपायू तथैव च। उपस्थश्च मनो गर्वो बुद्धिर्धी: प्रकृतिस्तत:।। ४०।।
श्रद्धादयोऽत्र विज्ञेया: शाक्ता: शृणु वरानने। आत्मविद्याशिवाश्चैते प्रतिलोमक्रमात् पुन:।। ४१।।
अनुलोमेन ते भूय: सर्वतत्त्वं तथैव च। श्रद्धादयस्तत: प्रोक्ता: कला: सर्वा: समीरिता:।। ४२।।

इति। अस्यार्थ:— सौम्यकर्मसु प्रतिमादिष्वावाहने तु साधक: कृतनित्यक्रिय: यथोक्तलक्षणप्रतिमाग्रे स्वासने समुपविश्य दिनान्तरावाहितसमस्तकलापूर्णपूर्णकुम्भमात्मप्रतिमयोर्मध्ये साधारं संस्थाप्य प्राणानायम्य अद्येत्यादितिथ्युल्लेखनान्तेऽमुकाकृतिप्रतिमायाममुकदेवतासान्निध्यकारिण्योमुकसंख्याककला आवाहयिष्ये इति सङ्कल्प्य प्राणयन्त्रं प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्रतिष्ठितं प्रतिमाया गले बद्ध्वा आवाहयेत्।

प्राणयन्त्ररचनाप्रकारस्तु—भूर्जादावष्टगन्धेनाष्टदलकमलं विलिख्य कर्णिकायां ससाध्यं क्षकारं विलिख्य हंस इत्यक्षरद्वयेन क्षकारं वेष्टयित्वा वायव्यदले यं, आग्नेये रं, पूर्वे लं, पश्चिमे वं, इशाने शं, नैर्ऋत्ये षं, उत्तरे सं, याम्यदले हं, इति वर्णाष्टकं विलिख्य बहिर्भूपुरं विलिख्य मातृकार्णैर्वेष्टयित्वा तत्तत्स्थानेषु दिक्पालबीजानि विलिखेदिति प्राणयन्त्रं विलिख्य होमसम्पातं कुर्यादिति। तत आहवनीयदेवतामन्त्रेण प्राणायामर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासध्यानानि विधाय प्रतिमाया भूतशुद्धिमातृकान्यासान्तं विधाय, प्रतिमाहृदये स्पृशन् प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण अमुष्यपदस्थाने आहवनीयदेवतानाम षष्ठ्यन्तं संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा कला आवाहयेत्। यथा— सुगन्धजलपुष्पभरितपूर्णकुम्भमुखपिधानवस्त्रं निष्कास्य तन्मध्यस्थपुष्पमेकमुद्धृत्य ॐआंह्रींक्रोंहंस:सोऽहं यरलवशषसहों अमुकदेवताया: शिवतत्त्वरूपप्राणकला इह स्थिता:, १५ अमुकदेवताया: शिवतत्त्वरूपजीवकला इह, १५ अमुकदेवताया' शिवतत्त्वरूपसर्वेन्द्रियकला:, १५ अमुकदेवताया: शिवतत्त्वरूपवाङ्मनश्चक्षुस्त्वक्श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणकला इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इत्युच्चार्य प्रतिमाशिरसि निक्षिपेत्। एवं शक्तितत्त्वरूप० ईश्वरतत्त्वरूप० इत्यादि क्रम ऊह्य:। अत्र सम्प्रदायस्तु प्रथमकलामेकवारमुच्चार्यावाहयेत्। द्वितीयाया वारद्वयं। तृतीयायास्त्रिवारं। चतुर्थ्याश्चतुर्वारं, एवं क्रमेणैकोत्तरवृद्ध्योच्चारणमिति।। तन्त्रान्तरे—

शुक्लप्रतिपदारम्भाद्यावत् पूर्णा तिथिर्भवेत्। कुर्यादावाहनं मन्त्री प्रतिमादौ शुभे तथा।। १।।
आकर्षणं कलानां तु कृष्णे प्रतिपदादितः। कलानां ह्रासवृद्धचेन्दोः कृष्णशुक्लप्रभेदतः।। २।।
तिथिक्रमेण जायेते तथैवात्र दिनक्रमः। गुरुतः शास्त्रतः सम्यग्ज्ञात्वा कुर्वीत देशिकः।। ३।।
अज्ञात्वा कुरुते यस्तु म्रियते मूढधीः स्वयम्।..।। ४।।

इति।। अथ नित्यहोमेऽग्निस्थापनविधिः—पूजस्थानस्येशानभागे कुण्डस्थण्डिलाद्यन्यतमे गोमयेनोपलिप्ते मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण संरक्ष्यास्त्रेणैव कुशैः सन्ताड्य कवचमन्त्रेण प्रोक्ष्य, हृन्मन्त्रेण विष्णुरुद्रेन्द्रदेवताकास्तिस्रो रेखाः प्रागग्रा ब्रह्मयमचन्द्रदेवताका उत्तराग्रास्तिस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य, कुशाम्बुनास्त्रमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य 'ह्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति तन्मध्ये योगपीठं सम्पूज्य, तत्र भुवनेशीमृतुमतीं सञ्चिन्त्य, तद्योनावावसथ्यस्थाने शिवबीजतया सूर्यकान्तादिभवमग्निं प्रणवेन संस्थाप्य "ॐ चित्पिङ्गल हनहन दहदह पचपच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा" इति मन्त्रेण कुशैर्मुखफूत्कृत्याग्निं प्रज्वाल्य काष्ठैः पटूकृत्य "ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्"।। इति पठन् कृताञ्जलिरुपस्थायोपविश्य लिङ्गे—सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे—षरयूं कनकायै नमः। शिरसि—शरयूं रक्तायै नमः। मुखे—वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां—लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः—ररयूं अतिरक्तायै नमः। सर्वाङ्गे—यरयूं बहुरूपायै नमः। इति सप्तजिह्वा विन्यस्य, ओं सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ओं स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। ओं उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। ओं धूमव्यापिने कवचाय हुं। ओं सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं धनुर्धरायास्त्राय फट्। इति षडङ्गानि विधाय, शिरसि—अग्नये जातवेदसे नमः। वामांसे—अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे—अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां—अग्नये अश्वोदराय नमः। लिङ्गे—अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षिणकट्यां—अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षिणपार्श्वे—अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे—अग्नये देवमुखाय नमः। इत्यष्टौ मूर्तीर्विन्यस्य, गर्भरहितैर्दर्भैरग्निं प्रागादिक्रमेणोत्तराग्रैः पूर्वाग्रैश्च परिस्तीर्य वह्नेर्मुखे षट्कोणं विभाव्य, तत्र (मध्ये षट्सु कोणेषु मध्यादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्ताः सप्तजिह्वाः सम्पूज्य तद्बहिरष्टदलकमलं विभाव्य तत्केसरेषु अग्नीशानिनिर्ऋतिवायुकोणेषु तदग्रादि प्रागादिचतुर्दिक्षु च) प्रागुक्तषडङ्गानि सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदलेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्ता अष्टमूर्तीः सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरस्रे दिक्पालांस्तदायुधानि च सम्पूज्य, मध्ये "ओं वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा" इत्यग्निं गन्धादिभिः सम्पूज्यास्त्रमन्त्रेण क्षालितायामाज्यस्थाल्यामाज्यं निक्षिप्य मूलेनाष्टधाभिमन्त्र्य, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य कवचेन प्रदीप्तदर्भद्वयेन नीराज्य दर्भद्वयमग्नौ निक्षिप्य, पुनर्दर्भान् प्रज्वाल्यास्त्रमन्त्रेण घृते प्रदर्श्याग्नौ तान् निक्षिप्य, स्रुक्स्रुवौ तदभावे पलाशस्य मध्यपत्रद्वयमश्वत्थपत्रद्वयं वा गृहीत्वाग्नौ प्रताप्य कवचेन दर्भैः सम्मार्ज्य, पुनः प्रताप्यास्त्रेण प्रोक्ष्य दर्भेषु निधाय, मार्जनदर्भानद्भिः संस्पृश्याग्नौ निक्षिप्य, स्रुवेणाज्यमादायाग्नेर्दक्षिणनेत्रे 'अग्नये स्वाहा' इति हुत्वा अग्नये इदं न ममेत्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुनराज्यमादायाग्नेर्वामनेत्रे 'सोमाय स्वाहा' इति हुत्वा सोमाय इदं न मम। पुनरग्नेर्भालनेत्रे 'अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' अग्नेर्वक्त्रे 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' ततः ओंभूः स्वाहा अग्नये इदं न मम। ओंभुवः स्वाहा वायवे इदं न मम। ओंस्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम। ओंभूर्भुवःस्वाहा प्रजापतये इदं न मम, इत्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा 'ओं वैश्वानर जातवेद० इति मन्त्रेणाहुतित्रयं हुत्वा 'अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा' इति गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मान्नप्राशनचूडाकरणोपनयनसमावर्तनविवाहाख्यान् संस्कारान् पृथक्पृथगष्ष्टवष्ट्वाज्याहुतीर्हुत्वा, प्रागुक्तजिह्वादिमूर्त्यन्तदेवतानां 'सरयूं हिरण्यायै स्वाहा' इत्यादि तत्तन्नामभिश्चतुर्थीस्वाहा-

न्तैरेकैकामाहुतिं हुत्वा, ॐ स्वाहा। ॐश्रीं स्वाहा, ओंश्रींह्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रींक्लीं स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौं स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणतपये स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणतपये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। इति गणपतिमन्त्रं दशधा विभज्य हुत्वा पुनः समस्तेन गणपतिमन्त्रेण (चतुर्धा जुहुयात्। इति संस्कृते वह्नौ देवं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण गन्धादिभिः सम्पूज्य वह्निदेवतयोरैक्यं विभावयन् मूलमन्त्रेण स्वहान्तेनाज्यपायसतिलतण्डुलव्रीहियवभक्ता-नामन्यतमेन घृतव्यतिरिक्तद्रव्येषु त्रिधा योगं केवलघृतयोगं च कृत्वा) पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वा मूलमन्त्रस्य षडङ्गमन्त्रैः षडाहुतीर्मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वावरणदेवतानामेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा। ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा। ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा। इति चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा, ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्मा-धिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, इत मन्त्रेणाष्टावेकां वाज्याहुतिं हुत्वा वह्निं प्राग्वत् सम्पूज्य, न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलम्। ॐ ह्लं साङ्गं कुरु २ स्वाहा इति तिलैरेकामाहुतिं हुत्वा। ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते।। त्वं रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे।। इत्यग्निं प्रार्थ्य, घृतेन स्रुचमापूर्य तदुपरि पुष्पं दत्त्वा अधोमुखेन स्रुवेण तन्मुखं पिधाय शङ्खवत्सम्पुटाभ्यां गृहीत्वोत्थाय मूलमन्त्रेण वौषडन्तेनाहुतित्रयं हुत्वा, प्रोक्षणीयजलेन वह्निं परिषिच्य, मूलमन्त्रेण स्वेष्टदेवं तत्र सम्पूज्य, संहारमुद्रया पूजाचक्रे विसृज्य स्वहृद्युद्वास्याग्निं सम्पूज्य "भो भो वह्ने महाप्राज्ञ[1] सर्वकर्मप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्"।। इत्यग्निं प्रार्थ्य संहारमुद्रया स्वहृद्युद्वासयेत्, इति नित्यहोमे अग्निस्थापनविधिः।।

अत्र नित्यपूजाविधिस्तु श्रीविद्यायाः प्रागेव(२१८ पृ० १० श्वा०)निरूपितः। साम्प्रतं सामान्यतः सर्वेषां मन्त्राणां नित्यपूजाविधिः प्रदर्श्यते। पूजा द्विविधा अनिर्माल्या सनिर्माल्या चेति। अनिर्माल्या मानसपूजा, सनिर्माल्या बाह्यपूजा। तदुक्तं तत्त्वसारे–

अनिर्माल्यं सनिर्माल्यमर्चनं द्विविधं मतम्। दिव्यैर्मनोभवैर्द्रव्यैर्गन्धपुष्पैः स्रगादिभिः।। १।।
यदर्चनमनिर्माल्यं दिव्यभोगापवर्गदम्। ग्राम्यारण्यादिसम्भूतैर्यागद्रव्यैर्मनोरमैः।। २।।
भक्तैर्यत् क्रियते सम्यक् सनिर्माल्यं तदर्चनम्। जातमात्राणि पुष्पाणि घ्रातान्येव निसर्गतः।। ३।।
पञ्चभिश्च महाभूतैर्भानुना शशिना तथा। प्राणिभिश्च द्विरेफाद्यैश्चोष्यन्ते च न संशयः।। ४।।

अतो निर्माल्यमित्युक्तम्, इति। अत्र चाद्ये यतीनामधिकारः। यदाहागस्त्यः– "द्विविधं स्याल्लब्धमनोर्बाह्यान्तरमुपासनम्। न्यासिनामान्तरं प्रोक्तमिति"।। यत्तु–

मनसा पूजयेद्योगी पुष्पैर्वारण्यसम्भवैः। शिवार्थं पुष्पहिंसायां न भवेत् स तु हिंसकः।। १।।

तत्तु जितेन्द्रिययतिपरम्।

परिव्राड् ज्ञानमात्रेण होमदानादिभिर्विना। सर्वदुःखपिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा।। २।।
पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मङ्गलैर्मङ्गलार्थिनः। पूजोपकरणैः कुर्युर्दद्युर्दानानि चार्हणाम्।। ३।।

---

१. 'शक्ते' ख. पाठः।

वानप्रस्थाश्च यतयो यद्येवं कुर्युरन्वहम्। संस्कारान्न निवर्तन्ते विद्यातिक्रमदोषतः।। ४।।

आरूढपतिता ह्येते भवेयुर्दुःखभाजनम्।..।। ५।।

इति कुम्भसम्भवोक्तेरेव यतीनामसंयतेन्द्रियत्वं दोषायैव, अतस्तेषां मानसपूजनमेव विहितमिति। यद्वा सर्वेषामेवाधिकारः। यदुक्तं पद्मपुराणे—

स्मरणे पूजने विष्णोस्तथा मानसपूजने। सदाधिकारः सर्वेषां महापातकिनामपि।। १।।

इति। अन्यत्र तु गृहस्थानामेवाधिकारः। यदुक्तमगस्त्येन—"अन्येषामुभयं तथेति"। अन्येषां गृहस्थानामुभयं बाह्यमाभ्यन्तरं च। अत्रान्तर्यजनं बाह्यार्चनस्याङ्गत्वेनोक्तं, न केवलं मानसार्चनं निषेधदर्शनात्। यदाह स्वयमेव—

न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह न मङ्गलम्। प्राप्नोति चन्द्रवदने दानहोमादिभिर्विना।। १।।

गृहस्थो यदि दानानि दद्यान्न जुहुयादपि। पूजयेद्विधिनानेन कः कुर्यादेतदन्वहम्।। २।।

न ब्रह्मचारिणो दातुमधिकारोऽस्ति भामिनि। नारण्यवासिनां शक्तिर्न ते सन्ति कलौ युगे।। ३।।

गुरुभ्योऽपि च सर्वेभ्यः को वा दातुमपेक्षते।..।। ४।।

इति। अत्र—

घ्रातं पुष्पफलं सिद्धेरलं नो मानसाद्यथ। तस्मादपरिहार्यत्वादन्यथा चानुपायतः।। ५।।

अल्पबुद्धित्वतो नृणां बाह्यपुष्पैर्भवेत् प्रिये।...।। ६।।

इति यत्तत्त्वसारवचनं तत्तदङ्गभूतस्याभ्यन्तरयजनस्यात्यन्तमावश्यकत्वं गृहस्थानामुपपादयतीति। तस्माद्गृहस्थानां बाह्यपूजैव नित्या, सा च पञ्चविधा। उक्तं च मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पूजा पञ्चविधा प्रोक्ता पञ्चरात्रादितन्त्रके। ताश्चाभिगमना चोपादानेज्याध्याययोगकाः।। १।।

तत्राभिगमना नाम मन्त्रिभिः परिकीर्त्यते। सम्मार्जनोपलेपादिसंस्कारो देवमन्दिरे।। २।।

उपादानं भवेद् देवपूजासाधनमेलनम्। ततश्चापि भवेदन्या गन्धपुष्पादिभिः पुनः।। ३।।

पीठपूजा च देवस्य साङ्गावरणपूजनम्। मन्त्रार्थभावनापूर्वं जपो मन्त्रस्य कीर्तनम्।। ४।।

तच्छास्त्राध्ययनं सम्यक् स्वाध्यायो मन्त्रिभिः स्मृतः। गुरुदेवात्मनामैक्यभावना योग उच्यते।।५।।

सालोक्यमपि सारूप्यं सामीप्यं सार्ष्टिनामकम्। सायुज्यमपि पञ्चानां फलान्येवं विदुः क्रमात्।।६।।

इति। तत्रादाविज्यानिरूपणेन सर्वासामपि निरूपणं स्यादित्यतः प्रधानभूतेज्या निरूप्यते। तत्र श्रीनारदपञ्चरात्रे—

निशावसाने शयनात् स्मृत्वा नारायणं प्रभुम्। उत्थाय दक्षिणाङ्गेन वामपादं न्यसेद्भुवि।। १।।

निशावसाने पश्चिमे यामे।

केचिद्वा मध्यमौ यामौ रात्रौ सुप्त्वा विशांपते। सञ्चिन्तयन्ति धर्मार्थौ याम उत्थाय पश्चिमे।। २।।

इति भारतोक्तेः। दक्षिणाङ्गेनोत्थाय नारायणं स्मृत्वेति सम्बन्धः। नारायणमित्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवतां स्मृत्वेत्यर्थः। उत्तरतन्त्रे—

रात्रिशेषे समुत्थाय कृत्वावश्यकमादरात्। रात्रिवासः परित्यज्य वाससी परिधाय च।। १।।

आचम्य शुद्धदेहः सन् देवतायागमन्दिरम्। मार्जयित्वोपलिप्याथ भक्तियुक्तस्तु शक्तिभिः।। २।।
उपविश्य शुचौ देशे प्राङ्मुखः प्रोक्त आसने। प्राणायामत्रयं कृत्वा कृत्वा न्यासं विधानतः।। ३।।

न्यासमृष्यादिन्यासम्।

निर्माल्यमपकृष्याथ दद्यात् पुष्पाञ्जलिं तथा। अर्घ्यपाद्ये निवेद्याथ दद्याद्वै दन्तधावनम्।। ४।।
मुखप्रक्षालनं दत्त्वा दद्यादाचमनीयकम्। करास्यप्रोञ्छनायाथ दद्याद्वासोऽमलं शुभम्।। ५।।

इति। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्— (२४ प०)

प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत् पद्ममुज्ज्वलम्। कर्पूराभं स्मरेत् तत्र श्रीगुरुं देवरूपिणम्।। १।।
सुप्रसन्नं लसद्भूषामण्डितं शान्तिभूषितम्।..।। २।।

इति पद्मं शिरसि। "गुरुपादाम्बुजद्वन्द्वं संस्मरेन्निजमूर्धनि"। इत्युत्तरतन्त्रवचनात्। भैरवतन्त्रे—

व्योमाम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थे सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम्।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रशिलाप्रकाशं सत्पुस्तकाभीतिवरान् दधानम्।। १।।
श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पमुक्ताविभूषं मुदितं त्रिनेत्रम्।
वामाङ्कपीठस्थितरक्तशक्तिं मन्दस्मितं सान्द्रकृपानिधानम्।। २।।
रक्ताङ्गरागाभरणाम्बराढ्यां स्मेराननां पीनकुचां प्रियाङ्के।
वामे निषण्णामतिरक्तकान्तिं वामेन लीलाकमलं करेण।। ३।।
ध्यायेद् दधानामपरेण नाथमाश्लिष्य गाढं द्विभुजां त्रिनेत्राम्।

अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्बहिष्ठैर्मानसैस्तु वा। नामभिस्तस्य सङ्केतसंसिद्धैर्गुरुकीर्तनैः।। ४।।
तदज्ञाने गुरुभ्योऽथ नमोऽन्ते वै समर्चयेत्। स्तुवीत स्तुतिभिः प्रीत आचार्यं सर्वसिद्धये।। ५।।

इति। प्रातः स्मरणातिरिक्तकाले स्वगुरुध्यानमाह शैवागमे—

दीक्षाकाले यथारूपं स्वस्यानुग्रहकर्मणि। दृष्टं तत्तेन भावेन ध्यायन्नाह्निकमाचरेत्।। १।।

इति। वैखानसपञ्चरात्रे—"तथैव रात्रिशेषं च कालं सूर्योदयावधि"। अरुणोदयावधीत्यर्थः। तस्यैव स्नानकालत्वात्— "कर्तव्यं सजपं ध्यानं नित्यमाराधकेन वै"। इति। कपिलपञ्चरात्रे—

विभज्य पञ्चधा रात्रिं शेषे देवार्चनादिकम्। जपं होमं तथा ध्यानं नित्यं कुर्वीत साधकः।। १।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

इति स्तुत्वा हृदि स्वीये ध्यायेदिष्टां च देवताम्। गुरुदेवतयोरैक्यं भावयेच्च निराकुलः।। १।।
इष्टार्थप्रार्थनां कृत्वा ह्याज्ञां सम्प्रार्थयेत् ततः। इष्टदेवस्य भूमेश्च तस्यां श्वासानुसारतः।। २।।
विन्यस्य पादमुत्थाय कुर्यादावश्यकीं क्रियाम्।..।। ३।।

प्रार्थनाश्लोकस्त्वग्रे वक्ष्यते। "इत्थमुच्चार्य लब्धाज्ञो देशिकः शौचमाचरेत्"। इति नारदपञ्चरात्रे—

पदे पदे स्मरेदस्त्रं दूरे यायाद् गृहालयात् तत उद्वासयेद् देवान् मन्त्रेणानेन देशिकः।। १।।

---

१. 'निज' ख. स्वात्म ग. पाठः।

तृणलोष्ठप्रक्षेपेण दत्त्वा तालत्रयं पुनः। उत्तिष्ठन्त्वृषयो देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः॥ २॥
परितस्त्यजतां स्थानं विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे। कृत्वा मलच्युतिं तत्र वाससा कं प्रवेष्ट्य च॥ ३॥

(कं मस्तकम्।)

खं दिशश्चानवीक्षेत ततो यायाज्जलाशयम्। शौचं कृत्वा यथाशास्त्रं विधिनाचमनं ततः॥ ४॥
दन्तकाष्ठं ततो भुक्त्वा स्नायात्तदनु नारद।...॥ ५॥

द्विजेति नारदसम्बोधनम्। आलयाद् दूरे इषुक्षेपदूरमतीत्य। ''निर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकां भुव''मिति विष्णुवचनात्। शौचमाह नारदपञ्चरात्रे—

तिस्रो लिङ्गे मृदो देया एकैकान्तरमृत्तिकाः। पञ्च वामकरे देयास्तिस्रः पाण्योर्विशुद्धये॥ १॥
मूत्रोत्सर्गे विशुद्धिः स्यात् पुरीषस्याप्यनन्तरम्। पञ्चापाने मृत्तिकाः स्युरेकैकान्तरमृत्तिकाः॥ २॥
दश वामकरे देयाः सप्त तूभयहस्तयोः। पादयोस्तिसृभिः शुद्धिर्जङ्घाशुद्धिस्तु पञ्चभिः॥ ३॥
नियोजयेत् ततो विप्र कट्यां वै सप्त मृत्तिकाः। स्वदेहे स्वेददोषघ्नं ब्राह्मणः कर्मसिद्धये॥ ४॥
भक्तानां क्षत्रियाणां च वर्षास्वेवं निरूपितम्। प्रावृण्मुक्तावथैतस्मादेकमृदपनोदनम्॥ ५॥
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु नित्यं कार्यं क्रियापरैः। एतस्मादपि चैकैकां मृत्तिकां परिलोपयेत्॥ ६॥
हेमन्ते शिशिरे चैव श्रोत्रियः संयतः स्थितः। पथि शौचं विधातव्यं देशकालानुरोधतः॥ ७॥
गन्धलेपमपास्यैव मनःशुद्ध्या विशुध्यति।..॥ ८॥

इति। एकैकान्तरमृत्तिका इत्ययमर्थः—प्रथममेकवारं मृज्जलैर्लिङ्गं प्रक्षाल्य ततो वामकरं मृज्जलैः प्रक्षाल्य पुनर्लिङ्गमिति क्रमेण॥ कपिलपञ्चरात्रे—

यद् दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्। तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि॥ १॥

इति। दन्तकाष्ठे मन्त्रमाह दक्षिणामूर्तिः—

क्लीमन्ते कामदेवाय सर्वान्ते जन चालिखेत्। प्रियायेति हृदन्तोऽयं स मनुर्दन्तशुद्धये॥ १॥

इति। पञ्चमीश्वरतन्त्रे—

प्रत्यहं दन्तकाष्ठं तु प्लक्षकाष्ठं तु मारणे। मोहने खादिरं प्रोक्तं स्तम्भने चूतपल्लवम्॥ १॥
वश्ये चाश्वत्थकाष्ठं तु रक्षार्थं वञ्जुलस्य हि। अयं क्रमो महादेवि त्रिलोकेषु न विद्यते॥ २॥

इति। उत्तरतन्त्रे—''वक्त्रं मूलाणुना नित्यं क्षालयेत् सिद्धिहेतवे''। इति॥ अथ स्नानं, तच्च त्रिविधमौदकमन्त्रध्यानभेदात्। तत्रौदकं स्नानं नारदपञ्चरात्रे—

अथाधिकारसिद्ध्यर्थं स्नानं वक्ष्यामि पूर्वतः। येन भक्तोऽभिषिक्तस्तु यागहोमार्हतां व्रजेत्॥ १॥
शङ्कुनास्त्राभिजप्तेन शुचिस्थानात्तु मृत्तिकाम्। गृहीत्वास्त्रेण सञ्चिन्त्य यायाज्जलनिकेतनम्॥ २॥
तत्रादौ जलकूलं तु क्षालयेदस्त्रवारिणा। मृदं कृत्वा द्विधा तत्र एकभागोपगं ततः॥ ३॥
निधाय गोमयं दर्भांस्तिलांश्चाप्यभिमन्त्रितान्। लौकिकं गौणं मध्येन भागेनैकेन यत्नतः॥ ४॥
मलस्नानं पुरा कृत्वा विधिस्नानं समाचरेत्।..॥ ५॥

इति। अभिमन्त्रितानस्त्रेण। विधिस्नानं वैदिकस्नानम्। स्मृतिसमुच्चये—''न प्रातर्मृत्तिकास्नानं न कुर्यान्त्रिशिगोमयै''रिति।

वसिष्ठसंहितायाम्—

कृत्वादौ वैदिकं स्नानं ततस्तान्त्रिकमाचरेत्। विन्यस्याङ्गे षडङ्गानि प्राणायामपुरःसरम्॥ १॥
श्रीसूर्यमण्डलात् तीर्थमाकृष्याङ्कुशमुद्रया। आत्मरक्षां ततः कुर्याद्वारिक्षेपेण चास्त्रतः॥ २॥
निमज्ज्य तत्र श्रीदेवं ध्यायन् शक्त्या मनुं जपेत्। उन्मज्ज्य कुम्भमुद्रां च बद्ध्वा सिञ्चेत् स्वमूर्धनि॥३॥

तीर्थावाहनमन्त्रास्तु प्रयोगे वक्ष्यन्ते। एतत्तीर्थेऽपि फलातिशयार्थं सावाहनं स्नानमभिधाय वह्निपुराणे—

योऽनेन विधिना स्नायाद्यत्र कुत्र जले द्विजः। स तीर्थफलमाप्नोति तीर्थे दशगुणं फलम्॥ १॥

इति। सिञ्चेत् सप्तधा त्रिधा वा। "सप्तकृत्वोऽभिषिच्याथ मनुना मन्त्रितैर्जलै"रिति कपिलवचनात्। 'त्रिधाभिषिच्य मूलेनेति उत्तरतन्त्रात्। तथा—"ततः सङ्क्षेपतो देवान् मनुष्यांस्तर्पयेत् पितॄन्"। इति॥

स्नाने विशेषमाह त्रिपुरार्णवे—

विधाय वैदिकं स्नानं ततस्तान्त्रिकमाचरेत्। मृदमस्त्रेण चादाय तेन तामभिमन्त्र्य च॥ १॥
शिखामन्त्रेण संशोध्य मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः। मूर्धादिपादपर्यन्तं विलिप्य च तया वपुः॥ २॥
सम्मुखीकरणीं मुद्रां बद्ध्वा प्राणान् निरुध्य च। निमज्ज्य तूष्णीमुत्थाय नाभिमात्रजले स्थितः॥३॥
प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। विन्यस्य च षडङ्गानि कल्पयेत्तीर्थमग्रतः॥ ४॥
ततः सम्प्रार्थयेत् तीर्थं सूर्यात् तन्मण्डलं ततः। सृणिमन्त्रेण मन्त्रज्ञो भित्त्वा चाङ्कुशमुद्रया॥ ५॥
तीर्थावाहनमन्त्रेण तीर्थमावाहयेत् प्रिये। मूलमन्त्रेण संयोज्य कल्पिते तीर्थमण्डले॥ ६॥
तीर्थशक्तिं च तत्रैव समावाह्यार्कमण्डलात्। ध्यात्वा तन्मनुनाभ्यर्च्य गङ्गामन्त्रेण मन्त्रयेत्॥ ७॥
सप्तकृत्वः शिवे वच्मि शृणु मन्त्रद्वयं प्रिये। जलस्थं व्योम षट्दीर्घस्वरभिन्नं सबिन्दुकम्॥ ८॥
सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति चैहियुगं द्विठः।..॥ ९॥

इति। जलं वकारः, व्योम हकारः, तेन ह्व एतत् षडदीर्घस्वरभिन्नं ह्वांह्वींह्वूंह्वैंह्वौंह्वः इति, द्विठः स्वाहाकारः। तथा— "एकविंशाक्षरः प्रोक्तस्तीर्थशक्तिमनुः प्रिये"। अत्र शक्तीति सम्बोधनपदं दिव्यत्वात्। चकारो विसन्धिद्योतकः एकविंशाक्षर इत्युक्तेः।

तारं नमो भगवति ब्रूयादम्बे ततोऽम्बिके। अम्बालिके महामालिन्येह्येहि भगवत्यथ॥ ९॥
अशेषतीर्थालवाले मायाश्रीबीजयोरथ। शिवजटाधिरूढे च गङ्गे गङ्गाम्बिके द्विठः॥ १०॥
गङ्गाविद्येयमाख्याता त्रिपञ्चाशद्भिरक्षरैः।..॥ ११॥

इति। तारः प्रणवः, माया ह्रीं, द्विठः स्वाहाकारः, अम्बे इति दिव्यत्वात्। अन्यत्सुगमम्। तथा—

भुवनेश्या समालेख्यामृतीकृत्य सुधाणुना। कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्ष्यास्त्रेण मन्त्रयेत्॥ ११॥
मूलेन देवतां तत्र साङ्गां सावरणां प्रिये। समावाह्य जले ध्यात्वा तत्पदद्वयनिर्गतम्॥ १२॥
ध्यात्वा तीर्थं स्मरन् मूलमन्त्रं मन्त्रेण तर्पयेत्। त्रिधा देवीं समुत्तीर्य जलाद् धौते सुवाससी[1]॥ १३॥
परिधायाथ तिलकं कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्।..॥ १४॥

इति। तीर्थशक्तिध्यानं प्रयोगे वक्ष्यते॥ अथैतद्वारुणस्नानाशक्तानां मन्त्रस्नानविधिमाह—नारदपञ्चरात्रे—

---

१. 'वैते शुभाम्बिके' ख. पाठः।

........................अथ मान्त्रं शुभं शृणु। तोयाभावे तु यत्कार्यं दुर्गे काले तु शीतले।। १।।
गमने क्षिप्रसिद्ध्यर्थं गुरुकार्येष्वतन्द्रितः। प्राप्तापद्यथ विप्रेन्द्र निशाभागे तथा मुने।। २।।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रोद्धृतेन तु वारिणा। स्थानं दश दिशः प्राग्वत् संशोध्योपविशेत्ततः।। ३।।
अस्त्रं हस्ततले न्यस्य क्रमान्न्यासांस्ततस्तु वै। मूलमन्त्रादितः कुर्यात् सर्वमन्त्रगणेन वै।। ४।।
केवलादुदकस्नानात् संस्कारपरिवर्जितात्। प्रभासादिषु तीर्थेषु यत्फलं स्नातकस्य तु।। ५।।
ज्ञेयं दशगुणं स्नानान्मन्त्रस्नानस्य नारद। ध्यानस्नानमथो वक्ष्ये द्वाभ्यामपि परं च यत्।। ६।।
खस्थितं पुण्डरीकाक्षं मन्त्रमूर्तिप्रभुं स्मरेत्। तत्पादोदकजां धारां निपतन्तीं स्वमूर्धनि।। ७।।
चिन्तयेत् सूक्ष्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकां तनुम्। तया सङ्क्षालयेत् सर्वमन्तर्देहगतं मलम्।। ८।।
तत्क्षणाद्विरजा मन्त्री जायते स्फुटिकोपमः। इदं स्नानं वरं मन्त्रात् स्नानं शतगुणं स्मृतम्।। ९।।
तस्मादेकतमं स्नानं कार्यं श्रद्धापरेण तु। स्नानपूर्वाः क्रियाः सर्वा यतः सभ्यास्तु नारद।। १०।।
तस्मात्स्नानं पुरा कुर्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम्।...।।

इति। शैवागमे—

मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम्। कुर्वीत मानसं स्नानं सर्वत्र विहितं च यत्।। १।।

इति। पुण्डरीकाक्षमित्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवतां स्मरेदिति। मन्त्रस्तु स्वेष्टः, शैवे तु "ततः शिवात्मकैर्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम्। मार्जनं संहितामन्त्रैस्तत्तोयेन समाचरेत्"।। इति शैवागमात्। संहिता तु—"व्योमव्यापी च यो मन्त्रः पञ्चब्रह्माणि यानि च। ये मन्त्राः शिवगायत्र्या रुद्रं चेति यथाक्रमम्। सर्वपापहराः प्रोक्ता विद्येयं शिवसंहिता"।। इति, व्योमव्यापी तु—"आमीमूमाद्यतो व्योमव्यापी चैव प्रकीर्तयेत्। प्रणवाद्यन्तरुद्धोऽयं व्योमव्यापी प्रकीर्तितः"।। इति नारदपञ्चरात्रे—

सुधौतं परिधायाथ वस्त्रयुग्ममखेदकम्। तदभावादधःशाटीयोगपट्टकसंयुतम्।। १।।
न चैकवाससा यस्माद् भवितव्यं कदाचन।...................................।।

इति। नृसिंहपुराणे—

जलान्तिकं समासाद्य शुक्ले धौते च वाससी। परिधायोत्तरीयं च न कुर्यात् केशधूननम्।। १।।

इति। स्मृतिसमुच्चये—

बहिःस्नातस्तु नद्यादौ स्नानवस्त्रमधस्त्यजेत्। ऊर्ध्वं त्यजेत् स्नानवस्त्रं गृहस्नातो यदा भवेत्।। १।।
ऊरू करौ मृदाद्भिश्च क्षालयेच्छुद्धिहेतवे। निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु प्रातःसन्ध्यां समाचरेत्।। २।।
मध्याह्ने तर्पणादूर्ध्वं वस्त्रनिष्पीडनं भवेत्।..।।

इति। यामले—"बिभृयाद्वाससी शुद्धे तिलकं वर्णभेदतः"। इति। वसिष्ठः—"ऊर्ध्वपुण्ड्रं वा कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्"। अत्र वाशब्दस्तूर्ध्वपुण्ड्रत्रिपुण्ड्रयोर्वर्णपरत्वोपस्थापकः। अत एव नारदपञ्चरात्रे—

ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं स्यात् क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम्। वैश्यपुण्ड्रमर्धचन्द्रं शूद्राणां वर्तुलाकृति।। १।।

इति। ऊर्ध्वपुण्ड्रलक्षणं तु कूर्मपुराणे—

यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नार्तिहरं[1] परम्। धारयेत् सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः॥ १॥
यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। धृतं तच्छूलधरणाद् भवत्येव न संशयः॥ २॥
इति। शैवशाक्तानां तु चातुर्वर्णिकानामपि त्रिपुण्ड्रधारणमावश्यकम्।
विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण जलं वा भोजनादिकम्। भक्षणात् सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम्॥ ३॥
अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना। तत्सर्वं भवति भस्म यथाग्नितेजसा वनम्॥ ४॥
इति लिङ्गपुराणवचनात्। भस्मत्रिपुण्ड्रधारणविधिस्तु वायवीयसंहितायाम्—
शिवाग्नेर्भस्म सङ्ग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवं तु वा। वैवाहाग्न्युद्भवं वापि पक्वं शुचि सुगन्धि च॥ १॥
कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत्। न लीनं[2] नातिकठिनं न दुर्गन्धि न चोषितम्॥ २॥
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात् पतितं यदि। खण्डीकृत्य शिवाग्नौ तु निक्षिपेन्मूलमन्त्रतः॥ ३॥
अपक्वमतिपक्वं च सन्त्यज्य भसितं सितम्। आदाय वाससालोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत्॥४॥
भस्मसङ्ग्रहणं कुर्याद्वह्न्यनुद्वासिते सति। उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते॥ ५॥
इति। गोमयापहरणादौ विशेषमाह तत्रैव—
यद्वा धरामसंस्पृष्टां सद्येनानीय गोमयम्। वामेन पात्रे संशोष्य अघोरेण विनिर्दहेत्॥ ६॥
पुरुषेण समुद्धृत्य ईशानेन विशोधयेत्। इत्थं तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमन्त्रतः॥ ७॥
तस्माद्ब्रह्मेति यजुषां मन्त्रयेद् रुद्रसंख्यया। प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यान्तैर्नामभिरीशकैः॥ ८॥
पञ्चवर्णाद्यक्षराद्यैर्भालांसोदरहृत्सु च। त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यान्मूर्ध्नि पञ्चाक्षरेण च॥ ९॥
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्मन्त्री साक्षाच्छिव इवापरः।..॥
इति। नामभिः सद्योजातादिभिः। अंसशब्दोऽसद्वयवाचको नामपञ्चकत्वात्। अत्र त्रिपुण्ड्रधारणेऽङ्गुलिनियमो जाबालोपनिषद्ब्राह्मणे—"त्रिपुण्ड्रं धारयेत्पश्चाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। मध्याङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्मूलमन्त्रितम्॥ अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरथवा स्यात् त्रिपुण्ड्रकमिति"। स्कन्दपुराणे सनत्कुमारं प्रति श्रीशिववचनम्—
सद्यादिभिर्ब्रह्ममयैर्महामन्त्रैश्च पञ्चभिः। परिगृह्याग्निरित्यादिमन्त्रैर्भस्माभिमन्त्रयेत्॥ १॥
मा नस्तोकेन सम्मर्द्य शिरो लिम्पेत् त्रियम्बकम्। तिस्रो रेखा भवन्त्येषु स्थानेषु मुनिपुङ्गव॥ २॥
भ्रुवोर्मध्ये समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः। मध्यमानामिकाङ्गुल्यो मध्ये तु प्रतिलोमतः॥ ३॥
अङ्गुष्ठेण कृता रेखा त्रिपुण्ड्रस्याभिधीयते। तिसृणामपि रेखाणां प्रत्येकं नव देवताः॥ ४॥
अकारो गार्हपत्योऽग्निर्भूश्चात्मा च रजोगुणः। ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च॥ ५॥
महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाः प्रकीर्तिताः। उकारो दक्षिणाग्निश्च नभः सत्त्वं यजुस्तथा॥ ६॥
मध्यन्दिनं च सवनं इच्छाशक्त्यन्तरात्मकैः। महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवताः॥ ७॥
मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमोदिवौ। ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं तथा॥ ८॥
शिवश्चेति तृतीयाया रेखायास्त्वधिदेवताः। एता नित्यं नमस्कृत्य त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुचिः॥ ९॥

---

१. 'प्रसन्नः परमं परम्' ख. पाठः। २. 'तल्लीनं' ख. पाठः।

महेश्वरव्रतमिदं सर्ववेदेषु कीर्तितम्। मुक्तिकामैर्जनैः सेव्यं पुनस्तेषां न सम्भवः॥ १०॥
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम्। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेव च॥ ११॥
महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः। तथान्यैः क्षत्रविट्शूद्रस्त्रीगोहत्यादिपातकैः॥ १२॥
वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः।..॥

इत्यादि॥ अथ प्रकारान्तरेण तिलकप्रकारस्तु—

इत्थं तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमन्त्रतः। विमृज्याङ्गानि संस्पृश्य पुनरादाय मन्त्रतः॥ १॥
तस्माद् ब्रह्मेति यजुषा मन्त्रयेद् रुद्रसंख्यया। ललाटे ब्रह्म विज्ञेयं हृदये हव्यवाहनः॥ २॥
नाभौ स्कन्दो गले पूषा रुद्रो दक्षिणबाहुके। आदित्यो बाहुमध्ये च शशी च मणिबन्धके॥ ३॥
वामदेवो वामबाहौ बाहुमध्ये प्रभञ्जनः। मणिबन्धे च वसवः पृष्ठदेशे हरः स्मृतः॥ ४॥
शम्भुः ककुदि सम्प्रोक्तः परमात्मा शिरः स्मृतः।..॥

इति। अमन्त्रकं वायवीयसंहितायाम्—"पुनर्न्यस्तकरो मन्त्री त्रिपुण्डं भस्मना लिखेत्।" इति, एतच्छूद्रादिविषयं ज्ञेयम्। अत्र भस्मधारणे ये विशेषास्ते वक्ष्यन्ते। शाक्तानां वामकेश्वरतन्त्रषट्शत्यां श्रीविद्यायजनप्रकरणे—"त्रिपुण्ड्रकविधारी चेति।" एतत् त्रिपुण्ड्रधारणं चन्दनादिसुगन्धद्रव्येण कार्यम्। "रम्यं त्रिपुण्ड्रं दधद्। भाले नन्दनचन्दनेन जननि ध्यायामि ते मङ्गल"मिति भगवता श्रीदुर्वाससोक्तत्वात्॥

अथ सन्ध्या। तत्र महाकपिलपञ्चरात्रे—

उपविश्य शुचै देशे प्राणायामत्रयं क्रमात्। मूलमन्त्रेण कृत्वा तु देहे कुर्वीत मार्जनम्॥ १॥

इति। शैवागमे—

प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रयेत्। अङ्गानि विन्यसेद् देहे करन्यासपुरःसरम्॥ १॥
अमृतीकृत्य पुरतो जलं बं—धेनुमुद्रया। अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तवारं च साधकः॥ २॥
अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकार्णैः सबिन्दुभिः। प्रत्यर्णं प्रोक्षयेन्मूर्ध्नि कुशैर्मूलेन च त्रिधा॥ ३॥
देवं ध्यात्वाथ मनुविद् भानुमण्डलसंस्थितम्। आदाय तोयमामन्त्र्य बीजैर्भृतात्मकैस्तथा॥ ४॥
लंवंरंयंहमिति च तान्युक्तानि सुरार्चिते। सप्तकृत्वस्ततो मूलमन्त्रेण त्रिः पुनश्च तत्॥ ५॥
वामहस्ते निधायाथ गलितैर्जलबिन्दुभिः। सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण दक्षहस्तेन मूर्धनि॥ ६॥
नासयाश्लिष्य शिष्टेन तेजोरूपेण तेन तत्। प्रविश्यान्तर्गतं सर्वं मलं संशोध्य निर्गतम्॥ ७॥
दक्षनासापुटेनैतत् स्मृत्वा दक्षिणहस्तगम्। वामभागे वज्रशिलां ध्यात्वास्त्रेण च तत् क्षिपेत्॥ ८॥
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। गायत्र्या चाथ मूलेन दद्यादर्घ्यत्रयं सुधीः॥ ९॥
शिवाय मण्डलस्थाय रवेर्मूलेन तर्पयेत्। त्रिधा जप्त्वा च गायत्रीमष्टाविंशतिवारकम्॥ १०॥
जपित्वा मूलमन्त्रं च शतमष्टोत्तरं ततः। समर्प्य तज्जपं मन्त्री देवमुद्वास्य मण्डलात्॥ ११॥
निधाय स्वीयहृदये ततस्तर्पणमाचरेत्।..॥

इति। मूलेनार्घ्यदानं तु गायत्रीरहितमन्त्रपरं ज्ञेयम्। तथा शैवागमे—

सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते।। १।।
सन्ध्याहीनोऽन्यद्धसध्यायां पूर्वसन्ध्याक्रियामथ। विधायोत्तरसन्ध्यायाः क्रियां कुर्यादतन्द्रितः।। २।।

इति। अत्र प्रायश्चित्तमपि कार्यम्। यदुक्तं तन्त्रराजे—"स्नानसन्ध्यार्चनालोपे जपेद्विद्यां शतं शिवे।।" इति। तथा

ध्यात्वा देवं जले सम्यक् पूजयित्वाथ मूलतः। अष्टोत्तरशतावृत्त्या तर्पयेन्मूलमन्त्रतः।। १।।
तदर्धेन तदर्धेन दशधा वाथ तर्पयेत्। ततस्तदङ्गावरणदेवतास्तर्पयेत् क्रमात्।। २।।
एकैकाञ्जलिना तत्तन्नाममन्त्रेण मन्त्रवित्। पुनः सम्पूज्य देवेशं साङ्गावरणकं ततः।। ३।।
समुद्वास्य हृदि स्वीये स्वात्मानं तन्मयं स्मरेत्।..।।

इति। नारदपञ्चरात्रे—

ततश्चोदकसम्पूर्णं भाण्डमादाय पाणिना। एकान्तं निर्जनं यायान्मनोज्ञं दोषवर्जितम्।। १।।
हृन्मध्यस्थं स्मरन् विष्णुं प्रबुद्धानन्दविग्रहम्। दिगन्तरं न वीक्षेत मौनी संरुद्धलोचनः।। २।।

इति। महाकपिलपञ्चरात्रे—

मूलमन्त्रं जपन् गच्छेद् यावत् प्राप्नोति वै गृहम्। प्राप्य हस्तौ च पादौ च प्रक्षाल्याचम्य यत्नतः।। १।।
यागमण्डपमासाद्य विशेत् कृत्वा प्रदक्षिणम्।..।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

आचान्तः शुचितां प्राप्तः सुस्नातो देवपूजने। पूजावेद्या बहिः स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया।। १।।
गृहे चेद् द्वारदेशस्थः प्रणम्य मनसा गुरुम्। प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालानपि चेतसा।। २।।
यत् पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा। प्रायश्चित्तैर्नापनुदेत् तदा पापं स्मरेद् धिया।। ३।।
तत्पापस्यापनोदार्थं मन्त्रद्वयमुदीरयेत्।..।।

मन्त्रद्वयं तु प्रयोगे वक्ष्यते (२०। ४२) तथा—

एवं कृते प्रथमतः पापोत्सारणकर्मणि। यत् स्याद् दृढतरं पापं तद् दूरे चावतिष्ठते।। १।।
अतीते पूजने स्थानं स्वं प्रयाति पुनश्च तत्। यत् स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपगच्छति।। २।।
पूजया त्यक्तपापस्य काममिष्टं क्षणाद् भवेत्।...।।

इति। तन्त्रान्तरे—

प्रातः प्रक्षाल्य पादौ च हस्तावाचम्य यत्नतः। दद्यादर्घ्यं दिनेशाय तत्प्रकारमिहोच्यते।। १।।
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ कृत्वा तु मण्डलम्। सिन्दूरेण ततः पश्चादुपविश्य निजासने।। २।।
प्राङ्मुखः प्रणमेदिष्टदेवतां भक्तितत्परः। प्राणायामत्रयं कृत्वा सूर्यमन्त्रेण मन्त्रवित्।। ३।।
विन्यस्य च तदृष्यादीन् ध्यात्वा सूर्यमनन्यधीः। तत्कल्पोक्तविधानेन पूजयेदुपचारकैः।। ४।।
पुरतो मण्डले कृत्वा जलेन चतुरश्रकम्। निधाय तत्र साधारं सजलं ताम्रपात्रकम्।। ५।।
गन्धपुष्पाक्षतान् दर्भान् दूर्वासर्षपसंयुतान्। सतिलान् रक्तपुष्पाणि दूर्वाश्चापि प्रविन्यसेत्।। ६।।
सूर्यमन्त्रेण तत्पात्रं स्पृशन्नष्टोत्तरं शतम्। अभिमन्त्र्य च तत्पात्रं समुत्थाप्य करद्वयात्।। ७।।

मूर्धान्तं सूर्यमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं विचक्षणः। जपेत् ततो यथाशक्ति सूर्यमन्त्रमनन्यधीः॥ ८॥
तदर्घ्याम्बुप्लुतं सूर्यं ध्यायन् देशिकसत्तमः। स्मृत्वा प्रणम्य विसृजेन्मण्डलान्ते दिवाकरम्॥ ९॥

सूर्यमन्त्रं त्र्यक्षरं, तत्तु तत्प्रकरणे (२९ श्वा०) द्रष्टव्यम्।

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय दिने दिने। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरीम्॥ १०॥
अर्घ्यदानमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्धनम्। धनधान्यपशुक्षेत्रपुत्रमित्रकलत्रदम् ॥ ११॥
तेजोवीर्ययशःशक्तिविद्याविभवभाग्यदम्। तत उत्थाय विधिवद् द्वारपूजां समाचरेत्॥ १२॥
द्वारमर्घ्याम्बुना प्रोक्ष्य विघ्नं तूर्ध्वे समर्चयेत्। तद्दक्षिणे महालक्ष्मीं वामे चैव सरस्वतीम्॥ १३॥
द्वारश्रियं च तन्मध्ये शाखयोर्दक्षिणान्ययोः। गणपं क्षेत्रपालं च शङ्खपद्मनिधी क्रमात्॥ १४॥
मायाशक्तिं च चिच्छक्तिं गङ्गां च यमुनां ततः। धातारं च विधातारमूर्ध्वादिक्रमतो यजेत्॥ १५॥
अधश्च देहलीमिष्ट्वा द्वारपालान् समर्चयेत्। पश्चिमद्वारमारभ्य द्वारपाला अमी क्रमात्॥ १६॥
नन्दी चैव महाकालो गणेशो वृषभस्तथा। ततो भृङ्गिरिटिस्कन्दावुमाचण्डेश्वरौ ततः॥ १७॥
एते चाष्टौ महेशस्य द्वारपालाः प्रकीर्तिताः। नन्दः सुनन्दचण्डौ च प्रचण्डबलसंज्ञकौ॥ १८॥
प्रबलो भद्रनामा च सुभद्रश्चाष्टमः स्मृतः। क्रमादमी समभ्यर्च्या वैष्णवद्वारपालकाः॥ १९॥
वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च महोदरगजाननौ। लम्बोदरश्च विकटो विघ्नराजस्ततः परम्॥ २०॥
धूम्रवर्णश्च सम्प्रोक्ता विघ्नेशद्वारपालकाः। ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा॥ २१॥
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा च श्रिया सह। एता देव्याः क्रमादष्टौ शक्तयो द्वारपालिकाः॥२२॥

एता एव सौरद्वारपालिका अपि ज्ञेयाः। "सौरं शक्तिमयमहो विजयते सौन्दर्यसीमास्पद"मिति वामदेवतन्त्रवचनात्। "आर्कमाम्श्वशिशिरं विश्वेशिकाया वपुः" इति तन्त्रान्तरवचनात्। अत्र द्वारदेवताध्यानानि प्रागेवोक्तानि (५ श्वा० १०३ पृ०)। तथा—

पश्चिमद्वारमासाद्य तालत्रितयपूर्वकम्। द्वारमुद्घाट्य चास्त्रेण मन्त्रितान् सर्षपाक्षतान्॥ १॥
पुष्पयुक्तांस्तु विकिरेन्मण्डपाभ्यन्तरे बुधः। नाराचमुद्रया सम्यगस्त्रमन्त्रेण देशिकः॥ २॥

इति। तूर्णायागे—

सिद्धार्थाक्षतपुष्पाणि नाराचास्त्रधिया बुधः। अस्त्रमन्त्रं समुच्चार्य मण्डपान्तर्विनिक्षिपेत्॥ १॥

इति। नारायणीये—

अपक्रामन्तु भूतानीत्येतन्मन्त्रद्वयं पुनः। पठित्वाक्षतसिद्धार्थपुष्पाणि विकिरेत् ततः॥ १॥
अस्त्रमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मण्डपाभ्यन्तरे बुधः।..॥

मन्त्रद्वयं प्रयोगे (२० श्वा० ४२ पृ०) वक्ष्यते। अस्त्रेण स्वोपास्यमन्त्राङ्गभूतेन। यदुक्तं पारिजाते—

हकाररेफौ च विसर्गवन्तावस्त्राय फट्कारवचस्तदन्ते। उक्त्वान्तरे सर्षपमक्षतांश्च पुष्पाणि मुञ्चेदिति।१॥

तूर्णपद्धतौ—"निर्गच्छतां तु विघ्नानां वर्त्म दद्यात् स्ववामतः"। इति। सोमशम्भुः—

मण्डपाभ्यान्तरे विद्वान् वामपादपुरःसरम्। प्रविश्य विघ्नान् त्रिविधान् पातालभ्वन्तरिक्षगान्॥ १॥

उत्सार्यास्त्रं समुच्चार्य पार्ष्णिघातादिभिस्त्रिभि:। विघ्नानुत्सारयेत्। इति। तूर्णायागे—

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमांस्तालैस्तानन्तरिक्षगान्। विघ्नानुत्सारयेद् दिव्यानस्त्रीतीक्ष्णावलोकनात्।। १।।

पार्ष्णिघातैर्वामपादस्य। ''वामपार्ष्णिना त्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठानि''ति सोमशम्भुवचनात्। उत्तरतन्त्रे—

विघ्नानुत्सार्य विधिवद् द्वारमाच्छाद्य वाससा। पञ्चगव्यार्घ्यतोयाभ्यां प्रोक्षयेन्मण्डपान्तरम्।। १।।

इति। श्रीकुलार्णवे—

सम्मार्जनोपलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत् कृतम्। वितानधूपदीपादिपुष्पदामादिशोभितम्।। १।।

पञ्चवर्णरजश्चित्रं स्थानशुद्धिरियं मता। नैर्ऋत्यामर्चयेद्वास्तुपुरुषं चन्दनादिभि:।। २।।

ईशाने दीपनाथं च क्षेत्रपालाज्ञया तत:। संविशेदासनं मन्त्री। इति।

क्षेत्रपालप्रार्थनामन्त्र: प्रयोगे (२० श्वा० ३३ पृ०) वक्ष्यते। उत्तरतन्त्रे—

अ: फडिति च मन्त्रेण पूजावेदीं ततो विशेत्। संस्कुर्यादासनस्थानं चतुर्भिर्वीक्षणादिभि:।। १।।

संस्कारैस्तत्र सम्पूज्य वेद्यन्त: पीठदेवता:। आधारशक्तिमारभ्य स्वासनं तत्र विन्यसेत्।। २।।

इति। आपस्तम्ब:—

पूजासनमथानीय चेलाजिनकुशोत्तरम्। तत्रोपविश्य विधिवत् स्मरेद् विष्णुगुरून् मुदा।। १।।

इति। योगिनीतन्त्रे—''पृथ्वीमन्त्रेणासने सन्निविष्ट:'' इति। मन्त्र: प्रयोगे (२० श्वा० ४३ पृ०) वक्ष्यते। भैरवीतन्त्रे—

मेरुपृष्ठ ऋषि: प्रोक्त: सुतलं छन्द ईरितम्। पृथिवी देवता प्रोक्ता विनियोगो निजासने।। १।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

आसने तु चतुष्कोणे गणेशं च सरस्वतीम्। दुर्गां क्षेत्रपतिं चापि वह्न्यादिषु समर्चयेत्।। १।।

इति। गौतमीतन्त्रे—''प्राङ्मुखो वोदङ्मुखोऽपि स्वस्तिकासनमास्थित:।'' इति। उत्तरतन्त्रे—

उदङ्मुख: प्राङ्मुखो वा भूत्वा प्रयतमानस:। स्वस्तिकासनमासीन: पद्मासनमथापि वा।। १।।

इति। तन्त्रान्तरे —

स्वस्तिकादिक्रमेणैव ऋजुकायो विशेद् बुध:। स्थापयेद् दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि चात्मन:।। १।।

सुवासिताम्बुसम्पूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभनम्। प्रक्षालनाय करयो: पात्रं पृष्ठे निधापयेत्।। २।।

घृतादिज्वलितान् दीपान् स्थापयेत् परित: शुभान्। दर्पणं चामरं छत्रं तालवृन्तं च पादुके।। ३।।

यथायथं तु संस्थाप्य संस्कुर्यात् तानि चात्मवान्।...।।

इति। उत्तरतन्त्रे—

पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रांह्रूंफडिति मन्त्रकै:। नाराचमुद्रया दृष्ट्या समया च विलोकयेत्।। १।।

यदात्मना न विज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम्। अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितं च वा।। २।।

तथा निर्माल्यसंस्पृष्टं कीटाध्यारोहणं च यत्। तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात्।। ३।।

ततो रमिति मन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत्। स तु स्याच्छुभदो वापि निष्क्रव्याद: सुखप्रद:।।४।।

पतङ्गकेशकीटादिदाहात् क्रव्यादसंहते:। वसामज्जादिसम्भूतैर्यज्ञादावुपयोजने।। ५।।

अज्ञातरूपं तत्सर्वं दोषः स्पर्शाद्विनश्यति। नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत्॥ ६॥
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्ष्य गुह्यं च याजकः[1]। वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वस्थितं तदा॥ ७॥
पात्रमाधारमन्त्रेण संस्कुर्वन् संस्पृशेज्जलम्। यदज्ञानादपेयादिसंसृष्टिरिह सङ्गता॥ ८॥
यदन्यद् दूषणं पात्रे तोये वाज्ञानतो भवेत्। जलाशयशवस्पर्शाज्जनस्नानाच्च सङ्गतम्॥ ९॥
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने।...॥

नृसिंहमन्त्र एकाक्षरः, स तत्प्रकरणे (२० श्वा० ४३ पृ०) ज्ञेयः। आधारमन्त्रस्तु—"स्वसंज्ञाद्यक्षरं बिन्दुचन्द्रार्धपरियोजित"मिति स्वयमुक्तः। संज्ञाद्यक्षरं नामाद्यक्षरमित्यर्थः। उत्तरतन्त्रे—

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः। नत्वा गुरुं गणेशानं पुरतः स्वेष्टदेवताम्॥ १॥
सुगन्धपुष्पाण्यादाय चन्दनाक्तानि मन्त्रवित्। मर्दयित्वा करौ सम्यक् सुरभीकृत्य साधकः॥ २॥
वामहस्ते समादाय निर्मथ्याघ्राय तत्पुनः। वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण चैशान्यां दूरतस्त्यजेत्॥ ३॥

नाराचमुद्रया त्यागः। "क्षिपेदुत्तरतः पुष्पं मन्त्री नाराचमुद्रया"। इति तन्त्रान्तरवचनात्। कालिकापुराणे—

कुसुमं विष्णुमन्त्रेण स्वाङ्गुल्यग्रेण साधकः। विमर्दनार्थं गृह्णीयात् करशोधनकर्मणि॥ १॥
निर्मन्थ्य रोमबीजेन जिघ्रन् घ्राणेन तत्पुनः। प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्यां विशेषतः॥ २॥
एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत्। अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद्भवेत्॥ ३॥
तलद्वयं मर्दनात्तु विशुद्धमपि जायते। निर्मन्थनात् पाणिपृष्ठं घ्राणान्नासाग्रमुत्तमम्॥ ४॥
तीर्थानि च समायान्ति नासिकाग्रं करं प्रति। उपान्त्यः साग्निचन्द्रेण रञ्जितः शून्यसंयुतः॥ ५॥
रुद्रान्तोपरि संस्पृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवः स्मृतः। प्रान्तादिर्वासुदेवान्तवर्णेनापि च संहतः॥ ६॥
शम्भुचूडाशिखाबिन्दुयुक्तः प्रासाद उच्यते। (अग्निः सद्यो बिन्दुयुतो रोमबीजमुदाहृतम्)॥ ७॥

उपान्त्यो हकारः। अत्र हकारस्योपान्त्यत्वं तु मातृकायाः पञ्चाशदक्षरत्वेन द्वितीयलकारस्याग्रहणात्। अग्नी रेफः, चन्द्रः सकारः, शून्यं बिन्दुः, रुद्रान्त ऐकारः। एतेन भैरव्या वाग्भवबीजमुक्तम्। प्रान्तादिर्हकारः वासुदेवान्त औकारः। शम्भुचूडाशिखार्धचन्द्रः, बिन्दुरनुस्वारः। एतेन प्रासादबीजं सिद्धम्। रोमबीजं रों। अग्नीति मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते। नृसिंहकल्पे—

"करशुद्धिं समासाद्य कुर्यात् तालत्रयं ततः। रूर्ध्वोर्ध्वं मूलमन्त्रेण दिग्बन्धमपि देशिकः॥ १॥
तेन सञ्जनितं तेजो रक्षां कुर्यात् समन्ततः। अस्त्रमन्त्रेण" इति।

करशुद्ध्यादिषु त्रिषु सम्बन्धात् "पाणिं विशोधयेदस्त्रमन्त्रेण मनुवित्तमः" इति दक्षिणामूर्तिकल्पवचनात्। अस्त्रमन्त्रस्तु तत्तदङ्गभूतः न तु केवलं फट्कारः। "रः अस्त्राय फट् प्रोच्य भ्रामयेद् दक्षिणं कर"मिति कुम्भसम्भववचनात्। अत एव यत्र यत्रास्त्रादिपदेनाभिख्यानं तत्र तत्र तदङ्गभूतास्त्रादिमन्त्रा ऊह्याः। न तु फट्कारमात्रमुक्तवचनात्। न चैवं "पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना" इत्यादावप्यङ्गमन्त्रदानप्रसङ्गः निराकाङ्क्षत्वात्, तत्र मन्त्रोद्धारेऽतिप्रसङ्गाद् अङ्गमन्त्रग्राहकाभावात्। मन्त्रोद्धारानन्तरमेवाङ्गमन्त्रोद्धारात्। क्वचिदस्त्रपदेन क्वचित् फट्पदेनोद्धाराच्चेति। दिग्बन्धस्वरूपमुक्तं प्रयोगसारे—"आच्छाद्य दिक्षु तर्जन्या ज्येष्ठाग्रस्खलिताग्रया।" इति उत्तरतन्त्रे—"प्राकारत्रितयं वह्ने कृत्वास्त्रेण

१. 'पातकः' ग. पाठः।

स्वमुद्रया।'' स्वमुद्रयाग्निप्राकारमुद्रया। सात्वग्रे (२० श्वा० ४३ पृ०) वक्ष्यते। सनत्कुमारीये गोपालकल्पे—

सुखासनेनोपविश्य प्राणायामं विधाय वै। भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासं कुर्यादनन्तरम्।। १।।

न्यासं मातृकायाः। उत्तरतन्त्रे—

भूतशुद्धिं ततः कुर्याद् प्राणायामपुरःसरम्। पादतो जानुपर्यन्तं चतुरस्रं सवज्रकम्।। १।।
लंयुतं पीतवर्णं च भुवः स्थानं विचिन्तयेत्। जान्वोरानाभि चन्द्रार्धनिभं पद्मेन लाञ्छितम्।। २।।
शुक्लवर्णं स्वबीजेन युक्तं ध्यायेदपां स्थलम्। नाभितः कण्ठपर्यन्तं त्रिकोणं रक्तवर्णकम्।। ३।।
स्वस्तिकाभं स्वबीजेन युक्तं वह्नेस्तु मण्डलम्। कण्ठाद् भ्रूमध्यपर्यन्तं कृष्णं वायोस्तु मण्डलम्।।४।।
षट्कोणं बिन्दुभिः षड्भिर्युक्तं बीजेन चिन्तयेत्। भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं वर्तुलं ध्वजलाञ्छितम्।।५।।
धूम्रवर्णं स्वबीजेन युक्तं ध्यायेन्नभःस्थलम्। इति ध्यात्वा तु भूतानि स्वकीये देशिकोत्तमः।। ६।।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्। ऐश्वर्याष्टदलं चैव परं वैराग्यकर्णिकम्।। ७।।
स्वीयहृत्कमलं ध्यायेत् प्रणवेन प्रकाशितम्। कृत्वा तत्कर्णिकासस्थं प्रदीपकलिकानिभम्।। ८।।
सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत्। योगयुक्तेन विधिना सोऽहंमन्त्रेण साधकः।। ९।।
तत्रैव सर्वतत्त्वानि विलीनानि विचिन्तयेत्।..।।

इति। ततः पुरुषनिभं पापमित्यादि (५ श्वा० १०७ पृ०) प्रागेवोक्तम्।

ततः संशोषयेदेनं पूरकादिक्रमेण वै। विधाय प्राणसंरोधं वायुबीजेन वायुना।। ११।।
वह्निबीजेन तेनैव सन्दहेत् सकलां तनुम्। भस्म तद्वातमार्गेण निर्गतं चिन्तयेत् सुधीः।। १२।।
ततो वमिति बीजेन प्लावयेत् सकलां तनुम्। सञ्जाते सकले देहे देवतोपासनक्षमे।। १३।।
आत्मलीनानि तत्त्वानि स्वस्थानं प्रापयेत् ततः। आत्मानं हृदयाम्भोजमानयेत् परमात्मनः।। १४।।
हंसमन्त्रेण विधिवत् तेजोरूपं कलेवरम्। देवताराधने योग्यमुत्पन्नमिति भावयेत्।। १५।।

इति। अत्र केचित् ''संयोज्य जीवमथ दुर्गममध्यनाडीमार्गेण पुष्करनिवेष्टशिवे सुसूक्ष्मे। हंसेन देहममरेन्द्रपुरोगमेने''ति योगिनीतन्त्रवचनात्।

सोऽहं—मन्त्रेण तामाद्यां नादान्ते सिद्धिभाविताम्। ध्यात्वैवं ब्रह्मरन्ध्राच्च हृदि जीवकलां न्यसेत्।।१।।

इति वसिष्ठसंहितावचनाच्च हंसमन्त्रेण जीवस्योन्नयनं सोहंमन्त्रेण पुनरानयनं वदन्ति। यथागुरूपदेशमत्र विधेयमिति। अत्र वायुबीजादिजपे चतुःषष्ट्यादिसंख्यामाहुः। तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु तत्तत्कर्मभावनावधिरेव जपो वायुबीजादीनाम्। यदुक्तं कात्यायनीसंहितायाम्—ततो भूतात्मकं देहं वायुबीजेन वायुना। वायुमुत्तोल्य संशोष्य ज्ञात्वामुं दक्षया त्यजेत्। इति। तथा योगिनीतन्त्रे—''दक्षिणे वह्निबीजेन प्रागदग्धमिति भावयेत्।'' इति। कुम्भसम्भवः— भूतशुद्धिविहीनेन कृत्वा पूजाभिचारवत्। विपरीतफलं दद्यादभक्त्यापूजनं यथा। इत्यत एवेयमावश्यकीति। केचित्तु श्रीमच्छङ्कराचार्यचरणैर्योगप्रकरणे प्रोक्तत्वाद्योगिपरमिति वदन्ति। तन्न प्रत्यवायश्रवणात्। श्रीकुलार्णवे—

आत्मस्थानमनुद्रव्यदेहशुद्धिश्च पञ्चमी। यावन्न कुरुते देवि तावद् देवार्चनं नहि।। १।।

सुस्नानभूतसंशुद्धिप्राणायामादिभिः प्रिये। षडङ्गाद्यखिलन्यासैर्देहशुद्धिरितीरिता।। २।।

इति। उत्तरतन्त्रे—"भूतशुद्धिं विधायेत्थं ततो वै स्थापयेदसून्।" असून् प्राणान्। प्राणप्रतिष्ठाविधानं तु (५ श्वा०। १०८ पृ०)प्रागेवोक्तम्। त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—"प्राणायामं ततः कृत्वा मातृकान्यासमाचारेत्"इति। प्राणायामलक्षणं तु (६ श्वा० ११५ पृ०) प्रागेवाभिहितम्। अतः परं स्वोपास्यमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् कृत्वा योगपीठन्यासं कुर्यात्। तत्र ऋष्यादिपदार्थानां न्यासासम्भवात्तद्वाचकपदानामेव कार्यः। तथा दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि मां न्यसेत्। पङ्क्तिश्छन्दस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य पार्वति।। १।।
देवतां हृदये बालां विन्यसेत् परमेश्वरि।...।।

इति। न्यासप्रकारस्तु योगिनीतन्त्रे—'ऋष्यादीन् विन्यसेद् देवि चतुर्थीहृदयान्वितान्'इति। ऋषये नमः, छन्दसे नमः। इत्यादि।। प्रपञ्चसारे—(६ प० २ श्लो०)

ऋषिर्गुरुत्वाच्छिरसैव धार्यश्छन्दोऽक्षरत्वाद्रसनागतं स्यात्।
धियावगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रतिष्ठा[1] मनुदेवतायाः।। १।।

इति। ऋष्यादिपदार्थास्तूत्तरतन्त्रे—

ऋवर्णादिस्तु गत्यर्थो धातुः प्राप्त्यर्थकस्तथा। षिवर्णादिस्तु विज्ञानमतस्तद्व्यापकं च सः।। १।।
अनयो रूपसम्पत्तौ ऋषिर्गुरुरितीरितः। छादीति धातुरिच्छायां दादिर्दानार्थको भवेत्।। २।।
छन्दो वक्ति मनोर्वर्णान् द्वयोरिच्छाप्रदानतः। क्रीडार्थकाद्ददातीति सम्पन्नं देवतापदम्।। ३।।
साधकाय मनोर्भावं ददातीति जगुर्यतः।...।।

इति। ज्ञानार्णवे—(२ प० ११३ श्लो०)

...........................षडङ्गन्यासमाचरेत्। हृदयं च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः।। १।।
नेत्रमस्त्रं न्यसेन्ङेऽन्तं नमः स्वाहा क्रमेण तु। वषट्हुंवौषडन्तं तु फडेभिः सह विन्यसेत्।। २।।

इति। प्रपञ्चसारे—(६ प० ६ श्लो०)

हृदयशिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सह चतुर्थीभिः[2]।
नत्या हुत्या च वषट् हुं वौषट् फडेभिरङ्गकविधिः।। १।।

इति। नत्या नमःपदेन। आहुत्या स्वाहाकारेण। शारदायाम्—(४ पं० ३३ श्लो०)

हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्निवल्लभा। शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्।। १।।
नेत्राय वौषडित्युक्तं अस्त्राय फडुदीरितम्।...।।

इति। अयं षडङ्गन्यासः करन्यासपूर्वकः कार्यः। "आदौ कृत्वा करन्यासं षडङ्गेषु ततो न्यसे"दिति तन्त्रान्तरवचनात्। अत्र केचित् करन्यासे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि न्यासान् वदन्ति। तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु ज्ञानार्णवादिनानातन्त्रदर्शनात् तदज्ञानविजृम्भितमिति भाति। यथा शारदातिलके—(४। ३१) "अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः सजातिभिः। अस्त्रं तु तलयोर्न्यस्येदिति" सजातिभिर्नमः स्वाहा इत्यादिसहितैः। अङ्गैस्तत्तन्मन्त्रोक्तैः, तेन हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा

१. 'प्रदिष्टा मनुदेवता च' ख. पाठः। २. 'र्थीषु' ख. पाठः। ३. 'फट्पदैः षडङ्गविधिः' ख. पाठः।

इत्यादिभिरित्यर्थः। जातिलक्षणं तु कारणागमे—

नमः स्वाहा वषट् हुं च वौषट् फट्कार एव च। जातिषट्कमिदं प्रोक्तं हृदाद्यस्त्रान्तसङ्गतम॥ १॥

इति। नारदपञ्चरात्रेऽपि—"अथ चाङ्गानि योजयेत्। कनिष्ठाद्यासु च ततो हृदयादिक्रमेण तु॥" इति। हृदयादिक्रमेण हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा इत्यादिक्रमेणेत्यर्थः। योगिनीतन्त्रे—

उच्चरेत् प्रणवं पूर्वं मारं बिन्दुसमन्वितम्। खड्गाय हृदयायेति नमोयुक्तं कनीयसी॥ १॥
ईकारं प्रणवाद् देवि चन्द्रबिम्बसमायुतम्। सुखड्गाय ततो वाच्यं शिरसे तदनन्तरम्॥ २॥
स्वाहायुक्तं प्रविन्यसेत् तर्जन्यानामिकाङ्गुलौ। हुङ्कारं प्रणवाद् देवि बिन्दुलाञ्छितमस्तकम्॥ ३॥
श्रीवज्राय ततो वाच्यं शिखायै च ततः परम्। वषडन्तं प्रविन्यस्येत् मध्यमामध्यमाङ्गुलौ॥ ४॥
मात्रा द्वादशका ताराद्बिन्दुपाशायसंयुताः। कवचाय हुमित्येतत् तर्जन्यामप्यनामया॥ ५॥
अकारादिविसर्गान्तं योजयेत् प्रणवात् परम्। अस्त्रक्षयमाये चाप्यस्त्राय तदनन्तरम्॥ ६॥
फडक्षरसमायुक्तं विन्यसेत् तलयोरिति।...॥

स्पष्ट उक्तः॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपादश्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-
श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते
श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे अष्टादशः श्वासः॥ १८॥
सम्पूर्णमिदं पूर्वार्धम्॥





॥ श्रीः॥

श्रीविद्या विजयतेतराम्

॥ भावविवृतिकृन्मङ्गलाचरणम्॥

श्रीसिद्धलक्ष्म्या सहितं गणाधिपं धर्मार्थकामादिचतुष्टयप्रदम् ।
विघ्नौघनाशं स्मरतां विधत्ते सुमङ्गलं तं सततं स्मरामि ॥१॥
ऋतेन सत्येन विभूषितान्तरं समस्तशास्त्रार्थरहस्यविन्मुनिम् ।
शङ्काकलङ्कोद्भवभावभिद्वरं शिवं शिरःस्थं स्वगुरुं स्मरामि ॥२॥
तपोधनानां धुरि कीर्तनीयं धर्मस्य तत्त्वं वदतां वरिष्ठम् ।
सतां शरण्यं विदुषां वरेण्यं शिवं शिरस्थं स्वगुरुं स्मरामि ॥३॥
श्रियं विदध्याद् भजतां भवोद्भवः श्रिया समालिङ्गितवामवैभवः।
विश्वात्मिकां विश्वपरां स्वतन्त्रां प्रत्यक्चितिं नौमि नु संविदं पराम्॥४॥
चिदर्कसम्पर्कसमाधिभाजां शिवा समन्तात् शिवतान्तनोति ।
श्रीशाम्भवी स्पन्दसुधामयूखैश्चिदात्मतत्त्वं स्मरतां व्यनक्ति ॥५॥
श्रुतिसारं समाचष्टे सर्वेषां श्रेयसे शिवः ।
शक्तिमन्तन्तु तं वन्दे तन्त्राम्नायप्रवर्तकम् ॥६॥
श्रौतस्मार्तविधानमानकलने वाग्वैभवं दर्शितं
पाखण्डस्थलखण्डने प्रकटितं शार्दूलविक्रीडितम्।
श्रीशैवागममन्त्रयन्त्रनिगमो येन स्फुटं ख्यापितः
तन्त्राचार्यचणं सुदेशिकवरं श्रीशङ्करं भावये ॥७॥
मधुमतीमतमन्थनमञ्जुलं नवनवं नवनीतमनोहरम् ।
रसत साधुसुधारसमम्भृतं शिवशिवात्मकतत्त्वमहो महः ॥८॥
विविधयन्त्रमयीं मनुमालिनीं सकलविश्वमयीं वरदां शिवाम् ।
मतयुगं परिभाव्य गुरोर्मुखात् श्रयत साधनवीथिमिमां पराम् ॥९॥
श्रीविद्यार्णवतन्त्रस्य वक्तारं देशिकोत्तमम् ।
विद्यारण्ययतिं वन्दे गुरूणाञ्च परम्पराम् ॥१०॥
षोडशानन्दशिष्योऽहं दत्तात्रेयाभिधान्वितः ।
श्रीविद्यार्णवतन्त्रस्य विदधे भावविवृतिम् ॥११॥
देवभाषानभिज्ञानां साधकानां हितावहम् ।
श्रीविद्यासाधनातत्त्वं व्यनज्मि जनभाषया ॥१२॥



श्रीविद्यार्णवतन्त्र पूर्वार्धभाग की हिन्दी विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र पूर्वार्धभाग की हिन्दी विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र पूर्वार्धभाग की हिन्दी विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र पूर्वार्धभाग की हिन्दी विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र पूर्वार्धभाग की हिन्दी विषयानुक्रमणिका।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र पूर्वार्धभाग की हिन्दी विषयानुक्रमणिका।



श्रीविद्यार्णवतन्त्र

।। ग्रन्थकार का मङ्गलाचरण।।

उद्यत्सूर्यहस्त्रभास्वरतनुः सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा
विद्युत्पुञ्जनिभेन्दुकोटिसदृशी धामत्रयाध्यासिनी ।
तत्तेजस्त्रितयात्मकैक (मुनि? मनु) भिर्वाक्कामशक्त्याख्ययुक्-
कूटैस्त्र्यब्धिशरर्तुभिः परिणता नित्यात्मिका पातु वः ।।

।। भावविवृति।।

कुण्डलिनीस्वरूप उदीयमान सहस्रभास्कर के समान भासुरविग्रह और सूक्ष्मातिसूक्ष्म, (अणोरणीयान् महतो महीयान्) अणु-परमाणु से भी अतिसूक्ष्म एवं परात्पर ब्रह्मादि देवों से भी परम, पराभगवती, विद्युत्पुञ्ज के समान, कोटिचन्द्र सदृश सुशीतल स्वरूपवाली, 'धामत्रयाध्यासिनी' अर्थात् तीन धाम मूलाधार, अनाहत, आज्ञा में क्रमशः अग्नि कुण्डलिनी, प्राण (सूर्य) कुण्डलिनी और चन्द्रकुण्डलिनी के रूप में अधिवास करने वाली, मन्त्रस्वरूप वाग्भव बीज, कामराज बीज एवं शक्तिबीज इन तीनों से युक्त, अतः त्रिविध कूटवाली अब्धि-चार अक्षर, शर-पाँच अक्षर, ऋतु-छः अक्षर- इन पञ्चदश अर्थात् पन्द्रह अक्षरों से श्रीविद्या महामन्त्र के रूप में परिणत, पञ्चदशाक्षरीमन्त्र, 'नित्यात्मिका' पञ्चदश नित्याओं से परिवृत भगवती त्रिपुरसुन्दरी हमारी, आपकी, सबकी रक्षा करें।

सारार्थ— ग्रन्थकार विद्यारण्य यति ने इस मङ्गलाचरण में तन्त्रशास्त्रों के सार, मन्त्रद्वारा कुण्डलिनीजागरण विधि का प्रतिपादन किया है।

इसमें कुण्डलिनीशक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीविद्यामहामन्त्र पञ्चदशाक्षरी का संकेत है। कुण्डलिनीशक्ति मन्त्र के साहचर्य से षट्चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में शिवशक्तिसामरस्य द्वारा अमृतवर्षण से समस्त शरीर को सुधाप्लावित करती हुई, षट्चक्रों का भी सिञ्चन करती है, 'रक्तां मन्त्रमयीं' रक्त वर्णवाली मन्त्र के स्वरूप को धारण कर लेती है। श्रीविद्या का पञ्चदशाक्षरी मन्त्र सात करोड़ महामन्त्रों का सार है। इस मन्त्र के जप-काल में इस प्रकार की भावना करने से मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

शारदातिलक-कुण्डलिनी स्तुति—

रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिःष्यन्दरूपा विशेत्।
भूयोऽप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा विशेत्।।

मूलाधार स्थित त्रिकोण में स्वयम्भूलिंग से आवेष्टित भुजगाकार त्रिवलय रूप कुण्डलिनीशक्ति मन्त्र से सञ्चालित 'हूँ' बीज में पञ्चप्रणव के उच्चारण करने से उठी हुई मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र में जाकर शिवसामरस्य से अमृतधारा का वर्षण करती है। (यह गुरुमुखैकगम्य क्रिया है) इसी क्रिया से कुण्डलिनी-जागरण होता है।

'बिसतन्तुतनीयसी' अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से ध्यानगम्य नहीं है। तन्त्रागमशास्त्रों में कुण्डलिनी को मन्त्र का रूप प्रदान किया गया है, अतः मन्त्रसाधन से ही कुण्डलिनीजागरण सम्भव है।

एतदर्थ ग्रन्थकार ने कुण्डलिनी के स्वरूप का वर्णन करके पञ्चदशाक्षरी महामन्त्र का प्रतिपादन किया है। यह तन्त्रशास्त्रों का मौलिक रहस्य एवं तान्त्रिक मन्त्र साधना का सारसर्वस्व है। इसी रहस्य का मङ्गलाचरण में सङ्केत किया गया है। कुण्डलिनी एवं मन्त्र-तत्त्व-रहस्य का ग्रन्थ में यथास्थान विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

मधुमती एवं मालिनी मत वर्णन

॥ ग्रन्थ का उपक्रम ॥

समस्त विश्व की चैतन्य स्वरूपिणी अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, स्थावर, जङ्गमात्मक समस्त जगत् को चेतना प्रदान करने वाली श्रीमधुमतीशक्ति एवं 'विश्वविग्रहा' मालिनी शक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि मधुमती और मालिनी विद्या मेरे बुद्धिस्थ होने की अनुकम्पा करें। मधुमती और मालिनी दोनों मतों का सम्यक्यता आलोडन करके एवं उन दोनों विद्याओं में मिश्रण के भय से दोनों विद्याओं का सम्यक् प्रकार से विवेचन करके 'श्रीविद्यार्णव' नामक परातन्त्र ग्रन्थ को विद्यारण्ययति प्रकाशित कर रहे हैं— **प्रकाश्यते परातन्त्रं मया विद्यार्णवाभिधम्।**

मधुमती महादेवी कादिमत की अधिष्ठात्री हैं, एवं मालिनीशक्ति कालीमत की, इन दोनों मतों का तादात्म्य कादि-काली मत से है। मन्त्रशास्त्र के पारङ्गत विद्वानों की ऐसी मान्यता है।

॥ मधुमती ॥

३६ तत्त्वों की मूलभूत मातृकाओं के ३६ अक्षर एवं शिवमय षोडश स्वरों से समन्वित पृथक् पूर्णमण्डलसंज्ञक, मातृकाओं और विद्याओं का (३६) षट्त्रिंशत् से गुणित, सिद्ध कालनित्या स्वरूप, नव प्रकार की व्याप्ति, भेद से द्विगुणीकृत, विग्रह, वैगुण्यमय तत्त्वों और यन्त्रों से द्विगुणीकृत तत्-तत् भेदों से भिन्न 'चार प्रकार' के मातृकाभेदों का वर्णन, इस प्रकार ३६ तत्त्वों से परिपूर्ण समस्त मन्त्रों की फलदा मधुमती देवी का कादिसंज्ञक मत से तादात्म्य है, **कादिमत की अधिष्ठात्री मधुमती देवी हैं।** (यह वक्ष्यमाण कादिमत की साधना में सूत्र रूप में प्रतिपादन किया गया है।)

॥ मालिनी ॥

पञ्चाम्नाय और समयविद्या, पञ्चपञ्चिका, चारपीठ, षड्दर्शन, उत्पत्ति, स्थिति, संहार, भेदवृन्दों से मालिनीदेवी का कालीमत से तादात्म्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि **प्रोक्त विद्याओं से समाराध्य कालीमत की अधिष्ठात्री मालिनी देवी हैं।** इन दोनों मतों के परिज्ञान से मनुष्य साक्षात् शिवतुल्य हो जाता है। ग्रन्थकार ने कादिमत की अधिष्ठात्री मधुमती और कालीमत की अधिष्ठात्री मालिनीविद्या की साधना के लिए विभिन्न भेदों से की जाने वाली प्रक्रियाओं का गूढ रूप से प्रतिपादन किया है और उसके द्वारा शिवतुल्य होने की घोषणा की है, उपर्युक्त रहस्यमय विद्याएँ हैं, गुरु द्वारा ही इनका ज्ञान सम्भव है। इस ग्रन्थ में यथास्थान इनका परिचय प्राप्त होता है।

कालतत्त्व मतव्याप्ति, मधुमती एवं मालिनी— ये दोनों मत, सम्प्रदायाङ्गभावना, स्थूल, सूक्ष्म, पर, उपाङ्ग, बीज, शक्ति, मन्त्र एवं पल्लव— इनका तत्-तत् आचार, तत्-तत् उत्पत्ति, एवं अर्चन का गुरु या शास्त्र से ज्ञान करके कर्मों में सावधानता आवश्यक है। 'आद्यन्तमध्यरहित:'— आद्यन्त, मध्य रहित अर्थात् 'अहंतत्त्व' अकार से लेकर हकार पर्यन्त ३६, 'आदिमध्यान्तसंयुत:'— आदि-मध्य और अन्त से युक्त पूर्णमण्डल-पञ्चाशद्वर्ण और अनादि तत्त्व का संशोधन करने वाला स्वतन्त्र एवं परतन्त्र- इन सब का यथावत् ज्ञान करके साधना करने वाले को पूर्ण फल की प्राप्ति होती है। अन्यथा साधना से फलप्राप्ति असम्भव है।

गुरुक्रम-ज्ञानरहित जो श्रीविद्या का पूजन करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है, जैसे भस्म में होम करने का प्रयास विफल होता है। इसलिए मूलरूप से गुरुपरम्परा का ज्ञान होना परमावश्यक है। गुरुमुख से सम्प्रदाय का ज्ञान करके निरन्तर जागरूक रहकर मन्त्रसिद्धि के लिए प्रतिदिन गुरुक्रम का स्मरण करना आवश्यक है।

ऊर्ध्वाम्नायक्रम, कामराजक्रम, लोपामुद्राक्रम और सामान्यक्रम में विद्यावतारगुरु, विद्याप्राप्तिगुरु, विद्याकुल और गुरुसन्तति, पञ्चायतनदीक्षा, पञ्चाम्नाय मन्त्रों, दोनों मत मधुमती और मालिनी में जो कादिकाली मत है, उनका सम्यक् प्रकार से ज्ञान करके और (साङ्कर्य) इनका परस्पर मिश्रण न हो, एतदर्थ प्रयत्नपूर्वक ज्ञान करके जो भगवती का भजन करता है, उसको ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यदि इसका सम्यक् ज्ञान नहीं है, तो पूजा अभिचार में परिणत हो जाती है, अर्थात् ऐसी पूजा करने वालों की हानि होती है।

॥ ऊर्ध्वाम्नाय की उपास्यविद्या एवं गुरुक्रम ॥

पराप्रासादमन्त्र, श्रीविद्याषोडशाक्षरी, दक्षिणकालिका एवं मालिनी, स्वगुरुमन्त्र, चरणविद्या, नवनाथ, षोडशमूलविद्या, मूलाधारादि-षट्चक्रविद्या, संविद् देवियाँ तथा चौसठमन्त्र ऊर्ध्वाम्नाय में व्यवस्थित हैं। इनके स्मरणमात्र से मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है। परञ्च मन्त्रसिद्धि चाहने वाले को गुरुक्रम का ज्ञान होना आवश्यक है। यह क्रम इस प्रकार है—

॥ गुरुक्रम॥ (ऊर्ध्वाम्नाय)

कुलगुरु-दिव्यौघ— (१) ईशान, (२) तत्पुरुष, (३) अघोर, (४) वामदेव तथा (५) सद्योजात।
सिद्धौघ— (१) आदिनाथ, (२) अनादिनाथ (३) अनामयनाथ, (४) अनन्तानन्दनाथ, (५) चिदाभासानन्दनाथ।
मानवौघ— (१) विश्वेश्वर, (२) अपरेश्वर, (३) हंसेश्वर, (४) संवर्तेश्वर, (५) द्वीपेश्वर, (६) नवात्मेश्वर।

उपर्युक्त कुलसंज्ञक गुरु हैं, तथा कुलमार्गगामी कुलशिष्यों से आवृत, कुलमन्त्र के अर्थज्ञ, कुलासन पर विराजमान, और कुलतन्त्र में परायण, कुलालिङ्गन से युक्त होने के कारण तामसरहित, महारस के उल्लास भाव में निमग्न कुलसंयुक्त, दश हाथ और पञ्च मुख, मुण्डमाला (मुण्डे-गले-माला) से विभूषित, उदीयमान सहस्र सूर्यों के समान कान्तिमान् पूर्ण अन्त:करण वाले, खड्ग, खेट, कपाल, त्रिशूल, मुद्गर, खट्वाङ्ग, बाण, धनुष, वर, अभय धारण करने वाले हैं। वक्ष्यमाण कुलगुरुओं के भी ध्यान की विधि यही है। रात्रि के तुरीय याम में (उषाकाल) रक्तवर्ण मूलाधार में कुण्डलिनी के महाप्रकाश में विद्यासिद्धि के लिए प्रयत्नपूर्वक इनका चिन्तन करना चाहिये। जो साधक इन कुलगुरुओं का चिन्तन नहीं करता है, उसकी पूजा जपादि क्रिया व्यर्थ हो जाती है। अत: ऊर्ध्वाम्नाय में कहे गये इन गुरुओं का ध्यान करना आवश्यक है।

॥ विद्यावतार गुरु ॥

दिव्यौघ– (१) ब्रह्मा, (२) विष्णु, (३) रुद्र, (४) ईश्वर, (५) सदाशिव, (६) इच्छाशक्ति, (७) ज्ञानशक्ति, (८) क्रियाशक्ति, (९) कुण्डलिनीशक्ति, (१०) मातृका, (११) पराविद्या।

सिद्धौघ– (१) आदिनाथ, (२) परा, (३) अचिन्त्यनाथ, (४) अचिन्त्या, (५) अव्यक्तनाथ, (६) अव्यक्तिका (७) कुलेश्वर, (८) कुलेशी।

मानवौघ– तूष्णीष, सिद्धा, मित्र, कुब्जा, गगन, परमेश्वर, परमेश्वरी, कुमार, सहजा, रत्न, ज्ञानदेवी, ब्रह्मा, नादिनी, अजेश्वर, महिला, प्रतिष्ठ, सहजा, शिव, प्रतिभा, चिदानन्द, सहजा, श्रीकण्ठानन्द, विद्या, शिव, सहजा, सोम, सहजा, संवित्, सहजा, विबुध, विबुधा, भैरव, भैरवी, आनन्द, नन्दिनी, कामेश्वरी, कमल, सहजा, दिन, युग्मका, हाथ में वर और अभय धारण किये हुए– ये विद्यावतार क्रम के मानवौघ हैं। सहस्रदल में इनका ध्यान करना चाहिए।

॥ दीक्षावतार गुरु ॥

दिव्यौघ– (५) व्योमातीता, व्योमेशी, व्योमगा, व्योमचारिणी, व्योमस्था।

सिद्धौघ– (९) उन्मना, समना, व्यापिका, शक्ति, ध्वनि ध्वनिमात्रानाहता, बिन्दु, आकाश, शब्दान्त।

मानवौघ– (९) परमात्मा, शाम्भव, चिन्मुद्र, वाग्भव, लील, सम्भ्रम, चित्त, प्रसन्न, विश्व। ये शाम्भवक्रम के विद्यावतार गुरु हैं। (उर्ध्वाम्नाय की शाम्भव क्रम संज्ञा भी है।)

षोडशी के उपासकों को नव पंक्तिक्रम से इनका यजन करना चाहिए, श्रीयन्त्र में देवी के पृष्ठभाग में और 'विश्रान्ते' ब्रह्मरन्ध्र में स्वगुरुक्रम का अर्चन करें।

॥ स्वगुरुक्रम ॥

(१) कपिल, (२) अत्रि, (३) वसिष्ठ, (४) सनक, (५) सनन्दन, (६) भृगु, (७) सनत्सुजात, (८) वामदेव, (९) नारद, (१०) गौतम, (११) शुनक, (१२) शक्ति, (१३) मार्कण्डेय, (१४) कौशिक, (१५) पराशर, (१६) शुक, (१७) अङ्गिरा, (१८) कण्व, (१९) जाबालि, (२०) भरद्वाज, (२१) वेदव्यास, (२२) ईशान, (२३) रमण, (२४) कपर्दी, (२५) भूधर, (२६) सुभट, (२७) जलज, (२८) भूतेश, (२९) परम, (३०) विजय, (३१) भरत (भरण), (३२) पद्मेश, (३३) सुभग, (३४) विशुद्ध, (३५) समर, (३६) कैवल्य, (३७) गणेश्वर, (३८) सुपाद्य, (३९) विबुध, (४०) योग, (४१) विज्ञान, (४२) अनङ्ग, (४३) विभ्रम, (४४) दामोदर, (४५) चिदाभास, (४६) चिन्मय, (४७) कलाधर, (४८) वीरेश्वर, (४९) मन्दार, (५०) त्रिदश, (५१) सागर, (५२) मृड, (५३) हर्ष, (५४) सिंह, (५५) गौड, (५६) वीर, (५७) अघोर, (५८) ध्रुव, (५९) दिवाकर, (६०) चक्रधर, (६१) प्रथमेश, (६२) चतुर्भुज, (६३) आनन्दभैरव, (६४) धीर, (६५) गौड, (६६) पावक, (६७) पराशर्य, (६८) सत्यनिधि, (६९) रामचन्द्र, (७०) गोविन्दपाद, (७१) शङ्कराचार्य– इकहत्तर संख्या स्वगुरुक्रम की है।

शङ्कराचार्य के दृढ़व्रत देवीभावापन्न, दृढात्मा निग्रह और अनुग्रह में समर्थ १४ शिष्य थे। यथा

(१) शङ्कर, (२) पद्मपाद, (३) बोध, (४) गीर्वाण, (५) आनन्दतीर्थ– ये पाँच संन्यासी शिष्य थे।

(१) सुन्दर, (२) विष्णुशर्मा, (३) लक्ष्मण, (४) मल्लिकार्जुन, (५) त्रिविक्रम, (६) श्रीधर, (७) कपर्दी, (८) केशव, (९) दामोदर– यें ९ गृहस्थ शिष्य थे।

मठ, पीठ, उपपीठों के अधिपति अन्त में दीक्षित, शङ्कराचार्य की अन्त्येष्टि करने वाले विविक्ताश्रमी शङ्कराचार्य नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

॥ देवीभावापन्न शङ्कराचार्य शिष्य-सन्तति॥

पद्मपाद के छः शिष्य– (१) मण्डल, (२) परिपावक, (३) निर्वाण, (४) गीर्धन, (५) चिदानन्द, (६) शिवोत्तम, विविक्ताश्रमी अर्थात् एकान्त में वास करने वाले, जितेन्द्रिय, मौनी, मात्सर्यरहित थे। इस प्रकार उपर्युक्त शङ्कराचार्य के शिष्यों की परम्परा लोक में प्रचलित हुई। शङ्कराचार्य के शिष्य बोध के विविध प्रकार के अनेक शिष्य केरल में हुए। **गीर्वाणेन्द्र के विद्वद्गीर्वाण** शिष्य हुए। उनके शिष्य **विबुधेन्द्र**, विबुधेन्द्र के **सुधीन्द्र**, उनके मन्त्रगीर्वाण और मन्त्रगीर्वाण के अनेक शिष्य हुए।

आनन्दतीर्थ के गृहस्थ शिष्य गुरुपादुका, पीठ और सम्प्रदाय को जानने वाले हुए। **सुन्दराचार्य** के शिष्य विविध पीठनायक हुए। **सुन्दराचार्य** के पीठ में संन्यासी और गृहस्थ सभी प्रकार के शिष्य थे और सुन्दराचार्य पीठाधिपति हुए। **श्रीविष्णुशर्मा** के शिष्य प्रगल्भाचार्य थे। इनका शिष्य मैं विद्यारण्य[1] यति। मेरे द्वारा इस ग्रन्थ की रचना पूर्ण होने पर महामाया भगवती जगद्धात्री का प्राकट्य हुआ और वे प्रसन्न होकर बोलीं– 'हे वत्स! अपना अभीष्ट वर माँगो'। मैंने भगवती से प्रार्थना की, 'हे माता! मेरे द्वारा रचित इस ग्रन्थ के गुरुक्रम और मन्त्रों का ज्ञान करके मुझे गुरु मानकर दीक्षा के विना भी जो साधक भक्तिपूर्वक जप साधना करते हैं या करेंगे उनको पूर्ण सिद्धि हो', प्रसन्न होकर भगवती ने 'तथास्तु' कहा। प्रसन्नतापूर्वक वर देकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। अतः गुरुसन्तति का ज्ञान करने वाले मात्र से निश्चित ही भगवती प्रसन्न हो जाती है। 73 - 76

॥ ग्रन्थ का आविर्भाव ॥

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य के शिष्य लक्ष्मण देशिक इस लोक में तप एवं विद्या की श्री से प्रख्यात हो गये थे। इनकी जब चतुर्थ अवस्था आयी, तब 'वीतराग' होकर पृथ्वीतल पर विचरण करते हुए राजा प्रौढ़देव की राजधानी में गये। राजा प्रौढ़देव उनकी भवन-भूषण, वाहन, भोजन एवं परिचारक आदि से ससम्मान सेवा करने लगे।

एक बार राज्यसभा में लक्ष्मणदेशिक विराजमान थे, तब व्यापार में नियोजित पुरुषों ने नगरान्तरों से लायी हुई नानाप्रकार की वस्तु एवं वस्त्र राजा को भेंट में दिया। राजा प्रौढ़देव ने बहुत से उत्तम वस्त्र लक्ष्मणगुरु को समर्पित किये और देशिकोत्तम लक्ष्मण ने अपने स्थान पर जाकर विधिपूर्वक अग्निस्थापन करके भक्तिभाव से सभी वस्त्रों का होम कर दिया। यह बात किसी प्रकार राजा के कान में जाने से उसका

१. श्रीविद्यारण्य यति जी श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्य जी की गृहस्थपरम्परा के शिष्य थे, ऐसा निश्चित होता है।

विपरीत भाव हो गया। प्रौढ़देव ने राजपुरुष को उनके पास भेजा और कहा कि गुरुजी से प्रार्थना करो कि एक बार वस्त्र दे दें, उनका मूल्य निर्धारण करना है, तदनन्तर आपकी सेवा में भेज दूँगा। राजा की आज्ञा प्राप्त करके दूत ने गुरुजी से निवेदन किया, क्रोधित होकर उन्होंने राजा को शाप दे दिया कि ब्रह्मस्व का हरण करने वाला राजा प्रौढ़देव निर्वंश हो जायेगा। तदनन्तर लक्ष्मणदेशिक ने देवी से प्रार्थनापूर्वक वस्त्रों की याचना की, वे वस्त्र उपस्थित हो गये और उन्होंने राजपुरुष को वस्त्र दे दिये। क्रोधित होकर उन्होंने उस नगर को छोड़ दिया और दक्षिण की ओर चले गये।

यह सब वृत्तान्त सुनकर राजा प्रौढ़देव भी अत्यन्त दुःखित और उद्विग्न हो गये। लक्ष्मण गुरु के देश में जाकर गुरु से प्रार्थना करने लगे, महाराज हम सांसारिकों की बुद्धि सदा ही उद्विग्न रहती है, आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा करें। उत्तम पुरुषों का क्रोध क्षण भर में शान्त हो जाता है– **उत्तमानां क्षणे कोपः।**

प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर लक्ष्मणदेव ने कहा–'राजन् मेरी वाणी अमोघ है, मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट होकर कहता हूँ कि तुम्हारा पुत्र ही तुम्हारे राज्य का सञ्चालन करेगा। यह सुनकर राजा दुःखित मन से अपने राज्य में चले गये। कुछ समय के बाद रानी गर्भवती हो गयी, तदनन्तर राजा की मृत्यु हो गयी। तब मन्त्रियों ने जाकर मुझसे (विद्यारण्ययतिजी से) प्रार्थना की कि, महाराज हमारे राज्य का भार आप ग्रहण कीजिये (जब तक राजकुमार का राज्याभिषेक न हो जाय।) इस प्रकार प्रार्थना करने पर विद्यारण्य यति वहाँ रहकर राज्य का सञ्चालन करने लगे।

यथासमय प्रौढ़देव के पुत्र का राज्याभिषेक हुआ और बारह हजार करोड़ में श्रीयन्त्र के समान श्रीविद्यानगर का निर्माण हुआ। इस प्रकार अम्बदेव राजा को राजसिंहासन पर विराजमान कर विमल बुद्धि वाले विद्वानों ने विद्यारण्य यति जी से प्रार्थनापूर्वक निवेदन किया कि आप भी भगवती की प्रसन्नता के लिए एक तन्त्रग्रन्थ का निर्माण करने की अनुकम्पा करें।

इस प्रकार विद्वानों की प्रार्थना पर भगवती से आज्ञा प्राप्त करके, लोकोपकार के लिए यामलादि नाना तन्त्रों का अवलोकन करके श्रीविद्यार्णवतन्त्र की रचना सम्पन्न हुई। मधुमती और मालिनी दोनों मतों का सम्यक्तया अध्ययन करके इस लोकोपकारी अतुलनीय ग्रन्थ की रचना हुई है। एतदर्थ **यदिहास्ति तदन्यत्र.....** यह सूक्ति चरितार्थ है।

।। सम्पूर्ण भारत में शङ्कर-सम्प्रदाय ।।

मल्लिकार्जुन भगवान् शङ्कराचार्य के शिष्य थे। उनके शिष्य श्रीविद्या के प्रचार-प्रसार के लिए विंध्यप्रदेश में गये। त्रिविक्रम के शिष्य ने जगन्नाथपुरी में रहकर श्रीविद्या का प्रचार-प्रसार किया। गौड़, मैथिल, बंगदेश में श्रीधर की शिष्य परम्परा हुई। काशी, अयोध्या प्रदेश में कपर्दी की शिष्यपरम्परा चली। इस प्रकार भारतवर्ष में शङ्करसम्प्रदाय ही एकमात्र व्याप्त हुआ, अन्य कोई सम्प्रदाय नहीं था– **''सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशङ्कराद्बहिः''।**

॥ कादिमत के प्रामाणिक ग्रन्थ ॥

तन्त्रराजतन्त्र, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव, योगिनीहृदय—ये चार ग्रन्थ कादिमत में प्रामाणिक माने जाते हैं।

कालीमत में अनेक ग्रन्थ विख्यात हैं। मधुमती और मालिनी इन दोनों के ज्ञान से मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है। इसलिए प्रयत्नपूर्वक ज्ञात करके सिद्धि चाहने वाले को यह गुप्त रखना चाहिए।

मधुमती एवं मालिनी इन दोनों मतों की सम्मति से ऊर्ध्वाम्नाय में व्यवस्थित (अधिकारी) हो जाता है। दोनों मतों में जो मत गुरु द्वारा प्राप्त हुआ हो, उसी मत के अनुसार साधना करनी चाहिए। दोनों मतों का संमिश्रण कदापि नहीं होना चाहिए। यदि होता है, तो सिद्धि में अवरोध होता है।

॥ कामराजविद्या॥ "कालीमत"

कामराजविद्या की भी कालीमत से उपासना होती है, इसके गुरुक्रम का ज्ञान होना आवश्यक है। गुरुक्रम इस प्रकार है— कालीमत में नव कुलगुरु (१) प्रह्लादानन्दनाथ, (२) सनकानन्दनाथा, (३) वशिष्ठानन्दनाथ, (४) कुमारानन्दनाथ, (५) क्रोधानन्दनाथ, (६) शुकानन्दनाथ, (७) ध्यानानन्दनाथ, (८) बोधानन्दनाथ, (९) सुरानन्दनाथ। ये सभी दो नेत्र, दो भुजावाले करकमल में वर अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं। "रक्तवर्ण मूलाधार कुण्डलिनी तेज में पूर्वोक्त" समय में मन्त्रज्ञों को इनका ध्यान करना चाहिए।

दिव्यौघ— चिद्रूपानन्दनाथ, चिन्मयानन्दनाथ, चिच्छक्ति। **सिद्धौघ—** प्रबोध, सुबोध, अनन्त। **मानवौघ—** सुधामानन्दनाथ त्रिमूर्त्यानन्दनाथ, झिण्टीशानन्दनाथ।

इनके नाम के आगे त्रितारी और अन्त में 'पादुकां पूजयामि' करने पर सत्रह अक्षर का मन्त्र होता है। यथा— ऐं ह्रीं श्रीं चिद्रूपानन्दनाथ पादुकां पूजयामि।

॥ शैवी गुरुपरम्परा ॥

शैवी सप्तदशी विद्या नित्य ही पूर्व प्रोक्तवत् सत्रह अक्षर की होती है।

दिव्यौघ— (७) परप्रकाश, परशिवानन्द, परशक्त्यम्बा, कौलेश्वरानन्दनाथ, शुक्लदेव्यम्बा, कुलेश्वरानन्दनाथ, कामेश्वर्यम्बा। **सिद्धौघ—** (४) भोगानन्दनाथ, क्लिन्नानन्दनाथ, समयानन्दनाथ, सहजानन्दनाथ। **मानवौघ —** (८) गगनानन्दनाथ, विश्वानन्दनाथ, विमलानन्दनाथ, मदनानन्दनाथ, भुवनानन्दनाथ, लीलाम्बा (लील), स्वात्मानन्दनाथ, प्रियानन्दनाथ। इनका श्रीयन्त्र में भगवती के पृष्ठभाग में पूजन करना चाहिए। यहाँ पर भी त्रितारी 'नाम' आनन्दनाथ पादुकां पूजयामि, पूर्वोक्त विधि है।

गुरुसन्तति 'कपिल' से लेकर व्यास पर्यन्त २१ तथा करुण, वरुण, विजय, समर, गुण, बल, विश्वम्भर, सत्य, प्रिय, श्रीधर, शारद, सकलेश, विलास, नित्येश, विश्व, पुरुष, गोविन्द, विबुध, सिंह, वीर, सोम, दिवाकर, अचल, वाग्भव, नाद, मोहन, सुलभ, शिव, मृत्युञ्जय, वासुदेव, शरण, सनन्दन, आकाश, गोप्रिय, हर्ष, भर्ग, काम, महीधर, ईशान, गणप, श्रीमान्, कपाल, भैरव, दिव। गौडपाद से लेकर

शङ्कराचार्य तक सप्तसंख्यक, इस प्रकार एकसप्तति (इकहत्तर) गुरु शिवरूप हैं। इनके शिष्यों का गुरुक्रम जान करके स्वगुरूक्तविधान से पूजा, तर्पण, होम, न्यास में इनका स्मरण करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

॥ कालीमतानुसार लोपामुद्राविद्या गुरुक्रम ॥

दिव्यौघ— श्रीविद्यानन्दनाथ, परशम्भ्वानन्दनाथ, परमात्मानन्दनाथ। **सिद्धौघ**— स्वप्रकाशानन्दनाथ, भगीरथानन्दनाथ, विरूपाक्षानन्दनाथ। **मानवौघ**— ज्ञानानन्दनाथ, अचलानन्दनाथ, योगानन्दनाथ।

इन कुलगुरुओं का पूर्वोक्त कुण्डलिनी तेज में चिन्तन करना चाहिए।

॥ लोपामुद्राविद्या के विद्यावतार गुरु ॥

दिव्यौघ— कुमुद, कमल, सुभोज। **सिद्धौघ**— आत्रेय, भार्गव, गौतम। **मानवौघ**— शौनक, वसुद, सुरथ। इन नामों के आदि में त्रितारी तथा नाम के अन्त में 'पादुकां पूजयामि नमः' लगाना चाहिये।

उन्नीस अक्षर वाले ये विष्णुस्वरूप विद्यावतार गुरु हैं, ये भी शिवरूप ही है।

ओंऐंह्रींश्रीं कुमुदानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि, इत्यादि पूजन-क्रम है।

॥ लोपामुद्रा के दीक्षागुरु ॥

दिव्यौघ— (७) परमशिव, कामेश्वरी, दिव्यौघ, महौघ, सर्व, प्रज्ञा, प्रकाशक। **सिद्धौघ**— (५) दिव्य, चित्र, कैवल्य, अनुदेवी, महोदय। **मानवौघ**— (७) चिदानन्द, विश्वशक्त्यानन्दनाथ, रमानन्दनाथ, कमलानन्दनाथ, मनोहरानन्दनाथ, स्वात्मानन्दनाथ और प्रतिभानन्दनाथ।

ये दीक्षागुरु हैं, श्रीयन्त्र में नवपंक्तिक्रम से इनका यजन करने का विधान है।

॥ स्वगुरुक्रम ॥

पूर्व प्रोक्त प्रतिभानन्दनाथ के अनन्तर (१) कपिल (२) अगस्त (३) अनसूया (४) अत्रि (५) लोपामुद्रा। **वशिष्ठ से व्यास पर्यन्त उन्नीस संख्या वाले (पूर्वोक्त स्वगुरुक्रम)।**

(१) आदित्य (२) महादेव (३) वागानन्द (४) वामदेव (५) रतिदेव (६) अनन्त (७) योग (८) धराधव (९) सुहस्त (१०) सत्यसङ्घ (११) ब्रह्मानन्द (१२) भैरव (१३) दत्तानन्द (१४) कुन्तीश (१५) चिद्घन (१६) सोम (१७) गौरव (१८) त्रिपुरेश (१९) महाबाहु (२०) अक्रोधन (२१) शिव (२२) अम्बिका (२३) विद्यानन्द (२४) गुणानन्द (२५) गौरीश (२६) विबुध (२७) हर (२८) भूतेश (२९) सोमनाथ (३०) सर्वज्ञ (३१) सरस (३२) हरि। सप्त गौडपाद से शङ्कराचार्य पर्यन्त गुरुओं की संख्या ६४ हुई। इनके स्मरणमात्र से भगवती प्रसन्न हो जाती हैं।

॥ मनु आदि विद्याओं का गुरुक्रम ॥

मनु आदि उपासित विद्याओं का गुरुक्रम जानकर उपासकों को तत्-तत् महाविद्याओं का जप करना चाहिए।

॥ कुलगुरु ॥

दिव्यौघ— महादेव, परम्बा, कूर्मेश। **सिद्धौघ**— सद्योजात, कुमार, भूतेश। **मानवौघ**— प्रियानन्द, लील, अघोर हैं। प्रागुक्त समय एवं स्थान में इन कुलगुरुओं का स्मरण करना चाहिए।

॥ विद्यावतार गुरु ॥

दिव्यौघ— पूर्णेश, शङ्कर, प्रगल्भ। **सिद्धौघ**— भौतिक, त्रिदश, परम। **मानवौघ**— विद्येश, वासव और यतीश—सहस्र दल में इनका ध्यान करना चाहिए।

॥ दीक्षा-गुरु ॥

दिव्यौघ— परप्रकाशानन्दनाथ, परविमर्शानन्दनाथ, कामेश्वरी, मोक्षानन्दनाथ, अमृतानन्दनाथ, पुरुषानन्दनाथ, अघोरानन्दनाथ। **सिद्धौघ**— प्रकामानन्दनाथ, सदानन्दनाथ, सिद्धौघानन्दनाथ, उत्तमानन्दनाथ। **मानवौघ**—उत्तर, परम, सर्वज्ञ, सर्व, सिद्ध, गोविन्द और शङ्कर।

श्रीयन्त्र में देवी के पृष्ठभाग में नवपंक्तिक्रम से इनका यजन करना चाहिए। शङ्कर के अनन्तर स्वगुरुमण्डल का भी अर्चन करना चाहिए।

कपिल से व्यास पर्यन्त २१ संख्या और पेरश, विद्येश, त्रिपुर, विजय, हर, कामेश, त्रिपुरान्त, पुरुष, परम, हरि, गालव, मुद्गर, शौरि, परमात्मा, धनेश्वर, धनञ्जय, भास्कर, भल्लाट, विभावसु, जीवनाथ, गोरक्ष, मत्स्यनाथ, सदाशिव, गुरुभक्त, चित्तबोध, बोधानन्द, सुरेश्वर, भैरव, सच्चिदानन्द, कृतीश, करुणाकर, श्रीकर, वेदमूर्ति, सर्वेश, दुर्लभ, वसी, नागदेव, क्षमानाथ, भावेश, केशव, नन्दीश, गणप, वीर, दुर्ज्ञेय, मिहिर, प्रिय, गौडादि से शङ्करपर्यन्त सात संख्या तक पूर्व कहे हुए ये सब मिलाकर ७४ संख्यक गुरु सिद्धिदायक हैं। इनके पूजन, स्मरण से उपासकों को सिद्धि की प्राप्ति होती है।

॥ तीनों विद्याओं का गुरुक्रम॥ (कादिमत)

तीनों प्रकार की विद्याओं (कामराज, लोपामुद्रा, मनु आदि) का कादिमत में कुलगुरु, विद्यावतारगुरु, दीक्षागुरु, उनकी सन्तति और गुरुपंक्तित्रय— इस प्रकार गुरुओं की तीन पंक्तियों का ध्यान करके विद्यासिद्धि के लिए बुद्धिमान् को यजन करना चाहिए।

॥ कुलावतारगुरु ॥

दिव्यौघ— सर्वज्ञ, ईशान, भूतेश। **सिद्धौघ**— दिव्य, सर्व, भव्य। **मानवौघ**— प्रशस्त, प्रकाम, सुधाम। इनके पूर्व में 'श्री' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

ये सभी चतुर्भुज, त्रिनयन, रक्तमाला और रक्तवस्त्र धारण किये हुए हैं। अक्षमाला, पुस्तक, अभय और वर करकमल में धारण किये हुए हैं। ये कुलगुरु हैं, इनका स्मरण पूर्वोक्तस्थान में करना चाहिए।

।। विद्यावतार गुरु ।।

दिव्यौघ—प्रकाश, विमर्श और आनन्द। **सिद्धौघ**—ज्ञान, सत्य और पूर्ण। **मानवौघ**—स्वाभाव, प्रतिभ सुभग। इनके आगे 'श्री शब्द का प्रयोग करना चाहिए। (सिद्धि के लिए इनका ध्यान करना चाहिए।)

।। दीक्षा गुरु ।।

दिव्यौघ—उद्द्योत, प्रभाव, कुलेश। **सिद्धौघ**—भैरव, गणप, कुमार। **मानवौघ**—उद्धव, वाग्भट, कमन।

ये सभी तीन अक्षर वाले हैं। इनके पूर्व मायाबीज और 'श्रीं' बीज का प्रयोग करें, 'आनन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि' और तर्पण में 'तर्पयामि' यह प्रयोग होता है। मार्जन में 'मार्जयामि' का प्रयोग करना चाहिए। ये दीक्षागुरु हैं, नवपंक्तिक्रम से इनका यजन करना चाहिए। यथा—ह्रीं श्रीं उद्योतानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि।

उपर्युक्त 'कमन' के बाद कपिलादि व्यास पर्यन्त २१ गुरुओं का योग किया जाता है।

अव्यय, विशेष, संग्रह, देवल, प्रकाण्ड, गहन, दुर्लभ, दुर्जय, विश्वेश, उदय, त्वरित, सुन्दर, भरत, धिषण, श्रीकण्ठ, शङ्कर, अनल, वासव, सुनेत्र, सुभग, वीरेश, विरह, क्लिन्नेश, विजय, कर्षक, प्रगल्भ, विनय, वरद, शान्तन, चित्रक, अद्भुत, निपुण, विपुल, विमल, सोमेश, कुशल, सुमन्त, सुतन्त्र, विद्येश, विनत, विभव, वर्धन, अनिन्द्य, सुप्रिय, सारङ्ग, वरुण, सत्येच्छु, अरिहा, वाग्यत, कामन, वाङ्मय, सुकृत, विशाख, मञ्जुल, कामेश, वाग्भव, **गौडादि शङ्करपर्यन्त सप्तसंख्य** इस प्रकार ८४ गुरुओं का स्मरण करना चाहिए। इनके स्मरण से साधक शिवतुल्य हो जाता है। ये कादिमत के गुरु हैं। इनको कादि शक्तिमत में सर्वत्र स्मरण करना चाहिए।

।। कालीमत में मन्त्रभेद से विविध गुरुपरम्परा ।।

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, मध्य, सिंहासन देवता हैं। बालादि भैरवी के भेदों की संख्या ३२ है।

नित्याषोडशिका, षड्दर्शन, पञ्चपञ्चिका, चतुःसमयविद्या तथा नवावरणशक्ति। मन्त्रपारायण में श्रीचक्रशक्ति तथा विद्याओं का पूजन विधान है। गुरुमुख से गुरुक्रम का ज्ञान करके साधना करनी चाहिए।

।। कुलगुरु ।।

प्रह्लादानन्दनाथ से सुरानन्दनाथ तक नव कुलगुरु। (पूर्व प्रोक्त)

।। विद्यावतार गुरु ।।

दिव्यौघ—समय, कक्कुट, प्रधान। **सिद्धौघ**—बुधेश, कुथर, भार्गव। **मानवौघ**—कन्दल, तपन, अदीन।

।। दीक्षागुरु ।।

(७) **दिव्यौघ**— परप्रकाश, परमेशान, परशिव, कामेश्वरी, मोक्ष, काम, अमृत। (६) **सिद्धौघ**—ईशान, गेय, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात। **मानवौघ**— पञ्चोत्तर, परम, सर्वज्ञ, सर्व, सिद्ध, गोविन्द, शङ्कर। ये दीक्षागुरु हैं, इनका विशेष रूप से पूजन करना चाहिए।

॥ पूर्वाम्नाय गुरुक्रम ॥

कपिल से लेकर व्यास पर्यन्त इक्कीस गुरु एवं (१) गणेश, (२) कुमार, (३) विक्रम, (४) विजय, (५) रन्तिदेव, (६) सुदेव, (७) भोज, (८) राम, (९) गुण, (११) भैरव, (११) भ्रामण, (१२), रमण, (१३) विद्याधर, (१४) वैनतेय, (१५) वासव, (१६) अनल, (१७) सङ्कर्षण, (१८) वीरभद्र, (१९) विशाल, (२०) विद्याधर, (२१) विशारद, (२२) वैश्वानर, (२३) यज्ञेश, (२४) महीधर, (२५) कुलान्तक, (२६) अनन्त, (२७) वरद, (२८) काम, (२९) जालन्धर, (३०) शैव, (३१) बोध (३२) भद्र, (३३) रुद्र, (३४) कन्दर्प, (३५) सुव्रत, (३६) सत्यव्रत, (३७) सत्यनिधि, (३८) बोध (३९) मौद्गल्य, (४०) ईशान। **गौडपाद से शङ्कर पर्यन्त सप्तसंख्यक।** इस प्रकार ६८ गुरुओं का मानवौघ के अनन्तर पूजन करना चाहिए। अपने गुरुक्रम को जानकर भक्तिभावपूर्वक यजन, पूजन करना चाहिए। यह पूर्वाम्नायादि देवियों का गुरुक्रम है। इसी प्रकार दक्षिणाम्नाय देवताओं की उपासना होती है, उसकी सिद्धि के मन्त्र और गुरुक्रम का ज्ञान कर लेना चाहिए।

॥ दक्षिणाम्नाय गुरुक्रम ॥

कुलगुरु-दिव्यौघ– तारक, रुचक, भद्रक। **सिद्धौघ**– अमर, सत्यक, भास्वर। **मानवौघ**– अमृत, बोध, पूर्ण। पूर्वोक्त समय, स्थान में कुण्डली तेज में इनका चिन्तन करना चाहिए।

॥ विद्यावतार गुरु ॥

दिव्यौघ–(५) प्रभाव, आदिनाथ, विमल, समय, शिव। **सिद्धौघ**–(५) निर्वाण, गणक, हर, परशम्भु, चिदंश। **मानवौघ**–(७) कुरुनाथ, विशुद्धि, कुशल, कुन्तशेखर, सुडिम्भ, सुन्दर, केश। यही दीक्षागुरुक्रम है।

श्रीयन्त्र में देवी के पृष्ठभाग में प्रयत्नपूर्वक इनका पूजन करना चाहिए। विशेष करके अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए नवपंक्तिक्रम से पूजन करना चाहिए। इसमें वाग्, माया, कमला, 'ऐं ह्रीं श्रीं' अमुक सिद्धगुरु शब्द तथा अन्त में 'पादुकां पूजयामि' लगाना चाहिए।

पूर्वोक्त कपिल से व्यास पर्यन्त २१ (१) वीरभद्र, (२) महासेन, (३) गिरीश, (४) गुणवर्धन, (५) वाङ्मय, (६) वरद, (७) वीर, (८) सुभव्य, (९) नन्दी, (१०) नायक, (११) विजय, (१२) विश्व, (१३) विनत, (१४) वीरेश, (१५) गिरिनन्दन, (१६) प्रमद, (१७) व्यय, (१८) योग, (१९) नित्यानन्द, (२०) गुणातिग, (२१) गुणानन्द, (२२) गुणाराम, (२३) निरीह, (२४) निर्मल, (२५) विभु, (२६) सुभग, (२७) निर्विकल्प, (२८) महाकार, (२९) अचल, (३०) अरुण, (३१) तूणीश, (३२) त्वरित, (३३) धर्म, (३४) निराकार, (३५) निरिन्द्रिय, (३६) हंसेश्वर, (३७) रुचि, (३८) ग्रीव, (३९) द्रोण, (४०) विश्वम्भर, (४१) बल, (४२) सुदक्षिण, (४३) विरूपाक्ष, (४४) गुरुभक्त, (४५) गुरुप्रिय, गौडादि शङ्कराचार्य पर्यन्त सप्तसंख्यक।

ये ७३ मानवौघ गुरु हैं। इनकी दक्षिणाम्नाय में पूजा होती है। ये पूजन से प्रसन्न होकर विद्यासिद्धि प्रदान करते हैं।

पश्चिमाम्नाय गुरुक्रम

।। कुलावतारगुरु ।।

पश्चिमाम्नाय देवियों का गुरुक्रम, गुरु से या शास्त्र से ज्ञात करके सिद्धि के लिए यजन करना चाहिए।

भैरव, भैरवी, महादेव, गणेश्वर, विरूपाक्ष, महासेन, वीरभद्र, धनाधिप, बोध, इनके अन्त में 'आनन्दनाथ' नाम लगाना चाहिए। ये कुलगुरु हैं।

।। विद्यावतार गुरु ।।

दिव्यौघ— अघोर, घोर, घोरेघोरतर—ये दिव्यौघ हैं। **सिद्धौघ**— शर्व सर्व, रुद्र— ये सिद्धौघ हैं। **मानवौघ**— ह्रांकार, ह्रींकार, ह्रूंकार— ये मानवौघ हैं।

।। दीक्षागुरु ।।

दिव्यौघ— ईश, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात। **सिद्धौघ**—समारस, भूतेश, ललित, स्वस्थ, कौलेश। **मानवौघ**— आलस्य, प्रभानन्द, रागिणी, वक्त्ररागिणी, अतीत, कुब्ज, कुलकौलेश्वर। इन्हें दीक्षागुरु कहते हैं। देवी के पृष्ठभाग में नवपंक्तिक्रम से इनका यजन करना चाहिए। उपर्युक्त कुलकौलेश्वर के बाद में अपने गुरुक्रम का पूजन करना चाहिए।

।। स्वगुरु ।।

कपिल से व्यास पर्यन्त २१ संख्या वाले तथा (१) अनन्त, (२) शङ्कर, (३) पिङ्गल, (४) करालक, (५) सिद्धि, (६) रत्न, (७) शिव, (८) मेही, (९) समय, (१०) खगेश्वर, (११) भद्र, (१२) कूर्म, (१३) घोर, (१४) गोप, (१५) मीन, (१६) मौलिक, (१७) तीव्र, (१८) डामर, (१९) राम, (२०) काम, (२१) साकिनी, (२२) महामाया, (२३) महानन्द, (२४) आधारेश (२५) चक्रक, (२६) कुरूर, (२७) समय, (२८) श्रीश, (२९) कुब्जिका, (३०) कुलदीपिका, (३१) शिवेश, (३२) शर्वरी, (३३) धर्मी, (३४) कामी, (३५) कामकला, (३६) शिव। **गौडादि शङ्कराचार्य पर्यन्त सप्तसंख्यक**, ये सिद्धिदायक चौंसठ गुरु हैं। स्वगुरुसन्तति को जानकर विधिपूर्वक यजन करना चाहिए।

उत्तराम्नाय

।। कुलगुरु ।।

विद्यासिद्धि के लिए गुरुक्रम को जानकर उत्तराम्नाय देवियों का आदरपूर्वक यजन करना चाहिए।

पूर्वोक्त प्रह्लादानन्दनाथ आदि जो कुलगुरु बताये गये हैं, वे श्लोकसंख्या १०४ से प्रारम्भ होकर नव गुरुओं के नाम हैं। यही नव कुलगुरु हैं।

॥ विद्यावतार गुरु ॥

दिव्यौघ– उड्डीश, कुलेश, पूर्णेश। **सिद्धौघ**– कामेश्वर, श्रीकण्ठ, शङ्कर। **मानवौघ**–अनन्त, पिङ्गल, नाद। ये विद्यावतारगुरु हैं। इनके स्मरण से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

॥ दीक्षागुरु ॥

दिव्यौघ– महादेवी, महादेव, त्रिपुर, भैरव। **सिद्धौघ**– ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, अद्वितीय, चलचित्त, चलाचल, कुमार, क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती। **मानवौघ**– विमल, कुशल, भीमसेन, सुधाकर, मीन, गोरक्षक, भोजदेव, प्रजापति, मूलदेव, रतिदेव, विघ्नेश्वर, हुतासन, समयानन्द, संतोष ये दीक्षागुरु हैं। देवी के पृष्ठभाग में नवपंक्तिक्रम से इनका पूजन करना चाहिए।

॥ गुरु सन्तति ॥

कपिल से व्यास पर्यन्त २१ संख्या वाले गुरु तथा (१) अभय, (२) शम्बर, (३) हृदय, (४) भोग (५) नाभस, (६) कौलिक, (७) धर, (८) अभय, (९) शम्बर, (१०) भद्र, (११) मोह, (१२) अघोर, (१३)मनोमय, (१४) भैरव, (१५) शबर, (१६) काल, (१७) मत (मन), (१८) ब्रह्मा, (१९) महाकुल, (२०) वाहन, (२१) खेचर, (२२) व्योम, (२३) श्वसन, (२४) ज्वलन, (२५) अज, (२६) ईश, (२७) तात, (२८) कुलातीत, (२९) वायु, (३०) संहार, (३१) कौटिल, (३२) विरोध, (३३) परम, (३४) गोप्ता, (३५) षड्चक्र, (३६) परम, (३७) पर, (३८) मुक्त, (३९) ज्ञान, (४०) कुल, (४१) सत्य, (४२) वर्गाज, (४३) मन्त्रविग्रह, (४४) स्वच्छन्द, (४५) भैरव, (४६) भीम, (४७) वर्णाढ्य, (४८) शब्द, (४९) शब्दज। **गौडादि शङ्कर पर्यन्त सात संख्या वाले** ये ७६ गुरु सिद्धिदायक हैं। इनके स्मरण से जीव शिवतुल्य हो जाता है।

शङ्करादि गुरुओं का ज्ञान करके भक्तिभावपूर्वक यजन करना चाहिए। पञ्चायतनपूजा में या पृथक् पूजन में भी गणेशादि मन्त्रों के गुरुक्रम को जानना चाहिए। गुरुकुल का ज्ञान न करने से साधक मार्ग भ्रष्ट हो जाता है। भ्रष्ट मार्ग वालों को मन्त्र और विद्या का फल यथावत् गोचर नहीं होता है। गुरु और उनके शिष्य यदि सन्ततिक्रम नहीं जानते हैं, तो मन्त्र और विद्या निष्काम हो जाती है। (भगवान् शिव भगवती परास्बा से कह रहे हैं– इसमें संशय नहीं)।

बीस, नव, सात या तीन भी गुरुसन्तति का ज्ञान नहीं है, तो शिष्य नष्ट सन्तति हो जाता है अर्थात् उसकी गुरुपरम्परा नष्ट हो जाती है। अतः अपने वंश से भी गुरुवंश का ज्ञान होना महाशुभकारक है। जन्मदाता पिता से भी अधिक मन्त्र दनेवाले को महेश्वर समझना चाहिए। इसलिए पूजनीय गुरुक्रम का ज्ञान सर्वत्र अपेक्षित है। सर्वप्रथम मन्त्र देनेवाला परमगुरु, परापर और परमेष्ठी गुरु शिवतुल्य होते हैं। समस्त मन्त्रों में और विद्या में भगवती एवं प्रकृतिरूपिणी–भगवती और पुरुष–शिव। उसके बाद गुरुसन्तति होती है। **इसी से शिवभक्त शिवांस होते हैं। समस्त मन्त्रों में सर्वज्ञ गुरु ही सिद्धि देने वाला होता है।**

शिवा-शिव की विद्या के सर्वत्र देशिकगुरु होते हैं। गाणपत्य साधकों के गणदीक्षा में स्वयं गणेश ही प्रभु हैं। वैष्णव साधकों के लिए स्वयं विष्णु, सूर्य पूजकों के लिए सूर्य ही प्रभु हैं। दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ गुरुओं का स्वगुरु से ज्ञान करना आवश्यक है।

गणपति गुरुक्रम

।। कुलावतार गुरु ।।

गणेश्वर, गणक्रीड, विकट, विघ्ननायक, दुर्मुख, सुमुख, बुद्ध, विघ्नराज, गणाधिप— ये कुलगुरु हैं। पूर्वोक्त तेज में इनकी भावना करनी चाहिए।

।। विद्यावतार गुरु ।।

सुरानन्द, प्रमोद, हेरम्ब, महोत्कट, शङ्कर, लम्बकर्ण, मेघनाद, महाबल, गणञ्जय— ये नव विद्यावतार गुरु हैं।

।। दीक्षागुरु ।।

दिव्यौघ— विनायक, विरूपाक्ष, बुद्ध, शूर, वरप्रद। **सिद्धौघ**— विजय, दुर्जय, जय, कवीश्वर, ब्रह्मण्य, निधीश। **मानवौघ**— गजाधिराज, दुःखारि, सद्योजात, सुखावह, परमात्मा, सर्वभूतात्मा, महानाद, शुभानन, बालचन्द्र। ये दीक्षागुरु हैं। इनकी पूजा करने से ये सिद्धि देते हैं।

पूर्वोक्त बालचन्द्र के अनन्तर कपिल से व्यास पर्यन्त २१ गुरुओं का भी पूजन करना चाहिए। (१) गणक, (२) सुभग, (३) नित्य, (४) नित्यालम्ब, (५) शाश्वत, (६) पूर्णानन्द, (७) परानन्द, (८) सुभक्त, (९) पद्मलोचन, (१०) कामपाल, (११) बुध, (१२) श्रेष्ठ, (१३) गजवक्त्र, (१४) गजप्रिय, (१५) भूतेश, (१६) बाललील, (१७) कुमार, (१८) बोधन, (१९) हर, (२०) सत्यलील, (२१) सुलील, (२२) विकट, (२३) धूम्रवर्णक, (२४) नन्दिप्रिय, (२५) नन्दिहास, (२६) देवीपुत्र, (२७) धनेश्वर, (२८) विश्वम्भर, (२९) विशालाक्ष, (३०) विघ्नहर्ता विनायक, (३१) कूष्माण्डेश, (३२) कपर्दी, (३३) शिव, (३४) काल, (३५) महीधर। गौडादि शङ्करपर्यन्त सात। इस प्रकार ६३ गुरु सिद्धिदायक हैं। पूजन और स्मरण करने से ये सभी इच्छित फलों को देने वाले हैं। इन गुरुओं के नाम से पूर्व 'श्रीबीज', 'मायाबीज— और 'कामबीज' लगाना चाहिए और शेष में सिद्धाचार्य 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः। श्रींह्रींक्लीं (अमुक) सिद्धाचार्य श्रीपादुकां पूजयामि।

।। वैष्णव गुरुपरम्परा ।।

वैष्णव गुरुपरम्परा में भी मन्त्रसिद्धि के लिए गुरुपरम्परा का ज्ञान आवश्यक है।

।। कुलगुरु ।।

प्रह्लाद, वसिष्ठ, पुण्डरीक, पराशर, शुक, शौनक, नारद, दाल्भ्य, व्यास— ये नव कुलगुरु हैं।

विद्यावतार गुरु ॥

सरस्वती, विनायक, शुक, सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, नारद, पुण्डरीक, सुचेल— ये विद्यावतार गुरु हैं। सिद्धि के लिए इनका भी स्मरण करना चाहिए।

॥ दीक्षा गुरु ॥

महादेव, महादेवी, परमेष्ठी, समीरण, वरुण, वामदेव, कश्यप, अङ्गिरा, क्रतु—ये नव दीक्षा गुरु हैं। इनका नवपंक्तिक्रम से यजन करना चाहिए।

कपिल से व्यास पर्यन्त २१ तथा (१) नृसिंह, (२) वामन, (३) सत्य, (४) बल, (५) बाल, (६) धनुर्धर, (७) शङ्खी, (८) चक्री, (९) हली, (१०) खड्गी, (११) मुशली, (१२) रमण, (१३) अजित, (१४) पुरुष, (१५) भूधर, (१६) विश्व, (१७) गोविन्द, (१८) गोविवर्धन, (१९) गोपीश्वर, (२०) जितक्रोध, (२१) मीन, (२२) मीनकेतन, (२३) मनोहर, (२४) सात्वत, (२५) केशव, (२६) अच्युत, (२७) वामन, (२८) नरसिंह, (२९) अव्यय, (३०) विष्णु, (३१) नारायण, (३२) महीधर, (३३) चिदंश, (३४) चित्प्रकाश, (३५) माधव, (३६) मधुसूदन, (३७) पुरुषोत्तम, (३८) पद्माक्ष, (३९) घनश्याम, (४०) धराधव।

गौडादि शङ्कर पर्यन्त सप्तगुरु। ये सब मिलाकर ६८ गुरु संख्या हुई। इनके पूजन-स्मरण से मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। इनके मन्त्र के आदि में कामबीज तथा नाम के बाद 'श्रीपादेभ्यो नमः' का योग करना चाहिए। वैष्णव मन्त्रों की सिद्धि के लिए इन गुरुओं का स्मरण करने से शीघ्र मन्त्रसिद्धि हो जाती है। यथा— क्लीं श्रीपादेभ्योः नमः अथवा क्लीं (अमुक) आचार्य पादेभ्यो नमः।

॥ शैव मन्त्रों का गुरुक्रमः ॥

शैवमन्त्रविद्याओं की सिद्धि के लिए भी गुरु का ज्ञान होना आवश्यक है। विना गुरुक्रम के मन्त्र फलदायक नहीं होते हैं।

॥ कुलावतार गुरु ॥

विश्वेश्वर, भगवान् महादेव, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्त, कालाग्निरुद्र, काल, सर्वेश्वर, नीलकण्ठ, दिक्पति, सदाशिव ये ग्यारह कुलगुरु हैं।

॥ विद्यावतार गुरु ॥

वीरभद्र, गणाध्यक्ष, शूलायुध, शिव, ईशान, प्रमथाधीश, नन्दी, भृङ्गी, प्रचण्डक, महिष, मदनाराति— ये ग्यारह विद्यावतार गुरु हैं। ये स्मरण मात्र से सिद्धि देने वाले हैं।

॥ दिक्षागुरु ॥

दिव्यौघ— अघोर, घोर, घोरघोरतर, सर्व, शर्व, रुद्र, तत्पुरुष, महादेव, विरूपाक्ष, सद्योजात, भव।
सिद्धौघ— भवोद्भव, विनायक, चण्डीश, वामदेव, शङ्कर, विश्वनायक, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, काल, भूतेश, प्रमथेश्वर।

मानवौघ— कलविकरण, बलविकरण, बलप्रमथन, सर्वभूतदमन, मनोन्मन, उग्र, भीम, पशुपति, नीलग्रीव, त्रिलोचन, वीरेश्वर।

विद्यासिद्धि के लिए देशिक गुरुओं की भी पूजा करनी चाहिए। ये दीक्षा गुरु हैं। पूर्वोक्त वीरेश्वर के अनन्तर कपिल से व्यास पर्यन्त २१ संख्या वाले तथा (१) कामेश, (२) कालकण्ठ, (३) कालघ्न, (४) कालरूप, (५) धृक्, (६) कामान्तक, (७) विशालाक्ष, (८) वीरभद्र, (९) विनायक, (१०) शूलायुध, (११) गिरीश, (१२) कैलाश, (१३) वाङ्मय, (१४) हर, (१५) बुधेश, (१६) अमरेश, (१७) चण्डीश्वर, (१८) कुमारक, (१९) महेश्वर, (२०) महादेव, (२१) विश्वनाथ, (२२) प्रजापति, (२३) आत्मेश्वर, (२४) संवर्त, (२५) क्रमेश, (२६) प्रकाशन, (२७) ललित, (२८) स्पर्श, (२९) भूतेश, (३०) आनन्द, (३१) प्रभेश्वर, (३२) रागेश, (३३) करालेश, (३४) सिद्धेश, (३५) समयेश्वर, (३६) ज्ञानानन्द, (३७) प्रियानन्द, (३८) कलानन्द, (३९) अमृतेश्वर, (४०) गुह्येश्वर, (४१) चिदानन्द, (४२) कुलेश, (४३) चण्डकौलिक। गौडादि शङ्कर पर्यन्त सात गुरु हुए। सब मिलाकर इनकी संख्या ७१ (इकहत्तर) हुई।

प्रथमं पराप्रसाद नाम के अन्त में 'आराध्यचरणेभ्यो नमः' इस प्रकार इन गुरुओं का पूजन, स्मरण करने से ये मन्त्र सिद्धि देते हैं। ह्सौः अमुक आराध्यचरणेभ्यो नमः।

॥ सौरसम्प्रदायकुलगुरु ॥

सूर्योपासकों को सौरगुरुओं का गुरुक्रम ज्ञात कर यजन करना चाहिए।

दिव्यौघ—मिहिर, सुगुप्त, प्रभेद। **सिद्धौघ**—अरुण, मरीचि, मयूश। **मानवौघ**—कात्यायन, घृणीश, मार्तण्ड।

ये कुलगुरु हैं। इनका प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व कुण्डलिनी के तेज के साथ पूर्व में कही विधि के अनुसार चिन्तन करें।

॥ विद्यावतार गुरु ॥

दिव्यौघ— देवतात्मा, भास्कर, ब्रघ्न। **सिद्धौघ**— भास्वान् प्रभाकर, नारायण, कपर्दी। **मानवौघ**— अर्क, त्रयीमय, ईशान।

॥ दीक्षागुरु ॥

आनन्द, समय, विमल, ज्ञानदीपन, चिद्घन, सोमनाथ, सविता, पोषण, अरुण, महेश, विजय, भूतेश, देवभाग— ये तेरह दीक्षागुरु हैं। नवपंक्तिक्रम से इनका पूजन करना चाहिए। इसके अनन्तर कपिल से व्यास पर्यन्त २१ गुरुओं का अर्चन। तथा व्यास के बाद (१) जैमिनि, (२) सुमन्तु, (३) ज्ञानवर्धन, (४) चिदानन्द, (५) चिदाभास, (६) चिन्मय, (७) योगविद्गुरु, (८) सत्यव्रत, (९) चिद्रूप, (१०) भैरव, (११) अम्बरनायक, (१२) विश्वेश्वर, (१३) मित्रकर, (१४) शुभङ्कर, (१५) दिवाकर, (१६) गणेश्वर, (१७) मार्तण्ड, (१८) भैरव, (१९) द्युमणि, (२०) रवि, (२१) त्रिविक्रम, (२२) वासुदेव, (२३) शङ्कर,

(२४) रविलोचन, (२५) पुण्डरीक, (२६) रमेश, (२७) गुणाराम, (२८) धनेश्वर, (२९) देवेन्द्र, (३०) गोपनाथ, (३१) पुरुष, (३२) महाशय, (३३) आचार्य सिंह, (३४) गोविन्द, (३५) वेदज, (३६) मित्रविन्दक। गौडादि शङ्कराचार्य पर्यन्त सात।

इस प्रकार सब मिलाकर ६४ गुरु हुए। इनका स्मरण करने से मन्त्र तत्काल सिद्ध हो जाते हैं।

पुनः शङ्कराचार्य से आरम्भ करके अपनी गुरुपरम्परा का भक्तिभावपूर्वक अर्चन करना चाहिए। इसमें मायाबीज आदि में लगाकर, नाम के अन्त में 'नमः' लगाना चाहिए। (ह्रीं-अमुक-पादुकेभ्यो नमः)। (उत्तराम्नाय में सिद्धिदायक गुरुओं का अधःसंज्ञक आम्नाय में भैरव पर्यन्त ज्ञातव्य है।)

॥ पूर्वाम्नाय देवता ॥

श्रीविद्याभेदसहित, बाला, त्रिपुरा, भगमाला, नित्यक्लिन्ना, स्वयंवरा, मधुमती, उन्मनी, भेडा, शारिका, सुरसुन्दरी, अश्वारूढा, महामाया, कुरुकुल्ला, सुरेश्वरी, अन्नपूर्णा— ये पूर्वाम्नाय की देवता हैं।

॥ दक्षिणाम्ना देवता ॥

बगला, वशिनी के भेद, त्वरिता, फलदा, भेदसहित वाराही, भोगिनी भेदसहित, कामेश्वरी, भेरुण्डा, वज्रेशी, वह्निवासिनी, शिवदूती, विचित्रा, विजया, सर्वमङ्गला, महिषमर्दिनी, महालक्ष्मी। ये दक्षिणाम्नाय की देवता हैं।

॥ पश्चिमाम्नाय देवता ॥

महासरस्वती देवी, वाग्वादिनी, नीलपताका, भेदसहित, भैरवी, चामुण्डा, रक्तचामुण्डा, ब्राह्मी आदि दश देवता प्रत्यङ्गिरा, भवानी ये पश्चिमाम्नाय की देवता है।

॥ उत्तराम्नाय देवता ॥

कालिका भेदसहित, तारा भेदसहित, मातङ्गी, भैरवी, छिन्ना (छिन्नमस्ता) तथा धूमावती— ये उत्तराम्नाय की देवता हैं। ये शीघ्र फल देने वाली हैं।

नाग शक्त्यादि विद्यायें अधराम्नाय के देवता हैं। उनके तत्-तत् भेदों को जानकर गुरुक्रम से उपासना करनी चाहिए।

॥ गुरुमण्डल पूजन ॥ (कालीमत)

काली शक्तिमत में प्रोक्त पर्वों पर आदरपूर्वक भूमि पर गुरुमण्डल का निर्माण करके गुरुसन्तति का सम्प्रदायसिद्धि के लिए परमभक्ति से पूजन करना चाहिए। सम्प्रदाय रहित देवता फल नहीं देते हैं। सम्प्रदाय का ज्ञान न करके मोह या अज्ञान से उपासना करने पर फल की प्राप्ति नहीं होती है।

सम्प्रदाय जानकर प्रयत्नपूर्वक जो देवता का अर्चन, तर्पण, होम आदि विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है। उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अन्यथा साधना अभिचार में परिणत हो जाती है।

॥ गुरुमण्डलचक्र ॥

सर्वप्रथम गणपति चक्र का निर्माण करे, तदनन्तर उसके बाहर भैरव चक्र का निर्माण, उसके बाहर बटुकचक्र, उसके बाहर सिद्धचक्र, चरण चक्र उसके ऊपर उसके बाहर तदनन्तर शाम्भव उसके ऊपर मालिनीचक्र— ये सात चक्र हुए।

सर्वप्रथम त्रिकोण बनाकर उसके बाहर त्र्यस्र (त्रिकोण) बनावे, उसके बाहर त्रिकोण, उसके बाहर नवकोण, उसके अनन्तर अष्टदल, त्रिवलय का निर्माण करे। पुन: बाहर में चतुरस्र बनाकर पूजन करना चाहिए।

मन्त्रोद्धार— प्रणव, वाग्भव, मायाबीज, श्रीबीज, खेचरी, प्रासादबीज, पराप्रासादबीज। ''संवर्तश्च महाकालशक्राम्ब्वग्निसमीरणान्।' यह खेचरी मन्त्र के बाद 'हसक्षमलवरयूं' का उद्धार है। (ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्खफ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि।) इस मन्त्र का उद्धार होता है।

इस गुरुपादुका मन्त्र के मध्य में गुरु का अर्चन करे। इसी मन्त्र में पराप्रासादबीज लगाकर गुरु के स्थान पर उनकी पत्नी का नाम जोड़कर (अमुक देव्यम्बा) ''श्रीपादुकां पूजयामि नम:''। इससे गुरु के वाम भाग में उनकी सुन्दरी (पत्नी) का अर्चन करे और स्वाग्र नवकोण में श्रीनाथादि गुरुत्रय का यजन करे। चक्रनाथ के पार्श्वभाग में चक्राधिष्ठातृ देवता का अर्चन करे, पुन: गणपति का पूजन करके द्वितीय आवरण का यजन प्रारम्भ करे।

प्रथम कामरूपपीठ तदनन्तर जालन्धर पीठ, तृतीय पूर्णागिरि पीठ का अर्चन करे। इस प्रकार नवकोण में इनका अर्चन करे। मध्य में उड्डियाणपीठ का अर्चन करे। पुन: भैरव मन्त्र से भैरव का अर्चन करे। यह द्वितीय चक्र-अधिष्ठाता हैं, अत: कामगिरिपीठ के दक्षिण भाग में अर्चन करे। वटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल— इनके मन्त्रों से अपने आगे त्र्यस्र में पूजन करके आदिपीठ (कामगिरिपीठ) का अर्चन करे।

आद्य के दक्षिण भाग में बटुक और चक्रनायक, फिर नवकोण में अपने अग्र भाग से प्रदक्षिण क्रम से विद्यावतार गुरुओं का, सिद्धि के लिए अर्चन करना चाहिए।

आद्य के दक्षिण भाग में 'सिद्धेभ्यो नम:' ये उच्चारण करके सिद्धों का अर्चन करके चक्राधिष्ठान सिद्धि का अर्चन करे। फिर अष्टदल में अपने अग्र भाग से आठ दूतियों का अर्चन करे। आद्या के दक्षभाग में रक्तशुक्ल चरण का उन-उन मन्त्रों से त्रिवलय में अर्चन करे। तदनन्तर सिद्धि के लिए पंक्त्याकारक्रम वामावर्त से ५७६ वीर मण्डल का अर्चन करे, प्रागुक्त छ: बीज और दो बार आदि वर्ण का उच्चारण करके वीरेश 'पादुकां पूजयामि'। इस प्रकार समस्त वीरेश मण्डल का अर्चन करे। प्रथम मण्डल में षोडश स्वर, द्वितीय वृत्त में स्पर्श वर्ण (क से म तक) का अर्चन करे। तृतीय में अवशिष्ट वर्णों का एवं मध्यवृत्त में स्वाग्रभाग में प्रयत्नपूर्वक शाम्भव का उनके मन्त्र से भक्तिपूर्वक अर्चन करे। सातवें मालिनी चक्र में चतुरस्रत्रय के आदि रेखा में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का अर्चन करे। पुन: द्वितीय रेखा में पाँच

भाग.करके पञ्चमहाभूतों का तत्-तत् मन्त्र से अर्चन करे।

उन-उन २४ वर्ण देवताओं की आवृति से तृतीय रेखा में लोकपाल एवं उनके अस्त्रों का अर्चन करे। अपने अग्रभाग में विश्वविग्रह मालिनी का उसकी विद्या से अर्चन करे, बाहर में पीठिका का अर्चन करे। इस प्रकार पूजा करने वाले साधक पर भगवती प्रसन्न हो जाती हैं। इस का सम्प्रदायानुसार गुरु से ज्ञान करे।

समतिथि, समनक्षत्र में शुक्रवार या भौमवार के योग से रात्रि में सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक गुरुमण्डल का अर्चन करे। जो कुलपर्वों पर गुरुमण्डल का भक्तिपूर्वक अर्चन करता है, वह गुरुओं में श्रेष्ठ गुरु होता है। उसकी दी हुई दीक्षा उत्तम मानी जाती है। सम्प्रदायी साधक देवीस्वरूप सिद्धि गुरु माने जाते हैं। अतः सम्प्रदाययुक्त सिद्धगुरु से दीक्षा शुभ होती है, अन्यथा निष्फल होती है। शास्त्र में यहाँ तक लिखा गया है कि सम्प्रदायविहीन गुरु शिष्य के नाश का कारण बन जाता है। इसलिए कुलतिथियों में सिद्धगुरुओं को गुरुमण्डल अर्चन करना चाहिए।

अष्टदूती– सुन्दरी, सुमुखी, विरूपा, विमला, अन्तरी, बदरी, दूतरी, पुष्पभद्रिका इन आठ दूतियों का गुरुमण्डल में पूजन करना चाहिए। जो महाविद्या उपास्य है, उनकी जो पीठ शक्तियाँ हैं, गुरुमण्डल में भी वही पीठशक्तियाँ पूजित होती हैं। श्लोक संख्या ३५८ और ३५९ में मालिनी विद्या का उद्धार किया गया है। इसका गुरु से ही ज्ञान होता है।

पूर्वोक्त गुरुविद्या में ६ बीज और अन्त में वही बीज विलोम से लिखने से शाम्भव विद्या बन जाती है। इस प्रकार इस मन्त्रजाल को वक्ष्यमाण अर्थात् कहे जाने वाले मार्ग से जानना चाहिए।

।। गुरुमण्डल पूजन।। (कादिमत)

सेमल (श्रीपर्णी) से निर्मित किये हुए पीठ पर या काष्ठफलक पर अथवा समतल स्थल पर, यदि स्थल पर किया जाय तो वह समतल होना चाहिए जिससे यन्त्र शुद्ध, दृढ़ एवं मनोहर बने। उसके ऊपर, पूर्व, पश्चिम दश रेखा बनाये। उसके ऊपर दक्षिण-उत्तर की ओर दश रेखाएँ बनायें। इस प्रकार ८१ मण्डल बनेगा। सभी रेखाएँ समान होनी चाहिए तथा पाँच-पाँच अङ्गुल के अन्तर पर होनी चाहिए।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दो-दो पंक्ति करने से नौ कोष्ठ बन जाते हैं। मध्य नौ कोष्ठों में मध्य से, पूरब से लेकर प्रति कोष्ठ में नौ-नौ वर्ण लिखना चाहिए। मायाबीज, रमाबीज लगा करके प्रकाशानन्दनाथ का ध्यान करके एक कोष्ठ में नौ अक्षर लिखें। इस प्रकार द्वितीय कोष्ठ में द्वितीय नाथ का ध्यान करके नौ अक्षर लिखें। इस प्रकार नौ कोष्ठों में नव नाथ का ध्यान करते हुए प्रदिक्षण क्रम से लिखें। इस प्रकार यह नवनाथों के नवमण्डल सम्पन्न हुए। एवंविध वर्णविन्यास से सम्पन्न मण्डल में पूजा करनी चाहिए।

जिस दिन पूजा आरम्भ हो उस दिन जो नाथवासर हो उसी से पूजा प्रारम्भ करे। (यह तान्त्रिक

पञ्चाङ्ग से स्पष्ट होता है।) इस प्रकार आरम्भ करके साधक को उस दिन में नवकोष्ठों में क्रम से— गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, नमस्कार, स्तोत्र, समाहित हो करके ऐक्य भाव से नवनाथों को सन्तुष्ट करके मध्य नाथ के अग्रभाग में स्वगुरु का अर्चन करे। इस प्रकार नामादिक्रम से साधक को नवनाथों के अग्रभाग में अर्चन करना चाहिए।

उसके बाहर साधक पंक्तिक्रम से शिवादि गुरुमण्डल का प्रदक्षिणक्रम से भक्तिभावपूर्वक यजन करे। इस प्रकार गुरुपर्वों पर रात्रि में सावधान होकर यजन करना चाहिए तथा 'पादुकां पूजयामि' उच्चारण करके सुसमाहित हो करके पूजन करें। इस प्रकार पूर्णापर्वों में सोलह कोष्ठ बना करके सोलह वर्ण लिखें। पूर्ववत् पूजन सम्पन्न करें। गुरु सशरीर होने पर प्रोक्त प्रकार से पूजन करना चाहिए। शरीर त्याग के बाद 'नाथपद' की जगह 'शिवपद' लगाना चाहिए। विधिपूर्वक प्रतिदिन या विशेष दिनों में पूजन करना चाहिए।

इस प्रकार जो गुरुमण्डल का पूजन करता है। उससे दीक्षा लेनी शुभ होती है। पूर्णाभिषिक्त साधकों को चरणकमल विन्यास करके पूजा करनी चाहिए। पूर्णापर्व से अतिरिक्त यह पूजा करनी चाहिए।

पूर्ववत् पूर्णापर्वों में षोडशी चक्र में पूजन करना चाहिए। कर्पूर, चन्दन, केशर, उशीर, कस्तूरी इन द्रव्यों से पञ्चगन्ध बना करके गुरुमण्डल का निर्माण करें। पूजा करने के पश्चात् उस मण्डल के लिखे गये पञ्चगंध के पङ्क को भक्तिभावपूर्वक अपने ललाट में लेपन करना चाहिए। इसके लेपन करने से सम्पत्ति, विजय, सिद्धि, आयु, आरोग्य प्राप्त होते हैं। पूजा के प्रारम्भ में और पूजा के अन्त में गुरुस्तोत्र का पारायण करना चाहिए।

इस प्रकार त्रिकाल सन्ध्या में एवं सिद्धि के लिए रात्रि में भी गुरुस्तोत्र का पाठ करना चाहिए "नमस्ते नाभ भगवन्......." श्लोक संख्या ३८३ से ३८७ तक इसका वर्णन है। विद्यासिद्धि के लिए गुरुस्तोत्र का पारायण करना आवश्यक है।

श्रीचक्र में शक्त्यन्त, और गुरुमण्डल में नाथान्त, गुरु के शरीरत्याग के बाद 'नाथ' की जगह 'शिवपद' का प्रयोग करे। इस प्रकार शक्ति, नाथ और शिव यह गुरु की तीन प्रकार की स्थिति होती है। इसी को गुरुमण्डल कहते है, यही गुरुपरम्परा है। परम्परा ज्ञान करने से सम्प्रदाय स्थिर होता है, सम्प्रदाय स्थिर होने पर विद्या सम्प्रदायवती होती है। इससे देवता, विद्या, मन्त्र तत्क्षण सिद्धि होती है। पुरश्चरण काल में गुरुमण्डल का नित्य यजन करना चाहिए। सम्प्रदाय और मन्त्रवीर्य इन दोनों का ज्ञान जिसको नहीं होता है, वह साधक किस प्रकार हो सकता है। प्रथम नित्य, नैमित्तिक कर्म करे इसके बाद काम्य, प्राप्त काल में तीनों कर्मों को पर्याय से करे। यत्नपूर्वक गुरुमुख से अपनी गुरुपरम्परा का ज्ञान करके अपने शिष्यों को भी ज्ञान करा देना चाहिए। (गुरु, देवता, आत्मा और मन्त्र की ऐक्य भावना करनी चाहिए।) (यह आगे स्पष्ट होगा)। गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला शिष्य श्रेष्ठ, उत्तम कहा जाता है।

॥ गुरुमण्डल पूजापर्व॥ (तन्त्रराज तन्त्र)

गुरु का जन्मदिन, विद्याप्राप्ति (दीक्षा दिन), अपने जन्म के दिन, गुरु के शरीरत्याग के दिन, अक्षरत्रय सम्पात दिन— (ये तान्त्रिक पञ्चाङ्ग में वर्ष, मास और तत्त्वदिन में एकाक्षर होने से यह पर्व बनता है।) पूर्णिमा और अमावस्या के दिन, ये सात पर्व होते हैं। ये गुरुमण्डल पूजन के पर्व हैं। एक मास में या एक वर्ष में इन-इन पर्वों पर गुरुमण्डल का अर्चन करना चाहिए।

श्रीगुरुलक्षण— सुन्दर, सुमुख, स्वच्छ, सुलभ, अनेक मन्त्रों का ज्ञाता, संशयरहित, शिष्य के संशय का छेदन करने वाला, निरपेक्ष (किसी से कुछ भी न चाहने वाला) ये गुरु के लक्षण हैं। अनवद्य-सौन्दर्य, सौमुख्य, स्मेरपूर्वक (ईषत् हास्यपूर्वक) वार्तालाप करने वाला, निर्मल, कपटरहित चित्तवाला, सुलभ, अभिमानरहित, सन्तुष्ट, बहुत तन्त्रों को जानने वाला, तत्त्वबोध में असंशय, सत् शिष्य को रहस्य प्रतिपादन करने वाला, निरपेक्ष, धनप्राप्ति में इच्छारहित, हित की बात करने वाला, इन्हीं लक्षणों से युक्त सद्गुरु होता है। इन लक्षणों से रहित गुरु शिष्य को दुःख देने वाला होता है।

सत्-शिष्य के लक्षण— पूर्व में जो चार लक्षण कहे गये हैं— सुन्दर, सुमुख, स्वच्छ, सुलभ एवं श्रद्धावान्, विचारों में स्थिरता, लोभरहित, स्थिरगात्र (स्वस्थ), प्रेक्षाकारी (गुरु के संकेत मात्र से ही आज्ञा का पालन करने वाला), जितेन्द्रिय, आस्तिक, गुरु, मन्त्र, देवता में स्थिर बुद्धि- इस प्रकार का शिष्य होना चाहिए। जो इसके विपरीत होता है। वह गुरु के लिए दुःखकारी होता है। गुरु के कहने पर सदा उसको नम्रभाव से स्वीकृत करने वाला, नम्रभाव- 'हे नाथ, दे देव आप प्रसन्न हों', आदरपूर्वक उनकी आज्ञा को स्वीकार करे, प्रणामपूर्वक उनके पास बैठे, गुरु आज्ञा दे, तब जाय, गुरुमुखावलोकी हो, आदरपूर्वक उनका इच्छित कार्य करता रहे, गुरु के सामने कभी असत्य न बोले, बहुत प्रलाप न करे, काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, प्रहसन (हास्य की बात), चाञ्चल्य, परिदेवन (रोते हुए बोलना) गुरु से ऋण लेना या देना दोनों निषेध है, वस्तुओं का क्रय-विक्रय, ये सब गुरु के साथ नहीं करना चाहिए। जो विद्या में विशिष्टता चाहने वाला है, उसे उपरोक्त कार्यों को गुरु के साथ कभी नहीं करना चाहिए। गुरु को साक्षात् शिवरूप माने एवं नमन पूर्वक उनकी सेवा करे।

॥ यथा देवे तथा गुरौ ॥

जैसी देवता में बुद्धि हो, उसी प्रकार मन्त्र में भी, जैसी मन्त्र में हो, उसी प्रकार गुरु में भी और जैसी गुरु में बुद्धि हो, उसी प्रकार आत्मा में भी, यही भक्तिक्रम है। गुरु के जन्मदिन समारोहपूर्वक उत्सव करना चाहिए, योगियों का विशेष पूजन पादार्चन एवं उन्हें भोजन करावें। गुरु ने यदि शरीर छोड़ दिया हो या कहीं दूर चला गया हो, तो उसके अग्रज, पुत्र या जेष्ठ शिष्य का अर्चन करना चाहिए। यदि एक देश में एक जगह रहे तो नित्य पूजन तथा दर्शन करना चाहिए। दूर हो तो दूरी के अनुसार दर्शन करना

चाहिए। एक ऋतु में एक बार या वर्ष में एक बार। छः योजन अर्थात् ४८ मील या ८० किलोमीटर की दूरी पर हो, तो एक ऋतु या एक वर्ष में दर्शन अवश्य करे। यदि इससे भी दूर हो, तो उनकी आज्ञा का पालन करते हुए अपनी साधना करता रहे। पूर्व में भी यह कहा जा चुका है।

आसन, शयन, वस्त्र, भूषण, पादुका, छाया, कलत्र (पत्नी) और जिन वस्तुओं का उन्होंने स्पर्श किया है, उसको पूज्य दृष्टि से देखे। एक देश में रहते हुए उनकी आज्ञा के बिना पृथक् पूजा न करे।

पूजा करने के समय पर यदि गुरु आ जायें, तो उठकर प्रणाम करे। यदि वे आज्ञा दें, तो शेष पूजा को निश्चल मन से समाप्त करे। पूजा के मध्य में या अन्त में गुरु आ जाय, तो यही कहे— सब सम्पन्न हो गया। गुरु के सामने कभी मौन न हो। गुरु में कभी मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिए। यदि कभी करता है, तो देवतापूजन और मन्त्रों से कभी सिद्धि नहीं होती है। गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र की नियमपूर्वक उपासना, पूजा करनी चाहिए। भक्तिपरायण हो करके उस पूजापटल में कहे गये क्रम का भक्तिपूर्वक सम्यक् ज्ञान करके साधना करे। कादिमत में गुरुशिष्य परम्परा लक्षण श्लोक संख्या १३ से २५ तक वर्णित है।

॥ कालीमत में गुरु-शिष्य लक्षण॥ (कुलार्णव)

शुद्धदेवता, मनोहर, सब लक्षणों से युक्त, सावयवसुशोभित, सब आगमों के तत्त्वज्ञ, समस्त मन्त्रों के विधान-वेत्ता, लोकसम्मोहनकारी, देवता की तरह, प्रियदर्शन, सुमुख, सुलभ, स्वच्छ, शुद्धान्तःकरण, संशयरहित, इङ्गिताकार से ही चेष्टा को जानने वाला, अन्तर्मुख, बहिर्दृष्टि, सर्वज्ञ, देशकाल के तत्त्व को जानने वाला, आज्ञासिद्ध, त्रिकालज्ञ, निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ, वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत, शान्तस्वरूप, सब जीवों पर दया करने वाला, इन्द्रियसंचार के स्वाधीन काम, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओं पर विजय की सामर्थ्य वाला, अति गम्भीर, पात्र-अपात्र को विशेष प्रकार से जानने वाला, ममतारहित, नित्य संतुष्ट, निर्द्वन्द्व, अनन्तशक्तिमान्, भक्तवत्सल, धीर, कृपालु, स्मितपूर्वक भाषण करने वाला, भक्तप्रिय, सबमें समान भाव रखने वाला, दयालु, शिष्यों पर शासन करने की क्षमता वाला, श्रेष्ठ, निष्ठ, प्राज्ञ, स्त्रीपूजन में उत्सुक, नित्य-नैमित्तिक काम्य कर्मों में निरत, अनिन्दित कर्म करने वाला, अलोलुप, अहिंसक, पक्षपात में विचक्षण, वित्त-विद्याओं से परिपूर्ण, मन्त्रयन्त्रादिकों में पारङ्गत, संकल्प-विकल्प रहित, निर्णीत (निश्चित) कार्य को करने वाला, निन्दास्तुति में समान मननशील, किसी की अपेक्षा नहीं करने वाला, नियामक इत्यादि लक्षणों से युक्त ही सद्गुरु होता है।

सत्-शिष्य लक्षण— शिष्य सर्वलक्षण सम्पन्न हो, शमदमादि साधनों से युक्त, एवं शीलगुण युक्त, शुद्धदेह, दृढ-अङ्गवाला, धार्मिक, शुद्धमन, दृढ़व्रत, सदाचारयुक्त, श्रद्धाभक्तियुक्त, कृतज्ञ, पाप से डरने वाला, साधु और सज्जनों से सम्मत आस्तिक, दानशील, समस्त प्राणियों का हित चाहने वाला, विश्वास एवं विनय से युक्त, कृपणता से रहित, असाध्य को भी साध्य करने की क्षमता वाला, बलवान्,

कान्तिमान्, अनुकूल, क्रिया में तत्पर, अप्रमत्त, विचक्षण, हित, मित, सत्य एवं मधुर भाषण करने वाला, दोषरहित, एक बार बताने से ही अर्थ को ग्रहण करने वाला, चतुर, बुद्धिमान्, गृह-तल्प-आसन का अनुल्लंघी निर्विकार, असेवक (नौकरी नहीं करने वाला) विचार करके कार्य करने वाला, वीर, मनोदारिद्र्य से रहित, सब कार्यों में अतिकुशल, धीर, सबका उपकार करने वाला, स्वार्थ एवं निन्दा से विमुख, सुमुख, जितेन्द्रिय, सन्तुष्ट, बुद्धिमान्, ब्रह्मचारी, आधि-व्याधि चपलता से रहित, दूषित शंकाओं से रहित, गुरु के ध्यान-स्थिति-सेवा-भजन में उत्सुक रहने वाला, गुरु और देवता का भक्त, स्त्रियों की सेवा करने में उत्सुक, नित्य गुरु के समीप में रहने वाला, गुरु को सन्तुष्ट करने वाला, मन-वाणी और कर्म से गुरु के कार्य में समाहित हरने वाला, गुरु आज्ञापालक, गुरु की कीर्ति का प्रकाश करने वाला, गुरु-वाक्य को ही प्रमाण मानने वाला, गुरु-शुश्रूषा में तत्पर, चित्तानुवर्ती, विचार करके कार्य करने वाला, गुरु-सन्निधि में लज्जा, अभिमान, गर्व आदि से रहित, गुरुद्रव्य में इच्छा नहीं करने वाला, गुरु की प्रसन्नता ही एकमात्र चाहने वाला, कुल-धर्म तथा योगी-योगिनी और कौलिकों का प्रिय, कुलार्चनादि (कुलपूजन) में निरत, मोक्षमार्ग का अनुगामी इत्यादि लक्षणों से युक्त शिष्य को गुरु ग्रहण करे। इति।

॥ असत्-शिष्य लक्षण कुलार्णव॥ (तन्त्र)

दुष्टवंश में उत्पन्न, दुर्जन, गुणहीन, कुरूप, परशिष्य, पाखण्डी, धूर्त, पण्डितमानी, हीन, अधिक विकारयुक्त अङ्गों वाला, विकल अवयव वाला, पङ्गु, अन्धा, बहरा, मलिन, व्याधि से पीड़ित, उच्छिष्ट, दुर्मुख, स्वेच्छा से वेष बनाने वाला, वेश्या-गमन करने वाला, अचतुर, कुचेष्टा करने वाला, कुटिल, भयानक दृष्टिवाला, निद्रा आलस्य से युक्त, तन्द्रा, जूआ आदि व्यसनों से युक्त, कपाट, दीवाल, स्तम्भ आदि से सदा अपने शरीर को छुपाने वाला, शून्य हाथ से गुरु के पास जाने वाला, क्षुद्र, गुरुभक्ति से रहित, सदा तर्क करने वाला, स्तब्ध, प्रेषक, चपल, शठ, धन और स्त्रीशुद्धि से रहित, निषिद्ध कर्म करने वाला, रहस्य-भेदन करने वाला, देवी के कार्य और अर्थ का घातक, मार्जार (बिल्ली), बक (बगुला), वृत्ति वाला, छिद्रान्वेषण में तत्पर, मायावी, कृतघ्न, प्रच्छन्न कार्य को प्रकट करने वाला, विश्वासघातक, देवद्रोही, पाप करने वाला, अविश्वासी, दूषित अङ्ग वाला, अनर्थ-सिद्धि को चाहने वाला, आततायियों को शरण देने वाला, कुत्सित, झूठी गवाही देने वाला, सर्वत्र याचना करने वाला, सर्वोत्कृष्ट अभिमान वाला, असत्य बोलने वाला, ग्राम्यादि बहुभाषण करने वाला, दुर्विचार, कुतर्क करने वाला, कलहप्रिय (सदा झगड़ा करने वाला), दूसरों पर व्यर्थ आक्षेप करने वाला भ्रामक, भ्रमित करने वाला, वाग् विडम्बना से युक्त, परोक्ष में निन्दा करने वाला, प्रत्यक्ष में प्रियवादी, वाचाल, रूक्षवादी (कर्कश बोलने वाला), विद्याचौर, आत्मप्रशंसक, दूसरे गुणों को सहन नहीं करने वाला, सज्जनों से डरने वाला, दुःख और क्रोध से युक्त, चार्वाक, दुर्जनों का मित्र, सम्पूर्ण लोकनिन्दक, चुगलखोर, दूसरे को दुःख देने वाला, सभी

प्राणियों को भयभीत करने वाला, अपने दुःख का रोना रोने वाला। मित्रद्रोही, भ्रातृवञ्चक, जिह्वा और उपस्थ में परायण, तस्कर, पशु चेष्टा करने वाला, अकारण ही द्वेष, हास्य, क्लेश, क्रोधादि करने वाला, अतिहास्य, अशुभ कर्म करने वाला, मर्मान्तक हास्य करने वाला, कामुक, निर्लज्ज, व्यर्थ ही विचेष्टा को सूचित करने वाला, असूया, निन्दा, मद, मात्सर्य, दम्भ, अहङ्कार से युक्त, ईर्ष्या, चुगलखोरी, कठोरता, कृपणता, क्रोध करने वाला, अधीर, दुःखित, द्वेष करने वाला, तत्त्वरहित, मूढ, चिन्ता से व्याकुल मन वाला, तृष्णा-लोभयुक्त, सबकी याचना करने वाला, बहुत खाने वाला, कपटी, भ्रामक, कुटिल, भक्ति, श्रद्धा, दया, शान्ति और धर्माचार से रहित माता-पिता, गुरु, विद्वान्, महान् पुरुषों का हास्य करने वाला, कुलद्रव्यों का भोग करने वाला, गुरुसेवा में अभिमान करने वाला, स्त्री से वैर करने वाला, समयभ्रष्ट, गुरु से शापित इत्यादि दुर्गुणों से युक्त शिष्य का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

जो इस प्रकार के शिष्य को स्नेह से, लोभ से ग्रहण करता है, दीक्षित करता है, शिष्य सहित वह गुरु देवता से अभिशप्त होता है। अतः इस प्रकार के कुशिष्य को कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि मोह से ग्रहण करता है, तो शिष्य के पाप से गुरु लिप्त हो जाता है। जैसे मन्त्री के द्वारा किये गये पाप से राजा और पत्नी के पाप से पति लिप्त होता है। उसी प्रकार शिष्य के द्वारा किये पाप से गुरु भी लिप्त होता है। साधक के आचार और अनाचार गुरु को तीन बार शिष्य को ज्ञात करा देना चाहिए। यदि वह ग्रहण नहीं करता है, तो शिष्य के पाप से गुरु लिप्त नहीं होता है।

॥ गुरुपादुका-मन्त्र-माहात्म्य ॥

श्रीगुरुपादुका मन्त्र में सभी विद्याएँ सम्बलित हैं। जैसे मत्स्य पकड़ने वाले जाल के मूल वलय में सभी सूत्र पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार गुरुपादुका मन्त्र में सभी मन्त्र एवं समस्त विद्याएँ ओत-प्रोत हैं। कुलागम का ज्ञान भी पादुका में प्रतिष्ठित है।

कोटि-कोटि महादानों से, कोटि-कोटि महाव्रतों से, कोटि-कोटि महायज्ञों से जो फल होता है, वह गुरुपादुका के स्मरण मात्र से प्राप्त हो जाता है। कोटि मन्त्र जप से और करोड़ो-करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से और कोटि-कोटि देवार्चन करने से भी गुरुपादुका स्मरण करना उत्तम है। महाव्याधि से ग्रस्त हो जाय, महा-उत्पात होने लगे, महादुःख, महाभय, महा-आपत्ति, महापाप में गुरुपादुका रक्षा करती है। उस व्यक्ति की, समस्त शास्त्रों का अध्ययन, श्रवण, ज्ञान और दान, इष्ट की पूजा सम्पन्न हो जाती है, जिस व्यक्ति के जिह्वाग्र पर सदा पादुका प्रतिष्ठित रहती है। भगवान् शिव भगवती से कह रहे हैं कि हे देवि! भक्तिपूर्वक एक बार भी जो गुरुपादुका का स्मरण करता है, वह सब पापों से रहित होकर परमगति को प्राप्त होता है। पवित्र या अपवित्र होता हुआ भी भक्ति से जो गुरुपादुका का स्मरण करता है, उसके विना प्रयास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं।

श्रीगुरु जिस दिशा में विराजमान हों, उस दिशा में भक्तिपूर्वक प्रतिदिन नमस्कार करना चाहिए। श्रीगुरुपादुका मन्त्र से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है और गुरु से श्रेष्ठ कोई देव भी नहीं। शक्तिमार्ग से उत्कृष्ट कोई मार्ग नहीं और कुलपूजन से से उत्तम कोई पूजा नहीं। सब ध्यानों का मूल गुरुमूर्ति है और सब पूजाओं का मूल, गुरुचरण का पूजन है। सब शास्त्रों का मूल गुरुवाक्य, मोक्ष का मूल गुरुकृपा है। इस लोक में जितनी भी क्रियाएँ हैं, उनके मूल में गुरु हैं। अतः सिद्धि चाहने वाले को भक्तिभावपूर्वक गुरु की सेवा करनी चाहिए। शोक, मोह, भ्रम, दुःख, पीड़ा तभी तक होती है, जब तक साधक भक्तिपूर्वक गुरु की पादसेवा नहीं करता है। संसार में अनेक दुःखों से दुःखित होकर प्राणी तब तक भ्रमण करता है, जब तक शिवरूप श्रीगुरु की भक्तिपूर्वक सेवा नहीं करता।

सर्वसिद्धि रूपी फलों से युक्त महाशाखा वाले अतिसुन्दर तत्त्वरूपी महावृक्ष का गुरु ही मूल है। जिस प्रकार सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर गुरु मन्त्रदीक्षा देता है, उसी प्रकार भक्ति से, धन से, प्राण से यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर गुरु मन्त्रदीक्षा देता है, उसी प्रकार भक्ति से, धन से, प्राण से यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिए। गुरु मन्त्र देकर अपने सम्प्रदाय का निरूपण कर देता है, उसी क्षण शिष्य मुक्त हो जाता है। फिर उसका जन्म-मरण नहीं होता है। गुरु की सेवा तब तक करनी चाहिए, जब तक गुरु प्रसन्न न हो जाय। गुरु के प्रसन्न होने पर शिष्य के पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। उत्तम भक्त मन से भी सम्मान, जीविका नहीं चाहते हैं, भक्तवत्सल स्वामी स्वयं सब कुछ सम्पादन कर देते हैं। विष्णु, महेश आदि देवता, मुनि और योगी उस पर अनुग्रह करते हैं। भक्ति से सन्तुष्ट होकरके कृपालु श्रीगुरु ने जो उपदेश दिया है और यह कहा कि तुम मुक्त हो (गुरु दीक्षा के समय में सम्प्रदाय का ज्ञान देते हुए यह कहते हैं। कि तुम मुक्त हो, शिव हो) तब शिष्य मुक्ति-भुक्ति का पात्र हो जाता है। जब गुरु प्रसन्न हो जाय, तभी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। तब तक मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु का प्रिय करना चाहिए। जब गुरु प्रसन्न हो करके 'त्वं मुक्तोऽसि'- तुम मुक्त हो ऐसा कह देता है, तो शिष्य मुक्त हो जाता है।

॥ गुरुभक्ति से मुक्तिभाव ॥

भगवान् शङ्कर भगवती से कह रहे हैं कि— निष्प्रपञ्च धाम में रहने वाला मैं गुरुरूप से पशुपाश से मुक्त करता हूँ। चारों वेदों को पढ़ा हुआ विद्वान् भी मेरा प्रिय नहीं है। चाण्डाल मेरा भक्त है, तो उससे ही अदान-प्रदान करना चाहिए। जैसे मैं पूज्य हूँ, वैसे ही वह पूज्य है। भक्तिरहित षड्गुणों से सम्पन्न विप्र की विशेषता नहीं है। गुणहीन भक्तिमान्, म्लेच्छ उससे विशिष्ट है। गुरुभक्ति हीन की तप, विद्या, व्रत, कुल सब निष्फल होते हैं, केवल लोकरञ्जन के लिए है। गुरुभक्ति रूपी अग्नि से दुर्जाति रूप कल्मष दग्ध हो जाता है। अतः म्लेच्छ भी देवताओं का पूज्य है और नास्तिक, विद्वान् भी पूज्य नहीं होता। धर्म-अर्थ-काम से क्या, जिसके हाथ में मोक्ष है। सब प्रकार से गुरु में भक्ति स्थिर होने पर शिष्य में मुक्ति भाव स्थिर हो जाता है। इति शिवम्।

॥ तेन श्रीगुरुः प्रसीदताम् ॥

दीप्तानलार्कद्युतिभिः प्रदीप्यते दिव्यौघपङ्क्तिस्मरणेन साधकः।
सिद्धौघविज्ञं ह्यणिमादिसिद्धयः वृण्वन्ति ताः साधकपुङ्गवं मुदा॥ १॥

अटन्ति नूनं भुवि मानवौघाः स्वयं समागत्य रहस्यवित्तमाः।
श्रीसाधनापूर्णतरान्तरङ्गा दिशन्ति मार्गं शिवसाधनायाः ॥ २॥

पूर्वं गुरूणां परमां परम्परां संस्मृत्य सिद्धिं समुपैति साधकः।
नितान्तवेद्यं गुरुवंशवृक्षं नान्यो हि पन्था शिवशासनं तत्॥ ३॥

विशेष– जिस प्रकार वेदों की विविध शाखाएँ हैं, उसी प्रकार तन्त्रशास्त्रों में भी गुरु परम्परा परिलक्षित होती है। इस विषय में अनुसंधान अपेक्षित है।

॥ अनन्तानन्दनाथ शिष्य-उमानन्दनाथ-शिष्यषोडशानन्दनाथ-शिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित प्रथम श्वास की भावविवृति सम्पूर्ण हुई ॥ १॥



श्रीविद्यार्णवतन्त्र

द्वितीय श्वास

भावविवृति

।। शिष्य-आचार-संहिता ।।

श्रीगुरु शिवरूप हैं, भोग एवं मोक्ष देने वाले हैं, इस प्रकार भक्ति से जो स्मरण करता है, उसको शीघ्र सिद्धि होती है।। १।।

जिसकी देवता में परा भक्ति है, वैसी ही गुरु में भक्ति है, तो उसके लिए यह सब प्रकाशित किया जाता है।२।।

नारायण, महादेव, माता-पिता एवं राजा में जैसी भक्ति है, उसी प्रकार स्वगुरु में भी भक्ति होनी चाहिए।३।।

लक्ष्मी-नारायण, सरस्वती-ब्रह्मा, शिव-पार्वती एवं माता-पिता में जिस प्रकार भावना होती है, उसी प्रकार गुरु एवं उनकी पत्नी में भी भावना करनी चाहिए।। ४।।

गुरुभक्ति से जिस प्रकार सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि करने से भी उस प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होती हैं।। ५।।

श्रीगुरु में जैसे-जैसे निश्चल भक्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे शिष्य में ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि होती है।६।।

महाक्लेश से तीर्थयात्रा एवं शरीरशोषण करने वाले व्रतों की अपेक्षा कपटरहित गुरु की सेवा करने मात्र से समस्त पुण्यफलों की प्राप्ति हो जाती है।। ७-८।।

भोग, मोक्ष एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पद चाहने वालों के लिए एकमात्र गुरुभक्ति ही समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली है। इसके लिए दूसरा मार्ग नहीं है। यह वेदवाक्य है।। ९।।

जितने अशुभ कर्म एवं महापाप हैं, वे गुरुभक्ति से क्षण मात्र में जल जाते हैं, जैसे अग्नि से रुई जल जाती है।१०।।

उस **दृढ़-विश्वास** को नमस्कार है, जिससे मिट्टी, काष्ठ, पत्थर में भी पुष्प-फल उत्पन्न हो जाते हैं।। ११।।

योग, तप, पूजन आदि कर्मों से भी इस मायारहित कुलमार्ग में एकमात्र भक्ति ही विशेष है।। १२।।

समस्त भुवनों को गुरुमय देखने वालों के लिए वसुधा ही कुटुम्ब है और उनको शीघ्र मन्त्रसिद्धि हो जाती है।१३।।

गुरु में **मनुष्यबुद्धि**, मन्त्र में **अक्षरबुद्धि**, मूर्ति में **पाषाणबुद्धि** करने वालों की नरकयात्रा होती है।१४।।

श्रीगुरु को कदाचित् भी मनुष्य नहीं समझना चाहिए, यदि ऐसा समझता है, तो उसको मन्त्र-जप, देवता-अर्चन से कोई भी लाभ नहीं होता है।। १५।।

जो श्रीगुरु को साधारण मनुष्यों के समान समझता है या कहता है, उसके समस्त पुण्य पातक के रूप में परिणत हो जाते हैं।। १६।।

जन्मदाता माता-पिता पूज्य हैं, परन्तु धर्म-अधर्म का ज्ञान देने वाला गुरु विशेष पूज्य है। गुरु ही माता, पिता, देवता है, गुरु ही एकमात्र गति है। ऐसी भावना करनी चाहिए।। १७।।

शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करता है, परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है।१८।।

वाणी, मन, शरीर एवं कर्मों से गुरु का हित करना चाहिए। यदि अहित करता है तो विष्ठा में कृमि की गति को प्राप्त होता है।। १९।।

शरीर, धन, प्राण से जो गुरु की वञ्चना करते हैं, वे नराधम कृमि, कीट-पतङ्ग योनि में जाते हैं।।२०।।

गुरु के त्याग से मृत्यु होती है और मन्त्र-त्याग से दरिद्रता। गुरु एवं मन्त्र दोनों का त्याग करने वाला नरकगामी होता है।। २१।।

श्रीगुरु के लिए ही देह धारण करना एवं धनार्जन भी गुरु के लिये ही, एवं प्राण-प्रण से गुरु कार्य करना चाहिये।। २२।।

श्रीगुरु के कठोर वचन को भी आशीर्वाद मानना एवं उनके ताड़न को प्रसाद समझना चाहिए।।२३।।

भोग योग्य वस्तुएँ श्रीगुरु को समर्पण करके पुनः अवशेष प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिए।।२५।।

श्रीगुरु के समक्ष तप, उपवास, व्रत, तीर्थयात्रा, आत्मशुद्धि के लिए स्नानादि भी अपेक्षित नहीं है। गुरु के दर्शन-मात्र से समस्त क्रियायें सम्पन्न हो जाती हैं।। २६।।

गुरु का कहीं नियोग न करे, तुम शब्द से सम्बोधित न करे, ऋण का आदान-प्रदान एवं दीयमान वस्तुओं के दान करने की भावना न करे। इसी प्रकार वस्तुओं का क्रय-विक्रय भी वर्जित है। उत्तमपद प्राप्ति की इच्छा वाला शिष्य उपर्युक्त नियमों का पालन करे, नास्तिकों के साथ वाद-विवाद तथा संभाषण भी नहीं करना चाहिए।। २७।।

श्रीगुरु के दर्शन होने के अनन्तर सावधान होकर दूर खड़ा रहे एवं उनके साथ समान आसन पर न बैठे। गुरु के सन्निधि में अन्य की पूजा न करे। ऐसा करने वाला घोर नरक में पड़ता है और उसकी पूजा निष्फल हो जाती है। गुरु-पादुकामन्त्र प्राप्त शिष्य को शिर के ऊपर भार वहन नहीं करना चाहिए।।२८-२९।।

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए, क्योंकि गुरु आज्ञास्वरूप हैं। अन्यत्र सुने हुए मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र आदि गुरु को निवेदन करना चाहिए, गुरु-आज्ञा से ही उनका प्रयोग करना उचित है, अन्यथा अनिष्ट की संभावना रहती है। स्व-शास्त्रोक्त रहस्य को शिष्य के अतिरिक्त किसी को नहीं बताना चाहिए। यदि अशिष्य को रहस्य प्रकट करता है, तो समयाचार से भ्रष्ट हो जाता है।। ३०-३१।।

गुरु से सदा द्वैतभाव होना चाहिए, अद्वैतभाव करना निषिद्ध है। समस्त प्राणियों में आत्मवत् भावना करते हुए उनका हित करना चाहिए। सेवा चार प्रकार की होती है, समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझना, उचित स्थान प्रदान करना, दैहिक योगदान एवं सद्भाव—इन सेवाओं से गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिए। उसे पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। ३२-३४

गुरु, देवता, महात्माओं की शुश्रूषा में तत्पर व्यक्ति के लिए केवल गुरु-शुश्रूषा ही कृपा करने वाली है, वह शुश्रूषा यदि सद्भाव सहित हो तो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है, समस्त

पापों का नाश हो जाता है, पुण्यराशि बढ़ती है। गुरु-सेवा से समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं, जो वस्तु अपने को अभिलषित है, उसके लिए गुरु को वञ्चित नहीं करना चाहिए।। ३५-३७।।

श्रीगुरुदेव की अर्चना से महापुण्य की प्राप्ति होती है, भक्ति, वित्त, शक्ति, के अनुसार की गयी पूजा स्वल्प या बहुत, उससे दरिद्र और धनवान् को समान पुण्य होता है। धनवान् यदि कृपणता करता है, तो वह दोष का भागी बनता है, धनहीन को भी अपनी शक्ति के अनुसार पूजा में समर्पण करना चाहिए, इससे दोनों को ही तुल्य फल प्राप्त होता है। भक्तिरहित शिष्य गुरु को सर्वस्व भी दे देता है, तो उस को कुछ भी लाभ नहीं होता है, उसमें एकमात्र भक्ति ही कारण है।। ३८-४०-४४-$\frac{1}{2}$ ।।

श्रीगुरु की जिस द्रव्य में इच्छा हो, उसका शिष्य उपयोग न करे, यदि उत्कट इच्छा हो, तो गुरु की आज्ञा से ही उसका उपयोग करे। जो शिष्य गुरु के द्रव्य का तिलमात्र भी लोभ-मोह से उपयोग करता है, वह पशु-पक्षियों की योनि में जाकर मांसभक्षियों का भोजन बनता है। गुरुद्रव्य में अभिलाष, गुरुस्त्रीगमन इच्छुक क्षुद्र पतित व्यक्ति के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है।। ४०-$\frac{1}{2}$ - ४४-$\frac{1}{2}$ ।।

आज्ञाभंग, अर्थग्रहण और गुरु का अप्रिय करना गुरुद्रोह कहलाता है, जो ऐसा करता है वह पातकी होता है। अपने द्रव्य का भी उपयोग गुरु को निवेदन करके ही करना चाहिए। गुरु को निवेदन न करके जो उपयोग करता है, वह ब्रह्मघाती है।

गुरु के स्थान, सम्प्रदाय एवं धर्म का जो विनाश करता है, उसका बहिष्कार कर देना चाहिए, वह पातकी दण्डनीय और बध्य है। गुरुकोप विनाश का कारण है। गुरुद्रोह से बड़ा कोई पातक नहीं है, गुरु की निन्दा मृत्यु के समान है। गुरु का अनिष्ट करना ही आपदाओं को निमन्त्रित करना है। अग्नि में प्रवेश किया हुआ, विषपान किया हुआ, मृत्युमुख में गया हुआ भी व्यक्ति बच जाता है, यदि गुरु का अपराध न किया हो। जहाँ पर गुरु-निन्दा होती हो, तो शीघ्र ही कानों को बन्द करके इतनी दूर चला जाय, जहाँ गुरुनिन्दा श्रवण न हो, तदनन्तर गुरुपादुका मन्त्र का स्मरण करे— यही गुरुनिन्दा श्रवण का प्रायश्चित्त है।। ४४-$\frac{1}{2}$-५०।।

गुरु, मित्र, सुहृत्, दास-दासियों को अपमानित न करे। वेदशास्त्र आगमादि, समयसूचक ज्योतिषादि शास्त्रों की निन्दा न करे।। ५१।।

श्रीगुरुपादुका भूषण और गुरुनाम स्मरण जप, गुरुआज्ञा-पालन ही कर्तव्य, गुरुसेवा ही भजन है।।५२।।

गुरु-आवास में जाने का इच्छुक शान्तचित्त होकर भक्तिपूर्वक जाय, व्यजन पादुका, छत्र, चामर, वाहन, तड़क भड़क वेष आदि का त्याग करके शनैः शनैः गुरु आश्रम में प्रवेश करे, श्रीगुरु के वाहन, पादुका, छत्र, आसन वसन आदि देखकर प्रणाम् करे। अपने लिए इनका उपयोग करना निषिद्ध है।।५३-५५-$\frac{1}{2}$।।

पाद-प्रक्षालन, स्नान, उबटन, दन्तधावन, मूत्रत्याग, थूकना, क्षौरकर्म, शयन, स्त्रीसंगम, वीरासन, दुर्वाक्य, हास्य, रोदन, केशलुञ्चन, उष्णीष (पगड़ी) कञ्चुक धारण, नग्नता, पैर फैलाना, वाद-विवाद, कलह, दूषण, अङ्ग-भङ्ग, नृत्य-वाद्य (करस्फालन) हाथ फैलाना, कम्पन, जुआ, कुक्कुट-मल्लादि युद्ध,

गुरु, योगी, महासिद्धि, पीठ, क्षेत्र, आश्रम आदि पुण्यक्षेत्रों में उपर्युक्त कार्य करना निषिद्ध है, यदि मूढ़ता से करता है, तो देवता से अभिशप्त (शापित) होता है।। ५५-½-५९।।

औपचारिकता से रहित होकर गुरु के सामने खड़ा रहे, उनकी इच्छा के बिना नहीं बैठे। गुरु का मुखावलोकन करता रहे और गुरु जो कहें, वह आचरण या कार्य करे। गुरु के आदेश की कभी उपेक्षा न करे, सत् असत् जो भी कहें, वह निःशङ्क होकर करे। निग्रह-अनुग्रह आदि समस्त कार्यों में गुरु ही कारणभूत हैं। जो गुरुमुख से निकलता है, वही शास्त्र है। गुरु-कार्य में स्वयं समर्थ होने पर अन्य व्यक्ति से वह कार्य न कराये। बहुत शिष्य होने पर स्वयं भी यथाशक्ति सेवा करे।। ६०-६३।।

चलता हुआ, बैठा हुआ, सोता हुआ, जगता हुआ, बोलता हुआ, होम करता हुआ, पूजन करता हुआ, तद्गत अन्तरात्मा से गुरु-आज्ञा का पालन करे। जाति, विद्या, धन, आदि का अभिमान न करे। सदा गुरु की सन्निधि में रहकर नित्य सेवा करता रहे। छाया, भूमि आदि का ध्यान त्याग करके विनम्रता एवं भक्ति युक्त होकर गुरु के सम्मुख खड़ा रहे, गुरुकार्य का उत्साहपूर्वक सम्पादन करे। गुरु के चित्त को जानने वाला शिष्य अपने कार्य या अन्य कार्य के लिये गुरु के समीप उपस्थित होकर विनम्रभाव एवं मितभाषण से निवेदन करे। सद्गुरु की सन्निधि में सामान्य निषेध का भी पालन न करने वाला मूढात्मा कोटिगुणित दोष का भागी होता है। गुरु-वाक्य का अनादर करके, पराङ्मुख होकर हित अनहित को नहीं सुनता हुआ रौरव नरक में पड़ता है।। ६४-६९।।

गो-ब्राह्मण वध करने से जो पाप होता है, वैसा ही पाप गुरु के सामने झूठ बोलने से होता है।।७०।।

घोर जङ्गल में फँसे हुए, अर्थसंकटग्रस्त गुरु की कभी अवहेलना न करे। उनके आदेश का यथावत् पालन करता रहे।। ७।।

गुरु के नीचे स्थान पर बैठने पर शिष्य को उच्च स्थान पर नहीं बैठना चाहिए। गुरु से अग्रगमन न करे, उनके पीछे ही चलता रहे, श्रीगुरु के खड़े रहने पर शिष्य को बैठना नहीं चाहिए। उनके सामने शयन भी न करे।।७२।।

शक्ति-छाया, गुरु-छाया, देव-छाया का उल्लङ्घन न करें। अपनी छाया भी उन पर न गिरने दें। भाषण, पठन, भोजन, शयनादि आदेश वन्दन-पूर्वक स्वीकार करे। श्रीगुरु की आज्ञा का पालन करते हुए शत ब्रह्म-हत्या भी करने में संकोच न करे। बिना आज्ञा के श्वास भी न ले, अनुशासन का अतिक्रमण कदापि न करे। समस्त कार्य गुरु-आज्ञा से ही करे, उनकी स्त्री का कभी भी स्पर्श न करे। भक्ति-पूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करके खड़ा रहे। श्रीगुरु के घर से निकलते हुए पीछे पैर रखते हुए चले। उनको पीठ न देकर प्रणाम करते हुए गमन करे। गुरु एवं उनके समकक्ष पुरुषों के साथ एक आसन पर नहीं बैठे। गुरु के सामने आसन पर न बैठे, श्रीगुरु को सिंहासन पर विराजमान करके, बड़े लोगों को उत्तम आसन, छोटों को और अन्य व्यक्तियों को समान आसन प्रदान करे। उच्चजाति, विद्यावान्, धनवान् भी गुरु का दर्शन होने पर दूर से ही दण्डवत् प्रणाम करके तीन प्रदक्षिणा करे। तदनन्तर ज्येष्ठ पुरुषों की तीन-छः-बारह या एक प्रदक्षिणा करे। गुरु और परमगुरु के एक साथ प्राप्त होने पर शिष्य स्वगुरु को मन से नमस्कार करके प्रथम परमगुरु को नमस्कार करे, तदनन्तर स्वगुरु को प्रणाम करे। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त गुरु-बुद्धि से सबको प्रणाम करे।

लौह आदि की बनायी हुई प्रतिमा का नमन न करे। श्रीगुरु को तीन प्रणाम, अपने से ज्येष्ठ व्यक्तियों को एक प्रणाम करे। पूज्यों को हाथ जोड़कर प्रणाम करे, सर्वसाधारण की वाक्य-वन्दना करे। देवता-गुरुकुलाचार्य-ज्ञानवृद्ध-तपोधन-विद्यावृद्ध-स्वकर्मस्थ पुरुषों को प्रणाम करे।। ७३-८४- $\frac{1}{2}$ ।।

॥ प्रणाम-अयोग्य-व्यक्ति ॥

स्त्री-दोषी, गुरु से अभिशप्त, पाखण्डी, पतित, शठ, कुकर्मी, कृतघ्न, और अनाश्रमियों को प्रणाम करना निषिद्ध है। एक आवास में वास करते हुए श्रीगुरु को निवेदन न करके जो भोजन करता है, वह भोजन अमेध्य है। मरने के बाद उसे सूकर-योनि प्राप्त होगी।। ७४-$\frac{1}{2}$ -७६-$\frac{1}{2}$ ।।

॥ दूरी के अनुसार गुरुदर्शनविधान ॥

एक ग्राम में वास करने पर गुरु का त्रिकाल दर्शन प्रणाम करना चाहिए। एक कोश यानि (२ माईल) पर रहने से प्रतिदिन प्रणाम करने का विधान है। दो कोश दूर हो, तो पाँच पर्वों पर दर्शन प्रणाम करे। एक योजन (४ कोश) से १२ योजन (४८ कोश) दूर होने पर योजन संख्या के अनुसार दर्शन करे। १२ योजन या ४८ कोश दूर होने पर वर्ष में एक बार दर्शन करे। दूर देश में रहने पर यथासाध्य समय से भक्तिर्पूवक दर्शन करे। अति दूर रहने पर अवसर प्राप्त होने पर अपनी इच्छा से दर्शन करने का प्रयास करे।।८३-$\frac{1}{2}$-९०।।

राजा-देवता और गुरु के यहाँ रिक्त हस्त (खाली हाथ) न जाये। फल, पुष्प, वस्त्र आदि यथाशक्ति समर्पण करे। इस प्रकार जो नहीं करता है, वह ब्रह्मराक्षस बनता है।। ९१-९२-$\frac{1}{2}$ ।।

॥ नमस्कार-विधि ॥

गुरु की शक्ति, उसके पुत्र, एवं ज्येष्ठ भ्राता को गुरु के समान ही आदर करना चाहिये। अपने समान एवं (कनिष्ठ) छोटे से पुत्रवत् व्यवहार करना चाहिए। लोकाचार के गुरु, ज्येष्ठ, कनिष्ठ को गुरुतुल्य मान कर प्रणाम करे। स्वज्येष्ठ, क्रमज्येष्ठ, कुलज्येष्ठ, गुरु से ज्येंष्ठ, ये चार ज्येष्ठ यानि बड़े माने जाते हैं। बड़ों का सम्मान अभिवादन में क्रम ज्येष्ठ अङ्गभूत होते हैं। गुरु एवं कुलवृद्ध का चन्दनादि से विधिवत् पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार पिता, माता, पूज्य कोटि में बन्धु बान्धवों का अभ्युत्थान प्रणामादि से अज्ञात दोषों में लघुता आती है।। ९६-$\frac{1}{2}$ -९७।।

जब स्वयं आचार्य रूप में हो जाय, तब अदीक्षित व्यक्तियों का अभ्युत्थान प्रणामादि करना निषेध है, पति होकर पशु को जो प्रणाम करता है, वह महापशु कहा जाता है तथा देवता के शाप से अभिशप्त होता है। जो गुरुस्थान का अधिकारी हो, क्रमपूर्वक पादुकामन्त्र प्राप्त हो, उसे गुरुवत् माना जाय, वयोवृद्ध होने मात्र से वन्दनीय नहीं होता है।। ९८-९९।।

उपर्युक्त नियम परमशिव ने भगवती को सम्बोधित करके कहे हैं, इसमें संदेह करना दोषावह है।

समयाचार - (कुलार्णवतन्त्र)

श्रीगुरु, कुलशास्त्र, एवं पूज्यस्थान को प्रणाम करके श्रीपूर्वक कथन करना चाहिए। ब्रह्मा से स्तम्ब

पर्यन्त समस्त चराचर ही मेरी गुरुसन्तरित है, ऐसे व्यक्ति के लिए कौन पूज्य नहीं है। ज काल के बिना गुरु के नाम का उच्चारण करना निषेध है। वाद-विवाद में नाथ, देव, स्वामी आदि नामों से सम्बोधन करना चाहिए। श्रीगुरुपादुका, मुद्रा, स्वमूलमन्त्र, स्वगुरुपादुकामन्त्र शिष्य के बिना कदापि किसी को भी न बतावे।। १-४।।

गुरुपरम्परा-आगम-आम्नाय-मन्त्र-आचार आदि गुरुमुख से प्राप्त होने से ही सफल होते हैं, यदि गुरुमुख से प्राप्त न हो, तो अन्यथा फल होता है। श्रीविद्यासाधनाविधान की पुस्तकों का देवता की तरह नित्य अर्चन करना चाहिए। अदीक्षित व्यक्ति के हस्तगत न हो ऐसा प्रयास करना चाहिए।। ५-६।।

स्वपत्नी-सम्बन्ध को जिस प्रकार गुप्त रखा जाता है, उसी प्रकार कुलशास्त्रों को गुप्त रखना चाहिए, पशु-शास्त्रों को परस्त्री की तरह दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए।। ७।।

कुत्ते के चर्म में रखा हुआ दूध जैसे द्विजोत्तम के पान करने योग्य नहीं होता, उसी तरह अदीक्षित व्यक्ति से सुना हुआ मन्त्रोपदेश त्याज्य है। अतः पशुमुख (अदीक्षित) से धर्म सुनना साधकों के लिए निषिद्ध है।। ८।।

जो तन्त्रशास्त्रप्रोक्त साधना का श्रवण करता है और जो यथाशास्त्र प्रतिपादन करता है, ये दोनों ही यामली सिद्धि के अधिकारी हो जाते हैं।। ९।। तन्त्रसाधना का निन्दक एवं अश्रद्धालु प्रलय काल तक नरक में पड़े रहते हैं।। १०।।

तन्त्रशास्त्र भगवान् परम शिव द्वारा प्रकटित शास्त्र हैं। अतः शिवशास्त्रों का निन्दक शिवद्रोही होता है और उसकी दुर्गति होती है।

विवाहित, धतृ, प्रीतियुक्त, मूल्य से क्रीत, एक बार भी इच्छा से समागत, ये पाँच प्रकार की नारी गुरुपत्नीवत् होती हैं, इनका उल्लङ्घन करना निषिद्ध है, गुरु की तरह गुरुपत्नी भी पूज्य होती है।११-१२-½।।

कृष्णवस्त्र धारण की हुई, कृष्णवर्ण वाली, कुमारी, कृशोदरी, मनोहर, यौवनारूढ़, इनकी देवताबुद्धि से पूजा करनी चाहिए। कच्चा मांस, सुराकुम्भ, मदोन्मत्त हस्ती, सिद्धलिङ्गी, आम्र वृक्ष, अशोक वृक्ष, क्रीड़ा करती हुई कुमारी, एक वृक्ष वाला श्मशान, स्त्रियों का समूह, लाल वस्त्र धारण की हुई स्त्री को देखकर भक्ति से नमस्कार करे। गुरु, उनकी शक्ति, ज्येष्ठ, कनिष्ठ पुत्र, कुलदेशिक गुरुओं का भी भक्तिपूर्वक वन्दन करे। कुलशास्त्र, कुलद्रव्य, कुलसाधक, तन्त्र के प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक, बोधक, योगी, योगिनी, सिद्ध पुरुष, नग्न कन्या, कुमार, उन्मत्त स्त्री इनकी निन्दा एवं जुगुप्सा न करें, न हास्य करे एवं अपमान भी न करे, किसी भी कुल-स्त्री को अप्रिय, अनृत वचन न कहे, कुरूपा, अति कृष्णा, आदि शब्द का प्रयोग न करे। भक्तियुक्त वीरभाव से साधना करने वालों के कृत-अकृत की परीक्षा न करे। नग्न, उन्मत्त प्रकटस्तनी वनिता को न देखे। दिन में स्त्रीसेवन न करे एवं उसके वराङ्ग का भी निरीक्षण न करे। मातृकुल में उत्पन्न होने से समस्त स्त्रियाँ मातृवत् वन्दनीय हैं। स्त्रियों का अपमान करने से योगिनियाँ कुपित होती हैं। शत अपराध भी करने वाली स्त्री का पुष्प से भी ताड़न नहीं करे। स्त्रियों

के दोष नहीं देखे, उनके गुणों का ही वर्णन करे।। १२-½-२२।।

॥ कुलवृक्ष॥

कुलवृक्षों पर कुलयोगिनियाँ सदा निवास करती हैं, अतः उनके पत्तों पर भोजन न करे, विशेषकर अर्कपत्रों पर तो कभी भी भोजन न करे। कुलवृक्षों के नीचे शयन एवं उपद्रव न करे। कुलवृक्षों को देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करे। कुल वृक्षों का कभी छेदन न करे। श्लेष्मान्तक (लिसोड़ा) करञ्ज, बहेड़ा, निम्ब, पीपल, कदम्ब, बिल्व, वट, उदुम्बर, इन ९ वृक्षों की कुल संज्ञा है।। २३-२५।।

॥ सिद्धाचार-निन्दक की दुर्गति ॥

मूढ़ता से गुरु एवं वीरभाव से साधना करने वाले साधकों का अनादर, भर्त्सना, एवं कुलशास्त्रों का विकल्प करने वाला, गुरु, देवता, शास्त्र, सिद्धाचार की विडम्बना करने वाला, विद्याचोर, गुरुद्रोही, ब्रह्मराक्षस, योनि में जाता है। एक अक्षर पढ़ने वाले को भी यदि गुरु नहीं मानता है, तो सैकड़ों बार कुक्कुट योनि को भोग कर चाण्डाल बनता है।

बुद्धिमान् साधक स्वगुरु का परिचय दे, अपने मन्त्र को गुप्त रखे। गुरु को अप्रकाशित करने से, मन्त्र को प्रकाशित करने से सम्पत्ति एवं आयु क्षीण होती है। कुल धर्मों को धारण करके जो आचार का पालन नहीं करता है, वह स्वेच्छाचारी महापातकी आपदा, रोग, दरिद्रता, कलह, भय एवं योगिनियों के प्रकोप से पद पद पर स्खलित होता रहता है।। २६-३१।।

आचारहीन की दुर्गति, आचारवान् की सद्गति

आचारहीन, व्यक्ति भ्रष्ट, प्रनष्ट, तेजोहीन, अतिदुःखित, निन्दित, लोक में सबका द्वेषपात्र, विह्वल, सङ्गरहित होकर देश-देशान्तरों में भटकता है, सदा ही कार्य-हानि होती रहती है। कुलमार्ग की शाकिनी-डाकिनी आदि योगिनियाँ उसका भक्षण करती हैं। भगवान् शिव कहते हैं कि उन योगिनियों को मैंने पहले ही वर प्रदान किया है कि आचारविहीन साधकों का भक्षण करो। आचारपालन करने वाले साधक योगिनियों के प्रियपात्र होते हैं। पद-पद पर उनको सफलता एवं सद्गति प्राप्त होती रहती है। अतः आचारवान् होना नितान्त आवश्यक है।। ३२-३४।।

॥ समयाचार से सिद्धियाँ ॥

सदाचार पालन से साधक में देवत्व का संचार होता है, योगिनीवीरमेलन-सिद्धि प्राप्त होती है। यदि आचार पालन नहीं करता है, तो पशु-पक्षियों की तिर्यक् योनियों में पड़ता है। संस्कार से विहीन होने से गुरुवाक्य का उल्लङ्घन करने से, आचार पालन न करने से साधक पतित हो जाता है।।३५-३६।।

॥ प्रायश्चित्त-विधि ॥

नित्य-नैमित्तिक-काम्य-कर्म-मन्त्र-तन्त्रादि लोप से, अदीक्षित व्यक्तियों के सङ्ग से, मन्त्रसाङ्कर्य से, गुप्त साधन को प्रकट करने से, ज्ञान से, अज्ञान से, जो दोष उत्पन्न होते हैं। उनके गुरु-लाघव (स्वल्प-

अधिक) की विवेचना करके– देश, काल, अवस्था, वित्त आदि की सम्यक्तया मीमांसा करके पापों के प्रायश्चित्त के लिए शिष्य को उपयुक्त प्रायश्चित्तविधि का विधान बता देना चाहिए। शिष्य को भी गुरुप्रोक्त विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिए। विशेष रूप से प्रायश्चित्त करने में असमर्थ होने पर गुरुपादुकामन्त्र का स्मरण करे। भगवान् परम शिव भगवती से कह रहे हैं कि बहुत बोलने की आवश्यकता नहीं है– जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्ण की शुद्धि होती है, उसी प्रकार प्रायश्चित्त की अग्नि से अनाचारजनित मलिनता दूर हो जाती है। वर्ण और आश्रम धर्म पालन करने वाले समस्त व्यक्तियों को प्रायश्चित्त सद्गति प्रदान करता है। गुरु को तीन बार कह देना चाहिए। यदि शिष्य ग्रहण नहीं करता है, तो गुरु को दोष नहीं लगता है। अत: तीन बार सतर्क करना आवश्यक है। मन्त्री का दोष राजा को, स्त्री का दोष पति को लगता है, उसी प्रकार शिष्यकृत पाप का गुरु भी भागी बनता है।। ६-४४।।

(इसी प्रकार (अन्यत्र) तन्त्रान्तरों में भी समयाचार का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या २५ से २६ में १ श्लोक से ४१ तक आचार वर्णन है।)

।। तन्त्रान्तरों में समयाचार।। (प्रयोगसार)

पूर्वोक्त प्राय: सभी आचार विधियों का तन्त्रान्तरों में समान वर्णन प्राप्त होता है। कुछ विशेषताएँ है, जो लिखी जा रही है। आत्मप्रशंसा, परनिन्दा वर्जित है। पुराण-आगम-कल्प-वेद शास्त्रों का खण्डन करना निषिद्ध है। लोक जुगुप्सित-निन्दित गोष्ठी, स्वैराचार वर्जनीय है। स्वकीय कामभोग के लिए प्रतिग्रह लेना दोषजनक है। देवता, गुरुपूजा के लिए प्रयत्नपूर्वक धन अर्जन करना उचित है। गुरु-आज्ञा का कदापि उल्लङ्घन न करे। रात-दिन दास की तरह सेवा करे। गुरु के सम्मुख अद्वैत भाव एवं पूजा वर्जित है, गुरु के सामने अपने प्रभाव का वर्णन न करे एवं शिष्यसंग्रह भी न करे। मन्त्र से अभिमन्त्रित उपभुक्त अन्नादि अनायास प्राप्त होने पर प्रणाम करके जल में निक्षेप करे, ताकि पृथ्वी पर गिरकर पाद स्पर्श न हो। आपत्ति काल में भी गुरुसंज्ञक शपथ करना निषिद्ध है। भगवान् की शपथ भी न करे, प्रमाद से कदाचित् हो जाय, तो विपत्ति दूर होने पर पूजा, जप होम करने से दोषमुक्त हो जाता है। शपथ दोष निवारण के लिए इष्ट मन्त्र का एक सहस्रजप करे। शुद्ध मन से स्त्रियों को समयाचार का ज्ञान प्रदान करके साधना मार्ग में प्रवृत्त करे। इससे शीघ्र ही सिद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। आचार पालन करने वालों को मन्त्र सिद्धियाँ शीघ्र प्राप्त होती हैं। अष्टमी, पूर्णिमा, उत्तरायण, दक्षिणायन (विषुवत् काल) जब दिन-रात्रि समान हो, तब नित्य से तीन गुणा अधिक जप करना चाहिए। नैमित्तिक पूजा भी करनी चाहिए। न्यायार्जित साधनों से दान, होम, अर्चन करने से उत्तम गति प्राप्त होती है।

।। दीक्षाधिकारी ।।

ब्राह्मण सर्वकालज्ञ सब वर्णों को दीक्षा दे सकता है। उसके अभाव में आचार्य रूप में अभिषिक्त द्विज श्रेष्ठ, शान्तात्मा, भगवन्मय, भावितात्मा, सर्वज्ञ, शास्त्रज्ञ, सत्क्रिया करने वाला, सिद्धि से युक्त द्विज भी दीक्षा देने का अधिकारी है।

॥ नारद-पञ्चरात्र वर्णित आचार ॥

पूर्वोक्त गुणसम्पन्न गुरु एवं श्रद्धावान् शिष्य अवगुणवर्जित हो, तो दीक्षा का अधिकारी है।

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जाति को क्षत्रिय दीक्षा दे सकता है। गुरु के अभाव में क्षत्रिय, क्षत्रिय गुरु से भी दीक्षा ग्रहण कर सकता है। वैश्व को ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों दीक्षा दे सकते हैं। सजातीय शूद्र भी शूद्र का अभिषेक अनुग्रह कर सकता है। वर्णोत्तम गुरु प्राप्त होने पर स्ववर्ण या वर्णाधम से दीक्षा ग्रहण करना विपरीत है, इससे लौकिक एवं पारलौकिक पुण्यों का विनाश होता है, अतः शास्त्रोक्त नियमों का पालन करना चाहिए। इससे इहलौकिक एवं पारलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

॥ निन्द्यगुरु से दीक्षा-निषेध ॥

अत्यधिक भोजन करने वाला, दीर्घसूत्री, विषयों में लोलुप, हेतुवाद में रत, दुष्ट, वाचाल, निन्दक, अरोम (दाढ़ी मूंछ न हो) बहुरोम (शरीर में ज्यादा रोम हो,) निन्दित आश्रम सेवक, कृष्णदन्त (काले दाँतों वाला), नीले होठों वाला, दुर्गन्ध युक्त श्वास वाला आदि दुष्ट लक्षणों से सम्पन्न, प्रतिग्रह लेने वाला, यदि स्वयं ईश्वर भी हो, तो श्री को नष्ट करने वाला है। यह ज्ञानोन्नय तन्त्र में कहा गया है। उपर्युक्त लक्षणों से युक्त गुरु से दीक्षा लेना निषिद्ध है।

॥ गृहस्थ के गृहस्थ गुरु ॥

पिता पितामह और भाई (छोटा-बड़ा), वैरी पक्ष में जो आश्रित हों, इनका मन्त्र निर्वीर्य होता है। इनसे दीक्षा लेना निषिद्ध है। यदि लेता है, तो सफलता प्राप्त नहीं होती है। संन्यासी, वनवासी, ब्रह्मचारी से भोग-मोक्ष चाहने वाला गृहस्थी दीक्षा ग्रहण न करे। संन्यासी शिखा-सूत्र और अग्नि का त्याग किये हुए अपरिग्रही होते हैं। वन में रहने वाले, ब्रह्मचारी गृहस्थ से वर्ण में न्यून होते हैं। अतः इनको दीक्षा देने का अधिकार नहीं होता है। यह भैरवीतन्त्र का मत है।

तपस्वी, सत्यवादी, स्वस्थ मनवाला गृहस्थ दीक्षा में यति एवं वैखानसों (वानप्रस्थ) को गुरु रूप से वरण न करे। भोग-मोक्ष चाहने वाले गृहस्थ को गृहस्थ से ही दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए, यह शिवशासन है।

॥ गुरु-शिष्य परीक्षा॥ (कुलार्णव तन्त्र)

गुरु अपने ज्ञान के द्वारा या क्रिया से शिष्य की परीक्षा करे। ब्राह्मण की एक वर्ष, ६ महीने या तीन मास यत्नपूर्वक परीक्षा करे। परीक्षा करने के लिए उत्तम पुरुषों को छोटे कार्य करने के लिए प्रेरित करे एवं क्षुद्र शिष्यों को उत्तम कर्म करने में लगाये। द्रव्य आदि के प्रदान में सम और विषम रूप से परीक्षा करे। माया से उसको मर्मसूचक वाक्य कहें एवं क्रूर चेष्टा करे। पक्षपात, उदासीनता आदि अनेक आचरणों से बार-बार शिष्य की परीक्षा करे। सब प्रकार से उसे क्षुभित एवं प्रताडित करे। इस पर भी यदि वह व्यक्ति विवाद एवं विषाद नहीं करता है, यही समझता है कि प्रसन्न होकर गुरु मेरे ऊपर कृपा कर रहे हैं, तो व्यक्ति दीक्षाधिकारी माना जाता है।

श्रीगुरु के स्मरण, कीर्तन, दर्शन और वन्दना, परिचर्या (सेवा) में बुलाने पर या भेजने पर आनन्द, कम्पन, एवं रोमाञ्च हो, नेत्रों में आनन्दाश्रु आने लगे, तो वह व्यक्ति दीक्षा संस्कार के योग्य होता हैं।

शिष्य भी गुरु की परीक्षा करे। जप, स्तोत्र, ध्यान, होम, अर्चनादिकों में रत है या नहीं। ज्ञानोपदेश में एवं मन्त्रसिद्धि का सामर्थ्य है कि नहीं, इस प्रकार अन्यान्य कार्यों का ज्ञान करके उनका शिष्य बनना चाहिए।

अधम, मध्यम, उत्तम शिष्यों के लक्षण

कुलार्णव तन्त्र में भक्ति के तारतम्य से आदि, मध्य और अन्त में योग्य व्यक्ति अधम, मध्यम एवं श्रेष्ठ कहे गये हैं। यथा—दीक्षा लेने के लिए आदि में जिनकी भक्ति हो जाय और फिर उनकी भक्ति नहीं रहे, तो वह आदि मक्त कहे जाते हैं। दीक्षा समय में सम्प्राप्त ज्ञान-विज्ञान से वर्जित, भक्ति से जिनका जाड्य नष्ट हो गया हो, उन्हें मध्यम शिष्य कहते हैं। आदि में जो भक्तिहीन हो, फिर मध्य में भक्ति युक्त हो जाय और अन्त में अनन्य भक्त हो जाय, वे उत्तम शिष्य होते हैं[1]।।

।। वर्ण-विभाग से परीक्षाकाल ।।

एक वर्ष ब्राह्मण, दो वर्ष क्षत्रिय, तीन वर्ष वैश्य के लिए परीक्षाकाल है। इतने दिन तक परीक्षा कर ले, तब दीक्षित करे।

(तन्त्रान्तरों का मत है कि— 'त्रिकूटैः षट्कूटैर्वा शोधितं बहुवासरं' तीन बीज या छः बीज उपदेश करके मन्त्र, जप, न्यासादि से शुद्ध करे, जप, आसन, प्राणायाम आदि समय से करने लग जाय, तब दीक्षा योग्य बनता है[2]।)

।। मन्त्रप्राप्ति के अधिकार।। (महाकपिलपञ्चरात्र)

प्रणव ही वेदों की सत्ता है। वेद ही मन्त्रों का उद्भव स्थल है। अत: वेद उत्तम हैं, और आगम वेदाङ्ग है। वशीकरण, आकर्षण, दृष्ट-अदृष्ट आदि फलप्रद जो कर्म हैं, वे कलियुग में ग्रह-यज्ञादि सब वेद से किये जाते हैं। वेद के विना कोई यज्ञ नहीं होता एवं यज्ञ वेदविहित हैं। इसलिए वेद ही परम मन्त्र है और मन्त्ररहित वेद नहीं होता है। शास्त्रों का यह नियम है, वेदमन्त्रों में शूद्रों का अधिकार नहीं होता, अतः शूद्रों के सब कर्म अमन्त्रक करने का विधान है[3]।

।। प्रणवाधिकारी ।।

शातातप संहिता में कहा गया है—शूद्र को यदि वेद मन्त्र देता है, तो वेद मन्त्र के जितने अक्षर हैं, उतनी ही ब्रह्महत्या के दोष का भागी होता है ऐसा स्वयं प्रजापति ने कहा है[4]।

।। मन्त्राधिकारी।। (भविष्यपुराण)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जो स्वच्छ एवं पवित्र हों, उन्हें मन्त्र देना चाहिए। सङ्कीर्णधर्मियों को नहीं देना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पूजा में शुद्ध भाव बुद्धि वाला, गुरुदेव और द्विजसेवारत शूद्र भी आगममन्त्र का अधिकारी होता है[5]।

१. पृ. २७-२८ श्लोक ९-१२ (श्री.वि.त.)। २. पृ.सं. २८ श्लोक १ (श्री.वि.त.)। ३. पृ.सं.२८ श्लोक १-४(श्री.वि.त.)
४. पृ.सं. २८ श्लोक १ (श्री.वि.त.) ५. पृ.सं. २८ श्लोक १-२ (श्री.वि.त.)

वैदिक तान्त्रिक मन्त्राधिकारी (योगिनी-तन्त्र)

वैदिक मन्त्र, वेद एवं तन्त्रमिश्रित मन्त्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को देने का विधान है। विप्रभक्त शूद्र को तान्त्रिक मन्त्र देने का विधान है। स्वकीय आगमप्रोक्त विधि से शूद्रों को पूजा करनी चाहिए। विष्णु की साधना करने में स्त्रियों का भी अधिकार है। सधवा स्त्री को हृदय में पति का चिन्तन करके आराधना करनी चाहिए, ये वेदों का आदेश है, ऐसा ब्रह्मपुराण में कहा गया है। मूल में 'पतिप्रिया' शब्द सधवा परक है और 'चिन्तयित्वा' शब्द विधवापरक है।

वैदिक तान्त्रिक मिश्रविधि (तन्त्रराज-तन्त्र)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का संस्कार वेद प्रोक्त होना चाहिए और उनकी आगम विद्या मन्त्रों से भी विधि का सम्पादन करना चाहिए। जो क्रिया करनी है, उसमें मन्त्रविद्या का स्मरण करे, इससे सर्वत्र तन्मयता-सिद्धि प्राप्त होती है। अन्य वर्णों का आगम विद्या के द्वारा ही क्रियाकलाप होना चाहिए।

स्त्री-दीक्षा (भविष्यपुराण)

जो स्त्री विधवा हो आस्तिक एवं श्रद्धायुक्त और स्वायत्त हो, उसे मन्त्र देना चाहिए। सधवा को पति की आज्ञा से मन्त्र देवे। अपने धर्म का त्याग करके देवता की आराधना-पूजा विनाश कारक होती है, जैसे बालू का बनाया हुआ घर।

स्त्रीशूद्र को दातव्य मन्त्र (रुद्रयामल)

विधवा को उसके पुत्र के आदेश से एवं कन्या को पिता के आदेश से, सधवा स्त्री को उसके पति के आदेश से मन्त्रोपदेश करना चाहिए। स्त्रियों का स्वतः अधिकार नहीं है। स्त्री और शूद्रों को मन्त्र के अन्त में 'नमः' शब्द युक्त मन्त्र देने से शुभ होता है। इस प्रकार मीमांसा करके चाण्डालों को भी दीक्षा दी जा सकती है, ऐसा रुद्रयामल का प्रमाण है।

पवित्रता से रहने वाले और द्विज-सेवक, धार्मिक शूद्रों को एवं पतिव्रता स्त्रियों को दीक्षाधिकार है। प्रतिलोम और अनुलोम जाति वाला भी ग्राह्य है तथा स्वजाति-स्वधर्म-निरत भगवद्भक्त चाण्डाल पर्यन्त इस आगम-तन्त्र में अधिकारी हैं। इन सबको जाति के अनुसार मन्त्रापेदश करना चाहिए। स्त्री एवं शूद्रों को वैदिक मन्त्र में अधिकार नहीं है। इनको नमोन्त शिव या वैष्णव मन्त्र देने का विधान है।

याज्ञवल्क्य ने कहा है— 'स्वाहा' एवं 'प्रणवयुक्त' मन्त्र शूद्र को देने से शूद्र नरकगामी होता है और मन्त्र देने वाला ब्राह्मण शूद्र (पतित) हो जाता है।

यामल के मतानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, चार वर्ष, पाँच वर्ष परीक्षा करके भक्ति, गुण और योग्यता के अनुसार वर्णक्रम से दीक्षित करने का विधान है।

मन्त्रों की ब्राह्मणक्षत्रियादि जाति

मन्त्रों के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भेदों का कुलार्णव तन्त्र में प्रतिपादन किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य, शूद्र और पौरस्त्य जाति भेद से मन्त्र चार प्रकार के होते हैं। इनका वर्णक्रम से उपदेश करना चाहिए। यह वामकेश्वरतन्त्र में कहा गया है। सौत्रामणितन्त्र में इनका लक्षण किया गया है—मायाबीज-ब्राह्मण, श्रीबीज क्षत्रिय, कामबीज-वैश्य, वाग्भवबीज-शूद्र और पौरस्त्य मन्त्र वह होता है, जो चारों बीजों से रहित हो। ब्राह्मण चारों बीजों के अधिकारी हैं, क्षत्रिय तीन बीज के, वैश्य दो बीज और शूद्र एक बीज का अधिकारी है।

।। यथावर्ण प्रदेय मन्त्र ।।

देवी प्रश्न पर- भगवान् परम शिव का उत्तर- उमा, महेश्वर, दक्षिणामूर्ति, अघोर, हयग्रीव, वराह, अष्टाक्षर मन्त्र, प्रणवयुक्त वासुदेव, लक्ष्मीनारायण मन्त्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों को देना चाहिए, शूद्र को कदापि नहीं। पाशुपत, नारसिंह और सुदर्शन दो वर्णों को ही देना चाहिए, अन्य को नहीं। अग्निमन्त्र, सूर्यमन्त्र, प्रणवयुक्त घृणिमन्त्र तीन वर्णों को देना चाहिए। अनुष्टुप् शक्तिमन्त्र, विन्ध्यवासिनी, नीलसरस्वती- ये मन्त्र ब्राह्मण को ही देना चाहिए। मातङ्गी, उग्रतारा, कालिका, श्यामला, छिन्नमस्ता, बालामन्त्र सभी वर्णों को देना चाहिए। प्रणवयुक्त गणेश, हरिद्रागणेश मन्त्रों को तीन वर्णों को ही देना चाहिए। इससे सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। त्रिपुरामन्त्र, बटुकमन्त्र सब वर्णों को देना चाहिए। पुरन्ध्री (परिवार वाली स्त्रियों) को विशेष करके देना चाहिए। मायाबीज, लक्ष्मीबीज, वाग्भव बीज, प्रणवयुक्त ब्राह्मण को देनी चाहिए। मायाबीज, लक्ष्मीबीज, और वाग्भव बीज—क्षत्रिय को देना चाहिए। लक्ष्मी बीज और वाग्भवबीज वैश्यों को तथा वाग्भवबीज शूद्रों को देना चाहिए। नमः, हूँ, फट् आदि युक्त मन्त्र सङ्कर जाति को देना चाहिए।। इति।

।। मन्त्र एवं विद्या ।।

पचास मातृका वर्णों के भेद से सब मन्त्र उत्पन्न होते हैं और वे दो प्रकार के हैं— मन्त्र एवं विद्या। जिसमें 'स्वाहा' अन्त में हो, उसे स्त्रीमन्त्र कहते हैं एवं 'नमः' जिसके अन्त में हो, उसे नपुंसक मन्त्र कहते हैं। शेष सब मन्त्र 'पुरुष' कहे जाते हैं।

मन्त्रप्रयोग के नियम

स्त्रीमन्त्रों का शान्ति कर्मों में प्रयोग करना चाहिए। विद्वेषण और अभिचार में नपुंसक मन्त्रों का प्रयोग, वशीकरण, उच्चाटन आदि कर्मों में 'पुरुष' मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। समस्त मन्त्र अग्निसोमात्मक होते हैं। रेफ, ॐकार और अनुस्वारयुक्त मन्त्र प्रायः आग्नेय होते हैं, उनका क्रूर कर्म में प्रयोग करना चाहिए। सौम्य मन्त्र चन्द्रसुधायुक्त होते हैं, उनका सौम्य कर्म में प्रयोग करे।

मन्त्र स्वरूप (नारायणीय-तन्त्र)

प्रणवान्त, अग्नि, आकाश मन्त्र आग्नेय होते हैं। शिष्ट और सौम्य मन्त्र क्रूर एवं सौम्य कर्मों में प्रयुक्त होते हैं। आग्नेय मन्त्र में यदि 'नमः' अन्त में हो, तो वह सौम्य मन्त्र कहा जाता है एवं 'फट्' कार से युक्त मन्त्र भी सौम्य होते हैं।

इडा-पिङ्गला-सुषुम्ना में मन्त्र जप (नारायणीय मन्त्र)

पिङ्गला (दक्षिण स्वर) चलता हो, उस समय में आग्नेय मन्त्र जपने में सिद्ध हो जाते हैं, वाम स्वर चलता हो, तो सौम्य मन्त्र सिद्ध होते हैं। सुषुम्ना स्वर चलने पर सब मन्त्र प्रबुद्ध (जाग्रत) हो जाते हैं। उस समय जप करने से साधकों के सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। (श्लोक १-४)

सुप्त प्रबुद्ध काल

बृहन्नारायणीय तन्त्र में लिखा है, सुप्त एवं प्रबुद्ध मन्त्र सिद्धि नहीं देते हैं। स्वाप काल (सुप्तकाल) वाम स्वर, है, जाग्रत दक्षिण स्वर होता है। आग्नेय एवं सौम्य मन्त्र दो प्रकार के होते हैं। प्रबोध काल दक्षिण स्वर है। इसको जाग्रत काल कहते हैं, इसमें जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। वाम स्वर चलता हो, तो मन्त्र सिद्धि नहीं होती है। यह स्वरोदय का विषय है गुरु से ज्ञात करे।

।। मातृका सम्पुटित जप।। (शिवयामल)

'अ' से लेकर 'ळ' पर्यन्त सबिन्दुक मातृका से सम्पुटित मन्त्र का जप करे। 'क्ष' को छोड़ दे। फिर विसर्गान्त मातृका से सम्पुटित करके 'ळ' पर्यन्त जप करे। इस प्रकार जप करने से सब मन्त्र प्रबुद्ध हो जाते हैं एवं शीघ्र सिद्धि देते हैं। तात्पर्य यह है कि पहले नारायणीय तन्त्र और बृहन्नारायणीय तन्त्र में वाम और दक्षिण स्वर का प्रकरण है। जिसको स्वरोदय का ज्ञान होता है, वही व्यक्ति इस प्रकार के जप का अधिकारी है। जिसको स्वरज्ञान नहीं होता है, उनके द्वारा अनुस्वार एवं विसर्गान्त मातृका से सम्पुटित जप करने से मन्त्र सिद्ध होता है। ऐसा शिवयामल तन्त्र में कहा है। स्वरोदय का ज्ञान जिनको हो, उनको नारायणीय एवं बृहन्नारायणीय में प्रोक्त विधि से जप करना चाहिए। जिनको स्वर का ज्ञान न हो, वे शिवयामल प्रोक्त विधि का अनुसरण करे।

कालीमत में मन्त्र-दोषों का वर्णन (शारदातिलक तन्त्र)

कालीमत में मन्त्रों के जो दोष बताये गये हैं, उनका परिहार बाह्य और आभ्यन्तर भेद से तत्-तत् तन्त्रों में लिखा गया है, उनको साधकों के हित के लिए यहाँ लिखा जा रहा है–

।। शारदातिलक तन्त्रानुसार मन्त्र दोष ।।

छिन्नादि दोषों से युक्त मन्त्र साधक की रक्षा नहीं कर सकते अर्थात् साधक के लिए सिद्धिप्रद नहीं होते। (१) छिन्न (२) रुद्ध (३) शक्तिहीन (४) पराङ्मुख (५) बधिर (६) नेत्रहीन (७) कीलित (८) स्तम्भित (९) दग्ध (१०) त्रस्तं (११) भीत (१२) मलिन (१३) तिरस्कृत (१४) भेदित (१५) सुषुप्त (१६) मदोन्मत्त (१७) मूर्छित (१८) हृतवीर्य (१९) हीन (२०) प्रध्वस्त (२१) बालक (२२) कुमार (२३) युवा (२४) प्रौढ़ (२५) वृद्ध (२६) निस्त्रिंश (२७) निर्बीज (२८) सिद्धिहीन (२९) मन्द (३०) मोहित (३१) सत्त्वहीन (३२) केकर (३३) बीजहीन (३४) धूमित (३५) आलिङ्गित (३६) मोहित (३७) क्षुधार्त (३८) अतिदृप्त (३९) अङ्गहीन (४०) अतिक्रुद्ध (४१) अतिक्रूर (४२) सव्रीड (४३) शान्तमानस (४४) स्थानभ्रष्ट (४५) विकल (४६) निःस्नेह (४७) अतिवृद्ध (४८) पीडित– ये मन्त्रों के अड़तालिस दोष हैं।

शारदातिलकतन्त्रानुसार दोष लक्षण

(१) छिन्न मन्त्र– जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में वायुबीज हो, संयुक्त हो या वियुक्त हो और तीन बार, चार बार, पाँच बार दीर्घ स्वराक्रान्त हो, उसे छिन्न मन्त्र कहते हैं। इसका उदाहरण मूल में देखें। यह संक्षिप्त व्याख्या है, अत: विस्तारभय से नहीं लिखा गया।

(२) रुद्ध मन्त्र– आदि, मध्य और अन्त में दो बार लकार बीज हो, उसको रुद्ध मन्त्र कहते हैं। ये मन्त्र भुक्ति और मुक्ति देने में असमर्थ हैं।

(३) शक्तिहीन मन्त्र– मायाबीज, त्रितत्त्व, श्रीबीज, राव इनसे विहीन जो मन्त्र हैं, उनको शक्तिहीन कहते हैं। (माया, त्रितत्त्व, श्रीबीज, राव आदि जो शब्द आये हैं, मन्त्रों के लक्षणों में उनका स्पष्टीकरण ग्रन्थकार ने अपने गुरु से प्राप्त अर्थ करते हुए इन शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट किया है। अत: वहाँ पर द्रष्टव्य है।)

(४) पराङ्मुख मन्त्र– जिस मन्त्र के मध्य में कामबीज न हो, मुख और सिर पर मायाबीज न हो, उसे पराङ्मुख कहते हैं। यह सब कर्मों में निन्दित है।

(५) बधिर मन्त्र– हकार बिन्दुयुक्त हो, आदि, मध्य और अन्त में इन्दु (अर्धचन्द्र) हो, उसे बधिर कहते हैं।

(६) नेत्रहीन मन्त्र– पाँच वर्ण का मन्त्र जिसमें विसर्ग और रेफ वर्जित हो अर्थात् रेफ–अग्नि, अर्क–हकार, इन्दु–सकार। हकार, रेफ और अनुस्वार से वर्जित हो, उसे नेत्रहीन मन्त्र कहते हैं। वह नेत्रहीन मन्त्र दु:ख, शोक और व्याधि देने वाला होता है।

(७) कीलित मन्त्र– आदि, मध्य और अन्त में हंसबीज, प्रासादबीज एवं वाग्भवबीज न हो, ह का बिन्दुमान् हो, जीव और राव चतुष्कल न हो और माया तथा नमामि पद न हो, वह मन्त्र कीलित मन्त्र कहा जाता है।

(८) स्तम्भित मन्त्र– मध्य में एक लकार तथा अन्त में दो लकार हो, तो उसे स्तम्भित मन्त्र कहते हैं। यह सिद्धि अवरोध करने वाला है।

(९) दग्ध मन्त्र–वह्नि-रेफ, वायु–यकार जिसके अन्त में हो तथा सात प्रकार से हो, उसे दग्ध मन्त्र कहते हैं।

(१०) त्रस्त मन्त्र– अस्त्र मन्त्र दो बार, तीन बार, छ: बार या आठ बार हो, तथा प्रणव जिसके आगे न हो, उसे त्रस्त मन्त्र कहते हैं।

(११) भीत मन्त्र– शिव, शक्ति, ओंकार (प्रणव) जिस मन्त्र में न हो, उसे भीत मन्त्र कहते हैं।

(१२) मलिन मन्त्र– आदि, मध्य और अन्त में चार मकार जिसमें हो, उसे मलिन मन्त्र कहते हैं। ऐसा मन्त्र किसी को नहीं देना चाहिए।

(१३) तिरस्कृत मन्त्र– जिसके बीज में दकार, क्रोध बीज (हूँकार) हो और अस्त्र मन्त्र (फट्) हो, वह तिरस्कृत मन्त्र कहा जाता है।

(१४) भेदित मन्त्र– दो प्रणव हों (ॐ) आदि में तथा अन्त में वषट् और मध्य में अस्त्र (ह:) मन्त्र हो उसको भेदित मन्त्र कहते हैं। यह सब सिद्धियों के लिए त्याज्य है।

(१५) सुषुप्त मन्त्र– त्रिवर्ण हो और हंस रहित हो, वह सुषुप्त मन्त्र होता है।

(१६) मदोन्मत्त मन्त्र– जिस मन्त्र या विद्या में सात से अधिक दश अक्षर तक हों, फट्कार पञ्चक हो, उसे मदोन्मत्त मन्त्र कहते हैं।

(१७) मूर्च्छित मन्त्र– जिस मन्त्र के बीच में अस्त्र मन्त्र (हः) हो, उसे मूर्च्छित मन्त्र कहते हैं।

(१८) हतवीर्य मन्त्र– विरामस्थान में (शेष में) जिसमें अस्त्र मन्त्र हो, उसे हतवीर्य मन्त्र कहते हैं।

(१९) हीन मन्त्र–आदि, मध्य, अन्त में चार अस्त्र से युक्त हो और अट्ठारह अक्षर वाला हो, उसे हीन मन्त्र कहते हैं।

(२०) प्रध्वस्त मन्त्र– जो मन्त्र उन्नीस अक्षर का हो और प्रणव युक्त हो, हल्लेखा (मायाबीज एवं अंकुश बीज) जिसमें हो, उसे प्रध्वस्त मन्त्र कहते हैं।

(२१) बालक मन्त्र–सात अक्षर के मन्त्र की बालक संज्ञा।**(२२) कुमारमन्त्र**–आठ अक्षर के मन्त्र की कुमार संज्ञा।

(२३) युवामन्त्र–सोलह अक्षर के मन्त्र की युवा संज्ञा।**(२४) प्रौढ़ मन्त्र**–चालीस अक्षर के मन्त्र की प्रौढ़ संज्ञा।

(२५) वृद्ध मन्त्र–तीस वर्ण, चौसठ, सौ, एक सौ चार अक्षर जिस मन्त्र में हो, उसको वृद्ध मन्त्र कहते हैं।

(२६) निस्त्रिंश मन्त्र– नवाक्षर मन्त्र हो, ध्रुव से युक्त हो, उसे निस्त्रिंश मन्त्र कहते हैं।

(२७) निर्बीज मन्त्र– जिसके बाद में हृदय मन्त्र, शिरोमन्त्र, शिखामन्त्र, हूँ मन्त्र और वौषट् मन्त्र, फट् शब्द और शिव-शक्ति वर्ण से रहित हो, वह निर्बीज मन्त्र कहा जाता है।

(२८) सिद्धिहीन मन्त्र– पूर्वोक्त स्थानों में फट्कार, षोढ़ा न हो, वह सिद्धिहीन मन्त्र होता है।

(२९) मन्द मन्त्र– पंक्त्यक्षर (द अक्षर) का मन्त्र मन्द होता है।

(३०) निरंशक मन्त्र– एकाक्षरी मन्त्र निरंशक मन्त्र है।

(३१) सत्त्वहीन मन्त्र– जिसमे दो अक्षर होता है, वह सत्त्वहीन मन्त्र होता है।

(३२) केकर मन्त्र– जो चार वर्ण का मन्त्र होता है, वह केकर मन्त्र होता है।

(३३) बीजहीन मन्त्र– जो षडक्षर मन्त्र होता है, उसमें कोई ओंकार आदि बीज नहीं होता। ऐसे मन्त्र को बीजहीन मन्त्र कहते हैं।

(३४) धूमित मन्त्र– साढ़े बारह अक्षर का मन्त्र हो, अन्त में व्यंजन योग हो और जिसमें साढ़े तीन अक्षर हों, उसे धूमित मन्त्र कहते हैं।

(३५) आलिङ्गित मन्त्र– बीस वर्ण या तीस वर्ण का जो मन्त्र होता है, उसे आलिङ्गित मन्त्र कहते हैं।

(३६) मोहित मन्त्र– बाइस अक्षर के मन्त्र को मोहित मन्त्र कहते हैं।

(३७) क्षुधार्त मन्त्र– चौबीस और सत्ताईस वर्ण वाले मन्त्र को क्षुधार्त मन्त्र कहते हैं।

(३८) अतिदृप्त मन्त्र– चौबीस, ग्यारह, पच्चीस तथा तेइस वर्ण वाला मन्त्र अतिदृप्त मन्त्र होता है।

(३९) अङ्गहीन मन्त्र– छब्बीस, छत्तीस और उनतीस अक्षर के मन्त्र की अङ्गहीन संज्ञा होती है।

(४०) **अतिक्रुद्ध मन्त्र**— अट्ठाइस और इक्कीस वर्ण वाले मन्त्र को अतिक्रुद्ध मन्त्र कहा जाता है। यह सब कर्मों में निन्दित है।

(४१) **अतिक्रूर मन्त्र**—तीस और तैंतीस अक्षर का मन्त्र अतिक्रूर मन्त्र होता है। यह भी सभी कर्मों में निन्दित है।

(४२) **सव्रीड मन्त्र**— तीस अक्षर से लेकर तिरसठ अक्षर वाले मन्त्र सव्रीड मन्त्र कहे जाते हैं।

(४३) **शान्तमानस मन्त्र**— पैंसठ अक्षर वाले मन्त्रों को शान्तमानस मन्त्र कहते हैं।

(४४) **स्थानभ्रष्ट मन्त्र**— पैंसठ से लेकर निन्यानबे अक्षर वाले मन्त्रों को स्थानभ्रष्ट मन्त्र कहते हैं।

(४५) **विकल मन्त्र**—तेरह, पन्द्रह और सौ अक्षर के तथा एक सौ पचास अक्षर वाले मन्त्रों की विकल संज्ञा होती है।

(४६) **निस्नेह मन्त्र**— दो सौ, बानबे, इक्यानबे, तीन सौ अक्षर के मन्त्र को निस्नेह मन्त्र कहते हैं।

(४७) **अतिवृद्ध मन्त्र**— चार सौ अक्षर से प्रारम्भ करके एक हजार तक के मन्त्र अतिवृद्ध मन्त्र कहे जाते हैं। वे प्रयोगों में परित्याज्य हैं।

(४८) **पीड़ित मन्त्र**— एक हजार अक्षर वाले मन्त्र को दण्डक कहते हैं। उनकी पीड़ित संज्ञा होती है। दो हजार अक्षर वाले मन्त्रों का सौ-सौ खण्ड करने पर, इनकी स्तोत्र संज्ञा होती है अर्थात् इनको स्तोत्र कहते हैं।

जिस प्रकार मन्त्र सदोष होते हैं, उसी प्रकार विद्याएँ भी सदोष होती हैं। उनके दोषों को न जान कर जो साधक मन्त्र जपता है, उसको करोड़ों वर्षों में भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती है। (यह मन्त्रों के दोषों का विषय अतिगुप्त है। भगवान् शङ्कर के द्वारा ही ऐसा किया गया है, जिससे हर व्यक्ति जो अधिकारी न हो, वह इन मन्त्रों से अनुचित लाभ न ले सके। हमारे कुछ पूर्वजों को मन्त्रसिद्धि द्वारा समस्त शास्त्रों के रहस्य ज्ञात हो गये थे। इसीलिए प्रगल्भाचार्य के शिष्य विद्यारण्ययति ने जो इस 'विद्यार्णव तन्त्र' के रचयिता हैं, अपने गुरु प्रगल्भाचार्य से ज्ञात करके इनका अर्थ विस्तृत रूप से नाना तन्त्रों के प्रमाण देकर लिखा है। पृ.सं. ३२ से ३३ पृष्ठ तक उन मन्त्र दोषों के लक्षणों का अर्थ लिखा है। यह सब गुरुओं के जानने की विद्या है, जो दोषरहित मन्त्र अपने शिष्यों को दे। विस्तार भय से हमने भाव मात्र लिखा है। विशेष जिज्ञासा जिन गुरुओं को हो, वे विद्यारण्य यति कृत अर्थ से अपनी जिज्ञासा का समाधान कर लें।)

ये गुप्त मन्त्रों के दोष काम्य कर्मों में ही निषिद्ध हैं, निष्काम कर्म करने वालों को मन्त्र-जप में दोष बाधक नहीं होते। जिनको काम्य कर्म की इच्छा हो, उनको इन मन्त्रों के दोषों का निराकरण कर लेना चाहिए। आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रक्रिया से मन्त्र-दोष दूर होते हैं।

मन्त्रदोषनाशक प्रक्रिया

शारदातिलक में इन दोषों के निराकरण का उपाय बताया गया है। पन्द्रह श्लोकों में इनका मूलरूप से ३६वें पृष्ठ पर वर्णन है। इसका सार ग्रन्थकार विद्यारण्य यति ने ३६वें पृष्ठ पर लिखा है। उसी का हिन्दी भाषा में रूपान्तर करने का प्रयास किया गया है।

आभ्यन्तर प्रक्रिया

बद्धयोनिमुद्रा वाला साधक या गुरु सिद्धासन से बैठे। बाँयी एड़ी से मूलाधार को दबाकर उसके

ऊपर दक्षिण पैर रखे। दक्षिण पाद के अंगुली के अग्र भाग का सम्पर्क हो, इस प्रकार दाहिनी एड़ी उपस्थ के ऊपर भाग में लगाकर उस स्थान पर बन्ध लगा दे, स्थिर रूप से बैठकर गुदा का आकुञ्चन करके अपान वायु को ऊपर उठा कर हृदय में स्थित प्राणवायु में मिला ले। एकाग्रचित्त होकर मूलाधार में स्थित चित् स्वरूप कुण्डलिनी रूपी परमात्मा में अपना जो साध्य मन्त्र है, उसके दोष का चिन्तन करके उस मन्त्र के एक-एक अक्षर का सुषुम्ना मार्ग से मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञाचक्र– इन छ: चक्रों का क्रम से भेदन करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर पुन: उन मन्त्रों को आज्ञाचक्र, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान चक्रों का क्रम से भेदन करता हुआ मूलाधार में आ जाय। फिर जो साध्य मन्त्र है, उसका ऋषि आदि षडङ्गादि न्यास करके यथोक्त भावना से एक हजार आठ बार जप करे। यह मन्त्र का 'आभ्यन्तर' संस्कार की प्रक्रिया है। हमारे आराध्यचरण **धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा इस विधि का सुगम एवं सरल रूप से 'श्रीविद्यारत्नाकर' में भी प्रतिपादन किया गया है।**

मन्त्रों के दश संस्कार

बाह्य क्रिया के द्वारा मन्त्रदोषों को दूर करने के लिए दस प्रकार के संस्कारों का वर्णन शारदातिलक में किया गया है। जिन संस्कारों से सुसंस्कृत होकर मन्त्र सिद्धिप्रद होते हैं।[1]

(१) जनन (२) जीवन (३) ताड़न (४) बोधन (५) अभिषेक (६) विमलीकरण (७) आप्यायन (८) तर्पण (९) दीपन और (१०) गुप्ति।

(१) जनन संस्कार– मातृका के पचास अक्षरों से मन्त्र का उद्धार करना। इसको जनन संस्कार कहते हैं। इसकी विधि स्वयं ग्रन्थकार ने विस्तृत रूप से लिखी है। चन्दनादि पीठ पर कुंकुमादि पञ्चगन्ध से वक्ष्यमाण पाञ्चभौतिक चक्र लिख कर, उसमें सरस्वती का आवाहन करके पञ्चोपचार से पूजन करके एक सौ आठ मातृका का जप करके और उसके बीच से अपने अभीष्ट मन्त्र का स्वर, व्यञ्जन, बिन्दु, विसर्ग, संयुक्ताक्षर पृथक्-पृथक् निकाल कर, तब उनको एकत्र करके गुरु के उपदेश से ज्ञात मन्त्र का जप करे। इसी को जनन संस्कार कहते हैं।

(२) जीवन संस्कार– 'नम: शिवाय' मन्त्र के एक-एक अक्षर को प्रणवसंपृक्त करके जप करे, फिर पूरे मन्त्र का जप करे। इसको जीवन संस्कार कहते हैं। यथा– 'ओं नं, ओं मं, ओं शिं, ओं वां, ओं यं'। इस प्रकार प्रणवान्तरित अक्षरों का जप करके फिर पुरे मन्त्र का जप करें, यह जीवन संस्कार है। इस प्रकार अन्य मन्त्रों का भी जप करने का विधान है।

(३) ताडन संस्कार– भोजपत्र में कुंकुमादि द्रव्यों से मन्त्र लिखकर चन्दनमिश्रित जल से 'यं' बीज का उच्चारण करते हुए प्रत्यक्षर (मन्त्र में जितने अक्षर हों) एक-एक अक्षर पर चन्दनमिश्रित जल से प्रोक्षण करें।

(४) बोधन संस्कार– केशर, कर्पूरादि से अपने मन्त्र को लिखकर करवीर का प्रक्षेप करें। 'यं' बीज बोलते हुए मन्त्र के जितने अक्षर हों, उतने पुष्प डालें। (विद्यारण्य यति जी ने अपनी टीका में शत बार पुष्पों का प्रक्षेपण लिखा है।)

१. पृ० सं० ३६–३७ (श्री. वी.त.)

(५) अभिषेक संस्कार— पूर्ववत् पीठ के ऊपर कुंकुम, केशर, गोरोचन आदि सुगन्धित द्रव्यों से अष्टदल कमल का निर्माण करे। उसी कर्णिका में कुंकुमादि मिश्रित द्रव्यों से मालती पुष्प की कलियों से उतनी बार मन्त्र का नाम बोलकर (जैसे— गणपति मन्त्र, बालामन्त्र, षोडशीमन्त्र आदि) 'अभिषिञ्चामि नमः' ऐसा उच्चारण करके मन्त्र के अक्षर की जितनी संख्या हो, उतनी बार तर्पण करे। अथवा अश्वत्थ (पीपल) के पत्तों से १०८ बार सुगन्धित जल छोड़े। यह अभिषेक संस्कार होता है।

(६) विमलीकरण संस्कार— अपने मन्त्र का मन से मूलाधार में स्थित चिदग्नि का चिन्तन करे। ज्योति मन्त्र के तेज से उसका संस्कार करे। तार-प्रणव, व्योम-हकार, अग्नि-लकार, दण्डी-अनुस्वार, अर्थात् 'ॐ ह्लौं' यह ज्योति मन्त्र है। इस मन्त्र को बोलते हुए मन से मन्त्र के आणव, मायिक, कार्मण, सहज-आगन्तुक मलों को मन से उच्चारण करते हुए इसके एक-एक मल का नाश करे। एवं 'मलरहित हो गया' ऐसा ध्यान करके जप करे। यह विमलीकरण है।

(७) आप्यायन संस्कार— पूर्ववत् मन्त्र को कुंकुमादि से पीठ पर लिख कर ताम्र पात्र में कर्पूरादि द्रव्यों से सुगन्धित शुद्ध जल डालकर जो मन्त्र लिखा गया है, उस पर एक सौ आठ बार कुशा द्वारा सुगन्धित जल से तीन-तीन बार प्रोक्षण करें। ये आप्यायन संस्कार है।

(८) तर्पण संस्कार— पूर्ववत् ताम्रादि पात्र में मन्त्र लिखकर दूसरे पात्र में सुगन्धित जल रखें। उस मन्त्र को बोलते हुए उसका नाम 'अमुकं मन्त्रं तर्पयामि नमः' इस प्रकार अञ्जलि से १०८ बार लिखित मन्त्र के ऊपर डाले।

(९) दीपन संस्कार— अपने मन्त्र के आगे प्रणव, भुवनेश्वरी बीज, श्री बीज लगाकर १०८ बार जप करे, इसको दीपन कहते हैं। (ॐ ह्रीं श्रीं—यह मन्त्र है)

(१०) गुप्ति या गोपन संस्कार— अपने मन्त्र को गुप्त रखना, किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना— इसको गुप्ति कहते हैं। अपने सम्प्रदायानुसार अपने मन्त्र का संस्कार करने से वाञ्छित फल प्राप्त होता है।

२५ मन्त्रदोष (कादिमत)

(१) दग्ध— जिस मन्त्र में ६ कूट अर्थात् 'हूँ' बीज हों, वह मन्त्र दग्ध होता है।

(२) त्रस्त— अधिक जप से मन्त्र त्रस्त हो जाता है।

(३) गर्जित— अविधि से प्राप्त किया हुआ मन्त्र गर्जित होता है अर्थात् जो गुरु विधि को छोड़कर लोभ या मोह से मन्त्र देता है, वह गर्जित होता है।

(४) शत्रु— वैरिकोष्ठ में स्थित मन्त्र शत्रु कहा जाता है।

(५) बालक— कम अक्षर वाले मन्त्र बालक, कहा जाता है।

(६) वृद्ध— ज्यादा अक्षर वाले मन्त्र वृद्ध होते हैं। (लघु अक्षर और गुरु अक्षर का वर्णन मातृका श्वास में देखें)

(७) निर्जित— निर्जित मन्त्र उसको कहा जाता है, जिसको स्वतन्त्रोक्त विधि को छोड़कर सिद्धि लाभ के

लिए गुरुप्रोक्त मन्त्र का जप, तर्पण, होम, पूजन, मार्जन बार-बार किया जाता है, वह मन्त्र निर्जित और गर्हित होता है। वह साधक को कभी फल नहीं देता। अत: स्वतन्त्रोक्त विधि से ही प्रयत्नपूर्वक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। (विधि का ज्ञान गुरु से करे)।

(८) असह दोष— असह दोष उसको कहते हैं, जिसका अनियमित रूप से जप किया जाता है।

(९) सत्त्ववर्जित— जो पुरश्चरणहीन होता है अर्थात् जिसका पुरश्चरण नहीं किया जाता, वह सत्त्वहीन होता है। नित्य, नैमित्तिक कर्म, पुरश्चरण आदि क्रिया न करने से मन्त्र सत्त्वगुण वर्जित होता है। प्रोक्त क्रिया करने से मन्त्र सत्त्वगुण सम्पन्न होकर अभीष्ट फल प्रदान करता है।

(१०) छिन्न मन्त्र— स्वर, वर्णहीन हो और पल्लव रहित हो, उसको अपूर्ण कहते हैं। अपूर्णरूप होने से वह छिन्न होता है। मन्त्रों का वास पल्लव और प्रणव शिर होता है। शिर-पल्लव-संयुक्त मन्त्र वाञ्छित फल देने वाला होता है। न्यास के बिना मूक होता है। आसनरहित 'सुप्त' और पल्लवरहित मन्त्र 'नग्न' कहा जाता है।

(११) स्तम्भित मन्त्र— सानुनासिक मन्त्र स्तम्भित कहे जाते हैं।

(१२) प्रमत्त मन्त्र— असमय में प्रयोग करने पर मन्त्र प्रमत्त हो जाता है।

(१३) अप्रबोध मन्त्र— वाम स्वर में जप करने से मन्त्र (अप्रबुद्ध) हो जाता है।

(१४) कीलित मन्त्र— ***पत्र या पुस्तक में लिखा हुआ मन्त्र पढ़कर जप करने से एवं अन्य वर्ण साथ में मिलाकर पढ़ने से मन्त्र कीलित कहे जाते हैं।***

(१५) रुद्धमन्त्र— सन्धि रहित मन्त्रों को रुद्ध कहते हैं।

(१६) दु:खित मन्त्र— वैरीवर्ण से युक्त जो मन्त्र होते हैं, उनको दु:खित कहते हैं।

(१७) खण्डित मन्त्र— जप स्वर वर्ण का यथावत् उच्चारण न करके जप किया जाय, तो खण्डित दोष युक्त होता है।

(१८) असंवृत मन्त्र— कवचादि रहित मन्त्र असंवृत कहा जाता है।

(१९) हीनवीर्य मन्त्र— अपूर्ण गुरु के द्वारा प्राप्त मन्त्र हीनवीर्य होता है।

(२०) कुण्ठित मन्त्र— सदा काम्य प्रयोग करने से मन्त्र कुण्ठित हो जाता है। अत: काम्य प्रयोगों के बाद शान्ति करने का विधान है।

(२१) क्लेश मन्त्र— ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत यथावत् उच्चारण न करने से मन्त्र को क्लेश होता है। अशुद्ध मन्त्र को जपने से सिद्धि नहीं होती, अत: मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करना परमावश्यक है।

(२२) रुष्ट मन्त्र— जप के समय वार्तालाप करने से मन्त्र रुष्ट हो जाता है, अत: मौन होकर जप करना चाहिए।

(२३) असह, आविल मन्त्र—अन्य मन्त्रों के साथ अपने मन्त्र को जपने से असह या आविल दोष आ जाता है।

(२४) उपेक्षामन्त्र—मन्त्र ग्रहण के अनन्तर कुछ कष्ट होने से श्रद्धारहित जप करने से उपेक्षा दोष आ जाता है।

(२५) अवमानित मन्त्र— मन्त्र गुरु देवता की उपेक्षा करने से मन्त्र अपमानित हो जाता है। ये पच्चीस दोष कादिमत में बताये गये हैं।

इस प्रकार मन्त्र के दग्ध से लेकर अपमानित तक २५ दोष होते हैं। गुरु को इन दोषों का परिहार करा देना चाहिए। ग्रन्थकार ने इनके लक्षणों का तन्त्रान्तरों के प्रमाणों से स्पष्टीकरण भी किया है। यह पृ. ३६, ३९ में वर्णित है। त्रैलोक्यडामरतन्त्र, त्रिपुरार्णव, योगिनीहृदय, तन्त्रराजतन्त्र, मातृकार्णव आदि तन्त्रों के प्रमाणों से इन २५ दोषों का विशद रूप से वर्णन किया गया है। इन दोषों का शमन करने के लिए जो पूर्व में कालीमत के दोषों का निराकरण करने के लिए बद्धयोनिमुद्रा का वर्णन किया है, उसी प्रकार बद्धयोनिमुद्रा में जप करने से इन दोषों का भी निराकरण आवयक है एवं मन्त्रवीर्य का ज्ञान भी कराना चाहिए। इस प्रकार गुरु का कर्तव्य है कि ये दोनों ही कार्य करके शिष्य की रक्षा करे।

गुरु का लक्षण यह भी है कि आदिम और अन्त्य का शिष्य को ज्ञान करा दें। आदिमान्त्यविहीन जो मन्त्र होते हैं, वे शरदकालीन मेघों की तरह होते हैं। जिस प्रकार शरद ऋतु के मेघ आते हैं और चले जाते हैं, उसी प्रकार आदिमान्त्यविहीन मन्त्र भी शरत्कालीन बादलों की तरह अस्थिर होते हैं। इसलिए गुरु को 'अहं' तत्त्व का बोध शिष्य को करा देना चाहिए।

॥ अहंविमर्श मध्यमधामप्रतिष्ठा ॥

'अहं' तत्त्व के स्वरूप का वर्णन बहुत रहस्यमय एवं गहन है। आगे दीक्षाप्रकरण में लिखा जायेगा। इसका सार यह है कि शिष्य की मध्यमधाम में प्रतिष्ठा हो जाय एवं स्पन्दतत्त्व का ज्ञान हो जाय, यही आदिमान्त्य का अर्थ है।

भगवान् शिव कहते हैं कि ''मत्समो जायते नरः'' अर्थात् आदिमान्त्य का ज्ञान होने पर मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है। इस प्रकार अनादि क्रम में संसिद्ध मातृकायोजनपूर्वक जप से सर्वमन्त्रार्थविग्रह वाली तादात्म्यसिद्धि हो जाती है।

॥ कादिमत में मन्त्रदोषनिराकरण ॥

यहाँ भाव मात्र लिखा है। वस्तुतः यह गुरुओं के जानने की विद्या है। शिष्य को दोषरहित मन्त्र ही देना चाहिए। अतः गुरु का कर्तव्य है कि मन्त्रदोषों का ज्ञान करके एवं इन दोषों को दूर करने की विधि भी ज्ञात करे। ग्रन्थकार ने इन दोषों का लक्षण तीन पृष्ठों में विशद रूप से किया है। उनका यथावत् अध्ययन करने से मन्त्रदोषों का स्पष्टीकरण सम्यक्तया हो जाता है, अतः जिज्ञासु साधकों के लिए ग्रन्थकार ने नाना तन्त्रों में प्रोक्त लक्षणों का विशद रूप से प्रतिपादन किया है। सदोष मन्त्रों को दोषरहित करने के लिए कालीमत में मन्त्रों का दोषनिराकरण करने के लिए योनिमुद्रा का वर्णन किया गया है। एवं मातृकासम्पुटित मन्त्रजप, मातृका से सम्पुटित करके जप करना आभ्यन्तर संस्कार है और बाह्य संस्कार में दश संस्कारों का वर्णन पहले किया गया है। इसी प्रकार कादिमत के मन्त्रों के दोषों का भी निराकरण करें।

सोलह नित्याओं के मन्त्र और जितने त्रिपुरा के मन्त्र हैं, उनको मेलन करने की आवश्यकता नहीं है। यह पूर्व में भी कहा गया है कि नित्य, नैमित्तिक कर्मों में अंशकादि मेलन आवश्यक नहीं है, किन्तु काम्य कर्मों की सिद्धि के लिए मन्त्रमेलन करना आवश्यक है। अतः उसका प्रकार लिखा जा रहा है।

अश्विन्यादि २८ नक्षत्र और मेषादि बारह राशियों के मन्त्रमेलन के लिए मातृकार्णवतन्त्र में बारह कोष्ठों का चक्र लिखने का विधान लिखा है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में चार सूत्रपात अर्थात् चार-चार रेखाएँ लिखें, उससे बारह कोष्ठ बनेगा। पूर्वदिशा से प्रारम्भ कर प्रदिक्षणक्रम से चार-चार अक्षर लिखें। बिन्दु, विसर्ग और सकार को न लिखें। इस प्रकार बारह कोष्ठों में मिलाकर ४८ अक्षर हो गये।

इस प्रकार मेषादि बारह राशियों को भी उन चक्रों में लिख दें, इसको राशिचक्र कहते हैं।

तन्त्रराजतन्त्र में मेलन प्रकार

राशि चक्र

कन्या छं जं झं ञं	तुला टं ठं डं ढं	वृश्चिक णं तं थं दं	धनु धं नं पं फं
सिंह गं घं ङं चं	मीन षं हं ळं क्षं	कुम्भ रं लं वं शं	मकर बं भं मं यं
कर्क ओं औं कं खं	मिथुन लृं लॄं एं ऐं	वृष उं ऊं ऋं ॠं	मेष अं आं इं ईं

नक्षत्र चक्र

आर्द्रा ज्येष्ठा णं तं थं	पुनर्वसु मूल दं धं नं	पुष्य पूर्वाषाढ़ा पं फं बं	श्लेषा उत्तराषाढ़ा भं मं यं
मृगशिरा अनुराधा ठं डं ढं	उत्तराफाल्गुनी पूर्वाभाद्रपद हं ळं क्षं	पूर्वाफाल्गुनी धनिष्ठा शं षं सं	मघा श्रवण रं लं वं
रोहिणी विशाखा झं ञं टं	कृत्तिका स्वाति चं छं जं	भरणी चित्रा गं घं ङं	अश्विनी हस्त अं कं खं

योगिनीहृदय

द्वादश खण्डात्मक चक्र में प्रदिक्षण क्रम से गणना करनी चाहिए। जिस खण्ड में मन्त्र का आदिवर्ण हो, उससे लेकर अपने नाम के आदि वर्ण तक इस खण्ड में रहता है, तत् पर्यन्त गणना करे। अथवा नाम के आदि अक्षर से प्रारम्भ कर मन्त्र के आदि अक्षर पर्यन्त गणना करे। गणना करने में षष्ठ, अष्टम और द्वादश मन्त्र का आदिवर्ण और नाम का आदि वर्ण होता है, तो मन्त्र रिपुरहित होता है। वह काम्य कर्म में प्रशस्त है। राशियों में सप्तम, पञ्चम, तृतीय प्रशस्त होता है। साध्य नाम से अंशकादि नाम से मेलन करना चाहिए। राशियों में भी सप्तम, पञ्चम, तृतीय अनुग्रह करने में प्रशस्त होते हैं।

कादिमत में परीक्षा करने के लिए ३६ अक्षर जो ३६ तत्त्वों के है और कालीमत में ४८ अक्षर, उनमें तीन वर्ज्य हैं— बिन्दु, विसर्ग और सकार। इस प्रकार कादि और कालीमत से मन्त्रों की गणना करनी चाहिए।

ऋणशोधनप्रकार (तन्त्रराजतन्त्र)

तन्त्रराजतन्त्र में लिखा है— नाम के आदि अक्षर से प्रारम्भ कर जहाँ मन्त्र का आदिवर्ण हो, वहाँ तक गणना करे। फिर उन मन्त्रवर्णों का, साधक के नामवर्णों का, षोडश स्वरों का भाग देना चाहिए। इसमें यदि नाम के भाग देकर बचे हुए अक्षर, यदि विभाजित मन्त्र के अक्षरों से अधिक हों, तो साधक ऋणी होता है। इसमें तीन प्रकार से मेलन किया जाता है। इसमें ३६ व्यञ्जन वाली मधुमती और पूर्णमण्डल वर्णरूपिणी महामधुमती और पञ्चाशद्वर्णरूप मालिनीविद्या है। मधुमतीमन्त्रमेलन में ऋणशोधन आवश्यक है :— "मधुमत्यां महादेव्यां ऋणशोधो विशिष्यते।
कालीमते तु मालिन्यामंशकाद्यं प्रशस्यते।।"

अर्थात् मधुमती विद्या में ऋणशोधन आवश्यक है और कालीमत मालिनी में अंशकादिशोधन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अन्य और भी मन्त्रमेलनप्रकार दिये गये हैं, जो मूल में स्पष्ट है। गुरुओं की जिज्ञासा इससे पूर्ण रूप से शान्त होगी। विस्तार भय से विशेष नहीं लिखा जा रहा है।

भगवती प्रश्न— मन्त्रों का और साधकों का ऋणी धनी आदि किस कारण से होता है? पूर्व जन्म के अभ्यास, मन्त्र जप की साधना आदि एवं पाप के कारण फल प्राप्त नहीं हुआ, पाप के नष्ट होने पर फल की प्राप्ति होती है। फलप्राप्तिकाल में शरीर का क्षय हो जाय, तो मन्त्र उसका ऋणी रह जाता है। इसलिए मन्त्र सम्प्राप्ति मात्र से पहले के जन्म की सिद्धि से फल प्राप्त होता है।

गुरु से सिद्ध मन्त्र प्राप्त हुआ और साधक को सिद्धि भी मिली। लक्ष्मी मिलने के मद में मन्त्र का अनादर कर दिया। जब दूसरा जन्म होगा, तो वह मन्त्र का ऋणी रहेगा। इसलिए मन्त्र का जो ऋणी हो, उसे मन्त्र नहीं देना चाहिए। इसलिए सिद्धारिचक्र देखना आवश्यक है।

कालीमत में मन्त्रमेलनप्रकार

इसमें २७ कोष्ठ वाला चक्र बनाया जाता है। उसमें पंक्ति-पंक्ति क्रम से अक्षरों को लिख कर अश्विन्यादि नक्षत्रों को लिखकर विचार करना चाहिए। जिस कोष्ठ में साधक के नाम का आदि रहता है, उसमें जो नक्षत्र आता है, उसी को साधक के जन्मनक्षत्र की कल्पना करके फिर उसी नक्षत्र से आरम्भ करके जिस कोष्ठ में मन्त्र का आदि अक्षर रहता है, उस तक गणना करके, उस नक्षत्रमन्त्र का नक्षत्र जान करके, साधकनक्षत्र से प्रारम्भ करके, मन्त्रनक्षत्र तक गणना करनी चाहिए।

कुलमूलावतार में भी इसी प्रकार सिद्धारिचक्र का वर्णन है, मन्त्रमेलन सिद्धारिचक्र आदि आचार्य एवं सद्गुरुओं के क्रियाकलाप हैं। सिद्धगुरु इस ज्ञान से परिपूर्ण होते हैं। ग्रन्थकार ने भी आचार्यों की तुष्टि के लिए चक्रों की अनेक प्रकार की प्रक्रिया का प्रतिपादन किया है, जो इस ग्रन्थ के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हैं।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथ शिष्य-उमानन्दनाथ-शिष्यषोडशानन्दनाथ-शिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित द्वितीय श्वास भावविवृति सम्पूर्ण हुई।।



श्रीविद्यार्णव तन्त्र

तृतीय श्वास

(भाव विवृत्ति)

मन्त्र-विद्यासिद्ध्यर्थ वर्णशक्तियाँ

तृतीय श्वास में सर्वप्रथम कुलमूलावतार, भैरवीतन्त्र, रुद्रयामल, सिद्धान्तशेखर आदि तन्त्रों के मतानुसार ऋणशोधन आदि विचार प्रस्तुत किये हैं, जो पूर्वोक्त विषय को और स्पष्ट कर देते हैं। पूर्व में इसका विस्तार लिखा जा चुका है।

तृतीय श्वास के अन्तर्गत मन्त्रों के न्यास, पूजा, जप की शीघ्र सिद्धि के लिए मातृका के पचास वर्णों की शक्तियों का निरूपण किया गया है। पञ्चाशत् मातृका-वर्णों की ५० शक्तियों को प्रत्येक वर्ण के अग्र भाग में योजना करके न्यास करने से विद्या एवं मन्त्र चेतन तथा वीर्यवान् होते हैं। अत: जप एवं पूजा में शीघ्र सफलता प्राप्त होती है। 'देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्'' देवता भाव से भावित होकर देवपूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है। अत: तन्त्र शास्त्रों में विविध न्यासों से देह को देवमय बनाने का विधान है। इस तृतीय श्वास में विविध न्यासों का विधान वर्णित है, इससे देव भाव की प्रतिपत्ति हो जाती है एवं साधक को विधिवत् न्यास करने से अनुभूति भी होती है।

इस श्वास में ५८ मन्त्र एवं विद्याओं की शक्तियों का निरूपण किया गया है। चार सशक्तिक मातृकायें हैं—श्रीकण्ठ, केशव, काम और सूर्य। इन चारों का सशक्तिक मातृकान्यास करने का विधान है। सोम, सूर्य, अग्नि कलाओं का सपर्या में समायोजन होता है। इसमें विभिन्न मन्त्रसाधकों के सौकर्यार्थ तन्त्रशास्त्रोक्त शक्तियों का एक स्थान पर निरूपण ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। शिवप्रोक्त तन्त्रों में जिस मन्त्र के साधना की विधि है, उस मन्त्र की शक्तियों का उस स्थान में निरूपण है, परन्तु श्रीविद्यार्णव में एक स्थान पर इन शक्तियों का संग्रह प्राप्त होता है, जिससे ग्रन्थकार की बहुज्ञता एवं ग्रन्थ की विशिष्टता, श्रेष्ठता परिलक्षित होती है।

श्रीविद्यामातृका ''कालीमत''[१]

पञ्चाशत्-कला-न्यासविधि – समस्त मन्त्रों के न्यास पूजा और जप के लिए मन्त्रविग्रह मातृकाशक्तियों का उद्धार किया जा रहा है। साधकों के सौकर्य के लिए विशेषकर कालिकामत में 'पञ्चप्रणव', तार के पाँच भेदों से उत्पन्न पञ्चाशत् (५०) मातृकावर्णों की कलाओं का वर्णन तथा मातृकान्यास में इन शक्तियों से संपृक्त न्यास का विधान है। इनका विभिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग आदि वर्णों की पचास कलाओं का मातृकान्यास में प्रयोग होता है। यथा –

---

१. पृ.[१] ४७, श्लोक १ से ८$\frac{1}{2}$ तक

शिरसि	—	अं	निवृत्तिकलायै नमः।
ललाटे	—	आं	प्रतिष्ठाकलायै नमः।
दक्षनेत्रे	—	इं	विद्याकलायै नमः।
वामनेत्रे	—	ईं	शान्तिकलायै नमः।
दक्षकर्णे	—	उं	इन्धिकाकलायै नमः।
वामकर्णे	—	ऊं	दीपिकाकलायै नमः।
दक्षनासापुटे	—	ऋं	रेचिकाकलायै नमः।
वामनासापुटे	—	ॠं	मोचिकाकलायै नमः।
दक्षगण्डे	—	ऌं	सूक्ष्माकलायै नमः।
वामगण्डे	—	ॡं	असूक्ष्माकलायै नमः।
ऊर्ध्वोष्ठे	—	एं	अमृताकलायै नमः।
अधरोष्ठे	—	ऐं	ज्ञानामृताकलायै नमः।
ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ	—	ओं	आप्यायिनीकलायै नमः।
अधोदन्तपङ्क्तौ	—	औं	व्यापिनीकलायै नमः।
जिह्वाग्रे	—	अं	व्योमरूपाकलायै नमः।
कण्ठे	—	अः	अनन्ताकलायै नमः।
दक्षबाहुमूले	—	कं	सृष्टिकलायै नमः।
दक्षकूर्परे	—	खं	ऋद्धिकलायै नमः।
दक्षमणिबन्धे	—	गं	स्मृतिकलायै नमः।
दक्षाङ्गुलिमूले	—	घं	मेधाकलायै नमः।
दक्षकराङ्गुल्यग्रे	—	ङं	कान्तिकलायै नमः।
वामबाहुमूले	—	चं	लक्ष्मीकलायै नमः।
वामकूर्परे	—	छं	द्युतिकलायै नमः।
वाममणिबन्धे	—	जं	स्थितिकलायै नमः।
वामकराङ्गुलिमूले	—	झं	सिद्धिकलायै नमः।
वामकराङ्गुल्यग्रे	—	ञं	रतिकलायै नमः।
दक्षोरुमूले	—	टं	जराकलायै नमः।
दक्षजानुनि	—	ठं	पालिनीकलायै नमः।
दक्षगुल्फे	—	डं	शान्तिकलायै नमः।
दक्षपादाङ्गुलिमूले	—	ढं	ऐश्वर्याकलायै नमः।

दक्षपादाङ्गुल्यग्रे	—	णं	रतिकलायै नमः
वामोरुमूले	—	तं	कामिकाकलायै नमः।
वामजानुनि	—	थं	वरदाकलायै नमः।
वामगुल्फे	—	दं	ह्लादिनीकलायै नमः।
वामपादाङ्गुलिमूले	—	धं	प्रीतिकलायै नमः।
वामपादाङ्गुल्यग्रे	—	नं	दीर्घाकलायै नमः।
दक्षपार्श्वे	—	पं	तीक्ष्णाकलायै नमः।
वामपार्श्वे	—	फं	रौद्रीकलायै नमः।
पृष्ठे	—	बं	भयाकलायै नमः।
नाभौ	—	भं	निद्राकलायै नमः।
जठरे	—	मं	तन्द्रीकलायै नमः।
हृदये	—	यं	क्षुत्कलायै नमः।
दक्षस्कन्धे	—	रं	क्रोधिनीकलायै नमः।
गलपृष्ठे	—	लं	क्रियाकलायै नमः।
वामस्कन्धे	—	वं	उत्करीकलायै नमः।
हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्	—	शं	मृत्युकलायै नमः।
हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्	—	षं	पीताकलायै नमः।
हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्	—	सं	श्वेताकलायै नमः।
हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्	—	हं	अरुणाकलायै नमः।
हृदयादिगुह्यान्तम्	—	ळं	असिताकलायै नमः।
हृदयादिमूर्धान्तम्	—	क्षं	अनन्ताकलायै नमः।

इस प्रकार मातृका वर्णों की पचास कलायें हैं, इनका उपर्युक्त प्रकार न्यास करने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है।

अमृतादि कलाएँ

अमृतादि चन्द्रमा की षोडश कलाएँ षोडश स्वरों से समन्वित हैं। तपिनी और तापिनी आदि सूर्य की बारह कलाएँ, धूम्रार्चि आदि अग्नि की दश कलाएँ हैं। इनके न्यास, पूजा और अभिमन्त्रणादि से साधक को शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

श्रीकण्ठन्यास एवं शक्तियाँ

पञ्चाशत् श्रीकण्ठ एवं पञ्चाशत् इनकी शक्तियाँ हैं। इनका न्यासप्रकार —

१. १३½ से २८ श्लोक तक

शिरसि — अं श्रीकण्ठपूर्णोदरीभ्यां नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

इस प्रकार पञ्चाशत् मातृका वर्णों के स्थानों पर न्यास करने का विधान है, जो मूल में स्पष्ट है। इसका ध्यान २८.½ से २९. ½ श्लोक तक है। (श्रीकण्ठ) रुद्र के हस्त लालकमल एवं कपाल से अलङ्कृत हैं। रुद्रपीठ पर स्थित इनकी शक्तियाँ सिन्दूरारुण वर्णवाली हैं तथा उनका करकमल भी लालकमल और कपाल से विभूषित है। इस प्रकार रुद्र और उनकी शक्तियों का ध्यान करके श्रीकण्ठ न्यास करने का विधान है। श्रीकण्ठ से लेकर संवर्तक तक पचास रुद्र और पूर्णोदरी से लेकर महामाया पर्यन्त। (पृ. ५०, २८ श्लोक तक) रुद्रशक्तियाँ हैं।

केशव एवं उनकी शक्तियाँ

केशव से नृसिंह तक पचास नाम हैं तथा कीर्ति से विद्युता तक पचास शक्तियाँ हैं। इनमें केशवादि श्याम वर्ण हैं और इनके करकमल शङ्ख और चक्र से सुशोभित हैं। विष्णु के अङ्क में शक्तियाँ विराजमान हैं, ये शक्तियाँ विद्युत के समान गौर वर्ण वाली हैं हाथ में अभय एवं कमल धारण की हुई हैं। श्लोक ४१½ में इनके ध्यान का वर्णन है। एवं नामों का भी वर्णन है।

शिरसि— अं केशवकीर्तिभ्यां नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

इस प्रकार इनका न्यास, मूल में नाम निर्दिष्ट है।

।। भास्कर की शक्तियाँ।।

सूर्योपासक के लिए मातृका वर्णों की शक्तियाँ हैं, जिनका न्यास करने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है। यह रवि से प्रारम्भ होकर त्रैमूर्ति तक पचास नामों के रूप में एवं विद्या से लेकर बहुरूपा पर्यन्त पचास शक्तियों के रूप में वर्णित हैं, इनका पूर्वोक्त क्रम से न्यास करने का विधान है।

यथा — शिरसि — अं रविविद्याभ्यां नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

इस प्रकार ४१.½ से आरम्भ करके ५३ श्लोक तक सूर्य और उनकी शक्तियों का वर्णन है।

।। काम और उनकी शक्तियाँ।।

श्लोक ५४ से श्लोक ६७ तक, काम एवं उनकी शक्तियों का वर्णन है। श्लोक ६८, ६९ में इनका ध्यान वर्णित है। काम कर में पुष्प, बाण और इक्षुधनु धारण किये हुए हैं, दाडिम कुसुम के समान रक्तवर्ण वाले हैं। उनकी शक्तियाँ कुंकुम के समान लाल वर्ण वाली, आभूषणों से विभूषित हैं। ये शक्तियाँ त्रैलोक्य का आकर्षण करने में सक्षम हैं। इनका ध्यान करके, पूर्वोक्त विधि से न्यास करें—

यथा — शिरसि — अं कामरतिभ्यां नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

---

१. श्लोक २९.½ से ४०

।। त्रिपुरामन्त्र की शक्तियाँ।।

त्रिपुरा—उपासकों के लिए त्रिपुरामन्त्र की शक्तियों का वर्णन पृ.४९ में, श्लोक १ से ८ तक है।

शिरसि — (त्रिपुरामन्त्र) अं कामिन्यै नमः।

ललाटे — (त्रिपुरामन्त्र) आं मोदिन्यै नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

इस प्रकार अकार से क्षकार पर्यन्त न्यास करने का विधान है। इससे त्रिपुरामन्त्र शक्तिमान् होता है।

गणेश मातृका न्यास सशक्तिक[1]

इसके न्यास का विधान लघुषोढा में वर्णित न्यास के समान है। न्यासविधि इस प्रकार है—

शिरसि — अं श्रीयुक्ताय विघ्नेशाय (विघ्नेश्वराय) नमः।

ललाटे — आं ह्रीं युक्ताय विघ्नराजाय नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

योगिनी मातृका[2]

लघुषोढा के योगिनीन्यास में इनका वर्णन किया गया है एवं इनके ध्यानादि का भी वर्णन करके न्यास की विधि दी गयी है।

यथा — शिरसि — अं अमृतायै नमः।

ललाटे — आं आकर्षिण्यै नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

कामाकर्षिण्यादि मातृका न्यास[3]

कामाकर्षिण्यादि पञ्चाशत् मातृकाओं का श्रीयन्त्र में अर्चन किया जाता है। सर्वाशापरिपूरक चक्र, सर्वसौभाग्यदायकचक्र, सर्वार्थसाधकचंक्र, सर्वरक्षाकरचक्र आदि का श्रीयन्त्र में पूजन होता है और श्रीचक्रन्यास में इनका न्यास किया जाता है।

यथा — शिरसि — अं कामाकर्षिणी-नित्याकला देव्यै नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

(सर्वाशापरिपूरक चक्र में सोलह, सर्वसौभाग्यदायक चक्र में चौदह, सर्वार्थसाधकचक्र में दश, सर्वरक्षाकरचक्र में दश शक्तियाँ न्यस्त हैं। इस प्रकार पञ्चाशत् शक्तियों के पूजन का विधान है।)

त्रिशक्ति (प्रपञ्च) मातृका[4]

महाषोढा के प्रपञ्चन्यास में इनका न्यास होता है। ऊर्ध्वाम्नाय में प्रतिष्ठित साधक इनका श्रीयन्त्र में भी पूजन करते हैं। इसमें दो—दो शक्तियों का एक साथ न्यास होता है।

यथा — शिरसि — अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः।

ललाटे — आं द्विपरूपायै मायायै नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

---

१. पृ. ५० में, श्लोक १ से १२.½। २. श्लोक १ से ७ तक। ३. पृ. ५१, श्लोक १ से १२.½ तक।
४. पृ. ५१, श्लोक १ से पृ. ५२, श्लोक ६—१८।

इसी प्रकार पञ्चाशत् मातृकास्थानों में इनका न्यास किया जाता है। जिसका कुलार्णव तन्त्र एवं श्रीविद्यारत्नाकर में सुगम–सरल विधान प्राप्त होता है।

काली मातृका[1]

काली के उपासकों को अपने मन्त्र को अग्रभाग में योजन करके मातृका न्यास के स्थानों पर इनका न्यास करना चाहिए। यथा –

शिरसि – (मूल मन्त्र) अं काल्यै नमः।

ललाटे – (मूल मन्त्र) आं कपालिन्यै नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

(१) काली (२) तारा (३) षोडशी (४) भुवनेश्वरी (५) त्रिपुरभैरवी, (६) छिन्नमस्ता (७) धूमावती (८) बगला (९) मातङ्गी (१०) लक्ष्मी– ये दश महाविद्याएँ है। जिस साधक को जिस विद्या की दीक्षा हो। उसको तत्–तत् देवता की शक्तियों का मूलमन्त्र के साथ न्यास करना चाहिए। इससे मन्त्र की सिद्धि और देवता की प्रसन्नता शीघ्र होती हैं[2]।

षोडश नित्याओं की मातृकाओं का वर्णन

कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महावज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनी, चित्रा (विचित्रा) इन पञ्चदश नित्याओं का श्रीयन्त्र में पूजन होता है एवं एक–एक नित्याओं की पृथक् रूप से भी उपासना की जाती है। इनमें मातृकान्यास के स्थानों पर तिथिनित्या का मन्त्र और मातृका वर्ण योजन करके न्यास करने से शीघ्र सिद्धि होती है। मूल में पृ. ५५ से ५९ तक इन नित्याशक्तियों का वर्णन है। प्रत्येक नित्या की पञ्चाशत् शक्तियाँ हैं। इन शक्तियों के संयोग से न्यास करने पर मन्त्र शक्तिमान् हो जाता है।

पृ. ५९ से दुर्गामातृका, सरस्वती, वाराही, त्रिमूर्ति, इन देवताओं के उपासकों को भी इष्ट मन्त्र के साथ मातृका न्यास में शक्तियों का संयोजन करके न्यास करना चाहिए।

इस प्रकार कामकला और सोमकला का भी न्यास आवश्यक है। द्वितीय श्वास में इनका विधान दिया गया है। कामकला और सोमकला, ये षोडश स्वरों की शक्तियाँ हैं।

कामकलान्यास की विधि

क्लीं श्रद्धायै नमः – दक्षपादे।

इस प्रकार दक्षपाद से मस्तक पर्यन्त सोलह कलाओं का न्यास होता है। पुनः मस्तक से पाद पर्यन्त विलोम से न्यास होता है।

---

१. पृ. ५२, श्लोक १–८ तक। २. पृ. ५२ से पृ. ५५ तक।

सोमकलान्यासविधि

सं पूषायै नमः — पृष्ठवंशे।

इस प्रकार स के साथ सोलह स्वरों का योजन करके न्यास करने की ३६ वें श्वास के ८७२ पृ. में इसकी पूर्ण विधि वर्णित है। जिज्ञासुओं को वहाँ अवलोकन करना चाहिए।

।। अपराजिता मातृका ।।

इनकी प्रत्यङ्गिरा से प्रारम्भ करके शान्ति पर्यन्त पञ्चाशत् शक्तियाँ हैं। इनका भी अपराजिता के उपासकों को न्यास करना चाहिए। मातृका के स्थानों पर प्रतिवर्ण के साथ में शक्तियों का योग करके न्यास करने से इष्ट देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं— **शिरसि — अं प्रत्यङ्गिरायै नमः।** इत्यादि

इसी प्रकार भवानीमातृका, खेचरीमातृका, चामुण्डामातृका, परामातृका, कुरुकुल्लामातृका, पञ्चदशीमातृका, मालिन्यादिमातृकाओं का, इन देवता के उपासकों को न्यास करना चाहिए। षष्ठ श्वास में इनकी न्यासविधि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। अतः वहीं पर द्रष्टव्य है।

तन्त्रशास्त्रों में लिखा है —

केवलां मातृकां न्यस्य देवीभक्तो भवेद्यदि।
देवतां शक्तिसहितां मातृकां विन्यसेत् बुधः।।

साधक केवल मातृका के न्यास से ही देवभावापन्न हो जाता है। देवता की शक्तियों सहित न्यास करने से इष्टदेवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं एवं इष्ट मन्त्र वीर्यवान् होता है। अतः ग्रन्थकार ने अनेक देवताओं की शक्तियों का एक साथ संग्रह करके साधकसमाज का अतुलनीय उपकार किया है। साधकसमुदाय मन्त्रसिद्धि प्राप्त करके श्रेय और प्रेय के भागी बनें।

पञ्चभूतमातृका

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पाँच महाभूतों से समस्त संसार का निर्माण होता है, ऐसा अनेक आचार्य मानते हैं। संसार की रचना (शब्दों) अक्षरों से होती है, यह वेद और आगम दोनों की मान्यता है। मातृका के पञ्चाशत् वर्ण पञ्चभूतात्मक हैं। एक–एक वर्ण में भी पञ्चमहाभूत व्याप्त हैं। अतः इन मातृका–वर्णों में जगन्निर्माण की शक्ति विद्यमान है। साधना में मातृकावर्णों का जप किया जाता है। इससे पञ्चभूतसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसका तन्त्रराजतन्त्र की टीका, शारदातिलक के राघवभट्टी टीका में विस्तृत विवेचन प्राप्त है। अतः विस्तारभय से हम यहाँ नहीं लिख रहे हैं। केवल दश कोष्ठात्मक एक चित्र दिया जा रहा है, जिसमें वर्णों की पञ्चभूतात्मकता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

पञ्चमहाभूतात्मक वर्णमाला।

वाय्वात्मक	अग्न्यात्मक	पृथिव्यात्मक	जलात्मक	आकाशात्मक
अ	इ	उ	ऋ	ऌ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह	ळ	क्ष
ष	क्ष	ल	स	ह

त्रिषष्ट्यक्षरमातृका

भगवान् शिव के मत में ६३ या ६४ अक्षर मातृका के माने जाते हैं। २१ स्वर, स्पर्श वर्ण क से लेकर म तक —२५, अनुस्वार—विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय क ख प फ आदि य र ल व श ष स ह— ८, चार यम, कुं खुं गुं घुं, ऌ— प्लुत= ६३ अक्षर।

शाम्भवीमातृका

ऊर्ध्वाम्नाय के दीक्षितों के लिए विशेष न्यास की शाम्भवी से लेकर व्यापिनी पर्यन्त पञ्चाशत् शक्तियाँ हैं। ऊर्ध्वाम्नायसाधक को इन शक्तियों के योग से मातृकान्यास करने का विधान है।

यथा— शिरसि — अं शाम्भवीशक्तये नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

इस प्रकार मातृकावर्णों के स्थानों पर पञ्चाशत् शक्तियों के न्यास का विधान है।

कालरात्रिमातृका

कालरात्रि से लेकर परोत्साहा पर्यन्त पञ्चाशत् शक्तियाँ हैं। कालरात्रि के उपासकों को मातृका के स्थानों पर इन पञ्चाशत् शक्तियों का भी न्यास करना चाहिए।

यथा — शिरसि — अं कालरात्रिदेव्यै नमः इत्यादि क्षं पर्यन्त।

तृतीय श्वास में मातृकावर्णों की शक्ति एवं उनमें पञ्चमहाभूतात्मकता का रहस्यपूर्ण परिचय प्राप्त होता है एवं दुर्लभ न्यासविधान संगृहीत है, जिनके प्रयोग से मन्त्र की शीघ्र सिद्धि हो जाती है।

॥ इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथशिष्य-उमानन्दनाथशिष्य-षोडशानन्दनाथशिष्य-दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यावर्णतन्त्र तृतीय श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई॥

श्रीविद्यार्णवतन्त्र

चतुर्थ-श्वास

।। भाव-विवृति ।।

कालीमत में त्रैपुररश्मिक्रम ''त्रिपुरा अधिकार''

।। मातृकावैभव ।।

सभी तन्त्रों में गुप्त रूप से मातृकावैभव विहित है, जिनका सम्प्रदायानुसार ज्ञान करने से साधक निःसंशय हो जाता है। स्वयं मन्त्रोद्धार करने के लिए सर्वप्रथम मातृकारश्मियों का क्रमबोध आवश्यक है। रश्मिक्रम का ज्ञान न करके जो मन्त्रोद्धार करता है, वह वस्तुतः अन्धकार में वस्तु का अन्वेषण करता है। अतः प्रयत्नपूर्वक गुरु से या शास्त्र से सम्यक् ज्ञानं करके साधक को गतसंशय होना चाहिए। मन्त्रवीर्य की सिद्धि के लिए मन्त्र का स्वरूपज्ञान आवश्यक है। मन्त्रवीर्यप्रबोधन से अनायास ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्रवीर्य का ज्ञान न करके जो मन्त्र जप करता है, उसको कोटि-कल्प-सहस्र में भी मन्त्रसिद्धि नहीं होती।

वर्णों की रश्मियाँ श्वास रूपी हैं, इसमें संशय नहीं है। श्वास, प्रश्वास अहोरात्र में इक्कीस हजार छः सौ होते हैं। श्वास आभ्यन्तर और बाह्य रूप से दो प्रकार के हैं, सूर्य और चन्द्र के भेद से ये क्रूर और सौम्य रूप होते हैं। इडा और पिङ्गला के भेद से श्वास अर्धरूप होते हैं। वे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा, इन षट्चक्रों में व्यवस्थित हैं। इस तरह श्वास प्रतिचक्र में तीन हजार छः सौ हैं, अतः सभी चक्रो में कुल मिलाकर २१६०० श्वास प्रश्वास हो जाते हैं।

।। षट्चक्र रश्मियाँ।।

मूलाधार—पृथ्वी का स्थान है। इसी तरह **स्वाधिष्ठान**—अग्नि का, **मणिपूरक**—जल का, **अनाहत**—वायु का, **विशुद्धिचक्र**—आकाश का, **आज्ञाचक्र**—मन का स्थान है। **मूलाधार** चक्र में चार दल हैं, वं शं षं सं, चार दलों में चार अक्षर हैं। अर्थात् मूलाधार में प्रति अक्षर ९०० से इन ४ अक्षरों को गुणित करने पर ३६०० संख्या होती है। उसमें पृथ्वीतत्त्व की वं से सं पर्यन्त क्रम से प्रत्यक्षर १४ रश्मियाँ हैं। इन १४ रश्मियों को ४ से गुणित करने पर ५६ रश्मियाँ होती हैं, अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि पृथ्वी की मूलाधार में (५६) रश्मियाँ हैं।

मणिपूरक चक्र के दश दल में डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये दश अक्षर हैं। इसमें जल की बावन (५२) रश्मियाँ हैं। **स्वाधिष्ठान** चक्र ६ दलों का है। उसमें बं भं मं यं रं लं ये ६ अक्षर षड्दलों में हैं। इसमें अग्नि की बासठ (६२) रश्मियाँ हैं।

अनाहत चक्र बारह दलों का है, उन दलों में क से ठ पर्यन्त द्वादश वर्ण हैं और उनमें वायु की

चौवन (५४) रश्मियाँ हैं। इस प्रकार षट्चक्रों में ३६० रश्मियाँ होती हैं। षट्चक्रों के प्रत्येक अक्षर में पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि और जल, इन पाँचों तत्त्वों की रश्मियाँ भी व्याप्त हैं, अत: इन्हें संकीर्ण रश्मियाँ कहते हैं। मूलाधारादि षट्चक्रों में पञ्चाशत् वर्णों की जो संकीर्ण रश्मियों के नामों का निरूपण है, उसमें पार्थिव रश्मियाँ शुभदायक हैं। ये संकीर्ण रश्मियाँ जो मूलाधार से आज्ञाचक्र तक व्याप्त हैं, इन चक्रों के पचास दलों में पचास वर्ण हैं और एक एक वर्ण में दो–दो रश्मियाँ हैं, जिनका षट्चक्रों में ध्यान किया जाता है। पूर्णखड्गमालानुसार– मूलाधार में रक्तवर्ण, चतुर्दलपद्म का चार वर्ण – वं शं षं सं हैं, जिनका मूलाधार में ध्यान करें। पुन: इनके संकीर्ण रश्मियों का वहीं पर ध्यान करें। त्रिपुरसुन्दरी–त्रिपुरसुन्दर से प्रारम्भ करके चर्यानाथमयी–चर्यानाथमय (२३ से ३३ श्लोक तक) षट्पञ्चाशत् (५६) रश्मियाँ हैं। मूलाधार में इनका ध्यान करें। ये पार्थिव रश्मियाँ साधक को अभीष्ट फल प्रदान करने वाली हैं। (खड्गमाला के नाम–क्रम मूल में देखें)

मणिपूर चक्र का स्थान नाभि है। नाभि में द्वादश दल हैं, इनमें बावन (५२) रश्मियाँ हैं। लोपामुद्रामयी–लोपामुद्रामय से प्रारम्भ होकर महेश्वरी महेश (३३½ से ४७ श्लोक) जल की रश्मियाँ हैं।

स्वाधिष्ठान में ६ दल और ६ अक्षर हैं तथा बासठ (६२) रश्मियाँ हैं। पूर्वदल से प्रारम्भ करके छ: (६) दलों में बासठ (६२) तेजस् रश्मियों का ध्यान करें। कौमारी–कुमार से प्रारम्भ करके बीजाकर्षणिका–बीजाकर्षण (४८–६२ श्लोक) तक इन रश्मियों का ध्यान करें।

अनाहत चक्र में द्वादशदल, द्वादश अक्षर और चौवन (५४) रश्मियाँ हैं। ये वायव्य (वायु) रश्मियाँ हैं। पूर्वादि दल से इनका ध्यान करना चाहिए। आत्माकर्षिणी–आत्माकर्षण से आरम्भ करके सर्वसम्पत्तिपूरणी–सर्वसम्पत्तिपूरण (पृ.६७, श्लोक ६३–७६) श्लोक तक चौवन (५४) रश्मियों का ध्यान करें।

कण्ठ–विशुद्धिचक्र में षोडशदल में बहत्तर (७२) रश्मियाँ हैं। पूर्वदल से प्रारम्भ करके षोडश दलों में इनका ध्यान करें। ये नाभस (आकाशतत्त्व) रश्मियाँ हैं। सर्वमन्त्रमयी– सर्वमन्त्रमयं से आरम्भ करके कौलिनी–कौलिक (७७–९३½ श्लोक) तक बहत्तर (७२) रश्मियाँ हैं। कण्ठ में इन रश्मियों का ध्यान करें।

आज्ञाचक्र में दो दल, दो अक्षर और चौसठ (६४) रश्मियाँ हैं। ये मानस रश्मियाँ हैं। सर्वरोगहरचक्र के अनन्तर चक्रस्वामिनी–चक्रस्वामी से प्रारम्भ करके महाशया–महाशय (९४–१०९ श्लोक) तक, इन चौंसठ रश्मियों का ध्यान करना चाहिए।

विशेष द्रष्टव्य:– ग्रन्थ के मूल में मणिपूरक और स्वाधिष्ठान चक्र का व्यतिक्रम है, परन्तु अक्षर और रश्मियाँ यथावत् हैं। सभी योगशास्त्रों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, आज्ञा– यह षट्चक्रों का क्रम है। यह व्यतिक्रम सौन्दर्यलहरी में भी है, परन्तु नाममात्र का ही यह व्यतिक्रम है; तत्त्व और रश्मियाँ योगशास्त्र के अनुसार ही हैं।

यह ध्यानप्रक्रिया खड्गमाला नाम से भी प्रसिद्ध है। अनेक साधक इसका श्रीचक्र में अर्चन करते हैं। इसमें एक हजार इकतीस (१०३१) अक्षर हैं। इनकों अर्धरश्मि कहते हैं। इसको 'महात्रिपुरसुन्दरी महात्रिपुरसुन्दर', इस प्रकार द्विधा करने से ये रश्मियाँ शिवशक्त्यात्मक होकरके पूर्ण हो जाती हैं। आचार्य शङ्करकृत सौन्दर्यलहरी स्तोत्र के चौदहवें श्लोक में– "क्षितौ षट्पञ्चाशद् द्विसमधिकपञ्चाशदुदके...." इस श्लोक में ३६० शक्तियों का वर्णन है, ये पञ्चमहाभूतों की रश्मियाँ हैं। इस श्लोक के टीकाकारों ने इन रश्मियों का कई प्रकार से वर्णन किया है। डिण्डिम भाष्य में इसी प्रकार वर्णन किया गया है, जैसा श्रीविद्यार्णवकार ने वर्णन किया है। सौभाग्यवर्धनी, आनन्दगिरि, आनन्दलहरी आदि टीकाओं में विविध तन्त्रों के अनुसार विस्तृत विवेचन किया गया है और इसको अन्तर्याग के रूप में सिद्ध किया गया है। इसका फल लिखा है– एवं रश्मिक्रमं पूर्वं साधको विजितेन्द्रियः।
धनधान्यायुरारोग्यपाण्डित्यादि-पदं व्रजेत्।।

अर्थात् जितेन्द्रिय होकर जो साधक रश्मिक्रम का अनुष्ठान करता है, वह धन–धान्य, आयु, आरोग्य और पाण्डित्य के पद को प्राप्त कर लेता है। श्रीचक्र में इनका अर्चन करने से बहिर्याग सिद्ध होता है। षट्चक्रों में न्यासानुसन्धान से अन्तर्याग हो जाता है। यह मन्त्रप्रबोधन का उत्तम उपाय है। मन्त्रप्रबोधन करने के लिए अनेक विधियाँ ग्रन्थकार ने लिखी हैं, उनमें जो विधि सुगम और सरल है, उनको लिख रहे हैं।

।। रश्मिबोधक चक्र ।।

ये अनन्त रश्मियाँ हैं। मातृका के पचास वर्णों में एक–एक अक्षर की शताधिक, सहस्राधिक रश्मियाँ हैं। इस ग्रन्थ के पचीसवें (२५) श्वास में इन रश्मियों का बोधक चित्र दिया गया है, जिससे पञ्चमहाभूतों की एवं पचास अक्षरों की रश्मियों का सरलता से परिचय प्राप्त होता है। दुरूह विषय होने से ग्रन्थकार ने इसका चित्र देकर इसे सरल–सुगम कर दिया है।

पृ. ७१ से ७४ तक कालीमत और कादिमत के अनुसार पञ्चाशत् वर्णों की रश्मियों का वर्णन है।

।। रश्मिभावना से मन्त्रशक्ति प्रबोधन ।।

तन्त्रराजतन्त्र में भगवान् शङ्कर भगवती से कह रहे हैं– मातृकावैभव का वर्णन मैंने किया है तथा प्रत्येक अक्षर की रश्मियों का भी वर्णन किया है। मन्त्रों का निरन्तर भावनापूर्वक ध्यान करने से मन्त्रवीर्य प्रकाशित होता है। यह तन्त्रों में गुप्त है। साधक इस प्रकार स्मरण करता है, तो उसको शीघ्र मन्त्रसिद्धि हो जाती है। तन्त्रराज तन्त्र में भी यही कहा गया है कि इन अक्षरों की रश्मियाँ तेजःपुञ्ज एवं शक्तिमूर्ति हैं। रश्मियाँ समस्त प्रपञ्च की कारणभूत हैं और तीनों गुण सत्त्व, रज, तम की, एवं संसार की भी इन्हीं से उत्पत्ति होती है। इस प्रकार भावना करने से सम्यक् सिद्धि प्राप्त होती है। यही मन्त्रों का वीर्य एवं जीव है। इसप्रकार मन्त्र के प्रबोधन की प्रक्रिया प्रकाशित की गयी है, इससे मन्त्र बलवान् एवं शक्तिसम्पन्न हो जाते हैं।

।। मन्त्रशक्तिह्रास का कारण ।।

मन्त्र शक्तिहीन एवं दुर्बल क्यों होते हैं, इसका कारण बता रहे हैं– अयोग्य व्यक्ति को मन्त्रदीक्षा देने से, मन्त्र के द्वारा सदा काम्यप्रयोग से, असमय में जप, पूजादि करने से, गुरु की अवज्ञा से, निषिद्ध आचरण से, पापों से, देवताद्रोह से, सम्प्रदाय का ज्ञान न होने से एवं एक मन्त्र के साथ कई मन्त्रों की साधना करने से मन्त्र शक्तिहीन हो जाता है। इस प्रकार अनुसंधान और ज्ञान से जीवन्मुक्त हो जाता है, तथा शीघ्र मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

।। उत्तरतन्त्र में मन्त्रप्रबोधनप्रकार एवं कुण्डलिनीक्रिया से मन्त्रचैतन्य।।

भगवान् शङ्कर पार्वती से कह रहे हैं कि साधकों के हित के लिए मन्त्रशक्ति को प्रकट कर रहा हूँ, जिसके अज्ञान से सभी मन्त्र चेतनारहित रहते हैं। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त– कोटि सूर्य के समान प्रभाव वाली, कोटि विद्युत के समान, चन्द्रकोटिप्रभामयी, जगत् की सृष्टि, पालन, और संहार करने वाली, अष्टात्रिंशत्–कलारूप, सर्वमन्त्रमयी, सर्वतेजोमयी, दिव्यातिदिव्य, परमामृतवर्षिणी, षट्चक्रमार्गनिलया, षड्चक्रों से सहस्रार तक अवलम्बिनी कुण्डलिनी शक्ति के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। उक्त ध्यान में षट्चक्रों की अष्टात्रिंशत् कमल के समूह की भावना करके उस चक्र में स्थित जो अक्षर कुण्डलिनी सूत्र से गुम्फित हैं, उसमें सूर्य, अग्नि और चन्द्र रूप तेजस्त्रयात्मक कुण्डलिनी का ध्यान करें। इस प्रकार गमनागमन अर्थात्– सर्वप्रथम मूलाधार में यह भावना करनी चाहिए कि भगवती मूलाधार से सुषुम्नामार्ग से सहस्रार में जाकर अमृतच्यवन कर रही हैं तथा पुनः सहस्रार में यही भावना करनी चाहिए कि सहस्रार से मूलाधार तक अमृतच्यवन हो रहा है– सहस्रार से मूलाधार में जाकर पुनः सहस्रार में, इसी क्रिया को गमनागमन शब्द से स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार गमनागमन भावना करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और इससे ही षट्कर्म भी सिद्ध होते हैं। यही अन्तर्योनि मुद्रा है। यह गुरुगम्य है।

।। गुरुध्यान से मन्त्रचैतन्य।।

ग्रन्थकार ने मन्त्रवीर्य, मन्त्रचैतन्य के कई प्रकार लिखे हैं। इनसे समर्पित अनन्य साधक ही गुरुकृपा से लाभान्वित हो सकते हैं। इसलिए इनको ग्रन्थकार ने गुप्त रखने के लिए लिखा है। मन्त्रशक्ति की प्राप्ति के लिए सरलातिसरल उपाय, दीक्षाकाल में अनुग्रह करते हुए गुरु का जैसा रूप, वेषभूषा हो, वैसा ही रूप ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करके मातृकाक्षरमाला से एक सहस्र जप करने से गुरुकृपा से मन्त्र वीर्यवान् हो जाता है। तीनों भुवनों में दुर्लभ, यह सुगम प्रकार है, इससे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

यहाँ तक पञ्चाशत् अक्षरों की अनन्त रश्मियाँ, अनन्त शक्तियाँ मन्त्रप्रबोधन की विधियों का उल्लेख किया गया। अब दक्षिणामूर्तिसंहितानुसार मातृकान्यास का विधान प्रस्तुत है।

।। मातृकान्यास ।।

मातृका के सम्यक् न्यास का अभिधान किया जा रहा है। जिससे अशेष दुःखों का शमन एवं

समस्त ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, सर्वदेववन्दिता सरस्वती देवता, हल बीज, स्वर शक्ति, बिन्दु कीलक है। भगवती का ध्यान करके अन्तर्मातृका और बहिर्मातृका के न्यास का विधान है।

अन्तर्मातृका— कण्ठ में विशुद्धि चक्र है, उसमें दक्षिणावर्त सोलह स्वरों का न्यास करें।

हृदयप्रदेश अनाहत में— कं से ठं तक १२ अक्षरों का बारह दलों में न्यास करें, नाभि—मणिपूर चक्र में— डं से फं दश अक्षरों का दशदलों में न्यास करें। लिङ्गमूल स्वाधिष्ठान के षड्दलों में बं से लं तक, ६ अक्षरों का न्यास करें। मूलाधार के चतुर्दल में वं से सं तक, चार अक्षरों का न्यास करें। आज्ञाचक्र के दो दलों में हं और क्षं दो अक्षरों का न्यास करें।

॥ बहिर्मातृका ॥

इस प्रकार अन्तर्मातृका का न्यास करके बहिर्मातृका का न्यास करें। मातृका के पचास अक्षरों को मुख, हस्त, पाद, देह में न्यास करें, यह दक्षिणामूर्तिसंहिता और उत्तरतन्त्र का मत है। इसी मतानुसार सभी पूजापद्धतियों में विधान प्राप्त होता है। अतः विस्तार से नहीं लिखा गया है। हमारे आराध्यचरण स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा रचित श्रीविद्यारत्नाकर में सुगम और स्पष्ट विधान दिया गया है।

॥ मातृकायन्त्र एवं अर्चनविधि॥

मातृकायन्त्र— मध्य में प्रासादबीज और सोलह स्वरों को अष्टवर्ग में पूर्वादिक्रम से लिखें तथा अष्टदल बनाकर ६ में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग पाँच दलों में लिखें। छठे दल में यवर्ग चार, सातवें दल में शवर्ग चार और आठवें दल में ळं और क्षं अक्षर लिखें। दलों के बाहर चतुरस्र बनाकर चारों दिशाओं में वं वं लिखें तथा कोणों पर ठं ठं लिखें। मातृकायन्त्र का इस प्रकार निर्माण करें। सर्वप्रथम इसके मध्य में पीठशक्तियों का अर्चन करें। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि, विद्येश्वरी, ये नौ पीठ शक्तियाँ हैं, मेधायै नमः इत्यादि सभी शक्तियों का अर्चन करें। मध्य में **'सर्वशक्तिकमलासनायै नमः'** बोलकर मध्य पीठशक्ति का अर्चन करें। पुनः षडङ्ग मन्त्रों से अर्चन करें। तदनन्तर लिखे गये सोलह स्वरों का अं आं नमः, इं ईं नमः इस प्रकार अष्टवर्ग का पूजन करें। इस तरह अष्टदलों में श्वेत वर्ण वाली, धनुष और विद्या से सुशोभित बाहुवाली — व्यापिनी, पालिनी, पावनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी, शान्तनी, इन आठ शक्तियों का आठ दलों में व्यापिन्यै नमः, पालिन्यै नमः, इस प्रकार अर्चन करें। तदनन्तर ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का अर्चन करें। पुनः चतुरस्र में अस्त्रसहित लोकपालों का अर्चन करें। तदनन्तर एक लाख जप करके दशांश मधुत्रययुक्त तिलो से होम करें और उसके दशांश तर्पण—मार्जनादि करें। इस प्रकार मन्त्रसिद्धि हो जाती है। मन्त्र की सिद्धि होने पर प्रयोग करने चाहिए।

॥ सर्वभयहारिणी—मुद्रिका॥

मुद्रिका के निर्माण का विधान— स्वर्ण दश भाग, चाँदी सोहल भाग, ताम्र बारह भाग इसकी रुचक

(अंगूठी) बनाकर होम करें, होम के समय में उस रुचक पर घृत का संपात करें। घट पर मुद्रिका स्थापन करके पूर्वोक्त साङ्ग सावरण मातृका का यजन करें। घट के जल से शिष्य का अभिषेक करके गुरु मुद्रिका प्रदान करे। इस मुद्रिका के धारण से साधक ग्रह, क्षुद्र रोग, दस्यु, महामारी, सर्प आदि के भय से मुक्त एवं चिरञ्जीवी होकर सब कार्यों में विजय प्राप्त करता है। मन्त्रतन्त्रप्रकाश में भी इसी प्रकार इसके निर्माण का विधान है। यह प्रयोग प्रपञ्चसारतन्त्र, तन्त्रराजतन्त्र शारदातिलक आदि तन्त्रों में भी है। (पृ.७७)

॥ चतुर्विधपाण्डित्यप्रयोग॥

उत्तरतन्त्र में मातृका यन्त्र का स्वरूप —

१. इस यन्त्र में पूर्वोक्त मातृका यन्त्र से षष्ठ, सप्तम और अष्टम दल में परिवर्तन होगा। षष्ठ दल में यं रं लं वं शं, सप्तम में षं सं हं ळं क्षं और अष्टम दल में अ इ उ अं अः अक्षर लिखें। चारों दिशाओं में वं–वं एवं कोणों पर ठं–ठं लिखें। प्रातः काल संध्या वन्दन के अनन्तर चुलुका में जल लेकर इस यन्त्र का ध्यान करें। मातृका का जप करके उस जल को अमृत रूप में भावना करें। जिह्वा के अग्र भाग में सरस्वती नाड़ी, मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति है, यह भावना करके होमबुद्धि से जिह्वा के अग्र भाग में सरस्वती नाड़ी का दीपशिखावत् ध्यान करके, जल को होमबुद्धि 'स्वाहा' से पान कर लें। इस प्रकार प्रतिदिन करने से वक्तृत्व व्याख्यातृत्व, वादित्व, कवित्व चतुर्विध पाण्डित्य प्राप्त होता है और आत्मज्ञान भी होता है, यह रहस्य है।

॥ कवितासिद्धि॥

ब्राह्मी रस, वच और दूध इन तीनों को समान भाग में लेकर घृतपाकविधि से पाक कर लें। दशहजार मातृका का जप करके मात्रापान से शीघ्र ही कविता सिद्धि हो जाती है।

॥ मन्त्राक्षर–औषधाभिषेक॥

२. पञ्चाशत् अक्षर– औषधियों को जल में मिला करके घटस्थापन करे, उसके ऊपर पञ्चाशत् मातृका अक्षरों का दश हजार जप करके, अपने प्रिय शिष्य का अभिषेक करने से मेधा, लक्ष्मी, कीर्ति, दीर्घायु, कवितासिद्धि की प्राप्ति होती है। बन्ध्या को नानागुणयुक्त पुत्र प्राप्त होता है।

३. प्रातःकाल पूर्वोक्तयन्त्र में साध्य नाम का ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रबिम्ब में ध्यान करे। इससे साध्य को आयु–आरोग्य, सर्वसम्पत्तियाँ तथा शक्ति प्राप्त होती है।

॥ त्रिलोहमातृकायन्त्र॥

४. स्वर्ण, रजत और ताम्र, इनको त्रिलोह कहते हैं। स्वर्ण दश भाग, रजत सोलह भाग, ताम्र बारह भाग, इस प्रकार मिलाने से त्रिलोह बन जाता है। इनको मिलाकर पूर्वोक्त यन्त्र बनावें। इसके अभिषेक और धारण से अभीष्ट सिद्धि होती है। मातृकायन्त्र के उपर श्रीयन्त्र, मूर्ति, या अन्य यन्त्र की स्थापना से विशेष देवभाव आता है एवं घर में भूमि के अन्दर स्थापित करने से स्वाभिमत फल प्राप्त होता है।

॥ सृष्टि–स्थिति–संहार–न्यासक्रम॥ (उत्तरतन्त्र)

बिन्दुयुक्त विलोमक्रम से मातृकान्यास करने से संहारक्रम होता है, एवं विसर्गयुक्त न्यास सृष्टिक्रम होता है, डादि ठान्त बिन्दु विसर्गयुक्त न्यास को स्थितिन्यास कहते हैं। पूर्वोक्त ऋषि आदि और षडङ्ग न्यास यथावत् होगें। संन्यासी और वानप्रस्थ को संहारान्त न्यास करना चाहिए। गृहस्थ को स्थित्यन्त, ब्रह्मचारियों को सृष्ट्यन्त न्यास का विधान है। उत्तरतन्त्र के मतानुसार– कामबीज, रमाबीज, लज्जाबीज आदि प्रयुक्त करके न्यास करने से तत्–तत् मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त होती है। ग्रन्थकार ने तत् तत् मन्त्रों के ऋषि देवतादि का भी प्रतिपादन किया है। पृ. ७९ से ८१ तक विविध न्यासों का वर्णन किया गया है, जो सूत्र रूप में है। विशेष रूप से षष्ठ श्वास में इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

॥ प्राणाग्निहोत्रविधि॥ (कालीमते)

पूर्वाभिमुख बद्धपद्मासन मूलाधार के त्रिकोण में भुवनेश्वरी बीज का सत्त्वगुणात्मक 'हकार' से आक्रान्त मध्यप्रदेश है, रजोगुणात्मक जो ईकार से आवृत्त तथा तमोगुणात्मक भुवनेश्वरीबीज के रेफ से वेष्टित त्रिकोणमण्डल का ध्यान करें (अर्थात् मूलाधार में त्रिकोण का चिन्तन करें, जो त्रिकोण ह्रीं बीज के हकार, ईकार, और रेफ से वेष्टित है।) जिस मण्डल के पूर्व, नैऋति और वायव्यकोण हैं, ऐसे मूलाधार का चिन्तन करके उससे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दिशाओं में आवसथ्य, सभ्य, आहवनीय, अन्वाहार्य और गार्हपत्य संज्ञा वाले पाँच कुण्ड की भावना करें, जो जाज्वल्यमान अग्निशिखा से समाकुल हैं, और वाञ्छितार्थ फलप्रदाता हैं, ऐसा चिन्तन करके, सर्वतेज प्रकाश से प्रतिबिम्बित हेतुभूत, अनवछिन्न चैतन्यात्मक, सकल वर्णों के कारणभूत, सर्वब्रह्मात्मक और मूलप्रकृत्यात्मक द्वादशान्त मूलाधार से सहस्रारपर्यन्त स्थित होकर जो कल्पान्त अग्निशिखा प्रस्फुरित हो रही है, ऐसे कुण्डों में वक्ष्यमाण वर्णों का मानसिक होम करें। यथा– वर्णों का रत्नवर्ण है। नव रत्न, नवग्रहों के अधिदेवता हैं। उन अक्षरों का अमृतमय ध्यान करके होम करना चाहिए। ऊपर में आवसथ्यादि पाँच कुण्ड प्रोक्त हैं, अक्षरों का नवरत्न के समान वर्ण का ध्यान करें। एक–एक कुण्ड में पचास वर्णों का होम करें। यथा– क्षं,शं, म,न,ण,ञ,ङ,अः 'ए' कार और 'ह' कार इन दस वर्णों का आवसथ्य कुण्ड में होम करें। 'ल' कार, वकार भ, ध, ढ़, झ, घ, अ, 'ॡ' कार, उकार', इन दश वर्णों का सभ्य कुण्ड में होम करें। 'ह' कार, 'ल' कार, ब, द, ड, ज, ग, 'औ' कार, 'ऌ' कार, 'ई' कार', इन दस वर्णों का आहवनीय कुण्ड में होम करें। 'स' कार 'रकार' फ, थ, ठ, छ, ख, 'ओकार' 'ॠकार' 'इकार' इन दश वर्णों का अन्वाहार्य कुण्ड में होम करें। 'ष' कार 'य' कार प, त, ट, च, क, ऐ, 'ऋ' कार 'आ' कार' इन दश वर्णों का गार्हपत्य कुण्ड में होम करें। 'होमप्रक्रिया' ओं ह्रीं क्षं हंसः सोऽहं स्वाहा' इस प्रकार प्रत्येक अक्षर का होम करें। एक–एक अक्षर का पुनः पुनः हवन करें। उसका प्रकार आवसथ्य में 'क्ष'कार, सभ्य में 'ळ'कार, आहवनीय में 'ह' कार, अन्वाहार्य में 'स'कार' और गार्हपत्य में 'ष'कार, पुनः इसी प्रकार से 'स'कार से यकारान्त पाँच–पाँच वर्णों का होम करें। 'अः' इसका ब्रह्मरूप में ध्यान करें।

भोजनकाल—कर्तव्य—प्राणाग्निहोत्र (उत्तरतन्त्रे)

"गार्हपत्ये प्राणे हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्य आत्मानं उपचर्योर्ध्वं गच्छन्तु स्वाहा" अन्वाहार्येऽपाने गगनवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्याधो गच्छन्तु स्वाहा। आहवनीये व्याने रक्तवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य तिर्यग्गच्छन्तु स्वाहा। सभ्ये उदाने कृष्णवर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्योर्ध्वे गच्छन्तु स्वाहा। आवसथ्ये समाने सुप्रभावर्णाः शुचयः पवका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्याधस्तिर्यग्गच्छन्तु स्वाहा। इस प्रकार इन पाँच मन्त्रों से पाँच आहुतियाँ दें। गार्हपत्य, अन्वाहार्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य, इन पाँच कुण्डों को क्रम से प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान कहा जाता है। पाँच वायुओं का वर्ण—पीत, नील, रक्त, कृष्ण, शुभ्र हैं। इन वर्णों का ध्यान करके उच्चारण करना चाहिए— **"गार्हपत्यान्वाहार्य्याहवनीयसभ्यावसथ्येषु प्राणापानव्यानोदानसमानेषु हिरण्यगगनरक्तकृष्णसुप्रभावर्णाः शुचयः पावका अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य अहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधं पचाम्येवं विधानेनोर्ध्वाधस्तिर्यक् समं गच्छन्तु स्वाहा"**। गार्हपत्यादि पञ्चकुण्डों में यम, शशि, वरुण, इन्द्र, मध्यम देवता को मध्य में स्थित चिन्तन करके हवन करें। पुनः होमबुद्धि से तृप्तिपर्यन्त भोजन करें। शेष में चुलुक में जल लेकर 'अमृतापिधानमसि' इस मन्त्र से आपोशन करें, पुनः शुद्ध आचमन करें। इस प्रकार पञ्चाशत् वर्णों से अभिषिक्त अमृतमय हवि का भोजन के समय प्रातः सायं होम करने से ज्वाज्वल्यमान पञ्चाग्नि के समान आभा प्रभा से युक्त हो जाता है। इस प्रकार भोजन के समय प्राणाग्निहोत्र विधि करने से गर्भवास रूपी क्लेश कदापि नहीं होता।

कादिमत में प्राणाग्निहोत्रविधि (तन्त्रराजतन्त्रे)

भगवान् शङ्कर भगवती को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि मूलाधार में कुण्डलिनी के अग्रभाग में वह्नि (अग्नि) में वाच्य और वाचक रूप प्रपञ्च का होम करने से साधक हमारे समान शिवशक्तिरूप हो जाता है। अब भगवती भगवान् से अनुरोध कर रही हैं कि आप इसका पूरा विधान बताने की कृपा करें।

हे प्रभो! मूलाधार में वह्निस्थिति एवं कुण्डलिनीस्थिति उसका रूप और उसकी क्रिया का आप विशद वर्णन करें। भगवान् शङ्कर उत्तर देते हैं— वेदत्रयी में विद्यमान अग्निहोत्र विद्या का ज्ञान होने पर मनुष्य वनितागर्भ में नहीं जाता अर्थात् उसका पुनः जन्म-मरण नहीं होता है। यह विद्या व्यय और प्रयास रहित है और इसमें अन्य सामग्री की अपेक्षा भी नहीं है तथा मन के क्लेश को हरण करने वाली, शान्तिप्रदात्री, समस्तपापविनाशिनी, परमसुखदायिनी, स्वतन्त्र, विश्वमय, चित्स्वरूप, वेद्य और वेदन आदि जो यहाँ कहा जा रहा है, उसकी पूर्णता षड्त्रिंश (३६) पटल में स्पष्ट रूप से विवेचित है। यहाँ

पर किञ्चित् रूप से वर्णन किया जा रहा है।

नित्य उदित मूलाधार चक्र में वह्नि, हृदय में सूर्य और मस्तक (ब्रह्मरन्ध्र) में चन्द्रमा स्थित हैं। ये तीनों आद्यनित्या त्रिपुरसुन्दरी के त्रिखण्ड हैं। इस तीनों का मन से ऐक्य भाव करें और गमनागमन से परस्पर के तेज से सम्मिलित हुए इन तीनों के सम्मेलन से उद्भूत तेज का चिन्तन करके तन्मय होकर चित्त में निर्विकल्प भाव स्थिर करें। पूर्वोक्त तीनों अग्नि, सूर्य, सोम, (चन्द्र) में दो का एक में से होम करें। हृदय स्थित वर्णों का, स्वरों का, प्रणव और हूंकार से कुण्डली मुख के मार्ग से अग्नि में होम करें। इस प्रकार अग्नि और सूर्य के पुट में स्थित चन्द्र वर्णों का क्रम से होम करें। इसी प्रकार चन्द्रभानुपुट में स्थित वह्निवर्णों का होम करें। भानुचन्द्रपुट में स्थित वह्निवर्णों से होम करें। चन्द्रवह्निपुट में स्थित सूर्य वर्णों से होम करें। इस प्रकार वह्निचन्द्रपुट में स्थित वर्णों का पूर्ववत् होम करें। प्रातिलोम्य से षोडश वर्णों का होम करें। इस प्रकार हृदय में द्वादश अक्षरों का होम करें। अखिल वाच्य रूप में स्थित अर्थ के साथ युक्त तीनों तैजसात्मक (वह्नि, सूर्य, चन्द्र) रूप वस्तुतः हमारा (शिव—शक्ति रूप) ही शरीर है और अन्य भी जितने रूप हैं, वे सभी हमारे शिवशक्ति के रूप हैं, उन सभी का हमने ही अपनी इच्छा से मनुष्य और देवता आदि देह रूप में ग्रहण किया है। "शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति" शब्दब्रह्म में पारङ्गत साधक को परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है, इसी साधना को प्राणाग्नि एवं भोजन काल कर्तव्य अग्निहोत्र विधि के द्वारा सरल सुगम रूप दिया गया है। शब्दरूप पञ्चाशत् मातृकावर्णों का चिदग्नि में होम के द्वारा शब्दब्रह्म से परब्रह्म की प्राप्ति का वरिष्ठ साधकों के लिए सुगम साधन है।

रश्मिबोधक चक्र

संख्या	४६	४७	४८	४९	५०	५१
वर्णाः	श	ष	स	ह	ळ	क्ष
भौमाः	१४	१४	१४	१४	१४५	१४
आप्याः	५	५	८३६	५	५	५
तैजसाः	१०	१०	१०	१०	१०	७००४१
वायव्याः	४	८३५	४	४	४	४
नाभसाः	८३५	४	४	७००३५	४	४

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
वर्णाः	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
भौमाः	१४	१४	१४	१४	१७०	१७०	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१७०	१४	१४	१४
आप्याः	५	५	५	५	५	५	१६९	१६९	५	५	५	५	५	१६९	५	५
तैजसाः	१०	१०	१६६	१६६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१६६	१०	१०	१०	१०
वायव्याः	१६०	१६०	४	४	४	४	४	४	२	२	१६०	४	४	४	२	२
नाभसाः	४	४	४	४	४	४	४	४	१६०	१६०	४	४	४	४	१६०	१६०

संख्या	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
वर्णाः	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
भौमाः	१४	१४	२४५	१४	१४	१४	१४	२४५	१४	१४	१४	१४	२९५	१४	१४
आप्याः	१५	५	५	१३६	५	१५	५	५	२३६	५	१५	५	५	२३६	५
तैजसाः	१५	२४१	१०	१०	१०	१५	२४१	१०	१०	१०	१५	२४१	२४१	१०	१०
वायव्याः	२३५	२	४	४	४	२३५	२	४	४	४	२३५	२	२	४	४
नाभसाः	४	४	४	४	२३५	४	४	४	४	२३५	४	४	४	४	४

संख्या	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५
वर्णाः	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
भौमाः	१४	१४	२९५	१४	१४	१४	१४	१४५	१४	१४	१४	१४	१४५	१४
आप्याः	१५	५	५	२३६	५	५	५	५	५३६	५	५	५	५	८३६
तैजसाः	१५	२९१	२४१	१०	१०	१०	२९१	१०	१०	१०	१०	५४१	१०	१०
वायव्याः	२३५	४	२	४	४	२९१	४	४	४	४	५३५	४१	४	४
नाभसाः	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५३६	४	४	४	४

॥ इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथ-शिष्य उमानन्दनाथ-शिष्य षोडशानन्दनाथ-शिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के चतुर्थ श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई॥

श्रीविद्यार्णवतन्त्र

पञ्चम श्वास

।। भाव–विवृति।।

भूतलिपि सिद्धसारस्वत तन्त्र

पञ्चम श्वास के प्रारम्भिक श्लोकों का तृतीय श्वास में भी अभिधान है। यहाँ पर भी वही विषय है। इस विषय की वहाँ विवेचना की गयी है। ग्रन्थकार ने इस पर स्वयं कुछ भी नहीं लिखा है। अन्य गूढ़ विषयों पर स्थान-स्थान पर स्पष्टीकरण किया है। वस्तुत: यह कालीमत का मन्त्रोद्धार एवं भूतलिपि की साधना का विषय है। यह गुरुमुख से गम्य है। सम्प्रदायभङ्गभय से आचार्यवर्ग इसे प्रच्छन्न रखते हैं, केवल कालीमत के उपासक सत्–शिष्य को ही इस रहस्य का उपदेश करते हैं। तथापि पूर्व में हमने यत्-किञ्चित् लिखने का साहस किया है। 'शारदातिलक तन्त्र'' की राघवभट्टकृत टीका एवं तन्त्रराजतन्त्र की टीका में इस विषय का विशद विवेचन है, जिज्ञासु के लिए यह विषय यथोक्त स्थान में द्रष्टव्य है।

यहाँ पर मन्त्रोद्धार एवं मातृकान्यास में कुछ विशेषता है। चतुर्थ श्वास में प्रोक्त मातृकायन्त्र में ही विशेष शक्तियों के यजन का विधान मूल में स्पष्ट है। कुछ विशेष प्रकार के यन्त्रों का निर्माण एवं काम्यकर्मों का विधान भी मूल में स्पष्ट है।

श्रीविद्याप्रकरण–कालीमत

पञ्चसिंहासनदेवता, पञ्चपञ्चिका, षडायतनविद्या, पञ्चाम्नाय, चतु:समयविद्या, श्रीविद्यावृन्द ये मन्त्र एवं विद्याए देवताभावसिद्धि के लिए विशेषरूप से मननीय हैं। मूल में इनका विधान वर्णित है।

पूर्वसिंहासनदेवता– सम्पत्प्रदाभैरवी, चैतन्यभैरवी, चैतन्यभैरवी द्वितीया, सर्वसिद्धिप्रदा कामेश्वरभैरवी, बालादि–पञ्चदेवता ये पूर्वसिंहासन देवता हैं। ये सर्वसिद्धि के लिए स्मर्तव्य हैं। न्यास, होम, पूजा में साधक को सर्वत्र इनका स्मरण करना चाहिए।

दक्षिणसिंहासन–देवता– अघोरभैरवी, महाभैरवी, ललिताभैरवी, कामेश्वरीभैरवी, रक्तनेत्राभैरवी, ये दक्षिणसिंहासनदेवता हैं।

पश्चिमसिंहासन–देवता– षट्कूटाभैरवी, नित्यभैरवी, मृतसंजीवनीविद्या, मृत्युञ्जयपराविद्या एवं वज्रप्रस्तारिणी, ये पश्चिम सिंहासन की देवता हैं।

उत्तरसिंहासन–देवता– भुवनेशीभैरवी, कमलेशीभैरवी, कैलाशीभैरवी, डामरभैरवी, कामिनीभैरवी, ये उत्तरसिंहासनदेवता हैं।

उर्ध्वसिंहासन–देवता– प्रथमसुन्दरी, द्वितीयसुन्दरी, तृतीयसुन्दरी, चतुर्थसुन्दरी और पञ्चमसुन्दरी, ये ऊर्ध्वसिंहासनस्थ देवता हैं।

पञ्चपञ्चिका

श्रीविद्यालक्ष्मी, एकाक्षरलक्ष्मी महालक्ष्मी, त्रिशक्तिलक्ष्मी, सर्वसाम्राज्यलक्ष्मी, ये पञ्च लक्ष्मियाँ हैं।

पञ्च कोशाम्बा— श्रीविद्याकोशाम्बा, परंज्योति, परानिष्कला, अजपा, मातृकाकोशाम्बा, ये पञ्चकोशाम्बा हैं।

पञ्चकल्पलता— श्रीविद्याकल्पलता, त्वरिता, पारिजातेश्वरी, त्रिकूटा, पञ्चबाणेशी, ये पञ्च कल्पलता विद्या हैं।

पञ्चकामदुघा— श्रीविद्याकामदुघा, अमृतपीठेश्वरीकामदुघा, सुधाकामदुघा, अमृतेश्वरीकामदुघा, अन्नपूर्णा-कामदुघा, ये पञ्च कामदुघा विद्या हैं।

पञ्चरत्नेश्वरी— श्रीविद्यारत्नेश्वरी, सिद्धलक्ष्मी, मातङ्गी, भुवनेश्वरी, वाराही ये पञ्चरत्नेश्वरी विद्या हैं। इन पञ्चपञ्चिकाओं का मन्त्र और यजनविधि श्रीविद्यारत्नाकर एवं श्रीविद्यावरिवस्या में स्पष्ट रूप से लिखी गयी है। ये कालीमत में श्रीविद्या प्रकरण के उपास्य देवता हैं।

ग्रन्थकार श्रीविद्यारण्य यति जी महाराज ने प्रथम श्वास में गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है, द्वितीय श्वास में समयाचार, गुरुशिष्यपरीक्षा, मातृकाशक्तियों का वर्णन प्रस्तुत किया है। चतुर्थ श्वास में गहन अनन्त रश्मियों का परिचय प्रस्तुत किया तथा मातृकाविधान, प्रपञ्चयाग आदि विषयों का विस्तृत विवेचन किया है। अब सपर्यापद्धति प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम गुरुपादुका मन्त्रों का वर्णन कर रहे हैं। इसमें स्थूल पादुका, मध्यपादुका, लघुपादुका लघुतर पादुका एवं सामान्य गुरुपादुका, इन छः प्रकार के गुरुपादुका मन्त्रों को प्रकट किया है, जो मूल में ९० पृष्ठ पर अङ्कित है।

।। प्रातःस्मरण एवं प्रातःकृत्य ।।

''ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेत् गुरुपादुकाम्''। ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर (शय्या त्यागकर) सर्वप्रथम गुरुपादुकामन्त्र का स्मरण करें। मूल में इसके ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग एवं गुरुस्मरण का विधान वर्णित है।

।। गुरुस्मरणविधि ।।

प्रातःकाल मस्तक (ब्रह्मरन्ध्र) में गुरु का ध्यान करे। श्वेत कमल पर शान्तरूप में विराजमान, दो नेत्र, दो भुजा, वर—अभय धारण किये हुए गुरुपादुकामन्त्र गुरुनाम सहित स्मरण करें। अयुत चन्द्र और सूर्य के समान प्रभा से प्रभासित शुक्लाम्बर धारण किये हुए, शुक्लमाल्य और अनुलेपन से विभूषित, वामाङ्क में पद्महस्त रक्तवर्ण शक्ति से आलिङ्गित, आनन्दनिमग्न गुरु का स्मरण करें। यहीं पर ओघत्रय का भी ध्यान करें। प्रथम श्वास में तत्—तत् देवता के उपासकों के लिए तत्—तत् ओघत्रय का उल्लेख किया गया है। साधक अपने सम्प्रदायानुसार ज्ञान कर लें। ओघत्रय का ध्यान मूल में लिखित है।

।। गुरुनमस्कार ।।

पृष्ठ संख्या ९० के शेष में ३ श्लोक में गुरु के नमस्कार की विधि है। (मूल द्रष्टव्य) गुरुवन्दन के बाद कुण्डलिनीमन्त्र का स्मरण, चिन्तन, तथा स्तुति करनी चाहिए।

।। कुण्डलिनीमन्त्र-न्यास-ध्यान ।।

वाग्भवबीज, भुवनेश्वरीबीज और श्रीबीज तीन अक्षर वाला यह कुण्डलिनी मन्त्र है। शक्ति, ऋषि, गायत्री छन्द, चेतनाशक्ति, कुण्डलिनीदेवता, वाग्भवबीज, श्रीशक्ति, हृल्लेखाकीलक, कुण्डलिनी के चिन्तन में विनियोग तीनों बीजों की दो आवृत्ति से कर एवं षडङ्ग न्यास करके ध्यान करना चाहिए।

।। कुण्डलिनी-ध्यानम्।।

मूलाधार में सार्धत्रिवलया, प्रसुप्त सर्पाकार धान्य के अङ्कुर के समान सूक्ष्म रूप, कोटि–कोटि विद्युत एवं सूर्य के समान प्रदीप्तप्रभा युक्त, चन्द्रकोटिसमान सुशीतल, शिवशक्तिमयी, सुषुम्नामार्ग से षट्चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में शिव सामरस्य समन्वित है। इस प्रकार ह्रींकार मन्त्र के योग से चिन्तन करें। ध्यान – सिन्दूरारुणविग्रहां..................ध्यायेत् परामम्बिकाम्।

इस प्रकार भगवती का ध्यान करें। मूल में स्पष्ट है। फिर कुलगुरुओं का ध्यान करें। यह भी मूल में है।

।। कुण्डलिनीस्तुति।। (शारदा-तिलक)

१. श्लोक मूलाधार में उन्निद्र सर्पराज के सदृश सुषुम्ना में प्रवेश करती हुई, षट्चक्रों का भेदन करती हुई, सौदामिनी विद्युत के समान सहस्रार में इन्दुमण्डल से गलित दिव्यामृत से शिव को सम्भावित करके पुनः अपने गृह मूलाधार में आ गयी।

२. मूलाधार से सुषुम्ना मार्ग में जाती हुई कुण्डलिनी शक्ति हृदय में स्थित हंस, नित्य, अनन्त अद्वयगुण जीवात्मा को ग्रहण करती हुई समस्त जगत् की जननी, शम्भुनिकेतन (सहस्रार) में जाकर वहाँ शिव के सामरस्य से परमसुख का अनुभव करके सूर्यकोटिसदृश दिव्य जगन्मोहिनी अपने आश्रय मूलाधार में आ जाती हैं।

३. अव्यक्त जीवतत्त्व ब्रह्म–अंश को सहस्रार (शिवस्थान) में ले जाकर सत्त्व, रज, तम– तीनों गुणों वाली सार्धत्रिवलय (साढ़े तीन घेरा इसमें तीन वलय तीनों गुण हैं और आधा– जीवात्मा है।) इसी को सार्धत्रिवलय कहते हैं। यही परमात्मा और यही जीवात्मा है। परन्तु परमात्मा की विशेषता यह है कि इनके तीनों गुण सक्रिय हैं, अत: वे संकल्प मात्र से इस विचित्र विश्व का निर्माण करते हैं। जीवात्मा में त्रिगुण त्रिवलय तो हैं, परन्तु सक्रिय नहीं हैं। कुण्डलिनी जागृत हो जाती है, तो वह जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग कराती है।) उस जीवात्मा को लेकर सहस्रार में जाती है, वहाँ पर शिवसामरस्य से जीवात्मा का भी शिवत्त्व भाव हो जाता है। ऊपर के दो श्लोकों में कुण्डलिनी के गमनागमन का वर्णन किया गया है। इसमें कुण्डलिनी के जागरण से शिवत्वप्राप्ति का वर्णन किया गया है।

४. अब प्राणापानसमीरणसंघट्ट के संक्षोभ से शब्दराशि का (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी) अतिक्रमण करके नवजपाकुसुम के समान सान्द्र अरुणवर्ण, आनन्द-संदोह से सुधामयी परशिव को प्राप्त, अर्थात् शिवसामरस्य को प्राप्त कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि कुण्डलिनी सहस्रार में जाती है, (सहस्रार में कुण्डलिनी का ध्यान करने से समाधि-अवस्था प्राप्त हो जाती है।)

५. इस प्रकार प्रथम दो श्लोकों में कुण्डलिनी के मूलाधार से सहस्रार तक और सहस्रार से मूलाधार तक के गमनागमन का वर्णन कर रहे हैं– वह जाह्निकी कुण्डलिनीशक्ति गमनागमन द्वारा योगफल प्रदान करे। जो इस प्रकार भावना करता है, उसके मनोरथों को कुण्डलिनी कामधेनु और कल्पलता के समान पूर्ण करती है।

६. अब अग्निकुण्डलिनी, प्राण (सूर्य) कुण्डलिनी और चन्द्रकुण्डलिनी इन तीन कुण्डलिनियों का वर्णन कर रहे हैं।

अग्निकुण्डलिनी

सर्वप्रथम अग्निकुण्डलिनी का वर्णन कर रहे हैं — मूलाधार में स्थित शक्ति बिन्दु में विराजमान नीवार (धान्य) के अंकुर के समान अतिसूक्ष्म, नित्य आनन्द देने वाली, बोध प्रदान करने वाली, पर सुधा की वर्षा से 'पद्म' षट्चक्रों का सिञ्चित करती हुई मेरुदण्ड के मध्य में उदित हुई, बन्धुजीव पुष्प के समान लाल वर्ण की देवता का ध्यान करना चाहिए। यह अग्निकुण्डलिनी का ध्यान है।

७. प्राण (सूर्य) कुण्डलिनी

हृदयकमल में द्वादशदल के अनाहतचक्र में सूर्यबिम्ब में निवास करने वाली स्थिर विद्युल्लता सदृशी, बालसूर्य के समान अरुण वर्ण से हृदय के अन्धकार को दूर करती हुई, अनाहत नादमयी, ज्ञानमयी, शाश्वतरूपिणी तथा अक्षररूपिणी (अनाहत नाद में गुरुदत्त पिण्ड मन्त्र का नाद होता है, इसे अनाहत नाद कहते हैं।) इसीलिए इसको अक्षररूपी कहा है। समस्त तेजों की अधिष्ठात्री भगवती का शुद्धबुद्धि साधक को इस प्रकार ध्यान करना चाहिए। यह सूर्यकुण्डलिनी का वर्णन है।

८. चन्द्रकुण्डलिनी

भाल (आज्ञाचक्र) में पूर्ण चन्द्र के समान देदीप्यमान नीहार (कुहासा) को तिरस्कृत करने वाली, कान्ति से युक्त अमृत से भगवान् शिव का सिञ्चन करने वाली, शरीर को आनन्द देने वाली, वर्णों की जननी एवं शब्दराशि से समुद्भूत विश्वव्यापिनी, संविन्मयी अम्बिका भगवती का अनाकुलता (एकाग्रचित्त) से ध्यान करना चाहिए।

९. तीनों कुण्डलिनियों का एक साथ वर्णन करते हुए प्रार्थना कर रहे हैं — मूलाधार, हृदय और आज्ञाचक्र में वर्णों को रूप प्रदान करने वाली, पीन और उत्तुङ्ग स्तन के भार से नमितमध्यप्रदेशा महेशी, प्रतिचक्र को सुधा से सिञ्चित करती हुई वाङ्मयी देवता अविकल श्री, शोभा, ऐश्वर्य प्रदान करें।

१०. **कुण्डलिनी के उत्थान की प्रक्रिया**— आधारबन्ध सिद्धान्त ही जिसमें मुख्य क्रिया है। सिद्धासन में पैर की एड़ी से मूलाधार का आच्छांदन होता है। यही आधारबन्ध क्रिया है। इसी मूलबन्ध से कुण्डलिनी जागृत हो करके अमृतवर्षा से त्रिधाम (अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल) बीज शिव की अर्चना करती हुई शिवाङ्गना हमारा, आपका कल्याण करें।

११. निजभवन मूलाधार से ऊर्ध्वगमन करती हुई कुण्डलिनी शक्ति स्वप्रभाव से मेरुदण्डस्थित षट्चक्र विकसित करके, तरुण सूर्य के समान कान्ति वाली कुण्डलिनी देवता सहस्रार से गलित अमृत से आत्मतेज को दीप्त करे।

१२. सिन्दूरपुञ्ज के समान लालवर्ण एवं चन्द्रकलाविभूषित भालप्रदेश, आनन्दपूर्ण त्रिनेत्रों से शोभायमान मुखकमल, पीन और उत्तुङ्ग कुच से नम्र तथा अनङ्गतन्त्र, ऐसी भगवान् शिव की कलत्र अपरिमित कल्याण की वृष्टि करें।

१३. अब षड्चक्रों का वर्ण, डाकिन्यादि देवता एवं दलों की संख्या का वर्णन— चार, छः, दश, बारह, सोलह और दो, इस प्रकार मूलाधार से आज्ञाचक्र पर्यन्त छः चक्र हैं। मूलाधार में चार दल और चार अक्षर

वं शं षं सं से युक्त, इसी प्रकार स्वाधिष्ठान में ६ दल, छः अक्षर, हृदय में अनाहत चक्र बारह दल, उसमें बारह अक्षर, कण्ठ में विशुद्धि चक्र सोलह दल और सोलह अक्षर युक्त, आज्ञा चक्र में दो दल, हं क्षं दो अक्षरों से युक्त। (षट्चक्रों की षट् शक्तियाँ हैं— मूलाधार में साकिनी, स्वाधिष्ठान में काकिनी, मणिपूरक में लाकिनी, अनाहत में शाकिनी, विशुद्धि में डाकिनी, आज्ञाचक्र में हाकिनी। इन शक्तियों से आवृत्त हैं षट्चक्रों में स्थित देवता— मूलाधार में गणेश, स्वाधिष्ठान में ब्रह्मा, मणिपूरक में विष्णु, अनाहत में शिव, विशुद्धि चक्र में जीवात्मा, आज्ञाचक्र में परमात्मा ऐसे षट्चक्रो का भेदन करती हुई परदेवता त्रिभुवन के प्राणियों के चित्त में आनन्द प्रदान करें।

१४. मूलाधार में गुणवृत्त (सत्त्व, रज, तम) से सुशोभित शरीरवाली मूलाधार से शीघ्र गमन करती हुई षट्चक्रों का भेदन करती हुई, चिन्मय आनन्द से प्रबोध प्रदान करने वाली, गमन से संक्षुब्ध, चन्द्रमण्डल से प्रस्यन्दमान, अमृतस्रोत से कन्दलित (युक्त) विद्युत् के समान भगवती शिवा की भावना मैं करता हूँ।

१५. मूलाधार के त्रिकोण में बिन्दुचिन्तन का वर्णन कर रहे हैं— वह बिन्दु बालसूर्य के समान अरुण वर्ण वाला त्रिकोण में है। उस त्रिकोण में सूर्य, अग्नि और चन्द्र की कोटि प्रभा से प्रभासित, विद्युत की सहस्रमाला के समान, बन्धूकपुष्प के समान रुचिर, त्रैगुण्य से आक्रान्त, जगत् की रचना एवं लय का हेतु-भूत बिन्दु का चिन्तन करके उस बिन्दु के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति का और विस्फुरित स्फुट और सुन्दर विद्युत्पुञ्ज के समान और सुषुम्ना मार्ग से ललाट बिन्दु तक गमन करती हुई कुण्डलिनी का ध्यान करें।

१६. चिन्मात्र, सूक्ष्मरूपवाली, सृष्टि की रचना करने वाली, भावनामात्र से गम्य, समस्त तेजों की मूलभूत, उपमारहित, हूँकार में पाँच प्रणव के उच्चारण से वक्ष को उदञ्चित करके कुण्डलिनी सहस्रार में प्रवेश करती है। यह गुरुमुख से जानने की विद्या है, हूँकार में पञ्चप्रणव का उच्चारण होता है। इसकी विधि स्वच्छन्दतन्त्र में वर्णित है।

१७. इस प्रकार हूँकार करके अधःसहस्रार से ऊर्ध्वसहस्रार में धीरे से कुण्डलिनी शक्ति को ले जायें। वहाँ चन्द्रबिन्दु से निःसृत अमृतधारा का च्यवन करती हुई रक्तवर्ण वाली, मन्त्रमयी (मन्त्रमयी का तात्पर्य है कि कुण्डलिनी शक्ति अतिसूक्ष्म है, वह भावनामात्रगम्य है। यदि उसको मन्त्र का रूप दे दिया जाय तो शीघ्र अनुभूति होती है। पञ्चदशाक्षरी मन्त्र सात करोड़ मन्त्रों का सार है। यदि इसका विधिवत् जप किया जाय अर्थात् मूलाधार से अनाहत तक, अनाहत से आज्ञाचक्र, आज्ञाचक्र से सहस्रार। इस प्रकार तीन कूटों का ध्यान करके जप करने से कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति होने लगती है; इसीलिए मन्त्रमयी कहा गया है।) ऐसी भावना करके, सहस्रार से अमृतबिन्दु की वर्षा करती हुई भगवती पुनः मूलाधार में आ गयी, ऐसी भावना करें। पुनः मूलाधार से सहस्रार में पुनः सहस्रार से मूलाधार इस प्रकार पुनः पुनः क्रियात्मक भावना ही गमनागमन क्रिया कहलाती है।

१८. कुण्डलिनी की गमनागमनभावना का फल —

इस प्रकार अपने अन्तर में समस्त मूलभूतों के भी मूलभूत साधन उपर्युक्त गमनागमनप्रक्रिया का प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह साधक पाप, जरा, अपमृत्यु तथा रोग रहित हो, मूर्तिमान् कामदेव जैसा सुन्दर, नीलकेश एवं चिरञ्जीवी हो जाता है।

मूलविद्या-चिन्तन

प्रातःकृत्य में कुण्डलिनी का ध्यान करके मूलविद्या का चिन्तन किया जाता है, इसलिए ग्रन्थकार. पञ्चदशीमन्त्र के देवता, विनियोग और षडङ्ग का उल्लेख कर रहे हैं। पञ्चदशीमन्त्र के दक्षिणामूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, परब्रह्मस्वरूपिणी श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी देवता, वाग्भवकूट, बीज तृतीयकूट शक्ति और मध्यकूट कीलक, चतुर्विधपुरुषार्थ विनियोग करके कूटत्रय की द्विरावृत्ति से षडङ्ग न्यास करके ध्यान करे। यथा–

सिन्दूरपुञ्जनिभमिन्दुकलावतंसमानन्दपूर्णनयनत्रयशोभिवक्त्रम्।
आपीनतुङ्गकुचनम्रमनङ्गतन्त्रं शम्भोः कलत्रममितां श्रियमातनोतु।।

इस प्रकार ध्यान कर मानसिक पञ्चोपचार पूजन करके मन्त्र जप करें।

कूटत्रय चिन्तन– वाग्भव, कामराज, शक्तिकूट, इन तीनों की पृथक्–पृथक् उपासना करने वाले साधकों के लिए एक–एक कूट का ऋषि, देवता, छन्दादि, षडङ्ग न्यास एवं ध्यान का वर्णन पृथक् पृथक् किया है।

वाग्भवकूट– वाग्भवकूट का ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, वागीश्वरी देवता, आद्यक्षर बीज, अन्त्य ह्रीं शक्ति, मध्य के तीन वर्ण (ए ई ल) कीलक, वाक्सिद्धि के लिए विनियोग।

षडङ्ग न्यास– ब्रह्मवाग्रूपिणी, विष्णुवाग्रूपिणी, रुद्रवाग्रूपिणी, परावाग्रूपिणी शिववाग्रूपिणी, अखिलवाग्रूपिणी। यथा– **क ए इ ल ह्रीं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः**। इत्यादि वाग्भवकूट योग करके उपर्युक्त षडङ्ग न्यास करें।

ध्यान – शुभ्रवर्ण, शुभ्र विलेपन, माल्य तथा वस्त्र धारण की हुई, मस्तक पर जाज्वल्यमान चन्द्रखण्ड से युक्त तथा पुस्तक, अक्षमाला, सुधापूर्ण कलश और विद्या से जिसके चारों हाथ सुशोभित हैं। जो कमल पर विराजमान हैं, कुचभारनम्र, त्रिनयन, मन्द हास, वाग्विभव, सौभाग्य एवं सम्पत्ति देने वाली ऐसी भगवती की मैं वन्दना करता हूँ। अक्षरसंख्यालक्ष जप; 'कलौ संख्या चतुर्गुणा'।
(मानसिक पञ्चोपचार पूजा करके जप करें।)

कामराजकूट–कामराजकूट के सम्मोहन ऋषि, गायत्री छन्द, कामेश्वरी देवता, आद्यवर्ण, (ह) बीज, हृल्लेखा शक्ति, मध्य के चार वर्ण (स क ह ल) कीलक, वशीकरण सिद्धि के लिए विनियोग।

षडङ्ग न्यास द्रां सर्वसंक्षोभणबाणाय नमः, द्रीं सर्वविद्रावणबाणाय नमः, क्लीं सर्वाकर्षणबाणाय नमः, ब्लूं सर्ववशीकरणबाणाय नमः, सः सर्वोन्मादनबाणाय नमः, सर्वबाणेभ्यो नमः। इन ६ से षडङ्ग करें। सबके आगे कामराज कूट का योग करके षडङ्ग न्यास करें। यथा–**हसकहलह्रीं द्रां सर्वसंक्षोभबाणाय नमः**।

ध्यान – उदीयमान सूर्य के समान सिन्दूर वर्ण से शोभायमान विग्रह वाली स्फटिक माला, इक्षु धनुष् पञ्चकामपुष्पबाण, पुस्तक, इनसे शोभायमान चतुर्भुजा, त्रिनेत्र, भाल पर चन्द्र सुशोभित समस्त जगत् की जननी भगवती का इस प्रकार ध्यान करें। पञ्चोपचार मानसपूजा करके जप करें।

शक्तिकूट– शक्तिकूट का आज्ञाचक्र में ध्यान करें। शिव ऋषि, पंक्ति छन्द, आदिशक्ति देवता, बीज आदिवर्ण (स), हृल्लेखा शक्ति, मध्य के दो वर्ण (क ल) कीलक, चतुर्वर्गसिद्धि के लिए विनियोग।

षडङ्ग युवती न्यास— सर्वज्ञताशक्ति, नित्यतृप्ताशक्ति, अनादिबोधिनीशक्ति, स्वतन्त्रताशक्ति, नित्यमलुप्तताशक्ति, अनन्तशक्ति— ये छः शक्तियाँ है। इन शक्तियों को चतुर्थ्यन्त करके पूर्व में शक्तिकूटयोजन करके षडङ्ग न्यास करें।

ध्यान — कदम्बवाटिका के मध्य स्वर्णमण्डप में स्थित, छः प्रकार के कमलों पर विराजमान, देवता और सिद्धों की आराध्या सौदामिनी, सदृश जपापुष्प के समान रक्तवर्ण, मस्तक पर ह्ल्लेखा धारण की हुई, भगवान् शिव की कुटुम्बिनी, ऐसी शिवा का मैं ध्यान करता हूँ। **न्यासक्रम—सकलह्रीं सर्वज्ञताशक्तये नमः—हृदये।**

इत्यादि षडङ्ग न्यास करें, मानसिक पञ्चोपचार पूजा करके जप करें। इति कूटत्रय न्यासादि।

मूलदेवता-स्तुति

(भगवत्पाद आचार्य शङ्कर द्वारा रचित कल्याणवृष्टिस्तोत्र)

श्रीविद्या का महामन्त्र पञ्चदशाक्षरी सात करोड़ महामन्त्रों का सार है। भगवान् आदिशङ्कराचार्य ने इस मन्त्र के एक—एक अक्षर पर एक—एक श्लोक लिखा। जो पञ्चदशी के पन्द्रह अक्षर होते हैं, इन पन्द्रह— अक्षरों पर पन्द्रह श्लोकों की रचना हुई, जिनके अर्थज्ञानसहित पारायण से शीघ्र मन्त्रसिद्धि हो जाती है।

प्रथम श्लोक में भगवती की सेवा के फल का वर्णन किया है— हे अम्ब! आपकी सेवा कैसी है? अमृत से परिपूर्ण कल्याणमयी अमृतवर्षा के समान है। जैसे वर्षा से ग्रीष्म—आतप से सन्तप्त मनुष्य को शान्ति मिलती है, तथैव आपकी सेवारूपी कल्याण से परिपूर्ण अमृत वृष्टि के समान साधकों के आधि, व्याधि, शोक, सन्ताप को आपकी सेवा दूर कर देती है। पुनः कथंभूता? लक्ष्मी को स्वयं वरण करनेवाली मङ्गलमयी दीपमाला के समान है। जैसे महालक्ष्मीपर्व पर लक्ष्मी का नीराजन दीपमाला से करते हैं, लक्ष्मी उस भक्त के ऊपर कृपा करती है, उसी प्रकार आपकी सेवा भी भक्त के हृदयान्धकार को दूर करके प्रकाशमय बना देती है एवं भक्तिशाली सेवकों के लिए आप क्या क्या नहीं करती हैं? अर्थात् सब कुछ करती हैं। तात्पर्य यह है कि आप भक्त के सभी मनोरथों को पूर्ण कर देती हैं।। १।। श्रीमाता की सेवा का यह फल है।

दूसरे श्लोक में अमृतमय विग्रह के दर्शन की कामना करते हुए नेत्रों के अश्रुपूर्ण होने की कामना की गयी है —

हे जननि! (जननी शब्द बहुत मधुर है, यह वात्सल्य भाव का भी द्योतक है, अतः जननी शब्द से भगवती को सम्बोधित किया)। हे जननि! मेरी तो केवल यही इच्छा है कि परमसुन्दर सुधा से परिप्लुत अरुणवर्ण सूर्य के समान आपके अरुण श्रीविग्रह की सन्निधि में, आपकी वन्दना से मेरे नेत्र अश्रुपूर्ण हो जायें। ये एक समाधि की अवस्था है। साधक की सुषुम्ना (ब्रह्मनाड़ी) का जब विकास होता है, यह तो नेत्रों से अश्रुधारा बहती है और शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। इसलिए भगवान् शङ्कराचार्य ने प्रार्थना करते हुए इस समाधि अवस्था की याचना की है।। २।।

तृतीय श्लोकवर्णन— भगवती के उस भक्त का कभी विनाश नहीं होता, जो भक्त भगवती के

चरणों में एक बार भी प्रणाम कर लेता है। हे जननि! प्रभुत्व भाव के अभिमानी ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर आदि देव प्रतियुग में अभिभूत (लय) हो जाते हैं। परन्तु आपके चरणों में भक्त यदि एक बार भी प्रणाम करता है तो उसका कभी भी विनाश नहीं होता, सदा ही आप की सन्निधि में रहता है।।३।।

चतुर्थ श्लोक में भगवती के कटाक्षपात से प्राप्त अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन है— हे त्रिपुरसुन्दरि! आप की साधना में संलग्न साधक पर जब आपके करुणापूर्ण कटाक्षपात हो जाते हैं, तो वह कन्दर्प के समान सौन्दर्यशाली हो जाता है और तीनों लोकों की सुन्दरियों को सम्मोहित करता है। श्रीविद्योपासक की कुण्डलिनी का मन्त्र-जप द्वारा जब जागरण हो जाता है, तो वह एक विशेष प्रकार की आभा-प्रभा से देदीप्यमान हो जाता है। इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए शङ्कराचार्य ने कहा है कि तीनों लोकों की सुन्दरियों को मोहित कर लेता है अर्थात् कुण्डलिनी जागरण से उसमें आभा—प्रभा आ जाती है।

५. ह्रींकार बीजमन्त्र का माहात्म्य

हे मातः!, हे त्रिकोणत्रिलये! हे त्रिपुरे! आप का नाम ह्रींकार है, ऐसा वेद कहते हैं। इस ह्रींकार का जो स्मरण, जप करते हैं, उनको यमदूतों का भय दूर हो जाता है, वे साधक इन्द्रादि लोकपालों के साथ नन्दन वन में आनन्द करते हैं। इन पाँच श्लोकों में वाग्भव कूट स्पष्ट हुआ है।

६. कामराजकूट का वर्णन

भगवती अमृतमयी हैं, भगवान् शङ्कर ने कण्ठपर्यन्त (गरल) महाभयानक विष का पान किया, परन्तु उनके ऊपर उसके वेग का जरा भी प्रभाव नहीं हुआ। इसका एकमात्र हेतु यही है कि निरन्तर अमृत से परिप्लुत और शीतल आप का अर्धशरीर भगवान् शिव से सम्पृक्त है। इसी से उस भयानक विष का भगवान् शङ्कर के ऊपर जरा भी प्रभाव नहीं हुआ। भगवती की अमृतमयी मूर्ति का ध्यान करने से समस्त विष दूर हो जाते हैं। भगवान् के साथ भगवती अमृतेश्वरी साक्षात् विराजमान हैं, भक्त भी अमृतेश्वरी देवी का मन्त्र जपता है, तो अपना ही नहीं अन्य लोगों के विषप्रभाव को भी दूर करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

७. कामराज कूट के दूसरे श्लोक का वर्णन

हे भगवति! हे देवि! आप के चरणकमलों में प्रणाम, आप के चरणों का ध्यान करने से सभा में वाक्पटुता (वाणी का चातुर्य) प्रकट हो जाती है एवं सर्वज्ञता भी प्राप्त हो जाती है। (सर्वज्ञता का तात्पर्य है कि संसार में बहुत सी तकनीकियाँ है, परन्तु सर्वज्ञता उसे कहते है, जिसमें सत्—असत् का ज्ञान हो) इतना ही नहीं, जैसे श्वेत आतपत्र (छत्र) मुकुट, दो श्वेत चामर आदि का केवल सार्वभौम सम्राट् ही अधिकारी होता है दूसरा नहीं। वैसे ही भगवती भक्त को श्वेत चामर से युक्त सम्राट्, आसमुद्र वसुन्धरा का अधिपति भी बना देती हैं।

८. कृपाकटाक्षकामना

हे त्रिपुरसुन्दरि! कल्पवृक्ष जैसे समीप में आये हुए व्यक्तियों का मनोरथ परिपूर्ण करता है, उसी प्रकार हे अम्ब! आप के कटाक्ष करुणा वरुणालय हैं, मैं अनाथ हूँ मुझपर भी कभी कटाक्षपात कर दें।

क्योंकि आपमें ही मेरी भक्ति है और आप की ही ओर मैं दृष्टि लगाये हुए हूँ। इसमें आचार्य शङ्कर ने भगवती से दर्शन देने की प्रार्थना नहीं की, बल्कि कहा कि आप ही मुझे देख लीजिए। भक्त उस दिव्य भव्य रूप को देखने में असमर्थ है। अत: भगवती से प्रार्थना करता है कि आप मुझे देख लें। उस कटाक्षपात से क्या–क्या प्राप्ति होती है, यह पूर्व श्लोकों में वर्णित किया गया है।

९,१०. हे भगवती मुझे देखो, इसका औचित्य

हे देवि! बड़े दु:ख से कहा जाता है कि कुछ लोग तुच्छ सांसारिक सिद्धि देने वाले देवताओं की भक्ति करते हैं, उनकी पूजा करते हैं। कामधेनु रूप आपको छोड़ करके उष्ट्र की शरण में जा रहे हैं। हे अम्ब! मैं तो मन, वचन से आपका ही स्मरण करता हूँ। हे मात:! आपको ही नमस्कार करता हूँ और आपके ही शरणागत हूँ। अत: मैं आपके कटाक्षपात का अधिकारी हूँ। दशम श्लोक में भी आचार्य शङ्कर भगवती से यही प्रार्थना कर रहे हैं— हे त्रिपुरसुन्दरि यद्यपि आप के नेत्रों के अनेक लक्ष्य विद्यमान हैं, तथापि मुझे धन्य कीजिए, क्योंकि मेरे समान करुणा का एकमात्र पात्र न तो हुआ, न होगा और न वर्तमान में है। मैं आपका शरणागत हूँ। केवल आपकी ही कृपादृष्टि चाहता हूँ।

११. हे त्रिपुरेश्वरि! त्रैलोक्य की अधिष्ठात्री माता 'ह्रीं' इस बीज मन्त्र का प्रतिदिन जप करने वाले साधक के लिए कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है, माला, मुकुट, मदमत्तमातङ्गयुक्त मधुमती लक्ष्मी स्वयं 'ह्रीं' मन्त्रसाधकों का वरण करती हैं।

१२. हे सरोरुहाक्षि! आपके चरणाविन्द में वन्दन समस्त सम्पत्तियों को देने वाला है, समस्त इन्द्रियों का आनन्दप्रदाता, साम्राज्यप्रदाता एवं समस्त पापों को भी नष्ट करने वाला है। हे भगवति! ऐसी अनुकम्पा करें कि मैं निरन्तर आपका वन्दन करता रहूँ। किसी अन्य का नहीं। इस श्लोक में अनन्य भक्ति का रूप प्रकट हुआ है।

१३. हे भगवति! कल्प के उपसंहार में अर्थात् महाप्रलय के लिए भगवान् परमेश्वर शङ्कर जब ताण्डव नृत्य करते हैं, उस समय पाश, अङ्कुश, इक्षुधनु पुष्पबाण धारण की हुई आपकी मूर्ति विराजमान रहती है। उस ताण्डव नृत्य और महाप्रलय की भी आप साक्षीभूता हैं। तार्त्पय यह है कि महाप्रलय होने पर भी भगवान् परमशिव एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही अवशिष्ट रहती हैं।

१४. इस श्लोक में श्रीयन्त्र में स्थित त्रिकोण एवं बिन्दु रूप में महाकामेश्वर और महाकामेश्वरी का वर्णन कर रहे हैं। हे मात:! परमतेजोमय कुंकुमपङ्क के समान अरुण, चन्द्रकला से विभूषित, देदीप्यमान मस्तक पर मुकुट परम अमृत से आप्लावित त्रिकोण में बिन्दुरूप सदाशिव के साथ आपका सामरस्य बोध हो, यह हमारी प्रार्थना है। त्रिकोण शक्ति रूप है, बिन्दु शिवरूप, साधक जब साधना की उच्च स्थिति में पहुँचता है, तो शिवशक्त्यात्मक सामरस्य ही उसका ध्येय और ज्ञेय रह जाता है।

१५. हे कमलासने भगवति! ह्रींकार ही आपका धाम, नाम, और रूप है। हे श्रीसुन्दरि! आप के तेज से परिणत पञ्चमहाभूत जगत् के आदि कारण हैं। उन ब्रह्मा, विष्णु आदि से रचित यह संसार परम आनन्द प्रदान करता है अर्थात् विश्व शिवशक्ति का ही स्वरूप है।

॥ फलश्रुति॥

१६. ह्रींकारत्रय से सम्पुटित महामन्त्र पञ्चदशाक्षरी से दीपित स्तोत्र का 'पञ्चदशाक्षरीदीक्षित साधक' प्रतिदिन यदि जप, पाठ करता है, तो सभी राजा-महाराजा उसके वशीभूत हो जाते हैं और लक्ष्मी चञ्चलता से रहित होकर उसके घर में स्थिर रहती हैं। उसकी वाणी निर्मल सूक्ति, गद्यपद्यमयी काव्य रचना से परिपूर्ण हो जाती है एवं वह चिरञ्जीवी होकर संसार में परम आनन्द का अनुभव करता है।

ग्रन्थकार ने प्रातःस्मरण, प्रातःकृत्य या आह्निक प्रकरण को प्रस्तुत किया। इसमें सर्वप्रथम गुरुमण्डल का वर्णन स्वमत एवं सम्प्रदाय के अनुसार प्रथम गुरुमण्डल के चिन्तन का विधान है। इस ग्रन्थ में महती गुरुपरम्परा का उल्लेख प्राप्त होता है। एक स्थान पर सभी विद्याओं की गुरुपरम्परा प्राप्त होना अतिदुर्लभ है। प्रथम गुरुशिष्य लक्षण, पुनः श्रीगुरुपादुकामन्त्र के माहात्म्य का निरूपण किया गया है। इस प्रकार क्रमबद्ध सपर्यापद्धति का वर्णन कर रहे हैं। प्रातःस्मरण सम्प्रदायानुसार सभी पूजापद्धतियों में प्रकाशित है। हमारे आराध्यचरण स्वामी जी महाराज ने श्रीविद्यार्णव के प्रातःस्मरण को संक्षिप्त करके सर्वसुलभ बना दिया है। यह **श्रीविद्यारत्नाकर एवं श्रीविद्यावरिवस्या** में प्रकाशित हुआ है। वह संलग्न है।

प्रातःस्मरण के बाद पृथिवी को नमस्कार करते हुए प्रार्थना की गयी है— समुद्र मेखला वाली, पर्वतरूपी स्तन से मण्डित, विष्णुपत्नी मेरे पादस्पर्श को क्षमा करें। तदनन्तर शौचविधि का उल्लेख है।

इसमें लिखा है— सन्ध्याकाल में और दिन में उत्तराभिमुख होकरके शौच करें। रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर मलमूत्रादि का त्याग करें। जल के भीतर मलमूत्र त्याग करना सदोष है। शुद्धि के लिए उपस्थ पर एक बार मृतिका लगावें और पायु पर पाँच बार, हाथ पर दश बार, दोनों हाथों पर सात बार मृतिका लगाकर शुद्ध करें। यह नियम गृहस्थों के लिए है। संन्यासी और ब्रह्मचारी के लिए इससे द्विगुण का विधान है। रात्रि में प्रक्षालनादि अर्धशुद्धि का विधान सर्वसामान्य है।

दन्तधावनविधान— "क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः" इस मन्त्र से दन्तकाष्ठ को आठ बार अभिमन्त्रित करके दन्त-धावन करें। बीस गण्डूष, नासिकामल का शोधन, पुनः लक्ष्मी के चार मन्त्रों से मुख प्रक्षालन करें। यहाँ पर ग्रन्थकार ने लक्ष्मी के चार मन्त्रों का उद्धार नहीं किया है, यह भी श्रीविद्यारत्नाकर एवं श्रीविद्यावरिवस्या में प्रकाशित है।

दन्तधावन के अनन्तर स्नान क्रिया, गंगादि नदियों के तट पर सर्वप्रथम आचमन करके संकल्प करें। पुनः भैरव को नमस्कार करके, उनकी आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। आज्ञा प्राप्त करके वैदिक स्नान करें, पुनः तान्त्रिक स्नान करें।

तान्त्रिक स्नानविधि— जल में श्रीचक्र की भावना करके सूर्यमण्डल से अङ्कुश मुद्रा द्वारा सभी तीर्थों का आकर्षण करके उस जल में संयोजन करना चाहिए। पुनः गङ्गा भगवती का ध्यान करके मूल मन्त्र जपते हुए, यदि वैदिक हो, तो जातवेद आदि ऋचाओं से अथवा मूलमन्त्र से कुम्भमुद्रा से सात बार अपने मस्तक पर जल का सिञ्चन करते हुये हृदय में भगवती को विराजमान कर, यक्ष्मतर्पणपूर्वक सब तीर्थों का स्व-स्व स्थान में विसर्जन करें। शरीर के मल से मैने इस जल को अशुद्ध किया, उसके लिए यक्ष्म

का तर्पण करता हूँ। इस प्रकार तट पर आकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिए। जो घर में स्नान करते हैं, उनके लिए यह विधि आवश्यक नहीं है। वे पात्र में जल डालकर तीर्थों का आवाहन करके स्नान करें।

भस्मधारणविधि– हाथ में भस्म लेकर पञ्चप्रणव से अभिमन्त्रित करें एवं "अग्निरिति भस्म" इत्यादि वैदिक मन्त्रों या मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके भस्म धारण करें। श्रीविद्यार्णव के ३६वें श्वास में भस्म की विस्तृत विधि लिखी गयी है। वहीं द्रष्टव्य है।

वैदिकसन्ध्या के अनन्तर तान्त्रिकसन्ध्या का विधान है। सर्वप्रथम "मणिधरिणि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा" इस मन्त्र से या मूल मन्त्र से शिखाबन्धन करें। तदनन्तर अपने मूल मन्त्र के तीन कूटों से आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व, स्वाहा बोलकर तीनों तत्त्वों का शोधन करें। प्राणायाम करके तान्त्रिक पञ्चाङ्ग से सङ्कल्प करें। अग्रभाग में जल का कुम्भ रखकर पूर्ववत् तीर्थों का आवाहन करें। आवाहनादि की मुद्राओ का प्रदर्शन करके दाहिने हाथ में जल लेकर बाँयें हाथ से आच्छादन कर लें। पञ्चमहाभूत मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके वह जल बाँये हाथ में लेकर मूल विद्या से तीन बार मार्जन फिर क से म तक स्पर्श वर्णों से स्वाहा बोलकर अभिमन्त्रण करके पुनः वामनासिका से जल को भीतर ले जाने की भावना करें। पापपुरुष को लेकर जल बाहर आ गया, यह भावना करके उसको सामने वज्रशिला पर "अस्त्राय फट्" बोलकर छोड़ दें। पुनः हस्तप्रक्षालन करके, अञ्जलि में जल लेकर खड़े होकर सूर्य में अपने इष्ट देवता का ध्यान करके गायत्री मन्त्र से तीन अर्घ्य देवें। फिर श्रीचक्र के आवरण देवताओं का तर्पण करें। मूल मन्त्र से पच्चीस बार अपने देवता का तर्पण करें, ऋषि आदि षडङ्ग न्यास करके गायत्री मन्त्र का जप करें। (तान्त्रिक गायत्री)

कुलार्णव में वर्णित विधि का भी ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों में स्वसम्प्रदायानुसार वर्णन किया गया है। हमारे श्रीविद्यारत्नाकर में भी उपरोक्त सन्ध्याविधि का सारसंक्षेप लिखा गया है। तन्त्रान्तरों में लिखा है– प्रातः, मध्याह्न, सायं तीनों सन्ध्याकालों में न्यास करके अपने मन्त्र का जप कर लेना चाहिए, यह भी एक प्रकार की सन्ध्या है। कुलार्णव में लिखा है– सन्ध्या का लोप कभी नहीं करना चाहिए। दीक्षित व्यक्ति यदि सन्ध्या नहीं करता है, तो उसे दीक्षा का फल प्राप्त नहीं होता है। इसलिए यदि सन्ध्या न कर सके, तो दस बार मूल मन्त्र का जप करें। श्रीत्रकण्टकी विद्या का ध्यान करके, सन्ध्यालोप से उत्पन्न पाप का क्षय हो गया, ऐसी भावना करें। ज्योतिर्मय होकर पुनः मूलविद्या का हृदय में स्मरण करते हुए पूजा के लिए जल लेकर याग मण्डप में प्रवेश करें।

यागमण्डप में प्रवेशविधि –

स्वच्छ वस्त्र और आभूषण धारण करके, कर्पूर, केसर आदि सुगन्धित वस्तुओं से शरीर को सुगन्धित करें। लाल वस्त्र, नवरत्नादि आभूषण धारण कर ताम्बूलादि से मुखशुद्धि करके, रक्तवर्ण से बने चित्रविचित्रित एवं अनेक धूपों से धूपित, पुष्पमालाओं से सुसज्जित, गोमय से संलिप्त, सुन्दर पुष्पों से सुगन्धित यागमन्दिर में प्रवेश करें। ऐसा ही दक्षिणामूर्तिसंहिता में भी विधान है। यागमण्डप में प्रवेश करके "ओं वज्रोदके हुं फट् स्वाहा" इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से आसन का अभ्युक्षण कर, आसन पर बैठ कर "ओं ह्रीं विशुद्धे सर्वपापानि शमय विकल्पं अपनय हूँ" इस मन्त्र से हस्तपाद को प्रक्षालन की

भावना करें। पुनः "ओं ह्रीं स्वाहा" तीन बार आचमन करके सूर्य की पूजा करें।

कुलार्णव में लिखा है— पूर्वाभिमुख होकर प्राङ्गण में मार्तण्ड भैरव की पूजा करें। सामान्य अर्घ वाम में रखकर पाँच प्रणवों का उच्चारण करें। पुनः पञ्चाङ्गुल चतुरस्र में षट्कोण बनावें। आधारपात्र को अस्त्राय फट्, इस मन्त्र से शोधित करके स्थापित कर जल से पूरित करें। अग्नि, सूर्य और सोम मन्त्रों से पूजा करें। वह्नासापुट कर से सौरमण्डल का कस्तूरी, चन्दन आदि से पूजन करें।

" ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह्सौः चन्द्रसूर्याग्निगर्भ स्फुरस्फुर धर्मार्थकाममोक्षलाभं कुरुकुरु महाखेचरीमुद्रां प्रकटय प्रकटय शाम्भवाज्ञया चतुरन्वयानां सिद्धिसामर्थ्यादि दद दद किच किच किलि किलि फ्रें मण्डलब्रह्माण्डलहस्रूं महाचण्डशिवे सहफ्रें ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह्सौः।"

इस मन्त्र से सौरमण्डल का पूजन करके वृत्त, अष्टदलपद्म, चतुरस्र बना करके उस पर कलश स्थापन करें। पुनः सामान्य विशेषार्घ का मण्डल बनावें, उसके दाहिने भाग में सूर्यार्घ्य पूजा के लिए चतुरस्र बनाकर आधार स्थापित करके पूजा करें। मूल में पृ. १०० पर मार्तण्डपूजा का विधान लिखा है। वह गुरुमुख से ज्ञात करके अपने सम्प्रदायानुसार क्रम का सम्पादन करें।

इसके अनन्तर मण्डपपूजा के लिए मण्डप का ध्यान करें, १०१—१०२ पृ० में मण्डपध्यान वर्णित है। तदनन्तर द्वारपूजा का विधान बहुत विस्तृत रूप से लिखा गया है। १०२ से १०५ तक द्वार-देवताओं का विस्तृत पूजन है, जो महायज्ञों में करना सम्भव है। नित्यपूजा के लिए पद्धतियों में संक्षेप किया गया है।

द्वारदेवता के पूजन के अनन्तर मण्डप में प्रवेश किया जाता है। यहाँ भूमिशुद्धि के लिए अभ्युक्षण पुनः उसके भीतर त्रिकोण का चिन्तन करके कामरूप पीठ, पूर्णगिरिपीठ जालन्धरपीठ, ओड्याणपीठ, इन चार पीठों का पूजन करके "ओं ऐं ह्रीं श्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः" कह कर उत्तराभिमुख होकरे बैठे। 'पृथ्वी त्वया धृता लोका" इससे आसनशुद्धि करें।

(१) शिरसि—दीपनाथाय नमः। दक्षभुजे (२) गं गणपतये नमः। (३) वामभुजे—दुं दुर्गायै नमः। (४) दक्षजानुनि — क्षं क्षेत्रपालाय नमः। (५) वामजानुनि — सं सरस्वत्यै नमः।

"गुरु-परमगुरु-परमेष्ठि-गुरुभ्यो नमः" उच्चारण करते हुए नमस्कार करें। विघ्नों का उत्सारण करें। करशुद्धि करके दिग्बन्धन करें। दसों दिशाओं के देवताओं को प्रणाम करें। इसमें दश दिग्बन्धन के मन्त्र दिये गये हैं। अग्निप्राकार का चिन्तन करें। मूल में इसकी मन्त्र और विधि दी गयी है। अन्यान्य पद्धतियों में इनका संक्षेप किया गया है। श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या पद्धतियों में भी इसकी सुगम और संक्षेपविधि दी गयी है।

पूजाद्रव्यों को दक्षिणभाग में स्थापित करें। सुवासित जलपूर्ण कलश, हस्तप्रक्षालन के लिए एक पात्र रखें। घृततैल से प्रज्वलित दीपों को स्थापित करें। दर्पण, चामर, क्षत्र, तालवृन्त यथाशक्ति स्थापित करें। नानाविध सुगन्धित पुष्प, कर्पूर, जातिफल, जातिपत्रादि, धूपादि, स्वच्छ—सुगन्धित वस्त्र, ताम्बूल, धूप, दीप नैवेद्यादिक, अलंकार, आभूषण, वस्त्र आदि को मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से संशोधित करके, पुष्पों का शोधन करें। आत्मरक्षा, प्राणायाम करके भूतशूद्धि करें।

'ओं रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा'' इस मन्त्र से हृदय पर हाथ रख कर आत्मरक्षा करनी चाहिए। श्रीविद्यारत्नाकर आदि पद्धतियों में ज्वालामालिनी आदि मन्त्रों के द्वारा रक्षा का विधान है।

॥ अथ भूतशुद्धि॥

शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम्। अव्ययब्रह्मसम्पर्काद् भूतशुद्धि रियं मता।
सुषुम्ना वर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत्। योगयुक्तेन विधिना चिन्मन्त्रेण समाहित:॥

ग्रन्थाकार ने भूतशुद्धि के लिए उपर्युक्त दो श्लोक उधृत करके इनकी व्याख्या करते हुए भूतशुद्धि के विधान की विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख किया है। उसी व्याख्या का सार प्रस्तुत किया जा रहा है, जो श्रीविद्यावरिवस्या में प्रकाशित है। विशेष जिज्ञासा के लिए मूलकावलोकन करें।

॥ भूतशुद्धि॥

भूतशुद्धि सुषम्ना मार्ग से वायु का आकर्षण करके 'हूँ' बीज से मूलाधार स्थित चतुर्दल कमल के त्रिकोण में स्थित ज्योतिर्मय लिङ्ग को अवगुण्ठित करके स्थित, त्रिवलयाकार कुण्डलिनी विद्युत्पुञ्ज के समान रक्त वर्णवाली, अयुत भास्कर प्रकाश के समान प्रकाशमान, शताधिक चन्द्रसुधामयूख के समान सुशील, कुण्डलिनी को जागृत कर के ''जीवशिवं परमशिवे योजयामि स्वाहा'' इस मन्त्र से हृदयस्थित जीव को कुण्डलिनीमुख से ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर परमशिव के साथ एकीभूत करके ''हंस: सोऽहं'' की भावना करता हुआ वाम नासिका से वायु का रेचन करें। इसका तात्पर्य यह है कि दक्षिण नासिका से वायु का आकर्षण करते हुए 'हूँ' बीज के उच्चारण से मूलाधारस्थित कुण्डलिनी हृदयस्थित जीवात्मा को लेकर सहस्रदल में स्थित परमशिव के साथ एकीभूत हो गयी, ऐसी भावना करें। पुन: वाम नासिका से वायु का रेचन करें। फिर वाम कुक्षि में स्थित अङ्गुष्ठप्रमाण पापपुरुष जिसका विप्रहत्या शिर, स्वर्णस्तेय बाहु है, मदिरापान हृदय, गुरुतल्प कटि– तत्संयोगी उपपातक ही रोम हैं और खड्गचर्म धारण किया हुआ दुष्ट, नीचे मुख वाले पापपुरुष का चिन्तन करके 'यं यं' इस वायु बीज का स्मरण करते हुए वायु को दक्षिण नाड़ी से पूरित करके उस पापपुरुष का शोषण कर दें। फिर 'रं रं' अग्नि बीज से पूरक से द्विगुणित समय तक कुम्भक करके पापपुरुष को 'यं यं' बीज को अधिककाल तक जपते हुए वाम नासिका से उस भस्म को रेचक से बाहर निकाल दें। ब्रह्मरन्ध्रगत चन्द्र-मण्डल में अमृतवर्षिणी भवानी की भूमिशुद्धि के लिए भावना करें। ब्रह्मरन्ध्र से गलित सुधावृष्टि का चिन्तन करना चाहिए। इसको भूमिशुद्धि कहते हैं। तदनन्तर अपने मस्तक पर महाकामेश्वर महाकामेश्वरी के रक्तशुक्लचरणन्यास की भावना करके उससे नि:सृत, अमृत से बाह्य और आभ्यन्तर शुद्ध हो गया, यह भावना करनी चाहिए। इति भूतशुद्धि।

भूतशुद्धिविधि (संक्षेप में)

(सात बार पूरक रेचक प्राणायाम करें)

ऐं ह्रीं श्रीं मूलशृङ्गाटकात् सुषुम्नापथेन जीवशिवं परमशिवे योजयामि स्वाहा।

भूतशुद्धिविधि (विस्तृत)

('भूतशुद्धि' द्वारा शरीर में स्थित 'सङ्कोच शरीर' जिसे 'पाप शरीर' भी कहते हैं, उसका पृथिवी

आदि पञ्चमहाभूतों के बीजाक्षरों से शोषण, दहन एवं अमृताप्लावन करके 'दिव्यशरीर' का उत्पादन और 'शिव–शक्तिमय–शरीर' का निर्माण किया जाता है। इसे एक प्रकार से 'नाडी–शुद्धि' भी कहते हैं।) इसकी विधि इस प्रकार है–

सर्व प्रथम नासिका के दाहिने भाग से श्वास खींचकर–

'३ मूलशृङ्गाटकात् सुषुम्नापथेन जीवशिवं परमशिवे योजयामि स्वाहा'

बोलकर जीव शिव को ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित करें और वहाँ परमशिव के साथ एकीभूत होने की भावना करके नासिका के वाम भाग (इडा) से श्वास का रेचन करें। पुनः 'यं' बीज से इडा द्वारा पूरक करके–

'सङ्कोचशरीरं शोषय शोषय स्वाहा'

बोलकर पिङ्गला द्वारा रेचक करते हुए भावना करें कि 'सङ्कोचशरीर का शोषण हो गया।'

पुनः 'रं' बीज से पिङ्गला द्वारा पूरक करके– सङ्कोचशरीरं दह दह पच पच स्वाहा।

बोलकर इडा द्वारा रेचक करते हुए भावना करें कि– 'सङ्कोच शरीर' का दहन हो गया। पुनः 'वं' बीज से इडा द्वारा पूरक करके– परमशिवामृतं वर्षय स्वाहा।'

बोलकर पिङ्गला द्वारा रेचक करते हुए भावना करें कि– 'जले हुए 'पाप–शरीर' का भस्म सहस्रार से स्रवित अमृत से आप्लावित हो गया।'

पुनः 'लं' बीज से पिङ्गला द्वारा पूरक करके– 'शाम्भवशरीरमुत्पादयोत्पादय स्वाहा'।

बोलकर इडा द्वारा रेचक करते हुए भावना करें कि– 'इससे शाम्भव (दिव्य) शरीर उत्पन्न हो गया।

पुनः 'ह्रीं' बीज से इडा द्वारा पूरक करके–'शिवशक्तिमयं शरीरं कुरु कुरु स्वाहा।'

बोलकर पिङ्गला द्वारा रेचक करते हुए भावना करें कि– 'दिव्य शरीर शिवशक्तिमय हो गया।

पुनः 'हंसः सोऽहं' मन्त्र से पिङ्गला द्वारा पूरक करके–

'अवतर अवतर शिवपदाज्जीव सुषुम्नापथेन प्रविश मूलशृङ्गाटकमुल्लसोल्लसय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हंसः सोहं स्वाहा।' बोलकर इडा द्वारा रेचक करते हुए भावना करें कि– शिव के साथ सहस्रार में जो जीवात्मा स्थापित किया गया था, वह सुषुम्ना मार्ग से पुनः मूलाधार में स्थित हो गया।

(यहाँ पर विशेष स्मरणीय है कि भूतशुद्धि की इस क्रिया में पूरक और रेचक को ही प्राणायाम कहते हैं। इसमें कुम्भक नहीं होता, इसे नाड़ी शुद्धि भी कहा जाता है। पूरक में प्रत्येक बीज का सोलह बार उच्चारण होता है। रेचक में उसके आगे लिखे हुए वाक्य का उच्चारण होता है।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार– प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचयेत्।
पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्ध्वा त्यजेद् वामया।
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्वताम्।
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः।।

और त्रिपुरा में कहा है— "विपरीतमतो विदधीत पुनः पुनरण्यथ तद्विपरीतमिति।
अमुना विधिना सुमनाः सततं यततो विदधीत सुसंयमनम्॥"

॥ प्राणप्रतिष्ठा ॥

भूतशुद्धि के बाद प्राणप्रतिष्ठा का विधान है, जो मूल में विस्तृत रूप से दिया गया है, उसके अनुसार करें या हृदय पर हाथ रखकर "आं सोऽहं" इस मन्त्र का तीन बार जप करें।

पञ्चम श्वास में मुख्य रूप से प्रातःकृत्य गुरुस्मरण 'कुण्डलिनी स्तुति, कल्याणवृष्टिस्तोत्र हैं। इनका भावार्थ राष्ट्रभाषा में किया गया है। ग्रन्थकार ने तन्त्रान्तरों के सिद्धान्तो को दृष्टिगत करके लिखा है, जो सिद्धान्त का रूप बन गया, अतः विस्तृत भी हो गया। सर्वसाधारण के लिए इतने विशाल रूप से करना असम्भव है। अतः श्रीविद्यारत्नाकर में प्रकाशित प्रातःस्मरण, तान्त्रिक सन्ध्याविधि संक्षेप में किन्तु श्रीविद्यार्णव के अनुसार ही है। ज्ञानार्णवतन्त्र, शारदातिलकतन्त्र, परशुरामकल्पसूत्र आदि प्रामाणिक तन्त्रों के भी अनुसार है। प्रारम्भिक साधकों के लिए सुगम है, अतः यहाँ संलग्न किया जा रहा है। साधकवर्ग यथाशक्ति इनका उपयोग करें।

॥ ब्राह्ममुहूर्तकृत्यम्॥

(मन्त्रमहार्णवश्रीविद्यार्णवनित्योत्सवादिषु प्रतिपादितम्)— श्रीविद्यारत्नाकरस्थम्

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय निद्रास्थानाद् बहिर्निर्गत्य हस्तौ पादौ मुखञ्च प्रक्षाल्याचम्य रात्रिवस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिधाय शुद्धासन उपविश्याज्ञाचक्रे कोटीन्दुप्रकाशे स्वगुरुं ध्यायेत्—

ओं आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं भजामि॥

॥ श्रीगुरुपादुकापञ्चकम्॥

ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे नित्यलग्नमवदातमद्भुतम्।
कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं द्वादशार्णसरसीरुहं भजे॥ १॥
तस्य कन्दलितकर्णिकापुटे क्लृप्तरेखमकथादिरेखया।
कोणलक्षितहकक्षमण्डलीं भावलक्ष्यमबलालयं भजे॥ २॥
तत्पुटे पटुतडित्कडारिमस्पर्द्धमानमणिपाटलप्रभम्।
चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपुर्बिन्दुमणिपीठमुज्ज्वलम्॥ ३॥
ऊर्ध्वमस्य हुतभुक्शिखात्रयं तद्विलासपरिबृंहणास्पदम्।
विश्वघस्मरमहोच्चिदोत्कटं व्यामृशामि युगमादिहंसयोः॥ ४॥
तत्र नाथचरणारविन्दयोः कुङ्कुमासवपरीमरन्दयोः।
द्वन्द्वबिन्दुमकरन्दशीतलं मानसं स्मरति मङ्गलास्पदम्॥ ५॥
निषिक्तमणिपादुकानियमितौघकोलाहलम्। स्फुरत्किसलयारुणं नखसमुल्लसच्चन्द्रकम्॥
परामृतसरोवरोदितसरोजसद्रोचिषम्। भजामि शिरसि स्थितं गुरुपादारविन्दद्वयम्॥

नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे। विद्याऽवतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह ।।
नवाय नवरूपाय परमार्थस्वरूपिणे। सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ।।
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने। परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे।।
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम्। प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे।।
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः। सदा मच्चित्तरूपेण विधेहि भवदासनम्।।
इत्येवं पञ्चभिः श्लोकैः स्तुवीत यतमानसः। प्रातः प्रबोधसमये जपात् सुदिवसं भवेत्।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

'ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः स्वरूपनिरूपणहेत्वमुकाम्बासहित श्रीगुरुपादुकां पूजयामि' 'स्वच्छप्रकाशविमर्शहेत्वमुकाम्बासहितश्रीपरमगुरुपादुकां पूजयामि''स्वात्मारामपञ्जर-विलीनचेतस्कामुकाम्बासहित श्रीपरमेष्ठिगुरुपादुकां पूजयामि', इति गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरुपादुकां पूजयेत्।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुस्साक्षात्परं ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

इति प्रणम्य प्राणानायम्य च तच्चरणयुगलविगलदमृतरसविसरपरिप्लुताखिलाङ्गमात्मानं भावयेत्।

ततश्च सर्वचैतन्यात्मिकां जाग्रदाद्यवस्थात्रयावभासिकां सर्वाधिष्ठानरूपां प्रत्यक्चैतन्याभिन्नब्रह्मात्मिकां सर्वचैत्यविवर्जितामखण्डां चितिं भावयेत्।

आमूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्तीं तडिल्लतासदृशाकृतिं तरुणारुणपिञ्जरां तैजसीं ज्वलन्तीं कुण्डलीरूपां सर्वाधिष्ठानभूतां परां संविदं भावयेत्।

नियमितपवनस्पन्दो मूलाधारे चतुर्दलपद्मे त्रिकोणात्मकं पीठस्थितज्योतिर्लिङ्गमावेष्ट्यावस्थितां सार्धत्रिवलयां "हूं" बीजेनोत्थिताम् 'ऐं ह्रीं श्रीं' इति मन्त्रं च जपन् कुण्डलिनीं ध्यायेत्।

।। कुण्डलिनीमन्त्रः।।

वाग्भवं भुवनेशी च श्रीबीजन्तु तथैव च। त्र्यक्षरो मन्त्र आख्यातः कुण्डलिन्यास्सुसिद्धिदः।। १।।
ऋषिश्शक्तिस्समाख्यातो गायत्रीच्छन्द ईरितम्। चेतनाकुण्डली शक्तिर्देवतात्र समीरिता।। २।।
वाग्भवं बीजमाम्नातं शक्तिः श्रीबीजमुच्यते। हल्लेखा कीलकं प्रोक्तं कुण्डलिन्यास्तु चिन्तने।। ३।।
विनियोगस्समाख्यातः सर्वागमविशारदैः । बीजत्रयद्विरावृत्या षडङ्गन्यास ईरितः।। ४।।
ध्यानं वक्ष्यामि कुण्डल्यास्सावधानतया शृणु। मूलाधारे त्रिकोणे तु सूर्यकोटिसमत्विषि।। ५।।
प्रसुप्तभुजगाकारां सार्धत्रिवलयस्थिताम्। नीवारशूकवत्तन्वीं तडित्कोटिसमप्रभाम्।। ६।।
सूर्यकोटिप्रभां दीप्तां चन्द्रकोटिसुशीतलाम्। शिवशक्तिमयीं देवीं शङ्खावर्तक्रमात्स्थिताम्।। ७।।
सुषुम्नामध्यमार्गेण यान्तीं परशिवावधि। ह्रींकारबीजरूपेण चिन्तयेद् योगवर्त्मना।। ८।।

।। ध्यानम्।।

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम्।।

॥ कुण्डलिनीस्तुतिः॥

मूलोन्निद्रभुजङ्गराजसदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं
भित्वाधारसमूहमाशु विलसत्सौदामिनीसन्निभाम्।
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतौघैः पतिं
सम्भाव्य स्वगृहागतां पुनरिमां सञ्चिन्तयेत् कुण्डलीम्॥
हंसं नित्यमनन्तमद्वयगुणं स्वाधारतो निर्गता,
शक्तिः कुण्डलिनी समस्तजननी हस्ते गृहीत्वा च तम्।
याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनानुभूय स्वयं,
यान्ती स्वाश्रममर्ककोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी॥
अव्यक्तं परबिम्बमञ्चितरुचिं नीत्वा शिवस्यालयं,
शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयवपुर्विद्युल्लतासन्निभा।
आनन्दमृतकन्दगं पुरमिदं चन्द्रार्ककोटिप्रभं
संवीक्ष्य स्वगृहं गता भगवती ध्येयाऽनवद्या गुणैः॥
मध्ये वर्त्म समीरणद्वयमिथस्सङ्घट्टसङ्क्षोभजं,
शब्दस्तोममतीत्य तेजसि तडित्कोटिप्रभाभास्वराम्।
उद्यन्तीं समुपास्महे नवजपासिन्दूरसान्द्रारुणां,
सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवां प्राप्तां परां देवताम्॥
गमनागमनेषु जाङ्घिकी सा तनुयाद्योगफलानि कुण्डली।
मुदिता कुलकामधेनुरेषा भजतां वाञ्छितकल्पवल्लरी॥
आधारस्थितशक्तिबिन्दुनिलयां नीवारशूकोपमां,
नित्यानन्दमयीं गलत्परसुधावर्षैः प्रबोधप्रदैः।
सिक्त्वा षट्सरसीरुहाणि विधिवत्कोदण्डमध्योदितां,
ध्यायेद्भास्वरबन्धुजीवरुचिरां संविन्मयीं देवताम्।
हृत्पङ्केरुहभानुबिम्बनिलयां विद्युल्लतामन्थरां,
बालार्कारुणतेजसा भगवतीं निर्भत्सन्तीं तमः॥
नादाख्यं परमर्धचन्द्रकुटिलं संविन्मयीं शाश्वतीं,
यान्तीमक्षररूपिणीं विमलधीर्ध्यायेद्विभुं तेजसाम्॥
भाले पूर्णनिशाकरप्रतिभटां नीहारहारत्विषा,
सिञ्चन्तीममृतेन देवममितेनानन्दयन्तीं तनुम्।
वर्णानां जननीं तदीयवपुषा संव्याप्य विश्वं स्थितां,
ध्यायेत् सम्यगनाकुलेन मनसा संविन्मयीमम्बिकाम्॥
मूले भाले हृदि च विलसद्वर्णरूपा सवित्री,
पीनोत्तुङ्गस्तनभरनमन्मध्यदेशा महेशी।

चक्रे चक्रे गलितसुधया सिक्तगात्री प्रकामं,
दद्याद्द्य श्रियमविकलां वाङ्मयी देवता नः।।
आधारबन्धप्रमुखक्रियाभिः समुत्थिता कुण्डलिनी सुधाभिः।
त्रिधामबीजं शिवमर्चयन्ती शिवाङ्गना नः शिवमातनोतु।।
निजभवननिवासादुच्चलन्ती विलासैः
पथि पथि कमलानां चारु हासं विधाय।
तरुणतपनकान्तिः कुण्डली देवता सा
शिवसदनसुधाभिर्दीपयेदात्मतेजः।।
सिन्दूरपुञ्जनिभमिन्दुकलावतंसमानन्दपूर्णनयनत्रयशोभिवक्त्रम् ।
आपीनतुङ्गकुचनम्रमनङ्गतन्त्रं शम्भोः कलत्रममितां श्रियमातनोतु।।
वर्णैरर्णवषट्दिशारविकलाचक्षुर्विभक्तैः क्रमात्,
सान्तैरादिभिरावृतान् क्षहयुतैष्षट्चक्रमध्यानिमान्।
डाकिन्यादिभिराश्रितान् परिचितान् ब्रह्मादिभिर्दैवतै-
र्भिन्दाना परदेवता त्रिजगतां चित्तेषु दत्तां मुदम्।।
आधाराद् गुणवृत्तशोभिततनुं निर्गत्वरीं सत्वरं,
भिन्दन्तीं कमलानि चिन्मयघनानन्दप्रबोधोद्धुराम्।
सङ्क्षुब्धं ध्रुवमण्डलामृतकरप्रस्यन्दमानामृत-
स्रोतःकन्दलितामन्दतडिदाकारां शिवां भावये।।
मूलाधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभाभास्वरे विभ्रमन्तं
कामं बालार्ककालानलजरठकुरङ्गाङ्ककोटिप्रभाभम्।
विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिरलसद्बन्धुजीवाभिरामं,
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुं जगदुदयलयैकान्तहेतुं विचिन्त्य।।
तस्योर्ध्वे विस्फुरन्तीं स्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभाभास्वराङ्गी-
मुद्गच्छन्तीं सुषुम्नामनुसरणिशिखामाललाटेन्दुबिम्बम्।
चिन्मात्रां सूक्ष्मरूपां जगदुदयकरीं भावनामात्रगम्यां,
मूलं या सर्वधाम्नां स्फुरति निरुपमा हूँकृतोदश्चितोरः।।
नीता सा शनकैरधोमुखसहस्रारारुणाब्जोदरे,
च्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बमधुनः पीयूषधारास्रुतिम्।
रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिःष्यन्दरूपा विशेद्
भूयोऽप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा विशेत्।।
योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवमात्मनोऽन्तर्बीजांशं दुरितजरापमृत्युरोगान्।
जित्वाऽसौ स्वयमिव मूर्तिमाननङ्गः सञ्जीवेच्चिरमतिनीलकेशजालः।।
(इति तद्रश्मिनिकरभस्मितसकलकश्मलजालो "मूलं"– मनसा दशवारमावर्तयेत्)

।। अजपाजप–विधिः।।

अथ षट्शताधिकैकविंशतिसाहस्रिकां निःश्वासोच्छावासरूपिणीं मूलाधारादि ब्रह्मरन्ध्रान्त सप्तचक्र-निवासिनीभ्यो देवताभ्यो निवेदयामि, यथा—

मूलाधारे चतुर्दलपद्मे वं शं षं सं चतुरक्षरे चतुष्कोणयन्त्रे ऐरावतवाहने लं बीजे स्थिताय सिद्धिबुद्धिशक्तिसहिताय कुङ्कुमवर्णाय महागणपतये षट्शतमजपागायत्रीजपं निवेदयामि।

स्वाधिष्ठाने षड्दलपद्मे बं भं मं यं रं लं षडक्षरे अर्धचन्द्रे यन्त्रे मकरवाहने वं बीजे स्थिताय सरस्वतीशक्तिसहिताय सिन्दूरवर्णाय ब्रह्मणे षट्सहस्रमजपाजपं निवेदयामि।

मणिपूरकचक्रे दशदलपद्मे डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दशाक्षरे त्रिकोणयन्त्रे मेषवाहने रं बीजे स्थिताय लक्ष्मीशक्तिसहिताय नीलवर्णाय विष्णवे षट्सहस्रमजपाजपं निवेदयामि

अनाहतचक्रे द्वादशदलपद्मे कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं द्वादशाक्षरे षट्कोणयन्त्रे हरिणवाहने यं बीजे स्थिताय पार्वतीशक्तिसहिताय हेमवर्णाय परमशिवाय षट्सहस्रमजपाजपं निवेदयामि।

विशुद्धिचक्रे षोडशदलपद्मे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः षोडशाक्षरे शून्ययन्त्रे हस्तिवाहने हं बीजे स्थिताय प्राणशक्तिसहिताय शुद्धस्फटिकसङ्काशाय जीवाय सहस्रमेकमजपाजपं निवेदयामि।

आज्ञाचक्रे द्विदलपद्मे श्वेतवर्णे हं क्षं द्व्यक्षरे लिङ्गयन्त्रे नरवाहने प्रणव बीजे स्थिताय ज्ञानशक्तिसहिताय विद्युद्वर्णाय गुरवे सहस्रमेकमजपाजपं निवेदयामि।

ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रदलपद्मे चित्रवर्णे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं इति विंशतिवारोच्चारिते सहस्राक्षरे विसर्गयन्त्रे बिन्दुवाहने पूर्णचन्द्रमण्डले आनन्दमहासमुद्रमध्ये चिन्मयमणिद्वीपे चित्सारचिन्तामणिमयमन्दिरे कल्पवृक्षाधस्थले अव्याकृतब्रह्ममहासिंहासने स्थिताय नानावर्णाय वर्णातीताय चिच्छक्तिसहिताय परमात्मने सहस्रमेकमजपाजपं निवेदयामि (इति निवेदयेत्)।

(अथ कतिचित् क्षणान् हंसः सोऽहमिति श्वासोच्छ्वासेषु भावयेत्)

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंसोऽतिपरमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

(इति ध्यात्वा) मानसैरुपचारैस्सर्वान् देवान् पूजयेत्।
लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि (कनिष्ठिकाङ्गुष्ठाभ्याम्)।
हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि (अङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्)।
यं वाय्वात्मकं धूपमाघ्रापयामि (तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्)।
रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि (अङ्गुष्ठमध्यमाभ्याम्)।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि (अङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्)।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलादिसर्वोपचारान् समर्पयामि (साङ्गुष्ठाभिस्सर्वाभिः)।

आमूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्त्यां बिसतन्तुतनीयस्यां विद्युत्पुञ्जपिञ्जरायां विवस्वदयुतप्रकाशायां कुण्डलिन्यामेव निम्नाङ्कितेषु चक्रेषु श्रीचक्रस्थितां देवतां भावयन् पूजयेत्।

तद्यथा—मूलाधारादधोगते अकुलसहस्रारे तदुपरि स्थिते विषुवन्नाम्नि रक्तवर्णे षड्दले च देहश्रीचक्रयोरभेदेन भूपुरस्थिताः अणिमादिदेवीः पूजयामि।

चतुर्दले मूलाधारे षोडशदलगतकामाकर्षिण्यादिदेवीः पूजयामि।

षड्दले स्वाधिष्ठाने अष्टदलगतानङ्गकुसुमादिदेवीः पूजयामि।

दशदले मणिपूरे चतुर्दशारगतसर्वसङ्क्षोभिण्यादिदेवीः पूजयामि।

द्वादशदले अनाहते बहिर्दशारगतसर्वसिद्धिप्रदादिदेवीः पूजयामि।

षोडशदले विशुद्धौ अन्तर्दशारगतसर्वज्ञादिदेवीः पूजयामि।

लम्बिकाग्रे अष्टारगतवशिन्यादिदेवीः पूजयामि।

आज्ञाचक्रे द्विदले त्रिकोणगतमहाकामेश्वर्यादिदेवीश्च पूजयामि।

सहस्रारे बिन्दुगतश्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीं कामेश्वराङ्कनिलयां देवीं पूजयामि। इति।

श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यां सचक्रावयवान्यावरणानि विलीनानि विभाव्य सहस्रारे स्थितजीवात्मना सहितां देवीं हृदयं नीत्वा स्वाञ्जलिगतकुसुमैस्तां सम्पूज्य ततोऽकुलेन्दुगलितामृतधारारूपिणीः चन्दनकुसुमधूपदीपनैवेद्य—शालिकरकमलाः पीतासितश्यामरक्तशुक्लवर्णाः भूवियदनिलानलजललक्षणाः पञ्चभूतमयीः सर्वावयवसुन्दरीः पञ्च देवताः देव्यग्रे पञ्चोपचारमुद्राश्च प्रदर्शिता भावयेत्।

ततो देव्याः नासायां गन्धदेवता, श्रोत्रे पुष्पदेवता, नाभौ धूपदेवता, नयने दीपदेवता, जिह्वायां नैवेद्यदेवता—इति क्रमेण ताः विलीना विभाव्य मूलविद्यामुच्चारयन् जीवात्मानं देवीपादमूले लीनं विभाव्य हृदयगतदेवीरूपं मध्यत्र्यस्रसहितं तथैव केवलं ज्योतिर्मयतामापन्नं ध्यायन् सङ्क्षोभिण्यादिमुद्राः भावयित्वा क्षणं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।

।। रश्मिमालामन्त्राः।।

ततो रश्मिमालाप्रवर्तनम्। रश्मिमालामन्त्रेषु वैदिकान्मन्त्रान् सस्वरान् पठेत्।

ॐ भूर्भुवस्स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रयोदयात् (इति गायत्री मूलाधारे)।। १।।

सावित्र्या विश्वामित्र ऋषिः निचृद्गायत्रीच्छन्दः सविता देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।

गायत्रीवरदाभयाङ्कुशकशाशुभ्रं कपालं गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।

'यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि, मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि।।

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी, वृषेन्द्रः पुर एतु नः स्वस्तिदा अभयङ्करः'।। २।।

अभयङ्करमन्त्रस्य गृत्समद ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, अभयङ्करो देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

आरूढो वारणेन्द्रं दशशतनयनः श्यामलः कोमलाङ्गः वर्मी वीरः प्रतापी प्रतिभटदहनप्रज्ज्वलच्चक्रपाणिः।

दोर्भिर्दिव्यायुधाढ्यैर्मणिगणखचितैर्देवमन्त्रीसनाथो दत्वाभीष्टानि शश्वत्परिहृतदुरितः पातु विश्वं महेन्द्रः।।

'ॐ घृणिस्सूर्य आदित्योम्' (इत्यष्टार्णा सौरी तेजोदा, फाले)।। ३।।

(सौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सूर्यो देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

घृतपद्मद्वयं भानुं तेजोमण्डलमध्यगम्।

सर्वाधिव्याधिशमनं छायाश्लिष्टतनुं भजे।।)

'ॐ' (इति प्रणवः केवलो ब्रह्मविद्या मुक्तिप्रदा, ब्रह्मरन्ध्रे) ।। ४।।

प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, परमात्मा देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

ओङ्कारवाच्यमुच्चण्डचण्डांशुसदृशप्रभम्।
वासुदेवाभिधं ब्रह्म विश्वगर्भमुपास्महे।।

'ॐ परोरजसेऽसावदोम्' (इति नवार्णा तुरीया गायत्री स्वैक्यविमर्शिनी, द्वादशान्ते)।। ५।।

(तुरीयागायत्रीमन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सविता देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

देवीं तुरीयगायत्रीं तुर्यातीतपदाश्रयाम्।
परोरजःप्रकाशात्मचितिरूपामहं भजे।।

रश्मिपञ्चकमेतन्मूलाधारहृत्फालविधिबिलद्वादशान्तस्थानबीजतया विभावनीयम्। (द्वादशान्तस्थानन्तु ललाटस्योत्तरभागः)।

'ॐ सूर्याक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः।

विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।।

'ॐ नमो भगवते सूर्यायाहोवाहिनि वाहिन्यहोवाहिनि वाहिनि स्वाहा'।

वयस्सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाथमानाः।
अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्।।

'पुण्डरीकाक्षाय नमः। पुष्करेक्षणाय नमः। अमलेक्षणाय नमः। कमलेक्षणाय नमः। विश्वरूपाय नमः। श्रीमहाविष्णवे नमः' (इति षोडशमन्त्रसमष्टिरूपिणी चक्षुष्मती विद्या दूरदृष्टिसिद्धिप्रदा मूलाधारे)।।६।।

(चक्षुष्मतीमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, नानाच्छन्दांसि, चक्षुष्मती देवता तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।) ध्यानम्—

चक्षुस्तेजोमयं पुष्पकन्दुकं बिभ्रतीं करैः।
रौप्यसिंहासनारूढां देवीं चक्षुष्मतीं भजे।।

'ॐ गन्धर्वराज विश्वावसो ममाभिलषितां कन्यां प्रयच्छ स्वाहा' (इत्युत्तमकन्याविवाहदायिनी हृदये)।। ७।।

(विश्वावसुमन्त्रस्य सम्मोहन ऋषिः। गायत्रीछन्दः विश्वावसुर्देवता। तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।) ध्यानम्—

रक्ताङ्गरागारुणभूषणाढ्यं वीणाधरं वीटिकयोल्लसन्तम्।
गन्धर्वकन्याजनगीयमानं विश्वावसुं सद्बृहतीं नमामि।।

'ॐ नमो रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मां सम्पारय' (इति मार्गसङ्कटहारिणी विद्या, फाले)।। ८।।

पथिषद्रुद्रमन्त्रस्य वामदेवः ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दः, पथिषद्रुद्रो देवता तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

आत्तसज्जधनुर्बाणकरं वृषभसंस्थितम्।
अन्नपूर्णासमाश्लिष्टं पथिषद्रुद्रमाश्रये।। ८।।

'ॐ तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा, (इति जलापच्छमनी विद्या, ब्रह्मरन्ध्रे)।। ९।।

तारा मन्त्रस्य मत्स्य ऋषिः, ताराम्बा देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

नौकासिंहासनारूढां शाक्यदर्शनदेवताम्।
जलापच्छमनीं वन्दे तारां वारिदमेचकाम्।।

'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः, (इति महाव्याधिनाशिनी नामत्रयी विद्या, द्वादशान्ते)।१०।।

(नामत्रयमन्त्रस्य काश्यपात्रिभरद्वाजा ऋषयः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाविष्णुर्देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः)। ध्यानम् —

समस्तदुस्तरव्याधिसङ्घध्वंसपटीयसे ।
अच्युतानन्तगोविन्दनाम्ने धाम्ने नमो नमः।।

(एतद्रश्मिपञ्चकं मूलधारादिपरिकरतया ज्ञेयम्)।

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' (इति महागणपतिविद्या प्रत्यूहशमनी, मूलाधारे) ।। ११ ।।

महागणपतिमन्त्रस्य गणक ऋषिः, निचृद्गायत्री छन्दः, श्रीमहागणपतिर्देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्— **बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल–**
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया शिलष्टोज्ज्वलद्भूषया
विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश्वरोऽभीष्टदः[1]।।

'ॐ नमः शिवायै, ॐ नमः शिवाय' (इति द्वादशार्णा शिवतत्त्वविमर्शिनी विद्या, हृदये)।१२।।

(शिवशक्त्यात्मकपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, उमामहेश्वरो देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

वामांसन्यस्तवामेतरकरकमलायास्तथा वामहस्तन्यस्तारक्तोत्पलायाः स्तनभरविलसद्वामहस्तः प्रियायाः ।
सर्वाकल्पाभिरामः श्रितपरशुमृगेष्टः करैः काञ्चनाभः ध्येयः पद्मासनस्थः स्मरललितवपुः सम्पदे पार्वतीशः।।)

'ॐ जुं सः मां पालय–पालय' (इति दशार्णा मृत्योरपि मृत्युरेषा विद्या, फाले)।। १३।।

(अमृतमृत्युञ्जयस्य कहोल ऋषिः, विराट्छन्दः अमृतमृत्युञ्जयसदाशिवो देवता। तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम् —

स्फुटितनलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखास्रवदमृतरसार्द्रं चन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम्।
स्वकरलसितमुद्रापाशवेदाक्षमालं स्फटिकरजतमुक्तागौरमीशं नमामि।।

'ॐ नमो ब्रह्मणे धारणं मे अस्त्वनिराकरणं धारयिता भूयासं कर्णयोः श्रुतं मा च्योढ्वं ममामुष्य ॐ (इति श्रुतधारिणी विद्या ब्रह्मरन्ध्रे) ।। १४।।

(श्रुतधारिणीमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, ब्रह्मादेवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

चतुराननमम्भोजनिषण्णं भारतीसखम्।
अक्षमालावराभीतिकमण्डलुधरं भजे।।)

"अं आं..............अः कं खं..........ळं क्षं" (इति सबिन्दुरकारादिक्षकारान्तवर्णमालिकामातृका सर्वज्ञताकरी द्वादशान्ते) ।। १५।।

१. 'विघ्नेश इष्टार्थदः' इत्यपि क्वचित्।

(मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः, मातृकासरस्वती देवता तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्— पञ्चाशता मातृकया ह्यारब्धाखिलदेहया ।
समस्तविद्यारूपिण्या धन्योऽहं मातृकाम्बया।।)

(पञ्चेमाः रश्मयो मूलादिरक्षात्मकतया द्रष्टव्याः)।।

हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं सकलह्रीं' (इति लोपामुद्राविद्या स्वस्वरूपविमर्शिनी, मूलाधारे)।। १६।।

(श्रीहादिलोपामुद्रामन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिः ऋषिः, पङ्क्तिच्छन्दः, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता, हं ५ बीजम्, हं ६ शक्तिः सं ४ कीलकम्, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। बालया षडङ्गम्।

ध्यानम्— श्रीदेवीभूषितोत्सङ्गं सान्द्रसिन्दूररोचिषम्।
हकारादिमनोर्वाच्यं वन्दे कामेश्वरं हरम्।।)

'क्लीं हैं ह्सौः स्हौः हैं क्लीं (इति षट्कूटा सम्पत्करी विद्या हृदये)।। १७।।

(सम्पत्करीमन्त्रस्य कण्व ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सम्पत्सरस्वती देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम् — अनेककोटिमातङ्गतुरङ्गरथपत्तिभिः ।
सेवितामरुणाकारां वन्दे सम्पत्सरस्वतीम्।।

'सं सृष्टिनित्ये स्वाहा, हं स्थितिपूर्णे नमः, रं महासंहारिणि कृशे चण्डकालि फट्, रं ह्स्ख्फ्रें महानाख्ये अनन्तभास्करि महाचण्डकालि फट्, रं महासंहारिणि कृशे चण्डकालि फट्, हं स्थितिपूर्णे नमः, सं सृष्टिनित्ये स्वाहा, ह्स्ख्फ्रें महाचण्डयोगेश्वरि' (इति विद्यापञ्चकरूपिणी कालसङ्कर्षणी परमायुःप्रदा, फाले) १८।

(चण्डोयोगेश्वरीमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः, नानाच्छन्दांसि, चण्डयोगीश्वरी देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम् — सृष्टिस्थितिभ्यां संहृत्यनाख्यया भासया श्रिताम्।
कुलङ्कषकपालाढ्यां चण्डयोगीश्वरीं भजे।।

ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें ह्सौः अहमहं अहमहं ह्सौः ह्स्ख्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं' (इति शुद्धज्ञानदा शाम्भवी विद्या ब्रह्मरन्ध्रे) ।। १९।।

(परशम्भुनाथमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पङ्क्तिच्छन्दः, परशम्भुनाथो देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम् — पूर्णाहन्तास्वरूपाय तस्मै परमशम्भवे।
आनन्दताण्डवोद्दण्डपण्डिताय नमो नमः।।)

'सौः' (इयं परा विद्या द्वादशान्ते) ।। २०।।

(परामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, परासरस्वती देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—
अकलङ्कशशाङ्काभा त्र्यक्षा चन्द्रकलावती।
मुद्रापुस्तलसद्बाहा पातु मां परमा कला।।)

(एताः पञ्च रश्मयो मूलाद्यधिष्ठानतया कलनीयाः)।

'ऐं क्लीं सौः, सौः क्लीं ऐं, ऐं क्लीं सौः' (इति नवाक्षरी श्रीदेव्यङ्गभूता बाला)।। २१।।

(बालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः बालात्रिपुरसुन्दरी देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—
अरुणकिरणजालै रञ्जिताशावकाशा विधृतजपवटीका पुस्तकाभीतिहस्ता।
इतरकरवराढ्या फुल्लकह्लारसंस्था निवसतु हृदि बाला नित्यकल्याणशीला।।)

'श्रीं ह्रीं क्लीं ॐ नमो भगवति अन्नपूर्णे ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा' इति श्रीदेव्या उपाङ्गभूता अन्नपूर्णा।। २२।।

(अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, अन्नपूर्णेश्वरी देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्—

आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वीं दुग्धान्नपूर्णमितरेण च रत्नपात्रम्।
अन्नप्रदाननिरतां नवहेमवर्णामम्बां भजे कनकभूषणमाल्यशोभाम्।।)

'ॐ आं ह्रीं क्रों एहि परमेश्वरि स्वाहा' (इयं श्रीदेवीप्रत्यङ्गभूता अश्वारूढा) ।। २३।।

(अश्वारूढामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, अश्वारूढा देवता तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्— बद्ध्वा पाशेनाङ्कुशेन कृष्यमाणां स्वसाध्यकम्।
घ्नन्तीं वेत्रेण फालस्त्वक्पाणिमश्वासनां भजे।।)

ध्यानम्— अश्वारूढा कराग्रे नवकनकमयीं वेत्रयष्टिं दधाना
दक्षेऽन्ये धारयन्ती स्फुरिततनुलता पाशहस्ता सुसाध्या।।
देवी नित्यप्रसन्ना शशिशकललसत्केशपाशा त्रिनेत्रा
दद्यादद्यानवद्यां श्रियमखिलसुखप्राप्तिहृद्यां श्रियै नः।।

(श्रीविद्यागुरुपादुकामन्त्रस्तु—आह्निकप्रकरण एवोक्त इह पठितव्यः)। तद्यथा—

'ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें ह स क्ष म ल व र यूं स ह क्ष म ल व र यीं ह्सौः, स्हौः अमुकानन्दनाथ श्रीगुरुपादुकां पूजयामि नमः।। २४।।

(श्रीविद्यागुरुपादुकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, श्रीविद्यागुरुपादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम् —

तेजोमयमहाविद्यां शेखराश्रितमस्तकाम्।
रक्तां चतुर्भुजां वन्दे श्रीविद्यागुरुपादुकाम्।।)

(अथ मूलविद्या—सा च गुरुमुखादवगता कादिनाम्नी)—

'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं' ।।२५।।

(बाला अन्नपूर्णा अश्वारूढा श्रीपादुका चेत्येताभिश्चतसृभिर्युक्ता मूलविद्या साम्राज्ञी मूलाधारे विलोकनीया)।।

(ऋषिच्छन्दोदेवतादिकं गुरुपरम्परातः प्राप्तमवगन्तव्यम्।)

'ऐं नमः उच्छिष्टचण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा'

(इति श्यामाङ्गभूता लघुश्यामा) ।।२६।।

(लघुश्यामामन्त्रस्य मतङ्ग ऋषिः विराट्छन्दः, श्रीलघुश्यामाम्बा देवता तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम् — स्मरेत् प्रथमपुष्पिणीं रुधिरबिन्दुशोणाम्बरां
गृहीतमधुपत्रिकां मदविघूर्णनेत्राञ्चलाम्।
घनस्तनभरालसां गलितचूलिकां श्यामलां
करस्फुरितवल्लकीविमलशङ्खताटङ्किनीम्।।

माणिक्यवीणामुपलालयन्तीं
मदालसां मञ्जुलवाग्विलासाम्।
माहेन्द्रनीलद्युतिकोमलाङ्गीं
मातङ्गकन्यां मनसा स्मरामि।। (इति वा)।।

(वागीश्वरीमन्त्रस्य कण्व ऋषिः, विराट्छन्दः, वागीश्वरी देवता तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्— अमलकमलसंस्था लेखनीपुस्तकोद्यत्-
करयुगलसरोजा कुन्दमन्दारगौरा।
धृतशशधरखण्डोल्लासिकोटीरपीठा
भवतु भवभयानां भङ्गिनी भारती नः।।)

ॐ ओष्ठपिधाना नकुली दन्तैः परिवृता पविः।
सर्वस्यै वाच ईशाना चारु मामिह वादयेत्।।

(इयं श्यामाप्रत्यङ्गभूता नकुलीविद्या) ।। २८।।

(नकुलीवागीश्वरीमन्त्रस्य कहोल ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, नकुलीवागीश्वरी देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम् —

नकुली वज्रदन्ताली साध्यजिह्वाहिदंशिनी।
भक्तवक्तृत्वजननी भावनीया सरस्वती।।)

श्रीविद्यागुरुपादुकैव प्रथमबीजत्रयस्थाने बालासहिता श्यामागुरुपादुका भवति। यथा—

'ऐं क्लीं सौः ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरीयीं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथश्रीगुरुपादुकां पूजयामि नमः'।। २९।।

(श्यामागुरुपादुकामन्त्रस्य मतङ्ग ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, श्यामागुरुपादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्

वन्दे गुर्वङ्घ्रिमुकुटां श्यामलां शुकपाणिनीम्।
समस्तसिद्धिजननीं श्यामलागुरुपादुकाम्।।)

'ऐं ह्रीं श्रीं ऐ क्लीं सौः ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गीश्वरि सर्वजनमनोहारि सर्वमुखरञ्जिनि, क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि (त्रैलोक्यं) अमुकं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं ऐं' (इत्यष्टनवतिवर्णा राजश्यामला पूर्वोक्ताभिरङ्गो-पाङ्गपादुकेत्येताभिश्चतसृभिर्विद्याभिस्सहिता हृच्चक्रे यष्टव्या)।। ३०।।

(ऋष्यादिकं गुरुपरम्परातोऽवगन्तव्यम्)

'लूं वाराहि लूं उन्मत्तभैरवि पादुकाभ्यां नमः'

(इयं वार्ताल्यङ्गभूता लघुवार्ताली) ।। ३१।।

(लघुवाराहीमन्त्रस्य नारद ऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, लघुवाराही देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम् — महार्णवे निपतितामुद्धरन्तीं वसुन्धराम्।
महादंष्ट्रां महाकायां नमाम्युन्मत्तभैरवीम्।।)

'ॐ ह्रीं नमो वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहा'

(इयं स्वप्ने शुभाशुभवक्त्री वार्ताल्या उपाङ्गभूता स्वप्नवाराही) ॥ ३२॥

(स्वप्नवाराहीमन्त्रस्य अग्निर्ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, स्वप्नवाराही देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम् — स्वप्ने शुभाशुभं भावि शासन्तीं भक्तकार्ययोः।
दुःस्वप्नहारिणीं वन्दे वाराहीं स्वप्ननायिकाम्।।)

ॐ नमो भगवति तिरस्करिणि महामाये महानिद्रे सकल पशुजनमनश्चक्षुःश्रोत्रतिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा।। ३३।।

(तिरस्करिणीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, तिरस्करिणी देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्— मुक्तकेशीं विवसनां सर्वाभरणभूषिताम्।
स्वयोनिदर्शनान्मुह्यत्पशुवर्गां नमाम्यहम्।।)

ऐं ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः'। (एषा वार्तालीगुरुपादुका)।। ३४।।

(वाराहीगुरुपादुकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीच्छन्दः, वाराहीगुरुपादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्— देशिकाङ्घ्रिलसन्मौलिं खड्गिनीञ्च कपालिनीम्।
भावयामि घनच्छायां पञ्चमीगुरुपादुकाम् ।।)

ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि वराहमुखि अन्धे अन्धिनि नमः। रुन्धे रुन्धिनि नमः। जम्भे जम्भिनि नमः। मोहे मोहिनि नमः। स्तम्भे स्तम्भिनि नमः। सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भनं कुरु कुरु शीघ्रं वश्यं ऐं ग्लौं ठः ठः ठः ठः हुं अस्त्राय फट् (इति द्वादशोत्तरशताक्षरो महावाराहीमन्त्रः)।। ३५।।

(पूर्वोक्ताभिश्चतसृभिर्युक्तेयं महावाराही आज्ञाचक्रे परिपूज्या।)

प्रथमद्वितीयकूटयोः हल्लेखावर्जं पञ्चदश्येव त्रयोदशाक्षरी श्रीपूर्तिविद्या ब्रह्मरन्ध्रे यष्टव्या।

तद्यथा— 'क ए ई ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं' (इयं कादिपूर्तिविद्या)
'ह स क ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं' (इयं हादिपूर्तिविद्या)।।३६।।

(श्रीपूर्तिविद्यामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, श्रीपूर्तिविद्या देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः)

प्रथमत्रिकस्थाने त्रितारी कुमारी वाक् ग्लौं इत्यष्टबीजपूर्वा श्रीगुरुपादुकैव महापादुका सर्वमन्त्र-समष्टिरूपिणी स्वैक्यविमर्शिनी महासिद्धिप्रदायिनी द्वादशान्ते वरिवस्या।। यथा—

'ऐं ह्रीं श्रीं ऐ क्लीं सौः ऐं ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथश्रीगुरुपादुकां पूजयामि नमः।। ३७।।

(महापादुकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पङ्क्तिच्छन्दः, श्रीमहापादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्— सर्वविद्यामयीं सर्वशक्तिपीठस्वरूपिणीम्।
कराग्रे हृदये मूले देशिकाङ्घ्रियुगत्रयम्।।
दधतीं दीप्तभूषाढ्यां श्रीमहापादुकां नमः।)

(इति ऋष्यादिसहितरश्मिमाला)। रश्मिमालामन्त्रा आहत्य सप्तत्रिंशतिः। एते ब्राह्मे मुहूर्ते सकृदावर्तनीयाः सर्व एवेमे मन्त्राः श्रीगुरुमुखादवगत्यैव पठिताः महते श्रेयसे, नान्यथेति शिवशासनम्।

पुस्तके लिखितान् मन्त्रानवलोक्य जपेत्तु यः।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते॥

इति सांख्यायनतन्त्रवचनेन गुरुमुखागमं विना जपस्य निषेधात्॥

प्रातःकृत्यम्

॥ भूप्रार्थनादिमुखक्षालनान्तम्॥

प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादिप्रातरन्ततः। यत्करोमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम्॥
मञ्जुसिञ्जितमञ्जीरं वाममर्द्धं महेशितुः। आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं सचराचरम्॥

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम्॥ १॥
प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं रक्ताङ्गुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीर्दधानाम् ॥ २॥
प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम् ॥ ३॥
प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम्॥ ४॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति॥ ५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिम्॥ ६॥

॥ भूप्रार्थना॥

समुद्र वसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादचारं क्षमस्व मे॥

इति भूमिं सम्प्रार्थ्य, धरणीतलन्यस्तवहन्नाडीपार्श्वपादमुत्थाय ग्रामाद्बहिः स्मार्तेन विधिना निर्वर्तितशौचक्रमः।

॥ दन्तधावनम्॥

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजा पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वं नो देहि वनस्पते॥

इति मन्त्रेण दन्तधावनकाष्ठमभिमन्त्र्य 'ऐंह्रींश्रीं, 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' (इति मन्त्रेण दन्तधावनम्)। ऐंह्रींश्रीं ह्ल्लेखया जिह्वोल्लेखनं च विधाय कफविमोचननासाशोधनदूषिकानिरसनपूर्वकं विहितविंशतिगण्डूषः। ऐंह्रींश्रीं, 'श्रीं'। ऐं ह्रीं श्रीं 'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः'। ऐंह्रींश्रीं, 'श्रीं ह्रीं क्लीं'। ऐंह्रींश्रीं, 'श्रींसहकलह्रीं श्रीं' इति मन्त्रचतुष्टयेन मुखं प्रक्षाल्य यथा स्मृत्याचमेत्।

॥ स्नानविधिः॥

ततो नद्यादौ वैदिकस्नानोत्तरं श्रीललिताप्रीत्यर्थं तान्त्रिकस्नानं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, जले पुरतो हस्तमात्रं चतुरस्रमण्डलं परिगृह्य तत्र—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥

इति सूर्यमभ्यर्च्य,

आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते॥

(इति गङ्गामर्थयित्वा) ऐंह्रींश्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः क्रों, इत्युङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलं भित्वा गङ्गादिसर्वतीर्थावाहनोत्तरं "वं" इति सलिलबीजेन सप्तवारमभिमन्त्र्य मुहुर्मुहुरावर्तयन् मूर्ध्नि त्रीनुदकाञ्जलीन् दत्वा त्रींश्च पीत्वा, मूलपूर्वं श्रीललितां तर्पयामीति त्रिस्तर्पणं त्रि:प्रोक्षणञ्चात्मनो योनिमुद्रया विदध्यात्। (गृहे तु विना तर्पणम्। अशक्तौ च स्मार्तेन पथा मन्त्रभस्मनोरन्यतरन्निर्वर्त्यं मूलेन। त्रिराचमनप्रोक्षणे केवलं कुर्यात्)।

॥ सन्ध्याविधिः॥

अथ धौते वाससी परिधाय विधृतत्रिपुण्ड्रः वैदिकीं सन्ध्यामभिवन्द्य तान्त्रिकीमाचरेत्। यथा—मूलेन त्रिराचम्य द्विः परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य चक्षुषी नासिके श्रोत्रे अंसौ नाभिं हृदयं शिरश्चाभिमृशेत्। एवं त्रिराचम्य पूर्ववत्प्राणानायम्य त्रिरात्मानञ्च प्रोक्ष्य अञ्जलिना सलिलमादाय —'ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय स्वाहा' इति मन्त्रेण उदयते विवस्वते त्रिरर्घ्यं दत्वा तन्मण्डले श्रीचक्रमनुचिन्त्य तत्र ध्यायेत् —

ध्यायेत्कामेश्वराङ्कस्थां कुरुविन्दमणिप्रभाम्।
शोणाम्बरस्त्रगालेपां सर्वाङ्गीणविभूषणाम्॥
सौन्दर्यशेवधिं सेषुचापपाशाङ्कुशोज्ज्वलाम्।
स्वभाभिरणिमाद्याभिः सेव्यां सर्वनियामिकाम्॥
सच्चिदानन्दवपुषं सदयापाङ्गविभ्रमाम्।
सर्वलोकैकजननीं स्मेरास्यां ललिताम्बिकाम्॥

(अत्रायुधानां क्रमः स्वरूपञ्च सपर्याप्रकरणे वक्ष्यते)

ततः — 'ऐं ह्रीं श्रीं क ए ई ल ह्रीं त्रिपुरसुन्दरि विद्महे, 'ऐं ह्रीं श्रीं
ह स क ह ल ह्रीं पीठकामनि धीमहि,
स क ल ह्रीं तन्नः क्लिन्नः प्रचोदयात्'

(इति मन्त्रेण महेश्यै त्रिरर्घ्यं दत्वा मूलेन त्रिस्सन्तर्प्य, मूलेन पूर्ववदाचम्य जपप्रकरणे वक्ष्यमाणान् ऋष्यादीन् न्यस्य मूलमष्टोत्तरशतवारमावर्तयेत्)। ततः पुनः कराङ्गन्यासादिकं कृत्वा जपं वक्ष्यमाणमन्त्रेण श्रीदेव्यै समर्प्याचम्य मण्डलस्थं तीर्थं विसर्जनमुद्रया सूर्ये विसृजेत्।

अथ सपर्यासाधनानि सम्पाद्य ब्रह्मयज्ञादि निर्वर्तयेद्। इति शिवम्।

। प्रथममाह्निकप्रकरणं सम्पूर्ण।

॥ इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथ-शिष्य उमानन्दनाथ-शिष्य षोडशानन्दनाथ-शिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र की पञ्चम श्वास भावविवृति पूर्ण हुई॥

श्रीविद्यार्णवतन्त्र

षष्ठ श्वास

।। भावविवृति।।

मातृकान्यास – **''ततो देहस्य सन्नाहं सम्यक् न्यासं समाचरेत्''** इस वचन के अनुसार भूतशुद्धि के अनन्तर मातृकान्यास का विधान है।

(१) अन्तर्मातृका (२) बहिर्मातृका (३) कलामातृका, (४) श्रीकण्ठमातृका (५) केशवमातृका (६) लज्जा (ह्रीं) मातृका (७) रमा (श्रीं) मातृका (८) काम (क्लीं) मातृका, (९) लज्जारमाकाम (सम्मोहिनी मातृका) (१०) प्रपञ्चयाग मातृका, इन दश प्रकार की मातृकाओं का न्यास करने का विधान है।

(१,२)अन्तमार्तृका और बहिर्मातृका का न्यासविधान मूल में यथावत् वर्णित है एवं समस्त पद्धतियों में प्रकाशित है।

सृष्टिमातृका न्यास विसर्ग सहित किया जाता है। विसर्ग बिन्दु सहित स्थितिमातृका का डकार से प्रारम्भ करके ठकार तक न्यास किया जाता है। **स्थितिमातृका न्यास** ब्रह्मचारी को करना चाहिए, और **विलोममातृका ''क्षं नमः'' हं नमः** से **संहारमातृका न्यास** वानप्रस्थ को करने का विधान है। इनका ध्यान मूल में निर्दिष्ट है।

(३) **कलामातृका**– प्रणव और कलायुक्त मातृकान्यास का विधान है, निवृत्ति आदि पचास कलाओं का तृतीय श्वास में उल्लेख है, (मूल देखें) इसका विधान **''ओं अं निवृत्तिकलायै नमः''** इत्यादि क्षं पर्यन्त, न्यास करने से मन्त्र वीर्यवान् हो जाता है, इसके ऋषि, छन्द, देवता, और न्यास, ध्यान मूल में स्पष्ट हैं। यह अष्टम श्वास में पूर्ण न्यास विधि निहित है।

(४) **सशक्तिक श्रीकण्ठमातृका** – ''हसौं अं श्रीकण्ठाय पूर्णोदर्यै नमः'' इस प्रकार पञ्चाशत् मातृकावर्णों का न्यास करने का विधान है। इसके ऋषि, देवता, छन्द, ध्यानादि मूल में स्पष्ट हैं। श्रीकण्ठ पूर्णोदरी पञ्चाशत् नाम श्रीविद्याधिकार तृतीय श्वास में द्रष्टव्य है।

(५) **सशक्तिक केशवमातृका** – ''क्लीं श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः'' इस प्रकार पञ्चाशत् मातृकाओं के न्यास, केशव कीर्ति आदि नाम मूल में हैं। ऋषि, छन्द, देवता ध्यानादि भी मूल में द्रष्टव्य हैं।

(६) **शक्तिमातृका** – ''ह्रीं अं नमः'' इत्यादि क्षं पर्यन्त पञ्चाशत् वर्णों का न्यास होता है। इसे भुवनेश्वरीमातृका भी कहते हैं। इसके भी ऋषि, छन्द, देवता, ध्यानादि मूल में स्पष्ट हैं।

(७) **रमामातृका** – ''श्रीं अं नमः'' इत्यादि न्यास को रमामातृका कहते हैं। इसके भी ऋषि, छन्द, देवता, ध्यानादि मूल में स्पष्ट हैं।

(८) **काममातृका** – ''क्लीं अं नमः'' इत्यादि पञ्चाशत् वर्णों का न्यास होता है। इसके भी ऋषि, छन्द, देवता ध्यानादि मूल में स्पष्ट हैं।

विशेष :– उपरोक्त सभी न्यास की पूर्ण विधि अष्टम श्वास में मुद्रित है।

(९) **सम्मोहनीमातृका** — "ह्रीं श्रीं क्लीं अं नमः" इत्यादि पञ्चाशत् मातृकाओं के न्यास को सम्मोहनमातृका न्यास कहते हैं। इसके ऋषि, छन्द, देवता, ध्यानादि मूल में स्पष्ट हैं।

(१०) **प्रपञ्चयागमातृका** — "प्रपञ्चयागमातृका न्यास चतुर्थ श्वास में प्रोक्त है। यह न्यास महाषोढ़ा के प्रपञ्चन्यास की तरह होता है।

सामान्यतः सर्वत्र इन दश मातृकाओं का विधान है। दुर्वासा मुनि के त्रिपुरामहिम्न के दो श्लोकों में विशेष रूप से बालामन्त्र से सम्पुटित मातृकान्यास। परामातृकान्यास, मूलमन्त्रमातृकान्यास, हंसमातृका, परमहंसमातृका, आदि न्यासों के विधान वर्णित हैं। यथा—

बालामन्त्रसम्पुटित मातृकान्यास — "ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं सौः क्लीं ऐं" इस प्रकार पञ्चाशत् अक्षरों से बालामन्त्रसम्पुटित मातृकान्यास का विधान है।

परामातृका न्यास—"ओं ऐं ह्रीं श्रीं सौः अं सौः" परामन्त्र सम्पुटित मातृका न्यास को परामातृकान्यास कहते हैं।

श्रीविद्यामातृका न्यास — ओं ऐ ह्रीं श्रीं (मूल मन्त्र पञ्चदशी या षोडशी) शिरसि— अं नमः, इस प्रकार श्रीविद्यामातृका न्यास है।

हंसमातृका न्यास — ओं ऐं ह्रीं श्रीं हंसः अं नमः- शिरसि- इस प्रकार पञ्चाशत् वर्णों के न्यास को हंस मातृका न्यास कहते हैं।

परमहंसमातृका न्यास— ओं ऐं ह्रीं श्रीं सोहं क्षं नमः। इस प्रकार विलोममातृकावर्णन्यास को परमहंस मातृका कहते हैं। ऋषि, छन्द, देवता, न्यास, ध्यानादि मूल में द्रष्टव्य है।

कलान्यास — कलान्यास पाँच प्रकार का होता है— प्रणवसहित, कामकला, सोमकला, त्रिमूर्तिकला, अष्टात्रिंशत् कला। अष्टात्रिंशत्कला–न्यास दो प्रकार का है—

(१) ज्योतिरष्टात्रिंशत्, (२) शिवाष्टात्रिंशत् कलान्यास।

इसमें तारोत्थप्रणव कलान्यास तो पूर्व में वर्णित है। स्वरकला, कचवर्ग कला, टतवर्ग कला, पय वर्ग कला, षवर्ग कला, ये पाँच प्रकार के कलान्यास हैं। शिवाष्टात्रिंशत् कला न्यास को तृतीय श्वास में तारोत्थकला नाम से प्रतिपादित किया है।

ज्योतिरष्टात्रिंशत्कलान्यास[1] :—

ओं ऐं ह्रीं श्रीं अं अमृतायै नमः — शिरसि- इस प्रकार अमृतादि सोलह कलाओं का न्यास करे। दाहिने हाथ, सन्धि और अग्रभाग भाग में "ओं कं भं तापिन्यै नमः" इत्यादि। 'ङं नं ज्वालिन्यै नमः' तक

---

१. ज्योतिरष्टात्रिंशत्कलान्यास— १६ सोमकला, १२ सूर्यकला, १० अग्निकला (३८) एवं तारोत्थ ३८ कला, इनका विशेषार्घ्य के अभिमन्त्रण में उपयोग होता है।

न्यास करके वामहस्त सन्धि और अग्रभाग में "चं धं रुच्यै नमः" से "ञं णं बोधिन्यै नमः" तक न्यास करके दक्षहस्त सन्धि और अग्रभाग "टं धं धारिण्यै नमः" से "लं ज्वालिन्यै नमः" तक न्यास करें। तदनन्तर वामपाद सन्धि और अग्रभाग 'वं ज्वालिन्यै नमः' से "हं कपिलायै नमः" तक न्यास करें। शेष दो कलाओं, कं क्षं से व्यापक न्यास करें। प्रणव, त्रितारी (ओं ऐं ह्रीं श्रीं) योग करके न्यास करें।

अष्टात्रिंशत् तेजःकलान्यास एवं अन्य कलान्यास आगे कहे जायेंगे। उसके बाद प्रपञ्चयाग जो प्रागुक्त है, करना चाहिए।

॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यास॥

१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्षं पृथिवीतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — पादयोः
२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ळं अप्तत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — लिङ्गे
३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं हं तेजस्तत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं सं वायुतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — मुखे
५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं षं आकाशतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — शिरसि
६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं शं गन्धतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — पादयोः
७. ओं ऐं ह्रीं श्रीं वं रसतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — लिङ्गे
८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं लं रूपतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं रं स्पर्शतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — मुखे
१०. ओं ऐं ह्रीं श्रीं यं शब्दतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — शिरसि
११. ओं ऐं ह्रीं श्रीं मं उपस्थतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — लिङ्गे
१२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं भं पायुतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — पायौ (गुदा)
१३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं बं पादतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — पादयोः
१४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं फं पाणितत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हस्तयोः
१५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं पं वाक्तत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — मुखे
१६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं नं घ्राणतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — घ्राणयोः
१७. ओं ऐ ह्री श्रीं धं जिह्वातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — जिह्वायाम्
१८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं दं चक्षुस्तत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — चक्षुषोः
१९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं थं त्वक्तत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — सर्वाङ्गे
२०. ओं ऐं ह्रीं श्रीं तं श्रोत्रतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — कर्णयोः

२१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं णं मनस्तत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
२२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ढं बुद्धितत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
२३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं डं अहंकारतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
२४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ठं प्रकृतितत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — सर्वगात्रे
२५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं टं पुरुषतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — सर्वगात्रे
२६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ञं नियतितत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
२७. ओं ऐं ह्रीं श्रीं झं कालतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
२८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं जं रागतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
२९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं छं अविद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — सर्वगात्रे
३०. ओं ऐं ह्रीं श्रीं चं कालतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — सर्वगात्रे
३१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ङं मायातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
३२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं घं शुद्धविद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
३३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं गं ईश्वरतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — हृदि
३४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं खं सदाशिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — ग्रीवायाम्।
३५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं कं शक्तितत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — मूलाधारे
३६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं अं शिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः — सहस्रारे

इस प्रकार न्यास करने पर पराम्बा त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्रजप का अधिकार हो जाता है। तदनन्तर प्राणयाम करना चाहिए।

॥ प्राणायाम विधि ॥

त्रिपुरासार समुच्चय में न्यासों की विधियाँ शेष में संलग्न हैं। न्यास करने से स्थूल शरीर का दोष दूर हो जाता है, तब जप का अधिकारी होता है। यह शरीर अपनी अङ्गुलियों के प्रमाण से ९६ अङ्गुलि का होता है और इसमें प्राणसंज्ञक वायु १२ अंङ्गुल ज्यादा है। साधक को अभ्यास के द्वारा इस बारह अङ्गुल को शनैः शनैः कम करना चाहिए। जब वायु सम हो जाती है, तो इस भूलोक के योगियों में पूज्य होता है और विद्वानों में उत्तम।

प्राणयाम के तीन अङ्ग— पूरक, कुम्भक, रेचक। इसमें कुम्भक ही मुख्य है। रेचक, पूरक इसके उपकारक हैं।

'ज्ञानार्णवतन्त्र' के अनुसार

ज्ञानार्णवतन्त्र– दक्षिण हस्त की कनिष्ठिका, अनामिका और अङ्गुष्ठ से नासापुट को धारण करने को प्राणायाम कहते हैं। इसमें तर्जनी और मध्यमा का स्पर्श नहीं होना चाहिए। योगशास्त्र एवं प्रपञ्चसार के मतानुसार वामनासिका से पूरक करना चाहिए और दक्षिण से रेचक। वायु को रोक लेना (प्राणों को रोक लेना) कुम्भक कहलाता है। नासिका के वामभाग में इडा नाड़ी, दक्षिण में पिङ्गला, मध्य में सुषम्ना नाड़ी तत्त्व है। **प्रपञ्चसार ग्रन्थ** के मतानुसार सोलह मात्रा से पूरक, उससे चारगुण चौसठ मात्रा से कुम्भक और ३२ मात्रा से रेचक करना चाहिए।

वामकेश्वरतन्त्र– पूरक, कुम्भक, रेचक तीन प्रकार के प्राणायाम होते हैं। मूलाधार में ध्यान करके शनैः–शनैः पूरक करें, फिर कुम्भक करें। कुम्भक में मूलविद्या का चिन्तन करें। तदनन्तर रेचक करना चाहिए, जिसमें स्वभाव से ही वायु का रेचन होता है। रेचक करते समय यह चिन्तन करना चाहिए कि तमोगुण शरीर के बाहर निकल रहा है। वाम से पूरक, फिर कुम्भक (वायु को रोक लेना) दक्षिण नासिका से रेचक करना चाहिए। पुनः दक्षिण नासिका से ही पूरक तथा वाम नासिका से रेचक करना चाहिए। यह एक प्राणायाम होता है। इसमें कुम्भक की प्रधानता है, जिससे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अभ्यास करने वाला साधक अपनी इच्छा के अनुसार मात्रा से पूरक, कुम्भक, रेचक करे। यथाशक्ति कुम्भक तथा यथाशक्ति रेचक करे, तो सिद्धियाँ प्राप्त होने लग जाती हैं। दक्षिणामूर्तिसंहिता के मतानुसार इष्ट मन्त्र (जिसकी दीक्षा प्राप्त हुई, उसे मूल मन्त्र या इष्ट मन्त्र कहते हैं) एकबार मानसिक उच्चारण करके पूरक करके चार बार मानसिक उच्चारण से कुम्भक करें। दो बार उच्चारण से रेचक करें। ज्ञानार्णव और तन्त्रराजतन्त्र का भी यही मत है।

गोरक्षशतक– युक्तियुक्त – पूरक, कुम्भक, रेचक करें। जैसे– सिंह, गज, व्याघ्र आदि भयंकर हिंसक प्राणियों को वश में लाया जाता है, उसी प्रकार वायु को भी प्राणायाम द्वारा वश में करना चाहिए।

युक्तियुक्त प्राणायाम से सब रोगों का नाश हो जाता है, तथा अयुक्त अभ्यास से हिक्का, श्वास, कास, सिर, कर्ण, नासिका, आँख आदि में वेदना एवं विविध प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः शास्त्रोक्त मार्ग से ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। दक्ष गुरु का निर्देश नितान्त आवश्यक है।

।। योगशास्त्रमतवर्णन।।

पहले आसन का अभ्यास करना चाहिए, पुनः इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए। गुरूपदिष्टमार्ग से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। वायु चञ्चल है, तो चित्त भी चञ्चल रहता है, अतः वायु को निश्चल करने के लिए अभ्यास करना चाहिए। जब तक प्राणवायु शरीर में है, तब तक जीवन है, प्राण के निकल जाने से मृत्यु हो जाती है। इसलिए वायु का नियमन करना चाहिए।

शरीर में हजारों नाड़ियाँ हैं, जो मलों से दूषित हो रही हैं, तो तन्मयीभाव या समाधि अवस्था कैसे हो सकती है? जब नाड़ियों का मल शुद्ध हो जाता है, तभी योगी प्राण का नियमन करने में समर्थ होता है। अतः सात्त्विक भाव से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। सुषुम्ना नाड़ी के विकास से सभी मल तथा दोष दूर हो जाते हैं। बद्धपद्मासन में योगी को वाम नासिका से पूरक (वायु को पूर्ण) करना चाहिए, पुनः कुम्भक में यथाशक्ति वायु को रोकना चाहिए, उसे दक्षिण स्वर से रेचक करना चाहिए। दक्षिण से वायु का पूरण करे। पूरण का तात्पर्य है कि उदर कुम्भ की तरह फूल जाय। इस प्रकार पुनः पूरक कुम्भक, रेचक करने से प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार तीन मास तक प्राणायाम करने से सभी नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। यही **त्रिपुरासार समुच्चय** में भी लिखा है।

पूर्व में जो **प्रपञ्चसारतन्त्र** में प्राणायाम करने के लिए मात्रा का वर्णन किया गया, उसका प्रमाण बता रहे हैं —

अपने हाथ को जानु (घुटने) पर एक बार घुमाने से जितना समय लगता है, उसको एक मात्रा कहते हैं। फेत्कारिणीतन्त्र और कात्यायनीतन्त्र में भी लिखा है कि मध्यमा और अङ्गुष्ठ के सम्पर्क से जो चुटकी बजायी जाती है, उसे एक मात्रा कहते हैं। इस प्रकार गौतमीयतन्त्र में ३२ मात्रा तक वायु को रोकने का विधान है।

दक्षिणामूर्ति कल्प में निर्दिष्ट है कि प्राण और अपान वायु को समान करके कुम्भक में, हृदयकमल पर विराजमान अपने ईष्ट देवता का ध्यान करे। **अगस्त्यसंहिता** में कहा है— जितनी देर प्राण को रोक सके, उतने समय में मन्त्र का जप करे। **वामकेश्वर तन्त्र** में लिखा है कि कुम्भक में ही श्रीविद्या के मन्त्र का चिन्तन करना चाहिए। प्राणायाम सगर्भ और निगर्भ दो प्रकार के होते हैं। सगर्भ में मन्त्र या प्रणव का जिनको अधिकार है, वे प्रणव से करें और जिनको प्रणव का अधिकार नहीं है, वह चतुर्दश स्वर 'औं' से प्राणायाम करे।

तन्त्रराजतन्त्र में बत्तीस मात्रा के द्वारा पूरक, चौसठ मात्रा से कुम्भक सोलह मात्रा से रेचक का विधान है। इसका तात्पर्य है— एक, चार और दो के क्रम से अपने मंत्र का जप करे। पूरक में एक बार मन्त्र का उच्चारण, कुम्भक में चार बार और रेचक में दो बार करे। इस प्रकार शनैः—शनैः मन्त्रों की संख्या में वृद्धि करे, फिर कुम्भक का अभ्यास करे। योगशास्त्र के मतानुसार **''सा: जृम्भते केवलकुम्भकश्रीः''** कुम्भक सिद्ध होने के बाद कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। इसी से राजयोग पद प्राप्त होता है। हठयोग के बिना राजयोग नहीं और राजयोग के बिना हठयोग सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार दोनों का एक साथ अभ्यास करने से कुम्भक प्राणायाम से कुण्डलिनी का जागरण होता है। कुण्डलिनी जागरण से सुषुम्ना का विकास होता है, तब हठसिद्धि प्राप्त हो जाती है। **हठ शब्द का अर्थ है— हकार अर्थात् सूर्य, ठकार अर्थात् चन्द्र अर्थात् दक्षिण—वाम, इड़ा—पिङ्गला से प्राणवायु को मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त ले जाना।** इसीसे षट्चक्रों का भेदन होकर शिवशक्तिसामरस्य की सिद्धि प्राप्त होती है।

॥ तन्त्रराजतन्त्र में उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार का प्राणायाम॥

उत्तम प्राणायाम में पद्मासन उठ जाता है, भूमि के ऊपर हो जाता है, मध्यम प्राणायाम में सम्पूर्ण शरीर में पसीना आ जाता है और अधम में कम्पन होता है। प्रातः सायं प्राणायाम करना चाहिए। **त्रिपुरासार के मतानुसार—** जो सोलह प्राणायाम प्रतिदिन सायं-प्रातः करता है, वह भ्रूणहत्या के दोष से भी मुक्त हो जाता है। एकमास तक प्राणायाम करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ६ महीने तक करने से जन्मजन्मान्तरों के पापपुञ्ज भी नष्ट हो जाते हैं, एक वर्ष में ब्रह्मपद की प्राप्ति हो जाती है।

योगशास्त्र के अनुसार प्रातः, मध्याह्न, सायं और रात्रि, चारों समय में प्राणायाम करना चाहिए। लघुप्राणायाम में स्पन्द होता है, मध्यम में कम्प होता है, उत्तम में आसन उठ जाता है। प्राणायाम करने से जो स्वेद (पसीना) आता है, उसको अपने पूरे शरीर में मर्दन करना चाहिए, जिससे दृढ़ता और लघुता शरीर में आ जाती है। अभ्यासकाल के प्रारम्भ में दुग्ध—ओदन का भोजन करना चाहिए। अभ्यास स्थिर हो जाने पर यह नियम करना आवश्यक नहीं है। अनेक तन्त्रों एवं योगशास्त्र में लिखी हुई प्राणायामविधि का वर्णन होने पर भी गुरु—उपदिष्ट मार्ग से ही अभ्यास करना कल्याणकारी होता है, अन्यथा विपरीत फल भी हो सकता है।

अगस्त्यसंहिता में भी लिखा है कि प्राणायाम के बिना जो भी कर्म किया जाता है, वह निरर्थक होता है, अतः प्रयत्नपूर्वक प्राणायाम करना चाहिए। इसीसे मङ्गल और शुभ होता है। प्राणायाम की विधि मधुमती और मालिनी दोनों मतों में समान है।

॥ योगपीठन्यास॥

प्राणायाम के अनन्तर योगपीठन्यास करना चाहिए, योगपीठ का तात्पर्य है कि भगवती को विराजमान करने के लिए अपने शरीर को एक प्रकार की सर्वदेवतामय पीठ के रूप में रचना करे। इसका विधान मूल में १२० से १२२ पृ. तक वर्णित है। इसे गुरुमुख से अवगत करना चाहिए। इसमें लिखा है **"इति देहमये पीठे चिन्तयेत् परदेवताम्।"**

शारदातिलक तन्त्र के मतानुसार संहार और सृष्टि क्रम से मातृका न्यास करके देवताभावसिद्धि के लिए अपने इष्ट मन्त्र का भी न्यास करना चाहिए। **वैशम्पायन संहिता** के अनुसार, सिद्धि की इच्छा रखने वाले साधक को ऋषि, छन्द, देवता आदि षडङ्ग न्यास न करने से, सिद्धमन्त्र द्वारा किये हुए जप, तर्पण, होम, पूजा आदि भी फलप्रद नहीं होते हैं। अतः समस्त न्यासों का शरीर में न्यास करने से त्रैलोक्य वशीभूत हो जाता है, सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उससे भूत, प्रेत, पिशाच आदि सब त्रस्त होते हैं। अतः प्रथम ऋष्यादि न्यास, कराङ्गन्यास, मन्त्राक्षरन्यास, पुनः पदन्यास एवं तत्–तत् कल्पोक्त विशेष न्यासों को भी करना चाहिए। इसीप्रकार मन्त्रसम्पुटित बिन्दु सहित मातृका के वर्णों के न्यास का भी विधान है। मन्त्रज्ञ शास्त्रोपदिष्ट मार्ग से ऋषि, कर, षडङ्ग न्यास करके मुद्राओं का प्रदर्शन भी करे। यह क्रम है।

श्रीविद्या अधिकार में भी लिखा है सृष्टि, स्थिति, संहार क्रम से मातृका, कला सम्पुटित न्यास, श्रीकण्ठादि न्यास और प्रपञ्चयाग, लघुषोढान्यास, कामरति न्यास, श्रीचक्रन्यास, महाषोढ़ान्यास आदि चतुर्विध न्यास करने का विधान है। **योगिनीहृदय** में भी लिखा है कि ये चार प्रकार के न्यास, जप, पूजा आदि समय में यथाकाल विनियोग करके करना चाहिए। फिर **योगिनीहृदय** में लिखा है— पूर्वषोढ़ा न्यास जिसे लघुषोढ़ा न्यास भी कहते हैं, पहले उसे करना चाहिए। इसमें ६ प्रकार के न्यास हैं — (१) गणेश (२) ग्रह (३) नक्षत्र (४) योगिनी (५) राशि (६) पीठ; इन ६ का न्यास होता है, विधि इसमें वर्णित है। अन्यान्य साधनापद्धतियों में भी इनका प्रकार मिलता है। हमारे **श्रीविद्यारत्नाकर** एवं **श्रीविद्यावरिवस्या** में भी इसकी सुगम और सरल विधि उल्लिखित है। ये सब शेष में संलग्न है।

सम्प्रदायक्रम से कुछ भिन्नता है, परन्तु मौलिकता में कोई भेद नहीं है। अत: स्वसम्प्रदायानुसार गुरुमुख से ज्ञात करके न्यास करने से समग्र सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। लघुषोढ़ा न्यास का मूल में १२३ से १२७ पृष्ठ तक वर्णन है। अन्य पद्धतियों में विधान प्राप्त होता है, अत: विस्तारभय से इसकी विधि नहीं लिख रहे हैं। तदनन्तर कामरतिन्यास का विधान है। इसके बाद श्रीचक्रन्यास करने का विधान है। अत: ग्रन्थकार ने **श्रीचक्रन्यास** कवच का उल्लेख किया है, जो **रुद्रयामल** में शिवपार्वती संवाद में प्रकट हुआ है। इस ग्रन्थ में १२७ पृ. से प्रारम्भ होकर १३१ पृ. तक न्यास वर्णन समाप्त हुआ है। इसे **संहारक्रम श्रीचक्रन्यास** कहते हैं। अन्य पद्धतियों में भी इसी प्रकार वर्णन है। **योगिनीहृदय** में प्रतिपादित क्रमानुसार सृष्टिचक्रन्यास का वर्णन है। **संहारन्यास का तात्पर्य है कि अणिमादि न्यास से प्रारम्भ करके बिन्दु तक जाना अर्थात् संसार से ब्रह्म की ओर जाना। सृष्टिन्यास का तात्पर्य है— ब्रह्म (बिन्दु) से भूपुर तक न्यास करना, यह सृष्टि क्रम है।** **योगिनीहृदय** में जो क्रम प्रतिपादित किया गया है, इसकी व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार ने स्वयं इस विधि का वर्णन किया है। (मूल में १३१ पृष्ठ से १३३ पृष्ठ में उसकी समाप्ति हुई है।) तदनन्तर **योगिनीहृदय** में निरूपित स्थितिश्रीचक्रन्यास का विधान वर्णित है, जो योगिनीहृदय के क्रमानुसार स्थिति श्रीचक्रन्यास १३१ पृष्ठ से १३३ पृष्ठ में समाप्त होता है, इसमें ग्रन्थकार श्रीविद्यारण्ययति ने कई टिप्पणियाँ लिखी हैं, वे भी द्रष्टव्य हैं।

योगिनीहृदय में स्थितिक्रम न्यास— स्थिति चक्रन्यास का निरूपण योगिनीहृदय के अनुसार लिखा है, जो १३३ पृष्ठ से प्रारम्भ होकर १३५ पृष्ठ में परिसमाप्त होता है, इसका सार अधोलिखित प्रकार है।

"अकुले विषुसंज्ञे च शाक्ते वह्नौ तथा पुनः।
नाभावनाहते शुद्धौ लम्बिकाग्रे भ्रुवोन्तरे॥"

इस श्लोक का तात्पर्य है कि नवचक्रों में नौ आवरणों का न्यास करें। क्रम इस प्रकार है— मूलाधार के नीचे अधः सहस्रार है, उसमें षट्कोण संलग्न है। कई आचार्यों ने इसे अलग माना है, परन्तु

मूल में विषुसंज्ञ अकुल में षड्दल सहित सहस्रार में त्रैलोक्यमोहनचक्र के आवरण देवता सहित चक्रेश्वरी त्रिपुरा का न्यास करे। इसीप्रकार मूलाधार में सर्वाशापरिपूरक चक्र आवरणदेवता सहित त्रिपुरेशी चक्रेश्वरियों का न्यास करे। स्वाधिष्ठान में सर्वसंक्षोभणचक्र में आवरणदेवता सहित त्रिपुरसुन्दरी चक्रेश्वरी का न्यास करे। मणिपूरक में सर्वसौभाग्यदायक चक्र आवरण सहित त्रिपुरवासिनी चक्रेश्वरी का न्यास करे। हृदय स्थित अनाहत चक्र में सर्वार्थसाधक चक्र के आवरण देवता सहित त्रिपुराश्रीचक्रेश्वरी का न्यास करे। कण्ठ स्थित विशुद्धि चक्र में सर्वरक्षाकर चक्र के आवरणदेवताओं सहित त्रिपुरमालिनी चक्रेश्वरी का न्यास करे। लम्बिकाग्र में सर्वरोगहर चक्र के आवरण देवताओं सहित त्रिपुरासिद्धा चक्रेश्वरी का न्यास करना चाहिए। भ्रूमध्य में सर्वसिद्धिप्रदचक्र के आवरण देवताओं सहित त्रिपुराम्बा चक्रेश्वरी का न्यास करें। मस्तक पर ब्रह्मरन्ध्र में ऊर्ध्व, सहस्रदल में सर्वानन्दमय चक्र में महात्रिपुरसुन्दरी एवं चक्रेश्वरी का न्यास करें।

इस प्रकार इसको स्थितिचक्र न्यास कहा जाता है। योगिनी हृदय में प्रोक्त क्रम की ऊहापोह युक्त व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार ने इसका स्पष्टीकरण किया है। स्वच्छन्द संग्रह में भी अधः सहस्रार आदि चक्रों का वर्णन करते हुए नव चक्रों की सुषुम्ना नाड़ी में स्थिति का वर्णन किया है। इसमें सब चक्रों की स्थिति का भी यथास्थान विस्तृत वर्णन किया गया है, जो मूल में १३५ पृ. से १३६ में निरूपित है।

इसमें स्वच्छन्द संग्रह के मत का भी संग्रह किया है, जो द्रष्टव्य है। इसमें अधःसहस्रार से ऊर्ध्व सहस्रार तक के चक्रों का और सुषुम्ना नाड़ी का भी वर्णन है, जो मूल में स्पष्ट है।

इस प्रकार श्रीचक्र के संहार, सृष्टि, स्थिति न्यास का वर्णन किया गया है। अपने सम्प्रदायानुसार गुरुमुख से ज्ञात करके क्रम निर्वतित करना चाहिए।

ग्रन्थकार ने शिवप्रोक्त तन्त्रों के प्रमाणों से न्यासविधि का मौलिक सिद्धान्त पक्ष प्रस्तुत करके सूत्र रूप में क्रम एवं प्रयोग का वर्णन भी किया है। इससे निर्भ्रान्त न्यासविधि का पथ प्रशस्त और श्रीसाधकों का परम उपकार हुआ है। सिद्धान्त पक्ष ग्रन्थकार ने प्रतिपादित किया है। इसीके अनुसार प्रायोगिक पक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है, अतः— सर्वसाधारणसुलभ विधि प्रस्तुत की जा रही है। मधुमती एवं मालिनी मत में प्रस्तुत विधि मतद्वय सम्मत है।

श्रीविद्यार्णव में विविध तन्त्रान्तरों के मतानुसार मातृकान्यास, लघुषोढ़ा, श्रीचक्रन्यास एवं महाषोढ़ा आदि न्यासों का वर्णन करते हुए उक्त न्यासों को उभयसम्मत माना है। श्रीविद्यारत्नाकर में भी इसी मत का अनुसरण करते हुए सरल सुगम प्रकार से प्रायोगिक न्यासविधि प्रस्तुत की गयी है। अतः साधकों के सौकर्य के लिए न्यास, क्रम से संकलित किये जा रहे हैं।

॥ मातृकान्यास ॥

अस्य श्रीमातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे, श्रीमातृकासरस्वतीदेवतायै नमः हृदि, हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः गुह्ये, स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः,

बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः नाभौ, मम श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः करसम्पुटे।।

सर्वमातृकया सर्वाङ्गे अञ्जलिना त्रिर्व्यापकं कुर्यात्।।

६	अं कं खं गं घं ङं आं	अङ्गुष्ठाभ्यां	नमः
६	इं चं छं जं झं ञं ईं	तर्जनीभ्यां	नमः
६	उं टं ठं डं ढं णं ऊं	मध्यमाभ्यां	नमः
६	एं तं थं दं धं नं ऐं	अनामिकाभ्यां	नमः
६	ओं पं फं बं भं मं औं	कनिष्ठिकाभ्यां	नमः
६	अं यं रं लं वं शं षं हं ळं क्षं अः	करतलकरपृष्ठाभ्यां	नमः

एवं हृदयादिन्यासः। भूर्भुवस्स्वरोम् इति दिग्बन्धः।।

ध्यानम्

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षोदेशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ।
अक्षस्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्थामच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि।।

लमित्यादि पञ्चपूजां कृत्वा। मातृकाः त्रितारीबालापूर्विकाः स्वाङ्गेषु न्यसेत्। तद्यथा

अन्तर्मातृका

६ अं नमः, आं नमः ++ अः नमः।।
कण्ठे विशुद्धिचक्रे षोडशदलकमले।।

६ कं नमः, खं नमः ++ ठं नमः।।
हृदये अनाहते द्वादशदलकमले।।

६ डं नमः, ढं नमः ++ फं नमः।।
नाभौ मणिपूरे दशदलकमले।।

६ बं नमः, भं नमः ++ लं नमः।।
लिङ्गमूले स्वाधिष्ठाने षड्दलकमले।।

६ वं नमः, शं नमः षं नमः सं नमः।।
गुदोपरि मूलाधारे चतुर्दलकमले।।

६ हं नमः, क्षं नमः।। भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रे द्विदले।।

६ अं नमः, आं नमः ++ क्षं नमः।।
(५० वर्णाः) मूर्ध्नि सहस्रारे।।

॥ बहिर्मातृका ॥

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः

अं नमः (शिरसि)
६ आं नमः (मुखवृत्ते)
६ इं नमः (दक्षनेत्रे)
६ ईं नमः (वामनेत्रे)
६ उं नमः (दक्षकर्णे)
६ ऊं नमः (वामकर्णे)
६ ऋं नमः (दक्षनासापुटे)
६ ॠं नमः (वामनासापुटे)
६ ऌं नमः (दक्षकपोले)
६ ॡं नमः (वामकपोले)
६ एं नमः (ऊर्ध्वोष्ठे)
६ ऐं नमः (अधरोष्ठे)
६ ओं नमः (ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ)
६ औं नमः (अधोदन्तपंक्तौ)
६ अं नमः (जिह्वाग्रे)
६ अः नमः (कण्ठे)
६ कं नमः (दक्षबाहुमूले)
६ खं नमः (दक्षकूर्परे)
६ गं नमः (दक्षमणिबन्धे)
६ घं नमः (दक्षकराङ्गुलिमूले)
६ ङं नमः (दक्षकराङ्गुल्यग्रे)
६ चं नमः (वामबाहुमूले)
६ छं नमः (वामकूर्परे)
६ जं नमः (वाममणिबन्धे)
६ झं नमः (वामकराङ्गुलिमूले)
६ ञं नमः (वामकराङ्गुल्यग्रे)
६ टं नमः (दक्षोरुमूले)
६ ठं नमः (दक्षजानुनि)
६ डं नमः (दक्षगुल्फे)
६ ढं नमः (दक्षपादाङ्गुलिमूले)
६ णं नमः (दक्षपादाङ्गुल्यग्रे)
६ तं नमः (वामोरुमूले)
६ थं नमः (वामजानुनि)
६ दं नमः (वामगुल्फे)
६ धं नमः(वामपादाङ्गुलिमूले)
६ नं नमः (वामपादाङ्गुल्यग्रे)
६ पं नमः (दक्षपार्श्वे)
६ फं नमः (वामपार्श्वे)
६ बं नमः (पृष्ठे)
६ भं नमः (नाभौ)
६ मं नमः (जठरे)
६ यं नमः (हृदये)
६ रं नमः (दक्षकक्षे)
६ लं नमः (गलपृष्ठे)
६ वं नमः (वामकक्षे)
६ शं नमः (हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तं)
६ षं नमः (हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तं)
६ सं नमः (हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तं)
६ हं नमः (हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तं)
६ ळं नमः (कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तं)
६ क्षं नमः (कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तं)

॥ करशुद्धिन्यास:॥

ऐं ह्रीं श्रीं	अं	नम:	(दक्षकरतले)	३	अं	नम:	(मध्यमयो:)
३	आं	नम:	(तत्पृष्ठे)	३	आं	नम:	(अनामिकयो:)
३	सौ:	नम:	(तत्पार्श्वयो:)	३	सौ:	नम:	(कनिष्ठिकयो:)
३	अं	नम:	(वामकरतले)	३	अं	नम:	(अङ्गुष्ठयो:)
३	आं	नम:	(तत्पृष्ठे)	३	आं	नम:	(तर्जन्यो:)
३	सौ:	नम:	(तत्पार्श्वयो:)	३	सौ:	नम:	(करतलकरपृष्ठयो:)

॥ आत्मरक्षान्यास:॥

३ ऐंक्लींसौ: श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष (इत्यञ्जलिं हृदये दद्यात्)॥

॥ बालाषडङ्गन्यास:॥

३	ऐं हृदयाय नम:	३	ऐं कवचाय हुं
३	क्लीं शिरसे स्वाहा	३	क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्
३	सौ: शिखायै वषट्	३	सौ: अस्त्राय फट्

॥ चतुरासनन्यास:॥

३	ह्रीं क्लीं सौ: देव्यात्मासनाय	नम:	(पादयो:)
३	हैं ह्क्लीं ह्सौ: श्रीचक्रासनाय	नम:	(जान्वो:)
३	ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौ: सर्वमन्त्रासनाय	नम:	(ऊरुमूले)
३	ह्रीं क्लीं ब्लें साध्यसिद्धासनाय	नम:	(मूलाधारे)

॥ वाग्देवतान्यास:॥

३	अं आं + + अ: ब्लूँ वशिनीवाग्देवतायै	नम:	(शिरसि)
३	कं खं गं घं ङं क्ल्हीं कामेश्वरीवाग्देवतायै	नम:	(ललाटे)
३	चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोदिनीवाग्देवतायै	नम:	(भ्रूमध्ये)
३	टं ठं डं ढं णं य्लूं विमलावाग्देवतायै	नम:	(कण्ठे)
३	तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै	नम:	(हृदये)
३	पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै	नम:	(नाभौ)
३	यं रं लं वं झ्म्र्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै	नम:	(गुह्ये)
३	शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै	नम:	(मूलाधारे)

॥ बहिश्चक्रन्यास:॥

३ अं आं सौ: चतुरस्त्रत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै – अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहितप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नम: (पादयो:)

३ ऐं क्लीं सौ: षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षि-

ण्यादिषोडशशक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नमः (जान्वोः)

३ ह्रीं क्लीं सौः अष्टदलपद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिसहित-गुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः (ऊरुमूलयोः)

३ हैं ह्क्लीं ह्सौः चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दश-शक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नमः (नाभौ)

३ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः बहिर्दशारात्मकसर्वार्थसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसिद्धिप्रदादिदशशक्ति-सहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्रीदेव्यै नमः (हृदये)

३ ह्रीं क्लीं ब्लें अन्तर्दशारात्मकसर्वरक्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदशशक्तिसहित-निगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः (कण्ठे)

३. ह्रीं श्रीं सौः अष्टारात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्तिसहित-रहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः (मुखे)

३ ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः (नेत्रयोः)

३ (पञ्चदशी) बिन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशशक्तिसहित-परापरातिरहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः (मूर्ध्नि)॥

॥ अन्तश्चक्रन्यासः॥

३ अं आं सौः चतुरस्रत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्ति-सहितप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नमः (अधः सहस्रारे)

३ ऐं क्लीं सौः षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादिषोडश-शक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नमः (मूलाधारे)

३ ह्रीं क्लीं सौः अष्टदलपद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिसहित-गुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः (स्वाधिष्ठाने)

३. हैं ह्क्लीं ह्सौः चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दश-शक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नमः (मणिपुरे)

३ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः बहिर्दशारात्मकसर्वार्थसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसिद्धिप्रदादिदश-शक्तिसहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्रीदेव्यै नमः (अनाहते)

३ ह्रीं क्लीं ब्लें अन्तर्दशारात्मकसर्वरक्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदशशक्तिसहित-निगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः (विशुद्धौ)

३ ह्रीं श्रीं सौः अष्टारात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्तिसहित-

रहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः (लम्बिकाग्रे)

३ ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः (आज्ञाचक्रे)

३ (पञ्चदशी) बिन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशशक्तिसहितपरापरातिरहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः (सहस्रारे)

पुनः आज्ञाचक्रस्य एकैकाङ्गुलोपरि देशे

अं आं सौः नमः (बिन्दौ)
ऐं क्लीं सौः नमः (अर्धचन्द्रे)
ह्रीं क्लीं सौः नमः (रोधिन्यां)
हैं ह्क्लीं ह्सैः नमः (नादे)
ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः नमः(नादान्ते)
ह्रीं क्लीं ब्लें नमः (शक्तौ)
ह्रीं श्रीं सौः नमः (व्यापिकायां)
ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं नमः (समनायां)
(पञ्चदशी) नमः (उन्मनायां)
(षोडशी) नमः (ब्रह्मरन्ध्रे महाबिन्दौ)

॥ कामेश्वर्यादिन्यासः॥

३ ऐं कएईलह्रीं अग्निचक्रे कामगिरिपीठे मित्रेशनाथ-नव-योनिचक्रात्मकात्मतत्वसृष्टिकृत्यजाग्रद्दशाधिष्ठायकेच्छाशक्ति-वाग्भवात्मक-वागीश्वरीस्वरूप-ब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः(मूलाधारे)

३ क्लीं हसकहलह्रीं सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथ-दशारद्वय-चतुर्दशारचक्रात्मक-विद्यातत्वस्थितिकृत्य-स्वप्नदशाधिष्ठायक-ज्ञानशक्ति-कामराजात्मक-कामकलास्वरूप-महावज्रेश्वरीविष्ण्वात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। (अनाहते)

३ सौः सकलह्रीं सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथ-अष्टदल-षोडशदल-चतुरस्रचक्रात्मकशिवतत्त्व-संहारकृत्य-सुषुप्ति-दशाधिष्ठायक-क्रियाशक्ति-शक्तिबीजात्मक-परापरशक्ति-स्वरूपमहाभगमालिनीरुद्रात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। (आज्ञायां)

३ ऐं कएईलह्रीं क्लीं हसकहलह्रीं सौः सकलह्रीं परब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथ समस्तचक्रात्मक-सपरिवार-परमतत्त्व-सृष्टिस्थिति-संहारकृत्य-तुरीयदशाधिष्ठायकेच्छा-ज्ञानक्रियाशान्ताशक्तिवाग्भवकामराजशक्तिबीजात्मक-परमशक्तिस्वरूप-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-परब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। (ब्रह्मरन्ध्रे)

मूलविद्यान्यासः

ऐं ह्रीं श्रीं	कं	नमः	(शिरसि)	ऐं ह्रीं श्रीं	हं	नमः	(मुखे)
३	एं	नमः	(मूलाधारे)	३	लं	नमः	(दक्षभुजे)
३	ईं	नमः	(हृदि)	३	ह्रीं	नमः	(वामभुजे)
३	लं	नमः	(दक्षनेत्रे)	३	सं	नमः	(पृष्ठे)
३	ह्रीं	नमः	(वामनेत्रे)	३	कं	नमः	(दक्षजानुनि)
३	हं	नमः	(भ्रूमध्ये)	३	लं	नमः	(वामजानुनि)
३	सं	नमः	(दक्षश्रोत्रे)	३	ह्रीं	नमः	(नाभौ)
३	कं	नमः	(वामश्रोत्रे)				

अथ ऋष्यादिषडङ्गन्यासं यथोपदेशं कुर्यात्॥

षोडश्युपासकानां विशेषन्यासाः

॥ श्रीषोडशाक्षरीन्यासः॥

३ 'मूलं' नमः। दशमध्यमानामिकाभ्यां शिरसि न्यसेत्।
तत्र तां दीपाभां स्रवत्सुधारसां महासौभाग्यदां ध्यात्वा–

३ 'मूलं' नमः महासौभाग्यं मे देहि परसौभाग्यं दण्डयामि। (सौभाग्यदण्डिन्या मुद्रया वामकर्णसंवेष्टनपूर्वकं आमस्तकचरणं वामाङ्गे न्यसेत्)॥

३ 'मूलं' नमः मम शत्रून्निगृह्णामि। (रिपुजिह्वाग्रया मुद्रया वामपादाधो न्यसेत्)॥

३ 'मूलं' नमः त्रैलोक्यस्याहं कर्ता। (त्रिखण्डया मुद्रया फाले न्यसेत्)॥

३ 'मूलं' नमः। (त्रिखण्डया मुद्रया मुखवेष्टनत्वेन न्यसेत्)॥

३ 'मूलं' नमः। (त्रिखण्डया मुद्रया दक्षकर्णादिवामकर्णान्तं मुखवेष्टनत्वेन न्यसेत्)॥

३ 'ॐ मूलं' नमः। (त्रिखण्डया गलोर्ध्वमामस्तकं न्यसेत्)॥

३ 'ॐ मूलं' नमः। (त्रिखण्डया मुद्रया मस्तकात् पादपर्यन्तं पादादामस्तकञ्च न्यसेत्)॥

३ 'मूलं' नमः। (योनिमुद्रया मुखे न्यसेत्)॥

३ 'मूलं' नमः। (योनिमुद्रया ललाटे न्यसेत्)॥

॥ सम्मोहनन्यासः॥

३ 'मूलं'। मूलविद्यां स्मृत्वा तत्प्रभया जगदरुणं विभावयन् अनामिकां मूर्ध्नि त्रिः परिभ्राम्य–

३ 'मूलं'। (ब्रह्मरन्ध्रे अङ्गुष्ठानामिके न्यसेत्)

३ 'मूलं'। (मणिबन्धद्वये) ,,

३ 'मूलं'। (फाले) ,,

३ 'मूलं'। (शक्तितिलकं धारयेत्)॥

श्रीमहाषोडशी–अक्षरन्यास –

।। संहारन्यासः।।

अथ त्रितारीनमस्सम्पुटितान् मूलविद्याषोडशार्णान् क्रमेण पादयोः जङ्घयोः जान्वोः कटिभागद्वये पृष्ठे लिङ्गे नाभौ पार्श्वयोः स्तनयोरंसयोः कर्णयोः मूर्ध्नि मुखे नेत्रयोः कर्णयुगलसन्निधौ कर्णवेष्टनयोश्च न्यसेत्। (अत्र कूटत्रयस्य वर्णत्रयत्वेन षोडशार्णत्वव्यपदेशः)। पादादिषु प्रथमं दक्षः ततो वाम इति बोध्यम्। यथा–

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं, श्रीं नमः पादयोः, ह्रीं नमः जङ्घयोः, क्लीं नमः जान्वोः, ऐं नमः कटिभागद्वये, सौः नमः पृष्ठे, ॐ नमः लिङ्गे, ह्रीं नमः नाभौ, श्रीं नमः पार्श्वयोः, क ए ई ल ह्रीं नमः स्तनयोः, हसकहलह्रीं नमः अंसयोः, सकलह्रीं नमः कर्णयोः, सौः नमः मूर्ध्नि, ऐं नमः मुखे, क्लीं नमः नेत्रयोः, ह्रीं नमः कर्णयुगसन्निधौ, श्रीं नमः कर्णवेष्टनयोः।

।। सृष्टिन्यासः।।

पुनस्तथैव मूलविद्यार्णान् क्रमेण ब्रह्मरन्ध्रे भाले दृशोः कर्णयोः घ्राणपुटयोः गण्डयोः दन्तपंक्त्योः ऊर्ध्वाधरोष्ठयोः जिह्वायां चोरकूपे पृष्ठे सर्वाङ्गे हृदि स्तनयोरुदरे लिङ्गे च न्यस्य मूलेन व्यापकं कुर्यात्। यथा–

ॐ ऐं ह्रीं, श्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ह्रीं नमः फाले, क्लीं नमः नेत्रयोः, ऐं नमः कर्णयोः, सौः नमः नासापुटयोः, ॐ नमः गण्डयोः, ह्रीं नमः दन्तपंक्तौ, श्रीं नमः ओष्ठयोः, क ए ई ल ह्रीं नमः जिह्वायाम्, हसकहलह्रीं नमः कण्ठे, सकलह्रीं नमः पृष्ठे, सौः नमः सर्वाङ्गे, ऐं नमः हृदि, क्लीं नमः स्तनयोः, ह्रीं नमः उदरे, श्रीं नमः लिङ्गे। व्यापकम्।

।। स्थितिन्यासः।।

अथ पूर्वक्रमेणैवाङ्गुष्ठादिकनिष्ठिकान्तकराङ्गुलिषु मूर्ध्नि मुखे हृदि आनाभेः पादद्वयावधि, कण्ठादानाभि मूर्ध्नि आकण्ठं पूर्ववत्पादाङ्गुलिषु च न्यसेत्। (अत्र दक्षवामकरचरणाङ्गुलिषु द्वयोर्द्वयोरेकैकमक्षरम्)। तथा हि–

ॐ ऐंह्रींश्रीं, श्रीं नमः अङ्गुष्ठयोः, ह्रीं नमः तर्जन्योः, क्लीं नमः मध्यमयोः, ऐं नमः अनामिकयोः, सौः नमः कनिष्ठिकयोः, ॐ नमः मूर्ध्नि, ह्रीं नमः मुखे, श्रीं नमः हृदिः, क ए ई ल ह्रीं नमः नाभौः, हसकहलह्रीं नमः कण्ठादिनाभ्यन्तम्, सकलह्रीं नमः मूर्धादिकण्ठान्तम्, सौः नमः पादाङ्गुष्ठयोः, ऐं नमः पादतर्जन्योः, क्लीं नमः पादमध्यमयोः, ह्रीं नमः पादानामिकयोः, श्रीं नमः पादकनिष्ठिकयोः।

एते पञ्चैव ज्ञानार्णवमते। तन्त्रान्तरेषु तु अन्येऽपि पञ्चोपलभ्यन्ते।

एते पूर्वोक्तन्यासाः कर्तव्या एव, अन्येषामकरणे न प्रत्यवायः–करणे त्वभ्युदय एव।

।। लघुषोढान्यासः।।

अस्य श्रीलघुषोढान्यासस्य दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, (शिरसि) गायत्र्यै छन्दसे नमः, (मुखे) गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिपीठरूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः (हृदये) श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः (करसम्पुटे)।

ऐं ह्रीं श्रीं, अं कं खं गं घं ङं आं ऐं – अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं, इं चं छं जं झं ञं ईं क्लीं – तर्जनीभ्यां नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं, उं टं ठं डं ढं णं ऊं सौः — मध्यमाभ्यां नमः

ऐं ह्रीं श्रीं, एं तं थं दं धं नं ऐं ऐं — अनामिकाभ्यां नमः

ऐं ह्रीं श्रीं, ओं पं फं बं भं मं औं क्लीं — कनिष्ठिकाभ्यां नमः

ऐं ह्रीं श्रीं, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

एवमेव हृदयादिन्यासः। ध्यानम्—

उद्यत्सूर्यसहस्राभां पीनोन्नतपयोधराम्।
रक्तमाल्याम्बरालेपां रक्तभूषणभूषिताम्।।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणभास्वत्पाणिचतुष्टयाम्।
लसन्नेत्रत्रयां स्वर्णमुकुटोद्भासिमस्तकाम्।।
गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं पीठमयीं ध्यायेन्मातृकां सुन्दरीं पराम्।।

इति श्रीदेवीं समष्टिरूपेण ध्यात्वा गणेशादिव्यष्टिरूपेण च ध्यायेत्।

।। गणेशन्यासः।।

तरुणादित्यसङ्काशान् गजवक्त्रांस्त्रिलोचनान्।
पाशाङ्कुशवराभीतिकरान् शक्तिसमन्वितान्।।
ते तु सिन्दूरवर्णाभाः सर्वालङ्कारभूषिताः।
एकहस्तधृताम्भोजा इतरालिङ्गितप्रियाः।।

वामोर्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तं गणेशानां पाशादिध्यानम्। शक्तीनान्तु वामकरे कमलं दक्षिणे च प्रियाश्लेष इति ध्यात्वा, मातृकास्थानेषु त्रितारीमातृकापूर्वकं गणेशान् न्यसेत्। यथा—

ऐं ह्रीं श्रीं, अं श्रीयुक्ताय विघ्नेशाय नमः, शिरसि,
३ आं ह्रींयुक्ताय विघ्नराजाय नमः, मुखवृत्ते,
३ इं तुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः, दक्षनेत्रे,
३ ईं शान्तियुक्ताय शिवोत्तमाय नमः, वामनेत्रे,
३ उं पुष्टियुक्ताय विघ्नहृते नमः, दक्षकर्णे,
३ ऊं सरस्वतीयुक्ताय विघ्नकर्त्रे नमः, वामकर्णे,
३ ॠं रतियुक्तायं विघ्नराजे नमः, दक्षनासापुटे,
३ ऌं कान्तियुक्ताय एकदन्ताय नमः, दक्षगण्डे,
३ ॡं कामिनीयुक्ताय द्विदन्ताय नमः, वामगण्डे,
३ एं मोहिनीयुक्ताय गजवक्त्राय नमः, ऊर्ध्वोष्ठे
३ ऐं जटायुक्ताय निरञ्जनाय नमः, अधरोष्ठे,

ऐं ह्रीं श्रीं ओं तीव्रायुक्ताय कपर्दभृते नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ,
३ औं ज्वालिनीयुक्ताय दीर्घमुखाय नमः, अधोदन्तपङ्क्तौ,
३ अं नन्दायुक्ताय शङ्कुकर्णाय नमः, जिह्वाग्रे,
३ अः सुरसायुक्ताय वृषध्वजाय नमः, कण्ठे,
३ कं कामरूपिणीयुक्ताय गणनाथाय नमः, दक्षबाहुमूले,
३ खं सुभ्रूयुक्ताय गजेन्द्राय नमः, दक्षकूपरि,
३ गं जयिनीयुक्ताय शूर्पकर्णाय नमः, दक्षमणिबन्धे,
३ घं सत्यायुक्ताय त्रिलोचनाय नमः, दक्षकराङ्गुलिमूले,
३ ङं विघ्नेशीयुक्ताय लम्बोदराय नमः, दक्षकराङ्गुल्यग्रे,
३ चं सुरूपायुक्ताय महानादाय नमः, वामबाहुमूले,
३ छं कामदायुक्ताय चतुर्मूर्त्तये नमः, वामकूपरि,
३ जं मदविह्वलायुक्ताय सदाशिवाय नमः, वाममणिबन्धे,
३ झं विकटायुक्ताय आमोदाय नमः, वामकराङ्गुलिमूले,
३ ञं पूर्णायुक्ताय दुर्मुखाय नमः, वामकराङ्गुल्यग्रे,
३ टं भूतिदायुक्ताय सुमुखाय नमः, दक्षोरुमूले,
३ ठं भूमियुक्ताय प्रमोदाय नमः, दक्षजानुनि,
३ डं शक्तियुक्ताय एकपादाय नमः, दक्षगुल्फे,
३ ढं रमायुक्ताय द्विजिह्वाय नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले,
३ णं मानुषीयुक्ताय शूराय नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे,
३ तं मकरध्वजायुक्ताय वीराय नमः, वामोरुमूले,
३ थं वीरिणीयुक्ताय षण्मुखाय नमः, वामजानुनि,
३ दं भ्रुकुटीयुक्ताय वरदाय नमः, वामगुल्फे,
३ धं लज्जायुक्ताय वामदेवाय नमः, वामपादाङ्गुलिमूले,
३ नं दीर्घघोणायुक्ताय वक्रतुण्डाय नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे,
२ पं धनुर्धरायुक्ताय द्विरण्डकाय नमः, दक्षपार्श्वे,
(नित्याषोडशिकार्णवे द्वितुण्डाय नमः)
३ फं यामिनीयुक्ताय सेनान्यै नमः, वामपार्श्वे,
३ बं रात्रियुक्ताय ग्रामण्यै नमः, पृष्ठे,
३ भं चन्द्रिकायुक्ताय मत्ताय नमः, नाभौ,
३ मं शशिप्रभायुक्ताय विमत्ताय नमः, जठरे,
३ यं लोलायुक्ताय मत्तवाहनाय नमः, हृदये,

ऐं ह्रीं श्रीं रं चपलायुक्ताय जटिने नमः, दक्षस्कन्धे,
३ लं ऋद्धियुक्ताय मुण्डिने नमः, गलपृष्ठे (ककुदि),
३ वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे,
३ शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः, हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्,
३ षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्,
३ सं दुर्गायुक्ताय भक्ष्यप्रियाय नमः, हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्,
३ हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्,
३ ळं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्,
३ क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

।। ग्रहन्यासः।।

रक्तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीतञ्च पाण्डुरम्।
कृष्णं धूम्रं धूमधूम्रं भावयेद्रविपूर्वकान्।।
कामरूपधरान्देवान् दिव्याभरणभूषितान्।
वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षहस्तवरप्रदान्।।
शक्तयोऽपि तथा ध्येया वराभयकराम्बुजाः।
स्वस्वप्रियाङ्कनिलयाः सर्वाभरणभूषिताः।। इति ध्यात्वा

ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॡं लृं एं ऐं ओं औं अं अः रेणुकायुक्ताय सूर्याय नमः (हृदयाधः हृज्जठरसन्धौ)।

ऐं ह्रीं श्रीं यं रं लं वं अमृतायुक्ताय चन्द्राय नमः (भ्रूमध्ये,)
३ कं खं गं घं ङं धर्मायुक्ताय भौमाय नमः (नेत्रयोः,)
३ चं छं जं झं ञं यशस्विनीयुक्ताय बुधाय नमः (श्रोत्रकूपाधः,)
३ टं ठं डं ढं णं शाङ्करीयुक्ताय बृहस्पतये नमः (कण्ठे,)
३ तं थं दं धं नं ज्ञानरूपायुक्ताय शुक्राय नमः (हृदि,)
३ पं फं बं भं मं शक्तियुक्ताय शनैश्चराय नमः (नाभौ,)
३ शं षं सं हं कृष्णायुक्ताय राहवे नमः (मुखे,)
३ ळं क्षं धूम्रायुक्ताय केतवे नमः (गुदे)।।

।। नक्षत्रन्यासः।।

ज्वलत्कालानलप्रख्या वरदाभयपाणयः।
नतिपाण्योऽश्विनीपूर्वाः सर्वाभरणभूषिताः।। इति ध्यात्वा,

ऐं ह्रीं श्रीं, अं आं अश्विन्यै नमः, ललाटे
३ इं भरण्यै नमः, दक्षनेत्रे

३ इं उं ऊं कृत्तिकायै नमः, वामनेत्रे
३ ऋं ॠं लृं ॡं रोहिण्यै नमः, दक्षकर्णे
३ एं मृगशिरसे नमः, वामकर्णे
३ ऐं आर्द्रायै नमः, दक्षनासापुटे
३ ओं औं पुनर्वसवे नमः, वामनासापुटे
३ कं पुष्याय नमः, दक्षस्कन्धे
३ खं गं आश्लेषायै नमः, कण्ठे
३ घं ङं मघायै नमः, वामस्कन्धे
३ चं पूर्वाफाल्गुन्यै नमः, पृष्ठे
३ छं जं उत्तराफाल्गुन्यै नमः, दक्षकूपरि
३ झं ञं हस्ताय नमः, वामकूपरि
३ टं ठं चित्रायै नमः, दक्षमणिबन्धे
३ डं स्वात्यै नमः, वाममणिबन्धे
३ ढं णं विशाखायै नमः, दक्षहस्ते
३ तं थं दं अनुराधायै नमः, वामहस्ते
३ धं ज्येष्ठायै नमः, नाभौ
३ नं पं फं मूलाय नमः, कटिबन्धे
३ बं पूर्वाषाढायै नमः, दक्षोरौ
३ भं उत्तराषाढायै नमः, वामोरौ
३ मं श्रवणाय नमः, दक्षजानुनि
३ यं रं धनिष्ठायै नमः, वामजानुनि
३ लं शततारकायै नमः, दक्षजङ्घायाम्
३ वं शं पूर्वभाद्रपदायै नमः, वामजङ्घायाम्
३ षं सं हं उत्तरभाद्रपदायै नमः, दक्षपादे
३ ळं क्षं अं अः रेवत्यै नमः, वामपादे।

॥ योगिनीन्यासः॥

कण्ठस्थाने विशुद्धौ नृपदलकमले श्वेतवर्णां त्रिनेत्रां
हस्तैः खट्वाङ्गखड्गौ त्रिशिखमपि महाचर्म सन्धारयन्तीम्।
वक्त्रेणैकेन युक्तां पशुजनभयदां पायसान्नैकसक्तां
त्वक्स्थां वन्देऽमृताद्यैः परिवृतवपुषं डाकिनीं वीरवन्द्याम्॥ इति ध्यात्वा,
'ऐं ह्रीं श्रीं, डां डीं ड म ल व र यूं डाकिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं

एं ऐं ओं औं अं अः मां रक्ष रक्ष त्वगात्मानं नमः' इति मन्त्रेण कण्ठस्थषोडशदलविशुद्धिकमलकर्णिकायां डाकिनीर्न्यस्य तद्दलेषु पुरोभागादिप्रादक्षिण्येन तदावरणशक्तीः न्यसेत्। यथा–

ऐं ह्रीं श्रीं, अं अमृतायै नमः, आं आकर्षिण्यै नमः, इं इन्द्राण्यै नमः, ईं ईशान्यै नमः, उं उमायै नमः, ऊं ऊर्ध्वकेश्यै नमः, ऋं ऋद्धिदायै नमः ॠं ॠकारायै नमः, ऌं ऌकारायै नमः, ॡं ॡकारायै नमः, एं एकपदायै नमः, ऐं ऐश्वर्यात्मिकायै नमः, ओं ओङ्कारायै नमः, औं औषध्यै नमः, अं अम्बिकायै नमः, अः अक्षरायै नमः, इति।

ततो ध्यानम्–

हृत्पद्मे भानुपत्रद्विवदनलसितां दंष्ट्रिणीं श्यामवर्णाम-
मक्षं शूलं कपालं डमरुमपि भुजैर्धारयन्तीं त्रिनेत्राम्।
रक्तस्थां कालरात्रिप्रभृतिपरिवृतां स्निग्धभक्तैकसक्तां
श्रीमद्वीरेन्द्रवन्द्यामभिमतफलदां राकिणीं भावयामः॥ इति ध्यात्वा,

ऐं ह्रीं श्रीं, रां रीं र म ल व र यूं राकिण्यै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं, कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं मां रक्ष रक्ष असृगात्मानं नमः' इति हृदयस्थितद्वादशदलानाहतनलिनकर्णिकायां राकिणीं न्यस्य तद्दलेषु प्राग्वत् तदावृतिशक्तीर्न्यसेत्। यथा–

ऐं ह्रीं श्रीं, कं कालरात्र्यै नमः, खं खण्डितायै नमः, गं गायत्र्यै नमः, घं घण्टाकर्षिण्यै नमः, ङं ङार्णायै नमः, चं चण्डायै नमः, छं छायायै नमः, जं जयायै नमः, झं झङ्कारिण्यै नमः, ञं ज्ञानरूपायै नमः, टं टङ्कहस्तायै नमः, ठं ठङ्कारिण्यै नमः। इति।

दिक्पत्रे नाभिपद्मे त्रिवदनलसितां दंष्ट्रिणीं रक्तवर्णां
शक्तिं दम्भोलिदण्डावभयमपि भुजैर्धारयन्तीं महोग्राम्।
डामर्याद्यैः परीतां पशुजनभयदां मांसधात्वेकनिष्ठां
गौडान्नासक्तचित्तां सकलसुखकरीं लाकिनीं भावयामः॥ इति ध्यात्वा,

'ऐं ह्रीं श्रीं, लां लीं ल म ल व र यूं लाकिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं, डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं मां रक्ष रक्ष मांसात्मानं नमः' इति नाभिगतदशदलमणिपूरकसरोजकर्णिकायां लाकिनीं न्यस्य तद्दलेषु पूर्ववत्तत्परि-वारशक्तीर्न्यसेत्। यथा–

ऐं ह्रीं श्रीं, डं डामर्यै नमः, ढं ढङ्कारिण्यै नमः, णं णार्णायै नमः, तं तामस्यै नमः, थं स्थाण्व्यै नमः, दं दाक्षायण्यै नमः, धं धात्र्यै नमः, नं नार्यै नमः, पं पार्वत्यै नमः, फं फट्कारिण्यै नमः,। तदनु–

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदललसिते वेदवक्त्रां त्रिनेत्रां
हस्ताब्जैर्धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालाङ्कुशानात्तगर्वाम्।
मेदोधातुप्रतिष्ठामलिमदमुदितां बन्धिनीमुख्ययुक्तां
पीतां दध्योदनेष्टामभिमतफलदां काकिनीं भावयामः॥ इति ध्यात्वा,

'ऐं ह्रीं श्रीं कां कीं क म ल व र यूं काकिन्यै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं बं भं मं यं रं लं मां रक्ष रक्ष मेद

आत्मान नमः' इति गुह्यस्थानगतषड्दलस्वाधिष्ठानसरसिजकर्णिकायां काकिनीं न्यस्य तद्दलेषु तदावरणशक्तीः प्रागवन्न्यसेत्। यथा–

ऐं ह्रीं श्रीं, बं बन्धिन्यै नमः, भं भद्रकाल्यै नमः, मं महामायायै नमः, यं यशस्विन्यै नमः, रं रक्तायै नमः, लं लम्बोष्ठ्यै नमः। तत्र –

मूलाधारस्य पत्रे श्रुतिदललसिते पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां
धूम्राभामस्थिसंस्थां सृणिमपि कमलं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
बिभ्राणां बाहुदण्डैः सुललितवरदापूर्वशक्त्यावृतां तां
मुद्गान्नासक्तचित्तां मधुमदमुदितां साकिनीं भावयामः।। इति ध्यात्वा,

ऐं ह्रीं श्रीं, सां सीं स म ल व र यूं साकिन्यै नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं, वं शं षं सं मां रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मानं नमः' इति पायूपस्थमध्यगतचतुर्दलमूलाधार–कमलकर्णिकायां साकिनीं न्यस्य तद्दलेषु पूर्ववत्तदावृतिशक्तीर्न्यसेत्। यथा–

ऐं ह्रीं श्रीं, वं वरदायै नमः, शं श्रियै नमः, षं षण्डायै नमः, सं सरस्वत्यै नमः। अथ–

भ्रूमध्ये बिन्दुपद्मे दलयुगकलिते शुक्लवर्णां कराब्जै-
र्बिभ्राणां ज्ञानमुद्रां डमरुकममलामक्षमालां कपालम्।
षड्वक्त्रां मज्जसंस्थां त्रिनयनलसितां हंसवत्यादियुक्तां
हारिद्रान्नैकसक्तां सकलसुखकरीं हाकिनीं भावयामः।। इति ध्यात्वा,

ऐं ह्रीं श्रीं हां हीं ह म ल व र यूं हाकिन्यै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं हं क्षं मां रक्ष–रक्ष मज्जात्मानं नमः' इति भ्रूमध्यगतद्विदलाज्ञाकमलकर्णिकायां हाकिनीं न्यस्य तद्दक्षवामदलयोः क्रमेण–

ऐं ह्रीं श्रीं, हं हंसवल्यै नमः, क्षं क्षमावत्यै नमः, इति तच्छक्तिद्वयं न्यसेत्। तदनु–

मुण्डव्योमस्थपद्मे दशशतदलके कर्णिकाचन्द्रसंस्थां
रेतोनिष्ठां समस्तायुधकलितकरां सर्वतो वक्त्रपद्माम्।
आदिक्षान्तार्णशक्तिप्रकरपरिवृतां सर्ववर्णां भवानीं
सर्वान्नासक्तचितां परशिवरसिकां याकिनीं भावयामः।। इति ध्यात्वा,

ऐं ह्रीं श्रीं, यां यीं य म ल व र यूं याकिन्यै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं, अं आं ....क्षं (५१) मां रक्ष–रक्ष शुक्रात्मानं नमः' इति ब्रह्मरन्ध्रगतसहस्रदलसरसिजकर्णिकायां याकिनीं न्यस्य तद्दलेषु प्रतिविंशतिदलं तदावरणशक्तीः अमृताद्याः क्षमावत्यन्ताः पूर्वोक्ताः प्रागवन्न्यसेत्।'

॥ राशिन्यासः॥

रक्तश्वेतहरित्पाण्डुचित्रकृष्णपिशङ्गकान्।
कपिशबभ्रुकिर्मीरकृष्णधूम्रान् क्रमात्स्मरेत्।।
राशीनिति शेषः। इति ध्यात्वा,

ऐं ह्रीं श्रीं, अं आं इं ईं मेषाय नमः, दक्षिणपादे
३ उं ऊं वृषाय नमः, लिङ्गदक्षभागे
३ ऋं ॠं लृं लॄं मिथुनाय नमः, दक्षकुक्षौ
३ एं ऐं कर्काय नमः, हृदयदक्षभागे
३ ओं औं सिंहाय नमः, दक्षबाहुमूले
३ अं अः शं षं सं हं ळं कन्यायै नमः, दक्षशिरोभागे
३ कं खं गं घं ङं तुलायै नमः, वामशिरोभागे
३ चं छं जं झं ञं वृश्चिकाय नमः, वामबाहुमूले
३ टं ठं डं ढं णं धनुषे नमः, हृदयवामभागे
३ तं थं दं धं नं मकराय नमः, वामकुक्षौ
३ पं फं बं भं मं कुम्भाय नमः, लिङ्गवामभागे
३ यं रं लं वं क्षं मीनाय नमः, वामपादे।

॥ पीठन्यासः॥

सितासितारुणश्यामहरित्पीतान्यनुक्रमात्।
पुनः क्रमेण देवेशि पञ्चाशत्पीठसञ्चयः॥

इति भावयित्वा मातृकाभिस्समं पूर्वोक्तेषु तासां स्थानेषु पीठानि क्रमेण विन्यसेत्। यथा—

ऐं ह्रीं श्रीं, अं कामरूपाय नमः, शिरसि
३ आं वाराणस्यै नमः, मुखवृत्ते
३ इं नेपालाय नमः, दक्षनेत्रे
३ ईं पौण्ड्रवर्धनाय नमः, वामनेत्रे
३ उं पुरस्थितकाश्मीराय नमः, दक्षकर्णे
३ ऊं कान्यकुब्जाय नमः, वामकर्णे
३ ऋं पूर्णशैलाय नमः, दक्षनासापुटे
३ ॠं अर्बुदाचलाय नमः, वामनासापुटे
३ लृं आम्रातकेश्वराय नमः, दक्षगण्डे
३ लॄं एकाम्राय नमः, वामगण्डे
३ एं त्रिस्रोतसे नमः, ऊर्ध्वोष्ठे
३ ऐं कामकोटये नमः, अधरोष्ठे
३ ओं कैलासाय नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ
३ औं भृगुनगराय नमः, अधोदन्तपङ्क्तौ
३ अं केदाराय नमः, जिह्वाग्रे

३	अः	चन्द्रपुष्करिण्यै नमः, कण्ठे
३	कं	श्रीपुराय नमः, दक्षबाहुमूले
३	खं	ओङ्काराय नमः, दक्षकूर्परे
३	गं	जालन्धराय नमः, दक्षमणिबन्धे
३	घं	मालवाय नमः, दक्षकराङ्गुलिमूले
३	ङं	कुलान्तकाय नमः, दक्षकराङ्गुल्यग्रे
३	चं	देवीकोटाय नमः, वामबाहुमूले
३	छं	गोकर्णाय नमः, वामकूर्परे
३	जं	मारुतेश्वराय नमः, वाममणिबन्धे
३	झं	अट्टहासाय नमः, वामकराङ्गुलिमूले
३	ञं	वैराजायै नमः, वामकरागुल्यग्रे
३	टं	राजगेहाय नमः, दक्षोरूमूले
३	ठं	महापथाय नमः, दक्षजानुनि
३	डं	कोलापुराय नमः, दक्षगुल्फे
३	ढं	एलापुराय नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले
३	णं	कालेश्वराय नमः, दक्षपादङ्गुल्यग्रे
३	तं	जयन्तिकायै नमः, वामोरुमूले
३	थं	उज्जयिन्यै नमः, वामजानुनि
३	दं	चित्रायै नमः, वामगुल्फे
३	धं	क्षीरिकायै नमः, वामपादाङ्गुलिमूले
३	नं	हस्तिनापुराय नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे
३	पं	उड्डीशाय नमः, दक्षपार्श्वे
३	फं	प्रयागाय नमः, वामपार्श्वे
३	बं	षष्ठीशाय नमः, पृष्ठे
३	भं	मायापुर्यै नमः, नाभौ
३	मं	जलेशाय नमः, जठरे
३	यं	मलयाय नमः, हृदये
३	रं	श्रीशैलाय नमः, दक्षस्कन्धे
३	लं	मेरवे नमः, गलपृष्ठे
३	वं	गिरिवराय नमः, वामस्कन्धे
३	शं	महेन्द्राय नमः, हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्

३	षं	वामनाय नमः, हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्
३	सं	हिरण्यपुराय नमः, हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्
३	हं	महालक्ष्मीपुराय नमः, हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्
३	ळं	औड्याणाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्
३	क्षं	छायाच्छत्राय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्

(इति षडवयवकः षोढान्याससमाप्तः)



अथ श्रीचक्रन्यासः

अस्य श्री श्रीचक्रन्यासस्येत्यनन्तरं जपप्रकरणे वक्ष्यमाणान् ऋष्यादीन्न्यस्याह्निकप्रकरणोक्तवद् ध्यात्वा श्रीदेव्या उपचारमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा,

शरीरं चिन्तयेदादौ निजं श्रीचक्ररूपकम्।
त्वगाद्याकारनिर्मुक्तं ज्वलत्कालाग्निसन्निभम्॥ इति ध्यात्वा–

ऐं ह्रीं श्रीं समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुलोत्तीर्णनिगर्भरहस्यातिरहस्यपरापरातिरहस्ययोगिनीचक्रदेवताभ्यो नमः इति सर्वाङ्गे व्यापकं न्यस्य,

ऐं ह्रीं श्रीं,	गं	गणपतये नमः, दक्षोरौ
३	क्षं	क्षेत्रपालाय नमः, दक्षांसे
३	यां	योगिनीभ्यो नमः, वामांसे
३	बं	बटुकाय नमः, वामोरौ
३	लं	इन्द्राय नमः, पादाङ्गुष्ठद्वयाग्रे
३	रं	अग्नये नमः, दक्षजानुनि
३	टं	यमाय नमः, दक्षपार्श्वे
३	क्षं	निर्ऋतये नमः, दक्षांसे
३	वं	वरुणाय नमः, मूर्ध्नि
३	यं	वायवे नमः, वामांसे
३	सं	सोमाय नमः, वामपार्श्वे
३	हं	ईशानाय नमः, वामजानुनि
३	हंसः	ब्रह्मणे नमः, मूर्ध्नि
३	अं	अनन्ताय नमः, मूलाधारे।

॥ त्रैलोक्यमोहनचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः, इति व्यापकं न्यस्य ततः ऐं ह्रीं श्रीं आद्यचतुरस्त्ररेखायै

नमः,– इति दक्षांसपृष्ठादिवक्ष्यमाणेषु स्थानेष्वञ्जलिना व्यापकं न्यस्य,

ऐं ह्रीं श्रीं अणिमासिद्ध्यै नमः, दक्षांसपृष्ठे

३ लघिमासिद्ध्यै नमः, दक्षपाण्यङ्गुल्यग्रेषु

३ महिमासिद्ध्यै नमः, दक्षोरुसन्धौ

३ ईशित्वसिद्ध्यै नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रेषु

३ वशित्वसिद्ध्यै नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रेषु

३ प्राकाम्यसिद्ध्यै नमः, वामोरुसन्धौ

३ भुक्तिसिद्ध्यै नमः, वामपाण्यङ्गुल्यग्रेषु

३ इच्छासिद्ध्यै नमः, वामांसपृष्ठे

३ प्राप्तिसिद्ध्यै नमः, शिखामूले

३ सर्वकामसिद्ध्यै नमः, शिरःपृष्ठे।

३ चतुरस्रामध्यरेखायै नमः—इति वक्ष्यमाणाङ्गेषु व्यापकं न्यस्य,

३ ब्राह्म्यै नमः, पादाङ्गुष्ठद्वये

३ माहेश्वर्यै नमः, दक्षपार्श्वे

३ कौमार्यै नमः, मूर्ध्नि

३ वैष्णव्यै नमः, वामपार्श्वे

३ वाराह्यै नमः, वामजानुनि

३ इन्द्राण्यै नमः, दक्षजानुनि

३ चामुण्डायै नमः, दक्षांसे

३ महालक्ष्म्यै नमः, वामांसे

३ चतुरस्रान्त्यरेखायै नमः– इति वक्ष्यमाणाङ्गेषु व्यापकं न्यस्य,

३ सर्वसंक्षोभिण्यै नमः, पादाङ्गुष्ठद्वये

३ सर्वविद्राविण्यै नमः, दक्षपार्श्वे

३ सर्वाकर्षिण्यै नमः, मूर्ध्नि

३ सर्ववशङ्कर्यै नमः, वामपार्श्वे

३ सर्वोन्मादिन्यै नमः, वामजानुनि

३ सर्वमहाङ्कुशायै नमः, दक्षजानुनि

३ सर्वखेचर्यै नमः, दक्षांसे

३ सर्वबीजायै नमः, वामांसे

३ सर्वयोनये नमः, द्वादशान्ते

३ सर्वत्रिखण्डायै नमः, पादाङ्गुष्ठद्वये

३ अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्रेश्वर्यै त्रिपुरायै नमः, हृदये।

एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहने चक्रे समुद्राः ससिद्धयस्सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वाः न्यस्तास्सन्त्विति हृदि चक्रसमर्पणं न्यस्य,

॥ सर्वाशापरिपूरकचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरकचक्राय नमः— इति व्यापकं न्यस्य,

३ कामाकर्षिण्यै नित्याकलायै नमः, दक्षकर्णपृष्ठे

३ बुद्ध्याकर्षिण्यै नमः, दक्षांसे

३ अहङ्काराकर्षिण्यै नमः; दक्षकूपरि

३ शब्दाकर्षिण्यै नमः, दक्षकरपृष्ठे, हस्ततलपृष्ठयोः

३ स्पर्शाकर्षिण्यै नमः, दक्षोरौ, दक्षस्फिजि,

३ रूपाकर्षिण्यै नमः, दक्षजानुनि

३ रसाकर्षिण्यै नमः, दक्षगुल्फे,

३ गन्धाकर्षिण्यै नमः, दक्षपादतले, दक्षप्रपदे,

३ चित्ताकर्षिण्यै नमः, वामपादतले, वामप्रपदे,

३ धैर्याकर्षिण्यै नमः, वामगुल्फे

३ स्मृत्याकर्षिण्यै नमः, वामजानुनि

३ नामाकर्षिण्यै नमः, वामोरौ, वामस्फिजि,

३ बीजाकर्षिण्यै नमः, वामकरतलपृष्ठयोः

३ आत्माकर्षिण्यै नमः, वामकूपरि

३ अमृताकर्षिण्यै नमः, वामांसे,

३. शरीराकर्षिण्यै नमः, वामकर्णपृष्ठे

ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरकचक्रेश्वर्यै त्रिपुरेश्वर्यै नमः, हृदये

एताः गुप्तयोगिन्यस्सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्रा इत्यादि प्राग्वत्।

॥ सर्वसंक्षोभणचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, ह्रीं क्लीं सौः, सर्वसंक्षोभणचक्राय नमः— इति व्यापकं न्यस्य,

३ अनङ्गकुसुमायै नमः, दक्षशंखे (ललाटास्थि)

३ अनङ्गमेखलायै नमः, दक्षजत्रुणि, (बाहुमूलसन्धिः)

३ अनङ्गमदनायै नमः, दक्षोरौ,

३ अनङ्गमदनातुरायै नमः, दक्षगुल्फे,

३ अनङ्गरेखायै नमः, वामगुल्फे;

३ अनङ्गवेगिन्यै नमः, वामोरौ,

३ अनङ्गाङ्कुशायै नमः, वामजत्रुणि,

३ अनङ्गमालिन्यै नमः, वामशङ्खे,

३ ह्रीं क्लीं सौः सर्वसंक्षोभणचक्रेश्वर्यैत्रिपुरसुन्दर्यै नमः, हृदये।

एताः गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसङ्क्षोभणचक्रे समुद्राः— इत्यादि प्राग्वत्।

॥ सर्वसौभाग्यदायकचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, हैं ह्क्लीं ह्सौः सर्वसौभाग्यदायकचक्राय नमः— इति व्यापकं न्यस्य,

३ सर्वसंक्षोभिण्यै नमः, ललाटमध्ये,

३ सर्वविद्राविण्यै नमः, ललाटदक्षभागे,

३ सर्वाकर्षिण्यै नमः, दक्षगण्डे,

३ सर्वाह्लादिन्यै नमः, दक्षांसे,

३. सर्वसम्मोहिन्यै नमः, दक्षपार्श्वे,

३ सर्वस्तम्भिन्यै नमः, दक्षोरौ;

३ सर्वजृम्भिण्यै नमः, दक्षजङ्घायाम्

३ सर्ववशङ्कर्यै नमः, वामजङ्घायाम्,

३ सर्वरञ्जिन्यै नमः, वामोरौ,

३ सर्वोन्मादिन्यै नमः, वामपार्श्वे

३ सर्वार्थसाधिन्यै नमः, वामांसे

३ सर्वसम्पत्तिपूरिण्यै नमः, वामगण्डे

३ सर्वमन्त्रमय्यै नमः, ललाटवामभागे

३ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्कर्यै नमः, शिरःपृष्ठे

३ हैं ह्क्लीं ह्सौः सर्वसौभाग्यदायकचक्रेश्वर्यै त्रिपुरवासिन्यै नमः, हृदये।

एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायके चक्रे समुद्राः— इत्यादि समर्पणं न्यसेत्।

॥ सर्वार्थसाधकचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः सर्वार्थसाधकचक्राय नमः— इति व्यापकं न्यस्य

३ सर्वसिद्धिप्रदायै नमः, दक्षनेत्रे, दक्षनासापुटे

३ सर्वसम्पत्प्रदायै नमः, नासामूले, दक्षसृक्विणि

३ सर्वप्रियङ्कर्यै नमः वामनेत्रे, दक्षस्तने

३ सर्वमङ्गलकारिण्यै नमः, वामबाहुमूले, दक्षवृषणे

३ सर्वकामप्रदायै नमः, वामोरुमूले, सीविन्या दक्षभागे

३ सर्वदुःखविमोचिन्यै नमः, वामजानुनि, सीविन्या वामभागे

३ सर्वमृत्युप्रशमन्यै नमः, दक्षजानुनि, वामस्तने

३ सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः, गुदे वामवृषणे

३ सर्वाङ्गसुन्दर्यै नमः, दक्षोरुमूले वामसृक्विणि
३ सर्वसौभाग्यदायिन्यै नमः, दक्षबाहुमूले वामनासापुटे
३ ह्सै ह्स्क्लीं ह्स्सौः सर्वार्थसाधकचक्रेश्वर्यै त्रिपुराश्रिये नमः, हृदये।
एताः कुलोत्तीर्णयोगिन्यः सर्वार्थसाधके चक्रे समुद्रा, इत्यादि पूर्ववत्।

॥ सर्वरक्षाकरचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्राय नमः, इति व्यापकं न्यस्य,
३ सर्वज्ञायै नमः, दक्षनासापुटे
३ सर्वशक्त्यै नमः, दक्षसृक्विणि (ओष्ठप्रान्ते)
३ सर्वैश्वर्यप्रदायिन्यै नमः, दक्षस्तने
३ सर्वज्ञानमय्यै नमः, दक्षमुष्के
३ सर्वव्याधिविनाशिन्यै नमः, सीविन्यां (तस्या दक्षभागे) (सीविनी—अण्डद्वयमध्यवर्तिनी सिरा)
३ सर्वाधारस्वरूपायै नमः, वाममुष्के (सिविन्या वामभागे)
३ सर्वपापहरायै नमः, वामस्तने
३ सर्वानन्दमय्यै नमः, वामसृक्विणि
३ सर्वरक्षास्वरूपिण्यै नमः, वामनासापुटे
३ सर्वेप्सितफलप्रदायै नमः, नासाग्रे
३ ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्रेश्वर्यै त्रिपुरमालिन्यै नमः, हृदि।
एता निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे समुद्रा इत्यादि प्राग्वत्।

॥ सर्वरोगहरचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं, ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय नमः, इति व्यापकं न्यस्य,
३ अं..................अः (१६) ब्ल्रूँ वशिनीवाग्देवतायै नमः दक्षचिबुके,
३ कं खं गं घं ङं क्ल्ह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः, दक्षकण्ठे
३ चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः, हृदयदक्षभागे
३ टं ठं डं ढं णं य्लूं विमलावाग्देवतायै नमः, नाभिदक्षभागे,
३ तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नमः, नाभिवामभागे,
३ पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै नमः, हृदयवामभागे,
३ यं रं लं वं झ्म्र्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः, वामकण्ठे,
३ शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः, वामचिबुके,
३ ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्रेश्वर्यै त्रिपुरासिद्धायै नमः, हृदि,
एताः रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरे चक्रे समुद्रा इत्यादि पूर्ववत्।

॥ आयुधन्यासः॥

अथ हृदि त्रिकोणं विभाव्य तत्र प्रागादिदिक्षु क्रमेणायुधानां चतुष्टयं न्यसेत्। यथा— ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्वजम्भनेभ्यो बाणेभ्यो नमः, त्रिकोणपृष्ठे,

३ धं सर्वसम्मोहनाय धनुषे नमः त्रिकोणदक्षे (स्ववामे),

३ ह्रीं सर्ववशीकरणाय पाशाय नमः त्रिकोणाग्रे,

३ क्रों सर्वस्तम्भनाय अङ्कुशाय नमः त्रिकोणवामे (स्वदक्षभागे)

॥ सर्वसिद्धिप्रदचक्रन्यासः॥

३ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्सौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः इति व्यापकं न्यस्य,

३ मूलप्रथमकूटं, कामरूपपीठस्थायै महाकामेश्वर्यै नमः, त्रिकोणाग्रकोणे,

३ मूलद्वितीयकूटं, पूर्णगिरिपीठस्थायै महावज्रेश्वर्यै नमः, तद्दक्षकोणे,

३ मूलतृतीयकूटं, जालन्धरपीठस्थायै महाभगमालिन्यै नमः, तद्वामकोणे,

ऐं ह्रीं श्रीं, (मूलं) ओड्याणपीठस्थायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः, तन्मध्ये।

अथ तदन्तस्सपर्याप्रकरणोक्तप्रकारेण षोडशस्वरान् विभाव्य षोडशनित्याः न्यसेत्। यथा— कामेश्वरीनित्यामन्त्रमुच्चार्य कामेश्वरीनित्यायै नमः। एवं प्रकारेणावशिष्टाश्चतुर्दशनित्या विन्यस्य मध्ये मूलमुच्चार्य षोडशीं न्यसेत्।

३ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्रेश्वर्यै त्रिपुराम्बायै नमः, हृदि।

एता अतिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे समुद्रा इत्यादि प्राग्वत्

॥ सर्वानन्दमयचक्रन्यासः॥

ऐं ह्रीं श्रीं (मूलं) सर्वानन्दमयचक्राय नमः, इति व्यापकं न्यस्य,

३ (मूलं) श्रीललितायै नमः हृदयमध्ये,

एषां परापरतिरहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे समुद्रा ससिद्धिः सायुधा सशक्तिः सवाहना सपरिवारा न्यस्ताऽस्तु।

ऐं ह्रीं श्रीं (मूलं) सर्वानन्दमयचक्रेश्वर्यै श्रीललितायै नमः, इति हृदि न्यस्य, योनिमुद्रां प्रदर्श्य मूलं जपित्वा पुनः कराङ्गन्यासं कुर्यात्।

इति नित्याषोडशिकार्णवोक्तश्रीचक्रन्यासः। पूर्वोक्तौ षोढाचक्रन्यासौ श्रीषोडशाक्षर्या अपि समानौ।

॥ अथ महाषोढान्यासः॥

प्रपञ्चो भुवनं मूर्तिर्मन्त्रदैवतमातरः।
महाषोढाह्वयो न्यासः सर्वन्यासोत्तमोत्तमः॥

अस्य श्री महाषोढान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः, जगतीच्छन्दः, श्रीमदर्धनारीश्वरो देवता, श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोग इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा मूर्धादिषु विन्यस्याङ्गन्यासं कुर्यात्।

अङ्गन्यासस्तु—अङ्गुलीदेहवक्त्रात्मकः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः (६) इति षडक्षरमन्त्रपूर्वकं सर्वं न्यसेत्।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः हौं ईशानाय नमः अङ्गुष्ठयोः
६ हें तत्पुरुषाय नमः तर्जन्योः
६ हुं अघोराय नमः मध्यमयोः
६ हिं वामदेवाय नमः अनामिकयोः
६ हं सद्योजाताय नमः कनिष्ठिकयोः
६ हौं ईशानाय नमः मूर्ध्नि
६ हें तत्पुरुषाय नमः मुखे
६ हुं अघोराय नमः हृदये
६ हिं. वामदेवाय नमः गुह्ये
६ हं सद्योजाताय नमः पादयोः
६ हौं ईशानायोर्ध्ववक्त्राय नमः मूर्ध्नि,
६ हें तत्पुरुषाय पूर्ववक्त्राय नमः मुखे
६ हुं अघोराय दक्षिणवक्त्राय नमः दक्षकर्णे,
६ हिं वामदेवायोत्तरवक्त्राय नमः वामकर्णे,
६ हं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय नमः चोरकूपे,

अयं पञ्चवक्त्रन्यासः, क्रमेणाङ्गुष्ठादिपञ्चाङ्गुलीभिरेकैकाङ्गुलिनैकैकवक्त्रे न्यस्तव्यः। एवमङ्गन्यासं विधाय ततो ह्सां ह्सीं ह्सूं ह्सैं इत्यादिभिः करषडङ्गन्यासं कृत्वा वक्ष्यमाणरूपं देवं हृदये ध्यात्वा न्यसेत्।

ओघप्रकारान्तरेण ध्यानम्—

पञ्चवक्त्रं चतुर्बाहुं सर्वाभरणभूषितम्।
चन्द्रसूर्यसहस्राभं शिवशक्त्यात्मकं भजे॥

॥ प्रपञ्चन्यासः॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं प्रपञ्चरूपायै श्रिये नमः (शिरसि)
६ आं द्वीपरूपायै मायायै नमः (मुखवृत्ते)
६ इं जलधिरूपायै कमलायै नमः (दक्षनेत्रे)
६ ईं गिरिरूपायै विष्णुवल्लभायै नमः (वामनेत्रे)
६ उं पत्तनरूपायै पद्मधारिण्यै नमः (दक्षकर्णे)
६ ऊं पीठरूपायै समुद्रतनयायै नमः (वामकर्णे)
६ ऋं क्षेत्ररूपायै लोकमात्रे नमः (दक्षनासापुटे)
६ ॠं वनरूपायै कमलवासिन्यै नमः (वामनासापुटे)
६ लृं आश्रमरूपायै इन्दिरायै नमः (दक्षगण्डे)
६ ॡं गुहारूपायै मायायै नमः (वामगण्डे)

६	एं	नदीरूपायै रमायै नमः	(उर्ध्वोष्ठे)
६	ऐं	चत्वररूपायै पद्मायै नमः	(अधरोष्ठे)
६	ओं	उद्भिज्जरूपायै नारायणप्रियायै नमः	(उर्ध्वदन्तपङ्क्तौ)
६	औं	स्वेदजरूपायै सिद्धलक्ष्म्यै नमः	(अधोदन्तपङ्क्तौ)
६	अं	अण्डजरूपायै राजलक्ष्म्यै नमः	(जिह्वाग्रे)
६	अः	जरायुजरूपायै महालक्ष्म्यै नमः	(कण्ठे)
६	कं	लवरूपायै आर्यायै नमः	(दक्षबाहुमूले)
६	खं	त्रुटिरूपायै उमायै नमः	(दक्षकूर्परे)
६	गं	कलारूपायै चण्डिकायै नमः	(दक्षमणिबन्धे)
६	घं	काष्ठारूपायै दुर्गायै नमः	(दक्षकराङ्गुलिमूले)
६	ङं	निमेषरूपायै शिवायै नमः	(दक्षकराङ्गुल्यग्रे)
६	चं	श्वासरूपायै अपर्णायै नमः	(वामबाहुमूले)
६	छं	घटिकारूपायै अम्बिकायै नमः	(वामकूर्परे)
६	जं	मुहूर्तरूपायै सत्यै नमः	(वाममणिबन्धे)
६	झं	प्रहररूपायै ईश्वर्यै नमः	(वाम कराङ्गुलिमूले)
६	ञं	दिवसरूपायै शाम्भवै नमः	(वाम कराङ्गुल्यग्रे)
६	टं	सन्ध्यारूपायै ईशान्यै नमः	(दक्षोरूमूले)
६	ठं	रात्रिरूपायै पार्वत्यै नमः	(दक्षजानुनि)
६	डं	तिथिरूपायै सर्वमङ्गलायै नमः	(दक्षगुल्फे)
६	ढं	वाररूपायै दाक्षायण्यै नमः	(दक्षपादाङ्गुलिमूले)
६	णं	नक्षत्ररूपायै हैमवत्यै नमः	(दक्षपादाङ्गुल्यग्रे)
६	तं	योगरूपायै महामायायै नमः	(वामोरूमूले)
६	थं	करणरूपायै महेश्वर्यै नमः	(वामजानुनि)
६	दं	पक्षरूपायै मृडान्यै नमः	(वामगुल्फे)
६	धं	मासरूपायै इन्द्राण्यै नमः	(वामपादाङ्गुलिमूले)
६	नं	राशिरूपायै शर्वाण्यै नमः	(वामपादाङ्गुल्यग्रे)
६	पं	ऋतुरूपायै परमेश्वर्यै नमः	(दक्षपार्श्वे)
६	फं	अयनरूपायै काल्यै नमः	(वामपार्श्वे)
६	बं	वत्सररूपायै कात्यायन्यै नमः	(पृष्ठे)
६	भं	युगरूपायै गौर्यै नमः	(नाभौ)
६	मं	प्रयलरूपायै भवान्यै नमः	(जठरे)

६ यं पञ्चभूतरूपायै ब्राह्म्यै नमः (हृदये)
६ रं पञ्चतन्मात्रारूपायै वागीश्वर्यै नमः (दक्षकक्षे)
६ लं पञ्चकर्मेन्द्रियरूपायै वाण्यै नमः (गलपृष्ठे)
६ वं पञ्चज्ञानेन्द्रियरूपायै सावित्र्यै नमः (वामकक्षे)
६ शं पञ्चप्राणरूपायै सरस्वत्यै नमः (हृदयादि दक्षकराङ्गुल्यन्तं)
६ षं गुणत्रयरूपायै गायत्र्यै नमः (हृदयादि वामकराङ्गुल्यन्तं)
६ सं अन्तःकरणचतुष्टयरूपायै वाक्प्रदायै नमः (हृदयादि दक्षपादाङ्गुल्यन्तं)
६ हं अवस्थाचतुष्टयरूपायै शारदायै नमः (हृदयादि वामपादाङ्गुल्यन्तं)
६ ळं सर्वधातुरूपायै भारत्यै नमः (कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तं)
६ क्षं दोषत्रयरूपायै विद्यात्मिकायै नमः (कट्यादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं)

इत्येकपञ्चाशच्छक्तिमातृकास्थानेषु विन्यस्य, ततः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः (अकारादिक्षकारान्तां मातृकामुच्चार्य) सकलप्रपञ्चाधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति सर्वाङ्गे व्यापकं कुर्यात्। इति प्रपञ्चन्यासः।

॥ अथ भुवनन्यासः॥

तत्र, पादयोः— ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं आं इं अतललोकनिलयशतकोटिगुह्याद्ययोगिनीमूलदेवतायुता—धारशक्त्यम्बादेव्यै नमः॥

गुल्फयोः—६ ईं उं ऊं वितललोकनिलयशतकोटिगुह्यतरानन्तयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

जङ्घयोः—६ ऋं ॠं लृं सुतललोकनिलयशतकोट्यतिगुह्याचिन्त्ययोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

जान्वोः—६ ॡं एं ऐं महातललोकनिलयशतकोटिमहागुह्यस्वतन्त्रयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

ऊर्वोः—६ ओं औं तलातललोकनिलयशतकोटिपरमगुह्येच्छायोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

स्फिचोः—६ अं अः रसातललोकनिलयशतकोटिरहस्यज्ञानयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

मूलाधारे—६ कं खं ग घं ङं पाताललोकनिलयशतकोटिरहस्यतरक्रियायोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

स्वाधिष्ठाने—६ चंछंजंझंञं भूर्लोकनिलयशतकोट्यतिरहस्यडाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

मणिपूरके—६ टंठंडंढंणं भुवर्लोकनिलयशतकोटिमहारहस्यराकिणीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

अनाहते—६ तंथंदंधंनं स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्यलाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

विशुद्धौ—६ पंफंबंभंमं महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्तकाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

आज्ञायां—६ यं रं लं वं जनलोकनिलयशतकोटिगुप्ततरसाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

ललाटे—६ शं षं सं हं तपोलोकनिलयशतकोट्यतिगुप्तहाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

ब्रह्मरन्ध्रे— ६ ळं क्षं सत्यलोकनिलयशतकोटिमहागुप्तयाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः। इति विन्यस्य ६ (समस्तमातृकामुच्चार्य) सकलभुवनाधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्। इति भुवनन्यासः।

।। अथ मूर्तिन्यासः।।

शिरसि— ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं केशवायाक्षरशक्त्यै नमः।
मुखे — ६ आं नारायणाद्यशक्त्यै नमः,
दक्षिणांसे— ६ इं माधवायेष्टदायै नमः,
वामांसे — ६ ईं गोविन्दायैशान्यै नमः,
दक्षपार्श्वे— ६ उं विष्णवे उग्रायै नमः,
वामपार्श्वे— ६ ऊं मधुसूदनायोर्ध्वनयनायै नमः,
दक्षकट्याम्— ६ ऋं त्रिविक्रमाय ऋद्ध्यै नमः,
वामकट्याम्— ६ ॠं वामनाय रूपिण्यै नमः,
दक्षोरौ— ६ ऌं श्रीधराय लुप्तायै नमः,
वामोरौ— ६ ॡं हृषीकेशाय लूनदोषायै नमः,
दक्षजानुनि— ६ एं पद्मनाभायैकनायिकायै नमः,
वामजानुनि— ६ ऐं दामोदरायैककारिण्यै नमः,
दक्षजङ्घायाम्— ६ ओं वासुदेवायौघवत्यै नमः,
वामजङ्घायाम्— ६ औं सङ्कर्षणायौर्वकामायै नमः,
दक्षपादे— ६ अं प्रद्युम्नायाञ्जनप्रभायै नमः,
वामपादे— ६ अः अनिरुद्धायास्थिमालाधरायै नमः,
दक्षपादाग्रादूरुमूलपर्यन्तम्— ६ कं भं भवाय करभद्रायै नमः,
वामपादाग्रादूरुमूलपर्यन्तम्— ६ खं बं शर्वाय खगबलायै नमः,
दक्षपार्श्वे— ६ गं फं हराय गरिमफलप्रदायै नमः,
वामपार्श्वे— ६ घं पं पशुपतये घोरपादायै नमः,
दक्षदोर्मूले— ६ ङं मं उग्राय पङ्क्तिवासायै नमः,
वामदोर्मूले— ६ चं धं महादेवाय चन्द्रार्धधारिण्यै नमः,
कण्ठे — ६ छं दं भीमाय छन्दोग्यै नमः,
वदने— ६ जं थं ईशानाय जगत्स्थानायै नमः,
दक्षकर्णे— ६ झं तं तत्पुरुषाय झङ्कृत्यै नमः,
वामकर्णे— ६ ञं णं अघोराय ज्ञानदायै नमः,
भाले— ६ टं ढं सद्योजाताय टङ्कढक्कधरायै नमः,
शिरसि— ६ ठं डं वामदेवाय ठङ्कृतिडामयै नमः,
मूलाधारे— ६ यं ब्रह्मणे यक्षिण्यै नमः,
स्वाधिष्ठाने— ६ रं प्रजापतये रञ्जिन्यै नमः,

मणिपूरके—	६	लं	वेधसे लक्ष्म्यै नमः,
अनाहते—	६	वं	परमेष्ठिने वज्रिण्यै नमः,
विशुद्धौ—	६	शं	पितामहाय शशिधरायै नमः,
आज्ञायां—	६	षं	विधात्रे षडाधारालयायै नमः,
अर्धेन्दौ—	६	सं	विरिञ्चये सर्वनायिकायै नमः,
रोधिन्याम्—	६	हं	स्रष्ट्रे हसितााननायै नमः,
नादे—	६	ळं	चतुराननाय ललितायै नमः,
नादान्ते—	६	क्षं	हिरण्यगर्भाय क्षमायै नमः, इति विन्यस्य,

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः (सकलतृकामुच्चार्य) सकलत्रिमूर्त्यात्मिकायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्। ।। **इति मूर्तिन्यासः**।।

।। अथ मन्त्रन्यासः।।

मूलाधारे— ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं आं इं एकलक्षकोटिभेदप्रणवाद्येकाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

स्वाधिष्ठाने— ६ ईं उं ऊं द्विलक्षकोटिभेदहंसादिद्व्यक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्विकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

मणिपूरके— ६ ऋं ॠं लृं त्रिलक्षकोटिभेदवन्ह्न्यादित्र्यक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रिकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

अनाहते— ६ लॄं एं ऐं चतुर्लक्षकोटिभेदचन्द्रादिचतुरक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै चतुष्कूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

विशुद्धौ— ६ ओं औं अं अः पञ्चलक्षकोटिभेदसूर्यादिपञ्चाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै पञ्चकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

आज्ञायाम्— कं खं गं षड्लक्षकोटिभेदस्कन्दादिषडक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै षट्कूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

बिन्दौ—६ घं ङं चं सप्तलक्षकोटिभेदगणपत्यादिसप्ताक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै सप्तकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

अर्धेन्दौ— ६ छं जं झं अष्टलक्षकोटिभेदवटुकाद्यष्टाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै अष्टकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

रोधिन्यां— ६ जं टं ठं नवलक्षकोटिभेदब्रह्मादिनवाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै नवकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

नादे— ६ डं ढं णं दशलक्षकोटिभेदविष्ण्वादिदशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै दशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

नादान्ते– ६ तं थं दं एकादशलक्षकोटिभेदरुद्राद्येकादशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एकादशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

शक्तौ– धं नं पं द्वादशलक्षकोटिभेदवाण्यादिद्वादशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्वादशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

व्यापिकायाम्–६ फं बं भं त्रयोदशलक्षकोटिभेदलक्ष्म्यादित्रयोदशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रयोदशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

समनस्थाने– ६ मं यं रं चतुर्दशलक्षकोटिभेदगौर्यादिचतुर्दशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै चतुर्दशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

उन्मन्याम्– ६ लं वं शं पञ्चदशलक्षकोटिभेद्दुर्गादिपञ्चदशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै पञ्चदशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

ध्रुवमण्डले– ६ षं सं ह ळं क्षं षोडशलक्षकोटिभेदत्रिपुरादिषोडशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै षोडशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः। ।। इति मन्त्रन्यासः।।

।। अथ देवतान्यासः।।

दक्षपादे– ॐ ऐंह्रींश्रीं, ह्सौः स्हौः अं आं सहस्रकोटिऋषिकुलसेवितायै निवृत्यम्बादेव्यै नमः।
वामपादे– ६ इं ईं सहस्रकोटियोगिनीकुलसेवितायै प्रतिष्ठाम्बादेव्यै नमः।
दक्षगुल्फे– ६ उं ऊं सहस्रकोटितपस्विकुलसेवितायै विद्याम्बादेव्यै नमः।
वामगुल्फे– ६ ऋं ॠं सहस्रकोटिशान्तकुलसेवितायै शान्ताम्बादेव्यै नमः।
दक्षजङ्घायाम्– ६ ऌं ॡं सहस्रकोटिमुनिकुलसेवितायै शान्त्यतीताम्बादेव्यै नमः।
वामजङ्घायाम्– ६ एं ऐं सहस्रकोटिदैवतकुलसेवितायै हृल्लेखाम्बादेव्यै नमः।
दक्षजानुनि – ६ ओं औं सहस्रकोटिराक्षसकुलसेवितायै गगनाम्बादेव्यै नमः।
वामजानुनि– ६ अं अः सहस्रकोटिविद्याधरकुलसेवितायै रक्ताम्बादेव्यै नमः।
दक्षोरौ– ६ कं खं सहस्रकोटिसिद्धकुलसेवितायै महोच्छुष्माम्बादेव्यै नमः।
वामोरौ– ६ गं घं सहस्रकोटिसाध्यकुलसेवितायै करालिकाम्बादेव्यै नमः।
दक्षोरुमूले– ६ ङं चं सहस्रकोट्यप्सरःकुलसेवितायै जयाम्बादेव्यै नमः।
वामोरुमूले– ६ छं जं सहस्रकोटिगन्धर्वकुलसेवितायै विजयाम्बादेव्यै नमः।
दशपार्श्वे– ६ झं ञं सहस्रकोटिगुह्यककुलसेवितायै अजिताम्बादेव्यै नमः।
वामपार्श्वे– ६ टं ठं सहस्रकोटियक्षकुलसेवितायै अपराजिताम्बादेव्यै नमः।
दक्षस्तने– ६ डं ढं सहस्रकोटिकिन्नरकुलसेवितायै वामाम्बादेव्यै नमः।
वामस्तने– ६ णं तं सहस्रकोटिपन्नगकुलसेवितायै ज्येष्ठाम्बादेव्यै नमः।
दक्षदोर्मूले– ६ थं दं सहस्रकोटिपितृकुलसेवितायै रौद्र्यम्बादेव्यै नमः।
वामदोर्मूले– ६ धं नं सहस्रकोटिगणेश्वरकुलसेवितायै मायाम्बादेव्यै नमः।

दक्षभुजे— ६ पं फं सहस्रकोटिभैरवकुलसेवितायै कुण्डलिन्यम्बादेव्यै नमः।
वामभुजे— ६ बं भं सहस्रकोटिवटुककुलसेवितायै काल्यम्बादेव्यै नमः।
दक्षांसे— ६ मं यं सहस्रकोटिक्षेत्रेशकुलसेवितायै कालरात्र्यम्बादेव्यै नमः।
वामांसे— ६ रं लं सहस्रकोटिप्रमथकुलसेवितायै भगवत्यम्बादेव्यै नमः।
दक्षकर्णे— ६ वं शं सहस्रकोटिब्रह्मकुलसेवितायै सर्वैश्वर्यम्बादेव्यै नमः।
वामकर्णे— ६ षं सं सहस्रकोटिविष्णुकुलसेवितायै सर्वज्ञात्र्यम्बादेव्यै नमः।
भाले— ६ हं ळं सहस्रकोटिरुद्रकुलसेवितायै सर्वकर्त्र्यम्बादेव्यै नमः।
ब्रह्मरन्ध्रे ६ क्षं सहस्रकोटिचराचरकुलसेवितायै कुलशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः (सकलमातृकामुच्चार्य) समस्तदेवताधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्। ।। इति देवतान्यासः।।

।। अथ मातृकाभैरवन्यासः।।

मूलाधारे— ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः कं खं गं घं ङं अनन्तकोटिभूचरीकुलसहितायै आं क्षां मङ्गलाम्बादव्यै आं क्षां ब्रह्माण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिभूचरकुलसहिताय अं क्षं मङ्गलनाथाय अं क्षं असिताङ्गभैरवनाथाय नमः।

स्वाधिष्ठाने— ६ चं छं जं झं ञं अनन्तकोटिखेचरीकुलसहितायै ईं ळां चर्चिकाम्बादेव्यै ईं ळां माहेश्वर्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिवेतालकुलसहिताय इं ळं चर्चिकनाथाय इं ळं रुरुभैरवनाथाय नमः।

मणिपूरके— ६ टं ठं डं ढं णं अनन्तकोटिपातालचरीकुलसहितायै ऊं हां योगेश्वर्यम्बादेव्यै ऊं हां कौमार्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिपिशाचकुलसहिताय उं हं योगेश्वरनाथाय उं हं चण्डभैरवनाथाय नमः।

अनाहते— ६ तं थं दं धं नं अनन्तकोटिदिक्चरीकुलसहितायै ॠं सां हरसिद्धाम्बादेव्यै ॠं सां वैष्णव्यम्बादेव्यै अनन्तकोट्यपस्मारकुलसहिताय ॠं सं हरसिद्धनाथ ॠं सं क्रोधभैरवनाथाय नमः।

विशुद्धौ— ६ पं फं बं भं मं अनन्तकोटिसहचरीकुलसहितायै ॡं षां भट्टिन्यम्बादेव्यै ॡं षां वाराह्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिब्रह्मराक्षसकुलसहिताय ऌं षं भट्टिनाथाय ऌं षं उन्मत्तभैरवनाथाय नमः।

आज्ञायां— ६ यं रं लं वं अनन्तकोटिगिरिचरीकुलसहितायै ऐं शां किलिकिलाम्बादेव्यै ऐं शां इन्द्राण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिचेटककुलसहितायै एं शं किलिकिलिनाथाय एं शं कपालिभैरवनाथाय नमः।

भाले— ६ शं षं सं हं अनन्तकोटिसहचरीकुलंसहितायै औं वां कालरात्र्यम्बादेव्यै औं वां चामुण्डाम्बादेव्यै अनन्तकोटिप्रेतकुलसहिताय ओं वं कालरात्रिनाथाय औं वं भीषणभैरवनाथाय नमः।

ब्रह्मरन्ध्रे— ६ ळं क्षं अनन्तकोटिजलचरीकुलसहितायै अः ळां भीषणाम्बादेव्यै अः ळां महालक्ष्म्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिकूष्माण्डकुलसहिताय अं ळं भीषणनाथाय अं ळं संहारभैरवनाथाय नमः।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः (समस्तमातृकामुच्चार्य) समस्तमातृकाभैरवाधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्। इति मातृकाभैरवन्यासः।

अनन्तरं पूर्वोक्तैः ह्सां ह्सीं इत्यादिभिः करषडङ्गन्यासं विधाय देवं ध्यायेत्। यथा—

अमृतार्णवमध्योद्यत्स्वर्णद्वीपे मनोरमे। कल्पवृक्षवनान्तःस्थे नवमाणिक्यमण्डपे ॥
नवरत्नमयश्रीमत्सिंहासनगताम्बुजे । त्रिकोणान्तस्समासीनं चन्द्रसूर्यायुतप्रभम् ॥
अर्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्तविभूषणम्। कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम्॥
मन्दस्मितमुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्। दिव्याम्बरस्रगालेपं दिव्याभरणभूषितम्॥
पानपात्रञ्च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः। विद्यासंसदि बिभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणम्॥
महाषोढोदिताशेषदेवतागणसेवितम् । एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्धनारीश्वरं शिवम्॥
पुरुषं वा स्मरेद्देवि स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्। अथवा निष्कलं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम्॥
सर्वतेजोमयं ध्यायेत्सचराचरविग्रहम्।

इति स्वाभेदेन ध्यात्वा, योनि–लिङ्ग–सुरभि–कपाल–ज्ञान–त्रिशूल–पुस्तक–वनमाला–नभो–महामुद्रा इति दशमुद्राः प्रदर्श्य शिरसि श्रीगुरुं ध्यायेत्।

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभम्। वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम्॥
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणम् । स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्॥

इति श्रीगुरुं ध्यात्वा तद्विविद्यया तत्पादुकां शरसि विन्यस्य प्रणम्य स्वगुरुकृतं स्वनाम स्वमूलाधारे स्मृत्वा शिवरूपं स्वात्मानं ध्यायेत्॥ इति महाषोढान्यासः॥

॥ महाषोढान्यासफलं कुलार्णवे॥

एवं न्यासे कृते देवि साक्षात्परशिवो भवेत्। मन्त्री चात्र न सन्देहो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥
महाषोढाह्वयं न्यासं यः करोति दिने दिने। देवास्सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः॥
महाषोढाह्वयं न्यासं यत्र मन्त्री न्यसेत्ततः। दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं समन्ताद्दशयोजनम् ॥
कृत्वा न्यासमिमं देवि यत्र गच्छति मानवः। तत्र श्रीर्विजयो लाभः स मान्यः पुरुषः प्रिये॥
महाषोढाकृतन्यासः त्वद्दीक्षायाभिवन्दते। स मासान्मृत्युमाप्नोति यदि त्राता शिवः स्वयम्॥
वज्रपञ्जरनामानमेवं न्यासं करोति यः। दिव्यान्तरिक्षभूशैलजलारण्यनिवासिनः॥
उद्दण्डभूतवेतालदेवरक्षोग्रहादयः । भयग्रस्तेन मनसा नेक्षन्ते साधकं प्रिये॥
महाषोढाह्वयं न्यासं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। देवास्सर्वे प्रकुर्वन्ति ऋषयश्च मुनीश्वराः॥
बहुनोक्तेन किं देवि सुशिष्याय प्रकाशयेत्। अक्षयां लभते सिद्धिं रहसि न्यासमाचरेत्॥
अस्मात्परतरस्साक्षाद्देवताभावसिद्धिदः। लोके नास्ति न सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः॥
ऊर्ध्वाम्नायप्रवेशश्च पराप्रासादचिन्तनम्। महाषोढापरिज्ञानं नाल्पस्य तपसः फलम्॥

॥ इति महाषोडान्यासफलम्॥

॥ इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथ–उमानन्दनाथ–तच्छिष्य–षोडशानन्दशिष्य–दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र की भावविवृति का षष्ठ श्वास पूर्ण हुआ॥ ६॥



श्रीविद्यार्णवतन्त्र

सप्तम श्वास

।। भाव विवृति ।।

स्थितिचक्रन्यास—विद्या, चक्र, चक्रेश्वरी यह अङ्गत्रयात्मक है, ऐसा सिद्धान्त है। स्वसम्प्रदायानुसार करशुद्धिविद्या से करशुद्धि एवं आत्मरक्षाविद्या से आत्मरक्षा करे, **स्वात्म** से भगवती की अभेदभावना करें, इसमें ''अरुणां करुणां.............. इस श्लोक का अर्थ है— अरुणवर्ण वाली, करुणा से तरङ्गित नेत्रों वाली, पाश अङ्कुश, पुष्पबाण और धनुष धारण की हुई अणिमादि सिद्धियों से आवृत भगवती भवानी का ध्यान करें। 'अहमित्येव विभावये भवानीम्'। इस प्रकार ध्यान करके मूलविद्या अक्षर न्यास करें। पञ्चदशी के पञ्चदशाक्षरों का मस्तक, गुह्य आदि स्थानों पर त्रितारी सहित न्यास करें।

नवचक्र— अध: सहस्रार, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि लम्बिकाग्र, आज्ञा, ऊर्ध्व सहस्रार, इन्हीं चक्रों पर समन्त्र नवचक्रेश्वरियों का न्यास करें। मूल द्रष्टव्य है।

मन्त्र विद्या— अं आं सौः, ऐं क्लीं सौः, ह्रीं क्लीं सौः नमः, हैं ह्क्लीं ह्सौः, ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः, ह्रीं क्लीं ब्लें, ह्रीं श्रीं सौः, ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः, पञ्चदशाक्षरीमन्त्र ये नवचक्रेश्वरियों के मन्त्र हैं। **इनको विद्या भी कहते हैं।** चक्रेश्वरी, त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरासिद्धा, त्रिपुराम्बा, महात्रिपुरसुन्दरी ये नव चक्रेश्वरियों के नाम हैं। यथा— अः आ सौः त्रिपुरा चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि (अधः सहस्रारे) इत्यादि नव चक्रों में न्यास करे। यह स्थितिचक्रन्यास है।

तदनन्तर रक्षाषडङ्ग न्यास करें— त्रितारी, बालामन्त्र, **'त्रिपुरसुन्दरि मां रक्ष रक्ष'**, न्यास करके, पुनः बालामन्त्र से षडङ्ग न्यास करें। पञ्चदशाक्षरी मन्त्र का न्यास करके महाषोडशी मन्त्र का न्यास करें। षोडशी मन्त्र के षट्कूटों में से मन्त्र के एक कूट का योग करके **''श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी सर्वज्ञताशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः''** इत्यादि इसप्रकार षडङ्ग न्यास करें। यह न्यास रहस्यमय है, अतः महाषोडशी उपासकों को गुरुमुख से विधि ज्ञात करके न्यास करना चाहिए। षडङ्ग—युवती न्यास का ध्यान मूल में वर्णित है — ''कुन्देन्दुनीलासित..............'' श्लोकोक्त ध्यान करे।

श्रीविद्यापूर्ण न्यास— यह न्यास कई मुद्राएँ बनाकर किया जाता है। जो गुरु से अवगत होता है। श्रीविद्यारत्नाकर में इस न्यास का सरलीकरण करते हुए मुद्राओं के नाम भी लिखे गये हैं। सौभाग्यदण्डिनी, रिपुजिह्वाग्र, सर्वत्रिखण्डा और महायोनि आदि मुद्राओं से इनका न्यास होता है, तथापि गुरुमुख से ज्ञान करना आवश्यक है।

जो श्रीविद्यापूर्णन्यास ज्ञानार्णव में निरूपित है, उसे ही ग्रन्थकार ने उद्धृत किया है। इसमें न्यासविधि और मुद्राओं का भी वर्णन है। यह गुरुमुखैकगम्य है, अतः साधकों को सम्यक्तया ज्ञान करके

श्रीविद्यापूर्णन्यास करना चाहिए। तदनन्तर सम्मोहनन्यास करने का विधान है। यह परिशिष्ट में संलग्न है।

श्रीविद्या के षोडश वर्णों का न्यासक्रम निरूपित किया है। षोडशी के अनेक भेद हैं, अतः जो साधक जिस विद्या में दीक्षित हो, उसी के वर्णों का न्यास करें।

तन्त्रराजतन्त्र–विहित अर्चाक्रम में पञ्चदशीविद्या का उद्धार है, इसका मूल ऋग्वेद में उपलब्ध है, **''चत्वार ईं विभ्रति क्षेमयन्ते''** इस ऋग्वेद मन्त्र के प्रमाण से पञ्चदशी में पन्द्रह अक्षर हैं, उसके शेष में जो **'ह्रीं'** बीज है, इसमें से एक **'ईं'** का और उद्धार करके इसी को षोडशाक्षरी मन्त्र सिद्ध किया है।

॥ षोडशीमन्त्र का स्वरूप॥

(१) परब्रह्म स्वरूप (२) नादबिन्दुकलायुक्त, (३) शिवशक्तिमय, ये त्रिविध रूप समस्त विश्व में व्याप्त हैं। **शक्त्यात्मक परब्रह्मस्वरूपिणी का वर्णन** – मातृका के पचास अक्षर हैं, 'हकार' शिव है और 'सकार' शक्ति है, इसी के नादबिन्दुकलायुक्त होने से 'हंसः सोऽहं' इस मूल शब्दब्रह्म की निष्पत्ति होती है। इसी शब्द ब्रह्म से सब मन्त्रों की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार शिवशक्तिमय महाविद्या, महात्रिपुरसुन्दरी–नित्या–चित्कला–परदेवता का षोडशाक्षसी मन्त्र गुरुकृपा से प्राप्त करके स्वसम्प्रदायानुसार साधना करने से तत्त्वज्ञान हो जाता है।

॥ मेरुरूप मन्त्र-यन्त्र॥

१३९ पृ. में करशुद्धिकरी विद्या, चतुरासन विद्या का निरूपण किया गया है और पञ्चदशाक्षरी के नौ अक्षरों को नवार्णमेरु कहा है। पञ्चदशाक्षरी के अक्षरों की व्युत्पत्ति करते हुए मन्त्र को मेरु कहा है, इसी प्रकार श्रीयन्त्र की भी मेरु संज्ञा है।

॥ मनु आदि उपासित २५ विद्याएँ॥

श्रीविद्या के मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामराज, अगस्त्य, नन्दी, सूर्य, विष्णु, स्कन्द, शिव, दुर्वासा ये बारह उपासक हैं। इन्द्र, उन्मनी, वरुण, धर्मराज, अग्नि, नागराज, वायु, बुध, ईशान, रति, नारायण, ब्रह्मा और जीव[1] ये तेरह हुए, इस प्रकार पच्चीस उपासकों की भिन्न-भिन्न विद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। ज्ञानार्णव तन्त्र के अनुसार ग्रन्थकार ने इन सभी विद्याओं को स्पष्ट करते हुए सभी का पूर्ण रूप से निरूपित किया है। इसमें पञ्चदशाक्षरी, षोडशाक्षरी, अष्टादशाक्षरी विद्याओं का उद्धार है, जिसमें पञ्चदशाक्षरी हादि एवं कादि विद्या के अक्षरों का व्युत्क्रम है। अक्षरों के ही व्युत्क्रम से विद्याओं का स्वरूप निरूपण किया है, उसी प्रकार महाषोडशी मन्त्र के भी कई भेदों का निरूपण किया है, जो मूल में निर्दिष्ट है। एतावता कुछ भी लिखना आवश्यक नहीं है[2]।

---

१. बृहस्पति। २. द्र. मूल पृ. १४१–१५२ तक।

ज्ञानार्णवतन्त्र में **बालामन्त्र** का उद्धार है एवं उसके ऋषि, छन्द, देवता न्यास ध्यान आदि का वर्णन भी किया गया है। यह महासारस्वत सिद्धि प्रदान करने वाली विद्या है।

पञ्चसिंहासन देवता :– बाला त्रिपुरसुन्दरी के ही भेदरूप ३२ भैरवीमन्त्रों का वर्णन किया गया है। यह समस्त मन्त्र मूल में साङ्गोपाङ्ग निरूपित है।

पूर्वसिंहासन विद्या :– (१) बाला कुलसुन्दरी (२) सम्पत्प्रदाभैरवी (३) चैतन्यभैरवी (४) द्वितीयाचैतन्य भैरवी (५) कामेश्वरीभैरवी।

दक्षिणसिंहासन देवता–(१) अघोरभैरवी, (२) महाभैरवी (३) ललिताभैरवी, (४) कामेशीभैरवी, (५) रक्तनेत्राभैरवी।

पश्चिमसिंहासन देवता– (१) षट्कूटाभैरवी (२) नित्याभैरवी (३) मृतसञ्जीवनीभैरवी (४) मृत्युञ्जयपराभैरवी (५) वज्रप्रस्तारिणीभैरवी।

उत्तरसिंहासन देवताः– (१)भुवनेश्वरीभैरवी (२)कमलेश्वरीभैरवी (३)सिद्धकौलेशभैरवी (४)डामरभैरवी (५) कामिनीभैरवी

ऊर्ध्वसिंहासन देवताः– (१) प्रथमसुन्दरी (२) द्वितीयसुन्दरी (३) तृतीयसुन्दरी (४) चतुर्थसुन्दरी (५)पञ्चमसुन्दरी। इन भैरवियों का मूल में ऋष्यादि न्यास, ध्यान एवं पाँचों सुन्दरियों का मन्त्र मूल में निर्दिष्ट है।

।। पञ्चपञ्चिका ।।

श्रीविद्यालक्ष्मी पञ्चलक्ष्मी – मूलमन्त्र का योग करके **''महालक्ष्मीवृन्दमण्डितासनसंस्थितासर्वसौभाग्य-जननीश्रीपादुकां पूजयामि।''**

एकाक्षर लक्ष्मी – महालक्ष्मी, त्रिशक्तिलक्ष्मी, सर्वसाम्राज्यलक्ष्मी, इनके छन्द, देवता, ध्यान मन्त्र सब मूल में निर्दिष्ट हैं। इसी प्रकार पञ्चकोशाम्बा, (पञ्चेश्वरी) भी कहते है।

''महाकोशेश्वरीवृन्द-मण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीपादुकां पूजयामि'' इस मन्त्र से इनका पूजन होता है। इनके ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान, मन्त्र मूल में स्पष्ट है।

।। पञ्चकल्पलता।।

श्रीविद्याकल्पलता **''ओं ऐं ह्रीं श्रीं, मूलमन्त्र, महाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता-सर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्याकल्पतलाश्रीपादुकां पूजयामि।''** पाचों के ऋषि, छन्द, देवता, मन्त्र मूल में वर्णित हैं।

।। पञ्चकामदुघा।।

श्रीविद्याकामदुघा :–''ओंऐंह्रींश्रीं मूलमन्त्र'' महाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थितासर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याकामदुघाश्रीपादुकां पूजयामि।'' चार कामदुघा– (१) अमृतपीठेश्वरी, (२) सुधा (३) अमृतेश्वरी (४) अन्नपूर्णाकामदुघा। इनके ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान, मन्त्र मूल में स्पष्ट है।

।। पञ्चरत्नेश्वरी विद्या।।

(१) श्रीविद्यारत्नेश्वरी – ''ओंऐंह्रींश्रीं मूल, महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थितसर्वसौभाग्यजननी-श्रीविद्यारत्नेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि'' इसी प्रकार ४ रत्नेश्वरी विद्या का अर्चन करें। (१) सिद्धलक्ष्मीरत्नेश्वरी (२) राजमातङ्गीश्वरी रत्नेश्वरी, (३) भुवनेश्वरीरत्नेश्वरी, ४) वाराहीरत्नेश्वरी। इन रत्नेश्वरी देवियों के ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान, मन्त्र आदि मूल में स्पष्ट है।

।। षोडश नित्या।।

(१) महानित्या, (२) कामेश्वरी, (३) भगमालिनी, (४) नित्यक्लिन्ना, (५) भेरुण्डा, (६) वह्निवासिनी, (७) महावज्रेश्वरी, (८) शिवदूती, (९) त्वरिता, (१०) कुलसुन्दरी, (११) नित्या, (१२) नीलपताका, (१३) विजया, (१४) सर्वमङ्गला, (१५) ज्वालामालिनी, (१६) चित्रा।

इन षोडश नित्याओं के ऋषि, छन्द, देवता, न्यास, ध्यान आदि चौदहवें श्वास में वर्णित हैं, जो आगे दिये जायेंगे[१]। श्रीविद्यारत्नाकर में दिये गये मन्त्रों से, श्रीविद्यार्णव में दिये गये मन्त्र जो तन्त्रराज तन्त्र से उधृत हैं, में कुछ भेद हैं। कामेश्वरी नित्या के कई भेद हैं, एक भेद इसमें दिया गया है। तन्त्रान्तरों में भी अन्य भेद प्राप्त होते हैं। भेरुण्डा में एक अक्षर का भेद है, वज्रेश्वरी, नित्या-नित्या, नीलपताका, विजयानित्या, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनी के मन्त्रों में किञ्चित् भेद है।

इस सप्तम श्वास में पञ्चदशाक्षरी, षोडशी, महाषोडशी, आदि के २५ उपासकों की पृथक्–पृथक् विद्या एवं पञ्चसिंहासन देवता, पञ्चपञ्चिका, षोडशनित्या आदि का साङ्गोपाङ्ग एकत्र संग्रह करके श्रीविद्या साधना मार्ग को प्रशस्त किया गया है। अनेक तन्त्रान्तरों के प्रमाणों से संशय एवं शङ्काओं का निराकरण करते हुए निर्भ्रान्त सिद्धान्त की स्थापना करके ग्रन्थ के महत्त्व को अनुपमेय रूप प्रदान किया है।

।। श्रीविद्यार्णवतन्त्रस्य सप्तमश्वासभावविवृत्तिः।।

।। इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथशिष्य-उमानन्दनाथ-तच्छिष्य-षोडशानन्दशिष्य-दत्तात्रेयानन्दनाथ के विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र भावविवृति सप्तम श्वास भावविवृति पूर्ण हुई।



१. द्र०— श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् पृ. सं. ३४३–२६८ ।

अष्टम श्वास

भावविवृत्तिं

षड्दर्शन—आयतनविद्या

ब्रह्मदर्शनपूर्वायतनविद्या, वैष्णवदर्शनदक्षिणायतनविद्या, सौरदर्शनपश्चिमायतनविद्या, बौद्धदर्शनोत्तरायतन विद्या, शैवदर्शनोर्ध्वायतन विद्या, शाक्तदर्शनप्रधानविद्या। 'ह्रीं' इसे भी शाक्तदर्शन की विद्या मानते हैं।

१. **ब्रह्मदर्शनपूर्वायतनविद्या**—"'गायत्री' परोजसे सावदों। ब्रह्मदेवताधिष्ठितवैदिकदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि नमः।"

२. **वैष्णवदर्शनदक्षिणायतनविद्या**—"ॐ नमो नारायणाय। विष्णुदेवताधिष्ठितवैष्णवदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि नमः।"

३. **सौरदर्शनपश्चिमायतनविद्या**—"ओं ह्रीं घृणिस्सूर्य आदित्योम्। सूर्यदेवताधिष्ठितसौरदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि नमः।"

४. **बौद्धदर्शनोत्तरायतनविद्या**—'ओं ह्रीं तारय तारय स्वाहा। तारादेवताधिष्ठितबौद्धदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि नमः।"

५. **शैवदर्शनोर्ध्वायतनविद्या**—"ओं ह्रीं नमश्शिवाय। रुद्रदेवताधिष्ठितशैवदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि नमः।"

६. **शाक्तदर्शनप्रधानविद्या**—"ओं श्रीं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वरीदेवताधिष्ठितशाक्तदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि नमः।"

इन षड्दर्शनों के ऋषि, छन्द, देवता, न्यास, ध्यान का वर्णन मूल में स्पष्ट है।

।। चतुःसमयविद्या।।

(१) ऐं क्लीं सौः ओं नमः (हृत्) कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभकरि (रे) हूं हूं— द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐं।

(२) ऐं ह्रीं सर्वकामार्थसाधिनि वज्रेश्वरि वज्रपदे वज्रपञ्जरमध्यगते ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं वज्रनित्यायै नमः।

(३) भगमालिनी विद्या। (भगमालिनी मन्त्र मूल में द्रष्टव्य।)

(४) क्लीं भगवति ब्लूं नित्ये कामेश्वरि ह्रीं सर्वसत्त्ववशङ्करि सः त्रिपुरभैरवि ऐं विच्चे क्लीं— महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। समयविद्या के ये चार मन्त्र हैं, जो मूल मे स्पष्ट हैं।

।। आम्नाय—विद्या।।

भगवान् शिव के पञ्च मुखों से पाँच आम्नाय—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व आम्नाय प्रकट हुए हैं। पञ्चाम्नायों की मूल विद्याएँ सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। पूर्वाम्नायविद्या उन्मनी, दक्षिणाम्नायविद्या भोगिनी, पश्चिमाम्नायविद्या कुब्जिका, उत्तराम्नायविद्या कालिका।

१. **पूर्वाम्नायविद्या उन्मनी**— "ह्सैं ह्स्क्लरीं ह्सौः। पूर्वाम्नायसमयविद्येश्वर्युन्मनीदेव्यम्बा—श्रीपादुकां पूजयामि नमः" "ह्स्रीं स्ह्रीं श्रीं कलह्रीं इति मूलोक्ता उन्मनी विद्या"

२. दक्षिणाम्नायविद्या भोगिनी– 'ऊँ ह्रीं' ऐं क्लिन्ने क्लिन्नमदद्रवे कुले ह्सौः। दक्षिणाम्नायसमयविद्येश्वरी-भोगिनीदेव्याम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

३. पश्चिमाम्नायविद्या–कुब्जिका– ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौः ओं नमो भगवति हसखफ्रें कुब्जिके ह्रं स्रां ह्स्रूं अघोरे घोरे अघोरमुखी छ्रां छ्रीं किणिकिणि विच्चे हसौः हसखफ्रें श्री ह्रीं ऐं, पश्चिमाम्नायसमयविद्येश्वरी-कुब्जिकादेव्यम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि नमः।''

४. उत्तराम्नायविद्या कालिका– ''खफ्रें महाचण्डयोगेश्वरि'' उत्तराम्नायसमयविद्येश्वरी कालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकांपूजयामि नमः।''

इन चार आम्नाय विद्याओं के ऋषि, छन्द, देवता, न्यास, ध्यान आदि मूल में स्पष्ट हैं। पूर्वाम्नायविद्या का ध्यान संपत्प्रदा भैरवी के समान १५४ पृ., दक्षिणाम्नाय विद्या का ध्यान अघोरभैरवी के समान १५५ पृ., पश्चिमाम्नाय विद्या का ध्यान–षट्कूटाभैरवी के समान पृ. १५६, उत्तराम्नाय विद्या का ध्यान भुवनेश्वरी भैरवी के समान होता है।

।। षडाम्नाय।।

प्रारम्भ में उर्ध्वाम्नाय की विद्याओं का निरूपण है। अनुत्तराम्नाय भी तन्त्रान्तरों में प्राप्त होता है। उस अनुत्तराम्नाय का यहाँ पर ऊर्ध्वाम्नाय में ही समावेश किया गया है। परशुरामकल्पसूत्र में भी मूल में पञ्चाम्नाय ही हैं। इसके टीकाकार रामेश्वर ने अनुत्तराम्नाय का भी विवेचन स्पष्ट किया है। अनुत्तराम्नाय की मूल विद्यायें भी तन्त्रों में निरूपित हैं, अतः षडाम्नाय तन्त्रों में विद्यमान हैं, यह सिद्ध होता है।

।। उर्ध्वाम्नायक्रम।।

उर्ध्वाम्नाय पराप्रासाद मन्त्र है। पराप्रासाद के अङ्गभूत महाषोढ़ान्यास करने का विधान है। इस महाषोढ़ा न्यास के पूर्व कामरतिन्यास अन्तःकामकला, बहिःकामकला, महाशक्तिन्यास, मूलषोडशाक्षरीविद्या–न्यास, अष्टात्रिंशत् कलान्यास, इन सब न्यासों को करने पर ही साधक महाषोढ़ान्यास का अधिकारी होता है। श्रीविद्यार्णव के द्वितीय खण्ड के ३५ वें श्वास में कामरति न्यास ८६६ पृ. में अष्टात्रिंशत् कला न्यास ८६७ पृ. में, कामकला न्यास ८७१ पृ. में ३६वें श्वास में इन सब न्यासों का वर्णन प्राप्त होता है। साधकों के सौकर्य के लिए उक्त न्यास पहले ही दिये जा रहे हैं। षोडश मूल विद्याओं के न्यास में अनुत्तराम्नाय की अधिष्ठात्री **शाङ्करी विद्या** का भी मन्त्र है।

।। कामरतिन्यास।।

अस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, परमात्मा देवता, श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः।
बाला मन्त्र से षडङ्ग न्यास करने का विधान है–

ध्यान — श्यामाङ्गकान् वरान् सर्वान् सर्वाभरणभूषितान्।
सशक्तिकान् स्मरेत् कामान् पञ्चाशद्वर्णभावने।।

शिरसि	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	अं	कामेश्वररतिभ्यां	नमः।
ललाटे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	आं	कामदप्रीतिभ्यां	नमः।
दक्षनेत्रे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	इं	कान्तकामिनीभ्यां	नमः।
वामनेत्रे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ईं	कान्तिमन्मोहिनीभ्यां	नमः।
दक्षकर्णे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	उं	कामगकमलाभ्यां	नमः।
वामकर्णे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ऊँ	कामचारविलासिनीभ्यां	नमः।
दक्षनासापुटे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ऋं	कामिकल्पलताभ्यां	नमः।
वामनासापुटे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ॠं	कामुकश्यामाभ्यां	नमः।
दक्षकपोले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	लृं	कामवर्धनशुचिस्मिताभ्यां	नमः।
वामकपोले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	लॄं	वामविस्मिताभ्यां	नमः।
ऊर्ध्वोष्ठे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	एं	रामविशालाक्षीभ्यां	नमः।
अधरोष्ठे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ऐं	रमणलेलिहानाभ्यां	नमः।
उर्ध्वदन्तपङ्क्तौ	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ओं	रतिनाथदिगम्बराभ्यां	नमः।
अधोदन्तपङ्क्तौ	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	औं	रतिप्रियवामाभ्यां	नमः।
जिह्वाग्रे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	अं	रात्रिनाथकुब्जिकाभ्यां	नमः।
कण्ठे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	अः	रमाकान्तकान्ताभ्यां	नमः।
दक्षबाहुमूले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	कं	रमणनित्याभ्यां	नमः।
दक्षकूर्परे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	खं	निशाचरकुल्याभ्यां	नमः।
दक्षमणिबन्धे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	गं	नन्दकभोगिनीभ्यां	नमः।
दक्षकराङ्गुलिमूले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	घं	नन्दनकामदाभ्यां	नमः।
दक्षकराङ्गुलिमूले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ङं	नन्दिसुलोचनाभ्यां	नमः।
वामबाहुमूले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	चं	नन्दयितृसुलापिनीभ्यां	नमः।
वामकूर्परे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	छं	पञ्चबाणमर्दिनीभ्यां	नमः।
वाममणिबन्धे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	जं	रतिसखकलहप्रियाभ्यां	नमः।
वामकराङ्गुलिमूले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	झं	पुष्पधन्वक्षराक्षीभ्यां	नमः।
वामकराङ्गुल्यग्रे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ञं	महाधनुःसुमुखीभ्यां	नमः।
दक्षोरुमूले	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	टं	भ्रामणनलिनीभ्यां	नमः।
दक्षजानुनि	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ठं	भ्रमणजटिनीभ्यां	नमः।
दक्षगुल्फे	—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	डं	भ्रममाणपालिनीभ्यां	नमः।

दक्षपादाङ्गुलिमूले—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ढं	भ्रमशिवाभ्यां	नमः।
दक्षपादाङ्गुल्यग्रे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	णं	भ्रान्तमुग्धाभ्यां	नमः।
वामोरुमूले —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	तं	भ्रामकरभाभ्यां	नमः।
वामजानुनि —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	थं	भृङ्गभ्रमाभ्यां	नमः।
वामगुल्फे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	दं	भ्रान्तचारलोलाभ्यां	नमः।
वामपादाङ्गुलिमूले—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	धं	भ्रमावहचञ्चलाभ्यां	नमः।
वामपादाङ्गुल्यग्रे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	नं	मोहनदीर्घजिह्वाभ्यां	नमः।
दक्षपार्श्वे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	पं	मोहकरतिप्रियाभ्यां	नमः।
वामपार्श्वे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	फं	मोहलोलाक्षीभ्यां	नमः।
पृष्ठे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	बं	मोहवर्धनभृङ्गिणीभ्यां	नमः।
नाभौ —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	भं	मदनपाटलाभ्यां	नमः।
जठरे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	मं	मन्मथमदनाभ्यां	नमः।
हृदये —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	यं	मातङ्गमालाभ्यां	नमः।
दक्षकक्षे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	रं	भृङ्गनायकहंसिनीभ्यां	नमः।
गलपृष्ठे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	लं	गायकविश्वतोमुखीभ्यां	नमः।
वामकक्षे —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	वं	गीतिजगदानन्दिनीभ्यां	नमः।
हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम् —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	शं	नर्तकरमणीभ्यां	नमः।
हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	षं	खेलककान्तिभ्यां	नमः।
हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	सं	उन्मत्तकलकण्ठीभ्यां	नमः।
हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्—	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	हं	मत्तकवृकोदरीभ्यां	नमः।
कट्यादिपादान्तम् —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	ळं	विलासिमेघश्यामाभ्यां	नमः।
कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम् —	ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं	क्षं	लोभवर्धनलोभवर्धनीभ्यां	नमः।

॥ ध्यान॥

कामराज रति के साथ में कमल, इक्षु, धनुष और पञ्चपुष्पबाण, सर्वाभरण से भूषित हैं, ताम्बूल से मुख मण्डित हैं, रतियाँ कमल हाथ में ली हुई सर्वाभरणविभूषित हैं। स्वर्णसदृश शरीर वाली, कमल धारण की हुई, अपने प्रिय से आश्लिष्ट हैं। **पञ्चबाण**— आम्र, अशोक, केतकी (केवड़ा) नवमल्लिका, नीलकमल— ये काम के पञ्चबाण हैं।

॥ अन्तःकामकला॥

श्रीविद्यार्णवतन्त्र के उत्तरार्धभाग में ३६वें श्वास में अन्तःकामकला तथा बहिःकामकला का वर्णन प्राप्त होता है। इसे गुरुमुख से ज्ञात करें।

कलालिकान्यासः (भूषण न्यास)

शिरसि	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	अं	कामिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ललाटे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	आं	मोदिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षनेत्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	इं	मदना	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामनेत्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ईं	उन्मादिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षकर्णे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	उं	द्राविणी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामकर्णे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ऊँ	खेचरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षनासापुटे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ऋं	घण्टिका	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामनासापुटे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ॠं	कलावती	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षकपोले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ऌं	क्लेदिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामकपोले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ॡं	शिवदूती	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ऊर्ध्वोष्ठे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	एं	सुभगा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
अधरोष्ठे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ऐं	भगा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ओं	विद्येश्वरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
अधोदन्तपङ्क्तौ	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	औं	महालक्ष्मी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
जिह्वाग्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	अं	कौलिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
कण्ठे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	अः	सुरेश्वरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षबाहूमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	कं	कुलमालिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षकूर्परे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	खं	व्यापिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षमणिबन्धे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	गं	भगावहा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षकराङ्गुलिमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	घं	वागीश्वरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षकराङ्गुल्यग्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ङं	वषट्कारिणी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामबाहुमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	चं	पिङ्गला	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामकूर्परे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	छं	भगसर्पिणी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वाममणिबन्धे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	जं	सुन्दरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
व्रामकराङ्गुलिमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	झं	नीलपताका	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामकराङ्गुल्यग्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ञं	त्रिपुरा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षोरुमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	टं	सिद्धेश्वरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षजानुनि	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ठं	अमोघा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षगुल्फे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	डं	रत्नमालिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षपादाङ्गुलिमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ढ़ं	मङ्गला	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षपादाङ्गुल्यग्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	णं	भगमालिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

वामोरुमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	तं	नित्या	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामजानुनि	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	थं	रौद्री	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामगुल्फे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	दं	व्योमेश्वरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामपादाङ्गुलिमूले	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	धं	अम्बिका	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामपादाङ्गुल्यग्रे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	नं	अट्टहासा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षपार्श्वे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	पं	आप्यायिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामपार्श्वे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	फं	वज्रेश्वरी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
पृष्ठे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	बं	क्षोभिणी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
नाभौ	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	भं	शाम्भवी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
जठरे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	मं	स्तम्भिनी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
हृदये	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	यं	अनामा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
दक्षकक्षे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	रं	रक्ता	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
गलपृष्ठे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	लं	शुक्ला	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वामकक्षे	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	वं	अपराजिता	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	शं	संवर्तिका	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	षं	विमला	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
हृदयदिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	सं	अघोरा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	हं	घोरा	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
कट्यादिपादान्तम्	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	ळं	बिन्दुभैरवी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्	—	ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं	क्षं	सर्वाकर्षिणी	त्रिपुराश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

॥ बहिः कामकला॥

दक्षपादे	—	क्लीं	श्रद्धायै	नमः।
जङ्घायां	—	क्लीं	प्रीत्यै	नमः।
जानुनि	—	क्लीं	रत्यै	नमः।
ऊरौ	—	क्लीं	स्मृत्यै	नमः।
वक्षसि	—	क्लीं	कान्त्यै	नमः।
बाहौ	—	क्लीं	मनोरमायै	नमः।
मुखे	—	क्लीं	मनोहरायै	नमः।
मूर्ध्नि	—	क्लीं	मनोरथायै	नमः।

इस प्रकार दक्षभाग में न्यास करके वामभाग में इसका विलोम करना चाहिए। तद्यथा—

मूर्ध्नि	—	क्लीं	मनोन्मन्यै	नमः।

आस्ये	—	क्लीं	मोदिन्यै	नमः।
बाहौ	—	क्लीं	दीपिन्यै	नमः।
वक्षसि	—	क्लीं	शोषिन्यै	नमः।
ऊरौ	—	क्लीं	वशङ्कर्यै	नमः।
जानौ	—	क्लीं	राजस्यै	नमः।
जङ्घायां	—	क्लीं	सुभगायै	नमः।
पादे	—	क्लीं	प्रियदर्शिन्यै	नमः।

॥ सोमकलान्यास॥

पृष्ठवंशे	—	सं	पूषायै	नमः।
अंसपृष्ठे	—	सां	यशस्विन्यै	नमः।
ग्रीवापृष्ठे	—	सिं	सुमनसे	नमः।
दक्षकर्णे	—	सीं	रत्यै	नमः।
नेत्रे	—	सुं	प्रीत्यै	नमः।
नासाबिले	—	सूं	धृत्यै	नमः।
ललाटे	—	सृं	ऋद्ध्यै	नमः।
मस्तके	—	सॄं	सौम्यायै	नमः।

इस प्रकार दक्ष भाग में न्यास करके विलोमक्रम से वामभाग में न्यास करें। तद्यथा—

मस्तके	—	स्लृं	मरीच्यै	नमः।
ललाटे	—	स्लॄं	अंशुमालिन्यै	नमः।
नासाबिले	—	सें	अम्बिकायै	नमः।
नेत्रे	—	सैं	शशिन्यै	नमः।
वामकर्णे	—	सों	छायायै	नमः।
ग्रीवापृष्ठे	—	सौं	सम्पूर्णमण्डलायै	नमः।
अंसपृष्ठे	—	सं	तुष्ट्यै	नमः।
पृष्ठवंशे	—	सः	अमृतायै	नमः।

॥ महाशक्तिन्यास ॥

इस महाशक्तिन्यास का कालीमत के पूर्णाभिषेकविधि में विधान वर्णित है। कालीमत के उपासक महाशक्तिन्यास करें, कादिमत वाले साधक कादिमत का न्यास करें। कादि और काली दो मत हैं, दोनों मतों के अनुसार दीक्षा होती है। श्रीविद्यार्णवतन्त्र में दोनों ही विद्याओं की साधनाविधि का निरूपण किया है। इसको आचार्य (गुरु) बताते हैं।

।। षोडशमूल-विद्यान्यास ।।

संघट्टमुद्रा से न्यास करे–

(१) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं स्वच्छप्रकाशपरिपूर्णपरापरमहासिद्धविद्याकुलयोगिनी ह्रीं कुलयोगिनीमूलविद्याश्रीपादुकां–पूजयामि नमः।

(२) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्वात्मानं बोधय बोधय हसौः प्रासादपराम्बामूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(३) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि महामदद्रवे क्लीं क्लीं मोहय मोहय क्लीं नमः स्वाहा अति–रहस्ययोगिनीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(४) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं हंसः स्वच्छानन्दपरमहंसपरमात्मने स्वाहा हसौं हसौं शाम्भवीमूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(५) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं नित्यस्फुरत्ताचैतन्यानन्दमयि महाबिन्दुव्यापकमातृस्वरूपिणि ऐं ह्रीं श्रीं ई ह्ल्लेखामूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(६) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं स्वच्छप्रकाशात्मिके ह्रीं कुलमहामालिनि ऐं कुलगर्भमातृके ह्रीं समयविमले श्रीं समयविमलामूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(७) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं हंसः नित्यप्रकाशात्मिके कुलकुण्डलिनी आज्ञासिद्धिमहाभैरवि आत्मानं बोधय बोधय अम्बे भगवती ह्रीं हुं परबोधिनीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(८) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ओं मोक्षं कुरु कुलपञ्चाक्षरीमूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(९) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं लोपामुद्रापञ्चदशाक्षरीमुच्चार्य चैतन्यत्रिपुरामूलविद्याश्रीपादुकांपूजयामि नमः।

(१०) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं शुद्धसूक्ष्मनिराकारनिर्विकल्पपरब्रह्मस्वरूपिणी क्लीं परानन्दशक्तिः सौः शाम्भवानन्दनाथानुत्तरकौलिनीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(११) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं हंसः सोऽहं स्वच्छानन्दपरमहंसपरमात्मने स्वाहा गुरूत्तमविमर्शिनीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(१२) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं अनामाख्याव्योमातीतनाथपरापरव्योमातीतव्योमेश्वर्यम्बानामाख्यामूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(१३) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ईं औं संकेतसारामूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(१४) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं भगवति विच्चे वाग्वादिनी क्लीं महाह्रदमहामातङ्गिनि ऐं क्लिन्ने ब्लूं स्त्रीं अनुत्तरवाग्वादिनीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(१५) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं हसौः हसखफ्रें हसकलरीं हसौः अनुत्तरशाङ्करी मूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

(१६) ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं त्रयोदशाक्षरमूलतुरीयविद्यामुच्चार्य, सर्वानन्दमये चक्रे बैन्दवे परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्तिः सर्वमन्त्रेश्वरी सर्वविद्येश्वरी सकलजगदुत्पत्तिका मातृका सचक्रा सशक्तिः समुद्रा ससिद्धिः सायुधा

सपरिवारा सर्वोपचारैः सम्पूजितास्तु शून्याशून्यविवर्जितशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमूलविद्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति सङ्घट्टमुद्रया– शिरसि।

।। अष्टात्रिंशत् कलान्यासः।।

(पञ्चप्रणवोत्थ अष्टात्रिंशत्कलान्यास)

तत्रेशानादिपञ्चब्रह्मणः ईशततपुरुषाग्निवामदेव हरा ऋषयः। अनुष्टुब्गायत्र्यनुष्टुप्कृत्यनुष्टुभः छन्दांसि, ईशानादयो देवताः पञ्चब्रह्मन्यासे विनियोगः।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौं सर्वज्ञाय हृदयाय नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौं अमृते तेजोज्वालामालिने नित्यतृप्ता शिरसे स्वाहा।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौं ज्वलितशिखिशिखाय अनादिबोधाय शिखायै वषट्।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौं वज्रिणे वज्रधराय स्वतन्त्राय कवचाय हुम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौं ओं स्हौं हसौं नित्यमलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसौं ओं श्लींपशुहुं फट् अनन्तशक्तयेऽस्त्राय फट्।

ततः हों ईशानाय नमः। हें तत्पुरुषाय नमः। हुँ अघोराय नमः। हिं वामदेवाय नमः। हं सद्योजाताय नमः। एवं पञ्चब्रह्ममन्त्रान् ऊर्ध्वपूर्वदक्षिणोत्तरपश्चिमवक्त्रेषु विन्यस्याष्टात्रिंशत् कला न्यसेत्। तद्यथा–

उर्ध्ववक्त्रे – ओं ईशानः सर्वविद्यानां शशिन्यै नमः।

पूर्ववक्त्रे – ईश्वरः सर्वभूतानां अङ्गदायै नमः।

दक्षवक्त्रे – ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः ब्रह्मेष्टदायै नमः।

उत्तर वक्त्रे – ब्रह्मशिवो मे अस्तु मरीच्यै नमः।

पश्चिमवक्त्रे – सदाशिवों अंशुमालिन्यै नमः। इति समुष्ट्यङ्गुष्टेन न्यसेत्।

पूर्ववक्त्राधः – तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै नमः।

दक्षिणवक्त्राधः–महादेवाय धीमहि विद्यायै नमः।

उत्तरवक्त्राधः – तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै नमः।

पश्चिमवक्त्राधः–प्रचोदयात् निवृत्यै नमः। ।। इत्यङ्गुष्ठतर्जनीयोगेन न्यस्तव्याः।।

हृदि – अघोरेभ्यस्तमाकलायै नमः।

ग्रीवायां – अथ घोरेभ्यो मोहायै नमः।

दक्षांसे – घोरक्षमायै नमः।

वामांसे – घोरतरेभ्यो निद्रायै नमः।

नाभौ – सर्वतः शर्वव्याधिकलायै नमः।

कुक्षौ	—	सर्वेभ्यो मृत्युकलायै नमः।
पृष्ठे	—	नमस्ते अस्तु क्षुधायै नमः।
वक्षसि	—	रुद्ररूपेभ्यस्तृष्णायै नमः।

॥ इत्यङ्गुष्ठमध्यमायोगेन न्यस्तव्याः॥

गुह्ये	—	वामदेवाय नमो रजायै नमः।
लिङ्गे	—	ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमः।
दक्षोरौ	—	रुद्राय नमो रत्यै नमः।
वामोरौ	—	कालाय नमो मालिन्यै नमः।
दक्षजानुनि	—	कलविकरणाय नमः काम्यायै नमः।
वामजानुनि	—	विकरणाय नमः शशिन्यै नमः।
दक्षजङ्घायाम्	—	बलविकरणाय नमः क्रियायै नमः।
वामजङ्घायाम्	—	विकरणाय नमः सिद्ध्यै नमः।
दक्षस्फिचि	—	बलाय नमः स्थिरायै नमः।
वामस्फिचि	—	बलप्रमथनाय नमो रात्र्यै नमः।
कट्यां	—	सर्वभूतदमनाय नमो भ्रामिण्यै नमः।
दक्षपार्श्वे	—	मनोन्मनाय नमो मोहिन्यै नमः।
वामपार्श्वे	—	उन्मनाय नमो जरायै नमः।

॥ इत्यङ्गुष्ठानामिकायोगेन न्यस्तव्या ॥

दक्षपादतले	—	सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै नमः।
वामपादतले	—	सद्योजाताय वै नमः ऋद्ध्यै नमः।
दक्षहस्ततले	—	भवे लक्ष्म्यै नमः।
वामहस्ततले	—	भवे धृत्यै नमः।
नासिकायाम्	—	नातिभवे मेधायै नमः।
शिरसि	—	भवस्व मां प्रज्ञायै नमः।
दक्षबाहौ	—	ओं भव प्रभायै नमः।
वामबाहौ	—	उद्भवाय नमः सुधायै नमः।

॥ इत्युङ्गुष्ठकनिष्ठिकायोगेन न्यस्तव्याः॥

यह पञ्चप्रणवोत्थ अष्टात्रिंशत् कलान्यास है। इनका न्यास करने से साधक गंगाधर शिव के समान हो जाता है।

परा, पराप्रासादमन्त्र का उद्धार

अनुस्वारयुक्त, तन्त्रान्तरों में इसका विसर्ग युक्त उद्धार भी किया गया है। इस मन्त्र के परशम्भु

ऋषि, गायत्रीछन्द, अर्धनारीश्वर देवता षड्दीर्घयुक्त बीज से षडङ्ग न्यास करने का विधान है। इसके अङ्गभूत अङ्गषोढ़ान्यास करना आवश्यक है। अष्टात्रिंशत् कलान्यास को ही अङ्गषोढ़ा न्यास कहते हैं। उसे करके पुन: महाषोडा न्यास करना चाहिए। वह पूर्व में उधृत किया गया है। इसको तन्त्रान्तरों में पञ्चब्रह्म न्यास भी कहते हैं।

इसके बाद महाषोढ़ा न्यास करने का विधान है। महाषोढ़ा न्यास के ब्रह्मा ऋषि, जगतीछन्द, अर्धनारीश्वर देवता श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोग है। इसका न्यास मूल में स्पष्ट है। प्रपञ्च, भुवन, मूर्ति, मन्त्र, देवता, मातृका भैरव न्यास। इन ६ न्यासों को महाषोढ़ा न्यास कहते हैं। यह सब न्यासों से उत्तमोत्तम है। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार महाषोढ़ा न्यास की विधि का निरूपण किया गया है। पद्धतियों में प्रयोगात्मक रूप से सरल और सुगम कर दिया गया है। हमारे आराध्यचरण द्वारा रचित श्रीविद्यारत्नाकर एवं श्रीविद्यावरिवस्या में भी इसकी प्रायोगिक विधि सरल सुगम रूप से दी गयी है।

इसका फल लिख गया है— इस प्रकार न्यास करने से परशिव के समान हो जाता है एवं मन्त्र-साधक निग्रह और अनुग्रह करने में भी समर्थ हो जाता है। इसका फल दश श्लोक में पृ. १७७ में वर्णित है। वहाँ वर्णित है कि यह सत्शिष्य को ही बताना चाहिए। इससे अक्षय सिद्धि प्राप्त हो जाती है। देवताभाव की सिद्धि के लिए इस न्यास से बढ़कर दूसरा न्यास नहीं है, ऊर्ध्वाम्नाय प्रवेश, पराप्रसाद मन्त्र का चिन्तन, महाषोढ़ा का परिज्ञान साधारण तपस्या का फल नहीं है। जन्मजन्मान्तरों के पुण्यपुञ्ज एक साथ उदित होते हैं, तो ऐसा संयोग प्राप्त होता है। गुरुमुख से सम्यक्तया ज्ञान करके न्यास करने से सद्य: अनुभूतियाँ होने लगती हैं।

तुरीय विद्या— महाषोडशी मन्त्र के आदि में एवं अन्त में पराबीज योग करने से तुरीय विद्या होती है।

चरणत्रय विद्या — इसमें तीन मन्त्रों का उद्धार है, इसे चरणत्रय विद्या कहते हैं, मूल में इनका उद्धार दिया गया है। इसका गुरुमुख से ज्ञान करना चाहिए।

शम्भुचरणविद्या — इसी प्रकार शम्भुचरण विद्या का भी उद्धार मूल में दिया गया है।

पञ्चाम्बा पूर्व में निरूपित की गयी है, इसी प्रकार उन्मना, आकाशादि नवनाथ, आत्मानन्दनाथादि नव नाथ, स्वपरम्परा का क्रम ये सब पूर्व में कहे गये हैं।

षोडश मूलविद्या का उद्धार पृ. १७८ से १७९ में श्लोक सं. १ से २८ तक दिया गया है, जिसके न्यास की बिधि पूर्व में दी गयी है।

परमेश्वर मन्त्र, विद्येश्वरमन्त्र, हंसेश्वरमन्त्र, संवर्तेश्वरमन्त्र, द्वीपेश्वर मन्त्र, नवात्मेश्वरमन्त्र। षडाधार विद्या के ये ६ मन्त्र हैं। इसे 'षडन्वय शाम्भव मन्त्र' कहते हैं। इसी के नीचे मूल में इनका ध्यान भी लिखा है।

ऊर्ध्वाम्नाय का रश्मिक्रम पूर्व में वर्णित किया गया है, उर्ध्वाम्नाय के मन्त्रभेद आगे कहे जायेंगे। तन्त्रान्तरों में पञ्चसमय विद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीविद्या, बगलामुखी, कालरात्रि, जयदुर्गा और

छिन्नमस्ता इन विद्याओं के मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता, षडङ्ग और ध्यान मूल में क्रम से वर्णित है। तन्त्रशास्त्रों में लिखा है कि मन्त्र और देवता की गायत्री का उच्चारण करके पूजन करने से सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। पञ्चसमय विद्याओं का १८० से १८१ पृ. में वर्णन है, तदनन्तर गायत्रियों का निरूपण किया है।

सर्वदेवता गायत्री

सर्वप्रथम गणपति, गायत्री, वटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, इन्द्र से प्रारम्भ करके दश दिग्पालों की गायत्रियों का वर्णन तदनन्तर इनके आयुधों की गायत्रियों का, श्रीयन्त्र में नवावरण शक्तियों की गायत्रियों का वर्णन है। पुनः नवचक्रेश्वरी, षोडशनित्याओं की गायत्रियों का वर्णन है। षड्दर्शन, समयविद्या, पञ्चपञ्चिकागण, पञ्चलक्ष्मी, पञ्चकोशाम्बा, पञ्चकल्पलता, पञ्चकामदुघा, पञ्चरत्नेश्वरियों की गायत्रियों का क्रम से वर्णन है, जो १८१ पृ. से प्रारम्भ होकर के १८६ पृ. में परिसमाप्त होता है।

गुरुपरम्परा, गुरुपादुका, मन्त्रों का स्वरूप एवं उनके विविध गुणदोषादि, विविध देव और देवियों के चौवन, (५४) प्रकार के मातृका न्यास का वर्णन, रश्मियों का लक्षण और प्रमाण, मन्त्रवीर्यक्रम, मातृकाविधान, प्राणाग्निहोत्रविधि, भूतलिपि, पञ्चसिंहासन देवता, पञ्चपञ्चिका, कुण्डलिनी मन्त्र एवं कुण्डलिनीस्तुति, प्राणायामविधि, योगपीठन्यास, लघुषोढ़ा–महाषोढ़ा, सृष्टि–स्थिति–संहार क्रम से श्रीचक्रन्यास, श्रीयन्त्र के चक्रेश्वरी मन्त्रों का उद्धार, श्रीविद्या के २५ आचार्य उपासकों का वर्णन, ३५ भैरवियों का वर्णन, षोडश नित्याओं का वर्णन, षड्दर्शन विद्या, पञ्चाम्नाय विद्या, महाषोडश न्यास, श्रीचक्र देवियों के गायत्रीमन्त्रों का क्रमपूर्वक वर्णन करके साधनाक्रम में श्रीचक्रनिर्माण की विधि का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। अनेक तन्त्रों में कई प्रकार की गुप्त एवं रहस्यमय निर्माणविधियों का उल्लेख है। इस प्रकार एक स्थान पर अनेक तन्त्रशास्त्रों के मतानुसार निर्माणविधियों का विधान इस श्रीविद्यार्णव ग्रन्थ की महिमा एवं गरिमा को प्रकाशित करता है।

।। श्रीचक्रनिर्माणविधि ।।

श्रीयन्त्र विविध प्रस्तार–मेरु, कैलास और भूप्रस्तार।

नित्यातादात्म्य को मेरुप्रस्तार कहते हैं। मातृकायुक्त श्रीयन्त्र की कैलास प्रस्तार संज्ञा होती है। वशिन्यादि अष्ट वाग्देवताओं से युक्त श्रीयन्त्र को भूप्रस्तार कहते हैं। ये तीन प्रकार श्रीयन्त्र के हैं। सृष्टि, स्थिति और संहारक्रम से एक–एक के तीन–तीन भेद हैं। इस प्रकार नौ भेद हो जाते हैं। संहारक्रम–कौलिक क्रम हैं। सृष्टिक्रम समयमत है, स्थितिक्रम को शुद्ध क्रम कहा जाता है। यह रहस्यातिरहस्य है।

मेरुचक्र में संहारपूजा नहीं होती, सृष्टिक्रम से पूजा होती है। संहारपूजा कैलाशप्रस्तार में होती है। भूप्रस्तार में स्थितिक्रम से पूजा उत्तम मानी गयी है। स्थितिक्रम गृहस्थ के लिए है। वानप्रस्थ, संन्यासी के लिए संहारक्रम, ब्रह्मचारी के लिए सृष्टिक्रम, स्त्री और शूद्रों के लिए भी स्थितिक्रम ही विहित है। रुद्रयामल के मतानुसार–कुंकुम या सिन्दूर से यन्त्र निर्माण करके पूजा करें, अथवा स्वर्ण, रजत, ताम्र, विद्रुम आदि पर निर्माण करके पूजा करनी चाहिए।

इसी प्रकार तन्त्रराजतन्त्र में भी माणिक्यादि रत्न, स्वर्ण, रजत, ताम्र, प्रस्तर आदि पर निर्माण करके पूजा करने से लक्ष्मी, कान्ति, यश, पुत्र, धन, आरोग्यादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

दक्षिणामूर्तिसंहिता में गण्डकीपाषाण (शालिग्रामशिला) एवं स्वर्ण, रजत, ताम्र में निर्माण करके पूजा करने का विधान लिखा है।

पूजाकाल—अवधि (रत्नसागरतन्त्र)

स्वर्ण में जीवनपर्यन्त, रजत (चाँदी) में २२ वर्ष, ताम्र में बारह वर्ष, भोजपत्र पर १ वर्ष या आधा वर्ष इसी प्रकार स्फटिक सर्वदा, इन सब यन्त्रों में **स्फटिक यन्त्र सर्वसिद्धि** देने वाला है।

॥ विभिन्न श्रीयन्त्रपूजाफल ॥ लक्षसागर

भूमि पर स्थण्डिल (चौकोर स्थान) बनाकर सिन्दूर से यन्त्र रचना करके पूजा करनी चाहिए। यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। स्वर्णरचित यन्त्र वशीकरण में उत्तम है। रजतयन्त्र— आयु, आरोग्य आदि कामना को पूर्ण करने वाला है। ताम्र समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है। मरकत पर बनाया हुआ यन्त्र शत्रुविनाश के लिए उत्तम माना गया है। त्रिलोह से बनाया हुआ यन्त्र सर्वसिद्धि प्रदान करता है।

सर्वसिद्धिप्रद त्रिलोहयन्त्र

भगवती ने भगवान् शङ्कर से प्रश्न किया कि लोहत्रय क्या है? कृपा करके हमें बताइये। भगवान् परमशिव उत्तर दे रहे हैं—

स्वर्ण दशभाग, रजत सोलहभाग, ताम्र बारहभाग, इससे मनोहर पीठ बनाकर श्रीयन्त्र का निर्माण करके पूजा करनी चाहिए। यह शान्ति-पुष्टि, सर्वशत्रुविनाश, आयु, आरोग्य, कान्ति आदि सर्वसिद्धिप्रद है। श्रीयन्त्र के तीन प्रकार हैं— भूप्रस्तार, मेरुप्रस्तार, ऊर्ध्वप्रस्तार।

पातालनिवासियों के लिए निम्न रेखा के श्रीयन्त्र का पूजन विधान है। मृत्युलोक निवासियों के लिए ऊर्ध्वरेखा का यन्त्र महाशान्ति प्रदान करने वाला है। स्वर्गलोक निवासियों के लिए मेरुसंज्ञक यन्त्र का विधान है। प्रारम्भ करके बिन्दुपर्यन्त क्रम से समुन्नत हो, उसे मेरुयन्त्र कहते हैं।

मेरू का लक्षण लिखा है कि— भूपुर सम और ऊर्ध्व रेखा की ऊर्ध्वरेखाश्रीयन्त्र संज्ञा है। निम्न रेखा के योग से बने यन्त्र को भूप्रस्तार कहा जाता है। इस प्रकार यन्त्र के रहस्य का प्रकाश भगवान् परमशिव ने किया।

श्रीयन्त्र स्वरूप (तन्त्रराज तन्त्र)

चतुरस्र (भूपुर) से नौ चक्र क्रम से आमध्य उन्नतोन्नत हो, तो निधन पर्यन्त धनाढ्य रहता है। इसी प्रकार तीन–तीन चक्र समुन्नत हो, तो उसके पूजन से सुपुत्र और सम्पत्ति प्राप्त होती है। एक दो और षट्क्रम से उन्नत होने से श्री और कीर्ति प्राप्त होती है। नौ आवरण सम होने से सर्वाभीष्ट सिद्धि देने वाला होता है।

श्रीचक्र निर्माण विधि (कुलमूलावतार)

क्रम से उन्नत होने पर वित्त प्राप्ति होती है। भूपुर, षोडशार, अष्टार सम हो और ६ चक्र उन्नत हो, तो अर्थप्राप्ति एवं पुत्रप्राप्ति होती है। चतुरस्रसम हो तथा षोडशार से बिन्दुपर्यन्त उन्नत हो, तो श्री, कीर्ति देने वाला है।

चतुरस्र (भूपुर) से लेकर बिन्दु पर्यन्त समरेखा वाला यन्त्र श्री, कीर्ति, आरोग्य, अमृतत्व प्रदान करता है। यह समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

श्रीयन्त्रनिर्माण में वर्ज्य धातु एवं स्थापन स्थान

तन्त्रराजतन्त्र और लक्षसागर तन्त्र के प्रमाणानुसार–**शीशा, रांगा और लौह के यन्त्र से विपरीत फल होता है। काष्ठ, वस्त्र और भित्ती (दीवाल) पर कभी भी श्रीयन्त्र को स्थापित नहीं करना चाहिए।** यदि लोभ, मोह और अज्ञान से ऐसा करता है, तो धनपुत्रादि का विनाश होता है।

॥ श्रीयन्त्रविस्तार एवं भार ॥

कुलमूलावतार तन्त्र के प्रमाणानुसार चतुर्दिक् (चारों ओर) पाँच अङ्गुल का होना चाहिए। स्वर्ण, रजत, ताम्र और त्रिलोह में एक पल (चारतोला अर्थात् ५० ग्राम) का श्रीयन्त्र मनोहर, सुन्दर होना चाहिए।

यवार्ध अर्थात् अङ्गुली का आधापर्व ऊँचा, चारों ओर बराबर होना चाहिए। अर्थात् पाँच अङ्गुल चौड़ा और आधा अङ्गुल ऊँचा। एक पल अर्थात् ४ तोला या ५० ग्राम का सुन्दर श्रीयन्त्र बनाना चाहिए।

॥ श्रीयन्त्र में रेखाविधान॥

श्रौत्रामणितन्त्र के अनुसार ऋजु रेखा (सीधी, सरल) होने से लक्ष्मी प्राप्त होती है और वक्र (ढेढ़ी) रेखा होने से दरिद्रता। पाँच अंगुली विस्तार और आधा अंगुल ऊँचा स्वर्णादि धातुओं में बनाने का विधान है। माणिक्यादि रत्नों में यथेच्छ प्रमाण है।

ग्रन्थकार ने यहाँ पर टिप्पणी की है–

अङ्गुललक्षण

वेदिका, सिविका (पालकी), रथ आदि निर्माण में अङ्गुलप्रमाण से ही बनाना न्यायोचित है। दूसरा प्रमाण इसमें नहीं होता। श्रीयन्त्र भी पीठ है, इसलिए इसमें भी अङ्गुलप्रमाण होना चाहिए। **अङ्गुलप्रमाण–विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानान्तराङ्गुलम्। शालिभिर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तरं भवेत्!** तिर्यक् रखे हुए आठ यव या सम रखे हुए आठ चावलों की जितनी परधि होती है, वह अङ्गुलप्रमाण होता है।

इसी प्रकार बिन्दु, त्रिकोण और अष्टार ये तीन चक्र संहारात्मक हैं। अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुर्दशार ये तीन चक्र स्थित्यात्मक हैं। अष्टदल, षोडश दल और भूपुर ये तीन चक्र सृष्ट्यात्मक हैं। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति, संहार तीनों की ही श्रीयन्त्र में स्थिति है।

।। पूर्ण श्रीयन्त्र का स्वरूप।।

बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडश दल, वृत्तत्रय (तीन वृत), तीन रेखा भूपुर की, यह पूर्ण श्रीयन्त्र का स्वरूप है।

।। शिवशक्त्यात्मक श्रीयन्त्र ।।

इसमें चार शिवचक्र हैं और पाँच शक्तिचक्र। अत: यह शिवशक्त्यात्मक श्रीयन्त्र शिवा और शिव का विग्रह (शरीर) माना जाता है।

।। श्रीयन्त्र में केशरकल्पनानिषेध ।।

भूतभैरव तन्त्र के अनुसार, इस यन्त्र में केशर कल्पना नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसा करता है तो योगिनीसहित भैरव उसकी हिंसा कर देते हैं। (अष्टदल और षोडश दलों के बीच में रेखा होती है उसे केशर कहते हैं। अन्य कई यन्त्रों में केशर की कल्पना की जाती है। परञ्च श्रीयन्त्र में निषेध है।)

।। स्वच्छन्द-तन्त्र एवं तन्त्रराजतन्त्र के मतानुसार श्रीयन्त्रस्वरूप ।।

नौ हाथ या तीन हाथ का श्रीयन्त्र पूर्णाभिषेक में बनाना चाहिए एवं नित्य पूजा के लिए स्थण्डिल पर एक हाथ का सुन्दर यन्त्र बनाना चाहिए। रत्नादि यन्त्रों का निर्माण इच्छा और शक्ति अनुसार करें।

।। विविध वस्तुओं से निर्मित श्रीयन्त्र के भिन्न–भिन्न फल।।

स्थण्डिल पर रक्तरज (कुंकुम, रोली) से निर्माण करके पूजन करने से सर्वविघ्न नष्ट होते हैं, एवं इच्छित फल प्राप्त होता है। लोहत्रय (स्वर्ण, रजत, ताम्र, स्वर्ण का दशभाग, ताम्र का बारह भाग, चाँदी का सोलह भाग मिलाने से लोहत्रय बनता हैं।) त्रिधातु का श्रीयन्त्र बनाकर पूजा करने से सौभाग्यप्राप्ति एवं अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं।

विद्रुम (मूँगा), पद्मराग (माणिक्य), इन्द्रनील (नीलम), वैदूर्य (गोमेद), स्फटिक, मरकत (पन्ना), आदि रत्नों में निर्माण करके पूजा करने से धन, पुत्र, कलत्र, यश प्राप्ति होती है। ताम्र का श्रीयन्त्र कान्ति देने वाला है। स्वर्ण का यन्त्र शत्रुनाशक एवं वशीकरण में उत्तम है। रजत का यन्त्र शान्तिपुष्टि देने वाला है। एवं स्फटिक का यन्त्र सर्वसिद्धिप्रद होता है।

।। अपूज्य यन्त्र ।।

खण्डित, स्फुटित, भग्न, भ्रष्ट मानवर्जित (प्रमाण से विपरीत) दग्ध (जला हुआ), अदीक्षित व्यक्ति का स्पर्श, अशुद्ध भूमि में गिरा हुआ, अन्य मन्त्र की अर्चना, पतित व्यक्ति के स्पर्श से दूषित, इन दशप्रकार के श्रीयन्त्रों में देवता का वास नहीं होता है। दग्ध (जल जाय) स्फुटित (फूटजाय) या चोर चुराकरके ले जाय तो एक दिन उपवास करके मूलमन्त्र का दश हजार जप करके होम, तर्पणादि तथा गुरु को सन्तुष्ट करा कर ब्राह्मण भोजन कराके प्राणप्रतिष्ठित नूतन यन्त्र ग्रहण करके पूजा करनी चाहिए।

।। सदोष यन्त्र।।

जो लुप्तचिह्न (रेखा घिस जाय एवं टूट जाय तथा पीछे कहे गये दोषों से युक्त हो) श्रीयन्त्र की मूर्खतापूर्ण पूजा करता है, उसकी मृत्यु हो जाती है, ऐसे दूषित यन्त्रों को तीर्थराज, गंगादि नदी या समुद्र में प्रवाहित कर देना चाहिए, अन्यथा दु:ख की प्राप्ति होती है।

।। श्रीयन्त्र निर्माण प्रकार ।। (दक्षिणामूर्ति संहिता)

लाल आसन पर बैठ कर पूर्वाभिमुख होकर यन्त्र निर्माण करना चाहिए। पहले एक त्रिकोण लिखे पुन: उसके ऊपर दूसरा त्रिकोण लिखें। पुन: तीसरा त्रिकोण नीचे से ऊर्ध्वमुख लिखें।

इस प्रकार नवकोण बन जाता है। अग्निकोण, ईशानकोण, नैॠत्यकोण और वायुकोण विस्तार करके रेखा से योजना करने से बहिर्दशार और अन्तर्दशार बन जाते हैं। मध्यकोण की रेखा का विस्तार करके सन्धिभेद करते हुए चतुर्दशार का निर्माण करें।

सभी कोण बराबर होना चाहिए। उसके बाहर अष्टदल केशर रहित लिखें। उसके ऊपर षोडश दल, वृत्त और भूपुर लिखें। उसमें चतुर्द्वार होना चाहिए। इस प्रकार बनाकर यन्त्र पर पुष्प डाल देना चाहिए। यन्त्र को अनावृत्त नहीं रखना चाहिए।

श्रीपर्णीपीठ, दर्पण, भोजपत्र पर स्वर्ण की शलाका से चन्दन केशर, सिन्दूररजमिश्रित, स्वर्णादि धातुओं से बनाये हुए पट्ट पर, भूमि पर, स्थण्डिल पर कुंकुम से या सिन्दूर से सर्वार्थसिद्धिप्रद श्रीचक्र का निर्माण करना चाहिए। उसके मध्य में एक बिन्दु त्रिकोण, अष्टार (आठकोण) अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चौदह कोण इस प्रकार बिन्दु को लेकर ४४ त्रिकोण का श्रीयन्त्र बनता है। तदनन्तर अष्टदल, चतुरस्र, (भूपुर) लिखा जाता है। इस प्रकार दक्षिणामूर्तिसंहिता के अनुसार श्रीयन्त्र निर्माण का विधान है।

।। ज्ञानार्णव तन्त्र के मतानुसार श्रीयन्त्रनिर्माण विधि।।

दक्षिणामूर्तिसंहिता में सृष्टिक्रम से चक्रनिर्माणविधि का निर्देश है। ज्ञानार्णव में भी सृष्टिक्रम से ही श्रीयन्त्र निर्माण की विधि है। इसमें वैशिष्ट्य यह है कि नौ चक्रों का नाम व उसके रंग का वर्णन भी किया गया है और लिखा है– चौसठ करोड़ योगिनियाँ उस श्रीचक्र में निवास करती हैं, जो साधक की सर्वप्रकार से रक्षा करती हैं। (चतुरस्र, भूपुर के बाहर मातृका वर्णों से मण्डित करने पर यन्त्र सर्वसिद्धिप्रद होता है।) रत्नघटित उज्ज्वल और समरेखा होनी आवश्यक है –

।। नवावरण के रंग एवं फल।।

(१) **त्रैलोक्यमोहन चक्र**–कल्पवृक्ष के समान फल देने वाला है। श्वेत, पीत, अरुण तीन रेखा होती है।

(२) **षोडश दल–सर्वाशापरिपूरक चक्र**–चन्द्रबिम्ब के सदृश अमृतधारा की वर्षा करने वाला है।

(३) **अष्टपत्र–सर्वसंक्षोभण चक्र**– जपाकुसुम के समान वर्णवाला है। यह सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है।

इन तीनों चक्रों को सृष्टिचक्र कहते हैं। ये धन समृद्धि देने वाले हैं। पूर्वाम्नाय की जो देवियाँ हैं, उनसे मण्डित हैं तथा सर्वसिद्धि देने वाले हैं।

(४) **चतुदर्शार– सर्वसौभाग्यदायक चक्र** – दाडिम कुसुम के समान प्रभापूर्ण है। अनन्त फल और सौभाग्य देने वाला है।

(५) **बहिर्दशार–** सर्वार्थसाधक चक्र तप्त स्वर्ण के समान सिन्दूर वर्ण है। यह सर्वार्थसाधक एवं इच्छित फल देने वाला है।

(६) **अन्तर्दशार–सर्वरक्षाकर चक्र** – जपाकुसुम के समान वर्ण वाला एवं सर्वप्रकार की रक्षा करने वाला महाज्ञानमय है। सर्वसौभाग्यदायक चक्र, सर्वार्थसाधक चक्र और सर्वरक्षाकारक चक्र, ये तीनों स्थितिचक्र हैं। समस्त सुख प्रदान करने वाले, दक्षिणाम्नाय देवतामय एवं सर्व इच्छित फल प्रदान करने वाले हैं।

(७) **अष्टकोण–सर्वरोगहर चक्र–** प्रातःकालीन सूर्य-किरण के समान अरुण वर्ण वाला है। स्वच्छ पद्मराग के समान तथा सब रोगों का नाश करने वाला है।

(८) **त्रिकोण–सर्वसिद्धिप्रद चक्र–** भगवती की समस्त कलाओं का आलय है। समस्त सम्भूति और भूति देने वाला है।

(९) **बिन्दुचक्र–सर्वानन्दमय चक्र–** ये सदाशिवमय है। चक्रनायक का निवास है। सर्वरोगहर चक्र, सर्वसिद्धिचक्र और सर्वानन्दमय चक्र संहाररूप हैं, ब्रह्ममय हैं। पश्चिमाम्नाय देवियों से सेवित हैं। बिन्दु उत्तराम्नाय सेवित हैं। इसमें षड्ध्वा विद्यमान हैं। चक्र पत्रों के पदाध्वा, सन्धिविभेद में भुवनाध्वा, और वर्णाध्वा–मातृका वर्ण रूपी पञ्चाशत् वर्ण इसमे विद्यमान हैं और अष्टदिशाओं में मातृका के अष्टवर्ग हैं। इसी से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

।। मातृका-पीठ वर्णाध्वा।।

षोडशदल, १६ स्वरात्मक, षोडश चन्द्र कला से युक्त हैं। अष्टदल में 'कादि' अष्टवर्ग 'अ' से लेकर 'क्ष' तक दिशा-विदिशा में विद्यमान हैं। चतुर्दशार सर्वसौभाग्यदायक चक्र के चौदह कोणों के 'क' से 'ढ़' तक चौदह वर्ण हैं। 'ण'कार से 'व'कार तक दश वर्ण बहिर्दशार सर्वार्थसाधक चक्र में विद्यमान हैं।

अन्तर्दशार सर्वरक्षाकारचक्र के दशकोणों में 'म' से 'क्ष' तक दश वर्ण और अष्टकोण सर्वरोगहर चक्र के आठ कोणों में मातृका के आठ वर्ग विद्यमान हैं। त्रिकोण सर्वसिद्धिप्रद चक्र में अकथादि मातृका के वर्ण और त्रिकोण के मध्य में 'हं' और 'क्षं' होता है। इसी को वर्णाध्वा कहते हैं। श्रीयन्त्र मातृकापीठ रूप है।

।। श्रीचक्र-षडध्वायुक्त।।

यह षट्त्रिंशत् तत्त्वों (३६ तत्त्व) से युक्त है, अतः तत्त्वाध्वा चक्र में जो पञ्चसिंहासन देवता हैं, वे 'कलाध्वा' हैं। चक्र के परिपालन में बालामहात्रिपुरभैरवी युक्त त्रिपुरादि अम्बिका पर्यन्त समस्त श्रीचक्र

में व्याप्त होकर विजृम्भित हैं, अतः यह मन्त्राध्वा भी निश्चित रूप से कहा गया है। इस प्रकार षडध्वा युक्त विमल श्रीचक्र का चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार कला, तत्त्व, भुवन, पद, वर्ण, यन्त्र ये षड्ध्वा श्रीचक्र में व्याप्त है। षडध्वायुक्त श्रीयन्त्र का चिन्तन करना सर्वसिद्धिप्रद है। यह ज्ञानार्णव तन्त्र का मत है। सुभगोदय तन्त्र के अनुसार स्थितिक्रम श्रीचक्र उद्धार का वर्णन है।

।। स्थिति-श्रीचक्र निर्माण प्रकार ।।

शुद्ध पृथिवी (स्थण्डिल) पर ९६ अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उसका चार भाग करना चाहिए। तीन भाग, (७२ अंगुल) में बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुर्दशार। इस प्रकार इन ६ चक्रों का निर्माण हुआ।

अब शेष बचे २४ अंगुल में आठ–आठ अंगुल के तीन भाग करके अष्टदल, षोडश दल और भूपुर का निर्माण करना चाहिए। मध्य भाग में सत्त्व, रज, तम त्रिगुण रूप त्रिवलय (त्रिवृत्त) लिखें। मध्य में बिन्दु से विभूषित करना चाहिए। यह श्रीयन्त्र महासौभाग्य देने वाला है। भोग और मोक्ष भी देने वाला है। यह स्थिति क्रम का उद्धार है।

इसमें नवग्रहों को नवरेखाओं का नाम दिया गया है। इसमें सूर्य चन्द्रादिकों की रेखा का प्रमाण भी किया गया है। इस प्रकार स्थिति चक्र का निर्माण सुभगोदय के मतानुसार किया गया है। यह सर्वोत्तम है।

।। संहारक्रम श्रीचक्रनिर्माण प्रकार ।।

तन्त्रराज तन्त्र के मतानुसार – सर्वप्रथम चतुर्दशार पुनः बहिर्दशार, अन्तर्दशार, अष्टकोण, त्रिकोण और बिन्दु। तदनन्तर षोडशदल, अष्टदल और भूपुर लिखा जाता है। इसमें सूत्र पात से भी चक्र के निर्माण की विस्तृत विधि का निरूपण किया है।

यह ललिता क्रम सद्गुरु क्रम से ही प्राप्त होता है। ग्रन्थकार ने आद्यशङ्कराचार्य कृत सौन्दर्यलहरी के ग्यारहवें श्लोक –

चतुर्भिश्श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि..................................परिणताः।

में लिखा है– नौ चक्र में, चार शिव के एवं पाँच शक्ति के चक्र तथा नौ मूलप्रकृति, अष्टार सर्वरोगहर चक्र ये नौ कोण मूल प्रकृति हैं।

योगिनीहृदय के अनुसार चार आत्मा, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, धर्म, अधर्म ये नौ प्रकृति संसार की रचना में मूल कारण हैं। अतः आचार्य शङ्कर ने इसको 'नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः' कहा है। इसमें ४४ कोण हैं। कोण में बिन्दु की भी गणना की गयी है, अन्यथा ४३ ही कोण होते हैं। परन्तु बिन्दु को लेकर चतुश्चत्वारिंशत् (४४) कोण आद्यशङ्कराचार्य ने लिखे हैं।

ग्रन्थकार ने अष्टदल, षोडशदल, त्रिवलय और भूपुर, इस प्रकार से निर्मित श्रीचक्र को समयीमत से सृष्टिक्रम स्वीकार किया।

कौलमत में— संहारमत से श्रीचक्र निर्माण होता है। ''नवभिरपि मूलप्रकृतिभि:'' शब्द से प्रपञ्च के मूल कारण में योनि शब्द का व्यवहार होता है। इसलिए नवयोनियाँ नव धातुमूलक हैं।

कामिकातन्त्र के अनुसार

त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिधातव: शक्तिमूलका:। मज्जाशुक्रप्राणजीवधातव: शिवमूलका:।। नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भव:।। त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि ये पाँच धातु शक्ति मूलक हैं। मज्जा, शुक्र, प्राण, जीव ये चार शिवमूलक हैं। अत: नव धातु का यह शरीर नवयोन्यात्मक श्रीचक्र से उत्पन्न हुआ है।

जीवधातूनां जीवाधिष्ठानत्वादोजोधातुरेव जीवधातुरित्युच्यते। यथोक्तं वाग्भट्टेन—''रज आदिशुक्रान्तानां धातूनां प्रसादश्रेष्ठो जीवाधारभूतो धातुरोज: इति (दशमो) धातुरेकैव पराशक्तिस्तदीश्वरी''। दशमी योनिबैन्दव-स्थानं, तदीश्वरी तस्य देहस्येत्यर्थ:।

अर्थात् इन धातुओं के जीव रूप में **ओजोधातु** जीव रूप में कही गयी है। वाग्भट्ट के मतानुसार—रज आदि धातुओं का श्रेष्ठ जीव की आधारभूत धातु ओज ही है। वहाँ धातु पराशक्ति ईश्वरी और दशमी योनि बैन्दवस्थान है। इसका विशेष व्याख्यान भावनोपनिषद् में वर्णित है। अत: देह की अधिष्ठात्री ईश्वरी शक्ति है। इस प्रकार पिण्डशरीर जिसमें एकादश इन्द्रियाँ, तन्मात्राओं का तत् शब्द से विमर्श किया जाता है। ये जगत् चर (देह, पिण्ड) अचर (ब्रह्माण्ड) है। सौन्दर्यलहरी के अनुसार चार कोण शिव के बिन्दु सहित और पाँच कोण शक्ति के, इस प्रकार चतुश्चत्वारिंशत् कोण आचार्य शङ्कर के अभिमत हैं। माया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव और पञ्चविंशति तत्त्वों का इसी में अन्तर्भाव होता है।

इसमें अट्ठाइस (२८) मर्म और चौबीस (२४) सन्धियाँ हैं। वस्तुत: चौबीस ही मर्म हैं, तो अट्ठाइस क्यों कहा? इसमें प्रमाण लिख रहे हैं—

दो रेखाओं का संगम सन्धि और तीन रेखाओं का संगम मर्म इससे चौबीस ही मर्म स्थान है परन्तु अष्टदल, षोडशदल, मेखलात्रय और भूपुरत्रय, इन श्रीचक्रों में त्रिरेखा संगम स्थान न होने पर भी वाचनिकी मर्मसंज्ञा है।

चन्द्रज्ञानविद्या के प्रमाणानुसार

मन्त्रस्त्रद्विदशाराष्टकोणवृत्तचतुष्टयम्। अष्टाविंशतिमर्माणि चतुर्विंशतिसन्धय:। चतुर्दशार, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, अष्टकोण, वृत्तचतुष्टय इससे अट्ठाइस मर्म और चौबीस सन्धियाँ सम्पन्न होती हैं।

अग्निसोमात्मक श्रीचक्र

पृश्नि नाम के मुनियों ने श्रीचक्र के समाश्रय (माध्यम) से देवगन्धर्वसेवित श्रीविद्या की साधना का आश्रय लिया। यह प्रकरण **अरुणोपनिषद्** में विशद रूप से वर्णित है।

श्रीयन्त्र अग्निसोमात्मक है और जगत् भी अग्नि सोमात्मक है। अग्नि में ही सूर्य का अन्तर्भाव किया जाता है। मातृकाचक्र त्रिखण्ड है व सोम-सूर्य वह्निमय है। त्रिकोण, बिन्दु और अष्टकोण इनका

एकत्व है। चतुर्दशार अग्नि का, चतुरस्र सूर्य का स्थान है। इसकी प्रसन्नता से इन्द्रादि आठ वसु मरुद्गण एवं जो जो साधक इस लोक में समृद्ध हुए हैं, उनकी समृद्धि में त्रिपुराचक्र की साधना ही हेतु है। अर्थात् देव, गन्धर्व, मानवादि को श्रीयन्त्रसाधना से ही उत्तम स्थान और समृद्धि प्राप्त हुई है। श्रीयन्त्र सोमसूर्यवह्निमय हैं। यहाँ महालक्ष्मी का पुर है। इसमें शिव और शक्ति विराजमान हैं। इसीलिए कहा गया है– ''श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः''।

भैरवयामल में चन्द्रज्ञान विद्या

गौरी के प्रश्न पर महेश्वर उत्तर दे रहे हैं–

हे महाभागे देवि! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। गुह्य से भी गुह्यतम ज्ञान इससे प्रकाशित होता है। कलाविद्या, पराशक्ति श्रीयन्त्रस्वरूपिणी है, इस श्रीयन्त्र में संपृक्त होकर ब्रह्ममयी सर्वतत्त्वातीत एवं अनन्तरश्मिमयी महात्रिपुरसुन्दरी विराजमान है।

पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्राएँ, दश इन्द्रियाँ, मायादि तत्त्व रूप हैं। तत्त्वातीत बिन्दु हैं। उस बिन्दु में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करने वाली भगवती सदाशिव से संपृक्त होकर विराजमान है। वह ज्योति रूप सुन्दर आकार वाली है। उसके देह से एक हजार, दो हजार, एक लाख, करोड़, अरब, खरब अनन्त संख्या वाली किरणों का प्रादुर्भाव होता है। जिनकी गणना नहीं हो सकती। उसी के प्रकाश से यह चराचर लोक प्रकाशित होता है।

शिवशक्तिमयी चितिरूपा भगवती के बिना सब चराचर जगत् अन्ध होता है। उनकी अनन्तकोटि किरणों में ३६ मुख्य हैं। वे सोम सूर्य वह्नि की किरणें ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। अष्टोत्तरशत (१०८) अग्नि की किरणें, ११६ सूर्य की, १३६ चन्द्र की किरणें हैं। ये ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड को भासित करती हैं।

दिन में सूर्य, रात्रि में चन्द्र, दोनों सन्ध्याओं में अग्नि, तीनों कालों को प्रकाशित करने से काल त्रयात्मक है। इसी प्रकार एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं, अतः श्रीचक्र संवत्सरात्मक महादेव प्रजापति हैं। ये प्रजापति लोककर्ता भगवान् शिव मरीचि आदि प्रमुख मुनियों की रचना करते हैं, तदनन्तर लोकपालों की, जो जगत् के रक्षक हैं। संहार 'हर' के अधीन है। उत्पत्ति भव (शिव) से होती है और रक्षा 'मृड' (शिव) से होती है। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति, संहार सब शिव के ही अधीन है।

भगवती पराशक्ति से युक्त होकर इस जगत् का प्रवर्तन भगवान शिव करते हैं। इस प्रकार श्रीयन्त्र के बिन्दु में शिवशक्ति विराजमान हैं। इस श्रीयन्त्र की साधना से ऐहिक, पारलौकिक कामनाएँ पूर्ण होती हैं। भोग, मोक्ष, समस्तवि भूतियाँ, उच्चपद प्राप्त करने का एकमात्र साधन श्रीयन्त्र की साधना में निहित है।

॥ श्री अनन्तानन्दनाथ-तच्छिष्य उमानन्दनाथ तच्छिष्य-षोडशानन्दशिष्य-दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र की भावविवृति का अष्टम श्वास पूर्ण हुआ॥ ८॥

श्रीविद्यार्णवतन्त्र

नवम श्वास

भावविवृति

श्रीयन्त्र में सृष्टि, स्थिति, संहार क्रम निर्माण एवं पूजन

''मेरुप्रस्तारयन्त्र नित्यातादात्म्यक'' है। इस मेरुप्रसार में सृष्टिक्रम से पूजा की विधि है। मध्यादि से अणिमादि सिद्धिपर्यन्त पूजन सृष्टिक्रम पूजा है। मध्यादि अर्थात् नित्याओं से पूजन प्रारम्भ करना, **'सृष्टिचक्रं षोडशनित्यातादात्म्यकम्'** इस प्रमाण से सृष्टिचक्र षोडशनित्यातादात्म्यक होता है। **''संहारचक्रं मातृकातादात्म्यं''** अर्थात् श्रीयन्त्र के बहि:प्रदेश में चतुर्दिक् पञ्चाशत् मातृकाओं का उल्लेख होता है।

''स्थितिचक्रं वशिन्यादितादात्म्यकम्'' अर्थात् ''वशिन्यादि'' सर्वरोगहरचक्र से प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार श्रीचक्र का निर्माण करके समष्टिविद्या से पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए अथवा त्रिलोह, स्फटिक रत्न आदि निर्मित श्रीपर्णी पीठ पर अपने सामने स्थापित करके समष्टिविद्या से पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

समष्टिविद्या, प्रणवपूर्वक त्रितारी और मूलमन्त्र का उच्चारण करके **''समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततर सम्प्रदायकुलोत्तीर्णनिगर्भरहस्यातिरहस्यपरापरातिरहस्ययोगिनीयुतश्रीचक्रपादुकां पूजयामि नम:''** यह पुष्पाञ्जलि मन्त्र है।

उपर्युक्त श्रीचक्र का उद्धार उभयमत, मधुमती और मालिनी में समान है। परन्तु कादिमत के श्रीयन्त्र में चतुरस्र (भूपुर) में पूर्व एवं पश्चिम दो ही द्वार कहे हैं, यह उसमें विशेष है। (यह सम्प्रदायपरक है।)

।। लोपामुद्रोपासना में वैशिष्ट्य।। (भैरवयामल)

लोपामुद्राविद्योपासक को श्रीचक्र के मध्य में (बिन्दु स्थान में) प्रेत बीज (ह्सौ:) लिखना चाहिए और बाह्यस्थ त्रिकोण में पूर्व, दक्षिण, उत्तर तीन द्वार बनाना चाहिए। जैसे भूपुर में द्वार है, वैसे त्रिकोण में द्वार बनाना चाहिए। चतुर्दश दल के बाहर और अष्टदल के अग्रभाग में ग्रन्थियाँ और त्रिशूलाष्टक की रचना करनी चाहिए।

प्रणवों से सम्पुटित ग्रन्थियों का योजन करके पूर्वादि ग्रन्थि से अष्टभैरवों का पूजन करना चाहिए। उसके आगे दश बटुकों का पूजन, त्रिशूल में अष्टभैरवी पूजन, वृत्तत्रय में भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक-निवासिनी योगिनियों का पूजन करना चाहिए। उनका मन्त्र मूल में स्पष्ट है, यथा– **''पातालवासिनीभ्यो योगिनीभ्यो नमो नम:''** इसी प्रकार भूर्लोकवासिनी, भुवर्लोकवासिनी, स्वर्लोकवासिनी योगिनियों की पूजन विधि है। (इसमें वृत्तत्रय पूजन की विशेष विधि बतायी गयी है।) सृष्टि, स्थिति, संहार भेद से श्रीचक्र के अनेक भेद हैं, ये आगे कहे जायेंगे। यहाँ पर संक्षेप में कहा गया है। यह टिप्पणी स्वयं ग्रन्थकार की है।

पात्रासादन पद्धति — ध्यान और मानस पूजा के अन्त में स्वर्णादि पट्ट पर कुंकुमादि से श्रीयन्त्र का निर्माण करके पुष्पाञ्जलि देकर पात्रासादन करना चाहिए। इस पूजा में अतिप्रशस्त अर्थात् स्वर्ण या रजत के पात्र होना चाहिए। रुद्रयामल के अनुसार विना पात्र के प्रतिष्ठा, पात्रादिरहित पूजा अनिष्टप्रद है एवं यज्ञक्रिया विफल होती है तथा आवाहनादि सब क्रियाएँ धन को नष्ट करने वाली हैं। बलिहीन (बलिरहित यज्ञ) से दुर्भिक्ष, गन्धहीन से दौर्भाग्य, धूपहीन से उद्वेग, वस्त्रहीन से धनक्षय और क्षत्रहीन से क्षत्र का हरण होता है। वितानहीन (विमानहीन) से वक होता है, वेदीहीन से नगर या पुरनाश, कलशरहित होने से बन्धुनाश, तोरण के अभाव से जाति बन्धु-बान्धवों का नाश होता है। पात्र और मन्त्रयुक्त होने पर समस्त दोष शान्त हो जाते हैं।

एकपात्रनिषेध — तन्त्रान्तरों के मतानुसार साक्षात् महेश्वर को भी एक पात्र-स्थापन नहीं करना चाहिए। एकपात्र की पूजा से मन्त्र पराङ्मुख हो जाते हैं, पद पद पर आपदाएँ आती हैं। इस लोक में दरिद्र होकर नरकगामी होता है। पात्र का आधार होना चाहिए। आधार न हो, तो हानि होती है, देवता तृप्त नहीं होते।

॥ पत्राधार प्रमाणादि॥

तन्त्रराजतन्त्र के प्रमाण से— त्रिलोह, काचादि पात्र में अर्घ्यादि की कल्पना करनी चाहिए। स्वर्ण, रजत, ताम्र को मिलाने से त्रिलोह पात्र बनता है। इनका प्रमाण पूर्व में लिखा है। भैरवीतन्त्र के प्रमाणानुसार— पात्र स्वर्ण, काच, रजत, मुक्ताकपाल (मुक्ताशुक्ति 'सीप'), विश्वामित्र नारियल के कपाल, ये सब सिद्धि देने वाले हैं। मुक्ताकपाल (शुक्ति) मुक्ति देने वाली है।

कुलार्णव तन्त्र मतानुसार— स्वर्ण, रौप्य, शिला, ताम्र, कपाल, आलावू (लोकी), मृत्तिका, नारिकेल, शंख, मुक्ताशुक्ति पुण्य वृक्षों के काष्ठ से सुरम्य पात्रनिर्माण होना चाहिए।

॥ भैरवयामल मतानुसार उत्तमादि नवभेद॥

तार (मुक्ता) के पात्र उत्तमोत्तम हैं। नारिकेल पात्र उत्तममध्यम, काच पात्र उत्तम—कनिष्ठ, स्वर्णपात्र मध्यम उत्तम, चाँदी पात्र— मध्यम—मध्यम, ताम्र पात्र— मध्यम कनिष्ठ, बिल्ववृक्ष के पात्र—कनिष्ठ उत्तम, ब्रह्मवृक्ष (पलाश) के पात्र— कनिष्ठ मध्यम, मृत्तिका के पात्र— कनिष्ठ और अधम। इस प्रकार उपरोक्त पात्रों के नौ भेद भैरवयामल में वर्णित हैं।

॥ नारिकेलपात्र॥ (महाहारकतन्त्र)

देवी के प्रश्न करने पर भगवान् शिव नारिकेलपात्रविधि का वर्णन कर रहे हैं—

पूर्वकाल में विश्वामित्र ऋषि ने सर्वप्रथम नारिकेल पात्र का निर्माण किया। नारिकेल के कपाल का पात्र सभी पात्रों में उत्तमोत्तम माना जाता है। उस पात्र से पूजन करने से अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उस कपालपात्र के दर्शनमात्र से गृहस्थ के इक्कीस कुलों का उद्धार हो जाता है। ब्रह्महत्यादि पाप, विश्वासघात एवं समस्त पाप नारिकेलपात्र से पूजा करने पर नष्ट हो जाते हैं। कोटिकन्यादान एवं स्वर्णराशिदान एवं सूर्य के राहुग्रस्त होने पर (ग्रहणकाल) में स्वर्णदान से जो फल होता है, उससे कोटिगुणित

नारिकेलपात्र से अर्घ्यदान से होता है। नारिकेल पात्र न प्राप्त हो तो अन्य पात्रों से पूजन करें।

योगिनीनृत्य साधक जब साधना में अर्घ्यपात्र का स्थापन करने के लिए उद्यत होता है, तत्काल ब्रह्मादि देवतागण प्रसन्न होकर सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, योगिनियाँ नृत्य करती हुई साधक को सिद्धि प्रदान करती हैं।

देवीपुराण-पात्र विधान – हेम, रजत, काष्ठ, मृत्तिका, शिला, रत्नादि से निर्मित, शुभरेखाङ्कित पात्र का अर्घ्य, नैवेद्य, पूजा, बलिदान में प्रयोग करना चाहिए।

शिवरहस्य मतानुसार – स्वर्णपात्रों से समस्त वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं। रजत पात्र से अर्घ्य देने से आयु, राज्य और पुत्र की प्राप्ति होती है। ताम्रपात्र से सौभाग्यप्राप्ति और मृत्तिका पात्र से धर्म की वृद्धि होती है। इन सब पात्रों के अभाव में अपने हस्त से निर्मित मृत्तिका के पात्रों से अर्घ्य देना चाहिए। आसन और अर्घ्यपात्र यदि भग्न हो, तो उनका आसादन नहीं करना चाहिए। ताम्रपात्र सभी जगह स्वर्णवत् माना जाता है। अर्घ्यदान में ताम्रपात्र का विशेष महत्त्व है। पात्रों का आधार (जिसपर पात्र रखा जाय, ऐसी त्रिपदी) जरूर होना चाहिए। पात्र श्रेष्ठ होना चाहिए। बलि और होम क्रिया विना पात्र के सिद्ध नहीं होती।

पात्र-प्रमाण– ३६ अङ्गुल का पात्र (कलश) उत्तम माना जाता है। २४ अङ्गुल का पात्र मध्यम माना जाता है। १२ अङ्गुल का पात्र कनिष्ठ माना जाता है। अष्टाङ्गुल से न्यून मूल पात्र का स्थापन नहीं करना चाहिए और नाभि के समान या कमल की आकृति वाले पात्र होना चाहिए। शङ्ख और नीलकमल की कान्ति एवं आकार वाले पात्र का प्रयोग होना चाहिए। उन पात्रों के समान ही मण्डल की रचना करनी चाहिए। जैसा पात्र हो, वैसा ही आधार का निर्माण होना चाहिए। आधार त्रिपदी चतु:पदी षट्पदी यथेच्छ।

।। कामनानुसार पात्रविधान।। (देवीयामल)

वशीकरण एवं आकर्षण कर्म में स्वर्णपात्र, शान्ति और पौष्टिक कर्म में रजत, मारण और उच्चाटन के लिए लौह पात्र, स्तम्भ कर्म में मृत्तिका पात्र, मन्त्रवर्ण की औषधियों के चूर्ण से बनाया हुआ पात्र उत्तम माना जाता है। उस पात्र से देवता का तर्पण करने से ६ मास में सिद्धि हो जाती है।

मन्त्रं के वर्ण का जो नक्षत्र हो, उसी नक्षत्र के वृक्ष के काष्ठ से बनाये हुए पात्र उत्तम माने जाते हैं। उस उत्तम पात्र से देवता की पूजा करने से निश्चित मन्त्र सिद्धि होती है। उक्त दो पात्र जो हमने बताये है गुप्त रखना चाहिए। मन्त्र का नक्षत्र एवं योनि वाले वृक्ष के काष्ठ से निर्मित पात्र उत्तमोत्तम होते हैं। इसके द्वारा तर्पण से परमसिद्धि प्राप्त होती है। इससे शत्रु द्वारा किये गये अभिचार का शमन हो जाता है एवं मन्त्र सिद्धि प्राप्त हो जाती है। उपर्युक्त अक्षर औषधि नक्षत्र और योनि, इन पात्रों का ज्ञान गुरुमुख से करना चाहिए, तभी पूजाविधि उत्तम रूप से सम्पन्न होती है। समस्त कार्यों में नारिकेल पात्र उत्तम माना गया है और यह मन्त्र सिद्धि के लिए श्रेष्ठ है।

।। पात्र संख्या।। (कुलार्णव तन्त्र)

सर्वप्रथम कलश की स्थापना करनी चाहिए, पुनः शङ्ख, श्रीपात्र, शक्तिपात्र, गुरुपात्र, भोगपात्र, बलिपात्र। अपने वामभाग से इन पात्रों का क्रम से स्थापन करना चाहिए। पुनः अङ्गपात्र, बलिपात्र, गुह्यपात्र, योगिनीपात्र, आत्मपात्र, गणपतिपात्र, बटुक एवं क्षेत्रपालपात्र, प्रोक्षिणीपात्र ये १४ पात्र हुए।

देवी के पृष्ठभाग में चार दूतीपात्र स्थापित करना चाहिए। भगवती की प्रसन्नता के लिए १८ पात्रों की स्थापना का विधान है। इससे भगवती प्रसन्न होती है।

सामान्यार्घ्य और विशेषार्घ्य, देवी-देवता और स्वयं के मध्य में स्थापित करें। प्रथम पंक्ति के नीचे इनकी स्थापना होनी चाहिए।

।। अर्घ्य वस्तु।। (भविष्य पुराण)

कुंकुम, अक्षत, बिल्व, पुष्प, दधि, दूर्वा, कुश, तिल सभी देवताओं के लिए सामान्य अर्घ्य में इन वस्तुओं के (प्रक्षेप) का विधान है। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की पूजा में सामान्य अर्घ्य के लिए शङ्ख का विधान है। अन्य देवताओं के लिए अन्य पात्रों का विधान है। अर्घ्य आदि पञ्चपात्र उनके नीचे स्थापित करना चाहिए। अर्घ्य पात्र वायुकोण में, पाद्यपात्र नैर्ऋत्य कोण में, स्नानकलश अग्निकोण में, आचमन पात्र ईशानकोण में, मधुपर्कपात्र मध्य में, यही पात्रस्थापन की विधि है। जल, दुग्ध, कुशाग्र, अक्षत, तण्डुल, दधि, सहा, सरसों, दूर्वा, कुंकुम, गोरोचन, हल्दी यह देवी-देवताओं के लिए **द्वादशाङ्ग अर्घ्य** का विधान है।

पाद्य द्रव्य :– सरसों, कुंकुम, दूर्बा, लोध्र, लामजक (खस), कपूर, ये पाद्य के द्रव्य हैं। सारसंग्रह के मतानुसार पाद्यपात्र में श्यामाक, दूर्बा, कमल, विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) एवं जल से अर्घ्य देने का विधान है।

आचमनीय द्रव्य– कचूर, कर्पूर, फल, (पूगफल) कूठ, इलाइची, उशीर ये द्रव्य आचमनपात्र में प्रक्षेप्य हैं।

मधुपर्क एवं स्नान पात्रादि – मधुपर्क में घृत, मधु और दधि (दधि के अभाव में दुग्ध और मधु के अभाव में गुड़, घृत का प्रतिनिधि नहीं होता।) वहाँ जल का प्रयोग करना चाहिए। स्नानपात्र के जल में अष्टगन्ध मिश्रण करना चाहिए। इस प्रकार सुगन्धित जल से स्नान कराने का विधान है। दुग्ध, दधि, घृत, शर्करा और मधु इनके भिन्न-भिन्न पाँच पात्र हों और एक पञ्चामृत का। सप्तम पात्र पुनः आचमनीय पात्र, आठवाँ पात्र जल का कलश, नवमपात्र उद्वर्तन का, दशवाँ पात्र शुद्ध जल का। ये दश पात्र सूर्य, शिव, विष्णु और गणपतिपूजा में मुख्य पात्र हैं। शक्तिपूजा में अर्घ्यादि पञ्चपात्र तीनप्रकार से स्थापित करना चाहिए।

पुनः आचमनीय के लिए दो पात्र, पञ्चायतन पूजा में पञ्चपात्र का विधान है।

विभिन्न पात्रों से अर्चन विधि– विशेषार्घ्यपात्र से विशेष आवरणपूजन एवं सामान्य आवरण की पूजा। श्रीपात्रामृत से देवी का पूजन करना चाहिए। शक्तिपात्र से शक्ति का पूजन, गुरुपात्र से गुरुओं का पूजन,

६४ योगिनियों एवं नवावरण की योगिनियों का तर्पण योगिनीपात्र से करना चाहिए। अन्य भोगाङ्ग भोगपात्र से, भैरवपात्र से भैरव का तर्पण, वटुकपात्र से वटुकों का तर्पण और बलिपात्र से बलिदान। वाराही कुरुकुल्ला आदि बलिद्देवियों का तर्पण भी बलिपात्र से करना चाहिए एवं नवदुर्गा तर्पण भी बलिपात्र से करना चाहिए। पञ्चभूतबलि, सर्वभूतबलि राजराजेश्वरबलि भी बलिपात्र से, वीरों का तर्पण वीरपात्र से, गुह्यपात्र से गुप्तयोगिनियों का एवं भोगपात्र से भोगाङ्गतर्पण, अङ्गपात्र से लयाङ्गपूजन, ऊर्ध्वाम्नाय क्रम और श्रीविद्यावृन्दपूजन विशेषार्घ्य पात्र से करना चाहिए। (अन्तर्याग, आत्मपूजा, अन्तर्हवन, आत्मपात्र से करना चाहिए। दूतीयाग में चार पात्र, कुलसद्भाव की भावना के लिए ५, ६, ७, ८, ९, तक पात्रों की स्थापना करनी चाहिए।)

अग्राह्य पात्र– खण्डित, स्फुटित, दग्ध (बलिपात्र) मानहीन, अपवित्र, करभ्रष्ट, पशुस्पृष्ट, ऐसे पात्र अग्राह्य हैं। सदा अम्लजल से प्रक्षालन करके स्थापना करनी चाहिए। पात्र-साङ्कर्य और द्रव्य-साङ्कर्य कदापि न होने दें।

तर्पण पात्र– ऊर्ध्वानाय गुरुमण्डल का विशेषार्घ्य से तर्पण करें, रश्मिचक्र का अन्यपात्र से तर्पण निषिद्ध है। गुरुमण्डल का गुरुपात्र से तर्पण, पात्रों के अभाव में प्रोक्षणी जल से विधि सम्पादित करें।

व्यष्टि, समष्टि यजन शङ्ख जल से होना चाहिए। क्षेत्रपाल पात्र से क्षेत्रपाल बलि, गणपतिपात्र से गणपति बलि, मध्यदेवी के लिए श्रीपात्र से। श्रीविद्या की पूजा के लिए विशिष्ट बलि आधार पात्र का वर्णन स्वयं शङ्कर ने किया है। पञ्चभूत बलि के लिए पञ्चपात्र, भूतबलि एवं राजराजेश्वर के लिए एक–एक पात्र होना चाहिए। इन अट्ठारह पात्रों से सब विघ्नों की शान्ति होती है। सिद्धद्रव्य के शोधन के लिए पञ्चपात्र का विधान है। पूजाद्रव्य एवं रचनाद्रव्य के लिए एक पात्र, अन्य भोज्य वस्तु नैवेद्यादि एवं गन्धादि के लिए सुन्दर मनोहर पात्रों की स्थापना करनी चाहिए।

सूर्यार्घ्य के लिए बृहत्पात्र एकप्रस्थ जल का होना चाहिए एवं एक तर्पण पात्र, द्वारादि पूजन के लिए एक सामान्य पात्र एवं वही पात्र रविपूजा में सामान्यार्घ्य के लिए प्रयुक्त होता है।

पिधान एवं (उद्धरणी) जल निकालने के छोटे पात्र सहित चार कलश आवश्यक हैं। दो वस्त्रों से वेष्टित एवं बृहद्आधार युक्त होना चाहिए। शुद्धोदकामृत, समयामृतपूरित पात्र अपने वामभाग से देवी के दक्षिण भाग तक स्थापित करना चाहिए। पञ्चरत्न और पञ्चपल्लव, दधि अक्षतयुक्त, शुद्धोदक पात्र का विधान है। भविष्यपुराण में यह लक्षण वर्णित है।

कलश प्रक्षेप्य वस्तु– पञ्चपल्लव, आम्र, अश्वत्थ, वट, प्लक्ष, उदुम्बर इन पञ्चपल्लवों से युक्त अव्रण (नूतन, टूटफूट रहित) कुम्भस्थापन करके उसमें गङ्गादि नदियों का एवं समुद्र तथा सरोवरों का जल एवं सप्तमृत्तिका–गज, अश्व आदि स्थान की मृत्तिका, मार्ग एवं वल्मीक, संगम रज, गोकुल मृत्तिका एवं सर्व औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

रुद्रयामल के अनुसार श्रीकामना वाले को कलश में स्वर्ण, घृत, गोधूम (गेहूँ), दूर्वा, गोरोचन इन पाँच द्रव्यों का प्रक्षेप करना चाहिए। विशेषार्घ्य एवं श्रीपात्रों में भी पञ्चद्रव्यों का प्रक्षेप करने से श्री, कीर्ति आरोग्य, पुत्र, दीर्घायु एवं विजय आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

दश-कलश – अग्नि, ब्रह्मा, भवानी, गणपति, महोरग, स्कन्द, भानु, मातृगण, दिक्पाल, नवग्रह, घटस्थापन करके इन दश देवताओं, का यथाविधि अर्चन करना चाहिए।

कलश-मान – स्वर्ण, रजत, ताम्र, मृत्तिका घट अपनी शक्ति के अनुसार ३६ अङ्गुल का लम्बा-चौड़ा होना चाहिए। अथवा १६ अङ्गुल या १२ अंगुल का हो, इससे कम नहीं होना चाहिए। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय के लिए भी तीन-तीन पात्रों की स्थापना करनी चाहिए। अष्टाङ्ग अर्घ्य पूर्ण करके देवी के मस्तक पर जो निवेदन करता है, उसकी दश हजार वर्षों तक दुर्गालोक में पूजा होती है।

॥ अष्टाङ्ग अर्घ्यद्रव्य॥ (भैरवी तन्त्रानुसार)

जल, दुग्ध, कुशाग्र, दधि, घृत, तण्डुल, तिल, सरसों ये अष्टाङ्ग अर्घ्य के द्रव्य हैं। कांस्य पात्र से विधिवत् देवी को अर्घ्य देने से अग्निष्टोम यज्ञफल की प्राप्ति होती है। ताम्रपात्र से अर्घ्य देने पर पुण्डरीक फल प्राप्त होता है। रौप्यपात्र से अर्घ्य देने से आयु, राज्य एवं शुभ फल प्राप्त होता है। स्वर्णपात्र से अर्घ्य देने से प्रचुर स्वर्ण प्राप्ति एवं समस्त वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

पञ्चपात्र स्थापन– (वाराही तन्त्रानुसार) दम्पति, सुवासिनी, योगिनी, पञ्चाशत्–मिथुन, कालनित्या, धातुदेवता, वारेश पूजन, दिनेश पूजन, नक्षत्र देवता, अक्षर औषधि जपमाला, पुस्तक, अग्निपूजा विधियों में अर्घ्यादि पञ्चपात्रों की स्थापना पृथक्–पृथक् करनी चाहिए।

होमपात्र संख्या– (कुण्डप्रकाशमतानुसार) होमविधि में घृत के दो पात्र, चरु के दो पात्र, प्रणीता, प्रोक्षिणी, स्रुक् स्रुव, पूर्णपात्र, ये दश पात्र मुख्य हैं।

पात्रस्थापन मण्डल– (नारदीय और सारसंग्रह के अनुसार) देवता के अग्रभाग में अपने वामभाग में चन्दन के जल से मत्स्य मुद्रा से त्रिकोण, वृत्त और चतुरस्र, इसीप्रकार सार संग्रह में भी लिखा है– त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्र अपने वामभाग में मत्स्यमुद्रा से चन्दन जल से बनाना चाहिए। ''**अर्घ्यमण्डलाय नमः**'' यह मन्त्र बोलकर मण्डल का पूजन एवं चतुरस्र के कोणों में षडङ्गपूजन, चारों दिशाओं में अस्त्रपूजन पुनः शङ्ख के आधार का प्रक्षालन करके ''**शङ्खाधारं स्थापयामि**'' इस मन्त्र से मण्डल पर आधार स्थापित करना चाहिए। ''**अं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने नमः**'' इस मन्त्र से शङ्ख स्थापन करें। इसमें दश वह्निकलाओं का पूजन करें।

आधार का स्वरूप– (कुलार्णवानुसार) त्रिपद, षट्पद या चतुष्पद वर्तुलाकार मनोहर होना चाहिए। आधार के विना हानि होती है और मातृमण्डल तृप्त नहीं होता। अतः आधारस्थापन परमावश्यक है। आधार के ऊपर धूम्रार्चिष् आदि अग्नि की दश कलाओं का पूजन करके शङ्ख स्थापन करना चाहिए।

सामान्यार्घ्य शङ्खमान – चार अङ्गुल उठा हुआ होना चाहिए। शङ्ख को प्रक्षालित करके **''अर्थप्रदद्वादशकलात्मने सामान्यार्घ्यपात्राय नमः''** इस मन्त्र से आधार के ऊपर शङ्ख स्थापित करके उस पर तपिन्यादि द्वादश कलाओं का पूजन करना चाहिए।

पुनः मूलमन्त्र एवं पञ्चाशत् मातृकाओं का अनुलोम-विलोम उच्चारण करके जलपूर्ण करके सुगन्धित पुष्प प्रक्षेप करके, **''ऊँ सः कामप्रदषोडशकलात्मने सामान्यार्घ्यामृताय नमः''** इस मन्त्र से पूजन करके अमृतादि षोडश कलाओं का पूजन करना चाहिए।

सारसंग्रह मतानुसार– सामान्यार्घ्य में मूल मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करके नेत्रमन्त्र 'वौषट्', शिखा मन्त्र 'वषट्' से पुष्प संयोजन गालिनीमुद्रा प्रदर्शन, धेनुमुद्रा से अमृतीकरण अमृतबीज का उच्चारण करते हुए, इष्ट देवता का ध्यान करके षडङ्ग मन्त्र से पूजन करें। दशदिशा का रक्षण करें, नेत्रमन्त्र से निरीक्षण, मुद्रा से अवगुण्ठन, योनिमुद्रा से उद्दीपन, गन्धादि से ईष्टदेवता का पूजन, मत्स्यमुद्रा के स्पर्श से आठ बार अभिमन्त्रण करें। तदनन्तर पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क पात्र स्थापित करें। एक-एक पात्र को आठ-आठ बार अभिमन्त्रित करें। एक आचमनीय पात्र पुनः स्थापित करें। **प्रपञ्चसारतन्त्र** के अनुसार, **अर्घ्य के अष्टद्रव्य**– गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों, दूर्वा, **पाद्य द्रव्य**– श्यामाक, दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता, जातीफल, लवङ्ग ये पाद्य के जल में प्रक्षेप करने चाहिए।

आचमनीय पात्र में जातीफल, (जायफल) कङ्कोल, लवङ्ग चूर्ण करके प्रक्षेप करें। लिङ्गपुराण के अनुसार द्रव्याभाव में पुष्पदूर्वा प्रक्षेप का विधान है।

सहस्रपरमा देवी शतमूला शताङ्कुरा । सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वप्ननाशिनी।।

इस प्रमाण को उद्धृत करके दूर्वा का विशेष प्रक्षेप लिखा है। शुद्ध जल (जातिफलादि रहित) से आचमन, पाद्य द्रव्य आचमनीय द्रव्यों का अभाव हो, तो तत्तत् द्रव्यों की भावना से पुष्प प्रक्षेप करें। मन्त्रतन्त्रप्रकाश के अनुसार द्रव्य के अभाव में प्रक्षालित तण्डुल डालें। शिवपूजा में भस्म प्रेक्षप करें।

।। पात्रासादन विधि।।

पञ्चमकार एवं उनके अनुकल्पद्रव्य का वर्णन करने के पहले काली और कादिमत से पात्रासादन प्रयोग विधि का वर्णन कर रहे हैं। कालीमत में प्रथम शङ्ख स्थापन पुनः कलश स्थापन किया जाता है तथा कादिमत में **''आदौ कुम्भं ततः शङ्खम्''** अर्थात् प्रथम कलश तदनन्तर शङ्ख स्थापना करने का विधान है। यह कुलार्णवतन्त्र का मत है।

पूर्व में भी कुलार्णव, सारसंग्रह, यामल, शारदातिलक आदि ग्रन्थों के मतानुसार शङ्ख स्थापन की विधि (१९९ से २०१ पृ. तक) पाद्य, अर्घ्य आचमनीय, मधुपर्क आदि में प्रक्षेपद्रव्य का वर्णन किया गया

है। अब कादि–कालिमत के अनुसार पात्रासादन एवं द्रव्यों के शोधन, अनुकल्प आदि की विवेचना प्रस्तुत है। इसमें प्रथम कालीमत के अनुसार शङ्ख-स्थापन, फिर कलश-स्थापन की विधि, प्रथममकार का शोधन, पञ्चमकार का वर्णन, प्रथम द्वितीय की अनुकल्प विधि का वर्णन करते हुए संवित् (विजया) का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ निरूपित किया है। (पञ्चमकारादि विधानों को गुरुमुख से अवगत करें।)

।। विजया-विधान कुलार्णव-तन्त्र।।

''संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी। संवित्प्रयोगः कर्तव्यः पूजादौ साधकोत्तमैः।।''

संविद् और आसव में संविद् (विजया) ही श्रेष्ठ है। इसका अनुकल्प रूप में पूजा में प्रयोग करना चाहिए। विजया ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा चार प्रकार की संज्ञा शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण पुष्प भेद से होती है। **ओं ब्राह्म्यै नमः स्वाहा, ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा, ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा, श्रीं शूद्रायै नमः स्वाहा**, एक–एक के ऊपर दश–दश बार जप करके मूल मन्त्र आठ बार जप करें। मूल में लिखित श्लोकों का भी उच्चारण करें। ये पृथक्–पृथक् चार प्रकार की विजयाओं की शुद्धि का विधान है।

सर्वविजया शोधन – मूलमन्त्र से वीक्षण, अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण और अस्त्र मन्त्र से कुशा या दूर्वा से तीन बार संताडन, कवच मन्त्र से.अवगुण्ठन। अस्त्राय फट्–प्रोक्षण इसी मन्त्र से संताडन, कवचाय हुम् से अवगुण्ठन, वं–इससे अमृतीकरण। **''ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षय त्वं सिद्धिं देहि स्वाहा''** इस मन्त्र से दश बार एवं मूल मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित करें। उसके ऊपर आवाहनादि दश मुद्रा प्रदर्शित करें। पूर्वोक्त शुद्ध कलश-स्थापन करके विजयामृत से कलश पूर्ण करके पूर्वोक्त अमृतादि कलाओं का पूजन, दिग्बन्ध, छोटिका और तालत्रयपूर्वक पार्ष्णिघात करास्फोटन, समुदञ्चित मुख से पाताल, भूमि और आकाश विघ्नों का निरसन करके मूलमन्त्र से सात बार ब्रह्मरन्ध्र में तर्पण करके सहस्रदल कमलकर्णिका के मध्य में विराजमान गुरु को गुरुपादुका मन्त्र से **''श्रीगुरुपादुकां तर्पयामि''** तीन बार तर्पण करें और मूल मन्त्र से इष्टदेवता का तत्त्वमुद्रा से तर्पण करें। **''ओं ऐं ह्रीं श्रीं (मूलमन्त्र) ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि स्वाहा''** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कलश से विजयामृत पात्रान्तर से ग्रहण करके स्वयं प्राशन करें। तदनन्तर कलश का शुद्ध और सूक्ष्म वस्त्र से आच्छादन करें। विधानपात्र एवं उद्धरणी भी आवश्यक है।

।। अनुकल्प द्रव्य।। (कुलार्णव)

आद्य के अभाव में वटक जल में मिलाकर पूजन करें। सतक्रवटक, गुडमिश्रिततक्र जिसमें मधु मिला हो या काँजिक से विधिपूर्ण करनी चाहिए तथा द्वितीय के अभाव में आर्द्रक, वीरतन्त्र के अनुसार लवणार्द्रक, पिण्याक, गोधूम, (गेहूँ) उड़द ये द्वितीय के प्रतिनिधि हैं, तृतीय के अभाव में भी उक्त अनुकल्प करें। चतुर्थ का अनुकल्प चणकादि मुद्रा (चने की बड़ी)। पञ्चम का अनुकल्प अपराजिता और करवीर

पुष्प, चन्दनादि से अपराजिता पुष्प को पूर्ण करके करवीर पुष्प ऊपर से आच्छादन कर शिवशक्ति समायोग का चिन्तन करें, कुलद्रव्यों की उत्पत्ति की भावना करके अपने मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके विशेषार्घ्य में प्रक्षेप करें। यह पञ्च मकारों के अनुकल्प का वर्णन किया गया है। तन्त्रान्तरों में दुग्ध और फलरस आदि में कुंकुम, पञ्चगन्ध, अष्टगन्ध मिश्रण, आदि प्रथम के अनुकल्प प्राप्त होते हैं।

कालीमतानुसार सामान्यार्घ्य-स्थापन

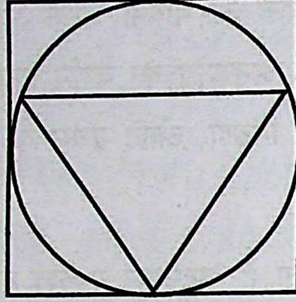
कालीमत में पहले शङ्ख स्थापन होता है, तदनन्तर कलश की स्थापना होती है। इसका स्थापन पूर्ववत् ही है, कुछ विशिष्ट विधान है, वह मूल में स्पष्ट है। कादिमतानुसार कलश, सामान्य अर्घ्य, विशेषार्घ्य स्थापन प्रकार आगे कहा जायेगा। शक्तिपात्र—बालामन्त्र से, गुरुपात्र—गुरुपादुका मन्त्र से भोगपात्र—समष्टिविद्या से और बलिपात्रों को तत्—तत् मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिए। पात्रों की स्थापनविधि को कुलार्णव तन्त्र के वचनों से प्रमाणित किया गया है।

पूर्वोक्त विधि ही कादिमत के पात्रास्थापन में स्वीकार की गयी है और पात्रासादन की संक्षेप विधि भी ग्रन्थकार ने लिखी है। गुरु से या शास्त्र से ज्ञात करके स्वसम्प्रदायानुसार पात्रासादन करना चाहिए। रहस्यद्रव्यों का शोधन लिखकर पुन: कालीमत से कलशस्थापन विधि दी गयी है, जो मूल में स्पष्ट है। ये सब गुरुमुखैकगम्य है और मूल में भी निर्दिष्ट है। अत: विस्तारभय से विशेष नहीं लिखा जा रहा है। **संक्षेप पात्रासादन**— इसका पूर्व में कई बार वर्णन किया जा चुका है। ग्रन्थकार ने यहाँ पर भी संक्षेप में पात्रासादन का स्पष्ट उल्लेख किया है। अत: इस विषय पर कुछ लिखना पिष्टपेषणमात्र होगा।

॥ अथ पात्रासादनम्॥

ग्रन्थकार विद्यारण्य यति जी ने अन्तर्याग एवं पात्रासादन विधि को विविध तन्त्र शास्त्रों के प्रमाणों से प्रमाणित करके सिद्धान्तसारसर्वस्व का प्रतिपादन किया एवं मालिनी एवं मधुमती मत के पात्रासादन के विधान का उल्लेख किया है तथा दोनों मतों की विभिन्नता का भी प्रतिपादन किया है। इस से पात्रासादन का सैद्धान्तिक पक्ष निर्भ्रान्त हो गया, इसके मन्थन एवं मनन से मत मतान्तरों की पूजा पद्धतियों का निर्माण हो सकता है। हमारे आराध्यचरण श्रीस्वामी जी ने श्रीविद्यारत्नाकर में श्रीविद्यार्णवतन्त्र, परशुरामकल्पसूत्र, ज्ञानर्णव, तन्त्रराजतन्त्र, योगिनीहृदय, आदि ग्रन्थों से अनुमोदित मार्ग का ही अवलम्बन किया है एवं दक्षिणदेश से गुहानन्द मण्डली द्वारा प्रकाशित श्रीविद्यासपर्यापद्धति के क्रम को भी दृष्टिगत करके श्रीविद्यारत्नाकर में सचित्र पात्रासादन प्रक्रिया प्रकाशित किया है। अत: साधकों के सौकर्य हेतु शास्त्रानुमोदित पद्धति संलग्न है।

स्वपुरतः वामभागे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया विलिख्य यथा–



मण्डलं मूलेन समभ्यर्च्य, कर्पूरादिवासितजलपूरितं कलशं गन्धपुष्पाक्षतैः अलङ्कृत्य मण्डलोपरि स्थापयेत्।।

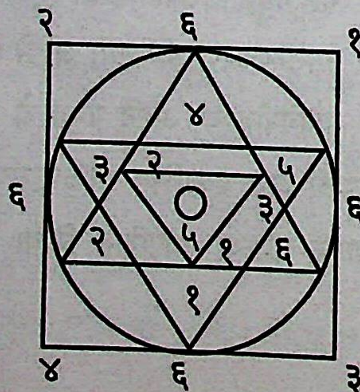
कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः।।
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशाम्बुसमाश्रिताः।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि च नदा ह्रदाः।।
आयान्तु देवीपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः।।

मूलेन अष्टवारमभिमन्त्र्य, धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, तज्जलेन पूजोपकरणानि आत्मानञ्च प्रोक्षयेत्।।

ललितार्चनकाले हि यानि यानीह साम्प्रतम्।
वस्तुनि सौरभाढ्यानि पवित्राणि भवन्तु वै।।

सामान्यार्घ्यविधिः

वर्धनीपात्रस्य दक्षिणतः वर्धनीपात्रगतेन जलेन बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया निर्माय।।



चतुरस्रे अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च बालाषडङ्गैः सम्पूजयेत्। यथा—

३ ऐं हृदयाय नमः। हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ क्लीं शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ सौः शिखायै वषट्। शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ ऐं कवचाय हुं। कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ सौः अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

षट्कोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन

३ ऐं क—५ हृदयाय नमः। हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ क्लीं ह—६ शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ सौः स—४ शिखायै वषट्। शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ ऐं क—५ कवचाय हुं। कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ क्लीं ह—६ नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

३ सौःस—४ अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

त्रिकोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन

३ ऐं क—५ नमः	३ सौः स—४ नमः
३ क्लीं ह—६ नमः	३ मूलं नमः (बिन्दौ)

ततः ३ अस्त्राय फट्—इति सामान्यार्घ्यपात्रस्य आधारं प्रक्षाल्य

३ अं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सामान्यार्घ्यपात्राधाराय नमः॥

(इति मण्डलोपरि संस्थाप्य)

३ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।

रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं अग्निमण्डलाय नमः, इति अग्निमण्डलं विभाव्य दशवह्निकलाः पूजयेत्। तद्यथा—

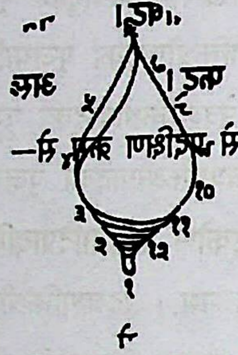
३ यं धूम्रार्चिष्कलायै नमः	३ षं सुश्रीकलायै नमः
३ रं ऊष्माकलायै नमः	३ सं सुरूपाकलायै नमः
३ लं ज्वलिनीकलायै नमः	३ हं कपिलाकलायै नमः
३ वं ज्वालिनीकलायै नमः	३ ळं हव्यवाहिनीकलायै नमः
३ शं विस्फुलिङ्गिनीकलायै नमः	३ क्षं कव्यवाहिनीकलायै नमः

३ अस्त्राय फट्— इति क्षालितं शङ्खं गृहीत्वा—

३ उं सूर्यमण्डलायार्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सामान्यार्घ्यपात्राय नमः—इति संस्थाप्य

३ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्। हां हीं हूं हैं हौं हः हमलवरयूं सूर्यमण्डलाय नमः — इति (सूर्यमण्डलं विभाव्य द्वादशसूर्यकलाः पूजयेत्) तद्यथा—

शंख चित्र



३	कं भं तपिनीकलायै नमः	३	छं दं सुषुम्नाकलायै नमः
३	खं बं तापिनीकलायै नमः	३	जं थं भोगदाकलायै नमः
३	गं फं धूम्राकलायै नमः	३	झं तं विश्वाकलायै नमः
३	घं पं मरीचिकलायै नमः	३	ञं णं बोधिंनीकलायै नमः
३	ङं नं ज्वालिनीकलायै नमः	३	टं ढं धारिणीकलायै नमः
३	चं धं रुचिकलायै नमः	३	ठं डं क्षमाकलायै नमः

३ मं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सामान्यार्घ्यामृताय नमः— इति वर्धनीसलिलमापूर्य।

३ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्णियं भवावाजस्य सङ्गथे। सां सीं सूं सैं सौं सः समलवरयूं सोममण्डलाय नमः— इति सोममण्डलं विभाव्य षोडश सोमकलाः पूजयेत्। तद्यथा—

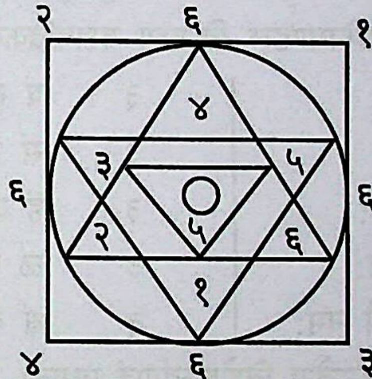
३	अं अमृताकलायै नमः	३	लृं चन्द्रिकाकलायै नमः
३	आं मानदाकलायै नमः	३	लॄं कान्तिकलायै नमः
३	इं पूषाकलायै नमः	३	एं ज्योत्स्नाकलायै नमः
३	ईं तुष्टिकलायै नमः	३	ऐं श्रीकलायै नमः
३	उं पुष्टिकलायै नमः	३	ओं प्रीतिकलायै नमः
३	ऊं रतिकलायै नमः	३	औं अङ्गदाकलायै नमः
३	ऋं धृतिकलायै नमः	३	अं पूर्णाकलायै नमः
३	ॠं शशिनीकलायै नमः	३	अः पूर्णामृताकलायै नमः

ततस्तस्मिन्शङ्खे अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च क्रमेण षडङ्गैः सम्पूज्य, 'अस्त्राय फट्'- इति संरक्ष्य, 'कवचाय हुँ' इति अवगुण्ठ्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य, तत्सलिलपृषतैः पूजोपकरणानि, आत्मानं च प्रोक्ष्य, शङ्खजलं किञ्चिद् वर्धन्यां निक्षिपेत्।।

ललितार्चनकाले हि यानि यानीह साम्प्रतम्।
वस्तूनि सौरभाढ्यानि पवित्राणि भवन्तु वै।। इति प्रोक्षयेत्

विशेषार्घ्यविधिः

सामान्यार्घ्योदकेन तद्दक्षिणतः पूर्ववत् बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया विलिख्य, बिन्दौ सानुस्वारं तुरीयस्वरं विलिख्य, चतुरस्रे प्राग्वत् षडङ्गं सम्पूज्य, षट्कोणे स्वाग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन षडङ्गैरभ्यर्च्य, त्रिकोणे मूलत्रिखण्डैरभ्यर्च्य, मूलेन बिन्दुञ्चार्चयेत्। तद्यथा-



चतुरस्रे अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च-

३	ऐं क ५ हृदयाय नमः,	—	हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	क्लीं ह ५ शिरसे स्वाहा,	—	शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	सौः स ४ शिखायै वषट्,	—	शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	ऐं क ५ कवचाय हुं,	—	कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	क्लीं ह ६ नेत्रत्रयाय वौषट्	—	नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	सौःस ४ अस्त्राय फट्,	—	अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

ततः षट्कोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन-

३	ऐं क-५ हृदयाय नमः,	—	हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	क्लीं ह-६ शिरसे स्वाहा,	—	शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	सौः स-४ शिखायै वषट्,	—	शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
३	ऐं क-५ कवचाय हुं,	—	कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।

३	क्लीं ह—६ नेत्रत्रयाय वौषट्	—	नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः
३	सौः स—४ अस्त्राय फट्,	—	अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः

ततस्त्रिकोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन

३	ऐं क—५ नमः	३	सौः स—४ नमः
३	क्लीं ह—६ नमः	३	मूलं नमः (बिन्दौ)

षोडश्युपासकैस्तु षोडशीमन्त्रेणैव सर्वत्र पूजा विधेया।

अथ ३ अस्त्राय फट् इति आधारं प्रक्षाल्य,

३ ऐं क—५ अं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः विशेषार्घ्यपात्राधाराय नमः, इति आधारं संस्थाप्य

३ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं अग्निमण्डलाय नमः— इति अग्निमण्डलं विभाव्य दशवह्निकलाः पूजयेत्। यथा—

३	यं धूम्रार्चिष्कलायै नमः	३	षं सुश्रीकलायै नमः
३	रं ऊष्माकलायै नमः	३	सं सुरूपाकलायै नमः
३	लं ज्वलिनीकलायै नमः	३	हं कपिलाकलायै नमः
३	वं ज्वालिनीकलायै नमः	३	ळं हव्यवाहिनीकलायै नमः
३	शं विस्फुलिङ्गिनीकलायै नमः	३	क्षं कव्यवाहिनीकलायै नमः। ततः—

३ अस्त्राय फट् इति अस्त्रमन्त्रेण विशेषार्घ्यपात्रं प्रक्षाल्य

३ क्लीं ह—६ उं सूर्यमण्डलाय अर्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः विशेषार्घ्यपात्राय नमः, इति आधारोपरि संस्थाप्य।।

३ ह्रीं ऐं महालक्ष्मीश्वरि परमस्वामिनि ऊर्ध्वशून्यप्रवाहिनि सोमसूर्याग्निभक्षिणि परमाकाशभासुरे आगच्छागच्छ विश विश पात्रं प्रतिगृह्ण प्रतिगृह्ण हुं फट् स्वाहा, इति पुष्पाञ्जलिं विकीर्य।।

३ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्। हां हीं हूं हैं हौं हः हमलवरयूं सूर्यमण्डलाय नमः, इति सूर्यमण्डलं विभाव्य द्वादश सूर्यकलाः पूजयेत्। तद्यथा—

३	कं भं तपिनीकलायै नमः	३	छं दं सुषुम्नाकलायै नमः
३	खं बं तापिनीकलायै नमः	३	जं थं भोगदाकलायै नमः
३	गं फं धूम्राकलायै नमः	३	झं तं विश्वाकलायै नमः
३	घं पं मरीचिकलायै नमः	३	ञं णं बोधिनीकलायै नमः
३	ङं नं ज्वालिनीकलायै नमः	३	टं ढं धारिणीकलायै नमः
३	चं धं रुचिकलायै नमः	३	ठं डं क्षमाकलायै नमः

ततो विशेषार्घ्यपात्रे

२ सौः स–४ मं सोममण्लाय कामप्रदषोडशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः विशेषार्घ्यामृताय नमः– इति अकारादिक्षकारान्तं क्षकाराद्यकारान्तं सबिन्दुमातृकयार्पितं कस्तूरीकाद्यधिवासितं क्षीरं पूरयित्वा अष्टगन्धलोलितं पुष्पं निधाय।।

३ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्णियम् भवावाजस्य सङ्गथे।

सां सीं सूं सैं सौं सः समलवरयूं सोममण्डलाय नमः– इति सोममण्डलं विभाव्य षोडश सोमकलाः पूजयेत्। तद्यथा–

३ अं अमृताकलायै नमः

३ आं मानदाकलायै नमः

३ इं पूषाकलायै नमः

३ ईं तुष्टिकलायै नमः

३ उं पुष्टिकलायै नमः

३ ऊं रतिकलायै नमः

३ ऋं धृतिकलायै नमः

३ ॠं शशिनीकलायै नमः

३ ऌं चन्द्रिकाकलायै नमः

३ ॡं कान्तिकलायै नमः

३ एं ज्योत्स्नाकलायै नमः

३ ऐं श्रीकलायै नमः

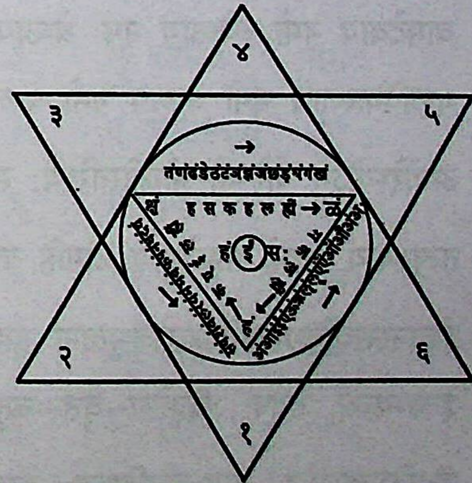
३ ओं प्रीतिकलायै नमः

३ औं अङ्गदाकलायै नमः

३ अं पूर्णाकलायै नमः

३ अः पूर्णामृताकलायै नमः

ततः ३ ॐ जुं सः स्वाहा, इति अष्टवारमभिमन्त्र्य। तत्रार्घ्यामृते स्वाग्राद्यप्रादक्षिण्येन अकथादि–षोडशवर्णात्मकरेखात्रयं त्रिकोणं विलिख्य, तदन्तः स्वाग्रादिकोणेषु अप्रादक्षिण्येन हळक्षान्, बहिः प्रादक्षिण्येन पञ्चदशीमूल-खण्डत्रयं, बिन्दौ सबिन्दुतुरीयस्वरं (ईं) तद्वामदक्षयोः क्रमेण हं सः इति च विलिख्य



३ हं सः नमः, इति आराध्य, त्रिकोणस्य परितः वृत्तं तद्बहिश्च षट्कोणं निर्माय, स्वाग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन षडङ्गमन्त्रैः षट्कोणमभ्यर्च्य–

३ 'मूलं' तां चिन्मयीं आनन्दलक्षणां अमृतकलशपिसितहस्तद्वयां प्रसन्नां देवीं पूजयामि नमः स्वाहा, इति सुधादेवीं समभ्यर्च्य तदर्घ्यात्किञ्चित्पात्रान्तरेण—

३ वषट् इत्युद्धृत्य,

३ स्वाहा, इति तत्रैव निक्षिप्य,

३ हुं, इति अवगुण्ठ्य,

३ वौषट्, इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य

३ फट्, इति संरक्ष्य,

३ नमः, इति पुष्पं दत्वा

३ मूलेन गालिन्या निरीक्ष्य

३ ऐं इति योनिमुद्रया नत्वा

३ मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य, सुधादेवीं षोडशोपचारैः सम्पूज्य तद्बिन्दुभिः सपर्यासाधनानि प्रोक्ष्य सर्वं विद्यामयं विभावयेत्।

।। शुद्धिसंस्कारः।।

विशेषार्घ्यपात्रस्य दक्षिणतः सामान्यार्घ्योदकेन त्रिकोणवृत्तचतुरस्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया विलिख्य

३ ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवाय, इति मण्डलमभ्यर्च्य शुद्धिपात्रं संस्थाप्य

३ ॐ श्लीं पशु हुं फट्, इति अष्टवारमभिमन्त्र्य

३ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः।।

३ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो, रुद्राय नमः, कालाय नमः, कलविकरणाय नमो, बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।।

३ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।

३ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

३ ईशानस्सर्वविद्यानामीश्वरस्सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्।। इत्यभ्यर्च्य, तदधः, त्रिकोण–वृत्त–चतुरस्रात्मकं मण्डलद्वयं विलिख्य प्रथममण्डले—

३ हंसश्शिवस्सोहं, सोहं हंसश्शिवः, हंसश्शिवस्सोहं हंसः ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं नमः। इत्यभ्यर्च्य, गुरुपात्रं निधाय, द्वितीयमण्डले हंस नमः इत्यभ्यर्च्य, आत्मपात्रं निदध्यात्।

३ ततो विशेषार्घ्यपात्रं करेण संस्पृश्य वक्ष्यमाणचतुर्नवतिमन्त्रैः अभिमन्त्रयेत्—

॥ बह्निकला:॥

(१) ३ यं धूम्रार्चिषे नमः	(६) ३ षं सुश्रियै नमः
(२) ३ रं ऊष्मायै ,,	(७) ३ सं सुरूपायै ,,
(३) ३ लं ज्वलिन्यै ,,	(८) ३ हं कपिलायै ,,
(४) ३ वं ज्वालिन्यै ,,	(९) ३ ळं हव्यवाहिन्यै ,,
(५) ३ शं विस्फुलिङ्गिन्यै ,,	(१०)३ क्षं कव्यवाहिन्यै ,,

॥ सूर्यकला:॥

३ कं भं तपिन्यै नमः	३ छं दं सुषुम्नायै नमः
३ खं बं तापिन्यै नमः	३ जं थं भोगदायै नमः
३ गं फं धूम्रायै नमः	३ झं तं विश्वायै नमः
३ घं पं मरीच्यै नमः	३ ञं णं बोधिन्यै नमः
३ ङं नं ज्वालिन्यै नमः	३ टं ढं धारिण्यै नमः
३ चं धं रुच्यै नमः	३ ठं डं क्षमायै नमः

॥ सोमकला:॥

३ अं अमृतायै नमः	३ लृं चन्द्रिकायै नमः
३ आं मानदायै नमः	३ लॄं कान्त्यै नमः
३ इं पूषायै नमः	३ एं ज्योत्स्नायै नमः
३ ईं तुष्ट्यै नमः	३ ऐं श्रियै नमः
३ उं पुष्ट्यै नमः	३ ओं प्रीत्यै नमः
३ ऊं रत्यै नमः	३ औं अङ्गदायै नमः
३ ऋं धृत्यै नमः	३ अं पूर्णायै नमः
३ ॠं शशिन्यै नमः	३ अः पूर्णामृतायै नमः

॥ ब्रह्मकला:॥

३	कं सृष्ट्यै	नम:	३	चं लक्ष्म्यै	नम:
३	खं ऋद्ध्यै	नम:	३	छं द्युत्यै	नम:
३	गं स्मृत्यै	नम:	३	जं स्थिरायै	नम:
३	घं मेधायै	नम:	३	झं स्थित्यै	नम:
३	ङं कान्त्यै	नम:	३	ञं सिद्ध्यै	नम:

३ हंसश्शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसदव्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ नम:॥

॥ विष्णुकला:॥

३	टं जरायै	नम:	३	तं कामिकायै	नम:
३	ठं पालिन्यै	नम:	३	थं वरदायै	नम:
३	डं शान्त्यै	नम:	३	दं ह्लादिन्यै	नम:
३	ढं ईश्वर्यै	नम:	३	धं प्रीत्यै	नम:
३	णं रत्यै	नम:	३	नं दीर्घायै	नम:

३ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय मृगो न भीम: कुचरो गिरिष्ठा:। यस्योरूषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा ॥ नम:॥

॥ रुद्रकला:॥

३	पं तीक्ष्णायै	नम:	३	यं क्षुधायै	नम:
३	फं रोद्र्यै	नम:	३	रं क्रोधिन्यै	नम:
३	बं भयायै	नम:	३	लं क्रियायै	नम:
३	भं निद्रायै	नम:	३	वं उद्गार्यै	नम:
३	मं तन्द्र्यै	नम:	३	शं मृत्यवे	नम:

३ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ नम:॥

॥ ईश्वरकला:॥

३	षं पीतायै	नम:	३	हं अरुणायै	नम:
३	सं श्वेतायै	नम:	३	क्षं असितायै	नम:

३ तद्विष्णो: परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय:। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाँस: समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ नम:॥

सदाशिवकला:

३	अं निवृत्त्यै	नम:	३	लृं परायै	नम:
३	आं प्रतिष्ठायै	नम:	३	लॄं सूक्ष्मायै	नम:
३	इं विद्यायै	नम:	३	एं सूक्ष्मामृतायै	नम:
३	ईं शान्त्यै	नम:	३	ऐं ज्ञानायै	नम:
३	उं इन्धिकायै	नम:।	३	ओं ज्ञानामृतायै	नम:।
३	ऊं दीपिकायै	नम:।	३	औं आप्यायिन्यै	नम:।
३	ऋं रेचिकायै	नम:।	३	अं व्यापिन्यै	नम:।
३	ॠं मोचिकायै	नम:।	३	अ: व्योमरूपायै	नम:।

३ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा।। नम:।।

३ 'मूलं' नम:।।

३ अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि। स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलनायिके।। नम:।।

३ अकुलस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकरे परे। अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि।। नम:।।

३ तद्रूपिण्यैकरस्यत्वं कृत्वा ह्येतत्स्वरूपिणि। भूत्वा परामृताकारा मयि चित्स्फुरणं कुरु।। नम:।।

३ ऐं ब्लूं झ्रौं जुं स: अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।। नम:।।

३ ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौ: मोक्षं कुरु कुरु ह्सौ: स्हौ: नम:।।

तत: शेषार्यामृतात् किञ्चिद् गुरु: सन्निहितो यदि तस्मै निवेदयेत्। गुरुपात्रे उद्धृत्य गुरुत्रयं यजेत्।

पुन: आत्मपात्रे किञ्चिद्विशेषार्घ्यामृतमुद्धृत्य, मूलाधारे बालाग्रमात्रं अनादिवासनारूपेन्धनप्रज्वलितं कुण्डलिन्यधिष्ठितं चिदग्निमण्डलं ध्यात्वा–

३ कुण्डलिन्यधिष्ठितदिग्ममण्डलाय नम:, इति मनसा सम्पूज्य

३	मूलं पुण्यं जुहोमि स्वाहा	—	३	(मूलं) पापं जुहोमि स्वाहा
३	(मूलं) कृत्यं जुहोमि स्वाहा	—	३	(मूलं) अकृत्यं जुहोमि स्वाहा
३	(मूलं) सङ्कल्पं जुहोमि स्वाहा	—	३	(मूलं) विकल्पं जुहोमि स्वाहा
३	(मूलं) धर्मं जुहोमि स्वाहा	—	३	(मूलं) अधर्मं जुहोमि स्वाहा

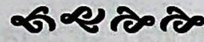
३ (मूलं) अधर्मं जुहोमि वौषट्

३ इत: पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारत: जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा–इति पूर्णाहुतिं विभाव्य

३ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि। योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि। अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा।

इति आत्मन: कुण्डलिरूपे चिदग्नौ होमबुद्ध्या जुहुयात्। विशेषार्घ्यपात्रात्किञ्चित्क्षीरं क्षीरकलशे निक्षिपेत्।। आविसर्जनं शङ्खं विशेषार्घ्यपात्रञ्च न चालयेत्।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य-उमानन्दनाथशिष्य-षोडशानन्दनाथशिष्य-दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र नवम श्वास में पात्रसादन की भावविवृति पूर्णा हुई।। ९।।



श्रीविद्यार्णव-तन्त्र

दशम-श्वास

।। भाव-विवृति।।

श्रीविद्यार्णव-तन्त्र में क्रमपूर्वक श्रीविद्यासाधक के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए नवम श्वास में तन्त्रान्तरों के प्रमाणों से पात्रासादनविधि का वर्णन किया गया हैं। अब आत्मपूजाविधि का वर्णन प्रस्तुत है। क्योंकि — **'अन्तर्यागं विधायादौ बहिर्यागं समाचरेत्'**

तन्त्रशास्त्रानुसार अन्त:पूजा के अनन्तर बहिर्याग का विधान है। अन्तर्याग का ही पर्याय आत्मपूजा है। **अन्तर्याग-विधि** - अपने सामने त्रिकोणमण्डल बनाकर आधारसहित पात्रस्थापन करे। कलशोदक से जल पूरित करे। विशेषार्घ्यबिन्दु कलश में डालकर पश्चात् अपने देह को चन्दनादि से अलङ्कृत कर स्वयं को इष्ट देवता रूप से भावित करे– **'अहमित्येव विभावये भवानीम्'**। गुरु एवं गणपति को प्रणाम करके मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कुण्डलिनी का ध्यान करे। यह पूर्व में कहा जा चुका है। अपनी मूल विद्या की कुण्डलिनी रूप में भावना करके उस तेज से अपने इष्टदेवता रूप में अपने शरीर के परिणत हो जाने की भावना कर के आत्मपूजन करना चाहिए। पूर्वोक्त 'योगपीठन्यास' से अपने शरीर को पीठ रूप में भावित करके हृदयमूल की कर्णिका में श्रीचक्राधिरूढ़ देवता की भावना करके षोडशोपचार से उसकी पूजा करे। पाँच पुष्पाञ्जलि देकर धूपदीप नैवेद्यादि अर्पित कर अन्त में हवन करे।

।। अन्त-र्होमविधि।।

मूलाधार स्थित त्रिकोण में कुण्ड की भावना करके उसमें कालाग्नि को ही कामाग्नि-वासना रूपी इन्धन से प्रज्वलित, (पञ्चप्राणादि) वायुओं से सन्धुक्षित कुण्डलिनी रूप परदेवता में अधिष्ठित चिदग्नि मण्डल की भावना करके, प्रणव, त्रितारी, सहित मूल विद्या का उच्चारण कर के, यथा- (ओं ऐं ह्रीं श्रीं मूल)

''धर्माधर्महविर्दीप्ते स्वात्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्ना वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम्।।''

'इदं जुहोमि स्वाहा'। तदनन्तर पुण्य, पाप, कृत्य—अकृत्य, सङ्कल्प—विकल्प और धर्म रूप सात हवियों का सप्तावृत्ति से हवन करे। तदनन्तर पूर्ववत् प्रणव, त्रितारी, युक्त मूलमन्त्र के अन्त में—

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनिस्रुचम्।

धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।।

उच्चारण करके **'अधर्मं जुहोमि स्वाहा'** इससे पूर्णाहुति भावना से निरस्ताखिलप्रपञ्च निष्कल

ब्रह्मरूप की कुछ क्षणों तक भावना करके पुनः स्वयं की देवीरूप में भावना करे, मस्तक पर अन्नपूर्णा का ध्यान करके अन्नपूर्णामन्त्र का जप करे। पुनः प्राणायाम ऋष्यादि न्यास, षडङ्गन्यासपूर्वक मूलविद्या का अष्टोत्तरशत जप करके भगवती का स्तवन प्रणाम करे। ज्ञानार्णवतन्त्र के अनुसार यही संक्षिप्त आत्मपूजा (अन्तर्याग) है। श्रीविद्यार्णवतन्त्रोक्त अन्तर्याग में ज्ञानार्णवतन्त्र की अपेक्षा कुछ वैशिष्ट्य है, जो परिशिष्ट में व्यक्त होगा।

शक्तिशोधन– भावचूड़ामणि तन्त्र में शक्तिशोधन की विस्तृत विधि है। यह विषय अतिरहस्य गुह्यतम है। यथा–

पूर्वशोधितद्रव्यं तु गुप्तेनैव च सङ्क्षिपेत्।

यह द्रव्य तथा क्रिया दोनों ही गुप्त हैं। सिद्ध सद्गुरु द्वारा सच्छिष्य को ही इसका उपदेश करणीय है। अतः गुरुमुखैकमात्रगम्य है। स्वतन्त्रतन्त्र, भैरवतन्त्र, उत्तरतन्त्र, ललितातन्त्र, आदि तन्त्रग्रन्थों में इसकी परमगोप्यता का वर्णन है तथा गुरु से ज्ञातव्य है। अतः इस विषय का प्रकटीकरण शिवशासन का उल्लंघन है, ऐसी हमारी मान्यता है। अधिकारी साधक स्वसम्प्रदायानुसार गुरु से ज्ञान प्राप्त करे।

पीठपूजा– अर्घ्यजल से श्रीचक्र का अभ्युक्षण करके अपने वामभाग में पीठ के ऊपर स्थापित करे। गुरुपादुका मन्त्र का उच्चारण करके गुरुपादुकापूजन करे। दक्षिण भाग में गणपति का पूजन करके श्रीयन्त्र में अधःस्तल से आरम्भ करके सप्तपातालों की भावना कर ऊपर–ऊपर मण्डूकादि पीठपूजन करे। श्रीविद्यार्णवतन्त्र में पृ. २१६ से २१८ तक **'श्री त्रिपुरसुन्दर्या योगपीठाय नमः'** आदि मूल द्रष्टव्य है। अन्यान्य, तन्त्रराज, ज्ञानार्णव, परशुरामकल्पसूत्र आदि ग्रन्थों की परम्परा के अनुसार **'श्रीविद्यारत्नाकर'** में मन्दिरपूजा दी गयी है। वह परिशिष्ट में संलग्न है। श्रीविद्यार्णव की पीठपूजा विशद है। अतः यथा शक्ति समयानुसार निर्णय करके स्वाभीष्टविधि सम्पन्न करे।

।। चतुःषष्टि–उपचारपूजा।।

पीठ के ऊपर भगवती की कामेश्वर-कामेश्वरी रूप में ध्यानानुसार मूर्त्ति की कल्पना करे। इस ध्यान का २१८ पृ. एवं २१९ पृष्ठों में तेरह श्लोकों में वर्णन है। ततः आवाहनविधि का वर्णन है। ध्यानोक्त भगवती के रूप का चिन्तन करके मानसोपचारों से पूजन करे। नैवेद्य के समय बलिवैश्वदेव करे। इसकी विधि मूल में है। कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से षट्चक्र भेदन करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर त्रिखण्डा मुद्रा से पुष्प लेकर ब्रह्मरन्ध्र से नासिका द्वारा पुष्प में तेज की भावना करके आवाहनमन्त्र के द्वारा आवाहन करते हुए श्रीयन्त्र पर पुष्प डाल दे।

कामेश्वराङ्कनिलया भगवती का ध्यान करके संस्थापन सन्निरोधन, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन करके धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, योनिमुद्रा से परमीकरण, षडङ्गविन्यास से सकलीकरण, इस प्रकार आवाहनादि

नवमुद्रा प्राणप्रतिष्ठा, तदनन्तर बीजपूर्वक संक्षोभिण्यादि दशमुद्राओं का प्रदर्शन करके पश्चात् पाश अङ्कुश धनुर्बाण मुद्राएँ प्रदर्शित करे। पुन: आसन स्वागत कुशल प्रश्न करके पुष्पाञ्जलि दे। एवं अर्घ्य पाद्य आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय देकर रत्नपादुका समर्पण करके स्नानमण्डप में ले जाकर सुगन्धित तैलादि अभ्यङ्ग एवं उद्वर्त्तनादि करके निर्मल उष्णोदक से स्नान करावे। पुन: पञ्चामृत, इक्षुरस नारिकेल, पनस आम्र, द्राक्षा आदि फलरसों से स्नान कराकर शुद्ध सुगन्धित जल से स्नान कराकर रत्न युक्त सुवर्णघटस्थ तीर्थजल से अभिषेक करे। तदनन्तर वस्त्रप्रोच्छन, केशमार्जन, अरुण दुकूल व अरुण कुचोत्तरीय समर्पित करे। स्वर्णघटित मङ्गलसूत्र समर्पिते करे। भगवती को अलङ्कारमण्डप में पीठ पर स्थापित कर आनखशिख समस्त आभूषण प्रदान करे। मूलग्रन्थ में अलङ्कारों के नाम व समर्पण की विधि वर्णित है। भगवती को भूषामण्डप से यागमण्डप में ले आकर छत्र चामर आदि उपकरण प्रदान करके आवरण शक्तियों के साथ श्रीचक्र पर विराजमान करे। पञ्चगन्ध, अष्टगन्ध, विलेपन करे। सुगन्धित पुष्पमालाएँ धूप दीप नैवेद्य प्रदान करके, **'ऊँ हं हं हं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए ताम्बूलादि समर्पित करे। पुन: दशमुद्राओं को प्रदर्शित करके आवरण देवताओं का अर्चन करे। सभी विधियाँ मूल में विस्तार से कही गयी हैं। उनका यथाशक्ति सम्पादन करे।

पुन: योनिमुद्रा से प्रणाम करके श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का यथाविधि पूजन करें। अनुलोम विलोममातृका अक्षरों से सम्पुटित मूलविद्या से मातृका स्थानों में देवी के शरीर में गन्धपुष्पों से पूजन करे। इसी प्रकार षडङ्गपूजन भी करे। इसे लयाङ्गपूजन कहते हैं। लयाङ्गपूजन मातृकापुटित मूल मन्त्र द्वारा तथा भोगाङ्गपूजन षडङ्ग मन्त्रों से लिखा है—

''लयाङ्गं कल्पयेद् देहे देव्यास्तु परमेश्वरि।''

अत: लयाङ्गपूजन परमावश्यक है। ज्ञानार्णवतन्त्रानुसार, लयाङ्ग और भोगाङ्ग पूजन काली-कादि उभयसम्मत है। कुलार्णव मत में देवशुद्धि की जाती है। मूलमन्त्र दीपिनी और मालिनी विद्या द्वारा अर्घ्योदक से देवता का तीन प्रोक्षण मालिनीमत के अनुसार एवं मधुमती (कादि) मत में मूलमन्त्र दीपिनीविद्या द्वारा अर्घ्योदक बिन्दु से देवता का तीन बार प्रोक्षण करना देवशुद्धि है। यह त्रिपुरार्णवतन्त्र का मत है।

।। समष्टि-व्यष्टि पूजन।।

स्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार देवी की प्रसन्नता के लिए प्रारम्भ में समष्टिपूजा तथा अन्त में व्यष्टिपूजा करनी चाहिए। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में ग्रामादि परिलक्षित होते हैं, उसी प्रकार श्रीयन्त्र में रश्मिरूप से आवरणदेवता प्रतिबिम्बित होते हैं। उनकी शास्त्रोक्तविधि से पूजा करनी चाहिए। व्यष्टिपूजा शेष में करने का विधान है।

।। मध्यविध आवरणपूजा।।

सर्वप्रथम भगवती से आवरणपूजा की आज्ञा लेकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। पुन: बिन्दु में श्रीविद्या के मनु आदि पचीस उपासकों का पूजन करना चाहिए। **''मनूपासितां श्रीविद्यापादुकां पूजयामि नम:''।**

अन्यान्य उपासकों का भी इसी प्रकार पञ्चोपचार से पूजन करे। श्रीत्रिद्यावृन्द का अर्चन करे। त्रिकोण में पञ्चदश नित्याओं, शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा तिथियों में कामेश्वरी से चित्रापर्यन्त एवं कृष्णपक्ष में चित्रा से कामेश्वरी पर्यन्त का अर्चन करे। इन नित्याओं के नाम एवं मन्त्र पूर्वोक्त हैं। 'श्रीविद्यार्णव' में श्रीविद्यारण्य यति ने पञ्चदश नित्याओं के मन्त्रों एवं ध्यानों का वर्णन किया है।

॥ गुरुमण्डलार्चन॥

श्रीयन्त्र में देवी के पृष्ठभाग में त्रिरेखा से गुरुपादुका में शक्ति सहित गुरु के नाम की योजना करके **'श्रीपादुकां पूजयामि'** कहे। गुरु-परमगुरु एवं परमेष्ठि गुरुओं का भी सशक्तिक यजन करे। यह सामान्य पूजन है। दिव्यौघ आदिशिवनाथ, ज्ञानाम्बा-सदाशिव इच्छाम्बा-ईश्वर, अम्बिका-रुद्र, रौद्री-विष्णु ज्येष्ठा ब्रह्म, वामा-परा ग्यारह सनकादि सिद्धौघ, परापरात्रयगुरु, नृसिंह, महेश्वर, भास्कर, महाशिव, सदाशिव, अपरसामान्य मानवौघ गुरुओं का अर्चन करके पुनः श्रीनाथादि का अर्चन करे। अपने सशक्तिक गुरु, सशक्तिक परमगुरु, सशक्तिक परमेष्ठी गुरुओं का अर्चन करे। तत्पश्चात् शङ्कराचार्य पर्यन्त गुरुओं का अर्चन कर पञ्चोपचार द्वारा संघट्ट मुद्रा से पूजन करे। पुनः आयुधों का पूजन करना चाहिए।

॥ अष्टकोण में आम्नायपूजा॥

पाँचों आम्नाय, षड्दर्शन पञ्चपञ्चिका, पञ्चसिंहासनदेवता, पञ्चसुन्दरीविद्या, चार समयदेवता षडङ्गयुवतियों का भी अर्चन करें। पश्चात् आयुधों का पूजन करे। चार वाणियों का पूजन करे। षट्चक्र की डाकिनी आदि योगिनियों का अर्चन करे। मूलोक्त के अनुसार भैरवियों की पूजा करके हेरुक आदि दश भैरवों का पूजन करे। इस प्रकार पूर्वोक्त नवावरणों में पूजा करने का विधान है। इसे विशेष पूजा कहते हैं। इसे गुरु मुख से सम्प्रदायानुसार प्राप्त करके यथाविधि सम्पन्न करना ही हितकर है। ग्रन्थकार ने **'श्रीविद्यार्णव'** में सभी विद्याओं के अर्चन का विस्तृत वर्णन किया है, जो बहुज्ञता का परिचायक है।

बिन्दु में लयाङ्ग, भोगाङ्ग, त्रिकोण में नित्या, अष्टकोण में पञ्चाम्नाय, अन्तर्दशार में षडायतन पूजन, ऊर्ध्वाम्नाय में देवी का बिन्दु में पूजन करे। बहिर्दशार में पञ्चरत्नपूजा श्रीपात्रबिन्दु से, श्रीविद्या, सिद्धलक्ष्मी, मातङ्गी, भुवनेश्वरी वाराही, की पूजा करे। चतुर्दशार में श्रीपात्रबिन्दु से पञ्चकल्पलताओं का पूर्ववत् पूजन करे। अष्टदल में भैरवी एवं पञ्चसुन्दरियों का पूर्ववत् अर्चन करे। ऊर्ध्वाम्नायसुन्दरी का बिन्दु में पूर्ववत् अर्चन करे।

षोडशदल में पञ्चकोशाम्बा का अर्चन करना चाहिए। चतुरस्र भूपुर में पञ्चलक्ष्मी, पञ्चकामदुघा, समयापूजन के अनन्तर षडङ्गपूजन षडङ्गयुवतियों के मन्त्रों से करे। ये सब तुरीयोपासकों के लिए है। मध्यविधान आवरणपूजा, अष्टारचक्र, (सर्वरोगहर) पञ्चबाण, अन्तर्दशार में पञ्चकाम, बहिर्दशार में षडङ्गवाणियों– (१) लीनावाक्, (२) अपरावाक्, (३) परावाक्, (४) पश्यन्तीवाक्, (५) मध्यमावाक्, (६) वैखरीवाक् का पूजन करे।

इनके अर्चन के पश्चात् चतुर्दशार में जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति एवं तुरीया नामक चार अवस्थाओं का अर्चन करे। अष्टदल में वामादि अष्टादश शक्तियों का अर्चन, षोडश दल में भावादि रश्मियों का अर्चन, प्रथम वृत्त में डाकिन्यादि सप्त योगिनियों का पूजन, मध्यवृत्त में दश भैरवियों का तथा अन्त्य वृत्त में हेरुक आदि दश भैरवों का पूजन करना चाहिए।

।। नवावरणपूजन।।

इसमें बिन्दु त्रिकोण अष्टार, अन्तर्दशार बहिर्दशार, चतुर्दशार मध्यचक्र (बैन्दव से अष्टकोण तक, मध्यचक्र है) चौवालिस त्रिकोण, अष्टपत्र, षोडशपत्र, चतुरस्र, भूपुर, नवयोनि भगाङ्कित श्रीचक्र में चौसठ करोड़ योगिनियाँ इस महा ओजस्वी श्रीचक्र में विराजमान हैं। जो साधक को सिद्धियाँ प्रदान कर सम्मानित करती हैं। गुरूपदेश के बिना अर्चन करने वाले का ये भक्षण भी करती हैं। त्रैलोक्यमोहनचक्र से बिन्दु तक नवों आवरणों की अर्चनविधि मूल में यथावत् दी गयी है। इसी विधि को हम प्रायोगिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, जो सरल सुगम, सामान्य तथा साधकों के लिए उपयुक्त सिद्ध होगी।

।। अन्तर्यागः।।

स च ज्ञानार्णवे दृष्टः- यथा मूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्तीं विसतन्तुतनीयसीं विद्युत्पुञ्जपिञ्जरां विवस्वदयुतभास्वत्प्रकाशां परश्शतसुधामयूखशीतलतेजोदण्डरूपां परचितिं भावयेत्। ततस्तत्तेजसि— मूलाधारादधोगते अकुलसहस्रारे, भूपूरस्थिता देवी, तदुपरि स्थिते विषुवन्नाम्नि रक्तवर्णषड्दलपद्मे, षोडशदलदेवी, मूलाधारे चतुर्दले अष्टदलदेवी, स्वाधिष्ठाने षड्दले चतुर्दशारदेवी, मणिपूरके दशदले बहिर्दशारदेवी, अनाहते द्वादशदले अन्तर्दशारदेवी, विशुद्धौ षोडशदले अष्टारदेवी, लम्बिकाग्रे आयुधदेवी, त्रिकोणदेवी, आज्ञायां द्विदले बिन्दुगतदेवीं च ध्यात्वा तत्तदग्रे जीवात्मनं पुष्पपूरिताञ्जलिनिष्ठं भावयन् तत्तत्पूजामन्त्रैः तत्तदावरणपूजां, देव्याः वामहस्ते पूजासमर्पणं च विभाव्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यां सचक्रावयवानि आवरणानि विलीनानि विभाव्य मध्यत्र्यस्राग्रे (देवीपादमूले) स्थितजीवात्मना सहितां श्रीदेवीं हृदयं नीत्वा स्वाञ्जलिगतकुसुमैः तत्र तां सम्पूज्य, ततः अकुलेन्दुगलितामृतधारारूपिणीः चन्दनकुसुमधूपदीपनैवेद्यशालिकरकमलाः पीतासितश्यामरक्तशुक्लवर्णाः धरणिवियदनिलानलजललक्षणपञ्चभूतमयीः सर्वावयवसुन्दरीः पञ्चदेवताः देव्यग्रे संस्मृत्य, ताभिः चन्दनाद्युपचारान् श्रीदेव्यै समर्पितान् स्मारं स्मारं पञ्चोपचारमुद्राश्च प्रदर्शिताः भावयेत्।

ततो देव्या नासायां गन्धदेवता श्रोत्रे पुष्पदेवता, नाभौ धूपदेवता, नयने दीपदेवता, जिह्वायां नैवेद्यदेवता, इति क्रमेण विलीनाः विभाव्य, मूलविद्यां उच्चरन्, जीवात्मानं श्रीदेवीपादारविन्दमूले लीनं विभाव्य, हृदयगतदेवीरूपं मध्यत्र्यस्रसहितं तत्रैव केवलं ज्योतिर्मयतामापन्नं ध्यायन् सङ्क्षोभिण्यादि नवमुद्राः भावयित्वा, क्षणं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।

अथ देव्या प्रेरितमानसः सन् पुनः प्रकृतिमालम्ब्य तेजोरूपेण परिणतां परमशिवज्योतिरभिन्नप्रकाशात्मिकां वियदादिविश्वकारणां स्वात्माभिन्नां परचितिं सुषुम्नापथेन उद्गमय्य विनिर्भिन्नविधिविलसदमलदशशतदल-कमलाद् वहन्नासापुटेन निर्गतां त्रिखण्डामुद्रामण्डितशिखण्डे कुसुमगर्भितेऽञ्जलौ समानीय—

३ ह्रीं श्रीं सौः श्रीललितायाः अमृतचैतन्यमूर्तिं कल्पयामि नमः।।

॥ ध्यानम्॥

ध्यायेन्निरामयं वस्तु जगत्त्रयविमोहिनीम्। अशेषव्यवहाराणां स्वामिनीं संविदं पराम् ।।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां दाडिमीकुसुमप्रभाम् । जपाकुसुमसङ्काशां पद्मरागमणिप्रभाम् ।।
स्फुरत्पद्मनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीम्। रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवराजिताम् ।।
अनर्घरत्नखचितमञ्जीरचरणद्वयाम् । पादाङ्गुलीयकक्षिप्तरत्नतेजोविराजिताम् ।।
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुकोमलाम्। नितम्बबिम्बविलसद्रक्तवस्त्रपरिष्कृताम् ।।
मेखलाबद्धमाणिक्यकिङ्किणीनादविभ्रमाम्। अलक्ष्यमध्यमां निम्ननाभिं शातोदरीं पराम् ।।
रोमराजिलतोद्भूतमहाकुचफलान्विताम् । सुवृत्तनिबिडोत्तुङ्गकुचमण्डलराजिताम् ।।
अनर्घमौक्तिकस्फारहारभारविराजिताम् । नवरत्नप्रभाराजद्ग्रैवेयकविभूषणाम् ।।
श्रुतिभूषामनोरम्यकपोलस्थलमञ्जुलाम् । उद्यदादित्यसङ्काशताटङ्कसुमुखप्रभाम् ।।
पूर्णचन्द्रमुखीं पद्मवदनां वरनासिकाम् । स्फुरन्मदनकोदण्डसुभ्रुवं पद्मलोचनाम् ।।
ललाटपट्टसंराजद्रत्नाढ्यतिलकाङ्किताम्। मुक्तामाणिक्यघटितमुकुटस्थलकिङ्किणीम् ।।
स्फुरच्चन्द्रकलाराजन्मुकुटाञ्च त्रिलोचनाम्। प्रवालवल्लीविलसद्बाहुवल्लीचतुष्टयाम् ।।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषुपाशाङ्कुशचतुर्भुजाम्। सर्वदेवमयीमम्बां सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।।
सर्वतीर्थमयीं दिव्यां सर्वकामप्रपूरिणीम्। सर्वमन्त्रमयीं नित्यां सर्वागमविशारदाम् ।।
सर्वक्षेत्रमयीं देवीं सर्वविद्यामयीं शिवाम्। सर्वयागमयीं विद्यां सर्वदेवस्वरूपिणीम् ।।
सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सर्वागमनमस्कृताम्। सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतनसेविताम् ।।
सर्वानन्दमयीं ज्ञानगह्वरां संविदं पराम्। एवं ध्यायेत्परामम्बां सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।।

इति निजलीलाङ्गीकृतललितवपुषं विचिन्त्य।

३ ह्सैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातः एह्येहि परमेश्वरि।।

श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकामावाहयामि नमः।।

नित्यादिकमणिमान्तं श्रीकामेश्वराङ्कोपवेशनं विना श्रीदेवीसमानाकृतिवेषभूषणायुधशक्तिचक्रं ओघत्रयगुरुमण्डलं च वक्ष्यमाणेषु आवरणेषु निजस्वामिन्यभिमुखोपविष्टमवमृश्य।

३ मूलं आवाहिता भव। ३ मूलं सन्निरुद्धा भव।
३ ,, संस्थापिता भव। ३ ,, सम्मुखी भव।
३ ,, सन्निधापिता भव। ३ ,, अवगुण्ठिता भव।

इति मन्त्रैरावाहनादिषण्मुद्राः प्रदर्श्य, वन्दनधेनुयोनिमुद्राश्च प्रदर्शयेत्। अथ हृदयादिषडङ्गमुद्राः बाणाद्यायुधमुद्राश्च तत्तन्मन्त्रपूर्वकं प्रदर्शयेत्॥

॥ चतुःषष्ट्युपचारपूजाः॥

अथ श्रीपरदेवतायाः चतुष्षष्ट्युपचारानाचरेत्। तेष्वशक्तानां भावनया पुष्पाक्षतानर्पयेत्॥

३ श्रीललितायै पाद्यं कल्पयामि नमः
,, आभरणावरोपणं ,, श्रीललितायै मज्जनशालामणि –
,, सुगन्धितैलाभ्यङ्गं ,, ,, पीठोपवेशनं क. नमः।
,, मज्जनशालाप्रवेशनं ,, ,, दिव्यस्नानीयोद्वर्तनं ,,

३ श्रीललितायै उष्णोदकस्नानं कल्प. नमः, श्रीललितायै प्रथमभूषणं
कनककलशच्युतं (माङ्गल्सूत्रं) कल्पयामि नमः।
सकलतीर्थाभिषेकं ,, ,, कनकचिन्ताकं ,,
,, धौतवस्त्रपरिमार्जनं ,, ,, पदकं ,,
,, अरुणदुकूलपरिधानं ,, ,, महापदकं ,,
,, अरुणकुचोत्तरीयं ,, ,, मुक्तावलिं ,,
,, आलेपमण्डप्रवेशनं ,, ,, एकावलिं ,,
,, आलेपमण्डपमणिपीठोपवेशनं ,, ,, छन्नवीरं ,,
,, दिव्यगन्धसर्वाङ्गीणविलेपनं ,, ,, केयूरयुगलचतुष्टयं ,,
,, केशभारस्य कालागरुधूपं ,, ,, वलयावलिं ,,
,, कुसुममालाः ,, ,, ऊर्मिकावलिं ,,
,, भूषणमण्डपप्रवेशनं ,, ,, काञ्चीदाम ,,
,, भूषणमण्डपमणिपीठोपवेशनं ,, ,, कटिसूत्रं ,,
,, नवमणिमुकुटं ,, ,, सौभाग्याभरणं ,,
,, चन्द्रशकलं ,, ,, पादकटकं ,,
,, सीमन्तसिन्दूरं ,, ,, रत्ननूपुरं ,,
,, तिलकरत्नं ,, ,, पादाङ्गुलीयकं ,,
,, कालाञ्जनं ,, ,,
,, वालीयुगलं ,, ,, एककरे पाशं ,,
,, मणिकुण्डलयुगलं ,, ,, अन्यकरेऽङ्कुशं ,,
,, नासाभरणं ,, ,, इतरकरे पुण्ड्रेक्षुचापं ,,
,, अधरयावकं ,, ,, अपरकरे पुष्पबाणान् ,,

,, श्रीमन्माणिक्यपादुके कल्पयामि नमः।

,, स्वसमानवेषाभिरावरणदेवताभिः सह महाचक्राधिरोहणं कल्पयामि नमः।

,, कामेश्वराङ्कपर्यङ्कोपवेशनं कल्पयामि नमः।

,, अमृतासवचषकं कल्पयामि नमः।

३ श्रीललितायै आचमनीयं कल्पयामि नमः।

,, कर्पूरवीटिकां कल्पयामि नमः।

,, आनन्दोल्लासविलासहासं कल्पयामि नमः।

अथ मङ्गलारार्तिकम्– कलधौतादिभाजने कुङ्कुमचन्दनादिलिखितस्याष्टषट्चतुर्दलाद्यन्यतमस्य कमलस्य चन्द्राकारचरुगोलकवत्यां चणकमुद्गजुषि वा कर्णिकायां दलेषु च पयःशर्करापिण्डीकृतयवगोधूमादिपिष्टोपादानकानि त्रिकोणशिरस्कडमर्वाकृतीनि चतुरङ्गुलोत्सेधानि घृतपाचितानि नवसप्तपञ्चान्यतमसंख्यानि दीपपात्राणि निधाय तेषु गोघृतं कर्षप्रमितं आपूर्य कर्पूरगर्भितां वर्तिकां हृल्लेखया प्रज्वाल्य–

३ जगद्ध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा–इति मन्त्रपूर्वकं गन्धाक्षतादिना घण्टां सम्पूज्य तां वादयन् जानुचुम्बितभूतलः तत्पात्रं आमस्तकमुद्धृत्य –

३ श्रीललितायै मङ्गलारार्तिकं कल्पयामि नमः।

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके।
आरार्तिकमिदं तुभ्यं गृहाण मम सिद्धये।।

इति नववारं श्रीदेव्या आचूडं आचरणाब्जं परिभ्राम्य दक्षभागे स्थापयेत्।

३ श्रीललितायै छत्रं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै चामरयुगलं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै दर्पणं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै तालवृन्तं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै छत्रं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै पुष्पं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै धूपं कल्पयामि नमः।
३ श्रीललितायै दीपं कल्पयामि नमः।

अथ नैवेद्यम्– देव्याः पुरतः स्वदक्षिणे चतुरस्रमण्डलं निर्माय तत्र आधारोपरि नैवेद्यं निधाय मूलेन प्रोक्ष्य वं इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य मूलेन त्रिवारं अभिमन्त्र्य आपोशनं दत्वा–

३ श्रीललितायै नैवेद्यं कल्पयामि नमः।

अथ श्रीललितायै पानीयं उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं गण्डूषमाचमनीयं ताम्बूलञ्च कल्पयेत्।

३ द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः क्रों ह्स्ख्फ्रें ह्सौः ऐं– इति सर्वसङ्क्षोभिण्यादिनवमुद्राः प्रदर्शयेत्। षोडश्युपासकास्तु ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः इति त्रिखण्डामपि प्रदर्शयेयुः।।

।। चतुरायतनपूजा।।

नित्योत्सवे तु, तत्तद्देवतामन्त्रैः तर्पणमात्रमेव। विस्तरेणापि लिख्यते। यथेच्छं विधेयम्।

नैर्ऋते च गणेशानं सूर्यं वायव्य एव च ।
ईशाने विष्णुमाग्नेये शिवं चैव प्रपूजयेत् ।।

॥ गणपतिपूजा॥

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टोज्ज्वलद्भूषया।
विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः।।

श्रीमहागणपतिं ध्यायामि, आवाहयामि महागणपतये नमः आसनं समर्पयामि, पाद्यं समर्पयामि, अर्घ्यं समर्पयामि, आचमनीयं समर्पयामि, मधुपर्कं समर्पयामि, स्नानं समर्पयामि, वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि, गन्धान् धारयामि।

ॐ	सुमुखाय	नमः	ॐ	धूमकेतवे	नमः
	एकदन्ताय	नमः		गणाध्यक्षाय	नमः
	कपिलाय	नमः		भालचन्द्राय	नमः
	गजकर्णकाय	नमः		गजाननाय	नमः
	लम्बोदराय	नमः		वक्रतुण्डाय	नमः
	विकटाय	नमः		शूर्पकर्णाय	नमः
	विघ्नराजाय	नमः		हेरम्बाय	नमः
	विनायकाय	नमः		स्कन्दपूर्वजाय	नमः

श्रीमहागणतपये नमः नानाविधपरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।।

३ 'गणपतिमूलं' महागणपतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति त्रिः सन्तर्पयेत्।।

महागणपतये नमः, धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं आचमनीयं, ताम्बूलं समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि।।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्। महागणपतये नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान्सर्वदेवात्मकः श्रीमहागणपतिः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।।

॥ सूर्यपूजा॥

अध्यारूढं रथेन्द्रे वसुदलसहिते वृत्तषट्कोणमध्ये
भास्वन्तं भास्करं तं शुभदमसिगदाशङ्खचक्राब्जयुग्मम्।
वेदाकारं त्रिमूर्तिं त्रिविधनयगुणं विश्वरूपं पुराणं
ह्रांह्रींह्रुंङ्काररूपं सुरनुतमनिशं भावयेद्धृत्सरोजे।।

आदित्यं ध्यायामि। आवाहयामि। आदित्याय नमः, आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ॐ	मित्राय नमः		हिरण्यगर्भाय	नमः
	रवये नमः		नीलरुचये	नमः
	सूर्याय नमः		आदित्याय	नमः
	भानवे नमः		सवित्रे	नमः
	खगाय नमः		अर्काय	नमः
	पूष्णे नमः		भास्कराय	नमः

आदित्याय नमः नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि।।

३ 'आदित्यमूलं' आदित्यश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति त्रिः सन्तर्पयेत्।।

आदित्याय नमः, धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं आचमनीयं, ताम्बूलञ्च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि।

ॐ भास्कराय विद्महे महाद्युतिकराय धीमहि। तन्नो आदित्यः प्रचोदयात्। आदित्याय नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणनमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् सर्वदेवात्मकः आदित्यः सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।।

।। विष्णुपूजा।।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

श्रीमहाविष्णुं ध्यायामि। आवाहयामि। महाविष्णवे नमः, आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ॐ	केशवाय	नमः	ॐ	त्रिविक्रमाय	नमः
	नारायणाय	नमः		वामनाय	नमः
	माधवाय	नमः		श्रीधराय	नमः
	गोविन्दाय	नमः		हृषीकेशाय	नमः
	विष्णवे	नमः		पद्मनाभाय	नमः
	मधुसूदनाय	नमः		दामोदराय	नमः

महाविष्णवे नमः नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि।।

३ 'अष्टाक्षरी' महाविष्णुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः इति त्रिः सन्तर्पयेत्।

महाविष्णवे नमः। धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, ताम्बूलं समर्पयामि, कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् सर्वदेवात्मकः श्रीमहाविष्णुः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।।

॥ शिवपूजा॥

मूले कल्पद्रुमस्य द्रुतकनकनिभं चारुपद्मासनस्थं
वामाङ्कारूढगौरीनिबिडकुचभराभोगगाढोपगूढम्।
सर्वालङ्कारकान्तं वरपरशुमृगाभीतिहस्तं त्रिनेत्रं
वन्दे बालेन्दुमौलिं गजवदनगुहाश्लिष्टपार्श्वं महेशम्।।

साम्बपरमेश्वरं ध्यायामि। आवाहयामि। परमेश्वराय नमः, आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ॐ भवाय देवाय नमः ॐ रुद्राय देवाय नमः
शर्वाय देवाय नमः उग्राय देवाय नमः
ईशानाय देवाय नमः भीमाय देवाय नमः
पशुपतये देवाय नमः महते देवाय नमः

परमेश्वराय नमः। नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि।

३ 'पञ्चाक्षरी' साम्बपरमेश्वरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः इति त्रिः सन्तर्पयेत्।।

परमेश्वराय नमः। धूममाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, ताम्बूलञ्च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि।।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्। परमेश्वराय नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् सर्वदेवात्मकः साम्बपरमेश्वरः सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुरायतनार्चनम्।।

इति सामान्यार्घ्योदकेन देव्याः वामहस्ते पूजां समर्पयेत्।।

॥ लयाङ्गपूजा॥

३ 'मूलं' श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी (पराभट्टारिका) श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः,
इति बिन्दौ देवीं त्रिः सन्तर्पयेत्।

।। षडङ्गार्चनम्।।

देव्यङ्गे (बिन्दौ) अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च–

३ ऐं क–५ हृदयाय नमः। हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ क्लीं ह–६ शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ सौः स–४ शिखायै वषट्। शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऐं क–५ कवचाय हुं। कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

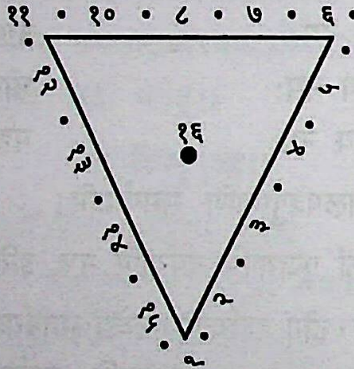
३ क्लीं ह–६ नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ सौः स–४ अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

षोडश्युपासकानान्तु षोडशीषट्कूटेन षडङ्गपूजा।

।। नित्यादेवी-यजनम्।।

३ अःपञ्चदशी अः श्रीललितामहानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति बिन्दौ महानित्यां त्रिर्यजेत्।। अथ तत्तत्तिथिनित्यामन्त्रेण तत्तत्तिथिनित्यां बिन्दौ त्रिर्यजेत्। ततः पूर्ववत् महानित्यां त्रिर्यजेत्।।



ततो मध्यत्रिकोणस्य दक्षिणरेखायां वारुण्याद्याग्नेयान्तं क्रमेण अं आं इं ईं उं इति, पूर्वरेखायां आग्नेयादीशानान्तं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं इति, उत्तररेखायां ईशानादिवारुण्यन्तं एं ऐं ओं औं अं इति, पञ्चपञ्चस्वरान् विभाव्य तेषु वामावर्तेन कामेश्वर्यादिनित्या यजेत्। बिन्दौ षोडशं स्वरं (अ) विचिन्त्य महानित्यां यजेत्। यथा–

३ अं ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः अं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।

३ आं ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगाह्वये भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगयोनि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लूं भें ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं, आं भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।

३ इं ॐ ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा, इं नित्यक्लिन्ना नित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ईं ॐ क्रों भ्रों भ्रौं छ्रौं ज्रौं स्वाहा ईं भेरुण्डानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ उं ओं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः उं वह्निवासिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ऊं ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं ऊं महावज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ॠं ह्रीं शिवदूत्यै नमः ॠं शिवदूतीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ॠं ॐ ह्रीं हुं खे चः छे क्षः स्त्री हुं क्षें ह्रीं फट् ॠं त्वरितानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ऌं ऐं क्लीं सौः ऌं कुलसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ॡं ह्स्क्ल्ड्रैं ह्स्क्ल्ड्रीं ह्स्क्ल्ड्रौः ॡं नित्यानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ एं ह्रीं फ्रें स्रूं क्रों आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्यमदद्रवे हुँ फ्रें ह्रीं एं नीलपताकानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ऐं भ्म्र्यूं ऐं विजयानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ ओं स्वौं ओं सर्वमङ्गलानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ औं ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं ह्रूं र र र र र र र र फट् औं ज्वालामालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ अं च्क्रौं अं चित्रानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।
३ अः पञ्चदशी अः ललितामहानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

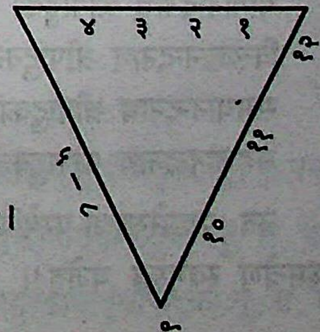
एवं शुक्लपक्षे। कृष्णपक्षे तु चित्राद्याः कामेश्वर्यन्ताः तिथिनित्याः स्वस्वमन्त्रेण तथैव सम्पूज्य बिन्दौ महानित्यां यजेत्।।

।। गुरुमण्डलार्चनम्।।

३ परौघेभ्योः नमः। इति बिन्दुत्रिकोणयोः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा बिन्दौ महापादुकां यजेत्। यथा–

३ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऐं ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं स्हौः श्रीविद्यानन्दनाथात्मकचर्यानन्दनाथश्रीमहापादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।

त्रिकोणे वामकोणादारभ्य **पूर्वरेखायाम्**–



३ उड्डीशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ प्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ विमर्शानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ आनन्दानन्दनाथदक्षकोणादारभ्य श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ षष्ठीशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ ज्ञानानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ सत्यानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

स्वाग्रकोणादारभ्य वामरेखायाम्–

३ पूर्णानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

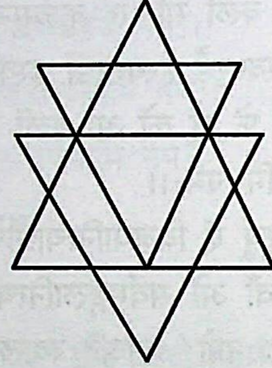
३ मित्रेशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ स्वभावानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ प्रतिभानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ सुभगानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ततो देव्याः पश्चात् मूलत्रिकोणपूर्वरेखायाः तदव्यवहितप्रागग्रत्रिकोणपश्चिमरेखायाश्चान्तरे विमलाजयिन्योर्मध्ये अरुणावाग्देवतासन्निधौ दक्षिणोत्तरायतं रेखात्रयं विभाव्य दक्षिण-संस्थाक्रमेण दिव्यसिद्धमानवाख्यमोघत्रयं मुनिवेदवसुसङ्ख्यं समर्चयेत्।



यथा –

३ दिव्यौघसिद्धौघमानवौघेभ्यो नमः– इति पुष्पाञ्जलिः।

दिव्यौघ। प्रथमरेखायां– मानवौघः तृतीय रेखायाम्।

३ परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि,तर्प.नमः।

३ परशिवानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ पराशक्त्यम्बा श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ कौलेश्वरनन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ शुक्लदेव्यम्बा श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ कुलेश्वरानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ कामेश्वर्यम्बा श्रीपादुकां पू. त. नमः।

सिद्धौघः द्वितीयरेखायाम्–

३ भोगानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ क्लिन्नानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ समयानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ सहजानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ गगनानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ विश्वानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ विमलानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ मदनानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ भुवनानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ लीलाम्बा श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ स्वात्मानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ प्रियानन्दनाथ श्रीपादुकां पू. त. नमः।

ततः प्रथमरेखायां परमेष्ठिगुरुमन्त्रेण परमेष्ठिगुरुं, द्वितीयरेखायां परमगुरुमन्त्रेण परमगुरुं, तृतीयरेखायां स्वगुरुमन्त्रेण स्वगुरुञ्च यजेत्॥

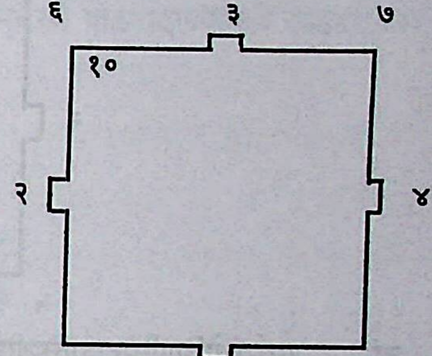
॥ आवरणपूजा॥

३ सविन्मये परे देवि परामृतचरु प्रिये। अनुज्ञां त्रिपुरे देहि परिवारार्चनाय मे॥

।। प्रथमावरणम्।।

३ अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः। इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात्।।

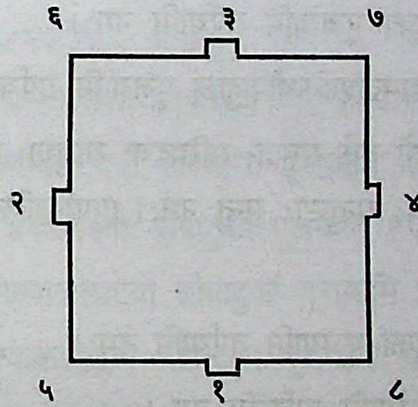
क्रमेण शुक्लारुणपीतवर्णरेखात्रयस्य लकारप्रकृतिकपृथिव्यात्मकस्य चतुरस्रस्य प्रवेशरीत्या प्रथमरेखायां पश्चिमादिद्वार-चतुष्टयदक्षिणभागेषु वाय्वादिकोणेषु च पश्चिमनैर्ऋतयोः पूर्वेशानयोश्च मध्ये क्रमेण–



३ अं अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ लं लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ मं महिमासिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ ईं ईशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ वं वशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ पं प्राकाम्यसिद्धिश्रीपादुकां पू. त.नमः।
३ भुं भुक्तिसिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ इं इच्छासिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ पं प्राप्तिसिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ सं सर्वकामसिद्धिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

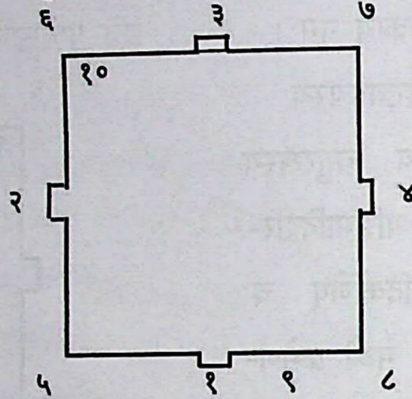
इति स्वस्य तत्तदाभिमुख्यं भावयन् पूजयेत्। एवमुत्तरत्रापि।।

अथ चतुरस्रमध्यरेखायां प्रागुक्तद्वारवामभागेषु च क्रमेण–



३ आं ब्राह्मीमातृश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ ईं माहेश्वरीमातृश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ ऊं कौमारीमातृश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ ॠं वैष्णवीमातृश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ ॡं वाराहीमातृश्रीपादुकां पू. त.नमः।
३ ऐं माहेन्द्रीमातृश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ औं चामुण्डामातृश्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ अः महालक्ष्मीमातृश्रीपादुकां पू.त. नमः।

ततः चतुरस्रान्त्यरेखायां प्रथमरेखोक्तक्रमेण—



३ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ हस्ख्फ्रें सर्वखेचरीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ह्सौः सर्वबीजामुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऐं सर्वयोनिमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वत्रिखण्डामुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहने चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

अणिमासिद्धेः पुरतः—

३ अं आं सौः त्रिपुराचक्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ अं अणिमासिद्धिः[१] श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ द्रां इति सर्वसंक्षोभिणीमुद्रां प्रदर्श्य—

३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥ सुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः। इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

१. चक्रेश्वर्या : दक्षे सिद्धिः वामे मुद्रा। एवमुत्तरत्रापि (श्रीविद्यारत्नाकरे मू. १७० पं. ३)

।। द्वितीयावरणम् ।।

३ ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरकचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

श्वेतवर्णे सकारप्रकृतिकषोडशकलात्मके चन्द्रस्वरूपे स्रवदमृतरसे षोडशदलकमले देव्यग्रदलमारभ्य वामावर्तेन—



३ अं कामाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ आं बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ इं अहङ्काराकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ईं शब्दाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ उं स्पर्शाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऊं रूपाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऋं रसाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ॠं गन्धाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऌं चित्ताकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ॡं धैर्याकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ एं स्मृत्याकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऐं नामाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ओं बीजाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ औं आत्माकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ अं अमृताकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ अः शरीराकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

कामाकर्षिण्याः पुरतः—

३ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेशी चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ लं लघिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ द्रीं—इति सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्श्य—

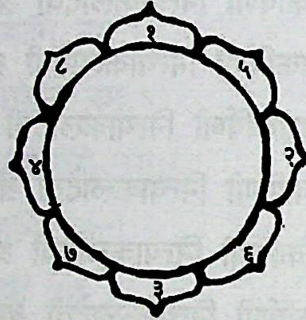
३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य—

३ गुप्तयोगिनीमयूखायै द्वितीयावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।
इति योनिमुद्रया प्रणमेत्।

।। तृतीयावरणम् ।।

३ ह्रीं क्लीं सौः सर्वसंक्षोभणचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

हकारप्रकृतिक—अष्टमूर्त्यात्मक—
शिवाभिन्ने जपाकुसुममित्रे अष्टपत्रे
श्रीदेव्याः पृष्ठदलमारभ्य पूर्वादिदिक्षु
आग्नेयादिविदिक्षु च क्रमेण—



३ कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमादेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ चं छं जं झं ञं अनङ्गमेखलादेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ टं ठं डं ढं णं अनङ्गमदनादेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ तं थं दं धं नं अनङ्गमदनातुरादेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ पं फं बं भं मं अनङ्गरेखादेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ यं रं लं वं अनङ्गवेगिनीदेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ शं षं सं हं अनङ्गाङ्कुशादेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ळं क्षं अनङ्गमालिनीदेवी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ एताः गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसंक्षोभणे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तुः नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

अनङ्गकुसुमायाः पुरतः—

३ ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ मं महिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ क्लीं—इति सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्श्य—

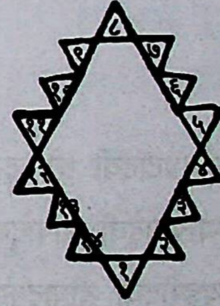
३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य—

३ गुप्ततरयोगिनीमयूखायै तृतीयावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः। इति योनिमुद्रया प्रणमेत्।।

।। तुरीयावरणम्।।

३ हैं ह्क्लीं ह्सौः सर्वसौभाग्यदायकचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

ईकारप्रकृतिकचर्तुदशभुवनात्मकमहामायारूपे दाडिमीप्रसूनसहोदरे चतुर्दशारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन—



३ कं सर्वसंक्षोभिणीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ खं सर्वविद्राविणीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ गं सर्वाकर्षिणीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ घं सर्वाह्लादिनीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ ङं सर्वसम्मोहिनीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ चं सर्वस्तम्भिनीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ छं सर्वजृम्भिणीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ जं सर्ववशङ्करीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ झं सर्वरञ्जिनीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ ञं सर्वोन्मादिनीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ टं सर्वार्थसाधिनीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ ठं सर्वसम्पत्तिपूरणीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ डं सर्वमन्त्रमयीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ ढं सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (पुष्पाञ्जलिः)। सर्वसंक्षोभिण्याः पुरतः—

३ हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ईं ईशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

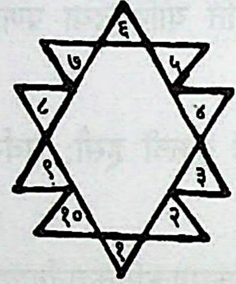
३ ब्लूं इति सर्ववशङ्करीमुद्रां प्रदर्श्य—

३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तुरीयावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य—

३ सम्प्रदाययोगिनीमयूखायै तुरीयावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः। इति योनिमुद्रया प्रणमेत्।

।। पञ्चमावरणम्।।

३ हसैं हस्क्लीं हस्सौः सर्वार्थसाधकचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)



एकारप्रकृतिकदशावतारात्मकविष्णुस्वरूपे प्रभापराभूतसिन्दूरे बहिर्दशारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन—

३ णं सर्वसिद्धिप्रदादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः। ३ नं सर्वदुःखविमोचिनीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ तं सर्वसम्पत्प्रदादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः। ३ पं सर्वमृत्युप्रशमनीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ थं सर्वप्रियङ्करीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः। ३ फं सर्वविघ्ननिवारिणीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ दं सर्वमङ्गलकारिणीदेवी श्रीपादुकां पू.त.नमः। ३ बं सर्वाङ्गसुन्दरीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ धं सर्वकामप्रदादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः। ३ भं सर्वसौभाग्यदायिनीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ एताः कुलोत्तीर्णयोगिन्यः सर्वार्थसाधके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः) सर्वसिद्धिप्रदायाः पुरतः—

३ हसैं हस्क्लीं हस्सौः त्रिपुराश्रीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ वं वशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

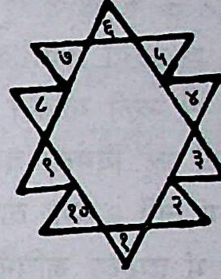
३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ सः—इति सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्श्य—

३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य—

३ कुलोत्तीर्णयोगिनीमयूखायै पञ्चमावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः। इति योनिमुद्रया प्रणमेत्।।

॥ षष्ठावरणम्॥



३ ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

रेफप्रकृतिक-दशकलात्मकवैश्वानराभिन्ने जपासुमनसहचरे अन्तर्दशारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन :–

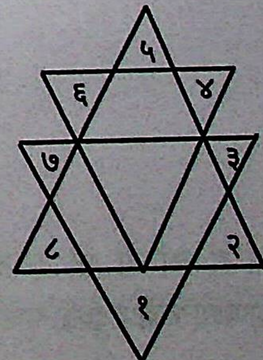
३ मं सर्वज्ञादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ यं सर्वशक्तिदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ रं सर्वैश्व प्रदादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ लं सर्वज्ञानमयीदेवी श्रीपादुकां पू.त.नमः।
३ वं सर्वव्याधिविनाशिनीदेवी श्रीपादुकां पू.त.नमः।
३ शं सर्वाधारस्वरूपादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ षं सर्वपापहरादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ सं सर्वानन्दमयीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ हं सर्वरक्षास्वरूपिणीदेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।
३ क्षं सर्वेप्सितफलप्रदादेवी श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ एताः निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

सर्वज्ञायाः पुरतः–

३ ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ पं प्राकाम्यसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्राशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३ क्रों–इति सर्वमहाङ्कुशामुद्रां प्रदर्श्य–
३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठाख्यावरणार्चनम्॥ इति पूजां समर्प्य–
३ निगर्भयोगिनीमयूखायै षष्ठावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।
इति योनिमुद्रया प्रणमेत्।

॥ सप्तमावरणम्॥



३ ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय नमः (पुष्पाञ्जलिः)

ककारप्रकृतिक अष्टमूर्त्यात्मक कामेश्वरस्वरूपे पद्मरागरुचिरे अष्टारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन–

३ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पू.त. नमः।

३ कं खं गं घं ङं क्ल्हीं कामेश्वरी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोदिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणा वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ यं रं लं वं झ्म्र्यूं सर्वेश्वरी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ एताः रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः) वशिन्याः पुरतः—

३ ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ भुं भुक्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

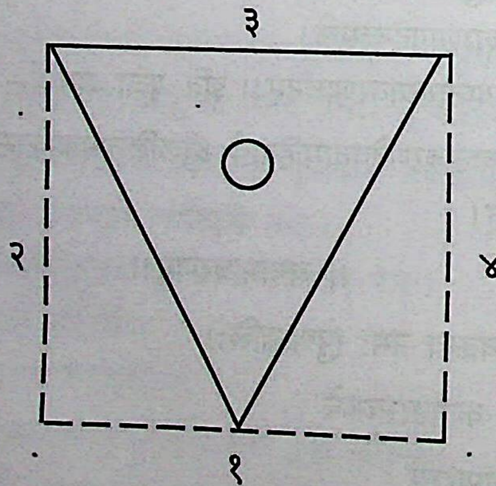
३ ह्स्ख्फ्रें— इति सर्वखेचरीमुद्राशक्ति —

३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य—

३ रहस्ययोगिनीमयूखायै सप्तमावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।
इति योनिमुद्रया प्रणमेत्।।

।। अष्टमावरणम्।।

मध्यत्र्यस्रस्य बहिः पश्चिमादिदिक्षु प्रादक्षिण्येन—



३ यां रां लां वां सां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरीकामेश्वरबाणेभ्यो नमः।
बाणशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ थं धं सर्वसम्मोहनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरधनुर्भ्यां नमः। धनुःशक्ति श्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ ह्रीं आं सर्ववशीकरणाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरपाशाभ्यां नमः। पाशशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः।

३ क्रों क्रों सर्वस्तम्भनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वराङ्कुशाभ्यां नमः। अङ्कुशशक्तिश्रीपादुकां पू. त. नमः। इत्यायुधार्चनं विदध्यात्। ततः—

३ ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्सौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

नादप्रकृतिकगुणत्रयप्रधानत्रिशक्तिरूपरेखात्रयात्मके बन्धूकपुष्पबन्धुकिरणे त्रिकोणे अग्रदक्षवामकोणेषु बिन्दौ च क्रमेण—

३ ऐं क—५ अग्निचक्रे कामगिरिपीठे मित्रेशनाथ—नवयोगिनिचक्रात्मक—आत्मतत्त्व—सृष्टिकृत्य—जाग्रद्दशाधिष्ठायक—इच्छाशक्ति—वाग्भवात्मक—वागीश्वरीस्वरूप—रुद्रात्मशक्ति—महाकामेश्वरी—श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ क्लीं ह—६ सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीनाथ—दशारद्वयचतुर्दशारचक्रात्मकविद्यातत्त्व—स्थितिकृत्य—स्वप्नदशाधिष्ठायक—ज्ञानशक्ति—कामराजात्मक—कामकलास्वरूप—विष्ण्वात्मशक्ति— महावज्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ सौः स—४ सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाश—अष्टदलषोडशदलचतुरस्रचक्रात्मक—शिवतत्त्व—संहारकृत्य—सुषुप्तिदशाधिष्ठायक—क्रियाशक्तिबीजात्मक—परापरशक्तिस्वरूप—ब्रह्मात्मशक्ति—महाभगमालिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऐं क—५ क्लीं ह—६ सौः स—४ परब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथ—समस्तचक्रात्मक—सपरिवारपरमतत्त्व—सृष्टिस्थितिसंहारकृत्य—तुरीयदशाधिष्ठायक—इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताशक्ति—वाग्भवकामराजशक्ति—बीजात्मक—परमशक्तिस्वरूप—परब्रह्मात्मशक्ति—श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ एताः अतिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः) महाकामेश्वर्याः पुरतः—

३ ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ इं इच्छासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ह्सौः— सर्वबीजमुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ह्सौः—इति सर्वबीजमुद्रां प्रदर्श्य—

३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य—

३ अतिरहस्ययोगिनीमयूखायै अष्टमावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः। योनिमुद्रया प्रणमेत्।।

।। नवमावरणम्।।

३ क–१५ सर्वानन्दमयचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)
बिन्द्वभिन्नपरब्रह्मात्मके बिन्दुचक्रे–

३ 'मूलं' श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिका श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति त्रिः सन्तर्प्य।

३ एषा परापरातिरहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे समुद्रा ससिद्धिः सायुधा सशक्तिः सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारैः सम्पूजिता सन्तर्पिता सन्तुष्टास्सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः) महात्रिपुरसुन्दर्याः पुरतः–

३ 'पञ्चदशी' श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ पं प्राप्तिसिद्धि श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऐं सर्वयोनिमुद्राशक्ति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३ ऐं–इति सर्वयोनिमुद्रां प्रदर्श्य

३ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्।। इति पूजां समर्प्य–

३ परापरातिरहस्ययोगिनीमयूखायै नवमावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः। योनिमुद्रया प्रणमेत्।

।। इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथ-शिष्य उमानन्दनाथ-शिष्य षोडशानन्दनाथ-शिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र दशम श्वास के भावविवृति पूर्ण हुई।। १०।।

श्रीविद्यार्णव-तन्त्र

एकादश श्वास

।। भाव-विवृति।।

ऊर्ध्वाम्नाय आवरण—(कुलार्णवतन्त्र)

दशम श्वास में विविध विशेषआवरणपूजा के अनन्तर नवावरण पूजा के विधान का वर्णन किया गया है। अब एकादश श्वास में नवावरणपूजा से भगवती शक्ति के सन्तर्पण के अनन्तर शिव-पूजन का विधान बताया जा रहा है। ऊर्ध्वाम्नाय के अधिकारी साधकों के लिए ऊर्ध्वाम्नाय के अर्चन का विधान प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

।। **ऊर्ध्वाम्नायपूजा**।। (उत्तरतन्त्र)

श्रीयन्त्र के बिन्दु में विराजमान शिव की पराप्रासादमन्त्र अथवा तुरीयविद्यामन्त्र से पूजा करे। षोडशोपचार पूजन करके गुरुपात्र के बिन्दु से पञ्चप्रणव का उच्चारण करके **'शिवशक्त्यात्मकपरमशिव-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि'** इस प्रकार दश बार पूजन करके महाषोढा न्यासोक्त दशमुद्राओं का प्रदर्शन करे। बिन्दुचक्र में चतुर्दिक् मध्य में षडङ्गार्चन करे। यहाँ ईशानादि एवं मूल मन्त्र से, महाषोढाप्रोक्त षडङ्ग न्यासमन्त्रों से षडङ्गावरणार्चन होता है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र परनाथों एवं विश्रान्तिचरणों का यजन करे। पुन: अनादिनाथगुरु, दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं का सर्वकामसिद्धि हेतु अर्चन करे। अष्टकोणों की सन्धि के अष्टग्रन्थियों के भेद से दोनो पार्श्व भागों में कुलयोगिनी, पूर्वादि षोडश मूलविद्याओं का श्रीपात्र-बिन्दु से अर्चन करें। अन्तर्दशार में षडाधारविद्या एवं बहिर्दशार में ईशानदेव की कला, चतुर्दशार में तत्पुरुष की कला, अष्टदल ग्रन्थि में अघोरकला, षोडशदल में वामदेवकला, भूपुर में सद्योजात कलाओं का अर्चन करें। सामान्यार्घ्यबिन्दु से महाषोढा में प्रोक्त समस्त देवताओं का अर्चन करें। पुन: बिन्दु में षट् शाम्भव रश्मियों का अर्चन करें। इस प्रकार पूजन करके समस्त आवरणदेवताओं का षोडशोपचार से पूजन करें।

दक्षिणामूर्तिसंहिता के अनुसार षड्रस नैवेद्य एवं कर्पूरयुक्त ताम्बूलनिवेदन, नित्य होम, जप एवं स्तुति करते हुए मूल में आदि श्लोकद्वय **'श्रीमच्छ्रीकोषहृदयम्'** से भी स्तवन करें। तदनन्तर सुवर्ण रजत कांस्य पात्रों में अष्टदल बनाकर उस पर घृतपूरित दीपक प्रज्वलित करके ज्ञानार्णव तन्त्रोक्त रत्नेश्वरीविद्या से अभिमन्त्रित कर के तीन बार भ्रामण करे। इससे सभी विघ्नों की निवृत्ति हो जाती है। रत्नेश्वरीविद्या का मूल में उल्लेख है।

स्वच्छन्दतन्त्रोक्त रत्नेश्वरी विद्या के ऋषि छन्द आदि एवं षडङ्ग न्यास ध्यान मूल में उद्धृत हैं। उन्हें यथाशक्ति करे। तदनन्तर भावपूर्ण आरार्तिक्य निवेदन करके पुष्पाञ्जलि, सर्वविघ्नकृतभूतबलिदान,

कुमारी, सुवासिनी का पूजन, तत्त्वशोधन, पात्रोद्वासन करें। पराम्बा भगवती त्रिपुरेश्वरी को हृदय में स्थापित करें। यहाँ दीपरक्षण की विधि है[1] कि आरात्रिकमध्यदीप का मूलमन्त्र से रक्षण करें। तदनन्तर तत्त्वत्रयसंशोधन से स्वान्तर्वासिनी भगवती का तर्पण करने से साधक सर्वमन्त्रविद्, ब्रह्मा व ईशान के तुल्य हो जाता है। शेषिकाओं को अक्षतादि प्रदान करें। पात्रों को अधोमुख से अग्नि में तपाकर यथास्थान रखें। इस प्रकार पूजन करने से सभी दुःखों का नाश तथा परम सुख की प्राप्ति होती है। यहाँ पर श्लोक की तीन पंक्तियाँ अत्यन्त रहस्यपूर्ण एवं गुरुमुखैक[2]गम्य हैं। नित्य होमविधि दीक्षाप्रकरण में प्रायोगिक रूप से कहेंगे। इस प्रकार ऊर्ध्वाम्नायपूजन प्रकरण पूर्ण हुआ।

।। विविध पुष्पों से मनोरथसिद्धि।।

श्रीयन्त्र का रत्नजटित स्वर्णचम्पक पुष्पों से पूजन करने पर अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। स्वर्णनिर्मित रत्नजटित चम्पकपुष्पों से एक मास तक पूजन करने से सहस्रजन्मकृत पापों का नाश हो जाता है। तथा समुद्रवलयान्त पृथ्वी को प्राप्त करके सार्वभौम शासक होता है। सर्वकाल में परमाज्ञाधर हो जाता है अर्थात् उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है। रजतचम्पक पुष्पों से नित्य पूजन करने से कोटिजन्मकृत पाप नष्ट हो जाते हैं तथा साधक बुद्धिमान् एवं सर्वत्र विजयी होता है।

।। विविध जपमालाओं से अनेक सिद्धियाँ।।

प्रवाल मुक्ता, पद्माक्ष स्फटिक माणिक्य पद्मराग से बनायी हुई मनोहर माला से एक लक्ष जप करने पर भूचरी योगिनियाँ क्षोभ उत्पन्न करती हैं। उनसे क्षुभित न होकर तीन लाख जप नियमपूर्वक पवित्रता से करना चाहिए। वाचिक उपांशु एवं मानसिक जप उत्तरोत्तर उत्तम है। मानसिक जप कोटिगुणित श्रेष्ठ होता है। गुरु की आज्ञा से जप कर के दशांश हवन करना चाहिए। पलाशपुष्प, कुसुम्भपुष्प, मधुरत्रय से सम्पृक्त हवन करने से यह विद्या सिद्ध हो जाती है। योनिकुण्ड, चतुरस्रकुण्ड या नवकोणकुण्ड आदि कुण्डों में होम करने से विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

।। विविध पुष्पों के होम।।

सघृत मल्लिका, मालती, करवीर पुष्पों से हवन करने से वशीकरण की सिद्धि प्राप्त होती है। कस्तूरी, केशर, कर्पूर से होम करने पर साधक सौभाग्यवान् हो जाता है। चम्पा, गुलाब एवं आम्रादि फलों से होम करने से एक सप्ताह या एक मास में लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है।

त्रिमधुयुक्त चन्दन, अगरु, कर्पूर, गुग्गुल से होम करने पर खेचरसिद्धि प्राप्त होती है। दधि, दुग्ध, घृत और लाजा के होम से मृत्यु पर विजय प्राप्त हो जाता है अथवा नवलक्ष संख्या में पूर्वोक्त विधि से जप करके होम तर्पण मार्जन आदि करने से त्रैलोक्यसिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

---

१. ११। २३६। १२ – आरात्रिकस्य मध्यस्थं मूलेनैव तु रक्षयेत्।

२. ११। २३६। १७–१८

इस प्रकार जब पूजन जप होम करने से मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है, तब उस मन्त्र से काम्य प्रयोग किये जाते हैं। इच्छित कार्यसिद्धि के लिए विविध होम करने की ग्रन्थकार के उल्लेखानुसार एवं तन्त्रान्तरों में प्रतिपादित विधियों का उल्लेख किया जा रहा है। **मन्त्रसिद्धि के पश्चात् ही काम्यप्रयोग करना चाहिए।**

॥ काम्य-प्रयोग॥

राई एवं लवण से अष्टोत्तरशत हवन करने से शत्रु को क्षोभ होता है। कालमृत्युनिवारणार्थ दधि से अष्टोत्तरशत हवन, घृतक्षीरमिश्रित हवन से आयुवृद्धि, मधु घृत और गुग्गुल के हवन से वशीकरण, दूर्वा घृत से अष्टोत्तरशतहवन से आरोग्य, मधु घृत और गुग्गुल के हवन से वशीकरण, दूर्वा घृत से अष्टोत्तरशत हवन से आरोग्य, मधुघृतयुक्त रक्त करवीर और गुग्गुल के हवन से राजवशीकरण, पाटल (गुलाब) जूही कुन्द कमल चमेली, मालती नवमल्लिका (वेला) किंशुक (पलाशपुष्प) आदि से मिश्रित या अमिश्रित पुष्पों द्वारा साज्य हवन से सप्ताह भर में सर्वसौभाग्य की प्राप्ति, बृहस्पति के समान वाणी एवं बुद्धि की प्राप्ति होती है।

मुचकुन्द पुष्प, बिल्वपत्र एवं फल, श्वेत कमल नागरमोथा, (या नागपुष्प, राजचम्पा) के साज्य हवन से अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। घृतसहित नारिकेल खर्जूर द्राक्षा आम्रफलों के होम से मनोवाञ्छित कार्यों की सिद्धि हो जाती है। पूजन एवं हवन से भगवती श्रीविद्या को सन्तुष्ट करना चाहिए। कुमारीपूजन बलिदान, गुरुपूजन, सुवासिनीपूजन करके उन्हें वस्त्रालङ्कारादि प्रदान करना चाहिए। सज्जन साधकों को प्रचुर धन देना चाहिए।

॥ होमद्रव्यों के परिमाण॥

नारिकेल फल के टुकड़े करके हवन करना चाहिए। केला बड़ा हो, तो खण्डशः तथा छोटा हो, तो पूर्ण फल का हवन करना चाहिए। जम्बू तथा द्राक्षा का फल पूर्ण होना चाहिए। आम्र और बेर का फल पूर्ण होना चाहिए। पके कटहल के गूदे का हवन करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि बड़े फलों का खण्डशः तथा छोटे फलों का समग्र हवन करना चाहिए। कस्तूरी, कुंकुम, केशर, गुंजा (रत्ती) मात्र और तिल कम से कम १०० होने चाहिए। लवण और लाजा मुष्टिमित होना चाहिए। अन्न ग्रासमात्र, पक्वान्न भी ग्रासमात्र, पूगफल सम्पूर्ण, श्रीखण्ड सुपाड़ी भर अगर रत्तीभर के हवन से मनस्तोष होता है। इन द्रव्यों के मान से चतुर्गुण दधि दुग्ध का होम करना उचित है। शङ्कर के वचनानुसार तो– **'' सर्वासामाहुतीनां तु मानं देवि मनःप्रियम्॥''**

॥ कुण्डनिर्माण एवं पूजन॥

चौबीस अङ्गुल विस्तृत उतना ही गहरा और चतुरस्र तथा मेखला एक–एक अङ्गुल ऊपर तीन, एक बारह दूसरी आठ और तीसरी चार अङ्गुल ऊँची मेखला होनी चाहिए। मेखला की चौड़ाई चार अङ्गुल विस्तृत होनी चाहिए। कुण्ड के पश्चिम भाग में योनि का निर्माण करे। बारह अङ्गुल लम्बी, आठ अङ्गुल चौड़ी बीच मे षडङ्गुल, तथा दो अङ्गुल ऊँची होनी चाहिए। यह चतुरस्रकुण्ड का विधान है।

इसी प्रमाण से और कुण्डों की भी रचना करनी चाहिए। कुण्ड को गोबर (गाय के) व जल से लिप्त करना चाहिए। वेदी में पूर्व से पश्चिम तीन रेखा उसके ऊपर उत्तर से दक्षिण तीन रेखा बनायें। प्रणव से अभ्युक्षण करें। यागविष्टर कुश का याग का आसन है। उस पर मृत्तिका डाल कर त्रिकोण लिखे। त्रिकोण के ऊपर अष्टदल तथा भूपुर बनाकर पीठ की रचना करें। मण्डूक, रुद्र, कालाग्नि, आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त, वाराह, पृथिवी, स्कन्द नाल पद्म कर्णिका, पत्र और केशर, का पूजन करें। पीठ की चारों दिशाओं में धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य का अर्चन करें। चारों कोणों में अधर्म अज्ञान, अवैराग्य, एवं अनैश्वर्य का यजन करें।

प्रणव से पूजन करके यागविष्टर रखे। पुनः वेदमाता, वेदमस्तका, ऋतुमती की भावना करके पुरुषाधिष्ठित की भावना करके पूजन करें। तत्पश्चात् अग्नि को उत्पन्न करके उसका एक अङ्गार निकाल कर अस्त्रमन्त्र से कुण्ड के बाहर छोड़ें। अस्त्रमन्त्र से विघ्नों को त्रस्त कर अग्नि को प्रज्वलित करे। ज्ञानाग्नि अर्थात् स्वशरीरस्थ चिदग्नि को श्वासमार्ग से बाहर लाकर बाह्य अग्नि में मिला कर अग्नि की 'चित् पिङ्गल हन हन.....'' एवं 'अग्निं प्रज्वलितं वन्दे.....'' आदि मूलोक्त मन्त्रों से प्रार्थना करें।

अग्नि का भी गर्भाधानादि पञ्चदश संस्कार एवं अग्नि की सप्त जिह्वाओं का अर्चन करके अग्नि का षडङ्ग न्यास करे। स्वशरीर में भी षडङ्गन्यास करे। कुण्ड के चारों ओर कुश का परिस्तरण करें। अर्घ्योदक से पात्रप्रोक्षण कर धूप से धूपित करें। तीनों मेखलाओं पर दीपमालिका लगायें। व्याहृतियों से हवन, दक्षिण में ब्रह्मा का अर्चन करके उस अग्नि में श्रीयन्त्र की भावना कर महात्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करे। प्रधान देवता को दश आहुति दें। श्रीयन्त्र के आवरणदेवों का घृत से हवन करें। पुनः पूर्वोक्त पुष्पों फलों अन्नादि का होम करें। विशेष विधान दीक्षाप्रकरण में लिखा जायेगा।

।। अग्निवर्णों से सिद्धियाँ।।

यदि प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला पद्मराग वर्ण की हो, तो सर्वसिद्धि, गाढ़ी लाल हो या स्वर्णिम आभा हो, तो सर्वकामफलप्राप्ति, ज्वाला की आभा लोहित हो, तो शान्ति, धूम्रवर्ण की ज्वाला हो तो, स्तम्भन, कराली अग्नि ज्वाला से मारण होता है। विधिपूर्वक हवन से समस्त विघ्नों का नाश होता है, ऐसा शिव का वचन है। दीपस्थानादि का विवरण, हवनादि का भी विस्तृत विवरणक्रम दीक्षाप्रकरण में दिया जायेगा।

।। स्वच्छन्दसङ्ग्रह के अनुसार काम्यकर्म।।

एकान्त देश में सिन्दूरादि रक्त द्रव्यों से श्रीचक्र का निर्माण करके पात्रासादन करें। पूर्वोक्त रीति से पीठपूजन कर रक्तपुष्पों से आवरणपूजा करे। त्रितारी, सम्बद्ध देवता की गायत्री, एवं सम्बुद्ध्यन्त देवता का नाम लेकर **'वशमानय'** अथवा **'वशं कुरु वौषट्'** बोलकर **'अमुकदेवीश्रीपादुकां पूजयामि'** उच्चारण करे। इस प्रकार वशीकरण आकर्षण, स्तम्भन आदि षट्कर्मों की सिद्धि होती है। आवरण देवताओं की गायत्रियाँ **'श्रीविद्यार्णवतन्त्र'** के मूल में हैं। इसी क्रम से मूलाधारादि चक्रों में भावनात्मक पूजन से भी सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

।। श्री दक्षिणामूर्तिसंहिता के अनुसार श्रीचक्रसाधना।।

इसमें श्रीचक्रपूजन द्वारा अनेक सिद्धियों का वर्णन है। अष्टगन्ध बनाकर तिलक करने से वशीकरण एवं सम्मोहन होता है। पुष्प फलादि से भी सम्मोहन हो जाता है। विविध प्रकार के श्रीयन्त्रों का निर्माण करके विविध वस्तुओं से अर्चन द्वारा विविध सिद्धियों का विधान श्रीविद्यार्णवतन्त्र में पृ० २४० से २४२ तक वर्णित है। गुरुमुख से उनका ज्ञान प्राप्त करके काम्य प्रयोग करना चाहिए। अन्त में लिखा है कि मूलाधार में स्थित विसतन्तुसदृश कुण्डलिनी का शक्तिकूट में ध्यान करके जप करने से त्रिकूटा त्रिपुरादेवी सर्वसिद्धियाँ प्रदान करती हैं।

श्रीयन्त्र में चौसठ करोड़ महातेजस्विनी योगिनियाँ निवास करती हैं, जो श्रीयन्त्रार्चन से सिद्धि प्रदान करती हैं। अत: श्रीयन्त्र की विधिवत् पूजा से विविध सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। स्वच्छन्दसङ्ग्रह का वचन है कि — **'' चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्।**

चक्रमेतत्समाश्रित्य सतां सिद्धिप्रदाः सदा'' ।।

इस प्रकार श्रीविद्यावृन्दमन्त्रसमूहसम्पुटित श्रीविद्या के दश लाख पचास हजार प्रयोग बनते हैं। यह सब गुरुमुख से ही ज्ञातव्य है। इस गूढ़ विषय को शास्त्र एवं गुरु से ही जानना चाहिए।

।। वैदिकमन्त्रसम्पुटित श्रीविद्या के प्रयोग।।

सर्वप्रथम महागणपतिमन्त्र, पुनः वाग्भवकूट, पुनः 'यदद्य कच्च वृत्रहन्', पुनः पञ्चदशी कामराजकूट' पुनः 'उदगा अभिसूर्य' ततः पञ्चदशी का शक्तिकूट, पुनः 'सर्वं तदिन्द्र ते वशे' पुनः गणपति का अवशिष्ट मन्त्र, इस प्रकार 'सं समिद्युवसे' मन्त्र से पञ्चदशीकूट से सम्पुटित जप का विधान है। श्रीसूक्त की एक एक ऋचा का पञ्चदशी कूट से सम्पुटित जप करने से सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है। पुरुषसूक्त एवं रुद्रसूक्त मन्त्रों के पञ्चदशीसम्पुटित जपों से भी विविध सिद्धियों का वर्णन है।

इसके अनन्तर शास्त्रकार ने षोडशीदीक्षा, शक्तिदीक्षा, योनिकुण्ड आदि नव कुण्डों का वर्णन, चतुर्विंशति हस्तप्रमित मण्डप की रचना का वर्णन किया है। ये सभी विषय दीक्षाप्रकरण से स्पष्ट होंगे।

भगवती पार्वती के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शङ्कर पञ्चदशाक्षरी से सम्पुटित विशेष वैष्णव मन्त्रों के अनुष्ठानविधियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नारायण, वासुदेव, वाराह, वैष्णव, श्रीकण्ठ, नारसिंह गोपाल एवं कार्ष्ण मन्त्रों को पञ्चदशाक्षरी से सम्पुटित करके विधिपूर्वक जप एवं होम से विविध सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वेदमाता गायत्री 'जातवेदसे सुनवाम' इत्यादि पाँच ऋचायें, देवीसूक्त, श्रीसूक्त, शिवपञ्चाक्षर, अघोर, शरभ, प्रासाद, पाशुपत, दक्षिणामूर्ति, मृत्युञ्जय, दशाक्षर, सौरषडक्षर, घृणिमन्त्र, चतुरक्षर, त्र्यक्षर, षोडशाक्षर, द्वादशाक्षर, षडक्षर और अजपामन्त्र, शाक्तमार्ग में बाला, भैरवी, त्रिपुरवासिनी, सिद्धा, मालिनी, त्रिपुराम्बा, बौद्धमत में पद्मावती, उग्रतारा, तारा, नीलसरस्वती, मातङ्गी सुमुखी चण्डमातङ्गिनी, ऊर्ध्वाम्नायक्रम से दो दो विद्यायें मूलविद्या षोडशी और दीक्षामन्त्र, शुक्ल—रक्त प्रभामिश्र, चरणद्वय, विश्रान्ति में तीन चरण, शम्भु की दो चरणविद्या, परा और पराप्रासाद, पञ्चब्रह्मात्मक मन्त्र पञ्चतारोत्थ

अष्टात्रिंशत्कला, एकाक्षरगणपति, वक्रतुण्ड, लक्ष्मीगणपति, हेरम्बगणपति, विरिगणपति, शक्तिगणेश, दक्षिणाकालिका के एकाक्षर एवं त्र्यक्षर सिद्धिकाली का षडक्षर, चतुर्दशाक्षर और अष्टाक्षर दो दशाक्षर तारा षोडशी अष्टतारा, त्र्यक्षरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरालक्ष्मी, वाक् काम, पञ्चदशाक्षरी के त्रि, चतु:, पञ्च, षष्ठ, सप्त, अष्टकूटा, पञ्चमीविद्या, पीताम्बरा, वाराही, दुर्गा, महिषमर्दिनी, शूलिनी, वनदुर्गा, जयदुर्गा, नवार्ण, शान्ति अग्नि, लवणदुर्गा अतिदुर्गा, गायत्री, पञ्चायतन भेदों से, सौरादि पाँच पूर्वोक्त सम्प्रदायों के मन्त्र, वैष्णव मन्त्रों में अष्टादशाक्षरी को छोड़कर सभी मन्त्र, तुरीया गायत्री शैव में पाशुपतमन्त्र को छोड़कर त्र्यम्बकमन्त्र, सौर में अष्टाक्षर को छोड़कर 'उद्वयन्त:' मन्त्र लगाना चाहिए। गाणपत्य में 'गणानां त्वा' को छोड़कर उच्छिष्टगणेश, इसी प्रकार के शाक्तमन्त्रों में भी प्राग्वत् दीक्षा, होम जपादि की योजना करनी चाहिए। शाक्त में सम्यक् प्रकार से कहा जा रहा है कि चक्रेश्वरी, षट्शाम्भव मन्त्रों का अङ्गागिभाव है।

त्र्यक्षर चतुरक्षर एकाक्षर सिद्धलक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी, उनके तीनों भेद, इनको मिलाकर, परस्पर अङ्गाङ्गिभाव है। अन्य विद्याओं व मन्त्रों के भेद से परस्पर अङ्गाङ्गि (तादात्म्य) भाव करके तत्तत्कर्मों को करने का अधिकार है।

॥ पञ्चायतनपूजा में अङ्गाङ्गिभाव॥

महागणेश मन्त्र एवं घृणिमन्त्र से युक्त पराप्रासाद और लक्ष्मीनारायणमन्त्र का संयोजन करके षोडशाक्षरी दीक्षा में जप–पूजन से तत्तत् कार्य सम्पन्न होते हैं। दक्षिणकालिका तारा और छिन्नमस्ता में विशेषता है। मार्त्तण्डभैरव, मञ्जुघोष, उच्छिष्टगणनाथ, बालमुकुन्द, भुवनेश्वरी, महादेवी, सभी वैष्णव, गाणपत्य सौर एवं शैव विशेष करके भैरवी, बगला, चण्डा, मातङ्गी अपराजिता, इनकी दीक्षा, जप पूजन विशेष कर पञ्चायतन मन्त्रों में तारा की तरह दुर्गा, भुवनेश्वरी, महालक्ष्मी आदि अन्य देवताओं का स्वसम्प्रदायानुसार देशिकोत्तम गुरु योजना करके पूजन करे। मालिनीमत का यह विवरण विशेषत: कुलार्णव तन्त्रोक्त है।

विभिन्न वैदिक तान्त्रिक वैष्णवादि मन्त्रों एवं देवताओं का तादात्म्य मूल ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। अत: मन्त्रों का संयोग तादात्म्य सिद्धान्त के अनुसार निश्चय करके ही करना चाहिए। ऐसा भगवान् शिव का कथन है। स्वेच्छया मन्त्रसंयोग निषिद्ध है। उससे विपरीत फल होता है। अत: पृ० २४५–२४६ तक उक्त नियमों का अनुशीलन अवश्य कर्त्तव्य है। हमने संकेत मात्र किया है। इस पर अग्रिम विवेचन द्रष्टव्य है।

कादिमत में तन्त्रराजतन्त्र के मतानुसार षट् अष्ट, द्वादश अक्षरों के वैष्णव मन्त्रों के परतत्त्वार्थ–वाचक होने से अभेद (तादात्म्य) है। ललिताविद्या के प्रासाद मन्त्र पराप्रासाद, और गायत्री, व्याहृति, एवं महावाक्य, परमात्मा अजपा एवं प्रणवों का ऐक्य (तादूप्य) होने से अभेद (तादात्म्य) है। इस प्रकार स्वसम्प्रदाय एवं गुरुक्रम से ज्ञान करके ही साधना में प्रवृत्त होना चाहिए।

॥ वैष्णवमन्त्रों का जप–विधान॥

इनके ऋषि, षडङ्ग न्यास व ध्यान मूलोक्त ही हैं। इनके अष्टाक्षर वाराहमन्त्र भी मूल में उक्त हैं।

अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र भी मूलोक्त है। श्रीकर मन्त्र के ध्यान न्यास व जपादि विधान भी मूल में ही उक्त हैं। षोडशाक्षरी के साथ इनकी योजना की जा सकती है। इसके पश्चात् नृसिंह मन्त्र भी मूलोक्त है और अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र की भी लोपामुद्रा विद्या के साथ योजना की जा सकती है। इसके पुरश्चरण जपादि न्यास ध्यान सब मूल में ही प्रतिपादित हैं। मूल के एकादश श्वास के पृ० २४५ से २६० तक का सार यही है। विस्तार मूल में द्रष्टव्य है।

।। षड्दर्शनमन्त्र।।

प्रथम, ब्रह्मगायत्री, एवं अन्य षड्दर्शनों के मन्त्र मूल में हैं। कुलार्णवतन्त्र के मतानुसार २४६ पृष्ठ श्लोक १–३५ में सभी देवताओं का पूर्व में वर्णन आया है। उनके मन्त्र ऋष्यादि करादि षड्ङ्ग न्यास ध्यान व मूल मन्त्रों का पञ्चदशाक्षरी से नियोजन करने का विधान मूल में स्पष्ट है। विस्तारभय से यहाँ एतावन्मात्र सङ्केत किया है। जिज्ञासु मूल का परिशीलन करें।

पृ०सं० २६१–६२ में महाषोडशी से उपदिष्ट साधकों के लिए षोडश मूल विद्याओं का मूल एवं टिप्पणी में उल्लेख है। इसी में चतुराम्नाय दीक्षा तथा तदनुसार कुण्ड निर्माणविधि का भी वर्णन किया गया है। भुवनेश्वरी के विभिन्न मन्त्र, त्रिविध त्रिपुटामन्त्र, जाग्रदादि पञ्च अवस्थाओं का भी वर्णन है। यथावत् इसकी षोडशी के साथ योजना भी मूल में वर्णित है।

।। आम्नायदेवतादिङ्निश्चय।।

उत्तरतन्त्रानुसार ऊर्ध्वाम्नाय की दीक्षा में पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तराम्नायों के देवता अङ्ग रूप से कहे गये हैं। एक–एक आम्नाय की दो दो विद्याओं का अभ्यास करना चाहिए। पूर्व एवं आग्नेय कुण्डों के मध्य ऐन्द्री पूर्वाम्नाय विद्या, याम्य दिशा एवं याम्य नैर्ऋत्य के मध्य में दक्षिणाम्नाय विद्या, पश्चिम एवं वायव्य कोण में वारुणी, एवं पश्चिमाम्नायविद्या, उत्तर ईशानकोण में उत्तरदिशासम्भूत, उत्तराम्नाय विद्याओं का कुण्डविधान करना चाहिए।

कुलार्णव तन्त्रानुसार पूर्व कोण में भैरवी, आग्नेय कोण में भुवनेश्वरी, दक्षिण में पीताम्बरा या भोगिनी, नैर्ऋत्य कोण में वाराही, पश्चिम में अपराजिता, वायुकोण में भवानी एवं उत्तर में श्यामातारा, की स्थापना करना चाहिए।

पञ्चकुण्डात्मकपक्ष में चार समयदेवता एवं चार आम्नाय विद्याओं का प्रयोग करना चाहिए। इसका विस्तार भी मूल में ही निर्दिष्ट है।

पराप्रासाद, लक्ष्मीनारायण, चिदम्बरमहामन्त्र, पक्षी–शरभ, षट्शाम्भव, महामृत्युञ्जय, लक्ष्मीजनार्दन, लक्ष्मीवासुदेव, राजराजेश्वर, पञ्चमुखहनुमान्, मार्त्तण्डभैरव, महागणपति, उच्छिष्टगणपति, वक्रतुण्ड, श्रीसंयुक्त गाणपत्य, सीताराम, नृसिंह, पञ्चबाण, पञ्चकला, जैन, बौद्धादि, शम्भु के ऊर्ध्वमुख से निर्गत शिवपञ्चाक्षरी भेद, प्रासाद एवं शिवमन्त्र, विष्णु के अष्टाक्षरी भेद, वासुदेव संज्ञक मन्त्रभेद, गाणपत्य के एकाक्षर भेद, घृणिमन्त्र, पूर्वाम्नाय के अन्तर्गत हैं।

वाराह, तुम्बुरु, हरिद्रागणपति, बटुक, क्षेत्रपाल, शास्तृमन्त्र, नृसिंहमन्त्र, हरिहरात्मक मन्त्र, कृष्णमन्त्रभेद, दधिवामनमन्त्र, **दक्षिणाम्नाय में विख्यात हैं।**

उच्छिष्ट, अणुभेद मन्त्र, पुरुषोत्तमसंज्ञक, मालामन्त्र, अघोररुद्रमन्त्रभेद, अन्यान्य बौद्धमन्त्र, **पश्चिमाम्नाय के रूप में विख्यात हैं।** दक्षिणामूर्ति, ग्रह, लोकपालों के मन्त्र, चण्डेश्वर बेताल, चेटक, एवं अन्यान्य हरिहरात्मक मन्त्र, वीरभद्र–सुब्रह्मण्यादि मातृपुत्र, **उत्तराम्नाय के रूप में विख्यात एवं शीघ्र फलप्रद हैं।**

।। आयतनपूजा–मीमांसा।।

आयतन का अर्थ चतुरायतन है। वे मध्यवर्त्ती स्वेष्ट देवता के अङ्ग होते हैं। भगवान् शङ्कर पार्वती से कहते हैं कि भक्ति भेद से पञ्चायतनों की स्थापना की विधि कहता हूँ। सूर्य, गणेश, विष्णु, शक्ति एवं शिव आदि के आयतनों में प्रधान इष्ट केन्द्र में तथा अन्यान्य सहायक होते हैं। शङ्कर के पूजन में सूर्य, विनायक (गणेश) शक्ति विष्णु, विष्णु की अर्चा में गणेश, सूर्य, अम्बिका एवं शिव, शिव गणेश विष्णु कात्यायनी, सूर्यपूजा में तथा शिव सूर्य भवानी एवं विष्णु गणेशार्चा में आग्नेय आदि कोणों से अङ्गाङ्गी भाव से स्थापनीय हैं। इन क्रमों के प्रतिकूल स्थापना और पूजा दुःखप्रदा हैं।

सभी पञ्चायतनों की देवपूजा में तत्तत्पूजारूपी चक्र उद्धृत करके तत्तत्कल्पोक्त विधि से तत्तत्पीठपूजापूर्वक पञ्चायतन देवताओं की पूजा ही श्रेयस्करी है। अन्यथा पूजा निष्फल होती है।

कुलार्णवतन्त्र के कथनानुसार यन्त्ररूप देव की यन्त्रव्याप्ति को न जानते हुए की गयी उपासना व्यर्थ होती है। यन्त्र मन्त्रमय होता है तथा देवता मन्त्रस्वरूपिणी होती है। यन्त्र में पूजित परमेश्वरी सहसा कृपा कर देती है। कामक्रोधादि दोषों के कारण उत्पन्न होने वाले दुखों का नियन्त्रण करने के कारण ही **'यन्त्र'** संज्ञा सार्थक है। **'यन्त्रणात् यन्त्रम्'**। यन्त्र में पूजित देवता प्रसन्न होते हैं। जैसे दीपक में घृतादि होते हैं एवं शरीर में जीव रहता है, वैसे ही यन्त्र देवता का विग्रह है। अतः यन्त्र को लिखकर और ध्यान करके देवताओं का यजन करना चाहिए अर्थात् जिस देवता का यन्त्र हो, उस यन्त्र में उसी की पूजा करनी चाहिए। अन्य के आवाहन एवं अन्य देवता की पूजा से चंचलमनस्क साधक को दोनों देवता शाप देते हैं। एक पीठ में अनेक देवता होते हैं। जिस देवता का यन्त्र हो, उसमें उसकी ही पूजा करनी चाहिए। सभी पूज्य देवताओं के पृथक्–पृथक् यन्त्र होने चाहिए। विधिपूर्वक सभी का आवरणार्चन करना चाहिए। एक यन्त्र में एक देवता का आवाहन करके दूसरे देवता के आवाहन पूजन से दोनों देवता शाप देते है। अतः पीठ में गुणप्रधानभावानुसार देवताओं की सावरण पूजा ही श्रेष्ठ एवं भुक्तिमुक्तिप्रदा है। कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि खण्डित स्फुटित, दग्ध, भ्रष्ट, मानवर्जित (प्रमाण रहित) अशुद्ध तथा अनर्ह पशुस्पृष्ट, दूषितभूमि में पतित, अन्यमन्त्रार्चित, पतितस्पर्श से दूषित, अर्थात् अस्पृश्यस्पृष्ट अतएव दूषित, इन दश स्थितियों में देवता यन्त्र (या मूर्ति) का त्याग कर देते हैं।

।। दिग्–देवता–विधान।।

पञ्चायतनपूजा में भी (स्वगुरुपरम्परा) सम्प्रदाय के अनुसार पूज्य-पूजक के मध्य में पूर्व दिशा की कल्पना

तदनुसार आग्नेय वायव्यादि कोणों की कल्पना करके चतुराम्नाय देवताओं की अर्चा करनी चाहिए। धर्मादि की पूजा में भी उक्त युक्ति उचित है।

इस विषय पर कुछ आचार्यों का कथन है कि ''प्रधान देवता के आवाहन के पश्चात् उसकी आवरणपूजा के लिए देवता के आगे पूर्वदिशा की कल्पना हो सकती है। उसके पूर्व ही चतुरायतन देवताओं का पूजन करणीय होने के कारण पूर्व दिशा की कल्पना निरर्थक है। अत: यथास्थित आग्नेयादि दिशाओं में ही चतुरायन देवताओं की पूजा करनी चाहिए।''

किन्तु 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र'कार के मतानुसार काम्यपूजा में दिशाओं का विधान स्पष्ट है–

पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा वश्यकर्मणि पूजयेत्।
दक्षिणाशामुखो भूत्वा मारणे पूजयेत् प्रिये।।
पश्चिमाभिमुखो भूत्वा पूजयेद् धनसिद्धये।
उत्तराभिमुखो भूत्वा शान्तिकर्मणि पूजयेत्।।

ये दोनों श्लोक ब्रह्मयामल से 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र' (११। २६४) में उद्धृत हैं। 'कुलमूलावतार' में स्पष्ट विधान है कि– ''अग्निराक्षसवायव्यशम्भुकोणमुखोऽर्चयेत्''। अनेकानेक अन्य तन्त्रग्रन्थों में भी इसी प्रकार दिग्विधान होने के कारण, यथास्थित दिशाक्रम से पूजा में ईशानकोण में कदाचित् प्रधान देवता के वामभाग में कदाचित् दक्षिण दिशा में, कभी पृष्ठ भाग में, कभी सामने स्थिति अनियत होने से यथास्थित आग्नेयादिकोणों में स्थापन सम्भव न होने के कारण, प्रधान देवता का पीठपूजन सम्पन्न होने के पश्चात् ही चतुरायतन देवता का पूजन होने से पीठपूजा में भी धर्मादिपूजन में कल्पित पूर्वदिशा के अनुसार ही आग्नेयादि की कल्पना से तथा चतुरायतन देवताओं के अङ्ग होने के कारण प्रधान देवता की मूर्ति कल्पित होने से उसके आगे (सामने) प्राची आदि की कल्पना उचित है।

कुछ आचार्यों का तो कथन है कि ''तान्त्रिक दीक्षा प्राप्त साधकों को नारायणीय तन्त्र के अनुसार–

''शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करे-
भास्येनागसुता, रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः।
देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेश्वरे-
नार्याः शङ्करमार्गतो हि सुखदा व्यस्तास्तु ते दुःखदाः।।''

अर्थात् कल्पित प्राची (पूर्व) के अनुसार मध्य के ईशानादि कोणों में इष्टदेवता एवं अन्य चारों देवताओं की स्थापना कर्त्तव्य है। तान्त्रिकदीक्षारहित उपासकों एवं साधकों को भी पञ्चायतन देवोपासना की आवश्यकता का भविष्यपुराण में विधान निर्दिष्ट होने के कारण वैदिक, स्मार्त्त अथवा पौराणिक में किसी भी एक विधि का अनुसरण करते हुए यथास्थित ईशानादि कोणों में तथा मध्य में पञ्चायतन देवताओं की स्थापना करनी चाहिए।

किन्तु श्रीविद्यारण्ययति जी इस मत का खण्डन करते हुए उपर्युक्त आचार्यों के मत को असङ्गत

घोषित करते हैं, क्योंकि उन पाँचों के मध्य में एक में भी इष्ट देवता की भावना न होने से किसी की भी प्रधानता अनुपपन्न होने के कारण मध्य में स्थापना सम्भव न हो सकेगी। किन्तु

रविर्विनायको विष्णुश्चण्डिकेशश्च पञ्चमः।
अनुक्रमेण पूज्यास्ते व्युत्क्रमेण भयावहा।।

इस वचन के अनुसार 'पुराणसारसमुच्चय' में उन पञ्चायतन देवताओं का यजनक्रम उक्त है। यहाँ स्पष्ट है कि गणेशव्यतिरिक्त अन्य चारों देवोपासकों को उपर्युक्त क्रम से देवताओं की स्थापना करके गणेश से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्यक्रम प्राप्त चारों देवताओं की पूजा करके मध्य में स्वेष्ट देवता की पूजा करनी चाहिए।

गणेशोपासकों को सूर्य से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणाक्रम से प्राप्त चारो देवों की पूजा करके मध्य में गणेश की पूजा करनी चाहिए। यही आगमप्रतिपादित सिद्धान्त है।

यहाँ कतिपय आचार्यों का कथन है कि "पञ्चायतन पूजन में देवी के उपासकों को सूर्य गणेश शिव विष्णु की पूजा करने के पश्चात् अन्त में देवी की पूजा करनी चाहिए। ऐसा स्मृति सिद्धान्त है।" किन्तु यह असङ्गत है क्योंकि प्रादक्षिण्य अनुपपन्न है। क्रम का भी लाभ नही होगा तथा अस्तव्यस्त क्रम हो जायेगा।

वास्तव में योगिनीतन्त्र में देवीपूजा में पञ्चायतनपूजाक्रम स्पष्ट है। कहा है— **'गणेशसूर्य विष्णवीश-दुर्गां आवाह्य पूजयेत्'**

भैरवीतन्त्र में भी—

"आदौ गणपतिं देवं सूर्यं विष्णुमुमापतिम्।
दुर्गां च पूजयेद् विद्वान्।। "

इस प्रकार पञ्चायतन पूजाक्रम प्रतिपादित होने के कारण यही तन्त्रपरम्परा का निर्णयभूत सिद्धान्त है। यही सत्य एवं सम्प्रदायसिद्ध भी है।

अन्य देवोपासकों को भी गणेशादि क्रम का अवलम्बन करना चाहिए। शास्त्र का सिद्धान्त है कि एक स्थान पर निर्णीत न्याय अन्यत्र भी आश्रयणीय होता है। अतः पञ्चायतनपूजा का यही सिद्धान्त सर्वमान्य है। ऐसा न करने पर प्रत्यवाय होता है।

भविष्यपुराण का कथन है कि —

"शिवं भास्करमग्निं च केशवं कौशिकीमपि।
मनसा नार्चयन् याति स्वर्गलोकादधोगतिम्।।"

'मनसाप्यनर्चयन्' यह महत्त्वपूर्ण है। अग्नि गणेश है—

"यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते ।।"
पावकः कार्त्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः।।

इस प्रकार भविष्योत्तरपुराण में अभेद प्रतिपादन है। किसी भी देवता में भेद नहीं करना चाहिए। मध्यस्थापितमूर्त्ति में स्वेष्ट देवता का आवाहन कर पूजन करना चाहिए। ध्यानश्लोकों में उक्त स्वरूप ही मूर्त्ति है।

शिवलिङ्ग एवं शालग्राम शिलाओं में भी ध्यानोक्त मूर्त्तियों की भावना की जा सकती है। शालिग्राम एवं शिवलिङ्ग में सभी देवताओं की पूजा हो सकती है।

तेषां लिङ्गमणौ कुम्भे मण्डले च प्रपूजनम्।
शालग्रामे च तद्बुद्ध्या यन्त्रादौ च प्रपूजयेत्।।
भूमावेव कृता पूजा पुत्रायुर्धननाशिनी।।''

यह रुद्रयामल में प्रतिपादित है। सोमशम्भु का भी कथन है कि–

''शालग्रामशिलायां तु तत्तद्बुद्ध्या समर्चयेत्।।''

अर्थात् शालग्राम शिला में तत्तद्बुद्धि से सभी देवों की पूजा सम्पन्न की जा सकती है। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार–

''लिङ्गस्थण्डिलयोर्वह्नौ सूर्यकुड्यपटेषु च।
मण्डले फलके मूर्ध्नि हृदये दश कीर्त्तिताः।।''
एषु स्थानेषु देवेशि यजन्ति परमं शिवम्।।''

यहाँ शिव पद उपलक्षण से अन्य देवों का भी ज्ञापक है। पञ्चायतन देवों की भी इसी प्रकार पूजा सम्भव है। रुद्रयामल के उपर्युक्त उद्धृत वचन में 'यन्त्रादौ' पद प्रतिमादिपरक भी है। **'तेषां'** बहुवचन, पञ्चायतनस्थ सर्वदेवपरक है। त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्र के कथनानुसार तत्तद्ध्यानोक्त रूप मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिए–

''शालग्रामे मणौ यन्त्रे स्थण्डिले प्रतिमासु च।
हरेः पूजा तु कर्त्तव्या केवले न तु भूतले।।''

।। प्रतिमा का प्रमाण।।

श्री विद्यारण्ययति प्रतिमा के मान के सम्बन्ध में 'कपिलपाञ्चरात्र' का प्रमाण उद्धृत करते हुए कहते हैं कि –

''मात्राङ्गुलप्रमाणेन दश पञ्चदशाङ्गुला।
गृहे तु प्रतिमा पूज्या नाधिका तु प्रशस्यते।।''

अर्थात् घर में पूजनीय देवप्रतिमा दश अङ्गुल या पञ्चदश अङ्गुल की होनी चाहिए। **हयग्रीव पाञ्चरात्रागम** का इस सम्बन्ध में कथन है कि–

''दशाङ्गुलप्रमाणा सा तिथ्यङ्गुलमिताथ वा।
अभ्यर्च्या प्रतिमा विष्णोर्गृहेषु गृहमेधिभिः।।''

अर्थात् गृहमेधी की पूजा में दश या पन्द्रह अङ्गुल अर्थात् दश अङ्गुल से पन्द्रह अङ्गुल तक ऊँची प्रतिमा होनी चाहिए। ऐसा सम्प्रदाय है। मात्राङ्गुलप्रमाण मण्डपनिर्माणप्रकरण में स्पष्ट है। श्रीचक्रनिर्माण के प्रसंग में भी अङ्गुलप्रमाण अष्टमश्वास में स्पष्ट किया गया है।

॥ शिल्पशास्त्रानुसार शिवलिङ्गनिर्माणविधि॥

कालोत्तर तन्त्र के मतानुसार एक अङ्गुल से एक वितस्ति पर्यन्त घर में प्रतिमा होनी चाहिए। मन्दिर में इससे बड़ी प्रतिमा भी हो सकती है। लिङ्गनिर्माण के विषय में शैवागम के मतानुसार :—

लिङ्गमस्तकमध्यात्तु सूत्रं स्यादाप्रणालकम्।
लिङ्गप्रणालिपुष्टत्वं तावदेव प्रकीर्तितम्॥
उच्चत्वे च तथा पीठे पञ्चसूत्रं प्रचक्षते।
पञ्चसूत्रसमायुक्तं शिवलिङ्गं प्रपूज्यते ।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव धनारोग्यसुखप्रदम्॥

एक अङ्गुल से एक वितस्ति पर्यन्त लिङ्ग की घर में पूजा करनी चाहिए। कालोत्तर एवं शैवागम ग्रन्थों में शिवलिङ्ग निर्माण प्रकार विस्तार से दर्शनीय है। अङ्गुल का मान श्रीयन्त्रनिर्माणविधि में द्रष्टव्य है। लिङ्गप्रतिष्ठा की विशेषविधि तत्तदागम ग्रन्थों में द्रष्टव्य है।

॥ इस प्रकार श्री अनन्तानन्दनाथ-शिष्य उमानन्दनाथ-शिष्य षोडशानन्दनाथ-शिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के एकादश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई॥ ११॥

द्वादश श्वास
भाव—विवृति
श्रीचक्र-निर्माण विधि

द्वादश श्वास का प्रारम्भ श्रीचक्रनिर्माण से होता है।

अष्टम श्वास में अनेक तन्त्रों के प्रमाण से विस्तारपूर्वक श्रीचक्र निर्माण का विधान लिखा गया है। वहाँ ग्रन्थकार ने कहा है कि श्रीचक्र के अनेक भेद हैं। उनको आगे कहेंगे। उसी को यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं।

श्रीचक्र तीन प्रकार का होता है— १. सृष्टि, २. स्थिति, ३. लयात्मक। पुनः इन तीनों के साङ्कर्य (मिश्रण) से मूल भेद नौ होते हैं। पुनः उनके अनेक भेद होते हैं। भेदों का स्वरूप परिगणन इस प्रकार है—

१. सृष्टि—सृष्ट्यात्मक, २. स्थिति—स्थित्यात्मक, ३. लय—लयात्मक, ४. सृष्टि—स्थित्यात्मक, ५. स्थिति—सृष्ट्यात्मक, ६. सृष्टिलयात्मक, ७. लयसृष्ट्यात्मक, ८. स्थितिलयात्मक ९. लयस्थित्यात्मक ये नौ भेद हुए। पूर्व के तीन भेदों को मिलाकर कुल बारह भेद हैं। इसका विवेचन इस प्रकार है —

श्रीसृष्टिचक्र उन्नत या मध्यभाग पर्यन्त (ऊपर से या नीचे से ऊपर) उन्नत होता है, ऐसा श्रेष्ठ देशिकों को जानना चाहिए। श्रीचक्र सृष्टिसृष्ट्यात्मक तब होता है, जब प्रत्येक रेखा उन्नत हो। समान पीठ में समान माप की नौ रेखायें हों, तब उसे स्थिति चक्र कहते हैं और रेखायें सूक्ष्म हों, तो उन्हें स्थिति-स्थित्यात्मक कहते हैं। जब रेखायें सूक्ष्म एवं पाताल (नीचे) की ओर हों, तो उन्हें लयात्मक कहते हैं। परन्तु जब नीचे दबी हुई होकर भी स्थूल हों उन्हें लयलयात्मक कहते हैं।

हे देवि, अर्ध-मेर्वात्मक श्रीचक्र दो प्रकार का प्रसिद्ध है। इसमें आधा क्रमशः उन्नत होता है और उसके बाद का आधा सम होता है। जब अर्ध भाग उन्नत और उससे बाद की रेखायें सम हों, तो उसे सृष्टिस्थित्यात्मक कहते हैं। जो तीन चक्र क्रम से उन्नत हो और उसके ऊपर की रेखायें निम्न और सम हों तो उसे सृष्टिलयात्मक और उससे विपरीत को लयसृष्ट्यात्मक कहते हैं। आधी रेखायें पाताल रेखायें हो और शेष आधी ऊर्ध्व रेखायें हों, तो उन्हें लय-स्थित्यात्मक और इसके विपरीत हो, तो उन्हें स्थितिलयात्मक जानना चाहिए।

गृहस्थों के लिए स्थिति-स्थित्यात्मक श्रीचक्र प्रशस्त माना गया है। यह आयु, कीर्ति, धन, आरोग्य, पुत्र, पौत्रादि को बढ़ाने वाला होता है। सृष्टिस्थित्यात्मक श्रीचक्र श्रीप्रदान करता है, किन्तु सन्तान नहीं। पचास वर्ष के बाद पुत्र पौत्रादि देनेवाला होता है। स्थिति-सृष्ट्यात्मक श्रीयन्त्र पुत्र, आयु और धन की वृद्धि करता है, किन्तु पचास वर्ष के बाद सन्तान का नाश करता है। हे महेश्वरि! श्रीचक्र के जो और भेद कहे गये हैं, वे यतियों वैखानसों एवं ब्रह्मचारियों के लिए हैं।

उत्तर-तन्त्र में कहा गया है कि— कल्याण चाहने वाले पुरुष को कूर्म पृष्ठ पर बने श्रीयन्त्र की पूजा नहीं करनी चाहिए। अतः हर प्रकार के उपाय से परीक्षा करके ही श्रीयन्त्र का पूजन करे।

सृष्टिचक्र में पूजा सृष्टिपर्यन्त, स्थिति चक्र में स्थितिपर्यन्त और संहार चक्र में लय (संहार) पर्यन्त होती हैं। गुरु परम्परा से या पिता अथवा भाई क्रम से प्राप्त, अथवा श्रीगुरु प्रदत्त या श्रीगुरु के ज्येष्ठ या कनिष्ठ के द्वारा प्रदत्त अथवा भाग्यवश ऐसा मन्त्र यदि साधक को प्राप्त हो जाय, तो हे परमेश्वरि! उसे उस श्रीयन्त्र पर स्थिति पर्यन्त ही पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार पूजन से दुष्ट यन्त्र भी उक्त फलों को देने वाला होता है, अन्यथा नहीं। यदि पूर्वोक्त परिस्थितियों से ऐसा दुष्ट यन्त्र मिल जाय, तो उस पर पहले संहार क्रम से पुनः सृष्टिक्रम से फिर स्थिति क्रम से पूजा करनी चाहिए। तब वह श्रीयन्त्र शुभ फलदाता होता है।

दीक्षा—पूर्णाभिषेक के अंगभूत कुण्ड तथा मण्डप निर्माण विधि

(क) दीक्षाङ्गभूत मण्डप रचना के लिए दिक् साधन (प्राची आदि दिशाओं का ज्ञान) दिव्य सारस्वत तन्त्र के अनुसार इस प्रकार है—

जब आकाश निर्मल हो, तब खुली समतल भूमि में छः अंगुल मोटी बारह अंगुल लम्बी नुकीली कील को कहीं समभूमि में एक बिन्दु बनाकर उसके चारों ओर बारह अंगुल का वृत्त बना कर गाड़ दे। सूर्य उदय के समय उसकी छाया जहाँ पड़ेगी, वह पश्चिम होगा। उसी के ठीक सामने पूर्व होगा। पूर्व पश्चिम के गोलार्ध को नाप कर आधा करने पर दक्षिण भाग में दक्षिण और उत्तर भाग में उत्तर होगा। इसका सूक्ष्म विधान यह है कि उत्तरायण में प्राची दिशा उत्तर की ओर और दक्षिणायन में दक्षिण की ओर झुकी होगी। (अब तो बिना किसी प्रपंच के ध्रुवयन्त्र (कुतुबनुमा) के द्वारा तत्काल प्राची आदि दिशाओं का निर्णय हो जाता है।) अतः प्राची के निश्चय के बाद जितना व्यास अभीष्ट हो, उसकी दूनी रस्सी लेकर बीच से मोड़कर शंकु में फँसाकर व्यासार्ध अंकित करें। पुनः दूसरे व्यासार्ध को स्थापित करें। चारों दिशाओं को चिह्नित करने के बाद उन चिह्नों को सरल रेखाओं से स्पर्श कराते हुए रेखाओं का निर्माण करें। तो चतुरस्र क्षेत्र बन जायेगा।

मण्डपनिर्माण विधि

उस क्षेत्र में पुण्याह वाचन करके मण्डप की रचना करे। मान के अनुसार मण्डप तीन प्रकार के होते है, उन्हें उत्तम, मध्यम और अधम या ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ कहते हैं। सोलह या अट्ठारह हाथ लम्बा चौड़ा उत्तम होता हैं। कुछ लोग बीस हाथ लम्बे चौड़े को उत्तम कहते हैं। बारह या चौदह हाथ वाले को मध्यम और दश हाथ वाले को अधम कहते हैं। कुछ लोग नव, सात या पाँच हाथ लम्बाई—चौड़ाई वाले को अधम कहते हैं।

उन पर चारों कोनों पर चार खम्भे, द्वार के निमित्त बीच—बीच में दो खम्भे इस तरह बारह खम्भे लगाने चाहिए। मध्य में जहाँ हवन कुण्ड या पूजा वेदी बनेगीं, वहाँ अपेक्षाकृत कुछ बड़े चार खम्भे लगाने चाहिए। इस प्रकार सोलह खम्भों से चार द्वार वाला सुन्दर मण्डप बनता है। द्वार की चौड़ाई दो हाथ आठ

अंगुल की और ऊँचाई पाँच हाथ की उत्तम मानी गयी है।

यजमान के द्वारा दोनों हाथ अंगुलियों सहित फैलाने पर जितनी लम्बाई होती है, उसके तिगुना मण्डप सूत्र बनाना चाहिए। इससे पूर्वादि दिशाओं से नाप कर मध्य भाग में वेदी बनानी चाहिए। जिसे ईटों से या मिट्टी से इस प्रकार बनाना चाहिए कि दर्पण के समान चिकनी और चमकदार हो। वेदी के कोण में लगे चार स्तम्भ चारों वेदों के प्रतीक हैं। खम्भे लकड़ी या बाँस के हों, परन्तु उनकी मोटाई एक जैसी हो, मध्यभाग में तोरण लगाने चाहिए। चारों दिशाओं में तोरण लगाने के बाद घण्टा आदि से सुशोभित पाँच हाथ का ध्वज लगावे। उसका दण्ड दस हाथ का होना चाहिए। तदनन्तर लोकपालों की बारह अंगुल लम्बी उन-उन की मूर्तियों वाली तथा उनके वाहनों वाली दो-दो पताकायें लगाये, जिसमें उनके आयुध भी बने हों। उनके रंग पीत, रक्त, श्याम, धुएँ जैसा मटमैला, हल्का सफेद एवं पूर्ण श्वेत हों। उनके नीचे चँदोवा लगावे और खम्भों को सुन्दर वस्त्रों से ढँक दे। आम्र पल्ल्व एवं मालाओं से द्वार को अलंकृत और सुशोभित करे। मुख्य द्वारों पर शिव यज्ञ में त्रिशूल एवं विष्णु यज्ञ में शंख, चक्र, गदा पद्म लगाने का विधान है।

उत्तरतन्त्र के अनुसार एक सौ बीस हाथ का मण्डप उत्तम होता है। वैसे एक सौ आठ हाथ का या इक्यासी हाथ का, बहत्तर हाथ का, साठ हाथ का चालीस हाथ का, छत्तीस हाथ का, सत्ताइस हाथ का या चौबीस हाथ का मण्डप बनावे। मण्डप को चतुरस्र, वृत्त, षट्कोण, अष्टकोण, त्रिकोण अष्टपत्राकार, नवकोण, द्विकोण, पंचकोण, सप्तकोण, एकादशकोण, द्वादशकोण, षोडशकोण, अष्टादशकोण, बीसकोण, चौबीसकोण, सत्ताइसकोण, बत्तीस, छत्तीस एवं अड़तालिस कोण का बनावे तथा मण्डप को मत्स्याकार, ध्वजाकार, शूर्प, कुन्त, असि, श्रृङ्गाटक धनुष, मुद्गर की आकृति का बनावे। मण्डप की तरह काम्य प्रयोगों को ध्यान में रख कर विशेष रूप से उन-उन कुण्डों का निर्माण करें।

यहाँ जितने मण्डप कहे गये हैं, उतने ही कुण्डों के भी भेद जानना चाहिए। पूर्णाभिषेक आदि में चौबीस हाथ वाले जो कुण्ड मण्डप बताये गये हैं, उन्हें बनाना चाहिए। चौबीस, बीस, अठारह, सोलह हाथ के चार मण्डप उत्तम हैं। चौदह और बारह हाथ वाले दो मण्डप मध्यम है। दश, नौ, सात एवं पाँच हाथ वाले चार कनिष्ठ हैं। स्थान के अनुरूप जहाँ ऋत्विक्, सदस्य, सामाजिकों के बैठने में सुविधा हो, ऐसा मण्डप बनाना चाहिए।

हस्त चौबीस अंगुल लम्बा होता है। अंगुल का मान महाकपिलपञ्चरात्र में इस प्रकार दिया गया है। वातायन से आने वाली सूर्य की किरणों मे जो कण नाचते दिखाई पड़ते हैं, वे त्रसरेणु हैं। आठ परमाणुओं का एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणुओं का एक केशाग्र, केक्षाग्र आठ के समान लिक्षा, पुनः उस आठ के बराबर यूका, आठ यूका के बराबर यव और आठ यव=अंगुल होता हैं। अथवा मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व को घेरकर उसके तीन भाग करने पर एक भाग के बराबर अंगुलि का मान होता है। आचार्य (प्रकरण में यजमान) की मध्यमा के मध्यम पर्व को ही अंगुलि माने। अथवा अंगूठे के बिना चार अंगुलियों की मुट्ठी होती है, उसके माप को चार से भाग देने पर एक भाग को अंगुल मानते हैं। अथवा

हाथ ऊपर करके पैरों पर या पंजे पर खड़े यजमान की मध्यमा अंगुली तक की लम्बाई माप कर उसमें दस तथा पुन: बारह का भाग देने पर एक अंगुल का मान प्राप्त होता है। इसे देहांगुल कहते हैं। जहाँ कहीं माप की आवश्यकता हो, वहाँ इन्हीं मे से किसी एक माप को मानकर मण्डप, कुण्ड, यज्ञपात्र, सामग्री आदि बनावें।

कुण्डनिर्माण

कुण्ड दश प्रकार के बताये गये हैं– चतुरस्र, योनि, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, वृत्त, पद्म, षडस्र, अष्टास्र (काम्य होमार्थ) पञ्चास्र, एवं सप्तास्र कुण्ड बनाने का विधान ग्रन्थ में विस्तार से वर्णित है।

काम्य होम में कुण्ड भेद से फल भेद कुलप्रकाश तन्त्र में इस प्रकार है –

कुण्ड भेद से फलभेद

१. कुण्ड चतुरस्र स्तंभनकारी तथा सर्वसिद्धि कर है। २. योनिकुण्ड में भोग एवं पुत्र प्राप्ति, ३. अर्धचन्द्र कुण्ड शुभदायक, (कुछ लोग मारण में भी इसका प्रयोग करते हैं) ४. त्रिकोण द्वेषकारक है। कुछ के मत में शत्रुनाशक है।) ५. वृत्त को शान्तिकारक मानते हैं। ६. षट्कोण उच्चाटन, मृत्यु एवं भेद करने में विशिष्ट है। ७. पद्मकुण्ड वृष्टि एवं पुष्टि दायक है। ८. अष्टकोण मुक्ति एवं आरोग्य के लिए है। ९. पञ्चकोण अभिचार की शान्ति के लिए तथा १०. सप्तकोण भूत-प्रेत बाधा के नाश के लिए है। ऐसा जानकर काम्य प्रयोग सिद्ध करना चाहिए।

वर्णों के भेद से भी कुण्डविचार किया गया है। ब्राह्मण के लिए चतुरस्र, क्षत्रिय के लिए वृत्त, वैश्य के लिए अर्धचन्द्र एवं शूद्र के लिए त्र्यस्र कुण्ड उचित है। किन्तु दीक्षा में सबके लिए चतुरस्र ही उत्तम है।

राशियों के आधार पर कुण्ड की दिशा

वेदी के चारों ओर कौन सा कुण्ड किस राशि के स्थान में एवं किस उद्देश्य से बनावें यहाँ यह बता रहे हैं– पूर्व में मेष एवं वृष का स्थान है। दक्षिण में कर्क तथा सिंह का, पश्चिम में तुला और वृश्चिक का और उत्तर में मकर एवं कुम्भ का स्थान है। अग्निकोण में मिथुन, नैर्ऋत्य में कन्या, वायव्य में धनु एवं ईशान में मीन का स्थान है। अत: चार राशियों (मेष, कर्क, तुला, मकर) के स्थान में वृत्त कुण्ड बनावे। स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) के स्थान में चतुरस्र कुण्ड बनावे। द्वि:स्वभाव राशियों मिथुन, कन्या, धनु, मीन के स्थान में योनिकुण्ड बनावे, ऐसा मांगलिक कार्यों के लिए है। अमांगलिक कार्यों में चर में अर्धचन्द्र, स्थिर में त्रिकोण एवं द्वि:स्वभाव में पंचास्र, षडस्र, सप्तास्र, अष्टास्र बनावे।

कुण्डमान हवन की मात्रा के अधार पर

अब हवन की संख्या के भेद से कुण्ड का मान बता रहे हैं। कुण्ड के स्वरूप व उसकी वासना

का वर्णन प्रथम तंत्र में इस प्रकार है– कुण्ड प्रकृति का शरीर है। उसका अग्रभाग शिर है। दक्षिण एवं उत्तर भाग हाथ है, कुण्ड का उदर पश्चिम में है, योनि उसके चरण हैं।

शाकल्य आदि स्थूल द्रव्य हों, तो एक हजार आहुति के लिए एक हाथ लम्बाई चौड़ाई एवं गहराई का कुण्ड बनावे। दस हजार में दो हाथ, लाख में छ: हाथ एवं एक करोड़ में दश हाथ का कुण्ड बनावे, किन्तु सूक्ष्म द्रव्य जैसे घृत पुष्प आदि की आहुति के लिए एक लाख के लिए एक हाथ का और प्रतिलक्ष बढ़ाते हुए एक करोड़ के लिए दश हाथ का कुण्ड बनावे। तन्त्रराज में छानवे अंगुलि का लम्बा चौड़ा गहरा कुण्ड बनाने का विधान है क्योंकि मानव शरीर अपने अंगुल से ९६ अंगुल होता है, किन्तु गणित करने पर अंगुलमान से तभी सिद्ध होगा, जब कुण्ड में कण्ठ न बनावे। तंत्रराज में कण्ठ नहीं कहा है। वस्तुत: यह मत हस्तमात्र खात युक्त द्वादशांगुलोच्च मेखला के पक्ष में सिद्ध होता है।

मेखला योनि एवं नाल

मेखला के साथ खात की गहराई का भी विधान किया गया है। गर्त की गहराई मेखला को लेकर की जाय, इस पक्ष को स्वीकार करके बारह अंगुल की मेखला के साथ एक हस्त की गहराई के कुण्ड का निर्माण होना चाहिए। लक्षणसंग्रह के अनुसार पाँच मेखलायें क्रमश: छ:, पाँच, चार, तीन और दो अंगुल के हिसाब से हों। सिद्धान्तशेखर का भी यही मत है। मेखला की विधि यह है कि एक हाथ के कुण्ड में ४–४ अंगुल की तीन मेखलाएँ बनायें तो ऊँचाई १२ अंगुल होगी। यदि पंच मेखला बनावें, तो पहिली मेखला से नव अंगुल का पंचमांश सब मेखलाओं से घटकर बनावे। यह पंचमांश एक अंगुल, छ: यव, २ चूका, एक लिक्षा, पाँच बालाग्र होता है। ऐसी दशा में मेखला नौ अंगुल ऊँची होगी। एक अंगुल कंठ को छोड़कर सब मेखलायें बनावें। सब मिलाकर कुण्ड का जितना विस्तार हो, उतनी ही गहराई होनी चाहिए।

नाभि कुण्ड के आकार की या कमल के आकार की बनती है। एक हाथ के कुण्ड में कर्णिका छ: अंगुल चौड़ी, छ: अंगुल लम्बी होती है।

एक हाथ के कण्ठ में योनि की लम्बाई छ: अंगुल एवं ऊँचाई दो अंगुल होनी चाहिए। उसका आकार अश्वत्थ के पत्र के समान होता है, इसे सम्मुख होना चाहिए। अत: चतुरस्र एवं अर्धचन्द्र कुण्ड में योनि दक्षिण भाग की मेखला पर बनावें और अन्य कुण्डों में पश्चिम भाग की मेखला पर, जिससे होता पूर्वाभिमुख या उदङ्मुख बैठकर हवन कर सके। योनि कुण्ड में योनि नहीं बनानी चाहिए। पद्मपादाचार्य ने तीनों मेंखलाओं से बाहर चार अंगुल का विस्तार करके नाल बनावे ऐसा कहा है। योनि मेखला से थोड़ा बाहर से प्रारंभ होकर आगे झुकी हुई हो और मध्यम में छिद्र हो, जिससे आज्य धृति हो। जिससे घृत बाहर न फैले ऊँचाई एक अंगुल हो और ओष्ठ बने हों।

वास्तुपूजा

श्रीतंत्रराज में लिखा है कि शिवजी ने कहा– सबका नाश करने वाला चतुरस्र (चौकोर) आकार

वाला कोई असुर था। प्राचीन काल में देवगण उसके वध के लिए उद्यम (तैयारी) करके उसे मारने में तत्पर हुए, किन्तु वरदान प्राप्त करने के कारण वे उसे नहीं मार सके। तब उन्होंने हमारे पास आकर हम दोनों से उसके नाश के लिए प्रार्थना की। देवों ने कहा कि यदि इस वास्तु पुरुष की दर्पशान्ति अभी नही हो जाती, तो सम्पूर्ण विश्व इसके उपद्रव में पड़ा रहेगा।

इस पर मैने उत्तर दिया कि इसका मरण अशक्य है, अत: पृथ्वी को खोद कर इसके शरीर को वहाँ गाड़ दिया जाय और उसपर प्रतिदिन निष्पन्द (मौन, हलचलरहित) आगे कहीं जाने वाली इन तिरपन शक्तियों को लगा दिया जाय। जो इन शक्तियों की पूजा से विमुख हों, उनके किये हुए सुकृत को ये ले लेंगी और दुष्कृत उन्हें दे देंगी। अत: प्रतिवर्ष जो इनका अर्चन नियमपूर्वक करते रहेगें, उनके शुभ फल तुरन्त प्राप्त होंगे और अशुभ फल कभी नहीं होंगे। उसके अर्चन के लिए चक्र आदि का विधान जैसा होना चाहिए, वैसा कहता हूँ।

वास्तुचक्ररचना विधान

मण्डप (भवन) के नैर्ऋत्य कोण में एक हाथ लम्बी चौड़ी एक वित्ता (बारह अंगुल) ऊँची सम, चौकोर, चिकनी वेदी बनाकर पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण फैली हुई नव-नव रेखायें बनाकर समान दूरी के चौसठ कोण बनाकर वहाँ वायु कोण से अग्निकोण तक एवं नैर्ऋत्यकोण से ईशान कोण तक दो सूत डालकर वास्तु चक्र बनाकर उसके बीच के चार कोष्ठ को एक में मिलाकर और फिर उसके पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण चार-चार कोष्ठों को मध्य कोष्ठ से सलग्न करके तिरपन देवताओं के स्थान को निश्चित करके सुन्दर चूर्णों से जैसा मनोहारी हो, ऐसा पूर्ण करके पुष्पाञ्जलि लेकर 'ब्रह्मादित्रिपंचाश देवता: इहागच्छत आगच्छत' इस प्रकार उच्चारण कर पुष्पाञ्जलि देकर आवाहन करें। पुन: 'ब्रह्मादि त्रिपंचाशद् देवता: इह तिष्ठत तिष्ठत' कहकर स्थापित करके 'ब्रह्मादिभ्य इदमासनम्', कहकर पुष्पाञ्जलि देकर सबके बीच में ब्रह्मा की 'ॐ ब्रह्मणे नम:' इस प्रकार पूजन करके शेष चारों चतुष्कोणों में पूर्व से प्रदक्षिण क्रम से 'ऊँ अर्यमाय नम:, ॐ विवस्वते नम:, ॐ मित्राय नम:, ॐ महीधराय नम:। कहकर इनकी पुष्प, गंध, पाद्य आदि पूजा के उपकरणों से पूजा करे। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले अड़तालिस देवताओं का भी नाम मंत्रों से पूजन करें।

आचार्य को चाहिए कि वह पूर्वोक्त सिद्धियों के लिए राजभवनों में, महारानियों के भवनों में सचिव, मंत्री एवं सेनापति के भवनों में तथा नगर में प्रतिवर्ष वास्तुपूजा करवाये। अन्यथा न करने से उक्त फल से विपरीत फल मिलता है, जिससे दिन-रात क्लेश होता है।

(यन्त्र दिया गया है, तिरपन देवताओं के यत्र में स्थान का निर्देश इस प्रकार है।)

पूजाक्रम — मध्य में ॐ ब्रह्मणे नम:। पूर्व आदि चार दिशाओं में ॐ अर्यमाय नम:, ॐ विवस्वते नम:, ॐ मित्राय नम:, ॐ महीधराय नम:। इत्यादि (इनका स्थापन प्रदक्षिण क्रम से)

१. आग्नेयादि चार कोणगत अर्धकोष्ठकों में ॐ सावित्राय नमः, सवित्रे०, शक्राय०, शक्रजिते०, रुद्राय० रुद्रजिते०, आपाय०, आपवत्सकाय० आठ।

२. उसके बाहर स्थित वेदी में आग्नेयादि चार कोणगत जो कर्णसूत्र से भिन्न किये गये हैं, उन चारों कोष्ठों के पार्श्वस्थित आठ कोणों में अग्निकोण से ईशानकोण पर्यन्त ॐ शर्वाय नमः, गुहाय०, अर्यमणे०, जम्भकाय०, पिलिपिच्छकाय०, चरिक्यै०, विदार्यै०, पूतनायै०, आठ।

३. उससे बाहर स्थित चार वीथियों में पूर्व दिशा में स्थित वीथी में ईशान से अग्निकोण पर्यन्त ॐ ईशाय नमः, पर्जन्याय०, जयन्ताय०, शक्राय०, भास्कराय०, सत्याय०, वृषाय०, अन्तरिक्षाय,आठ।

४. दक्षिणवीथी में अग्नि कोण से नैर्ऋत्यकोण पर्यन्त ॐ अग्नये नमः, पूष्णे०, वितथाय०, यमाय०, गृहरक्षकाय०, गन्धर्वाय०, भृङ्गराजाय०, मृगाय०, आठ।

५. पश्चिमवीथी में नैर्ऋत्यकोण से वायव्यकोण पर्यन्त ॐ निर्ऋतये नमः, दौवारिकाय०, सुग्रीवाय०, वरुणाय०, पुष्पदन्ताय०, असुराय०, शोषाय० रोगाय०, आठ।

६. उत्तरीवीथी में वायव्यकोण से ईशानकोणपर्यन्त ॐ वायवे नमः, नागाय०, मुख्याय०, सोमाय०, भल्लाटकाय०, अर्गलाय०, दित्यै०, अदित्यै०, आठ।

इस प्रकार यन्त्र में तिरपन देवों का स्थापन पूजन करें। विधि इस प्रकार है— गन्ध पुष्प आदि तिरपन देवताओं का पञ्चोपचार से पूजन कर कुण्ड में या स्थण्डिल में अग्नि स्थापन की विधि से अग्नि स्थापन करके पूजित देवता के उपर्युक्त नाम मंत्रों में नमः के स्थान पर स्वाहा— जैसे ॐ ब्रह्मणे स्वाहा लगाकर चावल, जौ, मूँग, घी, मधु दूध तथा घी मिली हुई खीर से एक—एक द्रव्य से एक सौ आठ बार या अट्ठाइस बार एक देवता के नाम से हवन करके पुनः तिल, दूध, केला, पूआ और नाना प्रकार के व्यञ्जनों से मिश्रित खीर से पूजित देवताओं को उनके नाम मंत्रों से जैसे ॐ ब्रह्मणे एष बलिर्नमः बोलकर उनकी जहाँ, स्थापना की गयी है, वहाँ-वहाँ उनको बलि प्रदान करे। यह वास्तुपूजा विधि है।

वास्तुपूजन करने न करने का फल

जब सूर्य सिंहराशि क़ी संक्रान्ति में हो, (मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी के प्रथम चरण में हो) तब प्रतिवर्ष पूर्णिमा के दिन अपने गृह वास्तु के पूजन के लिए मण्डल यन्त्र बनाकर इसी प्रकार पूजन करे। इससे बालकों की मृत्यु, बीमारियाँ, भूत—प्रेत आदि की बाधा, सर्प पीड़ा, तथा परिवार में पारस्परिक कलह आदि अशुभ नहीं होते तथा पुत्र, पौत्र, धन, आरोग्य, पशु, दास—दासी हर प्रकार की समृद्धि प्राप्त होती है एवं कर्ता नीरोग, विजयी, प्रसिद्ध (यशस्वी) और चिरञ्जीवी होता है।

अंकुरार्पण विधि

दीक्षा के दिन से सात या नौ दिन पहले समस्त कामनाओं के देने वाले इस बीजारोपण रूप कर्तव्य को करना चाहिए। एकमत से उत्तर भाग मे हर प्रकार से घिरे हुए सुरक्षित भवन या मण्डप में

पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई में मण्डप बनावे। दूसरे विद्वान् दक्षिण—उत्तर आयत मण्डप बनाना उचित मानते हैं। गुरु का यहाँ निर्देश ही मान्य है। इसमें बारह कोष्ठक होंगे, जिनमें चार—चार कोष्ठक के तीन खण्ड होंगे। जिनमें हर खण्ड के कोष्ठक क्रमश: पीले, लाल, सफेद और काले रंग के चूर्णों से भरे जायेंगे।

इस प्रकार स्थान निश्चित करके उसको गाय के गोबर से लीपकर पूर्व से पश्चिम की ओर आयत पाँच हाथ लम्बी पाँच रेखाये खींचे तथा दक्षिण से उत्तर की ओर आयत एक वितस्ति १२ अंगुल की दूरी पर ग्यारह रेखायें बनायें। इस प्रकार चालीस कोष्ठक हो जायेंगे, जिनकी चौड़ाई ढाई हाथ होगी। ऐसा मण्डप बनाकर उत्तर के कोष्ठ को एक करके वीथी (मार्ग) बनावे। मध्य के चतुष्क के दोनों ओर के दो-दो कोष्ठकों को मिलकार शेष तीन चतुष्क, जिसके बारह कोष्ठ हैं, ऐसा मण्डल बनाकर चार-चार कोष्ठकों के एक-एक स्थान पश्चिम, मध्य, पूर्व के क्रम से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का स्थान कल्पित करके, पश्चिम चतुष्कत्रय में अग्निकोण से लेकर ईशान कोण पर्यन्त पीत, रक्त, श्वेत एवं काले रंग वाले चूर्ण से तीनों चतुष्कोणों में प्रत्येक में उक्त रंगों से बारह कोष्ठों को भर कर उन तीनों स्थानों में से मध्य चतुष्क में विष्णु देवता के लिए चौबीस अंगुल उँची एवं आयतन वाली तथा डमरू के आकार की चार पालिकाओं को, जिन्हे पीपल एवं आम्र पल्लव लगाकर श्वेतसूत्र को बाँध दिया गया है, स्थापित करें। इसी प्रकार पश्चिम चतुष्कों में विशेषरूप बनाये गये डमरू के आकारवाले पाँच पात्रों को जोड़कर एक पात्र बनाकर ऐसे सोलह अंगुल ऊँचे चार पात्र आम्र, एवं पीपल के पत्रों से आच्छादित कर ब्रह्मा देवता के लिए स्थापित करे। तदनन्तर पूर्वचतुष्क में बारह अंगुल उन्नत एवं आयत एवं पिप्पल आदि के दल से संयुक्त चार शराव (परईयों) को स्थापित करें। उन बारह पात्रो में से एक एक पात्र को एक एक कोष्ठ में धान एवं कुश के कूर्चक के ऊपर स्थापित करे। उन पात्रों में मिट्टी, बालू, गोबर की खाद मिलाकर भरे। पुन: एक नये पात्र (मिट्टी या सोने) में प्रियंगु (टागुन) श्यामक, तिल, सर्षप, शालि, मूँग, अरहर, निष्पाव खल्व, माष (उड़द) इन दश धान्यों को एकत्र करके 'वं' बीज से गोदुग्ध से धोकर शंखादि पाँच वाद्य बजाते हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के पात्रों में क्रमश: बीज बोकर उसे हल्दी मिश्रित जल से सींचकर एवं नूतन वस्त्र से ढककर दोनों सन्ध्याओं में तथा अर्धरात्रि में सातों दिन बलि प्रदान करे।

बलि की विधि

प्रथम दिवस में तिल, धान का लावा, सत्तू एवं अगहनी चावल का भात उसमें हल्दी मिलाकर मलकर तीन कवल (गोले या पिण्ड) बनाकर तीनों पात्रों के पास 'सर्वभूतानि इहागच्छतेह तिष्ठत' इस प्रकार आवाहन करके 'ॐ सर्वभूतेभ्यो नम:' इस मन्त्र से गन्ध अक्षतादि पञ्चोपचार से पूजन करे। सर्वभूत बलिद्रव्याय नम: से बलिद्रव्य का पूजन करके, दाहिने हाथ में जल लेकर बायें हाथ से बलिपात्र का स्पर्श करते हुए 'ओं सर्वभूतेभ्य एष बलिर्नम:' इस मन्त्र से बलिपात्र पर जल छिड़क कर बलि देवे। इस प्रकार ब्रह्मा के पात्रों के समीप बलि देकर पुन: इसी प्रकार विष्णु एवं शिव को बलि देवे। कुछ आचार्यों के

मत में मण्डल के चारों कोणों में भी बलि देने का विधान है, परन्तु इसे गुरु के उपदेशानुसार करना चाहिए।

यही विधि प्रतिदिन तीनों कालों में बलि प्रदान की है। प्रतिदिन एवं प्रतिकाल में उन देवताओं के बलि प्रदान के उपरान्त दश दिक्पालों को उनके नाम से मन्त्र कल्पित करके उन–उन स्थानों में घी एवं शर्करा से युक्त खीर की बलि देवे। जैसे पूर्व में 'ओम् इन्द्राय एष बलिर्नमः' ऐसे ही दशों दिक्पालों का मन्त्र बनाले।

द्वितीय दिवस पितरों की बलि– तिलाक्षत (तिल एवं चावल)

तृतीय दिवस– यक्षों के लिए दही, सत्तू एवं धान का लावा

चतुर्थ दिवस– नागों के लिए नारियल के जल में सने सत्तू तथा घी

पंचम दिवस– ब्रह्मा के लिए कमल गट्टे के बीज

षष्ठ दिवस– शिव के लिए पूआ एव भात

सप्तम दिवस– विष्णु के लिए गुड़ में पकाया गया भात

यदि कार्यक्रम ९ दिन का हो, तो–

अष्टम दिवस– विष्णु के लिए दूध भात

नवम दिवस– विष्णु के लिए तिल एवं मूगमिश्रित चावल की खिचड़ी

दीक्षाकाल मास पक्ष तिथि निर्णय

मन्थानभैरव तन्त्र के अनुसार मास पक्ष तिथि निर्णय इस प्रकार है –

चैत्र में दीक्षा दुःख देने वाली, वैशाख में सर्वसिद्धिदात्री, ज्येष्ठ में मृत्युदायिनी, आषाढ़ में बन्धुनाशिनी, श्रावण में वृद्धि देनेवाली, भाद्रपद में दुःखदा, आश्विन में सर्वसिद्धि, और कार्तिक में ज्ञानदायिनी, मार्गशीर्ष में शुभदा, पौष में बुद्धिनाश करने वाली, माघ में सुवर्णलाभदात्री, फाल्गुन में सर्व सिद्धिदात्री होती है। दूसरे तन्त्र में सब पूर्ववत् है, केवल माघ में स्वर्ण लाभ के बदले मेधावृद्धि एवं मलमास का निषेध लिखा है। श्रीकण्ठ संहिता में आश्विन, कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन, श्रावण एवं माघ को श्रेष्ठ एवं अन्य मासों को निन्दित माना है। शिवयामल के वचनानुसार दीक्षा में आश्विन मास निषिद्ध है।

पक्ष की दृष्टि से शुक्ल पक्ष उत्तम एवं कृष्ण पक्ष मध्यम है। नक्षत्रों की दृष्टि से चिन्तामणि में अश्विनी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, विशाखा, धनिष्ठा, पुनर्वसु एवं रेवती को उत्तम कहा गया है। कामधेनु में अश्विनी, आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, धनिष्ठा एवं पुनर्वसु इनको छोड़कर केवल शेष दश नक्षत्र स्वीकृत हैं। पिंगलामत में शेष नक्षत्र निषिद्ध है।

तिथियों में श्रीकण्ठ संहिता में द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी, त्रयोदशी को स्वीकार किया है। विजयमालिनी तन्त्र में शुक्लपक्ष की पंचमी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी, द्वादशी ग्राह्य बताया है। रत्नसागर में तृतीया, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा को उत्तम माना गया है। देवताविशेष की दृष्टि से– ब्रह्मा की पूर्णिमा, विष्णु की द्वादशी, शिव की चतुर्दशी, सरस्वती की त्रयोदशी, लक्ष्मी की द्वितीया, पार्वती की तृतीया, गणेश की चतुर्थी एवं सूर्य की सप्तमी मानी गयी है।

दिन एवं योग निर्णय

उत्तर तन्त्र, विजयमालिनी तन्त्र एवं मन्त्रसद्भाव तीनों में केवल रवि, बुध, गुरु एवं शुक्र को ही दीक्षा में ग्रहण किया गया है। शेष शनि, सोम, मंगल निषिद्ध है। योगों में तन्त्र रत्नावली के अनुसार प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, सुकर्मा, घृति, वृद्धि, ध्रुव, सिद्धि, तर्पण, वरीयान्, शिव, सिद्ध, ब्रह्मा, ऐन्द्र ये सोलह स्वीकृत है।

वशिष्ठ ने तिथिविशेष में नक्षत्रविशेष को अतिशय दूषित माना है– प्रतिपदा को पूर्वाषाढ़ा, पंचमी को कृत्तिका, षष्ठी को पूर्वा भाद्रपदा, दशमी को रोहिणी द्वादशी को आश्लेषा, त्रयोदशी को उत्तरा फाल्गुनी ये योग नक्षत्र-लुम्पक कहलाते हैं, जो देवताओं के भी नाशक हैं, अतः सर्वथा त्याज्य हैं। करणों में शुभ करणों को लेना। शकुनि, किंस्तुघ्न, चतुष्पद तथा नाश का निषेध है। भद्रा को विशेष रूप से वर्जित मानना चाहिए।

राशिफल– रुद्रयामल एवं तन्त्रातन्तर के अनुसार मेष, कर्क, कन्या, तुला, वृश्चिक, मकर एवं कुम्भ राशियाँ उत्तम हैं, अन्य वृष, मिथुन, सिंह और मीन निषिद्ध हैं।

लग्न– दीक्षा में लग्न से कौन सा ग्रह कहाँ हो, इसका भी विचार किया गया है।

पापग्रह यदि लग्न से ३, ६, ११ में हो, तो शुभ है और शुभग्रह यदि केन्द्र एवं त्रिकोण में अर्थात् १, ४, ७, एवं १० स्थान में हो अथवा पंचम या नवम स्थान में हो, तो शुभ है।

शनि, राहु, केतु, सूर्य, मंगल पापग्रह के साथ बुध एव क्षीण चन्द्र भी पाप ग्रह हैं। गुरु, शुक्र, पाप मुक्त बुध, एवं अक्षीण चन्द्र शुभ हैं। अष्टम में स्थित सभी ग्रह अशुभ हैं।

दीक्षाकाल

शैवागम के अनुसार शुभग्रह अधोमुख नक्षत्र में हो (मूल, कृत्तिका, मघा, विशाखा, भरणी आश्लेषा, तीनों पूर्वा ये नौ नक्षत्र अधोमुख हैं) चन्द्र शुद्धि हो, ताराबल हो, तो दीक्षा देनी चाहिए। दीक्षाकाल दिन में ही होती है। रात्रि में निषिद्ध है। प्रातःकाल प्रथम प्रहर में धर्मवृद्धि, संगव (द्वितीय प्रहर) में राज्यप्राप्ति, मध्याह्न में सर्वसिद्धि, तथा सायाह्न चतुर्थ में सर्वतः सिद्धि है।

कालविशेष– चन्द्र सूर्य ग्रहण काल में (ग्रहण से लेकर सात दिन तक) पवित्र पर्व होता है, उसमें काल चिन्तन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार उत्तम तीर्थों में कुरुक्षेत्र में, चारों देवीपीठों में, अनन्त चतुर्दशी,

वामन द्वादशी आदि में मास तिथि नक्षत्र आदि का विचार न करे। **विशेष**— चिन्तामणि तन्त्र एवं कालिकोद्भव तन्त्र में केवल सूर्य ग्रहण को ही लिखा है। योगिनी तन्त्र में चन्द्रग्रहण में दीक्षा के निषेध से एवं रात्रि में मन्त्रदान के निषेध से चन्द्रग्रहणं में मन्त्र देना प्रशस्त नहीं माना गया हैं।

दीक्षा विधान—उत्तरतन्त्र

उत्तर तन्त्र के प्रमाणानुसार मन्त्र प्राप्ति के लिए दीक्षा का विधान आवश्यक है। दीक्षा के बिना मन्त्रों का फल प्राप्त नहीं होता अथवा मन्त्र—सिद्धि प्राप्त नहीं होती। दीक्षा आत्मज्ञान देती है और पापों का नाश करती है। अत: तत्त्वज्ञ आचार्यों ने इसे दीक्षा शब्द से निरूपित किया है। दीक्षा चार प्रकार की है— क्रियामयी, मन्त्रमयी, वेधमयी एवं कलामयी। ये चारों दीक्षायें ज्ञान देने वाली एवं मंगलकारिणी हैं।

पञ्चमीश्वर तन्त्र के मतानुसार दीक्षा विधान

स्वस्तिचाचनपूर्वक पुण्याह वाचन करके मित्रों सहित पंचवाद्य के साथ वेद घोष करते हुए श्रीगुरु के घर जाकर प्रणाम कर संकल्पपूर्वक वरण सामग्री अर्पित करके गुरुवरण करे। उसमें अंमुक मन्त्र कामोऽहम् गुरुत्वेन त्वामहं वृणे' इस प्रकार वरण करे। पुन: गुरु 'वृतोऽस्मि' कह कर स्वीकृति दे। शिष्य को कहना चाहिए कि आप इच्छानुसार कर्म करें। गुरु 'करवाणि' कर्म करुँगा ऐसा कहकर पंचवाद्य धोष पुर:सर शिष्य सहित याग मण्डप में गमन करे।

भक्तिपरायण शिष्य पुण्याहवाचन करके हार, कुण्डल, केयूर, मुद्रिका, अंगद आदि आभूषण एवं सुवर्ण यज्ञोपवीत तथा कौशेय वस्त्र, फल, सुगन्धित पुष्प एवं वित्तशाठ्य विवर्जित उदारता पूर्वकद्रव्य से मधुपर्कादि सहित गुरु का वरण करे। उसी प्रकार वरणसामग्री सहित यथासंख्य ऋत्विजों का भी वरण करे।

मधुपर्क पूजन विधान

डामर तन्त्र में कहा गया है कि सेमल वृक्ष के पटरों से एक हाथ लम्बी चौड़ी तथा आठ अंगुल ऊँची चौकियाँ (पीठ) बनवाये। सत्ताइस कुशों की वेणी जिनको आगे से गाँठ देकर गूँथा गया हो, ऐसा सभी यज्ञोपयोगी विष्टर बनवाये। पाद्य के लिए सुखद उष्ण जल पूर्ण ताम्र कशल रखे। अर्घ प्रदान करने के लिए गन्ध, पुष्प, जल, दूर्वा आदि से युक्त शंखों को अलग-अलग स्थापित करे। आचमन के लिए जल से परिपूर्ण ताम्र कमण्डलु एवं मधुपर्क के लिए ढक्कन सहित दही भरे हुए कांस्य पात्र रखे।

बहुमूल्य द्रव्य, मुद्रिका, सुन्दर आभूषण, मोर के पंख से शोभित पगड़ी, पादुका एवं मधुपर्क पूजन की स्मार्तोक्त अन्य सामग्रियाँ एकत्र करे। आचार्य के पूजन के अनन्तर दूसरे ब्राह्मणों का भी मधुपर्क पूजन करे। भक्तिमान शिष्य अन्य ब्राह्मणों की तुलना में आचार्य को दूनी दक्षिणा दे। यदि आचार्य को दूसरे ब्राह्मणों के समान ही दक्षिणा दी जाती है, तो जैसे विना वर्षा के खेती स्वल्प होती है, वैसे ही उस यज्ञ का फल भी स्वल्प होता है।

अब गुरु विधानपूर्वक स्नान करके नित्यकर्म पूर्ण करके वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर मौन

धारण करके यज्ञ मण्डप में प्रवेश करे। पहले दिन आचार्य शिष्यों को मूलमन्त्र से अभिमंत्रित दन्तधावन काष्ठ दे। शिष्य दाँत साफ करके उस दातौन को सामने बनायी गयी एक हाथ की चतुरस्त्र वेदी पर डाल दे। उससे गुरु परीक्षा करे। ईशान कोण में ज्ञान प्राप्ति पूर्व में उत्तम सम्पत्ति, अग्नि कोण में मनस्ताप दक्षिण में बन्धुनाश, नैर्ऋत्य में मृत्युभय, पश्चिम में मानसिक शोक होता है। वायव्य कोण में व्यग्रता और उत्तर में सुख प्राप्त होता है। यदि दन्तधावन अमंगल स्थान में गिरे, तो उसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए। (प्रायश्चित्त का विधान पुरश्चरण प्रकरण में कहेंगे।)

पुनः आचार्य स्वप्न परीक्षा करे। क्रूर स्वप्न में दीक्षा अधम होती है। सामान्य स्वप्न में मध्यम और उत्तम स्वप्न में सर्वोत्तम होती है। (स्वप्न के लक्षण एवं उनके परिणाम तथा दुःस्वप्न के प्रायश्चित्त भी पुरश्चरण प्रकरण में ही कहेंगे।)

भूतोत्सारण

इस प्रकार परीक्षा करके गुरु पूजन प्रारम्भ करें। आचमन करके सामान्य अर्घ्य बनाकर उससे प्रोक्षण करके दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम विघ्नों (विघ्नकारक दुष्ट शक्तियों) को क्रमशः क्रूरदृष्टि से अवलोकन कर (फट् अस्त्र मंन्त्र से अभिमंत्रित जल से) प्रोक्षण तथा बायें पैर की एड़ी (पार्ष्णि) भूमि पर आघात करते हुए उन्हें उत्सारित करे। पुनः अंगों को कुछ संकुचित करके बायीं द्वार शाखा को स्पर्श करते हुए और भगाये गये भूतों को निकलने के लिए दक्षिण से मार्ग देकर पहले दाहिना पैर उठाकर मन्दिर में प्रवेश करे। (द्वारपूजा की विधि आगे कहेंगे।) यदि पुरुष देवता का मन्त्र देना हो, तो दक्षिण पाद से प्रवेश करे किन्तु शाक्त दीक्षा में वामपाद से प्रवेश करे, ऐसा त्रिपुरार्णवतन्त्र में लिखा है।

अर्घ्य जल एवं पंचगव्य से सुसिंचित यज्ञभूमि की नैर्ऋत्य दिशा में ब्रह्मा की एवं वास्तुपुरुष की पूजा करे। (मन्त्रपूत) दृष्टि से वीक्षण करके चारों द्वारों की शुद्धि करें एवं मूल मन्त्र एवं अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण करे। अस्त्रमन्त्र (फट्) से ताडन एवं कवच मन्त्र (हुं) से सेचन करे।

श्रीखण्डचन्दन, अगरु, कर्पूर से सुशोभित उस मण्डल में अस्त्र मन्त्र का सातबार जप करके चन्दन, श्वेत सर्षप, दूर्वा, भस्म, अक्षत एवं लाजा (खीलें) बिखेरे जिससे विघ्नों का नाश हो। पुनः कुश की बर्धनी (झाडू) लेकर उस मण्डप का अस्त्र मन्त्र से मार्जन करे और उसे ईशान कोण में ले जाकर स्थापित कर दे।

पुण्याहवाचन करके और ब्राह्मणों को यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करके वेदी पर सर्वप्रथम सर्वतोभद्र मण्डल का निर्माण करे। उस मण्डल को पाँच रंग के रज (चूर्ण) से यथाविधि अलंकृत करे। पीतवर्ण के लिए हरिद्रा, शुक्ल के लिए चावल का आटा, लाल के लिए कुसुम्भ का चूर्ण या रोली (कुंमकुम) कृष्ण वर्ण के लिए जलाये हुए चावल का चूर्ण एवं श्याम रंग के लिए बिल्व पत्र के चूर्ण का प्रयोग करे। (यहाँ विकल्प में स्वस्तिक मण्डल की भी विधि लिखी गयी और दोनों में से किसी एक मण्डल का

निर्माण करने का विधान है। दोनों मण्डलों का रचना प्रकार मूल में उल्लिखित है।)

सर्वतोभद्र मण्डल निर्माणविधि

पूर्व से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर सत्रह-सत्रह रेखायें खींचे। इस प्रकार दो सौ छप्पन कोष्ठ से युक्त चतुरस्र मण्डल बनाकर उनके मध्य में स्थित छत्तीस कोष्ठकों को एक में मिलाकर और उसके बाहर चारों ओर एक एक चतुष्कोण का संमार्जन करके पीठ की परिकल्पना करे। उसके बाहर चारों दिशाओं में दो-दो पक्तियों को एक करके उनका समार्जन करके वीथी (मार्ग) की संकल्पना करे। पुन: सबके मध्यम गत कमल के स्थान में (बाहर सब ओर से बारहवाँ भाग छोड़कर) सर्व मध्यभाग के ठीक बीच को आध ार बनाकर समान दूरी के तीन वृत्त बनाकर पुन: तीनों वृत्तों के मध्य में कर्णिका की कल्पना करके उसके बाहर वृत्त की वीथी को केसर के लिए कल्पित कर केसर के स्थान को सोलह भागों में विभक्त करके उस चिह्न का अवलम्बन करके द्वितीय एवं तृतीय वृत्त के अन्तराल (दूरी) को मानसूत्र के द्वारा मापकर गुरु की बतायी युक्ति से सोलह अर्धचन्द्र की कल्पना करके उनमें अष्टक बनाकर तृतीय वृत्त के बाहर जो भाग छोड़ा गया है, उससे मध्य चिह्न के मध्यबिन्दु को आधार मान कर एक दूसरा वृत्त बनाकर गुरु की बतायी गयी युक्ति से पत्रों की रचना करके पत्रों के अग्रभाग को बनाकर एक–एक दल (पत्र) में दो–दो केसर दिखायी पड़े, इस प्रकार कमल बनाकर उस कमल के बाहर एक-एक पंक्ति रूप चतुरस्र पीठ के चारों कोणों में भी तीन-तीन कोणों से पीठ के पैर की कल्पना करके शेष बचे हुए कोणों को मिलाकर पीठ के शरीर का निर्माण कर उनके बाहर की दो पंक्तियों का समार्जन करके उनके बाहर स्थित पंक्ति के चारों दिशाओं में बीच-बीच में दो-दो कोष्ठकों को मिलाकर सभी बाहर की पक्तियों की भी चारों दिशाओं में भी चार-चार कोष्ठों को मिटाकर चार द्वारों की परिकल्पना करके पुन: चारों द्वारों के भी दोनों पार्श्वों में भी भीतर की पंक्ति के एक कोष्ठ एवं बाहर की पंक्ति तीन कोष्ठ मिलाकर चार-चार कोष्ठों को एकत्र कर उनको सुन्दरता से सजाकर शेष बचे हुए छ: कोष्ठों में चार कोणों की कल्पना करे। इस प्रकार सर्वतोभद्र मण्डल का निर्माण करे।

निर्मित सर्वतोभद्र मण्डल में कमल, कर्णिका, केसर, दलाग्र, पीठ, वीथी, द्वार, शोभा, उपशोभा एवं कोण स्थानों को पाँच रंग के चूर्णों से सुशोभित करे।

रंग भरने का प्रकार

सीमा की सभी रेखायें श्वेतचूर्ण एक ऊँची विस्तार वाली भरे। कमल कर्णिकाओं और केसरों को पीतचूर्ण से ढंग से पूर्ण कर श्वेतचूर्ण से कमल दल को और दलों की सन्धियों को श्याम चूर्ण से पूर्ण करे। अथवा कर्णिका पीत वर्ण से, केसरों को पीत–रक्त से तथा दलों को रक्त से तथा दल-संधियों को श्याम रज से पूर्ण करके पीठ गर्भ को काले या पीले से पूर्णकर, पीठ के पादों को रक्त से पूर्ण करके, पीठ के शरीर को श्वेत चूर्ण से पूर्ण करके चारों वीथियों में कल्पलताओं, कलियों, पुष्प, फल, पल्लव

आदि को अनेक प्रकार के रंगों से कलात्मक ढंग से बनावे। पुनः श्वेतचूर्ण से चारों द्वारों को भरे एवं द्वार की शोभा को पीले से एवं उपशोभा को कृष्ण वर्ण से और उसी से कोणों को पूर्ण करके उसके बाहर एक एक अंगुल के अन्तराल की तीन रेखाओं को श्वेत, रक्त एवं कृष्ण चूर्ण से पूर्ण करें।

इस प्रकार सर्वतोभद्र मण्डल का निर्माण कर वेदी के चारों ओर दीपक प्रज्वलित करके विधि के अनुसार पूजा द्रव्यों को प्राप्त करके उनका उसी प्रकार संस्कार करके छत्र, दो चमर, दर्पण, पंखे आदि को यथास्थान रखकर गुरु आदि की वन्दना पूर्वक करशुद्धि, तालमय, दिग्बन्धन, अग्नि प्राकारत्रय, भूत शुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकान्यास योगपीठन्यास और मूलमंत्र के न्यास आदि को सविधि पूर्ण करके मुद्रायें प्रदर्शित कर अपने इष्ट देवता का ध्यान एवं मानसपूजा के अन्त में वैश्वदेव, मूल मंत्रजप और उसका समर्पण, अर्घ्य स्थापन, आत्मपूजा, अन्तर्हवन, मूलमंत्र जप और उसका समर्पण करके 'सर्वतोभद्र मण्डलाय नमः' इस मंत्र से मण्डल की पंचोपचार से पूजा करे एवं अर्घ्यजल से प्रोक्षण करके वहाँ आगे कही जाने वाली विधि से पीठ की पूजा करके उसकी कर्णिकाओं को शालि (अगहनी धान) से भरकर चावल, कुश, दूर्वा, एवं सत्ताइस कुशों से ब्रह्मगन्थि लगाकर बनाये गये कूर्च को स्थापित करे। वहाँ वक्ष्यमाण विधि से धान की ढेरी पर बह्निमण्डल एवं बह्निकलाओं की पूजा करे। तदन्तर उस पर त्रिगुण किये हुए सूत्र से वेष्टित एवं चन्दन, अगर, कपूर, धूप आदि से धूपित स्वर्णादि कलश का प्रणव उच्चारण करते स्थापन करे।

उस कलश में पुखराज, नीलम, वैदूर्य, मूंगा, मोती, मरकत, हीरा, गोमेद, पद्मराग इन नौ रत्नों को सुवर्ण सहित डाले। पुनः कलश के ऊपर गन्ध, अक्षत, दूर्वा और पूर्वोक्त कूर्च को रखकर विलोम मातृका (क्षं लं इत्यादि) के जप के साथ मूल मंत्र का तीन बार जप करके स्वयं की, कुम्भ की एवं योगपीठ की अभेद भावना करके इक्यावन अक्षरौषधियों (जिनका विवरण सोलहवें श्वास में है) के क्वाथ से एवं पीपल, पाकड़, गूलर एवं बरगद के क्वाथ एवं पलाश वृक्ष की छाल के क्वाथ से अथवा कपूर कुंकुम, चन्दन एवं कस्तूरी वासित तीर्थ जल से कलश को पूर्ण करके तीन शंखों को कुंभ में डाले गये जल से पूर्ण करके उसमें गन्धाष्टक का प्रक्षेप करे।

शक्ति गन्धाष्टक इस प्रकार है– चन्दन, अगर, कपूर, केसर रोचना (गोरोचन) शिलाजीत, जटामासी, सरी (कपूर)।

(इसी प्रकार वैष्णव, गन्धाष्ट में बालक, चन्दन, कुष्ठ, अगरु, कुंकुम (केसर) उशीर (खश) जटामासी इन द्रव्यों का योग होता है।

शैवअष्टगन्ध में निम्नलिखित द्रव्य होते है– बालक, केसर, कुष्ठ, लालचन्दन, चन्दन, तमाल अगरु एवं कर्पूर।

उन तीनों शंखों में क्रमशः बह्निकला, सूर्यकला एवं सोमकला की पृथक् पृथक् प्राणप्रतिष्ठापूर्वक

पूजा करके कला मातृका न्यास में कथित प्रणवयुक्त इक्यावन कलाओं की पूजा करे। इन कलाओं का स्वरूप एवं पूजन इस प्रकार है:—

प्रथम अकार से उत्पन्न कवर्ग एवं चवर्ग से उत्पन्न सृष्टि आदि दश कलाओं का आवाहन करके 'हंस: शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिसदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृव्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' इस मन्त्र का उच्चारण करके (इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, जगती छन्द एवं सूर्य देवता हैं ऐसा स्मरण करके) ब्रह्मणे नम: इस मन्त्र से पूजन करके पूर्वोक्त प्राण प्रतिष्ठा मंत्र से सृष्टि आदि की प्रतिष्ठा करके इसी प्रकार ॐ कं सृष्ट्यै नम: इस प्रकार दश कलाओं की पूजा करे। इसी प्रकार उकार के द्वारा विष्णु से उत्पन्न ट वर्ग एवं त वर्ग से उत्पन्न जरादि दश कलाओं का आवाहन करके 'प्रतिद्विष्णु:' इत्यादि मन्त्र से जिसके ऋषि दीर्घतमा, छन्द अनष्टुप् एवं देवता विष्णु हैं का स्मरण करके 'प्रतिद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठा:। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।' इस मन्त्र से ॐ विष्णवे नम: से विष्णु की पूजा करके पहले की भाँति दश कलाओं की प्राण प्रतिष्ठा करके ॐ टं जरायै नम: इत्यादि से पूजन करे।

मकार से रुद्र से उत्पन्न प एवं य वर्ग से उत्पन्न तीक्ष्णा आदि दश कलाओं का आवाहन करके त्र्यम्बक मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द त्र्यम्बक रुद्र देवता का स्मरण कर 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्' इस मन्त्र का पाठ करके ॐ रुद्राय नम: से पूजा करके प्रतिष्ठापूर्वक ॐ पं तीक्ष्णाकलायै नम: इत्यादि दश कलाओं की पूजा करें। ईश्वर से बिन्दु से उत्पन्न षकार से क्षकार तक पाँच वर्णों से उत्पन्न पाँच कलाओं का आवाहन करके ऋष्यादिस्मरण पूर्वक गायत्री का उच्चारण करके ईश्वराय नम: से पूजा कर उनकी कलाओं की प्राणप्रतिष्ठा करके ॐ षं पीतायै नम: इत्यादि पंच कलाओं की पूजा करें। तदनन्तर नाद से उत्थित सदाशिव द्वारा उत्पन्न स्वर से जन्म लेने वाली सोलह कलाओं का आवाहन करके 'विष्णुर्योनिं' इत्यादि मन्त्र से जिसके त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषि हैं अनुष्टप् छन्द है, विष्णु देवता हैं। ऐसा स्मरण करते हुए 'ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते' मन्त्र का पाठ कर सदाशिवाय नम: से पूजन करके ॐ निवृत्यै नम: इत्यादि सोलह कलाओं का पूजन करें।

इस प्रकार चौरानवे देवताओं का शंख में पूजन करके सकल कलामय उस शंख जल को कुम्भ में डालकर पीपल, कटहल एवं आम के पल्लवों को इन्द्रवारुणी लता से लपेट कर कल्पवृक्ष की बुद्धि से कलश में डालकर चावल एवं नारियल से पूर्ण कलश के ही जाति के ढक्कन से कलश को ऊपर से ढककर दो रेशमी वस्त्रों से आवेष्टित कर दे। इस प्रकार प्रधान कुम्भ का स्थापन करे।

तदनन्तर पूर्वादि तोरण के समीप उक्त मण्डल में अष्टदल कमल पर या धान के पुंज (ढेर) पर

पूर्वोक्त विधि से प्रत्येक द्वार पर पूर्व दिशा के कुम्भ पर ध्रुव की दक्षिण में धरा की, पश्चिम में वाक्पति की एवं उत्तर में विघ्नेश की पूजा करें। पुनः आग्नेयादि कोणों में क्रमशः अग्निकोण में अमृत की, नैऋत्य में दुर्जय की, वायव्य में सिद्धार्थ की एव ईशान में मंगल की पूजा करे। फिर पूर्वादि कुम्भो में इन्द्रादि दिक्पालों का आवाहन आदि के लिए वैदिक मंत्रों से पूजन करके फिर वहीं ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम एवं सुप्रतीक इन अष्ट दिग्गजों की पूजा करे।

अब गुरु अपनी वेदी पर जाकर अपने आसन पर बैठकर अपने इष्टमन्त्र से तीन प्राणायाम करके उस मन्त्र के ऋष्यादि के स्मरण पूर्वक सम्पूर्ण न्यास करके, देवता का ध्यान कर एवं मानसिक उपचारों से पूजन कर प्रधान कुम्भ में मूर्ति स्थापित करके वहाँ अपने इष्ट देवता का आवाहन कर अपने कल्प के अनुसार (सम्प्रदायानुसार) अंग एवं आवरण सहित षोडशोपचार पूजन करके वेदी के दक्षिण भाग में अँगूठे की ऊँचाई के बराबर ऊँचाई की बालू से सम चतुरस्र वेदी बनाकर नित्य होम की विधि से अग्नि स्थापन करके चरु बनाकर देवता का आवाहन करे। घृत मिश्रित चरु द्रव्य द्वारा के हवन करके फिर देवता की पूजा करके कुम्भस्थ मूर्ति के साथ रखकर वह्नि की पूजा करके उसका भी विसर्जन करके भूतबलि एवं स्वकल्पोक्त बलिदान आदि करके देवता की उत्तरापोशन और नीराजन आदि विधिपूर्वक करके प्राणायाममय एवं न्यासादि करके मूलमन्त्र का अष्टोत्तर सहस्र जप करके देवता को जप समर्पित करे।

पूर्व मण्डप में ईशान कोण में स्थापित विकिर पुंज के ऊपर जिसके भीतर स्वर्ण पड़ा हुआ हो एवं जल पूरित वस्त्र युगल से वेष्टित हो, ऐसे करक को स्थापित करके उस करक में सिंह रूपिणी, दक्षिण एवं वाम करक में खड्ग एवं खेट धारण करने वाली भयानक रूपवाली, पश्चिमाभिमुखी अस्त्र देवता का ध्यान करके स्वयं खड़े अस्त्रमंत्रों से उस अस्त्रदेवता की पंचोपचार पूजाकर उस करक को दोनों हाथों से उठाकर मण्डप के भीतर प्रदक्षिण के क्रम से घुमाते हुए करक को पुनः अपने स्थान पर स्थापित करके बैठकर अस्त्र मन्त्र से पञ्चोपचार पूजन करके फिर पूर्वनिर्मित कुण्डों में अग्नि स्थापन करे।

अग्निस्थापन विधान

कुण्ड को गोबर से लीपकर कुण्ड के समीप अपना आसन बिछाकर एवं आसन की पूजा करके पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके मूलमन्त्र से प्राणायाम, ऋष्यादि कर षडङ्गन्यास सम्पन्न कर देवता का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन कर यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप एवं जप समर्पण करके श्रीगुरु को प्रणाम करके कुण्ड में संस्कार करे।

सर्वप्रथम मूल मन्त्र से कुण्ड को देखकर अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षणकर पुनः अस्त्र मन्त्र से ही तीन कुशों से उसका ताड़नकर कवच मन्त्र (हुं) से अभ्युक्षण कर अस्त्रमन्त्र से कुण्ड में कुछ खोद कर अस्त्र मन्त्र से उस मिट्टी को अङ्गुष्ठ एवं अनामिका से निकालकर हृदय मन्त्र (नमः) से शुद्ध मृत्तिका से उसे पूर्ण करके अस्त्र मंत्र से बराबर करके कवच मंत्र से जल से सींच कर अस्त्रमंत्र से कूटकर दृढ़ करके

कवचमंत्र से कुश से सम्मार्जन करके पुनः कवच मंत्र से गोबर से लीपकर कवच मंत्र से ही अग्नि, सूर्य एवं सोम की अड़तीस कला रूपों का चिन्तन करके कवच मंत्र से त्रिगुणित सूत से तीनों मेखलाओं को तीन–तीन बार वेष्टित करके 'ॐ अमुक कुण्डाय एतदासनं नमः', इत्यादि आसनादि दीपान्त उपचारों से प्रथम चतुरस्रादि कुण्डों में से सम्मुख कुण्ड का चतुर्थ्यन्त नाम एवं नमोऽन्त मंत्र जैसे 'ॐ चतुरस्रकुण्डाय नमः बनाकर पूजन करके उसी प्रकार नाभि की भी पूजा करके और तीनों मेखलाओं की हृदय मंत्र से पूजा करके अस्त्र मंत्र से कुण्ड को वज्र की तरह दृढ़ अनुभव करते हुए हृदय मंत्र से ही कुश के द्वारा अग्नि की ज्वाला के विलास के लिए कुण्ड की चारों दिशाओं में चतुष्पथ (चार मार्ग) की रचना करके कवच मंत्र से आगे से न कटे हुए कुशों को अस्त्र मंत्र से अभिमंत्रित कर कुण्ड की भित्तियों को आच्छादित कर अक्षपाटन करे। इस प्रकार अट्ठारह संस्कार करे।

अथवा अशक्ति की दशा में पूर्वोक्त चार संस्कारों से कुण्ड को संस्कृत करके हृदय मंत्र से अथवा अस्त्र मंत्र से दक्षिण से उत्तर के मध्य में प्रागग्र एवं पश्चिम और पूर्व के मध्य मे उदगग्र कुश के मूल से तीन–तीन रेखायें खींच कर उनका प्रणव से सिंचित करके पूर्वाग्र रेखाओं की दक्षिण रेखाओं में विष्णवे नमः, मध्य रेखा में रुद्राय नमः, उत्तर में इन्द्राय नमः। उत्तराग्र रेखाओं में पश्चिम की रेखा में ब्रह्मणे नमः, मध्य में सूर्याय नमः पूर्व रेखा में सोमाय नमः। इस प्रकार पूजन करके आगे कहे जाने वाले योगपीठ के क्रम से मण्डूक से परतत्त्व पर्यन्त योगपीठ की पूजा करके वहाँ कमल के केसरों में अपने आगे से प्रदक्षिणा क्रम से मध्य तक ॐ जयायै नमः, विजयायै नमः, अजितायै नमः अपराजितायै नमः, नित्यायै नमः, विलासिन्यै नमः, दोग्ध्यै नमः, अघोरायै नमः, मङ्गलायै नमः इस प्रकार पूजा करके 'ह्रीं सर्व शक्तिकमलासनायै नमः,' इस मंत्र से मध्य में पुष्पाञ्जलि दे।

वहाँ भुवनेश्वरी देवी का उन–उन मंत्रों से आवाहन करके, आवाहनादि से परमीकरण पर्यन्त उन-उन मुद्राओं से सम्पन्नकर आसनादि षोडश उपचारों से आराधना करके वहाँ शिव का ध्यान करके और मूल मंत्र से उनका पूजन करके देवी को ऋतुस्नाता और देव को कामोन्मत्त चिन्तन करके नूतन मृत्पात्र में चकमक पत्थर से या अरणिमन्थन से उत्पन्न अथवा श्रोत्रिय के घर से लायी गयी अग्नि को अस्त्र मंत्र से पात्र में रखकर कवच से उसी जाति के पात्र से ढँककर कन्या या सुवासिनी द्वारा लायी गयी उस अग्नि को लेकर अस्त्रमंत्र से उसमें से एक अंगार क्रव्यादांशं के रूप में नैर्ऋत्य कोण में फेक दे।

शेष देवांश को मंत्र से देखकर पुनः अस्त्र मंत्र से प्रोक्षणकर और अस्त्र मंत्र से कुश से ताडन करके, कवच मंत्र से अभ्युक्षण करे। तदनन्तर अपने मूलाधार में स्थित वह्निमण्डलगत परमात्म स्वरूप अग्नि-सोमात्मक बिन्दु से अग्नि को मणिपूरगत जठराग्नि के साथ सुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित (वाम या दक्षिण) नासापुट से निकलाकर 'रं' इस बीज का उच्चारण करते हुए सम्मुख पात्र में स्थित वह्नि में बह्नि-चैतन्य को मिलाकर उदर बिन्दु से उत्पन्न वह्नि एवं पार्थिव वह्नि की एकता की भावना करते हुए प्रणव से अभिमंत्रित करके 'वं' इस बीज से धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके अस्त्रमंत्र से रक्षा करके

कवचमंत्र से अवगुंठन करके 'ॐ वह्नये नमः इस मंत्र से गन्ध आदि से पूजन करके घुटने के बल बैठकर इस पात्र को हाथों में लेकर प्रदक्षिणाक्रम से कुण्ड के ऊपर तीन बार घुमावे। देवी की योनि में शिव का बीज है ऐसा ध्यान करते हुए प्रणव का उच्चारण कर अपने सम्मुख कुण्ड में अग्नि का प्रक्षेपण करके मैथुन की बुद्धि करते हुए देव-देवी को आचमन देकर 'ॐ' चित्पिङ्गल हन-हन पच-पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए मुख से फूँककर कुश से अग्नि को प्रज्वलित कर एवं काष्ठ से उसे अच्छी तरह प्रज्वलित करके अंजलि बाँधकर ''ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्।'' इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि का उपस्थान करके अग्निमंत्र से तीन प्राणायाम करके शिरसि भृगुऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये अग्नये देवातायै नमः, गुह्ये रं बीजाय नमः, पादयोः स्वाहा शक्तये नमः'' इस प्रकार न्यास करके 'दीक्षाङ्गहोमे विनियोगः।' इस प्रकार बद्धाञ्जलि होकर विनियोग करे।

पुनः सर्वांङ्ग न्यास इस प्रकार करे–

लिङ्गे सरयूं हिरण्यायै नमः, गुदे परयूं कनकायै नमः, शिरसि शरयूं रक्तायै नमः, मुखे वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः ररयूं रक्तायै नमः। सर्वाङ्गे यरयूं बहुरूपायै नमः। इस प्रकार सप्तजिह्वा का विन्यास करके 'ॐ' सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। इसी प्रकार स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुम्, सप्त जिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, धनुर्धराय अस्त्राय फट् इस प्रकार षडङ्ग न्यास करके, शिरसि अग्नये जातवेदसे नमः, वामांसे अग्नेये सप्तजिह्वाय नमः, वामपार्श्वे अग्नये हव्यवाहनाय नमः, वामकट्या अग्नये अश्वोदरजाय नमः, लिङ्गे अग्नेय कौमारतेजसे नमः, दक्षपार्श्वे अग्नये विश्वमुखायनमः, दक्षा से अग्नये देवमुखाय नमः, इस प्रकार मूर्ति न्यास करके अपने को स्वयं अग्नि रूप में ध्यान करके, सप्तजिह्वा मुद्रा का प्रदर्शन करे।

पात्रासादन – कुड के उत्तर भाग में बिछे हुए कुशों पर स्रुक्, स्रुवा, प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली, चरुस्थाली, परिधित्रय पॉच प्रकार की समिधारूप, ईधन, मूल कटे हुए अग्रभाग युक्त कुश की मुट्ठी इन सबको स्थापित कर पात्रों को अधोमुखँ रखकर दूसरे दही अक्षत आदि बलि द्रव्य, गन्ध पुष्पादि पूजाद्रव्य यथोचित ढंग से स्थापित करके अधोमुख रखे गये स्रुक्, स्रुवा आदि को पवित्री पहनें हुए अधोमुख हाथ से सिंचन रूपी प्रोक्षणपूर्वक उत्तान (सीधा) करके प्रणीता पात्र को धोकर अपने सामने बिछे कुशों के ऊपर रखकर उसे शुद्धजल से पूर्ण करके उसमें गन्धद्रव्य एवं अक्षत डालकर, प्रादेश मात्र अग्रभाग युक्त दो कुश जिनके बीच में ब्रह्मग्रन्थि लगी है, जल के ऊपर उस पवित्र को उत्तराग्र रखकर दोनों हाथ की अंगुष्ठ और अनामिका से पवित्र को मूल के अग्र भाग से पकड़ कर अस्त्र मंत्र का उच्चारण करते हुए पवित्र के मध्य भाग से जल को तीन बार पात्र से बाहर भूमि पर छिड़क दे। इस प्रकार उत्पवन करके उस जल में कुछ घी डालकर उस पात्र को दोनों हाथों से मस्तक पर्यन्त ऊँचा उठाकर कुण्ड के उत्तरभाग में कुशास्तरण पर रखकर उन पर पूर्वाग्र कुश रख दे। यह प्रणीता पात्र की स्थापना है। प्रोक्षणी पात्र को धोकर शुद्ध

जल से पूर्ण करके उसमें प्रणीता पात्र के जल को दूसरे पात्र से निकालकर थोड़ा डालकर उस जल से मूल मंत्र का उच्चारण करते हुए सभी पात्रों, होम द्रव्यों एवं पूजा द्रव्यों का प्रोक्षण करे।

कुशपरिस्तरण प्रक्रिया

इस प्रकार द्रव्यासादन करके प्रोक्षणी के जल से अग्नि का भी सेचन करके गर्भ (बीच के पत्रों) से रहित चार कुशों से प्राची में उत्तर अग्रभाग करके आग्नेय कोण से ईशान कोणतक परिस्तरण करके पुनः दक्षिण दिशा में पूर्वाग्र वाले पहले से जिनका परिस्तरण किया गया है, उनके मूलभाग को इनके अग्र भाग से ढँकते हुए, पुनः पश्चिम दिशा में उत्तराग्र कुशों से दक्षिण के परिस्तरण के मूल भाग को उनके मूल से आच्छादित करते हुए पुनः उत्तर दिशा में पूर्वाग्र कुशों से पश्चिम में फैलाये कुशों के अग्रभाग को पूर्व परिस्तरण के अग्रभाग को ढँकते हुए इनके अग्रभाग से परिस्तरण करके तीनों परिधियों से लेकर सबसे स्थूल पश्चिम-उत्तराग्र उससे कनिष्ठ दक्षिण उत्तराग्र, पश्चिम परिधि के मूल पर मूल हो इस प्रकार परिस्तरण करके कनिष्ठ उत्तर दिशा में पूर्वाग्र तथा पश्चिम परिधि के अग्रभाग के ऊपर मूल हो इस प्रकार कुण्ड की मध्य मेखला के ऊपर तीन परिधियों का निक्षेप करे। यहाँ पश्चिम मेखला में तो परिस्तरण की परिधि का स्थापन, योनि नाल एवं ऊर्ध्व-मेखला के बीच में करना चाहिए।

पश्चिम परिधि में ऊँ ब्रह्मणे नमः। दक्षिण परिधि में ॐ विष्णवे नमः। उत्तर परिधि में ॐ रुद्राय नमः इस प्रकार विधिवत् पूजा करके अपने इष्टदेवता की दीक्षा से दीक्षित ब्राह्मण को आमंत्रित कर कुण्ड के दाहिने भाग में कुशासन पर बिठाकर यजमान 'अमुक गोत्र अमुक शर्मा में अमुक गोत्र अमुक वेदान्तान्तर्गत अमुक शाखाध्यायी अमुक शर्मा को अपने इष्ट दीक्षाङ्गभूत होम कर्म में कृताकृतावेक्षण रूप ब्रह्म कर्म करने के लिए ब्रह्मा के रूप में आपका वरण करता हूँ इस प्रकार वस्त्र अलंकार आदि द्वारा वरण करे और गन्ध पुष्प आदि से उनकी पूजा करे। ब्राह्मण उपलब्ध न हों, तो कुश का बटुक बनाकर उसकी पूजा करे।

अनन्तर अग्नि मंत्र (स्वाहा) से अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क आदि पात्रों को स्थापित कर एवं उन्हें संस्कारित करके, कुण्ड के मध्य में षट्कोण जिसके बीच में है ऐसी, कर्णिकाओं और केसरों से युक्त चार द्वारों वाले तीन चतुरस्र से वेष्टित कमल की अग्नि के पूजापीठ के रूप में भावना करके वहाँ पूर्व में कहे गये विधान से मण्डूकादि परतत्त्वान्त योगपीठ की पूजा करके अष्ट दल कमल में अपने सामने से प्रदक्षिण क्रम से पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै नमः, धूम्रायै नमः तीव्रायै नमः, विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, रुचिरायै नमः, ज्वालिन्यै नमः, इस प्रकार मध्य तक नौ शक्तियों की पूजा करके 'रं' सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इस मंत्र से समस्त पीठ का पूजन करे।

करैर्वरस्वस्तिकशक्त्यभीतीर्दधानमम्भोजगतं त्रिनेत्रम्।
सिन्दूरवर्णं तपनीयभूषणं वह्निजटाभूषितमौलिमीडे॥

इस मंत्र से ध्यान करे एवं सप्तजिह्वा मुद्रा का प्रदर्शन करके 'ॐ वैश्वानर जातवेद, लोहिताक्ष, सर्वकर्माणि साधय स्वाहा, अग्नये नमः इस प्रकार तीन पुष्पाञ्जलियों से अग्नि की पूजा करके पुनः बह्वि मंत्र का उच्चारण करके 'अग्नये एतदासनं नमः' इसी प्रकार आगे 'अग्ने एष ते अर्घः स्वाहा' एतत्ते पाद्यं नमः, 'एतत्ते आचमनीयं स्वधा', 'एष ते मधुपर्कः स्वधा', 'एतत्ते पुनराचमनीयं स्वधा', 'एतत्ते स्नानं नमः, इस प्रकार सम्मुख चरण, मुख, मूर्धा आदि सर्वाङ्ग के उद्देश्य से मेखला के बाहर दूसरे पात्र में अर्घ्य न्याद्य से लेकर स्नान पर्यन्त अग्नि के उन–उन अंगों की भावना करते हुए पूजन करके पुनः आचमन देकर अग्नि में ही वस्त्र देकर पुनः आचमनीय जल देकर यज्ञोपवीत चढ़ाकर बाहर पुनः आचमनीय जल देकर गन्ध एवं पुष्प का अग्नि में ही निवेदन करे।

हवन प्रक्रिया

इस प्रकार वह्निमंत्र से आसन से लेकर पुष्प पर्यन्त उपचारों से अर्चन करके षट्कोण में देवता के अग्रभाग में स्थित कोण से प्रारम्भ करके मध्य पर्यन्त– सरयूं हिरण्यायै नमः, षरयूं कनकायै नमः, शरयूं रक्तायै नमः, वरयूं कृष्णायै नमः, लरयूं प्रभायै नमः, ररयूं अतिरक्तायै नमः, यरयूं बहुरूपायै नमः इस प्रकार पूजन करके अष्टदल के केसरों में अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य कोण एवं देवता के आगे चारों दिशाओं में ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा नमः, ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट् नमः, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं नमः, ॐ सप्त जिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् नमः, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् नमः, इस प्रकार षडङ्ग पूजा करके अष्टदलों में देवता के अग्रभाग से प्रदक्षिण क्रम से– ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देवमुखाय नमः इस प्रकार अष्टमूर्तियों की पूजा करके उसके बाहर चतुष्कोण में आयुधसहित इन्द्र आदि की पूजा करके, पुनः अग्नि मंत्र से अग्नि की पूजा करके धूप-दीप देकर एवं नैवेद्य को अग्नि में प्रदान करे।

पुनः आचमन देकर तदनन्तर अधोमुख स्रुक् एवं स्रुवा को अग्नि में तपाकर कुश लेकर उसके अग्रभाग से स्रुक् स्रुवा के अग्रभाग को, मध्य से मध्य को एवं मूल से मूल को तीन बार समार्जन करके उन कुशों के अग्नि में डालकर उन स्रुक् स्रुवा को अपने दक्षिण भाग में कुश पर रखकर, आज्यस्थाली लेकर अस्त्रमंत्र से उसका प्रक्षालन करके अपने सामने कुश पर रखकर उसके ऊपर जिनका अग्रभाग उत्तर की ओर हो, ऐसी प्रादेश मात्र लम्बी ब्रह्मग्रन्थि युक्त दो पवित्रियाँ रखकर, दूसरे पात्र में रखे हुए दुर्गन्ध आदि दोषों से रहित गोघृत को वीक्षण आदि चार संस्कारों से संस्कृत करके, धेनुमुद्रा प्रदर्शनपूर्वक 'वं' बीज से उसका अमृतीकरण करके एवं मूल मंत्र से आठ बार अभिमंत्रित उस घृत को आज्य स्थाली में डालकर कुंड से अंगार निकालकर मेखला के बाहर वायुकोण में उसका निक्षेप करके उसपर आज्यं स्थाली को हृदयमंत्र से रखकर दो कुश जलाकर उनको घृत में डाल कर शेष अंश को हृदय मंत्र से अग्नि

में डाल दे। पुनः दो कुश जलाकर कवच मंत्र से उस आज्यस्थाली के चारों ओर घुमा कर शेष को अग्नि में डालकर पुनः दो कुश जलाकर हृदय मंत्र से घी में दिखाकर दग्धशेष को अग्नि में जलाकर आज्य स्थाली को उठाकर प्रदक्षिणा क्रम से अग्नि के ऊपर घुमाकर अपने सामने कुश के ऊपर स्थापित कर ले बाहर के अंगारों को पुनः कुण्ड में डाल दे।

पुनः हाथ धोकर दोनों हाथों की अंगुष्ठ-अनामिकाओं से पवित्र मूल एवं अग्र भाग का स्पर्श कर मन्त्र का उच्चारण करते हुए पवित्री के मध्य भाग से घृत का उत्पवन (उछाल) करके पुनः हृदय मंत्र का उच्चारण करते हुए उसी प्रकार पवित्री के मध्य भाग से तीन बार घृत का उत्प्लावन (बाहर गिराना) करके उस पवित्री को (अग्र भाग सामने रखते हुए) स्थाली के बीच में डाल दे। इस प्रकार घृत का दो भाग करके दक्षिण भाग को शुक्ल पक्ष एवं उत्तर भाग को कृष्ण पक्ष परिकल्पित करके एवं वामभाग को इडा एवं दक्षिण भाग को पिंगला एवं मध्यभाग को सुषुम्ना रूप तीन नाडियों की कल्पना करके स्रुवा से दक्षिण भाग से घी लेकर हृदय मन्त्र से 'अग्नये स्वाहा' इस प्रकार अग्नि के दक्षिण नेत्र में आहुति देकर 'अग्नये इद नमः' इस प्रकार उद्देश्य त्याग करके पुनः वामभाग से हृदय मन्त्र से घी लेकर 'सोमाय स्वाहा इदं सोमाय नमः' कह कर अग्निं के वाम नेत्र में हवन करके फिर हृदय मत्र से मध्य भाग से घी लेकर ॐ अग्नीषोमाभ्यां नमः से अग्निं के ललाटस्थ नेत्र में हवन करके 'इदमग्नीषोमाभ्यां नमः' का उच्चारण करके पुनः दक्षिण भाग से घृत लेकर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस प्रकार अग्नि के मुख में हवन करके 'अग्नये स्विष्टकृते इदं न ममः' ऐसा उद्देश त्याग करके ॐ भूः स्वाहा अग्नये इदं न मम, ॐ भुवः स्वाहा वायवे इदं न ममः, ॐ स्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतये इदं न ममः, ॐ वैश्वान्नर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इस वह्निमंत्र से तीन बार हवन करकें अग्नये इदं न मम ऐसा उच्चारण करे।

अग्नि के संस्कार

अब 'ओं अग्नेर्गभाधानं सम्पादयामि स्वाहा' इसी प्रकार पुसंवन, सीमन्नतोनयन इत्यादि प्रत्येक कर्म के लिएं आठ-आठ आहुतियाँ देकर वागीश्वर से उत्पन्न हुए अग्नि के पूर्वोक्त रूप का ध्यान करते हुए 'अग्नेजातकर्म संस्कारं सम्पादयामि स्वाहा से आठ आज्याहुति देकर वह्नि के नालच्छेद एवं सूतक निवृत्ति का चिन्तन कर 'वह्नेर्नामकरणसंस्कारं सम्पादयामि स्वाहा' बोलकर आठ आहुतियाँ देकर शिवाग्नि ऐसा नामकरण करके ॐ वह्नेरूपनिष्क्रमणं स०, अग्नेरन्नप्राशनं० अग्नेश्चौलं सं०, अग्नेरुपयनयम् स०, अग्नेर्माहानाम्न्यं स०, अग्नेर्महाव्रतम् स०, अग्ने रौपनिषदं सं०, अग्नेर्गोदानं स०, अग्नेः समावर्तनं स० 'अग्नेरुद्वाहं सम्पादयामि' स्वाहा इस प्रकार प्रत्येक कर्म के लिए आठ-आठ घृताहुतियाँ देकर गर्भाधान से विवाहान्त संस्कारों को पूर्ण करके, अग्नि के माता-पिता देव-देवी की पहले की तरह पूजा करके उनका विसर्जन कर पाँच समिधाओं को, जिनका घी में डुबोया हुआ मूल भाग है उसे आगे करके अंजलि में लेकर मौन होकर एक साथ उन्हें अग्नि में समर्पित करे।

पुन: 'ॐ सरयूं हिरण्यायै स्वाहा, इसी प्रकार 'परयूं कनकायै०, शरयूं रक्तायै, वरयूं कृष्णायै, लरयूं सुप्रभायै०, ररयूं अतिरक्तायै०, परयूं बहुरूपायै०। ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे० उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै० धूमव्यापिने कवचाय० सप्तजिह्वाय नेत्राय, धनुर्धराय अस्त्राय ॐ अग्नेय जात-वेदसे स्वाहा, अग्नये सप्तजिह्वाय०, अग्नये हव्यवाहनाय, अग्नेय अश्वोदराय, अग्नये वैश्वानराय, अग्नये कौमारतेजसे०, अग्नये विश्वमुखाय, इस प्रकार जिह्वाङ्ग मूर्ति के मंत्रों से एक–एक आहुति प्रदान करे।

तदनन्तर ॐ लं इन्द्राय स्वाहा, इन्द्राय इदं न ममः, ॐ अग्नये० यमाय०, निर्ऋतये०, वरुणाय, वायवे०, कुबेराय० ईशानाय०, ब्रह्मणे० अनन्ताय०, वज्रायं, शक्तये०, दण्डाय०, खण्डाय० पाशाय०, अंकुशाय०, गदायै०, शूलाय०, पद्माय०, चक्राय इस प्रकार प्रत्येक के नामोचारण के साथ एक-एक आहुति प्रदान करे और न मम से उद्देश का त्याग करे।

तदुपरान्त स्रुवा से घी लेकर अधोमुख स्रुक् के मुख में चार बार डालकर पूर्वोक्त अग्नि मन्त्र से स्वाहा के स्थान में वौषट् का उच्चारण करते हुए खड़े होकर अग्नि में हवन करके बैठकर 'ॐ स्वाहा, ओं श्रीं स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा, इस प्रकार दश खण्डों में विभक्त महागणपति के मंत्र से दश आहुतियाँ देकर पुन: ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा इस समस्त मंत्र से चार आहुतियाँ प्रदान करे। यह अग्नि स्थापन की विधि है।

चरुनिर्माण एवं उसके उपयोग का विधान

अग्निस्थापन के अनन्तर अस्त्रमंत्र से ताम्र आदि के पात्र का प्रक्षालन करके मूलमंत्र से आठ बार अभिमंत्रित एवं तीन बार धुले हुए पन्द्रह पसर (प्रसृति) चावलों को अस्त्र मन्त्र पढ़ते हुए पात्र में डालकर जितने में चावल पक जाय उतने गाय का दूध उसमें डालकर धुले हुए पात्र से कवच मंत्र का पाठ करते हुए उस पात्र को ढककर उबाल आने पर मेक्षण (दर्वी) से प्रदक्षिण क्रम से चलाते हुए पूर्व मुख होकर मूल मंत्र का स्मरण करते हुए उस चरु को पकावें। पक जाने पर मूलमन्त्र से स्रुवा द्वारा उसमें घी डालकर कवच मंत्र से उस पात्र को उतार कर अस्त्र मंत्र से अभिमंत्रित कर फैले हुए कुशों पर उसको रखकर चरु का तीन भाग करके एकभाग कलश में आवाहित देवताओं को निवेदित करे। मण्डप के चारों ओर पहले से अंकुरार्पण कर्मवाले पात्रों का यथायोग्य फैलाकर आटे के बने हुए दीपों को रखकर कुण्ड के समीप अपने आसन पर बैठकर वहीं आगे कथित विधि के अनुसार मूल मंत्र से अर्घ्यादि पात्रों का स्थापन करके अग्नि के मुख में पूजा चक्र की भावना करते हुए मण्डूकादि पीठपर्यन्त पूजन करके वहाँ देवता का आवहन करके साङ्ग सावरण सर्वोपचार पूजन करे। यहाँ अर्घ्य से स्नानपर्यन्त जिस प्रकार अग्नि की पूजा की गयी थी, उसी प्रकार कुण्ड से बाहर अन्य पात्र में देवता के उद्देश्य से पूजन प्रस्तुत करे और सभी

क्रियायें कुण्ड में ही करें।

तदनन्तर मूलमंत्र से अग्नि एवं देवता के मुख के एकीकरण के उद्देश्य से पचीस आज्य की आहुतियाँ देकर स्वयम्, अग्नि एवं देवता के एकत्व की भावना करते हुए मूलमंत्र से नाडी सन्धान के लिए ग्यारह बार घी का होम करके षडङ्गावरण देवताओं को एक एक घृताहुति देकर पहले से निर्मित चरु के दूसरे तृतीयांश को नव खण्डों में बाँटकर उसके एक अंश से मूल मंत्र द्वारा पचीस आहुतियाँ देकर ऋत्विजों द्वारा अष्टादश संस्कार से संस्कृत पूर्वादि दिशाओं में स्थित कुण्डों में गुरु अपने कुण्ड से अग्नि निकाल–निकाल कर उन उन कुण्डों में डाले। ऋत्विक्गण पूर्वोक्त विधि के अनुसार अपने अपने कुण्डों में अग्नि प्रज्वलित करके अग्नि को उस स्थान पर सेचन, परिस्तरण परिधिप्रक्षेपण एवं पूजा आदि के द्वारा पूर्णतः सन्तुष्ट करके उस कुण्ड में अग्नि के दहक जाने पर अपने देवता का नित्य पूजा के विधान से आवाहन करके ताम्बूल पर्यन्त उपचारों से विधिवत् पूजन करके वक्त्र एकीकरण, नाड़ी सन्धान एवं अङ्गावरण हवन के उपरान्त मूलमंत्र से गुरु द्वारा प्रदत्त घृत मिश्रित पायस से अपने अपने कुण्डों का पचीस बार आहुतियाँ दें।

ग्रहबलि विधान

इसके उपरान्त गुरु सर्वतो भद्र मण्डल की पूर्वादि की चारों वीथियों में मेषादि राशि स्थानों में पूर्वदिशा में मेष एवं वृष, अग्निकोण में मिथुन, दक्षिण में कर्क एवं सिंह, नैर्ऋत्य में कन्या, पश्चिम में तुला एवं वृश्चिक, वायव्य में धनु, उत्तर में मकर एवं कुंभ एवं ईशान में मीन। इस प्रकार विभक्त राशियों के स्थानों में राशियों के स्वामियों, ग्रहों के नक्षत्रों तथा करणों के हवन से बचे हुए पायस से बलि प्रदान करें। मेष एवं वृश्चिक के स्थान में 'कं खं गं घं ङं मेष वृश्चिक राश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तपायसबलिर्नमः।' इसी प्रकार 'चं' ५ वृषतुलाराशिधिपतये शुक्राय। टं, ५ मिथुन कन्या राश्यधिपतये बुधाय एष० यं १० कर्कटराश्यधिपतये सोमाय एष०। अं १६ सिंहराश्यधिपतये सूर्याय एष०। तं ५ धनुमीनाधितपये गुरवे एष०। पं. मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय एष०। इसी प्रकार ग्रहबलि देकर इस प्रकार मंत्र कल्पित करके जैसे– मेषराश्यंशभूत अश्विनी भरणी कृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तंचरेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्धाक्षतयुक्तपायसबलिर्नमः। इसी प्रकार सभी नक्षत्रों के लिए मंत्र कल्पित करके बलि प्रदान करे।

करणों के लिए– मीन में मेषयोरन्तराले ववकरणाय एष०। इसी विधि से वृष-मिथुन के अन्तराल में बालव, मिथुन एवं कर्क के अन्तराल में कौलव, सिंह-कन्या के अन्तराल में तैतिल, कन्या-तुला के अन्तराल में गर, वृश्चिक-धनु के बीच में वणिज, धनु-मकर के बीच मे विष्टि के लिए पूर्वोक्त प्रकार से मंत्र कल्पित करके बलि प्रदान करें। विशेष– दो राशियों के अधिपतियों को दोनों राशियों के स्थान पर पृथक्-पृथक् बलि प्रदान करे, ऐसा भी सम्प्रदाय है। तदनन्तर कुम्भस्थ देवता के लिए उत्तरापोशनादि

नीराजनान्त वक्ष्यमाणविधि से पूजन करके स्तुति प्रणाम एवं क्षमा प्रार्थना करे।

अधिवास

इसके उपरान्त तीसरे भाग का शिष्य के सहित गुरु भोजन करके स्वयं आचमन करके शिष्य को आचमन कराकर षडङ्गन्यास से सकलीकरण करके बारह अंगुल लम्बी दातौन हृदय मंत्र से अभिमंत्रित करके शिष्य को दे और वह दातौन करके उसे धोकर सामने डाल दे और गुरु के समीप जाये। गुरु मूल मंत्र से अभिमंत्रित करके शिखा बाँधकर उसकी रक्षा करे और गुरु उसके साथ ही वेदी में कुश के विस्तर पर रात्रि में शयन करे। यह अधिवास विधि है।

(विशेष— आम्नाय दीक्षा में उन–उन देवताओं के मंत्रों से देवताओं का पूजन एवं हवन ऋत्विजों को करना चाहिए। षड्दर्शन दीक्षा में उन दर्शनों के मंत्रों से होम, जप एवं पूजा आदि करे। आगे वैदिक दर्शन की दीक्षापद्धति दी गयी है जिसमें वैदिक मंत्रों का एवं स्मार्त मंत्रों का प्रयोग है। जो इस ग्रन्थ के पृ. ३२० से ३२८ विस्तार से दिया गया है। उसे वहीं देखे।)

दूसरे दिन गुरु शिष्य के साथ उठकर आवश्यक नित्यक्रिया के उपरान्त मूल मंत्र से सात बार अभिमंन्त्रित दातौन शिष्य को देकर दन्तधावन करवाये। शिष्य दन्तशोधन करके दातौन को धोकर सामने एक हाथ के चौकोर स्थण्डिल में डाल दे। गुरु उसकी परीक्षा करे। शुभ अशुभ विधान पहले कह चुके हैं। प्रायश्चित्त विधान आगे ४३९ पृष्ठ में कहेंगे।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य शोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के द्वादश श्वास की भाविवृति पूर्ण हुई।। १२।।

अथ त्रयोदशः श्वास

भाव–विवृति

षडध्वशोधन प्रकार

इसके बाद शिष्य स्नान करके पूर्वाह्ण की क्रिया पूर्ण करके अच्छी प्रकार से अलंकृत होकर गुरु को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से उनके बगल में बैठ जाय। उसके बाद गुरु एवं ऋत्विक् गण अपने अपने कुण्ड में पूर्ववत् अंगों एवं आवरणों सहित देवता का पूजन करें, तथा घृतमिश्रित तिल से अथवा उन–उन कल्पों में कथित पुरश्चरण होम द्रव्यों से एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार हवन करें। तदनन्तर गुरु शूद्र भिन्न शिष्य को पञ्चगव्य का प्राशन कराकर एवं कुण्ड के समीप ले जाकर दिव्य दृष्टि से अवलोकन करके शिष्य के हृदयकमल से भूतशुद्धि के प्रसंग में उक्त परिपाटी से ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से जीवात्मा को उसके देह से निकाल कर (गुरु द्वारा कथित युक्ति से) योग बल से अपनी आत्मा से जोड़कर शिष्य का षडध्व शोधन करे। (यहाँ शैव वैष्णव दीक्षा एवं गाणपत्य दीक्षा आदि की दृष्टि से षडध्वशोधन प्रकार बताकर शाक्तदीक्षा का निरूपण किया गया है। अन्य दीक्षाओं के लिए मूल श्वास १२ पृ.३२०–२८ का अनुशीलन करें।) दीक्षा के क्रम में यह श्वास षडध्व शोधन से प्रारम्भ होता है।

शाक्ती षडध्वा शोधन विधि

इसके उपरान्त शिष्य की नाभि में अतल, वितल, सुतल, महातल तलातल, रसातल, पाताल एवं भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यलोकात्मक चतुर्दश भुवनाध्वा का चिन्तन करके उस शिष्य के हृदय में आदिक्षान्त वर्ण रूप वर्णाध्वा की भावना करे। पुनः शिष्य के ललाट में वर्ण समुदाय रूप पदाध्वा की भावना करे। तब शिष्य के शिर में पद समुदाय रूप मूल मंत्र से मंत्राध्वा की भावना करे।

इस प्रकार शिष्य के शरीर में अध्वषट्क का चिन्तन करके कुश-कूर्च से स्पर्श करते हुए अपने कुण्ड में "ॐ अमुकस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा" इस मंत्र से घृत मिश्रित तिल से आठ आहुतियाँ देकर कलाध्वा के तत्त्वाध्वा में विलीन होने का अनुभव करते हुए 'ॐ अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा' से अष्टधा हवन करके तत्त्वाध्वा को भुवनाध्वा में विलीन जानकर तदर्थ ॐ अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा मंत्र से आठ आहुतियाँ देकर उसे भी वर्णाध्वा में विलीन मानकर 'ॐ अमुकस्य वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहा' मन्त्र से आठ आहुतियाँ दे। इसी प्रकार वर्णाध्वा को पदाध्वा में एवं पदाध्वा को मंत्राध्वा में विलीन अनुभव कर उन-उन मंत्रों की ऊंहा करके प्रत्येक के लिए आठ–आठ आहुतियाँ देकर उस मंत्राध्वा का ब्रह्मरन्ध्र में स्थित परम शिव में विलय अनुभव करते हुए पुनः प्रतिलोम संहार क्रम से परम शिव से मंत्राध्वा की सृष्टि करके मंत्राध्वा से पदाध्वा उससे वर्णाध्वा उससे भुवनाध्वा पुनः तत्त्वाध्वा और उससे कलाध्वा की सृष्टि करके उन्हें पुनः तत्तत् स्थानों में स्थापित करके शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखकर अपने में स्थित शिष्य चैतन्य को आवाहन मे कथित प्रकार से उसके ब्रह्मरन्ध्र एवं हृदय कमल में स्थापित

कर दे। शूद्र एवं संकर जातियों का अध्वशोधन नहीं होता। उनका शोधन पादोदक से करना चाहिए।

मन्त्रदान एव उसके पूर्व कर्म

इसके पहले की भाँति इष्ट देवता एवं अंगावरण देवता के लिए एक–एक आहुति देकर 'अं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ओं भूर्भु:स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यश्च, दिग्भ्यश्च, महते च स्वाहा' इन मंत्रों से चार आहुतियाँ देकर 'इत: पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताम्यां पदभ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतम् तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा इस मन्त्र की आठ आहुतियाँ देनी चाहिए।

दीक्षा होमविसर्जन प्रक्रिया

'ॐ सहस्त्रार्चिर्महातेजा' से 'प्रयच्छ मे' तक के दो श्लोकों से (पृ. ३३०) अग्नि की प्रार्थना करके पहले की भाँति पूजन करके न्यूनातिरिक्त दोष के परिहार के लिए 'ॐ हुँसाङ्गं कुरु कुरु स्वाहा' से सघृत तिल की आहुति देकर पूर्ववत् स्त्रुक् स्त्रवा के द्वारा तीन आहुतियाँ देकर पहले की भाँति वहाँ देवता की पूजा करके अग्नि के पास से देवता का उद्वासन करके कलश में विसर्जन करके पुन: पूर्ववत् व्याहृति अग्नि जिह्वाङ्ग एवं मूर्तिमंत्रों से एक एक आहुति देकर प्रोक्षणी के जल से अंभिषेक करके 'भो भो वह्ने' इत्यादि से प्रार्थना करके संहारमुद्रा से उस अग्नि को अपने में स्थापित करके परिधि परिस्तरण को मौन भाव से अग्नि में डालकर प्रणीता पात्र का उद्वासन कर अपने सम्मुख बिछे कुशों पर रखकर अं प्राच्यै दिशे नम:, दक्षिणायै०। प्रतीच्यै, उदीच्यै०, ऊर्ध्वायै० से उन उन दिशाओं में प्रणीता से जल छिड़कर अधरायै दिशे नम: से भूमि पर जल डाल दे और उस जल से कुश के द्वारा अपना एवं शिष्य का प्रोक्षण करे। इस प्रकार प्रणीता का उद्वासन करके ब्रह्मा का उद्वासन का ब्राह्मण को स्वर्ण युक्त पूर्णपात्र प्रदान करवाये। यह दीक्षाङ्ग होम की विधि है।

अभिषेक विधि

इसके उपरान्त नूतन रेशमी वस्त्र से नेत्र-मंत्र के द्वारा शिष्य के दोनों नेत्रों को बाँधकर उसका हाथ पकड़कर कुम्भ के सभीप ले जाकर उसकी अंजलि को फूलों से भरकर स्वयं मूल मंत्र का उच्चारण करते हुए घट स्थित देवता को पुष्पाञ्जलि दिलाकर नेत्र के बन्धन खोलकर कुशासन पर बिठाकर

''अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम:।।''

इस मंत्र का पाठ कराकर कुम्भस्थ देवता की साङ्गावरण विधिवत् पूजा सम्पन्न करके पूर्वोक्त भूतशुद्धि की विधि से शिष्य के देह का स्मरण करके उसका संशोधन करने से नूतन उत्पन्न शरीर में मूलमंत्र के ऋष्यादि न्यास को पूर्ण करे। कुंभस्थ देवता का पंचोपचार पूजन करके अपने-अपने अंग एवं आवरण के सहित मण्डप द्वार के देवता, लोकपाल, गणेश, चतुरायतन देवता आदि को प्रधान देवता के अंग में विलीन अनुभव करते हुए उस कलश देवता का षडङ्गन्यास से सकलीकरण करके उस तेजोमय

जल की ब्रह्मरूप से भावना करते हुए अलंकृत शिष्य को वेदी के समीप पूर्व, ईशान या उत्तर दिशा में सर्वतोभद्र मण्डल में भद्रपीठ पर पूर्वाभिमुख बैठाकर पंचवाद्य ध्वनि के बीच कुम्भ को उठाकर कुम्भ में स्थित आम्रादि पल्लवों को कल्पवृक्ष की शाखा की भावना से शिष्य के शिर पर रखकर ऋत्विक्गण एवं अन्य ब्राह्मणों द्वारा वेद घोषपूर्वक मूलमंत्र से तथा विलोम मातृका से उस पूर्वाभिमुख बैठे शिष्य का स्वयं उत्तराभिमुख खड़े होकर अभिषेक करे। पुनः पूजित अस्त्ररूप करक को उठाकर उसके जल से अभिषेक करके उस अवशिष्ट जल से शिष्य को आचमन कराकर देवता स्वरूप उस शिष्य को षडंग न्यास से सकलीकृत करके नूतन वस्त्रयुगल पहनाकर उसको पास बिठाकर उसके देह में संक्रान्त देवता का उसी देह में गन्धादि पंचोपचार पूजन करके शिष्य एवं देवता की अभेद भावना करके विनम्र शिष्य के दक्षिण कर्ण में गणेशादि चतुरायतन मंत्र पूर्ण श्रीमन्त्र (मूल मंत्र) का तीन बार उच्चारण करे। शिष्य ब्राह्मण हो, तो मंत्र दान रूप जल प्रदान करे। दूसरे लोगों को ऐसे ही रहने दे। इसके बाद शिष्य अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट मंत्र का ऋष्यादि न्यासपूर्वक अष्टोत्तर शत, अष्टाविंशति या अष्टधा जप करके तथा जप समर्पण करके गुरु मंत्र एवं देवता को एक अनुभव करते हुए अनेक बार गुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम कर पुनः पञ्चाङ्ग प्रणाम करे। इस प्रकार प्रणाम करके गुरु एव ऋत्विजों को प्रमाणोक्त (पूर्व कल्पित) दक्षिणा प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करे। यह क्रियामयी दीक्षा है।

इस प्रकार से विस्तार से क्रिया दीक्षा करने में असमर्थ होने पर साधारण मण्डप में पूर्ववत् वेदिका मण्डल का निर्माण कर उसी प्रकार वहाँ कुम्भ स्थापित करके ऋत्विजों का वरण करके और उसमे भी असमर्थ होने पर गुरु चतुरस्र कुण्ड बनाकर वहाँ अग्निस्थापन आदि पूर्ण कर्मकाण्ड करके उक्त विधि से अभिषेक करके दीक्षा दे। मण्डप बनाने में भी असमर्थ होने पर किसी प्रशस्त स्थान में मण्डल, पूजा चक्र एवं उनके देवता की स्थापना करके या स्थण्डिल में हवनादि क्रिया सम्पन्न करके दीक्षा हेतु अभिषेक करके मंत्र दान करे।

(श्रीविद्यार्णव की दृष्टि से श्रीविद्या की दीक्षा का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह पद्धति समयाचार की दृष्टि है। इसी प्रकार वैदिक दर्शन दीक्षा की विधि का विस्तार से पृष्ठ ३२० से ३२८ तक वर्णन है। उन आचार्यों को मूल ग्रन्थ के आधार पर अपना कर्मकाण्ड करना चाहिए। इसी प्रकार शैव दीक्षा, वैष्णव दीक्षा, सौरदीक्षा, शक्ति के अन्य मंत्रों की दीक्षा, गाणपत्य दीक्षा, में षडध्वा शोधन का एक दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकार है, उसके लिए मूल ग्रन्थ के पृष्ठ ३२९ का सन्दर्भ लें।)

वर्ण दीक्षा के अन्य प्रकार

जो क्रिया दीक्षा में असमर्थ हो, उनके लिए वर्ण दीक्षा आदि विधियाँ लिखते हैं। वहाँ पुरुष-स्वभाव के अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्णों का पुरुष-प्रकृति के शिष्य के देह में न्यास करके पुनः संहार क्रम में मूर्धा से लेकर हृदय के मध्यभाग तक क्षकार को नाभि के अन्तःस्थित लकार में उपसंहार करता हूँ, हृदय से लेकर नाभिपर्यन्त स्थित लंकार का हृदय से लेकर वामपाद के अग्रभाग में स्थित हकार में

उपसंहार करता हूँ। हृदय से लेकर वाम पाद पर्यन्त स्थित हकार का हृदय से दक्षिण पादाग्रपर्यन्त स्थित संकार में संहार करता हूँ। हृदयादि दक्षिण पादान्त स्थित सकार का हृदयादि वामपाणिपर्यन्त स्थित षकार में संहार करता हूँ। हृदयादि वामपाणि पर्यन्त स्थित षकार का हृदयादि दक्षिण हस्ताग्र में स्थित शकार में उपसंहार करता हूँ। इस युक्ति से शकार का वकार में उपसंहार करे। पुनः मुखवृत्त में स्थित आकार का शिरस्थ अकार में उपसंहार करता हूँ। इस युक्ति वर्णों का उपसंहार करके पुनः उस चैतन्य का समस्त तत्त्वग्राम के सहित परमात्मा में युक्त करके, जिसके सकलतत्त्व समूह विलीन हो गये और जो समस्त कालुष्य से मुक्त हो गया है, ऐसे दिव्य शरीर शिष्य का विचार करके पुनः परमात्मा से अकारादि क्षकारान्तवर्णों को उत्पन्न करके वक्ष्यमाण सृष्टि न्यास क्रम से शिष्य के शरीर मे मातृका वर्णों का न्यास करके पुनः तत्त्वग्राम समेत उस चैतन्य को उस शिष्य के शरीर में युक्त करके उक्त विधि से मंत्रोपदेश करे, यह वर्ण-दीक्षा है।

कला-दीक्षा

शिष्य के शरीर में पादतल से जानुपर्यन्त निवृत्ति कला, जानु से नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठा कला, नाभि से कण्ठपर्यन्त विद्याकला, कण्ठ से ललाटपर्यन्त शान्तिकला, ललाट से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त शान्त्यतीता कला है, ऐसा चिन्तन करके निवृत्ति का प्रतिष्ठा में, प्रतिष्ठा का विद्या में विद्या का शान्ति में एवं शान्ति का शान्त्यतीता कला में उपसंहार करके उसका वेध करके और उसका भी परमात्मा में उपसंहार करके पूर्वोक्त विधि से शरीर संशोधन करके शुद्ध शरीर का उत्पादन करके परमात्मा से शान्त्यतीता कला का उससे शान्ति कला का और उससे विद्या, पुनः प्रतिष्ठा और निवृत्ति कला को सृष्टिक्रम से शिष्य के देह में उन-उन स्थानों में स्थापित करके मंत्रोपदेश आदि करना चाहिए। इसी प्रकार अड़तीस कलाओं का भी इसी युक्ति से संहार एवं सृष्टिक्रम न्यास से शिष्य का संस्कार करके दीक्षा देनी चाहिए।

वाग्दीक्षा

गुरु परचिद्रूप शिव में अपने चित्त को स्थापित कर उन्हीं से समस्त मन्त्र उत्पन्न हुए हैं, ऐसा ध्यान करते हुए शिष्य के शिर पर अपने दक्षिण हाथ को रखकर स्वयं शिष्य को मंत्रोपदेश करे।

स्पर्श-दीक्षा

गुरु स्वयं अपने करतल में शिवस्वरूप अपने गुरु का ध्यान करते हुए मूल विद्या एवं षडङ्ग मातृका का जप करते हुए शिष्य के शिर पर अपना दक्षिण कर स्थापित कर मंत्रोपदेश करे।

दृग्दीक्षा

गुरु अपने नेत्र को बन्द करके परमात्मा स्वरूपिणी देवता का ध्यान करके प्रसन्न चित्त से दिव्य दृष्टि से शिष्य की ओर देखकर मंत्र का उपदेश करे। स्पर्श, वाक् एवं दृग्दीक्षा तत्त्ववित् गुरु विरक्त शिष्यों को ही दे। स्त्रियों के लिए तो केवल वाग्दीक्षा का ही विधान है।

वेधदीक्षा

यह दीक्षा अत्यन्त कठिन है। विद्यारण्ययति के अनुसार कलियुग में इस प्रकार दीक्षा प्रदान करने में समर्थ (सिद्धयोगी) गुरु एवं इस प्रकार का शिष्य दुर्लभ है। प्रसंगतः इसकी चर्चा कर दी है। श्रीविद्यारत्नाकर में भी इस दीक्षा का वर्णन है।

शाम्भवी दीक्षा

श्रीविद्यारत्नाकर के अनुसार इस दीक्षा में गुरु शिष्य के शिर पर कामेश्वर एवं कामेश्वरी के क्रमशः रक्त एवं शुक्ल चरण की भावना करके उस चरण से विगलित अमृत क्षालित होने में शिष्य के शरीर के तीनों (स्थूल, सूक्ष्म, एवं कारण) शरीरों के मल को दूर कर दीक्षा देता है। यह देवीदेव चरण विन्यास रूपिणी दीक्षा है।

शाक्ती दीक्षा

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक कमलनाल के तन्तुसी सूक्ष्म, अनवं सूर्य चन्द्र एवं अग्नि के समान प्रकाश, शीतलता एवं तेज से युक्त परा संविद् रूपा कुण्डलिनी का ध्यान करके शिष्य के पाप-पुंज का उक्त कुंडलिनी के तेज से दहन करके मंत्र प्रदान करे, यह दीक्षा शक्तिपातरूपा है।

अग्नि के वर्ण, गन्ध, शिखा आदि का वर्णन

(दीक्षा एव दीक्षांग होम आदि के क्रम में अग्नि के वर्ण आदि के सम्बन्ध में, होम द्रव्यों के प्रमाण, समिधा स्रुक् स्रुवा का रचनाप्रकार आदि की चर्चा की गयी है। हवन की दृष्टि से उसका महत्त्व को देखते हुए यहाँ उनका उल्लेख किया जाता है। क्योंकि अग्नि के वर्ण (प्रकाश) गन्ध, शब्द, आकृति, विकास एवं शिखा का ज्ञान कर्मसिद्धि के लिए आवश्यक है।)

वर्ण– पद्मरागमणि के समान द्युतिवाली, महावर के रंग की, प्रभात के बाल सूर्य के रंग की, गुडहल पुष्प जैसी, इन्द्रगोप (इन्द्रवधूटी) जैसी, रक्तवर्ण की तथा इन्द्रधनुष जैसी अथवा कुसुम्भ जैसी तथा लाल रंग के पुष्पों के समान अग्नि श्रेष्ठ मानी गयी है।

गन्ध– गन्ध की दृष्टि से सुगन्धित द्रव्यों के गन्ध जैसी एवं घृत के गन्ध जैसी अग्नि उत्तम होती है। कमल के गन्धवाली अग्नि आयु देने वाली होती है। बिल्व, नागकेसर, चम्पक, पुन्नाग, पाटली, जूही, कमल इन्दीवर (नीलकमल), कल्हार (रक्तकमल) घृत एवं गुग्गुल में से अन्यतम गन्धवाली अग्नि शुभ गन्धवाली होती है।

शब्द– मेघ, वल्लकी (वीणा) मयूर एवं मृदंग की ध्वनि जैसा अग्नि का शब्द हो, तो वह सिद्धिदाता होता है। इससे विपरीत असिद्धि होती है। शरदातिलक में भेरी, मेघ एवं गजेन्द्रध्वनि जैसी अग्नि को शुभ माना है।

आकृति– ध्वज एवं चामर जैसी, वृत्ताकार विमान (श्रेष्ठ भवन) अश्व, प्रासाद (महल), वृषभ, हंस एवं मयूर के आकार वाली अग्नि सद्यः सिद्धिदायिनी होती है। अन्य दष्ट्रि (हिंसक पशुओं सिंह श्रृंगालादि) रूपवाली अग्नि होम में प्रशस्त नहीं है। ऐसा दिखाई पड़े, तो उसके रूप के बदलने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। अनुकूल आकृति में ही हवन उत्तम होता है।

शिखा– यदि अग्नि की लपटें विषम जैसे तीन हो, तो वे शुभ है। छोटी, छोटी होते हुए उन्नत और लम्बी लपटे सिद्धि प्रदान करती है।

शारदातिलक में निष्कम्प, प्रदक्षिणा करती हुई या छत्र जैसी अग्नि की शिखायें यजमान और राज्य दोनों के लिए शुभ है, ऐसा कहा गया है। नारद पञ्चरात्र में कहा है कि–

प्रदीप्त लपटों से युक्त, धूम रहित, हृद्य, मनमोहक, सन्तुष्टि प्रदानं करने वाली अग्नि में सिद्धिकामी पुरुष हवन करे। स्निग्ध प्रदक्षिणावर्त एवं सुन्दर शब्दवाली अग्नि सदा शुभकारी होती है, यदि उसमें दूसरे अवगुण न हो।

निषिद्ध अग्नि– अल्प तेज वाली, रुक्ष, चिनगारियाँ देने वाली, धुएँ से घिरी लपटों वाली अग्नि सिद्धि देनेवाली नहीं होती। जिसमें दुर्गन्ध हो, जिसकी लपटें सफेद-काली हों और जिसके जलने से भूमि में गड्ढा हो जाय, ऐसी अग्नि पराभव देने वाली होती है। काली एवं कालिख छोड़ती हुई अग्नि यजमान का विनाश करती है। श्वेत रंग की एवं कौवे जैसी ध्वनिवाली राष्ट्र का विनाश करती है। गधे जैसी अग्नि की ध्वनि सर्वनाश करने वाली है। दुर्गन्धित अग्नि होता को दुःख देती है। जिसकी शिखा छिन्नवृत्त की हो, वह मृत्यु कारिणी एवं धन का नाश करती है। तोते के पंख जैसी एवं कबूतर जैसी अग्नि से घोड़ों और गौओं का तुरन्त नाश होता है। तन्त्रसार में लिखा है कि गधे, ऊँट एवं भैंस सी ध्वनि वाली, रूखी चट–चट करने वाली अग्नि सिद्धिदायक नहीं होती।

कुलप्रकाश तन्त्र में इसका प्रायश्चित्त यह बताया गया है कि इस प्रकार के दोषों के लिए प्रत्येक दोष के लिए पचीस–पचीस आहुतियाँ देनी चाहिए।

अग्नि की जिह्वाएँ

अग्नि की लपटों को जिह्वा कहते हैं। ये छः कोणों एवं मध्य में मिलाकर सात होती हैं। सोमशम्भु के अनुसार क्रमशः ईशान, पूर्व, अग्नि, नैर्ऋत्य, वरुण, वायु के कोण में छः जिह्वायें हैं और मध्य में अनेक रूप की होती है। गणेश्वर परामर्शिनी में इनका नाम सहित निर्देश है। तप्तस्वर्ण जैसी हिरण्या ईशान कोण में, वैदूर्य वर्ण की कनका प्राची में, तरुण सूर्य जैसी रक्ता अग्निकोण में, कृष्णाञ्जन प्रख्या नैर्ऋत्यकोण में, पद्मराग जैसी सुप्रभा पश्चिम में, जपाकुसुम जैसी अतिरक्ता वायव्यकोण में तथा स्वाभाविक प्रकाशवाली बहुरूपा दक्षिण उत्तर के बीच में होती है। नारद पञ्चरात्र में इनकी प्रभा, दीप्ता, प्रकाशा, मरीचि, तापिनी, कराला, लेलिहा ये नाम दिये हैं। ईशान एवं पूर्वादि भाग में प्रभादि तीन,

नैऋत्य, पश्चिम एवं वायव्य में मरीचि आदि तीन तथा लेलिहा उत्तर दक्षिण एवं मध्य में स्थित होती है। ग्रन्थकार का कथन है कि प्रभा आदि को हिरण्या आदि का नामान्तर मानना चाहिए अथवा वैष्णव याग की दृष्टि से ये स्वतन्त्र नाम हैं। वायवीय संहिता में अतिरक्ता को अन्या कहा है, जिसको मरुजिह्वा माना गया है। तीन लपटों वाली बहुरूपा के मध्य में दक्षिण में या वाम में लपटे होती हैं। इसलिए बहुरूपा नाम दिया है। ये सात्त्विक जिह्वायें हैं। कुछ आचार्यों के मत से कुण्ड के मध्य में हिरण्या जिह्वा शुभकार्यों में प्रशस्त मानी गयी है। स्तंभनादि कर्मों में कनका, अन्तर्द्वेषादि कर्म में रक्ता, मारण में कृष्णा एवं शान्ति कर्म में सुप्रभा तथा उच्चाटन में अतिरक्ता को कहा गया है।

कुलप्रकाशन तंत्र के अनुसार जिह्वाओं के अधिदेवता-देव, पितर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच तथा राक्षस है। उन-उन अधिदेवताओं के उद्देश्य से यदि आहुति दी जाय, तो वे तृप्त होकर (दोष निवृत्ति करके) अभीष्ट उत्तम सिद्धि प्रदान करते हैं।

अग्नि का ध्यान

आचार्य समिधा का होम करते समय अग्नि का खड़े हुए रूप में ध्यान करे। घृत के हवन के समय सोये हुए और शेष वस्तुओं के हवन में बैठे हुए का ध्यान करे।

महाकपिञ्जल पञ्चरात्र एवं राहुकल्प के अनुसार

समी कार्यों की पूर्ण सिद्धि के लिए अग्नि की जिह्वा में ही हवन करना चाहिए। जहाँ लकड़ी होती है, वहाँ कान है। जहाँ धूम है, वहाँ नासिका है। जहाँ हल्की लपटे हैं, वहाँ नेत्र है और जहाँ राख है, वहाँ शिर है। जहाँ अग्नि पूर्ण प्रज्वलित है वहाँ जिह्वा है। कान में हवन से व्याधि, नासिका में महादु:ख, नेत्र में नाश, केश या शिर में दरिद्रता होती है।

शारदातिलक के अनुसार कान में होम से व्याधि, नेत्र में अन्धता, नासिका में मन:पीड़ा, मस्तक में धन का क्षय होता है। धूमयुक्त अग्नि शिर है, निर्धूम अग्नि नेत्र है क्षीण रूप से जलने वाली कर्ण एवं काष्ठ नासिका है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को सभी कर्मों में अग्नि की जिह्वा में ही हवन करना चाहिए। इस प्रकार हवन के समय अग्नि के विभिन्न अंगों का ज्ञान आवश्यक है।

स्रुक् स्रुवा निर्माण प्रकार

उत्तर तन्त्र में इसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। पृ. ३३३—३३४ में इसे देखें। वहीं यह भी लिखा गया है कि स्रुक् स्रुवा के अभाव में संक्षिप्त हवन में छिद्र रहित सुन्दर पलाश के या पीपल दो-दो पत्तों को लेकर स्रुक्-स्रुवा का निर्माण कर ले। उनका संस्कार मूल स्रुक् स्रुवा की ही भाँति अवश्य करना चाहिए।

होम द्रव्यों का प्रमाण (मात्रा कथन)

(इनके माप का स्पष्टीकरण यहीं अन्त में करेंगे।)

हवन में घृत एक कर्ष, दूध, पंचगव्य एवं मधु शुक्तिमात्र, खीर अक्ष बराबर, दधि एक प्रसृति

(पसर) धान का लावा एक मुट्ठी एवं सत्तू भी एक मुट्ठी, गुड एवं शकर आधा पल, चरु आधाग्रास, धान, गेहूँ, उड़द एव यव, कोद्रव, एवं लाल अगहनी धान, मुष्टिमात्र होने चाहिए। तिल एक चुलुक, सर्षप एक चुलक, ईख एक पर्व (पोर) पर्यन्त, पत्र, पुष्प एवं मालपुवे एक–एक केले एवं नारंगी के फल भी एक–एक, मातुलुंग (विजौरा) चार टुकडे करके, कटहल दश टुकड़े, नारियल के आठ टुकड़े, बेल तीन खण्ड, कपित्थ दो खण्ड, खरबूज या ककड़ी तीन खण्ड अन्य फल अखण्ड (सम्पूर्ण)। समिधा दश अंगुल, दूर्वा तीन, गुडूची चार अंगुल होनी चाहिए। शैवागम, एवं नारद पञ्चरात्र के अनुसार किसी वृक्ष के मूल के तीन खण्ड एवं सूक्ष्म मूल का सम्पूर्ण हवन होता है। कन्द का आठ भाग एवं लताओं के दो अंगुल के टुकड़े करने चाहिए।

कलश में कितना जल भरे इस दृष्टि से द्रव द्रव्य मान (माप) का कथन किया गया है– भविष्यपुराण के अनुसार दो पल को प्रसृति (पसर) कहते हैं। दो प्रसृति का कुडव होता है और चार कुडव का प्रस्थ, चार प्रस्थ का आढक एवं चार आढक का द्रोण। द्रोण को कुम्भ भी कहते हैं। दो द्रोण का शूर्प एवं सोलह द्रोण की खारी होती है।

समिधा प्रमाण (नारद पञ्चरात्र में)

समिधा का प्रादेश मात्र (दश अंगुल) के समान खण्ड हो। इनको विशीर्ण, द्विदल, छोटी, टेढ़ी, मोटी, पतली, कीड़ों से खायी हुई, बड़ी, छिलके से रहित नहीं होना चाहिए, क्योंकि विशीर्ण से आयु का क्षय होता है, द्विदला से व्याधि उत्पन्न होती है। ह्रस्वा मृत्यु कराती है, वक्र विघ्न करती है। स्थूल लक्ष्मी का हरण करती है, कृशा (पतली) से क्षय होता है, द्विधा नेत्र दोष तथा कीटदष्टा अर्थनाशिनी और दीर्घा द्वेष पैदा करती है। बिना छिलके वाली प्राण लेने वाली होती है। क्षीर से युक्त (सरस) सम, छिलके वाली बराबर टुकड़ों में कटी हुई गोल समिधा सभी कामनाओं को देनेवाली होती है। बुद्धिमान् पुरुष श्रौत, स्मार्त एवं तांत्रिक हवन में ऐसी ही समिधा का हवन करे, जिससे विपुल श्री प्राप्त हो।

वायवीयी संहिता में उसकी मोटाई कनिष्ठा अंगुलि के बराबर कही गयी है और माप दश या बारह अंगुल कहा है। शेष सब समान है।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य शोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के त्रयोदश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई।। १३।।

चतुर्दश श्वास

भाव—विवृति

पूर्णाभिषेक विधान

दीक्षा विधान में सद्गुरु उत्तम शिष्य को विधि-विधान से मन्त्र एवं उसकी उपासना विधि आदि प्रदान कर शिष्य को साधक बनाता है। अब कुछ काल तक उत्तम प्रकार से साधना कर लेने के बाद उत्तम भक्ति युक्त सच्छिष्य का जिसने गुरु से एवं शास्त्रों से उपास्य एवं उपासना सम्बन्धी रहस्यों का अधिगम कर लिया है, ऐसे शिष्य का सद्गुरु पूर्णाभिषेक करे।

शिष्य को गुरु के समीप तीन दिन रहना चाहिए एवं आधार, हृदय एवं मूर्धा में श्रीचक्र की भावना करता हुआ गुरु, देवता, मन्त्र एवं स्वयं का अभेद भावन करता हुआ मन्त्र जप करता रहे, अन्यथा गुरुदेव से शिष्य में संचरित होने वाली शक्ति गुरु में ही लौट जाती है। इस पूर्णाभिषेक का मुख्य उद्देश्य साधक को सिद्ध बनाने के लिए चतुर्विध ऐक्य में प्रतिष्ठित करना है। इस अवसर पर गुरु शिष्य को अनेक रहस्यों से अवगत कराकर उसे समर्थ साधक बना देता है, जिससे वह सिद्ध बनने योग्य हो जाता है।

पूर्णाभिषेक के क्रम में वे सब विधियाँ करनी होती है, जो दीक्षा क्रम में लिखी गयी है, किन्तु कुछ नयी विधियाँ होती हैं, जो दीक्षा प्रकरण में नहीं कही गयी है। उनका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

गुरु, यज्ञ मण्डपादि एवं सर्वतोभद्र मण्डल की पूजा का क्रम पहले पूर्णाभिषेक क्रम उन सब विधियों को वहीं से जानकर सम्पन्न करें। वैसे ग्रन्थकार ने यहाँ भी यथायोग्य प्रयोग दिया है।

नवग्रहपूजा विधि

तीन हाथ चौड़ी लम्बी वेदी में पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण चार रेखाओं से चतुष्कोण का निर्माण कर उसमें समान दूरी के नौ कोष्ठों का निर्माण करके प्रत्येक कोष्ठ के अन्तराल में तीन वृत्त बनाकर उनके मध्य में दो रेखायें डालकर नौ कोष्ठों का निर्माण कर मध्य कोष्ठ की आठ दिशाओं में अपने सामने से प्रदक्षिणा क्रम से आं इं ईं उं उं ऋं ॠं आठ स्वरों को लिखकर मध्यकोष्ठ में 'मों' लिखकर तीनों वृत्तों के दोनों अन्तरालों में से भीतरी अन्तराल में 'मं मां मिं मीं मुं मूं मृं मॄं में मैं मों मौं मं म: ऐस लिखकर बाह्य अन्तराल में अं आं इत्यादि से लेकर क्षं पर्यन्त सम्पूर्ण मातृकायें लिखकर वहाँ सूर्य की पूजा करे। तत्पश्चात् पूर्वदिग्गत नौ कोणात्मक मण्डल के मध्य में सों सोमाय नम:। ह्रीं लिखकर पूर्वादि दिशा में लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अ: इस प्रकार आठों स्वरों को लिखकर उनके अन्तराल में हं हां इत्यादि सोलह स्वरों से संयुक्त हकार लिखकर उसके बाहर बिन्दुयुक्त मातृकायें लिखकर वहाँ सोम की पूजा करे। (चन्द्रमंडल के लिए चन्दन एवं कपूर तथा सूर्य के लिए रक्तचन्दन या सिन्दूर या गेरू का विधान है। नैवेद्य सर्करा मिश्रित पायस लिखा है।) पुन: अग्निकोण गत नवकोणात्मक मण्डल के मध्य

कोण में 'उं क' शेष बाहर के आठ कोणों में कं खं गं घं ङं मं ग ल इन आठ अक्षरों को लिखकर भीतर के अन्तराल में षोडश स्वरयुक्त कं कां किं कीं कुं कूं कें कैं कों कौं कं क: लिखकर उसके बाहर के अन्तराल में मातृकायें लिखकर वहाँ भौम का पूजन करे।

इसी प्रकार दक्षिण के मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवयुक्त चकार (ऊं च) लिखकर उसके बाहर के कोष्ठ कों में चं छं जं झं ञं बुधाय ऐसा लिखकर भीतर के अन्तराल में षोडश स्वर युक्त चं चां इत्यादि लिखकर और बाहर के अन्तराल में सम्पूर्ण मातृकायें लिखकर वहाँ बुध का पूजन करे।

उसके बाद नैर्ऋत्य कोण के मण्डल में बीच में प्रणव गर्भ टकार (ऊं ट) बाहर लिखकर उसके बाहर के आठ कोष्ठकों में 'टं ठं डं ढं णं सौ रये' लिखकर उसके अन्तराल में सोलह स्वरों से युक्त अपने सम्मुख से प्रदक्षिणा क्रम से टं टां इत्यादि को सोलह स्वरों से युक्त लिखकर और उसके बाहर के अन्तराल में मातृकायें लिखकर वहाँ शनैश्चर की पूजा करे।

पुन: पश्चिम मण्डल के मध्यकोष्ठ में प्रणव गर्भ तकार (ऊं त) लिखकर उसके बाहर के आठ कोष्ठकों में तं थं दं धं नं गु र वे' लिखकर उसके बाहर के अन्तराल में षोडश स्वर युक्त तं तां इत्यादि लिखकर और उसके बाहर के अन्तराल में मातृकायें लिखकर वहाँ गुरु की पूजा करे।

पुन: वायव्य कोण के मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवयुक्त 'ऊं पं' लिखकर उसके बाहर के आठ कोष्ठकों में पं फं बं भं मं शुक्राय' लिखकर उसके बाहर के अन्तराल में षोडश स्वरों से युक्त पं पां इत्यादि लिखकर उसके बाहर के अन्तराल में मातृकायें लिखकर वहाँ शुक्र की पूजा करे।

तदनन्तर उत्तर मण्डल के मध्यकोष्ठ में प्रणव युक्त यकार (ऊं य) लिखकर उसके बाहर के कोष्ठों में अपने अग्र से प्रदक्षिणा क्रम से अष्ट कोष्ठकों में 'यं रं लं वं सं रा ह वे' लिखकर उसके बाहर के अन्तराल में षोडश स्वर युक्त यं यां इत्यादि लिखकर उसके बाहर मातृकायें लिखकर वहाँ राहु का पूजन करे।

पुन: ईशान मण्डल के मध्य कोष्ठ में ऊं षं लिखकर उसके बाहर के आठ कोष्ठकों में 'षं शं हं ळं क्षं के त वे' इन आठ अक्षरों को लिखकर उसके बाहर षोडश स्वरों से युक्त षं षां इत्यादि लिखकर और उसके बाहर के अन्तराल में मातृकायें लिखकर केतु की पूजा करे। सभी ग्रहों की पूजा षोडशोपचार करनी चाहिए।

ग्रन्थ के पृ. ३४१ से ३४३ तक में दिन नित्या, डाकिन्यादि षड्धातु देवता एवं पञ्चाशन मिथुन पूजा का चक्र बनाकर पूजन करने का विधान है। यहाँ संक्षिप्त उल्लेख है। अत: वहीं से विधि देखकर धर्मकाण्ड सम्पन्न करे।

तिथीशार्चन प्रयोग

वेदी में चौदह कोण का मण्डल बनाकर मूल मंत्र से तीन प्राणायाम करके तिथीश पूजन का

संकल्प करे। मध्य में उस तिथि के स्वामी का आवाहन करके आसनादि पुष्पोपचार पर्यन्त अर्चन करके अपने संमुख कोण से प्रदक्षिणा क्रम से चौदह कोणों में शेष चौदह तिथीशों का आवाहन एवं पूजन करके धूपादि नैवेद्यान्त पूजन करे। तिथीशों के नाम इस प्रकार हैं—

प्रतिपदा—अग्नि। द्वितीया—अश्विनीकुमार (दो)। तृतीया में उमा। चतुर्थी विघ्नराज (गणेश)। पञ्चमी—सर्प। षष्ठी—कार्तिकेय। सप्तमी—रवि। अष्टमी—मातायें (षोडशमातृका) नवमी—दुर्गा। दशमी—दिशायें। एकादशी—कुबेर। द्वादशी—केशव। त्रयोदशी—यम। चतुर्दशी—शिव। पूर्णिमा—चन्द्र। अमावास्या—पितृगण।

वारेशों की पूजा का विधान

वहाँ वेदी पर षट्कोण मण्डल बनाकर मूल मन्त्र से प्राणायाम करके उद्देश्य कथनपूर्वक 'वारेश पूजनमहं करिष्ये' ऐसा संकल्प करके उस दिन का जो वारेश हैं, उसे षट्कोण के मध्य में आवाहित कर आवाहनादि पुष्पोपचार पर्यन्त अर्चित करके अन्य वारेशों की उन छ: कोणों में अपने सम्मुख से प्रदक्षिणा क्रम से दो—दो वारेशों को क्रमश: स्थापित कर पूजा करके धूप, दीप नैवेद्यादि निवेदन कर पूर्ववत् पूजा सम्पन्न करे। वारेशों के नाम क्रमश: इस प्रकार है— रविवार—सूर्य एवं शिव। चन्द्रवार—सोम तथा अम्बिका। मंगलवार—भौम तथा कार्तिकेय। बुधवार—बुध एवं ब्रह्मा। गुरुवार—बृहस्पति तथा विष्णु। शुक्रवार— शुक्र एवं लक्ष्मी (रमा), शनिवार—कुबेर एवं शनि।

नक्षत्रेश पूजा क्रम

वेदी मे सत्ताइस अरा वाले चक्र का निर्माण करके मूल से तीन प्राणायाम करके उद्देश्य कथन पूर्वक पूजन का संकल्प करके उस तिथि के नक्षत्र के स्वामी को बीच में स्थापित कर आसनादि पुष्पोपचारान्त पूजन करके शेष सत्ताइस नक्षत्रों में से पूर्व स्थापित नक्षत्र की परवर्ती नक्षत्र के नक्षत्रेश से अपने सम्मुख से प्रदक्षिणाक्रम से स्थापना करके सबकी सर्वोपचार से पूजा करके नैवेद्यान्त पूजन करके पूर्ववत् अर्चन सम्पन्न करे। नक्षत्रेश इस प्रकार है—

अश्विनी—अश्विनी कुमार। भरणी—यम। कृत्तिका—अग्नि। रोहिणी—धाता। मृगशिरा—चन्द्र। आर्द्रा—शिव। पुनर्वसु—अदिति। पुष्य—गुरु। आश्लेषा—सर्प। मघा—पितर। पूर्वफाल्गुनी—अर्यमा। उत्तराफाल्गुनी—भग। हस्त—सूर्य। चित्रा—त्वष्टा। स्वाती—मरुत। विशाखा—इन्द्र और (अग्नि)। अनुराधा—मित्र। ज्येष्ठा—इन्द्र। मूल—निर्ऋति। पूर्वाषाढ़—तोय। उत्तराषाढ़—विश्वेदेव। अभिजित्—प्रजापति। श्रवण—हरि। धनिष्ठा—वसु। शतभिधा—वरुण। पूर्वाभाद्रपदा—अजैकपाद। उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य। रेवती में पूषा।

नित्या पूजन क्रम

भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरी सहित नित्याओं की संख्या सोलह है। उनमें से श्रीचक्र के मध्य बिन्दु में पूज्या श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की प्रधान पूजा है। शेष पन्द्रह नित्याओं का तत्त्वन्यास, ध्यान मन्त्र एवं मन्त्रोंद्धार ऋष्यादि षडङ्गन्यास आदि का श्रीविद्यारण्ययति ने प्रयोग के अन्तर्गत स्पष्टीकरण किया है।

उपासकों एवं अध्येताओं की सुविधा के लिए कामेश्वरी नित्या की पूर्ण अर्चा पद्धति दे रहे हैं। शेष नित्याओं में जो विशेष बातें होंगी, उन्हें ही लिखा जायेगा। सुविधा के लिए पन्द्रह नित्याओं के यन्त्र भी बना दिये गये हैं, क्योंकि पूर्णाभिषेक के क्रम में हैं। तो इनका अंग के रूप में पूजन विहित किन्तु अनेक साधक इनकी स्वतंत्ररूप से सिद्धि करके अनेक काम्य कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। तंत्रराज तन्त्र में एक–एक पटल में (जिनमें १०० श्लोक होते हैं) इनका विस्तार से वर्णन है। हमने यहाँ पूजापद्धति से सम्बन्ध रखने वाले अंशों का ही उल्लेख किया है। पुरश्चरण कर सिद्धि प्राप्त करने के लिए उक्त ग्रन्थ के शेष भाग को गुरुमुख से अगवत करके ही साधना करनी चाहिए।

तिथि नित्या मण्डल

अथ कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी ।
नित्यक्लिन्नाभिधा नित्या, भेरुण्डा वह्निवासिनी।।
महाविद्येश्वरी (शिव) दूती त्वरिता कुलसुन्दरी।
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला ।।
ज्वालामालिनिका, चित्रेत्येता पञ्चदशोदिताः ।।

वास्तव में नित्यायें श्रीविद्या के परिवार हैं। इनके पूजन का क्रम शुक्ल पक्ष में कामेश्वरी से विचित्रा (चित्रा) तक एवं कृष्ण पक्ष से चित्रा से कामेश्वरी तक प्रत्येक तिथि में एक का पूजन होता है। यदि तिथि क्षय हो, तो एक दिन में दो का एवं तिथि वृद्धि हो एक का दो दिन पूजन होता है।

श्रीतंत्रराज तंत्र में सातवें पटल में श्लोक ३–६ तक मंत्रोद्धार का निर्वचन है। उसमें कामेश्वरी के समस्त कामना की पूर्ति करने वाले एक दशाक्षर मंत्र का उद्धार किया गया है।

मंत्र – ऐं सकल ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः।

गायत्री– ॐ कामेश्वर्यै विद्महे नित्यक्लिन्नायै धीमहि तन्नो नित्या प्रचोयात्।

ऋषि आदि एवं उनका न्यास– सम्मोहनः ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः ब्रह्मबीजं (कं), कामकला (ईं) शक्ति, धाराबीजम् (लं) कीलक है, ऐसा उच्चारण करके विनियोग करे।

प्रातःकृत्य से लेकर योगपीठन्यास आदि करके कामेश्वरी विद्या से तीन प्राणायाम करके शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः,, हृदये कामेश्वरी देवतायै नमः गुह्ये, कं बीजाय नमः, पादयोः, ह्रीं शक्तये नमः नाभौ, 'लं' कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके उद्देश्य कथनपूर्वक तिथ्यादि का उल्लेख कर स्वनामोच्चारण (प्रसिद्धया तांत्रिक) पूर्वक संकल्प करे।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य शोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के चतुर्दश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई।। १४।।

पञ्चदश श्वास

भावविवृति

अथ षडङ्ग न्यासः

ऐं हृदयाय नमः। सकलह्रीं शिरसे स्वाहा। नित्यशिखायै वषट्। क्लिन्ने कवचाय हुम्। मदद्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अस्त्राय फट्। पुनः दक्षनेत्रे ऐं नमः। वामनेत्रे सकलह्रीं नमः। दक्षकर्णे नि नमः। वामकर्णे त्य नमः। दक्ष नसि क्लि नमः। वाम नसि न्ने नमः। जिह्वायां म नमः। हृदये द नमः। नाभौ द्र नमः गुह्ये वे नमः। सर्वाङ्गे सौः नमः व्यापक करके ध्यान एवं मानसपूजा करके यन्त्र का निर्माण कर स्थापित करे। (यन्त्र का प्रतिरूप संलग्न है)।

ध्यान मंत्र – **देवीं ध्यायेज्जगद्धात्री जपाकुसुमसन्निभाम्। बालभानुप्रतीकाशाम् शतकुम्भ सम प्रभाम्।**
रक्तवस्त्रपरीधाना सम्पद्विद्या वशंकरीम्। नमामि वरदां देवीं कामेशीमभयप्रदाम्।।

पुनः कामेश्वरी विद्या से पुष्पाञ्जलिं देकर अर्घ्यादि स्थापन एवं पीठ पूजा करके पीठ में कामेश्वरी विद्या से मूर्ति की कल्पना करके आवाहन से लेकर लय पर्यन्त पूजा करके पंचदल कमल केसरों में अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोणों की कल्पना करके देवी के अग्रभाग से चारों दिशाओं में षडङ्ग पूजन करे। देवी के पृष्ठभाग में पञ्चदल एवं अष्टदल के अन्तराल में पहले की भाँति नित्या पूजोक्त गुरुत्रय की पूजा करे। पंचदलों में देवी के अग्रभाग से चलकर प्रदक्षिणा क्रम से 'ह्रीं श्रीं द्रां मदनबाणाय नमः। ह्रीं श्रीं द्रीं उन्मादनबाणाय नमः। ह्रीं श्रीं क्लीं दीपनबाणाय नमः। ह्रीं श्रीं ब्लूं मोहनबाणाय नमः। ह्रीं श्री सः शोषण बाणाय नमः। इस प्रकार पूजा करके उस यंत्र के बाहर के दल में देवी के अग्रभाग से प्रदक्षिणा क्रम से 'ह्रीं श्री अनङ्गकुसुमा पादुकां से लेकर अनङ्गरेखा पादुकां पूजयामि तक अष्टशक्तियों की पूजा करके पुनः षोडश दलों में ह्रीं श्री अं श्रद्धापादुकां पूजयामि नमः से लेकर अः सुभगापादुकां पूजयामि नमः पूजा करके उसके बाहर सोलह दलों के अग्रभाग में ह्रीं श्रीं अं पूषापादुकां से लेकर अः अमृतापादुकां पूजयामि नमः तक पूजन करे। उसके बाहर षट्कोणों में दक्षिणाग्रकोण में ह्रीं श्रीं ऐं डाकिनी पादुकां० वामाग्रे ह्रीं श्रीं ऐं राकिणी पा०। पृष्ठकोणे– ह्रीं श्री ऐं साकिनी पा०। पृष्ठवामे ह्रीं श्रीं ऐं काकिनीपा०। पृष्ठ दक्षिणे ह्रीं श्रीं ऐं शाकिनी पा०। देव्यग्रे ह्रीं श्री ऐं हाकिनीपादुकां पूजयामि नमः। इस प्रकार पूजन करे। षट्कोण के बाहर तथा चतुरस्र के भीतर आग्नेय कोण में ह्रीं श्री ऐं वटुकपा०, नैर्ऋत्ये ह्रीं श्री गं गणपतिपादुकां०। वायव्ये ह्रीं श्री ऐं दुर्गापा० ईशाने ह्रीं श्रीं ऐं क्षं क्षत्रेशपादुकां पूजयामि नमः। इस प्रकार पूजन करे, उसके बाहर चतुरस्र में देवी के पृष्ठभाग से लेकर पूर्वादि दिशाओं में ह्रीं श्रीं ऐं लं इन्द्रशक्तिपादुकां० ईशान में ह्रीं श्री अग्निश्रीपादुका०, क्रम से लोकपालों का पूजन करके उनके आयुध एवं उनकी शक्तियों का नामोल्लेखपूर्वक पूजन करे।

इस प्रकार पूजन करके बटुक, गणेश, दुर्गा एवं क्षेत्रपाल बलि प्रदान करके कुरुकुल्ला की बलि

दे। अष्टादश श्वास में पृ० ५२१ में बटुकादि पंचक के बलि का विधान दिया गया है। उसी क्रम में पृ० ३२२ से ३२४ तक पादटिप्पणी में कुरुकुल्ला एवं वाराही बलि का विधान दिया गया है। इसी प्रकार चतुर्दश श्वास के पृ० ३६९ से पृ० ३७२ तक कुरुकुल्ला एवं वाराही पूजा विधि भी दी गयी है। इस सन्दर्भ में गुरुमुख से ज्ञात करके ही इनकी उपासना करे। बलि प्रदान में भी संक्षेप हो सकता है।

(विशेष– यहाँ कामेश्वर्यादिनामान्ते नित्याश्रीपादुकां पठेत्। पूजयामि तर्पयामि हृदयं पूज्यं तर्पयेत् इस प्रमाण के आधार पर जहाँ पूजयामि नमः है वहाँ पूजयामि तर्पयामि नमः ऐसा कहना चाहिए। तर्पण में विशेषार्घ्य या गोदुग्ध देना चाहिए।)

हवन के लिए घी या मधु से भीगे हुए लाल पुष्प का या अन्न आदि का प्रयोग करना चाहिए। तंत्रराज तंत्र में मन्त्र की सिद्धि का विधान एवं अनेक प्रकार के यंत्र आदि का उल्लेख है, जिसे गुरुमुख से प्राप्त करके गुरुदेव के निर्देश से करने का शिव-शासन है।

मातृकान्यास प्रक्रिया

कामेश्वरी नित्या मातृका न्यास ऐं ह्रीं श्रीं अं कामेश्वर्यै नमः। ३ आं महामायायै०। इं वागीश्यै०। ३ ई ब्रह्मसंज्ञितायै० ३ उं अक्षरायै०। ३ ऊं त्रिमात्रायै०। ३ ऋं त्रिपदायै०। ३ ॠं त्रिगुणात्मिकायै०। ३ लृं सुरसिद्धगणाध्यक्षायै०। ३ ॡं गणमात्रे०। ३ एं गणेश्वर्यै०। ३ ऐं चण्डिकायै० ३ ओं चण्डमुण्डायै०। औं चामुण्यै०। अं दष्ट्रिण्यै०।.३ अः इष्टदायै०। ३ कं विश्वम्भरायै०। ३ खं विश्वयोन्यै०। ३ गं विश्वमात्रे० ३ घं वसुप्रदायै०। ३ ङ स्वाहायै०। ३ चं स्वधायै०। ३. छं तुष्ट्यै०। ३ जं ऋद्ध्यै०। ३ झं सिद्ध्यै०। ३ ञं गायत्र्यै०। ३ टं गोगणायै०। ३ ठं खगायै०। ३ डं वेदमात्रे०। ३ ढं वरिष्ठायै०।.३ णं सु प्रभायै०। ३ तं सिद्धवाहिन्यै०। ३ थं आदित्यहृदयायै०। ३ दं चन्द्रायै०। ३ धं चन्द्रभानुमण्डलायै०। ३ नं ज्योत्स्नायै०। ३ मं शिवायै०। ३ यं शान्तायै०। ३ रं शान्तिदायै०। ३ लं शान्तिरूपिण्यै०। ३ वं सौभाग्यदायै०। ३ शं शुभायै०। ३ ष. गौर्यै०। ३ सं उमायै०। ३ हं हैमवत्यै०। ३ ळं प्रियायै०। ३ क्षं दक्षायै०। सर्वत्र मातृका न्यास मे त्रितारी पूर्व में एवं नमः अन्त में होता है।

(यहाँ जिन मातृकाओं का न्यास होता है, वे कामेश्वरी से लेकर चित्रा (विचित्रा) पर्यन्त पन्द्रह नित्याओं की मातृकाओं के लिए तृतीय श्वास के पृष्ठ ५५ से लेकर पृ. ५९ तक मूल ग्रन्थ से सन्दर्भ ले। इनकी गायत्री अष्टम श्वास के पृष्ठ १८४–१६९ के अन्त तक दी गयी है। उपासना विधि आदि को ग्रन्थकार ने पूर्णाभिषेक प्रकरण में भी पल्लवित किया है, जो चतुर्दश श्वास के पृ. ३४३ से ३७२ तक द्रष्टव्य है।) ग्रन्थकार ने सभी नित्याओं के मन्त्रोद्धार न्यास, अंगपूजन आदि का विस्तार से उल्लेख किया है। अतः पद्धति सर्वाङ्गपूर्ण है। हमने पन्द्रह नित्याओं के यंत्र संलग्न कर दिये हैं, जिससे उपासकों को सुविधा हो।

डाकिन्यादिषड्धातु देवता पूजा विधि

नित्या पूजा के अनन्तर डाकिन्यादि षड्धातु देवता की पूजा की जाती है। ग्रन्थोक्त पद्धति से चक्र का निर्माण करके सामान्य पूजाविधि से डाकिनी आदि छ: की पूजा करके उक्त यंत्र के नैर्ऋत्यकोण में धूम्रवर्ण से पूरित कोष्ठ के मध्य में धूम्रवर्ण की डाकिनी का आवाहन करके उक्त दिन की दिन नित्या के समान ही मुख भुजादि धारण करने वाली के रूप में ध्यान करके 'डां, ड़ीं इत्यादि जातियुक्त षडङ्ग मन्त्र से षडङ्गन्यास करके उसकी प्राणप्रतिष्ठा करे। अपने सम्मुख मुखवांली उस देवी को आसनादि पुष्प-फल उपचारों से पूजित करके उसकी आवरण शक्तियों की पूजा करे– नैर्ऋत्ये ह्रीं आं अं शक्तिपादुकां पूजयामि, वायव्ये ह्रीं आं कं शक्तिपादुकां पूजयामि नमः। पूर्वकोणे ह्रीं आं खं शक्तिपादुका० अग्निकोणे–२ गं शक्तिपादुकां, ईशानकोणे घं शक्तिपादुकां, पश्चिमकोणे २ ङं शक्तिपादुकां इस प्रकार धूप, दीप, पायसान्न, नैवेद्य, ताम्बूल आदि प्रणामान्त उपचारों से प्रसन्न करे।

इसी प्रकार राकिणी आदि शक्तियों के आवाहन स्थापन आवरणशक्ति स्थापन और प्रणामान्त पूजन का विधान करे। प्रसंगतः राकिण्यादि शेष पंचधातु विद्याओं के यंत्र में स्थान के अनुसार स्थापन एवं उनकी शक्तियों के स्थापन का संकेत दिया जा रहा है। वायव्य षट्कोण में सिन्दूरवर्ण की राकिणी का आवाहन कर आसनादि प्रदान करे। सिन्दूर वर्ण की नित्याओं के समान ही मुख भुजा आदि का ध्यान कर उसके आदि वामाग्र दक्षिणाग्र, पृष्ठ, वाम दक्षिण एवं सम्मुख ह्रीं आं अं शक्तिपादुका०, इसी प्रकार चं छं जं झं ञं पादु०, का उच्चारण कर पूजन करे। राकिणी के पूजन में गुडौदन (गुड में बना भात) मुख्य है। इसी प्रकार पूर्व दिग्गत षट्कोणों में नीलवर्ण की लाकिनी का आवाहन करे। पूर्वोक्त रीति से ह्रीं आं के साथ अं टं ठं डं ढं णं का उच्चारण करके शक्तिपादुका की पूजयामि से पूजा सम्पन्न करे। इस देवता का नैवेद्य मूद्गौदन (मूंगभात) है।

एवमेव आग्नेयादि गत षट्कोण में उदीयमान सूर्य के वर्ण की काकिनी का आवाहनादि करके पूर्वोक्त क्रम से ह्रीं आं अं तं थं दं धं नं शक्तिपादुकां पूजयामि नमः, करे और पूजन में दही भात का भोग लगावे।

हेमवर्णा शाकिनी की ईशानादि षट्कोण में आवाहन करके ध्यानावाहन के उपरान्त ह्रीं श्रीं अं, पं फं बं भं मं शक्तिपादुकां पूजयामि नमः से पूर्ववत् पूजन करके तिल मिश्रित अन्न का नैवेद्य अर्पित करे।

अनन्तर पश्चिम सुवर्णा कला षट्कोण में द्विमुजा शुभ्रवर्णा हाकिनी का ध्यानावाहन करके ह्रीं श्रीं अं रं शं षं हं पादुकां पूजयामि नमः मन्त्र से पूर्ववत् पूजन करके एवं शुद्ध अन्न का भोग लगावे।

इस प्रकार योगिनियों की धूपादि से विधिवत् पूजा करके प्रणाम आदि से प्रसन्न करके इनका अपने हृदय में उद्वासन कर तन्मयता का अनुभव कर प्रसन्न रहे।

(टिप्पणी– यहाँ योगिनीषट् की पूजा कही है, जब कि श्रीविद्या रत्नाकर में याकिनी के नाम से

सातवीं योगिनी का उल्लेख है। धातुओं में डाकिणी त्वचा की देवता, राकिणी रक्त की देवता, लाकिनी मांस की देवता, काकिनी मेदा की देवता, साकिनी अस्थि देवता, हाकिनी मज्जा देवता एवं याकिनी वीर्य की देवता है। श्रीविद्यार्णव में इनके नैवेद्य में भी अन्तर है। संभवतः यह गुरुपरम्परा का अन्तर है।)

पञ्चाशन्मिथुन पूजा

जिस दिन अभिषेक हो रहा है, उस दिन की दिन नित्या से प्रारम्भ करके बनाये गये चौसठ कोण वाले यन्त्र में बीच के चार कोष्ठ में उस दिन की उदय नित्या के अक्षर एवं अपनी कामना लिखकर अकार से क्षकार तक पचास एवं पुनः अकार से प्रारम्भ करके अ, आ से लृ लॄ तक दश अक्षर लिखे। इस यंत्र में लिखे जानेवाले अक्षर विसर्ग स्वर सहित जैस कः खः इत्यादि होंगे। इन्हें ह्रीं मन्त्र के मध्य में लिखा जायेगा। मन्त्र इस प्रकार होगा—

ह्रीं श्रीं अं रूपिणी शक्तिपादुकां पूजयामि तथा ह्रीं श्रीं अं रूपक्षेत्रेशपादुकां पूजयामि। चूँकि शेष दस अक्षर की आवृति होगी, अतः पूजा में भी आवृत्ति होगी। इस प्रकार सविसर्ग साठ मातृकाओं पर पूजन पचास मिथुनों का ही होगा।

दूसरे दिन देशिक अपने को त्रिपुरा रूप में भावना करते हुए न्यासादि करके 'नमस्ते नाथ भगवन्' इत्यादि स्तुति करके गुरुपादुका सिर पर धारण करके नित्यकर्म से निवृत्त होकर तीन प्राणायाम करके अं आं सौः से कर शुद्धि एवं ऐंक्लीं सौः पूर्वक करन्यास एवं देहन्यास करके संध्या करे।

संध्या-विधान

प्रातःकालीन संध्या की विधि का (श्वास १५ से पृ० ३७५–७६ पर) विस्तार से वर्णन है। कहा है कि प्रातः संध्या अनिवार्य है— संध्यानामपि सर्वासां प्रातःसन्ध्या गरीयसी। तस्मात्तां न त्यजेद्विप्रस्त्य-जन्नरकमाप्नुयात्।

तदनन्तर मध्यन्दिन संध्या, सायं संध्या तथा तुरीय संध्या का विधान वर्णित है। यदि किसी कारण तुरीय संध्या छूट जाय, तो दूसरे दिन प्रातःसंध्या से पूर्व प्रायश्चित्त करके तुरीय संध्या पूर्ण करके तब उस दिन की प्रातःसंध्या करे। प्रायश्चित्त तंत्रराज तंत्र के अनुसार मूल विद्या के मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप बताया है। संध्या की विधि एवं मन्त्रों का निवेश पृ. ३७५ से ३७९ तक वर्णित है। वहीं से गुरु-निर्देश के अनुसार विधि का ज्ञान कर संध्योपासना करे। त्रैपुरसिद्धान्त के अनुसार परशुराम कल्पसूत्र में केवल एक संध्या का उल्लेख है। इस विषय में अपने आगम एवं गुरु का ही अनुवर्तन आवश्यक है। संध्या के लोप होने से संध्याहीन को दीक्षा का फल नहीं मिलता अतः संध्या अवश्य करनी चाहिए।

तर्पण-विधि

संध्या के साथ ही तर्पण का भी विधान है। पहले मूल विद्या से एक सौ आठ बार या अट्ठाइस बार देवी के मुखकमल में अमृत से तर्पण कर रहा हूँ, ऐसा अनुभव करते हुए देवी का तर्पण करके पुनः

यंत्राधिष्ठत आवरण देवताओं के लिए एक–एक अञ्जलि दे। ऐसा करने में असमर्थ होने पर वटुकादि चतुष्टय, षडङ्गयुवती, गुरुपंक्तित्रय, सप्तदश नित्या एवं मण्डलस्थ सायुध त्रिकोणावरण शक्तियों का तर्पण करे। इसमें भी असमर्थ होने पर उक्त जल में देवी का ध्यान पूजन करके देवी का तर्पण करे। संध्यातर्पण के अनन्तर श्रीचक्र की पूजा का विधान विस्तार से वर्णित है। जिसमें न्यासादि करके पात्रासादन, पीठपूजा, अर्घ्यस्थापन, आवरणपूजन (नवावरण) पुनः कालनित्याओं में से तद्दिननित्या का पूजन आदि का विस्तार से वर्णन है।

प्रक्रिया यह है कि गुरु प्रसन्नचित्त रक्तपरिधान, माला एवं अलंकारों से सज्जित होकर पूर्वाभिमुख प्राणायाम करे। पुनः विघ्नशान्ति के लिए षोडशाक्षर मंत्रों से सर्वभूत बलि प्रदान करे। तत्पश्चात् नाथादि गुरुओं को अपनी मूर्धा पर गन्ध पुष्पादि से नवोपचार पूजा सम्पन्न कर अपने को अपने नाथ से अभिन्न अनुभव करते हुए उन्हीं से आज्ञा लेकर शिष्य के शरीर में न्यासत्रय सम्पन्न कर तथा ध्यान मानस पूजा करके मध्य कलश में दश कलात्मक वह्निमण्डल का ध्यान कर उन-उन कलाओं के स्थान में शैव अड़तीस कलाओं एवं महाषोढोक्त मूर्त्यष्टत्रिंशत् कला की भावना करके कलश पात्र का शक्त्यष्टगंध से लेपन करके दो रेशमी वस्त्रों से आच्छादित करके पञ्चपल्लव फल आदि डालकर एवं माला आदि से अलंकृत कर उसके ऊपर श्रीचक्र की भावना करके तथा तथा पूजन करके आत्माष्टाक्षर मंत्र से स्वयं की पूजा करके पीठ पूजा प्रारम्भ करे।

न्यास-विधि

पीठ पूजा एवं अर्घ्य स्थापन को सम्पन्न करके तथा पुनः (मूलमन्त्र से) प्राणायाम एवं करषडङ्गन्यास एवं अं आं सौ से करशुद्धि एवं चतुरासन न्यास करके तथा वशिन्यास अष्टवाग्देवता का न्यास करके व्यापक न्यास करे।

कलश पर श्रीयन्त्र का भावनात्मक पूजन

कलश पर कल्पित श्रीयन्त्र की भावना करके ह्रीं श्रीं सौः इस शक्त्युत्थापनी मुद्रा से मूर्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा के द्वारा तेजस्त्रयरूपिणी देवता को अपने गतिशील नासापुट से अपने भीतर से निकाल कर उस कल्पित मूर्ति में आवाहित कर तंत्रराजोक्त प्रकार से ध्यान करे। पुनः मुद्रादि प्रदर्शन करते हुए देवी का उपचारों से अर्चन करे एवं उस तीसरे दिन की नित्या के साथ दोनों का षोडशोपचार पूजन करे। पुनः दिव्य, सिद्ध एवं मानवौघ गुरुओं की एवं पंचदश तिथि नित्याओं की पूजा करे। अनन्तर चतुरस्र में प्रथमावरण की, देवी के सम्मुख वामावर्त षोडश दल में द्वितीया वरण की, अष्टदल के प्रागादि दिशाओं में तृतीयावरण की, देवी के अग्र से वामावर्त चतुर्दशार में चतुर्थावरण की, देव्यग्र से वामावर्त बहिर्दशार में पंचमावरण की, देव्यग्र से वामावर्त अन्तर्दशार में षष्ठावरण की पुनः उसी प्रकार अष्टार में सप्तमावरण की, पुनः अन्तराल में अष्टावरण की, पुनः, बिन्दुस्थान में नवमावरण की पूजा, ग्रन्थोक्त

पद्धति से (पृ. ३८१–३८३ तक) विधिवत् तत्तत् मंत्रों से पूजन एवं तर्पण सम्पन्न करे।

अनन्तर गुरु, देवता, मन्त्र एवं स्वयं में अभेद भावना करते हुए पुन स्वयं की पंचोपचार पूजा करे। तत्पश्चात् कुछ काल तक शक्त्युत्थापनी मुद्रा बाँधकर पुष्पाञ्जलि देकर नित्यहोम करे। तत्पश्चात् अपने तंत्र के अनुसार मंत्रवीर्य संयोजन करके भावनापूर्वक मंत्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करे। इसके उपरान्त गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशि रूपिणीम्....................स्तवनं तव तत्त्वत: (तंत्रराजतंत्र २/८८) इस स्तोत्र से मातृका की स्तुति करते हुए नित्याकवच 'समस्ततापाद्विनिर्मुक्त्यर्थ. ....पान्तु मां सर्वत: सदा'। तंत्रराज २८/५२ का पाठ करे।

इस प्रकार सम्यक् प्रार्थना करके बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणपति, कुरुकुल्ला एवं वाराही के लिए बलि प्रदान करते हुए गुरु शिष्य, ऋत्विजों एवं सामयिकों के साथ उस रात्रि में उत्सव करे।

प्रत्येक दिवस की कार्यानुक्रणिका

प्रथम दिन कथित मण्डप से बाहर गोमय से लिपे पुते किसी शुभ स्थान में अपने आसन पर बैठकर गणेश, मातृका पूजन, वृद्धिश्राद्ध, पुण्याहवाचन, आचार्य ऋत्विक्वरण सम्पन्न कर मण्डप से भूतोत्सारण करके मध्य में अति विशाल श्रीचक्र का निर्माण कर बाजे गाजे के साथ मण्डल प्रतिष्ठा कर सर्वप्रथम वास्तुमण्डल में बलि पूजा करे। तत्पश्चात् गुरुमण्डल, सर्वतोभद्र आदि मण्डलों में देवताओं का स्थापन एवं पूजन करके श्रीचक्र में कहे हुए स्थानों में उक्त संख्या वाले कलशों की स्थापना कर कलशों को अलंकृत कर कुण्डों में अग्निस्थापन करे।

द्वितीय दिन प्रात: उठकर न्यास एवं नित्यकर्म पूर्ण करके पुन: उक्त मण्डल के देवताओं का पूजन करके श्रीचक्रस्थ मध्यकलश में सपरिवार देवी का आवाहन करके एवं षोडशोपचार पूजन द्वारा आराधना कर एवं अन्य कलशों में षोडशनित्याओं का आवाहन एवं पूजन करके नित्यहोम, जप एवं नीराजन पर्यन्त कर्म दोपहर तक समाप्त करके तदुपरान्त मध्यरात्रि तक २०७३६ कालनित्याओं का कुम्भ में अभिमंत्रण करके रात्रि में अधिवास करे।

तृतीय दिवस–पूर्ववत् सबकुछ पूर्ण करके शिष्य के जन्म नक्षत्र में कुम्भ में सांगावरण देवी की पूजा करके मूलविद्या का अष्टोत्तर शत या अष्टोत्तर सहस्र जप करके नित्य की भाँति कुण्डों में आहुतियाँ देकर शेष पूजन पूर्ण करके वाद्यघोष एवं ब्राह्मणों के आशीर्वाद के साथ गुरु पहले से निमंत्रित देवता स्वरूप शक्ति एवं साधकों के साथ स्वयं प्रधान कलश को उठाकर पूर्वोक्तविधि से अभिषेक करे। पुन: शक्ति सामयिक भी कलश उठाकर अभिषेक करें।

तत्पश्चात् गुरु सुन्दर वस्त्रादि से अलंकृत शिष्य को दिननित्या, पर्यायनित्या उदयाक्षरादि का अपने क्रम से उपदेश करे। शिष्य भी उस दिन से व्यवधान रहित रूप से गुरूक्त क्रम का पालन करे। यदि किसी कारण व्यवधान हो जाय, तो शिष्य मूलमंत्र का अष्टोत्तर सहस्र जप, प्रायश्चित्त के रूप में

करे। इसी प्रकार व्यवधान के दिन के लिए प्रत्येक संध्या, षष्टिजप, घटिकाजप, के लिए अष्टोत्तर शतजप करके ही अगले दिन के क्रम का पालन करे।

तत्पश्चात् शिष्य गुरु को एवं ऋत्विजों एवं शक्ति-सामयिकों को दीनों, अनाथों को द्रव्यादि की दक्षिणा देकर सब सन्तुष्ट हो गये ऐसा अनुभव करते हुए चौथे दिन अपने घर में गुरु एवं शक्ति सामयिकों के साथ महापूजा करके ब्राह्मणों दीनों, अन्धों, अनाथों को भोजन दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे, यह पूर्णाभिषेक का विधान है।

यदि इस प्रकार का विस्तृत एवं विशाल आयोजन संभव न हो, तो श्रीचक्र का निर्माण करके कलशादि स्थापित करके एवं सावरण पूजा के उपरान्त अभिषेक करे। यदि ९६ कलशों की स्थापना भी संभव न हो, तो मध्य त्रिकोण के बिन्दु स्थान में खारीतोयपूरित कुम्भ की स्थापना कर पूजन और अभिषेक करे। यह पूर्णाभिषेक की संक्षिप्त विधि है।

नैमित्तिक पूजा

दीक्षित शिष्य पूर्णाभिषेक प्राप्त करके तथा पुरश्चरण करके नित्यपूजन में तत्पर रहते हुए नैमित्तिक पूजन करे। जो नित्य अर्चन करते हैं, उन्हें विशेष दिवसों पर महापूजा करनी चाहिए। शास्त्र का निर्णय है कि नित्यार्चन दिन में, नैमित्तिकार्चन रात्रि में तथा काम्यकर्म कर्मानुसार दोनों में करना चाहिए। (कुलार्णव) विशेष दिवसों पर की जानेवाली महापूजा ही विशेष पूजा कही जाती है

श्रीविद्यारत्नाकर के अनुसार कृष्णाष्टमी, कृष्णचतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा संक्रान्तियाँ।(कुलार्णव) तंत्रराजतंत्र के अनुसार पूर्वोक्त अतिरिक्त युगादि दिन, पुष्ययुक्त नक्षत्र रविवार पीठोपपीठ गमन, देशिकागमन, वीरमहायोगिदर्शन, तीर्थगमन, व्रत-दीक्षादि उत्सव दिन, जिस दिन दिनाक्षर उदयाक्षर एवं युगाक्षर एक हों।

इसी प्रकार गुरु, परगुरु, परमेष्ठि गुरु के जन्मवार, तिथि, नक्षत्र तथा स्वयं के जन्मवार, तिथि, नक्षत्र, विद्या प्राप्ति का दिन, गुरु का क्षयदिवस, ये भी विशेष दिवस है।

(काल एवं कर्तव्यता का निर्णय यह है– कि संक्रान्ति के अतिरिक्त सभी पर्वाचन, सूर्यास्त से दश घटीरूप रात्रि के पूर्वार्ध में करने चाहिए। संक्रान्ति में उन घटियों में करे, जिनमें पुण्यकाल हो। तिथियों में यदि तिथि की व्याप्ति दो दिन की हो, तो जिस दिन अधिक हो, वही ग्राह्य है। यदि व्याप्ति समान हो, तो प्रा का ग्रहण करे। तिथि के ह्रास–वृद्धि क्रम से चतुर्दशी एवं अमा यदि एक ही दिन पूजा काल में व्याप्त हों, तो एक ही पूजा होगी। संक्रान्ति की व्याप्ति यदि दिन में है। तो नित्यार्चन से दोनों की पूर्ति हो जायेगी। यदि कहीं चार नैमित्तिका एक साथ हों, तो एकतंत्र से (एकार्चन से) ही महापूजा होती है– श्रीविद्यारत्नाकर)।

इन अवसरों पर उदारता से शक्ति सामयिकों के साथ उल्ला पूर्वक विशेष पूजा करके शास्त्र के अनुसार गुरु एवं सामयिकों को सन्तुष्ट करे। गुरु के पर्व दिनों में गुरुपंक्ति की पूजा करके उतनी ही संख्या में साधकों का उसी–उसी नाम से पूजन करके दक्षिणादि देकर उन्हे प्रसन्न करे।

द्रव द्रव्य के संमर्पण में तीन पक्ष है– प्रधान देवता के साथ एक सौ तिरपन देवताओं को पृथक् पृथक् निवेदन करे या प्रधान देवता के साथ अंगदेवी, नित्या, अमुकौघ, अणिमादि, मातृदेवी, मुद्रादेवी, कामेश्वरी देवी, नित्याकला अनंगकुसुमादि प्रत्येक आवरण देवता की समष्टि रूप से पूजा करे अथवा प्रधान देवता को पृथक् निवेदित करके एक पात्र में शेष सबके लिए निवेदन करे। यदि हिमोदक आदि हो, तो एक बड़े पात्र में रखकर दूसरे पात्र से निकालकर निवेदन करके पात्रान्तर में डालता जाय अथवा एक ही पात्र में रखकर सब देवताओं को एक साथ निवेदित कर दे।

कठिन द्रव्य, हो तो यथाशक्ति प्रत्येक को या सबको एक साथ निवेदित करे, किन्तु पवित्रारोपण एवं दीपदान में तो प्रथम पक्ष के अनुसार प्रत्येक के लिए पृथक्–पृथक् निवेदन करे।

चैत्रपूर्णिमा-दमनक पूजा-वसन्तोत्सव

चैत्रशुक्ल चतुर्दशी को सायं प्रार्थनापूर्वक दमनक के उपवन में जाकर पूजा के लिए पर्याप्त दमनक के वृक्षों को अस्त्र मन्त्र से उखाड़कर या वैसा संभव न हो, तो उसके गुच्छों को चाकू से काट कर यदि यह भी संभव न हो, तो बाजार से खरीद कर लाकर किसी शुद्ध पात्र में मूल मंत्र से शुद्ध जल से अभ्युक्षण करके 'ऐं ह्रीं श्रीं दमनकाय अमुकं कल्पयामि' इस प्रकार पंचोपचार से पूजन करके किसी हल्के वस्त्र से ढककर यागमन्दिर में ही किसी पवित्र स्थान में रख दे और रात्रिजागरण करे। यह अधिवासन है। यह सम्भव न हो तो तत्काल लाकर भी कर सकते हैं।

अब पूर्णिमा के दिन प्रधान देवी की पूजा के अनन्तर

षोडशार्णे जगन्मात: वाञ्छितार्थफलप्रदे। हृत्स्थान् पूरय मे कामान् देवि कामेश्वरेश्वरी' इस प्रकार प्रार्थना करके नित्यक्रम से पूजन क्रम में सभी देवताओं की दमनक से पूजा करके हवन एवं मूल मंत्र जप पूर्ण कर श्रीगुरु की पूजा करे। शक्ति एवं सामयिकों का सम्मान करके उनके एवं अन्य ब्राह्मणों के साथ भोजन करे। मुख्य काल में करना सम्भव न हो, तो चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ मास की किसी पक्ष की अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशी में करें। (विस्तार से पूजनविधान ग्रन्थ में पृष्ठ ३९६–३९७ में देखें)

इस पूर्णिमा में वसन्तोत्सव का भी विधान है। इसलिए संकल्प में दमनार्पण एवं वसन्तोत्सव दोनों का संकल्प करे और पूजा एक तंत्र से करे। इसके लिए तत्काल उपलब्ध, चन्दन, कर्पूर आदि युक्त कल्हार एवं आम्रमंजरी आदि अपेक्षित है।

वैशाखमास कृत्य

वैशाखी पूर्णिमा को हेमन्त में संचित तुषारजल से अथवा कर्पूर, कस्तूरी आदि से सुगन्धित शीतल जल से नैवेद्यार्पण करे। शेष पूर्ववत् है।

ज्येष्ठमास कृत्य

ज्येष्ठ की पूर्णिमा को केला, कटहल, आम आदि फल प्रधान देवता को अर्पित करे या उनसे अर्चन करे। शेष कृत्य समान है।

आषाढमास कृत्य

श्रीदेवी की पूजा में कुंकुममिश्रित चन्दन का अर्पण करे। जाती पुष्प से सावरण अर्चन कर ताम्बूल में लवंग, इलायची एवं कंकोल रखकर अर्पित करे।

श्रावणमास कृत्य

श्रावणी पूर्णिमा में पवित्रारोपण (यज्ञोपवीत समर्पण) मुख्य कृत्य है। पवित्र बनाने का विधान ग्रन्थ में वर्णित है। कम से कम देवी के लिए तीन, हवन के लिए एक, श्रीगुरु के लिए, अपने लिए एवं सामयिकों के लिए तथा शिष्यों के लिए पवित्र आवश्यक है। यदि उक्त तिथि में न हो सके, तो मिथुन से तुला संक्रान्ति के बीच कृष्णाष्टमी, कृष्णचतुर्दशी एवं पूर्णिमा में करना चाहिए।

भाद्रपदमास कृत्य

केतकी के पुष्प और न मिले, तो केतकी के पत्रों से सभी देवताओं का पूजन करे। यदि पुष्प हो उसका केसर निकाल देना चाहिए, ऐसा श्रीगुरु का कथन है (श्रीविद्यारत्नाकर)।

आश्विनमास कृत्य

तंत्रराज के अनुसार शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त प्रयोग करना चाहिए। प्रतिपदा की रात्रि में पुष्प नैवेद्यादि पूजाक्रम पूर्ण करके प्रधान देवता के लिए सौ आहुतियाँ एवं आवरण देवताओं के लिए उसका दशांश हवन करके हवन के समान संख्या में जप करके एक अविवाहित कन्या को पूर्व में ही निमंत्रित करके आसन पर बैठाकर उसमें देवी का आवाहन करके बामा मंत्र से पंचोपचार पूजन करके यथाशक्ति नैवेद्य, वस्त्र, आभूषण और शृंगार द्रव्य निवेदित करे। इसी प्रकार द्वितीया से वृद्धिक्रम से दो सौ होम जप तथा दो कन्या पूजन और पूर्णिमा को सोलह सौ होम जप एवं सोलह कन्या पूजन करे। यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष यह है कि जैसे सामान्य से होम जप चलेगा, वैसे ही सामान्यक्रम से प्रतिदिन एक कन्या पूजन भी होगा। इनमें से किसी एक पक्ष का आश्रय ले। तिथि की वृद्धि हो, तो दोनों तिथियों में एक सौ होम जप कन्यापूजन और यदि तिथि ह्रास हो, तो एक ही दिन में दोनों तिथियों का होम जप अर्चन करे। इससे विद्या सिद्ध हो जाती है। नवमी को ही नौ कन्याओं का पूजन या तीन या पाँच का पूजन भी शक्ति के अनुसार करने की परम्परा है। हवन भी प्रतिदिन न करके नवमी को ही पूर्ण करे।

कुलार्णव में मत में नवरात्र पक्ष है, इसमें एकोत्तर वृद्धि से प्रतिदिन एक कन्या का पूजन करे। होम जपादि एक जैसा करे। किन्तु यह स्वतंत्र है। पूर्णिमा का अंग नहीं है, अतः पूर्णिमा का नैमित्तिक पूजन स्वतन्त्र कर्तव्य है।

नवरात्र पूजन में विशेष है– प्रतिदिन एक वर्ष से नव वर्ष पर्यन्त, स्कन्दपुराण के अनुसार दो वर्ष से दशवर्ष पर्यन्त की क्रमशः एक-एक कन्या का प्रतिदिन पूजन करे। इनके नाम इस प्रकार है। प्रतिपदा को शुद्धा, द्वितीया बाला, तृतीया ललिता, चतुर्थी मालिनी, पंचमी वसुन्धरा, षष्ठी सरस्वती, अष्टमी गौरी, नवमी दुर्गा इनकी नाम मंत्र से जैसे शुद्धायै नमः आदि पूजन करे। अथवा नवयौवना सुलक्षणा सुवासिनी पूजन करे। इनके नाम इस प्रकार हैं– १. हृल्लेखा, २. गगना, ३. रक्ता, ४. महोच्छुष्मा, ५. करालिका, ६. इच्छा, ७. ज्ञाना, ८. क्रिया, ९. दुर्गा।

इनके पूज्य अपूज्य लक्षण ग्रन्थ में देखें।

यह नवरात्र पूजन वर्ष में चार बार होता है– चैत्र, आषाढ, आश्विन, तथा पौष। चैत्र एवं आश्विन प्रायः प्रसिद्ध हैं, इसमें अपने वैभव के अनुसार पूजन करना चाहिए। इसमें नवरात्र न हो सके तो सप्तरात्रि, पंचरात्रि, त्रिरात्रि या उसी तिथि में नवरात्र का उत्सव करे।

कार्तिकमास कृत्य

कार्तिक पूर्णिमा को कुंकुम से देवी की पूजा करके कुण्ड या स्थण्डिल में अग्निस्थापन करके नित्यहोम क्रम से हवन करके शर्करा एवं दूध से सने आटे के बने हुए घी से परिपूर्ण कर्पूरयुक्त वत्ती से युक्त दीपों से सांग सावरण देवी के लिए दीपदान करे।

वहाँ सुन्दर समतल भूमि में सिन्दूर आदि से बड़ा श्रीचक्र बनाकर उस पर देवी का आवाहन करके मध्य में बिन्दुचक्र में सोलह पूर्ववत् बने दीप जलाकर मूल विद्या से देवी के सम्मुख स्थापित कर समर्पण करे। श्रीचक्र में पूज्य नित्या आदि समस्त आवरण देवताओं के लिए उनके मंत्रों से एक--एक दीप का दान करे। इतने दीपदान में असमर्थ, हो तो एक पात्र में नव योनि चक्र या अष्टदलकमल आदि कुंकुम से बनाकर उसमें पूर्वोक्त रूप से नौ दीप जिनमें से आठ योनियों या दलों मे और एक को केन्द्र में स्थापित कर देवी की पूजा करके उत्सर्गपूर्वक समर्पण कर दे।

मार्गशीर्षमास कृत्य

मार्गशीर्ष पूर्णिमा में कर्पूर युक्त नारियल के जल से अर्घ्य-स्थापन करके सुगन्धित पुष्पों से पूजन करके उड़द के आटे से बने पूये (बड़े) नैवेद्य में अर्पित करे।

पौषमास कृत्य

पूर्णिमा की रात्रि में चिनी या गुड़ मिले हुए दुग्ध का नैवेद्य अभीष्ट, प्राप्ति के लिए समर्पित करे।

माघमास कृत्य

माघ मास में पूर्णिमा को श्वेत या काले तिलों से देवी का पूजन करके शर्करा मिश्रित दूध तथा मालपुवे का भोग लगावे।

फाल्गुनमास कृत्य

फाल्गुन में कमल या सोने चाँदी के फूलों से कल्हार या महुए के पुष्प से पूजन करे। इसी प्रकार युग मन्वादि के अवसर पर ऐसे ही पूजनादि करे।

श्रीविद्यारत्नाकर के अनुसार नैमित्तिकार्चन विधि से श्यामा, वार्ताली आदि भी अर्चन करना चाहिए। सर्वत्र अमुक पूर्णिमा को अमुक देवता का अमुक द्रव्य से पूजन करुँगा ऐसा संकल्प करे।

अधिमास (मलमास) पड़ने पर जिस मास में पड़े उस मास के कृत्य को दो बार करे और यदि क्षयमास हो, तो दो मास का कृत्य दूसरी पूर्णिमा पर सम्पन्न करे।

यदि नैमित्तिकार्चन का मुख्य एवं गौणकाल भी व्यतीत हो जाय और अर्चन न हो सके, तो मूलमंत्र का एक सहस्र जप प्रायश्चित्त के रूप में करे, ऐसा तंत्रराज का कथन है। परशुरामकल्पूसत्र में काम्यकर्मों में हवन का विधान है। उपासना का उल्लेख नहीं है, किन्तु विशेष अवसरों पर देवी का अर्चन अभ्युदय कारक ही है, ऐसा श्रीविद्यारत्नाकर का मत है।

यदि ऊर्ध्वाम्नायादि आम्नाय देवताओं की दीक्षा हो, तो पूर्वोक्त विधि से ऋत्विजों को उन–उन मन्त्रों से देवताओं का यजन एवं हवन करना चाहिए। नवग्रह पूजा ईशान की वेदी में आगमोक्त या वैदिक विधि से करनी चाहिए, ऐसा सम्प्रदाय है। षड्दर्शनाङ्गभूत प्रधानविद्या की दीक्षा के क्रम में षड्दर्शन में अङ्गरूप से जो मंत्र कहे गये हैं उन्ही से ऋत्विजों एव सामयिकों को होम, जप, पूजा आदि करना चाहिए। गुरु को उसी प्रकार साङ्गोपाङ्ग रूप से उपदेश करना चाहिए। जहाँ वैदिक दर्शन की प्रधानता से उपदेश हो वहाँ श्रुति-स्मृति में उक्त विधि से ही करना चाहिए, यह विशेष है। शेष सब समान है।

वैदिक दर्शन दीक्षा में प्रथम गणेश पूजन करके ही मण्डप पूजा होती है। शान्ति पाठ पुण्याहवाचन के अनन्तर आचार्य एवं ऋत्विजों का वरण होता है। वरण में १ आचार्य, पूर्व कुण्ड में गायत्री का हवन करने के लिए १ तथा अन्य दिशाओं में कुण्डों मे हवन के लिए ७, कुल नौ ब्राह्मणों का वरण करे। इसी प्रकार पूर्वद्वार पालन के लिए दो ऋग्वेदी, दक्षिणद्वार पालन के दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वार पालनार्थ दो सामवेदी एवं उत्तर द्वारपालनार्थ दो अथर्ववेदी– इस प्रकार आठ एवं एक पुस्तकाचार्य कुल नौ का वरण करे। अत: कुल अट्ठारह वरण होंगे।

अनन्तर मण्डपपूजन, कलशस्थापन, पूजन, सर्वतोभद्रदेवता पूजन, पीठदेवता पूजन, अधिदेवता पूजन लोकपाल पूजन,. क्षेत्रपाल पूजन सब श्रुति एवं स्मृति के मन्त्रों से करे। देंखे त्रयोदश श्वास पृ.२२०-२२८।

इन दीक्षाओं में षडध्वशोधन में जो भेद है, वह इस प्रकार है— शैवी दीक्षा में शिष्य को कुण्ड के समीप में ले जाकर दिव्य दृष्टि से देखकर उसके हृदयकमल में स्थित जीवात्मा का भूतशुद्धि परिपाटी से ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से देह से निकालकर रूपदृष्टि विधि से योग बल से अपनी आत्मा में जोड़कर शिष्य का षडध्वशोधन करे। तत्पश्चात् शिष्य के पैरों में निवृत्ति प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता इस पञ्चकलात्मक कलाध्वा का चिन्तन कर, उसके लिंग प्रदेश में शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, काल, राग, नियति, पुरुष, प्रकृति अहंकार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी रूप छत्तीस तत्त्वरूप शिवतत्त्वाध्व का ध्यान करे। ऐसा शैवी दीक्षा में है।

वैष्णवी दीक्षा में जीव, प्राण, बुद्धि, मन, श्रोत्रादि एवं वाक् आदि दश इन्द्रियों शब्द आदि पंचतन्मात्राएँ, आकाश, आदि पंचभूत, सोम, सूर्य अग्निमय तेजत्रितय, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न से अनिरुद्ध इन ३३ तत्त्वोपचार का उपदेश करे, यही शोधन है।

सौर दीक्षा में— भूत, पृथिव्यादि पाँच तन्मात्रा शब्दादि पाँच, ज्ञानकर्म भेद इन्द्रियाँ दश से मन, अहंकार, बुद्धि, प्रधान प्रकृति इनका ज्ञान करा देना ही शोधन है।

शक्ति दीक्षा में निवृत्ति आदि पाँच कलायें (शैव दीक्षा में देखे) बिन्दु, नाद, सदाशिव, शिव ये दश तत्त्व है। त्रिपददीक्षा में आत्मा, विद्या, शिव आदि को विपरीत क्रम से शिव, विद्या, आत्मा एवं सर्वतत्त्व विद्या सात तत्त्व है। इस प्रकार उक्त दीक्षा में उनके अध्वा का चिन्तन करे।

गाणपत्य दीक्षा में शैवी दीक्षा के क्रम से ही अध्व शोधन होता है।

कालीमत का पूर्णाभिषेक

कालीमत में पूर्णाभिषेक हेतु मण्डप सत्ताइस हाथ लम्बा चौड़ा बनेगा। मण्डप के बीच में नौ हाथ की वेदी बनाकर उसके बीच में कलश स्थापित होगा और मण्डप की आठों दिशाओं में आठ कुण्ड बनाये जायेंगे। उक्त वेदी में श्रीचक्र का निर्माण करके पूर्ववत् कलश स्थापन करके प्रातःकृत्य से लेकर पीठन्यासान्त कर्म पूर्ण करके श्रीगुरु अपने शरीर में शक्ति-न्यास करे। संकल्पपूर्वक त्रितारी की आवृत्ति से षडङ्गन्यास करके पहले उक्त न्यास मंत्रों से पुनः मातृका से न्यास करके षट्चक्र में भेदन कर कुण्डलिनी शिव में विलीन हो गयी, ऐसी भावना करके उल्लिखित मंत्रों से आत्मरक्षा करके मंत्र एवं विद्या की महिमा का स्मरण करते हुए कुछ मंत्रों का जप करके आत्मदेह में कामकला का ध्यान करे। पुनः न्यास की भावना से 'शक्तिरुद्रमयं देहं से 'तस्य घातो भविष्यति' इस प्रकार १०५.१/२ श्लोकों का पाठ करके स्वयं महाशक्ति न्यास करके एवं शिष्य को महाशक्ति न्यास कराकर अन्तर्याग करे।

मूल से तीन प्राणायाम करके सामान्य अर्घ्योदक से सामने चतुरस्र बनाकर 'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहम् स्वाहा' इस आत्ममंत्र से सहित एवं कलशोदक के सहित आधार आत्मपात्र को स्थापित कर अपने देह

एवं शिष्य के देह को श्रीचक्र के रूप में भावित कर समष्टि विद्या से अपने हृदय में पुष्पाञ्जलि, देकर गन्ध माला आदि उपचारों से अपने को अलंकृत करके तत्त्वचतुष्टय का शोधन करे। आत्मतत्त्वात्मक स्थूल देह, विद्यातत्त्वात्मक सूक्ष्म देह शिव तत्त्वात्मक कारण देह एवं सर्वतत्त्वात्मक स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण महाकारण को शोधन करे। विधि इस प्रकार है।

अपने हृदय में क्रमशः ऐं अं १६ अःभूमिजीवसर्वात्मने अं आं ऐं "इदं विष्णुर्विचक्रमे०" (१। २२। १७) इदन्तापत्रयसम्भूत- महत्तापरमामृतम्। पराहन्तामये वह्नौ जुहोमि शिवरूपतः।। मूल मंत्र से आत्मतत्त्व रूप स्थूल देह का शोधन करता हूँ, ऐसा कहकर आत्मपात्र से कुछ हेतु स्वीकार करके पुनः विद्यातत्त्वात्मक सूक्ष्म देह का, क्लीं कं खं इत्यादि २५ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियति- विद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वक्नेत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धिवाक्पाण्यात्मने कं २५ क्लीं "सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषानमोभिः। दधानाः सोमं दिवि देवतासु मादेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः।।" अन्तर्निरन्तर- निरिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ। कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्।' मूल का उच्चारण करते हुए विद्यातत्त्वरूप सूक्ष्म देह का शोधन करता हूँ ऐसा कहकर कुछ हेतु पुनः स्वीकार करके सौः यं रं १० पादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलात्मने यं १० "वाममद्यसवितवर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः। वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे रया धिया वामभाजः स्याम" (य० ८। ६)।। तृप्यन्तु मातरः सर्वा भैरवाः सविनायकाः। क्षेत्रपालाश्च योगिन्यो मम देहे व्यवस्थिताः।। मूल का उच्चारण करते हुए अं ५१ भूमिजीवसर्वात्मशिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्याराग- कालनियतिविद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोतत्वक्नेत्रजिह्वामनोबुद्धिवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शाकाश- वाय्वग्निसलिलात्मने अं ५१ ऐंक्लींसौः धर्मार्थमहविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्"।। मूलं० सर्वतत्त्वात्मने स्थूलसूक्ष्मकारणमहाकारणदेहं शोधयामि स्वाहा, इससे स्थूल, सूक्ष्म, कारण महाकारण देह का शोधन करता हूँ– ऐसा कहकर कुछ हेतु पुनः स्वीकार करके, पुनराधारे (कुण्डे) अनादिवासनेन्धनज्वालिते आत्मचतुष्काकारचतुरस्रे कुण्डलिन्यधिष्ठितं चिदग्निं ध्यात्वा, मूलं० "हंसः चिदग्निमण्डलाय नमः" इति मनसा सम्पूज्य, मनसैव "पुण्यं जुहोमि स्वाहा"। एवं पापं० कृत्यं० अकृत्यं० सङ्कल्पं० विकल्पं० धर्मं० अधर्मं० चेति हुत्वा, आत्मपात्रं हस्ते सङ्गृह्य मूलं० हंसः "इतः पूर्वं प्राणबुद्धिमनोऽहङ्कारदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेवतायै समर्पितमस्तु स्वाहा"। ऐसा कहकर आत्म पात्र का सम्पूर्ण हेतु लेकर पात्र को आधार पर रखकर आधार से ब्रह्मरन्ध्र तक व्याप्त कुण्डलिनी का देवी रूप में ध्यान करते हुए अक्षमाला से यथाशक्ति मूलमंत्र का जप करके "मायान्ततत्त्वे सदहं शिवोऽहं शक्त्यन्ततत्त्वे चिदहं शिवोऽहम्। शिवान्ततत्त्वे सुखदः शिवोऽहमतः परं पूर्णमनुत्तरोऽहम्।। दैशिकवागुपदेश- विनश्यद्देहमरुन्मयशून्यविकल्पः। अद्वयबोधविमर्शसुखः सन्नद्य शिवोऽस्मि शिवोऽस्मि शिवोऽस्मि" इस प्रकार का अनुसंधान करते हुए षोडशाक्षरी के तीन खण्ड करके शिष्य के देह में बाला के कूटत्रय की

भाँति संशोधन करके पीठ पर बिठाकर स्वयं गुरु प्रधान कलश लेकर तथा ऋत्विक् एवं सामयिक अन्य कलशों को लेकर उन-उन मंत्रों का उच्चारण करते हुए प्रमुख गुरु अभिषेक करे और पश्चात् अन्य ऋत्विक् और सामयिक भी अभिषेक करें।

पुन: वस्त्र, माला आदि से अलंकृत शिष्य को श्रीचक्र पर बिठाकर, पराप्रसाद श्रीषोडशार्णविद्या भेद, षट्शाम्भवक्रमचारणविद्या, आम्नाय, समया, पञ्चसिंहासन, षड्दर्शन, पञ्चपंचिका गण, श्रीविद्यादिवृन्द भेदादिदशमहाविद्या, शैव, वैष्णव, गाणपत्य सौर, शाक्तविद्या गुरुपादुकाविद्या, षोडशनित्या विद्या, महाषोढोक्तविद्यादि उर्ध्वाम्नायक्रम का सम्पूर्ण उपदेश करे।

अपने गुरुक्रम का भी उपदेश करे शिष्य भी गौ, भूमि हिरण्य आदि बहुमूल्य दक्षिणा से गुरु को प्रसन्न करके तथा ऋत्विक् सामयिकों को भी दक्षिणा से सन्तुष्ट करके रात्रि में महापूजा करके अगले दिन अन्ध एवं दरिद्रों के साथ ही ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा से तृप्त करके गुरु की आज्ञा से उस समय से लेकर अनुग्रहादि करे। यह कालीमत का पूर्णाभिषेक है।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य षोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के पञ्चदश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई।। १५।।

अथ षोडश श्वास

भाव-विवृत्ति

पुरश्चरणविधि

जिस प्रक्रिया से मूलमन्त्र सिद्ध हो सके और उस सिद्धमन्त्र का चतुर्विध पुरुषार्थ में विनियोग हो सके, उस साधनापद्धति को पुरश्चरण कहते हैं। इसमें मन्त्र में विनियोग के अनुरूप कर्म सम्पन्न करने की शक्ति आ जाती है। अत: शक्तिसम्पादक क्रिया पुरश्चरण कहलाती है। प्रपंचसार में श्री शंकराचार्य ने पुरश्चरण को पूजा, जप, होम रूप अंगत्रयात्मक माना है। कुलमूलावतार एवं वैष्णवतन्त्र में जप होम तर्पण अभिषेक एवं ब्राह्मण भोजन रूप पञ्चाङ्ग कहा गया है। कुछ लोग जप, होम, तर्पण, स्वाभिषेक, अघमर्षण, सूर्यार्घ्य, जलपान, प्रणाम, देवपूजन तथा ब्राह्मण भोजन ये दश अंग हैं– ऐसा कहते हैं।

जप का हवन कितना हो इस पर मतभेद है, तथापि जप दशांश हवन आदि का विधान देखने को मिलता है। वस्तुत: अपने कल्पोक्त रूप में करना ही उचित है। मन्त्रजप कितना हो, इसमें भी मतभेद है, किन्तु श्रीविद्या के पुरश्चरण में तीन लक्ष जप का विधान ही श्रीविद्यार्णव ने मान्य माना है।

मन्त्र पुरश्चरण का स्थान

समुद्रतीर, समुद्रगामिनी पुण्यनदीतट, विष्णुमन्दिर, अपने गृह का एकान्त भाग, गोशाला, अश्वत्थ या बिल्वमूल, पश्चिमाभिमुख वृषशून्य शिवालय, गुरुसन्निधि में पुरश्चरण का प्रारम्भ करे। पुरश्चरण में संकल्पित जप पूर्ण होने पर हवन आदि की मात्रा क्या हो, इस पर भी बहुत मतभेद है। किन्तु बहुमत से जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण एवं तर्पण का दशांश ब्राह्मणभोजन का विधान मिलता है। पुरश्चरण में कम से कम मन्त्र की कितनी संख्या हो, इस पर भी अनेक मत हैं। मन्त्र के अक्षर लक्षजप की परम्परा है । इस प्रकार षोडशी श्रीविद्या में सोलह लाख एवं कलियुग में चतुर्गुण होती है तो ६४ लाख होती है, किन्तु श्रीविद्यार्णवकार ने कम से कम तीन लाख जप का निर्णय किया है। वैसे गुरु की आज्ञा से ही पुरश्चरण की संख्या निर्धारित करनी चहिए।

इसी क्रम में कूर्मचक्र का भी विचार कर आसन लगाना चाहिए।

कूर्मचक्र विधान

पूर्व पश्चिम आयत तथा दक्षिण उत्तर आयत चार रेखायें खीचकर उसमें नवकोष्ठ बनावे। उन कोष्ठों में पूर्वादि क्रम से चक्र से कं, चं, टं, तं, थं, यं, शं इन सात वर्गों को सात कोष्ठों में लिखकर ईशान कोष्ठ में लक्ष' लिखकर मध्य कोष्ठ को नव कोष्ठों में बाँटकर पूर्वादि क्रम से दो–दो स्वरों के क्रस से सोलह स्वरों को आठ कोष्ठों में लिखे। इस प्रकार कूर्चचक्र बनाकर मध्य में बने नौ कोष्ठों के मध्य कोष्ठ से प्रारम्भ करके अमृत, वृषम, शैलराज, वासुकि, अर्थकृत, शक्ति, पद्मयोनि, महाशंख, छाया, छत्र इन नौ क्षेत्रपालों का नाममन्त्र से पूजन करे।

कूर्म चार प्रकार का है— १. पृथ्वीधारण कूर्म, देशगत, ग्रामगत, गृहगत। इसमें जो ग्राम या घर का नाम है, उसका आदि अक्षर मुख होता है। तदनन्तर दोनों पार्श्व, दोनो हाथ, कुक्षि, दोनों पैर एक पूँछ तथा मध्यपृष्ठ है। इनमें से मुख, दोनों हाथ तथा पृष्ठ ही सर्वसिद्धिकारक हैं। शेष अग्राह्य हैं। देश के नाम में व्यंजन की प्रधानता है तथा ग्राम के नाम में स्वर-व्यंजन दोनों की प्रधानता है, गृह में स्वर की प्रधानता है। स्वर के बाहरी कोष्ठ में मुख होता है। (ग्राम या गृह का जो नाम है, वह स्वर जहाँ है, वही कूर्म का मुख है, मध्य में कूर्मपृष्ठ है तथा मुख से नीचे दो कोष्ठकों में हाथ है। इन्हीं में से स्थान का निश्चय करे।) दीपक भी वहीं जलावे।

कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गंगासागर, महाकाल (उज्जैन) काशी में दीप स्थान का विचार नही होता।

जपमाला विचार

माला तीन प्रकार की होती है— १. मातृकाक्षरमयी २. मणिमयी, ३. करमाला। मातृकाक्षरमयी इसमें बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त अ से लेकर क्ष कार पर्यन्त अनुलोम उच्चारण के बाद विलोम क्ष से अ तक सौ मणियाँ हुई पुनः क, च, ट, त, प, य, श, ल इन पर मन्त्र जपने से एक सौ आठ की पूर्ण माला होती है। इसे अक्षमाला कहते हैं। मन्त्र अनुलोम एवं विलोम के मध्य में बोलना चाहिए।

दूसरी माला मणियों की माला है। इन मणियो में—पुत्रजीव, शंख, मूंगा, रत्न, मोती, कमलबीज, स्वर्ण, रजतनिर्मित, मणियाँ कुशग्रन्थि, की मणियाँ स्फटिक एवं रुद्राक्ष ये प्रमुख अक्ष हैं। इन मालाओं के मणियों की संख्या की दृष्टि से सात्विक, राजस, तामस भेद किये गये हैं। एक सौ आठ दानों की माला सात्विक, चौवन दानों की माला राजस तथा सत्ताइस दानों की माला तामस कही जाती हैं। अन्य प्रकार की मणियाँ भी होती हैं, जो तांत्रिक प्रयोगों में आती हैं। जैसे हल्दी की माला आदि। मुख्यत: रुद्राक्ष, स्फटिक, कमलबीज की मालायें अधिक प्रचलित हैं। जिन पर प्राय: सभी देवताओं के मन्त्रों का जप विहित है। कुशग्रन्थि की माला केवल ब्राह्मणों के लिए विहित है।

माला का संस्कार काल

विष्णु की माला द्वादशी पूर्वाह्ण में, शक्ति की माला अष्टमी, नवमी चतुर्दशी रात्रि में गणेश की चतुर्थी मध्याह्न में, शिव की त्रयोदशी दिन में, सूर्य की सप्तमी पूर्वाह्ण में, माला रचना प्रकार ग्रन्थ में विस्तार से वर्णित है। रुद्राक्ष की माला का संस्कार 'सद्योजात' मंत्र से पंचगव्य एवं शुद्ध जल से प्रक्षालन, वामदेव मंत्र से चन्दनानुलेपन, अघोरमन्त्र से धूप, तत्पुरुष मंत्र से गन्धादि का लेप करके 'ईशान' मंत्र से प्रत्येक मणि का शतवार या एक वार अभिमंत्रण करे और सुमेरु का अघोर मंत्र से अभिमंत्रण करे। (उपर्युक्त मंत्रों का ग्रन्थ में पूर्ण उल्लेख है, वही से देखें।) रुद्राक्ष की माला की मुख के अनुसार देवता की पूजा होती है।

इसी प्रकार कमलबीज आदि की माला का संस्कार इस प्रकार है। माला को अपने इष्ट देवता

के पूजा स्थान में रखकर इनमें गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, दुर्गा का पृथक् पृथक् आवाहन पूजन करके 'हौं' इस मंत्र से माला को पंचगव्य में डालकर पुनः शुद्ध करके पंचामृत में डालकर फिर शीतल जल से धोकर चन्दनादि से पूजाकर हौं मन्त्र का अष्टोत्तर शत जप करके, नवग्रह एवं दश दिक्पालों की पूजा करके अपने इष्ट मंत्र से धृत तथा तिल से हवन करके गुरु को दक्षिणा देकर और ब्राह्मणों को अन्न आदि से संतुष्ट करे। (विशेष– पूरी माला में एक ही प्रकार की मणियाँ हो। मणियों का मिश्रण जप के लिए निषिद्ध है।)

तीसरी माला करमाला– इस माला में तीन प्रकार से जप होता है। अंगुलियों पर जप, अंगुलियों के पोरों (पर्वों) पर जप तथा रेखाओं पर जप। कनिष्ठा से अंगुष्ठा तक बार–बार गणना अंगुलिजप है। कनिष्ठा आदि अंगुलियों की रेखाओं पर जप रेखाजप है। पर्व जप में कई प्रकार हैं। १. मध्यमा एवं अनामिका के दो पर्वों को सुमेरु मानकर अनामिका के मूल पर्व से प्रदक्षिणा क्रम से कनिष्ठा अनामा मध्यमाग्र एवं तर्जनी का समग्र तथा मध्यमा का अंत इस प्रकार दश की संख्या होती है। हथेली को थोड़ा संकुचित कर ले और अंगुलियों के बीच में छिद्र न होने दे, अन्यथा जप की शक्ति छिद्रों से टपक जाती है। बिना गणना के मन्त्र जप का फल राक्षस ले लेते हैं। अन्त अष्टवर्गों में प्रथम अक्षर क च ट त प य श ल से १०८ पूरा होता है। यह कुल मूलावतार का विधान है।

भैरवी तन्त्र के अनुसार अनामिका के मध्य से प्रारम्भ करके कनिष्ठा के क्रम से मध्यमा के मूल तक जप करे। इस प्रकार संख्या ९ होती है। अतः बारह बार जप करने पर संख्या १०८ होगी। इसमें तर्जनी वर्जित है। गौतम का भी यही मत है।

पुरश्चरण के आरम्भ से पूर्व दिन का कृत्य

प्रातः नित्यकर्म से निवृत्त होकर, गुरु एवं ब्राह्मणों को भोजनादि दक्षिणान्त कर्म से प्रसन्न कर जप के स्थान में त्रिकोण, वृत्त या चतुरस्र मण्डल बनाकर क्षेत्रपाल का आवाहन कर त्रिकोण मण्डल में उनकी पूजा करके किसी आधार पर अन्न एवं व्यंजन सहित जलयुक्त बलिपात्र रखकर निम्नाङ्कित मंत्र से बलि प्रदान करे। (एह्येहि विद्विषि मुरु मुरु, भंजय भंजय, तर्जय तर्जय विघ्न विघ्न, महाभैरव क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।)

जपारंभ के दिन का कृत्य

शुभ मास तिथि नक्षत्र आदि को शोधन कर नित्यकर्म से निवृत्त हो ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर स्वस्तिवाचनपूर्वक 'सोमः सूर्यः' आदि मंत्र का पाठ करके कुश तिल जल अक्षत लेकर देश–काल आदि उच्चारण करते हुए 'अमुक मंत्रसिद्धिकामः मंत्रदेवता प्रसादसिद्धये इयत् संख्याकं मंत्र जपात्मकं पुरश्चरणम् अहं करिष्ये। ऐसा संकल्प करे। पुनः गुरु, गणपति, दुर्गा एवं माता को नमस्कार करके पूजा करके जप प्रारंभ करे।

हृदय में मंत्र देवता का ध्यान करके माला का पूजन कर अपने शिर में गुरु, कण्ठ में पीतवर्ण मूलमंत्र, हृदय में इष्टदेवता, और स्वयं को गुरु के चरणों का ध्यान करके भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्र में गुरु, देवता, मंत्र एवं स्वयं का ऐक्य अनुभव करते हुए सुषुम्नामार्ग से उन्हें विशुद्धि चक्र में लाकर वहाँ देवता का ध्यान कर पुनः अनाहत चक्र में ले आकर वहाँ भी देवता का ध्यान करते हुए जपमाला को हृदय के पास ले आकर दक्षिण हस्त की मध्यमा अंगुलि पर माला रखकर तर्जनी का स्पर्श न करते हुए एकाग्र होकर मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए शिर को झुकाकर मंत्रार्थ का चिन्तन करते हुए प्रातःकाल से दोपहर तक जप करके अन्त में प्रणव का उच्चारण करते हुए जप समाप्त कर माला को सिरपर रखकर पुनः प्राणायाम कर षडङ्गन्यास करके अर्घ्य जल से प्रागुक्त मंत्र से (देवता के दक्षिण हाथ में तथा देवी के वाम हाथ में) जप समर्पित करे।

अनुष्ठान समाप्त होने पर दशांश हवन, तर्पण, ब्राह्मण भोजन आदि करे। होम न कर सके, तो कम से कम होम संख्या का दूना जप करे। यह ब्राह्मण की विधि है। क्षत्रिय वैश्य चतुर्गुण जप करें। अनन्तर होम संख्या के दशांश से चन्दनादि से वासित जल से अपना अभिषेक करे। अभिषेक के दशांश उत्तम भोज्य पदार्थों से उक्त संख्यक ब्राह्मणों को भोजन करावे। पुनः स्वयं भोजन करे।

भोज्य पदार्थों की तालिका

भिक्षान्न (आमान्न के रूप में) रात्रि में एक बार हविष्यान्न या कन्द मूल फल का आहार, गोग्रास निकाल कर करे। हेमन्त में उत्पन्न धान (चावल) नीवार (तिन्नी) साठी के चावल, श्यामाक, यव, गुडवर्जित चिनी आदि, काला तिल, मूँग, मटर; केमुक छोड़कर कन्द (शकरकन्दी, आलू आदि) नारियल, केला, लवली, कटहल, आम, आँवला, अदरख, हरीतकी, बथुआ, कालशाक हिलमोचक, सैन्धव नमक, मक्खन निकाले हुए दूध दही आदि, पीपल, जीरा, नागरंग, इमली, मूली आदि।

अभोज्य पदार्थ

गुड़, बनावटी नमक, क्षार लवण, गला हुआ, वासी, चिकनाई रहित, कीट आदि से दूषित काँजी, गृञ्जन, बिल्व, करञ्ज, लशुन, कमलनाल, कोदव, महुआ, तेल में पका, उड़द, मसूर, चना, गेहूँ, देवधान आदि। अति भोजन एवं दिन में भोजन।

भोजन की विधि

इष्ट देवता को भोग लगाया हुआ प्रसाद अन्न पलाश की पत्रावली में रखकर वैदिक मंत्रों से संस्कार कर मूलमंत्र से प्रोक्षण कर प्रतिद्रव्य मूल मंत्र से सात बार अभिमंत्रित कर थोड़ा–थोड़ा हृदय मंत्र 'नमः' का उच्चारण करते हुए भोजन करे और मूल मंत्र से बत्तीस बार अभिमंत्रित जल पीये।

शयन विधि

कुश की बनी शय्या में अच्छी प्रकार धुले हुए वस्त्र बिछाकर और मूलमंत्र से उसका सात बार

अभिमंत्रण करके पवित्र होकर 'यज्जाग्रत इति सूक्तस्य शिवसंकल्प ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्द, मनोदेवता सूक्त जपे विनियोगः इस प्रकार विनियोग करके ग्रन्थ में दिये गये पृ. ४४५–४६ छः मंत्रों का पाठ कर–

भगवन् देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शाश्वत। 'अं हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहां'

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः। स्वप्ने कथय त्वं मे सर्वकार्येष्वशेषतः। क्रियासिद्धिं विधा स्यामित्वत्प्रसादान्महेश्वर नमः।। सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः। इन मंत्रों को एक बार जप कर पूर्व शिर करके दाहिनी ओर से लेट कर सोते हुए यदि स्वप्न आये, तो उसकी परीक्षा करे।

यदि प्रथम प्रहर में स्वप्न आये तो एक वर्ष में, द्वितीय प्रहर में छठें मास में, तृतीय प्रहर में तीन मास में चतुर्थ प्रहर में एक मास में एवं निशान्त में तत्काल फल जानना चाहिए। सिद्धि सूचक एवं अशुभ सूचक स्वप्नों की लम्बी तालिका ग्रन्थ के पृ. ४४६ पर देखे। स्वप्न का निवेदन पुष्प हाथ में लेकर केवल गुरु से करे। अन्य किसी के सामने प्रकट न करे।

सिद्धि के चिह्न

चित्त की प्रसन्नता, मन की तुष्टि, थोड़ा भोजन, निद्राजय, ज्योति का दर्शन, अकस्मात् हर्ष, अन्तरिक्ष से दुन्दुभि की ध्वनि, मधुर वाद्य या नाना प्रकार के संगीत का श्रवण, कपूर आदि सुगन्धित परिमल का घ्राण, बोध, चन्द्रमा या सूर्य के प्रकाश से परिपूर्ण आकाश का दर्शन इत्यादि।

यदि प्रथम पुरश्चरण में ऐसा अनुभव न हो, तो दो तीन बार ऐसे पुरश्चरण करता रहे।

पुरश्चरण के अन्य प्रकार

(१) सूर्यग्रहण में पूर्व रात्रि में उपवास करके एवं चन्द्रग्रहण में दिन में उपवास करके ग्रहण स्पर्श काल में स्नान करके विधिवत् संकल्प करके अपना नाम गोत्र (तांत्रिक नाम यदि हो) अमुक मंत्र की सिद्धि के लिए अमुक ग्रहण के आरंभ से लेकर मोक्ष पर्यन्त अमुक मंत्र का जप करूँगा इस प्रकार संकल्प करके ग्रहण विमुक्ति पर्यन्त जप करे। उसके बाद जप के दशांश का हवन एवं तर्पण ब्राह्मण-भोजनादि कराये अथवा असमर्थ होने पर उतना ही जप और करे।

(२) कृष्णपक्ष की अष्टमी से लेकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक अमुक मंत्र चालीस हजार जप करेंगे ऐसा संकल्प करके (अष्टमी से त्रयोदशी तक छः दिन ५७१४x६=३४२८४ तथा चतुर्दशी को ५७१६ जप करने पर चालीस हजार की संख्या पूरी हो जाती है।) होमादि विधियाँ पूर्वोक्त की तरह हैं। जप प्रारंभ करे।

(३) मातृकासम्पुटित जप– मैं क्रमोत्क्रम बिन्दुयुक्त मातृका से संपुटित जप एक माला के क्रम एक मास पर्यन्त करूँगा ऐसा सङ्कल्प करके पहले बिन्दु युक्त अकार से लेकर क्षकार तक अनुलोम पुनः मंत्र एवं अनन्तर क्षकार से अकार तक विलोम इस प्रकार जप करे। बहवृच प्रातिशाख्य में तिरसठ या चौंसठ मातृकाओं का वर्णन है। इसी क्रम में उससे भी संपुटित जप हो सकता है।

(४) रात्रि में त्रिकाल (प्रथम प्रहर, मध्य रात्रि, चतुर्थप्रहर) में यदि विधिवत् देवता की पूजा एक वर्ष तक, छः मास, तीन मास या एक मास तक करे, तो विना जप के भी मंत्र सिद्धि हो जाती है।

(५) भूत लिपि में भी संपुटित करके संकल्पपूर्वक एक मास तक एक हजार प्रतिदिन जप करे, तो मंत्रसिद्धि होती है। भूतलिपि के लिए तृतीय श्वास पृ. ६४ देंखे।

(६) मंत्र के वर्ण की औषधी से मंत्र के जितने वर्ण उतने औषधी को बनी गोलियों का धारण करना, उनका भक्षण करना, उनका लेप करना, उन्हीं से पूजा करना तथा उनके क्वाथ से स्नान करना और उनका भस्म धारण करना इस उपाय से मंत्र की सिद्धि होती है। औषधों का नाम प्रपंचा सार में दिया है। जिसका इस ग्रंथ के पृ. ४४८ में उल्लेख है। वर्ण परिगणन के लिए स्वर एवं व्यंजनों को पृथक् पृथक् गिने और जिसकी जितनी आवत्ति हो, उसकी उतनी ही मात्रा होगी। ग्रंथ में दिये क्रम से ही अकार से क्षकार तक की औषधों को जाने।

(७) इसी प्रकार गुरु भोजपत्र पर अष्टदल कमल बनाकर साधक के वर्ण से विदर्भित मंत्र लिखकर आदि अन्त में पूरा नाम तथा प्रणव लिखकर एवं आठ पत्रों में दो स्वरों को लिखकर उसकी गोली बनाकर पवित्र मिट्टी से लपेट फिर सिक्थ से लपेटकर त्रिमधुर से पूर्ण छोटे से मिट्टी के पात्र में रखकर दूध से पूर्ण नये कुभ में यंत्र एवं गुटिका सहित उस मृत्पात्र को उसमें डालकर अग्नि की विधिवत् स्थापना करके उसके पास उस पात्र को रखकर मधुरत्रय का शत या सहस्र हवन करते हुए प्रत्येक मन्त्र के साथ स्रुवा में लगे हुये शेष घृत को घड़े में टपकाकर हवन पूर्ण होने पर उस घड़े को किसी जलाशय में डालकर गुरु ब्राह्मण आदि को स्वर्णादि दक्षिणा से सन्तुष्ट करे।

यदि इस प्रकार की विधियों से भी मंत्र सिद्ध न हो, तो उसके द्रावण, बोधन, वशीकरण, पीड़न, पोषण, शोषण, दाहन आदि उपाय किये जाते हैं। यदि इनसे सिद्धि न हो, तो फिर पीपल के नौ पत्तों पर मंत्र, यंत्र, विधान पद्धति एवं माला सबको स्थापित करके पूजन करके जल में विसर्जित कर दे। तदनन्तर शीघ्र गुरु के पास दीक्षा के लिए जाय।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि यह उपर्युक्त विधान महाविद्याओं के अतिरिक्त उन मंत्रों के लिए है, जो अभिचारिक षट्कर्म जैसे तान्त्रिक प्रयोगों के लिए सिद्ध किये जाते हैं। महाविद्यायें मोक्ष प्रधान हैं, अतः इनका उपासक मिले, जो पाया से न मिले इन महाविद्याओं का न तो त्याग करता है और इनका द्रावणादि संस्कार कर सकता है।

सिद्धि के लक्षण

यदि मनोरथ अनायास सिद्ध होने लगे, देवता का दर्शन हो और प्रयोग अनायास सिद्ध हो, तो मन्त्र की सिद्धि हो गयी ऐसा, मानना चाहिए। और बहुत से लक्षण है, जिनका श्वास सोलह पृ. ४५०-५१ पर उल्लेख है। स्वप्न या प्रत्यक्ष यदि मन्त्र के प्रसाद का कोई चिह्न दिखायी पड़े, तो उसे गुरु को अतिरिक्त किसी से न कहे। कहने से सिद्धि और दूर चली जाती है और अनेक प्रकार के दु:ख और शोक पैदा होते हैं। (पृ. ४३९—४०) बौधायन के अनुसार सिद्धि के तीन लक्षण है– दाता, भोक्ता, अयाचक। वस्तुत: गुरु के प्रति श्रद्धा, निष्ठा होगी, तो सिद्धि अवश्य होती है।

दिव्य या वीर उपासना में पुरश्चरण

इस क्रम में पृ. ४५१ में कुल द्रव्यों की चर्चा की है और प्रारंभ में कुल शक्ति (कुल कुलाङ्गना की विधिवत् पूजा करने का विधान है, अन्त में भी पूजा कही गयी है। यदि कुल श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल द्रव्य परायण हो जाय, तो वह भी कुल शक्ति का पूजन एवं पञ्चमा कार का प्रयोग करे। शास्त्र में ब्राह्मण के लिए अनुकल्प का विधान है। उसी प्रकार कुलशक्ति या कुमारी पूजन का निर्देश है। कहा गया है कि जो अपना हित चाहता हो, मेरे क्रोध एवं सन्ताप का शमन एवं विघ्नों का विनाश चाहता हो, उसे प्रयत्न पूर्वक कुल कुलाङ्गना का पूजन करना चाहिए।)

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य षोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के षोडश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई।। १६।।

सप्तदश श्वास

भाव-विवृत्ति

षोडश श्वास में दीक्षा एवं पूर्णाभिषेक में प्राप्त मन्त्र की सिद्धि के लिए पुरश्चरण की सङ्गोपाङ्ग विधि बतलायी गयी, किन्तु सत्रहवें श्वास से अठारह वे श्वास तक विशेषत: कालीमत से पुरश्चरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। यथावसर अन्य विषयों का और दक्षिणमार्ग का निरूपण भी किया गया है। चूँकि यह रहस्य पुरश्चरण है इस लिए यह गोपनीय है, अत: सब कुछ लिखने के बाद कुछ ऐसा रह जाता है, जो गुरुगम्य है। स्वेच्छा से अनुष्ठान में प्रवृत्त होने वाला सिद्धि के बदले हानि प्राप्त करता है।

दूसरी बात यह है कि एक ही प्रसंग पर अनेक तात्रिक ग्रन्थों के एक जैसे अंश दिये गये हैं, जो एकाध बातों में भिन्न हैं और अनेक स्थानों पर समान हैं। अत: यहाँ संक्षेप में विषय की भाव-विवृति की जा रही है।

कालीमत में दो प्रकार की साधना है— (१) दिव्य भाव की (२) वीरभाव की दिव्य भाव की। उपसना में पुरश्चरण के प्रकार इस प्रकार हैं :—

दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी को सूर्यादय से लेकर अगले सूर्योदय तक यदि निर्भय हो कर जप किया जाय, तो वह व्यक्ति सर्व सिद्धीश्वर हो जाता है।

अथवा शरत्काल की चतुर्थी से नवमी तक भक्तिपूर्वक पूजा करने के उपरान्त एकाकी एकान्त में अन्धकारपूर्ण स्थान में एक सहस्र जप करे। अष्टमी से नवमी तक उपवास करे या कृष्णाष्टमी से प्रारम्भ करके अगली कृष्णाष्टमी तक एक हजार प्रतिदिन जप करने से पुरश्चरण हो जाता है। कृष्ण चतुर्दशी से नवमी तक महोत्सव काल में अष्टमी नवमी की रात्रि में विशेष पूजा करे। दशमी को विशेष द्रव्यों से पारण करे।

अथवा एक चतुर्दशी से दूसरी चतुर्दशी तक भक्ति-भाव से छ: हजार नित्य जप करे। यह ऐसा पुरश्चरण है, जिसमें जपमात्र से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यहाँ होम आदि में कुल द्रव्यों की प्रधानता है और हवन कुंड योनि कुण्ड ही होना चाहिए। इस साधना में योगिनी की प्रधानता है। स्त्री के साथ किसी प्रकार के कटु व्यवहार का निषेध है। पुष्प, जल, नैवेद्य स्त्रीप्रणीत श्रेष्ठ माने गये है।

यहाँ यह भी ध्यान रखें कि दिव्य के लिए वीरकर्म गुप्त है और वीर के लिए दिव्य कर्म गुप्त है। वीर एवं दिव्य वेश तो प्रकट हो सकते हैं, किन्तु साधन पूरी तरह गुप्त है। उपर्युक्त पुरश्चरण दिव्य भावना से भी कर सकते हैं, दिव्य में कुल रूपसाधन आवश्यक है। श्रीविद्या की उपासना में दिव्य का ही क्रम है।

वीरपुरश्चरण का कुलरूप

कुलचूड़ामणि के अनुसार वीर पुरश्चरण में दीक्षिता परकीया की यथाशक्ति पूजाविधान है सम्भव

हो, तो आठ शक्तियों की पूजा करे और उनमें ब्रह्माणी आदि अष्टदेवियो का आवाहन करके प्राणप्रतिष्ठा करे। यदि शक्ति दीक्षित न हो, उसके कानों में माया बीज 'ह्रीं' सुनावे और दाहिने कर्ण में 'मातर्देवि नमस्तेऽस्तु से 'विश्वरूपे नमोऽस्तुते' इन नौ श्लोकों का पाठ सुनावे। यदि कोई पूर्वोक्त नारी न मिले, तो अपने कुल या सम्बन्ध की स्त्री की पूजा सुवासिनी के रूप में की जा सकती है। यदि एक भी युवती की पूजा कर ली गयी, तो सभी परा देवियों की पूजा हो गयी। (पूजाविधि ग्रन्थ में पृ. ४५४-५५ में देंखे)

यदि वीर साधन करना है, तो उत्तम वस्त्र एवं पगड़ी बाँधकर चन्दनादि का लेप करके सिन्दूर से ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाकर इष्टदेव एवं गुरु को प्रणाम करके हृदय में मन्त्र जप करते हुए शान्तभाव से खाद्य पदार्थ ग्रहण करके साधन करे। अथवा भस्मभूषित, मुक्तकेश, दिगम्बर होकर 'उन्मत्तानन्द भैरव होकर साधन करे।

क्रिया का काल

दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी तथा भौमवती अमावास्या उत्तम सिद्धिदात्री है। इसमें रात्रि में साधन करे। भौमवती अमावास्या एवं पुष्पकर योग में कुलामृत रसादि उपचार द्रव्य लेकर रात्रि में श्मशान में जाय।

अनुकल्प विचार

नारियल का जल कांस्य पात्र में तथा ताम्रपात्र में दधि, दुग्ध एवं मधु या दधि, गुड अथवा गुड एवं अदरख का रस सुरा का अनुकल्प है; क्योंकि वह उस प्रकार के पात्रों में रखने से उसी के तुल्य हो जाता है। अनेक शास्त्रों के विचार से ब्राह्मण के लिए अनुकल्प का ही विधान है। 'सात्त्विकेनैव भावेन ब्राह्मणस्तर्पयेच्छिवाम्।' तथा 'गुडार्द्रकररसेनैव सुरा न ब्राह्मणस्य' इन वचनों से ब्राह्मण अनुकल्प का ही पालन करे। महाकाल संहिता के अनुसार दूध से ब्राह्मण तर्पण करे। घी से क्षत्रिय, शहद से वैश्य एवं शूद्र आसव से तर्पण करे।

वीर साधक भी बिना गुरु पंक्ति की एवं वटुक की पूजा किये वृथा पान करता है, तो देवता उसे शाप देते हैं। भैरव की अर्चना एवं मन्त्र तर्पण के विना पीने पर वीर भी नरकगामी होता है। जो कौलाचार को जाने विना तथा गुरुपादुका का पूजन किये बिना जो इस शास्त्र में प्रवृत्त होता है, उसे देवी निश्चय ही पीड़ा देती है। जो समयाचार हीन है और स्वेच्छचारी है, वह यदि असंस्कृत मद्यपान करता है और बलात् स्त्रीसंग करता है, वह रौरव नरक प्राप्त करता है।

महानील-क्रम विचार

भगवान् शंकर ने देवी से कहा यह नील-साधन स्वतः महासिद्धिप्रद है किन्तु उसके उपासक में ये गुण हों, वह बलशाली हो, वह बुद्धिमान् हो, महासाहसिक हो, अत्यन्त पवित्र हो, अत्यन्त निर्मल स्वभाव से दयावान् तथा सभी प्राणियों के हित में रत हो। ऐसे साधक के लिए यह नील साधन है। पृ.

४६१–४६२ में दी हुई विधि के अनुसार जप समाप्त करके शेष सामग्री को जल में फेंककर स्नान करके घर आ जाय। कहते हैं कि भैरव श्मशान में लाठी लेकर घूमते हैं 'अतः यदि लाठी मिल जाय, तो उसे लेकर आवे; क्योंकि इस लाठी के मिलने से वह व्यक्ति स्वयं भैरव एवं विश्वम्भर हो जाता है। यह चितासाधन या श्मशान-साधन है।

शव साधन

पूर्वोक्त प्रकार से सारी विधियाँ पूर्ण करके शव को अधोमुख कर उसकी पीठ पर घुड़सवारी शैली से बैठकर शव के पैर के नीचे त्रिकोण बनाकर मन, वचन एवं कर्म से स्थिर होकर उदय पर्यन्त रहस्य माला से जप करे। यदि अतिभय आदि लगे, तो छागादि बलि आदि में मध्य में या अन्त में देवे। अन्त में शव के बालों को तथा पैर को खोलकर शव का प्रक्षालन कर उसे गड्ढे में या जल में डालकर पूजा द्रव्यों को जल में फेककर स्नान करके घर लौट आवे।

दूसरे दिन आटे की बलि हेतु पुत्तली बनाकर 'पिछले दिन 'मैं रात्रि में जिन देवताओं का यजमान रहा, वे मेरे द्वारा दी जा रही नर, कुंजर या शूकर की बलि ग्रहण करें' ऐसा मन्त्र पढ़कर शस्त्र से पुत्तली को काट दे। अगले दिन पंचगव्य पीकर यथाशक्ति पचीस, बीस, पन्द्रह, दश ब्राह्मणों को भोजन दे। स्वयं भी भोजन करके उत्तम स्थान में निवास करे। कुलसाधन को छः रात या तीन रात तक गुप्त रखे। पन्द्रह दिन पर्यन्त पञ्चगव्य प्राशन एवं मौन भाव से स्त्री, नृत्य, गीत, बाहर जाना आदि वर्जित कर विशेष रूप से दिन में मौनी, सत्यभाषी, संयतेन्द्रिय एवं गो-ब्राह्मण एवं देवताओं की भक्ति करे। सोलहवें दिन तीर्थ में जाकर स्नान करके साढ़े तीन सौ देवताओं का तर्पण करे। यह शव साधन है। (विशेष पृ. ४६५–६६ पर देखें।)

कुछ अन्य पुरश्चरण विधान

(१) चन्द्र सूर्यग्रहण का उल्लेख षोडश श्वास में विस्तार से लिखा जा चुका है।

(२) इसी प्रकार दोनों पक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी को सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक जप करके आतंकरहित साधन से साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है।

(३) शरत्काल की चतुर्थी से नवमी तक भक्तिभाव से पूजन करके रात्रि में अकेले किसी निर्जन स्थान में या सूने शिवालय में एक हजार जप करे। साम्प्रदायिक परम्परा प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त जप करने की है। ग्रन्थकार की टिप्पणी है कि अल्पाक्षर मन्त्र हो, तो वृद्धिक्रम से करना चाहिए। बड़ा मन्त्र हो, तो सहस्र ही करे। होमादिक पूर्ववत्।

(४) पुरश्चरण का दूसरा प्रकार है। यदि गुरुमार्ग का उल्लंघन न हो रहा हो, तो शारदीया अष्टमी को संध्याकाल में साधक लतागृह सांकेतित स्थान में पहुँच कर शक्ति की विधिवत् पूजा करके पूर्वोक्त

विधि से पूजाकर स्वयं दिव्य वेषधारण करके अन्य विधियाँ पूर्ण करके अष्टोत्तर शत जप करे।

(५) अथवा अन्य प्रकार का पुरश्चरण यह है। कुलागार में प्रविष्ट आकृष्टा की मुद्रा में सम्पूर्ण विद्या की भावना करके मन्त्र के तीन भाग का लेखन करके तथा उस शक्ति संस्कार करके उसे भोज्य पदार्थ आदि का निवेदन करके स्पर्शपूर्वक अष्टोत्तर जप करके देवता की भावना करते हुए उसको नमस्कार कर विदा करके स्वयं अष्टोत्तरशत जप करे।

(६) अथवा एकान्त में शक्तिसहित रम्य शय्या पर उदयपर्यन्त दिन में जप कर सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है। यद दिव्य मतानुकूल है।

(७) शनिवार या मंगलवार को नरमुण्ड ले आकर और उसे पंचगव्य तथा चन्दन आदि से लिप्त कर भूमि में आधे हाथ की गहराई में अतिगहन वन में गाड़कर उस पर बैठकर एकाकी एक हजार जप करता है, तो वह कल्पवृक्ष बन जाता है।

(८) दूसरा पुरश्चरण यह है कि मंगलवार को शव ले आकर उसी मान से पृथ्वी में गाड़कर उस दिन से उस दिन तक अर्थात् मंगल से मंगल तक आठ दिनों तक प्रति दिन एक सौ आठ जप करने से सर्वसिद्धीश हो जाता है।

(९) रात्रि में श्मशान में कपाल और खड्ग लेकर उन्मत्तानन्द भैरव के वेश में केश-बन्धन खोल कर तथा दिगम्बर हो भस्मधारण करके मातृका माला से यदि मंत्र जप करे, तो उसको सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

(१०) अथवा गुरु को बुलाकर उनको आसन देकर उनकी देवता की भाँति पूजाकर उन्हें वस्त्र अलंकार स्वर्णमुद्रा आदि देकर प्रसन्न करके तथा उनके पुत्र, पुत्री एवं पत्नी को उसी प्रकार प्रसन्न करके मन्त्र जप करे, तो सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है।

(११) अथवा पुरश्चरण का एक दूसरा प्रकार यह है कि शुद्ध देव-भावना से श्रीगुरु के चरणों का सहस्रार में ध्यान करके जप करने पर साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है। यह सभी मतों का अनुकल्प है। इनमें होमादि नियमों का अभाव है। ये संक्षिप्त पुरश्चरण हैं।

वैष्णव मन्त्र के प्रयोग

नित्यकर्म पूर्ण करके एकलक्ष जप करने से अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यह जप समुद्र-गामिनी नदी का जल पीकर करना चाहिए। सूर्य यदि जन्मलग्न में हो, तो कमलों से दस हजार आहुति देने से करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और वाक् सिद्धि भी होती है। पर्वत पर शाक, मूल, फल खाकर एक मास अर्चन करने से चारों पुरुषार्थ करस्थ हो जाते हैं। पुत्र पौत्रादि पर्यन्त लक्ष्मी स्थिर हो जाती है। इसी प्रकार प्रणव सम्पुटित मन्त्र को तीन रात्रि में दश हजार जपने से बृहस्पति के समान सर्वशास्त्र का व्याख्याता होता है। रविवार के दिन अश्वत्थ वृक्ष की माला से बार–बार अष्टोत्तरशत जप करे, इससे

शान्ति एवं अष्टोत्तरशत वर्ष जीवन होता है। पह सूत्र से पूजा करने से अतुल सम्पत्ति, विद्रुमपूजा से त्रैलोक्य वशीकरण और इसी प्रकार की विभिन्न वस्तुओं की पूजा से सिद्धियाँ होती हैं। ऐसा ग्रन्थ में निर्देश है।

षट्कर्म लक्षण शारदातिलक के अनुसार

शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन एवं मारण ये षट्कर्म हैं। रोग, ग्रह एवं कृत्या आदि से मुक्ति प्राप्त करना शान्ति है। सभी लोगों को आज्ञाकारी बना लेना वशीकरण है। किसी काम के करने में गतिरोध (चाहकर भी करने में असमर्थता) स्तम्भन है। अत्यन्त प्रेमी लोगों में भी परस्पर एक दूसरे से द्वेष भाव करा देना विद्वेष है। उच्चाटन अपने देश आदि से दूर भटकना या किसी काम में मन न लगना। प्राणियों का प्राण हरण कर लेना मारण है।

अपने देवता, दिक्, काल आदि का विचार करके ये कर्म करना चाहिए। इनके क्रमशः रति, वाणी, रमा, लक्ष्मी, दुर्गा, काली ये देवता हैं। वसन्त आदि छः, ऋतुयें हैं, इनमें शान्ति कर्म में हेमन्त, वशीकरण में वसन्त, स्तम्भन में शिशिर विद्वेष में ग्रीष्म, उच्चाटन में वर्षा एवं मारण में शरद् ऋतु है।

शान्ति कर्म में जल, वश्य में अग्नि, स्तम्भन में पृथ्वी, विद्वेष में आकाश, उच्चाटन में वायु एवं मारण में अग्नि तत्त्व होता है। इनके बीजाक्षर य र ल व ह हैं। मन्त्र एवं साध्य के नाम वर्णों को किसी क्रिया के लिए कैसे मन्त्र के साथ रखा जाय, इसकी छः विधियाँ है। ग्रथन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन योग और पल्लव।

यदि मन्त्र के वर्णों के भीतर ही नाम के वर्णों को अन्तरित कर दिया जाय, तो वग्रकन कहलाता है। यह शान्ति क्रम में प्रशस्त है।

यदि मन्त्र के दो–दो वर्णों के बीच साध्य के नाम के अक्षर लिखे जाँय, तो यह विदर्भ कहलाता है और यह वश्य कर्म के अनुकूल है। यदि मन्त्र के वर्णों के भीतर ही साध्य के नाम वर्णों को अन्तरित कर दिया जाय, तो ग्रथन कहलाता है। यह शान्ति कर्म में प्रशस्त है।

यदि मन्त्र के अन्त में नाम हो, तो यह योग कहा जाता है, जो उच्चाटन के लिए है।

यदि नाम के आदि अन्त और मध्य मे मन्त्र हो, तो रोधन कहलाता है। जो विद्वेषण में प्रयुक्त होता है। नाम के अन्त में मन्त्र हो तो यह पल्लव कहा जाता है, जो मारण के प्रयोग़ में आता है।

इनके रंग क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत, मिश्रित, काले एवं धुएँ के जैसे होते हैं। मन्त्र एवं तन्त्रोक्त देवता के भी ये ही रंग होते हैं।

यन्त्रों के लिखने के द्रव्य भी चन्दन, गोरोचन, हल्दी, गृहधूम एवं चिता के अंगार हैं। मारण में ये आठ विष भी मिलाये जाते है। वाजपक्षी की विष्टा, अग्नि (चित्रक) नमक, धतूरे का रस, गृहधूम एवं

त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपल) ये अष्ट विष है। मारण कर्म के लिए नौ प्राण दूतियाँ है– मृता, वैवश्वता, जीवहा, प्राणहा, आकृष्या, ग्रथनी, प्रमादा, विस्युलिगिनी, क्षेत्रप्रतिहरी। मन्त्र में बीज के अन्त में इनमें से अभीष्ट दूती का नाम लिखना चाहिए।

इस प्रकार के षट्कर्मों में से किसी के प्रयोग के लिए मध्यरात्रि में जब साध्य सो रहा हो, तो उसके हृदय कमल के पत्तों में वायु, वह्नि, इन्द्र एवं वरुण का तथा कर्णिकाओं में ईश, राक्षस, चन्द्रमा और यम का तथा यादि बीज वर्णों का मृग के रूप में स्मरण करे। साध्य की द्वादश अंगुल की पुतली बनाकर उसके नाम सहित उसके हृदय में न्यास कर बिन्दु यं रं इत्यादि को भ्रमर अनुभव करते हुए उनको अपने हृदय में स्थापित करते हुए अपने श्वास में उन भृंगियों को निकालकर उनसे साध्य की भृंगियों को एक–एक करके मँगावे। उन भृंगियों को मन्त्रज्ञ या तो पुत्तली में स्थापित करे या अपने चित्त में। पुनः वह्नि बीज से उनका सम्बन्ध नष्ट कर दे और साध्य के भृंगियों को पृथ्वी बीज से स्तंभित कर दे, इस प्रकार हर कर्म में ग्यारह आवृत्ति करना चाहिए। मारण कर्म में पुत्तली में स्थापित करना चाहिए।

दूसरे तन्त्र के अनुसार

साध्य के नाम का एक एक वर्ण मन्त्र के एक-एक वर्ण के साथ ग्रथित कर प्रयोग करे। आदि में मन्त्र एवं पुनः साध्य नाम पुनः अन्त में मन्त्र विलोम हो, तो यह संपुट है। यह शान्ति पुष्टिकर एवं त्रैलोक्य का ऐश्वर्य देने वाला है। आधा मन्त्र आंदि में तथा बीच में साध्य का नाम और आधा अन्त में यह ग्रस्त कहलाता है। इसका सभी अभिचारिक कर्मों में तथा मारण में भी प्रयोग होता है। पहले नाम पीछे मन्त्र यह समस्त कहलाता है, जो शत्रु का उच्चाटन करता है। जहाँ मन्त्र के दो–दो अक्षर के बाद साध्य का एक–एक अक्षर हो, उसे विदर्भ कहते हैं, यह वशीकरण में प्रयुक्त होता है। यदि साध्य का नाम मन्त्र वर्णों से घिरा हुआ है, तो यह आक्रान्त है, जो सर्वार्थसाधक है।

पहले मन्त्र फिर साध्य नाम पुनः मन्त्र यह विद्वेष के लिए उपयुक्त है। आदि और अन्त में मन्त्र दो–दो बार और बीच में साध्य का नाम यह गर्भस्थ है, यह मारण उच्चाटन स्तम्भ एवं वशीकरण में प्रयुक्त होता है।

तीन वार मन्त्र बोलकर साध्य नाम पुनः तीन बार मन्त्र यह सर्वतोवृत कहलाता है। यह सब प्रकार के उपसर्ग को नष्ट करने वाला अपमृत्यु निवारण, सर्वसौभाग्यजनक और मृत को जीवन देने वाला है। आदि में मन्त्र पुनः नाम फिर इसी प्रकार तीन वार करे, तो यह युक्ति विदर्भित हुआ। यह सब प्रकार के रोगों को दूर करने वाला, भूतबाधा एवं मिर्गी जैसे रोगों का नाशक है।

इस प्रकार के प्रयोग सिद्ध-मन्त्रों के ही करना चाहिए।

मन्त्रों के शिर एवं पल्लव का ज्ञान कर के प्रयोगानुकूल उनका प्रयोग गुरुगम्य है।

इसके अनन्तर श्रीविद्या के विभिन्न प्रकार के प्रयोग का विस्तार से उल्लेख है (पृ. ४७१ से ४७९)

किन्तु अन्त में आन्तरोपासना पर बल दिया गया है। लिखा है कि जब तक आत्मा महावह्नि में मन की पूर्णाहुति नहीं कर देता, तब तक अग्नि में तन्त्रोदित हवन नहीं करना चाहिए। ग्रन्थकार का कहना है कि और तन्त्रों के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट है कि अन्तरोपासना ही सर्वश्रेष्ठ है।

दूसरी बात यह है कि जो साधक इस प्रकार का कर्म करता है। उसको आत्मरक्षा के लिए मृत्युञ्जय का जप करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रयोगों से मन्त्री का स्वयं घोर अनिष्ट हो सकता है। (विचारणीय यह है कि स्वयं या किसी से प्रेरित होकर जो प्रयोग जिसके विरुद्ध हम कर रहे हैं, उसकी शक्ति यदि सबल है, तो अभिचारिक कर्म कर्ता को ही नष्ट करता है। अतः वास्तव में विवेकी पुरुष को निष्काम उपासना ही करनी चाहिए।)

इस मार्ग में अधिकारी कौन है, इसका विस्तृत विचार किया है। जो शुद्धात्मा अत्यन्त प्रसन्न क्रोध लौल्यरहित विशुनतादि दोषों से विमुख है, वही भगवती का तर्पण कर सकता है। शक्ति सामरस्य का सच्चारुख कुण्डलिनी जागरण में ही है। जो आकाशकमल के निष्पन्द रूपी सुधापान रत है, वे ही मधुप है शेष मद्यप है। ज्ञान रूपी तलवार से पुण्य–अपुण्य रूपी पशु की बलि देकर जो पर शिव में लीन हैं, वे ही मांसाशी हैं। मन से इन्द्रियों को संयत करके उन्हें आलाकी ओर लगा देते हैं, वे ही मत्स्याशी हैं। शेष सब प्राणिघातक हैं। पराशक्ति से आत्मा का मिलन होने से जो परमानन्द में निमग्न है, वही कुलीन, शेष भोक्ता हैं। अतः पंचकार की वासना सही स्वरूप गुरु से समझ कर ही साधक शक्ति सेवन हो सकता है।

काम्य होम विधि

सौम्य कर्मों के तन्त्रोक्त परिपाटी से अग्नि चक्र का विचार करके कब आहुति सौम्यग्रह के मुख में जायेगी और क्रूर ग्रह के मुख में, इस का ज्ञान करके (ज्योतिष आदि ग्रन्थों से) शुभ ग्रह के मुख में प्रवेश के दिन ही शुभ होम को आरंभ करे। इसके ज्ञान का प्रकार यह है:–

सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक की गणना करके सूर्यादि नव ग्रहों को क्रमशः तीन–तीन नक्षत्र दिये जाँय। ग्रहों का क्रम इस प्रकार है–सूर्य, बुध, शुक्र, शनैश्चर, चन्द्र, मंगल, गुरु, राहु, केतु। अब जिस ग्रह के होम का आरम्भ होगा, उसके मुख में आहुति का प्रवेश होगा। यह अग्निचक्र परिज्ञान है। जैसे सूर्य अश्विनी है और चन्द्रमा पुष्य में, तो यह तीसरा त्रिक शुक्र का हुआ। अतः यह हवन शुभ ग्रह के मुख है, अतः अभीष्ट लाभ होगा।

अब सौम्य होम में सूर्य में शोक, बुध में धनागम, शुक्र में अभीष्ट सिद्धि, शनि में दुःख, चन्द्रमा में सुख, भौम में बन्धन, गुरु में धनप्राप्ति, राहु में रोग तथा केतु में मृत्यु यह ग्रहों का फल है।

अग्निवास

अनन्तर स्वर्ग मर्त्य एवं पाताल में वह्नि कहाँ है, इसका विचार करके ही होम आरम्भ करे। तिथि की गणना शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ कर अमावस्या तक ३० होती है, अत: कृष्ण प्रतिपदा १६ वीं संख्या होगी। तिथिसंख्या+वारसंख्या+२९ जोड़ दे फिर तीन से भाग दे। शेष में यदि एक बचे, तो अग्नि स्वर्ण में, दो बचे, तो पाताल में और शून्य बचे, तो पृथ्वी में अग्नि है। स्वर्ग की वह्नि में उत्पात, पाताल में धनक्षय तथा पृथ्वी में सभी सुख है। (जैसे आज शुभ शुक्ल द्वादशी है, दिन शुक्रवार है, अत: १२+६+२९=४७ को ३ से भाग करने पर शेष दो बचा अत: आज अग्निवास पाताल में है, अत: शुभ काम्य हवन करना उचित नहीं है।)

सौम्य होम द्रव्यों की सूची

ज्ञानार्णव (१७/१५५) के अनुसार ३६ श्लोकों में इन द्रव्यों का वर्णन है। तथा तन्त्रराज के बत्तीस वे पटल में १०२ श्लोकों में सौम्य काम्य कर्मों के होम के द्रव्यों का उल्लेख है। प्रसंगत ज्ञानार्णव ने अपने ३३ वें श्लोक में 'दशांगधूप होमेनसौभाग्यमतुलं भवेत् लिखा है। अत: दशांग का विधान कुल मूलावतार में इस प्रकार है:– जटामासी, हरीतकी, वौशिक, सर्ज (पीलाशाल), मज्जा (अस्थिसार) समानया, वृक्षरूज (गोद), शिलाजीत, मुस्ताक, कुष्ठ इन सबको कूट कर दशांग धूप बनता है। इस विषय में अष्टादश श्वास के पृ. ४८०–८६ तक का अवलोकन करे।

क्रूर होम विधि

तन्त्रराज के ३१ पटल में क्रूर होम का वर्णन है। सौम्य होम को सूक्ष्म मान कर इसे स्थूल होम कहा है। यहाँ पहले सावधान किया गया है कि क्रूर होम से पहले आभिचारिक प्रयोक्ता शत्रु का आयुर्दाय, लग्नोक्त नक्षत्र की अनुकूलता, उस प्रकार के ग्रहों की स्थिति, अष्टक वर्ग स्थिति का विचार करके ही इन तीनों की अनुकूलता में आभिचारिक कर्म करे, अन्यथा क्रूर कर्मों के करने वाले का ही नाश हो जाता है। साथ ही शत्रु की देवता की भक्ति, उसकी आस्तिकता, उसका गुरु के प्रति व्यवहार, उसके निकटवर्ती लोगों के मन्त्र का ज्ञान अच्छी तरह ज्ञात करके तथा ज्योतिष की दृष्टि से उक्त तीनों की प्रतिकूलता समझकर ही क्रूर कर्म करे, अन्यथा शक्ति निष्फल हो जाती है और स्वयं कर्ता का नाश हो जाता है। पुन: कब कहाँ और किस प्रकार पुत्तली प्रयोग करे, इसके लिए ग्रन्थकार ने टिप्पणी तन्त्रराज के टीकाकार अत: मूल तन्त्रराज में विचार की बात कही है। अत: वस्तुत: राग-द्वेष काम, क्रोध, लोभ आदि से प्रेरित होकर ऐसे कर्मों में प्रवृत्त नहीं होना ही उत्तम है। आभिचारिक प्रयोग एवं क्रूर होम का विवरण अष्टादश श्वास के पृ. ४८६–९२ तक दिया गया है। यह प्रकरण रहस्य पुरश्चरण का है और षट् कर्म तो और भी रहस्यमय है, अत: विना समर्थ गुरु की दीक्षा के इसमें प्रवृत्त न होना ही श्रेयस्कर है।

वर्णन टिप्पणी में है। ये दुर्योग हैं– पाताल योग, विषयोग, मृत्युयोग, नाशयोग दिन मृत्युयोग,

क्रकच योग, चण्डीश चण्डायुध योग, महाशूल, काणार्धनक्षत्र योग, रक्तस्थूल योग, कण्टक स्थूणयोग एवं पञ्चाकदोष। विधान की दृष्टि से जब साध्य का अष्टमेश वर्तमान में उसके अष्टम में हो तथा मासादि क्रिया के अनुकूल हो, उस दिन में शरीर में विष स्थान कहाँ–कहाँ है तथा अमृत स्थान कहाँ है, इन सबका विचार करके विषनाड़ी वेध करना चाहिए।

काम्य होम द्रव्यों का मान

इन द्रव्यों का प्रमाण आदि त्रयोदश श्वास के पृ. ३३४–३५ में वर्णित है तथा भाव-विवृति में स्पष्ट किया गया है, अत: वहीं देखें।

इसी प्रकार यहाँ श्रीविद्या के मन्त्र जप की विधि, उसके प्रयोग, त्रिखण्डा श्रीविद्या के तीनों खण्डों का पृथक्–पृथक् प्रयोग आदि विस्तार से वर्णित है। प्रथम खण्ड की साधना से उत्कृष्ट विद्या, द्वितीय से वशीकरण तथा तृतीय से रोगादिनाश तथा सुख-प्राप्ति होती है। किन्तु पूर्णामन्त्र के विधिवत् जप से सब कुछ प्राप्त होता है। भोग भी एवं मोक्ष भी। किन्तु उसकी विधि रहस्यमय एवं गुरुगम्य है। अत: इस विषय में गुरु ही प्रमाण हैं।

काम्यहोम जपविधि

श्रीचक्र की विधिवत् पूजा करके और उपचारों से आराधना करके पवित्र भाव से उस पूजित चक्र के सम्मुख बैठकर यदि एक सहस्रजप करे, तो वह अनन्त फलदायक होता है। अथवा मन्त्रराज की अन्त: पूजा करके जप का आरम्भ करे, तो महान् पातक को नष्ट करता है। जप तीन प्रकार के है वाचिक, उपांशु एवं मानसिक। इनमें से मानसिक जप को सर्वोत्तम कहा है। ध्यानपूर्वक मन्त्रार्थ का अनुस्मरण करते हुए जप का अतिशय महत्त्व है।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य षोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के सप्तदश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई।। १७।।

अष्टादश श्वास

भाव-विवृति

प्रयोगसार के अनुसार

देवस्थान, गुरुस्थान, श्मशान एवं चौराहे पर पादुका (खड़ाऊँ, जूता आदि) आसन, विष्टा-मूत्र आदि करना एवं स्त्री-प्रसंग निषिद्ध है। देवता, गुरु, गुरुस्थान (पीठ इत्यादि) क्षेत्र की अधिदेवता, सिद्ध एवं सिद्धों को आवास का उच्चारण श्रीपूर्वक करना चाहिए। पागल, अन्त्यज की कन्या, रजस्वला, ढीलेस्तन वाली, कुरूपा, विखरे बातों वाली कामार्ता स्त्री की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

कन्या की योनि, पशुओं की काम-क्रीड़ा, नंगी एवं खुले स्तनवाली स्त्री को नहीं देखना चाहिए। दूसरे के धन, एवं दूसरे की स्त्री वर्जित मानना चाहिए। धान्य, गौ, गुरु, देवता, अग्नि, विद्या (पुस्तकादि) धन एवं मनुष्यों की ओर न तो पैर फैलाना चाहिए और न उनका उल्लङ्घन करना चाहिए।

आलस्य (अनुत्साह) मद (अपनी विशिष्टता से प्रसन्नता) मोह, शठता (शक्ति का गोपन) पिशुनता (परोक्ष में दोष-दर्शन) असूया (गुणों में दोष देखना) परनिन्दा कभी न करे।

लिंगी (सम्प्रदाय का चिह्न धारण करने वाले) व्रत (मौनादि) धारण करने वाले विप्र, वेद, वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द) संहिता (मनु आदि की स्मृतियाँ) आगम (शिव आदि से युक्त या मल आदि) कल्प (नक्षत्र कल्प, विद्या कल्प, अभिचार कल्प, शान्तिकल्प आदि) की निन्दा न करे।

युग (हल के साथ का जुआठा) मूसल, पत्थर (सिलबट्टा आदि) रस्सी, चूल्हा, ओखली, सूप, झाड, ध्वज, दण्ड, वैडर्य, हथियार, कलश, चमर, छत्र, दर्पण, आभूषण, भोगयोग्य पदार्थ, पूजा के द्रव्य, महास्थान (श्मशान) की वस्तुएँ एवं देवालय की वस्तुएँ, जिन पदार्थों को दिव्य कहा गया है और भूतप्रेत से आविष्ट वस्तुओं का कभी लंघन न करे और न उनको पैर से स्पर्श करे। जो गोष्ठी समाज विरोधी हो, जो स्वेच्छाचारिता की हो तथा जो दूसरों की हिंसा में लगी हो, उसमें कभी भी सम्मिलित नहीं होना चाहिए।

अपने लिए सामग्री जुटाने के लिए दान न ले, किन्तु देवता और ग्रह की पूजा के लिए यत्न-पूर्वक धन का उपार्जन करना चाहिए।

अपने जीवन में सरलता, सत्य, सुशीलता (स्वभाव एवं सदाचार) समतान्धैर्य, क्षमा, दया, आस्था एवं दिव्य शक्तियों को सदा धारण करना चाहिए। बहेड़ा, मदार, कणजा, स्नुही मन्त्रप्रकाश के अनुसार स्तंभ-दीप मनुष्यों की अथवा दूसरे प्राणियों की छाया में न बैठे। कटे हुए नख, केश, उतारे हुए स्नान के वस्त्र, घर में भरे जल, गधे, कुत्ते एवं बकरी की धूल का स्पर्श दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

लिंग पुराण का कथन है कि—

यदि कोई मूढ़ बकरी, कुत्ते, गधे, ऊँठ एवं झाडू की धूल का स्पर्श करता है, तो उसकी श्रीनष्ट हो जाती है, चाहे वह विष्णु ही हो। (कौलमार्गक) कारण (मद्यमांसादि) देवता और उनके द्वारा निर्मित शास्त्र की निन्दा न करे, गुरु, साधक और शिवलिंग की छाया का भी लंघन न करे। निर्माल्य को न तो खाये औन न लाँधे, उसे शैव दीक्षासंपन्न व्यक्ति को दे दे।

नारद पाञ्चरात्र में लिखा है कि—

साधन के नियम के अनुसार केश, दाढ़ी और (मूँछ का मुण्डन कराकर संभव हो, तो नये वस्त्र धारण कर अथवा मैल एवं जूँका (चीलर) आदि से हित वस्त्र धरण कर विनम्रभाव से सदा गुरु परम्परा से विधि जानकर मंत्र की उक्तरीति से साधना करे। पिता-माता की मृत्यु के बिना जो गंगा में एवं सूर्यक्षेत्र में व्यर्थ ही केशवपन करवाता है, उसे ब्रह्मघाती कहते है। यदि पिता—माता का वियोग हो गया हो, तो प्रयाग में एवं तीर्थयात्रा में केशमुण्डन करवाना चाहिए। व्यर्थ में विकटा (मुण्डित) नही होना चाहिए।

कलिकापुराण एवं विष्णुपुराण में जो मुण्डन का निषेध है, वह दीक्षा से हीन लोगों के लिए है। कूर्मपुराण में जटाधारी या मुंडित, श्वेत यज्ञोपवितधारी, ब्रह्मचर्य में तत्पर शान्त एवं वेदान्त ज्ञान में तत्पर रहना चाहिए। इससे शैव मुण्डित भी हो सकता है, यह सिद्ध होता हैं।

सामान्य कार्य की सिद्धि के लिए और दूसरों की रक्षा के लिए कभी भी अपने मन्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। आपत्ति काल में ऐसा आचरण न करे। सर्प विषमन्त्र (गारुडी भूतवाद भूतोत्सारण) मंत्र का प्रयोग भय से स्वार्थ से या अपने लिए न करे। अतिशय दया से अनाथों के लिए एकान्त में प्रयोग करे। चन्द्रमा एवं सूर्य में गौंओं में अश्व (वायु) एवं अग्नि में एवं ब्राह्मण के शरीर में अपने देवता विष्णु गुरु की भावना करे। माता पिता को विष्णुस्वरूप माने, उसी प्रकार प्रिय अतिथि को माने, विष्णु विश्व के आश्रय हैं और हमारी आत्मा भी विष्णु ही है।

जहाँ जहाँ मात्सर्य (ईर्ष्यादि) के कारण श्रीगुरु की निन्दा सुनाई पड़े, वहाँ नही रहना चाहिए। हरि का स्मरण करते हुए वहाँ से चल देना चाहिए। जिन्होंने गुरु की, परमात्मा की एवं शास्त्र की निन्दा की हो, उनके साथ किसी प्रकार बातें नहीं करनी चाहिए और न रहना चाहिए। मन से, वचन से और कर्म परायी स्त्री के प्रति भाव न विकृत करे (पाठान्तर) हिंसा न करे। उसी प्रकार ब्राह्मण, देवता, विष्णु एवं गौ की निन्दा न करे।

रुद्र, आदित्य, अग्नि, लोकपाल, गृह, गुरु, वैष्णव, पूर्वदीक्षित पुरुष के साथ कभी शाप या अनुग्रह (आशीर्वाद) कभी न करे। इनके सामने मंत्र, मुद्रा एवं समयाचार का कथन न करे। अपने अनुष्ठान सम्बन्धी जो भी कर्म है, उन सबको सबसे गुप्त रखे। मन्त्र की सिद्धि के लिए सदा मन्त्र भी गुप्त रखना चाहिए।

सभी प्राणियों के प्रति अनुकम्पा करे तथा दान, अतिथिपूजन, तीर्थसेवन, स्वाध्याय एवं गुरु की सेवा इन पाँच यज्ञों का अनुष्ठान यह सभी लोगों के लिए सामान्य रूप से सनातन धर्म है। यदि ब्रह्मचारी दीक्षित हो, तो तीनों सन्ध्याओं में देवपूजन करे। त्रिकाल स्नान एवं वेदाध्ययन करे। भिक्षा स्वयं ले आवे और निरन्तर देवता का ध्यान करे। गृहस्थ यदि दीक्षित हो, तो वह भी भिक्षा के अतिरिक्त सब कुछ पूर्वोक्त रूप से करे। मुमुक्षुओं एवं संन्यासियों के लिए जो निरन्तर भगवच्चरणाम्भोज में ही लीन है, उनके लिए जप, अर्चन, ध्यान एवं विधि-विधान का क्रम नहीं है, उनके लिए मानस क्रम (अन्तर्याग) कहा गया है।

संन्यासी यदि वैराग्यरहित हो और गृहस्थ विरक्त हो, तो ये दोनों प्रलयकाल पर्यन्त नरक में पचते हैं।

गृहस्थ को धर्मपत्नी के साथ प्रतिदिन देवपूजन करना चाहिए। उनके दया, दान आदि श्रेष्ठ कर्म से भगवान् प्रसन्न होते हैं। संन्यासियों का द्रव्य दान में अधिकार नहीं है, इसी प्रकार ब्रह्मचारियों एवं वानप्रस्थों के लिए भी। इस विषय पर अनावश्यक चर्चा क्यों करे।

अब उस आचार का वर्णन करता हूँ जिसका स्मरण करके आचरण करके अमृतत्व की प्राप्ति होती है। साधक सभी प्राणियों के हित लगा हुआ समयाचार का पालन न करने वाला अनित्य (निषिद्ध या अवावश्यक) कर्मों का सर्वथा त्याग करके नित्य कर्तव्य कर्मों के अनुष्ठानों में तत्पर होकर मन्त्रों की साधना के द्वारा शिवभावना में तत्पर रहे। पर देवता के चरणों में समस्त कर्मों का समर्पण करे।

वह भक्तिभाव दूसरे के मन्त्र, पूजन, श्रद्धा और पूजा मंत्रों की तथा कुल स्त्री एवं कुलवीर की निन्दा, उनके द्रव्य का अपहरण न करे, एवं स्त्रियों के प्रति कोध या प्रहार न करे। क्योंकि यह सारा संसार स्त्रीमय है। इसलिए स्वयं वैसी ही भावना करे। स्त्रियों से द्वेष न करे, अपितु उनकी विशेषता से पूजन करे।

भक्ष्य पदार्थ, ताम्बूल और रुचि के तथा सुख के अनुरूप के अन्य द्रवरूप पेय, चर्त्य, चोष्य, भक्ष्य लेह्य सबकी संयतचित्त से युवती रूप में भावना करे। कुलीन युवती को देखकर संयत होकर नमस्कार करे। बाला, युवती, वृद्धा, सुन्दरी या कुरुण या महादुष्टा हो, तो भी उसको नमस्कार करे। सभी कार्यों में सदाकुमारी पूजन करे। हे देवि कुमारी पूजन से सभी सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। (कुमारी पूजन आगे कहेंगे।)

जिस मन्त्र में आचार हो उसका धर्म भी वैसा ही होता है। उसके पालन से मंत्री कृतार्थ हो जाता है। उससे उसे स्वर्ग या मोक्ष मिल जाता है। उस आचार के पालन से अधर्म नहीं होता, अपितु महान् धर्म होता है। शास्त्र से मोहित पशु बुद्धिवाले विस्मय से नष्ट हो जाते हैं। इसमें भ्रम नहीं करना चाहिए। अन्यथा सिद्धि की हानि होती है। मंत्री विशुद्ध चित्त हो, तो वह अपवर्गजन्य सिद्धि प्राप्त करता है। यदि साधक निर्विकल्प हो, तो वह साक्षात् ब्रह्मरूप हो जाता है। यदि वह भैरव हो गया, तो उसमें निःसन्देह सिद्धि होती है।

सिद्धि के लिए भी पुरुष को विशेष रूप से रात्रि में पूजा करनी चाहिए। देवी को जो कुछ निवेदित

हो, उसको पूरा का पूरा स्वयं भक्षण करे। जो देवता का अन्न है, वही श्रेष्ठ साधक का अन्न है। नैवेद्य की निन्दा करने वाले को देखकर योगिनियाँ नाचने लगती हैं (और वे उसके) मांस एवं अस्थि का चर्वण करने एवं रक्त पीने के लिए उद्यत हो जाती हैं।

श्रीचक्र का स्वयं पूजन करे। न कर सके, तो अन्य साधक को पूजा सामग्री दे, वह भी संभव न हो, तो पूजित श्रीचक्र का दर्शन कर ले। यह सर्वोत्तम है।

कुलीन स्त्रियों को देखकर मानसिक प्रणाम करे। संभव हो, तो कुलदृष्टि से उनकी मानसिक पूजा भी करे। स्त्री किसी अवस्था की और कैसी भी हो, उसे देवी भाव से प्रणाम करना चाहिए। इससे मन्त्र सिद्धि होती है।

महाविद्याओं की उपासना आदि विचार

काली (दक्षिण कालिकादि) तारा, महाविद्या षोडशी (महात्रिपुरसुन्दरी) षोडशी (पञ्चादशी भेद सहिता) भुवनेश्वरी, भैरवी (बालादिभेद सहिता) छिन्नमस्ता, धूमावती (धर्मटी, मर्कटी, आर्द्रपटी आदि भेद सहिता) बलगामुखी, वाराही (अष्ट भेद सहिता) सिद्धविद्या, मातंगी, श्यामला, कालधुमावती, राजमांतंगी आदि इन की उपासना में निर्विकल्प भाव से तत्पर हो जाना चाहिए।

महानिशा

आधीरात के बाद जो दो मुर्हूत (लगभग ४८ मिनट) महानिशा कहलाता है, इस समय की उपासना अक्षय होती है।

शिवाबलि

संध्या के समय बिल्व वृक्ष के नीचे घनी झाड़ियों में बलि द्रव्य ले जाकर उसे कहीं रखकर स्वयं आसन पर बैठकर किसी पत्थर आदि पर पूजा मंत्र अथवा त्रिकोण, षट्कोण वृत्त एवं चतुरस्रमण्डल बनाकर गुरु, गणपति एवं क्षेत्रपाल को प्रणाम कर मूलमंत्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्याससहित षडङ्ग न्यास एवं ध्यान करके अपना नामगोत्र उच्चारण करके परदेवता प्रीत्यर्थ शिवाबलि विधि करुँगा। ऐसा संकल्प करके 'बलिमण्डलाय नमः' से बलिमण्डल की गन्धादि से पूजा करके बलिद्रव्य रखकर 'बलिद्रव्याय नमः' इस प्रकार बलि द्रव्य की पूजा करके मूल विद्या का उच्चारण करके कलिकात्युमे शिवरूपधारिकि पशुरूपधरे परिवार गण सह अच आयाति धूपदीपादिसहित बलिं गृहण–गृहण स्वाहा' बोलकर पुनः मूलमंत्र का जप करके 'अमुक देवतायै सायुधायै सशक्तिकायै पशुरूपधरायै रुदिषि। शुभाशुभफलं व्यक्त ब्रूहि गृह्ण बलितंत्र। ऐसी प्रार्थना करके कुछ दूर जाकर एकान्त में अपने आसन पर बैठकर प्राणायाम आदिपूर्वक मूल मंत्र का देवी को समर्पण करके नदी आदि में हस्तपादादि प्रक्षालन करके देवी का ध्यान करते हुए मौन होकर पीछे की ओर न देखते हुए घर आ जाय।

नित्यपूजा विधि

यद्यपि श्वास दस में श्रीचक्र की पूजा विधि विस्तार से कही गयी है, तथापि यहाँ सभी मन्त्रों की नित्यपूजा विधि लिख रहे हैं।

द्विविधा पूजा

पूजा दो प्रकार होती है– अनिर्माल्या एवं सनिर्माल्या।

मानसी पूजा के रूप में मानसिक रूप से कल्पित दिव्य गन्ध, पुष्प एवं नैवेद्य आदि के द्वारा अर्चन अनिवार्य कहा जाता है और गाँव या जंगलों में उत्पन्न सुन्दर याग द्रव्यों से पूजा की जाती है, वह सम्मिलित है।

कारण यह है जो वस्तु प्रकृति में उत्पन्न होता है, उसका सम्पर्क पंचमहाभूतों सूर्य चन्द्रादि तथा प्राणियों भ्रमरकीट आदि से होता रहता है, अत: वह पदार्थ किसी न किसी रूप में उपयुक्त हो जाता है, अत: निर्माल्य बन जाता है।

(कुछ लोगों का विचार है कि अनिर्माल्य पूजा केवल जितेन्द्रिय संन्यासियों के लिए है। यदि वे सांसारिक वस्तुओं का पूजार्थ संग्रह करते हैं तो वे आरूढ पतित हो जाते हैं, किन्तु वास्तव में पद्मपुराण एवं तत्त्वसार आदि के आधार पर गृहस्थ को भी मानस पूजन करने का अधिकार है।)

बाह्यपूजा पञ्च प्रकार

तंत्रप्रकाश के अनुसार अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय एवं योग। मन्दिर आदि की सफाई झाडू, पोछा आदि अभिगमन है। देवपूजा के साधन जुटाना गन्ध पुष्पादि तैयार करना उपादेय है। पीठपूजा, देवता सांगावरण पूजन तथा मंत्रार्थभावनापूर्वक जप, कीर्तन, उस देवता से सम्बद्ध स्तुति आदि का पाठ स्वाध्याय है, गुरु देवता एवं स्वयं की ऐक्य भावना योग है। इन पाँचों के क्रमश: सालोक्य सारूप्य, सामीप्य, साष्टि एवं सायुज्य फल है।

प्रात:कृत्य

रात्रि के अन्तिम प्रहर में दायी करवट से उठकर वायाँ पैर पृथ्वी पर रखे। (कुछ मत में जो श्वास चल रहा है उस पैर को पृथ्वी पर रखे और पृथ्वी से क्षमा प्रार्थना करे।) कुछ अन्तिम प्रहर में उठकर धर्मार्थ का चिन्तन करते हैं। उठकर रात्रि वस्त्र बदलकर मंदिर मे जाकर मन्दिर की सफाई करके भगवान् का निर्माल्य हटा कर मुख प्रक्षालन एवं आचमन जल एवं हस्त प्रोञ्छन वस्त्र प्रदान करे।

स्वयं गुरु की पादुका का अपने सिर पर ध्यान करे और दक्षिणामूर्ति संहिता का अनुसरण अपनी मूर्धा में कर्पूरोज्ज्वल, सुप्रसन्न, अलंकृत, शान्त, देवरूपी श्रीगुरुदेव के पादाम्बुज द्वन्द्व का ध्यान करे तथा भैरवतंत्र के श्लोकों का अर्थ भावना करते हुए पाठ करे।

(उपर्युक्त प्रातःस्मरण के ध्यान के अतिरिक्त अन्य उपासनाओं में जो ध्यान किया जाता है, उस समय दीक्षाकाल में श्रीगुरु का जो स्वरूप था, उसका अथवा उनकी अनुग्रहमूर्ति का ध्यान करके ही आह्निक कर्म करना चाहिए। ऐसा शैवागम का मत है। उत्तरतंत्र के अनुसार इष्टदेवता का ध्यान तथा श्रीगुरु एवं इष्टदेवता की ऐक्य भावना भी शान्त मन से ध्यान करना चाहिए।)

शौच, पवित्रता एवं स्वच्छता की दृष्टि से विशेष निर्देश हैं, उन्हें वहीं देखें किन्तु ऋतुओं एवं परिस्थितियों की दृष्टि से भी यह अति आवश्यक है कि गन्दगी छूट जाय एवं दुर्गन्ध दूर जो जाय तथा मनशुद्धि का अनुभव करे, तभी शुद्धि समझनी चाहिए।

दन्तशोधन 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' इस मन्त्र से करे (दक्षिणामूर्ति संहिता) एवं मुख का प्रक्षालन सिद्धि के लिए सदैव अपने मूल मंत्र से करे (उत्तरतंत्र)

स्नान

स्नान तीन प्रकार के हैं– १. जल स्नान, २. मन्त्र स्नान, ३. ध्यान स्नान।

जल स्नान की भी कई विधियाँ हैं– (क) पवित्र मिट्टी लेकर गोमय, कुश, तिल आदि से अभिमंत्रण पूर्वक स्नान यह जल स्नान है। पुनः वैदिक स्नान है। स्मृति समुच्चय के अनुसार प्रातः मृत्तिका से एवं रात्रि में गोमय से स्नान न करे। वैदिक स्नान में मंत्रों का पाठ करते हुए स्नान होता है। तांत्रिक स्नान में त्रिपुरार्णव के अनुसार प्राणों को रोककर एक बार डुबकी लगाकर नाभिमात्र जल में खड़े होकर मूल मंत्र से प्राणायाम करके तथा षडङ्गन्यास करके इष्ट देवता की प्रीति के लिए तांत्रिक स्नान करूँगा ऐसा संकल्प करके सूर्य का ध्यान करते हुए हस्त परिमित चतुरस्र में– **ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे तेन सत्येन ये देव तीर्थं देहि दिवाकर।** से सूर्य-पूजन करके एवं **आवाहयामितित्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि ऐहि गंगे नमस्तुभ्य सर्वतीर्थसमन्विते।।** से गंगा से प्रार्थना करके निम्नलिखित मंत्र का पाठ करते हुए अंकुश मुद्रा से सूर्य मण्डल से तीर्थ शक्ति का आवाहन करे– **ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एह्येहि स्वाहा।** इस प्रकार सूर्य मण्डल के तीर्थ का आवाहन करके गंगा विद्या द्वारा– **ॐ नमो भगवति अम्बे अम्बिके अम्बालिके महामालिनि एह्येहि भगवति अशेषतीर्थालवाले ह्रीं श्रीं शिवजटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा।** मूल मंत्र से आवाहन द्वारा इस प्रकार अभिमंत्रित जल का 'वं' बीज के सात बार जप के द्वारा अमृती करण करके 'ह्रीं' बीज से आलोडन कर कवच 'हुं' से अवगुण्ठन कर 'फट्' से संरक्षण कर देवी स्वयं सांग सावरण उपस्थित है, ऐसी भावना करते हुए उनके चरणयुगल से यह तीर्थ निकल रहा है, यह स्मरण करते हुए देवी का तीन बार तर्पण करे एवं स्वयं तीन अंजलि जल पीकर योनि मुद्रा से तीन बार प्रक्षालन करे। (घर में स्नान कर रहे हों, तो तर्पण न करे।)

मंत्र स्नान

जो जल से स्नान करने में किसी कारण असमर्थ है, जैसे जल का अभाव हो, दुर्गम स्थान हो,

शीतकाल हो, यात्रा में हो, रोगी हो, गुरु के कार्य में या विशेष महत्त्व के कार्य में व्यस्त हो, आपत्तिकाल हो या रात्रि का समय हो, तो पैर धोकर (कहीं कहीं पंचाग स्नान करके जैसे दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मुख धोकर) तथा आचमन करके दसों दिशाओं को जल से संशोधित कर बैठकर अपने हथेलियों में 'फट्' मन्त्र का न्यास करके मूल मन्त्र् से आरम्भ करके अन्य अपेक्षित मन्त्रों से न्यास करे। यह मन्त्र स्नान है। इसी प्रकार मूल मन्त्र का जप करते हुए सारे शरीर में भस्म लेप करना भस्म स्नान कहलाता है।

मानस स्नान

मानस स्नान का नामान्तर ध्यान स्नान भी है। यह स्नान सब स्नानों से श्रेष्ठ है। हमारे इष्टदेव का मन्त्र विग्रह है। वे आकाश में स्थित हैं और उनके पादोदक की धारा हमारे शिर पर गिर रही है तथा सूक्ष्म रोमछिद्रों से हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर देहान्तर्गत समस्त मल का प्रक्षालन कर रही है। मन्त्र जप पूर्वक ऐसी भावना करने से उसी क्षण मन्त्री स्फटिक जैसा निर्मल हो जाता है। क्योंकि सम्पूर्ण क्रियाएँ स्नान के उपरान्त ही होती है, अत: श्रद्धापूर्वक किसी एक प्रकार से स्नान करना अतिआवश्यक है।

वस्त्र धारण

सुन्दर धुले हुए वस्त्र पहनना चाहिए। एक वस्त्र नहीं। जैसे धुली धोती और दुपट्टा। बाद में केशों को फटकारना नहीं चाहिए। नदी आदि में स्नान करने पर गीले वस्त्रों को नीचे से उतारना चाहिए और घर में उपर से। प्रात: काल वस्त्र धोकर तब संध्या करे और मध्याह्न में तर्पण के बाद वस्त्र निचोड़े। (क्योंकि कुल या गोत्र में जो पुत्रहीन होकर मरते हैं उनका तर्पण इसी वस्त्र से निचुड़े हुए जल से होता है।)

तिलक

स्नान के उपरान्त उपासना से पहले तिलक अवश्य करे। ललाट शून्य न रहे। वैष्णव परम्परा के अनुसार ब्राह्मण को ऊर्ध्व पुण्ड्र, क्षत्रिय को त्रिपुण्ड्र, वैश्य को अर्धचन्द्र एवं शूद्र को गोल तिलक करना चाहिए। ऊर्ध्व पुण्ड्र त्रिशूल के आकार का होता है, यह त्रिगुण एवं ब्रह्म विष्णु शिवात्मक है। तिलक सुगन्धित होना चाहिए।

शैव एवं शाक्त परम्परा में भस्म त्रिपुण्ड्र धारण आवश्यक है। ग्रन्थों में भस्म निर्माण एवं संग्रह की विधि भी दी गयी है। त्रिपुण्ड्र त्रिदेव का ही प्रतीक है। इसकी लगाने की विधियाँ है– (१) अंगुष्ठ एवं कनिष्ठा को छोड़कर बीच की तीनों अंगुलियों से एक नेत्र के भौंह के अन्त से दूसरे नेत्र भौंह के अन्ततक त्रिपुण्ड्र लगावे। (२) मध्यमा तथा अनामिका के मध्य में अगुष्ठ को रखकर मध्यमा तथा अनामिका को सीधे तथा अंगुष्ठा को उलटा चलाने से तीन रेखायें बन जाती हैं। तीनों रेखाओं के प्रत्येक के नव–नव देवता कहे गये हैं। ऊपर से पहली रेखा के अकार, गार्हपत्याग्नि, पृथ्वी, आत्मा, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रात:सवन तथा महादेव ये नौ हैं। मध्य की रेखा में उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुण, यजुर्वेद, मध्यन्दिन सवन, इच्छाशक्ति, महेश्वर। तृतीय रेखा के मकार आवहनीयाग्नि, परमात्मा तमोगुण,

द्यौः ज्ञानशक्ति, सामवेद, तृतीय सवन, शिव ये देवता हैं। इन्हें नित्य नमस्कार करके भस्म लगाना चाहिए। इसे माहेश्वर व्रत कहते हैं। इस प्रकार का व्रत मुक्तिकामी पुरुष को करना चाहिए। इससे सब प्रकार के पापों का नाश हो जाता है।

भस्म तिलक का दूसरा प्रकार यह है कि अग्नि इत्यादि मन्त्र से भस्म का संस्कार करके तथा 'ब्रह्म' इत्यादि यजुर्वेद के मंत्र से ग्यारह बार अभिमंत्रित करके तेरह स्थानों में भस्म लगावे। उसके स्थान एवं देवता इस प्रकार हैं। ललाट में ब्रह्मा, हृदय में अग्नि, नाभि में स्कन्द, गले में पूषा, दक्षिण बाहुमूल में रुद्र, बाहुमध्य में आदित्य, मणिबन्ध में चन्द्रमा, वामबाहुमूल में वामदेव, बाहुमध्य में प्रभञ्जन मणिबन्ध में वसुगण, पृष्ठदेश हर में ककुद (गले के पीछे ऊँची पीठ पर) शम्भु तथा शिर में परमात्मा का ध्यान करते हुए भस्म लगावे।

वामकेश्वर तंत्र के अनुसार चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए। दुर्वासा ने भी रम्यं त्रिपुण्ड्रं दधद् भाले नन्दन चन्दनेन ऐसा लिखा है। जो साम्ब सदाशिव उपासक हैं, उनमें ऐसा भी देखा गया है कि वे चन्दन, कुंकुम एवं भस्म मिलाकर त्रिपुण्ड्र लगाते है। परन्तु ग्रन्थ में इस का उल्लेख नहीं है।

जो वैदिक संध्या एवं गायत्री के अधिकारी हैं उन्हें विधिवत् वैदिकी संध्या सर्वाङ्ग पूर्ण करके ही तांत्रिकी संध्या करनी चाहिए। अन्य लोग श्रीगुरु के उपदेश के अनुसार तांत्रिक संध्या करे। यहाँ संक्षिप्त विधि दी जा रही इसका विस्तृत रूप इस ग्रन्थ के बीसवें श्वास में द्रष्टव्य है।

अपवित्रः पवित्रो वा मंत्र से स्वयं पवित्र होकर, आसन शुद्धि करके आचमन करके, मूलमंत्र से तीन प्राणायाम करके अंगन्यास एवं करन्यास मूलमन्त्र से करे। पुनः वं बीज से धेनुमुद्रा से जल का अमृतीकरण करके और मूल मंत्र से सात बार अभिमंत्रित करके उसी जल से अनुस्वार युक्त अकारादि क्षकारान्त मातृकावर्णों से कुश के द्वारा प्रत्येक वर्ण से अपना प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् सूर्य मण्डल में अपने देवता का ध्यान करके तीन अर्घ्य दे तथा बाये हाथ में जल लेकर तथा भूतात्मक बीज मन्त्र लं वं यं रं हं इनके द्वारा सात बार अभिमंत्रित करके तथा मूल मन्त्र से पुनः तीन बार अभिमंत्रित करके दाहिने हाथ में लेकर वामनासिका से लगाकर ऐसा अनुभव करे कि यह जल तेजोरूप से भीतर जाकर सभी प्रकार के मल को शुद्ध कर बाहर निकल रहा है दक्षिण हाथ के जल को वामभाग में वज्रशिला है इस भाव से अस्त्रमन्त्र फट् से उसे विना देखे फेंक दें।

पुनः मूल मंत्र से हस्त प्रक्षालन करके गायत्री और मूल मंत्र से सूर्य मण्डल में स्थित शिव को तीन अर्घ्य दे और सूर्य के मूल मंत्र से तीन वार तर्पण करे। पुनः गायत्री का अट्ठाइस बार जप करके मूल मंत्र का अष्टोत्तरशत जप कर उस जप का समर्पण करके देवता को सूर्य मण्डल से अपने हृदय में लाकार तब तर्पण करे। (जिनका गायत्री का अधिकार नहीं, उन्हें गायत्री का जप नहीं करना है।)

सूर्यार्घ्य विधि

गोबर से लिपी-पुती भूमि में सिन्दूर से मण्डल बनाकर आसन पर बैठकर पूर्वाभिमुख इष्ट देवता को प्रणाम कर सूर्य मंत्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि का न्यास करके अनन्यभाव से सूर्य का पूजन करे। पुनः मण्डल में जल से चतुष्कोण बनाकर उसमें आधार सहित जलपूर्ण ताम्रपात्र स्थापित कर गन्ध, अक्षत, पुष्प (लाल), कुश, दूर्वा, सर्षप, तिल डालकर उस पात्र का स्पर्श करते हुए अष्टोत्तरशत सूर्य मन्त्र से अभिमंत्रित कर पात्र को दोनों हाथों से शिर से ऊपर उठाकर सूर्यमन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए और यथा शक्ति सूर्य मंत्र का जप करना चाहिए। विना सूर्यार्घ्य दिये विष्णु, शिव या देवी की उपासना नहीं करनीं चाहिए। सूर्यार्घ्य मनुष्य की आयु, आरोग्य को बढ़ाने वाला, धन-धान्य, पशु, क्षेत्र, पुत्र, मित्र कलत्र देने वाला, तेज वीर्य, पराक्रम, यश, शक्ति, विद्या, वैभव एवं भाग्य देनेवाला है। इसकी विशेष विधियाँ मंत्र आदि २९ वें श्वास में वर्णित है।

सपर्या का पूर्वाङ्ग

सूर्यार्घ्य दान के बाद द्वारपूजा करे। द्वार के ऊपर विघ्न (गणेश), दक्षिण में महालक्ष्मी वाम में सरस्वती, मध्य में द्वारश्री, दोनों शाखाओं में गणेश, क्षेत्रपाल, शंख, पद्मनिधि मायाशक्ति, चित्शक्ति, गंगा, यमुना, धाता, विधाता की ऊर्ध्वादि क्रम से पूजा करे। देहली पूजन करके द्वारपालों की पूजा करे। यहाँ शैव, वैष्णव तथा गाणपत्य द्वारपालों के उल्लेख के बाद शक्ति के द्वारा पालिकाओं का उल्लेख है। वे इस प्रकार है। ब्राह्मी माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा एवं श्री। ये ही आठ सौर द्वारपालिकाएँ है। इनका ध्यान श्वास ५ के पृ० १०३ पर द्रष्टव्य है।

पुनः विघ्नों का उत्सारण करके पूजागृह में प्रवेश करे। वहाँ पृथ्वी मंत्र का पाठ करते हुए आसन पर रीढ़ सीधी करके स्वस्तिकादि आसन से बैठे और अपने दाहिने भाग में पूजा द्रव्य, वाम भाग में जल कुम्भ, हस्त प्रक्षालन आदि के लिए पात्र पीछे रखे। घृत आदि से पूर्ण प्रज्वलित दीपकों को यथायोग्य स्थापित करे (घृत दीप अपने वायें तथा रक्तवर्ति तैलदीप अपने दाहिने करे।)

पूजा द्रव्य शोधन

हम नहीं जानते कि पुष्प, नैवेद्य, गन्धादि में कौन-कौन से दोष हैं। जैसे अस्पृश्य स्पर्श, अन्याय से अर्जित, निर्माल्य से संस्पृष्ट, कीट आदि से उपभुक्त आदि। इसके लिए नाराचमुद्रा से देखते हुए 'ह्रां ह्रूं फट्' मंत्र पढ़ते हुए देखे। इससे वे दोष नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार दीपशिखा का भी स्पर्श करते हुए 'रं' बीज का जप करे, जिससे वह ज्योति निष्क्रव्याद हो जाय, क्योंकि प्रज्वलित दीपक पर पतंग, कीट, केश आदि के जलने से उनके वसा मज्जा आदि के लिए क्रव्याद आ जाते हैं। इस प्रकार दीपज्योति सुख प्रद एवं पूजा योग्य हो जाती है। इस प्रकार अज्ञात दोषों की निवृत्ति हो जाती है। एवमेव घटस्थजल का नृसिंह के एकाक्षर मंत्र से निरीक्षण करे तथा आधार मंत्र से अपने नाम का आद्यक्षर चन्द्रबिन्दु सहित

जैसे– 'कँ' यह आधार मंत्र है। जल का संस्कार करते हुए देवतीर्थ से जल का स्पर्श करे, क्योंकि जल में अपेय पदार्थों का मिश्रण,पात्र का दोष, जलाशय में शवादि स्पर्श, स्नानजन्य मल और अन्य आगन्तुक दोष होते हैं। अत: इस प्रकार से जल को देवपूजन योग्य बनाना चाहिए।

हाथ को सुगन्धित करना

अंजलि बाँधकर बायें श्रीगुरु, दाहिने गणेश एवं सम्मुख स्वेष्ट देवता का ध्यान करते हुए चन्दन लिप्त सुन्धित पुष्प लेकर दोनों हाथों से अच्छी तरह मलकर दोनों हाथों को सुगन्धित करे। पुन: बायें हाथ में लेकर 'रों' बीज से उसको सूंघे। पुन: नाराचमुद्रा से या प्रसाद बीज मंत्र से ईशान कोण में फेक दे। पुष्प उठाने अंगुलियाँ, मलने से हथेलियाँ, मर्दन से कर पृष्ठ एवं सूघने से नासिका की शुद्धि हो जाती है।

भूतशुद्धि

प्राणायाम पूर्वक भूतशुद्धि करे। पैर से घुटने तक चतुरस्र, वज्रयुक्त, पीतवर्ण, 'लं बीजसंयुक्त पृथ्वी का स्थान है। जानु से नाभिपर्यन्त अर्धचन्द्र जैसा कमलयुक्त शुक्लवर्ण व बीजयुक्त जल का स्थान है। नाभि से कण्ठपर्यन्त त्रिकोण, रक्तवर्ण, स्वस्तिक जैसा 'रं' बीज से युक्त बह्मिमण्डल है। कण्ठ से भ्रूमध्य पर्यन्त, कृष्णवर्ण षट्कोण मण्डल, छः बिन्दुओं से युक्त 'यं' बीज वायुमण्डल है तथा मध्य से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त, वर्तुल ध्वज से चिह्नित धूम्रवर्ण हं बीजयुक्त आकाश, ऐसा ध्यान करके उत्तम साधक 'धर्म के कन्द से उत्पन्न, सुन्दर ज्ञान की नाल पर ऐश्वर्य रूप अष्टदल कमल है और वैराग्य उसकी कर्णिकाएँ हैं। ऐसा मेरा हृदयकमल प्रणव से प्रकाशित है। दीप की लौ जैसे अपने आत्मा को परमात्मा में मिला दे। अब सब तत्त्व वहीं विलीन हो गये, ऐसी भावना करे। **सोऽहं मन्त्र** का जप करते हुए ऐसा करे। यह भूतशुद्धि है।

दूसरी प्रक्रिया में पाप पुरुष का निसारण है। इसके लिए श्वास ५ का पृ. १०७ देंखे।

जब तक आत्मा की, स्थान की, मंत्र की तथा देह की शुद्धि नहीं कर ली जाती, तब तक देवार्चन की योग्यता नहीं होती। यहाँ शुद्धिविधान के क्रम में प्राणायाम ऋष्यादि न्यास का विधान है, जो आवश्य करणीय है।

।। इस प्रकार अनन्तानन्दनाथशिष्य उमानन्दनाथशिष्य षोडशानन्दनाथशिष्य दत्तात्रेयानन्दनाथ विरचित श्रीविद्यार्णवतन्त्र के अष्टादश श्वास की भावविवृति पूर्ण हुई।। १८।।

प्रथम खण्ड सम्पूर्ण हुआ



॥ श्रीः ॥



श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ द्वारा सम्पादित - विरचित ग्रन्थ

- श्रीविद्यारत्नाकरः
- श्रीविद्यावरिवस्या (पूजा विधि सहित)
- श्रीमहागणपति वरिवस्या
- श्रीभुवनेश्वरी वरिवस्या
- श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्
- उपचार मीमांसा
- साम्बपञ्चाशिका (हिन्दी व्याख्या)
- विरूपाक्ष पञ्चाशिका (हिन्दी व्याख्या)
- मंत्र महायोग
- श्रीविद्या एवं श्री यन्त्र एक परिचय
- श्रीविद्यापन्चरत्नम्
- तांत्रिक अष्टांग
- श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् प्रथम एवं द्वितीय खण्ड

श्रीविद्या साधना पीठ के मुख्य उद्देश्य

- श्रीविद्या से सम्बन्धित दुर्लभ साहित्य का प्रकाशन।
- श्रीविद्या साधकों का पथ प्रदर्शन।
- मन्त्र चैतन्य तथा कुण्डलिनी जागरण का क्रियात्मक बोध।
- श्री यन्त्रार्चन पद्धति का प्रशिक्षण।
- तन्त्रशास्त्र विषयक अनुसन्धान।

विशेष

- दीक्षित अधिकारी साधकों का निःस्वार्थ रूप से प्रशिक्षणादि होता है।
- पीठ द्वारा किसी प्रकार का शुल्कादि नहीं लिया जाता है।

श्रीविद्या साधना पीठ

नगवा, वाराणसी